

ڈاکٹر ذاکر حسین لائبریری

DR. ZAKIR HUSAIN LIBRARY

JAMIA MILLIA ISLAMIA
JAMIA NAGAR

NEW DELHI

CALL NO. 491.4309
Accession No. 152 KS.4;2
86692

Call No. **491.4309**
152 KS.4:2

Acc. No. **86692**

Books must be returned to the library on the due date last stamped on the

books. A fine of 5 P for general books, 25 P for text books and Re. 1.00 for over-night books per day shall be charged from those who return them late.



You are advised to check the price and illustrations in the book before

taking it out. You will be responsible for any damage done to the book and will have to replace it, if the same is detected at the time of return.

हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

चतुर्थ भाग

['ज' से 'दस्तंदाजी' तक, शब्दसंख्या-१६०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद
मंगलदेव शास्त्री
कृष्णदेवप्रसाद गौड़
हरवंशलाल शर्मा
शिवप्रसाद मिश्र
गोपाल शर्मा

मोला रांकर व्यास (सद० सची०)

कमलापति त्रिपाठी

धीरेंद्र वर्मा

नगेंद्र

रामधन शर्मा

शिवनंदनलाल दत्त

सुधाकर पांडेय

कल्याणपति त्रिपाठी (संयोजक संपादक)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री

विश्वनाथ त्रिपाठी

काशी नगरी प्रचारिणी सभा

हिंदी शब्दसागर के संशोधन संपादन का संपूर्ण तथा प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशन का साठ प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया ।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण

शकाब्द १८८६

सं० २०२४ वि०

१६६८ ई०

मूल्य २१), संपूर्ण दस भागों का २००)

शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा
नागरी मुद्रण, वाराणसी
में मुद्रित

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशनकाल में ही कोश के नाम पर भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीस दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी मनन तपस्या में इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्राणस्तम्भ के रूप में स्थापित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आरक्षण करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके सड़ एफ़ एफ़ कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सदस्य मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि में अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न दाही छाया के ही बन जाँसके थे। इसलिये निरंतर इसी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किन्तु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वहन कर सकने का कार्य समर्पित पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उमर उल्लासिताय का ऋण चक्रवृद्धि मूढ़ की दर से इसलिये और भी बढ़ा गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ने जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है। हिंदी में एक अच्छे लोग और व्याकरण की कमी खटती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका कृत्त संस्करण निकालने की आवश्यकता है। आवश्यकता केवल उस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाए और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करत हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपये व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निवालेने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके

और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपको निश्चयता सारागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपये, जो पचास वर्षों में बीस बीस हजार रुपये के दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और प्राप्त इतना काम में अवसर होगा।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इन घायला ने शब्दसागर के पुनरावृत्ति के लिये तत्काल उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ० १४—३१४४ एन० दिनांक ११/११/६४ द्वारा एक लाख रुपये पचास वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपये करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एन० परामर्शमंडल का गठन किया गया, जो सभ्यते देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकांश विद्वानों को भी जगती गई किन्तु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा की प्राप्ति हो गया और जिन्हें निरुद्ध पैमाने पर सभा विद्वानों की सेवा के अनुपात इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्पक्ष अनुभवयोगी विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के पत्रों पर आपन बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने इन सबकी समीक्षापूर्वक मध्यम शब्दसागर के संपादन हेतु निम्नलिखित स्थिर किए बिना भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

अर्पित ए—एक लाख रुपये का अवदान बीस बीस हजार रुपये प्रति वर्ष की दर से तैयार प्राप्त वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संपादन, संपादन और पुनः संपादन का कार्य बनाए रखता रहा, परन्तु जो अधिकांश सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका, सभा को प्रतिकूल ही डा० रामधन जी जर्मा ने वह कर्तव्यपूर्ण पता दिया था ता निरीक्षण परीक्षण करके इन योजनाओं के लिये आतंकी-६२०००) अनुदान प्रदान करने की संज्ञा दी गई। सभा को कुलपुस्तक स्वीकार करके पुनः उक्त ६२०००) का धन प्राप्त किया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संयोजन संपादन १९६१ में पूर्ण हो गया।

इस कार्य के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्यय का २० प्रतिशत योग भी भारत सरकार ने वहन किया। इसी लिये यह व्यवधान सभा को निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मंत्रालय के आधिकारिकों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनका आभार्य आभागी है।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत के समस्त उपस्थित किया जा रहा है उसमें अद्यतन विकासित कोशालता का यथामामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की और हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने में हमें सकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इसमें आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदीजगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के नये एक स्थायी विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रबंधन और सशोधन के लिये कोशशिल्प संबंधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस संशोधित प्रबंधन रूप में शब्दों की संख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, सन एवं सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, गणराजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्कृत अथवा विज्ञान के साभान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्षिणी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिणतृपट में प्राक्विक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह संशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खंड पौष, संवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन में समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पौष, सं० २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को भव्य रूप से सजे हुए पंडाल में काशी, प्रयाग एवं अन्यत्र स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यमेवियों, पत्रकारों तथा गणमान्य नागरिकों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। मातागोत्र में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री पं० कमलानि जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री पं० सुमित्रानंदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस संशोधित संवर्धित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त संपादकों को एक एक फाउंटन पेन, ताकत और ग्रंथ का एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों

द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा : 'सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस संस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अनूठे ग्रंथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अग्रिम है'।

प्रस्तुत चतुर्थ खंड में 'ज' से लेकर 'दस्तदासी' तक के शब्दों का संचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, यौगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य सामग्री 'विशेष' से संवलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग १६००० है। अपने मूल रूप में यह अंश कुल ५२६ पृष्ठों में था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित संशोधित संस्करण में ५७६ पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियमित रूप से नित्य सभा में पधारकर इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देते रहे और पं० कृष्णापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हों, पर मदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहे क्योंकि ऐसे ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं मनातन है।

अन में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० राममुंदरदाम जी का अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह सकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उमा प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्य होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी }
विजया दशमी, २०२४ वि० }

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[कट्टरियों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेतान्तर,
ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं ।]

अंधेरे०	अंधेरे की भूल, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण	अध०	अधकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७	अष्टांग (शब्द०) आधी	अष्टांगयोगसंहिता आधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अजात० अणिमा	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वीं सं० अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव	आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, बाणी ब्रितान, वाराणसी, प्र० सं०
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आश्रय अनु- क्रमणिका (शब्द०) आदि०	आश्रय अनुक्रमणिका आदिभारत, प्रजुन चौबे काश्यप, बाणी विहार, बनारस, प्र० सं० १९५३ ई०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०	आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद बिहारी, वैकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०	आनंदधन (शब्द०) आराधना	कवि आनंदधन आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनेक (शब्द०) अनेकार्थ०	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर) अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्र-प्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०	आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भीम, प्र० सं०, १९८४ वि०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	आर्य भा० आर्यों०	आर्यकालीन भारत आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०	इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
अभिषम	अभिषम, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०	इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०	इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा०, अजरस्तदास, कमलमणि ग्रंथ-माला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
अमृतसागर (शब्द०) अयोध्या (शब्द०)	अमृतसागर अयोध्यासिद्ध उपाध्याय 'हरिधीधर'	इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवीं सं०
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नरेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०	इत्यलम् इरा०	इत्यलम्, 'अज्ञेय,' प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद	उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कोटिरस्य, [५ खंड] संपा० आर० शामल्लास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९ ई०	एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०

कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०	काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
कैठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्	किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
कड़ी०	कड़ी में कोयला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट मिर्जापुर, प्र० सं०	किशोर (शब्द०)	किशोर कवि
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदाम, ना० प्र० सभा, काशी	कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी	कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०	कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी २००७ वि०	कृषि०	कृषिशास्त्र
कबीर मं०	कबीर मंसूर [२ भाग], वैकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०	केशव (शब्द०)	केशवदास
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुह्यी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद	केशव ग्रं०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
कबीर० श०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग] बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९०८	केशव० प्रमी०	केशवदास की प्रमीघुट
कबीर (शब्द०)	कबीरदास	कोई कवि (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युगलानंद बिहारी, वैकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई	कुलार्णव तंत्र (शब्द०)	कुलार्णव तंत्र
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०	कौटिल्य ग्रं०	कौटिल्य का ग्रंथशास्त्र
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति	कवासि	कवासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	खानखाना (शब्द०)	अबदुर्रहीम खानखाना
करुण०	सेनापति करुण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महान, इलाहाबाद प्र० सं०	खालिक०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
कविद (शब्द०)	कविद कवि	खिलीना	खिलीना (मासिक)
कविता की०	कविता कीमुदी [१-४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०	खुशराम	खुशराम और चंद हगीनों के खतूत पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर छाठवाँ सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शर्मा, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग	खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०	गंग ग्रं०	गंग कवित्त [ग्रंथावली], संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०	गदाधर०	श्रीगदाधर मट्ट जी की बानी
काया०	कायाकर्म, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वाँ सं०	गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ सं०
काले०	काले कारनाम, 'निराला' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०	गालिब०	गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गोड़, वाराणसी, प्र० सं०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा ग्रंथ निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०	गि०दा०, गि०दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रागेय राघव, शिवोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०	गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
		गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
		गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
		गुंधर (शब्द०)	गुंधर कवि
		गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
		गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब
		गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
		गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०

गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी	छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)	छीत०	छीत स्वामी, संपा० ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, प्रतुच्छाव स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, संवत् २०१२
गोरख०	गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदास बड़वाल, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०	जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलबेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६ प्र० सं०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०	जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	जनानी०	जनानी हथोड़ी, अन्त० यशपाल प्रणोक प्रकाशन, लखनऊ
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलबेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद नदबुनारे त्रात्रपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९६५ वि०
घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, वाणीविलान, ब्रह्मनाल, वाराणसी	जयमिह (शब्द०)	जयमिह कवि
घाघ०	घाघ घोर भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद	जायसी प्र०	जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि	जायसी प्र० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
चंद	चंद हसीनों के खतूत, 'उप', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०	जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवी सं०	जिप्सी	जिप्सी. इनाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०	जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
चरण (शब्द०)	चरणदास	जानदान	जानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका	जानरत्न	जानरत्न दरिया साहब, बेलबेडियर प्रेस, इलाहाबाद
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलबेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	भरना	भरना जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवां सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात घोर अजगर, उपेन्द्रनाथ 'अपक', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०	भाँसी०	भाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भाँसी, द्वि० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति	ढंगोर०	ढंगोर का साहित्यदर्शन, अन्त० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
चिंता	चिंता, पंजय. मरखती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९६० ई०	ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन वि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग	ठाकुर०	ठाकुर जगत, संपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेम, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी	ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खडगविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	ढोला०	ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी द्वि० सं०
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि-श्रीधर', खडगविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०	तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवां सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,	तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला', किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०		
छंद०	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०		
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम ग्राहस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२६ ई०		

तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०	द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
तुरसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११	द्वि० अभि० ग्रं०	द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर	द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
तेज०	तेजविद्वपनिषद्	घरनी० बा०	घरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
तोष (शब्द०)	कवि तोष	धरम० शब्दा०, धरम० धूप०	धरमदास की शब्दावली धूप और धुप्री, रामधारीसिंह 'दिनकर,' अजंता प्रेस, लि०, पटना ४
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०	नंद० ग्रं०, नंददास ग्रं०	नंददास ग्रंथावली, संपा० बजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
द० सागर	हरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०	नई०	नई पीथ, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०	नट०	नटमागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
दयानिधि (शब्द०)	दयानिधि कवि	नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
हरिया० बानी	हरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०	नया०	नया साहित्य : नए प्रश्न. नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
दश०	दशरूपक, संपा० डा० भोलाशंकर व्यास, श्रीलंभा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०	नरेण (शब्द०)	'नरेण' कवि
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध	नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
दहकते०	दहकते ग्रंगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद	नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि ।
दाहू०	श्री दाहूदयाल की बानी, सं० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी	नाथ (शब्द०)	नाथ कवि
दाहूदयाल ग्रं०	दाहूदयाल ग्रंथावली	नाथसिद्ध०	नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी प्र० सं०
दाहू० (शब्द०)	दाहूदयाल	नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश	निबंधमालादर्श (शब्द०)	निबंधमालादर्श (म० प्र० द्विवेदी)
दिल्ली	दिल्ली. रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०	नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०	नेपाल०	नेपाल का इतिहास, पं० बलदेवप्रसाद, वैकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९६१ वि०
दीन० ग्रं०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्याम-सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी. प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि	पजनेस०	पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण बर्म, भारत जीवन ग्रंथालय, काशी, प्र० सं०
दीप०	दीपशिखा, महादेवी बर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०	पदमावत	पदमावत, सं० वासुदेवशरण मयवाल, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० सं०
दी० अ०, दीप अ०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ 'अरक,' लीलाप्रकाशन गृह, प्रयाग	पदु०, पदुमा०	पदुमावती, संपा० सूर्यकांत शाल्मी, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
दूल्हा (शब्द०)	कवि दूल्हा	पद्याकर ग्रं०	पद्याकर ग्रंथावली, संपा० विह्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	पद्याकर (शब्द०)	पद्याकर भट्ट
देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)		
देसी०	देसी नाममाला		
दैनिकी	दैनिकी, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० सं०, १९६६ वि०		
दो सी बावन०	दो सी बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], मुद्रादेव एकेडमी, काँकरोली, प्रथम सं०		

प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०		रांगेय राघव, आत्माराम पेंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १०५३ ई०
परमानंद०	परमानंदसागर	प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रौढ', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
परमेश (शब्द०)	परमेश कवि	प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथालय, लखनऊ, प्र० सं०	प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
पदें०	पदें की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०	प्रेम० और गोकर्ण	प्रेमचंद और गोकर्ण, संपा० शचीरानी गुट्ट, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
पलटू०	पलटू सहस्र की बानी [१-३ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०	प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९६६ वि०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०	प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
पाणिनि०	पाणिनिकापीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०	प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, डा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
पारिजात०	पारिजातहरण	फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाराय 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
पावती	पावती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीयनवन, मंगलमवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०	फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०	बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
पिजरे०	पिजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०	बाँकी० ग्रं०,	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० रामनारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारत भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००६ वि०	बाँकीदास ग्रं०	बंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४६ ई०
पु० रा०	पुष्पीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विश्वनाथ पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	बंदन०	बदमाश बपेंद्र, तेगमली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
पु० रा० (उ०)	पुष्पीराज रासो [४ खंड], स० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०	बद०	बलबीर कवि
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०	बलबीर (शब्द०)	बागिदरा
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली संपा० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	बागिदरा	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र	बिल्ले०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', गंगा ग्रंथालय, लखनऊ, प्र० सं०
प्रबंध०	प्रबंधपत्र, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०	बिहारी २०	कवि बिहारी
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०	बिहारी (शब्द०)	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगी, संपा० संत संपूरणसिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	बी० रासो	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा०	बी० राम	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपालसिंह और एंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
		बी० श० महा०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
		बुद्ध च०	बृहत्संहिता
		बृहत्०	बृहत्संहिता (शब्द०)
		बृहत्संहिता (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
		बेनी (शब्द०)	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
		बेला	

बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मिणी री, सं० ठाकुर रामसिंह, हिंदुरतानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०	भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा धीर साहित्य, डा० उदय-नागयण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा	मति० प्र०	मतिराम ग्रंथावली, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०
ब्रज०	ब्रजविलाम, संपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०	मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
ब्रज० प्र०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिना-रायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	मधु०	मधुकलश, हरिवंशराय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, संपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, तृ० सं०	मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पंत, भारती मंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०	मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाविदु स्वाद, टीका० भिनारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं० १९८३ वि०	मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०	मनविरक्त०	मनविरक्तकरण गुटका सार (चरणदास)
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०	मनु०	मनुस्मृति
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत रसिक	मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
भस्मवृत्त०	भस्मवृत्त चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०	मल्लूक० बानी	मल्लूकदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
भा० इ० व०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुरतानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ वि०	मल्लूक० (शब्द०)	मल्लूकदास
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद शोभा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०	महा०	महागंगा का महत्त्व, जयशंकर प्रसाद, भारती मंडार इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, विरगांव, भीम, नवम सं० ।	महावीर प्रसाद (शब्द०)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि धीर उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं० १९८७ वि०	महाभारत (शब्द०)	महाभारत
भारतीय०	भारतीय राज्य धीर शासनविधान	महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
भारतेन्दु प्र०	भारतेन्दु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० ब्रजरत्न-दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम एंड सन्स, विल्ली, १९५३ ई०	माधवानल०	माधवानल वामकंदला, बोधा कवि, नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८९१ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, पं० सीताराम चतुर्वेदी	मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
भिक्षारी प्र०	भिक्षारीदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० विद्यानाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी	मानव	मानव, कवितासंकलन, भगवतीचरण वर्मा
भीष्मा श०	भीष्मा शब्दावली प्र० सं०	मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
भुवनेश (शब्द०)	भुवनेश कवि	मानस	रामचरितमानस, संपा० जंभुनारायण जीवे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भूषण प्र०	भूषण ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०	मिट्टी०	मिट्टी धीर कूल, नरेंद्र शर्मा, भारती मंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी	मिलन०	मिलनयमिनी, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०
		मुंशी ग्रंथि० प्र०	मुंशी ग्रंथिनंदन ग्रंथ, संपा० डा० विश्वनाथ-प्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
		मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
		मुग०	मुगलयनी, बुध्वावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भीम
		मैला०	मैला ग्रंथल, कृष्णेश्वरनाथ 'रैगु,' समता प्रकाशन, पटना-४, प्र० सं०

मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० सं०	राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद घोषा, बजमेर, १९९७ वि०, प्र० सं०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, बिर्गाव, कासी, प्र० सं०	रा० क०	राजरूपक, संपा० पं० रामकण्ठ, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०	रा० वि०	राजविलास, संपा० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती मंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवां सं०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,	रामकवि (शब्द०)	राम कवि
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, मल्मोड़ा, प्र० सं०	राम० चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, संपा० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०
योग०	योगवासिष्ठ (वैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगा-विष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापा खाना, कल्याण, बंबई सं० १९६७ वि०	राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिद्धपल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा प्रयागार, लखनऊ प्र० सं०, १९८१ वि०	राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्म संग्रह, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिद्धपल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रघु० क०	रघुनाथ रूपक गीतगो, संपा० महाबाबुचंद्र खारेड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रघु० वा० (शब्द०)	रघुनाथदास	रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएं, संपा० पीतांबर-दत्त बड़धवाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ	रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भेरखी, वाराणसी, १९३९ वि०
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजमिह, रीवांतरेश	रेगुका	रेगुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तक मंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
रजत०	रजतशिलर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	रे० बानी	रेदास बानी, बेलबेडियर प्रेस, इलाहाबाद
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०	लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १९८२ ई०	लक्ष्म (शब्द०)	लक्ष्मलाल
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९५३ ई०	लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती मंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार	लाल (शब्द०)	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
रत्नपरीक्षा (शब्द०)	रत्नपरीक्षा	वरुण०, वरुणरत्नाकर	वरुणरत्नाकर
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०	विद्यापति	विद्यापति, संपा० खगेंद्रनाथ मिश्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
रस०	रसमीमांसा, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०	विनय०	विनयपत्रिका, टीका० पं० रामेश्वर मट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रोष,' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०	विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
रसज्ञान०	रसज्ञान और घनानंद, संपा० अमोरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०	विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
रसज्ञान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम रसज्ञान	वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
रस र०, रसरतन	रसरतन, संपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
रसनिधि (शब्द०)	राजा पुष्पसिंह	वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन खाली, गीतम बुकडिपो, बिल्ली, प्र० सं०
रहीम०	रहीम रत्नावली	वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
रहीम (शब्द०)	अब्दुरहीम खानखाना	व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कीमुदी

व्यास (शब्द०)	अधिकारवत् व्यास	बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
वज्र (शब्द०)	वज्र (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय	सबल (शब्द०)
शंकर०	शंकरसर्वस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एंड संस, आगरा, प्र० सं०	सभा० वि० (शब्द०)
शंभु (शब्द०)	शंभु कवि	स० शास्त्र
शकुं०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भीसी	स० सप्तक
शकुंतला	शकुंतला नाटक, भु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०	सहजो०
शाहुजहीनामा (शब्द०)	शाहुजहीनामा	साकेत
शाङ्गेश्वर सं०	शाङ्गेश्वर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, संवत् १९७१	सागरिका
शिक्षर०	शिक्षर वंशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १९८५	साम०
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिद	सा० दर्पण
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि	सा० लहरी
शुक्ल० अभि० प्र०	शुक्ल अभिनदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन	सा० समीक्षा
शृ० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई	साहित्य०
शृंगार सुधाकर (शब्द०)	शृंगार सुधाकर	सुंदर० प्र०
शेर०	शेर श्री सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	सुंदरीसिद्ध (शब्द०)
शैली	शैली, कल्याणरति त्रिपाठी	सुखदा
श्यामा०	श्यामास्वप्न, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	सुधाकर (शब्द०)
श्रद्धानंद (शब्द०)	स्वामी श्रद्धानंद	सुज्ञान०
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक	सुनीता
श्रीनिवास प्र०	श्रीनिवास ग्रंथावली, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	सुंदर (शब्द०)
संतति०	संतकवि संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी	सूदन (शब्द०)
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद	सूर०
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मेश्वर ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०	सूर० (शब्द०)
संत र०	संत रविदास और उनके काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ हरिद्वार, प्र० सं०	सूर० (राधा०)
संतबाणी०, संत०सार०	संतबाणी सार संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद	सेवक (शब्द०)
संन्यासी,	संन्यासी, इन्द्रचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	सेवक श्याम (शब्द०)
संपूर्ण० अभि० प्र०	संपूर्णानंद अभिनदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी	सेवासदन
स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	
सत्य०	कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी, जी	

सीर कु०	सीर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरसार,' नवल- किशोर प्रेस, लखनऊ, व० सं०, १९३४ ई०	हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती मंडार प्रयाग, १९४६ ई०
सी अज्ञान० (शब्द०)	सी अज्ञान और एक सुज्ञान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिधोष'	हिंदी भा०	हिंदी भालोचना
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हि० का० प्र०	हिंदी काव्य पर भांगल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पयजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हि० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
स्वामी हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास	हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३६ ई०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल ग़ाफ़िद, प्र० संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी भानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक	हि० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)	हि० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग	हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हु० रासो०	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	हिम कि०	हिमकिरीटिनी, मास्सनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन	हिम त०	हिमतरंगिणी, मास्सनलाल चतुर्वेदी, भारती मंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास	हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरदावली, जाला भगवान- दीन, ना० प्र० सभा, काशी, हि० सं०
हरिचंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिचंद्र	हितलोच	हितलोच, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, हि० सं०
हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि	हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० अजरतदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, हि० सं०
हरी दास०	हरी दास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४६ ई०	हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न
हर्ष०	हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव- शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०		

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेतचिह्नों का विवरण]

अ०	अंग्रेजी	अव्य०	अव्यय
अ०	अरबी	इव०	इबराती
अक० रूप	अकर्मक रूप	उ०	उदाहरण
अनु०	अनुकरण शब्द	उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक	उडि०	उड़िया
अनु० भू०	अनुकरणार्थमूलक	उप०	उपसर्ग
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप	उभय०	उभयलिङ्ग
अप०	अपभ्रंश	एकव०	एकवचन
अर्ध मा०	अर्धमागधी	कहावत	कहावत
अल्पा०	अल्पार्थक	काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
अव०	अवधी	[को०], (की०)	अन्य कोश

कीक०
क्रि०
क्रि० घ०
क्रि० घ०
क्रि० वि०
क्रि० स०
कव०
गीत
गुज०
ची०
छंद
जापा०
जावा०
जी०, जीवन०
ज्या०
ज्यो०
डि०
त०
तर्क०
ति०
तु०
दू०
दे०
देश०
देशी
धर्म०
नाम०
ना० घा०
नामिक घातु
ने०
न्याय०
पं०
परि०
पा०
पुं०
पुतं०
पु० हि०
पू० हि०
पु०
प्रत्य०
प्र०
प्रा०
प्रे०
फ०
फकीर०

कोंकणी
क्रिया
क्रिया सकर्मक
क्रिया प्रयोग
क्रिया विशेषण
क्रिया सकर्मक
कवचित्
लोकगीत
गुजराती
चीनी भाषा
छंद
जापानी
जावा द्वीप की भाषा
जीवनचरित्
ज्यामिति
ज्योतिष
डिगल
तमिल
तर्कशास्त्र
तिब्बती भाषा
तुर्की
द्रु या दूहला
देखिए
देशज
देशी
धर्मशास्त्र
नामधातु
नामधातुज क्रिया
नामिक घातु
नेपाली
न्याय या तर्कशास्त्र
पंजाबी
परिशिष्ट
पाली
पुंलिंग
पुतंगली
पुरानी हिंदी
पूर्वी हिंदी
पुष्ट
प्रत्यय
प्रकाशकीय या प्रस्तावना
प्राकृत
प्रेरणार्थक रूप
फर्रासीसी भाषा
फकीरों की बोली

फा०
बंग०
बरमी०
बहुव०
बुं० सं०
बोल०
भाव०
भू०
भू० कृ०
मरा०
मल०
मला०
मि०
मुसल०
मुहा०
यू०
यौ०
राज०
लश०
ला०
ले०
व० कृ०
वि०
वि० द्वि० मू०
वै०
व्या०
(शब्द०)
सं०
संयो०
संयो० क्रि०
सं०
सक० रूप
सधु०
सर्व०
स्ये०
स्त्रि०
स्त्री०
हि०
(७)
>
†
‡
✓
*
?

फारसी
बंगला भाषा
बरमी भाषा
बहुवचन
बुंदेलखंड की बोली
बोलचाल
भाववाचक संज्ञा
सूमिका
भूत कृदंत
मराठी
मलयाली या मलयालम भाषा
मलायम भाषा
मिलाइए
मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
मुहावरा
यूनानी
योगिक
राजस्थानी
लशकरी
लाक्षणिक
लैटिन
वर्तमान कृदंत
विशेषण
विषमद्विरुक्तिमूलक
वैदिक
व्याकरण
शब्दसागर
संस्कृत
संयोजक अव्यय
संयोजक क्रिया
सकर्मक
सकर्मक रूप
सधुक्की भाषा
सर्वनाम
स्पेनी भाषा
स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्रीलिंग
हिंदी
काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
व्युत्पन्न
प्रातीय प्रयोग
ग्राम्य प्रयोग
धातुबिह्व
संभाव्य व्युत्पत्ति
अनिश्चित व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

ज

ज—हिंदी वर्णमाला में चवगं के अंतर्गत एक व्यंजन वर्ण। यह स्वयं वर्ण है और चवगं का तीसरा अक्षर है। इसका बाह्य प्रत्यक्ष संवार और नाद घोष है। यह अल्पप्राण माना जाता है। 'झ' इस वर्ण का महाप्राण है। 'च' के समान ही इसका उच्चारण तालु से होता है।

जंकशन—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह स्थान जहाँ दो या अधिक रेलवे लाइनें मिली हों। जैसे,—मुगलसराय जंकशन। २. वह स्थान जहाँ दो रास्ते मिले हों। संगम। जैसे,—कालेज स्ट्रीट और हैरिसन रोड के जंकशन पर गहूरा बंगा हो गया।

जंग^१—संज्ञा स्त्री० [फा०, सं० जङ्ग] [वि० जंगी] लड़ाई। युद्ध। समर। उ०—प्रसद्वान करि हल्ल जंग दुहुँ और मचाइय। सनमुख धरि दृष्टि सुमट बहु कटि हटाइय।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

द्यौ०—जंगघावर। जंगजू।

जंग^२—संज्ञा स्त्री० [अं० जंक] एक प्रकार की बड़ी नाव जो बहुत चौड़ी होती है।

क्रि० प्र०—खोलना।

जंग^३—संज्ञा पुं० [फा० जंग] १. लोहे का मुरचा। धातुजन्य मेल।

क्रि० प्र०—लगना।

२. पंटा। घड़ियाल (को०)। ३. दुश्मियों का देश (को०)।

जंगघावर—वि० [फा०] लड़नेवाला योद्धा। लड़ाका।

जंगजू—वि० [फा०] लड़ाका। वीर। योद्धा। उ०—और सुना है प्रताप बड़े जोश के साथ फौज मुहम्मद कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।—महाराणा प्रताप (शब्द०)।

जंगम^१—वि० [सं० जङ्गम] १. चलने फिरनेवाला। चलता फिरता।

वर। उ०—पुरुषगणि समान उसकी देख पावन भांति। भूप को होने लगी जंगम लता की भांति।—शकुं०, पु० ७। २. जो एक स्थल से दूसरे स्थल पर लया जा सके। जैसे, जंगम संपत्ति, जंगम विष। ३. गमनशील प्राणी से उत्पन्न या प्राणिजन्य।

जंगम^२—संज्ञा पुं० वाक्त्रिणात्य निगायत गीत संप्रदाय के गुरु।

विशेष—ये दो प्रकार के होते हैं—तिरक्त और गृहस्थ। विरक्त मिर पर जटा रसते हैं और कीपीन पहनते हैं। इन लोगों का जिगायती में बड़ा मान है।

३. गमनशील यति। जोगी। उ०—कहँ जंगम तुं कौन नर क्यों भागम ह्यौ कीन।—पु० रा०, ६। २२। ४. जाना। गमन। उ०—तिन रिषि पूछिय ताहि, कवन कारन इत अंगम। कवन धान, किहि नाम, कवन दिस करिब सु अंगम।—पु० रा०, १। ५६१।

जंगमकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्गमकुटी] खतरी (को०)।

जंगमगुल्म—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गमगुल्म] पैदल सिपाहियों की सेना।

जंगम विष—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गमविष] वह विष जो चर प्राणियों के दंश, आघात या विकार आदि से उत्पन्न हो।

विशेष—सुश्रुत ने सोनह प्रकार के जंगम विष माने हैं—दृष्टि, निःश्वास, दंष्ट्रा, नख, मूत्र, पुरीष, शुक, लाला, घ्रातंष, घ्रात (पाठ)। मुखसंदेह, अस्थि, पित्त, विषादित, शूक और श्व (पुन देह)। उदाहरण के लिये जैसे, दिव्य सर्प के श्वास में विष; साधारण सर्प के दंशन में विष; कुरो, बिल्ली, बंदर, मोहू आदि के नख और दाँत में विष; बिच्छू, भिड़, सकृची मछली आदि के घाट में विष होता है।

जंगल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गल] [वि० जंगली] १. जलशून्य भूमि। रेगिस्तान। २. वन। फानन। अरण्य।

मुहा०—जंगल खंगाना = जंगल में खाना। जंगल की बाँध पड़तल करना या छानना। जंगल में भंगल = सुनसान स्थान में खहल पहल। जंगल जाना = टट्टी जाना। पालाने जाना।

३. मीम। ४. एकांत या निर्जन स्थान (को०)। ५. बंजर भूमि। ऊगर (को०)।

जंगल जलेबी—संज्ञा पुं० [हि० जंगल + जलेबी] १. गू। गलीज। गू का लेह। २. बरियारे की जाति का एक पौधा जिसके पीले रंग के फूल के अंदर कुंडलाकार लिपटे हुए बीज होते हैं। जलेबी।

जंगला^१—संज्ञा पुं० [पुर्त० जंगला] १. लिङ्की, दरवाजे, बरामदे आदि में लगी हुई लोहे की छड़ों की पंक्ति। कटहरा। बाड़। २. जोखट या लिङ्की जिसमें जाली या छड़ लगी हों। जंगला।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. कुपट्टे आदि के किनारे पर काढ़ा हुआ बेल बूटा।

जंगला^२—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गल] १. संगीत के बारह मुकामों में से एक। २. एक राग का नाम। ३. एक मछली जो बारह इंच लंबी होती है और बंगाल की नदियों में बहुत मिलती है। ४. धन्न के ते पेड़ या डंठल जिनसे कूटकर धन्न निकाल लिया गया हो।

जंगली—वि० [हि० जंगल] १. जंगल में मिलने या होनेवाला। जंगल संबंधी। जैसे, जंगली लकड़ी, जंगली कंडा। २. प्रापसे प्राप होनेवाला (वनस्पति)। बिना बोए या लगाए उगनेवाला। जैसे, जंगली आम, जंगली कपास। ३. जंगल में रहनेवाला। बनेला। जैसे, जंगली प्रादमी, जंगली जानवर, जंगली हाथी। ४. जो घरेलू या पालतू न हो। जैसे, जंगली कबूतर। ५. असभ्य। उजड़। बिना सनीके का। जैसे, जंगली प्रादमी।

जंगली बादाम—संज्ञा पुं० [हि० जंगली+बादाम] १. कतीले की जाति का एक पेड़। पून। पिनार।

विशेष—यह वृक्ष भारतवर्ष के पश्चिमी घाट के पहाड़ों तथा मलबान और टनासरिन के ऊपरी भागों में होता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है। यह पेड़ फागुन चैत में फूलता है और इसके फूलों से कड़ी दुर्गंध आती है। इसके फलों के बीज को उबालकर तेल निकाला जाता है। इन बीजों को महुंगी के दिनों में लोग भूनकर भी खाते हैं। फूल और पत्तियाँ घोष के काम में आती हैं। इसे पून और पिनार भी कहते हैं।

२. हड़ की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह प्रचमन के टापू तथा भारतवर्ष और बर्मा में भी उत्पन्न होता है। इसकी छाल से एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसके बीज से एक प्रकार का बहुमूल्य तेल निकलता है जो गंध और गुण में बादाम के तेल के समान ही होता है। इसकी पत्तियाँ कसेबी होती हैं और चमड़ा सिक्काने के काम में आती हैं। इसके बीज को लोग गजक की तरह खाते हैं और इसकी लत्ती सुपुर्गों को खिलाई जाती है। इसकी छाल, पत्ती बीज, तेल आदि सब घोष के काम में आते हैं। लोग इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को भी खिलाते हैं। इसे हिंदी बादाम और नट बादाम भी कहते हैं।

जंगली रेंड—संज्ञा पुं० [हि० जंगली+रेंड] दे० 'बन रेंड'।

जंगा—संज्ञा पुं० [प्रा० जंगला] घुँघरू का दाना। घोर।

जंगार—संज्ञा पुं० [प्रा० जंगार] [वि० जंगारी] १. ताँबे का कन्या। नूतिया। २. एक प्रकार का रंग। उ०—सस्त्रीर वही जंगारफा जंगार में आया।—कबीर मं०, पृ० ३३०।

विशेष—यह ताँबे का कन्या है जिसे सिरकाकण लोग निकालते हैं। वे ताँबे के धूर्ण को सिरके के प्रकं में डाल देते हैं। सिरके का बरतन रात भर मुँह बंद करके और दिन को मुँह खोल करके रखा रहता है। चौबीस घंटे के बाद सिरके को उस बरतन में निकालकर छिछले बरतन में सुखने के लिये रख देते हैं। जब पानी सूख जाता है तब उसके नीचे चमकीली नीचे रंग की बुकनी निकलती है जो रंगाई के काम में आती है।

जंगारी—[प्रा० जंगार] नीले रंग का। नीला।

जंगास्त—संज्ञा पुं० [प्रा० जंगार] दे० 'जंगार'। उ०—और जंगाल रंग तेहि भाई। येहि बिधि पाँचो तत दसाई।—घट०, पृ० २३८।

जंगाल^२—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गल] पानी रोकने का बाँध।

जंगाली^१—वि० [प्रा० जंगार] दे० 'जंगारी'। उ०—स्याही मुख नफेदी होडे। जगद जाति जंगाली सोई।—घट०, पृ० ६७।

जंगाली—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रेशमी वपड़ा जो चमकीले नीले रंग का होता है।

जंगालीपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० जंगारी+पट्टी] गंधा बिरोजा की बनी नीले रंग की पट्टी जो फोड़े फुंसियों पर लगाई जाती है।

जंगी^१—वि० [प्रा०] १. लड़ाई से संबंध रखनेवाला। जैसे, जंगी जहाज, जंगी कानून। २. फौजी। सैनिक। सेना संबंधी। जैसे, जंगी लाट, जंगी भफसर।

यौ०—जंगी लाट = प्रधान सेनापति।

३. बड़ा। बहुत बड़ा। दीर्घकाय। जैसे, जंगी घोड़ा। ४. बीर। बड़ाका। बहादुर। जैसे, जंगी पादमी। ५. स्वस्थ। पुष्ट। जैसे, जंगी जवान।

जंगी^२—संज्ञा पुं० [देश०] (कहारों की बोलचाल में) घोड़ा। जैसे,—दाहने जंगी, बचा के।

जंगी^३—वि० [प्रा०] जंघवार का। हबशा देश का। जैसे, जंगी हड़।

जंगी^४—संज्ञा स्त्री० जंघवार देश का निवासी। हबशी।

जंगी जहाज—संज्ञा पुं० [प्रा० जंगी+घ० जहाज] लड़ाई के काम का जहाज। युद्धपोत।

जंगी बेड़ा—संज्ञा पुं० [प्रा० जंगी+हि० बेड़ा] लड़ाई जहाजों का समूह। युद्धपोतों का काफिला।

जंगी हड़—संज्ञा स्त्री० [प्रा० जंगी+हि० हड़] काली हड़। छोटी हड़।

जंगुल—संज्ञा पुं० [सं० जंगुल] जहर। विष।

जंगे जरंगरी—संज्ञा स्त्री० [प्रा० जंगेजरंगरी] केवल दिखावटी या झूठमूठ की लड़ाई। कूटयुद्ध [को०]।

जंगेला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चोरी, मामरी और लुही भी कहते हैं। वि० दे० 'कही'।

जंगे—संज्ञा स्त्री० [हि० जंगी] बड़ी घुँघरू लगी कमरपट्टी जिसे ग्रहीर या घोबी अपने जातीय नाच के समय कमर में बाँधते हैं।

जंगोजदल—संज्ञा स्त्री० [प्रा० जंगो+घ० जदल] रक्तपात। मारकाट। लड़ाई झगड़ा। उ०—नई हमकी हुगिज है बहु बल। ता उमड़े करें हम जंगोजदल।—दक्खिनी०, पृ० २२२।

जंगोजिदाल—संज्ञा पुं० [प्रा० जंगो+घ० जिवाल] दे० 'जंगो-जदल'।

जंग^१(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घा] दे० 'जंघा'। उ०—जानु जंघ त्रिभंग सुबेर कलित कंचन बंड। काष्ठीनी कटि पीत पट हुति, कमल केसर खंड।—सूर०, १। ३०७।

जंग^२(५)—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घा] जाँघ में पहनी जानेवाली जाँघिया।

जंघा—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घा] १. पिछली। २. जाँघ। रान। उ०। ३. कंची का दस्ता जिसमें फल और दस्ताने लगे रहते हैं। यह प्रायः कंची के फलों के साथ ढाला जाता है पर कभी कभी यह पीतल का भी होता है।

जंघाकर, जंघाकार—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाकर, जङ्घाकार] हरकारा। घावक [को०]।

जंघात्राण—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में जाँघों की रक्षा के काम में उपयोगी कवच [को०]।

जंघापथ—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घापथ] पैदल रास्ता [को०]।

जंघाफार—संज्ञा पुं० [हि० जंघा+फारना] कहारों की बोली में

वह खाई जो पालकी के उठानेवाले कहारों के रास्ते में पड़ती है।

जंघाबंधु—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाबन्धु] एक ऋषि का नाम [को०]।

जंघाबल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाबल] दोड़ने की शक्ति। जाघ की साकत [को०]।

जंघामथानी—संज्ञा स्त्री० [हि० जंघा + मथानी] छिनाल स्त्री। पंचखी। कुलटा।

जंघार—संज्ञा स्त्री० [हि० जंघा + आर] वह फोड़ा जो जाघ में हो। विशेष—यह प्राकृति में लबा और कड़ा होता है और बहुत दिनों में पकता है। इसमें अधिक पीड़ा और जलन होती है।

जंघारथ—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घारथ] १. एक ऋषि का नाम। २. जंघारथ नामक ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

जंघारा—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० जङ्ग (=लड़ना); या सं० जङ्ग (=युद्ध) + हि० आर (प्रत्यय०)] राजपूतों की एक जाति जो बड़ी भगड़ालू होती है। उ०—तब जंघारों बीर बर स्वामि सु धामे प्राइ।—पृ० रा०, ६१। २४००।

जंघारि—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घारि] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

जंघाल^१—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाल] १. धावन। धावक। दूत। २. भावप्रकाश के अनुसार मृग की सामान्य जाति।

विशेष—इस जाति के अंतर्गत हरिण, एण, कुरंग, ऋष्य, पुषत, स्यंकु, शंवर, राजीव, मुंडो आदि हैं। तामड़े रंग के हिरन को हरिण, कुछवर्णों को एण, कुछ भाग्य वर्णों लिए काले को कुरंग, नीलवर्णों को ऋष्य, हरिण से कुछ छोटे अग्रविद्युक्त को पुषत, बहुत से सींगोंवाले को मृग, स्यंकु इत्यादि कहते हैं।

जंघाल^२—वि० वेग से दोड़नेवाला [को०]।

जंघिल—वि० [सं० जङ्घिल] भीत्रगामी। फुर्तीला। प्रजवी। तेजी से दोड़नेवाला [को०]।

जंजपूक—संज्ञा पुं० [सं० जङ्जपूक] मंद स्वर से बोल करनेवाला भक्त। उ०—जंजपूक गठरी सो बैठयो भुको कमर सत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६।

जंजबोल—संज्ञा स्त्री० [सं० जंजनील] सोंठ। सूखी शदरक। शुठि [को०]।

जंजर^१—वि० [सं० जंजर] दे० 'जंजल'।

जंजर^२—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंजीर] शृंखला। जंजीर। उ०—तबई लगी दिढ़ जंजर जेरी। मोह लोह की पाइनि बेरी।—मद० मं०, पृ० २७३।

जंजरित^१—वि० [हि० जं (=जनु) + सं० जटित, हि० जरित] अथित सा। जड़ा हुआ सा। उ०—नयन उदय पुंडरिक प्रसन भ्रमरीय सु राजे। गुंजहार जंजरित तड़ित बहिर सु विराजे।—पृ० रा० २। ५१०।

जंजल^१—वि० [सं० जंजर, फ़ा० जंजर] पुराना और कमजोर। बेकाम। जीर्ण धीर्ण।

जंजार^१—संज्ञा पुं० [हि० जग + जाल] दे० 'जंजाल' उ०—कहा पढ़ावे बावरे और सकल जंजार।—संत रा०, पृ० १५३।

जंजाल^१—संज्ञा पुं० [हि० जग + जाल] [वि० जंजालिया, जंजाली] १. प्रपञ्च। भ्रमट। बखेड़ा। उ०—भ्रम प्रभु दीनवधु हरि, कारन रहित दयाल। तुलसिदास सठ ताहि भजु छाड़ि कपट जंजाल।—तुलसी (शब्द०)। २. बंधन। फँसान। उलझन। उ०—(क) आजा ले के चन्धो नृपति वहे उत्तर दिशा विनाश। करि तप त्रिष जनम जब लीन्हों, मिटयो जन्म जंजाल।—मूर० (शब्द०)। (ख) हृदय की कबड्डी न पीर घटी। दिन दिन हीन स्त्रीन भई काया, दुख जंजाल जटी।—मूर० (शब्द०)।

मुहा०—जंजाल तोड़ना=बंधन या फँसाव को दूर करना। उ०—भव जंजाल तारि नयन के पल्लव हृदय विदायो।—मूर० (शब्द०)। जंजाल में पड़ना या फँसना=कठिनता में पड़ना। संकट में पड़ना। उलझन में फँसना।

३. सानी का भेंवर। ४. एक प्रकार की बड़ी पत्तीदार बूझ जिसकी नाल बहुत लंबी होती है। यह बहुत भारी होती है और दूर तक मार करती है। उ०—मूरज के मूरज गद्दि लुटिय। तुपक तेग जंजालन लुटिय।—मूर० (शब्द०)। ५. एक बड़े मुँह की तोप। इसमें एकड़ परपर घादि भरकर फेंक जात थे। यह बहुधा किले का घुस तोड़ने के काम में आती थी। ६. बड़ा जाल।

जंजालिया—वि० [हि० जंजाल + इया (प्रत्यय०)] १. जंजाल या जंजाल रचनेवाला। बखेड़ा करनेवाला। उ०—बाहू रे ईश्वर! तेरे सरीखा जंजालिया कोई जंजालिया भी न निकलेगा।—श्यामा०, पृ० ५। २. भगड़ाल। उपद्रवी। फसावी।

जंजाली^१—वि० [हि० जंजाल] भगड़ाल। बखेड़ेवा। फसावी।

जंजाली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जंजाल] वह रस्सी और धिरनी जिनमें राल बँटाते या गिराते हैं।

जंजीर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंजीर] [हि० जंजीरी] १. सिकल। सिक्की। कड़ियों की लड़ी। जैसे लोह की जंजीर। उ०—तुम सु छुड़ावहु मन कहु, बहुहि जंजु जंजीर।—पृ० रा०, ६। १६२। २. बेड़ी।

मुहा०—जंजीर डालना=पैर में बेड़ी डालना। बांधना। बंदी करना। पैर में जंजीर पड़ना=(१) जंजीर में जकड़ा जाना। बंदी होना। (२) स्वच्छंदता का अपहरण होना। बाधा या विवशता। उ०—गीतग बसन पहार पर, हम जमुना के तीर। मय तो मिलना कठिन है, पाँव गरी जंजीर।—(शब्द०)।

३. किवाड़ की कुंडी या सिकड़ी।

मुहा०—जंजीर बजाना=कुंडी खटखटाना। जंजीर लगाना=कुंडी बंद करना।

जंजीरखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंजीरखानह] कारागृह। जेलखाना। कैदखाना [को०]।

जंजीरा—संज्ञा पुं० [हि० जंजीर] एक प्रकार की सिलाई जो देखने में जंजीर की तरह मासुम पड़ती है। यह फाँव बांधने में जंजीर की तरह मासुम पड़ती है। यह फाँव बांधने में जंजीर की तरह मासुम पड़ती है। यह फाँव बांधने में जंजीर की तरह मासुम पड़ती है।

कर सी जाती है और यह केवल कसीदे और सूईकारी में काम आती है। लहरिया।

क्रि० प्र०—डालना।

जंजीरि(५)—वि० [हि० जंजीर + ई] जंजीरदार। जिसमें जंजीर लगी हो।

जंजीरो—वि० [क्रा० जंजीरी] १. जंजीरदार। २. जंजीर में बंधा। बंदी (की)।

मुहा०—जंजीरी गोला = तोप के वे गोले जो कई एक साथ जंजीर में लगे रहते हैं। ये साधारण गोलों की अपेक्षा अधिक म्यानक होते हैं।

जंजीरेदार—वि० [हि० जंजीरा + दार] जिसमें जंजीरा पड़ा हो। जंजीरा डाला हुआ। लहरियादार।

विशेष—यह केवल सिलाई के लिये प्रयुक्त होता है। जैसे, जंजीरे-दार सिलाई।

जंट—संज्ञा पु० [सं० ज्वाइंट] जिला मजिस्ट्रेट के नीचे का सिविलियन मजिस्ट्रेट। जंट मजिस्टर।

जंटिलमैन—संज्ञा पु० [सं०] १. भलामानुस। सभ्य पुरुष। २. धनपरेजी बाल बाल से रहनवाला आदमी। उ०—तुम लोग अभी जंटिलमैन से टूट कराना बिलकुल नहीं जानता।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ७६।

जंड—संज्ञा पु० [देश०] एक जंगली पेड़ जिसे सागर भी कहते हैं। इसकी फलियों का अचार बनाया जाता है। उ०—डूले, पीलू, भाक और जंड के कुछमुड़ाए हुए।—ज्ञानदान, पृ० १०३।

जंडेल^१—वि० [हि० जंट + एल (प्रत्य०)] १. प्रधान। बड़ा। २. स्वस्थ। तदुक्त। हट्टाकट्टा।

जंडेल^२—संज्ञा पु० [सं० जनरल] सैनिक अफसर। नायक। उ०—भलकारी ने टोकने के उत्तर में कहा—हम तुम्हारे जंडेल के पास जानता है।—मासी०, पृ० ४३५।

जंत^१(५)—संज्ञा पु० [सं० जन्तु] प्राणी। जीव। जंतु। उ०—कर्महि करि जपजत ये जंत। कर्महि करि पुनि सबको घंत।—नंद० प्र०, पृ० ३०६।

जौ०—जीवजंतु = जीव जंतु। उ०—(क) जीवजंत धन बिघन बन जीव जीव बल छीन।—पृ० रा०, ६। २२। (ख) जा दिन जीव जंत नहीं कोई।—रामानंद, पृ० १२।

जंत^२—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र; प्रा० जंत] यंत्र। तांत्रिक यंत्र। जंतर।

जौ०—जंत मंत = जंतर मंतर

जंतर—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र, प्रा० जंत्र] १. कल। घोजार। यंत्र। २. तांत्रिक यंत्र।

जौ०—जंतर मंतर।

३. चौकोर या संबी ताबीज जिसमें तांत्रिक यंत्र या कोई टोटके की वस्तु रहती है। इसे लोग अपनी रक्षा या सिद्धि के लिये पहनते हैं। उ०—जंतर टोना मूढ़ हिलावन ता कूं सांच न मानो।—चरण० बानी, पृ० १११। ५. गले में पहनने का एक गहना जिसमें चांदी या सोने के चौकोर या लंबे टुकड़े

पाट में गुंथे होते हैं। कटुला। ताबीज। ५. यंत्र जिससे वैद्य या रासायनिक तेल या घासघ घादि तैयार करते हैं। ६. जंतर मंतर। मानमंदिर। घाकाशलोचन। ७. पत्थर, मिट्टी घादि का बड़ा ठोका। ८. धोणा। बीन नामक बाजा।

जंतर मंतर—संज्ञा पु० [हि० यन्त्र + मन्त्र] १. यंत्र मंत्र। टोना टोटका। जादू टोना। २. घाकाशलोचन। मानमंदिर जहाँ ज्योतिषी नक्षत्रों की स्थिति, गति घादि का निरीक्षण करते हैं।

जंतरा—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्री] एक रस्सी जो गाड़ी के ठाँवे पर कसी या तानी जाती है। जंत्रा।

जंतरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्र] १. छोटा जंता जिसमें सोनार तार बढ़ाते हैं। वि० दे० 'जंता'—२।

मुहा०—जंतरी में खींचना = (१) तारों को जंते में डालकर पतखा और संबा करना। (२) सीधा करना। दुरुस्त करना। कज निकालना। टेढ़ापन दूर करना।

२. पत्र। तिथिपत्र। एक तरह का पचास। उ०—मेरे यहाँ की संग्रह की जंतरियों घादि को देखकर ही यह बात लिखी है।—सुंदर० प्र०, भा० १ (जी०) पृ० १२१।

जंतरी^२—संज्ञा पु० १. जादूगर। भानमती। २. बाजा बजानेवाला। वाद्यकुशल व्यक्ति। उ०—बिना जंतरी यंत्र बाजता मगन मे।—पलदू०, पृ० ६४।

जंता^१—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र] [स्त्री० जंती, जंतरी] १. यंत्र। कल। जैसे, जंताघर। २. सोनारों और तारकसों का एक घोजार जिसमें बालकर वे तार खींचते हैं।

विशेष—यह घोजार लोहे की एक लंबी पटरी होती है जिसमें बहुत से ऐसे छेद कई पंक्तियों में होते हैं जो क्रमशः छोटे होते जाते हैं। सोनार सोने या चाँदी के तारों को पहले बड़े छेदों में, फिर उससे छोटे छेदों में, फिर और छोटे छेदों में क्रमानुसार निकालकर खींचते हैं जिससे तार पतले होकर बढ़ते जाते हैं।

जंता^२—वि० [सं० यन्त्र (= यता) यंत्रणा देनेवाला। बंड देनेवाला। शासन करनेवाला। उ०—साकिनी डाकिनी पूवना घेत बैनाल भूत प्रथम रूप जंता।—तुलसी प्र०, पृ० ४६७।

जंता^३—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र] अश्वरथ का वाहक। सारथी उ०—जाको तू भयो जात है जता। अठयो गर्भ सु तेरो हुता।—नंद० प्र०, पृ० २२१।

जंता^४(५)—संज्ञा पु० [सं० जनित > जनिता] [स्त्री० जंती] पिता। बाप।

जंती^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जंता] छोटा जंता जिससे सोनार बारीक तार खींचते हैं। जंतरी।

जंती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जनित > जनिता, या हि० जमना] माता। माँ।

जंतु—संज्ञा पु० [सं०] १. जन्म लेनेवाला जीव। प्राणी। जानवर।

जौ०—जीवजंतु = प्राणी। जानवर।

२. महामारत के अनुसार सोमक राजा का एक पुत्र जिसकी चरबी

से होम करने के पीछे सी पुत्र हो गए । ३. आत्मा । जीवस्थ
आत्मा (की०) । ४. सुद्र जीव । निम्न कोटि का जानवर । कीट
पतंग आदि (की०) ।

जंतुकवु—संज्ञा पु० [सं० जन्तुकवु] १. शंख का कीड़ा । २. शंख ।

जंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुका] लास । जंतुका । लासा ।

जंतुघ्न^१—वि० [सं० जन्तुघ्न] प्राणिनाशक । कृमिघ्न ।

जंतुघ्न^२—संज्ञा पु० १. विडंग । वायविडंग । २. हींग । ३. बिजौरा
नीबू । ४. वह घ्राणघ्न जिसके सपर्क से कीड़े मर जाते हैं ।

जंतुघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुघ्नी] वायविडंग । विडंग ।

जंतुनाशक—संज्ञा पु० [सं० जन्तुनाशक] हींग ।

जंतुपादप—संज्ञा पु० [सं० जन्तुपादप] कोशात्र या कोसम नाम का
वृक्ष । वि० दे० 'कोसम' (की०) ।

जंतुफल—संज्ञा पु० [सं० जन्तुफल] उदुंबर । गूलर । ऊमर ।

जंतुमति—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुमती] पुष्पी । धरती (की०) ।

जंतुमारो—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुमारी] नीबू ।

जंतुला—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुला] कांस नाम की घास ।

जंतुशाला—संज्ञा पु० [सं० जन्तुशाला] बिड़ियाघर ।

जंतुहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुहन्त्री] वायविडंग । जंतुघ्नी ।

जंत्र—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र] १. कल । घोजार । २. तांत्रिक यंत्र ।

यौ०—जन्मंत्र ।

३. ताला । ४. तंत्र वाद्य । बाजा । वि० दे० 'यंत्र' । उ०—कबीर
जत्र न बाजही, टूटि गया सब तार ।—कबीर सा० सं०,
पृ० ७६ ।

जत्रना^१—क्रि० सं० [हि० जत्र] ताला लगाना । ताले के भीतर
बंद करना । जकड़बंद करना । उ०—मभा राउ मुहमहिपुर
मन्नी । भरत भगति सबके मति जंत्रो ।—तुलसी (शब्द०) ।

जत्रना^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्रणा] दे० 'यन्त्रणा' ।

जन्मंत्र—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र मन्त्र] दे० 'जन्म मंत्र', 'यंत्र मंत्र' ।
उ०—जयति पर जत्र मंत्राभिचार प्रसन, कारमनि कूट
कृत्पादि होता ।—तुलसी प्र०, पृ० ४६७ ।

जंत्रा—संज्ञा पु० [हि० जतरा] दे० 'जतरा' ।

जंत्रित—[सं० यन्त्रित] १. नियंत्रित । बंद । बंधा । उ०—जयति
निष्पाधि भक्तिभाव जन्त्रित हृदय बंधु हित बिभक्त्यादि
चारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. ताला लगा हुआ । ताले में
बंद । उ०—नाम पाहुरू राति दिन, ध्यान तुम्हार कपाट ।
कोचन निजपद जन्त्रित जाहि प्रान केहि बाट ।—मानस,
५ । ३० ।

जंत्री^१—संज्ञा पु० [सं० यन्त्रिक] बीणा आदि बजानेवाला । बाजा
बजानेवाला ।

जंत्री^२—वि० यंत्रित करनेवाला । बद्ध करनेवाला । जकड़बंद करने-
वाला ।

जंत्री^३—संज्ञा पु० [सं० यन्त्रिन्] बाजा । उ०—बाजन दे बैजंतरा जग
जंत्री ना छेड़ । तुम्हे बिरानी क्या पड़ी अपनी आप निवेर ।—
कबीर (शब्द०) ।

जंत्री^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक प्रकार का तिथिपत्र । पत्रा ।
जतरी ।

जंद^१—संज्ञा पु० [फा० जंद; मि० सं० छन्दस्] १. पारसियों का
प्रत्यंत प्राचीन धर्मग्रंथ ।

विशेष—इसकी भाषा वैदिक भाषा से मिलती जुलती है । इसके
श्लोक को 'गाथा' या मंत्र (मि० सं० मंत्र) कहते हैं । इसके
छद्म और देवता वेशों के छंदों और देवताओं से मिलते हैं ।

२. वह भाषा जिसमें पारसियों का जंद प्रवस्ता नामक धर्मग्रंथ
लिखा गया है ।

यौ०—जंद अवेस्ता=जरयुस्त्र रचित पारसियों का धर्मग्रंथ ।

जंदरा—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र > हि० जतर > जदरा] १. यंत्र ।
कल ।

मुहा०—जंदरा ढोला होना = (१) कल पुर्जे बेकार होना ।
(२) हाथ पैर सुस्त होना । चकावट घाना । नस
ढीली होना ।

२. जाँता । जैसे, कुछ गेटू गीले, कुछ जंदरे ढीले । † ३. ताला ।

जदा^१—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र हि० जन्त्र] ताला । उ०—त्रिस विषम
कोठको जंदे मारे । बिनु बीजी क्यों खलहि ताले ।—प्राण०,
पृ० ३२ ।

जंघाला—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्राला] १२८ हाथ लंबी, १६ हाथ
चौड़ी और १२६ हाथ ऊँची नाव ।

जंपती—संज्ञा पु० [सं० जम्पती] दंपती । पतिपत्नी ।

जंपना^१—क्रि० प्र० [सं० जल्प; प्रा० जप्प, जप; सं० जल्पना]
कहना । कथन करना । उ० (क) हम जपे चंद बरहिआ
कहा निघट्टे हय प्रती ।—पृ० रा० ५७ । २३६ । (ख)
सम बनिता बर बदि चंद जपिय कोमल कल ।—पृ० रा०,
१।१३ । (ग) यो कवि भूषण जपत है लखि संपति को
प्रलकापति लाजे ।—भूषण (शब्द०) ।

जंब^१—संज्ञा पु० [सं० जम्ब] कंदम । कीचड़ । पक ।

जंब^२—संज्ञा पु० [सं० जंब] पाप । दोष । गुनाह । उ०—नपस तेरा
जब घटी बोले है जान । लायक उस है बेजस पछान ।—
दमिलनी०, पृ० ३८१ ।

जंबक^१—संज्ञा पु० [सं० जंबक; तुल० सं० चम्पक] चपा का
फूल (की०) ।

जंबक^२—संज्ञा पु० [सं० जम्बुक] जंबुक । उ०—ऐसा एक प्रबंध
देखा । जंबक करे केहरि सूं सेला ।—कबीर प्र०, पृ० १३५ ।

जंबाला—संज्ञा पु० [सं० जम्बाल] १. कीचड़ । काँची । पंक । २.
सेवार । शैवाल । ३. काई । ४. केवड़ा ।

जंबाला—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बाला] केतकी का वृक्ष ।

जंबालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बालिनी] नदी । सरिता (की०) ।

जंबीर—संज्ञा पु० [सं० जम्बीर] १. जंबोरी नीबू । २. मरुवा ।
३. सफेद या हल्के रंग की तुलसी । ४. बनतुलसी ।

जंबोरी नीबू—संज्ञा पु० [सं० जम्बीर] एक प्रकार का लट्टा नीबू ।

विशेष—इसका फल कागशी नीबू से बड़ा होता है। इसके फल के ऊपर का छिलका मोटा और उभरे महीन महीन दानों के कारण खुरदुरा होता है। कच्चा फल श्यामता लिए गहरा हरा होता है, पर पकने पर पीला हो जाता है। इसका पेड़ बड़ा और कंटीला होता है। बसंत ऋतु में इसमें फूल लगते हैं और बरसात में फल दिखाई पड़ते हैं जो कार्तिक के उपरांत खाने योग्य होते हैं। फल इसमें बहुत भाते हैं और बूत दिनों तक रहते हैं।

जंबील—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जंबील] झोली। पिटारी। टोकरी।

जंबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] १. जंबू वृक्ष। जामुन। २. जामुन का फल। उ०—जुन जंबु फल चारि तकि सुख करौ हौं।—चनानंद०, पृ० ३५२। (५) ३. जांबवान्। उ०—बंघि पाज सागरह हनुप संगद सुधीवह। नील जंबु सु जटाल बली राहुन अप जीवह।—पृ० रा०, २।२७१।

जंबुक—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] [स्त्री० जंबुकी] १. बड़ा जामुन। फरेंदा। २. श्योनाक वृक्ष। ३. सुवर्ण केतकी। केवड़ा। ४. शृगाल। गोदड़। ५. चरुण। ६. एक वृक्ष। ७. टेंदू का पेड़। सोना पाटा। ८. स्कंद का एक अनुचर। ९. नीच व्यक्ति। निम्न कोटि का आदमी। [को०]।

जंबुका (५)—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] शृगाल। गोदड़। जंबुक। उ०—घरनी यह मन जंबुका बहुत भोजन खात।—संत-बानी०, भा० १, पृ० ११६।

जंबुखंड—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुखण्ड] दे० 'जंबुद्वीप'।

जंबुद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुद्वीप] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप।

विशेष—यह द्वीप पृथिवी के मध्य में माना गया है। पुराण का मत है कि यह गोल है और चारों ओर से सारे समुद्र से घिरा है। यह एक लाख योजन विस्तीर्ण है और इसके नौ खंड माने गए हैं जिनमें प्रत्येक खंड नौ नौ हजार योजन विस्तीर्ण है। इन नौ खंडों को वर्ष भी कहते हैं। इलावृत खंड इन खंडों के बीच में बतलाया गया है। इलावृत खंड के उत्तर में तीन खंड हैं—रम्यक, हिरण्यक, और कुशवर्ष। नील, श्वेत और शृंगवान् नामक पर्वत क्रमशः इलावृत और रम्यक, रम्यक और हिरण्यक तथा हिरण्यक और कुशवर्ष के मध्य में हैं। इसी प्रकार इलावृत के दक्षिण में भी तीन पर्वत हैं जिनके नाम हरिवर्ष, पुरुष और भारतवर्ष हैं; और दो दो वर्षों के बीच एक एक पर्वत है जिनके नाम निषध, हेमरूट और हिमालय हैं। इलावृत के पूर्व में मद्राक्ष और पश्चिम में केतुमाल वर्ष हैं; तथा गणमादन और मातल्य नाम के दो पर्वत क्रमशः इलावृत खंड के पूर्व और पश्चिम सीमावर्ष हैं। पुराणों का कथन है कि इस द्वीप का नाम जंबुद्वीप इसलिए पड़ा है कि इसमें एक बहुत बड़ा जंबु का पेड़ है जिसमें हाथी के इतने बड़े फल लगते हैं। बौद्ध लोग जंबुद्वीप से केवल भारतवर्ष का ही ग्रहण करते हैं।

जंबुध्वज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुध्वज] जंबुद्वीप।

जंबूनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूनदी] दे० 'जंबू नदी'।

जंबुप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुप्रस्थ] एक प्राचीन नगर।

विशेष—इस नगर का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। भरत जब अपने ननिहाल केकय देश से लौट रहे थे तब मार्ग में उन्हें यह नगर पड़ा था। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि आषाढ का जम्बू या जम्भू (काश्मीर) वही नगर है।

जंबुमत्—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमत्] १. एक नगर का नाम जिसे जांबवान् भी कहते हैं। २. पर्वत [को०]।

जंबुमति—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बुमति] एक अप्सरा का नाम।

जंबुमान—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमत्] दे० 'जंबुमत्' [को०]।

जंबुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमालिन्] एक राक्षस का नाम।

जंबुर (५)—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंबूर] दे० 'जंबूर'। उ०—लाखन मीर बहादुर जंगी। जंबुर कमाने तीर खदंगी।—जायसी (शब्द०)।

जंबुल—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुल] १. जंबू। जामुन। २. केतकी का पेड़। ३. कर्णपाली नामक रोग। इसमें कान की छीपक जाती है। सुपकनवा।

जंबुवनज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुवनज] दे० 'जंबुवनज'।

जंबुस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० जंबुस्वामिन्] एक जैन स्थविर का नाम जिनका जन्म राजा श्रेणिक के समय में ऋषभदेव सेठ की स्त्री धारिणी के गर्भ से हुआ था।

जंबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] १. जामुन। २. जामुन का फल। ३. नागदमनी। दीना। ४. काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द स्त्री० है पर जामुन फल के अर्थ में स्त्री० भी है।

जंबू—वि० बहुत बड़ा। बहुत ऊँचा।

जंबूका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूका] किशमिश।

जंबुखंड—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुखण्ड] दे० 'जंबुखंड'।

जंबुद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुद्वीप] दे० 'जंबुद्वीप'।

जंबूनद (५)—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूनद] स्वर्ण। सोना। उ०—जंबूनद को मेरु बनायव। पंच वृक्ष सुर तहाँ गायव। दुतिय रजत गिरि जहाँ सुहायव। ताहि नाम कैलाश धरायव।—प० रासो, पृ० २२।

जंबूनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूनदी] १. पुराणानुसार जंबुद्वीप की एक नदी।

विशेष—यह नदी उस जामुन के वृक्ष के रस से निकली हुई मानी जाती है जिसके कारण द्वीप का नाम जंबुद्वीप पड़ा है और जिसके फल हाथी के बराबर होते हैं। महाभारत में इस नदी को सात प्रधान नदियों में गिनाया है और इसे ब्रह्मलोक के निकली हुई लिखा है।

जंबूर—संज्ञा पुं० [फ्रा जंबूर] १. जंबूरा। २. तोप की चरख। ३. पुरानी छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लायी जाती थी। जंबूरक। ४. भिड़। बर (को०)। ५. शहद की मक्खी (को०)। ६. एक भोजार (को०)।

जंभूरक—संज्ञा स्त्री० [जम्भूरक] छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लादी जाती है । २. तोप की चर्ख । ३. भवर कली ।

जंभूरची—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंभूरची] १. जंभूर नामक छोटी तोप का चलानेवाला । तोपची । बर्कंदाज । सिपाही । तुपकची ।

जंभूरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंभूरह्] १. चर्ख जिसपर तोप चढ़ाई जाती है । २. भँवर कड़ी । भँवर कली । ३. सोने लोहे आदि धातुओं के भारीक काम करनेवालों का एक औजार जिससे वे तार आदि को पकड़कर ऐंठते, रेतते या घुमाते हैं ।

विशेष—यह काम के अनुसार छोटा या बड़ा होता है और प्रायः लकड़ी के टुकड़े में जड़ा होता है । इसमें चिमटे की तरह चिपककर बैठ जानेवाले दो चिमटे पल्ले होते हैं । इन पल्लों की बगल में एक पेंच रहता है जिससे पल्ले खुलते और कसते हैं । कारीगर इसमें चीजों को दबाकर ऐंठते, रेतते, तथा और काम करते हैं ।

४. लकड़ी का एक बरतल जो मस्तूल पर आड़ा सगा रहता है और जिसपर पाल का ढाँचा रहता है ।— (लघ०) ।

जंभूल—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूल] १. जामुन का वृक्ष । २. कैवड़े का पेड़ ।

जंभूवनज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूवनज] श्वेत जवा पुष्प । सफेद गुड़हल का फूल ।

जंभ—संज्ञा पुं० [सं० जम्भ] दाढ़ । चौमर । २. जबड़ा । ३. एक दैत्य का नाम जो महिषासुर का पिता था और जिसे इंद्र ने मारा था । उ०—इंद्र ज्यों जंभ पर, बाढ़ी सृष्टम पर रावण सदां पर रघुकुलराज है ।—भूषण (शब्द०) ।

यौ०—जंभद्विष । जंभमेदी । जंभरिपु=इंद्र का नाम ।

४. प्रह्लाद के तीन पुत्रों में से एक । ९. जंबीरी नीव । ७. कंधा और हँसरी । ८. धक्षण । ९. जम्हाई ।

जंभक^१—संज्ञा पुं० [सं० जम्भक] १. जंबीरी नीव । २. शिव । ३. एक राजा का नाम ।

जंभक^२—वि० १. जम्हाई या नीव लानेवाला । २. हिंसक । भक्षक । ३. कामुक ।

जंभका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भका] जम्हाई ।

जंभन—संज्ञा पुं० [सं० जम्भन] १. भक्षण । २. रति । संयोग । ३. जम्हाई ।

जंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भा] जंभाई । जम्हाई ।

जंभाराति—संज्ञा पुं० [सं० जम्भाराति] जंभ प्रसुर के शत्रु इंद्र (श्री०) ।

जंभारि—संज्ञा पुं० [सं० जम्भारि] १. इंद्र । २. अग्नि । ३. बज्र । ४. विष्णु ।

जंभिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भिका] जम्हाई । जंभा (श्री०) ।

जंभी, जंभीर—संज्ञा पुं० [सं० जम्भिन्ः जम्भीर] दे० 'जंबीरी नीव' । उ०—कट्टू दास दाड़िम सेब कटहन तूत भर जंभीर है ।—भूषण प्र०, पृ० ४ ।

जंभीरी—संज्ञा पुं० [सं० जम्भीरी] दे० 'जंबीरी नीव' ।

जंभूरा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंभूरह् > जंभूरा] दे० 'जंभूरा' ।

जंभालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बालिनी] नदी ।

जंगरा—संज्ञा पुं० [देश०] उर्व, मृग इत्यादि के वे डंठल जो बाँना निकाल लेने के बाद गेष रह जाते हैं । जंगरा ।

जंगरैत—वि० [हि० जंगर + ऐत (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जंगरैतिन] १. जंगरवाला । २. परिश्रमी । मेहनती ।

जंगला—संज्ञा पुं० [हि० जंगला] १. दे० 'जंगला' । २. दे० 'जंगला' ।

जंचना—क्रि० प्र० [हि० जंचना] १. जाँचा जाना । देख भाल करना । २. जाँच में पूरा उतरना । दृष्टि में ठीक या अच्छा ठहरना । उचित तथा अच्छा ठहरना । उचित या अच्छा प्रतीत होना । ठीक या अच्छा जान पड़ना । जैसे,—(क) हमें तो उसके सामने यह कपड़ा नहीं जंचता । (ख) मुझे उसकी बात जंच गई । ३. जान पड़ना । प्रतीत होना । निश्चय होना । मन में बैठना । जैसे,—मुझे तुम्हारी बात नहीं जंचती ।

जंचा—वि० [हि० जंचना] १. जंचा हुआ । सुपरीक्षित । २. प्रत्यर्थ । प्रबुद्ध । जमे,—जाँचा हाथ ।

जंजाल^१—संज्ञा पुं० [हि० जग + जाल] एक प्रकार की प्राचीन बंदूक । जंजाल । उ०—छुट्टी एक काल बिसाल जंजाल ।—हिममत०, पृ० १२ ।

जंजीरनी^१—वि० [हि० जंजीर] बाँधनेवाली । उ०—कच मेचक जाल जंजीरनी तू ।—मेघधन०, भाग १, पृ० २१० ।

जंतसरी—संज्ञा पुं० [हि० जाँत + सर (प्रत्य०)] [स्त्री० जंतसरी, जंतसारी] वह गीत जिसे स्त्रियाँ चक्की पीसते समय गाती हैं । जाँते का गीत ।

जंतसार—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्रशाला] जाँता गाढ़ने का स्थान । वह स्थान जहाँ जाँता गाढ़ा जाता है ।

जंनाना—क्रि० प्र० [हि० जाँता] १. जाँते में पिस जाना । २. कुचल जाना । चूरचूर होना ।

जंभूर^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंभूर] एक प्रकार की तोप जो प्रायः ऊँटों पर चलती थी । जंभूरक । उ०—लाखन मार बहादुर जंभी । जंभूर, कमाल तीर सदांभी ।—जायसी ब०, पृ० २२२ ।

जंभाई—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भा] मूँह के खुलने की एक स्वाभाविक क्रिया जो निद्रा या आलस्य मानुस पड़ने, शरीर से बहुत अधिक द्रव्य निकल जाने या दुर्बलता आदि के कारण होती है । उबारी ।

विशेष—इसमें मूँह के खुलने ही साँस के साथ बहुत सी हवा धीरे धीरे भीतर की ओर खिंच आती है और कुछ क्षण ठहरकर धीरे धीरे बाहर निकलती है । यद्यपि यह क्रिया स्वाभाविक और बिना प्रयत्न के प्राप्ये प्राप होती है, तथापि बहुत अधिक प्रयत्न करने पर उबारी भी जा सकती है । प्रायः दूसरे को जंभाई लेते हुए देखकर भी जंभाई घाने लगती है । हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस वायु के कारण जंभाई आती है उसे 'देवदत्त' कहते हैं । वैद्यक के अनुसार जंभाई घाने पर उत्तम सुगंधित पदार्थ खाना चाहिए ।

क्रि० प्र०—घाना ।—लेना ।

जैमाना—क्रि० प्र० [सं० जूम्भण] जैमाई लेना ।

जैमाई—संज्ञा पु० [सं० जामातृ, प्रा० जामाउ, हि० जमाई]
जामाता । दामाद ।

जैवारा—संज्ञा पु० [सं० यवाग्र या हि० जी] १. दे० 'जवारा' । २.
नवरात्र । उ०—नेवरात्र को लोग जैवारा भी कहते हैं ।—
शुक्ल अष्टि० प्र० (२।०), पृ० १३२ ।

ज^१—संज्ञा पु० [मं०] १. मृत्युञ्जय । २. जन्म । ३. पिता । ४.
विष्णु । ५. विष । ६. भुक्ति । ७. तेज । ८. पिशाच । ९.
वैद्य । १०. छंदशास्त्रानुसार एक गण जो तीन अक्षरों का होता
है । जगण ।

विशेष—इसके आदि और अंत के वर्ण लघु और मध्य का वर्ण
गुरु होता है (।।।) । जैसे, महेश, रमेश, मुरेश आदि । इस
का देवता साँप और फन रोग माना गया है ।

ज^२—वि० १. वेगवान् । वेगित । तेज । २. जीतनेवाला । जेता ।

ज^३—प्रत्य० उत्पन्न । जात । जैसे,—देशज, पितृज, वातज, आदि ।

विशेष—यह प्रत्यय प्रायः तत्पुरुष समास के पदों के अंत में आता
है । पंचमी तत्पुरुष आदि में पंचम्यंत पदों की विभक्ति लुप्त हो
जाती है, जैसे, पादज, द्विज इत्यादि । पर सप्तमी तत्पुरुष
में 'प्राबुट्', 'शरत्', 'काल' और 'सु' इन चार शब्दों के
अतिरिक्त, जहाँ विभक्ति बनी रहती है (जैसे, प्राबुषिज,
शरदिज, कालेज, दिविज) शेष स्थलों में विभक्ति का लोग
विद्वज्जित होता है, जैसे, मनमिज, मनोज, मरसिज, सरोज
इत्यादि ।

ज^४—प्रत्य० पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त । उ०—चंद्र सूर्य का गम
नहीं रहा ज दशन पावै दास ।—रापानंद० पृ० १० ।

जई^५—क्रि० वि० [सं० यत्र] दे० 'जहाँ' । उ०—बालू ठोला
देसणउ, जई पाणी कूँवेण ।—ठोला०, पृ० ६५७ ।

जइ^६—संज्ञा स्त्री० [सं० जय, हि० जी] दे० 'जय' । उ०—निय
भासा जइई, साहस कंपइ, जइ मूरा जइ पाण्डीया ।—कीर्ति०,
पृ० ४८ ।

जइस^७—वि० [सं० यादव] [अन्य रूप जइसन, जइसे] दे० 'जैसा' ।
उ०—(क) गए वृषति हंमन की पीती । तः मध्ये उन जइस
अजाती ।—कबीर सा०, पृ० ६५ । (ख) बेबि मगोइह ऊपर
देखल जइसन दुतिअ चंवा ।—विद्यापति०, पृ० २४ । (ग)
सुनइत रस कथा पाए पीत । जइसे कुरबिनो सुनए संगीत ।
—विद्यापति०, पृ० ४०६ ।

जई^८—संज्ञा स्त्री० [सं० यव, प्रा० अव, हि० जी] १. जी की जाति
का एक अन्न ।

विशेष—इसका पोषा जी के पीछे से बहुत मिनता जुलता है
और जी के पीछे से अधिक बढ़ता है । जी, गेह आदि की
तरह यह अन्न भी पत्ता के अंत में बोया जाता है । बोने के
प्रायः एक महीने बाद इसके हरे डंठल काट लिए जाते हैं
जो पशुओं के चारे के काम आते हैं । काटने के बाद डंठल
फिर बढ़ते हैं और थोड़े ही दिनों में फिर काटने के योग्य
हो जाते हैं । इस प्रकार जई की फसल तीन महीने में तीन

बार हरी काटी जाती है और अंत में अन्न के लिये छोड़
दी जाती है । चौथी बार इसमें प्रायः हाथ भर या इससे कुछ
कम लंबी बालें लगती हैं । इन्हीं बालों में जई के दाने लगते
हैं । बोने के प्रायः साढ़े तीन या चार महीने बाद इसकी
फसल तैयार हो जाती है । फसल पकने पर पीली हो जाती
है और पूरी तरह पकने से कुछ पहले ही काट ली जाती
है, क्योंकि अधिक पकने से इसके दाने झड़ जाते हैं और डंठल
भी निकम्मे हो जाते हैं । एक बीघे में प्रायः बारह तेरह मन
अन्न और छठारह मन डंठल होते हैं । इसके लिये दोमट भूमि
अच्छी होती है और अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती
है । इस देश में जई बहुधा घोड़ों आदि को ही खिलाई जाती
है, पर जिन देशों में गेहूँ, जौ आदि अच्छे फल नहीं होते
वहाँ इसके आटे की रोटियाँ भी बनती हैं । इसके हरे डंठल
गेहूँ और जौ के भूसे से अधिक पोषक होते हैं और गोएँ, भैंसें
और चोड़े आदि उन्हें बड़े चाव से खाते हैं ।

२. जी का छोटा अंकुर ।

विशेष—हिंदुओं के यहाँ नवरात्र में देवी की स्थापना के साथ
थोड़े से जौ भी बोए जाते हैं । अष्टमी या नवमी के दिन वे
अंकुर उखाड़ लिए जाते हैं और ब्राह्मण उन्हें लेकर मंगल-
स्वरूप अपने यजमानों की भेंट करते हैं । उन्हीं अंकुरों को
जई कहते हैं । इस अर्थ में इनके साथ 'देना' 'लौसना' आदि
क्रियाओं का भी प्रयोग होता है ।

मुहा०—जई बालना = अंकुर निकालने लिये किसी अन्न को
भिगेना या तर स्थान में रखना । जई लेना = किसी अन्न
को इस बात की परीक्षा के लिये बोना कि वह अंकुरित होगा
कि नहीं । जैसे,—धान की जई लेना, गेहूँ की जई लेना,
आदि ।

४. उन फलों की बतिया या फली जिनमें बतिया के साथ फूल
भी लगा रहता है । जैसे, खीरे की जई, कुम्हड़े की जई ।
उ०—(क) मरुख बरजि तरजिए तरजनी कुम्हिलेई कुम्हड़े
की जई है ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—लगना । उ०—बचन सुपन्न मुकुल
अवलोकनि, गुननिधि पदुप मई । परस परम धनुराग सीबि
मुल्ल, लगी प्रमोद जई ।—सूर०, १०।१७६२ ।

जई^९—वि० [सं० जयिन्, प्रा० जई] दे० 'जयी' ।

जईफ—वि० [प्र० जईफ] [वि० श्री० जईफा] बुढ़ा । बुढ़ ।

जईफी—संज्ञा स्त्री० [प्रा० जईफी] बुढ़ापा । बुढ़ावस्था । उ०—
जवानी का कमाया जईफी में काम आपगा ।—श्रीनिवास
शं०, पृ० ३४ ।

जउँन^{१०}—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] दे० 'जमुना' । उ०—सब पिरबमी
असीसइ, जोरि जोरि के हाथ । गांग जउँन जी लहि जल,
तौ लहि अम्बर माथ ।—जायसी शं० (गुप्त), पृ० १३० ।

जउबा^{११}—संज्ञा पु० [देश०] एक तरह का रोगकीट । उ०—जउबा
नारु दुखित रोग ।—दरिया० बानी, पृ० ५० ।

जऊ^{१२}—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] जो । अगर । यद्यपि । यद्यपि ।

उ०—धन तन पानिप को जऊ, छकत रहै दिन राति । तऊ
लसन लोयननि की, नैमुक प्यास न जाति ।—स० सप्तक,
पृ० २४७ ।

जकंद^५—संज्ञा स्त्री० [फा० जकंद] छलांग । उछाल । चौकड़ी ।

जकंदना^५—क्रि० प्र० [हि० जकंद + ना (प्रत्य०)] १. कूटना ।
उछानना । उ०—सजोम जकंदत जात नुरंग । चढ़े रन तूरनि
रंग उमंग ।—हम्मीर०, पृ० ५० । २. टूट पड़ना । उ०—
जमन जोर करि घाइया तब भरत जकंदे । मानो राहु सगटिया
भञ्जन नू चंदे ।—सूदन (शब्द०) ।

जक^१—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जकक्ष] १. घनरक्षक भूत प्रेत । यक्ष ।
२. कंजूस धान्धो ।

जक^२—संज्ञा स्त्री० [हि० भक] [वि० भक्की] १. जिह्वा । हठ ।
अड़ । उ०—हुती जिती जग में अधमाई सो मैं सबै करो ।
अधम समूह जघारत कारन तुम जिय जक पकरी ।—सूर०,
१।१३० ।

क्रि० प्र०—पकड़ना ।

२. घुन । रट । ज०—जदपि नाहि नाहि नहीं धदन लगी जक
जाति । तदपि भौह हौसी भरिनु, हौसी पै ठहराति ।—बिहारी
(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

मुहा०—जक घँघना = रट लगना । घुन लगना । उ०—तब पद
भगमक एकचाने चंद्रचूर चाल चितवत एक टक जक बँध गई
है ।—चरण (शब्द०) ।

जक—संज्ञा स्त्री० [फा० जक] १. हार । पराजय । उ०—यही है
धकमर कजा के तिनसे फरिश्ते भी, जक उठा बुके हैं ।—
मागतेहु प्र०, भा० २, पृ० ८५७ । २. हानि । बाटा । टोटा ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—पाना ।

३. पराभव । लज्जा । ४. डर । लौफ । भय ।

जक^३—संज्ञा स्त्री० [प्र० जका] तुल । शाति । चैन । उ०—सुख
बाहे धर उद्यमी जक न परै दिन राति ।—सुंदर प्र०, भा०
१, पृ० १७४ ।

जकड़—संज्ञा स्त्री० [हि० जकड़ना] जकड़ने का भाव । कसकर
बाधना ।

मुहा०—जकड़बंद करना = (१) खूब कसकर बाधना । (२)
घबड़ी तरह कोम लेना । पूरी तरह अपने अधिकार में
कर देना ।

जकड़ना^१—क्रि० प्र० [प्र० यक्त + करण या भृङ्गण (= सिकड़ी)]
कसकर बाधना । जैसे,—उसके हाथ पैर जकड़ दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—डालना ।

जकड़ना^२—क्रि० प्र० जकड़ने आदिके कारण धर्मों का हिलने
डुलने के योग्य न रह जाना । जैसे, हाथ पैर जकड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—उठना ।

४-२

जकन—संज्ञा पुं० [प्र० जकन] ठुड़ी । ठोड़ी । उ०—जब से बाहा
है तेरा चाहे जकन, धन्न चरमी से मेरे जारी है ।—कविता
को०, भा० ४, पृ० २१ ।

जकना^५—क्रि० प्र० [हि० छक या चकपकाना प्रथवा देश०] [वि०
चकित] अचंचे में आना । मोचकता होना । चकपकाना ।
उ०—(क) तकि तकि चहें धोर जकि सी रही बकि, बकि
बकि उठे छकि छेल की लगन मे ।—दीनदयालु (शब्द०) ।
(ख) तर दोउ वरनि गिरे महाराइ ।.....कोउ रहे आकाश
देखत, कोउ रहे सिर नाइ । घग्गि लौं जकि रहे तहें तहें देख
गति बिसराइ ।—सूर०, १०।३८७ । (ग) दूत दबकाने,
बिचगुप्त हू चकाने धौ जकाने त्रमलाल पापपुंज लुंख लै
गए ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५६ ।

जकर—संज्ञा पुं० [प्र० उकर] शिपन । पुरुषेन्द्रिय । २. नर ।
३. फोलाव [को०] ।

जकरना^५—क्रि० प्र० [हि० जकड़ना] दे० 'जकड़ना' । उ०—
श्यामा मेरे नेह की धोर जकरि जिय मोर ।—श्यामा०,
पृ० १७१ ।

जकरिया—संज्ञा पुं० [प्र० जकरिया] एक यहूदी पैगंबर या भविष्य-
वक्ता जो धारे से चीरे गए थे । उ०—योहन् जकरिया
भविष्यवक्ता का पुत्र था ।—कबीर मं०, पृ० २६५ ।

जकात^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० जकात] दान । खैरान ।

क्रि० प्र०—देना ।—करना ।—पाना ।

जकात^२—[प्र० जकात (= वृद्धि ?)] कर । महसूल । उ०—(क) उस
समय उड़ीसा में कौड़ियों के द्वारा क्रय विक्रय होता था ।
यही की मुख्य प्राय त्रयीदारी और जकात से थी ।—सुकल
ग्रंथि० प्र० (इति०), पृ० ११५ ।

जकानो—संज्ञा पुं० [हि० जकात] दे० 'जगती' ।

जकित^५—वि० [हि० चकित] चकित । विस्मित । स्तम्भित ।
उ०—हरिमुख किषो मोहिनी माई ।.....सूरदास प्रभु
धदन बिलोकत जाकेन चकित बित प्रगत न आई ।—
भू० (शब्द०) ।

जकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मलगावल । २. कुत्ता । ३. बैगन का
फूल । ४. जोड़ा । युग्म (को०) ।

जककी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] बुलबुल की एक जाति ।

विशेष—इस जाति की बुलबुल आकार में छोटी होती है और
जाड़े के वनों में उत्तर या पश्चिम हिंदुस्तान के पतिरिक्त
सारे भारतवर्ष में पाई जाती है । गरमी के महीनों में यह
हिमालय पर चली जाती है ।

जककी^२—वि० [हि० भक] दे० 'भक्की' ।

जक^५—संज्ञा पुं० [सं० जगत] दे० 'जगत' । उ०—धोर ते छोर
से एक रस रहत हैं, ऐसे जान जक्त में विरले प्राणी ।—
कबीर० रे०, पृ० २७ ।

जक्त^५—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष] दे० 'यक्ष' ।

जङ्गल—संज्ञा पुं० [सं०] भक्षण । भोजन । खाना । उ०—
सधु णन्द की सची जङ्गल । नानक कहे उदासी लक्षण ।—
प्राण०, पृ० १६८ ।

जङ्गमा—संज्ञा स्त्री० [सं० यङ्मा] दे० 'यङ्मा' या 'जयी' ।

जङ्गली—संज्ञा स्त्री० [प्र० जङ्गल, हि० जङ्गल] सुख । चैन । उ०—उन
संतन के साथ से जिवड़ा पावे जङ्गल । दरिया ऐसे साथ के चित
चरनो ही रख ।—परिया० बानी, पृ० २ ।

जङ्गल—क्रि० वि [हि० जिस + सं० क्षण] जिस समय ! जब ।
उ०—जषने चलिय सुरतान लेख परि शेष जान को ।
—कीर्ति०, पृ० ६६ ।

जङ्गली—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्षिणी प्रा० जङ्गलीनी] दे० 'यक्षिणी'

जङ्गली—संज्ञा स्त्री० [प्र० यक्षनी] दे० 'यक्षनी' ।

जङ्गम—संज्ञा पुं० [फ्रा० जङ्गम, मि० सं० यक्ष] १. वह क्षत जो
शरीर में घापात या घख घाव के लगने के कारण हो
जाय । घाव । २. मानसिक दुःख का घापात । सदमा ।

क्रि० प्र०—करना ।—खाना ।—बेना ।—पूजना । भरना ।—
लगना ।—होना ।

मुहा०—जङ्गम ताजा या हरा हो घाना = बीते हुए कष्ट का फिर
लौट घाना । गई हुई विपत्ति का फिर घा जाना । जङ्गम पर
नमक छिड़कना = दुःख बढ़ाना ।

जङ्गमी—वि० [फ्रा० जङ्गी] जिसे जङ्गम लगा हो । घायल । चोटला ।

जङ्गीर—संज्ञा पुं० [प्र० जङ्गीरह्, हि० जङ्गीरा] खजाना । कोष ।
संग्रह । उ०—किलना में पाया घोर जेता जङ्गीर । सावक
ही खंडपुर नै कीनी बहीर ।—शिवर०, पृ० २३ ।

जङ्गीरा—संज्ञा पुं० [प्र० जङ्गीरह्] १. वह स्थान जहाँ एक ही
प्रकार की बहुत सी चीजों का संग्रह हो । कोष । खजाना ।
२. संग्रह । ढेर । समूह । उ०—रहै जङ्गीरा गढ़ के जेता ।—ह०
रासो, पृ० ५६ ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

यौ०—जङ्गीरा झंडोज = दे० 'जङ्गीरेबाज' । जङ्गीराझंडोजी
दे० 'जङ्गीरेबाजी' ।

३. वह वाग का स्थान जहाँ बिक्री के लिये तरह तरह के पेड़ बीधे
घोर बीज आदि मिलते हों ।

जङ्गीरेबाज—वि० पुं० [प्र० जङ्गीरह् + फ्रा० बाज (प्रत्य०)] जङ्गीरे-
बाजी करनेवाला । घन्न आदि का अपसंचय करनेवाला ।

जङ्गीरेबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जङ्गीरेबाज + ई] घन्न आदि या
उपयोग में आनेवाली घोर बिकनेवाली वस्तुओं का इस विचार
से संचय करना कि जब महंगी होगी तब इसे बेचेंगे ।

जङ्गेड़ा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जङ्गीरह्, हि० जङ्गीरा] १. दे० 'जङ्गीरा' ।
२. जमाव । गूथ । समूह । ३. दे० 'बखेड़ा' ।

जङ्गेया—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जङ्गल] एक प्रकार का
कल्पित भूत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह लोगों को
अधिक कष्ट देता है ।

जङ्गल—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जङ्गल] दे० 'यक्ष' ।

जङ्गम—संज्ञा पुं० [फ्रा० जङ्गम] दे० 'जङ्गम' ।

यौ०—जङ्गमखुर्दा = घायल । जङ्गी । जङ्गेजिगर = दिल की
चोट । हृदय का घाव । प्रेम की पीड़ा ।

जगंद—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जगंद] छलांग । चौकड़ी । कुबान (कौ०) ।

जग^१—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] १. संसार । विश्व । दुनिया । उ०—
तुलसी या जग भाइ के सबसे मिलिए घाय । का जाने केहि
मेघ में नारायण मिलि जाय ।—तुलसी (शब्द०) । २. संसार
के लोग । जनसमुदाय । उ०—साँच कहौ तो मारन घावै,
भूठे जग पतियाना ।—कबीर (शब्द०) ।

जग^२—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, प्रा० जभ्य, जग] दे० 'यज्ञ' । उ०—
सुग्री इंद्र मेरी जग मेठा । यह मदमस्त नंद की बेटा । नंद०
प्र०, पृ० १८१ ।

जगकर—संज्ञा पुं० [हि० जग + कर] दे० 'जगकर्ता' ।

जगकर्ता—संज्ञा पुं० [हि० जग + कर्ता] संसार के निर्माता ।
ईश्वर । उ०—वे जगकर्ता सब कछु ग्रहहीं । वेद शास्त्र सब
तिन कहैं कहहीं ।—कबीर सा०, पृ० ४८२ ।

जगकारन—संज्ञा पुं० [हि० जग + कारन] जगत् के कारणभूत ।
परमात्मा । उ०—जगकारन तारन भव भंजन चरनी चार ।
—मानस, ५।१ ।

जगचख^१—संज्ञा पुं० [हि० जग + सं० चक्षु] दे० 'जगचक्षु' ।
उ०—भाहू ऊतन घाम अजोध्या जगचख बंस भंस हरि
जोधा ।—रा० क०, पृ० ११ ।

जगचार^१—संज्ञा पुं० [हि० जग + चार (प्रत्य०)] लौकिक
रस्य । नेग । उ०—किया अग्यो जो संमुख हो जगचार घमीर ।
न ले कुच की अब फिर चल्या वह फकीर ।—दक्खिनी०,
पृ० १३७ ।

जगचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + चक्षु] सूर्य ।

जगजंत^१—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + यन्त्र] जगत्तचक्र । उ०—
कृपा घन घानंद आधार जगजंत है ।—घनानंद, पृ० १६५ ।

जगजगा^१—संज्ञा पुं० [जगमग से घनु०] पीतल आदि का बहुत
पतला चमकीला तस्ता जिसके छोटे छोटे टुकड़े काटकर टिकुली
घोर ताजिये आदि पर चिपकाए जाते हैं । पन्नी ।

जगजगा^२—वि० चमकीला । प्रकाशित । जो जगमगाता हो ।

जगजगाना—क्रि० प्र० [घनु०] चमकना । जगमगाना ।

जगजननि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + जननी] दे० 'जगज्जननी' ।
उ०—संग सती जगजननि भवानी ।—मानस ।

जगजामिनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + यामिनी] भवनिष्ठा ।
संसाररूपी राशि । उ०—एहि जगजामिनी जागहि जोगी ।
मानस, २।६३ ।

जगजाहिर—वि० [हि० जग + अ० जाहिर] व्यक्त । स्पष्ट । सर्व-
ज्ञात । सर्वविदित । उ०—क्यों वह जगजाहिर हो ।—सुनीता,
पृ० ३१० ।

जगजोनि^१—संज्ञा पुं० [सं० जगजोनिः] ब्रह्मा । उ०—सोक
कनकलोचन मति छोनी । हरी विमल गुनगन जगजोनी ।—
मानस, २।२६६ ।

जगज्जननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगदंबिका । जगद्धात्री । पर-
मेश्वरी [को०] ।

जगज्जयी—वि० [सं० जगत् + जयिन्] विश्वविजयी [को०] ।

जगमंष—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा
जो प्राचीन काल में युद्ध में बजाया जाता था । आजकल भी
कहीं कहीं विवाह तथा पूजा आदि के अवसरों पर इसका
व्यवहार होता है ।

जगद्धाता—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्धंबर । व्यर्थ का आयोजन ।

जगण्—संज्ञा पुं० [सं०] पिगल शास्त्र के अनुसार तीन प्रक्षरों का
एक गण जिसमें मध्य का प्रक्षर गुण और आदि प्रो० प्रत के
प्रक्षर लघु होते हैं । जैसे,—महेष्, रमेश, गणेश, हर्षत ।

विशेष—दे० 'ज—१०' ।

जगत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. महादेव । ३. जंगम । ४.
विश्व । संसार ।

द्यौः—जगत्कर्ता; जगत्कारण, जगत्तारण, जगत्पति, जगत्पिता,
जगत्त्वष्टा = परमेश्वर । ईश्वर । जगत्परायण = विष्णु ।
जगत्प्रसिद्ध = विश्वप्रसिद्ध । लोक में ख्यात ।

पर्यां—जगती । लोक । भुवन । विश्व ।

५. गोपाचंदन ।

जगत्^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जगति = घर की कुर्सी] कुर्छे के ऊपर
चारों ओर बना हुआ चबूतरा जिसपर लड़े होकर पानी
भरते हैं ।

जगत्^२—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] दे० 'जगत्' ।

द्यौः—जगत्जनक = ईश्वर । जगत्जननि = दे० 'जगज्जननी' ।
जगत्तारन = परमात्मा । जगत्सेठ ।

जगत्सेठ—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + सेठ] बहुत बड़ा धनी महाजन,
जिसकी साख सारे संसार में मानो जाय ।

जगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संसार । भुवन । २. पृथिवी । भूमि ।

द्यौः—जगतीचर = मानव । मनुष्य । जगतीजानि = राजा ।
भूपति । जगतीपति, जगतीपाल, जगतीभर्ता = दे० 'जगतीजानि' ।

३. एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह बारह प्रक्षर
होते हैं । ४. मनुष्य जाति । मानव जाति [को०] । ५. गऊ ।
गाय [को०] । ६. मकान की भूमि । गृह के निमित्त या घर
से संबद्ध भूमि [को०] । ७. जामुन के वृक्ष से युक्त स्थान ।
वह जगह जहाँ जामुन लगा हो [को०] ।

जगतीवल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथिवी । भूमि ।

जगतीधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोधिसत्व । २. भूधर । पर्वत [को०] ।

जगतीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष । पेड़ । पोषा [को०] ।

जगत्कर्ता—संज्ञा पुं० [सं० जगत्कर्तृ] १. ईश्वर । परमेश्वर । २.
धाता । विधाता । ब्रह्मा [को०] ।

जगत्प्रभु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितामह ब्रह्मा । २. नारायण । विष्णु ।
३. महेष् । शंकर । शिव [को०] ।

जगत्प्राण—संज्ञा पुं० [सं०] समीरण । वायु । हवा [को०] ।

जगत्साक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जगत्साक्षिन्] भानु । सूर्य ।

जगत्सेतु—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर ।

जगदंतक—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + अंतक] मृत्यु । काल ।

जगदंबा जगदंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + अम्बा; -प्रभिका]
दुर्गा । भवानी । उ०—(क) जगदंबा जहँ भवतरी सो पुर
बरनि कि जाय ।—मानस, १।४। (ख) जगदंबिका जानि
भव भामा ।—मानस, १।१००।

जगद्—संज्ञा पुं० [सं०] पालक । रक्षक ।

जगदात्म(पु) —संज्ञा पुं० [सं० जगदात्मन्] परमात्मा । परमेश्वर ।
उ०—जगदात्मा महेश पुराणी ।—मानस, १।६४।

जगदात्मा—संज्ञा पुं० [सं० जगदात्मन्] १. परमात्मा । २. वायु [को०] ।

जगदादि—संज्ञा पुं० [सं० जगदादिः] १. ब्रह्मा । २. परमेश्वर ।

जगदादिज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०] ।

जगदाधार—संज्ञा पुं० [सं० जगदाधार] १. परमेश्वर । २. वायु ।
हवा । ३. काल । समय [को०] । ४. शेषनाग । जगत् को
धारण करनेवाले । उ०—(२) जय अंत जय जगदाधारा ।
—मानस ६।७६। (ख) जगदाधार शेष किमि उठई चले
लिसियाह ।—मानस, ६।५३।

जगदानंद—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + आनन्द] परमेश्वर ।

जगदायु—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + आयुः] वायु । हवा ।

जगदीश—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + ईश] १. परमेश्वर । २. विष्णु ।
३. जगन्नाथ ।

जगदीश्वर—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + ईश्वर] १. परमेश्वर । जगदीश ।
२. इंद्र । मधवा [को०] । ३. शिव का नाम [को०] । ४. राजा ।
भूपति [को०] ।

जगदीश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवती ।

जगद्गुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर । २. शिव । ३. विष्णु
[को०] । ४. ब्रह्मा [को०] । ५. नारद । ६. अत्यंत पूज्य या
प्रतिष्ठित पुरुष जिसका सब लोग आदर करें । ७. शकराचार्य
की गद्दी पर के महंतों की उपाधि ।

जगद्गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा देवी । २. मनसा देवी का
एक नाम ।

विशेष—यह नशों की बहन और अरुकाव ऋषि की पत्नी थी ।

जगद्दीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । २. महादेव । शिव । ३.
आदित्य । सूर्य [को०] ।

जगद्धाता—संज्ञा पुं० [सं० जगद्धातृ] [स्त्री० जगद्धात्री] १. ब्रह्मा ।
२. विष्णु । ३. महादेव ।

जगद्धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा की एक मूर्ति । २. सरस्वती ।

जगद्गुरु—संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

जगद्दीज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०] ।

जगद्योनि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । २. विष्णु । ३. ब्रह्मा ।
४. परमेश्वर ।

जगद्योनि^२—संज्ञा स्त्री० पृथिवी । धरा ।

जगद्वंश—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + वंश] श्रीकृष्ण का एक नाम [को०] ।

जगद्वंश—वि० संसार द्वारा पूजनीय या पूज्य ।

जगद्गहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी ।

जगद्विख्यात—वि० [सं० जगत् + विख्यात] लोकप्रसिद्ध । सर्वख्यात ।

जगद्विनाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल ।

जगन—संज्ञा पुं० [सं० यजन्] १. 'यज' । ३. —जोवैजा गृहि गृहि जगन जागवे, जगनि जगनि कीजे तप जाप ।—बेल, पृ० ५० ।

जगनक—संज्ञा पुं० [सं० यजनक, अथवा देश०] महोबा के राजा परमाल के दरबार का प्रसिद्ध कवि ।

जगना—क्रि० प्र० [सं० जागरण] १. नींद से उठना । निद्रा त्याग करना । सोने की अवस्था में न रहना ।

क्रि० प्र०—उठना ।—जाना ।—पड़ना ।

२. सचेत होना । सावधान होना । खबरदार होना । ३. देवी देवता या भूत प्रेत आदि का अधिक प्रभाव दिखाना । ४. उत्तेजित होना । उमड़ना या उभरना । वेग से पकट होना । जैसे, शरीर में काम जगना । ५. (आग का) जलना । बलना । दहना । जैसे, आग जगना । ३०. —करि उपचार यकी सब चल उताल नंदनंद । चंदन चंदन चंद ते उताल जभी नीचंद ।—शृ० संत० (गव्द०) । ६. जगमगाना । जमकना । जैसे, ज्योति जगना ।

जगन्निवास—संज्ञा पुं० [सं० जगन्निवास] १. 'जगन्निवास' । ३०. —जगन्निवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम ।—मानस १ । १६१ ।

जगनीदी—संज्ञा स्त्री० [हि० जग + नीदी] उनीदी । अर्धसुप्त । सोते जागते सी दशा । ३०. —वह सोता तो रहा पर जग भी रहा था । सब पूछा, तो वह जगनीदी में पड़ा था ।—सुनीता, पृ० ३०८ ।

जगनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. 'जगनु' [को०] ।

जगन्नाथ—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + नाथ] जगत् का नाथ । ईश्वर । २. विष्णु । ३. विष्णु की एक प्रसिद्ध मूर्ति जो उड़ीसा के अंतर्गत पुरी नामक स्थान में स्थापित है ।

विशेष—यह मूर्ति अकेली नहीं रहती, बल्कि इसके साथ सुभद्रा और बलभद्र की भी मूर्तियाँ रहती हैं । तीनों मूर्तियाँ चंदन की होती हैं । समय समय पर पुराने मूर्तियों का बिसर्जन किया जाता है और उनके स्थान पर नई मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती हैं । सर्वसाधारण इस मूर्ति बदलने को 'नवकलेवर' या 'कलेवर बदलना' कहते हैं । साधारणतः लोगों का विश्वास है कि प्रति बारहवें वर्ष जगन्नाथ जी का कलेवर बदलता है । पर पंडितों का मत है कि जब आषाढ़ में मलमास और दो पूर्णिमाएँ हों, तब कलेवर बदलता है । कुर्म, भविष्य, ब्रह्मदेवनं, ननिह, अग्नि, ब्रह्म और पंच प्राणि पुराणों में जगन्नाथ की मूर्ति और तीर्थ के संबंध में बहुत से कथानक

और माहात्म्य दिए गए हैं । इतिहासों से पता चलता है कि सन् ३१८ ई० में जगन्नाथ जी की मूर्ति पहले पहल किसी जगन् में पाई गई थी । उसी मूर्ति को उड़ीसा के राजा यात्री केसरी ने, जो सन् ४७४ में सिंहासन पर बैठा था, जंगल में ढूँढ़कर पुरी में स्थापित किया था । जगन्नाथ जी का वर्तमान भव्य और विशाल मंदिर गंगवंश के पाँचवें राजा भीमदेव ने सन् ११४८ से सन् ११६८ तक में बनवाया था । सन् १५६८ में प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति काला पहाड़ ने उड़ीसा को जीतकर जगन्नाथ जी की मूर्ति धाग में फँके दी थी । जगन्नाथ और बलराम की आजकल की मूर्तियों में पैर बिल्कुल नहीं होते और हाथ बिना पंजों के होते हैं । सुभद्रा की मूर्तियों में न हाथ होते हैं और न पैर । अनुमान किया जाता है कि या तो मारंम में जंगल में ही ये मूर्तियाँ इसी रूप में मिली हों और या सन् १५६८ ई० में अग्नि में से निकाले जाने पर इस रूप में पाई गई हों । नए कलेवर में मूर्तियाँ पुराने आदर्श पर ही बनती हैं । इन मूर्तियों को अधिकार भात और खिचड़ी का ही भोग लगता है जिसे महाप्रसाद कहते हैं । भोग लगा हुआ महाप्रसाद चारों बलों के लोग बिना स्पर्शस्पर्श का विचार किए ग्रहण करते हैं । महाप्रसाद का भात 'अटका' कहलाता है, जिसे यात्री लोग अपने साथ अपने निवासस्थान तक ले जाते और अपने संबंधियों में प्रानाद स्वरूप बाँटते हैं । जगन्नाथ को जगदीश भी कहते हैं ।

यौ०—जगन्नाथ का अटका या भात—जगन्नाथ जी का महाप्रसाद ।

४. बंगाल के दक्षिण उड़ीसा के अंतर्गत समुद्र के किनारे का प्रसिद्ध तीर्थ जो हिंदुओं के चारों धर्मों के अंतर्गत है ।

विशेष—इसे पुरी, जगदीशपुरी, जगन्नाथपुरी, जगन्नाथ क्षेत्र और जगन्नाथ धाम भी कहते हैं । अधिकार पुराणों में इस क्षेत्र को पुरुषोत्तम क्षेत्र कहा गया है । जगन्नाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर यहीं है । इस क्षेत्र में जानेवाले यात्रियों में जातिभेद आदि बिल्कुल नहीं रह जाता । पुरी में समय समय पर अनेक उत्सव होते हैं जिनमें से 'रथयात्रा' और 'नवकलेवर' के उत्सव बहुत प्रसिद्ध हैं । उन अवसरों पर यहाँ लाखों यात्री आते हैं । यहाँ और भी कई छोटे बड़े तीर्थ हैं ।

जगन्निवृत्ता—संज्ञा पुं० [सं० जगन्निवृत्त] परमात्मा । ईश्वर ।

जगन्निवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । परमेश्वर । २. विष्णु ।

जगनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. जतु । कीट । ३. पशु । जानवर (को०) ।

जगन्मय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

जगन्मयी—संज्ञा पुं० [सं०] १. लक्ष्मी । २. समस्त संसार को चलावे वाली शक्ति ।

जगन्मासा—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + मास] १. दुर्गा का एक नाम । २. लक्ष्मी [को०] ।

जगन्मोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा । २. महामाया ।

जगपतिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० यज्ञपत्नी] याज्ञिकों की वे स्त्रियाँ जो कुष्ण को भोजन देने गई थीं। उ०—जगपतिनीन अनुग्रह देन। बोले तब हरि कहना ऐन।—नंद० प्र०, पृ० ३००।

जगप्रान—संज्ञा पुं० [जगत् + प्राण] वायु। समीरण। उ०—बावत ही हेमंत तो कंपन लगे जहान। को० कोकनद मे दुखी ग्रहित भए जगप्रान।—दीन० प्र०, १६५।

जगबंद—वि० [सं० जगत् + बन्ध] जिसकी बंदना संसार करे। संसार द्वारा पूजित। जगद्वंश। उ०—आपनपी जु तज्यो जगबंद है।—देशव (शब्द०)।

जगबीती—संज्ञा स्त्री० [हि० जग + बीती] जगत् की वर्त्ति। लौकिक वृत्त।

जगभिषक्—संज्ञा पुं० [हि० जग + भिषक्] मोठ।—अनेकार्थ०; पृ० १०४।

जगमग—वि० [धनु०] १. प्रकाशित। जिसपर प्रकाश पड़ना हो। २. चमकीला। चमकदार। उ०—हंसा जगमग जगमग होई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ६।

जगमग—संज्ञा स्त्री० दे० 'जगमगाहट'।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जगमगना—वि० [हि० जगमग] जगमगानेवाला। जगमग करनेवाला। चमकनेवाला। उ०—फूलन के खभा दोऊ फूलन के डाडी चार, फूलन की चौकी बनी हीरा जगमगना।—नंद प्र०, पृ० ३७४।

जगमगा—वि० [हि० जगमग] दे० 'जगमग'। उ०—जगमगा चिकुर प्रतिहि सोई राजे जैसे पुरसही।—कबीर सा०, पृ० १०४।

जगमगाना—क्रि० प्र० [धनु०] किसी वस्तु का रवय ग्रथवा किसी का प्रकाश पड़ने के कारण खूब चमकना। झनकना। चमकना। उ०—तरनितनया नीर जगमगत ज्योतिमय पुहमि पै प्रगट सब लोक सिरताजे।—बनारस, पृ० ४६२।

जगमगाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० जगमग] चमक। चमकमाहट। जगमगाने का भाव।

जगमोहन—संज्ञा पुं० [हि० जग + मोहन] मंदिर का बाहरी प्रांगण। उ०—सो वह ब्रह्मन तो बाहिर जगमोहन में प्रभुन की आज्ञा पाय के बैठयो।—दो सो बावन०; भा० १, पृ० २११।

जगमोहन—वि० [सं० जगत् + मोहन] [वि० स्त्री० जगमोहनी] विश्व को मुग्ध करनेवाला।

जगर—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। जिरहकतर।

जगरन—संज्ञा पुं० [सं० जागरण] १. 'जागरण' उ०—जगन्नाथ जगरन के भाई। पुनि दुवारिका जाइ नहाई।—जायसी (शब्द०)।

जगरनाथ—संज्ञा पुं० [सं० जगन्नाथ] दे० 'जगन्नाथ'।

जगरमगर—संज्ञा पुं० [हि०] १. चकपकाहट। चकाचौध। २. माया। दे० 'जगमग'। उ०—जगरमगर को खेल कोऊ नर पावई। लोक वेद की फेर जो सबे नचावई।—गुलाल०, पृ० ६६।

जगरा—संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करा] खजूर की खाड़।

जगल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिछ्ठे नामक सुरा। पीठी से बना हुआ मद्य। २. शराब की मीठी। कलक। ३. मदन वृक्ष। मीन। ४. कवच। ५. शोमय। गोबर।

जगल—वि० धूर्त। चालाक।

जगवाना—क्रि० प्र० [हि० जगना] १. मोते में उठवाना। निद्रा भग करवाना। २. किसी वस्तु को अभिमनित करके उसमें कुत्त प्रभाव लाना।

जगसूर—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + मूर] राजा (कव०)। उ०—बिनती कीन्ह घालि गिउ पाया। ए जगसूर। सीउ मोहि लागा।—जायसी (शब्द०)।

जगहँसाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जग + हँसाई] जोरनिदा। बदनामी। कुक्षान्ति। उ०—वेवफाई न कर खुदा सूँ डर। जगहँसाई न कर खुदा सूँ डर।—बख्शिश, भा० ४, पृ० ५।

जगह—संज्ञा स्त्री० [फा० जायगाह] १. वह अवकाश जिनमें कोई चीज रह सके। स्थान। जैसे, (क) इन्होंने मकान बनाने के लिये जगह ली है। (ख) यहाँ निज धरम को जगह नहीं है।

क्रि० प्र०—करना।—छोड़ना। देना।—निजालना। पाना।—बनाना।—मिलना, आदि।

मुहा०—जगह जगह = सब स्थानों पर। सब जगह। २. स्थिति। पद।

विशेष—कुछ लोग इस अर्थ में 'जगह' को क्रियाविशेषण रूप में बिना विभक्ति के ही बोलते हैं। जैसे,—हम उन्हें भाई की जगह समझते हैं।

३. मोका। स्थल। अवसर। ४ पद। ओहदा। जैसे, (क) दो भट्टीने हुए उन्हें कान्ठरी में जगह मिल गई। (ख) इस बफ़्तर में तुम्हारे लिये कोई जगह नहीं है।

जगहर—संज्ञा स्त्री० [हि० जगना] जगना। जगने की अवस्था। जगने का भाव।

जगाजोती—संज्ञा स्त्री० [हि०] जगर मगर। जगमगाहट।

जगाती—संज्ञा पुं० [सं० जगात] १. वह धन आदि जो पुण्य के लिये दिया गया। दान। जैरात। २. महमूल। कर।

जगाती—संज्ञा पुं० [हि० जगात या फा० जकाती] १. महमूल या कर लगानेवाला कर्मचारी। वह जो कर वसूल करे। उ०—घर के लोग जगाती लाग छीन रँय करधनिया।—कबीर श०, भा० १ पृ० २२। २. कर जगाहने का काम या भाव।

जगाना—क्रि० प्र० [हि० जागना या जगना का प्रे० रूप] नींद त्यागने के लिये प्रेरणा करना। जैसे,—वे बहुत देर से सोए हैं, उन्हें जगाओ। २. चेत में लाना। होश दिलाना। उद्योघन कराना। चेतन्य करना। ३. फिर से ठीक स्थिति में लाना। ४. बुझती या बहुत धीमी आग को तेज करना। सुलगाना। ५. गाँजा। आदि की अग्नि को तेज करना, जैसे, चिलम जगाना। ६.

यंत्र या सिद्धि आदि का साधन करना । जैसे,—यंत्र जगाना ।
यंत्र प्रेत जगाना ।

संयो० क्रि०—ढालना ।—देना ।—रखना ।—लेना ।

जगामग—वि० [जनु०] दे० 'जगमग' । उ०—चमकत मुर जहूर
जगामग ढाके सकल सरीर । —भीखा० श०, पृ० २४ ।

जगार—संज्ञा स्त्री० [हि० जग+प्रार (प्रत्य०)] जागरण । जागृति ।
उ०—नैना छोड़े धोर सखी री । श्याम रूप निधि नेछे पाई
देखन गए भरी री । कहा लेहि । कह तबै, विवश भय तैसी
करनि करी री । भोर भए मोरे सो ह्वै गयो घरे जगार परी
री ।—सूर (शब्द०) ।

जगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मोर की जाति का एक पक्षी । जवाहिर
नाम का पक्षी ।

विशेष—यह शिमले के आसपास के पहाड़ों में मिलता है और
प्रायः दो हाथ लंबा होता है । नर के सिर पर लाल कलमी
होती है और मादा के सिर पर गुलाबी रंग की गाँठें होती
हैं । नर का सिर काला, गला लाल और पीठ गुलाबी रंग
की होती है और उसके पंखों पर गुलाबी धारियाँ होती हैं ।
उसकी दुम लंबी और काली होती है और छाती तथा पेट
के नीचे के पर भी काले होते हैं जिनपर ललाई की झलक
होती है और एक छोटी सफेद बिंदी भी होती है । मादा का
रंग कुछ मैला और पीलापन लिए होता है । यह पक्षी दस दस
बारह बारह के झुंड में रहता है । जाड़े के दिनों में यह
गरम देशों में आकर रहता है । इसकी बोली बकरी के
बच्चे की तरह होती है और यह उड़ते समय चोत्कार करता
है । इसका चोत्कार बहुत दूर तक सुनाई पड़ता है । मंगरेज
लोग इसका शिकार करते हैं । इसे जवाहिर भी कहते हैं ।

जगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जागीर] दे० 'जागीर' । उ०—फाका
जिकर किनात ये तीनों बात जगीर । —पलटू०, भा० १,
पृ० १४ ।

जगीस(५)—संज्ञा पुं० [हि० जग+ईस] दे० 'जगदीश' । उ०—
मिले सब पित्र सृष्टीन प्रसीस । भए सुख निरभय पित्र जगीस ।
रासो, पृ० ८ ।

जगीला—वि० [हि० जागना] जागने के कारण असमाया हुआ ।
उनीदा । उ०—दुरति दुराए ते न रति, बलि कुंकुम उर
मेन । प्रगट कइ पति रतबने जगी जगीले नैन ।—शृ०
सत० (शब्द०) ।

जगुरि—संज्ञा पुं० [सं०] जंगम ।

जगैया—वि० [हि० जागना] १. जागनेवाला । गबुड़ करनेवाला ।
२. जागनेवाला ।

जगोटा—संज्ञा पुं० [हि० जग+बाट] योग का पाग । जोगियों
का पंथ । उ०—कवन जगोटा कवन अधारी ।—प्राण०,
पृ० ७६ ।

जगौहो(५)—वि० [हि० जागना] दे० 'जगीला' ।

जग्ग(५)—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, प्रा० जग] दे० 'यज्ञ' । उ०—
आथी सु गग तट काज जग्ग ।—पृ० रा०, १ । ५७५ ।

जग्ग(५)—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] संसार ।

जग्घ—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन । आहार । खाना । २. वह
स्थान जहाँ भोजन किया गया हो (को०) ।

जग्घ—वि० खाया हुआ । भुक्त । भक्षित (को०) ।

जग्घि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खाने की क्रिया । भोजन । २. कई
घादमियों का साथ मिलकर खाना । सहभोजन ।

जग्मि—संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

जग्मि—वि० जो चलता हो । जो गति में हो ।

जग्ग(५)—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] दे० 'यज्ञ' । उ०—पिता जग्ग
सुनि कछु हरषानी ।—मानस, १।६१ ।

यौ०—जग्गउपवीत = यज्ञोपवीत ।

जग्गोपवीत(५)—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञोपवीत] दे० 'यज्ञोपवीत' ।
कमलासन आसनह मंडि जग्गोपवीत जुरि ।—पृ० रा०,
१ । २५५ ।

जघन—संज्ञा पुं० [मं०] १. कटि के नीचे प्रांघे का भाग । पेड़ । २.
नितंब । नूतड़ । उ०—सरस विपुल मम जघनन पर कल
किकिनि कलश सजायो ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) । ३. सेना का
पिछला भाग । उपयोगार्थ संरक्षित गैर्यदल (को०) ।

यौ०—जघनकूप = दे० 'जघनकूपक' । जघनगौरव । जघनचपला ।

जघनकूपक—संज्ञा पुं० [सं०] नूतड़ पर का गड्ढा ।

जघनगौरव—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब की गुरुता । नितंबभार (को०) ।

जघनचपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कामुकी स्त्री । २. कुलटा ।
३. प्रायः छंद के सोलह भेदों में से एक । वह मात्रावृत्त
जिसका प्रथमार्ध प्रायः छंद के प्रथमार्ध का सा और
द्वितीयार्ध चपला छंद के द्वितीयार्ध का सा हो ।

जघनी—वि० [सं० जघनिन्] बड़े नितंबों से युक्त (को०) ।

जघनेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटूमर ।

जघन्य—वि० [सं०] १. अंतिम । चरम । २. गहित । त्याग्य ।
अत्यंत बुरा । ३. शुद्ध । नीच । निकृष्ट । ४. निम्न कुलोत्पन्न ।
नीच कुल का (को०) ।

जघन्य—संज्ञा पुं० १. शुद्ध । २. नीच जाति । हीन वर्ण । ३. पीठ
का वह भाग जो पुट्टे के साम होता है । ४. राजाओं के पाँच
प्रकार के संकीर्ण अनुचरों में से एक ।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार ऐसा घादमी घनो, मोटी बुद्धि
का, हँसी और क्रूर होता है और उसमें कुछ कवित्व शक्ति
भी होती है । ऐसे मनुष्य के कान अर्धचंद्राकार, शरीर के
जोड़ अधिक दृढ़ और उँगलियाँ मोटी होती हैं । इसकी छाती,
हाथों और पैरों में तलवार और खाँड़े आदि के से चिह्न
होते हैं ।

५. दे० जघन्यभ । ६. लिंग । शिश्न (को०) ।

जघन्यज—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुद्ध । २. अंत्यज । ३. छोटा भाई (को०) ।

जघन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं० जघन्य+ता (प्रत्य०)] गुरुता ।

शुद्धता । नीचता । उ०—अपने कुरूप मंदबुद्धि बालक के स्थान और स्वत्व को दूसरे के बालक को दे देना कैसी कुछ विचित्र मूर्खता और जघन्यता है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६६ ।

जघन्यभ—संज्ञा पुं० [सं०] धार्मी, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा, शरणी और शतभिषा ये छह नक्षत्र ।

जग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो वध करता हो । २. वह अस्त्र जिससे वध किया जाय ।

जघ्नु—वि० [सं०] निहन्ता । प्रहारक । वधकारी [को०] ।

जघ्नि—वि० [सं०] १. सूचनेवाला । २. अनुमानयुक्त [को०] ।

जजगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जजगी] प्रसव की अवस्था । प्रसूतावस्था [को०] ।

जजना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जचना' ।

जज्वा—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जज्वह्] दे० 'जज्वा' ।

जज्वा—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जज्वह्] प्रसूता स्त्री । वह स्त्री जिसे तुरंत संतान हुई हो ।

विशेष—प्रसव के बाद चालीस दिनों तक स्त्रियाँ जज्वा कहलाती हैं ।

यौ०—जज्वालाना = सूतिकागृह । सोरी । जज्वा बज्वा = प्रसूता और प्रसूत संतति । जज्वागरी, जज्वागोरी = धात्री कर्म । बज्वा पैदा कराने का काम । कोमारभृत्य ।

जज्ज—संज्ञा पुं० [सं० यज, प्रा० जज्ज, जज्ज] दे० 'यज' । उ०—देखि विकट भट बड़ि कटकाई । जज्ज जीव लै गए पराई ।—मानस, १।१७२ ।

यौ०—जज्जपति । जज्जराज । जज्जेश ।

जज्जपति(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० यजपति] यक्षों के स्वामी । कुबेर । उ०—यब तहँ रहहि सक के प्रेरे । रज्जक कोटि जज्जपति केरे ।—मानस, १।१७२ ।

जज'—संज्ञा पुं० [प्र०] १. न्यायाधीश । विचारपति । न्याय करने-वाला । २. दीवानी और फौजदारी के मुकदमों का फैसला करनेवाला बड़ा हाकिम ।

विशेष—भारतवर्ष में प्रायः एक या अधिक जिलों के लिये एक जज होता है, जो डिस्ट्रिक्ट जज (जिभा जज) कहलाता है । मिले के अन्तर अंतिम अरील जज के यहाँ ही होती है ।

यौ०—बोरा या सेशन (सेशन) जज = वह जज जो कई जिलों में घूम घूमकर कुछ विशेष बड़े मुकदमों का फैसला कुछ विविष्ट अवसरों पर करें । सबजज = दे० 'सदरासा' । सिविल जज = दीवानी की छोटी प्रवालत का हाकिम ।

जज'—संज्ञा पुं० [म०] योद्धा ।

जजन(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० यजन, प्रा० जजन] यज्ञ कार्य । यज्ञ करना । उ०—तीरथ बत आदि देवा पूजन जजन । सत नाम जाने बिना नरक परन ।—भीखा० श०, पृ० २२ ।

जजना(पु०)—क्रि० सं० [सं० यजन] सम्मान करना । आदर करना । पूजा करना । उ०—कलि पूजे पाखंड की जज न

श्रुति आचार । मागध नट विट दान दें तथा न द्विज कर प्यार ।—दीन० प्र०, पृ० ७६ ।

जजबात—संज्ञा पुं० [प्र० जजबह् का बहुव० जजबात] भावनाएँ । विचार । उ०—लेकिन जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जजबात की परवाह नहीं करते तो—काया०, पृ० ४२ ।

जजमनिका—संज्ञा स्त्री० [हि० जजमान] पुरोहिती । उपरोहिती । यजमानी ।

जजमान—संज्ञा पुं० [सं० यजमान] दे० 'यजमान' ।

जजमानी—संज्ञा स्त्री० [हि० जजमान + ई (प्रत्य०)] दे० 'यजमानी' ।

जजमेंट—संज्ञा पुं० [प्र०] फैसला । निर्णय । जैसे,—मामले की सुनवाई हो चुकी, अभी जजमेंट नहीं सुनाया गया ।

जजा—संज्ञा स्त्री० [प्र०] प्रतिकार । बदला । प्रतिकल । परिणाम उ०—किते दिन गुजर गए वने इस बजा । न पाया बुताँ से उनें कुछ जजा ।—दिलिनी०, पृ० २६५ ।

जजात(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० ययाति] दे० 'ययाति' । उ०—बलि वैष्णु अंबरीष मानधाता प्रह्लाद कहिये कहाँ ली कथा रावण जजात की ।—राम० धर्म०, पृ० १४ ।

जजाल(पु०)—संज्ञा स्त्री० [हि० जजाल] एक प्रकार की बूँक । दे० 'जजाल'—४ । उ०—कितेक संश्रुत चद्रि लै जजाल दगई ।—सुजान०, पृ० ३० ।

जजिमान—संज्ञा पुं० [सं० यजमान] दे० 'यजमान' ।

जजिया—संज्ञा पुं० [सं० जजियह] १. दंड । २. एक प्रकार का कर जो मुसलमानी राज्यकाल में अन्य धर्मवानों पर लगता था ।

जजी—संज्ञा स्त्री० [हि० जज + ई (प्रत्य०)] १. जज की कबहूरी । जज की प्रवालत । २. जज का काम । जज का पद या मोहदा ।

जजीरा—संज्ञा पुं० [प्र० जजीरह] टापू । द्वीप ।

यौ०—जजीरानुमा = जमीन का वह भाग जो तीन ओर पानी से घिरा हो ।

जजु(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० यजुप्, प्रा० अज, जजु] दे० 'यजुर्वेद' । उ०—चतुर वेद मति सब मोहि पाही । रिग जजु साम अथर्वन पाही ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १६१ ।

जजुर(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० यजुष] दे० 'यजुर्वेद' । उ०—जजुर कहै सरगुन परमेसर, दस ओतार धराया ।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ५४ ।

जज्ज'—संज्ञा पुं० [प्र० जज] दे० 'जज' । उ०—फूलि न जो तू लै गयो राजा बाबू आसला जज्ज ।—भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० ५५१ ।

जज्व—संज्ञा पुं० [प्र० जज्व] १. धाकपंण । खिचाव । २. नेस्ती । ३. मोखना । आत्मसात् करना [को०] ।

जज्वा—संज्ञा पुं० [प्र० जज्वह्] भावना । भाव । मनोवृत्ति । उ०—उ०—जोश और जज्वा का अंभा, भी तूफान किसी ने फूँके ।—बंगाल०, पृ० ४४ ।

यौ०—जज्वए हरक = प्रेम का धाकपंण । जज्वए विल = हृदय की भावना या धाकपंण ।

जम्बती—वि० [प्र० जम्बती] भावना में बहनेवाला । मावुक (को०) ।
जम्बकना^(५)—क्रि० प्र० [प्र०] बिजकना । उभकना । चोकना ।
उ०—जम्बकत जम्बकत लाल तरंगहि ।—माधवानल०,
पृ० १६४ ।

जम्बरी—संज्ञा पु० [हि० जम्बरी] लोहे की चद्दर का तिकोना टुकड़ा जो उगम से नये वाटने के बाद बच रहता है ।

जम्ब^(५)—संज्ञा पु० [सं० यज] दे० 'यज' । उ०—केन बारि समुझाने भँवर न काटे बेध । कहँ मरो तै चितउर जज करो प्रमुमेध ।
—जायसी (शब्द०) ।

जम्बास^(५)—वि० [सं० जिजासु] दे० 'जिजासु' । उ०—जो कोई जम्बास है, मदपूव मरये जाइ । सुंदर ताहि कृपा करै जान कहँ समुझाइ ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० २१५ ।

जट^१—संज्ञा पु० [देश० या हि० झाड़] एक प्रकार का गोदना जो भाड़ी के प्रकार का होता है ।

जट^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जाट' ।

जट^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा' । उ०—मैं बड़ मैं बड़ मैं बड़ माँटी । मरण दसना जट का दस गाँठी ।—कबीर ग्रं०, पृ० १७६ ।

जौ०—जटजूट—जटाजूट । उ०—कोदंड कठिन चढाइ सिर जटजूट बाधन सोहू क्यों ।—मानस, ३।१२ ।

जटना^१—क्रि० म० [हि० जाट] छोला देकर कुछ लेना । ठगना ।
संयो० क्रि०—जाना ।—वेना ।

जटना^(५)—क्रि० म० [सं० जटन] जहना । ठोककर लगाना ।
उ०—पाट जटी घति खेन मो हीरन की घवली ।—वेणव (मं०) ।

जटल—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल] धर्म और भूत मूढ की बात । गप ।
घबराहट । उ०—घपना बहुत समय.....उपर उधर की जटल धुकिने में खो बैठे हैं ।—जिज्ञासुक (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—मारना ।—हँकना ।

जौ०—जटल कफिया—गपशप । बेतुकी बात । ऊढ़पटाँग बात ।
जटलबाज—बकबाजी । गप धुकिनेवाला ।

जटली—वि० [हि० जटल] गप्पी । जटलबाज ।

जटवा^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा' । उ०—जनवा कड़ाय जोगी जटवा मढ़ीले ।—कबीर ग्रं० भा० २, पृ० १५ ।

जटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक में उनसे हुए सिर के बहुत बड़े बड़े बाल, जैसे प्रायः माधुर्ष के होते हैं ।

पर्या०—जटा । जाट । जटी । जूट । जट । कोटीर । हस्त ।

२ जड़ के पत्ते पत्ते मूल । भकरा । ३ एक में उनसे हुए बहुत से रेशे प्रादि । जेध, नारियल की जटा, बरगद की जटा । ४. शम्बा । ५. जटामासी । ६. जूट । पाट । ७. कोइल । कबीर । ८. शतावर । ९. रुद्रजटा । बालजूड़ । १०. वेदपाठ का एक ऋक्ष जिसमें मंत्र के दो या तीन पदों को क्रमानुसार पूर्व और उत्तरपद को पुथक् पुथक् फिर मिलाकर दो बार पढ़ते हैं ।

जटाऊ^(५)—संज्ञा पु० [सं० जटायु] दे० 'जटायु' । उ०—प्रागे मारण रोक जटाऊ । मार गयो तिहि रावण राऊ ।—कबीर सा०, पृ० ४० ।

जटाचीर—संज्ञा पु० [सं०] महादेव । शिव ।

जटाजिनी—संज्ञा पु० [सं० जटाजिनिन्] जटा और मृगचर्म धारण करनेवाला ।

जटाजूट—संज्ञा पु० [सं०] १. जटा का समूह । बहुत से लंबे बड़े हुए बालों का समूह । उ०—जटाजूट दुइ बांधे माये ।—मानस, ६।६५ । २. शिव की जटा ।

जटाज्वाल—संज्ञा पु० [सं०] दीप । विराग (को०) ।

जटाटंक—संज्ञा पु० [सं० जटाटङ्क] शिव । महादेव ।

जटाटीर—संज्ञा पु० [सं०] महादेव ।

जटाधर—संज्ञा पु० [सं०] १. शिव । २. एक बुद्ध का नाम । ३. दक्षिण के एक देश का नाम जिसका वर्णन बृहत्संहिता में प्राया है । ४. जटाधारी । ५. संस्कृत के एक कोशकार का नाम (को०) ।

जटाधारी^१—वि० [सं० जटाधारिन्] जो जटा रखे हो । जिसके जटा हो । जटावाला ।

जटाधारी^२—संज्ञा पु० १. शिव । महादेव । २. मरसे की जाति का एक पोधा जिसके ऊपर कलगी के आकार के लहरदार लाख फूल लगते हैं । मुर्गकेश । ३. साधु । बैरागी ।

जटाना^१—क्रि० म० [हि० जटना] जटने का प्रेरणार्थक रूप ।

जटाना^२—क्रि० प्र० [हि० जटना] धोखे में आकर अपनी हानि कर बैठना । ठगा जाना ।

जटापटल—संज्ञा पु० [सं०] वेदपाठ करने का एक बहुत जटिल प्रकार या क्रम । कहते हैं, यह क्रम हयग्रीव ने निकाला था ।

जटामंडल—संज्ञा पु० [सं० जटामण्डल] जटाजूट । जूड़ा । जटापिंड (को०) ।

जटामाली—संज्ञा पु० [सं० जटामालिन्] महादेव । शिव ।

जटामांसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जटामासी' ।

जटामासी—संज्ञा स्त्री० [सं० जटामांसी] एक सुगंधित पदार्थ जो एक वनस्पति की जड़ है । बाजछड़ । बाजुचर ।

विशेष—यह वनस्पति हिमालय में १७००० फुट तक की ऊँचाई पर होती है । इसकी डालियाँ एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक लंबी घोर सीके की तरह होती हैं जिनमें धामने सामने डेढ़ दो अंगुल लंबी घोर घाघे से एक अंगुल तक चौड़ी पत्तियाँ होती हैं । इसके लिये पथरीली भूमि, जहाँ पानी पड़ा करता हो या सर्दी बनी रहती हो, अधिक उत्तम है । इसमें छोटी उँगलों के बराबर मोटी काली भूरी पत्तियाँ होती हैं त्रिज-पर तामड़े रंग के बाल या रेशे होते हैं । इसकी गंध तेज घोर भीठी तथा स्वाद कड़ुआ होता है । वैद्यक में जटामासी बलकारक, उत्तेजक, विषघ्न तथा उन्माद और कास, श्वास आदि को दूर करनेवाली मानी गई है । लोगों का कथन है कि इसे लगाने से बाल बढ़ते और काले होते हैं । सींचने से इसमें से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो शीघ्र और

सुगंध के काम आता है। २८ सेर जटामासी में से डेढ़ छटीक के लगभग तेल निकलता है। इसे बालछड़, बालूचर आदि भी कहते हैं।

जटायु—संज्ञा पुं० [सं०] रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध।

विशेष—यह सूर्य के सारथी ग्रहण का पुत्र था जो उसकी श्वेती नाम्नी स्त्री से उत्पन्न हुआ था। यह दशरथ का मित्र था और रावण से, जब वह सीता को हरण कर लिए जाता था, लड़ा था। इस लड़ाई में यह घायल हो गया था। रामचंद्र के आने पर इसने रावण के सीता को हर ले जाने का समाचार उनसे कहा था। उसी समय इसके प्राण भी निकल गए थे। रामचंद्र ने स्वयं इसकी अंत्येष्टि क्रिया की थी। संपाति इसका भाई था।

२. गुग्गुलु।

जटाल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बटवृक्ष। बरगद। २. कचूर। ३. मुष्कक। मोला। ४. गुग्गुलु।

जटाल^२—वि० जटाधारी। जो जटा रखे हो।

जटाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटाब^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली मिट्टी जिससे कुम्हार घड़े आदि बनाते हैं। कुम्हरीटी।

जटाब^२—संज्ञा पुं० [हिं० जटना] जट जाने या जटने की क्रिया।

जटावसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटावल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुद्रजटा। शंकरजटा। २. एक प्रकार की जटामासी जिसे गंधमामी भी कहते हैं।

जटामुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध राक्षस।

विशेष—यह द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर ब्राह्मण के वेश में पांडवों के साथ मिल गया था। एक बार इसने भीम की अनुपस्थिति में द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को हरण कर ले जाना चाहा था, पर मार्ग में ही भीम ने इसे मार डाला था।

२. बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम।

जटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्लक्ष वृक्ष। पाकर का पेड़। २. बरगद का पेड़। ३. जटा। ४. समूह। ५. जटामासी।

जटिस—वि० [सं०] जड़ा हुआ। जैसे, रत्नजटित।

जटियल—वि० [हिं० जटल] १. निकम्मा। रद्दी। २. नकली। दिखावटी। ३. जटनेवाला।

जटिला^१—वि० [सं०] १. जटावाला। जटाधारी। २. अत्यंत कठिन। जटा के उलझे हुए बालों की तरह जिसका सुलझना बहुत कठिन हो। दुल्ह। दुर्बाध। ३. क्रूर। दुष्ट। हिंसक।

जटिला^२—संज्ञा पुं० १. सिंह। २. ब्रह्मचारी। ३. जटामासी। ४. शिव।

विशेष—जिस समय शिव के लिये पार्वती हिमालय पर तपस्या कर रही थी, उस समय शिव जी जटिल वेश धारण करके उनके पास गए थे। उसी के कारण उनका यह नाम पड़ा।

५. बकरा (को०)। ६. साधु (को०)।

४-३

जटिलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन ऋषि का नाम। २. इस ऋषि के वंशज।

जटिलता—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल + ता (प्रत्य०)] कठिनाई। उलझन। पेचीदगी।

जटिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मचारिणी। २. जटामासी। ३. पिप्पली। पोपल। ४. वचा। बच्च। ५. दीना। दमनक। ६. महाभारत के अनुसार गौतम वंश की एक ऋषिकन्या का नाम जिसका विवाह मात ऋषिपुत्रों से हुआ था। यह बड़ी धर्मपरायण थी।

जटी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाकर। २. जटामासी। ३. 'जटि'।

जटी^२—संज्ञा पुं० [सं० जटिन्] १. शिव। २. प्लक्ष या बट का वृक्ष। ३. वह हाथी जो साठ वर्ष का हो (को०)।

जटी^३—[सं० जटिन्] [वि० स्त्री० जटिनी] जटाधारी उ०—विमन जटी, तपसी भए मुनि मन गति भूली।—छीत०, पृ० २०।

जटी(५)—वि० [सं० जटित] ३० 'जटित'।—उ०—जो पै नहि होती समिमुखी मृगनैनी केहरि कटी, छवि जटी धटा की सी छटी रस लपटी छूटी छटी—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६३।

जटुल—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के धमड़े पर का एक विशेष प्रकार का दाग या धब्बा जो जन्म से ही होता है। लोग इसे लच्छन या लक्षण कहते हैं।

जटुली(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बच्चों के केश। उ०—धूलि धूसर जटा जटुली हरि लियो हर मेघ।—रोझार ग्रं० पृ० २५२।

जटुली—संज्ञा पुं० [हिं० जाट] जाट जाति।

जट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जली तंबाकू। उ०—एक ही फूंक में चिलम की जट्टी तक चूस जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८४।

जट्टी—वि० [हिं० जटना] ठगनेवाला। गैरबाजिब मूल्य लेनेवाला।

जठर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट। कुक्षि।

यौ०—जठरगद। जठरज्वाल = भूख। जठरज्वाला। जठरयंत्रणा, जठरयातना = गर्भवास का कष्ट। जठराग्नि। जठरानल।

२. भागवत पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विशेष—यह मेरु के पूर्व उन्नीस हजार योजन लंबा है और नील पर्वत में निषध गिरि तक चला गया है। यह दो हजार योजन चौड़ा और इतना ही ऊंचा है।

३. एक देश का नाम।

विशेष बृहत्संहिता के मत से यह देश श्लेषा, मघा और पूर्वा-फाल्गुनी के अधिकार में है। महाभारत में इसे कुवकुर देश के पास लिखा है।

४. सुश्रुत के अनुसार एक उदर रोग।

विशेष—इस उदर रोग में पेट फूल जाता है। इसमें रोगी बलहीन और वर्णहीन हो जाता है तथा उसे भोजन से ग्रसि हो जाती है।

५. शरीर। देह। ६. मरकत मणि का एक दोष।

विशेष—कहते हैं कि इस दोषयुक्त मरकत के रखने से मनुष्य दरिद्र हो जाता है।

जठर^१—वि० १. बूढ़। बूढ़ा। २. कठिन। ३. संघा हुआ (को०)।

जठरगद्—संज्ञा पुं० [सं०] घात की व्याधि (को०)।

जठरज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुधाग्नि। बुभुक्षा। भूख। २. उदर की पीड़ा। उदरशूल (को०)।

जठरनुत्—संज्ञा पुं० [सं०] घमलतास।

जठराङ्ग—वि० [हि० जेठ या जठर] [वि० स्त्री० जेठरी] जेठा। बड़ा।

जठराग्नि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जठराग्नि] दे० 'जठराग्नि'।

जठराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट की वह गरमी या अग्नि जिसमें अन्न पचता है।

विशेष—पित्त की कमी वेशी से जठराग्नि चार प्रकार की मानी गई है, संवाग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, और समाग्नि।

जठरानल—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जठराग्नि'।

जठरामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिसार रोग। २. जलोदर रोग।

जठल—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का जलपात्र जिसका आकार उदर का सा होता था।

जठाणी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जेठानी] दे० 'जेठानी'। उ०—देखि जठाणी, लागी छड़ जेठ।—वी० रासो, पृ० ६६।

जठागनि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जठराग्नि] दे० 'जठराग्नि'। उ०—कई खाय सिराय पचाय जठागनि दाय सहाय सबाय मरे।—राम० धर्म०, पृ० ३०५।

जठोड़ी—वि० [हि० जूठा + षोड़ी (प्रत्य०)] जूठा कर देनेवाला। जूठा करनेवाले स्वभाव का। (अभर)। उ०—चंचरीक चेदुवा को लागो है चरन, दुभि अग्रभाग तत्र मृदु मंजुन जठोड़ी को।—पजनेस०, पृ० २१।

जठेरा—वि० [हि० जेठ या जठर] [स्त्री० जठेरी] जेठा। बड़ा। उ०—बिप्रबधु कुलमान्य जठेरी।—मानस, २।६६।

जड़—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० जड़ (को०)।

जड़क्रिय—वि० [सं०] भुस्त। शीघ्रसूत्री।

जड़ुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जड़ुल' (को०)।

जड़ुलार्—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ में बच्चे के मुँडन संस्कार को जड़ुला कहते हैं।—उ०—दासू ही को सब शुभ और अशुभ कार्यों (विवाह, जन्म, जड़ुला) में मानते हैं और स्मरण करते हैं।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १ पृ० ८।

जड़ुड^५—वि० [सं० जड़] दे० 'जड़'। उ०—बाहर चेतन की रहन, भीतर जड़ुड अचेत।—दरिया० बानी, ३० ३४।

जड़ु^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ा] दे० 'सटा'। उ०—न सिध्वा गिर बज्र के पुँछन तिष्यारे। कंध सु जड़ा केहरी नेना ज्यों तारे।—पृ० रा० २४। १४६।

जड़^१—वि० [सं० जड़] १. जिसमें चेतनता न हो। अचेतन। २. जिसकी इंद्रियों की शक्ति मारी गई हो। चेष्टाहीन। स्तब्ध। ३. मंदबुद्धि। नासमर्थ। मूर्ख। ४. सरदी का मारा या

ठिठुरा हुआ। ५. शीतल। ठंडा। ६. गूँगा। मूक। ७. जिसे मुनाई न दे। बहुरा। ८. अनजान। अनभिज्ञ। ९. जिसके मन में मोह हो। जो वेद पढ़ने में असमर्थ हो (दायभाग)।

जड़^२—संज्ञा पुं० [सं० जड़म्] १. जल। पानी। २. बरफ। ३. सीसा नाम की धातु। ४. कोई भी अचेतन पदार्थ (को०)।

जड़^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ा (= वृक्ष की जड़)] वृक्षों और पौधों आदि का वह भाग जो जमीन के अंदर दबा रहता है और जिसके द्वारा उनका पोषण होता है। मूल। सोर।

विशेष—जड़ के मुख्य दो भेद हैं। एक मूल या डंडे के आकार की होती है और जमीन के अंदर सीधी नीचे की ओर जाती है; और दूसरी झुकरा जिसके रेशे जमीन के अंदर बहुत नीचे नहीं जाते और थोड़ी ही गहराई में चारों तरफ फैलते हैं। सिंचाई का पानी और खाद आदि जड़ के द्वारा ही वृक्षों और पौधों तक पहुँचती है।

जौ—जड़मूल।

वह जिसके ऊपर कोई चीज स्थित हो। नींव। बुनियाद।

मुहा०—जड़ उखाड़ना, काटना या खोदना = किसी प्रकार की हानि पहुँचाकर या बुराई करके समूल नाश करना। ऐसा नष्ट करना जिसमें वह फिर अपनी पूर्वस्थिति तक न पहुँच सके। जड़ जमना = टढ़ या स्थायी होना। जड़ पकड़ना जमना। दृढ़ होना। मजबूत होना। जड़ पड़ना = नींव पड़ना बुनियाद पड़ना। शुद्ध होना। जड़ बुनियाद से, जड़मूल से = आमूलतः। समूल। जड़ में पानी देना या भरना = दे० 'जड़ उखाड़ना'। जड़ में मट्टा डालना = सर्वनाश का प्रयोग करना। जड़ सींचना = आधार को पुष्ट करना।

३. हेतु। कारण। सबब। जैसे,—यही तो सारे झगड़ों की जड़ है। ४. वह जिसपर कोई चीज अवलंबित हो। आधार।

जड़आमला—संज्ञा पुं० [हि० जड़ + आमला] भुई आमला।

जड़क्रिया—वि० [सं० जड़क्रिय] जिसे कोई काम करने में बहुत देर लगे। सुस्त। शीघ्रसूत्री।

जड़काळा—संज्ञा पुं० [हि० जड़ा + सं० काल] सर्दी के दिन। जाड़े का समय। उ०—लागेउ माघ परे अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काळा।—जायसी ग्रं०, पृ० १५४।

जड़जगत—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + जगत्] अचेतन पदार्थ। जड़प्रकृति।

जड़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ का भाव, जड़ता] १. अचेतनता। २. मूर्खता। बेवकूफी। ३. साहित्यदर्पण के अनुसार एक संचारी भाव।

विशेष—यह संचारी भाव किसी घटना के होने पर चित्त के विवेकशून्य होने की दशा में होता है। यह भाव प्रायः घबराहट, दुःख, भय या मोह आदि में उत्पन्न होता है।

४. स्तब्धता। अचलता। चेष्टा न करने का भाव। उ०—निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरुष रघुपतिहि निहारी।—तुलसी (शब्द०)

जड़ताई—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ + (वि०) ताति (प्रत्य०) अव्यया हि०]
दे० 'जड़ता' । उ०—हृदय बिधि बेगि जनक जड़ताई । —मानस,
१।२४६ ।

जड़त्व—संज्ञा पुं० [सं० जड़त्व] १. चेतनता का विपरीत भाव ।
अचेतन पदार्थों का वह गुण जिससे वे जहाँ के तहाँ पड़े रहते
हैं और स्वयं हिल डोल या किसी प्रकार की चेष्टा आदि नहीं
कर सकते । २. स्थिति और गति की इच्छा का अभाव ।
बैशेषिक के अनुसार परमाणुओं का एक गुण ।

जड़ना—क्रि० स० [सं० जटम] [संज्ञा जड़िया, जड़ाई, वि० जड़ाऊ]
१. एक बीज को दूसरी बीज में पक्की करके बैठाना । पक्की
करना । जैसे, भंगूठी में नग जड़ना । २. एक बीज को दूसरी
बीज में ठीक कर बैठाना । जैसे, कील जड़ना, नाल जड़ना ।

संयो० क्रि०—डालना । —देना । —रखना ।

३. किसी वस्तु में प्रहार करना । जैसे, धौल जड़ना, चप्पड़ जड़ना ।
४. चुगली या शिकायत के रूप में किसी के विरुद्ध किसी से
कुछ कहना । कान भरना । जैसे, —किसी ने पहल ही उनसे
जड़ दिया था, इसीलिये वे यहाँ नहीं आए ।

संयो० क्रि०—बैना । उ०—घोर बन्धों की सुनिए कि घट जा
के बेगम साहब से जड़ ली कि हुस्वर, अब जरी गफालत न करें ।
सीर कु०, पृ० २६ ।

जड़पदार्थ—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + पदार्थ] भौतिक द्रव्य । अचेतन
पदार्थ ।

जड़प्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ + प्रकृति] दे० 'जड़जगत' ।

जड़भरत—संज्ञा पुं० [सं० जड़भरत] अंगिरस गोत्री एक ब्राह्मण
जो जड़वत् रहते थे ।

विशेष—भागवत में लिखा है कि राजा भरत ने अपने बानप्रस्थ
आश्रम में एक हिरन के बच्चे को पाला था और उसके साथ
उनका इतना प्रेम था कि मरने दम तक उन्हें उसकी चिता
बनी रही । मरने पर वे हिरन की योनि में उत्पन्न हुए, पर
उन्हें पुण्य के प्रभाव से पूर्व जन्म का ज्ञान बना रहा । उन्होंने
हिरन का शरीर त्याग कर गिर ब्राह्मण के कुल में जन्म
लिया । वह संसार की भावना से बचने के लिये जड़वत् रहते
थे इसीलिये लोग उन्हें जड़भरत कहते थे ।

जड़संग—संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार । उ०—सभ सारत समधा
सब कोई । जड़संग वह गई संग जिनोई । —रा० क०,
पृ० २५५ ।

जड़वत्—वि० [सं० जड़ + वत्] जड़ के समान । चेतनारहित ।
बेहोश । उ०—जड़वत् देख दोउ के मंगा । चेतन देख दोउ में
रंगा । —घट०, पृ० २५७ ।

जड़वाद—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + वाद] वह दार्शनिक मत या विचार-
धारा जिसमें पुनर्जन्म और चेतन आत्मा का अस्तित्व मान्य
नहीं । उ०—जड़वाद जर्जरित जग में तुम अवतरित हुए
आत्मा महान । —युगाति, पृ० ५७ ।

जड़वादी—वि० [सं० जड़वादिन्] जड़वाद का अनुगामी ।

जड़वाना—क्रि० स० [हि० जड़ना] १. नग इत्यादि जड़ने के लिये

प्रेरणा करना । जड़ने का काम करना । २. कील इत्यादि
गड़वाना ।

जड़विज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + विज्ञान] भौतिक विज्ञान ।
जड़वाद ।

जड़बी—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़] धान का छोटा पौधा जिसे जमे
हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ हो ।

जड़हन—संज्ञा पुं० [हि० जड़ + हनन (= गाड़ना)] धान का एक
प्रधान भेद जिसके पौधे एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह
बैठाए जाते हैं ।

विशेष—यह धान प्रसाद में घना बोया जाता है । जब पौधे एक
या दो फुट ऊँचे हो जाते हैं, तब किसान इन्हें उखाड़कर ताल
के किनारे नीचे खेतों में बैठाते हैं । वह खेत, जिसमें इसके
बीज पहले बोए जाते हैं, 'बियाड़' कहलाता है, और पौधे के
बीज को 'बेहन' तथा बीज बोने को 'बेहन डालना' कहते हैं ।
बीज को बियाड़ से उखाड़कर दूसरे खेत में बैठाने को 'रोपना'
या 'बैठाना' कहते हैं, और वह खेत जिसमें इसके पौधे रोपे
जाते हैं, 'सोई', 'डाबर', आदि कहलाता है । जड़हन पौधों
में कुमार के अंत में बाल फूटने लगती है, और भगहन में
खेत पककर कटने योग्य हो जाता है । इस प्रकार के धान
की अनेक जातियाँ होती हैं । जनमे से कुछ के चावल मोटे
और कुछ के महीन होते हैं । यह कभी कभी तालों के किनारे
या बीच में भी थोड़ा पानी रहने पर बोया जाता है; और ऐसी
बोवाई को 'बोपारी' कहते हैं । भगहनी के प्रतिरिक्त धान
का एक और भेद होता है जिसे कुमारी कहते हैं । इस भेद के
धान 'मोसहन' कहलाते हैं ।

जड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ा] १. भुईं भाँवला । २. कीछ । केवाँच ।

जड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ना] १. जड़ने का काम । पक्कीकारी ।
२. जड़ने का भाव । ३. जड़ने की मजदूरी ।

जड़ाऊ—वि० [हि० जड़ना] ज़िमपर नग या रत्न आदि जड़े
हों । पक्कीकारी किया हुआ । जैसे, जड़ाऊ मंदिर ।

जड़ान—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ना] दे० 'जड़ाई' ।

जड़ाना^१—क्रि० स० [हि० जड़ना] जड़ने का प्रेरणार्थक रूप ।
जड़ने का काम दूसरे ने करना ।

जड़ाना^२—क्रि० प्र० [हि० जड़ा] १. जड़ा सहना । ठंड खाना ।
२. सरदी की बाधा होना । शीत लगना । उ०—पूँस जाड़
थरथर तन काँपा । सुख जड़ाइ लक दिम तापा । —जायसी
ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५८ ।

जड़ाव—संज्ञा पुं० [हि० जड़ना] जड़ने का काम या भाव । उ०—
पुनि अमरन बहु काड़ा, नाना भाँति जड़ाव । फेरि फेरि सब
पहिरहि, जैस जैस मन भाव । —जायसी (शब्द०) ।

जड़ावट—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ना] जड़ने का काम या भाव ।
जड़ाव ।

जड़ावर—संज्ञा पुं० [(देशी जड़ा + सं० घा + √ वृ > घा वर,
अथवा हि० जाड़ा] जाड़े में पहनने के कपड़े । गरम कपड़े ।

क्रि० प्र०—देना = स्वल्प वेतनभोगी कर्मचारियों को जाड़े के कपड़े या उसके विनिमय में धन देना ।—मिलना ।

जडावला—संज्ञा पु० [हि० जडावर] दे० 'जडावर' ।

जडावला—वि० [हि० जड़ना] जडाया हुआ । संचित ।

जड़ित^५—वि० [हि० जड़ना या सं० जड़ित] जो किसी चीज में जड़ा हुआ हो । २. जिसमें नग आदि जड़े हों ।

जड़िमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़िमन्] १. जड़ता । जड़त्व । २. एक भाव जिसमें मनुष्य को दृष्टि अनिष्ट का ज्ञान नहीं होता और वह जड़ हो जाता है । ३. मोक्ष्य । मूर्खता ।

जड़िया—संज्ञा पु० [हि० जड़ना] १. नगों के जड़ने का काम करनेवाला पुरुष । वह जो नग जड़ने का काम करता हो । कुंदनसाज । उ०—हकनाहक पकड़े सकल जड़िया कोठीवाल । प्र०, पृ० ४३ । २. सोनारों की एक जाति या वर्ग जो गहने में नग जड़ने का काम करती है ।

जड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़] वह वनस्पति जिसकी जड़ प्रोषध के काम में लाई जाय । बिरई ।

यो०—जड़ी बूटी = जंगली प्रोषध या वनस्पति ।

जड़ीभूत—वि० [सं० जड़ीभूत] स्तम्भ । निश्चल । जड़भाव को प्राप्त । गतिहीन । उ०—गोतम ने जिस परिवर्तन के प्रसर सत्य को पहचाना था, क्या वही गतिहीन होकर बन सका । लोटकर भाया कहाँ जहाँ शाश्वत जड़ीभूत स्थिरता का पाषाण आकाश भूमने का प्रयत्न कर रहा था ।—प्रा० भा० पृ०, पृ० ४७५ ।

जड़ीला^१—संज्ञा पु० [हि० जड़ + ईला (प्रत्य०)] १. वह वनस्पति जिसकी जड़ काम में आती हो । जैसे, मूली, गाजर । २. वह ऊँची उठी हुई जड़ जो रास्ते में मिले । —(कहार) ।

जड़ीला^२—जड़दार । जिसमें जड़ हो ।

जड़ूआ—संज्ञा पु० [हि० जड़ना] चाँदी का एक गहना जो छल्ले की तरह पैर के घुँटों में पहना जाता है ।

जड़ुल—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'जटुल' ।

जड़ैया—संज्ञा स्त्री० [हि० जाड़ा + ऐया (प्रत्य०)] वह बूझार जिसके प्रारंभ में जाड़ा लगता हो । झड़ी ।

जड़—वि० [सं० जड़] दे० 'जड़' ।

जड़ता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ता] दे० 'जड़ता' ।

जड़ाना^१—क्रि० प्र० [हि० जड़ या जड़] जड़ हो जाना । २. हठ करना । जिद करना । अपनी बात पर अड़े रहना ।

जता^५—वि० [सं० यत्] जितना । जिस मात्रा का ।

जत^३—संज्ञा पु० [सं० यति] बाघ के बारह प्रबंधों में से एक । होली का डंका या ताल ।

जतना^५—संज्ञा पु० [सं० यत्न] दे० 'यत्न' । उ०—बार बार मुनि जतन कराहीं । अंत राम कहि आवत नाही ।—तुलसी (शब्द०) ।

जतना^५—क्रि० सं० [यत्न, हि० जतन] यत्न करना । उ०—

भाव के ऐसे जतनन जती । विष्णुहिं गर्म बीच ही हतों ।—नंद० प्र०, पृ० २२२ ।

जतनी^१—संज्ञा पु० [सं० यत्न] १. यत्न करनेवाला । २. सुचतुर । चालाक ।

जतनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यत्न (= रक्षा)] वह रस्सी या डोरी जिसे चक्के (रंहुट) की पंखुरियों के किनारे पर माल के टिकाव के लिये बाँधते हैं ।

जतनु^५—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'यत्न' । उ०—करेहु सो जतनु विवेकु विचारी ।—मानस १।५२।

जतरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा' । उ०—माँ और स्त्री को साथ लेकर वह जगन्नाथ जी की जतरा कर आया था ।—नई०, पृ० १०७ ।

जतलाना^१—क्रि० सं० [हि० जताना] दे० 'जताना' ।

जतसरा^१—संज्ञा पु० [हि० जति] दे० 'जैतसर' ।

जता^५—वि०, प्रत्य० [सं० यत्] दे० 'जितना' । उ०—मेरे पास धन माल है होर मता । तुजे देलगी मैं सारा जता ।—दक्खिनी०, पृ० ३७६ ।

जताना^१—क्रि० सं० [सं० ज्ञात] १. जानने का प्रेरणार्थक रूप । ज्ञात कराना । बतलाना । २. पहले से सूचना देना । आगाह करना ।

जताना^२—क्रि० प्र० [हि० जति] दे० 'जैताना' ।

जतारा^१—संज्ञा पु० [हि० जति या सं० यूप] वंश । खानदान । कुल । जाति । घराना ।

जति^५—क्रि० [सं० जेत] जेना । जीतनेवाला । उ०—चरन पीठ उन्नत नत पालक, गूढ़ गुलुक जंघा कदली जति ।—तुलसी प्र०, पृ० ४१५ ।

जति^२—संज्ञा पु० [सं० यति] दे० 'यति' । उ०—स्वान्त सग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रबीन । नीबु हति महिदेव बालक कियो मोचु बिहीन ।—तुलसी प्र०, पृ० ४२२ ।

जती^१—संज्ञा पु० [सं० यतिन्] संन्यासी । दे० 'यति' । उ०—जती पुरुष कहूँ ना गहूँ परनारी की हाथ ।—शकुंतला०, पृ० ६७ ।

जती^५—संज्ञा स्त्री० [सं० यति] छंद में विराम । दे० 'यति' ।

जतु^१—संज्ञा पु० [सं०] वृक्ष का निपास । गोबर । २. लाख । लाह । ३. शिलाजतु । शिलाजीत ।

जतु^२—संज्ञा स्त्री० गेदुर । चमगादड़ (को०) ।

जतुक—संज्ञा पु० [सं०] १. हींगू । २. लाख । लाह । ३. शरीर के बमड़े पर का एक विशेष प्रकार का चिह्न जो जन्म से ही होता है । इसे लच्छन या लक्षण भी कहते हैं ।

जतुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहाड़ी नामक लता जिसकी पत्तियाँ प्रोषध के काम में आती हैं । २. चमगादड़ । ३. लाक्षा । लाख । लाह (को०) ।

जतुकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पपटी या पपड़ी नाम की लता ।

जतुकुत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जतुकृष्णा' (को०) ।

जतुकृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका या पपड़ी नाम की लता ।

जतुगृह—संज्ञा पु० [सं०] घास फूस ऐसी चीजों का बना हुआ घर

जो जल्दी जल सके। २. लाख का बना घर जैसा बारणावत में
दुर्योधन ने पांडवों को भस्म करने के लिये बनवाया था।
लाक्षागृह (को०)।

जतुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

जतुपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शतरंज का मोहरा। २. चोमर की
गोटी। ३. लाख का बना हुआ रूप या आकार (को०)।

जतुमणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें दाग पड़
जाता है। जटुल। जतुक।

जतुमुख—संज्ञा पुं० [सं०] मुमुत के अनुसार एक प्रकार का घान।

जतुरस—संज्ञा पुं० [सं०] लाख का बना हुआ रंग। अनक्तक। महावर।

जतू—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी का नाम। चमगादड़। २. लाख का
बना हुआ रंग।

जतूकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

जतूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जतुका'।

जतेक(५)—क्रि० वि० [सं० यत् या हि० जितना + एक] जितना।
जिस मात्रा का। जिस संख्या का।

जतै(५)—क्रि० वि० [सं० यत्, प्रा० जत्थ] जहाँ। उ०—ब्रजमोहन
मोह की मूर्ति राम जतै धनि रोहिनि पुन्य फी।—
घनानंद०, पृ० २००।

जत्था—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से जीवों का समूह। झुंड। गरोह।
क्रि० प्र०—बाधना।

यौ०—जत्थावार, जत्थेदार = जत्था प्रयात् समूह का प्रधान
या नायक।

जत्र(५)—क्रि० वि० [सं० यत्र] जहाँ। जिस जगह। उ०—किते जीव
समूह देखंत भज्जे। मृग व्याघ्र भीते रिछ जत्र गज्जे।—
ह० रामो, पृ० ३६।

जत्रानी—संज्ञा स्त्री० [दे०] आटों की एक जाति जो कहेसलंड में
बसती है।

जत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. गले के सामने की दोनों ओर की वह हड्डी
जो कंधे तक कमानी को तरह लगी रहती है। हंसली।
हंसिया। उ०—यशोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि धीन
प्रस तति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१५। २. कंधे और बांह
का जोड़।

जत्वरमक—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

जथ(५)—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] जत्था। जूथ। यूथ। उ०—आत्म
भक्त करत घोर घंटा घहरि घने। घुँघरू धिरत फिरत
मिलि एक अथ।—भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ४४७।

जथा^१—क्रि० वि० [सं० यथा] १. दे० 'यथा'। उ०—जथा भूमि
सब बीज मैं, नखत निवास प्रकास। रामनाम सब घरम मैं
जानत तुलसीदास।—तुलसी ग्रं०, भाग २, पृ० ८८।

यौ०—जथाजोग। जथाधित। जथाध्वि = अपने इच्छानुसार।
उ०—बटु करि कोटि कुतर्क जथाध्वि बोलइ।—तुलसी ग्रं०,
पृ० ३४। जथालाभ = जो भी मिल जाय उसमें। जोभी प्राप्त
हो उससे। उ०—जथालाभ संतोष सवाई।—मानस, ७।४६।

जथा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथ] मंडली। गरोह। समूह। टोली।
क्रि० प्र०—बाधना।

जथा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० गथ] पूंजी। धन। संपत्ति।

यौ०—जमा जथा।

जथाजोग(५)—क्रि० वि० [सं० यथायोग्य] दे० 'यथायोग्य'। उ०—
जथाजोग भेदे पुरवासी गए मूल, सुखसिधु नहाए।—सूर०,
६।१६८।

जथाधित(५)—क्रि० वि० [सं० यथास्थित] जैसा था वैसा ही।
ज्यों का त्यों। उ०—शिवहि विलोकि समकेउ याह। भयह
जथाधित सबु संसार।—मानस, १।८६।

जथार्थ(५)—अव्य० [सं० यथार्थ] दे० 'यथार्थ'। उ०—जे जन नियुत
जथार्थवेदी। स्वारथ प्रह परमारथ भेदी।—नंद ग्रं०,
पृ० ३०२।

जथार्थवेदी(५)—वि० [सं० यथार्थ + वेदिन्] यथार्थवेत्ता। सच्चाई
को जाननेवाला।

जथावकास(५)—क्रि० वि० [सं० यथावकाश] अवकाश के अनुसार।
उ०—जाके जठर मध्य जग जितो। जथावकास रहत है
तितो।—नंद ग्रं०, पृ० २२६।

जथासंखि(५)—अव्य० [सं० यथासंख्य] क्रम के अनुसार। जैसा
क्रम हो उसके अनुसार। उ०—बम वरुण च्यारनो जथासंखि
वासं। चहूँ आश्रमं हो तज लोभ प्राप्त।—ह० रासो,
पृ० १७।

जद^१—क्रि० वि० [सं० यदा] जब। जब कभी। उ०—(क) जद
जागू तद एकली, जब सोऊ तब बेन।—ढोला०, पृ० ५११।
(ख) ब्रजमोहन घनघनंद जानी जद बस्मों विच आया है।
—घनानंद०, पृ० १८१।

जद^२—अव्य० [सं० यदि] अगर। यदि।

जद^३—संज्ञा स्त्री० [फा० जद] १. आघात। चोट। २. लक्ष्य।
निशाना। ३. मामला (को०)।

जदनी—वि० [फा० जदनी] मारने या बध करने योग्य।

जदपि—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' उ०—जदपि प्रकाम
तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना।—
मानस, १।७६।

जदबद—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जद्बद्'।

जदल—संज्ञा पुं० [अ०] १. युद्ध। संघर्ष। २. भगडा। हुज्रत (को०)।

जदवर, जदवार—संज्ञा पुं० [अ०] जहर के प्रसर को दूर करने-
वाली एक घास। त्रिविधी।

जदा—वि० [फा० जदह] पीड़ित। संतप्त। मारा हुआ। जैसे,
गमजदा। मुसीबतजदा—विपत्ति का मारा।

जदि(५)—अव्य० [सं० यदि] अगर। जो।

जदीद—वि० [अ०] नया। हाल का। नवीन।

जदु(५)—संज्ञा पुं० [सं० यदु] दे० 'यदु'।

जदुईस(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जदुपति'।—प्रनेकार्य०, पृ० ६१।

जदुकुल(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यदुवंश'।

जदुनाथ(पु) — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'यदुनाथ' उ० — बिनु सोन्हें ही देत
सूर प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं । — सूर०, १।३।

जदुपति(पु) — संज्ञा पु० [सं० यदुपति] श्रीकृष्ण । उ० — कोऊ कोरिक
संग्हो कोऊ लाख हजार । मों संपति जदुपति सदा विपति
बिदारनहार । — बिहारी (शब्द०) ।

जदुपाल(पु) — संज्ञा पु० [सं० यदुपाल] श्रीकृष्ण ।

जदुपुरी(पु) — संज्ञा पु० [सं० यदुपुरी] राजा यदु का नगर । यदुकुल
की राजधानी, मथुरा मथवा यदुओं की पुरी द्वारका । उ० —
दृष्टि पड़ी जदुपुरी सुहाई । — नंद० ग्रं०, पृ० २१३ ।

जदुवंशी(पु) — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'यदुवंशी' । उ० — कुंज कुटीरे
जमुना तीरे नू बिलता जदुवंशी । — हिम कि०, पृ० २४ ।

जदुराज(पु) — संज्ञा पु० [सं० यदुराज] यदुपति । श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुराज(पु) — संज्ञा पु० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुराम(पु) — संज्ञा पु० [सं० यदुराम] यदुकुल के राम । बलदेव ।

जदुराय(पु) — संज्ञा पु० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुवर(पु) — संज्ञा पु० [सं० यदुवर] श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुवीर(पु) — संज्ञा पु० [सं० यदुवीर] श्रीकृष्णचंद्र ।

जह(पु) — वि० [अ० ज्यादा] अधिक । ज्यादा ।

जह^२ — वि० [सं० योद्धा] प्रबल । उ० — छागलि चलेउ
समह भूप बलहह जह भति । — गोपाल (शब्द०) ।

जह^३ — संज्ञा पु० [अ०] दादा । पितामह । बाप का बाप ।

जहपि(पु) — क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' ।

जहलह — संज्ञा पु० [सं० यत्प्रवच्य प्रथमा हि० अनु०] प्रकथनीय बात ।
वह बात जो न कहने योग्य हो । दुर्वचन ।

जही^१ — संज्ञा स्त्री० [अ०] चेष्टा । कोशिश । प्रयत्न । दीक्षूप [को०] ।

जही^२ — वि० [अ०] मोहसी । बापदादे की [को०] ।

जहोजहह — संज्ञा स्त्री० [अ०] दीक्षूप । चेष्टा । प्रयत्न । उ० —
व्यक्ति विनीत दलों के दुमंद, जहोजहह में रदोबदल में । —
मिलन०, पृ० १७३ ।

जद्यपि — क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' । उ० — महज सरल
रघुवर बदन, कृमति कुटिल फिर जान । चले जोंक जल
बक्रगति जद्यपि सजिल समान । — तुलसी ग्रं०, पृ० १०१ ।

जन'गम — संज्ञा पु० [सं० जनज्जम] चांडाल ।

जन — संज्ञा पु० [सं०] १. लोक । लोग ।

यौ० — जनप्रवाद = प्रकवाह । लोकापवाद । उ० — जन प्रपवाद
गूँजता था, पर दूर । — प्रपरा, पृ० १३६ । जन घाँदोलन =
उद्देश्यपूर्ति के लिये जनसमूह द्वारा किया हुआ सामूहिक
प्रयत्न या हलचल । जनजीवन = लोकजीवन । जनप्रवाद ।
जनक्षय । जनश्रुति । जनवत्सल । जनसमूह । जनसमाज ।
जनसमुदाय । जनसमुद्र = जनसमूह । जनसाधारण । जनसेवक ।
जनसेवा, आदि ।

२. प्रजा । ३. गँवार । देहाती । ४. जाति । ५. वर्ग । गण ।
उ० — प्रायः लोग इस समय अनेक जनों में विभक्त थे । प्रत्येक

जन एक पुष्य राजनैतिक समूह मालूम होता है । — हिंदु०
सभ्यता, पृ० ३३ । ६. अनुयायी । अनुचर । दास । उ० —
(क) हरिजन हंस दशा लिए बोलें । निर्मल नाम चुनी चुनि
बोलें । — कबीर (शब्द०) । (ख) हरि प्रजुन को निज जन
जान । लै गए तहँ न जहाँ ससि मान । — सूर०, १० ।
४३०६ । (ग) जन मन मंजु मुकर मन हरनी । किए
तिलक गुन गन बस करनी । — तुलसी (शब्द०) ।

यौ० — हरिजन ।

७. समूह । समुदाय । जैसे, गुणिजन । ८. भवन । ९. वह
जिसकी जीविका आरिरिक परिश्रम करके दैनिक वेतन लेने से
चलती हो । १०. सात महाव्याहृतियों में से पाँचवीं व्याहृति ।
११. सात लोकों में से पाँचवाँ लोक । पुराणानुसार चौदह
लोकों के अंतर्गत ऊपर के सात लोकों में से पाँचवाँ लोक
जिसमें ब्रह्मा के मानसपुत्र और बड़े बड़े योगींद्र रहते हैं ।
१२. एक राजस का नाम । १३. मनुष्य । व्यक्ति ।

जन^२ — संज्ञा स्त्री० [क्रा० जन] १. महिला । नारी । २. स्त्री ।
पत्नी । भार्या । उ० — मुसल्ला बिछा उसका जन बानियाज ।
— दक्खिनी०, पृ० २१५ ।

जन^३(पु) — वि० [सं० जन्य] उत्पन्न । जनित । जात । उ० — सतसेवा
तुलसी सतर तम हरि पर पद देत । तुरत अविद्या जन दुरित
बर तुल सम करि छेत । — स० समक, पृ० २५ ।

जनव(पु) — संज्ञा पु० [हि० जनेउ] दे० 'जनेऊ' । उ० — फोट चाट
जनउ तोड । — कीर्ति०, पृ० ४४ ।

जनक^१ — वि० [सं०] पैदा करनेवाला । जन्मदाता । उत्पादक ।

जनक^२ — संज्ञा पु० [सं०] १. पिता । बाप । २. मिथिला के एक
राजवंश की उपाधि ।

विशेष — ये लोग अपने पूर्वज निमि विदेह के नाम पर विदेह भी
कहलाते थे । सीता जी इस कुल में उत्पन्न सीरध्वज की पुत्री
थीं । इस कुल में बड़े बड़े ब्रह्मजानी उत्पन्न हुए हैं जिनकी
कथाएँ ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाभारत और पुराणों में बरी
पड़ी हैं ।

३. सीता जी के पिता सीरध्वज का नाम ।

यौ० — जनकतनया = सीता । जनक की पुत्री । उ० — सात जनक-
तनया यह सोई । — मानस, १।२३१ । जनकनंदिनी । जनक-
कुलारी । जनकपुर । जनकसुता = दे० जनकात्मजा । उ० —
जनकसुता जगजननि जानकी । — मानस, १।१८ ।

४. संवरासुर का चौथा पुत्र । ५. एक वृक्ष का नाम ।

जनकता — संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पन्न करने का भाव या काम । २.
उत्पन्न करने की शक्ति ।

जनकदुलारी(पु) — संज्ञा स्त्री० [सं० जनक + हि० दुलारी] सीता ।
जानकी ।

जनकनंदिनी — संज्ञा स्त्री० [सं० जनकनंदिनी] सीता । जानकी ।
उ० — जनकनंदिनी जनकपुर जब से प्रगटी घाई । तब तें सब
सुख संपदा अधिक अधिक अधिकाई । — तुलसी ग्रं०, पृ० ८३ ।

जनकपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मिथिला की प्राचीन राजधानी।

विशेष—इसका स्थान आजकल लोग नेपाल की तराई में बतलाते हैं। यह हिंदुओं का प्रधान तीर्थ है और हिंदू यात्री प्रति वर्ष वहाँ दर्शन के लिये जाते हैं।

जनकात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता। जानकी (को०)।

जनकारी—संज्ञा पुं० [सं० जनकारिन्] लाख का बना हुआ रंग। झालक।

जनकौर^(७)—संज्ञा पुं० [हिं० जनक + गौरा (प्रत्यय०)] १. जनक का स्थान। जनक नगर। उ०—बाजहि डोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि। सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६। २. जनक राजा के वंशज या संबंधी। उ०—कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोक बस बोरा।—तुलसी (शब्द०)।

जनसूय—संज्ञा पुं० [सं०] महामारी। लोकनाश (को०)।

जनस्वर्द्ध—संज्ञा पुं० [फा० जनस्वर्द्ध] ठोड़ी। बिबुक। उ०—जनस्वर्द्ध में तेरे मुँह बाहे जमजम का असर बिसता।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६।

जनस्त्रा—वि० [फा० जनकहू या जनानहू] १. जिसके हाव भाव आदि औरतों के से हों। २. होजड़ा। नपुंसक।

जनगणना—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + गणना] मनुष्यगणना। जनसंख्या की गिनती।

जनगो—संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली।

जनघरा—संज्ञा पुं० [सं० जन + गृह] मंडप।—(हिं०)।

जनचक्र—संज्ञा पुं० [सं० जनचक्रम्] मूर्त्य।

जनचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोकवाद। सर्वसाधारण में फैली हुई बात।

जनजल्पना—संज्ञा पुं० [सं० जनजल्पना] लोकचर्चा। झफवाह (को०)।

जनजागरण—संज्ञा पुं० [सं० जन + जागरण] जनसमुदाय में स्वहित की दृष्टि से चेतना उत्पन्न होना।

जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जनन का भाव। २. जनसमूह। सर्वसाधारण।

थी०—जनता जनार्दन = जनसमूह रूपी ईश्वर। लोकरूपी ईश्वर।

जनतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० जन + तंत्र] जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का शासन। लोकतंत्र। प्रजातंत्र।

थी०—जनतंत्रवादी = लोकतंत्र को माननेवाला।

जनतांत्रिक—वि० [सं० जन + तान्त्रिक] जनतंत्र संबंधी। उ०—विजित हो रहा यांत्रिक मानव। जिसपर रहा जनतांत्रिक मानव।—अग्निमा, पृ० १२०।

जनप्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे धूप और बृष्टि से रक्षा हो।

जनप्राता—संज्ञा पुं० [सं० जन + प्राता] सेवक की रक्षा करनेवाला। लोक का रक्षक। उ०—मई बन गए अमलन जनप्राता।—मानस, ७।११०।

जनयोरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ककड़बेल। बेंदाल।

जनजाति—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + जाति] जंगलों और पर्वतीय क्षेत्रों में रहनेवाली जाति या वर्ग।

जनधन—संज्ञा पुं० [सं० जनधन] १. मनुष्य और संपत्ति। २. सार्वजनिक धन।

जनधा—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

जनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्पत्ति। उद्भव। २. जन्म। ३. आविर्भाव। ४. तंत्र के अनुसार मंत्रों के दस संस्कारों में से पहला संस्कार जिसमें मंत्रों का मात्रिका वर्णों से उच्चार किया जाता है। ५. यज्ञ आदि में दीक्षित व्यक्ति का एक संस्कार जिसके उपरांत उसका दीक्षित रूप में फिर से जन्म ग्रहण करना माना जाता है। ६. वंश। कुल। ७. पिता। ८. परमेश्वर।

जनना—क्रि० सं० [सं० जनन (= जन्म)] संतान को जन्म देना। प्रसव करना। उ०—(क) जनत पुत्र नभ बजे नगारा। तदपि जननि उर सोच अपारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) रंभ खंभ जंघन दुति देखत नष्ट जनन जग माँही।—रघुराज (शब्द०)।

जननाशौच—संज्ञा पुं० [सं० जनन + प्रशौच] वह प्रशौच जो घर में किसी का जन्म होने के कारण लगता है। वृद्धि।

जननि^(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० जननि] १. 'जननी'। समुक्ति महेस समाज सब, जननि जनक मुमुकाहि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हों इहाँ तेरे ही कारन भायी। तेरी सौ सुनि जननि जसोदा मोहि गोपाल पठायी।—सूर०, १०।४७८।

जननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पन्न करनेवाली। २. माता। माँ। उ०—(क) जननी जनकादि हिन् भए भूरि बहोरि भई उर की जरनी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) करनी करुनासिंधु की मुख कहत न भावै। कष्ट हेत परसैं बकी जननी गति पावै।—सूर०, १।४। ३. लूही का पेड़। ४. कुटकी। ५. मजीठ। ६. जटामांसी। ७. अलता। ८. पपड़ी। पपरिका। ९. चमगादड़। १०. दया। कृपा। ११. जननी नाम का गंधद्रव्य।

जगनेत्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० जनन + इन्द्रिय] १. वह इंद्रिय जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है। भग। योनि। २. उपरध (को०)।

जनपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. देश। २. सर्वसाधारण। निवासी। देशवासी। प्रजा। लोक। लोग। उ०—ज्यों हुलास रनिवस नरेसाहि त्यों जनपद राजधानी।—तुलसी (शब्द०)। ३. राज्य। ४. प्रांचलिक क्षेत्र। ५. मनुष्य जाति (को०)।

जनपदकल्याणी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनपद + कल्याणी] गणतंत्र की सामान्य (जनभोग्या) विशिष्ट गणिका।

जनपदी—संज्ञा पुं० [सं० जनपदिन्] देश, समाज, क्षेत्र का शासक (को०)।

जनपदीय—वि० [सं०] जनपद का। जनपद संबंधी।

जनपाल, जनपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्यों का पोषण करनेवाला। सेवक या अनुचर का पालन करनेवाला।

जनप्रवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोकप्रवाद। लोकनिदा। २. जनरव। झफवाह। किवंदती।

जनप्रिय^१—वि० [सं०] सबसे प्रेम रखनेवाला। सर्वप्रिय। सबका प्यारा।
जनप्रिय^२—संज्ञा पुं० १. धान्यक। घनिया। २. शोभाजन वृक्ष।
सहजन का पेड़। ३. महादेव। शिव।

जनप्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सबके प्रिय होने का भाव। सर्वप्रियता।
लोकप्रियता।

जनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुलहुल का साग।

जनवगुल—संज्ञा पुं० [हि० जन + वगुल] एक प्रकार का वगुल।

जनम—संज्ञा पुं० [सं० जन्म] १. उत्पत्ति। जन्म। दे० 'जन्म'। उ०—
बहु विधि राम शिवहि समुभावा। पारबती कर जनम सुनावा।
—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—धारजा।—पाना।—सेना।—होना।

यौ०—जनमघूँटी। जनमपत्नी। जनमपत्री।

१. जीवन। जिंदगी। आयु। उ०—(क) होय न विषय बिराग,
भवन बसत भा जोषन। हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ
हरि भगति बिनु।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुलसीदास
मोको बड़ी सोचु है तू जनम कवन विधि भरिहै।—तुलसी
(शब्द०)।

मुहा०—जनम गंवाना = अर्थ जनम या समय नष्ट करना।
जनम बिगड़ना = धर्म नष्ट होना। जनम करम के ओछे =
जन्मना और कर्मणा उभय प्रकार से हीन। उ०—ऐसे जनम
करम के ओछे, ओछन हैं व्योहारत।—सूर०, १।२२। जनम
भरना = जीवन बिताना। उ०—तैहर जनमु भरब बर
जाई। जियन न करब सवति सेवकाई।—मानस, २।२१।
जनम भर जलना = प्राजीवन दुःख भोगना। उ०—वह
घनपढ़, गंवार, मुफट्ट, लोह सट्ट के पाले पड़कर जनम भर
जला करे।—उ०, पु० १०। जनम हारना = प्राजीवन
किसी की सेवा के लिये मंकल्प धारण करना। उ०—प्रब
मे जनम मंथु सै हारा।—मानस, १।८१।

जनमघूँटी—संज्ञा स्त्री० [हि० जनम + घूँटी] वह घूँटी जो बन्धों को
जन्मते समय से दो तीन वर्ष तक दी जाती है।

मुहा०—(किसी बात का) जनमघूँटी में पड़ना = जन्म से ही
(किसी बात की) आदत पड़ना। (किसी बात का) इतना
अभ्यस्त हो जाना कि उससे पीछा न चूट सके। जैसे,—भूट
बोलता तो इनकी जनमघूँटी में पड़ा है।

जनमजला—वि० [हि० जनम + जलना] [वि० स्त्री० जनमजली]
दुःखी। भाग्यहीन। अभाग।

जनमत—संज्ञा पुं० [सं० जन + मत] सर्वसामान्य जनता की राय।
लोकमत। उ०—जनमत राजा को निकाल सकता था।—
पा० भा० प०, पु० १८६।

यौ०—जनमत सग्रह = जनता की राय का सकलन। लोकमत का
सकलन जिससे लोक की राय जानी जाय। उ०—जनमत
सग्रह के पूर्व सब दलों को अपने अपने मत के प्रचार का
अधिकार होगा।—भारतीय०, पु० २२६।

जनमदिन—संज्ञा पुं० [हि० जनम + दिन] दे० 'जन्मदिन'।

जनमधरती—संज्ञा स्त्री० [हि० जनम + धरती] दे० 'जन्मभूमि'।

जनमना^१—क्रि० प्र० [सं० जन्म] १. पैदा होना। उत्पन्न होना।
जन्म लेना। उ०—(क) जे जनमे कलिकाल कराला।—
मानस, १।१२। (ख) के जनमत मरि गई एक दासी
घरवारी।—हम्मीर०, पु० ४५। २. चौसर आदि खेलों में
किसी नई या मरी हुई गोटी का, उन खेलों के नियमानुसार
खेले जाने के योग्य होना।

जनमना^२—क्रि० स० [सं० जन्म या हि० जनमाना] जन्म देना।
उत्पन्न करना। उ०—कैकय सुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत
जनमत भे ओऊ।—मानस, १।१६५।

जनमपत्नी—संज्ञा स्त्री० [हि० जनम + पत्नी] चाय कुलियों की बोलचाल
की भाषा में चाय की वह छोटी पत्नी या फुनगी जो पहले
पहल निकलती है।

जनमपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्मपत्री] दे० 'जन्मपत्री'।

जनमरक—संज्ञा पुं० [सं०] वह बीमारी जिससे थोड़े समय में बहुत
से लोग मर जायें। महामारी।

जनमर्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लौकिक आचार या रीति।

जनमसंगी—वि० [हि०] [वि० स्त्री० जनमसंगिनी] जिसका साथ
जनम भर रहे (पति या पत्नी)।

जनमसँघाती^१—संज्ञा पुं० [हि० जनम + संघाती] वह जिसका
साथ जन्म से ही हो। बहुत दिनों से साथ रहनेवाला मित्र।
२. वह जिसका साथ जन्म भर रहे।

जनमाना—क्रि० स० [हि० जनम] १. जनमने का काम कराना।
प्रसव कराना। २. दे० 'जनमना'।

जनमु^१—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, हि० जनम] दे० 'जन्म'। उ०—
राम काज लागि जनमु जग, सुनि हरषे हनुमान।—तुलसी
प्र०, पु० ८६।

जनमुरीद—वि० [फा० जन + मुरीद] पत्नीपरायण। पत्नीभक्त। जोरू
का गुलाम। उ०—पत्नी की सी कहता हूँ तो जनमुरीद की
उपाधि मिलती है।—मान०, भा० १, पु० १५४।

जनमेजय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जन्मेजय'।

जनयिता^१—वि० [सं० जनयितृ] वि० स्त्री० जनयित्रो] जन्मदाता। पैदा
करनेवाला।

जनयिता^२—संज्ञा पुं० पिता। बाप।

जनयित्रो^१—वि० [सं०] जन्म देनेवाला। उ०—शीतलता, सरलता
महनी। द्विजपद प्रीति धरम जनयित्रो।—मानस, ७।३८।

जनयित्रो^२—संज्ञा स्त्री० माता। माँ।

जनयिष्णु—वि० [सं०] जननकर्ता। उत्पादक [को०]।

जनरंजन—वि० [सं० जन + रंजन] मनुष्यों को या सेवकों को सुख
पहुँचानेवाला [को०]।

जनरल^१—संज्ञा पुं० [अंग०] फौजों का एक बड़ा अफसर जिसके
अधिकार में कई रेजिमेंट होती है। अंग्रेजी सेना का सेनापति
या सेनानायक।

जनरल^२—वि० साधारण। आम। जैसे, इन्स्पेक्टर जनरल।

जनरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. किबंदी। जनश्रुति। अफवाह। २.

लोकनिदा । बदनामी । ३. बहुत से लोगों का कोलाहल ।
हुल्सा । शोरगुल ।

जनलोक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर के सप्तलोकों में से पाँचवाँ लोक ।
दे० 'जन' ११ ।

जनवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनुवरी] अंग्रेजी साल का पहला
महीना जो इकतीस दिनों का होता है ।

जनवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्वेत रोहित का पेड़ । सफेद
रोहिड़ा । २. जनप्रिय । लोकप्रिय ।

जनवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनाना] दे० 'जवाई' २ ।

जनवाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जनरव' ।

जनवाना—क्रि० म० [हिं० जनना] जनने का प्रेरणाशक रूप ।
प्रसन्न कराना । लड़का पैदा कराना ।

जनवाना—क्रि० स० [हिं० जानना] समाचार दिलवाना । किसी
दूसरे के द्वारा सूचित कराना ।

जनवास—संज्ञा पुं० [सं० जन्य + वास] १. सर्वसाधारण के ठहरने
या टिकने का स्थान । लोगों के निवास का स्थान । २.
बरातिथों के ठहरने का स्थान । वह जगह जहाँ कम्पा पल की
घोर से बरातिथों के ठहरने का प्रबंध हो । उ०—(क) मकल
सुपास जहाँ दीन्हो जनवास तहाँ कीन्हो सम्मान दे हुलास स्थों
समाज को ।—कबीर (शब्द०) । (ख) दीन्ह जाय जनवास
सुपास किए सब । पर घर बालक बात कहन लागे सब ।—
तुलसी (शब्द०) । ३. सभा । समाज ।

जनवासना—क्रि० स० [सं० जनवास + ना (प्रत्य०)] आगत
जन को ठहरने या बैठने का स्थान देना । उ०—सौरभ सुनाम
माचार करि के जनवासत मंडपहि ।—पु० रा०, ७।१७७ ।

जनवासा—संज्ञा पुं० [सं० जन्यवास] दे० 'जनवास' २ । उ०—प्रति
सुंदर दीन्हे जनवास । जहाँ सब कहै सब भक्ति भुजा ।
—मानस, १।३०६ ।

जनव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] लोकप्रसिद्ध या लोक में प्रचलित
चलन या नीति विवाज (नीति) ।

जनशून्य—वि० [सं०] जनहीन । निर्जन । सुनसान ।

जनश्रुत—वि० [सं०] प्रसिद्ध । विख्यात । मशहूर ।

जनश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह खबर जो बहुत से लोगों में फैली
हुई हो पर जिसके मूल् ये या भूँटे होने का कोई निर्णय न हुआ
हो । अफवाह । किवंदती ।

क्रि० प्र०—उठना ।—फैलना ।

जनसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + संख्या] किसी स्थानविशेष पर
बसने या रहनेवाले लोगों की गिनती । आबादी । जैसे,—
(क) काशी की जनसंख्या दो लाख के लगभग है । (ख)
कलकत्ते की जनसंख्या में बंबई की अपेक्षा इस बार कम हुई
हुई है ।

जनसंवाध—वि० [सं०] सबको बसा हुआ (नीति) ।

जनसमूह—संज्ञा पुं० [सं० जन + समूह] सर्वसाधारण मनुष्यों का
समुदाय । आम जनता का मजमा ।

४-४

जनसाधारण—संज्ञा पुं० [हिं०] सामान्य जन । आम जनता ।

जनसेवक—वि० [सं० जन + सेवक] जनता की सेवा करनेवाला ।
जनता का हित । जनसेवा ।

जनसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + सेवा] सर्वसाधारण जनता के
हित का काम ।

जनसेवी—वि० [सं० जन + सेविन्] दे० 'जनसेवक' ।

जनस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दंडकारण्य । दंडकवन ।

जनहरण—संज्ञा पुं० [सं०] एक दंडक वृत्त का नाम ।

विशेष—यह मुक्तक का दूसरा भेद है और इसके प्रत्येक चरण में
तीस लघु और गुरु होता है । जैसे,—लघु सब गुरु एक तिसर
न मन घर भजु नर प्रभु अथ जन हरण ।

जनहित—संज्ञा पुं० [सं० जन + हित] लोकोपकारी कार्य । लोक-
कल्याण । उ०—का न कियौ जनहित जदुराई ।—सूर०, १।६ ।

जनहीन—वि० [सं० जन + हीन] निर्जन । बिजन । जनशून्य ।

जनांत—संज्ञा पुं० [सं० जनास्त] १. वह प्रदेश जिसकी सीमा
निश्चित हो । २. यम । ३. वह स्थान जहाँ मनुष्य न
रहते हों ।

जनांत—वि० मनुष्यों का नाश करनेवाला ।

जनांतिक—संज्ञा पुं० [सं० जनान्तिक] १. दो आदमियों में परस्पर वह
साकेतिक बातचीत जिसे और उपस्थित लोग न समझ सकें ।

विशेष—इसका व्यवहार बहुधा नाटकों में होता है ।

२. व्यक्ति का सामीप्य ।

जना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पत्ति । पैदाइश । २. महिष्मती
के राजा नीलध्वज की स्त्री का नाम । जैमिनी ।

विशेष—भारत के अनुसार पाँडवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को
पकड़नेवाला प्रवीर इसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । उस
घोड़े के लिये प्रवीर और पाँडवों में जो युद्ध हुआ था उसमें
इसने (जैमिनी ने) अपने पुत्र को बहुत सहायता और
उत्तेजा दी थी । जब युद्ध में प्रवीर मारा गया तब यह स्वयं
युद्ध करने लगी । श्रीकृष्ण को इससे पाँडवों की रक्षा करने
में बहुत कठिनाता हुई थी ।

जना—संज्ञा पुं० [सं० जिना] दे० 'जिना' ।

जना—वि० [सं० जन्य] [वि० स्त्री० जनी] उत्पन्न किया हुआ ।
अप्राप्य हुआ ।

जना(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० जनी (= पाता) का हिं० पुं० रूप] उत्पन्न
करनेवाला पिता । उ०—पके जनी बना संसारा । कौन जान
ये भयउ स्यारा ।—कबीर बी०, पु० १२ ।

जनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनना] १. जनानेवाची । दाई । २.
जनाने की उजरत । पैदा कराई का हक या वेत । दाई
की मजदूरी ।

जनाउ—संज्ञा पुं० [हिं० जनाव] दे० 'जनाव' । उ०—प्रवच-
नाथ चाहत जवन, भीतर करहु जवाउ । यह प्रेम बस
सचिब सुनि, विप्र समासब राउ ।—दुखरी (शब्द०) ।

जनाकर—वि० [सं० जन + आकर] मनुष्यों से भरा हुआ।
जनाकीर्ण। उ०—ग्राम नहीं वे ग्राम आज भी नगर न नगर
जनाकर। ग्राम्या, पु० ११।

जनाकार—वि० [अ० जिनह् + फा० कार] बुरा काम करनेवाला।
व्यभिचारी। उ०—कहीं मजमा है मर्दोजन जनाकार।
—कबीर म०, नृ० ४७।

जनाकीर्ण—वि० [सं०] सघन आबादीवाला। आदमियों से भरा
हुआ। जनाकर। उ०—हुबड़ा के जनाकीर्ण स्थान में उन
दोनों ने अपने को ऐसा छिपा लिया, जैसे मधुमक्खियों के
छत्ते में कोई मक्खी।—तिली, पु० २१६।

जनाचार—संज्ञा पु० [सं०] देश या समाज आदि की प्रचलित
रीति। लोकाचार।

जनाजा—संज्ञा पु० [अ० जनाजह्] १. मृतक शरीर। मुर्दा। शव।
लाश। उ०—बुढ़ी खूब की खोइ जनाजा जियतै करना।—
पलटू०, पु० १४। २. घरणी या वह संदूक जिसमें लाश को
रखकर गाड़ने, जलाने या घोर किसी प्रकार की अंतिम
क्रिया करने के लिये ले जाते हैं। उ०—छुटेंगे जीस्त के
फंदे से कौन दिन प्रातिश। जनाजा होगा कब अपना रवा नहीं
मालूम।—कविता की०, भा० ४, पु० ३८१।

क्रि० प्र०—उठना। निकलना।—रवा होना।

जनातिग—वि० [सं०] असाधारण। असामान्य। लोकोत्तर [की०]।

जनाधिनाथ—संज्ञा पु० [सं०] १. ईश्वर। २. राजा।

जनाधिप—संज्ञा पु० [सं०] १. राजा। नरेश। २. त्रिशुल का एक
नाम [की०]।

जनाती^१—संज्ञा पु० [अथवा हि० जन (= यज्ञ = विवाह) + आती
(= पत्नी के)] कन्या पक्ष के लोग। धराती।

जनानखाना—संज्ञा पु० [अ० जनान + फा० खानह्] घर का वह भाग
जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं। स्त्रियों के रहने का घर। अंतपुर
उ०—अब उन्हीं की संगत, जनानखानों में पतली छड़ी लिए
अपेजी अना की ऐंडी खटखटाते कुत्तों ने मुकवाते एठे चले जा
रहे हैं।—प्रेमघन०, पु० ७९।

जनाना^१—क्रि० अ० [हि० जानना का प्रे० रूप] मालूम करना।
जताना। उ०—सोइ जानइ जेहिबैह् जनाई। जानत तुम्हहि
तुम्हइ होइ जाई।—मानस, २।१२७।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

जनाना^२—क्रि० स० [हि० जनना का प्रेरणावर्क रूप] उत्पन्न
करना। जनम का काम करना।

संयो० क्रि०—देना।

जनाना^३—वि० [फा० जनानह्] [वि० की० जनानी] १. स्त्रियों का
स्त्री संबंधी। जैसे, जनाना काम, जनानी मूरत, जनानी
बोली। २. नामदं। नपुंसक। होजड़ा। ३. निर्बल। इरपोक।
४. भोगत। स्त्री। पत्नी।

जनाना^४—संज्ञा पु० १. जनता। मेहरा। २. अंतपुर। जनानखाना।

मुहा०—जनाना करना = पर्दा करना। स्थान को पर्देवाली स्त्रियों
के जाने जाने योग्य करना।

जनानापन—संज्ञा पु० [फा० जनानह् + पन (प्रत्य०)] मेहरापन।
स्त्रीत्व।

जनानी—वि० की० [फा० जनानह्] दे० 'जनाना'^३।

जनाब—संज्ञा पु० [अ०] [की० जनाबा] १. बड़ों के लिये आदर सूचक
शब्द। महाशय। महोदय। जैसे, जनाब मौलवी साहब।
२. पार्श्व। पहलू (की०)। ३. आश्रम (की०)। ४. चौखट।
देहली। इयोदी। ५. उपस्थिति। मौजूदगी (की०)।

जनाबआली—संज्ञा पु० [अ०] मान्यवर। महोदय। प्रतिष्ठित
पुरुषों के लिये आदरसूचक संबोधन।

जनार्दन^१—संज्ञा पु० [सं०] १. विष्णु। २. शासग्राम की बटिया का
का एक भेद। ३. कुप्लु (की०)।

जनार्दन—वि० लोगों को कष्ट पहुंचानेवाला। दुःखदायी।

जनाब—संज्ञा पु० [हि० जनाना] जनाने की क्रिया। सूचना। इतिला।
उ०—चलत न काहुहि कियो जनाब। हरि प्यारी सो बाढ़यो
भाव। रास रसिक गुण गाइ हो।—सूर (शब्द०)।

जनाबना^१—क्रि० स० [हि० जनाना] सूचित करना। विदित
करना। जताना। जापित करना। उ०—तातें आप प्रागे
कहा जनाबनो? जो कोई न जानतो होइ ताकी जनाइए।
दो—सौ बावन०, भा० १, पु० २३१।

जनाबर^१—संज्ञा पु० [हि० जानवर] दे० 'जानवर'। उ०—घास
में कोई जनावर न रहन पावे।—दो सौ बावन०, भा०
१, पु० २१०।

जनाशन—संज्ञा पु० [सं०] १. भेड़िया। २. मनुष्यभक्षक। वह जो
आदमियों को खाता हो। ३. आदमियों को खाने का काम।

जनाश्रम—संज्ञा पु० [सं०] ठहरने का स्थान। धर्मशाला।
सराय [की०]।

जनाश्रय—संज्ञा पु० [सं०] १. धर्मशाला या सराय आदि जहाँ
यात्री ठहरते हैं। २. वह मकान या मंडप आदि जो किसी
विशेष कार्य या समय के लिये बनाया जाय। ३. साधारण
घर। मकान।

जनि^१—संज्ञा की० [सं०] १. उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश। २. जिससे
कोई उत्पन्न हो। नारी। स्त्री। ३. माता। ४. जनी नामक
गंधद्रव्य। ५. पुत्रबधू। पतोहू। ६. भार्या। पत्नी। ७.
जतुका। ८. जन्मभूमि।

जनि^२—क्रि० वि० [हि० जानना] जनु। मानो। उ०—पीन पयोधर
अपरब सुंदर ऊपर मोतिन हार। जनि कनकाचल उपर
विमल जल दुइ वह सुरसरि धार।—विद्यापति, पु० ३९।

जनि^३—अव्य० [हि०] मत। नहीं। न (निषेधार्थक)।
उ०—जनि लेहु मातु कलंक करना परिहरहु अवसर नहीं।
—मानस, १।६७।

जनि^४—सर्व० [हि०] दे० 'जिस'। उ०—जनि का जन्म होइत हम
गेलहु ऐलहु तनिकर अंते।—विद्यापति, पु० २५२।

जनिक—वि० [सं०] उत्पन्न करनेवाला। जन्म देनेवाला [की०]।

जनिका^१—संज्ञा की० [हि० जनाना] पहेली। मुश्किल। बुझोबस।

जनिका^२—वि० [सं०] दे० 'जनि' [की०]।

जनित—वि० [सं०] १. उत्पन्न । जन्मा हुआ । उपजा हुआ ।
२. उत्पन्न किया हुआ ।

जनिता^१—संज्ञा पुं० [सं० जनिवृ] पैदा करनेवाला । उत्पन्न करने-
वाला । पिता ।

जनिता^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जनिवृ] उत्पन्न करनेवाली । माता ।
प्रसूति । उ०—उद्दित भगवान् सुभ गातनह, जेम जलधि पुनिम
बढ़हि । हुलसंत हीय जे प्रीय त्रिय, जिम सु जोति जनिता
बढ़हि ।—पु० रा०, १ । १८४ ।

जनित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मस्थान । जन्मभूमि । २. मूल ।
आधार (को०) ।

जनित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न करनेवाली । माता । माँ ।

जनित्व—संज्ञा पुं० [सं०] पिता (को०) ।

जनित्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता (को०) ।

जनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जनिमन्] १. उत्पत्ति । जन्म । २.
संतान । सन्तति (को०) ।

जनिनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का बड़ा पेड़ ।

जनियाँ^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० जानि] प्रियतमा । प्राणप्यारी ।
प्रिया । प्रेयसी ।

जनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जन] १. दासी । सेविका । अनुचरी । उ०—
घाइ, जनी, नाइन, नटी प्रगट परोसिनि नारि ।—केशव ग्रं०,
भा० १, पु० ६८ । २. स्त्री । ३. उत्पन्न करनेवाली । माता । ४.
जन्माई हुई । कन्या । लड़की । पुत्री । उ०—प्यारी छवि की
रासि बनी । जाहि विलोकि निमेष न लागत श्री वृषभानु
जनी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पु० ४५ ।

जनी^२—वि० स्त्री० उत्पन्न की हुई । पैदा की हुई । जनमाई हुई ।

जनी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जननी] एक प्रकार की घोषधि जिसे पपंटी
या पानड़ी भी कहते हैं ।

विशेष—यह शीतल, वणुंकारक, कसैली, कड़वी, हलकी, अग्नि-
दीपक, रुचिकारक तथा रक्त, पित्त, कफ, रूधिरविकार, कोढ़,
बाह, वधन, तृषा, विष, जुजली और वणु का नाश करनेवाली
कही गई है ।

जनीयर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

जनु^१—क्रि० वि० [हि० जानना] [अन्य रूप-जनि, जनुक, जनु,
जानो आदि] मानो । उ०—(क) छुटत गिलोला हृथ तै
पारत चोट पयल । कमलनभन जनु कामिनी करत कटाक्ष
खयल ।—पु० रा०, १।७२८ । (ख) कामकंदला भई
वियोगिनि । दुर्बल जनु वस की रोगिनि ।—माधवानल०,
पु० २०३ ।

जनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म । उत्पत्ति ।

जनुक—क्रि० वि० [हि० जनु + क (प्रत्य०)] जैसे । मानो ।

जनु^(२)—संज्ञा पुं० [जुनूत] पागलपन । उन्माद । उ०—इतना एहसा
धीर कर लिखाहूँ ए दस्ते जनु ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २,
पु० २४६ ।

जनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पत्ति । जन्म (को०) ।

जनून—पुं० [सं० जुनून] [वि० जनुनी] पागलपन । सनक । उन्माद ।
खमत् (को०) ।

जनूनी—वि० [सं० जुनूनी] पागल । उन्मादी (को०) ।

जनूब—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जनुबी] दक्षिण । दक्षिण (को०) ।

जनूबी—वि० [सं०] दक्षिण संबंधी । दक्षिणी । दक्षिण का (को०) ।

जनेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० जनेन्द्र] राजा ।

जने—संज्ञा पुं० [सं० जन्] व्यक्ति । धादमी । प्राणी । उ०—हममें
दो जने का साभा तो निभता ही नहीं ।—प्रेमधन०, भा० २,
पु० ८२ ।

यौ०—जने जने । जैसे, नाऊ की बरात में जने जने ठाकुर ।

जनेऊ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञोपवीत, प्रा० जन्मोवईय, अथवा सं० जन्म]
यज्ञोपवीत । ब्रह्मसूत्र । उ०—वामन को जनम जनेऊ मेलि
जानि वृष्णि, जीभ ही बिगारिबे को याच्यो जन जन में ।
—शकरी०, पु० ११५ ।

मुहा०—जनेऊ का हाथ = पटेबाजो या तलवार का एक हाथ
जिसमें प्रतिद्वंद्वी की छाती पर ऐसा आघात लगाया जाता है
जैसे जनेऊ पड़ा रहता है । इसे जनेव या जनेवा का हाथ भी
कहते हैं ।

२ यज्ञोपवीत संस्कार । उ०—छोन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ।
—मानस, १।२०४ ।

जनेत—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + हि० एत (प्रत्य०)] बरयात्रा । बरात ।
उ०—बीच बीच बर बास करि, मग लोगन सुख देत । अथवा
समीप पुनीत दिन, पहुँची आय जनेत ।—तुलसी (शब्द०) ।

जनेता—संज्ञा पुं० [सं० जनयिता या जनिता] पिता । बाप ।—
(हि०) ।

जनेरा—संज्ञा पुं० [हि० जुपार] एक प्रकार का बाजरा जिसके पेड़
बहुत लंबे होते हैं । इसमें बालें भी बहुत लंबी आती हैं ।
जोन्हरी ।

जनेव—संज्ञा पुं० [हि० जनेऊ] २० 'जनेऊ' ।

जनेवा—संज्ञा पुं० [हि० जनेऊ] १. लकड़ी आदि में बनाई या पड़ी
हुई लकीर या घारी । २. एक प्रकार की ऊँची घास जिसे घोड़े
बहुत प्रसन्नता से खाते हैं । ३. बाएँ कंधे से दाहिनी कमर तक
शरीर का वह अंग जिसपर जनेऊ रहता है । ४. तलवार या
खाँड़े का वह वार जो जनेऊ की तरह काट करे । २० मु०
'जनेऊ का हाथ' ।

जनेश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा । नरेश । भूपति ।

जनेष्ट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जनेष्टा] जनप्रिय । लोकप्रिय (को०) ।

जनेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हल्दी । २. चमेली का पेड़ । ३.
पपड़ी । पपंटी । ४. वृद्धि नाम की घोषधि ।

जनेस^(१)—संज्ञा पुं० [सं० जनेश] २० 'जनेश' । उ०—गोतम की
तीय तारी भेटे अथ भूरि भारी, लोचन प्रतिधि भए जनक
जनेस के ।—तुलसी ग्रं०, पु० १६० ।

जनैया—वि० [हि० जानना + ऐया (प्रत्य०)] जाननेवाला ।
जानकार । उ०—(क) बदले को बदली ले जाहु । उनकी एक
हमारी है तुम बड़े जनैया आहु ।—सूर०, १०।४००१ ।

(ख) तृण के सयान धनधाम राज त्याग करि पाल्यो पितु
बचन जो जावत जनैया है ।—पपाकर (शब्द०) (ग) जो
प्रायसु धब होइ स्वायिबी ल्यावहुं बाहि केवाई । योगी बाबा
बड़ो जनैया सबे भुंवर मुखवाई । —रघुराज (शब्द०) ।

जनो^१—संज्ञा पुं० [हि० जनैऊ] दे० 'जनैऊ' ।

जनो^२—क्रि० वि० [हि० जानना] मानो । बोया । उ०—(क)
तैहो जनो पतिदेवत के नुन बोरि सबे गुनगोरि पढ़ाई ।—
मति० प्र०, पृ० २७५ (ख) कुंकुम मंडित प्रिया वदन जनो
रंजित नायक । —बंद० प्र०, पृ० ३६ ।

जनोपयोगी—वि० [सं० जनोपयोगिन्] जनसाधारण के व्यवहार
या उपयोग की ।

जनो^३—क्रि० वि० [हि० जानना] मानो । जनो । उ०—(क)
जब भा पैत उठा बैरामा । बाडर जनो सोह उठि जागा ।—
जायसी (शब्द०) । (ख) नर तो जनो मनुत ही पगे ।—
नंद० प्र०, पृ० २३२ । (ग) उनं तेग कट्टी । जनो बख
टट्टी ।—पृ० २१०, १०१२० ।

जनौघ—संज्ञा पुं० [सं० जन + घोष] भीड़ । जनसमूह [को०] ।

जन्मत—संज्ञा पुं० [प्र०] १. उद्यान । वाटिका । बाग । २. विहिष्ठ ।
स्वर्ग । देवलोक । उत्तम लोक । उ०—हमको मानुम है
जन्मत की हकीकत लेकिन । दिल के खुश रखने को गालिब
ये सयाल भच्छा है । —कविता को०, भा० ४, पृ० ४७४ ।
(ख) जन्मत से कढ़वा दिया गुरु में ही बेचारे घादम को ।
—धूप०, पृ० ७३ ।

जन्मती—वि० [प्र०] १. स्वर्गवासी । स्वर्गीय । २. सवाचारी ।
पुण्यात्मा । स्वर्ग के योग्य [को०] ।

जन्म—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] १. गर्भ में से निकलकर जीवन
धारण करने की क्रिया । उत्पत्ति । पैदाइश ।

यौ०—जन्मांध । जन्माष्टमी । जन्मतिथि । जन्मभूमि । जन्मपत्री
जन्मपत्री । जन्मरोगी । जन्मदिवस = जन्मदिन । जन्म-
कुंडली । जन्ममरण । जन्मदाता । जन्मदात्री । जन्मनाम ।
जन्मलग्न, आदि ।

पदार्थ०—जन् । जन । जनि । उद्भव । जनो । प्रभव । भाव ।
भव । संभव । जन् । प्रजनन । जाति ।

क्रि० प्र०—देना ।—धारना ।—लेना ।

मुहा०—जन्म लेना = उत्पन्न होना । पैदा होना ।

२. अस्तित्व प्राप्त करने का काम । आविर्भाव । जैसे,—इस वर्ष
कई नए पत्रों ने जन्म लिया है । ३. जीवन । अदगा ।

मुहा०—जन्म बिगाड़ना = बेधम होना । बर्ष नष्ट होना । जन्म
बिगाड़ना = (१) असोभन और अनुचित कार्यों में लगे रहना ।
(२) दे० 'जन्म हारना' । जन्म जन्म = सदा । नित्य ।
जन्म जन्मांतर = सदा । प्रत्येक जन्म में । जन्म में बूकना =
दृष्टापूर्वक धिक्कारना । जन्म हारना = (१) व्यर्थ जन्म
खोना । (२) दूसरे का दास होकर रहना ।

४. फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली का वह लग्न जिसमें
कुंडलीवाले जातक का जन्म हुआ हो ।

जन्मपट्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्माष्टमी] दे० 'जन्माष्टमी' ।

जन्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु की उपासना करने से मनुष्य का
मोक्ष हो जाता है और उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता ।
इसी से विष्णु को जन्मकील कहते हैं ।

जन्मकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्मकुण्डली] ज्योतिष के अनुसार
वह चक्र जिससे किसी के जन्म के समय में ग्रहों की स्थिति
का पता चले ।

जन्मकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] पिता । जन्मदाता ।

जन्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि । जन्मस्थान [को०] ।

जन्मगत—वि० [सं० जन्म + गत] जन्म से ही प्राप्त । जन्मना प्राप्त
[को०] ।

जन्मग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति ।

जन्मजात—वि० [सं०] जन्म से ही प्राप्त या उत्पन्न ।

जन्मतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जन्म की तिथि । जन्मदिन ।
२. वंशगाँठ ।

जन्मतुष्टा—वि० [हि० जन्म + तुष्टा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री०
जन्मतुष्टी] थोड़े दिनों का पैदा हुआ । नवोत्पन्न । दुधमुही ।

जन्मद—वि० [सं०] दे० 'जन्मदाता' ।

जन्मदाता—संज्ञा पुं० [सं० जन्मदातृ] [स्त्री० जन्मदात्री] जन्म
देनेवाला । पिता [को०] ।

जन्मदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जननी । माता [को०] ।

जन्मनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म समय का नक्षत्र ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार किसी को अपने जन्मनक्षत्र
में यात्रा न करनी चाहिए और हजामत न बनवानी चाहिए,
उस दिन उसे कुछ बान पुण्य आदि करना चाहिए ।

जन्मना^१—क्रि० सं० [सं० जन्म हि० वा (प्रत्य०)] १. जन्म
लेना । जन्म ग्रहण करना । पैदा होना । २. आविर्भाव होना ।
अस्तित्व में आना ।

जन्मना^२—क्रि० वि० [सं० जन्मन् का करण कारक] जन्म से ।
जन्म द्वारा ।

जन्मनाम—संज्ञा पुं० [सं० जन्मनामा] जन्म के १२ वें दिन रखा
गया नाम [को०] ।

जन्मप—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलित ज्योतिष में जन्मलग्न का
स्वामी । २. फलित ज्योतिष में जन्मराशि का स्वामी ।

जन्मपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंडली में जन्मराशि का मालिक ।
२. जन्मलग्न का स्वामी ।

जन्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मपत्री । २. जन्म का विवरण ।
जीवनचरित् । ३. किसी बीज का आदि से अंत तक
विस्तृत विवरण ।

जन्मपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्मपत्री ।

जन्मपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र या खर्चा जिसमें किसी की
उत्पत्ति के समय के ग्रहों की स्थिति, उनकी दशा, अंतर्दशा,
आदि और फलित ज्योतिष के अनुसार उनके फल आदि
दिए हों ।

जन्मपादप—संज्ञा पुं० [सं०] वंशवृक्ष [को०] ।

जन्मप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता । माँ । २. जन्म होने का स्थान ।

जन्मभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्म समय का लगन । २. जन्म समय का नक्षत्र । ३. जन्म की राशि । ४. जन्मनक्षत्र के सजातीय नक्षत्र प्रादि ।

जन्मभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म की भाषा । मातृभाषा [को०] ।

जन्मभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जिस स्थान पर किसी का जन्म हुआ हो । जन्मस्थान । २. वह देश जहाँ किसी का जन्म हुआ हो ।

जन्मभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] जीव । प्राणी ।

जन्मयोग—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मपत्रिका । जन्मकुंडली [को०] ।

जन्मराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लगन जिसमें किसी के उत्पन्न होने के समय चंद्रमा उदय हो ।

जन्मरोगी—वि० [सं० जन्मरोगिन्] जन्म से रुग्ण । जन्म से ही रोगग्रस्त [को०] ।

जन्मलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जन्मराशि' [को०] ।

जन्मवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० जन्मवर्त्मन्] योनि । भग ।

जन्मविधवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो वचपन में विवाह होने पर विधवा हो गई हो और अपने पति के साथ जिसका संपर्क न हुआ हो । प्रकृतयोनि विधवा ।

जन्मवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं० जन्म + वृत्तांत] दे० 'जन्मपत्र' ।

जन्मशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म से ही प्राप्त ऋणों या कर्तव्यों का परिशोधन [को०] ।

जन्मसिद्ध—वि० [सं० जन्म + सिद्ध] जिसकी प्राप्ति जन्म से ही सिद्ध या मान्य हो । जैसे,—स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । उ०—बन जन्मसिद्ध गायिका तन्वि, मरे स्वर की रागिनी बह्नि ।—अपरा, पृ० १७७ ।

जन्मस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मभूमि । २. माता का गर्भ । ३. कुंडली में वह स्थान जिसमें जन्म समय के ग्रह रहते हैं ।

जन्मांतर—संज्ञा पुं० [सं० जन्मांतर] दूसरा जन्म । अन्य जन्म । उ०—कारण ताको जानिए सुधि प्रगटी है माय । जन्मांतर के सखन की जो मन रही समाय ।—शकुंतला, पृ० ८२ ।

यौ०—जन्मांतरवाद = पुनर्जन्म संबंधी विचारधारा ।

जन्मांश—वि० [सं० जन्मान्श] जन्म का अंश । जन्म से अंश ।

जन्मा^१—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] वह जिसका जन्म हो । जन्मवाना । जैसे,—द्विजन्मा, शूद्रजन्मा ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः समासात् में होता है ।

जन्मा^२—वि० उत्पन्न । जो पैदा हुआ हो ।

जन्माधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम । २. जन्मराशि का स्वामी । ३. जन्मलग्न का स्वामी ।

जन्माना—क्रि० सं० [हि० जन्माना] जन्मने का सकर्मक रूप । उत्पन्न करना । जन्म देना ।

जन्माष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों की कृष्णाष्टमी, जिस दिन माघी रात के समग भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का जन्म हुआ था । इस दिन हिंदू धर्म तथा श्रीकृष्ण के जन्म का उत्सव करते हैं ।

विशेष—विष्णुपुराण में लिखा है कि श्रीकृष्णचंद्र का जन्म श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ था । इसका कारण मुख्य चाद्रमास और गौण चाद्रमास का भेद मालूम होता है, क्योंकि जन्माष्टमी किसी वर्ष सौर श्रावण मास में होती है । और किसी वर्ष सौर माद्रमास में होती है ।

जन्मास्पद—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि । जन्मस्थान ।

जन्मी^१—संज्ञा पुं० [सं० जन्मिन्] प्राणी । जीव ।

जन्मी^२—वि० जो उत्पन्न हुआ हो ।

जन्मेजय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुशवंशी प्रसिद्ध राजा परीक्षित के पुत्र का नाम ।

विशेष—यह बड़ा प्रतापी राजा था । इसने तक्षक नाग से अपने पिता का बदला लिया था और एक प्रश्वमेध यज्ञ भी किया था । वेगपायन ने इसे महाभारत सुनाया था । यह अर्जुन का प्रपितामह और अभिमन्यु का पिता था ।

२. विष्णु । ३. एक प्रसिद्ध नाग का नाम ।

जन्मेश—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मराशि का स्वामी ।

जन्मोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के जन्म के स्मरण का उत्सव तथा नवग्रह, अष्टचिरंजीवी और कुलदेवता प्रादि का पूजन । बरसगाँठ । २. जातक के छठे दिन या बारहवें दिन होनेवाला उत्सव या समारोह ।

जन्म^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जन्मा] १. साधारण मनुष्य । जनसाधारण । २. किंवदंती । अफवाह । ३. राष्ट्र या किसी देश के वासी । ४. सड़क । युद्ध । ५. हाट । बाजार । ६. निंदा । परिवाद । ७. वर । दलदल । ८. वर के संबंधी जन । वर पक्ष के लोग । ९. बराती । १०. जामाता । दामाद । ११. पुत्र । बेटा । उ०—अतुल अंबुजुल सा अमल भला कोन है अन्य । अंबुज जिसका जन्म तू धन्य धन्य ध्रुव धन्य ।—साकेत, पृ० २६३ । १२. पिता । १३. महादेव । १४. बेहू । शरीर । १५. जन्म । १६. जाति । १७. जन्म के समय होनेवाला शकुन या अप-शकुन [को०] ।

जन्म—वि० १. जन संबंधी । २. जो उत्पन्न हुआ हो । उद्भूत । ३. किसी जाति, देश, वंश या राष्ट्र से संबंध रखनेवाला । ४. देशिक । राष्ट्रीय । जातीय । ५. साधारण । सामान्य । गैराल (को०) । ६. (समासात् में) किसी से या किसी के द्वारा उत्पन्न । जैसे, तन्जन्म, दुःखजन्म ।

जन्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म होने का भाव ।

जन्मा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वधू की सहेली । २. वधू । ३. माता की सखी । ४. प्रीति । स्नेह । ५. सुख । आनंद (को०) ।

जन्मु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. ब्रह्मा । विधाता । ३. प्राणी । जीव । ४. जन्म । उत्पत्ति । ५. हरिवंश के अनुसार चौथे मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम ।

जप—संज्ञा पु० [मं०] [वि० जपतव्य, जपनीय, जपो, जप्य] १. किसी मंत्र या वाक्य का बार बार धीरे धीरे पाठ करना । २. पूजा या संध्या आदि में मंत्र का संख्यापूर्वक पाठ करना ।

विशेष—पुराणों में जप तीन प्रकार का माना गया है—मानस, उपांशु और वाचिक । कोई कोई उपांशु और मानस जप के बीच 'जिह्वाजप' नाम का एक चौथा जप भी मानते हैं । ऐसे लोगो का कथन है कि वाचिक जप से दसगुना फल उपांशु में, शतगुना फल जिह्वा जप में और सहस्रगुना फल मानस जप में होता है । मन ही मन मंत्र का अर्थ मनन करके उसे धीरे धीरे इस प्रकार उच्चारण करना कि जिह्वा और घोंठ में गति न हो, मानस जप कहलाता है । जिह्वा और घोंठ को हिलाकर मंत्रों के अर्थ का विचार करते हुए इस प्रकार उच्चारण करना कि कुछ सुनाई पड़े, उपांशु जप कहलाता है । जिह्वाजप भी उपांशु के ही अंतर्गत माना जाता है, भेद केवल इतना ही है कि जिह्वा जप में जिह्वा हिलती है, पर घोंठ में गति नहीं होती और न उच्चारण ही सुनाई पड़ सकता है । वर्यों का स्पष्ट उच्चारण करना वाचिक जप कहलाता है । जप करने में मंत्र को संख्या का ध्यान रखना पड़ता है, इसलिये जप में माला की भी आवश्यकता होती है ।

यौ०—जपमाला । जपयज्ञ । जपस्थान ।

३. जापक । जपनेवाला । जैसे, कर्णजप ।

जपजी—संज्ञा पु० [हि० जप] मिक्खों का एक पवित्र घर्मबंध, जिसका नित्य पाठ करना वे धपना मुख्य धर्म समझते हैं ।

जपतप—संज्ञा पु० [हि० जप+तप] संध्या, पूजा, जप और पाठ आदि । पूजा पाठ । उ०—जपतप कछु न होइ तेहि काला । है विधि मिलइ कवन विधि बाला ।—मानस, १।१३१ ।

जपत०—संज्ञा पु० [म० जप्त] दे० 'जप्त' । उ०—अपत करी बन की लता, जपत करी दुम माज । दुध बसंत को कहत है कहा । जानि ऋषुराज ।—स० सप्तक, पृ० ३८२ ।

जपसन्ध्य—वि० [सं०] दे० 'जपनीय' ।

जपता—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. जप करने का काम । २. जप करने का भाव ।

जपन—संज्ञा पु० [मं०] जपने का काम । जप ।

जपनी—वि० म० [मं० जपन] १. किसी वाक्य या वाक्यांश को बराबर लगातार धीरे धीरे देर तक कहना या बोलना । उ०—राम राम के जपे ते जाय जिष की जरनि ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी मंत्र का संध्या, भक्त या पूजा आदि के समय संख्यानुसार धीरे धीरे बार बार उच्चारण करना । ३. खा जाना । जल्दी निगल जाना (बाजारू) ।

जपनी०—वि० स० [मं० यजन] यजन करना । जज्ञ करना । उ०—चहत महापुनि जाग जपो । जीष निमाधर देन दुसह दुख कस तनु ताप तपो ।—तुलसी (शब्द०) ।

जपनी—संज्ञा स्त्री० [हि० जपनी] १. माला । २. वह धैली जिसमें माला रखकर जप किया जाता है । गोमुखी । गुभी ।

जपनीय—वि० [सं०] जप करने योग्य । जो जपने योग्य हो ।

जपमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह माला जिसे लेकर लोग जप करते हैं ।

विशेष—यह माला संप्रदायानुसार, रुद्राक्ष, कमलाक्ष, पुत्रजीव, स्फटिक, तुलसी आदि के मनकों की होती है । इनमें प्रायः एक सौ धाठ, चौवन या सट्ठाईस धाने होते हैं धीरे बीच में जहाँ गाँठ होती है वहाँ एक सुमेरु होता है । हिंदुओं के अतिरिक्त बौद्ध, मुसलमान और ईसाई आदि भी माला से जप करते हैं ।

जपयज्ञ—संज्ञा पु० [सं०] जपात्मक यज्ञ । जप । इसके तीन भेद वाचिक, उपांशु और मानसिक है ।

विशेष—दे० 'जप-२' ।

जपहोम—संज्ञा पु० [सं०] जप । मंत्र का होमात्मक रूप में जप ।

जपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जपा पुष्प । घड़हुल । उ०—को इनकी छबि कहि सकै, को इनकी छबि लाल । रोचन तँ रोचन कहा, जावक, जपा, गुलाल ।—स० सप्तक, पृ० ३८७ ।

यौ०—जपाकुसुम=घड़हुल का फूल ।—अनेकार्यं, पृ० ४१ ।

जपालक्त, जपालक्तु=जपाकुसुम सा गहरा लाल महावर ।

जपा०—संज्ञा पु० [सं० जप] वह जो जप करता हो । जप करनेवाला व्यक्ति । उ०—मठ मंडप बहुत पास संवारे । तपा जपा सब आसन मारे ।—आयमी प्र०, पृ० १२ ।

जपाना—वि० स० [हि० जप या जपना] जपने का प्रेरणार्थक रूप । जप कराना ।

जपिया०—वि० [हि०] जप करनेवाला ।

जपो—संज्ञा पु० [सं० जपिन् हि० जप+ई (प्रत्य०)] जप करनेवाला । वह जो जप करता हो ।

जप्त—संज्ञा पु० [म० जप्त] दे० 'जप्त' ।

जप्तव्य—वि० [प०] जो जपने योग्य हो । जपनीय ।

जप्ती—संज्ञा स्त्री० [म० जप्ती] दे० 'जप्ती' ।

जप्य—वि० [सं०] जपने योग्य । जपनीय ।

जप्य^२—संज्ञा पु० मंत्र का जप ।

जफर^१—संज्ञा स्त्री० [म० जफर] जय । विजय । सफलता । उ०—दो तीन गरातिब वह लखकर । जंग उससे किए नई पाए जफर ।—दक्खिनी०, पृ० २२१ ।

जफर^२—संज्ञा पु० [म० जफ] एक विद्या जिससे परीक्षे ज्ञान प्राप्त होता है (की०) ।

जफा—संज्ञा स्त्री० [फा० जफा] अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवहार । सखी । उ०—गया बहाना भूल जफा में मुर गँदाया ।—पलटू, पृ० २० ।

यौ०—जफाकार, जफाकेश, जफाशिआर=अत्याचारी । अन्यायी । क्रूर । जालिम ।

जफाकश वि० [फा० जफाकश] १. सहिष्णु । सहनशील । २. मेहनती । परिश्रमी ।

जफाकशी—संज्ञा स्त्री० [फा० जफाकशी] सहिष्णु और परिश्रमी स्वभाव का होना (की०) ।

जफीर—संज्ञा स्त्री० [म० जफोर] दे० 'जफील' ।

जफीरी—संज्ञा स्त्री० [म० जफोर+फा० ई (प्रत्य०)] १. एक प्रकार की कपास जो मिस्र देश में होती है । २. सीटी (की०) ।

जफील—खी० संज्ञा पु० [प्र० जफीर] १. सीटी का शब्द, विशेषतः उस सीटी का शब्द जो कवूतरबाज कवूतर उड़ाने के समय मुँह में दो उँगलियाँ रखकर बजाते हैं। २. वह जिससे सीटी बजाई जाय। सीटी।

क्रि० प्र०—बजाना।—देना।

जफीलना—क्रि० प्र० [हि० जफील] सीटी बजाना। सीटी देना।

जब—क्रि० वि० [सं० यावत्, प्रा० याव, जाव] जिस समय। जिस वक्त। उ०—जबते राम व्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—जब कभी = जब जब। जिस किसी समय। जब कि = जब। जब जब = जब कभी। जिस ज़िम समय। उ०—जब जब होइ घरम की हामी। बाँहें घसुर घसम घभिमानि। तब तब प्रभु धरि मनुज शरीर। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा।—तुलसी (शब्द०)। जब तब = कभी कभी। जैसे,—जब तब बे पहाँ सा जाया करते हैं। जब होता है तब = प्रायः। एकसर। बराबर। जैसे,—जब होता है, तब तुम मार दिया करते हो। जब देखो तब = सदा। सर्वदा। हमेशा। जैसे,—जब देखो तब तुम यहीं खड़े रहते हो।

जबई—क्रि० वि० [हि० जब + ही] जिस किसी समय। उ०—जबई प्राणि परै तहाँ तबई ता सिर देखि।—नंद० प्र०, पृ० १३५।

जबड़ा—संज्ञा पु० [सं० जम्भ] मुँह में दोनों धोर ऊपर और नीचे की वे झुट्टियाँ जिनमें डाले जड़ी रहती हैं। कल्ला।

मुहा०—जबड़ा फाड़ना = मुँह खोलना। मुँह फाड़ना। जबड़े की तान = गवैयों की एक तान जो उत्तम नहीं मानी जाती।

यौ०—जबड़ातोड़ = जबरदस्त। बलवान। मुँह तोड़।

जबदी—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार का धान जो रहेलखंड में पैदा होता है।

जबर—वि० [फा० जबर] १. बलवान। बली। ताकतवर। २. मजबूत। दृढ़। ३. ऊँचा। ऊपरी।

जबर^२—क्रि० वि० ऊपर। उपरि।

जबर^३—संज्ञा पु० उर्दू में ह्रस्व प्रकार का बोधक चिह्न।

जबरई—संज्ञा स्त्री [हि० जबर + ई (प्रत्य०)] अन्याययुक्त मक्ती। अत्याचार। अत्यादती।

जबरजंगी—वि० [हि० जबर + जंग] दे० 'जबरदस्त'।

जबरजद, जबरजद्—संज्ञा पु० [प्र० जबरजद] एक प्रकार का पेशा जो पीलापन लिए हरे रंग का होता है। पुलराज।

जबरजस्ती—वि० [फा० जबरदस्त] दे० 'जबरदस्त'।

जबरजस्ती—संज्ञा स्त्री [फा० जबरदस्ती] दे० 'जबरदस्ती'। उ०—किसी के कहने से नहीं छोड़ सकते, जबरजस्ती जो चाहे निकान दे।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ७६४।

जबरदस्त—वि० [फा० जबरदस्त] [संज्ञा जबरदस्ती] १. बलवान बली। शक्तिवाला। २. दृढ़। मजबूत। पक्का।

जबरदस्ती—संज्ञा स्त्री [फा० जबरदस्ती] अत्याचार। सीनाजोरी। प्रचलता। जियादती। अन्याय।

जबरदस्ती^२—क्रि० वि० बलपूर्वक। दबाव डालकर। इच्छा के विरुद्ध।

जबरन—क्रि० वि० [प्र० जबरन] बनात्। जबरदस्ती। बलपूर्वक। उ०—एक तरह से जबरन ही उसे गाड़ी में बैठा लिया।—भस्मावृत०, पृ० ११।

जबरा^१—वि० [हि० जबर] बलवान। बली। प्रबल। जबरदस्त। जैसे,—जबरा मारे रोने न दे।

जबरा^२—संज्ञा पु० [हि० जबर (= गड़)] चौड़े मुँह का एक प्रकार का कुठला या घनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

जबरा^३—संज्ञा पु० [प्र० जेबरा] छोड़े और गदहे के मध्य का एक बहुत सुंदर जंगली जानवर जो मटमैले सफेद रंग का होता है और जिसके सारे शरीर पर लंबी सुंदर और काली धारियाँ होती हैं।

विशेष—यह कंधे तक प्रायः तीन हाथ ऊँचा और छरहरे, पर मखबून बदन का होता है। इसके कान बड़े, गरदन छोटी और ठुम गुच्छेदार होती है। यह बहुत चौकड़ा, चपल, जंगली और तेज दौड़नेवाला होता है और बड़ी कठिनाता से पकड़ा या पाला जाता है। यह कभी सवारी या लादने का काम नहीं देता। दक्षिण अफ्रीका के जंगलों और पहाड़ों में इसके भुँड के भुँड पाए जाते हैं। जहाँ तक हो सकता है, यह बहुत ही एकांत स्थान में रहता है और मनुष्यों आदि की ग्राह्यता पाकर सुरंत भाग जाता है। इसका शिकार बहुत किया जाता है जिससे इसकी जाति के शीघ्र ही नष्ट हो जाने की आशंका है।

जबराइल—संज्ञा पु० [प्र० जिब्रान] एक फरिश्ता या देवदूत।

जबरूत—संज्ञा पु० [प्र०] प्रतिष्ठा। श्रेष्ठता। बुजुर्गी (की०)।

जबरदस्त—वि० [हि०] दे० 'जबरदस्त'।

जबरदस्ती—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'जबरदस्ती'।

जबल—संज्ञा पु० [प्र०] पर्वत। पहाड़। उ०—उन दुख नीर तड़ाग, रोग बिहंगम रुखडो। बिमन मलीमुख बाग, जरा बरक उतर जबल।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० ४१।

जबह—संज्ञा पु० [प्र० जबह, जिह्व] गला काटकर प्राण लेने की क्रिया। हिमा। उ०—भोले भाले मुसलमानों को बर्गला कर जबह न कीजिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

मुहा०—जबह करना = बहुत कष्ट देना। अत्यंत दुःख देना।

जबहा^१—संज्ञा पु० [हि० जीव] जीवट। माहस। हिम्मत। जैसे,—उसने बड़े जबहे का कान किया।

जबहा^२—संज्ञा पु० [प्र० जबह] १. दमवी नक्षत्र। मथा। २. लसाट। पेशानी। माथा।

यौ०—जबहासाई—माथा रगड़ना या घिसना। दैन्य प्रदर्शन।

जबाँ—संज्ञा स्त्री [फा० जबाँ] दे० 'जबान'। उ०—जबाँ मदके गाली ही भला धाशिक को तुम दे दो।—आरनेदु प्र०, भा० २, पृ० ४२२।

यौ०—जबाँगीर। जबाँजद। जबाँदराज। जबाँदराजी। जबाँदी = भाषाविज्ञ। जबाँदासो। जबाँबंदी।

जबाँगीर—वि० [फा० जबाँगीर] जासूस। गुप्तचर। भेदिया (की०)।

जबाँजद—वि० [फा० जबाँजद] जो सबकी जवान पर हो। जन-प्रसिद्ध। विख्यात (की०)।

जबोदराज—वि० [फा० जबोदराज] दे० 'जबानदराज' ।

जबोदराजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जबोदराजी] दे० 'जबानदराजी' ।

जबोदानी—संज्ञा स्त्री० [फा० जबोदानी] किसी भाषा का पांडित्य या पूर्ण ज्ञान । उ०—सजनऊवासे, जिन्हें अपनी जबोदानी का अभिमान है ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ४०६ ।

जबान—संज्ञा स्त्री० [फा० जबान] [वि० जबानी] । १. जीम । जिह्वा । यौ०—जबानदराज । जबानबंदी ।

मुहा०—जबान कतरनी की तरह चलना = धृष्टतापूर्वक अनुचित अनुचित बातें कहना । उ०—ऐसी ठिठ्ठाई से खुदा समझे कि दोनों की जबान कतरनी की तरह चल रही है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३१६ । जबान को लगाम देना = अपना कथन समाप्त करना । चुप हो जाना । उ०—बस बस जरी जबान को लगाम हो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३ । जबान घाना = किसी छुपे प्रादमी का बढ़कर बातें करना । उत्तर प्रत्युत्तर करना । उ०—शान खुदा, बेजबानों को भी हमारे लिये जबान पाई ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७४ । जबान खींचना = बहुत अनुचित या धृष्टतापूर्ण बातें करने के लिये कठोर दंड देना । जबान खुपना = (१) मुँह से बात निकालना । (२) बच्चों का बोलने लगना । बोलने में समर्थ होना । जबान खुलवाना = टेढ़ी सीधी कुछ कहने को विवश करना । जबान खुश होना = पिपासित होना । प्यास से आकुल होना । जबान खोलना = मुँह से बात निकालना । बोलना । जबान घिस जाना या घिसना = कहते कहते हार जाना । बार बार कहना । जबान चलना = (१) मुँह से जल्दी जल्दी शब्द निकलना । (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना । (३) खाया जाना । मुँह चलाना । जबान चलाना = (१) बोलना, विशेषण । जल्दी जल्दी बोलना । (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना । जबान चनाए की रोटी खाना = खुशामद या चापलूसी द्वारा जीवनयापन करना । जबान चाटना = दे० 'घोंठ चाटना' । जबान टूटना = (वाक्ता का) स्पष्ट उच्चारण प्रारंभ करना । † जबान डालना = (१) माँगना याचना करना । (२) पूछना । प्रश्न करना । जबान तक न हिमना = मौन रह जाना । कुछ न कहना । उ०—इतनी तिरबिने बैठी है किसी की जबान तक नहीं हिजी घोर हम आपन में कदे मरने है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३ । जबान धामना या पकड़ना = बोलने न देना । कहने से रोकना । जबान पर घामा = कहा जाना । मुँह से निकलना । जबान पर पा में ताला लगना = चुप रहने को विवश होना । जबान पर मुहर भजाना = बोलने या कहने पर रुकावट होना । जबान पर रखना = (१) किसी चीज को थोड़ी भाषा में स्थावर उसका स्वाद लेना । चखना । (२) स्मरण रखना । याद रखना । जबान पर लाना = मुँह से कहना । बोलना । उ०—मरहूबा बगैरह जबान पर लाते थे घोर खुद ही भुक भुक कर पलाम करते थे ।—फिसाना०, भा० १, पृ० १ । जबान पलटना = कहकर बदल जाना । वचन भंग करना । जबान पर होना = हर दम याद रहना । स्मरण रहना ।

जबान बंद करना = (१) चुप होना । (२) बोलने से रोकना । (३) विवाद में हारना । जबान बंद होना = (१) मुँह से शब्द न निकलना । (२) विवाद में हार जाना । निग्रह स्थान में घाना । जबान बिगड़ना = (१) मुँह से अपशब्द निकलने का अभ्यास होना । ३. मुँह का स्वाद इस प्रकार खराब होना कि खाने की कोई चीज अच्छी न लगे । (३) जबान चटोरी होना । जबान में काटे पड़ना = (१) जबान फटना । निनाबी होना । (२) किसी बात को रुककर रुक कहना । जबान में कीड़े पड़ना = अनुचित कथन या मिथ्या भाषण पर प्रभुष कामना । जबान में खुजली होना = भगड़े की प्रमत्ताणा होना । जबान में लगाम न होना = अनुचित बातें कहने का अभ्यास होना । सोच समझकर बोलने के प्रयोग्य होना । जबान रोकना = (१) जबान पकड़ना । (२) चुप करना । जबान संभालना मुँह से अनुचित शब्द न निकलने देना । सोच समझकर बोलना । जबान सीना । दे० 'मुँह सीना' । जबान निकालना = उच्चारण होना । बोला जाना । जबान से निकलना = उच्चारण करना । कहना । जबान हिलाना = बोलने का प्रयत्न करना । मुँह से शब्द निकालना । दबी जबान से बोलना या कहना = कमजोर होकर बोलना । अस्पष्ट रूप से बोलना । इस प्रकार से बोलना जिससे सुनने-वालों को उस बात के संबंध में संदेह रह जाय । बदजबानी = अनुचित घोर अशिष्ट बात । बरजबान = जो बहुत अच्छी तरह याद हो । कंठस्थ । उपस्थित । बेजबान = जो अधिक न बोलता हो । बहुत सीधा ।

२. जबान से निकला हुआ शब्द । बात । बोल । जैसे—मरद की एक जबान होती है ।

मुहा०—जबान बदलना = कही हुई बात से फिर जाना । दे० 'जबान पलटना' ।

३. प्रतिज्ञा । वादा । कील । करार ।

मुहा०—जबान देना या हारना = प्रतिज्ञा करना । वचन देना । वादा करना ।

४. भाषा । बोलचाल । जैसे, उर्दू जबान ।

जबानदराज—वि० [फा० जबानदराज] [संज्ञा जबानदराजी]

१. जो बहुत सी न कहने योग्य घोर अनुचित बातें कहे । बहुत धृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करनेवाला । २. बड़ बढ़कर बातें करनेवाला । शिष्टी या डींग हाँकनेवाला ।

जबानदराजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जबानदराजी] बहुत धृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करने की क्रिया या भाव । धृष्टता । ठिठ्ठाई । गुस्ताखी ।

जबानबंद—संज्ञा पुं० [फा० जबानबंद] १. ताबीज या घंन । वह ताबीज जो शत्रु की जबान को रोकने के लिये बिछा जाय ।

२. वह साक्षी या इजहार जो बिछा हुआ हो ।

जबानबंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० जबानबंदी] १. किसी घटना आदि के संबंध में साक्षी स्वरूप वह कथन जो लिख लिया जाय । लिखा जानेवाला इजहार । २. मौन । चुप्पी ।

जबानी—वि० [हि० जबान] जो केवल जबान से कहा जाय, पर कार्य प्रथवा और किसी रूप में परिणत न किया जाय। मौखिक। जैसे, जबानी जमाखर्च, जबानी संदेसा।

जबाब—संज्ञा पु० [प्र० जबाब] दे० 'जवाब'।

यौ०—जबाबदेह = उत्तरदाता। जिम्मेदार। उ०—इस मूलतः कविता आलोचन के साथ मैं आज अपनी रचनाओं के लिये आलोचक के सामने पहले से कहीं अधिक जबाबदेह हूँ।
—बंन०, पृ० २१।

जबारा—संज्ञा पु० [प्र० जबार] दे० 'जवार'। उ०—जबारा में ही हाई स्कूल खुल गया था।—नई०, पृ० ८।

जबाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्यकाम आबाल ऋषि की माता का नाम जो एक शाली थी। इसकी कथा छांदोग्य उपनिषद् में है।

विशेष—दे० 'आबाल'।

जबूर—वि० [प्र० जबूर] बुरा। खराब। अनुचित।

जबून—वि० [तु० जबून] बुरा। खराब। निकम्मा। निकृष्ट।
उ०—करत है राम जबून भला, हम बपुरा कौन सवारे।—
जग० श०, पृ० ११४।

जबूर—संज्ञा पु० [प्र० जबूर] वह पासमानी किताब जो हुजरत दाऊद पर उतरी थी। एक मुसलमानी धर्मग्रंथ। उ०—जैसे तीरीत ऋग्वेद है वैसा ही जबूर सामवेद है।—सबीर मं०, पृ० २८८।

जब्त—संज्ञा पु० [प्र० जब्त] १. अधिकारी या राज्य द्वारा बंद-स्वरूप किसी अपराधी की संपत्ति का हारण। किसी अपराधी को दंड देने के लिये सरकार का उसकी जायदाद छीन लेना। २. अपने अधिकार में भाई हुई किसी दूसरे की चीज को अपना लेना। कोई वस्तु किसी के अधिकार से ले लेना। ३. धैर्य धारण करना। धीरतायुक्त होना। सहना (को०)। ४. प्रबंध। इंतजाम। व्यवस्था (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जब्ती—संज्ञा स्त्री० [प्र० जब्ती] जप्त होने की क्रिया। कुर्की।

मुहा०—जब्ती में आना = जप्त हो जाना।

जम्बरू—वि० [फ्रा० जम्बर] शक्तिशाली। भारी। उ०—आमन लोटहि षोड षोड जम्बर उर लागी। कियो हियो दुःसार पीर प्रावनि मैं पावी।—बच० बं०, पृ० १५।

जम्बार—वि० [प्र०] जबरदस्ती करनेवाला। साकतबर। शक्तिशाली। उ०—छुड़कारा, हुषा धाव बस्ते जम्बार।—
कबीर मं०, पृ० ४७।

जम्भा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जबहा'।

जम—संज्ञा पु० [प्र०] १. कठोर व्यवहार। ज्यादती। सख्ती। २. जाचारी। मजबूरी (को०)।

जमन—क्रि० वि० [प्र० जमन्] बलात्। बलपूर्वक। जबर-दस्ती।

जम्मी—वि० [प्र०] जबरदस्ती, बलपूर्वक या अनिवार्यतः कराया जानेवाला (को०)।

४-५

जम्मीया—क्रि० वि० [प्र० जम्मीयाह] जबरदस्ती से।

जम्मीया^२—संज्ञा पु० वह जो ईश्वरेच्छा या नियति को सर्वोपरि मानता हो (को०)।

जम्मील—संज्ञा पु० [प्र०] दे० 'जिमील'।

जम्ह—संज्ञा पु० [प्र० जम्ह] दे० 'जबह'।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जमन—संज्ञा पु० [सं० यमन] मृत्यु। स्त्री-प्रसंग।

जम^१—संज्ञा पु० [सं० यम] दे० 'यम'। उ०—दरसन ही ते लागे जम मुख मसी है।—मारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १८१।

यौ०—जम मनुष्य = यमुना। जमकातर। जमघंट। जमघर। जमदिसा। जमपुर।

जमई—[फ्रा०] जो जमा हो। नगदी। जमा संबंधी।

विशेष—यह शब्द उस भूमि के लिये आता है जिसका लगान नगद लिया जाता है। जैसे, जमई खेत। प्रथवा इसका व्यवहार उस लगान के लिये होता है जो जिस के रूप में नहीं बरिक्त नगद हो। जैसे, जमई लगान, जमई बंदोबस्त।

जमक^१—संज्ञा पु० [सं० यमक] दे० 'यमक'।

जमक^२—संज्ञा पु० [हि० जमक] दे० 'यमक'।

जमकना—क्रि० प्र० [हि० जमकना] दे० 'यमकना'।

जमकात^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जमकातर'। उ०—बिजुरी चक्र फिरे बहु कैरी। श्री जमकात फिरे जम कैरी।—जायसी (शब्द०)।

जमकातर^१—संज्ञा पु० [सं० यम + हि० कातर] मंवर।

जमकातर^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + कर्तरी] १. यम का छुरा या लाड़ा। २. एक प्रकार की छोटी तलवार।

जमकाना—क्रि० सं० [हि० जमकना] जमकना का सकर्मक रूप। जमकाना।

जमघंट—संज्ञा पु० [सं० यम + घट] दे० 'यमघंट'। उ०—सब कछु जरि गयो होरी में। तब धूरहि धूर बचो री, नाम जमघंट परो री।—मारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १०५।

जमघट—संज्ञा पु० [हि० जमना + घट (= मसूह)] मनुष्यों की भीड़ जिसमें लोग ठमाठस घरे हों और जिसे कोई आदमी सुगमता से पार न कर सके। बहुत से मनुष्यों का भीड़। ठट्ट। जमावड़ा। मजमा। उ०—घोर मर्तकियों का जमघठ जमता था।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३२।

क्रि० प्र०—जमना।—जमना।—लगाना।—होना।

जमघटा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जमघट'।

जमघट्ट—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जमघट'।

जमघर^१—संज्ञा पु० [यम + घर] यमालय। उ०—दुनिया में भरमो मति हीना। जमघर जावने नाम बिहीना।—कबीर सा०, पृ० ८१४।

जमज^१—वि० [सं० यमज] दे० 'यमज'।

जमजम—संज्ञा पु० [प्र० जमजम] मक्का का एक कुर्षा जिसका पानी मुसलमान लोग बहुत पवित्र मानते हैं। उ०—जमजमा

में तेरे मुक्त चाहे जमजम का घसर दिसता ।—कविता को०,
भा० ४, पृ० ६ ।

जमजोहरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो ऋतुपरिवर्तन के समय रंग बदलती है ।

विशेष—यह चिड़िया जाड़े के दिनों में उत्तरपश्चिम भारत में दिखाई पड़ती है और गरमी में फारस और तुर्किस्तान को चली जाती है । यह प्रायः एक बालिष्ठ खंबी होती है और ऋतुपरिवर्तन के समय रंग बदलती रहती है ।

जमडाढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दण्ड, प्रा० दण्ड, दण्ड, हि० डाढ़] कटाई की तरह का एक हथियार जिसकी नोक बहुत पैनी और घागे की ओर झुकी हुई होती है । इसे शत्रु के शरीर में भोंकते हैं । जमधर ।

जमदग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रकार वैदिक ऋषि जिनकी गणना सप्तर्षियों में की जाती है । श्रृगुवंशी ऋषीक ऋषि के पुत्र ।

विशेष—वेदों में जमदग्नि के बहुत से मंत्र मिलते हैं । ऋग्वेद के अनेक मंत्रों से जाना जाता है कि विश्वामित्र के साथ ये भी वणिष्ठ के विषयी थे । ऐतरेय ब्राह्मण हरिश्चंद्रोपाख्यान में लिखा है कि हरिश्चंद्र के नरमेघ यज्ञ में ये ध्वज्यु हुए थे । जमदग्नि का जिक्र महाभारत, हरिवंश और विष्णुपुराण में आया है । इनकी उत्पत्ति के संबंध में लिखा है कि ऋषीक ऋषि ने अपनी स्त्री सत्यवती, जो राजा गांधि की कन्या थी, तथा उनकी माता के लिये भिन्न गुणोंवाले दो चर तैयार किए थे । दोनों चर अपनी स्त्री सत्यवती को देकर उन्होंने बतला दिया था कि ऋतुस्नान के उपरांत यह चर तुम खा लेंगे और दूसरा चर अपनी माता को खिना देना । सत्यवती ने दोनों चर अपनी माता को देकर उनके संबंध में सब बातें बतला दीं । उसकी माता ने यह समझकर कि ऋषीक ने अपनी स्त्री के लिये अधिक उत्तम गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चर तैयार किया होगा, उसका चर स्वयं खा लिया और अपना चर उसे खिला दिया । जब दोनों गर्भवती हुईं, तब ऋषीक ने अपनी स्त्री के अक्षर देखकर समझ लिया कि चर बदल गया है । ऋषीक ने उससे कहा कि मैंने तुम्हारे गर्भ से ब्रह्मविष्ठ पुत्र और तुम्हारी माता के गर्भ से महाबली और आत्र गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चर तैयार किया था; पर तुम लोगों ने चर बदल लिया । इसपर सत्यवती ने दुःखी होकर अपने पति से कोई ऐसा प्रयत्न करने की प्रार्थना की जिसमें उसके गर्भ से उग्र अश्वि न उत्पन्न हो; और यदि उसका उत्पन्न होना अनिवार्य हो तो वह उसकी पुत्रवधू के गर्भ से उत्पन्न हो । तबनुसार सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि और उसकी माता के गर्भ से विश्वामित्र का जन्म हुआ । इसीलिये जमदग्नि में भी बहुत से अश्विचोचित गुण थे । जमदग्नि ने राजा प्रसेनजित् की कन्या रेणुका से विवाह किया था और उसके गर्भ से उन्हें रुमएवान्, सुपेण, बहु, विश्वाबहु और परशुराम नाम के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे । ऋषीक के चर के प्रभाव से उनमें से

परशुराम में सभी क्षत्रियोचित गुण थे । जमदग्नि की मृत्यु के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि एक बार हेह्य के राजा कार्तवीर्य उनके आश्रम से उनकी कामधेनु ले गए थे । इस पर परशुराम ने उनका पीछा करके उनके हजार हाथ काट डाले । जब कार्तवीर्य के पुत्रों को यह बात मालूम हुई, तब लोगों ने जमदग्नि के आश्रम पर जाकर उन्हें मार डाला ।

जमदिसा—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दिशा] दक्षिण दिशा जिसमें यम का निवास माना जाता है । उ०—मेष सिंह धन पूरक बसे । बिरख मकर कन्या जम दिसे ।—जायसी (शब्द०) ।

जमधर—संज्ञा पुं० [हि० जमडाढ़] १. जमडाढ़ नामक हथियार । उ०—गहि हृथ्य एकन को गिराए मारि जमधर कमर में ।—हिम्मत०, पृ० २१ । २. एक प्रकार का बढामी कागज ।

जमधार—संज्ञा स्त्री० [हि० जम + धार] यम की सेना । काल की सेना । उ०—जमधार सरिस निहारि सब नर नारि बलिहहि भाजि कै ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४ ।

जमन—संज्ञा पुं० [सं० जमन] १. भोजन करना । भक्षण । २. भोजन । भोज्य वस्तु [को०] ।

जमन—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना, तुल०, फ्रा० जमन] दे० 'यमुना' । उ०—सुर धान निगमबोधह सुरंग । जल जमन जाइ राविस स्वयं ।—पृ० रा०, १ । १५८ ।

जमन—संज्ञा पुं० [सं० यमन] म्लेच्छ । मुसलमान । यवन । उ०—(क) भ्याध सुरिच्छव भृग चरम, चरन दिए पहिराय । जमन सेन के भेव कहैं, बिधा किए नृपराय ।—प० रासो, पृ० १०४ । (ख) दोऊ नृप मिलि मंत्र करि जमन मिटवहु प्राप्त ।—प० रासो, पृ० १०४ ।

जमन—संज्ञा पुं० [सं० जमन] जमाना । काल । जगत् । संसार [को०] ।

जमना—क्रि० प्र० [सं० यमन (= जकड़ना), मि० प्र० जमा] १. किसी द्रव पदार्थ का ठढक के कारण समय पाकर घबघा और किसी प्रकार गाढ़ा होना । किसी तरल पदार्थ का ठोस हो जाना । जैसे, पानी से बरफ जमना, दूध से दही जमना । २. किसी एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ पर दृढ़तापूर्वक बैठना । अच्छी तरह स्थित होना । जैसे, जमीन पर पैर जमना, चौकी पर घासन जमना, बरतन पर मेल जमना, सिर पर पगड़ी या टोपी जमना ।

मुद्रा—दृष्टि जमना = दृष्टि का स्थिर होकर किसी ओर लगना । नजर का बहुत देर तक किसी चीज पर ठहरना । निगाह जमना = दे० 'दृष्टि जमना' । मन में बात जमना = किसी बात का हृदय पर भली भाँति अंकित होना । किसी बात का मन पर पूरा पूरा प्रभाव पड़ना । रंग जमना = प्रभाव दृढ़ होना । पूरा अधिकार होना ।

३. एकत्र होना । इकट्ठा होना । जमा होना । जैसे, बीड़ जमना, तलछठ जमना । ४. अच्छा प्रहार होना । खूब चोट पड़ना । जैसे, लाठी जमना, चप्पड़ जमना । ५. हाथ से होनेवाले काम का पूरा पूरा अभ्यास होना । जैसे,—लिखने में हाथ जमना । ६. बहुत से आदमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक होना । बहुत से

आदमियों के सामने किसी काम का इतनी उत्तमता से होना कि सबपर उसका प्रभाव पड़े। जैसे, व्याख्यान जमना, गाना जमना, खेल जमना। ७. सर्वसाधारण से संबंध रखने-वाले किसी काम का अच्छी तरह चलने योग्य हो जाना। जैसे, पाठशाला जमना, हूकान जमना। ८. धोड़े का बहुत ठुमक ठुमककर चलना। उ०—जमत उठत ऐइत उधरत पेजनी बजावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११।

जमना^१—क्रि० घ० [सं० जन्म, प्रा० जन्म > जम + हि० ना (प्रत्य०)] उगना। उपजना। उत्पन्न होना। फूटना। जैसे, पोषा जमना, बाल जमना।

जमना^३—संज्ञा पुं० [हि० जमना (= उत्पन्न होना)] वह धाम जो पहली वर्षा के उपरांत खेतों में उगती है।

जमना^४—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] दे० 'यमुना'।

जमनिका^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वनिका] १. ज्वनिका। परबा। २. काई। उ०—हृदय जमनिका बहुविधि लागी।—गुलसी (शब्द०)।

जमनोत्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना + अत्रतार] गढ़वाल के निकट हिमालय की वह चोटी जहाँ से यमुना निकलती है।

जमनौता—संज्ञा पुं० [सं० जमानत + हि० औता (प्रत्य०)] वह रकम जो कोई मनुष्य अपनी जमानत करने के बदले में जमानत करनेवाले को दे।

विशेष—मराठमानी राज्यकाल में इस प्रकार की रकम देने की प्रथा प्रचलित थी। यह रकम प्रायः ५ रुपए प्रति सैकड़े के हिसाब से दी जाती थी।

जमनौती—संज्ञा स्त्री० [हि० जमनौता] दे० 'जमनौता'।

जमपुर^(५)—संज्ञा पुं० [सं० यमपुर] दे० 'यमपुर'। उ०—स्वामी को संकट परे, जो तजि भाजै कूर। लोक अत्रस, परलोक में जमपुर जात जरूर।—हमीर०, पृ० ४७।

जमरस्सी—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + हि० रस्सी] चोरी नाम का वृक्ष जिसकी जड़ सोंप के काटने की बहुत अच्छी औषधि समझी जाती है।

जमरा^(५)—संज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—विष्णु ते अधिक और कोठ नाही। जमरा विष्णु की चेरा भाहीं।—कबीर सा०, पृ० २६५।

जमराई—संज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—जा कोई सत पुष गहे भाई। ता कहँ देख डरे जमराई।—कबीर सा०, पृ० ८१५।

जमराण^(५)—संज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—जमराणा सही करी वानेइ लेज्यों जेल।—ढोला०, पृ० ६१०।

जमरुद्—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा लंबोतरा फल।

जमल^(५)—वि० [सं० यमल, प्रा० जमल] दे० 'यमल'। उ०—जमल कमल कर पद बदन जमल कमल से नैन।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ७४८।

जौं—जमलतर=दे० 'यमलाजुन'। उ०—मुनि सराप तै भए जमलतर तिन्ह हित आपु बँधाए हो।—सुर०, १।७।

जमवट—संज्ञा स्त्री० [हि० जमना] पहिए के आकार का लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुम्भी बनाने में भगाड़ में रखा जाता है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ाई होती है।

जमवार^(५)—संज्ञा पुं० [सं० यमवार] यम का द्वार। उ०—(क) सिंहल द्वीप भए धोतारू। जंबूद्वीप जाइ जमवारू।—जायसी (शब्द०)। (ख) उ०—भरि जमवार चहै अहँ रहा। जाइ न मेठा ताकर कहा।—पदमावत, पृ० २६२।

जमशेद—संज्ञा पुं० [फा०] ईरान का एक प्राचीन शासक।

विशेष—कहा जाता है, इनके पास एक ऐसा प्याला था जिससे उसे संसार भर का हाल ज्ञात होता था।

जमहूर—संज्ञा पुं० [सं० जुमहूर] जनता। सर्वसाधारण [को०]।

जमहूरियत—संज्ञा स्त्री० [सं० जुमहूरियत] जनतंत्र। प्रजातंत्र [को०]।

जमहूरी—वि० [सं० जुमहूरी] सार्वजनिक [को०]।

जमों—संज्ञा पुं० [सं० जमा] जमाना। काल। समय। संसार। दुनिया [को०]।

जमा^१—वि० [सं०] १. जो एक स्थान पर संग्रह किया गया हो। एकत्र। इकट्ठा।

मुहा०—कुल जमा या जमा कुल=सब मिलाकर। कुल। सब। जैसे,—वह कुल जमा पाँच रुपए लेकर चले थे।

२. जो जमानत के तौर पर या किसी खाते में रखा गया हो। जैसे,—(क) उनका सौ रुपया बैंक में जमा है। (ख) तुम्हारे चार पान हमारे यहाँ जमा हैं।

जमा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धूल धन। पूँजी। २. पन। रुपया पैसा। जैसे,—उसके पास बहुत सी जमा है।

यौ०—जमाजया। जमापूँजी।

मुहा०—जमा मारना=अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। बेइमानी से किसी का माल हजम करना। जमा हजम करना=दे० 'जमा मारना'। उ०—चूरन सभी महाजा खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६९२।

३. भूमिकर। मालगुजारी। लगान।

यौ०—जमाबंदी।

४. संकलन। जोड़ (गणित)। ५. बड़ी आदि का वह भाग या कोष्ठक जिसमें आए हुए धन या माल आदि का विवरण दिया जाता है।

यौ०—जमाखर्च।

जमाअत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'जमात'—१। उ०—यह खबर हमको झूझगू की नागा जमाअत के बयोवृद्ध भडारी बान-मृकुड़ जी से मिली।—मुंदर प्र० (भू०), भा० १, पृ० ४।

जमाअती—वि० [सं०] जमात संबंधी। सामुदायिक [को०]।

जमाई^१—संज्ञा पुं० [सं० जामात] दामाद। जवाई। जामाता।

जमाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जमना] १. जमने की क्रिया। २. जमने का भाव।

जमाई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० जमाना] १. जमाने की क्रिया। जमाने का भाव। २. जमाने की मजदूरी।

जमाखर्च—संज्ञा पुं० [प्र० जम + खर्च] धाय और व्यय ।

जमाजथा—संज्ञा स्त्री० [हि० जमा + गथ (= पूँजी)] धनसंपत्ति ।
नगदी और माल । जमापूँजी ।

जमात—संज्ञा स्त्री० [प्र० जमाघत] १. बहुत से मनुष्यों का समूह ।
प्रादमियों का गिरोह या जत्था । जैसे, साधुओं की जमात ।
उ०—लालों की नहिं बोरियाँ साधु न चले जमात । संत-
वाणी०, पृ० २८ । २. कक्षा । श्रेणी । दरजा । जैसे,—वह
लड़का पाँचवीं जमात में पढ़ता है । ३. पंक्ति । कतार ।
लाइन । जैसे, सिपाहियों की जमात ।

यौ०—जमातबंदी = गिरोहबंदी । बलबंदी । उ०—जिसके कारण
समाज की जमातबंदी भी बदलती गई । —भा० ६० ६०,
पृ० ४२२ ।

जमादार—संज्ञा पुं० [फा० या प्र० जमाघत + दार] [संज्ञा जमादारी]
१. कई सिपाहियों या पहरेदारों आदि का प्रधान । वह जिसकी
अधीनता में कुछ सिपाही, पहरेदार या कुली आदि हों । २.
पुलिस का वह बड़ा सिपाही जिसकी अधीनता में कई और
साधारण सिपाही होते हैं । हेड कांस्टेबल । ३. कोई सिपाही
या पहरेदार । ४. नगरपालिका का वह कर्मचारी जो भंगियों
के काम का निरीक्षण करता है ।

जमादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० जमादार + ई (प्रत्य०)] १. जमादार
का पद । २. जमादार का काम ।

जमानत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जमानत] वह जिम्मेदारी जो कोई मनुष्य
किसी अपराधी के ठीक समय पर न्यायालय में उपस्थित होने,
किसी कर्जदार के कर्ज अदा करने अथवा इसी प्रकार के किसी
और काम के लिये अपने ऊपर ले, वह जिम्मेदारी जो जबानी
या कोई कागज लिखकर अथवा कुछ रुपया जमा करके ली
जाती है । प्रतिभूति । जामिनी । जैसे,—(क) वे सो रुपये
की जमानत पर छूटे हैं । (ख) उन्होंने हमारी जमानत पर
उनका सब माल छोड़ दिया है ।

क्रि० प्र०—करना ।—बेना ।—होना ।

यौ०—जमानतदार = प्रतिभू । जामिनी । जिम्मेदार । जमा-
नतनामा ।

जमानतनामा—संज्ञा पुं० [प्र० जमानत + फा० नामह्] वह कागज
जो जमानत करनेवाला जमानत के प्रमाणस्वरूप लिख
देता है ।

जमानती—संज्ञा पुं० [प्र० जमानत + फा० ई (प्रत्य०)] जमानत करने-
वाला । वह जो जमानत करे । जामिन । जिम्मेदार (स्व०) ।

जमानतीस—संज्ञा पुं० [प्र० जम + फा० तीस] कचहरी का
एक अधिकार ।

जमाना^१—क्रि० स० [हि० 'जमाना' का स० रूप] १. किसी द्रव
पदार्थ को ठंडा करके अथवा किसी और प्रकार से गाढ़ा
करना । किसी तरल पदार्थ को ठोस बनाना । जैसे, चाशनी
से बरफो जमाना । २. किसी एक पदार्थ को दूसरे पर टढ़ा-
पूर्वक बैठाना । अच्छी तरह स्थित करना । जैसे, जमीन पर
पैर जमाना ।

मुहा०—घोंट जमाना = घंष्टि को स्थिर करके किसी और

लगाना । (मन में) बात जमाना = हृदय पर बात को
असी भाँति संकित करा देना । रंग जमाना = अधिकार बढ़
करना । पूरा पूरा प्रभाव डालना ।

३. प्रहार करना । चोट लगाना । जैसे, हथौड़ा जमाना, थप्पड़
जमाना । ४. हाथ से होनेवाले काम का अभ्यास करना ।
जैसे,—घड़ी तो वे हाथ जमा रहे हैं । ५. बहुत से प्रादमियों
के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमसाधुपूर्वक
करना । जैसे,—व्याख्यान जमाना । ६. सर्वसाधारण से
संबंध रखनेवाले किसी काम को उत्तमसाधुपूर्वक चलाने योग्य
बनाना । जैसे, कारखाना जमाना, स्कूल जमाना । ७. घोंड़े
को इस प्रकार चलाना जिससे वह ठुमुक ठुमुककर पैर रखे ।
८. उदरस्थ करना । खा जाना । जैसे, भंग का गोला
जमाना । ९. मुँह में रखना । मुखस्थ करना । जैसे, पान
का बीड़ा जमाना ।

जमाना^२—क्रि० स० [हि० जमाना (= उत्पन्न होना)] उत्पन्न
करना । उपजाना । जैसे, पौधा जमाना ।

जमाना^३—संज्ञा पुं० [फा० जमानह्] १. समय । काल । वक्त । २.
बहुत अधिक समय । मुद्दत । जैसे,—उन्हें यहाँ प्राए जमाना
हुआ । ३. प्रताप या सीमाग्य का समय । एकबाल के दिन ।
जैसे,—भाजकल आपका जमाना है । ४. दुनिया । संसार ।
जगत् । जैसे,—सारा जमाना उसे गाली देता है । ५. राज्य-
काल । राज्य करने की अवधि (की०) । ६. किसी पद पर
या स्थान पर काम करने का समय । कार्यकाल (की०) ।
७. निर्लब्ध । बेर । अतिकाल (की०) ।

मुहा०—जमाना उलटना = समय का एकबारगी बदल जाना ।
जमाना छानना = बहुत खोजना । जमाना देखना = बहुत
अनुभव प्राप्त करना । तजरबा हासिल करना । जैसे—आप
बुजुर्ग हैं, जमाना देखे हुए हैं । जमाना पलटना या बहलना =
परिवर्तन होना । अन्धे या बुरे दिन आना ।

यौ०—जमानासाज । जमानासाजी । जमाने की गति = समय
का फेर ।

जमानासाज—वि० [फा० जमानह् + साज] १. जो अपने स्वार्थ
के लिये समय समय पर अपना व्यवहार बदलता रहता है ।
अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखनेवाला ।
२. मुतफन्नी । धूर्त । छली (की०) ।

जमानासाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जमानह् + साजी] अपना मतलब
साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखना । अपने स्वार्थ के लिये
समयानुसार अनुचित रूप से अपना व्यवहार बदलना ।

जमापूँजी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जमाजथा' ।

जमाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पटवारी का एक कागज जिसमें
असामियों के नाम और उनसे मिलनेवाले लगान की रकमें
लिखी जाती हैं ।

जमामरद^(१)—संज्ञा पुं० [फा० जमा'मरद] दे० 'जमा'मरद' । उ०—आए
हैं जमामरद ग्यान कर करव ले, दरद न जान्ही सब जिन
दिन पार रे । —बज० ६०, पृ० १३३ ।

जमामार—वि० [हि० जमा + मारना] अनुचित रूप से दूसरों का धन दबा रखने या ले लेनेवाला ।

जमाल—संज्ञा पु० [प्र०] सौंदर्य । शोभा । छवि । रूप । उ०—
कनक विदु सुरकी रुकुम, चबन मिश्रत जमाल । बंदन तिलक
दिए भई, तिलक चौगुनी भाल ।—स० सप्तक, पु० २३३ ।

जमालगोटा—संज्ञा पु० [सं० जयमाल (= जमाल) + गोटा] एक पोषे का बीज जो अत्यंत रेशक है । जयपाल । दंतौफल ।

विशेष—यह पोषा करोटन की जाति का है और समुद्र से ३००० फुट की ऊँचाई तक परसी भूमि में होता है । यह पोषा दूसरे वर्ष फलने लगता है । इसका फल छोटी इलायची के बराबर होता है जिसके भीतर मफेव गरी होती है । गरी में तेल का ग्रंथ बहुत अधिक होता है और उसे खाने से बहुत दस्त पड़ेता है । गरी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो बहुत तीक्ष्ण होता है और जिसके लगाने से बदन पर फफोला पड़ जाता है । तेल गाढा और साफ होता है और पोषक के काम में आता है । इसकी खली चाहु के खेत की मिट्टी में मिलाने से पौधों में दीमक और दूसरे कीड़े नहीं लगते । इसके पेड़ कहुवे के पेड़ के पास छाया के लिये भी लगाए जाते हैं ।

जमाली—वि० [प्र०] सुंदर रूपवाला । स्वरूपवान् । सौंदर्य-युक्त [को०] ।

जमाव—संज्ञा पु० [हि० जमाना] १. जमाने का भाव । २. जमाने का भाव । ३. भीड़ भाड़ । जमावड़ा ।

जमावट—संज्ञा स्त्री० [हि० जमाना] जमाने का भाव । ३० 'जमाव'

जमावड़ा—संज्ञा पु० [हि० जमाना (= एकत्र होना)] बहुत से लोगों का समूह । भीड़ । उ०—इन लोगों का भारी जमावड़ा वहीं हुआ करता है ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ७३० ।

जमी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जमी] दे० 'जमीन' । उ०—गिरकर न उठे काफ़िरे बरकार जमीं से, ऐसे हुए गारत ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५३० ।

जमीकंद—संज्ञा पु० [फ्रा० जमीन + कंद] सूरन । घोल ।

जमींदार—संज्ञा पु० [फ्रा० जमीनदार] जमीन का मालिक । भूमि का स्वामी ।

विशेष—मुसलमानों के राजत्वकाल में जो मनुष्य किसी छोटे प्रांत, जिले या कुछ गावों का भूमिकर लगाने और सरकारी खजाने में जमा करने के लिये नियुक्त होता था, वह जमींदार कहलाता था और उसे उगाहे हुए कर का दसवां भाग पुरस्कार स्वरूप दिया जाता था । पर, जब अंत में मुसलमान शासक कमजोर हो गए तब वे जमींदार अपने अपने प्रांतों के स्वतंत्र रूप से प्रायः मालिक बन गए । अंगरेजी राज्य में जमींदार लोग अपनी अपनी भूमि के पूरे पूरे मालिक समझे जाते थे और जमींदारी पैतृक होती थी । ये सरकार को कुछ निश्चित वार्षिक कर देते थे और अपनी जमींदारी का अंपत्ति की भाँति जिस प्रकार चाहें, उपयोग कर सकते थे । काश्तकारों आदि को कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार वे अपनी जमीन स्वयं ही जोतने बोनने आदि के लिये देते थे और उनसे लगान आदि

लेते थे । भारत के स्वतंत्र हो जाने पर लोकतांत्रिक सरकार ने जमींदारी प्रथा का वैधानिक उन्मूलन कर दिया है ।

जमींदारा—संज्ञा पु० [फ्रा० जमींदारी] दे० 'जमींदारी' ।

जमींदारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जमीन्दारी] जमींदार की वह जमीन जिसका वह मालिक हो । २. जमींदार होने की दशा या अवस्था । ३. जमींदार का हक या स्वत्व ।

जमींदोज—वि० [फ्रा० जमींदोज] १. जो गिरा, तोड़ा या उखाड़कर जमीन के बराबर कर दिया गया हो । २. दे० 'जमीनदोज' ।

जमी—वि० [सं० यमिन्] इंद्रियनिग्रही । उ०—देखि लोग सकुचात जमी से ।—मानस, २।२१४ ।

जमीन—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जमीन] १. पृथ्वी (ग्रह) । जैसे,—जमीन बराबर सूरज के चारों तरफ घूमती है । २. पृथ्वी का वह ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टी का है और जिसपर हम लोग रहते हैं । भूमि । धरती ।

मुहा०—जमीन आसमान एक करना = किसी काम के लिये बहुत अधिक परिश्रम या उद्योग करना । बहुत बड़े बड़े उपाय करना । जमीन आसमान का फरक = बहुत अधिक अंतर । बहुत बड़ा फरक । आकाश पाताल का अंतर । उ०—मुकाबिला करते हैं तो जमीन आसमान का फर्क पाने हैं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४३६ । जमीन आसमान के कुलावे मिलाना = बहुत रींग हाँकना । बहुत शेली मारना । उ०—चाहे इधर की दुनियाँ उधर हो जाय, जमीन आसमान के कुलावे मिल, जाय, तूफान घाए, भूचाल घाए, मगर हम जरूर घाएँगे ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५१ । जमीन का पैरों तले से निकल जाना = सन्नाटे में आ जाना । होश हवास जाता रहना । जमीन घूमने लगना = इस प्रकार गिर पड़ना कि जिसमें जमीन के साथ मुहँ लग जाय । जैसे,—जरा से धक्के से वह जमीन घूमने लगा । जमीन दिखाना = (१) गिराना । पटकना । जैसे, एक पहलवान का दूसरे पहलवान को जमीन दिखाना । (२) नीचा दिखाना । जमीन देखना = (१) गिर पड़ना । पटका जाना । (२) नीचा देखना । जमीन पकड़ना = जमकर बैठना । जमीन पर पड़ना = (१) घोंके का तेज बौड़ने का अभ्यास होना । (२) किसी कार्य का अभ्यस्त होना । जमीन पर पैर या कदम न रखना = बहुत इतराना । बहुत अभिमान करना । उ०—ठाकुर साहब ने बारह चौदह हजार वषा नकद पाया तो जमीन पर कदम न रखा ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६६ । जमीन पर पैर न पड़ना = बहुत अभिमान होना । जमीन में गड़ जाना = अत्यंत लज्जित होना ।

३. सतह, विशेषकर कपड़े, कागज या तख्ते आदि की वह सतह जिसपर किसी तरह के बेल बूटे आदि बने हों । जैसे,—काली जमीन पर हुरी बूटी की कोई छोट मिले तो लेते आना । ४. वह सामग्री जिसका व्यवहार किसी द्रव्य के प्रस्तुत करने में आधार रूप से किया जाय । जैसे, घातर लीचने में बंधन की जमीन, फुल्ले में मिट्टी के तेल की जमीन । ५. किसी कार्य के लिये पहले से निश्चय की हुई प्रणाली । पेशबंदी । भूमिका । आबोजम ।

मुहा०—जमीन बदलना = आधार का परिवर्तन होना । स्थिति का बदल जाना । जैसे,—घर जमीन ही बदल गई।—
प्रेमधन०, भा० २, पृ० १४० । जमीन बाधना = किसी कार्य के लिये पहले से प्रणाली निश्चित करना ।

जमीनदोज—वि० [फ्रा० जमीनदोज] १. धरती के नीचे या भीतर । भूगर्भिक । उ०—घोर तब जमीनदोज किले बनने लगे ।—भा० ६०, पृ० १४१ । २. दे० 'जमीनदोज' ।

जमीनी—वि० [फ्रा० जमीनी] जमीन संबंधी । जमीन का ।

जमीना—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमीनह] १. क्रोड़पत्र । अतिरिक्त पत्र । २. पूरक । परिशिष्ट [को०] ।

जमीयत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जमीयत] गोष्ठी । दल । परिषद् । जमायत । समुदाय । उ०—प्रत्येक सरदार के अपनी जमीयत के साथ प्रतिवर्ष तीन महीने तक दरबार की सेवा में उपस्थित रहने की जो रीति चली आ रही है वह जारी रखी जायगी ।—राज० इति०, पृ० १०४६ ।

जमीर—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमीर] १. अंतःकरण । हृदय । मन । २. विवेक । ३. (व्या०) सर्वनाम [को०] ।

यौ०—जमीरफरोश = धातमविक्रेता । धनसंवादी ।

जमील—वि० [फ्रा०] [वि० स्त्री० जमीला] रूपवान । सुंदर । हसीन [को०] ।

जमुआ^१—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूक] दे० 'जामुन' ।

जमुआ^२—संज्ञा पुं० [सं० यम, हि० जम+उष्मा (प्रत्य०), अथवा हि० जमना (= पैदा होना)] एक प्रकार का घातक बालरोग ।

जमुआरा^३—संज्ञा पुं० [हि० जमुआ+आर (प्रत्य०)] जामुन का जंगल ।

जमुकना^४—क्रि० प्र० [?] पास पास होना । सटना । उ०—जब जमुक्यो कसु पृथु तनय, तब तरंग तर्ह छोड़ि । अयो पुरंदर अलख उर, सख्यो न सम्मुख दीड़ि ।—रघुराज (शब्द०) ।

जमुन^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जमुना] दे० 'यमुना' । उ०—(क) उत्तरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्थाम ।—मानस, २। १०१ (ख) मनु ससि अरि अनुराग जमुन जल लोटत बोलै ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४५५ ।

जमुना—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना, प्रा० जमुणा, जर्जुणा] यमुना नदी । वि० दे० 'यमुना' ।

जमुनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यमनिका] दे० 'यमनिका' । उ०—जाग्रत स्वप्न सु जमुनिका सुषुप्ति भई भिंटार सुंदर । बाजीगर जुदी खेल दिखावन हार ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७८५ ।

जमुनियाँ^६—संज्ञा पुं० [हि० जामुन+ईया (प्रत्य०)] १. जामुन का रंग । जामुनी । २. जामुन का पुष्प । ३. यम का यम । यमपाण (लाज०) । उ०—जमुनियाँ की डार मोरी तोड़ देव हो ।—धरम० श०, पृ० २६ ।

जमुनियाँ^७—वि० जामुन के रंग का । जामुनी रंग का ।

जमुरका^८—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंबूर] कुलाबा ।

जमुरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जंबूर] १. चिमटी के आकार का नाल-

बंदों का एक औजार जिससे वे बोड़ों के नाल काटते हैं । २. चिमटी । सड़मी ।

जमुर्दी—वि० [फ्रा० जमुर्दीन, हि० जमुर्दी] १. दे० 'जमुर्दी' ।

उ०—जमुर्दी जरी के काम—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २६ ।

जमुर्द—संज्ञा पुं० [फ्रा०] [फ्रा०] पन्ना नामक रत्न ।

जमुर्दी^१—वि० [फ्रा० जमुर्दीन] जमुर्द के रंग का हरा । जो मोर की गर्दन की तरह नीलापन लिए हुए हरे रंग का हो ।

जमुर्दी^२—संज्ञा पुं० जमुर्द का रंग । नीलापन लिए हुए हरा रंग ।

जमुर्दी^३—संज्ञा पुं० [हि० जमुर्दी] जामुनी । जामुन का रंग ।

जमुहाना—क्रि० प्र० [सं० जम्भण] दे० 'जम्हाना' ।

जमूरक^४—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंबूरक] एक प्रकार की छोटी तोप जो घोड़े या ऊँट पर रहती है । उ०—सबके आगे सुतर सवार अपार सिंगार बनाए । धरे जमूरक तिम पीठन पर सहित निजान सुहाये ।—रघुराज (शब्द०) ।

जमूरा^५—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंबूरक, हि० जमूरक] दे० 'जमूरक' ।

जमूरा^६—संज्ञा पुं० [फ्रा० जह्, + फ्रा० मुहह] दे० 'जहूर-मोहरा' । उ०—जुगति जमूरा पाइ कै, सर पे लपटाना । बिष बा के बेचे नही, गुरु गम्भ समाना ।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० १४ ।

जमेयत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जमीयत] १. दल । समुदाय । २. सभा । गोष्ठी । परिषद् [को०] ।

यौ०—जमेयतुल उलेमा = विद्वानों की सभा या गोष्ठी ।

जमोगा^७—संज्ञा पुं० [हि० जमोगना] १. जमोगने अर्थात् स्वीकार कराने की क्रिया । सरेख । २. किसी दूसरे की बात का किसी तीसरे के द्वारा समर्थन । सामने का निश्चय । तसदीक । ३. देहाती लेनदेन की एक रीति जिसके अनुसार कोई जमींदार किसी महाजन से ऋण लेने के समय उसके चुकाने का भार उस महाजन के सामने अपने काश्तकारों पर छोड़ देता है और काश्तकारों से लगान के बदले उसका स्वीकार करा देता है ।

यौ०—सही जमोग ।

जमोगदार—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमा + सं० योग] वह व्यक्ति जो जमोग की रीति से जमींदार को रुपया देता है ।

जमोगना^८—क्रि० प्र० [फ्रा० जमा + सं० योग] १. हिसाब किताब की जाँच करना । २. व्याज को मूल धन में जोड़ना । ३. स्वयं किसी उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिये किसी दूसरे को उसका भार सौंपना और उससे उस उत्तरदायित्व को स्वीकृत कराना । सरेखना । ४. किसी को किसी दूसरे के पास ले जाकर उससे अपनी बात का समर्थन कराना । तसदीक कराना ।

जमोगाना^९—क्रि० प्र० [हि० जमोगना] जमोगने का काम किसी दूसरे से कराना । सरेखवाना ।

जमोगा^{१०}—संज्ञा पुं० [हि० जमोगना] दे० 'जमोगा' ।

यौ०—सही जमोगा ।

जमोआ—वि० [हि० जमाना] जमाया हुआ । जमाकर बनाया हुआ ।

जन्म^१—संज्ञा पुं० [सं० यम] दे० 'यम' ।

यौ०—जन्मराजा=यमराज । उ०—मनो जीव पापीन को जन्मराजा दियो दंड सोई सबे धूम धोई ।—हम्मीर०, पृ० ५

जन्म^२—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, प्रा० जन्म] जन्म । उत्पत्ति ।

जन्मण^३—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्, प्रा० जन्मण] उत्पत्ति । जन्म । पैदाइश । उ०—तन माहि मनुष्या जो ठहिरावै । जन्मण मरण भिस्त अरु दोजल ताके निकट न आवै ।—प्राण०, पृ० ६० ।

जन्मना^४—क्रि० प्र० [हि०] उत्पन्न होना । पैदा होना । जन्मे मरे न बिनसै सोइ ।—प्राण०, पृ० २ ।

जन्मभूमि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्म, प्रा० जन्म + सं० भूमि] दे० 'जन्मभूमि' । उ०—पल्लविष जन्मभूमि को मोह छोड़िय, अनि छोड़िय ।—कीर्ति०, पृ० २२ ।

जम्मु—संज्ञा पुं० [सं० जम्मु] काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर । जंबू ।

जम्हाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जैभाई' ।

जम्हाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जैमाना' । उ०—बार बार कवि आव जम्हान, लगत, नीकै ताकी चोपनि धुकन न पाए हो । बलानं०, पृ० ४८८ ।

जम्हूर—संज्ञा पुं० [प्र०] जनता । जनसमुदाय । उ०—कर उसकी बुजुर्गी लड़े जम्हूर के आगे ।—कबीर मं०, पृ० ४६६ ।

जयंत^१—वि० [सं० जयन्त] [वि० स्त्री० जयंती] १. विजयी । २. बहुकपिया । अनेक रूप धारण करनेवाला ।

जयंत^२—संज्ञा पुं० १. एक रुद्र का नाम । २. इंद्र के पुत्र उषेन्द्र का नाम । ३. संगीत में ध्रुवक जाति में एक ताल का नाम । ४. स्कंद । कातिकेय । ५. धर्म के एक पुत्र का नाम । ६. प्रह्लर के पिता का नाम । ७. भीमसेन का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट नरेश के यहाँ अज्ञातवास करते थे । ८. इक्ष्वाकु के एक मंत्री का नाम । ९. एक पर्वत का नाम । जयंतिका की पक्षादी । १०. जैनों के अनुचर देवों का एक भेद । ११. फलित ज्योतिष में यात्रा का एक योग ।

विशेष—यह योग उस समय पड़ता है जब चंद्रमा उच्च होकर यात्री की राशि से ग्यारहवें स्थान में पहुँच जाता है । इसका विचार बहुधा युद्धादि के लिये यात्रा करने के समय होता है, क्योंकि इस योग का फल अनुपश का नाश है ।

जयंतपुर—संज्ञा पुं० [सं० जयन्तपुर] एक प्राचीन नगर का नाम जिसे ब्रह्मराज ने स्थापित किया था और जो गौतम श्रद्धि के आश्रम के निकट था ।

जयंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्तिका] दे० 'जयंती' ।

जयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्ती] १. विजय करनेवाली । विजयिनी । २. स्वजा । पताका । ३. हलदी । ४. दुर्गा का एक नाम । ५. पार्वती का एक नाम । ६. किसी महात्मा की जन्मतिथि पर होनेवाला उत्सव । वर्षगांठ का उत्सव । ७. एक बड़ा पेड़ जिसे जैत या जैता कहते हैं ।

विशेष—इस पेड़ की डालियाँ बहुत पतली और पत्तियाँ अगस्त की पत्तियों की तरह की, पर उनसे कुछ छोटी होती हैं । फूल अरहर की तरह पीले होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर बित्तो सवा बित्तो लंबी पतली फलियाँ लगती हैं । फलियों के बीज उत्तेजक और संकोचक होते हैं और दस्त की बीमारियों में औषध के रूप में काम में आते हैं । साज का मरहम भी इससे बनता है । इसकी पत्तियाँ फोड़े या सूजन पर बाँधी जाती हैं और गिलटियों को गलाने का काम करती हैं । इसकी जड़ पीसकर बिच्छू के काटने पर लगाई जाती है । यह जंगली भी होता है और लोग इसे लगाते भी हैं । इसका बीज जठ भसाड़ में बोया जाता है । इसकी एक छोटी जाति होती है, जिसे 'चक्रमेद' कहते हैं । इसके रेशे से जाल बनता है । बंगाल में इसे लोग अम्रेश, मई में बोते हैं और सितंबर, अक्टूबर में काटते हैं । पीचा सन की तरह पानी में सड़ाया जाता है । पान के बीड़ों पर भी यह पेड़ लगाया जाता है ।

८. जैजंती का पीचा । १. ज्योतिष का एक योग । जब श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी की आधी रात के समय और शेष दंड में रोहिणी नक्षत्र पड़े, तब यह योग होता है । ११. जो के छोटे पीछे जिन्हें विजयादशमी के दिन ब्राह्मण लोग पजमानों को मंगल द्रव्य के रूप में भेंट करते हैं । जई । जई । १२. धरणी ।

जय—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध, विवाह आदि में विपक्षियों का पराभव । विरोधियों को दमन करके स्वत्व या महत्त्व स्थापन । जीत ।

विशेष—संस्कृत में जय शब्द पुलिग है किंतु 'जीत, विजय' अर्थ में हिंदी में इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में ही मिलता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जय मनाना=विजय की कामना करना । समृद्धि चाहना । जय हो=आशीर्वाद जो ब्राह्मण लोग ब्रह्मण के उत्तर में देते हैं ।

विशेष—आशीर्वाद के प्रतिरिक्त इस शब्द का प्रयोग देवताओं की अभिवंदना सूचित करने के लिये भी होता है और जिसमें कुछ याचना का भाव मिला रहता है । जैसे, जय काली की, रामचंद्र जी की जय । उ०—जय जय जयजननि देवि, मुरनर मुनि असुर सेव्य, भुक्ति भुक्ति दायिनी जय हरणि कामिका ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—जय गोपाल । जय श्रीकृष्ण । जय राम, आदि (अभिवादन वचन) ।

२. ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति के प्रोष्ठपद नामक छठे युग का तीसरा वर्ष ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस वर्ष में बहुत पानी बरसता है और सत्रिय, वैश्य आदि को बहुत पीड़ा होती है ।

३. विष्णु के एक पार्षद का नाम ।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि सनकादिक ने भगवान के पास जाने से रोकने पर क्रोध करके इसे और इसके भाई

विजय को शाप दिया था। उसी से जय को संसार में तीन बार हिरण्यशक्त, रावण और शिशुपाल का भवतार तथा विजय को हिरण्यकशिपु, कुंभकर्ण और कंस का जन्म ग्रहण करना पड़ा था।

४. महाभारत या भारत ग्रंथ का नाम। ५. जयंती या जीत के पक्ष का नाम। ६. मान। ७. युधिष्ठिर का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे। ८. अयन। ९. वशीकरण। १०. एक वाद्य का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है। ११. भाववत के अनुसार इससे मन्वंतर के एक ऋषि का नाम। १२. विष्वामित्र के एक पुत्र का नाम। १३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। १४. राजा संजय के एक पुत्र का नाम। १५. उर्वशी के बर्ष से उत्पन्न परवसु के एक पुत्र का नाम। १६. वह मकान जिसका दरवाजा दक्षिण की तरफ हो। १७. सूर्य। १८. घरवाली या अग्निमंथ नाम का पक्ष। १९. इन्द्र। २०. इन्द्र का पुत्र जयंत।

विशेष—पुराणों आदि में और भी बहुत से 'जय' नामक पुरुषों के वर्णन आये हैं।

जय^२—वि० (समास में प्रयुक्त) विजयी। जीतनेवाला। जैसे, धृष्ट्युजय (= धृष्ट्यु को जीतनेवाला)।

जयकंकण—संज्ञा पुं० [सं० जय + कंकण] वह कंकण जो प्राचीन काल में और पुरुषों को किसी युद्ध आदि के विजय करने की वधा में आवरार्थ प्रदान किया जाता था।

जयक—वि० [सं०] विजिता। जीतनेवाला [को०]।

जयकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपाई नामक एक छंद का नाम।

जयकार—संज्ञा पुं० [सं० जय + कार] जयघोष।

जो०—जयजकार।

जयकोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का लूना खेलने का एक प्रकार का वाद्य।

जयचंद्र—संज्ञा पुं० [हि० जय + चंद्र] १. काम्यकुब्ज का एक प्रसिद्ध राजा। २. देशद्रोही व्यक्ति (लाक्ष०)।

विशेष—यह महर्षिवाल्मीकि का अंतिम नरेश था। इसका राज्य-काल सन् ११७० से ११८९ ई० तक रहा। अपने राज्यकाल के आखिरी वर्ष में यह महर्षिवाल्मीकि गौरी में पराजित होकर मारा गया।

जयस्वता—स्त्री० पुं० [हि० जय (= वाद्य) + स्वाता] बजियों की एक बही जिसमें वे विषय ध्वजा सुनाया या वाद्य आदि लिखा करते हैं।—(व०)।

जयघोष—संज्ञा पुं० [सं०] जय + घोष] जय जय की आवाज उठाना या जयघोष अगलिल पंख।—आर्षेय, पृ० १६५

जयजयवंती—संज्ञा स्त्री० [हि० जय + जयवंती] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जो प्रमथी, विलास और सोरठ के योग से बनती है।

विशेष—इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह राग को ६ बंद से १० बंद तक गाई जाती है; पर वर्षाऋतु में लोग इसे सभी समय गाते हैं। कुछ लोग इसे मेघ राग की भांति मानते हैं और कुछ लोग मालकोश का सहचरी भी बताते हैं।

जयजीव^३—संज्ञा पुं० [हि० जय + जी] एम प्रकार का अभिवादन जिसका अर्थ है—जय हो और जियो। इसका प्रयोग प्रणाम आदि के समान होता था।—उ० कहि जयजीव सोस तिनहु नाए। भूप सुखगल बचन सुनाए।—तुलसी (शब्द०)।

जयदंका—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा ढोल। जीत का डंका।

जयत्—संज्ञा पुं० [सं० जयेत्] दे० 'जयति'।

जयतकल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण और जयतिश्री को मिलाकर बनता है। यह राग के पहले पहर में गाया जाता है।

जयताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

विशेष—यह सातताला ताल है और इसमें क्रम से एक लघु, एक गुरु, दो लघु, दो द्रुत और एक प्लुत होता है। इसका बोल यह है—ताहूँ। तत्परि धरियाऽ ताहूँ। ताहूँ। तत० या० तथा तापरि धरियाऽ।

जयति—संज्ञा पुं० [सं० जयेत्] एक संकर राग जो बीरौ और मलित के मेल से बनता है। कोई कोई इसे पूरिया और कल्याण के योग से बना भी मानते हैं। वि० दे० 'जयेत्'।

जयतिश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो दीपक राग की भार्या मानी जाती है।

जयती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयेती] श्री राग की एक रागिनी।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे टोड़ी, विभास और शहाना के योग से बनी हुई बताते हैं। कितने लोग इसे पूरिया, सामंत और ललित के मेल से बनी मानते हैं। वि० दे० 'जयेती'।

जयतु—क्रि० वि० [सं०] जय हो (आशीर्वादसूचक)।

जयत्सेन—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञातवास के समय नकुल का नाम [को०]।

जयदुंदुभी—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + दुंदुभी] जीत का डंका। विजय की भेरी।

जयदुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार दुर्गा की एक मूर्ति।

जयदेव—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य 'गीतगोविंद' के रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव भक्त एवं कवि।

विशेष—इनका जन्म आज से प्रायः आठ सौ वर्ष पहले बंगाल के वर्तमान बीरभूम जिले के अंतर्गत केदुविल्व नामक ग्राम में हुआ था। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये योद्धा के महाराज जयमलसेन की राक्षसा में रहते थे। इनका अष्टम वत्समाय में भी आया है।

जयद्वल—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार शिशुवीर या श्रीराम का राजा जो दुर्वोधन का सहचरी था।

विशेष—इसने एक बार जंगल में श्रोतरी को धकैसी धाकर हर ले जाने का प्रयत्न किया था। उस समय भीम और धर्मजुन ने इसकी बहुत दुईसा की थी। यह महाभारत के युद्ध में लड़ा था और चक्रव्यूह के युद्ध में धर्मजुन के पुत्र अश्विन्यु का बंध इसी ने किया था। दूसरे दिन अश्विन्यु के अन्तर सायंकाल यह धर्मजुन के हाथों मारा गया।

जयद्वल—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञातवास के समय सहदेव का नाम [को०]।

जयध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. तालजंघा के पिता का नाम जो प्रवन्ती के राजा कातंवीर्याजुन का पुत्र था। २. जयपताका। जयंती।

जयध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयघोष'।

जयन—संज्ञा पुं० [सं० जयनम्] १. जय। जीत। २. हाथी, घोड़े आदि की सुरक्षा के लिये एक प्रकार का जिरहबस्तर (को०)।

जयना(पु)—क्रि० प्र० [सं० जयन] जीतना। उ०—(क) भरत धन्य तुम जग जस जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ। —तुलसी (शब्द०)। (ख) लै जात यवन मोहि करिकै जयन। —भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५०२।

जयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इन्द्र की कन्या।

जयपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो पराजित पुरुष अपने पराजय के प्रमाण में विजयी को सिल देता है। विजयपत्र। उ०—मम जयपत्र सकारि पुनि नुंदर मुहि अपनाय। —भारतेंदु प्र०, भा०, १, पृ० १०८। २. वह राजाज्ञा जो धर्म्यी प्रत्यर्थी के बीच विवाद के निबटारे के लिये लिखी जाय। वह कागज जिसपर राजा की ओर से किसी विवाद का फैसला लिखा हो।

विशेष—प्राचीन काल में ऐसे पत्र पर वादी और प्रतिवादी के कथन, प्रमाण और धर्मशास्त्र तथा राजसभा के सभ्यों के मत लिखे हुए होते थे और उसपर राजा का हस्ताक्षर और मोहर होती थी।

जयपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

जयपराजय—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + पराजय] दे० 'जयाजय'।

जयपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमालगोटा। २. बह्मा का एक नाम (को०)। ३. विष्णु। ४. राजा।

जयपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का कुम्भा खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा विराट के भाई का नाम। २. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

विशेष इसमें एक लघु, एक गुरु और तब फिर एक लघु होता है। यह तिताला ताल है और इसका बोल यह है—ताहं। धिधिकिट ताहं गन यों।

जयफल—संज्ञा पुं० [हिं० जायफल] दे० 'जायफल'। उ०—जयफल लौंग सुपारि छोहारा। मिरख होइ जो सहै न भारा।—जायसी (शब्द०)।

जयभेरी—संज्ञा पुं० [सं०] विजय डंका। जीत का नगाड़ा (को०)।

जयमंगल—संज्ञा पुं० [सं० जयमङ्गल] १. वह हाथी जिसपर राजा विजय करने के उपरांत सवार होकर निकले। २. राजा के सवार होने योग्य हाथी। ३. ताल के साठ भेदों में एक।

विशेष—यह शृंगार और वीर रस में बजाया जाता है। यह चोताला ताल है और इसका बोल यह है—तकि तकि। दांतकि। धिमि धिमि। यों।

४. ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त आयुर्वेदीय जयमंगल नामक रस (को०)। ५. विजय की खुशी। जय का आनंद (को०)।

जयमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जयमार(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + मार्य] दे० 'जयमाल'। उ०—का कहें देउ ऐस जिउ दोह्ना। जेइ जयमार जीति रन लोह्ना।—जायसी प्र०, पृ० १२२।

जयमाल—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] वह माला जो विजयी को विजय पाने पर पहनाई जाय। २. वह माला जिसे स्वयंवर के समय कन्या अपने बरे हुए पुरुष के गले में डालती है। उ०—उ०—गावहि छबि अत्रन्तकि महेली। गिय जयमाल राम उर मेली।—मानस, १। २६४।

जयमाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० जयमाल] दे० 'जयमाल'। उ०—सोहत जनु जग जलज मनाला। समिहि सभित देत जयमाला।—मानस, १। २६४।

जयमाल्य—संज्ञा पुं० [सं० जय + मार्य] दे० 'जयमाल'।

जययज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] प्रशवसेध यज्ञ।

जयरात—संज्ञा पुं० [सं०] कर्नाट देश के एक राजकुमार का नाम जो कोरको की ओर से महाभारत के युद्ध में लड़ा था और भीम के हाथ से मारा गया था।

जयस्तम्भी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयश्री'।

जयलेख—संज्ञा पुं० [सं० दे० 'जयपत्र'।

जयवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईशान्ती। शची। २. विजय करने-वाली सेना (को०)।

जयशाली—संज्ञा पुं० [सं० जय + शाली] यादव वंश के प्रसिद्ध राजा जिन्होंने जैसलमेर नगर बनाया और वहाँ का किला बनवाया था।

विशेष—अपने पिता के मरने पर भी पड़ते इन्हें राजसिंहासन नहीं मिला था। पर अपने छोटे भाई के मर जाने पर इन्होंने शहाबुद्दीन गोरी से सहायता लेकर अपने भतीजे भोजदेव को मारा और राज्याधिकार प्राप्त किया था। सिंहासन पर बैठने के बाद संवत् १२१२ में इन्होंने जैसलमेर नगर बनाया और किला बनवाया था।

जयशृंग—संज्ञा पुं० [सं० जयशृङ्ग] विजय की घोषणा के निमित्त बजाया जानेवाला शींग का बाजा (को०)।

जयश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजय की अधिष्ठाता देवी। विजयलक्ष्मी। २. विजय। जीत। ३. ताल के मुख्य साठ भेदों में से एक। ४. देशकार राग से मिलती जुलती संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो संध्या के समय गाई जाती है। कुछ लोग इसे देशकार राग की रागिनी मानते हैं।

जयस्तम्भ—संज्ञा पुं० [सं० जयस्तम्भ] वह स्तम्भ जो विजयी राजा किसी देश का विजय करने के उपरांत अपनी विजय के स्मारक स्वरूप बनवाता है। विजयसूचक स्तम्भ।

जयम्बामी—संज्ञा पुं० [सं० जयम्बामिन्] १. शिव का एक नाम। २. छंदोग्य सूत्र तथा आश्वलायन ब्राह्मण के व्याख्याता (को०)।

जया'—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा का एक नाम। २. पार्वती का

एक नाम । ३. हरी दूब । ४. घरणी नामक वृक्ष । ५. जयंती या जत का पेड़ । ६. हरीतकी । हड़ । ७. दुर्गा की एक सहचरी का नाम । ८. पताका । वज्रा । ९. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दोनों पक्षों की तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियाँ । १०. सोलह मातृकाओं में से एक । ११. माघ शुक्ल एकादशी । १२. एक प्राचीन राजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे । १३. जया पुष्प । गुड़हल का फूल । घड़हल । १४. भाँव । १५. शमीवृक्ष । छोकर ।

जया^१—वि० [सं०] जय दिलानेवाली । विजय करानेवाली । उ०—तीज अष्टमी तेरसि जया । चौथी चतुरदसि नौमी रखया । —जायसी (शब्द०) ।

जयाजय—संज्ञा पु० [सं०] जय और पराजय । जीत हार [को०] ।

जयादित्य—संज्ञा पु० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम जो काशिकावृत्ति के कर्ता थे ।

जयाद्वय—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती और हड़ ।

जयानीक—संज्ञा पु० [सं०] १. इपब राजा के एक पुत्र का नाम । २. राजा विराट के एक भाई का नाम ।

जयापीड़—संज्ञा पु० [सं०] काश्मीर के एक प्रसिद्ध राजा जो ईसवी पाठवीं शताब्दी में हुए थे ।

विशेष—ये एक बार दिग्विजय करने के लिये निकले थे; पर रास्ते में सैनिक इन्हें छोड़कर भाग गए । इसपर ये प्रयाग चले गए थे जहाँ इन्होंने ६६६६६ छोड़े बाग किए थे ।

जयावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम । २. एक संकर रागिनी जो धवलश्री, बिलावल और सरस्वती के योग से बनती है ।

जयावह—वि० [सं०] जय + आवह । जय प्राप्त करानेवाला [को०] ।

जयावहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रदती का धृष ।

जयाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जरड़ी घास ।

जयाश्र—संज्ञा पु० [सं०] राजा विराट के एक भाई का नाम ।

जयाह्वया, जयाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयावहा' ।

जयिष्णु—वि० [सं०] जयशील । जो जीतता हो ।

जयी^१—वि० [सं०] जयिन् । [वि० स्त्री०] जयिनी । बिजयी । जयशील ।

जयी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] यव । दे० 'जई' ।

जयेंद्र—संज्ञा पु० [सं०] जयेन्द्र । काश्मीर के राजा विजय के पुत्र का नाम जो आजानुवाहु थे ।

जयेत्—संज्ञा पु० [सं०] बाइन जाति के एक राग का नाम जो पूरिया और कल्याण के योग से बनता है । इसमें पंचम स्वर नहीं लगता ।

जयेद्गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयेत् + गौरी = जयेद्गौरी । एक संकर रागिनी जो जयेत् और गौरी के मेल से बनती है ।

जयेती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो गौरी और जयत्श्री के मेल से उत्पन्न होती है । यह सामंत, ललित और पूरिया प्रथवा टोड़ी, सहाना और बिभास राग के योग से भी बन सकती है ।

जय्य—वि० [सं०] जय करने योग्य । जो जीतने योग्य हो ।

जरंछ—वि० [सं०] जरठ । क्षीण । वृद्ध । पुराना [को०] ।

जरंत—संज्ञा पु० [सं०] जरन्त । १. वृद्ध व्यक्ति । बूढ़ा आदमी । २. महिष । भैंसा [को०] ।

जर^१—संज्ञा पु० [सं०] जरा । बूढ़ावस्था ।

जर^२—वि० [सं०] १. क्षय होने या जीर्ण होनेवाला । २. क्षीण । वृद्ध । पुराना । ३. क्षय या जीर्ण करनेवाला [को०] ।

जर^३—संज्ञा पु० [सं०] १. नाश या जीर्ण होने की क्रिया । २. जैन दर्शन के अनुसार वह कर्म जिससे पाप, पुण्य, कलुष, राग-द्वेषादि सब शुभाशुभ कर्मों का क्षय होता है ।

जर^४—संज्ञा पु० [सं०] जवर । दे० 'जवर' । उ०—खने मंताप सीत जर जाइ । की उपचरथ संदेह न छाड़ि ।—विद्यापति०, पृ० १३७

जर^५—संज्ञा पु० [देश०] एक तरह का समुद्री सवार । कचहरा ।—(लघ०) ।

जर^६—संज्ञा स्त्री० [हि०] जड़ । दे० 'जड़' ।

जर^७—संज्ञा पु० [फा०] जर । १. सोना । स्वर्ण ।

जौ०—जरकस = दे० 'जरकण' । जरकार = (१) स्वर्णकार । सुनार । (२) सोने का काम की हुई वस्तु । जरगर । जरबोजी । जरनिगार । जरनिगारी । जरवपत । जरवापता । जरदोज ।

२. जन । दोस्त । रुपया । उ०—जर ही मेरा भल्लाहू है जर राम हमारा ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५१५ ।

जौ०—जरअल = मूलधन । जरखरीब । जरगर । जरडिगरी = डिगरी की रकम । जरदार । जरनकद = रोकड़ । नकद । रुपया । जरनोलाम = नीलामी से प्राप्त धन । जरपेशगी = अग्रिम धन । बयाना ।

जरई—संज्ञा स्त्री० [हि०] जड़ । धान आदि के वे बीज जिनमें अंकुर निकले हों ।

विशेष—धान को दो दिन तक दिन में दो बार पानी से भिगोते हैं, फिर तीसरे दिन उसे पयाल के नीचे ढककर ऊपर से पत्थरों से दबा देते हैं जिसे 'मारना' कहते हैं । फिर एक दिन तक उसे उसी तरह पड़ा रहते देते हैं, दूसरे या तीसरे दिन फिर खोलते हैं । उस समय तक बीजों में से सफेद सफेद अंकुर निकल आते हैं । फिर उन्हें फैला देते हैं और कभी कभी सुखाते भी हैं । ऐसे बीजों को जरई और इस क्रिया को 'जरई करना' कहते हैं । यह जरई खेत में बोने के काम आती है और शीघ्र जमती है । कभी कभी धान की मुजारी भी बंद गामी में डाल दी जाती है और दो तीन दिन तक वैसे ही पड़ी रहती है, थोड़े दिन उसे खोलते हैं । उस समय वे बीज जरई हो जाते हैं । कभी कभी इस बात की परीक्षा के लिये कि बीज जम गया या नहीं, भिन्न भिन्न आनों की भिन्न भिन्न रीति से जरई की जाती है ।

२. दे० 'जई' ।

जरकटी—संज्ञा पु० [देश०] एक शिकारी पक्षी । उ०—जुरा बाज बाँसे कुही बहरी लगर सोने, दोने जरकटी त्यों शबाज सान पार है ।—रघुराज (शब्द०) ।

जरकस, जरकसी—वि० [फा० जरकस] १. जिसपर सोने आदि के तार लगे हों। उ०—(क) छोटिए धनुहियाँ पनहियाँ पगन छोटी, छोटिए कछोटी कटि छोटिए तरकसी। लसत भंगूनी भीनी दामिनी की छबि छीनी सुंदर बदन सिर पविया जरकसी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अब भक्ति भक्ति भक्ति भुकी उभक्ति भरोखे ऐन। कसे कंधुकी जरकसी लसी बंसी हो नैन।—शुं० सत० (शब्द)।

जरकसि—वि० [हि०] ३० 'जरकसी'। उ०—पहिले जरकसि पर आभूषण भंग भंग नैति रिभाय।—नंद० प्र०, पृ० ३४६।

जरखरीद—वि० [फा० जरखरीद] नकद दाम देकर खरीदो हुई जमीन जायदाद जिसपर खरीददार का पूर्ण अधिकार हो। उ०—जब देखो तब तू तै—चुप ! गोया बेटा नहीं जरखरीद गुलाम है।—शराबी; पृ० १७१।

जरखेज—वि० [फा० जरखेज] उजाऊ। जिसमें खूब धन्न पैदा होता है। उर्वर (जमीन का विशेषण)।

जरखेजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जरखेजी] उर्वरता। उपजाऊपन।

जरगर—संज्ञा पुं० [फा० जरगर] स्वर्णकार। सुनार [को०]।

जरगह—संज्ञा स्त्री० [फा० जर + जियाह] एक घास जिसे चौपाये बड़े स्वाद से खाते हैं।

विशेष—यह घास राजपूताने आदि में बहुत बोई जाती है। किसान इसे खेतों में कियारियाँ बनाकर बोते हैं और छठे सातवें दिन पानी देते हैं। पंद्रह बीस दिन में यह काटने लायक हो जाती है। एक बार बोने पर कई महीनों तक यह बराबर पंद्रहवें दिन काटी जा सकती है। यह दाने की तरह ही जाती है और बैल घोड़े इसके खाने से अच्छी तैयार हो जाते हैं।

जरगा—संज्ञा स्त्री० [फा० जर + जियाह] ३० 'जरगह'।

जरज—संज्ञा पुं० [देश०] एक कंद 'जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है। एक की जड़ गाजर या मूली की तरह होती है और दूसरे की जड़ बालजम की तरह होती है।

जरजर(पुं०)—वि० [सं० जरजर] [वि० स्त्री० जरजरी] ३० 'जरजर'। उ०—(क) सत्रिषम खर गरे भंग मेल जरजर कहइते कै शतियाह।—विद्यापति, पृ० ४८२। (ख) नाव जरजरी भार बहु खेवनहार गंवार।—दीन० ब०, पृ० ११३।

जरजराला—कि० प्र० [सं० जरजर] जरजरित होना। जीर्ण होना।

जरजरी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० जर + जड़ी] जड़ी बूटी। सुनहरी बड़ी। उ०—नाग दबनि जरजरी, राम मुमिन बरी, भगत रैदास चेत निमैता।—३० बानी, पृ० २०।

जरजारी—वि० [हि० जरना + सं० खार] १. अस्मीसूत। २. नष्ट।

जरजाल—संज्ञा पुं० [प्र० जर + फा० जलुक (=गोली, छर्रा)] लोहे के तारों में बंधे हुए बहुत से फल छुरी इत्यादि जो तोप में भर के छोड़े जाते हैं। उ०—लिए तुपक जरजाल जमुरे। बै गरि वाम बस पुरे।—हम्मीर०, पृ० ३०।

जरठ^१—वि० [सं०] १. कर्कश। कठिन। २. बुद्ध। बुद्ध। उ०—जरठ भयउं अब कहै रिछेसा।—मानस, ४।२६। ३. जीर्ण। पुराना। ४. पांडु। पीलापन लिये सफेद रंग का।

जरठ^२—संज्ञा पुं० बुढ़ापा।

जरठाई(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० जरठ] बुढ़ापा। बुढ़ावस्था। जीर्ण अवस्था।

जरडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास का नाम जिसे खाने से गाय भैंस अधिक दूध देती हैं।

विशेष—वेद्यक में इसे मधुर, शीतल, दाहनाशक, रक्तशोधक और खरि माना है।

पर्या०—गर्माटिका। सुनाला। जयाश्रया।

जरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. हींग। २. जीरा। ३. काला नमक। सोबचल। ४. कासमदं। कसोजा। ५. जरा। बुढ़ापा। ६. दस प्रकार के बहणों में से एक जिसमें पवित्र से मोक्ष होना प्रारंभ होता है। ७. सुफेद जीरा।

जरणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. मातू का वृक्ष। सागौन का पेड़।

जरणु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काला जीरा। २. बुढ़ावस्था। बुढ़ापा। ३. स्तुति। प्रशंसा। ४. मोक्ष। मुक्ति।

जरनु^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जरना] १. बुढ़ा। बुढ़। २. बहुत दिनों का।

जरनु^२—संज्ञा पुं० बुढ़ व्यक्ति। पुराना आदमी [को०]।

जरत—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुढ़ व्यक्ति। पुराना आदमी। २. साइ [को०]।

जरता बलता^१—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'जलना' के प्रतर्गन 'जलता बलता'।

जरतार(पुं०)—संज्ञा पुं० [फा० जर + तार] मोने या चांदी आदि का तार। जरी। उ०—बीच जरतारन की हीरन के हार की जगमगी ज्योतिन की मोतिन की झलरै।—देव (शब्द०)।

जरतारा^१—वि० [हि० जरतार] [वि० स्त्री० जरतारी] जिसमें सुनहले या एपहले तार लगे हों। जरी के काम का। उ०—जरतारी मुख पै सरस सारी सोहत मेत। सरद जलद भिद जलज पर सहज किरन छबि देत।—स० सतक, पृ० ३४५।

जरतुआ^१—वि० [हि० जलना] जो दूसरों को देखकर बहुत जलना या बुरा मानता हो। ईर्ष्या करनेवाला।

जरतिका, जरतो—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुढ़ा स्त्री। बुढ़ी महिला।

जरतुशत—संज्ञा पुं० [फा० जरतुशत] ३० 'जरदुशत'।

जरत्करण—स्त्री० पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

जरत्कारु^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने वासुकि नाग की कन्या से व्याह किया था। आस्तिक मुनि इनके पुत्र थे।

जरत्कारु^२—संज्ञा [सं०] जरत्कारु ऋषि की स्त्री जो वासुकि नाग की कन्या थी। इसका नाम मनसा भी था।

जरद—वि० [फा० जर्द] पीला। जर्द। पीत। उ०—छोड़े जरद दुसाला यारी केसर की सी बयारी हैं।—घनानंद, पृ० १७६।

जरद अंछी—संज्ञा स्त्री० [फा० जर्द, हि० जरद + अंछी] काली

ग्रंथों की तरह की एक प्रकार की बड़ी भाड़ी जिसकी लंबी टहनियों के सिरों पर कटि होते हैं।

विशेष—यह देहगहन से भूतान और ससिया की पहाड़ी तक ७००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। दक्षिण में कनाडा (कनारा, कन्नड़) और लंका तक भी होती है। इसमें फागुन चेत में फूल लगते हैं जो कच्चे भी खाए जाते हैं और अचार बनाने के काम आते हैं।

जरदक संज्ञा पुं० [फा० जरदक] जरदा या पीतू नाम का पक्षी।
जरदष्टि संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्ध। बुद्धा। २. दीर्घजीवी। बहुत दिनों तक जीनेवाला।

जरदष्टि संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धापा। बुद्धावस्था। २. दीर्घ-जीवन।

जरदा संज्ञा पुं० [फा० जरदह] १. एक प्रकार का व्यंजन जिसे प्रायः मुसलमान लोग खाते हैं।

विशेष हमके बनाने की विधि यह है कि चावल में पहले हल्की डालकर उसे पानी में उबालते हैं। फिर उसमें से पानी पसा लेते हैं और उसे दूसरे बर्तन में धी डालकर णकर के शर्बत में पकाते हैं। मोछे से इसमें लींग, इलायची आदि मूषणित द्रव्य और मसाले छोड़े दिए जाते हैं।

२. एक विशेष क्रिया से बनाई हुई खाने की सुगन्धित मुरती।

विशेष यह प्रायः काल रंग की होती है और पान दोहरा, आदि के साथ खाई जाती है। यह पीने और लान रंग की भी बनाई जाती है। पाराणमी इसका एक प्रमुख अंगण-केंद्र है।

यौ० जरदाफरीश - जरदा बेचनेवाला।

३. पीले रंग का छोटा। उ० जरदा जिरही जाँग सुनोची उदे खजन् मजान०, प० ८। ८. पीली घाँस का कबूतर।
५. पीले रंग की एक प्रकार की छोट।

जरदा संज्ञा पुं० [फा० जरदक] एक प्रकार का पक्षी। पीतू।

विशेष—इसकी कनपटी पीली, पीठ खाली, पेट सफेद और चोंच तथा पैर पीले होते हैं। इस पीतू भी कहते हैं।

जरदार संज्ञा पुं० [फा० जरददार] एमीर। धनवान। उ० हुषा मातुस यह गुने से हमको भी कोई जरदार है मो तंग दिल है।—इतिहास पौ०, भा० ७, पृ० ३०।

जरदालू संज्ञा पुं० [फा० जरदातू] गवानी नाम का मेवा।

विशेष १० 'जानी'।

जरदी संज्ञा स्त्री० [फा० जरदी] गिलाई। पीलापन।

मुहा०—जरदी लगाना किसी मनुष्य के शरीर का रंग बहुत दुर्बलता, पान की कमी या किसी दुर्घटना आदि के कारण पीला हो जाना।

२. सब के भीतर का वह चेष जो पीले रंग का होता है।

जरदुश्त—संज्ञा पुं० [फा० जरदुश्त; मि० सं० जरदष्टि (= दीर्घजीवी, बुद्ध); अथवा सं० जरद्वष्ट (= एक ऋषि)] फारस देश के प्राचीन पारसी धर्म के प्रतिष्ठाता एक आचार्य।

विशेष—ये ईसा से ६ सौ वर्ष पूर्व ईरान के शाह गुस्ताप के समय में हुए थे। इन्होंने सूर्य और अग्नि की पूजा की पद्धत चलाई यी और पारसियों का प्रसिद्ध धर्मग्रंथ जद अवेस्ता (जद अवेस्ता) बनाया था। ये 'मीतू चेहू' के वंशज और यूनान के प्रसिद्ध हकीम 'फीसा गोरम' के शिष्य थे। शाहनामा में लिखा है कि जरदुश्त तूरानियों के हाथ से मारे गए थे। इनकी जरदुश्त और जरदुश्त भी कहते हैं।

जरदोज—संज्ञा पुं० [फा० जरदोज] [संज्ञा जरदोजी] वह मनुष्य जो कपड़ों पर कनाबतू और सलने सितारे आदि का काम करता हो। जरदोजी का काम करनेवाला।

जरदोजी—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की दस्तकारी जो कपड़ों पर सुनहले कनाबतू या सलमें सितारे आदि में की जाती है। उ०—मुबारन साज जीन जरदोजी। जगमगात तन अगनित ओजी।—हम्मीर०, पृ० ३।

जरदुगध—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्धा बैल। २. बृहत्संहिता के अनुसार एक वीथी जिसमें विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं। यह चंद्रमा की वीथी है।

जरदुगध—मि० जीर्ण। प्राचीन।

जरद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] जल।

जरन संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'जनन'।

जरनल—संज्ञा पुं० [अं०] वह सामयिक पत्र या पुस्तक जिसमें कम से किसी प्रकार की घटनाएँ आदि लिखी हों। सामयिक पत्र।

जरनल—संज्ञा पुं० [अं० जेनरल] ३० 'जनरल'।

जरनलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं० जर्नलिस्ट] ३० 'पत्रकार'।

जरना—कि० अ० [हि० जलना] ३० 'जलना'। उ०—देखि जरनि जड़ नारि की रे जरनि प्रेत के संग।—सूर०, १।३२५।

जरना—कि० अ० [सं० जटन, हि० जड़ना] ३० 'जड़ना'। उ०—नग कर मरम सो जरिया जाना। जरै जो अस नग हीर पखाना।—जायसी अं० (गुप्त), पृ० २४१।

जरनि संज्ञा स्त्री० [हि० जरना (= जलना)] १. जलने की पीड़ा जलन। उ०—पानी फिरे पुकारती उपजी जरनि अपार। पावक आयो प्रछने सुंदर बाकी सार—मुंवर अं०, भा० २, पृ० ७२८। २. व्यथा। पीड़ा। उ०—(क) ताँतें हों देत न हूखन तोहैं। राम बिरोधी उर कठोर ने प्रगट कियो है विधि मोहैं। सुंदर मुखद गुसील सुधानिधि जरनि जाय जेहि जोए। त्रिष वारणी बंधु कहियत विधु नातो मिटत न षोए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आपनि दाहन दीनता कहउँ सर्वाहु सिर नाह। देखे बिन रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाह—तुलसी (शब्द०)। (ग) देखि जरनि जड़ नारि की रे जरनि प्रेत के संग। चिता न चित फीकी भयो रे रबी जु पिय के रंग।—सूर०, १।३२५।

जरनिगार—वि० [फा० जरनिगार] सुनहरे कामवाला। सुनहरे रंग का।

जरनिगारी—संज्ञा [फा० जरनिगारी] सुनहरा काम। सोने का पानी। मुलम्मा।

जरनी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन] जलन । ताप । धनि ।
ज्वाला । उ०—बिछुरी मनो संग तैं हिरनी । चितवत
रहत बकित चारो दिसि उपजि बिरह तन जरनी ।—
सूर०, ६।७३ ।

जरनैल^१—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जनैल' ।

जरनैल^२—संज्ञा पुं० [अ० जनैल] दे० 'जनैल' ।

जरपरस्त—वि० [फ्रा० जरपरस्त] अर्थपिशाच । सूय । लोभी ।
कपूस [को०] ।

जरपोस—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरपोस] जरी का कपड़ा । जरी की
पोशाक । उ०—सबज पोस जरपोस करि लीनी लाल मुगाइ ।
भाइ भाइ फिर भाइ करि करति छाइ पर छाइ ।—स० सप्तक,
पृ० ३८३ ।

जरफ—वि० [अ० जरफ] साफ । स्वच्छ । निर्मल उ०—सब
सहर नारि शृंगार कीन । अप घण भुंछ मिनि बलि नवीन ।
यपि कनक धार भरि द्रव्य दूब । पटकल जरफ जरकसी
ऊब ।—पु० रा०, १।७१३ ।

जरब—संज्ञा स्त्री० [अ० जरब] आघात । चोट ।

यो०—जरब स्त्रीक — हलकी चोट । जरब गदीद = भारी चोट ।

मुहा०—जरब देना = चोट लगाना । आघात करना । पीटना ।

उ०—दगा देत दूतन चुनौती बिग्रमुनी देत जय को जरब देन
आपी सेत शिवलोक ।—पद्माकर (शब्द०) ।

१. तबले मृदंग आदि पर का आघात । आप जो दो तरह की
होती है, एक खुली और दूसरी बंद । २. गुणा (गणित) ।
कपड़े पर छपी या काढ़ी हुई बेल ।

जरबकस—वि० [फ्रा० जरब + बरस] उदार । आता । शानी ।
घन देनेवाला ।

उ०—गुण जरबकस जराब मोती हो लाल जवहार नहिं गनता ।

—स० दरिया, पृ० ६८ ।

जरबफ्त—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरबफ्त] वह रेशमी कपड़ा जिसकी
बुनावट में कलाबस्तू देकर कुल बेल बूटे बनाए जाते हैं ।

जरबाफ—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरबाफ] मोन के तारों से कपड़े पर
बेलबूटे बनानेवाला कारीगर । जखोज ।

जरबाफी^१—वि० [फ्रा० जरबाफी] जरबाफ के काम का । जिस-
पर जरबाफ का काम बना हो ।

जरबाफी^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'जरदोजी' ।

जरबीली^५—वि० [फ्रा० जरब + हि० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री०
जरबीली] जो देखने में बहुत भड़कीला और सुंदर हो ।—
उ०—धवण भुंके कुमका प्रति लोल कपोल जराइ जरे
जरबीले ।—गुमान (शब्द०) । (ख) अयो तहें भावता
कहं पायो सीर सोरह में पीठ पीछे बीन्हें बीन्हें गोति जरबीली
को ।—रघुराज (शब्द०) ।

जरबुलंद—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरबुलंद] कोपत का एक भेद जिसके
गुलबूटे, जिनपर सोने या चांदी की कलाई होती है, बहुत
उभरे रहते हैं ।

जरब्बी^५—वि० [अ० जरब] घाव करनेवाला । चोट पहुंचानेवाला

उ०—लियें मंड तेमं सुघल्लै जरब्बी । कटे सेन बहुवान मानहु
करब्बी ।—प० रासो, पृ० ८४ ।

जरबुलंदमसल—संज्ञा स्त्री० [अ० जरबुलंदमसल] कड़ावत । लोकोक्ति ।

जरमन^१—संज्ञा पुं० [अ०] १. जरमनी देश का निवासी । वह जो
जरमनी देश का हो ।

जरमन^२—संज्ञा स्त्री० जरमनी देश की भाषा ।

जरमन^३—वि० जरमनी देश संबंधी । जरमनी का । जैसे, जरमन
माल, जरमन सिलवर ।

जरमन सिलवर—संज्ञा पुं० [अ०] एक सफेद और चमकीली
योगिक धातु जो जस्ते, ताँबे और निकल के संयोग से
बनती है ।

विशेष—इसमें आठ भाग ताँबा, दो भाग निकल और तीन से
पाँच भाग तक अम्लता पड़ता है । निकल की मात्रा बढ़ा देने
से इसका रंग अधिक सफेद और भच्छा हो जाता है । इस
धातु के बरतन और गहने आदि बनाए जाते हैं ।

जरमनी—संज्ञा पुं० [अ०] मध्य यूरोप का एक प्रसिद्ध देश ।

जमुथ्रा^५—वि० [हि० जरना + मुथ्रा [वि० स्त्री० जरमुई] जल-
मरनेवाला । बहुत इर्ष्या करनेवाला ।

जरर—संज्ञा पुं० [अ० जरर] १. हानि । नुकसान । क्षति । उ०—
जब जुल्मी जरर मुक्त सुलेमान में देखा ।—कबीर मं०, पृ०
३८८ । २. आघात । चोट ।

क्रि० प्र०—घाना । पहुँचना ।—पहुँचाना ।

३. आकत । मुसीबत ।

जरर—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक बारहमासी घास जो मध्य प्रदेश
और बुंदेलखंड में बहुत होती है । इसे 'सेवाती' भी कहते हैं ।

जरवाना^५—क्रि० स० [हि० जलना] दे० 'जवाना' । उ०—न
जोगी जाग से ध्यावै । न तपसी देह जरवावै ।—कबीर मं०,
भा० ३, पृ० ७ ।

जरवारा^५—क्रि० [फ्रा० जर + हि० वाला (प्रत्य०)] कपड़े पेसनेवाला ।
धर्न । उ०—ते धन तिनकी ऊँची नजर है । कहक बनाय
दिग जरवारे जिनकी कलह नजर है ।—देवस्वामी (शब्द०) ।

जरस^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] घटा । घड़ियाल । उ०—जघ जी पर
टंगाती हूं मैं एक जरस । फिर आए सफर करतूँ जब हो
सरस ।—दक्खिनो० पृ०, १४६ ।

जरस^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की समुद्र की घास ।—(लश०)

जरहरि^५—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल का खेल । जनक्रीडा । उ०—
रुहिर तरंगिणि तीर भत गगु जरहरि खेल्लइ ।—कीर्ति०,
पृ० १०८ ।

जराकुश—संज्ञा पुं० [सं० यजकुश] पूँज के प्रकार की एक सुगंधित
घास जिसमें नीबू की सी सुगंध आती है ।

विशेष—यह कई प्रकार की होती है । दक्षिण भारत में यह
बहुत अधिकता से होती है । इससे एक प्रकार का तेल निक-
लता है जिसे नीबू का तेल कहते हैं और जो साबुन तथा
सुगंधित तेल आदि बनाने में काम आता है ।

जरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा । वृद्धावस्था ।

यी०—जराप्रस्त । जराप्रण ।

२. पुराणानुसार काल की कन्या का नाम । विस्त्रसा । ३. एक राक्षसी का नाम जो मगध देश की गृहदेवी थी । इसी की पत्नी भी कहते हैं । जरा नाम की एक राक्षसी जिसने जरासंध को खोड़ा था । दे० 'जरासंध' । उ०—जरा जरासंध की संधि जोरपी हुती भीम ता संध की चीर डरपी ।—सूर०, १०।४२।५ । ४. खिरनी का पेड़ । ५. प्रार्थना । प्रणम । बलाघा ।

यी०—जराबोध ।

६. पावन शक्ति (की०) । ७. वृद्धावस्था की शिथिलता (की०) ।

जरा^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्याघ्र का नाम ।

विशेष—इसी के बाण से भगवान् कृष्णचंद्र देवलोक सिंधारे थे ।

जरा^३—वि० [सं० जरंह] थोड़ा । कम । जैसे,—जरा से काम में तुमने इतनी देर लगा दी ।

यी०—जरा जरा = थोड़ा थोड़ा । जराभना = कमबेश । थोड़ा बहुत । जरा सा ।

जरा^४—क्रि० वि० थोड़ा । कम । जैसे,—जरा दीड़ो तो सही ।

मुहा०—जरा चलेगी — जरा बात बहेगी । तरवार होगी । उ०—
मैं तो समझी थी कि जरा चलेगी ।—तेर० कु०, पृ० २४ ।

जराप्रत^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जराप्रत] दे० 'जराप्रत' ।

जराप्रत—संज्ञा स्त्री० [सं० जराप्रत] १. रुदन । कंदन । २. विनती । मित्त (की०) ।

जराऊ^१—वि० [हि०] दे० 'जड़ाऊ' । उ०—गाँवरि कवम जराऊ पाऊं । दीन्ह असीस छाई तेहि ठाऊं ।—जायसी (शब्द०) ।

जराकुमार—संज्ञा पुं० [पुं०] जरासंध ।

जराप्रस्त—वि० [सं०] बुढ़ा । वृद्ध ।

जराजीर्ण—वि० [सं० जरा + जीर्ण] बुढ़ापे के कारण दुर्बल । बुढ़ा बुढ़ा । उ०—हो मलते कलेजा पड़े, जरा जीर्ण, निनिमेष नयनों से ।—अपरा, पृ० १५२ ।

जराति^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जराति] खेती । फसल । सप्रुद्धि । उ०—रेती बादशाही की जराति उजड़गा । देवीसिंध मेरा जोर देवना पड़ेगा ।—शिवर०, पृ० ६४ ।

जराती—संज्ञा पुं० [हि० जलना] वह शोरा जो बार बार उड़ाया गया हो ।

जरातुर—वि० [सं०] जरा से जर्जर । जराप्रस्त । वृद्ध । बूढ़ा (की०) ।

जराद—संज्ञा पुं० [सं०] टिड्डी ।

जराना^१—क्रि० सं० [हि० जरना] दे० 'जसाना' । उ०—पवन की पूत महाबल जोधा पल में संक जराई ।—सूर०, ११४० ।

जरापुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम ।

जराफत—संज्ञा स्त्री० [सं० जराफत] जरीफ होने का भाव । मसखरापन । परिहासप्रियता । उ०—उसके मिलाज में जराफत जियादा है ।—प्रेमचल०, भाग २, पृ० १०२ । २. हंसी-मजाक । परिहास ।

यी०—जराफतपसंद = विनोदप्रिय । हंसी । जराफत की पोट = हंसी की पोटली । हंसी ।

जराफा—संज्ञा पुं० [सं० जराफा] दे० 'जराफा' ।

जराबोध—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जो स्तुति करके प्रज्वलित की गई हो ।—(वेदिक) ।

जराबोधोय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम ।

जराभीत, जराभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव (की०) ।

जराभीस—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

जरायणि—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम ।

जराय^१—वि० [हि०] दे० 'जराव' ।

जरायम—संज्ञा पुं० [सं० 'जरीमह' का बहु व०] पाप । दोष । गुनाह । अपराध (की०) ।

जरायमपेशा—वि० [सं० जरायम पेशाह] जो अपराधी स्वभाव का हो । अपराधी । दोष या गुनाह करनेवाला । जुर्म करनेवाला ।

जरायु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जरायुज] १. वह भिल्ली जिसमें बच्चा बँधा हुआ उत्पन्न होता है । घाँवल । खेड़ी । उत्ख । २. गर्भाशय । ३. योनि । ४. जटायु । ५. अग्निजार या समुद्र-फल नामक वृक्ष । ६. कातिकेय के एक अनुचर का नाम । ७. साँप की केचुल (की०) ।

जरायुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राणी जो घाँवल या खेड़ी में लिपटा हुआ अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हो । पिंडज ।

जरार—वि० [सं० जरर] क्रूर । अग्नि पहुँचानेवाला । उ०—बड़ा जरार भादमी है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२५ ।

जराव^१—वि० [हि० जडना] जडाऊ । जिसमें नगीने आदि बड़े हो । जड़ा हुआ । उ०—(क) बंदी जराव लिलार दिए गहि डोरी दोऊ पटिया पहिराई ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) । (ख) सुंदर सूधी सुगोल रची बिधि कोमलता प्रति ही सरसात है । त्यों हरिप्रोध जराव जरे खरे कंकन कंचन के डरसात है ।—अयोध्या० (शब्द०) ।

जराशोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शोष रोग जो लोगों को वृद्धावस्था में हो जाता है ।

विशेष—इस शोष रोग में शरीर दुर्बल हो जाता है, उसे भोजन से मरचि हो जाती है और बल, वीर्य तथा बुद्धि का क्षय हो जाता है ।

जरासंध—पुं० [सं० जरासंध] महाभारत के अनुसार मगध देश का एक राजा । यह वृहद्रथ का पुत्र और कंस का श्वसुर था ।

विशेष—पुराणों के अनुसार यह दो टुकड़ों में उत्पन्न हुआ और 'जरा' नाम की राक्षसी द्वारा दोनों टुकड़ों को जोड़कर सजीव किया गया । इसलिये इसका नाम जरासंध, जरासुत आदि पड़ा । कृष्ण द्वारा अपने श्वसुर कंस के मारे जाने पर इसने मथुरा पर अठारह बार आक्रमण किया था । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अर्जुन और भीम को साथ लेकर कृष्ण इसकी राजधानी गिरिज में ब्राह्मण के देश में गए और उन राजाओं को छोड़ देने के लिये कहा जिन्हें उसने परास्त कर कैद

कर लिया था, किंतु जरासंध ने नहीं माना। अंततः भीम के साथ युद्ध करने की माँग स्वीकार कर ली। कहते हैं कई दिनों तक मल्ल युद्ध होने के बाद भी जब यह पराजित नहीं हुआ तब एक दिन कृष्ण का संकेत पाकर भीम ने दंड युद्ध में जरा राक्षसी द्वारा जोड़े गए अंग के दोनों विभागों को चीरकर इसे मार डाला था।

जरासिंध(७)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जरासंध'।

जरासुत—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

यौ०—जरासुतजित् = जरा राक्षसी के पुत्र जरासंध को जीतनेवाला। भीम।

जराह—संज्ञा पुं० [अ० जरह] दे० 'जरह'।

जरियो—वि० स्त्री० [स्त्री० जरिन्] बूढ़ा। बूढ़ी (स्त्री०)

जरित^१—वि० [सं०] १. बूढ़ा। जईफ। २. क्षीण। दुर्बल। कम (स्त्री०)।

जरित^२—वि० [हि०] बड़ना, अ० हि० जरना] दे० 'जड़ित'।—
उ०—पहुँची करनि कंठ कटुला बन्धो, कैहरि नख मनि जरित
जराह।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८६।

जरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जरिमन्] बुढ़ापा। जरा। वृद्धावस्था।

जरिया^१(७)—संज्ञा पुं० [हि० जरिया] दे० 'जरिया'। उ०—नग
कर मरम सो जरिया जाना। जरे जो अस नग हीर पखाना।
—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४१।

जरिया—वि० [हि० जरना] जो जलाने से उत्पन्न हो। जलाकर
बनाया या तैयार किया हुआ। जैसे, जरिया शोरा, जरिया
नमक।

यौ०—जरिया शोरा=एक प्रकार का शोरा जो भाफ उड़ाकर
बनाया जाता है। जरिया नमक = वह खारा नमक जो घाँव
से तैयार किया जाता है।

जरिया^२—संज्ञा पुं० [अ० जरियह् या जरिअह्] १. संबंध। लगाव।
हार। जैसे,—उमके गही अगर आपका कोई जरिया हो तो
बहुत जल्दी काम हो जायगा। २. हेतु। कारण। सबब।
३. उपाय। साधन। तदबीर। उ०—तौ पाई जरिया सिर
पर धरिया, विष ऊँधरिया तन तिरिया।—सुंदर० ग्रं०,
गा० १, पृ० २११।

जरिरक—संज्ञा पुं० [अ० जरिरक] दाहकर्मदी।

जरी^१—वि० पुं० [सं० जरिम्] [वि० स्त्री० जरिणी] बूढ़ा। बूढ़।

जरी(७)^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जरि] जड़ी। बूटी। उ०—तब सो जरी
अधुत भेद धाया। जो मरे हुत तिन्ह छिरिकि जियावा।—
जायसी (शब्द०)।

जरी—संज्ञा स्त्री० [अ० जरि] १. ताश नामक कपड़ा जो बादले से
बुना जाता है। २. सोने के तारों आदि से बना हुआ काम।

जरी^३—वि० सोने का। स्वर्णम। स्वर्णमय।

जरीद—संज्ञा पुं० [अ०] १. पत्रवाहक। कासिद। २. जामूस। गुमचर
(स्त्री०)।

जरीदा—संज्ञा पुं० [अ० जरिदह्] १. एकाकी व्यक्ति। अकेला आदमी
२. समाचारपत्र। प्रसवार (स्त्री०)।

जरीनाल—संज्ञा स्त्री० [हि० जरि+नाल (=ठोकर)] कहारों की
बोलचाल में वह स्थान जहाँ ईंटें घोर रोड़े पड़े हों।

जरीफ वि० [अ० जरिफ] परिहास करनेवाला। मसखरा। ठट्टे-
बाज। मसौलिया।

जरीब—संज्ञा स्त्री० [अ०] माप जिससे भूमि नापी जाती है।

विशेष—हिंदुस्तानी जरीब ५५ गज की घोर अंग्रेजी जरीब ६०
गज की होती है। एक जरीब में २० गट्टे होते हैं।

यौ०—जरीबकश। जरीबकशी = (१) जरीब द्वारा खेतों की
पैमाइश। (२) जरीब खींचने का काम।

मुहा०—जरीब डालना = भूमि को जरीब से नापना।

२. लाठी। छड़ी।

जरीबकश—संज्ञा पुं० [अ०] वह मनुष्य जो भूमि नापने के समय
जरीब खींचने का काम करता है।

जरीबपत(७)—संज्ञा पुं० [अ० जरिबपत] दे० 'जरिबपत'। उ०—
जरीबपत घौ छोड़े तासै, ताहि समुझि कै धरना।—सं०
हरिया०, पृ० १४५।

जरीबाना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुरमाना'। उ०—आगे तो जरी-
बाना, फेर अहलखाना रे हरी।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० ३५६।

जरीबी—वि० [अ०] (भूमि) को जरीब से नापी हुई हो।

जरीमाना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुरमाना'।

जरीली—वि० स्त्री० [हि० जरिना + ईला (प्रत्य०)] सोने के तारों से
निर्मित। जड़ावदार। जिसपर जड़ाव का काम हो। उ०—
कहं प्रभा श्यामल इंदनीली। मोती छरी सुंदर ही जरीली।
—श्यामा०, पृ० ३८।

जरुआ—संज्ञा पुं० [सं० जरा] जराबस्था। वृद्धावस्था। बुढ़ापा।
उ०—जोवन बाल वृद्ध अवस्था। जोवन हारिआ जरुआ
जित्ता।—प्राण०, पृ० २४२।

जरुथ^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मांस। गोشت।

जरुथ^२—वि० कटुवादी। कटुभावी।

जरुर^१—क्रि० वि० [अ० जरुर] [वि० जरुरी। संज्ञा जरुरत] आवश्यक।
निःसंदेह। निश्चय करके।

यौ०—जरुर जरुर = आवश्यकमेव।

जरुर^२—संज्ञा पुं० [अ० जरुर] हवा की बुकनी जो जरूम या घाँव
में छोड़ी जाय (स्त्री०)।

जरुरत—संज्ञा स्त्री० [अ० जरुरत] आवश्यकता। प्रयोजन।

क्रि० प्र०—पडना।—होना।

यौ०—जरुरतमद = (१) इच्छुक। आकांक्षी। (२) दीन।
दरिद्र। मुहताज। (३) भिक्षुक। भिक्षारी।

जरुरतन—क्रि० वि० [अ० जरुरतन] आवश्यकतावश। कारणवश।
जरुरत से।

जरुरियात—संज्ञा स्त्री० [अ० जरुरी का बहुव०] आवश्यक चीजें।

जरुरी—वि० [अ० जरुरी] १ जिसकी जरुरत हो। जिसके बिना

काम न चले । प्रयोजनीय । २. जो अवश्य होना चाहिए ।
आवश्यक । सापेक्ष ।

जखला ①—वि० [सं० जटा + हि० वाला (प्रत्य०)] अथवा हि० झड़ +
ऊला (प्रत्य०)] १. गर्भकालीन केशोंवाला । गर्भोत्पन्न केश
या जटा में युक्त । उ०—नित ही बजजन हित धनुस्सुखी ।
जसुदा जीवन लला जखली ।—घनानंद०, पृ० २३२ । २.
जड़न । जन्मजात लक्षण चिह्नों से युक्त ।

जखोटन—संज्ञा स्त्री० [सं० जखोटनी] जोक । उ०—कोर कजरारी
कंधों फरकत फेर फेर, सूकत जखोटन की धिरक थकैसी सी ।
—पजनेस०, पृ० ६ ।

जखोल—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत
होती है ।

विशेष—यह इमारत, जहाज और तोपों के पहिए बनाने के काम
आती है । यह बंगाल में, विशेषकर सिलहट के कछार में,
बटगाँव और उत्तरी नीलगिरि में बहुत होता है ।

जखोट ①—वि० [हि० जड़ना] जड़ाऊ । उ०—कोऊ कजरौट जखोट
लिए कर कोऊ मुखल कोऊ छाता ।—रघुराज (शब्द०) ।

जर्कबर्क—वि० [फा० जर्क बर्क] जिसमें खूब तड़क मड़क हो ।
मड़कीला । चमकीला । मड़कदार ।

जर्जर^१—वि० [म०] १. जीर्ण । जो बहुत पुराना होने के कारण
बेकाम हो गया हो । २. फूटा । टूटा । खंडित । ३. गूदा ।
बुढ़ा । ४ (ध्वनि) जो किसी पात्र के टूटने से हो (को०) ।

जर्जर^२—संज्ञा पुं० १. छरीला । बुढ़ा । पत्थरफूल । २. इंद की
पताका (को०) ।

जर्जरानना—संज्ञा स्त्री० [म० जर्जराना] एक मात्रिका का नाम जो
कान्तिकेय की धनुषी है ।

जर्जरता—संज्ञा स्त्री० [म० जर्जर + हि० ता (प्रत्य०)] पुरानापन ।
जीर्णता । उ०—मृति धिक्छो की जर्जरता में । निष्ठुर कर
की बर्बरता में ।—लहर, पृ० ३४ ।

जर्जरित—वि० [म० जर्जरित] १. जीर्ण । पुराना । २. टूटा । फूटा ।
खंडित । ३. पूर्णतः धातु या अभिभूत ।

जर्जरीक—वि० [म०] १. बहुत बूढ़ । बुढ़ा । २. जिसमें बहुत से छेद
हो गए हों । घनेक छिदवाला ।

जर्ण^१—संज्ञा पुं० [स०] १. (घटता हुआ या कृष्ण पक्ष का) बदमा ।
२. वृक्ष । पेड़ ।

जर्ण^२—वि० जीर्ण । पुराना । क्षीण ।

जर्ण—संज्ञा स्त्री० [हि० जलना, पु० हि० जरना] विरह । वियोग ।
जलन । जैसे जर्ण को भग ।

जर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी । २. योनि ।

जर्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन वाहीक देश का एक नाम । २.
उक्त देश का निवासी ।

जर्तिल—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल । बनतिलवा ।

जर्त^२—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जर्त' ।

जर्द—वि० [फा० जर्द] पीला । पीले रंग का । पीत ।

यौ०—जर्दगोश=छली । धूर्त । मक्कार । जर्दबगम = (१)
श्वेन जाति के शिकारी पक्षी । (२) पीली भाँसोंवाला ।
जर्दचोब=हरिद्रा । हल्दी ।

जर्दा—संज्ञा पुं० [फा० जर्दह्] दे० 'जरदा' ।

जर्दालू—संज्ञा पुं० [फा० जर्दालू] एक मेवा । जरदालू । खुबानी ।
विशेष—दे० 'खुबानी' ।

जर्दी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पीलापन । पीलाई । वि० दे० 'जरदी' ।

जर्दीज—संज्ञा पुं० [फा० जरदोज] दे० 'जरदोज' ।

जर्दीजी—संज्ञा स्त्री० [जरदोजी] दे० 'जरदोजी' ।

जर्नल—संज्ञा पुं० [अंग०] दे० 'जरनल' ।

जर्नलिस्ट—संज्ञा पुं० [अंग०] दे० 'पत्रकार' ।

जर्फ—संज्ञा पुं० [अंग० जर्फ] १. बरतन । भाजम । पात्र । २.
योग्यता । पात्रता । ३. सहनशीलता । गर्भारता (को०) ।

जर्ग^१—संज्ञा पुं० [अंग० जर्गह्] १. भ्रम । २. वे छोटे छोटे कण
जो सूर्य के प्रकाश में उड़ते हुए दिखाई देते हैं । ३. जौ का
सोवा भाग । ४. बहुत छोटा टुकड़ा या खंड ।

जर्ग^२—वि० दे० 'जरा' ।

जर्ग^३—संज्ञा स्त्री० सपत्नी । मौत । सोकन ।

जर्जक—वि० [अंग० जर्जक] धूर्त । मुहदेवी कहनेवाला । द्विजिह्व ।

यौ०—जर्जकखाना = धर्तावास । धूर्तों की बैठक ।

जर्जद—वि० [अंग० जर्जद] जरिहबलनर बनावेवाला । शस्त्र
निर्माता ।

यौ०—जर्जदखाना = शस्त्रागार ।

जर्जफ—वि० [अंग० जर्जफ] १. हंमोड । दिल्लीबाज । २.
प्रतिभाशील (को०) ।

जर्जर—वि० [अंग०] [संज्ञा जर्जरी] १. बलिष्ठ । प्रबल । २.
लड़ाका । बहादुर । बीर । ३. विशाल । भारी (सेना या
बोड़) ।

जर्जरा—संज्ञा पुं० [अंग० जर्जरह्] १. बहुत विशाल सेना । २. एक
भयंकर विषैला बिच्छू जिसकी पूँछ जमीन पर घिसटती
चलती है (को०) ।

जर्जही—संज्ञा स्त्री० [अंग० जर्जर + ई (प्रत्य०)] बहादुरी ।
वीरता । सुरमापन ।

जर्जह—संज्ञा पुं० [अंग०] [संज्ञा जर्जही] चीर फाड़ का काम
करनेवाला । फोड़ों आदि को चीरकर चिकित्सा करनेवाला ।
शल्यचिकित्सक । शल्यचिकित्सक ।

जर्जही—संज्ञा स्त्री० [अंग०] चीर फाड़ का काम । चीर फाड़ की
सहायता से चिकित्सा करने का काम । शल्यचिकित्सा ।
शल्यचिकित्सा ।

जर्वर—संज्ञा पुं० [सं०] नागों के एक पुरोहित का नाम जिसने एक
बार यज्ञ करके साँपों की रक्षा की थी ।

जर्हिल—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल । जर्तिल ।

जलंग^१—संज्ञा पुं० [म० जलङ्ग] महाकाल नाम की एक लता ।

जलंग^२—वि० जलसंबंधी। जलीय। जल का।

जलंगम—संज्ञा पु० [सं० जलङ्गम] चांडाल

जलंतो^७—वि० [हि० जलना] जलनेवाली। जलती हुई। प्रज्वलित। उ०—तन भीतर मन मानिया बाहर कलन लाग। ज्वाला ते फिर जल भया बुझी जलंती घाग।—कबीर सा० सं०, पृ०, ४५।

जलंधर—संज्ञा पु० [सं० जलन्धर] १. एक पौराणिक राक्षस का नाम जो शिव जी की कोपाग्नि से गंगा-समुद्र संगम में उत्पन्न हुआ था।

विशेष—पद्म पुराण में लिखा है कि यह जनमते ही इतने जोर से रोने लगा कि सब देवता व्याकुल हो गए। उनकी ओर से जब ब्रह्मा ने जाकर समुद्र से पूछा कि यह किसका लड़का है तब उसने उत्तर दिया कि यह मेरा पुत्र है, आप इसे ले जाइए। जब ब्रह्मा ने उसे अपनी गोद में लिया तब उसने उनकी दाढ़ी इतने जोर से खींची कि उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ा। इसी लिये ब्रह्मा ने इसका नाम 'जलंधर' रखा। बड़े होने पर हमने इंद्र की नगरी अमरावती पर अधिकार कर लिया। अतः मे शिव जी इंद्र की ओर से उससे लड़ने गए। उसकी स्त्री वृंदा ने, जो कालनेमि की कन्या थी, अपने पति के प्राण बचाने के लिये ब्रह्मा की पूजा आरंभ की। तब देवताओं ने देखा कि जलंधर किसी प्रकार नहीं मर सकता तब अतः में जलंधर का रूप धारण करके विष्णु उसकी स्त्री वृंदा के पास गए। वृंदा ने उन्हें देखते ही पूजन छोड़ दिया। पूजन छोड़ते ही जलंधर के प्राण निकल गए। वृंदा क्रुद्ध होकर शाप देना चाहती थी पर ब्रह्मा के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर वह मती हो गई।

२. एक प्राचीन ऋषि का नाम। ३. योग का एक बंध।

जलंधर—संज्ञा पु० [हि० जलोदर] दे० 'जलोदर'।

जलंबल—संज्ञा पु० [सं० जलम्बल] १. नदी। २. संजन।

जल^१—वि० [सं०] १. स्फूर्तिहीन। उँटा। जड़। २. गूढ़। ह्यज्ञान (को०)।

जल^२—संज्ञा पु० [सं०] १. पानी। २. उणीर। खस। ३. पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र। ४. उद्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में चौथा स्थान। ५. सुगंधवाला। नेत्रवाला। ६. धर्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य। वि० दे० 'दिव्य'।

जलमल्लि—संज्ञा पु० [सं०] १. पानी का भँवर। २. एक काला कीड़ा जो पानी पर तैरा करता है। पैरोवा। भौतुआ। उ०—भरत दशा नेहि अवसर कैमी। जल प्रवाह जल मल्लि गति कैसी।—सुलसी (शब्द)।

विशेष—इसकी बनावट खटमल की सी होती है, परंतु आकार में यह खटमल से बहुत बड़ा होता है। इसका स्वभाव है कि यह प्रायः एक ओर घूम घूमकर तैरता है। जलप्रवाह के विरुद्ध भी यह तेजी से तैर सकता है।

जलई—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ना या बीजल] वह काँटा जिसके दोनों ओर दो घंकुड़े होते हैं और दो तख्तों के जोड़ पर जड़ा जाता है। यह प्रायः नाव के तख्तों को जड़ने में काम आता है।

जलकंटक—संज्ञा पु० [सं० जलकण्टक] १. सिंघाड़ा। २. कुंभी।

जलकंडु—संज्ञा पु० [सं० जलकण्डु] एक प्रकार की खुजली जो पानी में बहुत काल तक लगातार रहने से पैरों में उत्पन्न होती है।

जलकंद—संज्ञा पु० [सं० जलकन्द] १. केला। बदली। २. काँदा। जलकंदरा।

जलकंदर—संज्ञा पु० [सं० जल + कन्दरी] काँदा नामक गुल्म जो प्रायः तालों के किनारे होता है।

जलक—संज्ञा पु० [सं०] १. शंख। २. कीड़ी।

जलकपि—संज्ञा पु० [सं०] शिशुमार या मूस नामक जलजंतु।

जलकपोत—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया जो पानी के किनारे होती है।

जलकना^७—क्रि० प्र० [हि० भलकना] चमकना। जगमगाना। देदीप्यमान होना। उ०—खिलवन से निकल जलकते दरबार में आया।—कबीर सं०, पृ० ३६०।

जलकरंक—संज्ञा पु० [सं० जलकरण्ड] १. नारियल। २. पद्म। कमल। ३. शंख। ४. लहर। उरग। जलपेता।

जलकर—संज्ञा पु० [हि० जल + कर] १. वह पदार्थ जो जलाशयों आदि में हो और जिसपर जमींदार की ओर से कर लगाया जाय। जैसे, मछली, सिंघाड़ा, कवचगट्टा आदि। २. इस प्रकार के पदार्थों पर का कर। ३. वह द्रव्य या कर जो नगरी में पानी देने के बदले में नगरपालिकाएँ वसूल करती हैं। पानी का कर।

जलकल—संज्ञा पु० [हि०] पानी पहुँचाने की कल। पानी का नल। यौ०—जलकल विभाग = दे० 'वाटर वर्क'।

जलकरक—संज्ञा पु० [सं०] १. सेवार। २. कीचड़। काई।

जलकल्मष—संज्ञा पु० [सं०] समुद्रमंथन में निकला हुआ विष (को०)।

जलकष्ट—संज्ञा पु० [सं० जल + कष्ट] नल का अभाव। पानी की कमी।

जलकांक्ष—संज्ञा पु० [सं० जलकाङ्क्ष] [स्त्री० जलकांक्षी] हाथी।

जलकांत—संज्ञा पु० [सं० जलकान्त] वायु। हवा। पवन।

जलकांतर—संज्ञा पु० [सं० जलकांतर] वरुण।

जलकाँदा—संज्ञा पु० [हि० जल + काँदा] दे० 'काँदा'।

जलकाक—संज्ञा पु० [सं०] जलबीधा नामक पक्षी।

पट्यो०—दास्यूह [कालकंटक]।

जलकामुक—संज्ञा पु० [सं०] १. सूर्यमुखी। २. कुटुंबिनी नाम का गुल्म (को०)।

जलकाय—संज्ञा पु० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह शरीरधारी जिसका जल ही शरीर है।

जलकिनार—संज्ञा पुं० [हि० जल + किनारा] एक प्रकार का रेखमी कपड़ा।

जलकिराट—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राह या नाक नामक जलजंतु।

जलकुंतल—संज्ञा पुं० [सं० जलकुन्तल] सेवार।

जलकुंभी—संज्ञा स्त्री० [हि० जल + कुंभीर] कुंभी नाम की वनस्पति जो जलाशयों में पानी के ऊपर होती है।

विशेष—दे० 'कुंभीर'—८।

जलकुंकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलकुक्कुट] एक जलपक्षी। मुर्गाबी। उ०—जैसे जल महँ रहै जलकुंकुरी, पंख लिस जल नाहि।—जग० ष०, भा० २, पृ० ८६।

जलकुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] मुर्गाबी। उ०—कहूँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट आवत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४५६।

जलकुक्कुभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जल की विड़िया। कुकुडी। बनमुर्गी।

पर्या०—कोयष्टि। शिवरी।

जलकुञ्जक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेवार। २. काई।

जलकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कूपी। कूप। २. तालाब। सर। ३. जलावत। धावत। भँवर [को०]।

जलकूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु।

जलकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुच्छल तारा जो पश्चिम में उदय होता है।

विशेष—इसकी चोटी या शिखा पश्चिम की ओर होती है और स्निग्ध तथा मूल में मोटी होती है। यह देखने में स्वच्छ होती है। फलित ज्योतिष के अनुसार इसके उदय से नौ मास तक सुभिक्ष रहता है।

जलकैलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलक्रीडा'।

जलकेश—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

जलकौआ—संज्ञा पुं० [हि० जल + कौआ] एक प्रकार का जलपक्षी।

विशेष—इसकी गर्दन सफेद, चौंच भूरी और शेष मांस शरीर काला होता है। मादा के पैर नर से कुछ विशेष बड़े होते हैं। यह विड़िया मारे यूरोप, एशिया, अफ्रीका और उत्तरी अमेरिका में पाई जाती है। इसकी संबाई दो से तीन हाथ तक होती है और यह एक बार में बार से छह तक घंटे देती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस खाने में स्निग्ध, भारी, वातनाशक, शीतल और बलवर्धक होता है।

जलक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] देह और पितृ आदि का तपंग।

जलक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रीडा जो जलाशयों आदि में की जाय। जलविहार। जैसे, तैरना, एक दूसरे पर पानी फेंकना।

जलखग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जो पानी के किनारे रहता है।

जलखर—संज्ञा पुं० [हि० जल + खर] दे० 'जलखरी'।

जलखरी—संज्ञा स्त्री० [हि० जल + काढ़ना, या खारी] रस्सी या

तागे की जाल की बनी हुई रैली या मोली जिसमें लोग फल आदि रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं।

जलखावा—संज्ञा पुं० [हि० जल + खाना] जलपान। कलेवा।

जलगर्द—संज्ञा पुं० [सं० जल + गर्द] पानी में रहनेवाला माँप। डेड़हा।

जलगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध के प्रधान शिष्य आनंद का पूर्वजन्म का नाम।

जलगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी में का भँवर। २. कछुपा। ३. वह देश जिसमें जल कम हो। ४. चौकोर तालाब [को०]।

जलघड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० जल + घड़ी] एक यंत्र जिससे समय का ज्ञान होता है।

विशेष—इसमें पानी पर तैरता हुआ एक कटोरा होता है जिसके पेंदे में छेद होता है। यह कटोरा पानी के नाँद में पड़ा रहता है। पेंदी के छेद से धीरे धीरे कटोरे में पानी आता है और कटोरा एक घंटे में भरता और डूब जाता है। डूबने के बाद फिर कटोरे को पानी से निकालकर खाली करके पानी की नाँद में डाल देते हैं और उसमें फिर पहले की तरह पानी भरने लगता है। इस प्रकार एक एक घंटे पर वह कटोरा डूबता है और फिर खाली करके पानी के ऊपर छोड़ा जाता है।

जलघरा—संज्ञा पुं० [हि० जल + घरा] वह स्थान जहाँ जल आदि रखा जाता है। नहाने का स्थान। उ०—ताकों श्रोनाथ जी के जलघरा में स्नान कराइये की सेवा सोपी।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २०६।

जलगुमर—संज्ञा पुं० [हि० जल + गुमना] पानी का भँवर। जलावत। चक्कर।

जलचत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह देश जिसमें जल कम हो। २. चौकोर तालाब [को०]।

जलचर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचरी] पानी में रहनेवाले जंतु। जलजंतु। जैसे, मछली, कछुआ, मगर, आदि। उ०—जलचर थलचर नमचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।—मानस, १।३।

यौ०—जलचरकेतु(५) = मीनकेतु। कामदेव। उ०—सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचर केतू।—मानस, १।१२५।

जलचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मछली। उ०—मधुकर मो मन अधिक कठोर। बिगसि न गयो कुंभ कचि लो बिधुरत नंदकिसोर। हमतें भली जलचरी बपुरी अपमो नेहु निबाह्यो। जल तें बिधुरि तुरत तन त्याग्यो पुनि जल ही को चाह्यो।—सूर०, १०।३७२६।

जलचादर—संज्ञा स्त्री० [सं० जल + हि० चादर] किसी ऊँचे स्थान से होनेवाला जल का भीना और विस्तृत प्रवाह। उ०—सहज सेत पंचतोरिया पहिरत अति छवि होती। जलचादर के दीप लो जगमगाति तन जोति।—बिहारी र०, दो० ३४०।

विशेष—प्रायः घनवानों और राजाओं आदि के स्थानों में भीमा के लिये इस प्रकार जल का प्रवाह कराया जाता है, जिसे जल-

धादर कहते हैं। कभी इसके पीछे घाले बनाकर उनमें दीपक की पत्ति भी जलाई जाती है जिससे रात के समय जलचादर के पीछे जगमगाती हुई दीपावली बहुत शोभा देती है।

जलचारी—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचारिणी] जल में रहनेवाला जीव। जलचर।

जलचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभीर या नाक नामक जलजंतु।

जलचौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चौलाई'।

जलजंतु—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र, प्रा० जलजंत] फुहारा। दे० 'जलयंत्र'। उ०—जलजंत छुट्टि महाराज प्राय। रानीन जुक्त मन मोद पाय।—प० रासो, पृ० ४०।

जलजंतु—संज्ञा पुं० [सं० जलजन्तु] जल में रहनेवाले जीवजंतु। जलचर।

जलजंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजन्तुका] जोर।

जलजंत्र—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र; प्रा० जलजंत्र, जलजन्त] भरना। फुहारा। उ०—चूं और सघन पवंत सुगंध। जलजंत्र छुट्टे उन्चे सबध।—ह० रासो, पृ० ६३।

जलजंबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजम्बुका] जलजामुन जो साधारण जामुन से छोटा होना है। दे० 'जलजामुन'।

जलजंबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजम्बुका] दे० 'जलजंबुका'।

जलज^१—वि० [सं०] जल में उत्पन्न होनेवाला। जो जल में उत्पन्न हो।

जलज^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। २. शंख। ३. मछली। ४. पनीहूँ नाम का वृक्ष। ५. सेवार। ६. मधुवेत। जलवेत। ७. जलजंतु। ८. सामुद्रिक या लोनार नमक। ९. मोती। १०. कुचले का पेड़। ११. चौलाई।

जलजन्म—संज्ञा पुं० [सं० जलजन्मन्] कमल (को०)।

जलजन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

जलजला^१—वि० [सं० जल + जल > जलजल] कोषी। बीस होने वाला। बिगड़ैल।

जलजला^२—संज्ञा पुं० [फा० जलजलह] भूकंप। भूडोल।

जलजलाना—क्रि० प्र० [सं० जलजल, प्रा० जल, भास, भल] भल भल करना। चमकना। उ०—वे हिलकर रह जात हैं, उजली धूप जलजलाती हुई नाचती निकल जाती है।—आकाश०, पृ० १२३।

जलजान^१—वि० [सं०] जो जल में उत्पन्न हो। जलज।

जलजान^२—संज्ञा पुं० पद्म। कमल।

जलजान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जलजान] दे० 'जलजान'। उ०—इहुप, पोत, नतका, पन्न, तरि, यहिन्न, जलजान। नाम नांव चढ़ि भव उदधि केते तरे प्रजान।—नंद० प्र०, पृ० ६१।

जलजामुन—संज्ञा पुं० [हिं० जल + जामुन] एक प्रकार का जामुन जिसके वृक्ष जंगलों में नदियों के किनारे प्रायः प्राय उगते हैं। इसके फल बहुत छोटे और पत्तें केनेर के पत्तों के समान होते हैं।

जलजावलि—संज्ञा स्त्री० [सं० जलज + जावलि] मोतियों की माला। उ०—खट लोल कपोल कलोल करे, कल कंठ बनी जलजावलि

है। भ्रंग भ्रंग तरंग उठे दुति की परिहे मनो रूप भवैधर रये।
—घनानंद, पृ० ५८५।

जलजासन—संज्ञा पुं० [सं०] कमल पर बैठनेवाले, ब्रह्मा।

जलजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] नक्र। नाक। घड़ियाल (को०)।

जलजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जलजीविन्] मत्नाह। मछुआ (को०)।

जलजोनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जल (= कूपीट) + योनि, प्रा० जोणि] अग्नि। पावक। उ०—जातवेद जलजोनि हरि चित्रमान वृहमान।—अनेकार्थ०, पृ० ४।

जलडमरूमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] भूगोल में जल की वह तलवी प्रणाली जो दो बड़े समुद्रों या जलों के मध्य में हो और दोनों को मिलाती हो।

जलडिब्ब—संज्ञा पुं० [सं० जलडिम्ब] शवूक। घोंघा।

जलतरंग—संज्ञा पुं० [सं० जलतरङ्ग] १. जल का हिलोर। जल की लहर। २. एक प्रकार का बाजा।

विशेष—यह बाजा घातु की बहुत सी छोटी बड़ी कटोरियों को एक क्रम से रखकर बनाया और बजाया जाता है। बजाने के समय सब कटोरियों में पानी भर दिया जाता है और उन कटोरियों पर किसी हलकी मुंगरी से आघात करके तरह तरह के ऊँचे नीचे स्वर उत्पन्न किए जाते हैं।

जलतरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जल + तरण, हिं० तरना] पानी में तैरने की विद्या। उ०—पसुभाषा श्री जलतरन, धातु रसाहन जातु। रतन परख श्री चातुरी, सकल भ्रम संग्यातु।—माधवानल०, पृ० २०८।

जलतरोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + तरोई] मछली। (हास्य)।

जलताडन—संज्ञा पुं० [सं०] पानी पीटना। जल को पीटने का काम। २. (लाक्ष०) निरर्थक कार्य। व्यर्थ का काम (को०)।

जलतापिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे हिलसा, हेलसा कहते हैं।

जलतापी—संज्ञा पुं० [सं० जलतापिन्] दे० 'जलतापिक'।

जलताल—संज्ञा पुं० [सं०] सलाई का पेड़ (को०)।

जलवित्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नजई का पेड़।

जलत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छाता। २. वह कुटी जो एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान तक पहुँचाई जा सके।

जलत्राम—संज्ञा पुं० [सं०] वह भय जो कुत्ते, शृगाल आदि जीवों के काटने पर मनुष्य को जल दलन अथवा उसका नाम सुनने से उत्पन्न होता है। अंग्रेजी में इसे 'हाइड्रोफोबिया' कहते हैं।

जलथंभ—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भ, जलस्तम्भन्] मद्यो प्रादि से जल का स्तम्भन करने या उसे रोकने की क्रिया। जलस्तम्भन। उ०—बिरह बिधा जल परस बिन बाँस्यन मो मन ताल। कछु जानत जलथंभ विधि दुर्जोधन लो लाल।—विहारो र०, दो० ४१४।

जलद^१—वि० [सं०] जल देनेवाला। जो जल दे।

जलद^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. मोथा। ३. कपूर। ४. पुराणानुसार शाकद्वीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम।

जलदकाल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल । बरसात ।

जलदक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु ।

जलदतिताला—संज्ञा पुं० [हि० जलदी + तिलावा] वह साधारण तिताला ताल जिसकी गति साधारण से कुछ तेज हो । यह कौवाली से कुछ विलंबित होता है ।

जलदुर्दुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य [को०] ।

जलदम्यु—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री डाकू । समुद्री जहाजों पर डकैती करनेवाले व्यक्ति ।

जलदाता—संज्ञा पुं० [सं० जलदान] तर्पण करनेवाला । देव, ऋषि और पितृ गणों को पानी देनेवाला [को०] ।

जलदान—संज्ञा पुं० [सं०] तर्पण [को०] ।

जलदाशन—संज्ञा पुं० [सं०] मायू का पेड़ ।

विशेष—प्राचीन काल में प्रवाद था कि बादल मायू की पत्तियाँ खाते हैं, इसी से मायू का यह नाम पड़ा ।

जलदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग जो चारों ओर नदी, भील आदि से सुरक्षित हो ।

जलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वाषाढा नाम का नक्षत्र । २. वरुण जो जल के देवता है ।

जलदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण ।

जलदोदो—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पोषा जो काई की तरह पानी पर फेलता है । इसके शरीर में लगने से खुजली पैदा होती है ।

जलद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ता, शंख आदि द्रव्य जो जल से उत्पन्न होते हैं ।

जलद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोन, जगमे खेन में पानी देते या नाव का पानी उलीचते हैं ।

जलद्विप—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्तनपायी जनजंतु । त्रि० ३० 'जलहस्ती'

जलधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । २. मुस्ता । ३. समुद्र । ४. तिनिस । तिनिस का पेड़ । ५. जलाशय । तालाब । भील । उ०—बहना दिन बीजह पत्युद राति पडंती देखि । रोही मझि डंग किग कजन जलधर देखि । ढोभा०, दू० ५६८ ।

जलधर केदारा—संज्ञा पुं० [सं० जलधर + हि० केदारा] एक संकर राग जो मेघ और केदारा के योग में बनता है ।

जलधरमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बादलों की श्रृंखला । २. बारह पक्षरों की एक वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में कमल, मगण, भगण, भगण और मगण (७७, ७८, ७९, ८०) होते हैं । जैसे—भो भाग भोहन हमको दे योगा । टापी ऊषो उन कुबजा सो भागा । साँचो ग्वालागन कर नहा देवी । प्रेमाभक्ती जलधरमाना लेखी ।

जलधरो—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर का या धातु आदि का बना हुआ वह धर्मा जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है । जलहरी ।

जलधार^१—संज्ञा पुं० [सं०] शाकदीप का एक पर्वत ।

जलधार^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधारा] ३० 'जलधारा' ।

जलधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी का प्रवाह । [पानी की धारा ।

२. एक प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्या करनेवाले पर कोई मनुष्य बराबर धार बाँधकर पानी डालता रहता है ।

जलधारी^१—वि० [सं० जलधारिन्] [वि० स्त्री० जलधारिणी] पानी को धारण करनेवाला । जलधारक ।

जलधारी^२—संज्ञा पुं० बादल । मेघ । उ०—श्रवण न सुनत, चरण गति वाके, नैन भये जलधारी ।—सूर ।

जलधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । उ०—बाँधो बननिधि नीर-नीधि जनधि सिधु बारीस । सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ।—मानस, ६।५ । २. एक सख्या जो दस शंख की होती है और कुछ लोगों के मत से दस नील की । ३. चार की संख्या [को०] ।

जलधिगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी । २. नदी । दरिया ।

जलधिज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

जलधिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी [को०] ।

जलधिरशाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र रूपी करधनीवाला अर्थात् पृथिवी [को०] ।

जलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक प्रकार की कल्पित धेनु ।

विशेष—इस धेनु की कल्पना जल के घड़े में दान के लिये की जाती है । इस दान का विधान अनेक प्रकार के महापातकों से मुक्त होने के लिये है, और इस दान का लेनवाला भी सब प्रकार के पातकों से मुक्त हो जाता है ।

जलन—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन, हि० जलना] १. जलने की पीड़ा या दुःख । मानसिक बेवना या ताप । दाह । २. बहुत अधिक ईर्ष्या या दाह ।

मुहा०—जलन निकालना = द्वेष या ईर्ष्या से उत्पन्न इच्छा पूरी करना ।

जलनकुल—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव ।

जलना—क्रि० प्र० [सं० ज्वलन] १. किसी पदार्थ का अग्नि के संयोग से झंगारे या लपट के रूप में हो जाना । दग्ध होना । भस्म होना । बलना । जैसे, लकड़ी जलना, मशाल जलना, घर जलना, दीपक जलना ।

यौ०—जलता बलता = होलिकाष्टक या पितृपक्ष का कोई दिन जिसमें कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता ।

मुहा०—जलती आग = भयानक विपत्ति । जलती आग में जूबना = जान बूझकर भारी विपत्ति में फँसना ।

२. किसी पदार्थ का बहुत गरमी या घाँच के कारण भाफ या कोयले आदि के रूप में हो जाना । जैसे, तवे पर रोटी जलना, कढ़ाही में घी जलना, धूप में घास या पोथे का जलना । ३. घाँच लगने के कारण किसी अंग का पीड़ित और विकृत होना झुलसना । जैसे, हाथ जलना ।

मुहा०—जले पर नमक छिड़कना या लगाना = किसी दुःखी या व्याधित मनुष्य को और अधिक दुःख या व्यथा पहुँचाना ।

जले फफोले फोड़ना = दुःखी या व्यथित व्यक्ति को किसी प्रकार, विशेषकर अपना बदला चुकाने की इच्छा से, और अधिक दुःखी या व्यथित करना। जले पाँव की बिन्ती = जो स्त्री हरदम घूमती फिरती रहे और एक स्थान पर न ठहर सके।

४. बहुत अधिक डाह। ईर्ष्या या द्वेष आदि के कारण कुढ़ना। मन ही मन संतप्त होना।

यौ०—जलना भुनना = बहुत कुढ़ना।

मुहा०—जली कटी या जली भुनी बात : वह लगती हुई बात जो द्वेष, डाह या क्रोध आदि के कारण बहुत व्यथित होकर कही जाय। जल मरना = डाह या ईर्ष्या आदि के कारण बहुत कुढ़ना। द्वेष आदि के कारण बहुत व्यथित हो उठना। उ०—तुम्ह अपनाये तब अनिही जब मनु फिर पारि है। हरखि है न प्रति भादरे निदरे न जरि भरि है।—तुलसी (शब्द०)।

जलनाडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलनाली'।

जलनाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी बहने का मार्ग। प्राणाली। नाली। मोरी [को०]।

जलनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. चार की सख्या।

जलनिर्गम—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का निकास।

जलनीम—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + नीम] एक प्रकार की कोनिया जो बड़ी होती है और प्रायः जलाशयों के निकट दलदली भूमि में उत्पन्न होती है।

जलनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार। शौवाल।

जलनीली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलनीलिका'।

जलपंडर(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० जल + पंडर, पंडुर] जलमय। पानी का साँप। उ०—सहजौ सोई सुमिरिये आलस ऊँच न आन। जन हरिया तन पेखगों ज्यो जलपंडर जान।—राम० चम०, पृ० ५८।

जलपक्क(पुं०)—वि० [सं० जलपक्क] जल में पकनेवाला। जल में पका हुआ। उ०—धीपक जलपक्क जेते गते। कटुवा बटुवा ने सब बने।—चित्रा०, पृ० १०३।

जलपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जलपक्षिन्] वह पक्षी जो जल के आस पास रहता हो।

जलपटल—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

जलपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. समुद्र। ३. पूर्वाषाढा नक्षत्र।

जलपथ—संज्ञा पुं० [सं०] नाली या नहर जिसमें से पानी बहता हो।

जलपना(पुं०)—क्रि० प्र०, क्रि० सं० [हिं०] दे० 'जल्पना'।

जलपवुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नहर। नाला। जलपथ [को०]।

जलपाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] खड़ाश की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय के उत्तरपूर्वीय भाग में तीन हजार फुट की ऊँचाई पर होता है और उसारी कनारा और द्रावनकोर के जंगलों में भी मिलता है। यह खड़ाश के पेड़ से छोटा होता है। इसका फल गुदेदार होता है और 'जंगली जैतून' कहलाता

है। इसके कच्चे फलों की तरकारी और भ्रवार बनाया जाता है और पके फल यों ही खाए जाते हैं।

जलपाटल—संज्ञा पुं० [हिं० जल + पटल] काजल। उ०—कज्जल जलपाटल मुखी नाग दीपसुत सोच। लोपांजन दग ले खली ताहि न देखे कोय।—नंददाम (शब्द०)।

जलपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का बर्तन। २. जल पीने का बर्तन [को०]।

जलपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह थोड़ा और हल्का भोजन जो प्रातःकाल कार्य आरंभ करने में पहले प्रथवा संध्या की कार्य समाप्त करने के उपरांत साधारण भोजन से पहले किया जाता है। क्लेवा। नाश्ता।

यौ०—जलपानगृह = वह सार्वजनिक स्थान जहाँ जलपान की मामूली मिलती हो तथा बैठकर खाने पीने की व्यवस्था हो।

जलपाराबत—संज्ञा पुं० [सं०] जलप्योत नाम की बिड़िया जो जलाशयों के किनारे रहती है।

जलपिंड—संज्ञा पुं० [सं० जलपिंड] अग्नि। आग।

जलपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

जलपिप्पलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल।

जलपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल नाम की औषधि।

जलपीपल—संज्ञा स्त्री० [सं० जलपीपली] पीपल के आकार की एक प्रकार की गन्धहीन औषधि।

विशेष—इसका पेड़ खड़े पानी में उत्पन्न होता है। पत्तियाँ बेंत की पत्तियों से मिलती जुलती और कोमल होती हैं। इसके तने में पास पास बहुत भी गांठें होती हैं और इसकी डालियाँ दो ढाई हाथ लंबी होती हैं। इसके फल पीपल के फल की तरह होते हैं, पर उनमें गंध नहीं होती। यह खाने में तोखी, कड़ुई, कसनी और गुण में मनकोषक, दीपक, पाचक और गरम होती है। इसे 'पंगतिरिया' भी कहते हैं।

पर्या०—महाराष्ट्री। शारदी। तोषवल्लरी। मत्स्यादिनी। मत्स्यगंधा। लांगली। शकुलादनी। चित्रपत्री। पाणुदा। तृणगीता। बहुशिला।

जलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. लज्जावंती की तरह का एक पौधा जो दलदली भूमि में उत्पन्न होता है। २. कमल आदि फूल जो जल में उत्पन्न होते हैं।

जलपृष्ठजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार।

जलपोत—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का जहाज।

जलपना(पुं०)—क्रि० प्र० [सं० जल्प] दे० 'जल्पना'। उ०—बोरे भद्र भद्र रुद्र जलपिय। कही सत्त संकर वन पपिय।—पृ० रा०, २५। ४८२।

जलप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेत या पितर आदि की उदकक्रिया। तरंग।

जलप्रदानिक—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में स्त्रीपर्व के अंतर्गत एक उपपर्व का नाम।

जलप्रपा—संज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण को पानी पिलाया जाता हो। पोमरा। सबील। प्याऊ।

जलप्रपात—संज्ञा पु० [सं०] १. किसी नदी आदि का ऊँचे पहाड़ पर से नीचे स्थान पर गिरना। २. वह स्थान जहाँ किसी ऊँचे पहाड़ पर से नदी नीचे गिरती हो। ३. वर्षाकाल। प्राशुद् श्रुतु। जलदागम (को०)।

जलप्रलय—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'जलप्लावन'।

जलप्रवाह—संज्ञा पु० [सं०] १. पानी का बहाव। उ०—भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जलधरि गति जैसी।—मानस, ३। २३३। २. किसी के शव को नदी आदि में बहा देने की क्रिया या भाव। ३. किसी पदार्थ को बहते हुए जल में छोड़ देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जलप्रांत—संज्ञा पु० [सं०] नदी या जलाशय के घासपास का स्थान।

जलप्राय—संज्ञा पु० [सं०] वह प्रदेश या स्थान जहाँ जल अधिकता से हो। धनूप देश।

जलप्रिय—संज्ञा पु० [सं०] १. मछली। २. चातक। पर्पहा।

जलप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चातकी। २. पार्वती। दुर्गा। दाक्षायणी। (को०)।

जलप्रेत—संज्ञा पु० [सं०] वह व्यक्ति जो जल में डूबकर मरने से प्रेत योनि प्राप्त करे।

जलप्लाव—संज्ञा पु० [सं०] ऊदबिलाव।

जलप्लावन—संज्ञा पु० [सं०] १. पानी की बाढ़ जिससे घासपास की भूमि जल में डूब जाय। २. पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जिसमें सब देश डूब जाते हैं।

विशेष—इस प्रकार के प्लावन का वर्णन अनेक जातियों के धर्मग्रंथों में पाया जाता है। हमारे यहाँ के शतपथ ब्राह्मण, महाभारत तथा अनेक पुराणों में वर्णित, वैतस्वत मनु का प्लावन तथा भुजलगाना और इसाद्यों के हजगत नूह का नूफान इसी कीटि का है।

जलफल—संज्ञा पु० [सं०] सिंघाड़ा।

जलबंध—संज्ञा पु० [सं०] जलबन्ध। मट्टनी।

जलबंधक—संज्ञा पु० [सं०] जलबन्धक। पत्थर मिट्टी आदि का बांध जो किसी जलाशय का जल रोक रखने के लिये बनाया जाता है।

जलबंधु—संज्ञा पु० [सं०] जलबंधु। मछली।

जलबालक—संज्ञा पु० [सं०] विधवाचल पर्वत।

जलबालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजनी।

जलबिंदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलबिंदुजा। यावना। शर्करा नाम की वस्तुपर घोषण जिससे फारसी में शीरबिंदु बहते हैं।

जलबिंद—संज्ञा पु० [सं०] जलबिंद। पानी का बुलबुला।

जलबिडाल—संज्ञा पु० [सं०] ऊदबिलाव।

जलविज्व—संज्ञा पु० [सं०] १. वह देश जहाँ जल कम हो। २.

केकड़ा। ३. कच्छप। कछुआ (को०)। ४. चौकोर झील या तालाब (को०)।

जलबुद्बुद—संज्ञा पु० [सं०] पानी का बुल्ला। बुलबुला।

जलबेत—संज्ञा पु० [सं०] जलवेतम् या जलवेत। जलाशयों के निकट की भूमि में पैदा होनेवाला एक प्रकार का बेत।

विशेष—इस बेत का पेड़ लता के आकार का होता है। इसके पत्ते बाँस के पत्तों की तरह होते हैं और इसमें फल फूल आते ही नहीं। कुरसियाँ, बेंचे इत्यादि इसी बेत के छिलके से बुनी जाती हैं।

जालबेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलवल्ली। जल में या जल के कारण उत्पन्न होनेवाली लताएँ। उ०—भय दिवाह माहुट्टु दुवि तपसरनी को कांप। जलबेली बिहु बागंविष ते जिन भए प्रलोप।—पृ० रा०, १। ४६५।

जलत्रही—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोची या तुरतुर का साग।

जलत्राही—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलत्रही'।

जलभंगरा—संज्ञा पु० [हि०] जल+भंगरा। एक प्रकार का भंगरा जो पानी में या पानी के किनारे होता है।

जलभँवरा—संज्ञा पु० [हि०] जल+भँवरा। काले रंग का एक कांडा जो पानी पर बड़ी शीघ्रता से दोड़ता है। इसे भँवरा भी कहते हैं।

जलभाजन—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'जलपात्र'।

जलभालू—संज्ञा पु० [हि०] जल+भालू। सील की जाति का एक जंतु।

विशेष—यह आकार में घाँठ नौ हाथ लंबा होता है और इसके सारे शरीर में बड़े बड़े बाल होते हैं। यह झुंडों में रहता है और इसकी सतह सफ़ेदी तक मादाओं के झुंड में एक ही नर रहता है। यह पूर्व तथा उत्तरपूर्व एशिया और प्रशांत महासागर के उत्तरी भागों में अधिकता से पाया जाता है।

जलभोति—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'जलवास'।

जलभू—संज्ञा पु० [सं०] १. मेघ। २. एक प्रकार का कपूर। ३. जलचोलाई। ४. वह स्थान जहाँ जल एकत्र कर रखा जाता है (को०)।

जलभू—संज्ञा स्त्री० वह भूमि जहाँ जल अधिक हो। जलप्राय भूमि। कच्छ। प्रमूर।

जलभू—संज्ञा स्त्री० जल में उत्पन्न (को०)।

जलभूषण—संज्ञा पु० [सं०] वायु। हवा।

जलमृत्—संज्ञा पु० [सं०] १. मेघ। बादल। २. एक प्रकार का कपूर। ३. जल प्लाव का पात्र या बरतन।

जलमंडल—संज्ञा पु० [सं०] जलमण्डल। एक प्रकार की बड़ी मकड़ी जिसके विष के संग्रह से मनुष्य मर जा सकता है। चिरेया बुदकर।

जलमंदूक—संज्ञा पु० [सं०] जलमण्डूक। प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। जलदंडुर।

जलमं—संज्ञा पु० [सं०] जन्म, पु० हि० जन्म] दे० 'जन्म'।

जलमक्षिका—संज्ञा पुं० [सं०] जलनिवासी एक कीट [को०] ।

जलमग्न—वि० [सं०] जल में डूबा हुआ । जल में निमग्न [को०] ।

जलमद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलपक्षी । मधुरंग । कीटिल्ला ।

जलमधूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलमहुधा' ।

जलमय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शिव की एक मूर्ति ।

जलमय^२—वि० जल से पूर्ण या जलनिर्मित [को०] ।

जलमर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलकपि' ।

जलमल—संज्ञा पुं० [सं०] फेन । भाग ।

जलमसि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । मेघ । २. एक प्रकार का कपूर ।

जलमहुधा—संज्ञा पुं० [सं० जलमधूक] एक प्रकार का महुधा जो दक्षिण में कोंकण की ओर जलाशयों के निकट होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ उत्तरी भारत के महुए की पत्तियों से बड़ी होती हैं और फूल छोटे होते हैं । वैद्यक में यह ट्ठा, व्रणनाशक, बलवीर्यवर्धक तथा रसायन और वमन को दूर करनेवाला माना गया है ।

पर्या०—दीर्घपत्रक । ह्रस्वपुष्पक । स्वादु । गौनिका । मधूलिका । क्रोत्रप्रिय । पतंग । कीरेष्ठ । गौरिकाज । माण्ड्य । मधुपुष्प ।

जलमातंग—संज्ञा पुं० [सं० जलमातङ्ग] दे० जलहस्ती [को०] ।

जलमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की देविणी जो जल में रहनेवाली मानी गई है । ये गिनती में गान हैं । इनके नाम हैं—(१) मल्ली, (२) रूमी, (३) वागही, (४) दुर्गा, (५) मकरी, (६) जलका और (७) जंतुका ।

जलमानुष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलमानुषी] पीछे नामक एक कल्पित जलजंतु जिसकी नाभि से ऊपर का भाग मनुष्य का सा और नीचे का मछरी के ऐसा होता है । उ०—सुरन सुरंगम देव बड़ाई । जलमानुष धनुषा मंद जाई ।—

जलमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलपथ' [को०] ।

जलमार्जार—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊदरिवाज ।

जलमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघमाला । बादलों का समूह । उ०—बादल काला बरसिया धत जलमाला धारि । कान लगी चामा करण मतवाला रंग गारि ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ७ ।

जलमुक^(१)—संज्ञा पुं० [सं० जलमुक, जलमुन्] मेघ । बादल । दे० 'जलमुष्' । उ०—मीर खोरद धंजुनह कारिद जलमुक नाई ।—घनकार्य०, पृ० ८२ ।

जलमुष्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । मेघ । २. एक प्रकार का कपूर ।

जलमुर्गा—संज्ञा पुं० [हि०] जलकुक्कुट । मुर्गाबो ।

जलमुलेठी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलमूले] जलाशय के तट पर पैदा होनेवाली मुलेठी ।

जलमूर्ध्नि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

जलमूर्त्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] करका । मोला ।

जलमोद—संज्ञा पुं० [सं०] उशीर । खस ।

जलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र] १. वह यंत्र (रहट, चरखी आदि) जिससे कुएँ आदि नीचे स्थानों से पानी ऊपर निकाला या उठाया जाता है । २. जलघड़ी । ३. फुहारा । फीफारा ।

यौ०—जलयंत्रगृह=फुहारा घर । वह घर जिसमें फुहारे लगे हों । जलयंत्रमंदिर=दे० 'जलयंत्रगृह' ।

जलयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह यात्रा जो अभिषेक आदि के निमित्त पवित्र जल लाने के लिये की जाती है । २. राजपुताने में प्रचलित एक उत्सव ।

विशेष—यह देवोत्थापिनी एकादशी के बाद चतुर्दशी को होता है । उस दिन उदयपुर के राणा भगने सरदारों के साथ सज-कर सड़े समारोह से किसी हृद के पास जाकर जल की पूजा करते हैं ।

३. वैष्णवों का एक उत्सव जो ज्येष्ठ की पूर्णिमा को होता है । इस दिन विष्णु की मूर्ति को खूब ठंडे जल से स्नान कराया जाता है ।

जलयान—संज्ञा पुं० [सं०] पवारी जो जल में काम आती है । जैसे, नाव, जड़क आदि ।

जलयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० जल + युद्ध] पानी में होनेवाली लड़ाई । जलसेनों द्वारा युद्ध ।

जलरंज—संज्ञा पुं० [सं० जलरंज] रंजक । बगुना ।

जलरंजक—संज्ञा पुं० [सं० जलरंजक] रंजक । बगुना ।

जलरंज—संज्ञा पुं० [सं० जलरंज] एक प्रकार का बगुना ।

जलरंज—संज्ञा पुं० [सं० जलरंज] १. आवने । भँवर । २. पानी में रूँद । जलकण । ३. मरि । मर्ष ।

जलरंज (पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० जलरंज + हि० रंज] रंजक । जल के रंजक । वरण के निपाटी । उ०—रंजक तुरंगी दान रा हिमगिर उलहटिपहि । गाने गीत तुरंगमुख जलरंज जल बटियाहि ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६ ।

जलरंज—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्री या सागर समक । २. नमक ।

जलराक्षसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल में रहनेवाली राक्षसी जिसका नाम भिहिका या घोरतः आकाशगामी जीवों की छाया में उड़ करने और खोज लेनी थी ।

जलराशि—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष शास्त्र के धनुमार कर्क, मकर, कुम्भ और मीन राशि । २. समुद्र ।

जलरास—संज्ञा पुं० [सं० जलराशि] समुद्र । जल का पुंजीभूत रूप । सागर । उ०—जैसे नदी समुद्र समावे द्वैत भाव तजि द्वै जलराम ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १५६ ।

जलरंज—संज्ञा पुं० [सं० जलरंज] दे० 'जलरंज' ।

जलरुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्ध ।

जलरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकर राशि । २. नमक । मकर (को०) ।

जललता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी की लहर । तरंग ।

जललोहित—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम ।

जलवरंट—संज्ञा पुं० [सं० जलवरण्ट] जल के अधिक संसर्ग से होने-
वाली एक प्रकार की पिटिका या द्रव्य [को०] ।

जलवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ का एक भेद । उ०—सुनत
मेघवर्तक साजि सेन ले प्राये । जलवर्त, वारिवर्त पवनवर्त,
बीजुवर्त, प्रागिवर्तक जलव सग ल्याये ।—सूर (शब्द०) ।
२. दे० 'जलावर्त' ।

जलवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जलपक्षी [को०] ।

जलवल्कल—संज्ञा पुं० [सं०] जलकुंभी ।

जलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा ।

जलवा—संज्ञा पुं० [प्र० जल्वह] १. शोभा । दीप्ति । तड़क भड़क ।
उ०—जहाँ देखो वहाँ मौज्जद मेरा कृष्ण प्याग है । उसी
का सब है जलवा जो जहाँ में घाशाकारा है ।—भारतेंदु
प्र०, भा० २, पृ० ८५१ । २. प्रदण्तन । नुमाइश । ३. दीदार ।
दर्शन [को०] ।

यो०—जलवागर = प्रकट । प्रत्यक्ष । उ०—हुआ जब आइने में
जलवागर में सब लिया बोसा । जो प्राया अपने काबू से तो
फिर मुँह देखना क्या है ।—कवित' को०, भा० ४, पृ० २६ ।

जलवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक बाजा । उ०—जनाघात, जनवाद,
विनययोग्य मालाप्रपन्न ।—वर्ण०, पृ० २० ।

जलवाना—क्रि० सं० [हि० जलाना] जलान का प्रेरणार्थक रूप ।
जलाने का काम दूसरे से कराना ।

जलवानोर—संज्ञा पुं० [सं०] जलवेत । मवुवेतम् ।

जलवायस—संज्ञा पुं० [सं०] कीड़िला पक्षी ।

जलवायु—संज्ञा पुं० [सं० जल + वायु] प्राबहवा । मौसम ।

जलवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] विषय पर्वत श्रेणी [को०] ।

जलवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. उकीर । खस । २. विष्णुकद ।

जलवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ । वारिवाह । २. वह व्यक्ति जो
जल ढोता हो [को०] । ३. एक प्रकार का कपूर [को०] ।

जलवाहक, जलवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] जल ढोनेवाला व्यक्ति ।
पनभरा । जलधरिया [को०] ।

जलविदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० जलवि-दुजा] दे० 'जलविदुजा' ।

जलविपुव—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक योग जो सूर्य
के कन्या राशि से मिलकर तुला राशि में सक्रामत होने के
समय होता है । तुला सक्रांत ।

जलवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] भरत के एक पुत्र का नाम ।

जलवृश्चिक—संज्ञा पुं० [सं०] भीगा मछली ।

जलवेत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलवेत' ।

जलवेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलवेत' ।

जलवैकृत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रशुभ योग । पानी या जलाशय
में आकास्मिक विकार या अद्भुत बातों का दिखाई पड़ना ।

विशेष—वृहत्संहिता के अनुसार नगर के पास से नदी का सरक
जाना, तालाबों का अचानक एकबारगी सूख जाना, नदी के
पानी में तेल, रक्त, मांस आदि बहना, जल का अकारण मैला

हो जाना, कुपे में घुसी, उवाला आदि देख पड़ना, उसके पानी
का खोलने लगना या उसमें से रोने, गाने, गर्जने आदि के
शब्दों का सुनाई पड़ना, जल के गंध, रस आदि का अचानक
बदल जाना, जलाशय के पानी का बिगड़ जाना, इत्यादि इस
योग में होते हैं । यह प्रशुभ माना गया है और इसकी शांति
का कुछ विधान भी उसमें दिया गया है ।

जलव्यथ जलव्यध—स्त्री० पुं० [सं०] कंकमोट या कोषा नाम
की मछली ।

जलव्याघ्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलव्याघ्री] सील की जाति का
एक जंतु जो बड़ा क्रूर और हिंसक होता है ।

विशेष—डोल डोल में यह जलभालू से कुछ ही बड़ा होता है
पर इसके शरीर पर के बाल जलभालू के बालों की तरह
बहुत बड़े नहीं होते । इसके शरीर पर जीते की तरह दाग
या धारियाँ होती हैं । यह प्रायः बजिण सागर में सेटलैंड
नामक टापू के पास होता है ।

जलव्याल—संज्ञा पुं० [सं०] जलगर्द । पानी में का साँप ।

जलशय—संज्ञा पुं० [सं०] विद्युत् ।

जलशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलशय' ।

जलशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षारिल । करका । ओला [को०] ।

जलशायी—संज्ञा पुं० [सं० जलशायिन्] विष्णु ।

जलशुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौँघा [को०] ।

जलशुनक—संज्ञा पुं० [सं०] जन का नकुन । ऊँचिलाव [को०] ।

जलशूक—संज्ञा पुं० [सं०] मेवार । काई

जलशूकर—संज्ञा पुं० [सं०] पुं गिर या नाक नामक जलजंतु ।

जलशोष—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा । घनावृष्टि [को०] ।

जलसंध—संज्ञा पुं० [सं०] धनराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि इसने सात्यकि के साथ
भीषण युद्ध करके तोमर से उसके बायाँ हाथ तोड़ दिया
था । अंत में यह सात्यकि के हाथ से मारा गया था ।

जलसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. नहाना । स्नान करना । २. धोना ।
पखारना । ३. मुर्दे को जल में बहा देना ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

जलसमाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग के अनुसार जल में डूबकर
प्राणत्याग ।

क्रि० प्र०—लेना ।

२. शव आदि को जल में डुबाना या तिरोहित करना ।

क्रि० प्र०—देना ।

जलसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से अंतिम
समुद्र ।

जलसपिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक ।

जलसा—संज्ञा पुं० [प्र० जलसह] १. आनंद या उत्सव मनाने
के लिये बहुत से लोगों का एक स्थान पर एकत्र होना,
विशेषतः लोगों का वह जमावड़ा जिसमें खाना पीना,
गाना बजाना, नाच रंग और आमोद प्रमोद हो । जैसे, —
कल रात को सभी लोग जलसे में गए थे । २. सभा,

समिति आदि का बड़ा आधिपेशन जिसमें सर्वसाधारण सम्मिलित हों। जैसे,—परसों आर्य समाज का सालाना जलसा होगा।

जलसाई(५)—संज्ञा पुं० [सं० जलशायो] भगवान् विष्णु। उ०—नींद, भूख आर व्यास तजि करती हो तन राख। जलसाई बिन पूजिहैं क्यों मन के अभिलाख।—मति० ग्रं०, पृ० ४४५।

जलसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलसिंहो] सील की जाति का एक जंतु।

विशेष—यह जंतु, पाँच सात गज सवा होता है और इसके सारे शरीर में लनाई लिए पीले रंग के या काले भूरे बाल होते हैं। इसकी गर्दन पर सिंह की तरह लंबे लंबे बाल होते हैं। यह अत्यंत बर्फी और शीत प्रकृति का होता है। यह अमेरिका और एशिया के बीच 'कमचटका' उपद्वीप तथा 'क्यूरायल' आदि द्वीपों के आस पास मिलता है। यह भुंज में रहता है। इसकी गरज बड़ी भयानक होती है और तंग किए जाने पर यह भयंकर रूप से धाकमण करता है।

जलसिक्त—वि० [सं०] जल से खींचा हुआ। गीला। आर्द्र [को०]।

जलसिरस—संज्ञा पुं० [सं० जलशिरसि] जल में या जलाशय के प्रति निकट पैदा होनेवाला एक प्रकार का सिरस वृक्ष जो साधारण भिरस वृक्ष में बहुत छोटा होता है। इसे कहीं कहीं हाडोन भी कहते हैं।

जलसोप—संज्ञा स्त्री० [सं० जलशुक्ति] वह सीप जिसमें मोती होता है।

जलमुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। जलज। उ०—जलमुत प्रीतम जानि तास सम परम प्रकासा। अहिरिपु मध्य कियो जनि निषचल बासा।—मुं० ग्रं०, भा० १, (जी०), पृ० ११०।

यौ०—जलमुत प्रीतम = मूर्य।

२. मोती। मुक्ता। उ०—श्याम हृदय जलमुत की माला, प्रतिहिं अमृषम छाजै (री)। मनहुं बलाक भाति नव धन पर, यह उपमा कछु आजै (री)।—सूर०, १०।१८०७।

जलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] सूचि। शिशुमार। २. बड़ा कछुपा। ३. जोंक। ४. एक प्रकार का पौधा जो जल में पैदा होता है। ५. कोषा। ६. कंकमोट या कोषा नाम की मछली। ७. मिषाड़ा।

जलमूस—संज्ञा पुं० [सं०] गहूँरपा रोग।

जलमूर्य, जलसूर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में व्यक्त सूर्य का प्रतिबिम्ब [को०]।

जलसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सीचना। पानी देना। जल का छिड़काव।

जलसेवन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलसेक'।

जलसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जो जहाजों पर चढ़कर समुद्र में युद्ध करती हो। जहाजी बेड़ों पर रहनेवाली फौज। नौसेना। समुद्री सेना।

जलसेनापति—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेनापति जिसकी अमीनता में जलसेना हो। समुद्री सेना का प्रधान अधिकारी जिसकी अमीनता में बहुत से लड़ाई के जहाज और जलसैनिक हों। जल या नौसेना का प्रधान या अध्यक्ष। नौसेनापति।

जलसेनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

जलस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भ] एक देवी घटना जिसमें जलाशयों या समुद्र में आकाश से बादल भुंक पड़ते हैं और बादलों में जल तक एक मोटा स्तंभ सा बन जाता है। मूंडी।

विशेष—यह जलस्तंभ कभी कभी सौ सवा सौ गज तक व्यास का होता है। जब यह बनने लगता है, तब आकाश में बादल स्तंभ के समान नीचे झुकने हुए दिखाई पड़ते हैं और थोड़ी ही बेर में बढ़ते हुए जल तक पहुँचकर एक मोटे खम्भे का रूप धारण कर लेते हैं। यह स्तंभ नीचे की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। यह बीच में भूरे रंग का, पर किनारे की ओर काले रंग का होता है। इसमें एक केंद्रेखा भी होती है जिसके आस पास भाप की एक मोटी लहर होता है। इससे जलाशय का पानी ऊपर की ओर खिंचने लगता है और बड़ा शोर होता है। यह स्तंभ प्रायः घंटों तक रहता है और बहुत बड़का भी है। कभी कभी कई स्तंभ एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। स्थल में भी कभी कभी ऐसा स्तंभ बनता है जिसके कारण उस स्थान पर जहाँ यह बनता है, गहरा कुंड बन जाता है। जब यह मरु होने को होता है, तब ऊपर का भाग तो उठकर बादल में मिल जाता है और नीचे का पानी हो कर पानी बरस पड़ता है। लोग इसे प्रायः अशुभ और हानिकारक समझते हैं।

जलस्तंभन—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भन] मंत्रादि से जल की गति का अवरोध करना। पानी बाधना।

विशेष—दुर्गंधन को यह विद्या आती थी अतएव वह शत्रु के सारे ज्ञान के बाद द्वैपायन हृद में जल का स्तंभन करके पड़ा था। इसका विशेष विवरण महाभारत में शल्य पर्व के २६वें अध्याय में द्रष्टव्य है।

जलस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] जल स्थल। जल और जमीन।

जलस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडदुर्वा।

जलस्थान, जलस्थाय—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का स्थान। जलाशय। तालाब [को०]।

जलस्त्राव—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैजरोम [को०]।

जलस्रोत—संज्ञा पुं० [सं०] जल का स्रोत। चरमा। जलप्रवाह [को०]।

जलह—संज्ञा पुं० [सं०] जल के फोवागैवाना छोटा स्थान। वह स्थान जहाँ फुहारा सगा हो [को०]।

जलहड्डी—संज्ञा पुं० [हिं० जल + हड्डी] मोती। उ०—ते सी लाव समापिया रावन लालच छडु। साँपरा सीवाँगा जिता, जेय हुले जलहडु।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ८०।

जलहर'—वि० [हिं० जल + हर] जलमय। जल से भरा हुआ।

उ०—दाढ़ करता करत निमिष में जल माँह धल थाप । बल माँ है जलहर करे, ऐसा समरथ थाप ।—दाढ़ (शब्द०) ।

जलहर^१—संज्ञा पु० [सं० जलघर, प्रा० जलहर] १. मेघ । बाधक । उ०—विजुलियाँ नीलजिज्याँ जलहर तूँ ही लज्जि । सूनी सेज निदेस प्रिय मधुरइ मधुरइ गज्जि । —ढोला०, दू० ५० । २. तालाब । मरवर । जलाशय । उ०—(क) बिरह जलाई में जल जलती जलहर जाउ । मों देखे जलहर जलें मंतों कहा बुझाउ ।—कबीर (शब्द०) । (ख) नैना भए अनाथ हमारे । मदन गोपाल वहाँ ते सजनी सुनियत दूर सिधारे । वे जलहर हम मोन बापुरी कैसे जियहि निनारे ।—सूर (शब्द०) । (ग) सुंदर सोल सिंगार सजि गई सरोवर पाल । चंद मुलभयउ जल हँस्यउ जलहर कंपी पाल ।—ढोला०, दू० ३६४ ।

जलहरण—संज्ञा पु० [सं०] बत्तीस अक्षरों की एक वणुवृत्ति या दंडक जिसके अंत में दो लघु पड़ते हैं । इसमें सोलहवें वणु पर यति होती है । जैसे,—भरत सदा ही पूजे पादुका उतै सनेम, इते राम सिय बंधु सहित सिधारे बन । सूपनखा कै कुरुप मारे खल भुंड घने, हरी दमसीस सीता राघव विकल मन ।

जलहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधरी] १. परधर या धातु आदि का वह भ्रष्टा जिसमें शिवालिंग स्थापित किया जाता है । उ०—लिंग जलहरी धर धर रोपा ।—कबीर सा०, पु० १५८१ । २. एक बर्तन जिसमें नीचे पानी भरा रहता है । लोहार इसमें लोहा गरम करके बुझाते हैं । ३. मिट्टी का घड़ा जो गरमी के दिनों में शिवालिंग के ऊपर टंगा जाता है । इसके नीचे एक बारीक छेद होता है जिसमें से दिन रात शिवालिंग पर पानी टपका करता है ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।

जलहस्ती—संज्ञा पु० [सं०] सील की जाति का एक जलजंतु जो स्तनपायी होता है ।

विशेष—यह प्रायः छह से आठ गज तक लंबा होता है और इसके शरीर का लमड़ा बिना बालों का और काले रंग का होता है । इसके मुँह में ऊपर की ओर १६ और नीचे की ओर १४ दाँत होते हैं । यह प्रायः दक्षिण महासागर में पाया जाता है, पर जब वहाँ अधिक सरदी पड़ने लगती है, तब यह उत्तर की ओर बढ़ता है । नर की नाक कुछ लंबी और मंड की तरह प्रागे की निकली हुई होती है और वह प्राय १४-२० मादाओं के भुंड में रहता है । गरमी के दिनों में इसकी मादा एक या दो बच्चे देती है । इसका मास काले रंग का और चरबी मिठा होता है और बहुत गरिष्ठ होने के कारण खाने योग्य नहीं होता । इसकी चरबी के लिये, जिससे मोमबत्तियाँ आदि बनती हैं, इसका शिकार किया जाता है । प्रयत्न करने पर यह पाला भी जा सकता है ।

जलहार—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० जलहरी] पानी भरनेवाला । पनिहारा ।

जलहारक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'जलहार' ।

जलहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी भरनेवाली । पनिहारिनी । २. नाली । जल के निकास की प्रणाली (को०) ।

जलहारी—संज्ञा पु० [सं० जलहारिन्] [स्त्री० जलहारिणी] पनिहारा । जलहारक ।

जलहालम—संज्ञा पु० [सं० जल+देश० हालम] एक प्रकार का हालम या चंशुर वृक्ष जो जलाशयों के निकट होता है । इसकी पत्तियाँ सलाद या मसाले की तरह काम में आती हैं और बीजों का उपयोग औषध में होता है ।

जलहास—संज्ञा पु० [सं०] १. भाग । फेंक । २. समुद्र का फेंक । समुद्रफेन ।

जलहोम—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का होम जिसमें वैश्वदेवादि के उद्देश्य से जल में आहुति दी जाती है ।

जलाञ्चल—संज्ञा पु० [सं० जलाञ्चल] १. पानी की नहर । पानी का सोता । २. भरना । निर्भर (को०) । ३. सेवार । काई (को०) ।

जलाञ्जल—संज्ञा पु० [सं० जलाञ्जल] १. सेवार । २. सोता । स्रोत ।

जलाञ्जलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी भरी अंजुनी । २. पितरों या प्रेतादिक के उद्देश्य से अंजुली में जल भरकर देना ।

मुहा०—जलाञ्जलि देना=त्याग देना । छोड़ देना । कोई संबंध न रखना ।

जलाटक—संज्ञा पु० [सं० जलाटक] मगर । नक । नाक (को०) ।

जलांतक—संज्ञा पु० [सं० जजान्तक] १. सात सभुद्रों में से एक सभुद्र २. हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र का एक पुत्र जो सत्यभामा गर्भ से उत्पन्न हुआ था ।

जलांबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलाम्बिका] कूप । कुप्रा ।

जलाक—संज्ञा स्त्री० [हि० जलना] १. पेट की जलन । २. तीक्ष्ण धूप की लपट । ३. तू ।

जलाकर—संज्ञा पु० [सं०] समुद्र, नदी, कूप, स्रोत, जलाशय आदि जो जलयुक्त हों ।

जलाकाक्ष—संज्ञा पु० [सं० जलाकाक्ष] हाथी ।

जलाकाक्षी—संज्ञा पु० [सं० जलाकाक्षिन्] दे० 'जलाकाक्ष' ।

जलाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलाकाश—संज्ञा पु० [सं०] १. जल में आकाश का प्रतिबिम्ब । २. अलगत आकाश या शून्य (को०) ।

जलाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल । जलपिपली ।

जलाखु—संज्ञा [सं०] ऊदबिलाव ।

जलाजल^(१)—संज्ञा पु० [हि० भलाभल] गोटे आदि की मालर । भलाभल । उ०—गति गयं ब कुच कुंभ किंवारी मनहुं चंद भहनावे । मोतिन हार जलाजल मानो खुमीबंत भलकावे ।—सूर (शब्द०) ।

जलाटन—संज्ञा पु० [सं०] कंक नामक पक्षी ।

जलाटीन—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलाटीन—संज्ञा पु० [सं० जेलाटीन] एक प्रकार की सरस । दे० 'जेलाटीन' ।

जलातक—संज्ञा पुं० [सं० जलातक] जलनास नामक रोग ।

जलातन—वि० [हि० जलना + तन] १. क्रोधो । बिगड़ल । बदमिजाज । २. ईर्ष्या । डाही ।

जलात्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जोंक । २. कुर्मा । कूप ।

जलात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा की समाप्ति का काल । शरत् काल ।

जलाव(पु)—संज्ञा पुं० [प्र० जलाव] दे० 'जलाद' । ३०—हो मन राम नाम को गाहूँ । चोरासी लख जिया जोनि लख भटकत फिरत घनाहूँ । करि हियाव सी सी जलाद यह हरि के पुर ले जाहि । घाट बाट कटु भटक होय नहि सब कोउ देहि निबाहि ।—सूर० (शब्द०) ।

जलाधार—संज्ञा पुं० [सं०] जन का आधारभूत स्थान । जलाशय [को०] ।

जलाधिदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण । २. पूर्वाषाढा नक्षत्र ।

जलाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण । २. फलित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो सवसर में जल का अधिपति हो ।

जलाना^१—क्रि० सं० [हि० 'जलना' का सक० रूप] १. किसी पदार्थ को अग्नि के संयोग से भंगारे या लपट के रूप में कर देना । प्रज्वलित करना । जैसे, भग्न जलाना, दीया जलाना । २. किसी पदार्थ को बहुत गरमी पहुँचाकर या आँच की सहायता से भाप या कोयले आदि के रूप में करना । जैसे, भंगारे पर रोटी जलाना, काढ़े का पानी जलाना । ३. अन्न के द्वारा विकृत या पीड़ित करना । झुलसाना । जैसे—भंगारे से हाथ जलाना । ४. किसी के मन में डाह, ईर्ष्या या द्वेष आदि उत्पन्न करना । किसी के मन में संताप उत्पन्न करना ।

मुहा०—जला जलाकर मारना = बहुत दुःख देना । खूब तंग करना ।

जलाना(पु)^२—क्रि० उ० [हि० जल + आना (प्रत्य०)] जलमय होना । जलमय होना । उ०—महा प्रलय जब होवे भाई । स्वर्ग मृत्यु पाताल जलाई ।—कबीर सा०, पृ० २४३ ।

जलापा^१—संज्ञा पुं० [हि० जल + प्रापा (प्रत्य०)] डाह या ईर्ष्या आदि के कारण होनेवाली जलन ।

क्रि० प्र०—सहना ।—होना ।

जलापा^२—संज्ञा पुं० [प्र० जलप पाउडर] एक विलायती शीश जो रेशक होती है ।

जलापास—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत ऊँचे स्थान पर से नदी आदि के जल का गिरना । जलप्रपात ।

जलामई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जलमय] जलमय । जल से परिपूर्ण । उ०—समुद्र मध्य द्वि के उधारि नैन दीजिए । दशो दिशा जलामई प्रत्यक्ष ध्यान दीजिए ।—सुंदर बं०, भा० १, पृ० ५४ ।

जलायुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलाशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्षाकाल । बरसात । २. समुद्र । सागर [को०] ।

जलाशय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गीला वस्त्र । २. जलसिक्त पंखा । ३. जल से भीगा हुआ पदार्थ या स्थान [को०] ।

जलाल—संज्ञा पुं० [प्र०] १. तेज । प्रकाश । उ०—खुदाबंद का जलाल दहकती आग के सट्टा दिखलाई देता था ।—कबीर म०, पृ० २०१ । २. महिमा के कारण उत्पन्न होनेवाला प्रभाव । आतंक ।

जलालत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जलालत] निरस्कार । अपमान । बेइज्जती । उ०—कुछ देर बाद मसूवा पलटा । बंबई के कारनामे याद आए । जलालत में नमो में खून दौड़ने लगा, सोचा क्या बंबई में मुँह दिखाएँ ।—कान्हे०, पृ० ३७ ।

जलाली—वि० [प्र०] प्रकाशित । दीप्त । आर्तक्युक्त । उ०—किया उस उपर एक जलाली नजर, जो हैवत सूर पानी टूट्टा सर बसर ।—दक्खिनी०, पृ० ११७ । २. ईश्वरीय । उ०—रुह जलाली करत हलाली, कपो दोजब आगी जलता है ।—कबीर म०, भा० २, पृ० १७ । ३. पराक्रमी । दुर्दम । अजेय । उ०—ऐसी सेन जलाली बर घोरमजेव ।—नट०, पृ० १६७ ।

जलालुक—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़ । भसींड़ ।

जलालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलालुका—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलालुका' [को०] ।

जलावत(पु)—वि० [सं० जलावत] पानीवाला । जल से परिपूर्ण । उ०—जलावत एक मिथ प्रगम है सूर्यमन सूरत लाया । उलट पलट के यह मन गरजे गगन मंडल धर पाया ।—पलटू०, पृ० ८१ ।

जलाव—संज्ञा पुं० [हि० जलना + आव (प्रत्य०)] १. खमीर या घाटे आदि का उठना ।

क्रि० प्र०—आना । पतला शीरा ।

२. वह घाटा जो उठाया हो । खमीर । ३. किवाच ।

जलावतन—वि० [प्र०] [संज्ञा स्त्री० जलावतनी] जिसे देश निकाले का दंड मिला हो । निर्वासित ।

जलावतनी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जलावतन + ई] बंडस्वरूप किसी अपराधी का शासक द्वारा देश से निकाल दिया जाना । देश-निकाला । निर्वासन ।

जलावतार—संज्ञा पुं० [सं०] नदी का वह स्थान जहाँ उतरने चढ़ने के लिये नाव आदि लगाई जाती है । घाट [को०] ।

जलावन—संज्ञा पुं० [हि० जलाना] १. लकड़ी, कंठे आदि जो जलाने के काम में आते हैं । इंधन । २. किसी वस्तु का वह अंश जो आग में उसके तपाए, जलाए या गलाए जाने पर जल जाता है । जलता ।

क्रि० प्र०—जाना ।—निकलना ।

३. मोसिम में कोल्हू के पहले पहन चलने का उत्सव । भंडरव ।

विशेष—इसमें वे सब काश्तकार जो उस कोल्हू में अपनी ईख पेरना चाहते हैं, अपने अपने खेत से थोड़ी थोड़ी ईख लाकर वहाँ पेरते हैं और उसका रस ब्राह्मणों, भिखारियों आदि को पिलाते तथा उससे गुड़ बनाकर बाँटते हैं ।

जलावर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर । नाल ।

जलाशय^२—वि० [सं०] १. जल में रहने या शयन करनेवाला । २. मूल । जड़ [को०] ।

जलाशय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ पानी जमा हो। जैसे, —गङ्गा, तालाब, नदी, नाला, समुद्र आदि। २. उशीर। खम। ३. मिथाड़ा। ४. ताम्रजक नामक वृण। ५. मत्स्य। मछली (को०)।

जलाशया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुदला। नागरमोषा।

जलाशयोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] नए बने झर या तालाब आदि की प्रतिष्ठा। दे० 'जयोत्सर्ग'।

जलाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृत्तगुंड या दीर्घनाल नाम का वृण। २. जलाणय (को०)। ३. गारम। बर (को०)।

जलाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूनी घाम।

जलाश्रीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा और चौड़ी तालाब (को०)।

जलासुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक।

जलाहल^१—वि० [हि० जलाहल, या सं० जलस्थल] जलमय। उ०—प्रातःप्रिया मधुपान के नीचे पनारे भए बहिके भए नारे। नारे भए ते भई नदियाँ नदियाँ नद हूँ गए काटि कितारे। बेगि चलो ए चलो ब्रज को नंदनंदन चाहत खेत हमारे। वे नद नहत मिधू भए अब मिधु ने द्व है जलाहल सारे।—(शब्द०)।

जलाहल^२—वि० [हि० भलाफल] भलभलाता हुआ। चमक दमक। नाला। देदीप्यमान। उ०—कठमरी बहु कति, मिली मुक्ता-हली। बाँकी० पं०, भा० ३, पृ० ३६।

जलाहय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। २. कुमुद। कुँई।

जलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक।

जली—वि० [सं०] पकटा। व्यक्त। स्पष्ट। प्रकाशमान। उ०—जिसे जरी नित ऐसा दाद हर दम चलता नैव। यूँ हर राजा वरतन पूरे नामून पावे ठौर।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

जलील—वि० [सं० जलील] १. तुच्छ। बेकदर। २. जिसे नीचा दिखाया गया हो। अपमानित। निरंकृत।

जलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक।

जलू, जलूक—संज्ञा स्त्री० [सं० जलू, जलूक] जलीका। जोक (को०)।

जलूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक।

जलूस—संज्ञा पुं० [सं० जलूस] बहुत गे लोगों का किसी उत्सव के उपलक्ष में सज धजकर, विशेषर किसी सतारी के साथ किसी विशेष स्थान पर जाने का नगर की गरिमा करने के लिये चलना।

क्रि० प्र० निकलना। निकालना।

० जलभा। धूमधाम। उ०—जोबन जलूस फूग लाये लों नगाय हड़ा पाय समुदाय मान भाती गान धरि कै।—दीन० पं०, पृ० १३८।

जलेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० जलेंद्र] १. वरुण। २. महासागर। ३. शिव (को०)।

जलंधन—संज्ञा पुं० [सं० जलंधन] १. बाडवागिन। २. वह पदार्थ जिसकी गरमी से पानी सूखता है। जैसे, सूर्य, विद्युत् आदि।

जलेश्वर—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] जलेश्वर।

जलेच्छया—संज्ञा पुं० [सं०] हाथीसूँड़ नाम का पीधा जो पानी में उत्पन्न होता है।

जलेज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। जलज।

जलेतम—वि० [हि० जलना + तम] १. जिसे बहुत जल्दी क्रोध आ जाता हो। जिसमें सहनशीलता बिल्कुल न हो। २. जो बाह, ईर्ष्या आदि के कारण बहुत जलता हो।

जलेबा—संज्ञा पुं० [हि० जलेबी] बड़ी जलेबी। वि० दे० 'जलेबी'।

जलेबी—संज्ञा स्त्री० [हि० जलाव (= खमीर या शोरा)] १. एक प्रकार की मिठाई जो कुंडलाकर होती है और खमीर उठाए हुए पतले मैदे से बनाई जाती है।

विशेष—इसके बनाने की पद्धति यह है कि पतले उठे हुए मैदे को मिट्टी के किसी ऐसे बरतन में भर लेते हैं जिसके नीचे छेद होता है। तब उस बरतन को घी की कड़ाही के ऊपर रखकर इस प्रकार धुमाते हैं कि उसमें से मैदे की धार निकलकर कुंडलाकार होती जाती है। एक चुकने पर उसे घी में से निकालकर घीरे में थोड़ी देर तक हवो देते हैं। मिट्टी के बरतन की जगह कभी कभी कपड़े की पोटली का भी व्यवहार किया जाता है।

२. बरियारे की जाति का एक प्रकार का पीधा।

विशेष—यह पीधा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है और इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं। इसके फूल के अंदर कुंडलाकार लिपटे हुए बहुत से छोटे छोटे बीज होते हैं।

३. गोल घेरा। कुंडली। लपेट। ४. एक प्रकार की प्रातिशबाजी जो मिट्टी के कसोरे में कुछ मसाले आदि रखकर घीर ऊपर कागज चिपका कर बनाई जाती है।

यौ०—जलेबीदार = जिसमें कई घेरे हो।

जलेभ—संज्ञा पुं० [सं०] जलहस्ता।

जलेरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूरजमुखी नाम के फूल का पीधा। २. एक गुल्म। कुटुबिनी (को०)।

जलेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की मनुचरी एक मातृका का नाम।

जलेबाह—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में गोता लगाकर बीजे निकालन-वाला मनुष्य। गोताखोर।

जलेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. समुद्र। जलाधिप।

जलेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मछली। २. विष्णु का एक नाम।

विशेष—जिस समय सृष्टि का लय होता है, उस समय विष्णु जल में सोते हैं इसी से उनका यह नाम पड़ा है।

जलेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. वरुण।

जलोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक।

जलोच्छ्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाशयों में उठनेवाली लहरें जो उनकी सीमा का उल्लंघन करके बाहर गिरती हैं। जल का उमड़कर अपनी सीमा से बाहर गिरना या बहना। २. वह प्रयत्न जो किसी स्थान से जल को बाहर निकालने अथवा उसे किसी स्थान में प्रविष्ट करने के लिये किया जाय।

जलोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ताल, कुशा या बावली आदि का विवाह ।

जलोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें नाभि के पास पेट के चमड़े के नीचे की तह में पानी एकत्र हो जाता है ।

विशेष—इस रोग में पानी इकट्ठा होने से पेट फूल जाता है और आगे की ओर निकल पड़ता है । वैद्यों का मत है कि पृतादि पान करने और वस्ति कर्म, रेचन और वमन के परत्वात् चटपट ठंडे जल से स्नान करने से शरीर की जलवाहिनी नमो दूषित हो जाती हैं और पानी उतर आता है । इसमें रोगी के पेट में शब्द होता है और उभका शरीर कांपने लगता है ।

जलोद्धतिगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बारह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में गण गण, जगण और गगण होता है (1 5 1, 1 5 1 5 1, 1 5 1) । जैसे—जु साजि सुपली हरी हि मिर में । घये जु बमुदेव रेन जन में । प्रभू चरण को छुपा जमुन में । जलोद्धति गति हरी छितक में । २ जल बढ़ने की स्थिति ।

जलोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुँवला । २. छोटी झाड़ी ।

जलोद्भूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुँदला नाम की घास ।

जलोद्भाद—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम ।

जलोदगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलीकस—संज्ञा पुं० [सं०] जलीका । जोंक ।

जलीका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलीकम्] जोंक ।

जल्द—क्रि० वि० [प्र०] [संज्ञा जल्दी] १. शीघ्र । चटपट । बिना विलंब । २. तेजी से ।

जल्दबाज—वि० [फ्रा० जल्दबाज] [संज्ञा जल्दबाजी] जो किसी काम के करने में बहुत, विशेषतः आवश्यकता से अधिक, जल्दी करता हो । बहुत अधिक जल्दी करनेवाला ।

जल्दबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जल्दबाजी] उतावली । शीघ्रता ।

जल्दी^१—संज्ञा स्त्री० [प्र०] शीघ्रता । फुरती ।

जल्दी^२—क्रि० वि० [प्र० जल्द] १० 'जल्द' ।

जल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. कथन । कहना । २. बकवाद । व्यर्थ की बात । प्रलाप । ३. न्याय के अनुसार सोलह पद्यों में से एक पदार्थ ।

विशेष—यह एक प्रकार का वाद है जिसमें वादी छल, जाति और निग्रह स्थान को लेकर अपने पक्ष का मंडन और विपक्षी के पक्ष का खंडन करता है । इसमें वादी का उद्देश्य तत्त्व-निर्णय नहीं होता किंतु स्वपक्ष स्थापन और परपक्ष खंडन मात्र होता है । वाद के समान इसमें भी प्रतिज्ञा, हेतु आदि पाँच अवयव होते हैं ।

जल्पक—वि० [सं०] बकवादी । वाचाल । बातूनी । उ०—तब मोनित की व्याम तृषित राम सायक निकर । तजो तोहि तेहि नाम कटु जल्पक निसिचर अधम ।—मानस, ६ । ३२ ।

जल्पन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बकवाद । प्रलाप । गणगण । व्यर्थ की बातें । २. बहुत बढ़कर कही हुई बात । डींग ।

जल्पन^२—वि० [सं०] बातूनी । जल्पक [क्रि०] ।

जल्पना—क्रि० प्र० [सं० जल्पन] व्यर्थ बकवाद करना । बहुत बढ़ चढ़कर बातें करना । डींग मारना । सीटना । उ०—(क) कट जल्पसि जड़ कपि बल जाके । बल प्रताप ब्रुषि तेज न ताके ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ विलोकु मम बाहु । लोचपाल बल बिपुल ससिप्रसन हेतु सब राहु ।—तुलसी (शब्द०) ।

जल्पना^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल्पन । बकवाद । डींग । उ०—भजि रघुपति कच हित धापना । छाड़हु नाथ तृषा जल्पना ।—मानस, ६ । ५५ ।

जल्पाक—वि० [सं०] व्यर्थ की बहुत सी बातें करनेवाला । जल्पक । बकवादी । वाचक ।

जल्पित—वि० [सं०] १. जो (बात) वास्तव में ठीक न हो । मिथ्या । २. कथित । उक्त । कहा हुआ ।

जल्ला^१—संज्ञा पुं० [हिं० झोल] १. झील ।—(लश०) । २. ताल । ३. होज । हड़ ।

जल्लाद^१—संज्ञा पुं० [प्र०] वह जिसका काम ऐसे पुमर्थों के प्राण लेना हो, जिन्हें प्राणदंड की आज्ञा हो चुकी हो । घातक । बधुषा ।

जल्लाद^२—वि० क्रूर । निर्दय । बेरहम ।

जल्हु—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

जल्वा—संज्ञा पुं० [प्र० जल्वह] १० 'जलवा' । उ०—बिना उसके जल्वा के दिल्ती कोई परी या हूर नहीं । सिवा यार के दूसरे का इस दुनिया में नूर नहीं ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १९४ ।

ज्यो—जल्वागार = १० 'जलवागर' । जल्वागाह = प्रदर्शनगृह । उ०—भोरों सारम लेता रहता गाता फिरता तू राहों में । रूप और रम राम भरी इन जीवन की जल्वागाहों में । दीप ज०, पृ० १५३ ।

जल्वागाय^१—[फ्रा० जल्वागाह] १० 'जल्वागाह' । उ०—जब इस बज्र छल की उरुसी दिवाय । तो जोहर हो ज्यों दिर मने जल्वागाय ।—दक्खिनी०, पृ० १३८ ।

जल्सा—संज्ञा पुं० [प्र० जल्सह] १० 'जल्सा' उ०—रेल में, जहाज में, खाने पीने के जल्सों में, पास बैठने में और बातचीत करने में जानपहुचान नहीं समझी जाती ।—भोनिवास ग्रं०, पृ० ३३० ।

जब^१—संज्ञा पुं० [सं०] वेग ।

जब^२—संज्ञा पुं० [सं० यव] जो ।

जवन^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जवनी] वेगवान् । वेग-युक्त । तेज ।

जवन^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग । २. स्कंद का एक सैनिक । ३. घोड़ा ।

जवन^३—संज्ञा पुं० [सं० यवन] १० 'यवन' । उ०—पृथ्वीराज जैचंद कलह करि जवन बुलायो ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०७ ।

जवन^४—संज्ञा पुं० [सं० यः पुनः] प्रा० जउण, या हिं०] १०

‘जोन’ अथवा ‘जिस’ । उ०—जवन विधि मनुष्य मरे सोई भाँति सम्हारो हो ।—धरम०, पृ० ६ ।

जवननाल—संज्ञा पु० [सं० यवननाल] जो का डंठल । दे० ‘यवननाल’ ।

जवनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पर्दा । दे० ‘यवनिका’ । उ०—(क) मोहन काहँ न उगिलो माटी । बड़ी बार भई लोचन उघरे भरम जवनिका फाटो । सूर निरखि नंदरानि भ्रमित भई कहति न मोठी खाटी ।—सूर०, १०।२५४ (ख) द्वार भरो-खनि जवनिका रुखि लै छुटकारुं ।—घनानंद, पृ० ३१३ । २. कनात । घेरा (को०) । ३. नाव की पाल (को०) ।

जवनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जवनिमन्] गति । वेग । क्षिप्रता (को०) ।

जवनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवाइन । अजवायन । २. तेजी । वेग ।

जवनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० ‘जवनिका’ (को०) ।

जवनी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनी] यवनी । यवन स्त्री । मुसलमान स्त्री । उ०—भूषण यों यवनी जवनी कहैं ।—कोऊ कहै सरजा सो हहारे । तू सबको प्रतिपालन हार विचारे भतार न मार हमारे ।—भूषण ग्रं०, पृ० ५१ ।

जवस्—संज्ञा पु० [सं०] वेग ।

जवस—संज्ञा पु० [सं०] श्वास ।

जवाँ—संज्ञा पु० [फ़ा० जवान का योगिक रूप] युवक । युवा ।

यौ०—जवामद । जवामदी । जवाँवस्त = भागवान् । सोभाग्य-शाली । जवाँसान = युवक । नई उमर का ।

जवाँमर्द—वि० [फ़ा०] [संज्ञा जवाँमर्दी] १. शूरवीर । बहादुर । २. स्वेच्छापूर्वक सेना में भरती होनेवाला सिपाही । वालेंटियर ।

जवाँमर्दी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बोरता । बहादुरी । मर्दानगी ।

जवा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० ‘जवा’ ।

जवा^२—संज्ञा पु० [सं० यव] १. एक प्रकार की सिलाई जिसमें तीन बखिया लगाते हैं और इस प्रकार मिलाई करके बर्ज को चीर-कर दोनों ओर सुरप देते हैं । २. सहस्रन का एक दाना ।

जवाइन—संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका, यवानी; हि० अजवाइन] अजवाइन । जवाइन ।

जवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जाना, पुं० हि० जावना] १. वह धन जो जाने के उपलक्ष में दिया जाय । २. जाने की क्रिया । गमन । ३. जाने का भाव ।

यौ०—जवाई जवाई = आवागमन । घाना जाना ।

जवाँखार—संज्ञा पु० [सं० यवखार] एक प्रकार का नमक जो जी के छार से बनता है, वैद्यक में यह पाचक माना गया है ।

जवाद्^१—संज्ञा पु० [अ० जवाद] दे० ‘जवादि’ । उ०—मृग नद जवाद् सब बरबि अंग । कसमीर अंगर सूर रहिय अंग ।—पृ० २०, ६।११२ ।

जवाद्^२—वि० [अ०] मुक्तहस्त । बानी । यशस्वी । वदान्य । फैयाज । उ०—पुनि कूरम सो बिरबियो छोड़ति देखि अजवाद् । बचन जोत तातो भयो सूरज प्रापु अवाद् ।—सुज्ञान०, पृ० ३३ ।

जवाद्दानी—संज्ञा स्त्री० [सं० यव + हि० जवा + दाना] चंपाकली नामक गहना जो गले में पहना जाता है ।

जवादि—संज्ञा पु० [अ० जवाद, जवाद; तुल० सं० जवादि] एक सुगंधित द्रव्य जो गंधमाजरी से निकाला जाता है । उ०—पहिले तजि प्रारस प्रारसी देखि घरीक बसे घनसारहि लै । पुनि पौछि गुलाब तिलोछि फुलेल अंगोछे में अंगोछे अंगोछन कै । कहि केशव भेद जवादि सो माँजि हते पर घाँजि में अंगन है । बहुरे हरि देखी तो देखों कहा सखि लाज ते लोचन लागे दहैं ।—केशव (शब्द०) ।

विशेष—राजनिघट्ट ने इसके गुणों का वर्णन प्राप्त होता है । यह पाले रंग की एक चिकनी लसदार चीज है जो कस्तूरी की तरह महकती है । इसे गौरासार, मृगधर्मज आदि भी कहते हैं । वि० दे० ‘गंधबिलाव’ ।

जवादि कस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [अ० या सं०] दे० ‘जवादि’ ।

जवाधिक—संज्ञा पु० [सं०] बहुत तेज दौड़नेवाला घोड़ा ।

जवान^१—वि० [फ़ा०] १. युवा । तरुण ।

यौ०—जवामद । जवामदी ।

२. बीर । बहादुर । पराक्रमी ।

जवान^२—संज्ञा पु० १. मनुष्य । पुरुष २. सिपाही । ३. बीर पुरुष ।

जवानिल—संज्ञा पु० [सं०] तीव्रगामी वायु । तेज हवा । घाँवी । तूफान (को०) ।

जवानी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवाइन । अजवायन ।

जवानी^२—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. यौवन । तरुण्य । युवावस्था । २. मस्ती । मद ।

मुहा०—जवानी उठना या जवानी उभड़ना = यौवन का प्रारंभ होना । तरुण्य का प्रारंभ होना । जवानी उतरना = उमर ढलना । बुढ़ापा आना । जवानी चढ़ना = (१) यौवन का आगमन होना । तरुण्य का प्रारंभ होना । (२) मद पर आना । मदमत्त होना । जवानी ढलना = उमर लसकना । जवानी उतरना । बुढ़ापा आना । जवानी पर आना = मस्ती में आना । यौवन के मद से मत्त होना । जवानी फटी पड़ना = जवानी का पूर्ण विकास पाना । उठती जवानी = यौवनारंभ । चढ़ती जवानी । उतरती जवानी = यौवनावसान । उमर लसकने की अवस्था । चढ़ती जवानी = यौवनारंभ । जवानी का प्रारंभ होना । उठती जवानी । चढ़ती जवानी माझा दीला = भरी जवानी में उत्साह की जगह अशक्तता या कम-जोरी दिखाना ।

जवाब—संज्ञा पु० [अ०] १. किसी प्रश्न या बात को सुन अथवा पढ़-कर उसके समाधान के लिये कही या लिखी हुई बात । उत्तर ।

यौ०—जवाबदावा । जवाबदारी । जवाबदेही ।

कि० प्र०—देना ।—पाना ।—माँगना ।—मिलना ।—लिखना ।

मुहा०—जवाब तलब करना = किसी घटना का कारण पूछना । कैफियत माँगना । जवाब मिलना या कोरा जवाब मिलना = निषेधात्मक उत्तर मिलना ।

२. वह जो कुछ किसी के परिणाम स्वरूप या बदले में किया जाय । कार्यरूप में दिया हुआ उत्तर । बदला । जैसे,—जब उधर से गोलियों की बोछार प्रारंभ हुई, तब इधर से भी

उसका जवाब दिया गया। ३. मुकाबले की चीज। जोड़। जैसे,—इस तस्वीर के जवाब में इसके सामने भी एक तस्वीर होनी चाहिए। ४. इनकार। अस्वीकार। नहीं करना। ५. नौकरी छूटने की आशा। मौकूफी। जैसे,—कल उन्हें यहाँ से जवाब हो गया।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

जवाबतलब - वि० [अ०] जिसके संबंध में समाधानकारक उत्तर माँगा गया हो। उत्तर या जवाब माँगने लायक।

जवाबतलबी—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाबतल + फ्रा० ई (प्रत्य०)] जवाब माँगना। उपर माँगना [को०]।

जवाबदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाब + फ्रा० दारी (प्रत्य०)] जवाब देही। उत्तरदायित्व। उ०—यदि आज भारत की किसी भाषा या साहित्य के सामने जवाबदारी का विराट् प्रश्न उपस्थित है तो वह हिंदीभाषा और हिंदी साहित्य के सामने है।—शुक्ल अभि० प्र० (जी०), पृ० १३।

जवाबदाता—संज्ञा पुं० [अ० जवाब + हि० दाता] वह उत्तर जो दाती के निवेदन पत्र के उत्तर में प्रतिवादी लिखकर अदालत में देता है।

जवाबदिही—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाब + फ्रा० दिही] दे० 'जवाब-देही'। उ०—(क) उससे जवाबदिही करने के लिये भी रूपे चाहियेंगे।—श्रीनिवास प्र०, पृ० २४३। (ख) मदन मोहन की ओर से लाला ब्रजकिशोर जवाबदिही करते हैं।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३५७।

जवाबदेह—वि० [अ० जवाब + फ्रा० दिह०] जिसपर किसी बात का उत्तरदायित्व हो। जिम्मेदार।

जवाबदेही—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाब + फ्रा० दिही] १. उत्तर देने की क्रिया। २. उत्तरदायित्व। उत्तर देने का भाव। जिम्मेदारी। जैसे,— मैं अपने ऊपर इतनी बड़ी जवाबदेही नहीं लेता।

जवाबसवाल—संज्ञा पुं० [अ० जवाब + सवाल] १. प्रश्नोत्तर। २. वाद विवाद।

जवाबी—वि० [अ० जवाब + फ्रा० ई (प्रत्य०)] जवाब संबंधी। जवाब का। जिसका जवाब देना हो। जैसे, जब बी तार, जवाबी काई।

जवार^१—संज्ञा पुं० [अ०] १. पड़ोस। २. आसपास का प्रदेश।

जवार^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जवार] एक अन्न। वि० दे० 'जुवार'।

जवार^३—संज्ञा पुं० [अ० जवाल] १. अवनति। बुरे दिन। २. जंजाल। भ्रंश। भार।

जवार^४—संज्ञा पुं० [हि० जवाहर] दे० 'जवाहर'। उ०—सो सज्जन मूरे पूरे हैं। हीरे रतन जवार, तुलसी ज०, पृ० २१०।

जवारा—संज्ञा पुं० [हि० जी] जी के हरे हरे प्रंकुर जो वनहरे के दिन स्त्रियाँ अपने भाई के कानों पर खोंसती हैं या श्रावणी और विजया दशमी में ब्राह्मण अपने यजमानों के हाथों में देते हैं। जई।

जवारिश—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह हकीमी या यूनानी औषध जो अक्नेह या चटनी जैसी होती है [को०]।

जवारिस^५—संज्ञा स्त्री० [अ० जवारिश] दे० 'जवारिश'। उ०—संत जवारिस सो जन पवै, जा की जान प्रगासा।—बरभ०, पृ० ५।

जवारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जव] एक प्रकार का हार जिसमें जी, छुहारे, मोती आदि मिलाकर गुंथे हुए होते हैं और जिसे कुछ जातियों में विवाह के उपरान्त समुर अपनी बहू को पहनाता है।

जवारी^२—संज्ञा स्त्री० १. सितार, तंबूरे, सारंगो आदि तारवाले बाजों में लकड़ी या हड्डी आदि का छोटा टुकड़ा जो उन बाजों में नीचे की ओर बिना जुड़ा हुआ रहता है और जिसपर होकर सब तार खूंटियों की ओर जाते हैं। यह टुकड़ा सब तारों को बाजे के तल में कुछ ऊपर उठाए रहता है। छोड़ी। २. तार-वाले बाजों में षड्ज का तार।

क्रि० प्र०—खोलना।—चढ़ाना।—बाँधना।—लगाना।

जवाल—संज्ञा पुं० [अ० जवाल] १. अवनति। उतार। घटाव।

क्रि० प्र०—ग्राना।—पहुँचना।

जु० २. जंजाल। आप्त। भ्रंश। बखेड़ा। उ०—छाँड़ के जवाल जाल महि तू गोपाल लाल तातें कहि दीनचाल फंद क्यों फँसानु है।—दीन० प्र०, पृ० १७०।

मुहा०—जवाल में पड़ना या फँसना = आप्त में फँसना। भ्रंश या बखेड़े में फँसना। जवाल में डालना = आप्त में फँसाना।

जवाशीर—संज्ञा पुं० [फ्रा० जावशीर] एक प्रकार का गंधाबिरोजा।

विशेष—यह कुछ पीले रंग का और कुछ पतला होता है। इसमें से ताड़पीन की गंध आती है। इसका व्यवहार प्रायः शीश्यों में होता है। वि० दे० 'गंधाबिरोजा'।

जवास—संज्ञा पुं० [सं० यवासक प्रा०, यवासप्र] एक कंदीला धूप जिसकी पत्तियाँ करोड़े की पत्तियों के समान होती हैं। उ०—अर्क जवास पात बिनु भरऊ। जम सुराज खन उद्यम गएऊ।—मानस, ४।१५।

विशेष—यह धूप नदियों के किनारे बलुई भूमि में घापसे घाप उगता है। बरसात के दिनों में इसकी पत्तियाँ गिर जाती हैं। वर्षा के बोन जाने पर यह फलता फूलता है। वैद्यक में इसको कड़वा, कसैला, हलका और कफ, रक्त, पित्त, खासी, नृणा तथा उदर का नाशक और रक्तशोधक माना गया है। कहीं कहीं गर्मी के दिनों में खस की तरह इसकी दृष्टियाँ भी लगाते हैं।

पर्या०—यास। यवासक। अनता। बालपत्र। अधिककंटक। दूर-मूल। समुपांत। दीर्घमूल। मरुद्वय। कटकी। अनदभं। सूक्ष्मपत्र।

जवासा—संज्ञा पुं० [सं० यवासक, प्रा० जवासप्र] दे० 'जवास'।

जवाही—संज्ञा पुं० [?] [वि० जवाही] १. घाल का एक रोग जिसमें पलक के भीतर की ओर किनारे पर बाल जम जाते हैं। प्रवाल। परवाल। २. बालों की घाल का एक रोग जिसमें उनकी घाल के नीचे मांस बढ़ जाता है।

जवाह—संज्ञा स्त्री० [हि० जवा (= दाना) + हव] बहुत छोटी हव।

जवाहर—संज्ञा पुं० [घ०] रत्न । मणि ।

जवाहरखाना—संज्ञा पुं० [घ० जवाहर + फा० खानह्] वह स्थान जिसमें बहुत से रत्न और आभूषण आदि रहते हों । रत्नकोष । तोषाखाना ।

जवाहरात—संज्ञा पुं० [घ०, जवाहर का बहुवचन रूप] बहुत से या अनेक प्रकार के रत्न और मणि आदि । जैसे,—घब उन्होने कपड़े का काम छोड़कर जवाहरात का काम शुरू किया है ।

जवाहिर—संज्ञा पुं० [घ०] दे० 'जवाहर' । उ०—जटिन जवाहिर आभरन छाँव के उठन तरंग । मपट गहृत कर लपट सी लपट लगी सब संग ।—स० सप्तक, पृ० ३७२ ।

यी०—जवाहिरखाना = दे० 'जवाहरखाना' ।

जवाहिरात—संज्ञा पुं० [घ०] जवाहिर का बहुवचन । दे० 'जवाहरात' ।

जवाही—वि० [हि० जवाह्] १. जिसकी छाँव में जवाह रोग हुआ हो । २. जवाह रोग युक्त । जैसे, जवाही भाल ।

जबिन—वि० [सं०] वेगवान् । गतिशील (को०) ।

जवी—वि० [सं० जविन्] वेगयुक्त । वेगवान् ।

जवी^२—संज्ञा पुं० १. धोड़ा । ऊँट ।

जवीय—वि० [सं० जवीयस्] अत्यंत वेगवान् । बहुत तेज ।

जवैया—वि० [हि० जाना + ऐया (प्रत्य०)] जानेवाला । गमनशील ।

जशन—संज्ञा पुं० [फा० जशन, मि० सं० यजन] १. धार्मिक उत्सव । २. किसी प्रकार का उत्सव । नाचगान । जलसा । ३. आनन्द । हर्ष ।

क्रि० प्र०—करना । मनाना । होना ।

४. वह नाच और गाना जिसमें कई वेश्याएँ एक साथ सम्मिलित हों । यह बहुधा महफिल या जमने की समारोह पर होता है । उ०—क्यों माई अब प्राज जशन होगा न ।—आरतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४२५ ।

जशन—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'जशन' । उ०—एक जशन सा वही जमेगा, मंदिराधों के दोर चलेगे । सैठ हमारे चुने गए हैं, सबकी कोसिल के मबर ।—मानव, पृ० ६८ ।

जस(पुं०)^१—क्रि० वि० [सं० पारस > जइस > जस, प्रा० जइहा] जैसा । उ०—जस जस मुरसा बदन बढ़ावा । तामु दुगुन कपि रूप देखावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जस(पुं०)^२—संज्ञा पुं० [सं० यज] दे० 'यज' ।

जसद—संज्ञा पुं० [सं०] जस्ता ।

जसवान(पुं०)—वि० [सं० यजस्वान्] यजस्वी । जिसका यज चारों ओर फैला हो । उ०—चढ़े मूर सार्वत मंत्र, रूपवान जसवान ।—हम्मीर, पृ० ५० ।

जसामत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई, गहराई या ऊँचाई । २. मोटापा । स्थूलता (को०) ।

जसारत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. शूरता । बहादुरी । २. वृष्टता । (को०) ।

जसी—वि० [सं० यजी] कीर्तिवाला । यशवाला । यशस्वी । उ०—जाति की जान देख जोखों में, जो जसी लोग जान पर खेले ।—चुभते, पृ० ७ ।

जसीम—वि० [प्र०] मोटा । स्थूल । पीवर । पीन (को०) ।

जसु(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० यशोदा] नंद की पत्नी । यशोदा । उ०—धोरोई दूध पूत के हितही । राखति जसु जमाइ नित नित ही ।—नंद० प्र०, पृ० २४८ ।

जसुरि—संज्ञा पुं० [सं०] बख्श ।

जसुवा, जसोवा(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'यशोदा' ।

जसुँद—संज्ञा पुं० [प्र०] एक प्रकार का वृक्ष ।

विशेष—इस वृक्ष के रेशों से रस्से आदि बनते हैं । इसकी लकड़ी मुलायम होती है और मेज कुर्सी आदि बनाने के काम में आती है । इसे बताउख भी कहते हैं । वि० दे० 'बताउल' ।

जसोमति(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'यशोदा' ।

जसोबा, जसोवै(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'यशोदा' । उ०—सो तुम मासु जसोवै, मोहि न जानहु बार । जहँ राजा बलि बाँधा छोरी पैठि पतार ।—जायसी (शब्द०) ।

जस्टिफाई—संज्ञा पुं० [प्र० जस्टिफाई] कंपोज किए हुए मैटर को इस मद्दलियत से बैठाना या कसना कि कोई लाइन या पक्ति छोटी बड़ी या कोई अक्षर इधर उधर न होने पाए । जैसे,—इस पेज का जस्टिफाई ठीक नहीं हुआ है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जस्टिस^१—संज्ञा स्त्री० [प्र०] न्याय । इन्स्पाफ (को०) ।

जस्टिस—संज्ञा पुं० वह जो न्याय करने के लिये नियुक्त हो । न्याय-मूर्ति । विचारपति । न्यायाधीश । जैसे—जस्टिस सुंदरलाल ।

विशेष—हिंदुस्तान में हाईकोर्ट के जज जस्टिस कहलाते हैं ।

जस्टिस आफ दि पीस—संज्ञा पुं० [प्र०] [सक्षिप्त रूप 'जे० पी०'] स्थानीय छोटे मजिस्ट्रेट जो शांतिरक्षा, छोटे मोटे मामलों आदि का विचार करने के लिये नियुक्त किए जाते हैं । शांति-रक्षक । जैसे, आनरेरी मजिस्ट्रेट ।

विशेष—बर्बई में कितने ही प्रतिष्ठित भारतीय जस्टिस आफ दि पीस हैं । इन्हे आनरेरी मजिस्ट्रेट ही समझना चाहिए । अब, मजिस्ट्रेट आदि भी जस्टिस आफ दि पीस कहलाते हैं । अपने महस्ले या आस पास दंगा फमाइ होने पर वे जस्टिस आफ दि पीस या शांतिरक्षक की हैसियत से शांतिरक्षा की व्यवस्था करते हैं ।

जस्त—संज्ञा पुं० [सं० जसद] दे० 'जस्ता' ।

जस्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] छनाँग । कुनाँच । जैसे,—शिकार का घाहट पाते ही वह जस्त मारने को तैयार हो जाती ।—संन्यासी, पृ० ५० ।

जस्ताई—वि० [हि० जस्ता] जस्ते के रंग का । खाकी ।

जस्ता—संज्ञा पुं० [सं० जसद] कालापन लिए सफेद या खाकी रंग की एक धातु ।

विशेष—इस धातु में गंधक का अंश बहुत होता है । इसका

व्यवहार धनेक प्रकार के कार्यों में, विशेषतः लोहे की चादरों पर, उन्हें मोरचे से बचाने के लिये कलई करने, बैठरी में बिजली उत्पन्न करने तथा बरतन बनाने आदि में होता है। भारत में इसकी सुराहियाँ बनती हैं जिनमें रखने से पानी बहुत जल्दी धीरे खूब ठंडा हो जाता है। इसे ताँबे में मिलाने से पीतल बनता है। जर्मन सिलवर बनाने में भी इसका उपयोग होता है। विशेष रासायनिक प्रक्रिया से इसका क्षार भी बनाया जाता है, जिसे 'सफेदा' कहते हैं और जिसका व्यवहार औषधों तथा रंगों में होता है। पहले यह धातु भारत और चीन में ही मिलती थी पर बाद में बेल्जियम तथा प्रुशिया में भी इसकी बहुत सी खानें मिलीं। यूरोपवालों को इसका पता बहुत हाल में लगा है।

जहदम^५—[प्र० जहदम, हि० जहनुम] दे० 'जहनुम'। उ०—जगत जहदम राचिया, भूटे कुल की लाज। तन बिनसे कुल बिनसिहै, गह्यो न राम जिहाज।—कबीर ग्रं०, पृ० ४७।

जह^५—क्रि० वि० [सं० यज्ञ, प्रा० जह्य, प्रप० जह] दे० 'जह'। उ०—प्रग गयो गिरि निकट विकट उद्यान भयंकर। जह न खबरि दिसि बिदसि बहुत जह जीव खयंकर।—पृ० रा०, ६।६४।

यो०—जह जह=जहाँ जहाँ। जिस जिस जगह। उ०—जह जह चरण पड़े संतन के तह तह बटाधार।—कहावत (शब्द०)। जह तह=जहाँ तहाँ। यत्र तत्र। उ०—जह तह लोगन्ह बेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा।—मानस, २।१६८।

जहंगीरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जहांगीरी] कलाई का एक आभूषण। वि० दे० 'जहंगीरी'।

जहङना^१—क्रि० प्र० [सं० जहन, हि० जहङना] १ घाटा उठाना। हानि उठाना। उ०—हिंदू गूंगा गुरु नहि, मुसलिम गोयमगोय। कहै कबीर जहङे दोऊ, मोह नींद में सोयः—कबीर० (शब्द०)। २. धोखे में आना। भ्रम में पड़ना। उ०—प्रव हस जाना हो हार बाजी को खेल। डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सौ खेल गकैल। हरि बाजी मुर नर मुनि जहङे माया चेटक लाया। घर में डारि सबन भरमग्गा दुषया ज्ञान न प्राया।—कबीर (शब्द०)।

जहङना^२—क्रि० प्र० [सं० जहन] १. हानि उठाना। २. धोखे में पड़ना। उ०—मैं लोग जहङ दयो धंसा सभे भुलान। कहा कोई नहि मानहि सब एकै माहें समान।—कबीर (शब्द०)।

जहक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० झकना] १. कुठन। चिड़। खीर। २. आवेश। उत्तेजना।

जहक^२—वि० [सं०] छोड़ने या त्याग करनेवाला। [को०]।

जहक^३—संज्ञा पुं० १. समय। २. बालक। शिशु। ३. पाप की केशुल [को०]।

जहकना^१—क्रि० प्र० [हि० चहकना] १. मस्त होना। प्रसन्न होना। आनंद से सराबोर होना। उ०—आजु कुंज मंदिर में

छके रंग दोऊ बैठे, केलि करे लाज छोड़ि रंग सों जहकि जहकि।—मारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १५०। २. उन्मत्त होना। प्रमत्त होना। उ०—जहकन लागी धूर कोइलें प्रमंद चंद सखि चटु और सो चकोर लागे जहकन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २२८।

जहकना^२—क्रि० प्र० [हि० झकना] १. चिड़ना। कुठना।

जहका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जंतु। कटाम। कटार [को०]।

जहतिया^१—संज्ञा पुं० [हि० जगात (=कर)] जगात उगाहनेवाला। भूमिकर या लगान वसूल करनेवाला। उ०—साँचो सो लिख-वार कहावै। काया ग्राम मसाहन करिके जमा बाँधि ठहरावै। मग्गय करे कैद अपनी में जान जहतिया लावै। माँडि माँडि करिहान कोष को फोता मजन भरावै।—मूर (शब्द०)।

जहत्स्वार्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें पद या वाक्य अपने वाच्यार्थ को छोड़कर अभिप्रेत अर्थ को प्रकट करता है। जैसे, 'मम घर गंगा माहि' यहाँ 'गंगा माहि' से 'गंगा के बीच' अर्थ नहीं है, किंतु 'गंगा के किनारे' अर्थ है। इसे जहल्लक्षणा भी कहते हैं।

जहदजहल्लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें एक या एक से अधिक देश का त्याग और केवल एक देश का ग्रहण किया जाय। वह लक्षणा जिसमें बोलनेवाले को शब्द के वाच्यार्थ से निकलनेवाले कई एक भावों में से कुछ का परित्याग कर केवल किसी एक का ग्रहण अभिप्रेत होता है। जैसे, यह वही देवदत्त है, इस वाक्य से बोलनेवाले का अभिप्राय केवल देवदत्त से है, न कि पहले के देवदत्त से या अब के देवदत्त से। इसी प्रकार छांदोग्य उपनिषद् में आए हुए 'तत्त्वमिदं श्वेतकेतो' अर्थात् 'तु श्वेतकेतु! वह तू ही है', आया है। इस वाक्य से कहनेवाले का अभिप्राय ब्रह्मा के सर्वज्ञत्व और श्वेतकेतु के अल्पज्ञत्व या ब्रह्मा की सर्वव्यापिता और श्वेतकेतु की एकदेशिता को एक ठहराने का नहीं है किंतु दोनों की नेतनता ही की ओर लक्ष्य है।

जहदना—क्रि० प्र० [हि० जहदा] १. कीचड़ होना। दलदल हो जाना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठाना।

२. निर्धिल पड़ना। पग जाना। दुर्ग जाना।

जहदा^१—संज्ञा पुं० [?] दलदल। बहुत अधिक कीचड़। उ०—जग जहदा में राचिया भूटे कुल की लाज। तन दीजे कुल बिनसिहै रटे न नाम जहाज।—कबीर (शब्द०)।

जहदम^५—संज्ञा पुं० [प्र० जहनुम] दे० 'जहनुम'।

जहन—पुं० [फा० जहन, जहन्] समझ। दिमाग। बुद्धि। धारणा। उ०—बादल नीच हो और इनमान ऊँच पर यह बात उनके जहन में नहीं आती थी।—सर कु०, पृ० १२।

जहना^५—क्रि० प्र० [सं० जहन] १. त्यागना। छोड़ना। परित्याग करना। २. नाश करना। नष्ट करना। उ०—जहि पर दोष अस्त भो कैसे। फिरिहै अब उलूक सुखमै है। (शब्द०)।

जहन्नम - संज्ञा पुं० [घ०] दे० 'जहनुम' ।

जहन्नम - संज्ञा पुं० [घ०] १. नरक । दोजब ।

मुहा० - जहन्नम में जाना (१) नष्ट या बर्बाद होना, (२) धार्मिक से दूर होना । जहन्नम में जाय । हमें कोई संबंध नहीं ।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग दुःखजनित उदासीनता प्रकट करने के लिये होता है । जैसे,— अब वह मानता ही नहीं, तब जहन्नम में जाय ।

२. वह स्थान जहाँ बहुत दुःख और कष्ट हो ।

जहन्नमरसीद— वि० [फा०] नरक में गया हुआ । दोजब ।

मुहा०—जहन्नमरसीद करना = नष्ट करना । नामनिशान मिटा देना । जहन्नमरसीद होना = नष्ट या बरबाद होना ।

जहन्नमी - वि० [फा०] जहन्नम में जानेवाला । नारकिक । नरकगामी ।

जहमत - संज्ञा स्त्री० [घ० जहमत] १. आपत्ति । मुसीबत । आपत ।

मुहा०—जहमत उठाना = दुःख भोगना । मुसीबत सहना ।

२. झंझट । बखेड़ा । तरद्दद ।

मुहा०—जहमत में पड़ना = झंझट में फँसना । बखेड़े में पड़ना ।

जहर^१ - संज्ञा स्त्री० [फा० जहर] १. वह पदार्थ जो शरीर के अंदर पहुँचकर प्राण ले ले अथवा किसी अंग में पहुँचकर उसे रोगी कर दे । विष । गरम ।

यौ०—जहरदार । जहरबाद । जहरमोहरा ।

मुहा०—जहर डगलना = (१) मर्मभेदी बात कहना जिससे कोई बहुत दुःखी हो । (२) द्वेषपूर्ण बात कहना । जली कटी कहना । जहर करना या कर देना = बहुत अधिक नमक मिर्च आदि डालकर किसी खाद्यपदार्थ को इतना कड़वा कर देना कि उसका खाना कठिन हो । जाय जहर का धूँब = बहुत कड़वा । बेसबाव या कड़वा होने के कारण बखाने योग्य । जहर का घूँट पीना = किसी अनुचित बात को देखकर क्रोध को मन ही मन दबा रखना । क्रोध को प्रगट न होने देना । जहर या बुझाया हुआ = जो बहुत अधिक उपद्रव या अनिष्ट कर सकता हो । जहर की गैठ = विष की गैठ । किसी पर जहर खाना = किसी बात या आदमी के कारण ग्लानि, ईर्ष्या, लज्जा आदि से आत्महत्या पर उताव होना । जैसे,— अपने इस काम पर तो उन्हें जहर खा लेना चाहिए । जहर देना = जहर पिलाना या खिलाना । जहर मार करना = धनिक्या या प्रशंसा होने पर भी जबरदस्ती खाना । जैसे,— कचहरी जाने की जल्दी थी, किसी तरह वो रोटियाँ जहर मार करक खाने बने । जहर मारना - विष के प्रभाव या शक्ति को दबाना या शांत करना । जहर में बुझाना = तीर, धुरे, तलवार, कटार आदि हथियारों को विषाक्त करना ।

विशेष—ऐसे हथियारों से जब वार किया जाता है, तब उससे धायल होनेवाले मनुष्य के शरीर में उनका विष प्रविष्ट हो जाता है जिसके प्रभाव से आदमी बहुत जल्दी मर जाता है ।

२. अप्रिय बात या काम । वह बात या काम जो बहुत नागवार मालूम हो । जैसे,—हमारा यहाँ आना उन्हें जहर मालूम हुआ ।

मुहा०—जहर करना या कर देना = बहुत अधिक अप्रिय या असह्य कर देना । बहुत नागवार बना देना । जैसे,— उन्होंने हमारा खाना पीना जहर कर दिया । जहर मिलाना = किसी बात को अप्रिय कर देना । जहर में बुझाना = किसी बात या काम को अप्रिय बनाना । जैसे,— आप जो बात कहते हैं, जहर में बुझाकर कहते हैं । जहर लगना = बहुत अप्रिय जान पड़ना । बहुत नागवार मालूम होना ।

जहर^२—वि० घातक । मार डालनेवाला । प्राण लेनेवाला ।

२. बहुत अधिक हानि पहुँचाने वाला । जैसे,— ज्वर के रोगी के लिये घी जहर है ।

जहर^३—(५) संज्ञा पुं० [हि० जोहर] दे० 'जोहर' । उ०—ग्यारह पुष कड़ा बाराहे अजय वचायो । साजि जहर बत नारि धर्म धर्म कुल रखायो ।—राधाकृष्ण दास (शब्द०) ।

यौ०—जहर बत = जोहर का बत । जोहर का कार्य रूप में परिणयन ।

जहरगत—संज्ञा स्त्री० [हि० जहर + गति] नाच की एक गत जिसमें घूँपव काढ़कर नाचा जाता है ।

जहरदार—वि० [फा० जहरदार] जहरीला । विषाक्त ।

जहरबाद—संज्ञा पुं० [फा० जहरबाद] रक्त के विकार के कारण उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का बहुत भयंकर और विषाक्त फोड़ा ।

विशेष—इस फोड़े के आरंभ में शरीर के किसी अंग में सूजन और जलन होती है और तदुपरांत उस अंग में फोड़ा होकर बढ़ने लगता है । इसका विष शरीर के भीतर ही भीतर घीघ्रता से फैलने लगता है और फोड़ा बड़ी कठिनता से अच्छा होता है । यह रोग मनुष्यों आदि को भी होता है । कहते हैं, इस फोड़े के अच्छे हो जाने पर भी रोगी अधिक दिनों तक नहीं जीता ।

जहरमोहरा—संज्ञा पुं० [फा० जहरमोहरा] १. काले रंग का एक प्रकार का पत्थर जिसमें सौंप काटने के कारण शरीर में चड़े विष को खींच लेने की शक्ति होती है ।

विशेष—यह पत्थर शरीर में उस स्थान पर रखा जाता है जहाँ सिर ने काटा हो । कहते हैं, यह पत्थर उस स्थान पर आपसे आप चिपकुँ जाता है, और जबतक सारा विष नहीं खींच लेता, तबतक वहाँ से नहीं छूटता । यह भी प्रवाद है कि यह पत्थर बड़े मेढक के सिर में से निकलता है ।

२. हरे रंग का एक प्रकार का पत्थर जो कई तरह के विषों को खींच लेता है ।

विशेष—यह बहुत ठंडा होता है, इसलिये गरमी के दिनों में लोग इसे घिसकर शरबत में मिलाकर पीते हैं । खून रोग का यह पत्थर, जिसे 'जहरमोहरा खताई' कहते हैं बहुत अच्छा होता है ।

जहरी—वि० [हि० जहर + ई (प्रत्य०)] १. जहरवाला । विषाक्त । उ०—कुछ धायुतमयी, कुछ कुछ जहरी, कुछ भिल-

मिलती, कुछ कुछ गहरी, वह आती ज्यों नभगंधार मेरी वीणा में एक तार । — ब्रवांसि, पु० ७४ । २. अत्यधिक मादक या नशीली वस्तु पीनेवाला । ३. कसर रखनेवाला । डाही । ईष्यालु ।

जहरीला—वि० [हि० जहर + ईला (प्रत्य०)] जिसके जहर हो । जहरदार । विषाक्त । जैसे, जहरीला फल, जहरीला जानवर ।

जहल—संज्ञा पुं० [अ० जहल] नासमभी । मूर्खता । बुद्धिहीनता । उ०—गेर उसकी हुकम सूँ करना अमल । नफा नई नुकसान है जानो जहन । —दक्खिनी०, पु० १६२ ।

जहला—संज्ञा पुं० [अ० जेल] कारागार । बंदीगृह ।

यी०—जहलखाना = जहलखाना । बंदीगृह । उ०—फेर जहलखाना रे हरी । —प्रेमघन०, भा० २, पु० ३५६ ।

जहल्लखाना—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'जहलखाना' ।

जहल्लो—क्रि० वि० [अ० यत्] दे० 'जहाँ' ।

जहाँ—क्रि० वि० [सं० यत्र, पा० यत्थ, प्रा० जह] १. स्थान-सूचक एक शब्द । जिस स्थान पर । जिस जगह । उ०—धन्य सो देस जहाँ सुरसरी । धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी । —तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—जहाँ का तहाँ = अपने पहरने के स्थान पर । जिस जगह पर हो, उमी जगह पर । जहाँ का तहाँ रह जाना = (१) दब जाना । आगे न बढ़ना । (२) कुछ कारवाई न होना । जहाँ तहाँ = इतस्ततः । इधर उधर । उ०—जहाँ तहाँ गई सकल तब सीता कर मन सोच । मास दिवस बीते मोहि मारिहि निसिबर गोच । —तुलसी (शब्द०) ।

२. सब जगह । सब स्थानों पर । उ०—रहा एक दिन अवधि कर अति आगत पुर लोग । जहाँ तहाँ मोचहि नारि नर कृण तनु राग वियोग । —तुलसी (शब्द०) ।

जहाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जहान । संसार । लोक ।

विशेष—इस रूप से इस शब्द का व्यवहार केवल कवित्व या बौगिक शब्दों में होता है । जैसे,— (क) जहाँ में जहाँ तक जगह पाइए । इमारत बनाने चले जाइए । (ख) जहाँगीरी । जहाँपनाह ।

यी०—जहाँआरा । जहाँगद्द = संसार में घूमनेवाला । घुमकड़ । जहाँमर्दी = विश्वभ्रमण । संसारपर्यटन । जहाँगीर = विश्वविजयी । विश्व का शासक । जहाँदीदा । जहाँदीदा । जहाँगीरी । जहाँपनाह ।

जहाँआरा—वि० [फ़ा०] संसार को शोभित करनेवाला [की०] ।

जहाँगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मुगल सम्राट् अकबर का पुत्र ।

जहाँगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. हाथ में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना ।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है । साधारणतः हाथ में पहनने की सोने की वे पटरियाँ जहाँगीरी कहलाती हैं, जिनपर नग जड़े होते हैं । कहीं कहीं पटरियों में कोड़े भी जड़े होते हैं

जिनमें बहुत छोटे छोटे घुँघुस्रों के फूल के आकार के गुच्छे पिरो दिए जाते हैं । इन पटरियों को भी जहाँगीरी कहते हैं ।

२. हाथ में पहनने की लाख की एक प्रकार की चूड़ी ।

जहाँदीद—वि० [फ़ा०] जिसने दुनियाँ को देखकर बहुत कुछ तजकबा किया हो । अनुभवी ।

जहाँदीदा—वि० [फ़ा० जहाँदीदह्] दे० 'जहाँदीद' ।

जहाँपनाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] संसार का रक्षक ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल बहुत बड़े राजा के लिये ही किया जाता है ।

जहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी ।

जहाज—संज्ञा पुं० [अ० जहाज] बहुत अधिक बड़ी नाव जो बहुत गहरे जल विशेषतः समुद्र में चलती है । पोत ।

विशेष—आजकल के जहाजों का अधिकांश भाग लोहे का ही होता है और उनके चलाने के लिये भाग के बड़े बड़े इंजनों से काम लिया जाता है । यात्रियों को ले जाने, माल ढोने, देशों की रक्षा करने, लड़ने भिड़ने आदि कामों के लिये साधारण जहाजों की लंबाई छह मी फुट तक होती है ।

यी०—जहाज का कोबा या काग । जहाज का पंखो = दे० ; जहाजी कोबा । उ०—(क) सीनापति रघुनाथ रू तुम लग मेरी दोर । जैसे काग जहाज को सूझा और न ठीर । —तुलसी (शब्द०) । (ख) मेरी मन अनत कहीं मुख पावै । जैसे उड़ि जहाज को पंखो फिर जहाज पे बावै । —सूर० १ । १६७७ ।

जहाजरान—संज्ञा पुं० [फ़ा० जहाज + फ़ा० रान (प्रत्य०)] जहाज चलानेवाला । पोत का चालक [की०] ।

जहाजरानी—संज्ञा स्त्री० [अ० जहाज + फ़ा० रानी (प्रत्य०)] जहाज चलाने का कार्य या पेशा । जहाज चलाना ।

जहाजी—वि० [अ० जहाज + फ़ा० ई (प्रत्य०)] जहाज से संबंध रखनेवाला । जैसे, जहाजी बेड़ा ।

यी०—जहाजी इत्र = एक प्रकार का निकुट इत्र जो कन्नीज में बनता है । जहाजी कोबा = (१) वह कोबा या कोई पक्षी जो किसी जहाज के छूटने के समय उभार बैठ जाता है । और जहाज के बहुत दूर समुद्र में निकल जाने पर जब वह उड़ता है, तब चारों ओर कहीं स्थल न देखकर फिर उसी जहाज पर आ बैठता है । साधारणतः हमने ऐम मनुष्य का अभिप्राय लिया जाता है जिसे अपने ठहरने या कोई काम करने के लिये एक के सिवा और कोई दूसरा स्थान न मिलता हो । (२) बहुत बड़ा धूलें । भारी बालाक । जहाजी डाकू = वे डाकू जो समुद्रों में अपना जहाज लेकर घूमने रहते हैं और साधारण जहाजों के यात्रियों की लूट लेते हैं । समुद्री डाकू । जहाजी सुपारी = एक प्रकार की सुपारी जो साधारण सुपारी से लगभग दूनी बड़ी होती है ।

जहान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] संसार । लोक । जगत् । जैसे,—जान है तो जहान है (कहावत) ।

विशेष—कविता और योगिक शब्दों में इस शब्द का रूप जहाँ हो जाता है । वि० दे० 'जहाँ' (यका) ।

जहानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय ।

जहालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] ध्यान । मूर्खता । मूढता ।

जहिया^५—क्रि० वि० [म० यद + हिया] जिस समय । जिस दिन । जब । उ०—(क) कह कबीर कुछ अछनो न जहिया । हरि बिरवा प्रतिगालेसि तहिया ।—कबीर (शब्द०) । (ख) भुजबल विश्व जितब तुम जहिया । घरिहे विष्णु मनुज तनु तहिया ।—तुलसी (शब्द०) ।

यो० - जहिया तहिया = जिस किसी समय ।

जही^५—क्रि० वि० [सं० यत्, पा० यथ] १. जहाँ ही । जिस स्थान पर । उ०—सत्त खंड सात ही तरंगिनो बहै जहीं । सोह रूप ईश को प्रणय जंतु सेवही ।—केशव (शब्द०) ।

यो०—जही जही तही तही । उ०—जही जहीं विराम लेत राम जू तही तही अनेक भाति के अनेक भोग भाग सो बढ़े ।—केशव (शब्द०) ।

२. ज्यों ही । उ०—तीय जही पहिराई । रामहि माल मुहाई । दुंदुभि देव बजाए । फूल तही बरसाए ।—केशव (शब्द०) ।

जहीन—वि० [अ० जहीन] १. बुद्धिमान । समझदार । २. धारणा शक्तिवाला । मेधावी ।

जहु—संज्ञा पुं० [सं०] संतान । संतति । धोलाद ।

जहूर—संज्ञा पुं० [अ० जहूर या जुहर] प्रकाश । शीति । उ०—जदपि रही है भावतो सकल जगत भरपूर । बल ब्ये वा ठौर की जहँ हूँ करे जहूर ।—स० सप्तक, पृ० १७८ ।

मुहा०—जहूर में घाना = प्रकट होता । जहूर में लाना = प्रकट करना ।

जहूरा^५—संज्ञा पुं० [अ० जहूर या जुहर] १. देखावा । दृश्य । उ०—ये सब यार यार लल पूरा । रूप न रेख जहूरा । २. ठाठ । ३. लड़का ।—(बाजारू) ।

जहेज—संज्ञा पुं० [अ० जहेज मि० सं० दायज] वह धन संपत्ति जो कन्या के विवाह में पिता की ओर में वर को प्रथवा उसके घरवालों को दी जाती है । दहेज ।

जहू—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. एक राजर्षि का नाम ।

विशेष—(१) पुराणों के अनुसार जब भगीरथ गंगा को लेकर आ रहे थे, तब जहू ऋषि मार्ग में यज्ञ कर रहे थे । गंगा के कारण यज्ञ में विघ्न होने के भय से इन्होंने उनकी पी जिया था । भगीरथ जी के बहुत प्रार्थना करने पर इन्होंने फिर गंगा को कान से निकाल दिया था । नभी से गंगा का नाम जहू सुता, जाहूनी आदि पड़ा । (२) इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया आदि पुत्रीवाचक शब्द लगाने में गंगा का अर्थ होता है ।

यो०—जहूजा । जहूकन्या । जहूतनया । जहूसममी । जहूसुता ।

जहूकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जहूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा । उ०—जो पृथ्वी के विपुल सुख की माधुरी है बिपाशा । प्राणी सेवा जनित सुख की प्राप्ति तो जहूजा है ।—प्रिय०, पृ० २४४ ।

जहूसनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जहूसममी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेशास शुक्ला सममी । कहते हैं, इसी दिन जहू ने गंगा को पान किया था । गंगासममी ।

जहूसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जहू—संज्ञा पुं० [अ० जहू] विष । जहर [को०] ।

जांगल^१—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गल] १. तीतर । २. मास । ३. वह देश जहाँ जल बहुत कम बरसता हो, धूप और गरमी अधिक पड़ती हो, हरे वृक्षों या घास घादि का प्रभाव हो, करीब मदार, बेल और शमी आदि के पेड़ हो और बारहसिंधे तथा हिरन आदि पशु रहते हों । ४. ऐसे प्रदेश में पाए जानेवाले हिरन और बारहसिंधे आदि जंतु जिनका मांस मधुर, हल्का, हलका, दीपन, रसिकारक, शीतल और प्रमेह, कठमाला तथा श्लोपद आदि रोगों का नाशक कहा गया है ।

जांगल^२—वि० जंगल संबंधी । जंगली ।

जांगलि—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गलि] १. सँपेरा । साँप पकड़नेवाला । मदारो । २. विषवेद्य । साँप का जहर उतारनेवाला ।

जांगलिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गलिक] दे० 'जांगलि' ।

जांगली—संज्ञा स्त्री० [सं० जाङ्गली] कौछ । केंवाच ।

जांगलू—वि० [फा० जंगल] गँवार । जंगली । उजड़ ।

जांगी—संज्ञा पुं० [फा० जंग ?] नगाड़ा ।—(डि०) ।

जांगुल—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुल] १. तोरई । तरोई । २. विष । ३. दे० 'जंगुल' ।

जांगुलि—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुलि] साँप पकड़नेवाला । गारुडो । सँपेरा ।

जांगुलिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुलिक] दे० 'जांगुलि' ।

जांगुली—संज्ञा स्त्री० [सं० जाङ्गुली] साँप का विष उतारने की विद्या ।

जांचिक—संज्ञा पुं० [सं० जांचिक] १. उष्ट्र । ऊँट । २. एक प्रकार का पृग जिसे शिकारी भी कहते हैं । ३. वह जिसकी जीविका बहुत दोड़ने आदि से ही चलती है । जैसे, हरकारा ।

जांतव—वि० [सं० जान्तव] जंतु संबंधी । जंतुजन्म ।

जांब^५—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बव] जामुन का फल या वृक्ष ।

जांबवंत—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवत् > जाम्बवन्त] दे० 'जांबवान्' ।

उ०—(क) महाधीर गंभीर वचन सुनि जांबवंत सभभाए । बड़ी परस्पर प्रीति रीति तब भूषण सिया दिसाए ।—सूर (शब्द०) । (ख) जांबवंत सुतासुत कहाँ मम सुता बुद्धि वंत पुरुष यह सब संभारे ।—सूर (शब्द०) ।

जांबव—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बव] १. जामुन का फल । जंबू फल । २. जामुन के फल से बनी हुई शराब । जामुन का बना मद्य । ३. जामुन का सिरका । ४. सोना । स्वर्ण ।

जांबवक—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवक] दे० 'जांबव' ।

जांबवत्—संज्ञा पुं० [पुं० जाम्बव] दे० 'जांबवान्' ।

जांबवती—संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवती] १. जाम्बवान् की कन्या जिसके साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था । उ०—(क)

जांबवती धरपी कन्या भरि मणि राखी समुहाय । करि हरि ध्यान गए हरिपुर को जहाँ योगेश्वर जाय ।—सूर (शब्द०) । (ख) रिच्छराज वह मनि तासों लै जांबवती की दीन्हों । जब प्रसेन को बिलेव भई तब सत्राजित सुघ लीन्हों ।—सूर०, १० । ४१६० ।

विशेष—भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण जब स्वयंसेवक मणि की खोज में जंगल में गए थे, तब वही उन्होंने जांबवान् को परास्त करके वह मणि पाई थी और उसकी कन्या जांबवती से विवाह किया था ।

२. नागदमनी । नागदोन ।

जांबवान्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] सुग्रीव के मंत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है ।

विशेष—इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह रीछ थे । रावण के साथ युद्ध करने में वेता युग में इन्होंने रामचन्द्र को बहुत सहायता दी थी । भागवत में लिखा है कि द्वारपर युग में इसी की कन्या जांबवती के साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था । यह भी कहा जाता है कि सतयुग में इन्होंने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी । इस कथा का उल्लेख रामचरितमानस (किष्कि कांड, दोहा २८) में भी है; यथा—बलि बाँधन प्रभु बाड़ेउ सो तनु बरनि न जाय । उभय घरी महँ दीन्हों सात प्रदच्छिन जाय ।

जांबवि—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवि] वज्र ।

जांबवी—संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवी] १. जांबवान् की पुत्री । जांबवती । २. नागदमनी ।

जांबवोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवोष्ठ] जांबवोष्ठ नामक छोटा अस्त्र जिससे प्राचीन काल में फोड़े आदि जलाए जाते थे ।

जांबीर—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बीर] जंबीरी नीबू । जंबीरी नीबू ।

जांबील—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बील] १. पेर के घुटनेवाली गोल हड्डी । २. जंबीरी नीबू (को०) ।

जांबुक—वि० [सं० जाम्बुक] जंबुक संबंधी । शृगाल संबंधी (को०) ।

जांबुमाखी—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुमालिन्] प्रहस्त नामक राक्षस के पुत्र का नाम जिसे प्रणोक वाटिका उजाड़ते समय हनुमान ने मार डाला था ।

जांबुवत्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुवत्] दे० 'जांबवान्' ।

जांबुवान्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुवान्] दे० 'जांबवान्' ।

जांबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] दे० 'जंबू' (द्वीप) । ४०—जांबू और पलाश है शालमली कुश चारि । कौच संकला द्वीप पट प्रकार सात विचारि —(शब्द०) ।

जांबूनद—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बूनद] १. घनूरा । २. सोना । ३. स्वर्ण-भूषण (को०) ।

जांबोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बोष्ठ] प्राचीन काल का एक प्रकार का छोटा अस्त्र जिससे फोड़े आदि जलाए जाते थे ।

जाँ^१—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं० जा] दे० 'जा' ।

जाँ^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जा] प्राण । जान ।

जाँ^३—वि० [सं० जा] दे० 'जा' ।

जाँउनि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जामुन] दे० 'जामुन' ।

जाँग^१—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों की एक जाति । उ०—जरदा, जिरही, जांग, सुनौची, ऊदे खंजन । कर रकवाहे कवल गिलमिली गुलगुल रंजन ।—सूदन (शब्द) ।

जाँग^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जाँघ] दे० 'जाँघ' ।

जाँगड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] राजाओं का यश गानेवाला । भाट । बंदी ।

जाँगड़िया—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जांगड़ा' । उ०—(क) जांगड़िया दूहा दिये सिन्धु राग मगार ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ६६ । (ख) कुण्ड पूछे ढोलाकणो जांगड़िया तू जाब ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० १० ।

जाँगर^१—संज्ञा पुं० [हि० जान या जाँघ > जांग + फा० गर (प्रत्य०)] १. शरीर । देह । २. हाथ पैर । ३. पौरुष । बल । शक्ति ।

यौ०—जांगरचोर=जो काम करने से जी चुराता हो । धानसी । डीलहराम । जांगरतोड़=मेहनत करनेवाला । मेहनती । जैसे, जांगरतोड़ आदमी, जांगरतोड़ काम ।

मुहा०—जांगर टूटना, जांगर धकना=शरीर शिथिल होना । पौरुष या श्रमशक्ति का जबाब देना ।

जांगर^२—संज्ञा पुं० [देश०] खाली इँठल जिसमें से अन्न फाड़ लिया गया हो । उ०—तुलसी त्रिलोक की समृद्धि नोज संपदा एकैलि चाकि राखी रासि जांगर जहान भो ।—तुलसी (शब्द०) ।

जांगरा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जांगड़ा' । उ०—करै जांगरे घालाप बिगद कजाप भूप प्रताप । घतिनय मिनाजी चढ़े बाजी करत धरि उर ताप—रघुराज (शब्द०) ।

जांगलू—वि० [हि० जगल] दे० 'जांगल' ।

जाँगी—संज्ञा पुं० [सं० जांग] नगाड़ा । —(डि०) ।

जाँघ—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घ (= पिंडली)] घुटने और कमर के बीच का अंग । ऊर ।

जाँघा^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. हक ।—(पुरबी) । २. कुएँ के ऊपर गड़ारी रखने का खम्भा । ३. लकड़ी या लोहे का वह घुंग जिसमें गड़ारी पहनाई हुई होती है ।

जाँघिया—संज्ञा पुं० [हि० जाँघ + हया (प्रत्य०)] १. लंगोटे की तरह पहनावे वा जाँघ को डकने का एक प्रकार का सिला हुआ वस्त्र । काछा ।

विशेष—यह पायजामे की तरह का कमर में पहनने का एक प्रकार का सिला हुआ पहनावा है जिसकी घुटने मोहरियाँ घुटनों के ऊपर कमर और पैर के जोड़ तक ही रहती हैं । इसमें पूरी रान दिखाई पड़ती है । इसे प्रायः पहलवान और नट आदि लंगोटे के ऊपर पहनते हैं ।

२. मालखंभ की एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—इसमें बेंत की पेर के अँगूठे और दूसरी उँगली से पकड़कर पिंडली में लपेटते हुए दूसरी पिंडली पर भी लपेटते

हैं और तब दूसरे पैर के भंगूठे से बेंत को पकड़कर नीचे की ओर सिर करके लटक जाते हैं।

जॉचिल^१—संज्ञा पुं० [हि० जाँच] वह वेन जिसका पिछला पैर चलने में लच खाता हो।

जॉचिल^२—वि० जिसका पैर चलने में लच खाता हो।

जॉचिल^३—संज्ञा पुं० [देश०] १. खाकी रंग की एक चिड़िया।

विशेष—इसकी गरदन लंबी होती है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है और उसी के लिये इसका शिकार किया जाता है।

२. प्रायः एक बालिशत लंबी एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

विशेष—इसकी छाती और पीठ सफेद, पर काले, चौंभ और सिर पीला, पैर खाकी और दुम गुलाबी रंग की होती है।

जॉच—संज्ञा स्त्री० [हि० जाँचना] १. जाँचने की क्रिया या भाव। परीक्षा। परख। इस्तहान। आजमाइश। २. गवेषणा। तहकीकात।

यौ०—जॉच पदनाल = खोज के साथ किसी बात का पता लगाना। छानबीन।

जॉचका^१—संज्ञा पुं० [सं० याचक] दे० 'जाचक' या 'याचक'। उ०—जाचक पे जाचक वहाँ जाँचे ? जो जाँचे तो रसना हारी।—सूर, १।३४।

जॉचकता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० याचकता] दे० 'जाचकता' या 'याचकता'। उ०—(क) जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुख दीनता दुखी इनके दुख जाँचकता प्रकुलानी।—तुलसी (शब्द०)।

जॉचकताई^१—संज्ञा स्त्री [हि० जाँचक + ताई (प्रत्य०)] दे० 'जाचकता'।

जॉचना—क्रि० सं० [सं० याचना] १. किसी विषय की सत्यता या असत्यता भयना योग्यता या अयोग्यता का निर्णय करना। सत्यासत्य आदि का अनुसंधान करना। यह देखना कि कोई चीज ठीक है या नहीं। जैसे, हिसाब जॉचना, काम जॉचना। संयो० क्रि०—देखना।—रखना।—डालना।

२. किसी बान के लिये प्रार्थना करना। मीनना। उ०—(क) जिन जाँच्यो जाइ रम नंदराय ठरे। मानो बरसत मास अथाढ़ दादुर मोर २२।—मूर (शब्द०)। (ख) रावन मरन मनुज कर जाँचा। प्रभु मिथि बचन कीन्ह चह सौषा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) यही उधर के कारने जग जाँच्यो निसि याम। स्यामिपनी सिर पर चढ्यो सरयो न एकी काम।—कबीर (शब्द०)।

जॉजरा^१—वि० [सं० जर्जर, प्रा० जज्जर] [वि० स्त्री० जाजरी] जो बहुत ही जीर्ण हो। जर्जर। जीर्ण शीर्ण। उ०—नाग्यो यह दोष जु मैं रोष हूँ। धनुष तोरी जाँजरी, पुरानो हो मैं जानो गयो काम सो।—हनुमान (शब्द०)।

जॉम्हा^१—संज्ञा पुं० [सं० झम्भा] वह वर्षा जिसके साथ तेज हवा भी हो।

जॉम्हा^२—संज्ञा पुं० [सं० झम्भा] दे० 'जॉम्हा'।

जॉट—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे रिया भी कहते हैं।

जॉत—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] घाटा पीसने की बड़ी चक्की। जॉता। उ०—धरती सरग जॉत पट दोऊ। जो तेहि बिच जिउ राख न कोऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६३।

जॉता—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] १. घाटा पीसने की पत्थर की बड़ी चक्की जो प्रायः जमान में गड़ी रहती है।

क्रि० प्र०—खलाना।—पीसना।

२. सुनारों और तारकणों आदि का एक ग्रीजार।

विशेष—यह इस्पात या फोलाद सोठे की एक पटरी होती है जिसमें क्रमशः बड़े छोटे अनेक छेद होते हैं। उन्हीं में कोई धातु की बत्ती या मोटा तार आदि रखकर उसे खींचते खींचते लंबा और महीन तार बना लेते हैं। इसे जंती भी कहते हैं।

जॉद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के पेड़ का नाम।

जॉनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] ज्ञान। जानकारी। उ०—लखे जीव जेते सु केने जिहान। अमै जय तत्र सु पावेन जानं।—ह० रासो, पृ० ३५।

जॉन^१—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान] गमन। जाना।

यौ०—आवाजॉन = आवागमन। उ०—त्रिवेणी कर असनांन। तेरा मेठ जाय आवाजॉन।—रामानंद०, पृ० ६।

जॉन^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान, यात्रा] वारात। उ०—बंदावन बैसाख पर सोहे जान गसोह।—रा० क०, पृ० ३४७।

जॉपना—क्रि० सं० [अप० चंप चप्प] दे० 'चापना'।

जॉपनाही—संज्ञा पुं० [फा० जहाँपनाह] दे० 'जहाँपनाह'।

जॉब^१—संज्ञा पुं० [सं० जम्बा] जवू फल। जामुन। जाम। उ०—(क) काह गही अब की डारा। कोई बिरछ जाँब अति छारा।—जायसी (शब्द०)। (ख) श्याम जाँब कस्तूरी रोवा। धब जो ऊँ हृदय तेहि रोवा।—जायसी (शब्द०)।

जॉबिली—संज्ञा स्त्री० [फा०] प्राणदान। जीवनदान। उ०—हुज़ूर यह गुलाम का लडका है। हुज़ूर इसकी जाँबिली करें, हुज़ूर का पुराना गुलाम हूँ।—काया०, पृ० १६५।

जॉबाज—वि० [फा० जॉबाज] प्राण निश्चावर करनेवाला। जान की बाजी लगा देनेवाला। साहसी। उ०—जिसके लिये जाँबाज है परवान बेखोफ।—कबीर म०, पृ० ४६७।

जॉबाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जॉबाजी] जान की बाजी। प्राणों का दाँव। साहस। उ०—पै एतो हूँ हम सूरंगे, प्रेम अज़बो खेल। जॉबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल मे मेन।—रसखान०, पृ० ११।

जॉमल^१—वि० [सं० यमज] दो। दोनों। उ०—भूप द्वार असकल भंडारों, हेमराज जॉमल हितकारी।—रा० क०, पृ० ३१५।

जॉय^१—वि० [फा० जा] मुनासिब। वाजिब। उचित।

यौ०—बेजॉय। जॉयें बेजॉयें।

जॉवत^१—अव्य० [सं० यावत्, हि०, जावत] दे० 'यावत्'। उ०—जावत जग साखा बन ठाँखा। जाँवत केस रोम पलि पाँखा।

—जायसी (शब्द०) । (ल) पुन रूपवन्त बखानो काहा ।
जावत जगत सबै मुख जाहा । —जायसी (शब्द०) ।

जौवर^(१) —संज्ञा पुं० [हि० जाना] गमन । प्रस्थान । जाना । उ०—
नव नव खाड़ लड़ाइ लड़िल नाहीं नाही कहैं बज जावरो ।
—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

जा^१ —संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता । माँ । २. देवरानी । देवर की स्त्री ।
जा^२ —वि० स्त्री० [सं० तुल्य० प्रा० (प्रत्य) जा (= उत्पन्न करनेवाला)]
उत्पन्न । संभूत । जैसे, गिरिजा, जनकजा ।

जा^३^(१) —सर्व० [हि० जो] जो । जिस । उ०—(क) जाकर जा-
पर सत्य सनेह । सो तेहि मिलहि न कछु सनेह । —तुलसी
(शब्द०) । (ख) इक समान जब तैं रहत लाख काम
ये दोह । जा तिय के तन में तबहि मध्या कहिए सोह ।
—पद्माकर पं०, पृ० ८७ । (ग) मेरी भवबाधा हरी राधा
नागरि सोह । जा तन की भाई परें त्यागु हरितदुति होह ।
—बिहारी र०, दो० १ ।

जा^४ —वि० [प्रा०] मुनासिब । उचित । वाजिब । जैसे,—भापकी
बात बहुत जा है
यौ०—बेजा = नामुनासिब । जो ठीक न हो ।

जा^५ —संज्ञा पुं० स्थान । जगह । उ०—कुछ बेर रहा हुक्का बक्का
भोचक्का सा घा गया कहीं ; क्या कछु यहाँ जाऊँ किस जा ।
मिलन०, पृ० १६० ।

जाइंट —संज्ञा पुं० [प० ज्वाइंट] १. जोड़ । पैबंद । २. गिरह । गीठ ।
(मिस्तरी) । ३. दे० 'ज्वाइंट' ।

जाइ^(१) —वि० [हि० जाना] व्यर्थ । धुया । निष्प्रयोजन । बेफायदा ।
उ०—सुमन सुमन भरणन लिए उपवन त घर त्याह । घरनी
घरि हरि ताँकि कही हाइ भयो भ्रम जाइ । —(शब्द०) ।

जाइफल —संज्ञा पुं० [सं० जालीफल] दे० 'जायफल' ।

जाइफल —संज्ञा पुं० [सं० जालीफल] दे० 'जायफल' ।

जाइस —संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जायस' ।

जाई^१ —संज्ञा स्त्री० [सं० जा (= उत्पन्न)] बन्धा । बेटी । पुत्री ।
उ०—पुण्डाली हुई बाप होर माई हूँ । तुलकलन हुआ
पूत उस जाई हूँ । —दक्खिनी०, पृ० ३६० ।

जाई^२ —संज्ञा स्त्री० [सं० जातो] जाती । बर्ग ।

जाईनि^(१) —संज्ञा स्त्री० [हि० जामुन] दे० 'जामुन' ।

जाउर^(१) —संज्ञा पुं० [हि० छाउर (= छावण)] मीठा घोर चावल
बालकर पकाया हुआ दूध । सीर ।

जाएली^(१) —संज्ञा पुं० [देश०] दो बार जोता हुआ खेत ।

जाएस —संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जायस' ।

जाक^(१) —संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख, जक्] यक्ष ।

जाकट —संज्ञा पुं० [सं० जंकेट] दे० 'जाकेट' ।

जाकड़ —संज्ञा पुं० [हि० जाकर ; अथवा हि० जकड़ना (= बाँधना)]
१. दुकानदार के यहाँ से कोई माल इस शर्त पर ले जाना कि
यदि वह पसंद न होगा, तो फेर दिया जायगा । पक्का का

उलटा । २. इस प्रकार (शर्त पर) लाया हुआ माल ।

यौ०—जाकड़ बही ।

जाकड़वही —संज्ञा स्त्री० [हि० जाकड़ + वही] वह बही जिसमें
दुकानदार जाकड़ पर दिए हुए माल का नाम, किस्म और
वाम आदि टाँक लेते हैं ।

जाकिटा^(१) —संज्ञा स्त्री० [सं० जंकेट] दे० 'जाकेट' ।

जाकेट —संज्ञा स्त्री० [सं० जंकेट] कुर्ती या सदरी की तरह का एक
प्रकार का छोटी पहनावा ।

जाख^(१) —संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख] दे० 'यक्ष' । उ०—
कोरी भटुकी दहो जमायी जाख न पूजन पायो । तिहि
घर देव पिउर काहे की जा घर काहूर भायो ।
—सूर०, १०।३४६ ।

जाखनी —संज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए के आकार का मोल चक्कर
जो कुर्छों की नींव में दिया जाता है । जमवट । बैवार ।

जाखनी^(१) —संज्ञा स्त्री० [सं० यक्षिणी, प्रा० जक्खिणी] दे०
'यक्षिणी' । उ०—राघव करै जाखिनी पूजा । चहै सो भाव
देखावै हुआ । —जायसी (शब्द०) ।

जाग^१ —संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] यज्ञ । मन्त्र । उ०—(क) तप कीन्हें सो
बैहें प्राग । ता घेती तुम कीजौ जाग । जज्ञ कियें गंधर्वपुर
जैहो । तहाँ पाइ मोको तुम पैहो । —सूर०, ६।२ ।
(ख) दन्ध छिए मुनि कोलि सब करन लगे बढ़ जाग ।
नेवते सादर सकल सुरे जे पावत मख भाग । —तुलसी
(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना । —जागना । —जयना । उ०—चहत महा
मुनि जाग जयो । नीच निसाचर देत दुमह दुख कस तनु ताप
नयो । —तुलसी (शब्द०) ।

जाग^२ —संज्ञा स्त्री० [हि० जगह] १. जगह । स्थान । ठिकाना ।
उ०—(क) तुहिकी न मुहिकी कहीं लुहिकी रही न जाग,
भाग कुल घोर तोपखाना बाध व्यावा है । —सूदन (शब्द०) ।
(ख) कुदरत ताकी भर रही रसनिधि सबही जाग । ईधन
बिन बनियो रई उयो पाहुन में प्राग । —रसनिधि (शब्द०) ।
२. गृह । घर । मकान । —(हि०) ।

जाग^३ —संज्ञा स्त्री० [हि० जागना] जागने की क्रिया या भाव ।
जागरण । उ०—घटती होइ जाहि ते अपनी ताकी कीजै
त्याग । छोले क्रियो बास मन भीतर अब समझे भइ जाग ।
—सूर (शब्द०) ।

जाग^४ —संज्ञा पुं० [देश०] वह कच्चा जो बिलकुल काले रंग का हो ।

जाग^५ —संज्ञा पुं० [सं० जक] जहाज का आहाररक्षक ।

जागत —संज्ञा पुं० [सं०] जगती छद्म ।

जागता —वि० [सं० जागत] [वि० जा० जागती] १. सजग । सचेत ।
२. तेजस्वी । चमत्कारिक ।

मुहा०—जागता = प्रत्यक्ष । साक्षात् । जैसे, जागती जोत, जागती
कला । उ०—जाहिरे जागति सी जमुना जब बूझै बहै उमहे
बहु बेनी । —पद्माकर (शब्द०) ।

जागतिक—वि० [सं०] जगत्संबंधी। सांसारिक [को०]।

जागती कला—संज्ञा स्त्री० [हि० जागना + कला] दे० 'जागती जोत'।

जागती जोत—संज्ञा स्त्री० [हि० जागना + सं० ज्योति] १. किसी देवता विशेषतः देवी की प्रत्यक्ष महिमा या चमत्कार। २. चिराग। दीपक।

जागना—क्रि० प्र० [सं० जागरण] १. सोकर उठना। नींद त्यागना। उ०—आइ जगार्वाहि चेना जागहु। आवा गुरू पाय उठि लागहु।—आयसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

२. निद्रारहित रहना। जाग्रत अवस्था में होना। ३. सजग होना। चैतन्य होना। सावधान होना। उ०—जरठाई दसा रबि काल उयो अजहूँ जब ओव न जागहि रे।—तुलसी (शब्द०)। ४. उचित होना। चमक उठना। उ०—(क) भागत पसाग धनुरागत विराग भाष जागत आलस तुलसी से निकाम कै।—तुलसी (शब्द०)। (ख) निश्चय प्रेम पीर एहि जागा। कसै कसोटी कचन लागा।—आयसी (शब्द०)। ५. सभूढ़ होना। बड़ चढ़कर होना। उ०—पधाकर स्वादु मुधा तें सरें मधु तें महुा माधुरी जागती है।—पद्माकर (शब्द०)। ६. जोर-शोर में उठना। समुत्थित होना। जैसे, लोकमत का जागना। ७. प्रज्वलित होना। जलना। ८. प्रादुर्भूत होना। अस्तित्व प्राप्त करना। ९. प्रसिद्ध होना। मशहूर होना। १०.—छायो खोंचि मागि मैं तेरो नाम लिया रे। तेरे बन बलि प्राजु लौ जग जागि जिया रे।—तुलसी (शब्द०)।

जागना^१—क्रि० प्र० [सं० यजन] यज्ञ करना। उ०—पयसि पयामे जाग मत जागइ सोइ पावए बहु भागी।—विद्यापति, पृ० ४१७।

जागनौल—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक प्रकार का हथियार।

जागबलिक—संज्ञा पुं० [सं० याज्ञवल्क्य] एक ऋषि। दे० 'याज्ञवल्क्य'। उ०—जागबलिक जो कथा सुनाई। भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई।—तुलसी (शब्द०)।

जागर—संज्ञा पुं० [सं०] १. जागरण। जाग। जागने की क्रिया। उ०—सुनि हरिदास यहै जिय जानी सुपने को सो जागर।—हरिदास (शब्द०)। २. कवच। भगवत्पाण। त्रिरह बरकर। ३. घंतःकरण की वह अवस्था जिसमें उसकी सब वृत्तियाँ (मन, बुद्धि, अहंकार आदि) प्रकाशित या जाग्रत हों।

जागरक—वि० [सं०] जाग्रत। चैतन्य [को०]।

जागरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निद्रा का पराग। जागना। २. किसी वन, पर्व या धार्मिक उत्सव के उपलक्ष में ध्वजा इसी प्रकार के किसी और अवसर पर भगवद्भजन करते हुए सारी रात जागना। उ०—नासर रगान करत यह बीटयो। निशि जागरन करन मन भीटयो।—भूर (शब्द०)।

जागरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जागरण' [को०]।

जागरित^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नींद का न होना। जागरण। २. सांख्य और वेदांत के मत से वह अवस्था जिसमें अनुभव को

इंद्रियों द्वारा सब प्रकार के व्यवहारों और कार्यों का अनुभव होता रहे।

जागरित^२—वि० जागा हुआ। चैतन्य। सचेत।

जागरित स्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वह आत्मा जो 'जागरित' स्थिति में हो।

जागरितांत—संज्ञा पुं० [सं० जागरितान्त] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो। जागरित स्थान।

जागरिता—वि० [सं० जागरित] [वि० स्त्री० जागरित्री] जागा हुआ। चैतन्य।

जागरी—वि० [सं० जागरिन्] दे० 'जागरिता'।

जागरू—संज्ञा पुं० [सं० जागर + हि० ऊ (प्रत्य०)] १. भूसा प्रादि मिला हुआ वह खराब अन्न जो देवाई के बाद अच्छा अन्न निकाल लेने पर बच रहता है। २. भूसा।

जागरूक^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जाग्रत अवस्था में हो। चैतन्य।

जागरूक^२—वि० जागता हुआ। निद्रारहित। सावधान।

जागरूप—वि० [हि० जागना + रूप] जो बहुत ही प्रत्यक्ष और स्पष्ट हो।

जागृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जागरण। जाग्रति। २. चेतनता।

जागृर्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जागृति' [को०]।

जागा^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जगह] दे० 'जगह'।

जागाह^२—संज्ञा स्त्री० [फा० जायगाह, हि० जगह] स्थान। जगह। उ०—कोई भगड़े अपनी जागाह पर, यह मेरी है यह तेरी है।—राम० धर्म० (सं०), पृ० ६२।

जागी^३—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, अथवा देशज, जाँगड़ा, जाँगरा] भाट।

जागीर—संज्ञा स्त्री० [फा०] ऐसी भूमि जो राजा, बादशाह, नवाब आदि किसी को प्रदान करते हैं। वह गाँव या जमीन आदि जो किसी राज्य या शासक आदि की ओर से किसी को उसकी सेवा के उल्लेख में मिले। सेवा के पुरस्कार में मिली हुई भूमि। जमीन। मुघाफी। तख्तलुका। परगना।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

यौ०—जागीर लिखमती=सेवा के बदले में मिली जागीर। जागीर मनसबी=वह जागीर जो किसी मनसब, किसी पद के कारण प्राप्त हो।

जागीरदार—संज्ञा पुं० [फा०] वह जिसे जागीर मिली हो। जागीर का मालिक।

जागीरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'जागीरी'।

जागीरी^१—संज्ञा स्त्री० [फा० जागीर + ई (प्रत्य०)] १. जागीरदार होने का भाव। २. अमीरी। रईसी। उ०—भागता सो जूझिया पीठ जो लागा धाय। जागीरी सब ऊतरी धनी न कहसी धाय।—कबीर (शब्द०)। ३. जागीर के रूप में मिली मित्रकियत।

जागुड़—संज्ञा पुं० [सं० जागुड] १. केसर। २. एक प्राचीन देश का नाम। ३. इस देश का निवासी।

जागृति—संज्ञा स्त्री० [सं० जागृति] दे० 'जागरण'।

जागृषि—संज्ञा पुं० [सं०] १. राखा । २. घाग । ३. जागरण (को०) ।
जाग्रत^१—वि० [सं० जाग्रत्] १. जो जागता हो । सजग । सावधान ।
२. व्यक्त । प्रकाशमान । स्पष्ट (को०) ।

जाग्रत^२—संज्ञा पुं० वह अवस्था जिसमें शब्द, स्पर्श आदि सब बातों का परिज्ञान और ग्रहण हो ।

जाग्रति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाग्रत] जागरण । जागने की क्रिया ।

जाघनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऊरु । जाँघ । जंघा । २. पुच्छ । पूँछ (को०) ।

जाचक(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० याचक] १. माँगनेवाला । वह जो माँगता हो । भिक्षुक । मंथन । भिखारी । उ०—(क) नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम्हें मंत्र भ्रात पायो न कै । —तुलसी (शब्द०) । (ख) नंद पौरि जे जाँचन आए । बहुरी फिरि जाचक न कहाए । —१०।३२ । २. भीख माँगनेवाला । भिखमंग । उ०—दोऊ बाहू भरे कछु चाहत कह्यो कहै न । भहि जाचक भुनि सुम लो बाहुर निकसत बैन । —बिहारी (शब्द०) ।

जाचकता(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० याचकता] १. माँगने का भाव । भीख माँगने की क्रिया । भिखमंगी । उ०—जेहि जाचे सो जाचकता बस फिरि बहु नाच न नाच्यो । —तुलसी (शब्द०) ।

जाचना(पुं०)—क्रि० सं० [सं० याचन] माँगना । उ०—जेहि जाचे सो जाचकता बस फिरि बहु नाच न नाच्यो । —तुलसी (शब्द०) ।

जाजन(पुं०)—क्रि० सं० [सं० याजन] यज्ञ कराना । उ०—जजन जाजन जाप रटन तीरथ दान भोषधी रसिक गदमूल देता । —२० बानी, पृ० २ ।

जाजना^१(पुं०)—क्रि० सं० [हि० जाना] जाना । जाने की क्रिया या भाव । उ०—घालें न और जगदीसे कही जाजे कही, आगि के तो दाघे अंति आगि ही सिराहिगे । —सुंदर० भं०, (जी०), भा० १ पृ० ६६ ।

जाजना^२(पुं०)—क्रि० सं० [हि० जाजन] पूजा करना । उपासना करना । उ०—स्यंभ देव की सेवा जाजे, तो देव दृष्टि है सकल पछाने । —दक्खिनी०, पृ० १४ ।

जाजम—संज्ञा स्त्री० [तु० जाजम] एक प्रकार की चादर जिसपर बेल बूटे आदि छपे होते हैं और जो फर्श पर बिछावे के काम में आती है ।

जाजमलार—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जाजमलार' ।

जाजर(पुं०)—वि० [सं० जर्जर] [वि० स्त्री० जाजरि, जाजरी] दुर्बल । कुश । जीर्ण । उ०—चरन गिरहि कर कंयमाव जाजर देह गिरिष । प्राण०, पृ० २५२ ।

जाजरा(पुं०)—वि० [सं० जर्जर] जर्जर । जीर्ण । उ०—(क) ल्यों घुन लागई काठ को लोहू लागई काँठ । काम किया घट जाजरा दादू बारहु बाट । —दादू (शब्द०) । (ख) अधिकारी अथवा जड़ जाजरो जरा जवन सूकर के सावक ठका डकेल्यो मग मैं । —तुलसी (शब्द०) ।

जाजरी^१—संज्ञा पुं० [देश०] बहेलिया । चिड़ीमार ।

जाजरी^२—संज्ञा पुं० [फा० जाजर] दे० 'जाजर' ।

जाजरूर—संज्ञा पुं० [फा० जा + अ० जरूर] शीव क्रिया करने का स्थान । पाखाना । टट्टी ।

जाजल—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद की एक शाखा का नाम ।

जाजलि—संज्ञा [सं०] एक प्रवरप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

जाजा(पुं०)—वि० [अं० जियादह, हि० ज्यादा] बहुत । अधिक । उ०—जाय जोगन बंद जाजा, प्रजुण बन्ही करे प्राणा । बहुण भावध होम बाजा, रुषि दराजा रोस । —रघु० क०, पृ० २०७ ।

जाजात^१—संज्ञा स्त्री० [फा० जायदाद] दे० 'जायदाद' ।

जाजामलार—संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । इसे जाजमलार भी कहते हैं ।

जाजिम—संज्ञा स्त्री० [तु० जाजम] १. एक प्रकार की छपी हुई चादर जो बिछाने के काम में आती है । २. गलीचा । कालीन ।

जाजी—संज्ञा पुं० [सं० जाजिन्] योद्धा । वीर (को०) ।

जाजुल(पुं०)—वि० [सं० जाजल्य] दीप्तिमान । प्रकाशमान । प्रदीप्त । उ०—दसकंठ सेन सिंघार दारुण, मार अथपकुमार । तो जो-धार जो जोधार जाजुल रामरो जोधार । —रघु० क०, पृ० १६४ ।

जाजुलित(पुं०)—वि० [हि० जाजुल + इत (प्रत्य०)] दे० 'जाजुल' ।

जाज्वल्य—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । प्रकाशयुक्त । २. तेजवान् ।

जाज्वल्यमान—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । दीप्तिमान् । २. तेजस्वी । तेजवान् ।

जाट^१—संज्ञा पुं० [सं० यष्टि अथवा सं० यादव, > जादव > जाडव > जाडम > जाटम > जाट] १. भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध जाति जो समस्त पंजाब, सिंध, राजपूताने और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में फैली हुई है ।

विशेष—इस जाति के लोग संख्या में बहुत अधिक हैं और भिन्न भिन्न प्रदेश में भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं । इस जाति के अधिकांश आचार व्यवहार आदि राजपूतों से मिलते जुलते होते हैं । कहीं कहीं ये लोग अपने को राजपूतों के अंतर्गत भी बतलाते हैं । राजपूतों के ३६ वंशों में जाटों का भी नाम आया है । कुछ देशों में जाटों और राजपूतों का विवाह संबंध भी होता है । पर कहीं कहीं के जाटों में विषवा विवाह और सगाई की प्रथा भी प्रचलित है । जाटों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कोई कहता है कि इनकी उत्पत्ति शिव की पटा से हुई; और कोई जाटों को यदुवंशी और जाट शब्द को यदु या यादव से संबंध बतलाता है । अधिकांश जाट खेती बारी से ही अपना निर्वाह करते हैं । पंजाब, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में बहुत से मुसलमान जाट भी हैं ।

२. एक प्रकार का रंगीन या चमत्ता गाना ।

जाट^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, हि० जाठ] दे० 'जाठ' ।

जाटलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलाश की जाति का एक पेड़। इसे मोरवा या भाटलि भी कहते हैं।

जाटलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

जाटिकायन—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद में एक ऋषि का नाम।

जाटू—संज्ञा पुं० [हि० जाट] हिसार, करनाम और रोहतक के जाटों की बोली जिसे बांगटू या हरियानी भी कहते हैं।

जाठ—संज्ञा पुं० [सं० यष्टि] १. लकड़ी का वह मोटा घोर ऊँचा लट्टा जो कोल्हू की कुँडी के बीच में लगा रहता है और जिसके घूमने और जमका दाब पड़ने से कोल्हू में डाली हुई चीजें पेरी जाती हैं। २. किसी चीज, विशेषतः तानाब आदि के बीच में गड़ा हुआ लकड़ी का ऊँचा घोर मोटा लट्टा। जाठ।

जाठर^१—संज्ञा पुं० [सं० जठर] १. पेट। उदर। २. पेट की वह अग्नि जिसकी सहायता से खाया हुआ भोजन पचता है। जठराग्नि। ३. भूल। धुषा।

जाठर^२—वि० १. जठर संबंधी। २. जो जठर से उत्पन्न हो (संतान)।

जाठराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जठराग्नि'।

जाठरानल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जठराग्नि'।

जाठि(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि] दे० 'जाठ'।

जाड़^१—संज्ञा पुं० [सं० जड़, हि० जाड़ा] दे० 'जाड़ा'। उ०—जड़ता जाड़ विषम उर लाना। नएहुँ न मज्जन पाव अभागा।—मानस, १।३६।

जाड़^२—वि० [हि० ज्यादा] अत्यंत। बहुत। अधिक।

जाड़(५)^१—संज्ञा पुं० [सं० जाड्य] जड़ता।

जाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० जड़] १. वह ऋतु जिसमें बहुत ठंडक पड़ती हो। शीतकाल। सरदी का मौसम।

विशेष—भारतवर्ष में जाड़ा प्रायः अगहन के मध्य से आरंभ होता है और फागुन के आरंभ तक रहता है।

२. सरदी। शीत। पाखा। ठंड।

हि० प्र०—पड़ना।—जड़ना।

जाड्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. जड़ का भाव। दे० 'जड़ता'। २. जीव का कुटिल, बेकार होना या स्वाध ग्रहण न करना।

जाड्यारि—संज्ञा पुं० [सं०] अंधीरी नीबू।

जाणराइ(५)—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान + हि० राय] ईश्वर। ब्रह्मा। उ०—बाबू जुषा खेलें अणराइ ताकी मलें न कोय। सब जन बैठा जीति करि काहू जित न होइ।—बाबू० काशी. पु० ४५६।

जाणविज्जाण(५)—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान + विज्ञान] ज्ञान और विज्ञान। उ०—जाणविज्जाण की जन्म कैसे लई शुद्ध बुधि पावणी सार धूका।—राम० धर्म०, पु० १२६।

जाति^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्म। २. पुत्र। बेटा। ३. चार प्रकार के पारिवारिक पुत्रों में से एक। वह पुत्र जिसमें उसकी माता के से गुण हों। ४. जीव। प्राणी। ५. वर्ग। श्रेणी। जाति (स्त्री)। ६. समूह। गूथ (स्त्री)।

जाति^२—वि० १. उत्पन्न। जन्मा हुआ। जैसे, जलजात। उ०—देखत उदधिजात देखि देखि निज गात चंपक के पात कछू लिख्यो है बनाइ के।—केशव (शब्द०)। २. व्यक्त। प्रकट। ३. प्रगट। प्रख्या। ४. जिसने जन्म ग्रहण किया हो। जैसे, नवजात।

जाति^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति] दे० 'जाति'।

यौ०—जात पात।

जात^४—संज्ञा स्त्री० [सं० जात] १. शरीर। देह। काया। जैसे,—उसकी जात से तुम्हें बहुत फायदा होगा।

२. कुल। वंश। नस्ल (स्त्री)। ३. व्यक्तित्व (स्त्री)। ४. जाति। कौम। बिरादरी। ५. अस्तित्व। हस्ती (स्त्री)।

जात^५—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] तीर्थयात्रा। किसी देवस्थान, तीर्थ आदि के निमित्त की जानेवाली यात्रा। उ०—इहि बिधि बीते मास छ सात। चले समेत सिलर की जात।—अर्थ०, पु० १।

जातक^१—वि० [सं०] उत्पन्न। पैदा हुआ। जात (स्त्री)।

जातक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. बच्चा। उ०—(क) तुलसी मन रंजय रंजित अंजन। नयन सु खंजन जातक से। सजनी ससि में समसील उभे भव नील मरोरुह से बिकसे।—तुलसी ग्रं०, पु० १५६। (ख) जानै कहाँ बालि ब्यावर दुख जातक बनाइ न पीर है कैसी।—सूर (शब्द०)। २. कारंजी। बत। ३. भिक्षु। ४. फलित ज्योतिष का एक भेद जिसके अनुसार कुंडली देखकर उसका फल कहते हैं। ५. एक प्रकार की बौद्ध कथाएँ जिनमें महात्मा बुद्धदेव के पूर्वजन्मों की बातें होती हैं। महात्मा बुद्ध के बोधिसत्व रूप पूर्व जन्मों की कथाएँ। ७. जातकर्म संस्कार। वि० दे० 'जातकर्म'। ८. एकजातीय वस्तुओं का समूह (स्त्री)।

यौ०—जातकचक्र = नवजात संतति के शुभाशुभ ग्रहों की स्थिति का बोधक चक्र। जातकध्वनि = जलौका। जौक।

जातक^३—संज्ञा पुं० [हि०] हींग का पेड़।

जातकरम(५)—संज्ञा पुं० [सं० जातकर्म] दे० 'जातकर्म'। उ०—तब नंदीमुख आद करि जातकरम सब कीन्ह।—तुलसी (शब्द०)।

जातकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के दस संस्कारों में से चौथा संस्कार जो बालक के जन्म के समय होता है। उ०—जातकर्म करि पूजि पितर सुर दिए महिदेवन दान। मेहि घोसर मुत ठीनि प्रगट भए मंगल, मुद, कल्याण।—तुलसी ग्रं० पु० २६४।

विशेष—इस संस्कार में बालक के जन्म का समाचार सुनते ही पिता मना कर देता है कि अभी बालक की नाल न काटी जाय। तदुपरांत वह पहने हुए कपड़ों सहित स्नात करके कुछ विशेष पूजन और वृद्ध आद आदि करता है। इसके अनंतर ब्रह्मचारी, कुमारी, गर्भवती या विद्वान् ब्राह्मण द्वारा थोड़ी हुई सिल पर लोहे से पीछे हुए चावल और जौ के धूर्ण को ध्यूटे

घोर अनामिका से लेकर मंत्र पढ़ता हुआ बालक की जीभ पर मलता है। दूसरी बार वह सोने से घी लेकर मंत्र पढ़ता हुआ उसकी जीभ पर मलता है और सब नाल काटने और दूध पिलाने की आज्ञा देकर स्नान करता है। आजकल यह संस्कार बहुत कम लोग करते हैं।

जातकलाप—वि० [सं०] पूँछवाला। पूँछ से युक्त। जैसे, मोर।

जातकाम—वि० [सं०] जासक्त। अनुरक्त। [को०]

जातक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जातकर्म'।

जातज्ञातरोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जो बच्चे को गर्भ ही से माता के कुपथ्य आदि के कारण हो।

जातना(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० यातना] दे० 'यातना'। उ०—गर्भ बास दुख रासि जातना तोत्र बिपाति बिमरायो—तुलसी (शब्द०)।

जातमन्मथ—वि० [सं०] दे० 'जातकाम'।

जातदन्त—वि० [सं० जातदन्त] (बालक) जिसके दाँत निकल चुके हो [को०]।

जातदोष—वि० [सं०] जगमें दोष हो। दोष युक्त [को०]।

जातपक्ष—वि० [सं०] जिसके पंख निकल आए हों [को०]।

जातपाँत—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + पङ्क्ति] जाति। बिरादरी। जैसे,—जात पाँत पूछे नहीं कोई। हरि को भजे सो हरि का होइ।

जातपाश—वि० [सं०] जो बंधन में हो। बंधनयुक्त। बद्ध [को०]।

जातपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने संतान को जन्म दिया हो। पुत्रवती स्त्री [को०]।

जातप्रत्यय—वि० [सं०] जिसके मन में विश्वास उत्पन्न हो गया हो। प्रतीतियुक्त [को०]।

जातमात्र—वि० [सं०] जन्मनुषा। सुरंत का जन्मा [को०]।

जातमृत—वि० [सं०] जन्म लेते ही मर जानेवाला [को०]।

जातरा—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा'।

जातरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुवर्ण। सोना। उ०—जातरूप मनि रचित भटारी। नामा रम रुचिर गच ढारी :—मानस, ७। २७। २. धतूरा। पीला धतूरा।

जातरूप—वि० सुंदर। सौंदर्ययुक्त [को०]।

जातबिभ्रम—वि० [सं०] किकनयविमूढ। चढ़ाया हुआ [को०]।

जातवेद—संज्ञा पुं० [जातवेदस्] १. अग्नि। २. चित्रक वृक्ष। जीने का पेड़। ३. अंतर्यामी। परमेश्वर। ४. सूर्य।

जातवेदसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

जातवेदा—संज्ञा पुं० [सं० जातवेदस्] दे० 'जातवेद'।

जातवेश्म—संज्ञा पुं० [सं० जातवेश्मन्] वह घर जिसमें बालक का जन्म हो। सीरी। सूतिकागार।

जाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। पुत्री।

जाता—वि० स्त्री० उत्पन्न।

जाता—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] दे० 'जाति'।

जाता—वि० [सं० जाता] जाता। जानकारी। निष्णात। उ०—

किते पुरान प्रवीन किते जोतिस के जाता। किते वेदविधि निपुन किते सुपुतन के जाता।—सुजान०, पृ० २६।

जाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं में मनुष्य समाज का वह विभाग जो पहले पहल कर्मानुसार किया गया था, पर पीछे से स्वभावतः जन्मानुसार हो गया। उ०—कामी क्रीधी लासची इनपै भक्ति न होय। भक्ति करे कोई सूरमा जाति वरन कुल लोय—कबीर (शब्द०)।

विशेष यह जातिविभाग धारम में वर्णविभाग के रूप में ही था, पर पीछे से प्रत्येक वर्ण में भी कर्मानुसार कई शाखाएँ हो गईं, जो प्रागे चलकर भिन्न भिन्न जातियों के नामों से प्रसिद्ध हुईं। जैसे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सोनार, लोहार, कुम्हार आदि।

२. मनुष्य समाज का वह विभाग जो निवासस्थान या वंश-परंपरा के विचार से किया गया हो। जैसे, प्रपेजी जाति, मुगल जाति, पारसी जाति, आर्य जाति आदि। ३. वह विभाग जो गुण, धर्म, भाकति आदि की समानता के विचार से किया जाय। कोटि। वर्ग। जैसे,—मनुष्य जाति, पशु जाति, कीट जाति। वह अच्छी जाति का घोड़ा है। यह दोनों धाम एक ही जाति के हैं। उ०—(क) सकल जाति के बंधे सुरंगम रूप धनूप विशाला।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—न्याय के अनुसार द्रव्यों में परस्पर भेद रहते हुए भी जिससे उनके विषय में समान बुद्धि उत्पन्न हो, उसे जाति कहते हैं। जैसे, घटत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व आदि। 'सामान्य' भी इसी का पर्याय है।

४. न्याय में किसी हेतु का वह अनुपयुक्त संबन्धन या उत्तर जो केवल साधर्म्य या वैधर्म्य के आधार पर हो। जैसे,—यदि वादी कहे कि आत्मा निष्क्रिय है, क्योंकि यह आकाश के समान विभु है और इसपर प्रतिवादी यह उत्तर दे कि विभु आकाश के समान धर्मवाला होने के कारण यदि आत्मा निष्क्रिय है, तो क्रियाहेतुगुणयुक्त लोष्ठ के समान होने के कारण वह क्रियावान् क्यों नहीं है, तो उसका यह उत्तर साधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुपयुक्त होगा और जाति के अंतर्गत आएगा। इसी प्रकार यदि वादी कहे कि शब्द अनित्य है क्योंकि वह उत्पत्ति धर्मवाला है और आकाश उत्पत्ति धर्मवाला नहीं है और इसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि शब्द उत्पत्ति धर्मवाला और आकाश के असमान होने के कारण अनित्य है, तो वह घट के धाममान होने के कारण नित्य क्यों नहीं है, तो उसका यह उत्तर केवल वैधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुपयुक्त होगा और जाति के अंतर्गत आ जायगा।

विशेष—न्याय में जाति सोलह पदार्थों के अंतर्गत मानी गई है। नैयायिकों ने इसके और भी सुक्रम २० भेद किए हैं, जिनके नाम ये हैं—(१) साधर्म्य सम। (२) वैधर्म्य सम। (३) उत्कर्ष सम। (४) अपकर्ष सम। (५) वर्ण्य सम। (६) अवर्ण्य सम। (७) विकल्प सम। (८)

साध्य सम । (६) प्राप्ति सम । (१०) अप्राप्ति सम ।
 (११) प्रसंग सम । (१२) प्रतिष्ठान्त सम । (१०)
 अनुपपत्ति सम । (१४) संशय सम । (१५) प्रकरण सम ।
 (१६) हेतु सम । (१७) अर्थापत्ति सम । (१८) अविशेष
 सम । (१९) उपपत्ति सम । (२०) उपलब्धि सम ।
 (२१) अनुपलब्धि सम । (२२) नित्य सम । (२३)
 अनित्य सम, और (२४) कार्य सम ।

५. वरुण । ६. कुल । ७. वंश । ८. गोत्र । ९. जन्म । १०. ग्रामलकी ।
 छोटा भावला । १०. सामान्य । साधारण । ग्राम । ११.
 चमेली । १२. जावित्री । १३. जायफल । जातीफल । १४. वह
 पक्ष जिसके चरणों में मात्राओं का नियम हो । मात्रिक छंद ।

जातिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातकर्म' ।

जातिकोश, जातिकोष—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिकोशी, जातिकोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री ।

जातिचरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वीटिस्य के अनुसार जातीय रहन सहन
 तथा प्रथा ।

जातिच्युत—वि० [सं०] जाति में गिरा या निकाला हुआ । जो
 जाति से अलग या बाहर हो ।

जातित्व—संज्ञा पुं० [सं०] जाति का भाव : जातीयता ।

जातिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. जाति या वरुण का धर्म । २. ब्राह्मण,
 क्षत्रिय और वैश्य आदि का अलग अलग कर्तव्य । जिस
 जाति में मनुष्य उत्पन्न हुआ हो, उसका विशेष आचार या
 कर्तव्य ।

विशेष—प्राचीन काल में अभियोगों का निर्णय करते हुए जाति-
 धर्म का आदर किया जाता था ।

जातिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जातिपत्री] जावित्री ।

जातिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री ।

जातिपति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + हि० पति = सं० पति] जाति
 या वरुण आदि । उ०—जाति पति उन सम हम नहीं । हम
 निगुण सब गुण उन पाहीं ।—सूर (शब्द०) ।

जातिफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं० जातिवैर] स्वाभाविक शत्रुता ।
 सहज वैर ।

विशेष—महाभारत में जातिवैर पाँच प्रकार का माना गया है,—
 (१.) स्त्रीकृत । (२.) वास्तुज । (३.) वायज ।
 (४.) सापत्न और (५.) अपराधज ।

जातिब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसका केवल जन्म किसी
 ब्राह्मण के घर में हुआ हो और जिसने तपस्या या वेद अध्ययन
 आदि न किया हो ।

जातिभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] जातिच्युत होने का भाव ।
 जातिभ्रंशता [स्त्री०] ।

जातिभ्रंशकर—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार नौ प्रकार के पापों
 में से एक प्रकार का पाप जिसका करनेवाला जाति और
 आश्रम आदि से भ्रष्ट हो जाता है ।

विशेष—इसके अंतर्गत ब्राह्मणों को पीड़ा देना, मदिरा पीना
 अथवा अस्वाच्छ पदार्थ खाना, कपट व्यवहार करना और
 पुरुषमैथुन आदि कई निन्दनीय काम हैं । यह पाप यदि अनजान
 में हो तो पापी को प्राजापत्य प्रायश्चित्त और यदि जानकारी
 में हो तो सातपन प्रायश्चित्त करना चाहिए ।

जातिभ्रष्ट—वि० [सं०] जातिच्युत । जातिबहिष्कृत [स्त्री०] ।

जातिमान्—वि० [सं० जातिमत्] सत्कुलोत्पन्न । कुलीन [स्त्री०] ।

जातिमहर्षण—संज्ञा स्त्री० [सं०] जातिसूचक भेद । जातीय
 विशेषता [स्त्री०] ।

जातिवाचक—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्याकरण में संज्ञा का एक भेद ।
 २. जाति को बतानेवाला शब्द [स्त्री०] ।

जातिविद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] जातियों का पारस्परिक वैर । जातिगत
 वैर । [स्त्री०] ।

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातिवैर' ।

जातिवैरी—संज्ञा पुं० [सं०] स्वाभाविक शत्रु [स्त्री०] ।

जातिव्यवसाय—संज्ञा पुं० [सं०] जातिगत पेशा । जातीय धंधा या
 काम । जैसे, सोनारी, लोहारी आदि ।

जातिशस्य—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिसंकर—संज्ञा पुं० [सं० जातिसंकर] दो जातियों का मिश्रण ।
 वरुणसंकरता । दोगलापन ।

जातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिस्मर—वि० [सं०] जिसे अपने पूर्वजन्म का इतिवृत्त याद हो ।
 जैसे,—जातिस्मर शिशु । जातिस्मर शुक । जातिस्मर मुनि ।

जातिस्मृत—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल । जातीफल ।

जातिस्वभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का अलंकार जिसमें
 धातुगत और गुण का वर्णन किया जाता है । २. जातिगत
 स्वभाव, प्रकृति या लक्षण ।

जातिहीन—वि० [सं०] १. नीची जाति का । निम्न जाति का ।
 उ०—जातिहीन अथ जन्म महि मुक्त कीन्ह अस नारि ।
 महामंद मन सुख वहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ।—मानस,
 ३।३० । २. जातिभ्रष्ट । जातिच्युत (स्त्री०) ।

जाती^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमेली । २. ग्रामलकी । छोटा भावला ।
 ३. मालती । ४. जायफल ।

जाती^२(पुं)—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति] दे० 'जाति' । उ०—(क) सादर
 बोले सकल बराती । पिछ्यु बिरंचि देव सब जाती ।—मानस,
 १।६६ । (ख) दीन हीन मति जाती ।—मानस, ६।११५ ।

जाती^३—संज्ञा पुं० [देश०] हाथी । हस्ती (हि०) ।

जाती^४—वि० [अ० जाती] १. व्यक्तिगत । २. अपना । निज का ।


जातीकोश—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातीकोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातिकोश' ।

जातीपत्री—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री । जायपत्री ।

जातीपूग—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातीफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातीय—वि० [सं०] जातिसंबंधी । जाति का । जातिवाला ।
 जातीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जाति का भाव । जतिस्व । २. जाति की समता । ३. जाति ।
 जातीरस—संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंधद्रव्य ।
 जातु—अव्य० [सं०] १. कदाचित् । कभी । २. संभवतः । शायद ।
 जातुक—संज्ञा पुं० [सं०] हींग ।
 जातुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती स्त्री की इच्छा । दोहद ।
 जातुधान—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस । निशाचर । असुर ।
 जातुष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जातुषी] १. जतु या लाव का बना हुआ । २. चिपकनेवाला । चिपचिपा । लसदार (को०) ।
 जातू—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।
 जातूकर्णी—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपस्मृति बनानेवाले एक ऋषि का नाम । हरिवंश के अनुसार इनका जन्म ऋट्टाईसवें हापर में हुआ था । २. शिव का एक नाम (को०) ।
 जातूकर्णी—संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि भवभूति के पिता का नाम ।
 जातेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. 'जातकर्म' ।
 जातोत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह बैल जो बहुत ही छोटी अवस्था में बलिया कर दिया गया हो ।
 जात्यंध—वि० [सं० जात्यन्ध] जन्मांध (को०) ।
 जात्य—वि० [सं०] १. उत्तम कुल में उत्पन्न । कुलीन । २. श्रेष्ठ । ३. जो देखने में बहुत अच्छा हो । सुंदर ।
 जात्य त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज क्षेत्र जिसमें एक समकोण हो । जैसे  ।
 जात्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक आसन ।
 विशेष—इस आसन में हाथ और पैर जमीन पर रखकर चलते हैं । कहते हैं कि इस आसन के सिद्ध हो जाने से पूर्वजन्म की सब बातें याद हो जाती हैं ।
 जात्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह दूषित उत्तर जिसमें व्याप्ति स्थिर हो । यह अठारह प्रकार का माना गया है ।
 जात्यारोह—संज्ञा पुं० [सं०] खगोल के प्रकाश की गिनती में वह दूरी जो शेष से पूर्व की ओर प्रथम भ्रंश से ली जाती है ।
 जात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] तीर्थयात्रा । यात्रा । उ०—
 हुनो माइय तब कियो असद्व्यय करी न ब्रज बन जात्र ।
 —मूर०. १।२।१५ ।
 जात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] १. 'यात्रा' ।
 जात्रो—संज्ञा पुं० [सं० यात्री] १. 'यात्री' ।
 जात्रका—संज्ञा स्त्री० [सं० जूथिका] डेरी । डेर । राशि ।
 जादपति—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्ण । विष्णु । उ०—
 कमला यह जादपति बारी । ताको है मुकता रखवारी ।—
 ईशा०, पृ० १५६ ।
 जादरसार—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वस्त्र । उ०—पाट
 बहठा दुई राजकुमार । पहिरी वस्त्र जादर सार ।—बी०
 रासो, पृ० २२ ।
 जादू—संज्ञा पुं० [सं० यादव] यादव । यदुवंशी ।

जादवपति—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्णचंद्र ।
 जादसंपति—संज्ञा पुं० [सं० यादवसंपति] जलजंतुओं का स्वामी ।
 वरुण ।
 जादसंपत्ती—संज्ञा पुं० [सं० यादवसंपति] १. 'जादसंपति' ।
 जादा—संज्ञा पुं० [सं०] १. 'जाद' । २. 'जाद' ।
 जादुई—वि० [सं० जादू] इद्रजाल संबंधी । जादू के प्रभाववाला ।
 उ०—इन चित्रों में जादुई आकर्षण है जिसकी सुहानी बीसि
 हमारी चेतना पर छा जाती है ।—प्रेम० और गोकर्ण पृ० १ ।
 जादू—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अदभुत और आश्चर्यजनक कृत्य
 जिसे लोग अलौकिक और अमानवी समझते हैं । इद्रजाल ।
 तिलस्म ।
 विशेष—प्राचीन काल में संसार को प्रायः सभी जातियों के लोग
 किसी न किसी रूप में जादू पर बहुत विश्वास करने थे । उन
 दिनों रोगों को चिकित्सा, बड़ी बड़ी कामनाओं की सिद्धि
 और इसी प्रकार की अनेक दूसरी बातों के लिये अच्छे बख्खे
 जादूगरों और सयानों से अनेक प्रकार के जादू ही कराए जाते
 थे । पर अब जादू पर से लोगों का विश्वास बहुत अंशों में
 उठ गया है ।
 कि० प्र०—चलना । —करना ।
 मुहा०—जादू उठना=जादू का प्रभाव समाप्त होना । जादू
 चलना=जादू का प्रभाव होना । किसी बात का प्रभाव होना ।
 जादू काम करना=प्रभाव होना । उ०—उसमें न किसी का
 जादू काम कर रहा है और न किसी का टोना ।—चुमते०
 (प्रा०) पृ० ३ । जादू जगाना=प्रयोग प्रारंभ करने से पहले
 जादू को चेतन्य करना ।
 २. वह अदभुत खेल या कृत्य जो दर्शकों की दृष्टि और बुद्धि को
 धोखा दे कर किया जाय । ताश, मंगूठी, घड़ी, छुरी और
 सिक्के आदि के तरह तरह के बिलक्षण और बुद्धि को चकराने-
 वाले खेल इसी के अंतर्गत हैं । बाजीगरी का खेल । ३. टोना ।
 टोटका । ४. दूसरे को मोहित करने की शक्ति । मोहिनी ।
 जैसे,—उसको धोखे में जादू है ।
 कि० प्र०—करना । —ढालना ।
 जादू—संज्ञा पुं० [सं० यादव] १. 'जादू' । उ०—पूरब दिसि
 गढ गढ़नपति समुद्र सिलर भाति द्रुग । तहें सु विजय सुर
 राजपति जादू कुलहु अभंग ।—पृ० १०, २० । १ ।
 जादूगर—संज्ञा पुं० [सं०] जादूगरनी वह जो जादू करता
 हो । तरह तरह के अदभुत और आश्चर्यजनक कृत्य करने-
 वाला अनुष्य ।
 जादूगरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जादू करने की क्रिया । जादूगर
 का काम । २. जादू करने का ज्ञान । जादू की विद्या ।
 जादूनजर—संज्ञा पुं० [सं० जादूनजर] दृष्टि मात्र से मोहित कर
 लेनेवाला । देखते ही मन लुभानेवाला । जिसके नेत्रों में
 जादू हो ।
 जादूनिगाह—वि० [सं०] १. 'जादूनजर' ।

जादूख्यान—वि० [फा०] जिसकी वाणी वशीभूत करनेवाली हो ।
जिसकी वाणी से जादू जैसी शक्ति हो [को०] ।

जादूखयानो—संज्ञा स्त्री० [फा०] जादू जैसी शक्ति या प्रभाववाली वाणी । उ०—घापकी जादूखयाबी तो इस दम अपना काम कर गई ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५ ।

जादो०—संज्ञा पुं० [सं० यादव] दे० 'जादो' । उ०—दुरजोधन को गर्ब घटायो जादो कुल नास करी ।—कबीर श०, पृष्ठ ४० ।

जादौ०—संज्ञा पुं० [सं० यादव] १. यदुवंशी । यदुवंश में उत्पन्न । उ०—सुमति विचारहि परिहरहि दल सुमनहु संग्राम । सकल गए तन बिनु भए साखी जादो काम ।—तुलसी (शब्द०) । २. नीच जाति । नीच कुलोत्पन्न ।

जादौराह०—संज्ञा पुं० [सं० यादवराज] श्रीकृष्णचंद्र । उ०—गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ । मातु की गति दई ताहि कृपाल जादौराह ।—तुलसी (शब्द०) ।

जान^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] १. ज्ञान । जानकारी । जैसे,—हमारी जान में तो कोई ऐसा आदमी नहीं है । २. समझ । अनुमान । खयाल । उ०—मेरे जान इन्हिहि बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो टाट हतौरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

जौ०—जान पहचान = परिचय । एक दूसरे से जानकारी । जैसे,—(क) हमारी उनकी जान पहचान नहीं है । (ख) उनसे तुमसे जान पहचान होगी ।

मुहा०—जान में = जानकारी में । जहाँ तक कोई जानता है वहाँ तक ।

बिशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में या 'में' विभक्ति के साथ ही होता है । इसके लिये के विषय में भी मतभेद है । पुलिग और स्त्रीलिग दोनों में प्रयोग प्राप्त होने है ।

जान^२—वि० सुजान । जानकार । जानमान । चतुर । उ०—(क) जानकी जीवन जान न जान्यो तो जान कहावन जान्यो कहा है ।—तुलसी श्रं०, पृ० २०७ । (ख) प्रेम सगुद रूप रस गहिरे कैसे लागे बाट । बेकान्यो है जान कहावत जानपनो कि कहा परी बाट ।—हरिदास (शब्द०) ।

जौ०—जानपन । जानपनी । जानपनो(पु) । जानराय । जानसिरोमनि = जानवानों में श्रेष्ठ । उ०—(क) तुम्हें परिपूरन काम जान सिरोमनि भाव प्रिय । अनशुन गाहक राम दोषदलन करुणायतन ।—मानस, २३२ । (ख) प्रभु को देखो एक सुखाइ । प्रति गभीर नदर उदधि हीर जान सिरोमनि राइ ।—सुर०, १ । ८ ।

जान^३—संज्ञा पुं० [सं० जानु] दे० 'जानु' ।

जान^४—संज्ञा पुं० [सं० यान] दे० 'यान' ।

जान^५—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. प्राण । जीव । प्राणवायु । दम । जैसे,—जान है तू जहाँ है ।

मुहा०—जान घाना = जी ठिकाने होना । चित्त में धैर्य होना । चित्त स्थिर होना । शांति होना । जान का गाहक = (१) प्राण लेने की इच्छा रखनेवाला । मार डालने का यत्न करनेवाला । शत्रु (२) बहुत तंग करनेवाला पोछा । न छोड़नेवाला । जान का रोग = ऐसा दुःखदायी व्यक्ति या वस्तु जो

पोछा न छोड़े । सब दिन कष्ट देनेवाला । जान का लागू = दे० 'जान का गाहक' । जान के साले पड़ना = प्राण बचना कठिन दिखाई देना । जी पर घा बनना । (अपनी) जान को जान न समझना = प्राण जाने की परवाह न करना । अत्यंत अधिक कष्ट या परिश्रम सहना । (दूसरे की) जान को जान न समझना = किसी को अत्यंत कष्ट या दुःख देना । किसी के साथ निष्ठुर व्यवहार करना । (किसी की) जान को रोना = किसी के कारण कष्ट पाकर उसका स्मरण करते हुए दुःखी होना । किसी के द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट को याद करके दुःखी होना । जैसे,—तुमने उसकी जीविका ली, वह अब तक तुम्हारी जान को रोता है । जान खाना = (१) तंग करना । बार बार घेरकर दिक करना । (२) किसी बात के लिये बार बार कहना । जैसे,—चलते हैं, क्यों जान खाते हो । जान खोना = प्राण देना । मरना । जान छुराना = दे० 'जी छुराना' । जान छुड़ाना = (१) प्राण बचाना । (२) किसी भ्रष्ट से छुटकारा करना । किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु को दूर करना । संकट टालना । छुटकारा करना । निस्तार करना । जैसे,—(क) जब काम करने का समय आता है तब लोग जान छुड़ाकर भागते हैं । (ख) इसे कुछ देकर अपनी जान छुड़ाओ । जान छूटना = किसी भ्रष्ट या आपत्ति से छुटकारा मिलना । किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु का दूर होना । निस्तार होना । जैसे,—बिना कुछ दिए जान नहीं छूटेगी । जान जाना = प्राण निकलना । भ्रष्ट होना । (किसी पर) जान जाना = किसी पर अत्यंत अधिक प्रेम होना । जान जोखी = प्राण का भय । प्राणहानि की आशंका । जीवन का संकट । प्राण जाने का डर । जान डालना = शक्ति का संचार करना । उ०—हम देजान में जान डाल देते थे ।—कुम्हते० (दो दो०), पृ० २ । जान तोड़कर = दे० 'जी तोड़कर' । जान दुभर होना = जीवन कटना कठिन जान पड़ना । भारी मालूम होना । दुःख पड़ने के कारण जीने का इच्छा न रह जाना । जान देना = प्राण त्याग करना । मरना । (किसी पर) जान देना = (१) किसी के किसी कर्म के कारण प्राण त्याग करना । किसी के किसी काम से कष्ट या दुःखी होकर मरना । (२) किसी पर प्राण न्योछावर करना । किसी को प्राण से बढ़कर चाहना । बहुत ही अधिक प्रेम करना । (किसी के लिये) जान देना = किसी को बहुत अधिक चाहना । (किसी वस्तु के लिये या पोछे) जान देना = किसी वस्तु के लिये अत्यंत अधिक व्यग्र होना । किसी वस्तु की प्राप्ति या रक्षा के लिये बचैव होना । जैसे,—वह एक एक पैसे के लिये जान देता है; उसका कोई कुछ नहीं दबा सकता । जान निकलना = (१) प्राण निकलना । मरना । (२) भय के मारे प्राण सूखना । डर लगना । अत्यंत कष्ट होना । घोर पीड़ा होना । जान पड़ना = दे० 'जान घाना' । जान पर घा बनना = (१) प्राण का भय होना । प्राण बचना कठिन दिखाई देना । (२) आपत्ति घाना । चित्त संकट में पड़ना । (३) हिरानी होना । नाक में दम होना । गहरी व्यग्रता होना । जान पर खेलना = प्राणों को भय में डालना । जान को जोखी में डालना ।

अपने आपकी ऐसी स्थिति में डालना जिसमें प्राण तक जाने का भय हो। जान पर नोबत घाना = ३० 'जान पर घा बनना'। जान बचना = (१) प्राणरक्षा करना। (२) पीछा छुड़ाना। किसी कष्टदायक या अप्रिय वस्तु या व्यक्ति को दूर रखना। निस्तार करना। जैसे,—हम तो जान बचाते फिरते हैं, तुम बार बार हमें आकर घेरते हो। जान मारकर काम करना = जी तोड़कर काम करना। अत्यंत परिश्रम से काम करना। जान मारना = (१) प्राणहत्या करना। (२) सताना। दुःख देना। तंग करना। दिक करना। (३) अत्यंत परिश्रम कराना। कड़ी मेहनत लेना। जैसे,—उनके यहाँ कोई काम करने क्या जाय, दिन भर जान मार डालते हैं। जान में जान आना = धैर्य बँधना। डारस होना। चित्त स्थिर होना। व्यग्रता, चबराहट या भय प्रादि का दूर होना। जान मैना = (१) मार डालना। प्राणघात करना। (२) तंग करना। दुःख देना। पीड़ित करना। जैसे,—क्यों बूढ़ों को पीड़ाकर उनकी आँखें बूझ देते हो। जान सी निकलने जानना = कठिन पीड़ा होना। बहुत दुःख होना। जान सूखना = (१) प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। होश हवाश छड़ना। जैसे,—धैर्य को देखते ही उसकी तो जान सूख गई। (२) बहुत अधिक कष्ट होना। (३) बहुत बुरा खटना। खटना। जैसे,—किसी को कुछ देते देख तुम्हारी क्यों जान सूखती है। जान से जाना = प्राण कोबा। मरना। जान से भारना = मार डालना। प्राण ले लेना। जान से जाना। जान हुनाकान करना = सताना। तंग करना। दिक करना। हैरान करना। जान हुनाकान होना = तंग होना। दिक होना। हैरान होना। जान होठों पर घाना = (१) प्राण कंठगत होना। प्राण निकलने पर होना। (२) अत्यंत कष्ट होना। घोर पीड़ा होना।

२. बल। शक्ति। बूढ़ा। सामर्थ्य। जैसे,—अब किसी में कुछ जान नहीं है जो तुम्हारा सामना करने पावे। ३. सार। उत्त्व। सबसे उत्तम धन। जैसे,—यही पद तो उस कविता की जान है। ४. अच्छा या सुंदर करनेवाली वस्तु। शोभा बढ़ानेवाली वस्तु। मजेदार करनेवाली चीज। चटकीला करनेवाली चीज। जैसे,—मसाला ही तो तरकारी की जान है।

मुहा०—जान घाना = घोष बढ़ना। शोभा बढ़ना। जैसे,—रंग फेर देने से इस तस्वीर में जान आ गई है।

जाने—संज्ञा पुं० [ज्ञान या सं० घान] वागत। उ०—(क) कर जोड़े राजा कहूँ, चालच चउरासी राय की जान।—बी० राखी, पृ० १०। (ख) जान पगई में ग्रहयक बच्चे, कपड़े भी फटे देह भी दूँटे। (कहावत)।

जानकार—वि० [हि० जानना + कार (प्रत्य०)] १. जाननेवाला अभिज्ञ। २. विज्ञ। चतुर।

जानकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० जानकार + ई (प्रत्य०)] १. अभिज्ञता। परिचय। वाक्यव्यवस्था। २. विज्ञता। निपुणता।

जानकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जनक की पुत्री। सीता।

जानकीकंत—संज्ञा पुं० [सं० जानकीकन्त] राम। उ०—द्वैत जानकीकंत, तब छूटे संसारदुख।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६६।

जानकीजानि—संज्ञा पुं० [सं०] (जिसकी स्त्री जानकी है) रामचंद्र। उ०—बाहुबल विपुल परिमित पराक्रम धनुन गूढ़ गति जानकीजानि जानी।—तुलसी (शब्द०)।

जानकीजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र। उ०—जानकीजीवन को जन हूँ जरि जाहु सो जीह जो जाँचत श्रीरहि।—तुलसी (शब्द०)।

जानकीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति, श्रीराम। उ०—सो बातन की एकै बात। सब तजि भजी जानकीनाथ।—सूर (शब्द०)।

जानकीप्राण—संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र। उ०—निज सहज रूप में संगत जानकीप्राण बोले।—धनमिका, पृ० १५६।

जानकीमंगल—संज्ञा पुं० [सं०] नोस्वामी तुलसीदास का बनाया हुआ एक ग्रंथ जिसमें श्रीराम जानकी के विवाह का वर्णन है।

जानकीरमण—संज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति—श्रीरामचंद्र।

जानकीरचन(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० जानकीरमण] ३० 'जानकीरमण'।

जानकीवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र [की०]।

जानदार(पुं०)—वि० [फा०] १. जिसमें जान हो। सजीव। जीवधारी। २. उत्कृष्ट। घोषदार। जैसे, जानदार मोती। जानदार चीज या वस्तु।

जानदार^२—संज्ञा पुं० जानवर। प्राणी।

जाननहार(पुं०)—वि० [हि० जानना + हार (प्रत्य०)] जानने या समझनेवाला। जाननिहार। उ०—सुखसागर मुख नींद बस सपने सब करतार। माया मायानाथ की को जग जाननहार।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२३।

जानना—क्रि० सं० [सं० जान] १. किसी वस्तु की स्थिति, गुण, क्रिया या प्रणाली इत्यादि निर्दिष्ट करनेवाला भाव धारण करना। ध्यान प्राप्त करना। बोध प्राप्त करना। अभिज्ञ होना। वाक्य होना। परिचित होना। अनुभव करना। मालूम करना। जैसे,—(क) वह व्याकरण नहीं जानता। (ख) तुम तेरना नहीं जानते। (ग) मैं उसका घर नहीं जानता। संयो० क्रि०—जाना।—पाना। मैना।

यौ०—जानना बूझना—जानकारी रखना। ज्ञान रखना।

मुहा०—जान पड़ना = (१) मालूम पड़ना। प्रतीत होना। (२) अनुभव होना। मचेरना होना। जैसे—जिस समय मैं गिरा था, उस समय तो कुछ नहीं जान पड़ा; पर पीछे बड़ा दर्द उठा। जानकर धनजान = किसी बात के विषय में जानकारी रखते हुए भी किसी को चिढ़ाने, धोखा देने या अपना मतलब निकासने के लिये अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना। जान बूझकर = भ्रमे से नहीं। पुरे संकल्प के साथ। नीयत के साथ। अनजान में नहीं। जैसे,—तुमने जान बूझकर यह काम किया है। जान रखना = समझ रखना। ध्यान में रखना। मन में बैठाना। हृदयंगम करना। जैसे,—इस बात को जान रखो कि अब वह नहीं आएगा। किसी का कुछ जानना =

किसी का सहायतार्थ दिया हुआ धन या किया हुआ उपकार स्मरण रखना । किसी के किए हुए उपकार के लिये कृतज्ञ होना । किसी का एहसानमंद होना । जैसे,—क्यों मुझे कोई दो बात कहे, मैं किसी का कुछ जानता हूँ । (.....) तो मैं जानूँ = (१) (.....) तो मैं समझूँ कि बड़ा भारी काम किया या बड़ी धनहोनी बात हो गई । जैसे,—(क) यदि तुम इतना क्रुद्ध जाओ तो मैं जानूँ । (ख) यदि वह दो दिन में इसे कर लाए तो जानूँ । (२) (.....) तो मैं समझूँ कि बात ठीक है । जैसे,—सुना तो है कि वे घानेवाले हैं; पर घा जायें तो जानें ।

विशेष—इस मुहावरे के प्रयोग द्वारा यह ग्रंथ सूचित किया जाता है कि कोई काम बहुत कठिन है या किसी बात के होने का निश्चय कम है । इसका प्रयोग 'मैं' और 'हम' दोनों के साथ होता है ।

(.....) तो मैं नहीं जानता = (.....) तो मैं बिस्मेश्वर नहीं । तो मेरा दोष नहीं । जैसे,—उसपर चढ़ते तो हो; पर यदि गिर पड़ोगे तो मैं नहीं जानता । मैं क्या जानूँ ? तुम क्या जानो ? वह क्या जाने ? मैं नहीं जानता, तुम नहीं जानते, वह नहीं जानता । (बहुवचन में भी यह मुहावरा बोला जाता है) । जाने धनजाने—जान बूझकर या बिना जाने बूझें ।

२. सूचना पाना । खबर पाना या रखना । प्रसंगत होना । पता पाना या रखना । जैसे,—हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे घानेवाले हैं । ३. अनुमान करना । सोचना । जैसे,—मैं जानता हूँ कि वे कल तक घा जाएंगे ।

जाननिहारा—वि० [हि० जाननि + हार (प्रत्य०)] जाननेवाला । समझनेवाला । उ०—(क) श्रीर तुम्हाहि को जाननिहारा । —मानस, २।१२७ । (ख) भूत भविष्य को जाननिहारा । कहतु है वन शुभ गवन की बारा । —नद० ब्रं०, पृ० १५६ ।

जानपति—वि० [सं० ज्ञान + पति] जानियों में प्रधान । जानकारों में श्रेष्ठ । उ०—जानपति दानपति हाड़ा हिंदुवान पति दिल्लीपति दलपति बलाबंधपति है । —मति० ब्रं०, पृ० ३६ ।

जानपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. जनपद संबंधी वस्तु । २. जनपद का निवासी । जन । लोक । मनुष्य । ३. देश । ४. कर । माल-गुजारी । ५. मिताक्षरा के अनुसार लेख्य (दस्तावेज) के दो अंशों में से एक ।

विशेष—इस लेख्य (दस्तावेज में) लेख प्रजावर्ग के परस्पर व्यवहार के संबंध में होता है । यह दो प्रकार का होता है—एक अपने हाथ से लिखा हुआ, दूसरा दूसरे के हाथ से लिखा हुआ । अपने हाथ से लिखे हुए में साक्षी की आवश्यकता नहीं होती थी ।

जानपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वृत्ति । २. एक घण्टरा ।

विशेष—इस घण्टरा को इन्द्र ने शत्रुघ्न ऋषि का तप भंग करने के लिये भेजा था । शत्रुघ्न ऋषि ने मोहित होकर जो शुक-पान किया, उसमें रूप और कुरीय की उत्पत्ति हुई । महाभारत आदिपर्व में यह आख्यायिका वर्णित है ।

जानपना—संज्ञा पुं० [हि० जान + पन (प्रत्य०)] जानकारी । अभिज्ञता । चतुराई । होशियारी । उ०—बेका-यो है जान

कहावत जानपनी की कहा परी बाट ।—हरिदास (शब्द०) ।

जानपनी—संज्ञा स्त्री० [हि० जान + पन (प्रत्य०)] बुद्धिमानी । जानकारी । चतुराई । होशियारी । उ०—(क) जानपनी की गुमान बड़ो तुलसी के विचार गँवार महा है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जानी है जानपनी हरि की घब बाँधिएगी कछु मोठ कला की ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) दम दान दया नहि जानपनी । जड़ता पर बंचन ताति घनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानबाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० जान + बाज] बल्खमटेर । वास्तविक । जान १/२ खेख जानेवाला (लश०) ।

जानमनि—संज्ञा पुं० [हि० जान + सं० मणि] जानियों में श्रेष्ठ । बड़ा जानी पुरुष । बहुत बुद्धिमान मनुष्य । उ०—रूप सील सिधु गुन सिधु बंधु दीन को, दयानिधान जानमनि बीर बाहु बोल को ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०० ।

जानमाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जानमाज] एक पतला कालीन या घासन जिसपर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं । नमाज पढ़ने का फर्ज ।

जानराय—संज्ञा पुं० [हि० जान + राय] जानकारों में श्रेष्ठ । अत्यंत जानी पुरुष । बड़ा बुद्धिमान मनुष्य । सुज्ञान । उ०—जागिए कृपानिधान जानराय रामचंद्र जननी कहैं बार बार भोर सयो प्यारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानवर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. प्राणी । जीव । जीवधारी । २. पशु । जंतु । दैवान ।

मुहा०—जानवर लगना = जानवरों का घाना जाना या दिखाई पड़ना । उ०—घोर वहाँ जंगलों में दरिंद जानवर लगते हैं घोर घादमियों को खा जाते हैं ।—सैर कु०, पृ० १५ ।

जानवर—वि० मुखं । ग्रहमक । बड़ ।

जानशीन—संज्ञा पुं० [फ़ा० जानशीन] १. वह जो दूसरे की स्वीकृति के अनुसार उसके स्थान, पद या अधिकार पर हो । २. वह जो व्यवधानुसार दूसरे के पद या संपत्ति आदि का अधिकारी हो । उत्तराधिकारी ।

जानहार—संज्ञा पुं० [हि० जाना + हार (प्रत्य०)] १. जानेवाला । २. खो जानेवाला । हाथ से निकल जानेवाला । ३. मरनेवाला । नष्ट होनेवाला ।

जानहार—संज्ञा पुं० [हि० जानना + हार (प्रत्य०)] वह जो जाननेवाला हो । जाननेवाला या समझनेवाला व्यक्ति । ३० 'जाननिहारा' ।

जानहार—वि० जाननेवाला ।

जानहु—संज्ञा पुं० [हि० जानना] मानो । जैसे । उ०—घनि राजा घस सभा संवारी । जानहु फूल रही फुलवारी ।—जायसी (शब्द०) ।

जाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] प्रिय । मायूक । प्यारा । उ०—दिब का हजरा साफ कर जाना के घाने के लिये ।—तुलसी सा०, पृ० ४ ।

जाना^१—क्रि० प्र० [सं० √या (हि० जा) + ना (= जाना)]

१. एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्राप्त होने के लिये गति में होना । गमन करना । किसी ओर बढ़ना । किसी ओर अग्रसर होना । स्थान परिवर्तन करना । अग्रह छोड़कर हटना । प्रस्थान करना । जैसे,—(क) वह घर की ओर जा रहा है । (ख) यहाँ से जाओ ।

मुहा०—जाने दो = (१) क्षमा करो । माफ करो । (२) त्याग करो । छोड़ दो । (३) चर्चा छोड़ो । प्रसंग छोड़ो । जा पड़ना = किसी स्थान पर अकस्मात् पहुँचना । जा रहना = किसी स्थान पर जाकर वहाँ ठहरना । जैसे,—मुझे क्या, मैं किसी घमंशाला में जा रहूँगा । किसी बात पर जाना = किसी बात के अनुसार कुछ अनुमान या निश्चय करना । किसी बात को ठीक मानकर उसपर चलना । किसी बात पर ध्यान देना । जैसे,—उमकी बातों पर मत जाओ अपना काम किए चलो ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में प्रायः सब क्रियाओं के साथ केवल पूर्णता प्रादि का बोध कराने के लिये होता है । जैसे, चले जाना, आ जाना, मिल जाना, खो जाना, हूब जाना, पहुँच जाना, हो जाना, दोड़ जाना, खा जाना इत्यादि । कहीं कहीं जाना का अर्थ भी बना रहता है । जैसे, कर जाना—इनके लिये भी कुछ कर जाओ । कर्मप्रधान क्रियाओं के बनाने में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है । जैसे, किया जाना, खा जाना । जहाँ 'जाना' का संयोग किसी क्रिया के पहले होता है, वहाँ उसका अर्थ बना रहता है । जैसे, जा निकलना, जा डटना, जा भिड़ना ।

२. घलन होना । दूर होना । जैसे,—(क) बीमारी यहाँ से न जाने कब जायगी । (ख) सिर जाय तो जाय, पीछे नहीं हटेंगे । ३. हाथ या अधिकार से निकलना । हानि होना ।

मुहा०—क्या जाता है ? = क्या व्यय होता है ? क्या लगता है ? क्या हानि होती है ? जैसे,—उनका क्या जाता है, मुकसान तो होगा हमारा । किसी बात से भी गए ? = इतनी बात से भी बंचित रहे ? इतना करने के भी अधिकारी या पात्र न रहे ? इनमें भी घूँकनेवाले हो गए । जैसे,—उसने हमारे साथ इतनी बुराई की तो हम कुछ कहने से भी गए ?

४. खोना । नाश होना । चोरी होना । गुम होना । जैसे,—(क) पुस्तक यहीं से गई है । (ख) जिसका मास जाता है, वही जानता है । ५. बीतना, व्यतीत होना । गुजरना (काल, समय) । उ०—(क) चार दिन इस महीने में भी गए और रुपया न आया । (ख) गया वक्त फिर हाथ आता नहीं । ६. नष्ट होना । बिगड़ना । सत्यानाश या बरबाद होना । जैसे,—यह घर भी ध्वज गया ।

मुहा०—गया घर = दुर्घाप्राम घराना । वह कुल जिसकी सम्पत्ति नष्ट हो गई हो । गया बीता = (१) दुर्घाप्राम । (२) निकट ।

७. मरना । मृत्यु को प्राप्त होना (श्री०) । जैसे,—उसके दो बच्चे जा चुके हैं । ८. प्रवाह के रूप में कहीं से निकलना । बहना ।

४-११

जारी होना जैसे, झील से पानी जाना, खून जाना, धातु जाना, इत्यादि ।

जाना^२(५)—क्रि० म० [सं० जनम] उत्पन्न करना । जन्म देना । पैदा करना । उ०—(क) मेधा मोहि दाऊ बहुत खिभायो । मोर्मा कहत मोल को, लीन्हो तू जसुमति कत जायो ।—सूर०, १०।२।५ । (ख) कोशनेश दशरथ के जाए । हम पितु बचन मानि बन आए ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । भार्या । जैसे, जानकीजानि । उ०—सो मय दीन्ह रावनहि भानी । होइहि जानुधानपति जानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समासों में होता है और यह ह्रस्व इकारात ही रहता है ।

जानि^२(५)—वि० [सं० जानी] जानकार । जाननेवाला । उ०—यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जानि मीरोमनि कोसलराऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानिब—संज्ञा स्त्री० [प्र०] तरफ । ओर । दिशा । उ०—फौज उष्माक देख हर जानिब । नाजनी माहवे दिमाग दृष्टा ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ७ ।

जानिबदार—संज्ञा स्त्री० [फा०] तरफदार । पक्षपाती । हिमायती ।

जानिबदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पक्षपात । हिमायत । तरफदारी ।

जानी^१—संज्ञा पु० [प्र० जानी] विषयलक्षक व्यक्ति (की०) ।

जानी^२—वि० [फा०] १. ज्ञान में संबंध रखनेवाला । प्राणों का । २. घनिष्ठ । गहरा (की०) ।

यौ०—जानी दुश्मन = जान लेने को तैयार दुश्मन । प्राणों का ग्राहक शत्रु । जानो दोस्त = दिली दोस्त । घनिष्ठ मित्र । प्रिय दोस्त । प्राणप्रिय मित्र ।

जानी^३—वि० स्त्री० [फा० जान] प्राणप्यारी । प्राणेश्वरी । प्रिया ।

जानीवास(५)^१—संज्ञा [हि० जनन सा] जनवासा । बारात ठहरने का स्थान । उ०—चार नयी घायी बीसल राव, जानीवासउ दीयो तिणि ठाव ।—बी० रासो, पृ० १६ ।

जानु^१—संज्ञा पु० [सं०] जीव और पिंडली के मध्य का भाग । घुटना ।

उ०—(क) ग्र्याम की मुंदरताई । बडे विशाल जानु लो पहुँचत यह उग्रमा मन भाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जानु टेकि कवि भूमि न गिरा । उठा सेंमारि बहुत रिस भरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानु^२—संज्ञा पु० [सं० जानु, तुल० फा० जानू] जीव । रान । उ०—बान है फाबत आक के मान है कवली विपरीत उठानु है ।—का न करे यह सोतिन के पर प्रात से प्यारी मुजान की जानु है ।—नोय (शब्द०) ।

जानु^३(५)—अव्य० [हि० जानना] दे० 'जानो' । उ०—तरिखर फरे फरे फरहरी । फरे जानु हंझामन पुरी ।—जायसी (शब्द०) ।

जानुदघ्न—वि० [सं० जानु + दघ्न (दघन् प्रत्य०)] घुटने तक गहरा या घुटनों तक ऊँचा (की०) ।

जामवंत—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] दे० 'जामवान्' । उ०—जामवंत के बचन सुहाए । सुनि हनुमत हृदय प्रति आए । मानस, ५।१।

जामान(५)—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] दे० 'जामवान्' । उ०—जामवान् ग्रंगद सुग्रीव तथा कोउ रावन । —प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४३।

जामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जामह] १. पहनावा । कपड़ा । वस्त्र । उ०—सत के सेल्ही जुगत के जामा डिमा डाल ठनकाई । —कबीर श०, भा० २, पृ० १३२ । २. एक प्रकार का घुटने के नीचे बड़े धेरे का पुराना पहनावा । उ०—हिंदू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कंधों पर कपड़ा रखते हैं । —भारतेंदु प्र०, भा० १ पृ० २४६ ।

विशेष—इस पहनावे का नीचे का धेरा बहुत बड़ा और लहंगे की तरह चुननदार होता है । पेट के ऊपर इसकी काट बगलबंदी के ढंग की होती है । पुराने समय में लोग दरबार आदि में इसे पहनकर जाते थे । यह पहनावा प्राचीन कश्मीर का रूपांतर जान पड़ता है जो मुसलमानों के आने पर हूमा होगा, क्योंकि यद्यपि यह शब्द फारसी है, तथापि प्राचीन पार्सियों में इस प्रकार का पहनावा प्रचलित नहीं था । हिंदुओं में अबतक विवाह के अवसर पर यह पहनावा दुल्हे को पहनाया जाता है ।

मुहा०—जामे से बाहर होना = आपसे बाहर होना । अत्यंत क्रोध करना । जामे में फूला न समाना = अत्यंत धनदित होना ।

यौ०—जामाजेब = वह जिसके शरीर पर वस्त्र शोभा पाता हो । जामादार = कपड़ों की देखभाल करनेवाला नौकर । जामापोश = वस्त्रयुक्त परिधानयुक्त ।

जामात—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दे० 'जामाता' ।

जामाता—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] १. दामाद । कन्या का पति । उ०—सादर पुनि भेटे जामाता । रूपसील गुननिधि सब भ्राता । —तुलसी (शब्द०) । २. हुरहुर का पोधा । हुलहुल ।

जामातु(५)—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दे० 'जामाता' ।

जामातृक—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता । दामाद (को०) ।

जामानी—वि० [हिं०] दे० 'जामुनी' । उ०—कही बंगनी जामानी तो कही कथई कही सुरमई । इन रंगों में रूपी गई मन, सध्या पावस की । —मिट्टी०, पृ० ७६ ।

जामि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहिन । भगिनी । २. लड़की । कन्या । ३. पुत्रवधू । बहू । पत्नी । ४. अपने संबंध या गोत्र की स्त्री । ५. कुल स्त्री । घर की बहू बेटा ।

विशेष—मनुस्मृति में यह शब्द आया है जिसका अर्थ कुलक ने भगिनी, मपिड की स्त्री, पत्नी, कन्या, पुत्रवधू आदि किया है । मनु ने लिखा है कि जिस घर में जामि प्रतिपूजित होती है; उसमें सुख की वृद्धि होती है, और जिसमें अपमानित होती है, उस कुल का नाश हो जाता है ।

जामि^२—संज्ञा पुं० [सं० याम] दे० 'याम' और 'जाम' उ०—प्रथम जामि निसि रज्ज कज्ज हेन दिव्यत नगि । दुतिय जाम सगीत उद्वर रस किंति काव्य जगि ।—पृ० रा०, ६।११।

जामिक(५)—संज्ञा पुं० [सं० यामिक] पहिरा। पहरा देनेवाला । रक्षक । उ०—चरन पीठ करुनानिधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ।—तुलसी (शब्द०) ।

जामित्र—संज्ञा पुं० [सं०] विवाहादि शुभ कर्म के काल के लग्न से सातवीं स्थान ।

जामित्र वेध—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग जिसमें विवाह आदि शुभ कर्म दूषित होते हैं ।

विशेष—शुभ कर्म का जो काल हो, उसके नक्षत्र की राशि से सातवीं राशि पर यदि सूर्य, शनि या मंगल हो, तब जामित्र-वेध होता है । किसी किसी के मत से सप्तम स्थान में पापग्रह होने से ही जामित्रवेध होता है । किंतु यदि चंद्रमा अपने मूल त्रिकोण या क्षेत्र में हो, अथवा पूर्ण चंद्र हो या पूर्ण चंद्र अपने या शुभ ग्रह के क्षेत्र में हो तो जामित्रवेध का दोष नहीं रह जाता ।

जामिन^१—संज्ञा पुं० [अ० जामिन] १. जिम्मेदार । जमानत करनेवाला । इस बात का भार लेनेवाला कि यदि कोई विशेष मनुष्य कोई विशेष कार्य करेगा या न करेगा, तो मैं उस कार्य की पूर्ति करूँगा या दंड सहूँगा । प्रतिभू । उ०—तो मैं आपको उनका जामिन समझूँगी ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६५१ ।

कि० प्र०—होना ।

२. दो अंगुल लंबी एक लकड़ी जो नैचे की दोनों नलियों को मलग रखने के लिये त्रिसमगद और चुल के बीच में बांधी जाती है । ३. दूध जमाने की वस्तु । दे० 'जामन' ।

जामिन^२(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी' । उ०—काम लुब्ध बोली सब कामिन । च्यार जाम गई जागत जामिन ।—पृ० रा०, १।४१० ।

जामिनदार—संज्ञा पुं० [फ्रा० जामिनदार] जमानत करनेवाला ।

जामिनि(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'जामिनी' । उ०—सुखद सुहाई सरद बी कैसी जामिनि जात ।—अनेकार्थ०, पृ० ८३ ।

जामिनो^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी' ।

जामिनो^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा] जमानत । जिम्मेदारी ।

जामी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यामी] १. दे० 'यामी' । २. दे० 'जामि' ।

जामी^२(५)—संज्ञा पुं० [हिं० जनमना या जमना] बाप । पिता (डि०) ।

जामुन—संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] गरम देशों में होनेवाला एक सदाबहार पेड़ । जाम । जंबू ।

विशेष—यह वृक्ष भारतवर्ष से लेकर बरमा तक होता है और दक्षिण अमेरिका आदि में भी पाया जाता है । यह नदियों के किनारे कहीं कहीं आपसे आप उगता है, पर प्रायः फलों के लिये बस्ती के पास लगाया जाता है । इसकी लकड़ी का छिलका सफेद होता है और पत्तियाँ आठ दस अंगुल लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी तथा बहुत चिकनी, मोटे दल की और चमकीली होती हैं । बैसाल जेठ में इसमें मंजरी लगती है जिसके झड़ जाने पर गुच्छों में सरसों के बराबर फल दिखाई

पड़ते हैं जो बढ़ने पर दो तीन अंगुल लंबे बेर के आकार के होते हैं। बरसात लगते ही ये फल पकने लगते हैं और पकने पर पहले बैंगनी रंग के और फिर लूब काले हो जाते हैं। ये फल कालेपन के लिये प्रसिद्ध हैं। लोग 'जामुन सा काला' प्रायः बोलते हैं। फलों का स्वाद कसेलापन लिए भीठा होता है। फल में एक कड़ी गुठली होती है। इसकी लकड़ी पानी में सड़ती नहीं और मकानों में लगाने तथा खेती के समान बनाने के काम में प्राप्ती है। इसका पका फल खाया जाता है। फलों के रस का सिरका भी बनता है जो तिल्ली, यकृत रोग आदि की दवा है। गोघ्रा में इसमें एक प्रकार की शराब भी बनती है। इसकी गुठली बहुमूल्य के रोगी के लिये अत्यंत उपकारी है। बौद्ध लोग जामुन के पड़ को पवित्र मानते हैं। वैद्यक में जामुन का फल शार्दी, रुखा तथा कफ, पित्त और वाह को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—जबू। सुरभिप्रभा। नीलफला। श्यामला। महास्कंधा। राजाह्वी। राजफला। शुक्रप्रिया। मोदमादिनी। जवुल।

जामुनी—वि० [हि० जामुन] जामुन के रंग का। जामुन की तरह बैंगनी या काला। जैसे, जामुनी रंग।

जामेय—संज्ञा पु० [सं०] भागिनेय। भाजा। बहिन का लड़का।

जामेवार—संज्ञा पु० [देश०] १. एक प्रकार का दुशाला जिसकी सारी जमीन पर बेलबूटे रहते हैं। २. एक प्रकार की छोट जिसकी बूटी दुशाले की चाल की होती है।

जायंट—वि० [सं०] साथ में काम करनेवाला। सहयोगी। संयुक्त। जैसे, जायंट संकेटर। जायंट एबीटर।

जायंट मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पु० [सं०] फौजदारी का वह माजिस्ट्रेट या हाकिम जिसका दर्जा जिला मैजिस्ट्रेट के नीचे होता है और जो प्रायः नया सिविलियन होता है। जट।

जायँ^१—क्रि० वि० [सं० जायँ] व्यर्थ। बूधा। निष्फल।

जायँ^२—अव्य० [फ्रा जा (= ठीक)] वाञ्छित। मुनासिब। ठीक। उचित। जैसे,—तुम्हारा कहना जायँ है।

जाय(पु)^१—अव्य० [सं० जायँ (= बूधा)] बूधा। निष्फल। व्यर्थ। बेकार। उ०—(क) जाय जीव बिनु देह मुह्राई। बादि मोर सब बिनु रघुराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तात जाय जिन करहु गलानी। ईस अघीन जीव गति जानी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) जेहि देह सनेहन रावरे सो ऐसी देह भगवत जो जाय जिए।—तुलसी (शब्द०)।

जायँ^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] घने और उड़द की भूनकर पकाई हुई दाल।

जायँ^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० 'जा' का यौगिक रूप] जगह। स्थान। मोका।

खी०—जायनमाज। जायपनाह, जायरहाइश = निवास स्थान।

जाय(पु)^४—वि० [सं० जात] जन्मा हुआ। पैदा। उत्पन्न। जैसे—चल जा दासीजाय तेरा उत्साह दिलाना निष्फल हुआ।

जायक—संज्ञा पु० [सं०] पीला चंदन।

जायका—संज्ञा पु० [सं० जाइकह, जायकह] खाने पीने की चीजों का मजरा। स्वाद। लज्जत।

क्रि० प्र०—लेना।

जायकेदार—वि० [सं० जायकह + फ्रा० दार] स्वादिष्ट। मजेदार। जो खाने या पीने में अच्छा काम पड़े।

जायचा—संज्ञा पु० [फ्रा० जायचह] जन्मकुंडली। जन्मपत्री।

जायज—वि० [सं० जायज] यथायथ। उचित। मुनासिब। ठीक। वाजिब।

क्रि० प्र०—रखना।

जायजा—संज्ञा पु० [सं० जायजह] १. जजि। पट्टान।

मुहा०—जायजा देना = हिमाव समझना। जायजा लेना = पडताल करना। जाचना।

२. हाजिरी। गिनती।

जायजरूर—संज्ञा पु० [फ्रा० जा + सं० जरूर] टट्टी। पाखाना।

जायद—वि० [फ्रा० जायद] १. ज्यादा। अधिक। २. फालतू। अतिरिक्त।

जायदाद—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] भूमि, धन या सामान आदि जिसपर किसी का अधिकार हो। संपत्ति।

विशेष—कानून के अनुसार जायदाद दो प्रकार की है, मनकूला और गैरमनकूला। मनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो एक स्थान में दूर-दूर स्थान पर टूटाई जा सके। जैसे, बरतन, कपड़ा, असबाब आदि। गैरमनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो स्थानांतरित न की जा सके। जैसे, मकान, बाग, खेत, कुर्सी आदि।

जायदाद गैरमनकूला—संज्ञा स्त्री० [फ्रा जायदाद + सं० गैरमनकूलह] वह संपत्ति जो टूटाई बढाई न जा सके। स्थावर संपत्ति। दे० 'जायदाद' शब्द का विशेष।

जायदाद जौजियत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + सं० जौजियत] वह संपत्ति जिसपर स्त्री का अधिकार हो। स्त्रीधन।

जायदाद मकफूला—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + सं० मकफूलह] वह संपत्ति जो किसी प्रकार रेहन या बंधक हो।

जायदाद मनकूला—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + सं० मनकूलह] चल संपत्ति। जंगम संपत्ति। दे० 'जायदाद' शब्द का विशेष।

जायदाद मुतनाजिआ—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + सं० मुतनाजिआ] वह संपत्ति जिसके अधिकार आदि के विषय में कोई झगडा हो। विवादग्रस्त संपत्ति।

जायदाद शौहरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] वह संपत्ति जो स्त्री को उसके पति से मिले।

जायनमाज—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायनमाज] वह छोटी दरी, कालीन या इसी प्रकार का और कोई बिछोना जिसपर बैठकर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। बहुधा इसपर बना या छपा हुआ मसजिद का चित्र होता है। मुसल्ला।

जायपनाह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] आश्रय या पनाह का स्थान। आश्रय-गृह [स्त्री०]।

जायपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जातिपत्री] दे० 'जावित्री'।

जायफल—संज्ञा पुं० [म० जातिफल, जातीफल] दे० 'जायफल' ।

जायफल—संज्ञा पुं० [म० जातिफल, प्रा० जाइफल] अलरोट की तरह का पर उसमें छोटा, प्रायः जामुन के बराबर, एक प्रकार का सुगंधित फल जिसका व्यवहार औषध और मसाने आदि में होता है। जातीफल ।

पर्या०—कोषक । सुमनफल । कोश । जातिशस्य । शालुक । मालतीफल । मज्जसार । जातिसार । पुट ।

विशेष—जायफल का पेड़ प्रायः ३०, ३५ हाथ ऊँचा और सदा-बहार होता है, तथा मलाका, जावा और बटेविया आदि द्वीपों में पाया जाता है। दक्षिण भारत के नीलगिरि पर्वत के कुछ भागों में भी इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं। ताजे बीज बोकर इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं। इसके छोटे पौधों की तेज धूप आदि से रक्षा की जाती है और गरमी के दिनों में उन्हें नित्य सींचने की आवश्यकता होती है। जब पौधे डेढ़ दो हाथ ऊँचे हो जाते हैं तब उन्हें १५-२० हाथ की दूरी पर भलग भलग रोप देते हैं। यदि उनकी जड़ों के पास पानी ठहरने दिया जाय अथवा व्यर्थ घासपात उगने दिया जाय तो ये पौधे बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। इसके नर और मादा पेड़ भलग भलग होते हैं। जब पेड़ फलने लगते हैं तब दोनों जातियों के पेड़ों को भलग भलग कर देते हैं और प्रति घाट दस मादा पेड़ों के पास उस और एक नर पेड़ लगा देते हैं जिन्हें मे हवा अधिक आती है। इस प्रकार नर पौधों का पुंपराग उड़कर मादा पेड़ों के स्त्री रज तक पहुँचता है और पेड़ फलन लगते हैं। प्रायः सातवें वर्ष पेड़ फलने लगते हैं और पंद्रहवें वर्ष तक उनका फलना बराबर बढ़ता जाता है। एक अच्छे पेड़ में प्रतिवर्ष प्रायः डेढ़ दो हजार फल लगते हैं। फल बहुधा रान के समय स्वयं पेड़ों से गिर पड़ते हैं और सवेरे चुन लिए जाते हैं। फल के ऊपर एक प्रकार का छिलका होता है जो उतारकर भलग सुखा लिया जाता है। इसी सूखे हुए ऊपरी छिलके को जाबिनी कहते हैं। छिलका उतारने के बाद उसके अंदर एक और बहुत कड़ा छिलका निकलता है। इस छिलके को तोड़ने पर अंदर से जायफल निकलता है जो छाँह में सुखा लिया जाता है। सूखने पर फल उस रूप में हो जाते हैं जिस रूप में वे बाजार में बिकने आते हैं। जायफल में से एक प्रकार का सुगंधित तेल और सरक भी निकाला जाता है जिसका व्यवहार दूसरी चीजों की सुगंध बढ़ाने अथवा औषधों में मिलाने के लिये होता है। जायफल की बुकनी या छोटे छोटे टुकड़े पान के साथ भी खाए जाते हैं। भारतवर्ष में जायफल और जाबिनी का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से होता आया है। वैद्यक में इसे कफूपा, तीक्ष्ण, गरम, रेचक, हलका, चरपरा, अग्निदीपक, मलरोषक, बलवर्धक तथा त्रिदोष, मुख की बिरसता, खाँसी, वमन, पीनस और हृदरोग आदि को दूर करनेवाला माना है।

जायरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी भाड़ी जो बुंदेलखंड और राजपुताने की पथरीली भूमि में नदियों के पास होती है।

जायल—वि० [फ्रा० या प्र० जाइल] जिसका नाश हो चुका हो। विनष्ट । समाप्त । बरबाद ।

जायस—संज्ञा पुं० रायबरेली जिले की एक तहसील तथा प्रसिद्ध

प्राचीन और ऐतिहासिक नगर जहाँ बहुत दिनों से सूफी फकीरों की गद्दी है। उ०—जायस नगर धरम अस्थान् । तहाँ आइ कवि कीन्ह बसावू । —जायसी ग्रं०, पृ० ६ ।

विशेष—यहाँ मुसलमान विद्वान् बहुत दिनों से होते आए हैं। बहुत सी जातियाँ अपना आदि स्थान इसी नगर को बताती हैं। पद्यावत या पद्यावती ग्रंथ के रचयिता प्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद यहीं के निवासा थे और यहीं उन्होंने पद्यावत की रचना की थी। उनका प्रसिद्ध संक्षिप्त नाम 'जायसी' इसी शब्द से बना है।

जायसवाल—संज्ञा पुं० [हि० जायस] १. जायस का रहनेवाला व्यक्ति । २. बनियों की एक शाखा ।

जायसी—वि० [हि० जायस] जायस का रहनेवाला । जायस संबंधी । जायस का ।

जायसी^२—संज्ञा पुं० १. जायस का व्यक्ति या पदार्थ । २. प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी का संक्षिप्त नाम ।

जाया^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विवाहिता स्त्री । पत्नी । जोड़ । विशेषतः वह स्त्री जो किसी बालक को जन्म दे चुकी हो। उ०—जरा मरन ते रहित धमाया । मात पिता सुत बंधु न जाया ।—मूर (शब्द०) । २. उपजाति वृत्त का सतवाँ भेद जिसके पहले तीन चरणों में (ज त ज ग ग) ISI, SSI, ISI, S, S और चौथे चरण में (त त ज ग ग) SSI, SSI, ISI, S, S होता है। ३. जन्मकुंडली में लगन से सातवाँ स्थान जहाँ से पत्नी के संबंध की गणना की जाती है।

जाया^२—वि० [प्र० जाये या फ्रा० जायह्] खराब । नष्ट । व्यर्थ । खोया हुआ ।

क्रि० प्र०—करना । —जाना । —होना ।

जायाघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में ग्रहों का एक योग ।

विशेष—यह योग उस समय होता है जब जन्मकुंडली में लगन से सातवें स्थान पर मंगल या शङ्ख ग्रह रहता है। जिस मनुष्य की कुंडली में यह योग पड़ता है फलित ज्योतिष के अनुसार उस मनुष्य की स्त्री नहीं जीती ।

२. वह मनुष्य जिसकी कुंडली में यह योग हो। ३. शरीर में का तिल ।

जायाजीव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बगला पत्नी । २. अपनी जाया (स्त्री) के द्वारा जीविका उपाजित करनेवाला । नट । वेश्या का पति ।

जायानुजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जायानुजीविन्] दे० 'जायाजीव' ।

जायो—संज्ञा पुं० [सं० जायिन्] संगीत में ध्रुपद की जाति का एक प्रकार का ताल ।

जायु^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. औषध । दवा । २. वैद्य । भिषग ।

जायु^२—वि० जीतनेवाला । जेता ।

जार^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसके साथ किसी दूसरे की विवाहिता स्त्री का प्रेम या अनुचित संबंध हो। उपपति । पराई स्त्री से प्रेम करनेवाला पुरुष । यार । धांधला ।

जार^२—वि० मारनेवाला । नाश करनेवाला ।

जार^३—संज्ञा पुं० [लै० सीजर] कस के सम्राट की उपाधि ।

जार^१—संज्ञा पुं० [सं० जार] दे० 'जाल' । उ०—कहाँहि कबीर पुकारि के, सबका उहे बिचार । कहा हमार मानै नहि, किमि छूटे भ्रम जार ।—कबीर बी०, पृ० १६५ ।

जार^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० जार] स्थान । जगह [को०] ।

जार^३—संज्ञा पुं० [ध०] प्रचार यादि रखने का मिट्टी, चीनी मिट्टी या शीशे का बर्तन ।

जारक—वि० [सं०] १. जलानेवाला । क्षीण या नष्ट करनेवाला । २. पाचक [को०] ।

जारकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] व्यभिचार । छिनाला ।

जारज—संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री की वह संतान जो उसके जार या उपपति से उत्पन्न हुई हो । दोगली संतति ।

विशेष—धर्मशास्त्रों में जारज संतान दो प्रकार के माने गए हैं । जो संतान स्त्री के विवाहित पति के जीवनकाल में उसके उपपति से उत्पन्न हो वह 'कुंज' और जो विवाहित पति के मर जाने पर उत्पन्न हो वह 'गोलक' कहलाती है । हिंदू धर्मशास्त्रानुसार जारज पुत्र किसी प्रकार के धर्म कार्य या पिबदान आदि का अधिकारी नहीं होता ।

जारजन्मा—वि० [सं० जारजन्मन्] जार से उत्पन्न । जारज [को०] ।

जारजयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में किसी बालक के जन्मकाल में पड़नेवाला एक प्रकार का योग जिससे यह सिद्ध हो बिकाला जाता है कि वह बालक अपने प्रसली पिता के वीर्य से नहीं उत्पन्न हुआ है बल्कि अपनी माता के जार या उपपति के वीर्य से उत्पन्न है । उ०—चित पितमारन जोगु गनि भयो भए सुत लोगु । फिर हुनस्यो जिय जोइसी समझें जारज जोगु ।—विहारी २०, श्लो० ५७५ ।

विशेष—बालक की जन्मकुंडली में यदि ज्ञान या चंद्रमा पर बृहस्पति की दृष्टि न हो अथवा सूर्य के साथ चंद्रमा युक्त न हो और पापयुक्त चंद्रमा के साथ सूर्य युक्त हो तो यह योग माना जाता है । द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि में रवि, शनि या मंगलवार के दिन यदि कृत्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा और पूर्वाभाद्रपद में से कोई एक नक्षत्र हो तो भी जारज योग होता है । इसके अतिरिक्त इन अवस्थाओं में कुछ अपवाद भी हैं जिनकी उपस्थिति में जारज योग होने पर भी बालक जाड़ज नहीं माना जाता ।

जारजात—संज्ञा पुं० [सं०] जारज ।

जारजेट—संज्ञा स्त्री० [ध० जारजेट] एक प्रकार का महीन तथा बढ़िया कपड़ा ।

जारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारे का भारहुवा संस्कार । २. जलाना । भस्म करना । ३. धातुओं को फूँकना ।

विशेष—वैद्यक में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, पारा आदि धातुओं को प्रौषध के काम के लिये कई बार कुछ विशेष क्रियाओं से फूँककर भस्म करने की 'जारण' कहते हैं ।

जारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा जीरा । सफेद जीरा ।

जारदुग्धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में मध्यमार्ग की एक वीणा का नाम जिसमें बराहमिहुर के अनुसार श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा तथा विष्णुपुराण के अनुसार विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं ।

जारना—संज्ञा पुं० [सं० जारण या हिं० जलाना] १. जलाने की लकड़ी । ईंधन । २. जलाने की क्रिया या भाव ।

जारना—क्रि० सं० [सं० जारण, हिं० 'जलाना'] दे० 'जलाना' ।

जारभरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपपति रखनेवाली स्त्री । परपुरुष से संबंध रखनेवाली स्त्री [को०] ।

जारा^१—संज्ञा पुं० [हिं० जनाना] सोनार आदि की मट्टी का वह भाग जिसमें प्राग रहती है और जिसमें रखकर कोई चीज गलाई या तपाई जाती है । इसके नीचे एक एक छोटा छेद होता है जिससे से होकर भाँधी की हवा आती है ।

जारा^२—संज्ञा पुं० [हिं० जाआ] दे० 'जाआ' । उ०—रोमराजि अष्टादश जारा । अस्त्रि सैल सरिता नस जारा ।—मानस, ६।१५ ।

जारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका किसी दूसरे पुरुष के साथ अनुचित संबंध हो । दुष्टचरित्रा स्त्री ।

जारित—वि० [सं०] १. गलाया हुआ । पचाया हुआ । २. (धातु) खोयी हुई । भारी हुई [को०] ।

जारी^१—वि० [ध०] १. बहता हुआ । प्रवाहित । जैसे, खून का जारी होता । २. चलता हुआ । प्रचलित । जैसे,—वह अखबार जारी है या बंद हो गया ?

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

जारी^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० जारी (= रोना)] १. एक प्रकार का गीत जिसे मुहर्रम में ताजियों के सामने स्त्रियाँ गाती हैं । २. रुदन । विलाप ।

यौ०—गिरिया व जारी = रोना पीटना । विलाप ।

जारी^३—संज्ञा पुं० [देश०] ऊरवेरी का पोषा ।

जारो^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जार + ई (प्रत्य०)] परस्त्री गमन । जार की क्रिया या भाव ।

जारो^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जाली' । उ०—जारी घटारी, भरोखन, मोखन आकित दुरि दुरि ठोर ठोर तै परत काँकरी ।—नंद० प्र०, पृ० १४३ ।

जारुथी—संज्ञा स्त्री० [ध०] हरिवंश के अनुसार एक प्राचीन नगरी का नाम ।

जारुधि—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु पर्वत के छत्ते का केसर माना जाता है ।

जारुथ्य—संज्ञा पुं० [सं० जारुथ्य] दे० 'जारुथ्य' ।

जारुथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अश्वमेध यज्ञ जिसमें तिगुनी दक्षिणा दी जाय ।

जारोब—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] झाड़ू । बोहारी । झाँचा ।

जारोबकश^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] झाड़ू देनेवाला व्यक्ति ।

जारोबकश^२—वि० झाड़ू देनेवाला ।

जालरंध्र - संज्ञा पु० [म० जालरन्ध्र] घर में प्रकाश घाने के लिये भोजी में लगी हुई जाली या उसके छेद । उ०—जालरंध्र मग घंगनु

को कछु उजास सी पाइ। पीठि बिए जगत्थी रह्यो डीठि
भरोखें लाइ।—बिहारी (शब्द०)।

जालव—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दैत्य का नाम जो बलवल
का पुत्र था और जिसका बलदेव जी ने बध किया था।

जालसाज—संज्ञा पुं० [प्र० जम्बल + प्रा० साज] वह जो दूसरों
को धोखा देने के लिये झूठी कार्रवाई करे।

जालसाजी—संज्ञा स्त्री० [जाल + साजीप्र० जम्बल + प्रा० साजी]
फरेब या जाल करने का काम। दगाबाजी।

जाला^१—संज्ञा पुं० [सं० जाल] १. मकड़ी का बुना हुआ बहुत पतले तारों
का वह जाल जिसमें वह अपने खाने के लिये मक्खियों और
दूसरे कीड़ों मकोड़ों आदि को फँसाती है। वि० दे० 'मकड़ी'।

विशेष—इस प्रकार के जाले बहुधा गंदे मकानों की दीवारों और
छतों आदि पर लगे रहते हैं।

२. भालि का रोग जिसमें पुतली के ऊपर एक सफेद परदा या
झिल्ली सी पड़ जाती है और जिसके कारण कुछ कम दिखाई
पड़ता है।

विशेष—यह रोग प्रायः कुछ विशेष प्रकार के मूल आदि के
जमने के कारण होता है, और ज्यों ज्यों झिल्ली मोटी होती
जाती है, त्यों त्यों रोगी की दृष्टि बूझ जाती जाती है।
झिल्ली अधिक मोटी होने के कारण जब यह रोग बढ़ जाता
है, तब इसे माड़ा कहते हैं।

३. गूत या मल आदि का बना हुआ वह जाल जिसमें घास घुसा
आदि पदार्थ बांधे जाते हैं। ४. एक प्रकार का सरपट जिससे
चोनी साफ की जाती है। ५. पानी रखने का मिट्टी का बड़ा
बरतन। ६. दे० 'जाल'।

जाला(पु)^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] दे० 'ज्वाला'। उ०—इक मुखस
अगि जाला उठत, इक परहु देह बरिखा उठत।—पु० रा०,
६। ४५।

जालाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] भरोखा। गवाक्ष।

जालाष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तरल ओषधि [को०]।

जालिक^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. कैषर्त। जाल बुननेवाला व्यक्ति।

२. जाल में मृगादि जंतुओं को फँसानेवाला व्यक्ति। कर्कटक।

३. दंडजालिक। गदारी। बाजीगर। ४. मकड़ी (वि०)।

५. प्रदेश आदि का प्रधान शासक (को०)।

जालिक^४—वि० जाल से जीविका अर्जित करनेवाला (को०)।

जालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाख। फटा। २. जाली। ३. विधवा
स्त्री। ४. कवच। जिरह बकतर। संजोपा। ५. मकड़ी।

६. लोहा। ७. समूह। उ०—प्रनतजन कुमुदवन इंदुकर

जालिका। जालसि अभिमान माहिपेस बहु कालिका।

—तुलसी (शब्द०)। ८. स्त्रियों के मुख पर डालनेवाला

आवरण या परदा। मुख पर डाली जानेवाली जाली (को०)।

९. जोक (को०)। १०. केला (को०)। ११. एक प्रकार का

वस्त्र (को०)।

जालिनी^१—संज्ञा स्त्री [सं०] १. तरौई। घिया। २. वह स्थान
जहाँ चित्र बनते हैं। चित्रशाला। ३. परवल की लता। ४.
पिड़िका रोग का एक भेद।

विशेष—इसमें रोगी के शरीर के मांसल स्थानों में दाहपुक्त
फुंसियाँ हो जाती हैं। यह केवल प्रमेह के रोगियों को
होता है।

जालिनी^२—वि० [हि० जालना] जलानेवाली।

जालिनीफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तरौई। २. घिया।

जालिम—वि० [प्र० जालिम जो बहुत ही अन्यायपूर्ण या निर्दयता
का व्यवहार करता हो। जुलम करनेवाला। अत्याचारी।

जालिमाना—वि० [प्र० जालिम, प्रा० जालिमानह्] अत्याचार
संबंधी [को०]। जालसाज। फरेब या धोखा देनेवाला।

जालिया^१—वि० [हि० जाल = (फरेब) + इया (प्रत्य०)] जाल फरेब
करने या धोखा देनेवाला।

जालिया^२—संज्ञा पुं० [हि० जाल + इया (प्रत्य०)] आत्म की
सहायता से मछली पकड़नेवाला। धीवर।

जाली^१—संज्ञा स्त्री [सं०] १. तरौड़ी। २. परवल।

जाली^२—संज्ञा स्त्री [हि० जाल] १. किसी चीज, विशेषतः लकड़ी
पत्थर या धातु आदि, में बना हुआ बहुत से छोटे छोटे छेदों
का समूह।

क्रि० प्र०—काटना।—बनाना।

२. कसीदे का एक प्रकार का काम जिसमें किसी फूल या
पत्ती आदि के बीच में बहुत से छोटे छोटे छेद बनाए
जाते हैं।

क्रि० प्र०—काटना।—निकालना।—डालना।—भरना।
—बनाना।

३. एक प्रकार का कपड़ा जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते
हैं। ४. वह लकड़ी जो चारा काटने के गड्ढों के दस्ते पर
लगी रहती है। ५. कच्चे आम के अंदर गुठली के ऊपर का
वह तंतुमय जो पकने में कुछ पड़ने उत्पन्न होता और पीछे
से कड़ा हो जाता है। इसके उत्पन्न होने के उपरांत आम के
फल का पकना आरंभ होता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

६. दे० 'जाला'।

जाली^३—संज्ञा स्त्री [प्र०] एक प्रकार की छोटी नाव।

जाली^४—वि० [प्र० जम्बल + हि० ई (प्रत्य०)] नकली। बनावटी।
झूठा। जैसे, जाली सिक्का, जाली दस्तावेज।

यौ०—जाली नोट = नकली नोट।

जालीदार—वि० [देश०] जिसमें जाली बनी या पड़ी हो।

जालीलेट—संज्ञा पुं० [हि० जाली + लेट] एक प्रकार का कपड़ा
जिसकी सारी बुनावट में बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं।

जालीलोट^१—संज्ञा पुं० [हि० जाली + लोट] दे० 'जालीलेट'।

जालीलोट^२—संज्ञा पुं० [हि० जाली + प्र० नोट] दे० 'जाली नोट'।

जालोर^(५)—संज्ञा पुं० [सं०] कश्मीर में विहार या अग्रहार का नाम [को०] ।

जाल्म^१—वि० [सं०] १. पामर । नीच । २. मूर्ख । बेवकूफ । ३. क्रूर । कठोर । निष्ठुर (को०) ।

जाल्म^२—संज्ञा पुं० १. दुष्ट, धूर्त या कपटी व्यक्ति । १. निर्धन या पदभ्रष्ट व्यक्ति । ३. बुरा पाठ या वाचन करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

जाल्मक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जाल्मिका] १. वह जो अपने मित्र, गुरु या ब्राह्मण के साथ द्वेष करे । २. नीच या अधम या लुब्ध व्यक्ति ।

जाल्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] निव । महारेव ।

जाल्य^२—वि० जाल में फँसाए जाने योग्य [को०] ।

जावक^१—संज्ञा पुं० [सं० यावक] लाहुरे बना हुआ पैरों में लगाने का लाल रंग । झलता । महावर ।

जावत^१—क्रि० सं० [हि०] ३० 'जावत' । उ०—जावत जगति हस्ति श्री चाँटा । सब कहै भुगुति रात दिन बाँटा । —भावसी श्रं० (गुप्त), पृ० १२३ ।

जावत^२—अव्य [सं० यावत्] ३० 'यावत्' ।

जावन^(५)—संज्ञा पुं० [हि० जावना] जाने की क्रिया या भाव । जाना । उ०—नंभे हि जावन बंभे हि जावन झूठी रबिया बाजी । या दुनिया में जीवन छोड़ा बवं करे सो पाजी । —कबीर श्रं०, भा० २, पृ० ४८ ।

जावन^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'जामन' । उ०—(क) नई दोहनी पौछि पखारी धरि निर्भूम खीर पर नायों । तामें मिलि मिश्रित मिश्री करि है कपूर पुट जावन नायो । —सूर (शब्द०) । (ख) तोष भगत लख छमा पुड़ावह । धृति सम जावन देइ जमावह —तुलसी (शब्द०) ।

जावना^१—क्रि० प्र० [हि०] ३० 'जावा' । उ०—ऊपर रोठा जावता, हलहल करइ कहर । एराकी धोखानिया, जइसइ कैती दूर । —डोभा०, पृ० १४१ ।

जावना^२—क्रि० प्र० [हि० जावना] जन्म लेना । उत्पन्न होना । उ०—कहै कि हमरे बाजक जावे, बढ़ी पपुबल रोवै । चरगु० बानी, पृ० ७३ ।

जावन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग । तेजी । २. कीमती [को०] ।

जावरा^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. उख के रस में पकाई गई स्त्री । बखीर । २. कहूँ के साथ पकाया हुआ चावल ।

जावा^१—संज्ञा पुं० पूर्वी एशिया का एक द्वीप । यवद्वीप ।

जावा^२—संज्ञा पुं० [हि० जामन या जमना] वह मसामा जिससे शराब चुम्पाई जाती है । बेसवार । जाया ।

जावित्री—संज्ञा स्त्री [सं० जातिपत्री] जायफल के ऊपर का तिलका जो बहुत सुगन्धित होता है और औषध के काम में आता है । ३० 'जायफल' ।

जिशेष—वैद्यक में इमे हलका, चरपरा, स्वादिष्ट, गरम, रुचिकारक और कफ, खाँसी, वमन श्वास, तृषा, कृमि तथा बिष का नाशक माना जाता है ।

जावक—संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन ।

जावनी^(५)—[हि०] ३० 'यसिणी' । उ०—राघो करो जावनी पूजा । चहे सुभाव दिखावे दूजा । —जायसी (शब्द०) ।

जावरी^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० जावनी] नटिनी । उ०—गीति गरवि जावरी मत्त भए मतक गावह । —कीर्ति०, पृ० ४२ ।

जासु^(५)—वि० [सं० यस्य, प्रा० जस्स] जिसका ।

जासू^१—संज्ञा पुं० [सं०] वे पान जो उस अफीम में मिलाने के लिये काटे जाते हैं जिससे मदक बनता है ।

जासू^२—वि० [हि० जासु] ३० 'जासु' ।

जासूस—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त रूप से किसी बात विशेषतः अपराध आदि का पता लगानेवाला । भेदिया । मुखबिर । खुफिया ।

जासूसी—संज्ञा स्त्री० [हि०] गुप्त रूप से किसी बात का पता लगाने की क्रिया । जासूस का काम ।

जासों^(५)—सर्व० [हि०] जिससे । उ०—नंददास दृष्टि जासों तनु की तरुनि पर ता ऊपर चंद वारों करति भारति नित । —नंद० श्रं०, पृ० ३७७ ।

जास्ती^१—वि० [सं० ज्यादाती से संज्ञा रूप] अधिक । ज्यादा । उ०—गिरी ऐसी दमदार थी कि पाव भर तोलते तो छह से जास्ती सुपारी नहीं बढ़ा पाते सराजू पर । —नई०, पृ० ७८ ।

जास्ती^२—संज्ञा स्त्री० ज्यादाती ।

जास्पति—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता । जेवाई । दामाद ।

जादू^१—संज्ञा पुं० [प्रा०] १. पद । १. मान । प्रतिष्ठा । ३. गौरव [को०] ।

जादू^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्या] पनुष की डोरी । प्रत्यंघा । उ०—वाम हाथ लीध बाहु जीभण कसीस जाहु । —रघु० श्रं०, पृ० ७६ ।

जाहक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिरगिट । २. जोंक । ३. बिछोना । बिस्तर । ४. घोड़ा ।

जाहपरस्त—वि० [प्रा०] १. प्रतिष्ठा का लोभी । २. पदलोलुप । ३. बड़े लोगों या अमीरों की भक्ति करनेवाला [को०] ।

जाहरी^१—वि० [सं० जाहिर] ३० 'जाहिर' ।

जाहिद^१—संज्ञा पुं० [सं० जाहिद] धर्मनिष्ठ । उ०—वहीं है जाहिरों को मे सेंती काम । लिखा है उनकी पेक्षानी में सिरका । —कविता को०, भा० ८, पृ० १६ ।

जाहिर—वि० [सं० जाहिर] १. जो छिपा न हो । जो सबके सामने हो । प्रगट । प्रकाशित । खुला हुआ । २. विदित । जाना हुआ ।

यौ०—जाहिर जहर=जाहिर । जाहिरपरस्त=ऊपरी बातों पर दृष्टि रखनेवाला ।

जाहि^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति] मालती लता तथा उसका फूल ।

जाहिरा—क्रि० वि० [सं०] देखने में । प्रगट रूप में । प्रत्यक्ष में । जैसे,—जाहिरा तो यह बात नहीं मालूम होती आगे ईश्वर जाने ।

जाहिल—वि० [सं०] १. मूर्ख । अनाड़ी । अज्ञान । नासमझ । २. अनपढ़ । विद्याहीन । जो कुछ पढ़ा लिखा न हो ।

जाही—संज्ञा स्त्री० [सं० जाती] १. चमेली की जाति का एक प्रकार का सुगंधित फूल । २. एक प्रकार की घातिशबाजी ।

जाहुष—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्यक्ति का नाम जिसकी रसा अश्विन करते हैं [को०] ।

जाहूषी—संज्ञा स्त्री [सं०] जहू, ऋषि से उत्पन्न, गंगा ।

जिउ—सर्व [हि० जिन] जिसने । ओ ।

विशेष—'जिन' का यह रूप प्राचीन हिंदी काव्य में मिलता है ।

जिक—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिक] जस्ते का सार ।

विशेष—यह खार देखने में सफेद रंग का होता है और रंग रोशन और दवा के काम में आता है । यह क्लोराइड आफ जिक, वा सल्फेट आफ जिक को सोडियम, बेरियम वा कैल्सियम सल्फाइड में घोलने या हल करने से बनता है । सल्फाइड के नीचे तलछट बैठ जाती है जिसे निकालकर सुखाने के बाद लाल घाँच में तपाकर ठंडे पानी में बुझा लेते हैं । इसके बाद वह खरल में पीसी जाती है और बाजारों में बिकती है । इसे सफेदा भी कहते हैं । गुलाबजल या पानी में घोलकर इसे घाँचों में डालते हैं जिससे घाँच की जलन और दर्द दूर हो जाता है ।

यौ०—बिक भाक्साइड ।

जिगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गनी] जिगिन का पेड़ ।

जिगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गनी] दे० 'जिगनी' ।

जिगी - संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गी] मजीठ [को०] ।

जिजर—संज्ञा पुं० [प्र०] घदरल से घनी एक प्रकार की पेय । उ०—खन्ना ने जिजर का ग्लास खाली करके सिगार सुलगाई ।—गोदान, पृ० १२७ ।

जिद्—संज्ञा पुं० [प्र० जिन या जिन्न] भूत प्रेत । मुसलमान भूत । दे० जिन' ।

जिद्—संज्ञा पुं० [हि० जंद] दे० 'जंद' ।

जिद्—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'जिदगी' । उ०—दे गिरंद गिरंदा हवा बे जिद प्रसाओ छीनी है ।—घनानंद, पृ० १८० ।

जिदगानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] जीवन । जिदगी ।

जिदगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. जीवन ।

मुद्दा०—जिदगी से हाथ धोना = जीने से निराश होना ।

२. जीवनकाल । आयु ।

मुद्दा०—जिदगी का दिन पूरा करना या भरना = (१) दिन काटना । जीवन बिताना । (२) मरने का होना । आसन्नमृत्यु होना । जिदगी का दुश्मन होना = जिदगी देना । मौत के मुँह में डालना । उ०—हाथी आया ही बाहूता है क्यों जिदगी के दुश्मन हो गए ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५६ ।

जिद्दा—वि० [फ्रा० जिदह] १. जीवित । जीता हुआ ।

यौ०—जिदादिल । जिदाबाद = अमर हो ।

२. सक्रिय । सचेष्ट (को०) । ३. हराभरा (को०) ।

जिदादिल—वि० [फ्रा० जिदहिल] [संज्ञा जिदादिली] खुश-मिजाज । हंसोड़ । दिलखोबाज । विनोदप्रिय ।

जिदादिली—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जिदहिली] प्रसन्न रहने और मनो-विनोद करने का भाव ।

जिदाबाद—अव्य० [फ्रा० जिदहबाद] चिरंजीवी हो । जीवित हो ।

यौ०—इकलाब जिदाबाद = कांति चिरंजीवी हो ।

जिस—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. प्रकार । किस्म । भाँति । २. वस्तु । द्रव्य । ३. सामग्री । सामान । ४. अनाज । गन्ना । रसद ।

यौ०—जिसवार ।

५. आभरण । गहना (को०) । ६. लिंग (को०) । ७. जाति (को०) । ८. परिवार (को०) । ९. वर्ग (को०) । १०. पण्य द्रव्य या व्यापारिक वस्तु (को०) । ११. असबाब (को०) । १२. व्यवहार गणित (प्रंकगणित) ।

यौ०—जिसवाना = भंडारगृह ।

जिसवार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] पटवारियों का एक कामज जिसमें वे अपने हलके के प्रत्येक सेत में बोए हुए अन्न का नाम परताल करते समय लिखते हैं ।

जिबाना—क्रि० सं० [हि० जेबना का सक० रूप] दे० 'जिमाना' ।

जि—संज्ञा पुं० [सं० जिः] पिशाच [को०] ।

जिअ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीव, प्रा० जिअ] दे० 'जी' । उ०—राम भगति भूषित जिअ जानी । मुनिर्हहि सुजन सराहि सुबानी ।—मानस, १।६ ।

जिअन(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जीवन' । उ०—मरन जिअन एही पंथ एही आस निरास । परा सो गया पताराहि तिरा सो गया कविलास ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २२६ ।

जिसीलगान—संज्ञा पुं० [हि० जिसी + लगान] जिस के रूप में ली जानेवाली लगान । फसल के रूप में ली जानेवाली लगान ।

जिअन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीवन] जीवन । जीवन की पद्धति । उ०—जिअन मरन फलु दमरथ पावा । अइ अनेक थमल जसु छावा ।—मानस, २।१६६ ।

जिअना—संज्ञा पुं० [सं० जीवन] जीवन ।

जिअना(पु)—क्रि० प्र० [हि० जीना] दे० 'जीना' ।

जिअना(पु)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जिलाना' । उ०—तासों वैर कबहुं नहि कीजै । मारे मरिय जिअर कीजै ।—तुलसी (शब्द०) ।

जिउ(पु)—अव्य० [सं० यथा; प्रप० जिवं] दे० 'ज्यो' या 'जिमि' । उ०—ऊँची बढ़ि चातुंगि जिउं, मागि निहालइ मुग्ध ।—दोहा०, दृ० १६ ।

जिउ—संज्ञा पुं० [सं० जीव] दे० 'जीव' ।

जिउका—संज्ञा स्त्री० [सं० जीविका] 'जीविका' ।

जिउकिया—संज्ञा पुं० [हि० जीविका वा जिउका] १. जीविका करनेवाला । रोजगारी । २. पहाड़ी लोग जो दुर्गम जगहों और पर्वतों से अनेक प्रकार की व्यापार की वस्तुएँ, जैसे,—चूबर, कस्तूरी, शिलाजीत, शेर के बच्चे, तथा जड़ी बूटी आदि ले आकर नगरों में बेचते हैं ।

जिउ तंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीव + तत्त्व] जी का तत्त्व । जी की बात । उ०—जति नारि हसि पूछहि प्रमिय बचन जिउ, संत ।—जायसी प्र०, पृ० १६४ ।

जिउतिया—संज्ञा स्त्री० [हि० जूतिया > सं० जीवितपुत्रिका] एक व्रत जो आश्विन कृष्णाष्टमी के दिन होता है । दे० 'जिताष्टमी' ।

विशेष—इस व्रत को वे स्त्रियाँ जिनके पुत्र होते हैं, करती हैं । इसमें गने में एक धागा बाँधा जाता है जिसमें अनंत की तरह गाँठें होती हैं । कहीं कहीं यह व्रत आश्विन शुक्लाष्टमी के दिन किया जाता है ।

जिउनार—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेवनार' । उ०—भोजन श्वपच कीन्ह जिउनारा । मात बार घंटा झनकारा ।—कबीर मं०, पृ० ४६३ ।

जिउलेवा—वि० [हि० जीव + लेवा] दे० 'जिबलेवा' ।

जिककी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बज का एक लोकगीत, जिसमें दो दल बनाकर प्रश्नोत्तर होता है ।

जिकर—संज्ञा पुं० [हि० जिकिर] दे० 'जिकिर' । उ०—फिरे गेब का छत्र जिकर का मुस्क लगाई ।—पलटू०, भा० १, पृ० १०६ ।

जिका(पुं०)—सर्व० [हि० जिसका या जिनका का संक्षिप्त रूप] दे० 'जिसका' । उ०—भावी सब रत झामली, त्रिया करइ सिणगार । जिका हिया न फाटही, दूर गया भरतार ।—ढोला०, दू० ३०३ ।

जिक्र—संज्ञा पुं० [सं० जिक्र] १. चर्चा । बातचीत । प्रसंग ।

क्रि० प्र०—घाना ।—करना ।—चलना ।—चलाना ।—छिड़ना ।—झेड़ना ।

यौ०—जिक्र मजकूर = बातचीत । चर्चा । जिक्रे—खेर = कुशल-चर्चा । शुभ चर्चा उ०—घतः सबसे पहले क्यों न कविसंमेलनों ही का जिक्रे खेर किया जाय ।—कुंकुम । (भू०), पृ० २ ।

२. एक प्रकार का जप (को०) ।

जिग(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यज्ञ' । उ०—हण ताइका निज ठहरा । जिग मांड धारंभ जाहरा ।—रघु० क०, पृ० ६७ ।

जिगलु—वि० [सं०] क्षिप्रगामी । तेज चलनेवाला (को०) ।

जिगलु—संज्ञा पुं० प्राणवायु । श्वास (को०) ।

जिगन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जिगिन' ।

जिगमिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जने की इच्छा (को०) ।

जिगमिषु—वि० [सं०] जाने का इच्छुक (को०) ।

जिगर—संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० सं० यकृत] [वि० जिगरी] १. कलेजा ।

यौ०—जिगर कुल्फ = जिगर का ताला । हृदयरूपी ताला । उ०—मुमकानि धो सटकीली बानि धानि दिख में डोले । झलकें रत्नकें हलकें जिगर कुल्फ को जु सोले ।—बज० घं०, पृ० ४१ । जिगर खराश = (१) जिगर की खोसनेवाला । (२) अप्रिय । दुःखदायी । जिगर मोशा । जिगरबंद = पुत्र (ला०) । जिगर-मोज = (१) दिल जलानेवाला । (२) दिल का जला ।

मुहा०—जिगर कबाब होना = (१) कलेजा पक जाना या जलना । (२) बुरी तरह कुटना । जिगर के टुकड़े होना = कलेजे पर सदमा पहुँचना । भारी दुःख होना । जिगर बामकर बैठना = असह्य दुःख से पीड़ित होना ।

२. चिला । मन । जीब । ३. साहस । हिम्मत । ४. गुदा । सत्त ।

सार । ५. मध्य । सार भाग । जैसे, लकड़ी का जिगर ।

६. पुत्र । लड़का (प्यार से) ।

जिगरकीड़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जिगर + हि० कीड़ा] भेड़ों का रोग जिसमें उनके कलेजे में कीड़े पड़ जाते हैं ।

जिगरा—संज्ञा पुं० [हि० जिगर] साहस । हिम्मत । जीवट ।

जिगरी—वि० [फ़ा०] १. दिली । भीतरी । २. अत्यंत घनिष्ठ । अभिन्नहृदय । जैसे, जिगरी दोस्त ।

जिगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० जिगिनी] एक ऊँचा जंगली पेड़ ।

विशेष—इसके पत्ते महुए या तुन के पत्ते के समान होते हैं और टहनी में जोड़ के रूप में इधर इधर लगते हैं । यह पहाड़ों और तराई के जंगलों में होता है । इसके फूल सफेद और फल बेर के बराबर होते हैं । वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा और कसैला लिखा है । इसकी प्रकृति गरम बतलाई गई है और वात, व्रण, अतीसार, और हृदय के रोगों में इसका प्रयोग लाभकारी कहा गया है । इसकी दतवन अच्छी होती है और मुख की दुर्गंध को दूर करती है ।

पर्या०—जिगिनी । भिगिनी । भिगी । सुनिर्वासा । प्रमोदिनी । पार्वती । कृष्णशात्मसी ।

जिगीषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जय की इच्छा । विजय प्राप्त करने की कामना । २. उद्योग । धंधा । व्यवसाय । ३. लड़ने की इच्छा । युद्ध करने की इच्छा । (को०) । ४. प्रतिस्पर्धा । लाग डाँट (को०) । ५. प्रमुखता (को०) ।

जिगीषु—वि० [सं०] १. युद्ध की इच्छा रखनेवाला । २. विजय का इच्छुक (को०) ।

जिगुरन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का खोटीदार चकोर जो हिमालय में गढ़वाल से हजारा तक मिलता है ।

विशेष—इसे जकी, सिग मोनाल, और जेवर भी कहते हैं । इसकी मादा बादल कहलाती है ।

जिघत्सु—वि० [सं०] बंध की इच्छा रखनेवाला । शत्रु (को०) ।

जिघत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूख । खाने की इच्छा । २. प्रयास करना (को०) ।

जिघत्सु—वि० [सं०] भूखा । भोजन की इच्छा रखनेवाला (को०) ।

जिघांसक—वि० [सं०] मारनेवाला । बंध करनेवाला (को०) ।

जिघांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मारने की इच्छा । २. प्रतिहिंसा । उ०—जिघांसा की वृत्ति प्रबल हुई तो छोटी छोटी सी बातों पर अक्का खाली संदेह पर ही दूसरों का सत्यानाश करने की इच्छा होगी ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६० ।

जिघांसु—वि० [सं०] दे० 'जिघांसक' ।

जिघृक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पकड़ने की इच्छा (को०) ।

जिघृक्षु—वि० [सं०] पकड़ने की इच्छा रखनेवाला (को०) ।

जिघ्र—वि० [सं०] १. संदेही । संदेह या शंका करनेवाला । २. सुंघनेवाला । ३. समझनेवाला (को०) ।

जिच्च—संज्ञा स्त्री० वि० [?] दे० 'जिच्च' ।

जिच्च'—संज्ञा स्त्री० [?] १. बेबसी । तंगी । मजबूरी । २. कतरंज

में शाह की वह अवस्था जब उसे चलने का कोई धरन हो और न धरन में देने को मोहरा हो। ३. शतरंज के खेल की वह अवस्था जिसमें किसी एक पक्ष का कोई मोहरा चलने की जगह न हो।

जिञ्च^२—वि० विवश । मजबूर । तंग ।

जिजमान^१—संज्ञा पु० [हि० जजमान] दे० 'जजमान' । उ०—मनु तमगन लियो जोति चंद्रमा सोतिन मध्य बँध्यो है । कै कवि निज जिजमान रूप में सुंदर आइ बस्यो है ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५ ।

जिजिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जीजी] बहन ।

जिजिया^२—संज्ञा पु० [अ० जिजियह्] १. कर । महसूल । २. वह कर या महसूल जो मुसलमानों अमलदारी में उन लोगों पर लगता था जो मुसलमान नहीं होते थे ।

जिजीविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीने की इच्छा [को०] ।

जिजीविषु—वि० [सं०] जीने की इच्छा रखनेवाला [को०] ।

जिज्ञापयिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जताने या जापन की इच्छा [को०] ।

जिज्ञापयिषु—वि० [सं०] जनाने का इच्छुक [को०] ।

जिज्ञासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा । जान प्राप्त करने की कामना । २. पूछताछ । प्रश्न । परिप्रश्न । सहकीकात । क्रि० प्र०—करना ।

जिज्ञासित—वि० [सं०] जिसकी जिज्ञासा की गई हो । पूछा हुआ [को०] ।

जिज्ञासितव्य—वि० [सं०] जिज्ञासा योग्य । पूछने योग्य [को०] ।

जिज्ञास—वि० [सं०] १. जानने की इच्छा रखनेवाला । जान-प्राप्ति के लिये इच्छुक । खोजी । २. मुमुक्षु [को०] ।

जिज्ञासू—वि० [सं० जिज्ञासु] दे० 'जिज्ञासु' ।

जिज्ञास्य—वि० [सं०] जिसकी जिज्ञासा की जाय । जिसे जानना हो । जिसके संबंध में पूछताछ की जाय ।

जिठाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जठाई' ।

जिठानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जिठानी' ।

जिणि^१—सर्व० [हि० जिन] दे० 'जिस' । उ०—जिणि देसे सज्जन वसइ, निणि हिसि वज्जउ बाउ । उभां लगे मो लगसी, ऊ ही लाख पसाउ ।—ढोला०, दू० ७४ ।

जित्—वि० [सं०] जीतनेवाला । जेता ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द तमसांत में आता है । जैसे, इंद्रजित्, क्षत्रजित्, विश्वजित् इत्यादि ।

जित^१—वि० [सं०] जीता हुआ । पराजित । जिसे दूसरे ने जीता हो ।

जित^२—क्रि० वि० [सं० यत्] जिधर । जिस ओर । उ०—जात है जित बाजि केशी जात है तित लोग ।—केशव (शब्द०) ।

यौ०—जित तित = जहाँ तहाँ । वि० दे० 'जहाँ' के मुहावरे ।

उ०—सम विषम बिहुर वन सघन वन तहाँ सद्य जित तित हुष । भूल्यो सुसंग कवियन वनह ओर नहीं जन संग दुष ।—पृ० २१०, ११३ ।

मुहा०—जित कित होकर जाना = अव्यवस्थित जाना । इधर

उधर जाना । उ०—पसु घर पसुप दवानल माहीं । चकित भए जित कित हूँ जाही ।—नद० ग्रं०, पृ० ३१० ।

जितक—वि० [हि० जित] दे० 'जितना' । उ०—अवतारी अवतार धरन घर जितक बिभूती । इस सब आश्रय के अधार जग जिहि की उती ।—नद० ग्रं०, पृ० ४४ ।

जितना—वि० [हि० जिस + तना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जितनी] जिस मात्रा का । जिस परिमाण का । जैसे,—जितना मे दोड़ता हूँ उतना तुम नहीं दोड़ सकते ।

विशेष—संख्या सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जितने' का प्रयोग होता है । 'जितना' के पीछे 'उतना' का प्रयोग संबंध पूरा करने के लिये किया जाता है । जैसे, जितना मोठा वह ग्राम था उतना यह नहीं है ।

जितकोप, जितक्रोध—वि० [सं०] जिसे क्रोध की जीत लिया हो ।

जितनेमि—संज्ञा पु० [सं०] पीपल का दड़ या डंडा [को०] ।

जितमन्यु—वि० [सं०] दे० 'जितवीर' [को०] ।

जितरा^१—संज्ञा पु० [हि० जिता] वह हलवाहा जिसे बेतन वा मजदूरी नहीं दी जाती बल्कि खेत जोतने के लिये हल बैल दिए जाते हैं ।

जितलोक—वि० [सं०] जिसने पुण्य कर्म से स्वर्गादि लोक प्राप्त किया हो ।

जितवना^१—क्रि० सं० [सं० जन्त] जताना । प्रकट करना । उ०—चितवत जितवत हिन हिए किए निरीदे नैन । भीजे तन दोऊ कौ क्यो हूँ अप निबरे न ।—बिहारी (शब्द०) ।

जितवाना—क्रि० सं० [हि० जीतना का प्रे० रूप] जीतने देना । जीतने में समर्थ या उद्यत करना । जीतने में सहायक होना ।

जितवार^१—वि० [हि० जीतना] जीतनेवाला । विजयी । उ०—जँह हो ब्रजेशकुमार । रनभूमि को जितवार ।—सूदन (शब्द०) ।

जितवैया^१—वि० [हि० जीतना + वैया (पू० प्रत्य०)] १. जीतनेवाला । २. जितानेवाला । किसी को विजयी बनानेवाला ।

जितशत्रु—वि० [सं०] विजयी । जो शत्रु को पराजित कर चुका हो [को०] ।

जितश्रम—वि० [सं०] जो श्रम या धन का अनुभव न करता हो ।

जितसंग—वि० [सं० जितसङ्ग] आत्मिक या आकर्षण में मुक्त [को०] ।

जितस्वर्ग—वि० [सं०] पुण्य के प्रभाव से जो स्वर्ग जीत चुका हो [को०] ।

जिता^१—संज्ञा पु० [हि० जीतना वा जीतना] वह सहायता जो किमान लोग खेत की जोताई बोझाई में एक दूसरे को देते हैं ।

जिता^२—वि० [हि०] [वि० स्त्री० जिती] दे० 'जितना' ।

जिताक्ष—वि० [सं०] जितेंद्रिय [को०] ।

जिताक्षर—वि० [सं०] बह्मियत पढ़ने लिखनेवाला [को०] ।

जितात्मा—वि० [सं० जितात्मन्] जितेंद्रिय ।

जिताना—क्रि० सं० [हि० जीतना का प्रे० रूप] जीतने में समर्थ या उद्यत करना । उ०—ताही सभ खेल खन कीन्हों है छबीसी

संग, देव विपरीत बसि वृक्षत पहेली बात । पूछे जो पिपारी ताहि जानत अजान पिय, भापु पूछी प्यारी को जताइ के जितार्ई जात ।—देव (शब्द०) ।

जितारि—वि० [म० जित्वर] १. जीतनेवाला । विजयी । २. बली । जो जीत सके । ३. अधिक । भारी । वजनी ।

विशेष—प्रायः पलड़े पर रखी हुई वस्तु के संबंध में बोलते हैं ।

जितारि—वि० [म०] १. शत्रुजित् । २. कामादि शत्रुओं को जीतनेवाला ।

जितारि—संज्ञा पु० बुद्धदेव का नाम ।

जिताष्टमी—संज्ञा स्त्री० [म०] हिंदुओं का एक व्रत जिसे पुत्रवती स्थिती करती हैं ।

विशेष—यह व्रत प्राशिवन कृष्णाष्टमी के दिन पड़ता है । इस दिन स्त्रियाँ सायंकाल जलाशय में स्नान कर जीमूतवाहन की पूजा करती हैं और भोजन नहीं करती । इस व्रत के लिये उदयातिथि ली जाती है । इसको जितातया भी कहते हैं ।

जिताहार—वि० [म०] गुल पर विजय प्राप्त करनेवाला [को०] ।

जिति—संज्ञा स्त्री० [म०] जीत । विजय ।

जितिक^(१)—वि० [हि०] दे० 'जितिक' । उ०—जितिक हुती ब्रज गो, बछ, बाछी । तेन हरद फारि छाछी काछी ।—नंद० प्र०, पृ० २३५ ।

जिती—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'जितिक' । उ०—ब्रह्मादिक विभूति जग जिती । अड अड प्रति दिक्षयत तिती ।—नंद० प्र०, पृ० २६७ ।

जितिक—वि० [हि०] दे० 'जितिक' । उ०—पूनि जितिक गोपोजन भाई । ते रोहिनी सबहि पहिराई ।—नंद० प्र०, पृ० २३५ ।

जितुम—संज्ञा पु० [म० डिडमाई] मिथुन राशि ।

जितेन्द्रिय—वि० [सं० जितेन्द्रिय] १. जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया हो ।

विशेष—भनुस्मृति में ऐसे पुरुष को जितेन्द्रिय माना है जिसे मुनने, छूने, देखने, स्नान और सूँघने से तर्प या विषाद न हो । २. शान । समवृत्तिवाला ।

जिते^(२)—वि० [हि० जिस+ते] जितने (परिमाणसूचक) । उ०—कंत बिदेस रहे हो जिते दिन देहु निने मुकुतागि की माला ।—पद्माकर (शब्द०) ।

जितेक^(३)—वि० [हि० जिने] जितना । उ०—नयनि मध्य लग हुते जितेक । खे ले ऊपर देखे जितेक ।—नंद० प्र०, पृ० ३१४ ।

जिते^(४)—क्रि० वि० [सं० यत्, प्रा० यत्] जिधर । जिस ओर । सं०—माल जिते चितने तिय वै, तिय त्यों त्यों नितोति सखीन की ओरी ।—देव (शब्द०) ।

जितैया—वि० [म० जित्+ऐया (प्रत्य०)] जितवैया । जितवार । जेता । उ०—प्रबल प्रतीक सुप्रतीक के जितैया रैया रख भाव-सिंह तेरे दान के दुरद है ।—मति० प्र०, पृ० ४२७ ।

जितैला—वि० [हि० जीत+ऐला (प्रत्य०)] जीतनेवाला । विजेता । उ०—जमीदार न कहा, तुम किसी जमींदाह का

राज यों नहीं दे सकते । यह राज जितैला है । अगर ऐ करना है तो उस जमींदार को बुला लाओ ।

जितो^(५)—वि० [हि० जिस] जितना (परिमाणसूचक) । उ० (क) बैठि सदा सतसग ही में विष मानि विषय रस सदाही । त्यों पद्याकर भूठ जितो जग जानि सुजान अवगाही ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) नख सिख सुं अवलोकत, कह्यो न परत मुख होत जितो री ।—सु (शब्द०) ।

विशेष—सख्या सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जिते' प्रयोग होता है ।

जितो^(६)—क्रि० वि० जिस मात्रा से । जितना ।

जितना^(७)—क्रि० सं० [हि० जीतना] दे० 'जीतना' । उ० (क) ढादस हृथ पयद पर भिडपान लिय मारि । जब कर निधिनि गहै को बिते मुर नारि ।—प० रासो, पृ० १ । (ख) रहत प्रवीकी निन ही प्यान मुर रावरो । अब मन न जित भगो प्रीति मो बावरो ।—ब्रज० प्र०, पृ० ३८ ।

जितम—संज्ञा पु० [म० डिडमाई] मिथुन राशि ।

जित्यू—अव्य० [प०] जहाँ । उ०—महो महो धन आनंद व जित्यू तित्यू जाँदा है ।—घनानंद, पृ० १८१ ।

जित्य—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० जित्या] १. बड़ा हल । २. हे पटेला । सरावन (को०) ।

जित्या—संज्ञा स्त्री० [म०] १. हींग । २. सरावन । पटेला (को०) ।

जित्वर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जित्वरी] जेता । जीतनेवाला विजयी ।

जित्वरी—संज्ञा स्त्री० [म०] काशीपुरी का एक प्राचीन नाम [को०] ।

जितनी^(८)—सर्व० [?] जिससे । जिसका । उ०—तुका सज्जन । सुं कहिये जितनी प्रेम दुनाय ।—दक्खिनी०, पृ० १०८ ।

जिद—संज्ञा स्त्री० [म० जिद] [वि० जिदी] १. उलटी बात वस्तु । विरुद्ध वस्तु या बात । २. वैर । शत्रुता । वैमनसः ।

क्रि० प्र०—करना ।—बाधना ।—रखना ।

३. हठ । अड़ । बुराग्रह ।

क्रि० प्र०—घाना ।—करना ।—बाधना ।—रखना ।

मुहा०—जिद पर घाना=हठ करना । अड़ना । जिद खदना=हठ धरना । जिद पकड़ना=हठ करना ।

जिदियाना^(९)—संज्ञा स्त्री० [म० जिद से नामिक धातु] हठ करने दुर्गग्रह करना । अड़ना । अड़ जाना ।

जिद्दा—संज्ञा स्त्री० [म० जिद्द] दे० 'जिद' ।

जिदन—क्रि० वि० [म०] जिद्द करते हुए । हठ करते हुए । जिद कारण । [को०] ।

जिदी—वि० [म० जिद्द+फा० ई (प्रत्य०)] १. जिद करनेवाला हठी । अड़नेवाला । जैसे, जिदी लड़का । २. बुराग्रही । बुरा की बात न माननेवाला ।

जिधर—क्रि० वि० [हि० जिस+धर (प्रत्य०)] जिस ओर । जहाँ

विशेष—समन्वय में इसके साथ 'उधर' का प्रयोग होता है। जैसे,
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

यौ०—जिधर तिधर = (१) जड़ों तहाँ। इधर उधर।

विशेष—यब इसका कम प्रयोग है।

(२) बैठकाने। बिना ठोर ठिकाने।

मुहा०—जिधर चाँद उधर सलाम = धवसरवादिता। उ०—शर्मा
जी डोटते हैं, जिधर चाँद उधर सलाम।—मैला०, पृ० ३४४।

जिर्था०—प्रत्य० [हि०] जहाँ। उ०—पिछे चलथे थे दम भागी
मिलाकर। जिर्था पिछे वो जगल बीच यकसर।—दक्खिनी०,
पृ० ३३८।

जिन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. सूर्य। ३. बुद्ध। ४. जैनों के
तीर्थंकर।

यौ०—जिन सदन = जिनराय। जैन मंदिर।

जिन^२—वि० १. जीतनेवाला। जयी। २. राग द्वेष आदि जीतने-
वाला। ३. बुद्ध [को०]।

जिन^३—वि० [सं० यानि] 'जिस' का बहुवचन।

जिन^४—सर्व० [हि०] 'जिम' का बहुवचन।

जिन^५—संज्ञा पुं० [सं०] भूत।

मुहा०—जिन का साया = बिन लगना। बिन चटना, जिन
सवार होना = क्रोध के आवेग में होना। क्रोधाव होना।

जिन^६—प्रत्य० [हि० जनि] मत। उ०—मोच करो बिन होह
सुखी मतिराम प्रवीन मवे नरनारी। मजुल बजुल कुंजन म
वन, पुंज सखी समुसारि निहारो।—मति० ग्रं०, पृ० २६०।

जिन^७—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मराय। उ०—जिन का एक
देग।—वो दुनिया, पृ० १४२।

जिनगानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जिदगानी] दे० 'जिदगानी'।

जिनगी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जिदगी'। उ०—यकठोस हूँदा
के साथ किस तरह अपनी जिदगी काटेगी।—नई०, पृ० २६।

जिनस^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जिस] १. प्रकार। जाति। क्रियम।
उ०—बहु बिनस प्रेत पिसान जोगि बमान बरनत महि
बने।—मानस, १। ६३। २. व० 'जिस'।

जिना—संज्ञा पुं० [सं० जिना] व्यभिचार। छिनाला।
हि० प्र०—करना।

यौ०—जिनाकार। जिनाकारी। जिनाबिलजब।

जिनाकार—वि० [सं० जिना + फा० कार] [संज्ञा जिनाकारी]
व्यभिचारी।

जिनाकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिना + फा० कारी] पर-स्त्री-गमन।
व्यभिचार।

जिनाविज्जम—संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा और
सम्मति के विरुद्ध बनाय संयोग करना।

जिनाघर^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जानवर'। उ०—कहे श्री
हरिदास पिजरा के जिनाघर सों, तरफराह रह्यो उडिबे को
कितोऊ करि।—पोद्दार ग्रंथ०, पृ० ३६०।

जिनि^१—प्रत्य० [हि० जनि] मत। नहीं। दे० 'जनि'। उ०—

(क) यह उज्जल रसमाल कोटि जतनन के पोई। सावधान
हैं पहिरो यहि तोरो जिनि कोई।—नंद० ग्रं०, पृ० २५।
(ख) जिनि कटार गर लानसि समुझि देखु मन घाप। सकति
जो जौ काटै महा दोष श्री पाप। जायसी—(शब्द०)।

जिनि^२—सर्व० [हि० जिन] जिन्हींने।

जिनिसा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जिम] दे० 'जिस'।

जिनिसवारी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जिमवार'।

जिनेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० जिनेन्द्र] १. एक बुद्ध। २. एक जैन
मंत [को०]।

जिन्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जिन' [को०]।

जिन्नात—संज्ञा पुं० [सं० जिन का बहु व०] भूत प्रेतादि।

जिन्नी^१—वि० [सं०] जिन या भूत संबंधी [को०]।

जिन्नी^२—संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जिसके वश में भूत प्रेत हो [को०]।

जिन्ही^१—सर्व० [हि० जिन] दे० 'जिन'।

जिन्ही^२—संज्ञा पुं० [सं० जिन्ही] दे० 'जिन' (भूत प्रेत)।

जिन्हार—प्रत्य० [फा० जिनहार] हर्गिज। बिल्कुल। उ०—कहे
उस शर्त से है नैक भतवार। खिलाफ इसमें न करना तुम
जिन्हार।—दक्खिनी, पृ० ३२५।

जिप्सी—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक घुमती फिरती रहनेवाली जाति-
विशेष। २. उक्त जाति का व्यक्ति।

जिवह—संज्ञा पुं० [सं० जिवह] दे० 'जिबह'। उ०—मुरगी मुल्ला से
कहे, जिवह काय है मोहि। साहिब लेला मोगसो, संकट परि-
है तोहि।—ग़तवाणी०, पृ० ६१।

जिदभा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जिद्दा] दे० 'जिद्दा'।

जिदगी^१—संज्ञा पुं० [सं० जिद्दा] दे० 'जिद्दा'।

जिभला^१—वि० [हि० जीभ + ला (प्रत्य०)] चटोरा। चट्ट।

जिभ्या^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जिद्दा] दे० 'जिद्दा'।

जिम^१—प्रत्य० [हि०] दे० 'जिमि'। उ०—शे धण रही सपजइ,
तउ जिम ठल्लह शह।—डोला०, पृ० ४३६।

जिममना—संज्ञा पुं० [सं० जिमनास्टिक का संक्षिप्त रूप जिम +
ना] वह मःबंधनिक स्थान जहाँ लोग एकत्र होकर
व्यायामादि करते हैं। व्यायामशाला।

जिमनार—संज्ञा स्त्री० [हि० जिमाना] भोज। समष्टिभोज। उ०—
जहाँ यह बड़ाभोज, साधु जिमनार यथेच्छ करते।—सुंदर पं०
(जो०), भा० १ पृ० १४२।

जिमनास्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] वे कसरते जो काट के दोहरे बल्लों
या छड़ों आदि के ऊपर की जाती हैं। अथवा जो कसरत।

जिमाना—क्रि० सं० [हि० जीमना] खाना पिलाना। भोजन
करना।

जिमि^१—क्रि० वि० [हि० जिमि + इमि] जिस प्रकार से। जैसे।
यथा। ज्यों। उ०—कामिाह नारि पियादि जिमि, लोभिहि
प्रिय जिमि दाम।—मानस, ७। १३०।

विशेष—समन्वय सूचित करने के लिये इस शब्द के आगे तिमि का प्रयोग होता है।

जिमित—संज्ञा पुं० [मं०] भोजन [को०]।

जिमींदार—संज्ञा पुं० [हि० जिमींदार] दे० 'जमींदार'।

जिम्मा—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह्] १ इस बात का भारग्रहण कि कोई बात या कोई काम अपने हाथ में होगा और यदि न होगा तो उसका दोष भार ग्रहण करनेवाले के ऊपर होगा। किसी ऐसी बात के होने या न होने का दोष अपने ऊपर लेने की प्रतिज्ञा जिसका संबंध अपने से या दूसरे से हो। उत्तरदायित्व-पूर्ण प्रतिज्ञा। जबाबदेही। जैसे,—(क) मैं इस बात का जिम्मा लेता हूँ कि कल आपकी चीज मिल जाएगी। (ख) इस बात का जिम्मा मरा है कि ये एक महीने के भीतर आपका रुपया चुका देंगे। (ग) क्या रोज रोज खिलाने का मैंने जिम्मा लिया है।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

मुद्दा—कोई काम किसी के जिम्मे करना = किसी काम को करने का भार किसी के ऊपर होना। किसी के जिम्मे रुपया आना, निकलना या होना = किसी के ऊपर रुपया ऋणस्वरूप होना। देना। ठहराना। जैसे,—हिस्सा करने पर ५) रु० तुम्हारे जिम्मे निकलते हैं। किसी के जिम्मे रुपया डालना = किसी के ऊपर ऋण या देना ठहराना।

विशेष—जिम्मा और वादा में यह अंतर है कि वादा अपने ही विषय में दिया जाता है और जिम्मा दूसरे के विषय में भी होता है।

२. सुपुंरी। दखरेख। सरखा। जैसे,—ये सब चीजें मैं तुम्हारे जिम्मे छोड़ जाता हूँ, कहीं इधर उधर न होने पाएँ।

जिम्मादार—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मादारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिम्मह् + दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिम्मावार—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + फ़ा० वार (प्रत्य०)] वह जो किसी बात के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो। जबाबदेह। उत्तरदाता।

जिम्मावारी—संज्ञा पुं० [हि० जिम्मावार + ई (प्रत्य०)] १. किसी बात को करने या किया जाने पर भार। उत्तरदायित्व। जबाबदेही। २. सुपुंरी। सरखा। उ०—हम इन चीजों को तुम्हारी जिम्मावारी पर छोड़ जाते हैं।

जिम्मो—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मो] इस्लामी राज्य का वह कर जिसे गैर मुसलमान होने के कारण देना पड़ता था [को०]।

जिम्मोजर—संज्ञा स्त्री० [हि० जिमी + जर] जर जमीन। उ०—पाखंड उड़ रहे नहीं। जिम्मोजर कर बरा। सभ्रिय काल कटन हतो तो पाखंड गुज्जर घरा।—पृ० २१०, १२। १२८।

जिम्मेदार—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मेदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिम्मह् + फ़ा० दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिम्मेवार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जिम्मावार'। उ०—जिस गाँव के ये हैं, वहाँ का जमींदार जिम्मेवार होगा।—काले०, पृ० ५।

जिम्मेवार—संज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + फ़ा० वार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मेवारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिम्मह् + फ़ा० वारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जियार—संज्ञा पुं० [सं० जीव] मन। चित्त। जी। उ०—(क) इस जिय जानि सुनहु सिख माई। करहु मातु पितु पद सेव-काई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) प्रसन्न चंद सम जतिय दिखइ क मन्त्र दृष्ट जिय। इहु आराधत भट्ट प्रगट पंचास बीर बिय।—पृ० २१०, ६। २६।

यौ०—जियबधा=हत्या करनेवाला। जल्लाद।

जियन(पु)—संज्ञा पुं० [हि० जीवन] जीवन। जिंदगी।

जियनि—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन] १. जीवन। २. जीवन का ढंग। रहन सहन। आचरण।

जियरा(पु)—संज्ञा पुं० [हि० जीव] १. जीव। मन। चित्त। उ०—मेरो स्वभाव चित्त के को माई री लाल निहारि कै बंसी बजाई। वा दिन तैं मोहि लागी ठगोरी सो लोग कहैं कोउ बाबरी माई। यो रसखानि घिरयो सिररो प्रज जानत वे कि मेरो जियरा ई। जो कोउ चाहै भलो अपने तो रानेह न काहू सो कीजिए माई।—रसखान (शब्द०)। २. प्राण। उ०—जियरा जावगे हम जानी। पाँच तत्व को बनो है पिजरा जिसमें वस्तु विरानी। आवत जावत कोइ न देखा हूब गया बिन पानी।—बकीर श०, भा०, पृ०।

जियारिकार—वि० [फ़ा० जियारिकार] १. हानि पहुँचानेवाला। २. बदमाश। बुरा आचरण करनेवाला [को०]।

जिया—संज्ञा स्त्री० [प्र० जिया] १. सूर्य का प्रकाश। २. चमक। आभा। कालि [को०]।

जिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दाई या धाय] दूध पिलानेवाली दाई।

जिया^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जी' और 'मन'।

जिया^४—संज्ञा स्त्री० [हि० जीजी या बीबी] बड़ी बहन।

जियाजंतु—संज्ञा पुं० [हि० जीवजंतु] दे० 'जीवजंतु'।

जियादत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जियादत] १. आधिक्य। अतिशयता। २. आत्याचार। जुल्म [को०]।

जियादती—संज्ञा स्त्री० [प्र० जियादत + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'ज्यादती'।

जियादा—वि० [प्र० जियादह्] दे० 'ज्यादा'।

जियान—संज्ञा पुं० [फ़ा० जियान] घाटा। ढोटा। नुकसान। हानि। क्षति।

क्रि० प्र०—उठाना।—होना।—करना।

जियाना(पु)—क्रि० सं० [हि० जीना] १. जिलाना। उ०—अबहँ करि माया जिव केरी। मोहि जियाव देहु पिय मोरी।—जायसी (शब्द०)। २. पालना। पोसना। उ०—बाब बखानि को गाय जियावत, बाबिनी पै सुरभी सुत चोरे।—गुमान (शब्द०)।

जियापोता—संज्ञा पुं० [हि० जिलाना + पूत] पुत्रजीवा का पेड़ । पतजिव ।

जियाफत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जियाफत] १. आतिथ्य । मेहमानदारी । २. भोज । बावत ।

मुहा०—जियाफत करना = (१) आदर सत्कार करना । (२) खाना खिलाना । भोज देना ।

जियार^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जियरा' । उ०—जावे बीत जियार, जेहल पछतावे जिके । —बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० १६ ।

जियार^२—वि० [हि०] साहसी । हिम्मती । जीवटवाला ।

जियारत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जियारत] १. दर्शन । २. तीर्थदर्शन । क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—जियारत लगना = मेल लगना । दर्शन के लिये दर्शकों की भीड़ होना ।

जियारतगाह—संज्ञा पुं० [प्र० जियारत + फा० गाह] १. पवित्र स्थान । तीर्थ । २. दरबार । दरगाह । ३. दर्शकों की भीड़ या जमघट ।

जियारतो—वि० [प्र० जियारत + फा० ई (प्रत्य०)] १. दर्शक । २. तीर्थयात्री ।

जियारा—संज्ञा पुं० [हि०] १. जिलाना । जीवित रखना । पालना पोसना । २. आहार । चारा । ३. जीविका । ४. साहस । हियाव ।

क्रि० प्र०—डालना ।—देना ।

जियारी^१—संज्ञा स्त्री० [?] १. जीवन । जिंदगी । उ०—उनको ले मान जियो याही में अमान भयो दयो जो पै जाइ तो ही तो जियारी है ।—प्रिया० (शब्द०) । २. जीविका । उ०—राका पति बाँका तिया बसे पुर पंडुर में उर में न बाह नेकुरीति कछु न्यारिये । करोन बीन करि जीविका नबीन करें, धरे हरि रूप हिये, ताही सो जियारिये ।—प्रिया (शब्द०) । ३. जीवट । जियरा । हृदय की दृढ़ता । साहस ।

जियास—संज्ञा पुं० [हि० जी] विश्वास । धैर्य । उ०—साम कर्मधा सापनी उर अपनी जियास । —रा० क०, पृ० २६३ ।

जिरगा—संज्ञा पुं० [फा० जिरगह] १. झुंड । गरोह । २. मंडली । ३. पठानों की पंचायत (को०) ।

जिरण—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा (को०) ।

जिरह^१—संज्ञा पुं० [प्र० जरह] १. दृग्गत । खुचुर । २. फेर फार के प्रथम जिनसे उत्तरदाता बचड़ा जाय और सच्ची बात छिपा न सके । ऐसी पृच्छताछ जो किसी से उसकी कही हुई बातों की सत्यता की जाँच के लिये की जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जिरह काटना या निकालना = झोठ बिलोव करना । बहुत अधिक पूछताछ करना । बात में बात निकालना । खुचुर निकालना ।

३. वह सूत की डोरी जो बैसर में ऊपर नीचे वय के गाँछने के लिये लगी रहती है (जुलाहे) । ४. चोरा । धाव (को०) ।

जिरह^२—संज्ञा स्त्री० [फा० जिरह] लोहे की कड़ियों से बना हुआ कवच । वर्म । बकतर ।

यौ०—जिरहपोश = जो बकतर पहने हो । कवची ।

जिरही^१—वि० [फा० जिरही] जो जिरह पहने हो । कवचधारी ।

जिरही^२—संज्ञा पुं० सैनिक (को०) ।

जिराअत—संज्ञा स्त्री० [अ० जिराअत] खेती । कृषि कर्म ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—जिराअत पेशा = खेतिहर । किसान । कृषक ।

जिरात^१—संज्ञा स्त्री० [अ० जिराअत] दे० 'जिराअत' ।

जिराफ—संज्ञा पुं० [अ० जिराफ या ज़राफ] घास के मैदानों का एक वन्य पशु ।

विशेष—यह अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका के घास के मैदानों में झुंडों में फिरा करता है । इसके पैरों से खुर होते हैं और इसका अंगला बड़ पिछले से भारी होता है । गरदन इसकी ऊँट की सी लंबी होती है । यह छठारह फुट ऊँचा होता है । इसमें सिर पर दो छोटे छोटे सींग होते हैं जो रोएँदार चमड़े से ढके रहते हैं । इसकी भालें सुंदर और उभड़ी होती हैं, जिनसे यह बिना सिर मोड़े पीछे देख सकता है । इसकी नाक की बनावट कुछ ऐसी होती है कि यह जब चाहे उसे बंद कर सकता है । जोर इसकी इतनी लंबी होनी है कि यह उसे मुँह से सत्रह इंच बाहर निकाल सकता है । इसके शरीर पर हिरन के से रोएँ और बड़ी बड़ी चितियाँ होती हैं । यह ताड़ों और सड़कों की पत्तियाँ खाता है ।

जिरायत^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जिराअत' ।

जिरिया—संज्ञा पुं० [हि० जीरा] एक प्रकार का धान जो जीरे की तरह पतला और लंबा होता है ।

जिलवा—वि० [अ० जल्वह] आत्मप्रदर्शन । हावभाव । शोभा । उ०—नरेशों की संमान लालसा पग पग पर अपना जिलवा दिखाती थी ।—काया०, पृ० १७० ।

जिला^१—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. चमक दमक । प्रोप । पानी ।

मुहा०—जिला करना या देना = किसी वस्तु को सजाकर तथा रोगन आदि बढ़ाकर चमकाना । सिकली करना । जैसे,—हथियारों पर जिला देना, तलवार पर जिला देना ।

यौ०—जिलाकार = सिकलीगर ।

२. सजाकर तथा रोगन आदि बढ़ाकर चमकाने का कार्य । भलकाने की क्रिया । प्रोप देने का कार्य ।

जिला^२—संज्ञा पुं० [अ० जिलम] १. प्रांत । प्रदेश । २. भारतवर्ष में किसी प्रांत का वह भाग जो एक कलक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंध में हो । ३. किसी इलाके का छोटा विभाग या ग्रंथ ।

यौ०—जिलादार ।

४. किसी जमींदार के इलाके के बीच बना हुआ वह मकान जिसमें वह या उसके आदमी तहसील वसूल आदि के लिये ठहरते हों ।

जिला जज—संज्ञा पुं० [अ० जिलम + अं० जज] जिले का प्रधान न्यायाधीश । जिलाधीश ।

जिलाट—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मटा होता था और जो थाप से बजाया जाता था ।

जिलादार—संज्ञा पुं० [अ० जिलम + फ्रा० दार (प्रत्य०)] १. मरबराहकार । सजावट । २. वह अफसर जिसे जमींदार अपने इलाके के किसी भाग में लगान वसूल करने के लिये नियत करता है । ३. वह छोटा अफसर जो नहर, अफीम आदि संबंधी किसी हलके में काम करने के लिये नियत हो ।

जिलादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० जिलादार + ई (प्रत्य०)] जिलेदार का काम या पद ।

जिलाधीश—संज्ञा पुं० [अ० जिलम + सं० अधीश] दे० 'जिला मैजिस्ट्रेट' ।

जिलाना—क्रि० सं० [हि० जीना का सक रूप] १. जीवन देना । जी बालना । जिदा करना । जीवित करना । जैसे, मुर्दा जिलाना । २. पालना । पोसना । जैसे, तोता जिलाना, कुत्ता जिलाना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः ऐसे ही पशुओं या जीवों के लिये होता है जिनसे मनुष्य कोई काम नहीं लेता, केवल मनोरंजन के लिये पालता है । जैसे,—कुत्ता, बिल्ली, तोता, शेर आदि । घोड़े, हाथी, ऊँट, गाय, बैल आदि के लिये इसका प्रयोग नहीं होता ।

३. मरने से बचाना । मरने न देना । प्राणरक्षा करना । जैसे,—सरकार ने अकाल में लाखों आदमियों को जिला लिया । ४. धातु के भस्म को फिर धातु के रूप में लाना । मूर्छित धातु को पुनः जीवित करना ।

जिला बोर्ड—संज्ञा पुं० [अ० जिला + अं० बोर्ड] किसी जिले के करदाताओं के प्रतिनिधियों की वह सभा जिसका काम अपने अधीनस्थ ग्रामबोर्डों की सहायता से गाँवों की सड़कों की मरम्मत कराना, स्कूल और चिकित्सालय चलाना, चेक के टीके और स्वास्थ्योन्नति का प्रबंध आदि करना है ।

विशेष—गुनिसपैलिटी के समान ही जिलाबोर्ड के सदस्यों का भी हर तीसरे साल चुनाव होता है ।

जिला मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अ० + अं०] जिले का बड़ा हाकिम जो फौजदारी मामलों का फैसला करता है । जिला हाकिम ।

विशेष—हिंदुस्तान में जिले का कलक्टर और मैजिस्ट्रेट एक ही मनुष्य होता है जो अपने दो दो पदों के कारण दो नामों से पुकारा जाता है । मालगुजारी संबंधी कार्यों का अध्यक्ष (प्रधान) होने से कलक्टर और फौजदारी मामलों का फैसला करने के कारण वह मैजिस्ट्रेट कहलाता है ।

जिलासज—संज्ञा पुं० [अ० जिला + फ्रा० साज] सिकलीगर । हथियारों पर घोष चढ़ानेवाला ।

जिलाह—संज्ञा पुं० [अ० जल्हाह ?] प्रत्याचारी । उ०—ज्वाला की जलमन, जलाक जंग जालन की, जोर की जमा है जोम जुलुम जिलाहे की ।—पद्माकर अं० पु० २२८ ।

जिलिबदार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जिलेदार' । उ०—मर्जी लिखी फौजदार ले पाँचे जिलिबदार । जाके देव दरबार चोपदार के कहिने ।—दक्खिनी०, पु० ४६ ।

जिलेदार—संज्ञा पुं० [हि० जिलादार] दे० 'जिलादार' ।

जिलेबी—संज्ञा स्त्री० [हि० जलेबी] दे० 'जलेबी' ।

जिलो(पु)—संज्ञा पुं० ? अनुचर । उ०—अथा बादशाहों बड़ा नाम-दार । जिलो में चले उसके कई ताजदार ।—दक्खिनी०, पु० १६८ ।

जिल्द—संज्ञा स्त्री० [अ०] [वि० जिल्दी] १. खाल । चमड़ा । खलड़ी । २. ऊपर का चमड़ा । त्वचा । जैसे, जिल्द की बीमारी । ३. वह पट्टा या दपती जो किसी किताब की सिलाई जुजबंदी आदि करके उसके ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—बाँधना ।

यौ०—जिल्दबंद । जिल्दमाज ।

४. पुस्तक की एक प्रति ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग उस समय होता है जब पुस्तकों का ग्रहण संख्या के अनुसार होता है । जैसे,—दस जिल्द पचावत, एक जिल्द रामायण ।

५. किसी पुस्तक का वह भाग जो पुष्क सिला हो । भाग । खंड । जैसे,—दादूदयाल की बानी दो जिल्दों में छपी है ।

जिल्दगर—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फ्रा० गर (प्रत्य०)] जिल्दबंद ।

जिल्दबंद—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फ्रा० बंद (प्रत्य०)] वह जो किताबों की जिल्द बाँधता हो । जिल्द बाँधनेवाला ।

जिल्दबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्द + फ्रा० बंदी (प्रत्य०)] पुस्तकों की जिल्द बाँधने का काम । जिल्द साजी ।

जिल्दसाज—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फ्रा० साज (प्रत्य०)] संज्ञा जिल्दमाजी] जिल्दबंद । जिल्द बाँधनेवाला ।

जिल्दसाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्द + फ्रा० साजी (प्रत्य०)] जिल्दबंदी । किताबों पर जिल्द बाँधने का काम ।

जिल्दी—वि० [अ० जिल्द + फ्रा० ई (प्रत्य०)] त्वक संबंधी । त्वचा या चमड़े से संबंध रखनेवाला । जैसे, जिल्दी बीमारी ।

जिल्लत—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्लत] १. अनादर । अपमान । तिरस्कार । बेइज्जती ।

मुहा०—जिल्लत उठाना = १. अपमानित होना । २. तुच्छ होना । हेठा ठहरना । जिल्लत देना = (१) अपमानित करना । (२) खिन्न करना । हतक करना । हेठा ठहराना । जिल्लत पाना = अपमानित होना ।

२. दुर्गति । दुर्दशा । हीन दशा । जैसे, जिल्लत में पड़ना या फँसना ।

जिल्ली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बीस ।

विशेष—यह आसाम में होता है और घर की छाजन आदि में लगता है ।

जिल्वा—संज्ञा पुं० [अ० जल्वहू] दे० 'जल्पा' । उ०—एक दिन ऐसा

भावना जब तमाम दुनिया में ईमान का जिल्वा होगा ।—
भा० प्र०, भा० १, पृ० ५२६ ।

जिल्होर—संज्ञा पु० [देश०] एव प्रकार का धान जो अगहन में
काटा जाता है ।

जिवी—संज्ञा पु० [सं० जीव] दे० 'जीव' ।

जिवड़ा—संज्ञा पु० [सं० जीव + डा (प्रत्य०)] दे० 'जीव' ।
उ०—ऐसा जिवड़ा न मिलाए जो फरक बिछोर ।—कबीर
मं०, पृ० ३२५ ।

जिवमार—वि० [हि० जीव + मार] जान मारनेवाला । उ०—
जल नहि, थल नहि, जीव और सृष्टि नहि, काल जिवमार
नहि संसय सताया ।—कबीर दे०, पृ० ३३ ।

जवरिया—संज्ञा स्त्री० दे० 'जवरी' । उ०—यादि अंत जो कोउ न
पावे । तनक जवरिया नित फिर आवे ।—नंद० प्र०,
पृ० २५० ।

जिवाना—संज्ञा पु० [हि०] दे० १. 'जिमाना' । २. 'जिवाना' ।

जिवाजिव—संज्ञा पु० [सं०] चकोर पक्षी ।

जिवाना—क्रि० सं० [हि० जीव (= जीवन)] जीवन करना ।
जिलाना । उ०—दहि काटि मो पाइ गहि लीनी मरति
जिवाइ । प्रीति जनावति भीति सौं भीत जु काटयो भाइ ।
—बिहारी र०, दो० ६०५ ।

जिवारी—वि० [हि० जीव] जिलानेवाली । उ०—सोभा समूह
भई धनधानंद मुरति अंग अतग जिवारी ।—धनानंद,
पृ० १०६ ।

जिवाला—संज्ञा पु० [मरा० जिवाला] जीवन । उ०—जिव का
बी घो जिवाला रूपों में रूप आला । सबके ऊपर है बाला
नित हसत रस तू 'मीरा' ।—दक्खिनी, पृ० ११० ।

जिवावना—क्रि० सं० [जिवाना ?] जिलाना । जियाना । उ०—
आनंदधन अथ भोधनहावन सृष्टि जिवावन बेद अगत है
मामी ।—धनानंद, पृ० ४१८ ।

जिवैया—वि० [हि०] जीमनेवाला । खानेपाने । उ०—तुम्हारे सिवाय
और कोई जिवैया नहीं बैठा है ।—मान भा०, ५, पृ० २७ ।

जिष्ट—वि० [सं० ज्येष्ठ] दे० 'ज्येष्ठ' । उ०—ब्रह्म अक्षत सु
उन्नत जिष्ट । बंदन भर कि बद्ध मनु पिष्ट ।—पृ० रा०,
१। २५७ ।

जिष्णु—वि० [सं०] जीतनेवाला । विजय प्राप्त करनेवाला । विजयी ।

जिष्णु—संज्ञा पु० [सं०] १. विष्णु । २. इंद्र । ३. अर्जुन । ४. सूर्य ।
५. वस्तु ।

जिस—वि० [सं० यस्य, प्रा० अस्स, हि० जिस] 'जो' का वह रूप
जो उसे विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ अपने से प्राप्त होता है ।
जैसे, जिस पुरुष ने, जिस लड़के को, जिस छड़ी से । जिस घोड़े
पर, जिस घर में, इत्यादि ।

जिस—सर्व० 'जो' का वह अंगरूप, विकारीरूप जो उसे विभक्ति
लगने के पहले प्राप्त होता है । जैसे, जिसने, जिसको, जिससे,
जिसका, जिस पर, जिनमें ।

विशेष—संबंध पूरा करने के लिये 'जिस' के पीछे 'उस' का
प्रयोग होता है । जैसे,—जिसको देगे उससे लेगे । पहले 'उस'
के स्थान पर 'तिस' का प्रयोग होता था ।

जिसन—वि० [देश०] जैसा । उ०—साहू कुँवर सुगति जिसउ,
रूपे अधिक अनूप । लाखों बगसई माँगिया, लाख अँगुठा सिर
भूप ।—ढोला०, दू० ६३ ।

जिसन—संज्ञा पु० [सं० जिष्णु] दे० 'जिष्णु'—३ । उ०—महे
मिर्कुटी धनुक समान । हे बहनी जिसन के बानु ।—इंद्रा०,
पृ० ६० ।

जिसा—वि० [हि०] दे० 'जैसा' । उ०—मोक्ष दोम न दीज्यो
कोई, जिसा करम भुगताऊँ सोई ।—रामानंद०, पृ० २६ ।

जिसिम—संज्ञा पु० [अ० जिसम] दे० 'जिसम' ।

जिसौह—क्रि० वि०, वि० [हि० जिसउ] जैसा । उ०—तुसिह
विराजत सिह जिसौह । विभीषन भा कयमाम जिसौह ।
—पृ० रा०, ५। ३६ ।

जिस्का—वि० [हि०] जिसका । दे० 'जिस' । उ०—तुम्हारे ऐसा
प्रेम लगाया जिस्का पारावार नहीं ।—श्यामा०, पृ० १२१ ।

विशेष—पुराने लेखक 'जिस्का' को इसी प्रकार लिखते थे ।

जिस्ता—संज्ञा पु० [हि० जस्ता] दे० 'जस्ता' ।

जिस्ता—संज्ञा पु० [हि० दस्ता] दे० 'दस्ता' ।

जिस्म—संज्ञा पु० [अ०] शरीर । देह ।

जिस्मानी—वि० [अ०] शरीर संबंधी । शारीरिक (को०) ।

जिस्मी—वि० [अ० जिस्म + फा० ई (प्रत्य०)] दे० 'जिस्मानी' (को०) ।

जिह—संज्ञा स्त्री० [फा० जह, सं० ज्या] वितला । रोदा । ज्या ।
धनुष की प्रत्यक्षा । उ०—तिय कित कमनेरी पटी बिन जिह
भोह कमान ! चित चन बेभे चुकति नहि बक बिलोकनि
बान ।—बिहारी (शब्द०) ।

जिह—सर्व० [हि०] दे० 'जिस' ।

जिहन—संज्ञा पु० [अ० जिहन] समझ । बुद्धि । धारणा ।

मुहा०—जिहन खुशना=बुद्धि का विकास होना । जिहन
लड़ना=बुद्धि का काम करना । बुद्धि पहुँचना । जिहन
लड़ाना=सोचना । बुद्धि दोलाना । ऊहापोह करना ।

जिहाज—संज्ञा पु० [हि० जहाज] मरुभूमि का जहाज
अर्थात् ऊँट । उ०—ऊमर बिच छेती घणी, घाने गयन
जिहाज । चारण ढोलइ साँमुहउ, भाइ जियउ सुमगज ।
—ढोला०, दू० ६४३ ।

जिहाद—संज्ञा पु० [अ०] [वि० जिहादी] १. धर्म के लिये युद्ध ।
मजहबी लड़ाई । धार्मिक युद्ध । २. वह लड़ाई जो मुसलमान
लोग अन्य धर्मावलंबियों से अपने धर्म के प्रचार प्रादि के
लिये करते थे ।

मुहा०—जिहाद का भडा=वह पताका जो मुसलमान लोग
अपने धर्मवालों से युद्ध करने के लिये लेकर चलते थे ।
जिहाद का भंडा खड़ा करना=मजहब के नाम पर लड़ाई
छेड़ना ।

जिहान^१—संज्ञा पुं० [फा० जहान] संसार । जहान । उ०—मेक सयत संमपत्त में, पैतीसै जमराज । मैं हरिषाम जिहान तज, हिदुसयान जिहान ।—रा० ६०, पु० १७ ।

जिहान^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. जाना । गमन । २. पाना । प्राप्त करना [को०] ।

जिहानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय [को०] ।

जिहालत—संज्ञा को० [घ० जहालत] मूर्खता । अज्ञानता ।

जिहासा—संज्ञा को० [सं०] त्याग करने की इच्छा ।

जिहासु—वि० [सं०] त्याग करने की इच्छा करनेवाला ।

जिहीर्षा—संज्ञा को० [सं०] हरने की इच्छा । लेने की इच्छा । हरण करने की कामना ।

जिहीर्षु—वि० [सं०] हरण करने की इच्छा रखनेवाला ।

जिहेज—संज्ञा पुं० [घ० जिहेज] दे० 'जहेज' [को०]

जिह्वा—वि० [सं०] १. नक । टेढ़ा । २. दुष्ट । क्रूर प्रकृतिवाला । ३. कुटिल । कपटी । ४. अप्रसन्न । खिन्न । ५. मंद । ६. पीला । पीतवर्ण का [को०] ।

जिह्वा^२—संज्ञा पुं० १. तगर का फूल । २. अघमं । ३. कपट [को०] । ४. बेईमानी । मिथ्यात्व [को०] ।

जिह्वाग^१—वि० [सं०] १. कुटिल गतिवाला । टेढ़ी चाल चलनेवाला । २. मंद गति । धीमा । ३. कुटिल । कपटी । चालबाज ।

जिह्वाग^२—संज्ञा पुं० सौंप ।

जिह्वागति^१—वि० [सं०] टेढ़ा मेढ़ा चलनेवाला [को०] ।

जिह्वागति—संज्ञा पुं० सौंप [को०] ।

जिह्वागामी—वि० [सं० जिह्वागामिन्] [सं० जिह्वागामिनी] १. टेढ़ा चलनेवाला । २. कुटिल । कपटी । चालबाज । ३. मंदगामी । सुस्त । धीमा ।

जिह्वाता—संज्ञा को० [सं०] १. टेढ़ापन । वक्रता । २. मंदता । धीमापन । ३. कुटिलता । कपट । चालबाजी ।

जिह्वामेहन—संज्ञा पुं० [सं०] मेढक ।

जिह्वयोधी^१—वि० [सं० जिह्वयोधिन्] कपट युद्ध करनेवाला [को०] ।

जिह्वयोधी^२—संज्ञा पुं० भीम [को०] ।

जिह्वशाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] खैर । खदिर । कल्या ।

जिह्वाक्ष—वि० [सं०] ऐंछा लाना [को०] ।

जिह्वित—वि० [सं०] घूमा हुआ । फिरा हुआ । चकित । विस्मित ।

जिह्वीकृत—वि० [सं०] झुकाया हुआ । टेढ़ा किया हुआ ।

जिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिह्वा ।

विशेष—इसका प्रयोग समस्त पदों में मिलता है । जैसे, जिह्व । ०. तगरमूल [को०] ।

जिह्वरू—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें जीभ में काँटे पड़ जाते हैं, रोगी से स्पष्ट बोला नहीं जाता, जीभ लड़लड़ाती है ।

विशेष—इसकी अवधि १६ दिन की है । इसमें श्वास काश आदि

भी हो जाते हैं । इस रोग में रोगी प्रायः गूंगे या बहरे हो जाते हैं ।

जिह्वल—वि० [सं०] जिभला । चट्टू । चटोरा ।

जिह्वा—संज्ञा को० [सं०] १ जीभ । २. भाग की लपट [को०] । ३. वाक्य [को०] ।

जिह्वाम^१—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ की नोक । दूँड़ ।

मुहा०—जिह्वाम फरना = कंठस्थ करना । जबानी याद करना । किसी विषय को इस प्रकार रटना या घेखना कि उसे जब चाहे तब कह डाले । जिह्वाम होना = जबानी याद होना ।

जिह्वाम^२—वि० याद रखनेवाला या वाली (जीभ या ग्रंथ) ।

जिह्वाच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ काटने का दंड ।

विशेष—जो लोग माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य या तपस्वियों आदि को गाली देते थे उनको यही दंड दिया जाता था ।

जिह्वाजप—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रानुसार एक प्रकार का जप जिसमें जिह्वा हिलने का विधान है ।

जिह्वानिलेखन—संज्ञा पुं० [सं०] जीमी [को०] ।

जिह्वानिलेखनिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जिह्वानिलेखन' ।

जिह्वाय—संज्ञा पुं० [सं०] वे पशु जो जीभ से पानी पिया करते हैं । जैसे, कुत्ते, बिल्ली, सिंह आदि ।

जिह्वामूल—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ पर बैठा हुआ मूल [को०] ।

जिह्वामूल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जिह्वामूलीय] जीभ की जड़ या पिछला स्थान ।

जिह्वामूलीय^१—वि० [सं०] जो जिह्वा के मूल से संबंध रखता हो ।

जिह्वामूलीय^२—संज्ञा पुं० वह वर्ण जिसका उच्चारण जिह्वामूल से हो ।

विशेष—शिक्षा के अनुसार ऐसे वर्ण अयोगवाह होते हैं और वे संज्ञा में दो हैं —क और ख । क और ख के पहले विसर्ग धाने से जिह्वामूलीय हो जाते हैं । कोई कोई वैयाकरण कवर्ग मात्र को जिह्वामूलीय मानते हैं ।

जिह्वारद—संज्ञा पुं० [सं०] पसी ।

जिह्वारोग—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ का रोग ।

विशेष—सुष्ठुत के मत से यह पाँच प्रकार का होता है । तीस प्रकार के कंठक जो वात, पित्त और कफ के प्रकोप से जीभ पर पड़ जाते हैं, चौथा अलास जिसमें जिह्वा के नीचे सूजन हो जाती है और पाँचवाँ उपजिह्विका जिसमें जिह्वा के मूल में सूजन हो जाती है और लार टपकती है । इन पाँचों में अलास असाध्य है । इसमें जीभ के तले की सूजन बढ़कर पक जाती है ।

जिह्वालिह—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।

जिह्वालौक्य—संज्ञा पुं० [सं०] चटोरापन । स्वादलोलुपता [को०] ।

जिह्वाशाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] खदिर । खैर का पेड़ । कल्या ।

जिह्वास्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जिह्वारोग जिसमें वायु स्वरवाहिनी नाड़ियों में प्रवेश करके उन्हें स्तंभित कर देता है । —माधव, पु० १४२ ।

जिह्विका—संज्ञा को० [सं०] जीभी ।

जिह्वोल्लेखनिका, जिह्वोल्लेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीमी [को०] ।

जीगन—संज्ञा पुं० [सं० जूगण] खद्योत । जुगनू । उ०—बिरह जरी लखि जीगननि कही मुख के बार । धरी घाउ उठि भीतरे बरसति आज अंगार ।—बिहारी (शब्द०) ।

जी—संज्ञा पुं० [सं० जीव] १. मन । दिल । तबीयत । चित्त ।
उ०—(क) कहत नसाइ होइ द्विष नीकी । रीझत राम जानि जन जीवी । मानस, १।२८ । २. हिम्मत । दम । जीवट । ३. संकल्प । विचार । इच्छा । चाह ।

मुद्गा०—जी अच्छा होना = चित्त स्वस्थ होना । रोग आदि की पीडा या बेचैनी न रहना । नीरोग होना । जैसे,—दो तीन दिन तक बुखार रहा, आज जो अच्छा है । किसी पर जो आना = किसी से प्रेम होना । हृदय का किसी के प्रेम में अनुरक्त होना । जी उकताना = चित्त का उवाट होना । चित्त न लगना । एक ही अवस्था में बहुत काल तक रहते रहते परिवर्तन के लिये चित्त व्यग्र होना । तबीयत खराब होना । जैसे,—तुम्हारी बात सुनते सुनते तो जी नक़्ता गया । जी उचटना = चित्त न लगना । चित्त का प्रवृत्त न होना । मन हटना । किसी कार्य, वस्तु या स्थान आदि से विरक्ति होना । जैसे,—प्रब तो इस काम से मेरा जी उचट गया । जी उठना = दे० 'जी उचटना' । जी उठाना = चित्त हटाना । मन फेर लेना । विरक्त होना । अनु-रक्त न रहना । जी उड़ जाना = भय, आशंका आदि से चित्त सहसा व्यग्र हो जाना । चित्त चंचल हो जाना । धैर्य जाता रहना । जी में खबराहट होना । जैसे,—उसकी बीमारी का हाल सुनते ही मेरा तो जी उड़ गया । जी उदास होना = चित्त खिन्न होना । जी उलट जाना = (१) मन का वश भन रहना । चित्त चंचल और अव्यवस्थित हो जाना । चित्त विक्षिप्त हो जाना । होश हवाम जाना रहना । (२) मन फिर जाना चित्त विरक्त होना । जी करना = (१) हिम्मत करना । होसला करना । साहम करना (२) जी चाहना । इच्छा होना । जैसे,—प्रब तो जी करना है कि यहाँ से चल दें । जी काँपना = भय आशंका आदि से कलेजा धक धक करना । हृदय धरना । डर लगना । जैसे,—वहाँ जाने का नाम सुनते ही जी काँपता है । जी का बुखार निकालना = हृदय का उद्वेग बाहर करना । क्रोध, शोक, दुःख आदि के वेग को रो कलपकर या बक भक-कर शांत करना । ऐसे क्रोध या दुःख को शब्दों द्वारा प्रकट करना जो बहुत दिनों से चित्त को संतप्त करता रहा हो । जी का बोझ या भार हलका होना = ऐसी बात का दूर होना जिसकी चिन्ता चित्त में बराबर रहती आई हो । खटका मिटना । चिन्ता दूर होना । जी का अमान माँगना = प्राण रक्षा की प्रतिज्ञा की प्रार्थना करना । किसी काम के करने या किसी बात के कहने के पहले उस मनुष्य से प्राणरक्षा करने या अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करना जिसके विषय में यह निश्चय हो कि उसे उस काम के होने या उस बात को सुनने से अवश्य दुःख पहुँचेगा । जैसे,—यदि किसी राजा से कोई अप्रिय बात करनी हुई तो लोग पहले यह कह लेते हैं कि 'जी का अमान पाऊँ तो कहूँ' । जी का धा लगना = प्राणों पर धा

बनना । प्राण बचना कठिन हो जाना । ऐसे भारी भ्रम या संकट में फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय । जी की निकालना = (१) मन की उमग पूरी करना । दिल की हवस निकालना । मनोरथ पूरा करना । (२) हृदय का उदगार निकालना । क्रोध, दुःख, द्वेष आदि उद्वेग को बक भक कर शांत करना । बदना लेने की इच्छा पूरी करना । जी का जी में रहना = मनोरथ का पूरा न होना । मन में ठानी, सोची या चाही हुई बातों का न होना । जी की पड़ना = प्राण बचाने की चिन्ता होना । प्राण बचाना कठिन हो जाना । ऐसे भारी भ्रम या संकट में फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय । उ०—सब अमवाब दाढ़ो मैं न काढ़ो तैन काढ़ो तैन काढ़ो जिय की परी मभारे सहन भटार को ।—तुलसी (शब्द०) । जी का = जीवटवाला । जगरेवाला । साहसी । हिम्मतवर । दमदार । उ०—धनो धरनी के नीके आपुनी धनी के मग पावँ और जी के भी नजीके गरजी के सों ।—गोपाल (शब्द०) । (किसी के) जी को समझना = किसी के विषय में यह समझना कि वह भी जीव है उसे भी कष्ट होगा । दूसरे के कष्ट का समझना । दूसरे को बलेश न पहुँचाना । दूसरे पर दया करना । जी को मारना = (१) मन की इच्छाओं को रोकना । चित्त के उत्साहों को न पूरा करना । (२) सतोष धारण करना जी को न लगना = (१) चित्त में अनुभव होना । हृदय में वेदना होना । सहानुभूति होना । जैसे—दूसरों की पीडा आदि किसी के जी को नही लगती । (२) प्रिय लगना । आना । अच्छा लगना । जी खट-कना = (१) चित्त में खटका या सदेह उत्पन्न होना । (२) दानि आदि की आशंका से (किसी काम के करने से) जी हिचकना । (किसी से या किसी ओर से) जी खट्टा करना = मन फेर देना । चित्त में घृणा या विरक्ति उत्पन्न कर देना । चित्त विरक्त करना । हृदय में दुर्भाव उत्पन्न करना । जैसे,—तुम्हीं ने मेरी ओर से उनका जी खट्टा कर दिया है । (किसी से या किसी ओर से) जी खट्टा होना = चित्त हट जाना । मन फिर जाना या विरक्त होना । अनुराग न रहना । घृणा होना । जैसे,—उसी एक बात में उनकी ओर से मेरा जी खट्टा हो गया । जी खपाना = (१) चित्त तन्मय करना । (किसी काम में) जी लगाना । नितांत दत्त-चित्त होना । जी तोड़कर किसी काम में लग जाना । (२) प्राण देना । अन्त्यंत कष्ट उठाना । जी खुलना = संकोच छूट जाना । षट्क खुल जाना । किसी काम के करने में हिचक न रह जाना । जी खोलकर = (१) बिना किसी संकोच के । बिना किसी प्रकार के भय या लज्जा के । बिना हिचके । बेधड़क । जैसे,—जो कुछ तुम्हें कहना हो, जी खोलकर कहो । (२) जितना जी चाहे । बिना अपनी ओर से कोई कमी किए । मनमाना । यथेष्ट । जैसे,—तुम हमें जी खोलकर गालियाँ दो, चिन्ता नहीं । जी गैबाना = प्राण देना । जान खोना । जी गिरा जाना = जी बैठा जाना । तबीयत सुस्त होती जाना । शिथिल-ता आती जाना । जी खबराना = (१) चित्त व्याकुल होना । मन व्यग्र होना । (२) मन न लगना । जी ऊबना । जी चलना =

(१) जो चाहना । इच्छा होना । (२) जो घाना । चित्त मोहित होना । जी चला = (१) बीर । दिलेर । बहादुर । शूर । शूरमा । (२) दानवीर । दाता । दानी । उदार । दान-शूर । (३) रसिक । सहृदय । जी चलाना = (१) इच्छा करना । मन दोड़ाना । चाह करना । (२) हिम्मत बाँधना । साहस करना । होसला बढ़ाना । जी चाहना = मनोभिखाष होना । मन चलना । इच्छा होना । जी चाहे = यदि इच्छा हो । यदि मन में चाहे । जी चुराना = किसी काम या बात से बचने के लिये हीला हयाली करना या युक्ति रचना । किसी काम से भागना । जैसे,—यह नोकर काम से जी चुराता है । जी छुपाना = (१) दे० 'जी चुराना' । जी छूटना = (१) हृदय की दृढ़ता न रहना । साहस दूर होना । ना उम्मेदी होना । उत्साह जाता रहना । (२) यकावट घाना । शिथिलता घाना । जी छोटा करना = (१) हृदय का उत्साह कम करना । (२) हृदय संकुचित करना । मन उदास करना । दान देने का साहस कम करना । उदारता छोड़ना । कंजूसी करना । जी छोड़ना = (१) प्राण त्याग करना । (२) हृदय की दृढ़ता खोना । साहस गँवाना । हिम्मत हारना । जी छोड़कर भागना = हिम्मत हारकर बड़े वेग से भागना । एकदम भागना । ऐसा भागना कि दम लेने के लिये भी न ठहरना । जी जलना = (१) चित्त संतप्त होना । हृदय में भस्म होना । चित्त में कूटन और दुःख होना । क्रोध घाना । भस्मा लगना । (१) ईर्ष्या होना । डाह होना । जी जलाना = (१) चित्त संतप्त करना । हृदय में क्रोध उत्पन्न करना । कुढ़ाना । चिढ़ाना । (२) हृदय में दुःख उत्पन्न करना । रज पहुँचाना । दुःखी करना । चित्त व्यथित करना । मताना (१) ईर्ष्या या डाह उत्पन्न करना । जी जानना है = हृदय ही अनुभव करता है, कहा नहीं जा सकता । सही हुई कठिनाई, दुःख या पीड़ा वर्णन के बाहर है । जैसे,—(क) मार्ग में जा जो कष्ट हुए कि उसे जी ही जानता होगा । ('जी जानना होगा' भी बोला जाता है ।) जी जान से लगना = हृदय में प्रवृत्त होना । सारा ध्यान लगाना देना । एकाग्र चित्त होकर तत्पर होना । जैसे,—वह जी जान से इस काम में लगा है । किसी को जो जान से लगे है—कोई हद पर नत्पर है । किसी की ओर दया या प्रयत्न है । कोई सारा ध्यान लगाकर उत्पन्न है । कोई बराबर इसी चित्त पर उपयोग में है । जैसे,—उमें जी जान से लगे हैं कि पक्का किया जाय । जी जान लगाना = मन लगाना । दत्त चित्त होना । जी जुगोश = (१) किंगी तरह प्राणरक्षा करना । कठिनाई से दत्त बिलाना । जैसे उसे दित्त काटना । (२) बचन । प्रयोग रहता । नटस्थ रहना या होना । जी जोड़ना = (१) हिम्मत बाँधना या करना । (२) लालसा होना । उद्यत होना । जी टंगा रहना या होना = चित्त में ध्यान या चिन्ता रहना । जी में खटका बना रहना । चित्त चिदित रहना । जैसे,—(क) जब तक तुम नहीं आश्रय, मेरा जी टंगा रहेगा । (ख) उमका कोई पत्र नहीं आया, जी टंगा है । जी टूट जाना = उत्साह भंग

हो जाना । उमंग या होसला न रह जाना । निराश होना । उदासीनता होना । जैसे,—उनकी बातों से हमारा जी टूट गया, अब कुछ न करेंगे । जी ठंडा होना = (१) चित्त शांत और संतुष्ट होना । अभिलाषा पूरी होने से हृदय प्रफुल्लित होना । चित्त में संतोष और प्रसन्नता होना । जैसे,—वह यहाँ से निकाल दिया गया; अब तो तुम्हारा जी ठंडा हुआ ? जी ठुकना = (१) मन को संतोष होना । चित्त स्थिर होना । (२) चित्त में दृढ़ता होना । साहस होना । हिम्मत बाँधना । दे० 'छासी ठुकना' । जी डरना = भ्रंका या भ्रांशका होना । भय होना । जी डालना = (१) शरीर में प्राण डालना । जीवित करना । (२) प्राणरक्षा करना । मरने से बचाना । (३) हृदय मिलाना । प्रेम करना । (४) उत्साहित करना । बढ़ावा देना । जी डूबना = (१) बेहोशी होना । मूर्च्छा जाना । चित्त विह्वल होना । (२) चित्त स्थिर न रहना । पबराह्न और बेचैनी होना । चित्त व्याकुल होना । जी डोलना = (१) विचलित होना । चंचल होना । (२) लुब्ध होना । अनुत्क होना । (३) मन न करना । न चाहना । जी डहा जाना = दे० 'जी बैठा जाना' । जी तपना = चित्त क्रोध में संतप्त होना । जी जलना : क्रोध चढ़ना । उ०—सुनि गज सूह अधिक जित तपा । मिह जात कहूँ रह नहि छपा । —जामनी (शब्द०) । जी तरसना = किसी वस्तु या बात के प्रभाव से चित्त व्याकुल होना । किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये चित्त प्रधीर या दुःखी होना । किसी बात की इच्छा पूरी न होने का कष्ट होना । जैसे,—(क) तुम्हारे दर्शन के लिये जी तरसता था । (ख) जब तक बंगाल में थे, रोटी के लिये जी तरस गया । जी तोड़ काम, परिश्रम या मिहनत करना = जान की बाजी लगाकर किसी काम को करना । जी तोड़ना = (१) दिल तोड़ना । निराश करना । हतोत्साह करना । (२) पूर्ण शक्ति से काम करना । काम करने में कुछ भी न उठा रखना । जी दहलना = भय या भ्रांशका से चित्त टूँबाडोल होना । डर से हृदय काँपना । डर के मारे जी ठिकाने न रहना । अत्यंत भय लगना । जी दान = प्राण दान । प्राणरक्षा । जी दार = जीवतवाला । दत्त हृदय का । साहसी । हिम्मतवर । बहादुर । कड़े दिल का । जी दुखना = चित्त को कष्ट पहुँचाना । हृदय में दुःख होना । जैसे,—ऐसी बात क्यों बोलते हो जिससे किसी का जी दुखे । जी दुखाना = चित्त व्यथित करना । हृदय को कष्ट पहुँचाना । दुःख देना । मताना । जैसे,—व्यर्थ किसी का जी दुखाने से क्या लाभ ? जी देना = (१) प्राण खोना । मरना । (२) हमारे की प्रसन्नता या रक्षा के लिये प्राण देने को प्रस्तुत रहना । (३) प्राण से बढ़कर प्रिय समझना । अत्यंत प्रेम करना । जैसे,—वह तुम पर जो देता है और तुम उससे भागे फिरते हो । जी दीड़ना = मन चलना । इच्छा होना । लालसा होना । जी घँसा जाना = दे० 'जी बैठा जाना' । जी धड़कना = (१) भय या भ्रांशका से चित्त स्थिर न रहना । कलेजा धक धक करना । डर के मारे हृदय में घबराहट होना । डर लगाना । (२) चित्त में दृढ़ता न होना । साहस न पड़ना । हिम्मत न पड़ना । जैसे,—चार पैसे पास से निकालते जी धड़-

कता है। जी धक्क करना = कलेजे का भय आदि के आवेग से जोर जोर से उछलना। जी धक्कना = डर लगना। जी धक्क होना = ३० 'जी धक्क करनी'। जी निकलना = (१) प्राण छूटना। प्राण निकलना। मृत्यु होना। (२) चित्त व्याकुल होना। डर लगना। प्राण सूखना। जैसे,—अब तो उधर जाते इसका जी निकलता है। (३) प्राणत कष्ट होना। कष्टबोध होना। जैसे,—तुम्हारा रूपया तो नहीं जाता है, तुम्हारा क्यों जी निकलता है? जी निडाल होना = चित्त का स्थिर न रहना। चित्त ठिकाने न रहना। चित्त विह्वल होना। हृदय व्याकुल होना। जी पक जाना = किसी अप्रिय बात को नित्य देखते देखते या सुनते सुनते चित्त दुखी हो जाना। किसी बार बार होने-वाली बात का चित्त को असह्य हो जाना। और अधिक सुनने का साहस चित्त में न रहना। जैसे,—नित्य तुम्हारी जली कटी बातें सुनते सुनते जी पक गया। जी पड़ना = (१) शरीर में प्राण का संचार होना। जैसे—गर्भ के बालक को जी पड़ना। (२) मृतक के शरीर में प्राण का संचार होगा। मरे हुए में जान आना। जी पकड़ लेना = कलेजा घामना। किसी असह्य दुःख के वेग को दबाने के लिये हृदय पर हाथ रख लेना। जी पकड़ा जाना = मन में संदेह पड़ जाना। भाषा ठनकना। कोई भारी खटका पैदा हो जाना। चित्त में कोई भारी आशंका उठना। (स्त्रि०)। जैसे,—तारु घाते ही मेरा तो जी पकड़ा गया। जी पर आ बनना - प्राण पर आ बनना। प्राण बचाना काँठन हो जाना। ऐसे भारी संकट या भ्रंश में पड़ जाना कि पोछा छुड़ाना कठिन हो जाय। जी पर खेचना = प्राण को संकट में खेचना। जान को भागत में डालना। जान पर जोर उठाना। ऐसा काम करना जिसमें जान जाने का भय हो। जी पानी करना = (१) जड़ पानी एक करना। प्राण देव और लेने की नीबत खाना। पारी मागति खड़ी करना। (२) चित्त कोमल या व्याद करना। जी पानी होना = चित्त कोमल या व्याद होना। जी पिघलना = (१) दया से हृदय द्रवित होना। चित्त का व्याद होना। (२) हृदय का प्रेमार्द्र होना। चित्त में स्नेह का संचार होना। जी पीछे पड़ना = दिल बहलना। चित्त बँटना। मन का किसी ओर बँट जाना जिसमें दुःख की बात कुछ भूल जाय। (स्त्री०) जी फट जाना हृदय मिला न रहना। चित्त में पहले का सा मद्भाव या प्रेमभाव न रह जाना। प्रीति भंग होना। प्रेम में असह्य पड़ जाना। चित्त विरक्त होना। किसी की ओर से चित्त खिन्न हो जाना। जी फिर जाना = मन हट जाना। चित्त विरक्त हो जाना। चित्त अनुरक्त न रहना। हृदय में घृणा या अस्वस्ति उत्पन्न हो जाना। जैसे,—अब किसी ओर से जी फिर जाता है तब फिर वह बात वही रह जाती। जी फिसलना = चित्त का किसी की ओर) आकर्षित होना। मन खिचना। हृदय अनुरक्त होना। मन मोहित होना। मन लुभाना। जी फीका होना = ३० 'जी खट्टा होना'। जी बँटना = (१) चित्त का किसी ओर इस प्रकार लग जाना कि किसी प्रकार की

दुःख या चिन्ता की बात भूल जाय। जी बहलाना। (२) चित्त का एकाग्र न रहना। चित्त का एक विषय में पूर्ण रूप से न लगा रहना, दूसरी बातों की ओर भी चला जाना। ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान भंग होना। मन उचटना। जैसे,—काम करने समय यदि कोई कुछ बोलने लगता है तो जी बँट जाता है। (३) एकान्त प्रेम न रहना। एक व्यक्ति के प्रतिरिक्त दूसरे व्यक्ति से भी प्रेम हो जाना। अनन्य प्रेम न रहना। जी बंद होना = ३० 'जी फिगना'। जी बढ़ना = (१) चित्त प्रसन्न या उत्साहित होना। होमना बढ़ना। (२) साहस बढ़ना। हिम्मत आना। जी बढ़ाना = (१) उत्साह नढ़ाना। किसी विषय में प्रवृत्त करने के लिये उत्तेजित करना। प्रशंसा पुरस्कार आदि द्वारा किसी काम में रुचि उत्पन्न करना। होमना बढ़ाना। जैसे,—लड़कों का जी बढ़ाने के लिये इनाम दिया जाता है। (२) किसी कार्य की सफलता की आशा बँधाकर अधिक उत्साह उत्पन्न करना। किसी कार्य में होनेवाली बाधा या कठिनाई के दूर होने का निश्चय दिलाकर उसकी ओर अधिक प्रवृत्ति उत्पन्न करना। साहस दिलाना। हिम्मत बढ़ाना। जी बलना = (१) चित्त का किसी विषय में लगाकर ध्यान अनुभव करना। चित्त का ध्यानपूर्वक लीन होना। मनोरंजन होना। जैसे,—गोरी देर तक खेलने से जी बढ़त जाता है। (२) चित्त के किसी विषय में लग जाने से दुःख या चिन्ता की बात भूल जाना। जैसे,—मित्रों के यहाँ आ जाने से कुछ जी बहल जाता है नहीं तो दिन रात उस बात का दुःख बना रहता है। जी बढ़ाना = (१) रुचि के अनुकूल किसी विषय में लगाकर ध्यान अनुभव करना। मनोरंजन करना। जैसे,—कभी कभी जी बहलाने के लिये ताश भी खेल लेते हैं। (२) चित्त को किसी ओर लगाकर दुःख या चिन्ता की बात भूल जाना। जी बिलाना = (१) चित्त ठिकाने न रहना। मन विह्वल होना। (२) मूर्च्छा होना। बेहोशी होना। जी बिगड़ना = (१) जी मचलाना। मतली छूटना। कै करने की इच्छा होना। (२) भिटकना। घृणा करना। घिन मायूम होना। जी बुल करना = कै करना। उलटी करना। बमन करना। (किसी की ओर से) जी बुरा करना = किसी के प्रति अस्वस्ति भाव न रखना। किसी के प्रति बुरी धारणा रखना। किसी के प्रति घृणा या क्रोध करना। (किसी की ओर से दूसरे का) जी बुरा करना = (१) दूसरे का ख्याल खराब करना। बुरी धारणा उत्पन्न करना। (२) क्रोध, घृणा या दुर्भाव उत्पन्न करना। जी बुरा होना = (१) कै होना। उलटी होना। (२) ख्याल खराब होना। (३) चित्त में दुर्भाव या घृणा उत्पन्न होना। जी बैठ जाना = (१) चित्त विह्वल होना जाना। चित्त ठिकाने न रहना। मन न रहना। मूर्च्छा सी आना। जैसे,—आज न जाने क्यों बड़ी कमजोरी जान पड़ती है और जी बैठा जाता है। (२) मन भरना। उदासी होना। जी भिटकना = चित्त न लगना होना। घिन मायूम होना। जी भरना (क्रि० प्र०) = (१) चित्त तुष्ट होना। तुष्टि होना। तृप्ति होना। मन प्रसन्न होना। और अधिक

की इच्छा न रह जाना। जैसे,—(क) प्रब जी भर गया धीर न खार्गे। (ख) तुम्हारी बातों से ही जी भर गया, प्रब जाते हैं। (घंयं)। (२) मन की अभिलाषा पूरी होने से प्रानंद और मतोष होना। जैसे,—लो, मैं, आज यहाँ से चला जाता हूँ, प्रब तो तुम्हारा जी भरा। (३) रुचि के अनुकूल होना। मन में घृणा न होना। जैसे,—ऐसे गंदे बरतन में पानी पीते हो, न जाने कैसे तुम्हारा जी भरता है। जी भरकर = जितना और जहाँ तक जी चाहे। मनमाना। यथेष्ट। जैसे,—तुम हमें जी भरकर गालियाँ दो, कोई परवाह नहीं। जो भरना (क्रि० सं०) = चित्त विश्वासपूर्ण करना। चिन्ता से किसी बात की बुराई या धोखा आदि खाने की आशंका दूर करना। खटका मिटाना। इतमीनान करना। दिलजमई करना। जैसे,—यों तो बोके में कोई ऐब नहीं है पर आप दस आदमियों से पूछकर अपना जी भर लीजिए। जो भर आना = हृदय का कण्ठा या शोक के आवेग से पूर्ण होना। चित्त में दुःख या कष्ट का उद्रेक होना। दुःख या दया उमड़ना। हृदय में इतने दुःख या दया का वेग उठना कि आँखों में आँसू आ जाय। हृदय का कण्ठा से बिह्वल होना। जी भरभरा उठना = रोमाच होना। हृदय के किसी आकस्मिक आवेग से चित्त का बिह्वल हो जाना। (घपना) जी भारी करना—चित्त खिन्न या दुखी करना। जी भारी होना = तबीयत अच्छी न होना। किसी रोग या पीड़ा आदि के कारण मुस्ती जान पड़ना। शरीर अच्छा न रहना। जी भुरभुराना = किसी की ओर चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी मचलना = किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर आकृष्ट होना। जी मचलाना = दे० 'जी मतलाना'। जी मतलाना = चित्त में उलटी या कै करने की इच्छा होना। वसन करने को जी चाहना। जी मर जाना = मन में उमंग न रह जाना। हृदय का उत्साह नष्ट होना। मन उदास हो जाना। जी मलमलाना = चित्त में दुःख या पछतावा होना। घफलोस होना। जैसे,—गाँठ के बार पैसे निकालते जी मलमलाना है। जी मारना = (१) चित्त की उमंग को रोकना। हृदय का उत्साह नष्ट करना। (२) संतोष धारण करना। सब्र करना। जी मचलाना = दे० 'जी मतलाना'। (किसी से) जी मिलना = चित्त के भाव का परस्पर समान होना। हृदय का भाव एक होना। समान प्रवृत्ति होना। एक मनुष्य के भावों का दूसरे मनुष्य के भावों के अनुकूल होना। चित्त पटना। जी में आना = (१) मन में भाव उठना। चित्त में विचार उत्पन्न होना। (२) मन में इच्छा होना। जी चाहना इरादा होना। खंजना होना। जैसे,—तुम्हारे जो जी में आवे, करो। जी में घर करना = (१) मन में स्थान करना। हृदय में किसी का ध्यान बना रहना। (२) याद रहना। कोई बात या व्यवहार मन में बराबर रहना। जी में गड़ना या लुभना = (१) चित्त में जम जाना। हृदय में गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) हृदय में प्रकट हो जाना। चित्त में ध्यान बना रहना। उ०—माधव मूरति जी में लुभो।—

सूर (शब्द०)। जी में जलना = (१) हृदय में क्रोध के कारण संताप होना। मन में कुदना। मन ही मन ईर्ष्या करना। डाह करना। जी में जी आना = चित्त ठिकाने होना। चित्त की घबराहट दूर होना। चित्त शांत और स्थिर होना। चित्त की चिंता या व्यग्रता दूर होना। किसी बात की आशंका या भय मिट जाना। जैसे,—जब वह उस स्थान से सकुशल लौट आया तब मेरे जी में जी आया। जी में जी डाखना = (१) चित्त सतुष्ट और स्थिर करना। चित्त का खटका दूर कराना। चिंता मिटाना। (२) विश्वास दिलाना। इतमीनान करना। दिलजमई कराना। जी में डालना = मन में विचार लाना। सोचना। जैसे,—तुम्हारे साथ कोई बुराई कर्कंगा ऐसी बात कभी जी में न डालना। जी में घरना = (१) मन में लाना। चित्त में किसी बात का इसलिये ध्यान बनाए रहना जिसमें आगे चलकर कोई उसके अनुसार कार्य करे। ख्याल करना। (२) मन में बुरा मानना। नाराज होना। बैर रखना। जी में पैठना = (१) चित्त में जम जाना। हृदय पर गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) ध्यान में प्रकट होना। बराबर ध्यान में बना रहना। चित्त से न हटना या भूलना। जी में बैठना = (१) मन में स्थिर होना। चित्त में निश्चय होना। चित्त में निश्चित धारणा होना। मन में सत्य प्रतीत होना। जैसे,—उम्होने जो बातें कहीं वे मेरे जी में बैठ गईं। (२) हृदय पर गहरा प्रभाव करना। (३) हृदय पर प्रकट हो जाना। ध्यान में बराबर बना रहना। जी में रखना = (१) चित्त में विचार धारण करना। ख्याल बनाए रखना जिसमें आगे चलकर उसके अनुसार कोई कार्य करें। (२) मन में बुरा मानना। बैर रखना। द्वेष रखना। कीना रखना। जैसे,—उसे चाहे जो कहो वह कोई बात जी में नहीं रखता। (३) हृदय में गुप्त रखना। हृदय के भाव को बाहर न प्रकट करना। मन में लिए रहना। जैसे,—इस बात को जी में रखो, किसी से कहो मत। (किसी का) जी रखना = (किसी का) मन रखना। किसी के मन की बात होने देना। मन की अभिलाषा पूरी करना। इच्छा पूरी करना। उत्साह भंग न करना। प्रसन्न करना। संतुष्ट करना। जैसे,—जब वह बार बार इसके लिये कहता है तो उसका जी रख दो। जी रकना = (१) जी घबराना। (२) जी हिचकना। चित्त प्रवृत्त न होना। जी लगना = चित्त तत्पर होना। मन का किसी विषय में योग देना। चित्त प्रवृत्त होना। दत्तचित्त होना। जैसे,—पढ़ने में उसका जी नहीं लगता। (किसी से) जी लगाना = चित्त का प्रेमासक्त होना। किसी से प्रेम होना। जी लगाना = चित्त तत्पर करना। किसी काम में दत्तचित्त बनना। जी लगा रहना या लगा होना = (१) चित्त में ध्यान बना रहना। (२) जी में खटका लगा रहना। चित्त चिंतित रहना या होना। जैसे,—बहुत दिनों से कोई पत्र नहीं आया, जी लगा है। (किसी से) जी लगाना = किसी से प्रेम करना। जी लटना = पस्त होना। हिम्मत टूटना। उ०—इस

जगत का जीव वह है ही नहीं। लुट गए वन जी लटा जिसका नहीं।—चोखे०, पृ० २२। जी लड़ाना = (१) प्राण जाने की भी परवाह न करके किसी विषय में तत्पर होना। (२) मन का पूर्ण रूप से योग देना। पूरा ध्यान देना। सारा ध्यान लगा देना। जी लरजना = दे० 'जी काँपना'। जी ललचना = (१) जी में लालच होना। चित्त में किसी बात के लिये प्रबल इच्छा होना। किसी वस्तु की प्राप्ति आदि की गहरी लालसा होना। (२) किसी चीज के पाने के लिये तरसना। जैसे,—वहाँ की सुंदर सुंदर वस्तुओं को देखकर जी ललच गया। (३) चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी ललचाना = (१) (क्रि० प्र०) दे० 'जी ललचना'। (२) (क्रि० स०) दूसरे के चित्त में लालच उत्पन्न करना। किसी बात के लिये प्रबल इच्छा उत्पन्न करना। किसी वस्तु के लिये जी तरसाना। जैसे,—दूर से दिखाकर क्यों उसका जी ललचाते हो, देना हो तो दे दो। (३) मन लुभाना। मन मोहित करना। जी लुटना = मन मोहित होना। मन मुग्ध होना। हृदय प्रेमासक्त होना। जी लुभाना = (१) (क्रि० स०) चित्त आकर्षित करना। मन मोहित करना। हृदय में पीति उपजाना। सौंदर्य आदि गुणों के द्वारा मन खोचना। (२) (क्रि० प्र०) चित्त आकर्षित होना। मन मोहित होना जैसे,—उसे देखते ही जी लुभा जाता है। जी लुटना = मन मोहित करना। जी लेना = जी चाहना। जी करना। चित्त का इच्छुक होना। जैसे,—वहाँ जाने के लिये हमारा जी नहीं लेता। (दूसरे का) जी लेना = प्राण हरण करना। मार डालना। जी जोटना = जी छटपटाना। किसी वस्तु की प्राप्ति या और किसी बात के लिये चित्त व्याकुल होना। चित्त का अत्यंत इच्छुक होना। ऐसी इच्छा होना कि रहा न जाय। जी सन हो जाना = भय, आशंका आदि से चित्त स्तब्ध हो जाना। जी धरना जाना। डर के मारे चित्त ठिकाने न रहना। होश उड़ जाना। जैसे,—उसे सामने देखते ही जी सन हो गया। जी मनसनाना = (१) चित्त स्तब्ध होना। भय, आशंका, शीघ्रता आदि से अंगों की गति शिथिल हो जाना। (२) चित्त विह्वल होना। जी साँय साँय करना = दे० 'जी मनसनाना'। जी से = जी लगाकर। ध्यान देकर। पूर्ण रूप से। वत्तचित्त होकर। जैसे,—जी से जो काम किया जायगा वह क्यों न अच्छा होगा। (किसी वस्तु या व्यक्ति का) जी से उत्तर जाना = दृष्टि से गिर जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति की) इच्छा या चाह न रह जाना। किसी व्यक्ति पर स्नेह या श्रद्धा न रह जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति) चित्त में विरक्त हो जाना। भयान अँवना। हेय या तुच्छ हो जाना। बेकबर हो जाना। जी से उतारना या जी से उतार देना = किसी वस्तु या व्यक्ति की उपेक्षा या अवहेलना करना कदर न करना। जी से जाना = प्राणविहीन होना। मरना। जान खो बैठना। जैसे,—बकरी अपने जी से गई, खानेवाले को स्वाद ही न मिला। जी से जी

मिलना। (१) हृदय के भाव परस्पर एक होना = एक के चित्त का दूसरे के चित्त के अनुकूल होना। मैत्री का व्यवहार होना। (२) चित्त में एक दूसरे से प्रेम होना। परस्पर प्रीति होना। (किसी व्यक्ति या वस्तु से) जी हट जाना = चित्त प्रवृत्त या अनुरक्त न रह जाना। इच्छा या चाह न रह जाना। जैसे,—(क) ऐसे कामों में प्रमत्त हमारा जी हट गया। (ख) उससे मेरा जी एकदम हट गया। जी हवा हो जाना = किसी भय, दुःख या शोक के सहसा उपस्थित होने पर चित्त स्तब्ध हो जाना। चित्त विह्वल हो जाना। जी धरना जाना। चित्त व्याकुल हो जाना। (किसी का) जी हाथ में रखना = (१) किसी का भाव अपने प्रति अच्छा रखना। राजी रखना। मन मैला न होने देना। (२) जी में किसी प्रकार का खटका पैदा न होने देना। दिनासा दिए रहना। जी हाथ में लेना = दे० 'जी हाथ में रखना'। जी हारना = (१) किसी काम से धराराना या ऊब जाना। हारना होना। परास्त होना। (२) हिम्मत हारना। माहम छोड़ना। जी हिलना = (१) भय से हृदय काँपना। जी दहनना। (२) कठुणा से हृदय धुग्ध होना। दया से चित्त उद्विग्न होना।

जी०—अ० [म० त्रि० प्रा० त्रि० (= त्रिजो) या म० (श्री) युत प्रा० जुक, हि० हू] एक समानमूलक शब्द जो किसी नाम या शब्द के आगे लगाया जाता है अथवा किसी बड़े के कथन, प्रश्न या संबोधन के उत्तर रूप में जो संज्ञित प्रति संबोधन होता है उसमें प्रयुक्त होता है। जैसे,—(क) श्री रामचंद्र जी, पंडितजी, त्रिपाठी जी, लाला जी इत्यादि। (ख) कथन—ये ग्राम कैसे मीठे हैं। उत्तर—जी हाँ। वेशक। (ग) तुम वहाँ गए थे या नहीं? उत्तर—जी नहीं। (घ) किसी ने पुकारा—रामदास? उत्तर—जी हाँ? (या केवल) जी।

विशेष—प्रश्न या केवल संबोधन में जी का प्रयोग बड़ों के लिये नहीं होता। जैसे किसी बड़े के प्रति यह नहीं कहा जाता कि (क) क्यों जी! तुम कहाँ थे? अथवा (ख) देखो जी! यह जाने न पावे। स्वीकार करने या हामी भरने के अर्थ में 'जी हाँ' के स्थान पर केवल 'जी' बोलते हैं, जैसे, प्रश्न—तुम वहाँ गए थे? उत्तर—जी! (अर्थात् हाँ)। उच्चारण केव के स्थान पर जी से तात्पर्य पुनः कहने के लिये होता है। जैसे, किसी ने पूछा—तुम कहाँ जा रहे हो? उत्तर मिला 'जी' ? अर्थ से स्पष्ट है कि ओता पुनः सुनना चाहता है कि उससे क्या कहा गया है।

जी०—वि० [अ० जी] वचना। सहित। युक्त क्रि०।

जी०—जीणऊर = शऊरवाला। उपोद्धार। (२) समभधार। जीणान = शानवाला।

जीअ०(५)†—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जी', 'जीव'।

जीअन०(५)†—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जीवन'।

जीउ०(५)†—संज्ञा पु० [म० जीव] दे० 'जीव'।

जीऊ(५)†—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जिउ'। उ०—प्रिनु जल मीन तपी तस जीऊ। चात्रिक भई कहत पिउपीऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३४।

जीकाद—संज्ञा पुं० [अ० जीकाद] हिजरी सन् के ग्यारहवें महीने का नाम [को०] ।

जीको०—सर्व० [हि०] जिसका । उ०—ताहि जतावन मरम हिये को निपट मन मिली जीको ।—घनानंद, पृ० ४६४ ।

जीगन०—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्गण, देशी जोइंगण, हि० जीगन] दे० 'जुगम्' । उ०—बिरह जरी लखि जीगननु कह्यो न उहि के बार । मरी आउ भजि भीतरी बरसनु आन अंगार ।—बिहारी (शब्द०) ।

जीगा—संज्ञा पुं० [फा० जीगह] १. तुरी । मिरपेच । कलंगी । २. पगड़ी में बांधने का एक रत्नजडित आभूषण (को०) । ३. कोलाहल । शोर (को०) ।

जीजा—संज्ञा पुं० [हि० जीजी] बड़ी बहिन का पति । बड़ा बहनोई ।

जीजी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी, हि० देई, प्रा० दीदी अथवा देग (= बड़ी बहिन)] उ०—कीजै कहा जीजी जू ! मुमिना परि पायें कहै तुलसी सहाने विधि मोई महिणु है ।—तुलसी (शब्द०) ।

जीजूराना—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम ।

जीटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] डींग । लंबी नीड़ी बात ।

मुहा०—जीट उठाना = डींग हाँकना उ०—अपनी तहसीलदारी की ऐसी जीट उड़ाई कि रानी जी मुग्ध हो गई ।—काया, पृ० ५८ । जीट मारना = दे० 'गप मारना' ।

जीण०—संज्ञा पुं० [सं० जीवन] जीवन । उ०—सरसति सामणी तू जग जीण । इंग खडो लटकाने बीण ।—बी०, राम०, पृ० ४ ।

जीत^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जिति, वैदिक जीति] १. युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता । जय । विजय । फतह । क्रि० प्र०—होना ।

२. किसी ऐसे कार्य में सफलता जिसमें दो या अधिक विरुद्ध पक्ष हों । जैसे, मुसलमानों में जीत, खेल में जीत याजी में जीत । ३. लाभ । फायदा जैसे,—हथहारी तो हर तरह से जीत है, इससे भी, उससे भी ।

जीत^२—संज्ञा स्त्री० [?] गृहज में पाल का पुत्राग ।—(लश०) ।

जीत^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जीति' ।

जीतनहार—वि० [हि० जीतना + हार (प्रत्यय०)] जीतनेवाला । विजय करनेवाला । उ०—वयो न फिर पब जगत में कत दिखिबै मार । जके दम सामंत है कुवलय जीतनहार ।—मति० प्र०, पृ० २६६ ।

जीतना—क्रि० सं० [हि० जीतना + ना (प्रत्यय०)] १. युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता प्राप्त करना । शत्रु को हराना । विजय प्राप्त करना । जैसे, लड़ाई जीतना, शत्रु को जीतना । उ०—विपुला जीति मुजय सुर गवत । सीता प्रनुज सहित प्रभु भावन ।—मानस ३। २ । २. किसी ऐसे कार्य में सफलता प्राप्त करना जिसमें दो या दो से अधिक परस्पर विरुद्ध पक्ष हों । जैसे, मुकदमा जीतना, खेल में जीतना, बाजी जीतना, चुए में रुपया जीतना ।

जीतव०—संज्ञा पुं० [सं० जीवितव्य] जीवन । जीवित रहना ।

उ०—ताते लोमस नाम है मोरा । करो समाध जीतव है मोरा ।—कबीर सा०, पृ० ४३ ।

जीता—वि० [हि० जीना] [वि० जी० जीती] १. जीवित । जो मरा न हो । २. तौल या नाप में ठीक से कुछ बढ़ा हुआ । जैसे,—जरा जीता तौलो ।

जीतालू—संज्ञा पुं० [सं० आलु] आरारोट ।

जीता लोहा—संज्ञा पुं० [हि० जीता + लोहा] चुंबक । मेकतानीस ।

जीति^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता का नाम ।

विशेष—यह जमुना किनारे में नेपाल तक तथा प्रबध, बिहार और छोटा नागपुर में होती है । इसके रेशे बहुत मजबूत होते हैं और रस्सी बनाने के काम आते हैं । इन रेशों को टोगुस कहते हैं । इन रेशों से धनुष की डोरी बनती है ।

जीति^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजय । उ०—जीति उठि जाइभी अजीत पंडु पूतनि की, भूप दुरजोधन की जीति छठि जाइगी ।—रत्नाकर, भा० २. पृ० १४२ । २. क्षय । हानि (को०) । ३. ह्रास की अवस्था । वृद्धावस्था (को०) ।

जीन^१—संज्ञा पुं० [फा० जीन] १. घोड़े की पीठ पर रखने की गरी । चारजामा । काठी ।

यौ०—जीनपोश ।

२. पलाम । कबावा । ३. एक प्रकार का बहुत मोटा सूती कपड़ा ।

जीन^२—वि० [सं०] १. जीण । पुराना । जर्जर । कटा फटा । २. वृद्ध । ३. शीण (को०) ।

जीन^३—संज्ञा पुं० चमड़े का थैला (को०) ।

जीनत—संज्ञा स्त्री० [अ० जीनत] १. शोभा । छवि । खूबसूरती । २. सजावट । शृंगार ।

क्रि० प्र०—देना = शोभा देना ।—बखाना = शोभा या मोर्दर्श बढ़ाना ।

जीनपोश—संज्ञा पुं० [फा० जीनपोश] जीन के ऊपर ढकने का कपड़ा । काठी का ढकना ।

जीनसवारी—संज्ञा स्त्री० [फा० जीन + सवारी] घोड़े पर जीन रखकर चढ़ने का कार्य । जैसे,—यह घोड़ा जीनसवारी में रहता है ।

जीनसाज—संज्ञा पुं० [फा० जीनसाज] जीन बनानेवाला कारीगर चारजामा बनानेवाला ।

जीना—क्रि० सं० [सं० जीवन] १. जीवित रहना । सजीव रहना । त्रिदा रहना । न मरना । जैसे,—यह घोड़ा अभी मरा नहीं है जीता है । (ख) वह अभी बहुत दिन जीएगा । उ०—अरविष सो आनन रूप मरद अनंदिह सोचन भृंग पिए । मन मों न बस्थो ऐसो बालक जो तुलसी जग में फल कोन जिए ?—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. जीवन के दिन बिताना । जिवगी काटना । जैसे,—ऐसे जीने से तो मरना अच्छा ।

मुहा०—जीना भारी हो जाना = जीवन कष्टमय हो जाना । जीवन

का सुख और आनंद जाता रहना । जीता जागता = जीवित और सचेत । भला चंगा । जीता लहू = देह से ताजा निकला हुआ खून । जीती मक्खी निगलना = (१) जान बूझकर कोई अन्याय या अनुचित कर्म करना । सरासर धेड़्यानी करना । जैसे,—उससे अपना पाकर मैं कैसे इनकार करूँ ? इस तरह जीती मक्खी तो नहीं निगली जाती । (२) जान बूझकर बुराई में फँसना । जान बूझकर आपत्ति या सकट में पड़ना । जीते जी = (१) जीवित अवस्था में । निदगी रहते हुए । उपस्थिति में । बने रहते । छाछत । जैसे,—(क) मेरे जीते जी तो कभी ऐसा न होने पाएगा । (ख) उसके जीते जी कोई एक पैसा नहीं पा सकता । (२) जबतक जीवन है । जिदगी भर । जैसे,—मैं जीते जी आपका उपकार नहीं भूल सकता । जीते जी मर जाना = जीवन में ही मृत्यु से बढ़कर कष्ट भोगना । किसी भारी विपत्ति या मानसिक आघात से जीवन भारी होना । जवन का सारा सुख और आनंद जाता रहना । जीवन नष्ट होना । जैसे,—(क) पोते के मरने से तो हम जीते जी मर गए । (ख) इस बोरी से जीते जी मर गए । जीते जी मर मिटना = (१) बुरी दशा का पहुँचना । (२) अत्यंत आसक्त होना । उ०—मैं तो जीते जी मर पिटा यारो कोई तदबीर ऐसी बताओ कि विमल नहीं हो जाय । —फिसाना०, भा० १, पृ० ११ । जीते रहो = एक आशीर्वाद जो बड़ों की ओर से छोटे को दिया जाता है । जब तक जीना तब तक सीना = जिदगी भर किसी काम में लगे रहना । उ०—पेट के बेटे बेगारहि में जब ली जियना तब ली सियना है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

३. प्रसन्न होना । प्रफुल्लित होना । जीते,—उसके नाम से तो वह जी उठता है ।

संयो० क्रि०—उठना ।

मुहा०—अपनी खुशी जीना = अपने ही सुख से आनंदित होना ।

जीप—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की छोटी मोटर को कार से अधिक मजबूत होती है तथा उसके चारो पहिए इंजन द्वारा संचालित होते हैं । उ०—बहुत जल्द मैं चाहता हूँ जीप का रास्ता निकाल दिया जाय ।—किन्नर०, पृ० ११ ।

जीपणु—वि० [हि० जीपना] जीतनेवाले । उ०—उदर सुमित्र लक्षण जीपणु धरि, धरे शेष भवतार धुरंधर ।—रघु० ६०, पृ० ६० ।

जीपना—क्रि० सं० [हि० जीतना] जीतना । उ०—अवसाण गए छत्री पोरस सरसावे । यह लोक जीप परलोक भोख पावे ।—रा० ६०, पृ० ११४ ।

जीवना—क्रि० प्र० [हि० जीवना] जीवित रहना । जीवन चरण करना । उ०—मैं गद्दी तेग पति साहू सो धरि जाहु-जोन जीबो चहै । ह०, रासो, पृ० ८६ ।

जीवो—संज्ञा पुं० [हि० जीवना] दे० 'जीवन' । उ०—साहिब मैं सरजा समतय सिवराज, कवि भूषण कहत जीबो तेरोई सफल हूँ ।—भूषण प्र०, पृ० ६३ ।

जीभ—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा, प्रा० जिह्व] १. मुँह के भीतर

रहनेवाली लंबे चिपटे मांसपिंड के आकार की वह इंद्रिय त्रिमसे कट्ट, अस्न, नित्त इत्यादि रसों का अनुभव और शब्दों का उच्चारण होता है । जवान । जिह्वा । रसना ।

विशेष—जीभ मांसपेशियाँ और स्नायुओं से निर्मित है । पीछे की ओर यह ताल के आकार की एक तरफ हड्डी से जुड़ी है जिसे जिह्वामुष्टि कहते हैं । नीचे की ओर यह दाढ़ के मांस से संयुक्त है और ऊपर के भाग की अपेक्षा अधिक पतली झिल्ली से ढकी है जिसमें स बराबर लार छूटती रहती है । नीचे के भाग की अपेक्षा ऊपर का भाग अधिक छिद्रयुक्त या कोणमय होता है और उसी पर वे उभार होते हैं जो काँट कहलाते हैं । ये उभार या काँटे कई आकार के होते हैं, कोई अर्थव्यवहार कोई चिपटे और कोई नोक या शिखा के रूप के होते हैं । जिन मांसपेशियों और स्नायुओं के द्वारा यह दाढ़ के मांस तथा गरीर के और भागों से जुड़ी है उसी के बल से यह इधर उधर हिल बोल सकती है । स्नायुप्राप्त जो मस्तिष्क मस्तिष्क गाला स्नायु होती है उनके द्वारा स्पर्श तथा शान, उष्णता आदि का अनुभव होता है । इस प्रकार के सूक्ष्म स्नायुप्राप्त का जाल जिह्वा के अग्र भाग पर अधिक है इसी से वहाँ स्पर्श या रस आदि का अनुभव अधिक तीव्र होता है । इन स्नायुओं के उत्तेजित होने ने ही स्वाद का बोध होता है । इसी से कोई अधिक मीठी या सुस्वादु वस्तु मुँह में लेकर कभी लोग जीभ बटकाते या दबाते हैं । द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न एक प्रकार की रासायनिक क्रिया से इन स्नायुओं में उत्तेजना उत्पन्न होती है । १२८ अंश गरम जल में एक मिनट तक जीभ डुबोकर यदि उसपर कोई वस्तु रखी जाय तो खट्टे मीठ आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता । कई वस्तु ऐसे हैं जिनको पतियाँ तथा नेत्रों से भी यह ज्ञान थोड़ी दूर के लिये नष्ट हो जाता है । वस्तुओं का कुछ अंश कर्णों से लगकर और भूचकर छिद्रों के मार्ग से जब सूक्ष्म स्नायुओं में पहुँचता है तभी स्वाद का बोध होता है । अतः यदि कोई वस्तु सूखी, कड़ा है तो उसका स्वाद हमें जल्दी नहीं जान पड़ेगा । दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि घ्राण का रसना के स्वाद से अतिशय मजबूत है । कोई वस्तु खाने समय हम उसकी गंध का भी अनुभव करते हैं । जिस स्थान पर जीभ चारयुक्त मांस आदि से जुड़ी रहती है वहाँ कई सूत्र या बंधन होते हैं जो जीभ की गति नियंत्रण या स्थिर रखते हैं । इसी बंधनों के कारण जीभ की नोक पीछे की ओर बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकती । बहुत से बच्चों की जीभ में यह बंधन आगे तक बढ़ा रहता है जिससे वे बोख नहीं सकते । बंधनों को हटा देने से बच्चे बोलने लगते हैं । रसास्वादन के अतिरिक्त मनुष्य का जीभ का बड़ा भारी कार्य कंठ से निकले हुए स्वर में अनेक प्रकार के भेद डालना है । इसी विषयो से बच्चों को उपपत्ति होती है जिनसे भाषा का विकास होता है । इसी से जीभ को वाणी भी कहते हैं ।

पर्या०—जिह्वा । रसना । रसज्ञा । रसाल । रसिका । साधुसना । रसना । रसांका । लसना ।

मुहा०—जीभ करना = बहुत बड़कर बोलना । ठिठाई से उत्तर देना । जीभ खोलना = मुँह से कुछ बोलना । शब्द निकालना । जैसे,—प्रश्न जहाँ जीभ खोली कि पिटै । जीभ चलना = भिन्न-भिन्न वस्तुओं का स्वाद लेने के लिये जीभ का हिलना डोलना । स्वाद के अनुभव के लिये जिह्वा चंचल होना । चटोरपन की इच्छा होना । उ० जीभ चले बल ना चले वहे जीभ जरि जाय ।—(शब्द०) । जीभ थोड़ी करना = कम बोलना । बकवाद कम करना । अधिक न बोलना । उ०—मेरो गोपाल तनक सो कहा करि जानै दधि की चोरी । हाथ नचावति भावति ग्वालिन जीभ न करही थोरी ।—सूर (शब्द०) । जीभ निकालना = (१) जीभ बाहर करना । (२) जीभ खोलना । जीभ उखाड़ लेना । जीभ पड़ना = बोलने न देना । बोलने से रोकना । जीभ बहाला = चटोरपन की भावत होना । जीभ बंद होना = बोलना बंद करना । जवान न खोलना । चुप रहना । जीभ हिलाना = मुँह से कुछ न बोलना । छोटी जीभ = गलगुडी । किसी की जीभ के नीचे जीभ होना = किसी का अपनी कही हुई बात को बदल जाना । एक बार कही हुई बात पर स्थिर न रहना ।

२. जीभ के आकार की कोई वस्तु ; जैसे,—निब ।

मुहा०—जतन की जीभ = कलम का वह भाग जो छीलकर नुकीला किया रहता है ।

जीभा—संज्ञा पु० [हि० जीभ] १. जीभ के आकार की कोई वस्तु जेम, कोल्हू का पत्थर । २. चोपायो की एक बीमारी जिसमें उनकी जीभ के कटे सूत्र या बड़ जड़त है और उनसे खाते नहीं बनता । बेखली । मवार । ३. बेला की आँख की एक बीमारी जिसमें आँख का मांस बढ़कर लटक जाता है ।

जीभी—संज्ञा स्त्री [हि० जीभ] जातु की बनी एक पतली लचीली और मनुष्याकार वस्तु जिसमें जीभ छीलकर साफ करते हैं ।

२. मैल साफ करने के लिये जीभ छीलने का क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।

३. निब । ४. छोटी जीभ । गलगुडी । ५. चोपायों का एक रोग । दे० 'जीभा' । ६. जगमग का एक भाग ।

जीभी चाभा—संज्ञा पु० [हि० जीभ + चाभना] चोपायों का एक रोग । दे० 'जीभा' ।

जीमट—संज्ञा पु० [सं० जीमूत (-पोषण करनेवाला)] पक्षों और पौधों के बड़े, झाला और इहना आदि के अंतर का पूरा ।

जीमना—क्रि० सं० [म० जेमन] भोजन करना । आहार करना । खाना । उ०—कावा फिर वाणी भया राग जो भरा रहैम मोटा चुन मदा भया बैठि कबीर जीम ।—कबीर (शब्द०) ।

जीमूत—संज्ञा पु० [सं०] १. पर्वत । २. मेघ । बादल । ३. मुस्ता । माषा । नागर माषा । ४. देवताई वृक्ष । ५. इन्द्र । ६. पोषण करनेवाला । रोजी या जीविका देनेवाला । ७. पोषा लता । ८. पृथ्वी । ९. एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है । १०. एक मल्ल का नाम जो विराट की सभा में रहता था और अंग के द्वारा मारा गया था । ११. हरिवंश के अनुसार वशाह के पौत्र का नाम । १२. ब्रह्मांड पुराण में

शात्मली द्वीप के एक राजा जो वपुष्मत् के पुत्र थे । १३. शात्मली द्वीप के एक वर्ष का नाम । १४. एक प्रकार का दक्क वृक्ष जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और ग्यारह रंग होते हैं । यह पंचित के प्रतर्गत है ।

जीमूतमुक्ता—संज्ञा स्त्री [सं०] मेघ से उत्पन्न मोती ।

विशेष—रत्नप्रदीपादिपद्य प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार के मोती का वर्णन है । बृहत्संहिता, भविष्यपुराण, गरुडपुराण, युक्ति-कल्पतरु आदि ग्रंथों में भी इस मुक्ता का विवरण मिलता है, पर ऐसा मोती आज तक देखा नहीं गया । बृहत्संहिता में लिखा है कि मेघ से जिस प्रकार मोले उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार यह मोती भी उत्पन्न होता है । जिस प्रकार मोले बादल में गिरते हैं उसी प्रकार यह मोती भी गिरता है पर देवता लोग इसे नीच ही में उड़ा लेते हैं । सारांश यह है कि यह मुक्ता मनुष्यों को प्रलभ्य है । न देखने पर भी प्राचीन आचार्य लक्षण बताने में नहीं चूके हैं और उन्होंने इसे मुरात के घंटे की तरह गोख, ठोरा और वजनी बतलाया है । इसकी जति सूर्य की किरण के समान कही गई है । इसे यदि तुच्छ से तुच्छ मनुष्य कभी पा जाय तो सारी पृथ्वी का राजा हो जाय ।

जीमूतवाहन—संज्ञा पु० [सं०] १. इन्द्र । २. शालिवाहन राजा का पुत्र ।

विशेष—आश्विन कृष्ण ८ का पुष्यकामनावाली स्त्रियाँ इनका पूजन करती हैं ।

३. जीमूतवन्तु राजा का पुत्र जो प्रसिद्ध नाटक नागानंद का नायक है । ४. यमराज नामक स्मृतिग्रंथकार ।

जीमूतवाही—संज्ञा पु० [सं० जीमूतवाहन] धूम । धुआँ ।

जीय—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जीव', 'जी' ।

मुहा०—जीय घरना = दे० 'जी में घरना' । उ०—माधव भू जो जन त बिगरे । तउ कृपालु कखगामय केशव प्रभु नहि जीय बरे ।—सूर (शब्द०) ।

जीयट—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जीवट' ।

जीयति—संज्ञा स्त्री [हि० जीना] जीवन । जिंदगी । उ०—ताहि सोहि आखिनि सो आखि मिली रहें जीयति को यहै लहा ।—हरिदास (शब्द०) ।

जीयदान—संज्ञा पु० [सं० जीवदान] प्राणदान । जीवनदान । धारणार्था । उ०—बालक काज धर्म जनि छाड़ी राख न ऐसी कीजै हो । तुम मानो वसुदेव देवकी जीयदान इन दीजै हो ।—सूर (शब्द०) ।

जीये—संज्ञा स्त्री [प्रा० जैव, जेम] दे० 'जिमि' या 'ज्यों' । उ०—जीये तेस तिलभि में जीये गंधि फुलिभि ।—संतबाणी०, पृ० ८५ ।

जीर—संज्ञा पु० [सं०] १. जीरा । २. फूल का जीरा । केसर । उ०—रघुराज पंकज को जीर नहि बेधे हरि धरौ किमि वीर पाव पीर मन मोर है ।—रघुराज (शब्द०) । ३. खड्ग । तलवार । ४. अणु ।

जीर^२—वि० क्षिप्र । तेज । जल्दी चलनेवाला ।

जीर^३—संज्ञा पु० [फा० जिर्ह] जिर्ह । कवच । उ०—कुंडल के ऊपर कड़ाके उठें ठीर ठीर, जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गान के ।—भूषण (शब्द०) ।

जीर^४—वि० [सं० जीर्ण] पुराना । जर्जर । उ०—मनु मरी इस वर्ष की भयो तसू नन जीर । कश्चन कर महि पर गिरी गयो मुखाय शरीर ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

जीरक^१—संज्ञा पु० [सं०] जीरा ।

जीरक^२—वि० [फा० जीरक] १. प्रवीण । प्रतिभाशाली । २. होशियार । चालक ।

जीरण^१—संज्ञा पु० [सं०] जीरा ।

जीरण^२—वि० [सं० जीर्ण] दे० जीर्ण ।

जीरह^१—संज्ञा पु० [फा० जिर्ह] । ग्रंथपाण । सभाह । उ०—जान लखी साजति करउ । जीरह रमावली पहहरजयी दीप ।—बीखन० राम०, पु० ११ ।

जीरा—संज्ञा पु० [सं० जीरक, तुलसीय फा० जीरह] डेढ़ दो हाथ ऊंचा एक पौधा ।

विशेष—इसमें सीफ की तरह फूलों के गुच्छे लंबी सीको से लगते हैं । पत्तियाँ बहुत बारीक और दूब की तरह लंबी होती हैं । बंगाल और आसाम को छोड़ भारत में यह सर्वत्र प्राधिकता से बोया जाता है । लोगों का अनुमान है कि यह पश्चिम के देशों से लाया गया है । मिस्र देश तथा भूमध्य सागर के माल्टा आदि द्वीपों में यह जगलो पाया जाता है । माल्टा का जीरा बहुत अच्छा और सुगंधित होता है । जीरा कई प्रकार का होता है पर इसके दो मुख्य भेद माने जाते हैं—सफेद और स्याह अथवा श्वेत और कृष्ण जीरक । सफेद या साधारण जीरा भारत में प्रायः सर्वत्र होता है, पर स्याह जीरा जो अधिक महीन और सुगंधित होता है । काश्मीर लद्दाख, बलूचिस्तान तथा गद्वाल और कुमाऊँ से आता है । काश्मीर और अफगानिस्तान में तो यह खेतों में और दूरी के साथ उगता है । माल्टा आदि पश्चिम के देशों में जो एक प्रकार का सफेद जीरा आता है वह स्याह जीरे की जाति का है और उसी की तरह छोटा और तीव्र गंध का होता है । वैद्यक में यह उष्ण, दीपक तथा घृतीकार, एहरी, कुमि और कफ वात को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्या०—जरण । प्रजाजी । कणा । जीर्ण । जीर । दीप्य । जीरण । प्रजाजिका । बह्निगिख । मागध । दीपक ।

मुहा०—ऊँट के मुँह में जीरा=खाने को कोई चीज माना में बहुत कम होना ।

२. जीरे के आकार के छोटे छोटे महीन और लंबे बीज । ३. फूलों का केसर । फूलों के बीज का महीन सूत ।

जीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्नी नाम का पास ।

जीरी—संज्ञा पु० [हि० जीरा] एक प्रकार का घान जो अगहन में तैयार होता है ।

विशेष—इसका चावस बहुत दिनों तक रह सकता है । यह

पंजाब के करनाल जिले में अधिक होता है । इसके दो भेद हैं—एक रमानी, दूसरा रामजमानी ।

जीरीपटन—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का फूल ।

जीर्ण—वि० [सं०] १. बहुत बुढ़ा । बुढ़ापे से जर्जर । २. पुराना । बहुत दिनों का । जैसे, जीर्ण ज्वर । ३. जो पुराना होने के कारण टूट फूट गया होया । समजोर हो गया हो । फटा पुराना । उ०—का और आभ जीर्ण भनु तारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—जीर्ण शीर्ण = फटा पुराना । टूटा फूटा ।

४. गेट में अच्छी तरह पचा हुआ । जठराग्नि में जिमका परिपाक हुआ हो । परिक्व । जैम,—जीर्ण अन्न, प्रजीर्ण ।

जीर्ण^१—संज्ञा पु० १. जीरा । २. बुढ़ा व्यक्ति (को०) । ३. बुढ़ा (को०) ।

४. शिलाजतु (को०) । ५. बुढ़ाप्या । वृद्ध्य (को०) ।

जीर्णक—वि० [सं०] प्रायः शुष्क या कुम्हालाया हुआ (को०) ।

जीर्णज्वर—संज्ञा पु० [सं०] पुराना बुढ़ा । वह ज्वर जिस रहते आठ दिन से अधिक हो गए हो ।

विशेष—कभी कभी के मन में प्रत्येक ज्वर अपने प्रारम्भ के दिन में ७ दिन तक चलता, १४ दिनों तक मध्यम और २१ दिनों के पीछे, जब रोगी का शरीर इस और चला हो जाय तथा उसे पुनः न लगे और अगला गेट बुढ़ा मारी रहे 'जीर्ण' कहलाना है ।

जीर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा । बुढ़ाई । २. पुरानापन ।

जीर्णदारु—संज्ञा पु० [सं०] बुढ़ादारु वृक्ष । विधारा ।

जीर्णपत्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिट्टी का पत्र । पटाने का पत्र ।

जीर्णपर्य—संज्ञा पु० [सं०] १. कदन का पत्र । २. पुराना पत्र (को०) ।

जीर्णफजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीर्णफज्जी । विधारा (को०) ।

जीर्णबुध—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'जीर्णपत्र' ।

जीर्णवस्त्र—संज्ञा पु० [सं०] वैवात मणि ।

जीर्णवस्त्र—संज्ञा पु० [सं०] फटा पुराना कपड़ा (को०)

जीर्णवस्त्र—वि० जो फटे पुराने कपड़ों में हो (को०) ।

जीर्णवाटिका—संज्ञा पु० [सं०] खंडहर (को०) ।

जीर्ण^१—वि० [सं०] बुढ़ा । बुढ़िया ।

जीर्ण^२—संज्ञा स्त्री० काली जीरी ।

जीर्णास्थिमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हड्डी को गला सड़ाकर बनाई हुई मिट्टी ।

विशेष—ऐसी मिट्टी बनाने की विधि शब्दार्थ चिन्तामणि नामक ग्रंथ में इस प्रकार लिखी है,—जहाँ शिलाजतु निकलता हो वहाँ एक गहरा गड्ढा खोदे और उसे जानवरों और मनुष्यों की हड्डियों से भर दे । ऊपर से सज्जेखार नमक, गंधक और गरम जल ६ महीने तक डालना जाय । इसके पीछे फिर पत्थर की मिट्टी डे । तीन वर्ष में ये सब वस्तुएँ एक सिल के रूप में जम जायेंगी । उस सिल को लेकर बुकनी कर डाले और उसका पात्र बनावे । ऐसे पात्र में भोजन करना बहुत अच्छा है ।

भोजन यदि विष आदि द्वारा दूषित होगा तो ऐसे पात्र में पता चल जायगा। यदि साधारण होगा तो उसमें छीटे आदि पड़ जायेंगे।

जीर्णोद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] फटी पुरानी, टूटी फूटी वस्तुओं का फिर से सुधार। पुनःसंस्कार। मरम्मत।

विशेष—पूर्वस्थापन शिवालय या मंदिर आदि के जीर्णोद्धार की विधि आदि अग्निपुराण में विस्तार से दी हुई है।

जीर्णोद्धान—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना हो जाने से अथवा देखरेख के अभाव से शुष्कप्राय उजड़ा सा उद्यान (को०)।

जील—संज्ञा स्त्री० [फा० जीर] १. धीमा शब्द। मध्यम स्वर। नीचा सुर। २. तबले या ढोल का बायाँ। उ०—जात कहूँ ते कहूँ की चल्थो मुर दीप न लागत तान घरे की। घालर सो समुझे न परे मिल ग्राम रहे जति जील परे की।—रघुनाथ (शब्द०)।

जीलाना—वि० [सं० झिल्ली] [वि० स्त्री० जीली] १. भीना। पतला। २. महीन। उ०—झिल्ली ते रसीली जीली रोंटेहूँ की रटलीली स्यारि तें सवाई भूतभावनी ते आगरी।—केशव (शब्द०)।

जीलानी^१—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का लाल रंग।

विशेष—यह बज्र, भरबेरी, मजीठ, पतंग, और लाह को बराबर लेकर और पानी में उबालकर बनाया जाता है।

जीलानी^२—वि० जीलान नामक स्थान संबंधी (को०)।

जीवजीव—संज्ञा पुं० [जीवजीव] १. चकोर पक्षी। २. एक वृक्ष का नाम।

जीवन्त^१—संज्ञा पुं० [सं० जीवन्त] १. प्राण। जीवन। २. ओषधि। ३. जीवशाक।

जीवन्त^२—वि० १. जीताजागता। सप्राण। प्राणवान्। २. दीर्घायु (को०)।

जीवन्तक—संज्ञा पुं० [सं० जीवन्तक] जीवशाक (को०)।

जीवन्तता—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन्त + ता (प्रत्य०)] सप्राणता का भाव। तेजस्विता।

जीवन्तिक—संज्ञा पुं० [सं० जीवन्तिक] १. बिडीमार। वहेनिय। २. जीवशाक (को०)।

जीवतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवतिका] १. एक प्रकार की बनरपति या पोषा जा। डूमरे पेड़ के ऊपर उत्पन्न होता है और उसी के आहार से बढ़ता है। बाँटा। २. गुठल। गुदली। ३. जीवशाक। ४. जीवन्ती लता। ५. एक प्रकार की दूध जो पीले रंग की होती है। ६. शमी।

जीवन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन्ती] १. एक लता जिसकी पत्तियाँ ओषध के काम में आती हैं।

विशेष—इसकी टहनियों में दूध निकलता है। फल गुच्छों में लगते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—वृहज्जीवन्ती, पीली जीवन्ती और तिक जीवन्ती। तिक जीवन्ती को डोड़ी कहते हैं।

२. एक ताल जिसके फूलों में मीठा मधु या मकरंद होता है। ३. एक प्रकार की दूध जो पीली होती है।

विशेष—यह गुजरात काठियावाड़ की ओर से आती है। इसका गुण बहुत उत्तम माना जाता है।

४. बाँदा। ५. गुडूची। ६. शमी।

जीव—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणियों का चेतन तत्त्व। जीवात्मा। आत्मा। २. प्राण। जीवन तत्त्व। जान। जैसे,—हम हिरन में अब जीव नहीं है। ३. प्राणी। जीवजारी। इंद्रियविशिष्ट। शरीरी। जानदार। जैसे, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि। जैसे,—किसी जीव को मताना अच्छा नहीं। उ०—जे जड़ चेतन जीव जहाना।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—जीव जतु = (१) जानवर। प्राणी। (२) कीड़ा मकोड़ा। ४. जीवन। ५. विष्णु। ६. वृहस्पति। उ०—पढो विरचि, मोन वेद जीव सोर छँडि रे। कुबेर, बेर कै कहौ न यच्छु भीर मडि रे।—राम चं०, पृ० १११। ७. अण्डेषा नक्षत्र। ८. बकायन का पेड़। ९. जीविका। व्यवसाय (को०)। १०. एक मरुत (को०)। ११. कर्ण का एक नाम (को०)। १२. लिगदेह (को०)। १३. पुण्य नक्षत्र (को०)।

जीवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राण धारण करनेवाला। २. आयुर्वेद के एक प्रामाण्य आचार्य जो बौद्ध परंपरा के अनुसार ईस्वी पूर्व चौथी या तीसरी शताब्दी में थे। ३. क्षपणक। ४. सेंपेरा। ५. सेवक। ६. व्याज लेकर जीवका करनेवाला। सूदखोर। ७. पीतमाल का वृक्ष। ८. एक जड़ी या पोषा।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार यह पोषा हिमालय के शिखरों पर होता है। इसका कंद लहसुन के कंद के समान और इसकी पत्तियाँ महीन और सारहीन होती हैं। इसकी टहनियों में बागीक काटे होते हैं और दूध निकलता है। यह अणुवर्ग ओषध के अंतर्गत है और इसका कंद मधुर, बनकारक और कामोद्दीपक होता है। अश्वभ और जीवक दोनों एक ही जाति के गुल्म हैं, भद केवल इतना ही है कि अश्वभ की प्राकृति बैल की सींग की तरह होती है और जीवक की भांडू की सी।

पर्या०—कृष्णशीपे। मधुरक। शृंग। ह्रस्वोग। जीवन। दीर्घायु प्राणद। भृंगहाह। चिरजीवी। मयता। आयुष्मान्। बलद।

जीवकोश—संज्ञा पुं० [सं०] लिंग शरीर (को०)।

जीवगृह—संज्ञा पुं० [सं० जीवगृह] शरीर। वायु। (को०)।

जीवग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] वह बंदो जो जीवित गिरफ्तार किया गया हो (को०)।

जीवघन—संज्ञा पुं० [सं०] दृढता (को०)।

जीवघाती—वि० [सं० जीवघातिन्] हिंसक। प्राणहारी (को०)।

जीवज—वि० [सं०] जो सजीव या सप्राण पैदा हो (को०)।

जीवजगत्—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणधारी समुदाय (को०)।

जीवजीव—संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी।

जीवजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी (को०)।

जीवट—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवट] हृदय की दृढ़ता। जिगरा। साहस। हिम्मत। मरदानगी।

जीवत्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जीवती जीवित] जिंदा। बीता हुआ (को०)।

जीवतोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके बच्चे जीवित हों (को०)।

जीवसोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी संबन्धि जीती हो।
जीवत्पुत्रिका।

जीवत्पति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।
सधवा स्त्री। सोभाग्यवती स्त्री।

जीवत्पत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जीवत्पति' [को०]।

जीवत्पितृक—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिमका पिता जीवित हो।

विशेष—ऐसे मनुष्य के लिये अवाप्तान, गवाध्याद, दक्षिणमुख भोजन तथा मूर्खें मुडाने आदि का नियम है। ऐसा मनुष्य यदि निरग्नि ब्राह्मण है तो उसे वृद्धि छोड़ और कोई आद्व कराने का अधिकार नहीं है। साम्प्रतिक जीवत्पितृक सब आद्व कर सकता है।

जीवत्पुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो। २. आश्विन कृष्ण अष्टमि का व्रत [को०]।

जीवत्पुत्रिका व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] संतान की कल्याणकामना से स्त्रियों द्वारा आश्विन कृष्ण अष्टमि को रखा जाने वाला व्रत।

जीवथ^१—संज्ञा [पुं० जीवथः] १. प्राण। २. सदगुण। ३. मयूर। ४. मेघ। ५. कछुआ।

जीवथ^२—वि० [सं० जीव + अथ] १. धार्मिक। २. दीर्घायु।
धिरंजीवी।

जीवद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवनदाता। २. वैद्य। ३. जीवक पौधा। ४. जीवती। ५. शत्रु।

जीवदया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवों के प्राणरक्षार्थ की जानेवाली दया [को०]।

जीवदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मर्त्य जीवन [को०]।

जीवदान—संज्ञा पुं० [सं०] अपने वश में आए हुए शत्रु को न मारने या छोड़ देने का कार्य। प्राणदान। प्राणरक्षा। उ०—
स्वंग लै नाहि भगवान मान चने शक्तिमणी जोरि कर विनय
कीयो। दोष दन किया मोहि क्षमा प्रभु कीत्रिए भद्र करि
शीश जीवदान दीयो। (सूर, एवम्)।

जीवद्वर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।

जीवद्वत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो [को०]।

जीवधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह संपत्ति जो जीवों या पशुओं के रूप में हो। जैसे, गाय, भैंस, भेड़, बकरो, ऊँट आदि। २. जीवनधन। प्राणप्रिय। प्यारा।

जीवधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सब जीवों की आचारस्वरूपा, पृथ्वी। धरती।

जीवधारो—संज्ञा पुं० [सं० जीवधारिन्] प्राणी। जानवर।
चेतन जंतु।

जीवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जीवित] १. जीवित रहने की अवस्था। जन्म और मृत्यु के बीच का काल। वह दशा जिसमें प्राणी अपनी इन्द्रियों द्वारा चेतन व्यापार करते हैं। जिंदगी। जैसे,—अपने जीवन में ऐसी घटना मैंने कभी नहीं देखी थी

यौ०—जीवनचरित्। जीवनचर्या।

मुहा०—जीवन भरना = जीवन व्यतीत करना। जिंदगी के दिन काटना।

२. जीवित रहने का भाव। जीने का व्यापार या भाव। प्राणधारण। जैसे,—अन्न से ही तो मनुष्य का जीवन है।

यौ०—जीवनदान। जीवनधन। जीवनमूर्ति।

३. जीवित रखनेवाली वस्तु त्रिमके कारण कोई जीता रहे। प्राण का अवलंब। जैसे,—जन ही मनुष्य का जीवन है।

४. प्राणाधार। परमप्रिय। प्यारा। ५. जल। पानी। उ०—
जगत जीवन हेतु जीवन (जल) विदुषी वर्षा होती।—
प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३४। ७. मज्जा। ८. वात। वायु। ९. ताजा घी या मक्खन। १०. जीवक नामक औषध। ११. पुत्र। १२. परमेश्वर। १३. गंगा। १४. क्षुद्र फल नाम का पौधा [को०]।

जीवनक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. आहार। खाद्य। २. अन्न [को०]।

जीवनक^२—वि० जीवित करनेवाला या रखनेवाला [को०]।

जीवनक्रम—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + क्रम] रहन सहन का ढंग। जीवनपद्धति। जीवनप्रणाली [को०]।

जीवनचरित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन का वृत्तांत। जीवन में किए हुए कार्यों आदि का वर्णन। जिंदगी का हाल। २. वह पुस्तक जिसमें किसी के जीवन भर का वृत्तांत हो।

जीवनचरित्र—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + चरित्र] दे० 'जीवनचरित्'।

जीवनचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + चर्या] दे० 'जीवनक्रम'।

जीवनतत्त्व—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + तत्त्व] जीवन का मर्म। जीवन का रहस्य।

जीवनतरु—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + तरु] १. जीवन रूपा वृक्ष। २. वह वृक्ष जो प्राणधारण का कारण हो। उ०—राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवनतरु जिम जोगवइ राऊ।—मानस, २।२००।

जीवनतल—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + तल] जीवननिर्वाह का स्तर या स्थिति। उ०—धीर यहाँ की सनिज संपत्ति को निकालकर बनता के जीवनतल को ऊँचा उठाना चाहती है।—किन्नर०, पृ० ६०।

जीवनद—वि० [सं०] जीवनदान [को०]।

जीवनदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + दर्शन] जीवन विषयक सिद्धांत उ०—गांधी जी के जीवनदर्शन का मूलमंत्र असत्य पर सत्य, अधकार पर प्रकाश तथा मृत्यु पर जीवन द्वारा विजय पाने का था।—भारती२०, पृ० १७५।

जीवनदान—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + दान] १. शत्रु या अपराधी के प्राण न हरण करना। प्राणदान। उ०—देना चाहते हो मोगलों को तुम जीवनदान।—अपरा, पृ० ८२। २. किसी ऊँचे उद्देश्य के लिये आजीवन कार्य करते रहने का व्रत पालन करना।

जीवनधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन का सर्वस्व। जीवन में सबसे प्रिय वस्तु या व्यक्ति। २. प्राणाधार। प्यारा। प्राणप्रिय।

उ०—मुकवि सरदनभ मन उडुगन से । राम भगत जन जीवनधन से ।—तुलसी (शब्द०) ।

जीवनधर^१—वि० [सं० जीवन + धर] जीवनरक्षक । जीवनदायक जीवनप्रद [को०] ।

जीवनधर^२—संज्ञा पु० जलधर । मेघ । बादल [को०] ।

जीवनवूटी—संज्ञा [म० जीवन + हि० वूटी] १. एक पोषा या वूटी । मजीवनी ।

विशेष—इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह मरे हुए आदमी को भी जिला सकती है ।

२. अति प्रिय वस्तु या व्यक्ति ।

जीवनमरण—संज्ञा पु० [म०] जीवन और मरण । जितनी और मोत ।

जीवनमुक्त—वि० [म०] जो जीवन में ही सर्वबंधनों से मुक्त हो चुका हो [को०] ।

जीवनमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवनकाल में ही प्राप्त निबंधता [को०] ।

जीवनमूरि—संज्ञा स्त्री० [म० जीवन + मूरि] १. संजीवनी नाम की जड़ी । २. अत्यंत प्रिय वस्तु या व्यक्ति । प्यारी । प्राणप्रिया ।

जीवनमूलि—संज्ञा स्त्री० [म० जीवनमूल] संजीवनी वूटी । उ०—जीवन को ले का करो, पायो जीवनमूलि । भाक्ति की सार यह ।—नद० प्र०, पृ० १८८ ।

जीवनयापन—संज्ञा पु० [म० जीवन + यपन] जीवननिर्वाह । जीवन अनीत करना ।

जीवनवृत्त—संज्ञा पु० [सं०] जीवनचरित् । जीवनवृत्तांत । जीवनी ।

जीवनवृत्तांत—संज्ञा पु० [म० जीवनवृत्तांत] जीवनचरित् । जितनी भर का हाल । जीवनी ।

जीवनवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० जीविका] जीवोपाय । प्राणरक्षा के लिये उद्यम । रोजी ।

जीवनसंप्राप्त—संज्ञा पु० [म० जीवन + संप्राप्त] जीवन की सफलमय परिस्थितियों का सामना । संपर्कों में जीवनयापन का रहस्य ।

जीवनहंतु—संज्ञा पु० [म०] जीवनरक्षा का नाशक । रीतिना । रोजी ।

विशेष—गहकपूरण या दम प्रकार की जीविका बतलाई गई है—विद्या, धर्म, भूमि, सेवा, नीरक्षा, विपरीत कृषि, वृत्ति, भिक्षा और कुलीन ।

जीवनांतर—संज्ञा पु० [म० जीवनांतर] जीवन की समय : परमा । मृत्यु [को०] ।

जीवनी—संज्ञा स्त्री० [म०] १. जीवनी । २. जीवनी जन । उ०—जीवन निरतक होइ रहै, जैसे खलक के धाम ।—संत-वाणी, पृ० ४८० ।

जीवनी (पु०)—क्रि० प्र० [हि०] के 'जीता' ।

जीवनी—क्रि० प्र० [सं०] 'जामना' ।

जीवनाधान—संज्ञा पु० [म०] विष । प्राणघाती जहर [को०] ।

जीवनाधार^१—संज्ञा पु० [सं०] जीवन का प्रवलंब या सहारा [को०] ।

जीवनाधार^२—वि० परम प्रिय । प्राणाधार [को०] ।

जीवनांतर—क्रि० वि० [सं० जीवनांतर] जीवन के बाद ।

जीवनावास^१—वि० [सं०] जल में रहनेवाला ।

जीवनावास^२—संज्ञा पु० १. वरुण । २. देह । शरीर ।

जीवनि (पु०)—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवनी] १. संजीवनी वूटी । २. जिसने-वाली वस्तु । प्राणाधार । ३. अत्यंत प्रिय वस्तु । उ०—गहली गरब न कीजिए, समय सुहागिनि पाय । जिय की जीवनि जेठ सो, माह न छूटि सुहाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

जीवनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काकोनी । २. तित्त जीवन्ती । डोड़ी । ३. मेढ । ४. महामेढ । ५. लूरी ।

जीवनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + हि० ई (प्रत्यय०)] जीवन भर का वृत्तांत । जीवनचरित् । जितनी का हाल ।

जीवनीय^१—वि० [सं०] १. जीवनप्रद । २. जीविका करने योग्य । धरतल योग्य ।

जीवनीय^२—संज्ञा पु० १. जल । २. जयंती वृक्ष । ३. वृष (हि०) ।

जीवनीयगण—संज्ञा पु० [सं०] वैष्णव में बलकारक शोधधियों का एक वर्ग ।

विशेष—इसके अंतर्गत अष्टवर्ग पण्डित, जीवनी, मधुक और जीवन हैं । वाग्भट्ट के मत से जीवनीय गण ये हैं—जीवन्तो, काकोली, मेढ मुद्गापर्णी, माधपर्णी, ऋषभक जीबक और मधुक ।

जीवनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन्ती मत्त ।

जीवनेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैत्री वृक्ष ।

जीवनोत्तर—वि० [म०] जीवन के बाद का ।

जीवनोत्सर्ग—संज्ञा पु० [म० जीवन + उत्सर्ग] जीवन की बलि । जीवन का दान । उ०—जीवन की प्रीति, स्वस्थ गध नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग ।—युगांत, पृ० ४७ ।

जीवनोपाय—संज्ञा पु० [म०] जीवनरक्षा का उपाय । जीदिका । वृत्ति । रोजी ।

जीवनोपध—संज्ञा स्त्री० [म०] वह शोध जिससे मरता हुआ भी जी जाय ।

जीवन्मुक्त—वि० [सं०] जो जीवित रक्षा में ही आत्मज्ञान द्वारा सामाजिक मायाबंधन से छूट गया हो ।

विशेष—वेदांतसार में लिखा है कि जितने अथर्व चैतन्य स्वरूप ज्ञान द्वारा अज्ञान का नाश करके आत्मरूप अखंड ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो और जो ज्ञान तथा अज्ञान के कार्य, पाप पुण्य एवं संधय, क्रम आदि के बंधन से निवृत्त हो गया हो वही जीवन्मुक्त है । सांख्य और योग के मत से पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान होने से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है अर्थात् जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि यह प्रकृति जड़, परिणामिनो और त्रिगुणमयी है और मैं नित्य और चैतन्यस्वरूप हूँ तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है ।

जीवन्मृत—वि० [सं०] जो जीते ही मरे के तुल्य हो । जिसका जीना और मरना दोनों बराबर हों । जिसका जीवन सार्थक और

सुखमय न हो । उ०—यहाँ भकेला मानव ही रे बिबर विषण्ण
जीवन्मृत ।—ग्राम्या, पु० १६ ।

विशेष—जो, अपने कर्तव्य से विमुख और अकर्मण्य हो, जो सदा
ही कष्ट भोगता रहे, जो बड़ी कठिनता से अपना पोषण कर
सकता हो, जो अतिथि आदि का स्तकार न करता हो, ऐसा
मनुष्य धर्मशास्त्र में जीवन्मृत कहलाता है ।

जीवन्यास—संज्ञा पु० [सं०] मृतियों की प्राणप्रतिष्ठा का मंत्र ।

जीवपति^१—संज्ञा पु० [सं०] धर्मराज ।

जीवपति^२—संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसका पति जीवित हो । सधवा
स्त्री । सोभाग्यवती स्त्री । सुहागिनी स्त्री ।

जीवपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो ।
सधवा स्त्री ।

जीवपत्र—संज्ञा पु० [सं०] नया पत्ता [को०] ।

जीवपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन्ती ।

जीवपितृक—वि० [सं०] जिसका पिता जीवित हो [को०] ।

जीवपुत्रक—संज्ञा पु० [सं०] १ पुत्रजीव वृक्ष । जियापोन्ना का पेड़ ।
२. इंगुदी का वृक्ष ।

जीवपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो [को०] ।

जीवपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बृहन्जीवन्ती । बड़ी जीवन्ती ।

जीवप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीश्वरी । हड़ ।

जीवबंधु^(१)—संज्ञा पु० [सं०] जीवन्तु । दे० 'जीवन्तु' ।

जीवबंधु^(२)—संज्ञा पु० [सं०] जीवन्तु । पुत्र पुत्रप्राप्ति । बंधुत्व ।
बंधूक ।

जीववलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशु आदि की बलि [को०] ।

जीववृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीव + वृद्धि । गणनाय प्रणियों की
समक । लोकोक्त वृद्धि । उ०—परि त्रित एक ते जीववृद्धि सो
बिगरि गई ।—श्री मी० बालकृष्ण, भा० १, पृ० १२२ ।

जीवभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवोत्तमा ।

जीवमंदिर—संज्ञा पु० [सं०] जीवमन्दिर । दे० । मंदिर [को०] ।

जीवमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी, धनरा, दत्ता, विष्णु, बंगला
बजा और पद्मा नाम की सप्त देवियाँ जो जीवों का पोषण
और कल्याण करती हैं । (विधान पारिजात) ।

जीवयाज—संज्ञा पु० [सं०] पशुओं से किया जानेवाला यज्ञ ।

जीवयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मज्जीव मृष्टि । जीवन्तु । जन्मदर ।

जीवरक्त—संज्ञा पु० [सं०] जिसमें रक्त रव जो गर्भशा ए के उपप्लुत
हुमा हो ।

विशेष—सूक्ष्म के अनुसार यह पंचभौतिक होता है अर्थात् जित
पंचभूतों से जीवों की उत्पत्ति होती है उसे इसमें माना है ।

जीवराशि^(१)—संज्ञा पु० [हि०] जीव । प्राण । उ०—साईं सेती
बोरिया, बोरा सेती जुभक । जब जागो जीवरा मार परेगी
तुभक ।—कबीर (शब्द०) ।

जीवरिज—संज्ञा पु० [सं०] जीव या जीवन । जीवन । प्राणधारण
की शक्ति । उ०—बी मन मानी मदन चर भालवान बयो ।

प्रेम पय सींच्यो पहिल ही सुभग जीवरि दयो ।—सूर
(शब्द०) ।

जीवल—वि० [सं०] १. जीवनमय । २. जीवनपूर्ण । ३. मज्जीव
करनेवाला । संप्राण करनेवाला [को०] ।

जीवला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सहली । २. सहपिप्पली ।

जीवलांक—संज्ञा पु० [सं०] भूलांक । पृथ्वीतल । मत्स्यलोक ।

जीववत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका बच्चा जीवित
हो [को०] ।

जीववल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] धीरकाकोली ।

जीवविज्ञान—संज्ञा पु० [सं०] जीव + विज्ञान । जीव जंतुओं विषयक
भारीक विज्ञान [को०] ।

जीवविषय—संज्ञा [सं०] जीव या जीवन का विस्तार [को०] ।

जीववृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीव का गुण या व्यापार । २. पशु
पालने का व्यवसाय ।

जीवशाक—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का शाक जो भालवा देश
में पाया होता है । सुमना ।

जीवशुक्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] धीरकाकोली ।

जीवशेष—वि० [सं०] जिसका केवल प्राण बचा हो । प्राणशेष ।
[को०] ।

जीवशांखत—संज्ञा पु० [सं०] सजीव या स्वस्थ रक्त [को०] ।

जीवश्रेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवभद्रा [को०] ।

जीवमकमण—संज्ञा पु० [सं०] जीवमङ्कमण । जीव का एक
शरीर से दूसरे शरीर में गमन ।

जीवसंज्ञ—संज्ञा पु० [सं०] कामवृद्धि वृक्ष ।

जीवभावन—संज्ञा पु० [सं०] धान्य । धान ।

जीवसुत—संज्ञा पु० [सं०] जीव + सुत । वह जिसका पुत्र जीवित
हो [को०] ।

जीवसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो ।

जीवसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी सति जीवित होती हो ।
जीवतीका ।

जीवस्थान—संज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जहाँ जीव रहता है । मर्म-
स्थान । हृदय ।

जीवहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राणियों का वध । २. प्राणियों
के वध का दोष ।

जीवहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राणियों की हत्या । जीवों का वध ।

जीवहीन—वि० [सं०] १. मृत । जीवन्मृत । २. प्राणहीन ।
जहाँ कोई जीव न हो [को०] ।

जीवान्तक—संज्ञा पु० [सं०] जीवान्तक । १. जीवों का वध करनेवाला ।
२. व्याध । बहलिया ।

जीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह सीधी रेखा जो किसी चाप के
सिरे से दूसरे सिरे तक हो । ज्या । २. धनुष की शरी ।

३. जीवन्ती । ४. बानवच । वचा । ५. भूमि । ६. जीवन ।
७. जीवनीपाय । जीविका । ८. जीवन (को०) । ९. आभरण
की खनक या झनक (को०) ।

जीवाजून—संज्ञा पुं० [सं० जीवयोनि] जीवजंतु । प्राणीमात्र । पशु, पक्षी,
कीट, पतंग आदि । उ०—पी फाटी पगरा हुआ जागे जीवाजून ।
सब काहू को देत है चोंच समाना खून ।—कबीर (शब्द०) ।

जीवाणु—संज्ञा पुं० [सं० जीव + अणु] अति सूक्ष्म जीव । धुंल्लतम
जीव । उ०—ऐसा होता है कि जीवाणु कई पुष्पों तक बिना
विकसित हुए प्रवाहित रहे । —पा० सा० सि०, पृ० ११२ ।

जीवानु—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वात् । आहार । २. जीवन ।
अस्तित्व । ३. पुनर्जीवन । ४. जीवनदायक औषध [को०] ।

जीवातुमन्—संज्ञा पुं० [सं०] आयुष्काम यज्ञ का एक देवता जिससे
आयु की प्रार्थना की जाती है । (आश्वथौत सूत्र)

जीवात्मा—संज्ञा पुं० [जीवात्मन्] प्राणियों की चेतन वृत्ति का
कारणस्वरूप पदार्थ । जीव । आत्मा । प्रत्यगात्मा ।

विशेष—अनेक धार्मिक और दार्शनिक मतों के अनुसार शरीर
के भिन्न एक जीवात्मा है । इसके अनेक प्रमाण शास्त्रों में
दिए गए हैं । सांख्य दर्शन में आत्मा को 'पुरुष' कहा है
और उसे नित्य, त्रिगुणशून्य, चेतन स्वरूप, साक्षी, कूटस्थ,
द्रष्टा, विवेकी, सुख दुःख शून्य, मध्यस्थ और उदासीन माना
है । आत्मा या पुरुष अमर्त्य है, कोई कार्य नहीं करता,
सब कार्य प्रकृति करती है । प्रकृति के कार्य को हम अपना
(आत्मा का) कार्य समझते हैं । यह भ्रम है । न आत्मा
कुछ कार्य करता है, न सुख दुःखादि फल भोगता है । सुख
दुःख आदि भोग करना बुद्ध का धर्म है । आत्मा न बढ़
होता है, न मुक्त होता है । अठारहनिपद में आत्मा का परि-
माण अष्टममात्र दिया है । हमारे भाव्य के भाव्यकार
विज्ञानों ने बताया है कि अष्टममात्र में अभिप्राय
अत्यंत सूक्ष्म है । योनि और वेदांत दर्शन भी आत्मा को
गुण शुद्ध आदि का भोक्ता नहीं मानते । न्याय, वैशेषिक और
मीमांसा दर्शन आत्मा को कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता
मानते हैं । न्याय वैशेषिक मतानुसार जीवात्मा नित्य, प्रति
शरीरभिन्न और व्यक्त है । सांकर वेदांत दर्शन में जीवात्मा
और परमात्मा को एक ही माना गया है । उपाधिपुक्त होने से
ही जीवात्मा रूप को पृथक् पदभक्त है, पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने
पर यह भ्रम मिट जाता है और जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप हो जाता
है । सांख्य, वेदांत और सांख्य सभी जीवात्मा को नित्य मानते
हैं । बौद्ध दर्शन के अनुसार जीवात्मा पदार्थ अणुिक है उसी
प्रकार आत्मा भी । जीवात्मा एक अणु के अणु होता है और
दूसरे क्षण में नष्ट हो जाता है । अतः अणुिक ज्ञान का नाम
ही आत्मा है । जिसकी सत्ता चलती रहती है और एक क्षण
का ज्ञान या विज्ञान स्पष्ट होता है और दूसरा अणुिक विज्ञान
उत्पन्न होता है । इसे पूर्ववर्ती विज्ञानों के संस्कार और ज्ञान
प्राप्त होते रहते हैं । इस अणुिक ज्ञान के अनिश्चित कोई नित्य
या स्थिर आत्मा नहीं । साध्यात्मिक शास्त्रों के बौद्ध तो इस
अणुिक विज्ञान रूप आत्मा को भी नहीं स्वीकार करते; सब

कुछ शून्य मानते हैं । वे कहते हैं कि यदि कोई वस्तु सत्य होती
तो सब अवस्थाओं में बनी रहती । योगाचार शास्त्र के बौद्ध
आत्मा को अणुिक विज्ञान स्वरूप मानते हैं और इस
विज्ञान को दो प्रकार का कहते हैं—एक प्रवृत्ति विज्ञान
और दूसरा अलंघ्य विज्ञान । जाग्रत और सुप्त अवस्था
में जो ज्ञान होता है उसे प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं और सुषुप्ति
अवस्था में जो ज्ञान होता है उसे अलंघ्य विज्ञान कहते हैं । यह
ज्ञान आत्मा ही को होता है । जैन दर्शन भी आत्मा को चिर,
स्थायी और प्रत्येक प्राणी में पृथक् मानता है । उपनिषदों
में जीवात्मा का स्थान हृदय माना है पर आधुनिक परीक्षाओं
से यह बात अच्छी तरह प्रगट हो चुकी है कि समस्त चेतन
व्यापारों का स्थान मस्तिष्क है । मस्तिष्क को ब्रह्मांड भी
कहते हैं । ३० 'आत्मा' ।

पर्याय—पुनर्भवी । जीव । अमु—मान् । सत्त्व । देहभृत् । चेतन ।

जीवादान—संज्ञा पुं० [सं०] बेहोशी । मूर्च्छा । संज्ञाशून्यता [को०] ।

जीवाधार—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा का आश्रयस्थान । हृदय ।

विशेष—उपनिषदों में जीव का स्थान हृदय माना गया है ।

जीवाना—[कि० अ० ३० 'जिलाना'] उ०—तातें या वैष्णव को मरत
तें जीवापो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३२३ ।

जीवानुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्गाचार्य मुनि, जो बृहस्पति के वंश में
हुए हैं । किसी के मत से ये बृहस्पति के छोटे भाई भी कहे
जाते हैं । उ०—भाषत हम जीवानुज बानी । जा महीं होइ
सकल दुख हानी ।—गोपाल (शब्द०) ।

जीवास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन के अनुसार कर्म का
करनेवाला, कर्म के फल को भोगनेवाला, किए हुए कर्म के
अनुसार शुभाशुभ गति में जानेवाला और सम्बन्ध जानादि के
वश से कम के समूह को नाश करनेवाला जीव ।

विशेष—यह तीन प्रकार का माना गया है,—अन दिसिद्ध, मुक्त और
बद्ध । अनादिगिद्ध अर्हत् है जो सब अवस्थाओं में अविद्या धादि
के बंधन से मुक्त तथा अणिमादि विद्विधों से संपन्न रहते हैं ।

जीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह वस्तु या व्यापार जिससे जीवन
का निर्वाह हो । भरण पोषण का साधन । जीवनीपाय ।
वृत्ति । उ०—जीविका विहीन लोग सीधमान, सोच बस कहें
एक एकन सो कहाँ जाई का करी ?—तुलसी प्र० पृ०, २२१ ।

कि० प्र०—करना ।

यौ०—जीविकार्जन—जीवन निर्वाह के साधन का संग्रह । उ०—उसे
अपने जीविकार्जन की एक मशीन बना रहा है ।—स० दर्शन
पृ० ८८ ।

मुहा०—जीविका लगाना—भरण पोषण का उपाय होना । रोजी का
ठिकाना होना । जीविका लगाना—भरण पोषण का उपाय करना ।
जीवन निर्वाह का उपाय करना । रोजी का ठिकाना करना ।

२. जीवनदायी मत्त्व अर्थात् जल (को०) । ३. जीवन (को०) ।

जीवित'—वि० [सं०] १. जीता हुआ । जिदा । संपन्न । उ०—
उस समय सत्यगुरु का वेष जीवित साधु के समान था ।
—कबीर मं०, पृ० ८१ । २. जो जीव या प्राणयुक्त हो

गया हो (को०) । १३. सजीव या सप्राण किया हुआ (को०) ।

४. वर्तमान । उपस्थित (को०) ।

जीवित^२—संज्ञा पुं० १. जीवन । प्राणधारण ।

यौ०—जीवितेश ।

२. जीवन अवधि । आयु (को०) । ३. जीविका । रोजी (को०) ।

४. प्राणी (को०) ।

जीवितकाल—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनकाल । जीवित रहने का समय । आयु (को०) ।

जीवितज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घमनी (को०) ।

जीवितनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] पति (को०) ।

जीवितव्य^१—वि० [सं०] जीवित रहने या रखने योग्य (को०) ।

जीवितव्य^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन । २. जीवित रहने की संभावना । ३. पुनर्जीवित होने की संभावना ।

जीवितव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनोत्सर्ग । जीवन की आहुति (को०) ।

जीवितसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] जान का खतरा (को०) ।

जीवितांतक—संज्ञा पुं० [सं०] जीवितांतक] शिव । शंकर । महादेव (को०) ।

जीवितेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रणनाथ । प्यारा व्यक्ति । प्राणों में बढ़कर प्रिय व्यक्ति । २. यमराज । ३. ईश्वर । ४. सूर्य । ५. देह में स्थित इडा और पिण्डला जड़ों । ६. एक जीवनदायिनी भोषधि जो मृतक को जीवित करनेवाली कही गई है (को०) ।

जीवितेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव (को०) ।

जीवी—वि० [सं०] जीविन् । १. जीनेवाला । प्राणधारक । २. जीविका करनेवाला । जैसे,—श्रमजीवी । शस्त्रजीवी ।

विशेष—सामान्यतया इसका प्रयोग समस्त पदों के अंत में होता है । जैसे,—बुद्धिजीवी ।

जीवधन—संज्ञा पुं० [सं०] जीवधन] जलती हुई लकड़ी या ईंधन (को०) ।

जीवेश—संज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा । ईश्वर ।

जीवोपाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थूल, सुक्ष्म और जाग्रत इन तीनों अवस्थाओं को जीव की उपाधि कहते हैं ।

जीव्य—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन (को०) ।

जीव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवनोपाय । जीविका (को०) ।

जीस्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीस्त] जिदगी । जीवन । उ०—जीस्ते नहीं है सरासर बस सरगर्दानी वह है । —भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० १५६ ।

जीह^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० जीभ, सं० जिह्वा] जीभ । जवान । उ०—
(क) जन मन मजु कंजु मधुकर में । जीह जसोमति हर हलधर से । —तुलसी (शब्द०) । (ख) राम नाम मनि दीप धर जीह देहरी द्वार । तुलसी भीतर बाहरी जो चाहसि उजियार । —तुलसी (शब्द०) । (ग) नाम जीह जपि जागहि जोगी । तुलसी (शब्द०) ।

जीह^(२)—संज्ञा स्त्री० [हि० जीह] दे० 'जीह' ।

जुग—संज्ञा पुं० [सं० जुग] बुद्धदारक वृक्ष । विषारा ।

जुगित^१—संज्ञा पुं० [सं० जुगित] परित्यक्त । बहिष्कृत (को०) ।

जुंगित^२—वि० नीच जाति का व्यक्ति । चाडाल (को०) ।

जुंडा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जुहरी', 'ज्वार' ।

जुंदर—संज्ञा पुं० [?] बदर का बच्चा (जलदों की बाली) ।

जुंबाँ—वि० [सं०] जुंबाँ] कपाधमान । हिलता हुआ (को०) ।

जुबिना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जुबिना] चाल । गति । हरकत । हिलना डोलना ।

मुहा०—जुबिना खाना = हिलना डोलना ।

जुंझाँ—संज्ञा पुं० [सं०] जुंझाँ] दे० 'जुं' ।

जुई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जुई' ।

जुबलो—संज्ञा स्त्री० [हि०] जुबा] एक प्रकार की पहाड़ी मेड़ ।

जु^(१)—वि० [हि०] दे० 'जु' । उ०—कर्म लाल पुराणि, पै तू न लखात इहि धोर । ऐयो उर जु कठोर तो उचितहि उरज कठोर । —मति० प्र०, पृ० ४०८ ।

जु^(२)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जु' ।

जुअतो(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती । दे० 'युवती' ।

जुअल(पु)—वि० [सं०] युगल, प्रा० युगल] दे० 'युगल' । उ०—एक कोपिअ सुनिअ सुखान, रोमाँ-चम गुआ जुअल । —कीर्ति०, पृ० ६० ।

जुआँ—संज्ञा पुं० [सं०] जुआँ] दे० 'जुआँ' । उ०—एक छोटा कीड़ा जो मैलपन के कारण सिर के बालों में पड़ जाता है । जुआँ । डील ।

जुआँरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] जुआँ] जुआँ । छोटी जुआँ ।

जुआँरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ज्वार' ।

जुआ^१—संज्ञा पुं० [सं०] जुआ, पा० जुआ] वह खेल । इसमें जीतनेवाले को हारनेवाले से कुछ पैसे मिलते हैं । पाए पैसे को बाजी लगाकर खेला जानेवाला खेल । किसी घटना की संभावना पर हार जीत का खेल । जुआ । उ०—प्राणों जन्म प्रकारस मायों । करी न प्रीति कमलजीवन सो जन्म जुआ ज्यों हारघो —मूर (शब्द०) ।

विशेष—जुआ कीड़ी, पाय, नाण प्रादि कई वस्तुओं से खेला जाता है पर भारत में कालियों से खेले का प्रकार आजकल विशेष है । इसमें बिल्ली कीड़ों का लेकर केकने हैं और चित्त पत्ती हुई कीड़ियों को मक्का के धनुषार दाँवों की हार जीत मानते हैं । सो यह विता कीटिया से जो जुआ खेला जाता है उसे मारही कहते हैं ।

क्रि० प्र०—खेलना । —जतना । —हारना । —होना ।

जुआ^२—संज्ञा पुं० [सं०] जुआ (= जीहवा)] १. गाड़ी, छकड़े, हल आदि की वह लकड़ी जो बैलों के कंधे पर रहती है । २. जूते की चक्की या मुँठ ।

जुआ—संज्ञा पुं० [हि०] जुआ] दे० 'जुआ' । उ०—बाल बुद्ध जुआ नर नारिन की एक सम । —प्रमथन०, भा० १, पृ० ८६ ।

जुआखाना—संज्ञा पुं० [हि०] जुआ + प्रा० खाना] वह स्थान जहाँ जुआ खेला जाता हो । जुआ खेले का भूड़ा ।

जुआचोर—संज्ञा पुं० [हि०] जुआ + चोर] १. वह जुआरी जो अपना

दाँव जीतकर खिमक जाय । २. धोखेबाज । धोखा देकर दूसरों का माल उड़ा लेनेवाला । ठग । वंचक ।

जुआचोरो—संज्ञा स्त्री० [हि० जुआ + चोरी] ठगी । धोखेबाजी । वंचकता ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुआठा—संज्ञा पुं० [हि० जुआ + काठ] दे० 'जुआठा' ।

जुआठा—संज्ञा पुं० [सं० युग + काठ] हवन में लगनेवाला वह लकड़ी का टाँचा जो बैलों के कंधों पर रहता है ।

जुआड़ी—संज्ञा पुं० [हि० जुआरी] दे० 'जुआरी' ।

जुआनी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुवान' ।

जुआनी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुआन + ई (प्रत्य०)] दे० 'जुवानी' ।

जुआब(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० जवाब] दे० 'जवाब' । उ०—घ्रावे जाइ जनावे तुषार, हिए बिरहानस जुआब भए की ।—हिंदी प्रभा, पृ० २७१ ।

जुआर^१—संज्ञा पुं० [हि० ज्वार] दे० 'ज्वार' । उ०—जाएखने दितहु घालिन गढ़ । जनि जुआर परमे खेनपाढ़ ।—विद्यापति, पृ० ३४३ ।

जुआर(पु)—संज्ञा पुं० [हि० जुआ + आर (प्रत्य०)] जुआ खेलनेवाला व्यक्ति । जुआड़ी । उ०—संजय सावज शरीर महे, संगहि खेल जुआर ।—कबीर बी०, पृ० ८८ ।

जुआर^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ज्वार] दे० 'ज्वार' ।

जुआरदासी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पोषा जो कुलों के लिये लगाया जाता है ।

जुआर भाटा—संज्ञा [हि० ज्वारभाटा] दे० 'ज्वार भाटा' ।

जुआरा—संज्ञा पुं० [हि० जोतार] उतनी घरती जितनी एक जोड़ी बैल एक दिन में जोत सके ।

जुआरी—संज्ञा पुं० [हि० जुआ] जुआ खेलनेवाला ।

जुइना—संज्ञा पुं० [सं० यून (= बधन या जोड़)] घाम या फूम को ऎंठकर बनाई हुई रस्सी जो बोझ बाँधने के काम में आती है ।

जुई—संज्ञा स्त्री० [हि० जू] १. छोटी जुड़ी । २. एक छोटा कीड़ा जो मटर, मेम इत्यादि की फलियों में लगकर उन्हें नष्ट कर देता है ।

जुई—संज्ञा स्त्री० [?] बरछी के आकार का काठ का बना वह पात्र जिससे हवन में घी छोड़ा जाता है । अवा ।

जुई—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी, हि० जुही] दे० 'जुहा' ।

जुक्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' । उ०—उक्ति जुक्ति समभरी उताज । भागमरी को हृष बढ़ाऊ ।—धनानंद, पृ० २४२ ।

जुकाम—संज्ञा पुं० [हि० जुड़ + घाम वा सं० बुकाम, तुजनीय सं० रुधमन्, *जखम, > जुखाम] प्रसवस्थता या बीमारी जै सरदी लगने से होती है और जिसमें शरीर में कफ उत्पन्न हो जाने के कारण नाक और मुँह से कफ निकलता है, ज्वराग्र रहता है, भोजन भारी रहता और ददं करता है । सरदी ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—जुकाम बिगड़ना = जुकाम का सुख जाना । भेठकी को जुकाम होना = किसी मनुष्य में कोई ऐसी बात होना जिसकी

उममें कोई संभावना न हो । किसी मनुष्य का कोई ऐसा काम करना जो उसने कभी न किया हो या जो उसके स्वभाव या अवस्था के विरुद्ध हो ।

जुकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुत्ता । २. मलय पर्वत (को०) ।

जुक्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] १. मिलनयोग । उ०—तन चंपक दूरन मनो के केसर रंग जुक्ति ।—पृ० रा०, ६। ५४ । २. उपाय । यत्न । उ०—पृथ मन बास पाय मनि तेहि माँ, करि मो जुक्ति बिदगावा ।—जुवानी, पृ० ४७ ।

जुग—संज्ञा पुं० [सं० युग] १. युग ।

मुहा०—जुग जुग = बिना काल तक । बहुत दिनों तक । जैसे,—हुन जुन भीषो ।

२. दो । उभय । उ०—बाला के जुग कान में बाता मोषा देन ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३८८ । ३. जूतिया । गुट्ट । दल । गोल ।

मुहा०—जुग टूटना = (१) किसी समुदाय के मनुष्यों का परस्पर मिला न रहना । अलग अलग हो जाना । दल टूटना । मंडली नितर बितर होना । जैसे,—सामने शत्रु सेना के दल सडे थे, पर आक्रमण होते ही वे इधर उधर भागने लग और उनके जुग टूट गए । (२) किसी दल या मंडली में एकता या मेल न रहना । जुग फूटना = जोड़ा खंडित होना । साथ रहनेवाले दो मनुष्यों में से किसी एक का न रहना ।

३. चौसर के खेल में दो गोठियों का एक ही कोठे में इकट्ठा होना । जैसे, छूग छूग कि मोटी मरी । ४. वह डोरा जिसे जुलाहे तागे को अलग अलग रखने के लिये ताने में डाल देते हैं । ५. पुष्ट । पीढ़ी ।

जुगजुगाना—क्रि० प्र० [हि० जगता (= प्रज्वलित होना)] १. मंद मंद और रह रहकर प्रकाश करना । मंद ज्योति से चमकना । टिमटिमाना । जैसे, तारों का जुगजुगाना । उ०—कोठरी के नीचे में एक दीया जुगजुगा रहा था । २. अवगत या हीन दशा में क्रमशः कुछ उन्नत दशा को प्राप्त होना । कुछ कुछ उभरना । कुछ कीर्ति या सप्रिद्धि प्राप्त करना । कुछ बढ़ना या नाम करना । जैसे,—वे इधर कुछ जुगजुगा रहे थे कि चन बसे ।

जुगजुगी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुगजुगाना] एक चिड़िया जिसे शकर-खोरा भी कहते हैं ।

जुगत^१—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] १. युक्ति । उपाय । तदबीर । ढंग । उ०—सब्द सम्कला करे जान का कुरेड लगावे । जोग जुगत से भले दाग तब मन का जावे ।—पद्म०, भा० १, पृ० २ ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—जुगत भिड़ाना या मिलाना या लगाना = जोड़ तोड़ बैठाना । ढंग रचना । उपाय करना । तदबीर करना ।

२. व्यवहारकुशलता । चतुराई । हथकंडा । ३. चमत्कारपूर्ण उक्ति । घुटकुला ।

जुगति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] उपाय । तदबीर । उ०—जोय-जुगति सिखए सबे मनो महाभुनि मैंन । चाहत पिय प्रहसत काननु सेवत नैन ।—बिहारी रा०, दो० १३ ।

जुगती^१—वि० [हि० जुगत + ई (प्रत्य०)] उपायी । युक्ति-कुशल । जोड़ तोड़ बैठा लेने में कुशल

जुगती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] युक्ति । उपाय । उ०—कोई कहे जुगती सब जानूँ कोई कहे मैं रहनी । प्रातम देव सों पारधो नाही यह सब झूठी कहनी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०१

जुगनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जीगना] दे० 'जुगनू' ।

जुगनी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गाना जो पंजाब में गाया जाता है ।

जुगनी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का आभूषण । वि० दे० 'जुगनू' २ । उ०—गल में कटवा, कंठा, हँसली, उर में हुमेल कल चंपकली, जुगनी चौकी, मूँगे नकली ।—ग्राम्या०, पृ० ४० ।

जुगनू—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरङ्गण, प्रा० जोइंगण अथवा हि० जुग-जुगाना] १. गुबरेले की जानि का एक कीड़ा जिसका पिछला भाग प्राग की चिनगारी की तरह चमकता है । यह कीड़ा बरसात में बहुत दिखाई पड़ता है । खद्योत । पटधोजना ।

विशेष—तितली, गुबरेले, रेशम के कीड़े आदि की तरह यह कीड़ा भी ढोले के रूप में उत्पन्न होता है । ढोले की अवस्था में यह मिट्टी के घर में रहता है और उसमें से दस दिन के उपरांत रूपांतरित होकर गुबरेले के रूप में निकलता है । इसके पिछले भाग से फासफरस का प्रकाश निकलता है । सबसे चमकीले जुगनू दक्षिणी अमेरिका में होते हैं जिनसे कहीं कहीं लोग दीपक का काम भी लेते हैं । इन्हें सामने रखकर लोग महीन से महीन अक्षरों की पुरतर्क भी पढ़ सकते हैं ।

२. स्त्रियों का एक गहना जो पान के आकार का होता है और गले में पहना जाता है । रामनामी ।

जुगम^१—वि० [सं० युग्म] दे० 'युग्म' । उ०—ररो ममु जुगम में प्रक बाकी रह्या ।—रघु० क०, पृ० ५७ ।

जुगल—वि० [सं० युगल] दे० 'युगल' । उ०—लाल कंचुकी मैं उगे जीवन जुगल लल्लात ।—भारतेंदु शं०, भा० १, पृ० ३८७ ।

जुगलस्वरूप^१—संज्ञा पुं० [सं० युगल + स्वरूप] १. नियामक प्रकृति पुरुष के रूप में मान्य युग्म विग्रह । २. राधाकृष्ण । उ०—तब युगल स्वरूप ने वा कोठी में ही दरसन दीनो ।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ७८ ।

जुगलिया—संज्ञा पुं० [?] जैन कथाओं के अनुसार वह मनुष्य जिसके ४०६६ बाल मिलकर आजकल के मनुष्यों के एक बाल के बराबर हों ।

जुगवना—क्रि० सं० [सं० योग + अवन (प्रत्य०)] १. संजित रखना । एकत्र करना । जोड़ जोड़कर रखना कि समय पर काम आए । २. हिफाजत में रखना । सुरक्षित रखना । यत्न और रक्षापूर्वक रखना ।

जुगाही—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० योग (= योजन) + हि० आड (प्रत्य०)] १. व्यवस्था । कार्यसाधन का मार्ग । २. युक्ति ।

क्रि० प्र०—करना । बैठाना ।

जुगमदरी—वि० [सं० युगान्तरीय] बहुत पुराना । बहुत दिनों का ।

जुगाना—क्रि० सं० [हि० जुगवना] दे० 'जुगवना' । उ०—जस भुवंगम मणि जुगावे अस शिष्य गुरु आज्ञा गहे ।—कबीर सा० पृ० २१२ ।

जुगारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'जुगाली' उ०—बैठे हिरन सुहावने जिन पै करत जुगार ।—शकुंतला, पृ० ११६ ।

जुगालना—क्रि० प्र० [सं० उद्गलन (= उगलना)] सींगवाले चौपायों का निगले हुए चारे को थोड़ा थोड़ा करके गले से निकाल मुँह में लेकर फिर से धीरे धीरे चबाना । पागुर करना ।

जुगाली—संज्ञा स्त्री० [हि० जुगालना] सींगवाले चौपायों की निगले हुए चारे को गले से थोड़ा थोड़ा निकाल निकाल फिर से चबाने की क्रिया । पागुर । रोमंथ ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुगी^१—संज्ञा पुं० [सं० योगी] योग करनेवाला । जोगी । उ०—रिषि संत जनी जगम जुती रहहि ध्यान प्रारंभ मह ।—पृ० रा०, १२।८६ ।

जुगी^२—वि० [हि० युगी] युग से संबंध रखनेवाला । युग का । विशेष—इसका प्रयोग समाम में ही मिलता है । जैसे सनयुगी, कलयुगी ।

जुगुत^१—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' ।

जुगुति—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' । उ०—हीन इमरु कर लीया संज्ञ । जोग जुगुति गिम भरल माय ।—विद्यापति, पृ० ३६७ ।

जुगुप्सक—वि० [सं०] व्यर्थ दूसरे की निंदा करनेवाला ।

जुगुप्सन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जुगुप्स, जुगुप्सित] निंदा करना । दूसरे की बुराई करना ।

जुगुप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निंदा । गद्गला । बुराई । २. अधृष्टा । घृणा ।

विशेष—साहित्य में यह बीभत्स रस का स्थायी भाव है और शांत रस का व्यभिचार । यत्नजल के अनुसार शीघ्र या शुद्ध लाभ कर लेने पर अपने अंगों तक से जो घृणा हो जाती है और जिसके कारण सामाजिक प्राणियों तक का संसर्ग घट्टा नहीं लगता, उसका नाम 'जुगुप्सा' है ।

जुगुप्सित—वि० [सं०] निंदिता । घृणित ।

जुगुप्सु—वि० [सं०] निंदक । बुराई करनेवाला ।

जुगुप्सु—वि० [सं०] दे० 'जुगुप्सु' ।

जुगुत—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'युक्ति' । उ०—जोग जुगुत ते मरम न लूटे जब लग आपन मूर्ख । कहे कबीर सोइ सतगुरु पुरा जा कोइ समझूँ बूझ ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५२ ।

जुगम—वि० [सं० युग्म] दे० 'युग्म' ।—अनेकार्थ०, पृ० ३३ ।

जुज^१—संज्ञा पुं० [सं० जुज, मि० सं० युज्] १. कागज के ८ पृष्ठों या १६ पृष्ठों का समूह । एक फारम ।

यौ०—जुजवंदी ।

२. ग्रंथ । टुकड़ा । उ०—जुज से कुल कतरे से दरिया बन जावे । अपने को लोये तब अपने को पावे ।—भारतेंदु शं०, भा० २, पृ० ५६८ ।

जुज—अर्थ [फ्रा० जुज] ...को छोड़कर ...के विवाह बिना ।
बगैर [को०] ।

जुजदान—संज्ञा पु० [अ० जुज + फ्रा० दान] वस्तु । वह थैला
जिसमें लड़के पुस्तकें आदि रखते हैं ।

जुजबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० जुज + फ्रा० बंदी] किताब की सिलाई
जिसमें घाठ घाठ वा मोलह मोलह पन्ने एक साथ सिए
जाते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुजरस—वि० [अ० जुजरस] १. सूक्ष्मदर्शी । तीव्र बुद्धिवाला ।
२. मितव्ययी । ३. कंठम । कृपण [को०] ।

जुजरसी—संज्ञा स्त्री० [अ० जुजरसी] १. सूक्ष्मदर्शिता । २. मित-
व्ययिता [को०] ।

जुज ब कुल—संज्ञा पु० [अ० जुज ब कुल] अंग और संपूर्ण ।
संपूर्ण । कुल [को०] ।

जुजवी—वि० [अ० जुजवी] १. बहुत से से कोई एक । बहुत कम ।
कृष्ण थाड़े से । २. बहुत छोटा अंग का । जैसे, जुजवी
हिस्सेदार ।

जुजाम—संज्ञा पु० [अ० जुजाम] कुष्ठ रोग । कोढ़ । उ०—फिर
फोर हुआ है उसको जुजाम । जीने में किया उसको नाकाम ।
—दक्खिनी, पृ० २२६ ।

जुजोठल—संज्ञा पु० [सं० जुषठिर] राजा युधिष्ठिर ।
(हिं०) ।

जुज्जु—संज्ञा स्त्री० [सं० युज्जु, प्रा० जुज्जु] युद्ध । लड़ाई ।
उ०—छमा तरवार से जगत को बँध करे, प्रेम की जुज्जु
मेदान होई । —रत्न, भा० २, पृ० १५ ।

जुज्जुबाना—क्रि० सं० [हिं० जुज्जुबाना] १. लड़ने के लिये
प्रोत्साहित करना । लड़ा देना । २. लड़ावर भरवा डालना ।

जुज्जु—वि० [हिं० जुज्जु, जूज्जु + अङ्ग (प्रत्य०)] १. युद्ध का ।
युद्ध संबंधी । जिसका व्यवहार रणक्षेत्र में हो । लड़ाई में
काय प्राप्तवाला । उ०—बाजे बहव जुज्जु बाजे । निरत
मग तुरग गज गाजे ।—हर्षचरित, पृ० ४१ । २. युद्ध के
लिये उत्साहित करनेवाला । जो जुज्जु बारा, जुज्जु
राग । उ०—बाजहि राज निगत जुज्जु । मुनि सुनि
होग भटन मन चाज ।—तुलसी (शब्द०) ।

जुज्जुबाना—क्रि० सं० [सं० युज्जु, प्रा० जुज्जु] १. लड़ा देना । युद्ध
के लिये प्रेरित करना । २. युद्ध में भरवा डालना ।

जुज्जु—वि० [हिं० जुज्जु + अङ्ग (प्रत्य०)] लड़ाका ।
सूरमा । वीर । बहादुर । उ०—इकल सुरासुर
जुज्जु जुज्जु । रामहि मर को जीवनहार ।—तुलसी
(शब्द०) ।

जुज्जुवर—वि० [हिं० जुज्जु + अङ्ग (प्रत्य०)] जुज्जुबाना ।
उ०—जहाँ बजे जुज्जुवर राजा, सब बाध उठि उठि भाजा ।
—कबीर ज०, भा० २, पृ० २० ।

जुट—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्त, प्रा० जुत अथवा सं० जुट ?] १. दो

परस्पर मिली हुई वस्तुएँ । एक साथ के दो आदमी या वस्तु ।
जोड़ी । जुग । २. एक साथ बँधी या लगी हुई वस्तुओं का
समूह । लाट । थाक । ३. गुट । मंडली । जत्था । दल । ४.
ऐसे दो मनुष्य जिनमें खूब मेल हो । जैसे,—उन दोनों की
एक जुट है । ५. जोड़ का आदमी या वस्तु ।

जुटक—संज्ञा पु० [सं०] १. जटा । २. गुंथी । चोटी । लड़ा [को०] ।

जुटना—क्रि० प्र० [सं० युक्त, प्रा० जुत + ना (प्रत्य०) या सं० जुट्,
बाधना] १. दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार
मिलना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी
पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे । एक वस्तु
का दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार सटना कि बिना
प्रयास या आघात के अलग न हो सके । दो वस्तुओं का
बँधने, चिपकने, सिलने या जड़ने के कारण परस्पर मिलकर
एक होना । संबद्ध होना । संश्लिष्ट होना । जुड़ना । जैसे,—
इस खिलोने का टूटा सिर गोंद से नहीं जुटता, गिर गिर
पड़ता है ।

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—मिलकर एक रूप हो जानेवाले द्रव या चूर्ण पदार्थों
के संबन्ध में इस क्रिया का प्रयोग नहीं होता ।

२. एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास होना कि दोनों के
बीच अवकाश न रहे । दो वस्तुओं का परस्पर इतने निकट
होना कि एक का कोई पार्श्व दूसरे के किसी पार्श्व से छू
जाय । भिड़ना । सटना । लगा रहना । जैसे,—मेज इस प्रकार
रखो कि चारपाई से जुटी न रहे । ३. लिपटना । चिपटना ।
गुथना । जैसे—दोनों एक दूसरे से जुटे हुए खूब लात घूँसे चला
रहे हैं । ४. संयोग करना । प्रसंग करना । ५. एक ही
स्थान पर कई वस्तुओं या व्यक्तियों का आना या होना ।
एकत्र होना । इकट्ठा होना । जमा होना । जैसे,—भीड़
जुटना, आदमियों का जुटना, सामान जुटना । ६. किसी कार्य
में योग देने के लिये उपस्थित होना । जैसे,—आप निश्चित
रहें, हम मौक़ पर जुट जायेंगे । ७. किसी कार्य में जी जान
से लगना । प्रवृत्त होना । उत्पन्न होना । जैसे,—ये जिस काम
के पीछे जुटे हैं उसे कर ही के छोड़ते हैं । ८. एकमत
होना । अभिसंधि करना । जैसे,—दोनों ने जुटकर यह उपद्रव
खड़ा किया है ।

जुटली—वि० [सं० जुट] झड़ेवाला । जिसे लंबे लंबे बालों की
लट हो । उ०—सखी री नदनंदनु देखु । धुरि धूसर जटा
जुटली हरि किए हर भेगु ।—धूर (शब्द०) ।

जुटाना—क्रि० सं० [हिं० जुटना] १. दो या अधिक वस्तुओं को
परस्पर इस प्रकार मिलाना कि एक का कोई पार्श्व या अंग
दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे ।
जोड़ना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. एक वस्तु को दूसरी के इतने पास करना कि एक का कोई

भाग दूसरे के किसी भाग से जुड़ा जाय। मिडाना। सटाना।
३. इकट्ठा करना। एकत्र करना। जमा करना।

जुटाव—संज्ञा पुं० [हि० जुट + प्राव (प्रत्यय)] जमाव। बटोर।

जुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गिखा। चुंदी। चुटिया। २. गुच्छा। लट। जुड़ी। जुट्टी। १. एक प्रकार का कपूर।

जुट्टा^१—संज्ञा पुं० [हि० जुटना] १. घास, पत्तियों या टहनियों का एक में बंधा पूना। घांटी। २. एक समूह या जुट में लगनेवाली घास जाति की कोई वनस्पति। जैसे, सरपत का जुट्टा, काँस का जुट्टा।

जुट्टा^२—वि० परस्पर भिन्न या सटा हुआ।

जुट्टी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जुटना] १. घास, पत्तियों या टहनियों का एक में बंधा हुआ छोटा पूना। घोटिया। जूरी। जैसे, नंदाकु की जुट्टी, पुबीने की जुट्टी। २. मूरन आदि के लए कल्ले जो बंधे हुए निकलते हैं। ३. तले ऊपर रखी हुई एक प्रकार की कई चिपटी (पत्तर या परत के आकार की) वस्तुओं का समूह। गड्डी। जैसे, रोटियों की जुट्टी, रुपयों की जुट्टी, पैसों की जुट्टी। ४. एक पकवान जो शाक या पत्तों को बेसन, पीठी आदि में लपेटकर तलने से बनता है।

जुट्टी^२—वि० जुटी या मिली हुई। जैसे, जुट्टी भी।

जुठारना—क्रि० सं० [हि० जुठा] १. खाने पीने की किसी वस्तु को कुछ खाकर छोड़ देना। खाने पीने की किसी वस्तु में मुँह लगाकर उसे अपवित्र या दूसरे के व्यवहार के अयोग्य करना। उच्छिष्ट करना।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जुठी वस्तु का खाना निषिद्ध समझा जाता है।

संयो० क्रि०—डालना। देना।

२. किसी वस्तु को भोग करके उसे किसी दूसरे के व्यवहार के अयोग्य कर देना।

जुठिहारा—संज्ञा पुं० [हि० जुठा + हारा] [जी० जुठिहारा] जुठा खानेवाला। उ०—मूरवादा प्रभु तंदवनंदन कहै हम खालन जुठिहारे।—मूर (शब्द०)।

जुठिला—वि० [हि० जुठा + ऐल (प्रत्यय)] उच्छिष्ट, टूटा।

जुठौला—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटे पैरोंवाली बड़ामी रंग की एक चिड़िया जो समूह में रहती है।

जुड़ंगी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुटना + घंग] प्रति निकट का संबंध। भंग और घंगी जैसे धातुना।

जुड़ना—क्रि० प्र० [हि० जुटना या सं० जुड (= बाँधना)] १. दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का कोई पार्श्व या भंग दूसरे के किसी पार्श्व या भंग के साथ टूटनापूर्वक लगा रहे। दो वस्तुओं का बँधने, चिपकने, सिलने, या जड़े जाने के कारण परस्पर सिलकर एक होना। संबद्ध होना। संश्लिष्ट होना। संयुक्त होना।

क्रि० प्र०—जाना।

२. संयोग करना। संभोग करना। प्रसंग करना। ३. इकट्ठा होना। एकत्र होना। ४. किसी काम में योग देने के लिये

उपस्थित होना। ५. उपलब्ध होना। प्राप्त होना। मिलना। मयस्सर होना। जैसे, कपड़े लत्ते जुड़ना। उ०—उसे तो चने भी नहीं जुड़ते। ६. गाड़ी आदि में बेल लगना। जुटना।

जुड़ापत्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० जुड़ + पत्ति] शीत और पित्त से उत्पन्न एक रोग जिसमें शरीर में खुजली उठती है और बड़े बड़े चकते पड़ जाते हैं।

जुड़वाँ^१—वि० [हि० जुड़ना] जुड़े हुए। यमल। गर्भकाल से ही एक में सटे हुए। जैसे, जुड़वा बच्चे।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग गर्भदात बच्चों के लिये ही होता है।

जुड़वाँ^२—संज्ञा पुं० एक ही साथ उत्पन्न दो या अधिक बच्चे।

जुड़वाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जुड़वाना] दे० 'जोड़वाई'।

जुड़वाना^१—क्रि० सं० [हि० जुड़] १. टूटा करना। सुखी करना। जैसे, छाती जुड़वाना।

जुड़वाना^२—क्रि० सं० [हि० जोड़वाना] दे० 'जोड़वाना'।

जुड़ाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ाई] दे० 'जोड़ाई'।

जुड़ाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जुड़ाना] टूटक। शीतलना। जाड़ा। उ०—जो कार बटु जाड पुनि बोई। जातहि नौद जुड़ाई होई।—मानस, १। ३६।

जुड़ाना^१—क्रि० प्र० [हि० जुड़] १. टूटा होना। शीतल होना। २. शान्त होना। तम होना। प्रसन्न होना। मनुष्य होना।

संयो० क्रि०—जाना।

जुड़ाना^२—क्रि० सं० १. टूटा करना। शीतल करना। २. शांत और मनुष्य करना। तृप्त करना। प्रसन्न करना। उ०—खोजत रहेउ तोहि मुनघाते। आजु निघानि जुड़ाव। छाती।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

जुड़ाना^३—क्रि० सं० [हि० जुड़ना का क्रि० सं० रूप] जोड़ने का काम किसी और में करना।

जुड़ावना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जुड़ना'।

जुड़ावाँ—वि०, संज्ञा पुं० [हि० जुड़वाँ] दे० 'जुड़वा'।

जुड़ीशाल—वि० [प्र०] दीवानी या फौजदारी संबंधी। न्याय संबंधी।

जुत(ण)—वि० [सं० युज्] दे० 'युज'। उ०—(क) जानी जानि गारिन दनारि जुत बन ने।—तिलक (शब्द०)। (ख) जननद जुत सरवर लई अ० उज्जैन घाट।—दशोद्धार पारेख लई, रसद करो पुकार।—प० रास, पु० ६६।

जुतना—क्रि० प्र० [सं० युज्, या० जुत] १. बेल, थोड़े आदि का गाड़ी में लगना। यथा २. किसी काम में परिश्रमपूर्वक लगना। किसी परिश्रम के कार्य में उत्पन्न या संलग्न होना। जैसे,—बहु दिन भर काम में जुता रहता है। ३. लड़ाई में लगना। युधना। जुटना। ४. जीता जाना। हल चलने के कारण जमीन का खुदर भुरभुरा हो जाना। जैसे,—मह खेत दिन भर में जुत जायगा।

जुतवाना—क्रि० स० [हि० जोतना] १. दूसरे से जोतने का काम करवाना। दूसरे से हल चलवाना। जैसे, जमीन जुतवाना, खेत जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बेल, घोड़े आदि को गाड़ी, हल आदि में खींचने के लिये लगवाना। नथवाना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग जो पशु जोते जाते हैं तथा जिस वस्तु में जोते जाते हैं, दोनों के लिये होता है। जैसे, घोड़े जुतवाना, गाड़ी जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

जुताई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोताई'।

जुताना—क्रि० स० [हि०] दे० 'जोताना'।

जुतियाना—क्रि० स० [हि० जुता से नामिक धातु] १. जूता मारना। जूतों से मारना। जूते लगाना। २. अत्यंत निरादर करना। अपमानित करना।

जुतियौखल—संज्ञा स्त्री० [हि० जुतियाना + औखन (प्रत्यय)] परस्पर जूतों की मार।

क्रि० प्र०—होना।

जुत्थ(५)—संज्ञा पुं० [सं० युथ] दे० 'यूथ'।

जुथौली—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक छोटी बिड़िया।

विशेष—इसकी छाती और गरदन का कुछ अंग सफेद और बाकी भूरा होता है।

जुदा—वि० [फा०] [स्त्री० जुदी] १. पृथक्; अलग।

क्रि० प्र०—करना;—होना।

मुहा०—जुदा करना = नीकरी से छुड़ाना। काम से अलग करना २. भिन्न। निराला। ३. अन्ध। दुसरा (को०)। ४. विरही। विरहग्रस्त (को०)।

जुदाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] बिछोह। वियोग। दो व्यक्तियों का एक दूसरे से अलग होने का भाव। विरह।

क्रि० प्र०—होना।

जुदागाना—क्रि० वि० [फा० जुदागानह्] अलग अलग। पृथक् पृथक्। उ०—हर मुक्त की तल चलन, लयाम, पोशाक और रस्मी रिवाज जुदागाना होता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५७।

जुदी—संज्ञा स्त्री० [फा० जुदी] दे० 'जुदा'।

जुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध] दे० 'युद्ध'। उ०—साहब दी सुतना घाह गज युद्ध निरपिपत।—पृ० १००, १६। १०२।

जुध(५)—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध] दे० 'युद्ध'। उ०—ही ब्रह्म रज्जु कष करन सोम। जुध जाज जाउ नी ए सोम।—पृ० १००, १०४५।

जुधवान्(५)—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध + हि० वान (प्रत्यय)] योद्धा। युद्ध करनेवाला व्यक्ति।

जुनब्बो(५)—संज्ञा स्त्री० [अ० जलत] जनब नगर की निर्मित तलवार। उ०—जबि और जुनब्बे कहरत फबे मुझि गब्बे फर पाटे।—पद्माकर ग्रं० पृ० २७।

जुना—वि० [हि० जूना] दे० 'जीरा'। उ०—जो जुने पिगले सिया है इस बजा। कुछ भजब तेरी कदर है ओ कजा।—दक्खिनी०, पृ० १७५।

जुनारदार—वि० [अ० जुन्नार + फा० दार] १. आह्वण। २. जनेऊ धारण करनेवाला। उ०—केसोदास मारु मरि हरम कमठ कटी जैन खां जुनारदार मारे इक नीर के।—अकबरी० पृ० ११६।

जुनिपर—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का अंग्रेजी फूल जो कई रंगों का होता है।

जुनूँ—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जुनून'। उ०—जंजीर जुनूँ कड़ी न पड़ियो। दीवाने का पाँव दरमियाँ है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०६।

जुनून—संज्ञा पुं० [अ०] पागलपन। सनक। भ्रुक। उन्माद।

जुनूनी—वि० [अ०] विक्षिप्त। सनकी। उन्मत्त (को०)।

जुनूब—संज्ञा पुं० [अ० जुनूब] दक्षिण। दक्खिन (को०)।

जुन्नार—संज्ञा पुं० [अ०] यज्ञोपवीत। जनेऊ। उ०—बा तजरबये तसबीहो जुन्नार भुका।—कबीर म०, पृ० ४६८।

जुन्हरी—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का अन्न।

जुन्हरी—संज्ञा [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा] १. चंद्रनी। चंद्रिका। उ०—सुमन बास शुद्धत कुसुम निकर तैसी है शरब जैसी रैन जुन्हरी।—अकबरी०, पृ० ११२। २. चंद्रमा।

जुन्दारी—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का अन्न।

जुन्हैया—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा, हि० जोन्ही + ऐया (प्रत्यय)] १. चंद्रनी। चंद्रिका। चंद्रमा का उजाला। २. चंद्रमा। उ०—अहित अनेसो ऐसो कौन उपहास याते सोचन खरी में परी जोवति जुन्हैया को।—पद्माकर (शब्द०)

जुपत—संज्ञा पुं० [फा० जुपत] १. युग। जोड़ा। २. सम संख्या जो दो से बँट जाय। ३. जूता (को०)।

जुबक(५)—संज्ञा पुं० [सं० युवक] दे० 'युवक'। उ०—प्रात समय नित न्हाय जुबक जोधा जित आए।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २३।

जुबति(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'युवति'। उ०—अवाल निगन जातीय जुबति जन जुरि जहँ जाही।—प्रेमघन० पृ० ४८।

जुवन(५)—संज्ञा पुं० [सं० यौवन] दे० 'यौवन'। उ०—जुवन रूप संग सोभा पावै। मोह'क' रूप संग बदन दुरावै।—नंद० ग्रं०, पृ० ११७।

जुबराज(५)—संज्ञा पुं० [सं० युवराज] दे० 'युवराज'।

जुबली—संज्ञा स्त्री० [अ० गा इब्रानी योबल] किसी महत्वपूर्ण घटना का स्मारक महोत्सव। जश्न। बड़ा जलसा।

जुबा(५)—संज्ञा पुं० [सं० युवन] युवावस्था। उ०—बालपना भोले गयो, और जुबा महमंत।—कबीर सा०, पृ० ७६।

जुबाद(५)—संज्ञा पुं० [अ० जुबाद] एक प्रकार का गंधद्रव्य जो गंध-मार्जार से निकाला जाता है (को०)।

जुबान—संज्ञा स्त्री० [फा० जुबान] दे० 'जबान'।

जुबानी—वि० [फ्रा० ज़बानी] दे० 'जबानी' ।

जुब्बन^(५)—संज्ञा पुं० [सं० योवन, प्रा० जुवण] दे० 'योवन' ।
उ०—जुब्बन क्यों बसि होई छक्क मैमंत की । —सुंदर ग्रं०,
भा० १, पृ० ३६३ ।

जुब्बा—संज्ञा पुं० [अ० जुवह] फकीरों का एक प्रकार का लंबा पहनावा । झुब्बा । लंबा धर्मरत्ना । योगा । उ०—जो एक सोजन कू लामो होर तागा । सिमो मेरे जुब्बे में थक दो टाँका । —दक्खिनी०, पृ० ११५ ।

जुमकना^(१)—क्रि० प्र० [हि० जमना] १. जमकर लड़ा होना । झड़ना । २. एकत्र होना । जोम में घाना । उ०—जोतत जुमकि पीन मग संगति । —पद्याकर ग्रं०, पृ० ६ ।

जुमना^(१)—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में पस या खाद देने का एक ढंग जिसके अनुसार कटी हुई झाड़ियों और पेड़ पौधों को खेत में बिछाकर जला देते हैं और बची हुई राख को मिट्टी में मिला देते हैं ।

जुमना^(५)—क्रि० प्र० [अ० जोम] जोश में घाना । झड़ना । उ०—जवानी जुमी जमाल सूरति देखिए थिर नाहि बे । —रे० बानी, पृ० ३२ ।

जुमझा^(१)—वि० [अ० जुम्लह] सब । कुल । सबके सब ।

जुमला^(२)—संज्ञा पुं० १. वह पूरा वाक्य जिससे पूरा अर्थ निकलता हो । २. जोड़ (की०) ।

जुमहूर—संज्ञा पुं० [अ० जुम्हूर] जनता । जनसाधारण । सर्वसाधारण (की०) ।

जुमहूरियत—[अ० जुम्हूरियत] गणतंत्र । जनतंत्र । प्रजातंत्र (की०) ।

जुमहूरी—वि० [अ० जुम्हूर+फ्रा० ई (प्रत्य०)] सार्वजनीन । लोकसंचालित (की०) ।

जुमहूरी सल्तनत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुम्हूर+फ्रा० ई (प्रत्य०) + अ०] सल्तनत गणतंत्र राज्य । जनतंत्र शासन । प्रजातंत्र राष्ट्र (की०) ।

जुमा—संज्ञा पुं० [अ० जुमम] एकवार ।

यौ०—जुमा मसजिद ।

जुमा मसजिद—संज्ञा स्त्री० [अ० जुमम मसजिद] वह मसजिद जिसमें जमा होकर मुसलमान लोग शुक्रवार के दिन शोषहूर की नमाज पढ़ते हैं ।

जुमिल—संज्ञा पुं० एक प्रकार का जोड़ा । उ०—गुरां पुंठ जुमिल दरियाई । —रघुनाथ (शब्द०) ।

जुमिला^(५)—वि० [अ० जुम्लह] सब । समस्त । संपूर्ण । उ०—श्री नयपाल जुमिला के छतिपाल । —भूषण ग्रं०, पृ० ६२ ।

जुमिल्ला—संज्ञा पुं० [?] वह खूँटा जो लपेटन की बाईं ओर गड़ा रहता है और जिसमें लपेटन लगी रहती है । (जुलाहों की बोली) ।

जुमुकना—क्रि० प्र० [सं० यमक] १. निकट आ जाना । पास आ जाना । २. जुड़ना । इकट्ठा होना ।

जुमेरात—संज्ञा स्त्री० [अ० जुमरात] बृहस्पतिवार । गुरुवार । बीफे ।
४-१६

जुमेराती—वि० [अ० जुमरात+फ्रा० ई (प्रत्य०)] जो जमेरात को पैदा हुआ हो ।

विशेष—मुसलमानों में इस प्रकार के नाम जुमेरात को पैदा बच्चों के रखे जाते हैं ।

जुम्मा^(१)—संज्ञा पुं० [अ० जुमम] दे० 'जुमा' ।

जुम्मा^(२)—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह] दे० 'जिम्मा' ।

जुम्मा^(३)—वि० [अ० जमम] कुल । सब । संपूर्ण ।

मुहा०—जुम्मा जुम्मा आठ दिन : (१) थोड़े दिन । कुछ दिन । बंदरोज । (२) कुल मिलाकर आठ दिन । कुल मिलाकर इने गिने दिन ।

जुयांग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली जाति ।

विशेष—इस जाति के लोग सिहभूमि के दक्षिण उड़ीसा में पाए जाते हैं और कोलों से मिलते जुलते होते हैं ।

जुर^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वर] दे० 'ज्वर' । उ०—घपने कर जु बिरह जुर ताते । मति भुरि जाहि डरति तिय याने । —नंद० ग्रं०, पृ० १३२ ।

जुरअत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुअत] साहस । हिम्मत । हियाव । जबहा ।

जुरभुगी—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वर या ज्वि + हि० भरकगना] १. हलकी गरमी जो ज्वर के आदि में जान पड़ती है । ज्वरांश । हारात । २. ज्वर के आदि की कैपकैपी । शीत कंप ।

जुरना^(५)—क्रि० प्र० [हि० जुडना] दे० 'जुडना' । उ०—(क) पांव रोपि रही रण माहि रजपूत कोऊ ह्य गज गाजत जुरत जहाँ दम है । —सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० १०८ । (ख) दम भरकत दूतत कुदुम जुरत चतुर बित प्रीति । परति गाँठि दुरजन हिए दई नई यह रीति । —बिहारी (शब्द०) ।

जुरबाना^(१)—संज्ञा पुं० [हि० जुरमाना] दे० 'जुरमाना' ।

जुरमाना—संज्ञा पुं० [अ० जुर्म, फ्रा० जुर्मनह] अंधवंड । धनवंड । वह दंड जिसके अनुसार अपराधी को कुछ धन देना पड़े ।
क्रि० प्र०—करना ।—बेना ।—बेना ।—लगना ।—होना ।

जुरर^(५)—संज्ञा पुं० [हि० जुरी] दे० 'जुरी' । उ०—जुरर बाज बहु कुही कुहेल । —प० रामो पृ०, पृ० १८ ।

जुररा^(५)—संज्ञा पुं० [हि० जुरी] दे० 'जुरी' । उ०—जुररा सिकार तीतर बटेर । पेलत मरित तट मड अबेर । —पृ० १०, ५:१६ ।

जुराना^(५)—क्रि० प्र० दे० 'जुडाना' । उ०—कंत चोक सोमंत की बैठी गाँठ जुराह । पेखि परीमी को, पिया घूँट में मुसिव्याह । —मति० ग्रं०, पृ० ४४४ ।

जुराना^(५)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जुडाना' ।

जुराफा—संज्ञा पुं० [अ० जिगाफ] अफरीका का एक जंगली पशु ।

विशेष—इसके खुर बैल के से, टाँपें और गर्दन ऊँट की सी संजी, सिर हिरन का सा, पर बहुत छोटे छोटे और पूँछ गाय की सी होती है । इसके चमड़े का रंग नारंगी का सा होता है जिसपर बड़े बड़े काले धब्बे होते हैं । संसार भर में सबसे ऊँचा पशु यही है । १५ या १६.

फुट तक की ऊँचाई तक के तो सब ही होते हैं पर कोई कोई १८ फुट तक की ऊँचाई के भी होते हैं। इसकी छालें ऐसी बड़ी घोर उभरी हुई होती हैं कि बिना सिर केरे हुए ही यह अपने चारों ओर देख सकता है। इसी से इसका पकड़ना या शिकार करना बहुत कठिन है। इसके नयुनों की बनावट ऐसी विसदृश होती है कि जब यह चाहे उन्हें बंद कर ले सकता है। इसकी जीभ १७ इंच तक लंबी होती है। यह प्रायः वृक्षों की पत्तियाँ खाता है और मैदानों में झुंड बांधकर रहता है। चरते समय झुंड के चारों ओर चार जुराफे पहले पर रहते हैं जो पशु के घाने की सूचना तुरंत झुंड को दे देते हैं। शिकारी लोग घोड़ों पर सवार होकर इसका शिकार करते हैं, परंतु बहुत निकट नहीं जाते, क्योंकि इसके लात की चोट बहुत कड़ी होती है। इसका चमड़ा इतना सख्त होता है कि उसपर गोले प्रसर नहीं करती। इसका मांस खाया जाता है।

यह पशु झुंड बांधकर परिवारिक रीति से रहता है, इसी से हिंदी कवियों ने इसके लोके में अत्यंत प्रेम मानकर इसका काव्य में उल्लेख किया है परंतु समझने में कुछ भ्रम हुआ है और इनकी पशु की जगह पक्षी समझा है। जैसे,—(क) मिति बिहरत बिछुरत मरत दंगति अति रसलीन। नूतन विधि हेमंत की जयत जुराफा कीन।—बिहारी (शब्द०)। (ख) जगह जुराफा हूँ जियन तथ्यो तेज निज भानु। रूप रहे तुम पूम में यह घों कोम सयानु।—पद्माकर (शब्द०)।

जुराब—संज्ञा स्त्री० [हि० जुराब] दे० 'जुराब'। उ०—उमकी ऊनी जुराब में एक छेद हो जाय।—अभिषम, पृ० १३८।

जुराबना(फु) - कि० सं० [हि० जुड़ावना] दे० 'जुड़ाना'।

जुराबरी(फु) - वि० फा० [जोराबरी] दे० 'जोराबरी'। उ०—गुंवर काल जुराबरी ज्यों जाणें स्थो लेह। कोटि जतन जो तू करे तोह रहन न देह।—मुंद्दर० सं० भा० २, पृ० ७०३।

जुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जूति (=उर)] धीमा श्वर। हराशत।
जुरी—वि० [हि० जुटना] १. जुटी। जुटाई हुई। २. प्राप्त।
उ०—जो निबाहो नेह के माते न तुम जो न रोबो बंधकर खाधो जुरी।—सुभते०, पृ० ३५।

यौ०—जुरी कुरी—(१) अजिन या प्रथम संपूर्ण राजा। २. परिजन और कुल।

जुर्म—संज्ञा पुं० [अ०] अपराध। वह कार्य जिसके दंड का विधान राजनियम के अनुसार हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—जुर्म खफीफ = छोटा या सामान्य अपराध। जुर्म शहीद = गंभीर अपराध। भारी अपराध।

जुर्माना—संज्ञा पुं० [फ० जुर्मानह] अर्थबंड। वह रकम जो किसी अपराध के दंड में जुमाना गड़े।

जुरत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुरमत] दे० 'जुरमत' (को०)।

जुरी—संज्ञा पुं० [फा०] नर बाज। उ०—पुर्कों पर जुरे, बाज, बहरी इत्यादि।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

जुरीब—संज्ञा स्त्री० [अ०] मोजा। पायताबा।

जुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुरा] बाज। मादा बाज।

जुल—संज्ञा पुं० [सं० छल ?] धोखा। दम। झोसा। पट्टी। छल छंद। चकमा।

क्रि० प्र०—देना।—में घाना।

यौ०—जुलबाज। जुलबाजी।

जुलकरन(फु)—संज्ञा पुं० [अ० जुल्कर्न] सम्राट् सिकंदर की उपाधि जिसके दोनों कंधों पर बालों की लटें पड़ी रहती थीं। उ०—भये मुरीद जुलहा के भाई। तबही जुलकरन नाम धराई।—कबीर सा०, पृ० १५१।

जुलकरनैन—संज्ञा पुं० [अ० जुल्कर्नैन] सुप्रसिद्ध यूनानी बादशाह सिकंदर की एक उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। कुछ लोगों के मत से इसका अर्थ दो सींगोंवाला है। वे कहते हैं कि सिकंदर अपने देश की प्रथा के अनुसार दो सींगोंवाली टोपी पहनता था। इसी प्रकार कुछ लोग 'पूर्व और पश्चिम दोनों दिनों को जीतनेवाला', कुछ लोग '२० वर्ष राज्य करनेवाला' और कुछ लोग 'दो उच्च ग्रहों से युक्त' अर्थात् भाग्यवान् भी अर्थ करते हैं।

जुलना—क्रि० सं० [हि० जुड़ना] १. मिलना अर्थात् संमिलित होना। २. मिलना अर्थात् भेंट करना।

विशेष—यह क्रिया अबब प्रकली नहीं बोली जाती है। जैसे,—(क) मिल जुलकर रहो। (ख) जिससे मिलना हो, मिल जुल पाओ।

जुल्फ(फु)—संज्ञा स्त्री० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—जुल्फ में कुलुक करी है मति मेरी छलि, गरी अलि कहा करों कल ना परति है।—दीन० प्र०, पृ० १०।

जुल्फिकार—संज्ञा पुं० [अ० जुल्फिकार] मुसलमानों के चौथे खलीफा अली की तलवार का नाम (को०)।

जुल्फी—संज्ञा पुं० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—बाढ़ी भारत कोऊ, कोऊ जुल्फीम सेवारत।—प्रेमघन० भा० १, पृ० २३।

जुलबाज—वि० [हि० जुल + फा० बाज] धोखेबाज। छली। धूर्त। चालाक।

जुलबाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुलबाज] धोखेबाजी छल। धूर्तना। चालाकी।

जुलबाना(फु) - वि० [अ० जुल्फ + फा० बानह] प्रत्याचारी। जुल्मी। क्रूर। उ०—जम का फौज बढ़ा जुलबाना पकरि मरोरे काला।—सं० दरिया, पृ० १५२।

जुलमा—संज्ञा पुं० [हि० जुल्म] दे० 'जुल्म'। उ०—जुल्म के हेत हलकारे, मनी मगरूर मतवारे। पकड़ जम जूतियों मारे, बहुर बिलकुल नरक द्वारे।—संत तुरसी०, पृ० २६।

जुलहा—संज्ञा पुं० [हि० जुलहा] दे० 'जुलहा'। उ०—चार देव

ब्रह्मा ने ठाना । जुलहा भूल गया अभिमाना ।—कबीर सा०,
पृ० ८१४

जुलाई—संक्र. जी० [अ०] एक अंगरेजी महीना जो जेठ या अषाढ़ में पड़ता है। यह अंगरेजी का सातवाँ महीना है और ३१ दिनों का होता है। इस मास की १३वीं या १४वीं तारीख को कर्क की संक्रांति पड़ती है।

जुलाब—संका पु० [प्र० जुलाब, फा० जुलाब] १. रेचन । दस्त ।
क्रि० प्र०—लगना ।

२. रेचक घ्रीषध । दस्त लानेवाली दवा ।

क्रि० प्र०—देना । -लेना :

मुहा०—जुलाब पचना = किसी दस्त खानेवाली दवा का दस्त न खाना वरन् पच जाना जिससे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं ।

विशेष—विद्वानों का मत है कि यह शब्द वास्तव में प्रा० गुलाब से प्ररबी सँघि में ढालकर बना लिया गया है। गुलाब दस्तावर दवाओं में त है।

जुलाल—वि० [अ०] मोठा पानी । स्वच्छ पानी । निथरा हुआ जल । उ०—के डोने में जू है ओ फूलों की फाल । यों कसि में जू है प्राये जुलाल ।—दक्खिनी०, पृ० १५० ।

जुलाहा—वर्षा ९० [क्रा० जीलाह] १. कपड़ा बुननेवाला । तंतुबाय ।
तंतुकार ।

विशेष-भारतवर्ष में जुलाहे कहलानेवाले मुसलमान हैं। हिंदु कपड़ा बुननेवाले कोली आदि निम्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं।

मुहा०—जुलाहे का तीर=झूठी बात । जुलाहे की सो दाढ़ी=छांटी या नोकदार दाढ़ी ।

२. पानी पर नेरव्यान १५ फीट। ३. एक बरसाती कीड़ा जिसका शरीर गावदूम और मूँह मटर की तरह भोल होता है।

जुलित^५—वि० [सं० ज्वलित] जलता हुआ । उ०—जुलित पावकं
नेत्र लोचन भारी । सकै दिष्ट को देव दानं सहारी ।—पु०
रा०, १०।१.८ ।

जुलुकः—संज्ञा को० [हि० जुलुक] दे० 'जुलुक' : उ०—जुलुक
निसेनी पै चढ़े हग धर पसक पाइ ।—स० सप्तक, पृ० १८५ ।

जुलफो†—संज्ञा स्त्री० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ' ।

जुलूमः--सत्ता प्र० [हि० जुलूम] से 'जुलूम'। उ०--जोर जुलूम
प्रकट भावे तोहि कहो को बचावे।—गुलाल०, पृ० ११७।

जुलुमोः—वि० [द्वि० जुलुमी] १. जुलुम करनेवाला । १. अत्यधिक प्रभावित या मोहित करनेवाला ।

जुलूस—संका ५० [अ०] १. सिंहासवारोदय ।

क्रि० प्र०—करना । —फरमाना ।

२. राजा या बादशाह की सवारी । ३. उत्सव और समारोह की यात्रा । धूमधाम की सवारी । ४. बहुत से लोगों का किसी विशेष उद्देश्य के लिये जत्था बनाकर निकलना ।

क्रि० प्र०—निकलना । —निकासना ।

जुहोक्(५)—संवा पु० [सं० धुलोक] बैकुंठ । स्वर्ग ।

जुल्फ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जुल्फ़] सिर के वे लंबे बाल जो पीछे की ओर लटकते हैं । पट्टा । कुस्ले ।

जुल्फी - संज्ञा स्त्री० [फा० जुल्फ] जुल्फ । पट्टा ।

जुलम—पञ्चा पुं० [ष० जुलम] [वि० जुल्मी] १ श्रमत्याचार ।
पन्याय । मनीति । जबरदस्ती । प्रधेर ।

क्रि० प्र०—करना ।— होना ।

यौ०—जुलमदोस्त=प्रत्याचार पसंद करनेवाला । जुलमपसंद=प्रत्याचारो । जुलमरसीदा=प्रत्याचार पीड़ित । जुलमोसितम=प्रत्याचार ।

मुहा० - जुलम टूटना = प्राप्त या पड़ना । जुलम डाना = (१) प्रत्याचार करना । (२) कोई मद्दत काम करना । जुलम-तोड़ना = प्रत्याचार करना ।

३. श्राफत ।

जुलमत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जुलमत] भयंकार की कालिमा । घंघेरा ।
भयंकार । उ०—इस हिंद से सब दूर हुई कुफ़ की जुलमत ।
—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५३० ।

जुल्मात—संज्ञा पु० [अ० जुल्मात] [जुल्मात क० बहुव०] १.
गंभीर संश्लेष । उ०—हृदया जाके मगरिब के जुल्मात में ।
लगे दीपने ज्यों बिबे रात मे । —दक्खिनी०, पृ० ८२ । २. वह
घोर संशंकार जो सिकंदर को अमृतकुंड तक पहुँचने मे पड़ा
था (की०) ।

जुल्मी—वि० [ध० जुल्म + क्रा० ई (प्रत्य०)] मत्थाचारी ।

जुल्लाब--अक्षा ५० [म० जुलाब] १. रेचन । दस्त ।

क्रि० प्र०—लगना ।

२. रेचक औषध । वि० दे० 'जुलाब' ।

कि० प्र०—देना । —लेना ।

जुष^१(५)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'युवक' । उ०—बाहर में फगुहार
जुरे जुव जन रस राते ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३६३ ।

जुव(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'युवती' । उ०—परम सधुर मादक
सुनाव जिहि ब्रज जुव मोही ।—नद०, प्र०, पृ० ४० ।

जुषतो—यथा श्री० [सं युवती] ३० 'युवती' ।—अनकार्यं, पृ० १०४ ।

जुवराज(पु)---संज्ञा पं० [सं० युवराज] शं० 'युवराज' । उ०---जाह
पुकारे ते सब बन उजार युवराज । मुनि सुधोव हरष कपि
करि पाए प्रभु काज ।-मानस, ५।२८ ।

जुवाँ—संका ५० [सं० द्यत, हि जुषा] १. जुषा' । उ०—जुवा
खेल खेलन गई जोषित जोबन जोर । क्यो न गई ते भति
भई सुन मुरही के सोर ।—स० सप्तक, पृ० ३६४ ।

जुवा^७—सका ली० [सं० पुश] दे० 'युवती' । उ०—साजि साज
कृंजन परी नरूपी न नंदकृमार । रही ठौर ठाढ़ी ठगो जुवा जुवा
सो द्वार ।—स० सप्तक, पृ० ३८८ ।

जुवा(५) —वि० [हि० जुदा] दे० 'जुदा' । उ०—मन मिलिमोड़ा
तिका मादुवा, जोभ करे खिण महि जुवा ।—बांकी० ग्रं०,
भा० ३, पृ० १०३ ।

जुबा—वि० [हि०] दे० 'युवा'। उ०—गायति गीत सबे मिलि सुंदरि, बेव जुबा जुडि विप्र पढ़ाहीं।—सुलसी ग्रं०, पृ० १५६।

जुवाड़ी—संज्ञा पुं० [हि० जुपारी] दे० 'जुपारी' । उ०—चोर, डाकू, जुवाड़ी वा दुष्ट हो ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८६ ।

जुवाना—संज्ञा पुं० [सं० युवन्, हि० जवान] दे० 'जवान' ।

जुवानो—संज्ञा पुं० [हि० जवानी] दे० 'जवानी' ।

जुवान्—संज्ञा पुं० [सं० युवन्, हि० जवान] तरुण । जवान । उ०—लखि हिय हँमि कह कृपानिधान । सरिस स्वान मधवान जुवान् ।—मानस, २।३०१ ।

जुवावा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जवाब' । उ०—ता पत्र का जुवाब श्री गुसाई जी ने वा बैष्णव को कृपा करिके यह लिख्यो ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २६१ ।

जुवारा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जवार' । उ०—लह लह जोति जुवार की घर गंवारि की होति ।—मति० ग्रं०, पृ०, ४४४ ।

जुवारी—संज्ञा पुं० [हि० जुपारी] दे० 'जुपारी' । उ०—गृंथ गंवाह ज्यों बले जुवारी ।—हि० क० का०, पृ० २१४ ।

जुष [सं०] १. भोग करनेवाला । चाहनेवाला । २. जानेवाला । ग्रहण करनेवाला । पहुँचनेवाला ।

विशेष—समस्त पदों के धत में इसका प्रयोग मिलता है । जैसे, परलोकजुष, रजोजुष ।

जुष्कक—संज्ञा पुं० [सं०] भान का रसा या जूस [को०] ।

जुष्ट^१—संज्ञा पुं० [सं०] उच्छिष्ट । जूठन [को०] ।

जुष्ट^२—१. तृप्त । तुष्ट । २. सेवित । भुक्त । ३. समन्वित । युक्त । ४. दृष्ट । वाछित । ५. पूजित । ६. अनुकूल [को०] ।

जुष्य^१—वि० [सं०] पूजनीय । सेवनीय [को०] ।

जुष्य^२—संज्ञा पुं० सेवा [को०] ।

जुसाँदा—संज्ञा पुं० [हि० जोसाँदा] दे० 'जोसाँदा' ।

जुस्तजू—संज्ञा स्त्री० [फा०] तलाश । खोज । उ०—गरबे धाज तक तेरी जुस्तजू लासो आम सब किया किए ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १९६ ।

जुहना^(१)—क्रि० प्र० [हि० जुह (= यूप) से नामिक धातु] दे० 'जुहना' । मिलना । उ०—कहो कहूँ कांह जुहे तुम संग ।—पृ० रा०, २ : ३५७ ।

जुहाना^(२)—क्रि० सं० [सं० यूथ, प्रा० जुह + हि० धाना (प्रत्य०)] १. एकत्र करना । २. संवित करना । जोड़ जोड़कर एक जगह रखना ।

संयो० क्रि०—देना । लेना ।

जुहार—संज्ञा स्त्री० [सं० अवहार (= युद्ध का रुकना या बंद होना ?) राजपूतों या क्षत्रियों में प्रचलित एक प्रकार का प्रणाम । अभिवादन । सलाम । बंदगी ।

जुहारना—क्रि० सं० [सं० अवहार (= पुकार या बुलावा)] १. किसी से कुछ सहायता माँगना । किसी का एहसान लेना । २. सलाम या बंदगी करना । उ०—यदि कोई मिले भी तो बुलाने पर भी मत बोलना । जुहारै तो सिर भर हिला देना ।—झ्यामा०, पृ० ९६ ।

जुहावना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जूहाना' ।

जुही—संज्ञा स्त्री० [सं० यूषी] एक छोटा झाड़ या पौधा जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर नीचे मुकीली होती हैं । दे० 'जूही' । उ०—खिली मिलि जूथन जूथ जुही ।—घनानंद, पृ० १४६ ।

विशेष—यह अपने सफेद सुगंधित फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है । ये फूल बरसात में लगते हैं । इनकी सुगंध चमेली से मिलती जुलती बहुत हलकी और मीठी होती है ।

जुहुराण^१—संज्ञा पुं० [सं० जुहुराणः] चंद्रमा [को०] ।

जुहुराण^२—वि० [सं०] वस्त्र बनानेवाला । वस्त्रापूर्वक कार्य करनेवाला [को०] ।

जुहुवान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. वृक्ष । ३. कठोर हृदयवाला व्यक्ति । क्रूर व्यक्ति [को०] ।

जुहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश की लकड़ी का बना हुआ एक अर्धचंद्राकार यज्ञपात्र जिससे घृत की आहुति दी जाती है । २. पूर्वं दिशा । ३. अग्नि की जिह्वा । अग्निशिखा [को०] ।

जुहुरा—संज्ञा पुं० [प्र० जुहर] प्रकट होना । जाहिर होना । आभिर्भाव । उत्पत्ति । उ०—यह माहूद ठीका जो पूरा हुआ । तो यमजाल का फिर जुहुरा हुआ ।—कबीर मं०, पृ० १३४ ।

जुहुराण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अध्वर्यु । २. अग्नि । ३. चंद्रमा [को०] ।

जुहुवाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जुहुराण' [को०] ।

जुहुवान—संज्ञा पुं० [सं० जुहुवत्] पावक । अग्नि [को०] ।

जुहोता—संज्ञा पुं० [सं० जुहुवत्] यज्ञ में आहुति देनेवाला ।

जू—संज्ञा स्त्री० [सं० यूका] एक छोटा स्वेदज कीड़ा जो दूसरे जीवों के शरीर के आश्रय से रहता है ।

विशेष—ये कीड़े बालों में पड़ जाते हैं और काले रंग के होते हैं । धागे की धोर इनके छद्म पैर होते हैं और इनका पिछला भाग कई गंडों में विभक्त होता है । इनके मुँह में एक सूँड़ी होती है जो नोक पर झुकी होती है । ये कीड़े उसी सूँड़ी की जानवरों के शरीर में चुभोकर उनके शरीर से रक्त चूसकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं । चीकर भी इसी की जाति का कीड़ा है पर वह सफेद रंग का होता है और कपड़ों में पड़ता है । जूँ बहुत घंटे देती है । ये घंटे बालों में चिपके रहते हैं और दो ही तीन दिन में एक जाते और छोटे छोटे कीड़े निकल पड़ते हैं । ये कीड़े बहुत सूक्ष्म होते हैं और बड़े ही दिनों में रक्त चूसकर बड़े हो जाते हैं । भिन्न भिन्न प्रादमियों के शरीर पर की जूँ भिन्न भिन्न आकृति धोर रंग की होती हैं । लोगों का कथन है कि कोढ़ियों के शरीर पर जूँ नहीं पड़ती ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

यौ०—जूँमुहाँ ।

मुहा०—कानों पर जूँ रेंगना = चेत होना । स्थिति का जान होना । सतर्कता होना । होश होना । कानों पर जूँ न रेंगना = होश न होना । बात ध्यान में न आना । जूँ की चाल = बहुत धीमी चाल । बहुत सुस्त चाल ।

जू^१—अव्य० [हि०] दे० 'जू' । उ०—मारू सायर लहर जू
हिवड़े द्रव काढ़त ।—ढोला०, पृ० ६१२ ।

जूठ^१—वि०, संज्ञा पु० [सं० जुष्ट, हि० जूठ] दे० 'जूठा' ।

जूठन—संज्ञा स्त्री० [हि० जूठन] दे० 'जूठन' । उ०—तब से रेखा
सगरी श्री गुसाई जी की टहल करे और महाप्रसाद श्री गुसाई
जी की जूठन लेई ।—दो सी बावन०, भा० २, पृ० ६२ ।

जूठा—वि०, संज्ञा पु० [सं० जुष्ट, हि० जूठा] दे० 'जूठा' ।

जूड़िहा—संज्ञा पु० [हि० झुंड] वह देख जो बैलों के झुंड के आगे
चलता है ।

जूदन—संज्ञा पु० [देश०] [स्त्री० जूदनी] बंदर । (मदारी) ।

जूमुँह—वि० [हि० जूँ + मुँह] वह जो देखने में सीधा सादा पर
वास्तव से बड़ा भूत हो ।

जू—अव्य० [सं० (श्री) युक्त] १. एक आदरमूचक शब्द जो
अज, बुंदेलखंड, राजपूताना आदि में बड़े लोगों के नाम के
साथ लगाया जाता है । जी । जैसे, कन्हैया जू । २. संबोधन
का शब्द । दे० 'जी' ।

जू^२—अव्य० [देश०] एक निरर्थक शब्द जो बैलों या भैसों को
खड़ा करने के लिये बोला जाता है ।

जू^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती । २. वायुमंडल । वायु । ३.
बैल या घोड़े के मस्तक पर का टीका ।

जू^४—वि० [वे० सं०] तेज । वेगवान् (क्रो०) ।

जूआ^१—संज्ञा पु० [सं० युग] १. रथ या गाड़ी के आगे हरभ में
बाँधी या जड़ी हुई वह लकड़ी जो बैलों के कंधे पर रहती है ।
क्रि० प्र०—बाँधना ।

१२. जुआठा । ३. चक्की में लगी हुई वह लकड़ी जिसे पकड़कर
बहु किराई जाती है ।

जूआ^२—संज्ञा पु० [सं० दूत, प्रा० जूआ] वह खेल जिससे जीतने-
वाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है । किसी घटना
की संभावना पर हार जीत का खेल । दूत । वि० दे० 'जूआ' ।

क्रि० प्र०—खेलना ।—जीतना ।—हारना ।—हीना ।

जूआखाना—संज्ञा पु० [हि० जूआ + खाना] वह अड्डा, घर
या स्थान जहाँ लोग जुआ खेलते हैं ।

जूआघर—संज्ञा पु० [हि० जूआ + घर] दे० 'जूआखाना' ।

जूआचोर—संज्ञा पु० [हि० जूआ + चोर] दे० 'जूआचोर' ।

जूक—संज्ञा पु० [यूना० जूक्स] तुला राशि ।

जूग^१—संज्ञा पु० [सं० युग] दे० 'युग' । उ०—तोहे जजो परे हीत
उबासिन जूग पलटि न गेल ।—विद्यापति, पृ० ३२४ ।

जूजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कर्णपाली । कान की सलरी या लीर ।
उ०—कोई अपनी जूजी छेदकर कड़ा पहन लेता और कोई
उसको काटकर फेंक देता है ।—कबीर मं०, पृ० ३६१ ।

जूजू—संज्ञा पु० [अनु०] एक कल्पित भयंकर जीव जिसका नाम लोग
लड़कों को डराने के लिये लेते हैं । हाऊ ।

जूझ—संज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुझ] युद्ध । लड़ाई । भगड़ा ।

उ०—(क) पाई नहीं जूझ हठ कीन्हे । जे पावा ते प्रापुहि
बीन्है ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कोने परा न छूटिहै सुन
रे जीव झूझ । कबिर मोड़ मैदान में करि इंदिन मो झूझ ।
—कबीर (शब्द०) ।

जूझना^१—क्रि० प्र० [सं० युद्ध गा हि० झूझ] १. लड़ना । २.
लड़कर मर जाना । युद्ध में प्राणत्याग करना । उ०—जूझे
मकल सुमट करि करनी । बंधु समेत पग्यो नृप धरनी ।—
तुलसी (शब्द०) ।

जूट^१—संज्ञा पु० [सं०] १. जटा की गाँठ । जूड़ा । २. लट । जटा ।
३. शिव की जटा ।

जूट^२—संज्ञा पु० [प्र०] १. पटसन । २. पटसन का बना कपड़ा ।
यौ०—जूट मिल = वह मिल जहाँ पटसन के रेशों या धागों से
बोरे, टाट आदि बनते हैं । चटकल ।

जूटना^१—क्रि० प्र० [हि० जुटना] मिचाना । जोड़ना ।
जुटाना ।

जूटना^२—क्रि० प्र० [हि० जुटना] १. प्रवृत्त होना । लग जाना ।
२. एकत्र होना । उ०—बचना हार गई रण जूटे । फिरियो
सेव नगरे फूटे । रा० ७०, पृ० २५६ ।

जूटि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जुड] १. मंज २. साय । २. जोड़ी ।

जूटी^१—वि० स्त्री० [सं० जुष्ट] दे० 'जूठी' । उ०—चाट रहे हैं जूठी
पत्तल कभी सड़क पर पड़े हुए हैं ।—भररा, पृ० ६६ ।

जूठी^१—वि० [सं० जुष्ट] १. दे० 'जूठन' । २. दे० 'जूठा' ।

जूठन—संज्ञा स्त्री० [हि० जूठ] १. वह खाने पीने की वस्तु जिसे
किसी ने खाकर छोड़ दिया हो । वह भोजन जिसे किसी ने
खाकर छोड़ दिया हो । वह भोजन जिसमें से कुछ भंश किसी
ने मुँह लगाकर खाया हो । किसी के आगे का बचा हुआ
भोजन । उच्छिष्ट भोजन ।

क्रि० प्र०—खाना ।

२. वह पदार्थ जिसका व्यवहार किसी ने एक दो बार कर
लिया । हो । भुक्त पदार्थ । १० जूठा ।

जूठा^१—वि० [सं० जुष्ट, प्रा० जुठ] [वि० स्त्री० 'जूठी' । क्रि०
जूठारना] १. (भोजन) जिसे किसी ने खाया हो । जिसमें
किसी ने खाने के लिये मुँह लगाया हो । किसी के खाने से
बचा हुआ । उच्छिष्ट । जैसे,—जूठा भोजन, जूठा भात, जूठी
पत्तल । उ०—विनती राय भवीन की, सुनिए साह सुजान ।
जूठा पातरि भलत हैं बारो, बायस खान ।—(शब्द०) ।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जूठा भोजन खाना निषिद्ध है ।
२. जिसका स्वयं मुँह भक्षण किसी जूठे पदार्थ से हुआ हो ।
जैसे, जूठा हाथ, जूठा बरतन ।

मुहा०—जूठे हाथ से कुत्ता न मारना = बहुत अधिक कड़ूस होना ।

३. जिसे किसी ने व्यवहार करके दूसरे के व्यवहार के उपयोग
कर दिया हो । जिसे किसी ने अपवित्र कर दिया हो । जैसे,
जूठी स्त्री ।

जूठा^१—संज्ञा पुं० खाने पीने की वह वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसमें से कुछ किसी ने मुँह लगाकर खाया हो। किसी के भागे का बचा हुआ भोजन। ठूठन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।—चाटना।

जूठियाना^१—क्रि० म० [हि० जूठ + दयाना (प्रत्य०)] १. जूठा कर देना। उ०—माखी काढ़ के हाथ न आवे। गंध सुगंध सबे जुठियावे।—सं० दरिया पृ० ६।

जूठी—वि०, संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जूठा'।

जूड़ा^१—वि० [सं० जड़] [क्रि० जुड़ाना, जुड़वाना] ठंडा। शीतल। उ०—झोझा डाइन उर से डरपे जहर जूड़ा हो जाई। विषधर मन में कर पछिन वा बहुरि निकट नहि भाई।—कबीर श्र०, भा० २, पृ० २८।

जूड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० जूड़ा] दे० 'जूड़ा'।

जूड़ना^१—संज्ञा पुं० [देश०] पहाड़ी बिच्छू जो आकार में बड़ा और काले धूरे रंग का होता है।

जूड़ा^१—संज्ञा पुं० [सं० जूट अथवा सं० जूडा] १ मिर के डालों की वह गाँठ जिसे स्त्रियाँ अपने बालों को एक साथ लपेटकर अपने सिर के ऊपर बाँधती हैं। उ०—काको मन बाँधत न यह जूड़ा जपनहार।—हामा०, पृ० २६।

विशेष जटाधारी साधु लोग भी जिन्हें अपने बालों की सजावट का विशेष ध्यान नहीं रहता अपने सिर पर इस प्रकार डालों को लपेटकर गाँठ बनाते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।—सोलना।

२. चोटी। कलंगी। जैसे, कबूतर या बुलबुल का जूड़ा। ३. पगड़ी का पिछला भाग। ४. मूँज आदि का पूला। गुँजारी। ५. बालों के धड़े के नीचे रखने का पास आदि की लपेटकर बनाई हुई गड़गड़।

जूड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० जूड़ा] [स्त्री० जूड़ी] बच्चों का एक रोग जिसमें सरदी के कारण साँस जल्दी जल्दी चलने लगती है और साँस लेते समय बालों में गड़गड़ जाता है। कभी कभी पेट में पीड़ा भी होती है और बच्चा मुक्त पड़ा रहता है।

जूड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जूड़ा] एक प्रकार का ज्वर जिसमें ज्वर भाने के पहले रागों को जाड़ा मालूम होने लगता है और उसका शरीर पसीना निकालता है। उ०—जो छाह की मुनहि बडाई। दयास भवितु जूड़ी भाई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष यह ज्वर कई प्रकार का होता है। कोई नित्य आता है, कोई दूसरे दिन, कोई तीसरे दिन और कोई चौथे दिन आता है। नित्य के इस प्रकार के ज्वर को जूड़ी, दूसरे दिन आनेवाले को अंतरा, तीसरे दिन आनेवाले को त्रिवरा और चौथे दिनवाले को चौथिया कहते हैं। यह रोग प्रायः मलेरिया से उत्पन्न होता है।

क्रि० प्र०—घाना।

जूड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जुड़ना] जुट्टी।

जूड़ी^१—वि० [हि० जूड़ा] ठंडी। शीतल। उ०—किंतु बंगके के

कमरे में घुसते ही सीतल जूड़ी छाया ने अपना असर किया।
—किन्नर०, पृ० ७।

जूण^१—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'।

जूत^१—संज्ञा पुं० [हि० जूता] १. जूता। २. बड़ा जूता।

जूत^२—वि० [सं०] १. अग्रदूत किया हुआ। २. खींचा हुआ। ३. दिया हुआ। प्रदत्त। ४. गया हुआ। गत [को०]।

जूता—संज्ञा पुं० [सं० युक्त, प्रा० जुत] चमड़े आदि का बना हुआ पैनी के आकार का वह ढाँचा जिसे दोनों पैरों में लोग काँटे आदि से बबने के लिय पहनते हैं। जोड़ा। पनही। पादत्राण। उपानह।

विशेष—जूता दो या दो से अधिक चमड़े के टुकड़ों को एक में सोकर बनाया जाता है। वह भाग जो तलवे के नीचे रहता है तला कहलाता है। ऊपर के भाग को उपतला कहते हैं। तले का पिछला भाग एंडी या एंड्र और अगला भाग नोक या ठोंकर कहलाता है। उपतले के व अंश जो पैर के दोनों ओर खड़े उठे रहते हैं दोवार कहलाते हैं। वह चमड़े की पट्टी जो एंडी के ऊपर दोनों दीवारों के जोड़ पर लगी रहती है, लगेट कहलाती है। देशों भूते कई प्रकार के होते हैं। जैसे,—पंजाबी, दिल्लीवाल, सतीमशाही, गुरगावी, घेतला, चट्टी इत्यादि। अंग्रेजों जूता के भी कई भेद होते हैं। जैसे, बूट, स्लिपर, पंप इत्यादि।

महाभारत के अनुशासन पर्व में छाते और जूते के प्राविष्कार के संबंध में एक उपाख्यान है। युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि आदि आदि कर्मों में छाता और जूता दान करने का जो विधान है उसमें किसने निकाला। भीष्म जी ने कहा कि एक बार जमदग्नि ऋषि श्रीहृदय धनुष पर बाण चढ़ा चढ़ाकर छोड़ते थे और उनकी पत्नी रेणुका फेंके हुए बाणों को ला लाकर उन्हें देती थी। धीरे धीरे दोपहर हो गई और कड़ी धूप पड़ने लगी। ऋषि उसी प्रकार बाण छोड़ते गए। पतिव्रता रेणुका जब बाण लाने गई तब धूप से उसका सिर चकराने लगा और पैर जलने लग। वह शिथिल होकर कुछ देर तक एक वृक्ष की छाया के नीचे बैठ गई। इसके उपरांत वह बाणों को एकत्र करके ऋषि के पास लाई। ऋषि क्रोध होकर देर होने का कारण बार बार पूछते लगे। रेणुका ने सब व्यवस्था ठीक ठीक वह सुनाई। तब तो जमदग्नि जी सूर्य पर प्रत्यंत क्रोध हुए और धनुष पर बाण चढ़ाकर सूर्य को मार गिराने पर तैयार हुए। इसपर सूर्य ब्राह्मण के वेश में ऋषि के पास गए और कहने लगे सूर्य ने आपका क्या बिगाड़ा है जो आप उन्हें मार गिराने को प्रस्तुत हुए हैं। सूर्य से लोक का कितना उपकार होता है? जब इसपर भी ऋषि का क्रोध शांत न हुआ तो ब्राह्मण वेशधारी सूर्य ने कहा कि सूर्य तो सदा वेम के साथ चलते रहते हैं। आप का लक्ष्य ठीक कैसे बैठेगा? ऋषि ने कहा कि जब मध्याह्न में कुछ क्षण विश्राम के लिये वे ठहर जाते हैं तब मैं मारूँगा। इसपर सूर्य ऋषि की शरण में आए। तब ऋषि ने कहा कि 'अच्छा? अब कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिसमें हमारी पत्नी को धूप का कष्ट न हो।' इस

पर सूर्य ने एक जोड़ा जूता घोर एक छाता देकर कहा कि मेरे ताप से सिर घोर पैर की रक्षा के लिये ये दोनों पदार्थ हैं, इन्हें धाप ग्रहण करे। तब से छाते और जूते का दान बड़ा फलदायक माना जाने लगा।

यौ०—जूताखोर।

मुहा०—जूता उठाना = मारने के लिये जूता हाथ में लेना। जूता मारने के लिये तैयार होना। (किसी का) जूता उठाना = (१) किसी का दासत्व करना। किसी की हीन से हीन सेवा करना। (२) खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता उछलना या चलना = (१) जूतों से मारपीट होना। (२) लड़ाई दंगा होना। झगड़ा होना। जूता खाना = (१) जूतों की मार खाना। जूतों का पहार सहना। २. बुरा बला सुनना। ऊँचा नीचा सुनना। विरस्कृत होना। जूता गाँठना = (१) फटा हुआ जूता सीना। (२) चमार का काम करना। नीचा काम करना। जूता बाइबा = धपती प्रतिष्ठा का ध्याम न रखकर दूसरे की शुभूषा करना। खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता पड़ना = जूता मारना। जूता देना = जूता मारना। जूता पड़ना = (१) जूतों की मार पड़ना। उगमह प्रहार होना। (२) मुँहतोड़ जबाब मिलना। किसी अनुचित बात का कड़ा और मर्मभेदी उत्तर मिलना। ऐसा उत्तर मिलना कि फिर कुछ कहते सुनते न बने। (३) घाटा होना। मुकसान होना। हानि होना। जैसे,—बैठे बैठाए १० का जूता पड़ गया। जूता पहनना = (१) पैर में जूता डालना। (२) जूता मोल लेना। जूता पहनना = (१) दूसरे के पैर में जूता डालना। (२) जूता मोल ले देना। जूतः खरीद देना। जूता बरसना = १० 'जूता पड़ना' (१)। जूता बैठना = जूते की मार पड़ना। १० 'जूता पड़ना'। (२) जूता भागना = (१) किसी अनुचित बात का ऐसा कड़ा उत्तर देना कि दूसरे से फिर कुछ कहते सुनते न बने। मुँह तोड़ जबाब देना। (२) जूते से मारना। जूता लगना = (१) जूते से मार पड़ना। (२) मुँह तोड़ जबाब मिलना। (३) किसी अनुचित कार्य का बुरा फल प्राप्त होना। ऐसा बुरा काम किया हो तत्तः नैसा ही बुरा फल मिलना। किसी अनुचित कार्य का पुरतः ऐसा परिणाम होना जिससे उसके करनेवाले को लज्जित होना पड़े। (४) प्रतिशय हानि उठाना। जूता लगाना = जूते से मारना। जूते का धापमी = ऐसा धापमी जो बिना जूतः साए टीक काम न करे। बिना कठोर दंड या शासन के उचित व्यवहार न करने वाला मनुष्य। जूते से खबर लेना = जूते से मारना। जूतों दाब बैठना = धापस में सड़ाई भगड़ा होना। परम्पर बर विरोध होना। धनबन होना। जूतों से घाता = जूते से मारना। जूते लगाना। जूते से मारे के लिये तैयार होना। जूतों से बात करना = जूते से मारना। जूता लगाना।

जूताखोर—वि० [हि० जूता+फा० खोर] १ जो जूता खाया करे। २ जो निर्लज्जता के कारण मार या गाला की कुछ परवाह न करे। निर्लज्ज। बेहया।

जूति—संज्ञा पु० [सं०] १. बेग। तेजी। २. अपसर होना। भागे बढ़ना

(को०)। ३. प्रवाह गति या प्रवाह (को०)। ४. उरोजना। प्रेरणा (को०)। ५. पवृत्ति। भुकाव (को०)। ६. मन की एकाग्रता (को०)।

जूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तरह का कपूर (को०)।

जूती - संज्ञा स्त्री० [हि० जूता] १. स्त्रियों का जूता। २. जूता।

यौ०—जूतीकारी। जूतीयोग। जूतीछुलाई। जूतीपैजार।

उ०—जूती पैजार और लाठी डबों तक की नोबत आती है।

—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४५।

मुहा०—जूतियाँ उठाना = नीच सेवा करना। दागधर करना।

जूती कीनोक पर मारना = कुछ न समझना। तुच्छ समझना।

कुछ परवाह न करना। जैसे,—ऐसा रूपया में जूती की नोक

पर मारना है। जूती की नोक खफा होना = परवा न करना।

फिक न करना। उ०—खफा काहे हो होनी हो बेगम?

हमारी जूती की नोक खफा हो।—पैर कु०, भा० १, पृ०

२१। जूती की नोक से = बला से। कुछ परवाह नहीं।

(स्त्री०)। उ०—बढ़ पहाँ पहुँचाती है तो मेरी जूती की

नोक से। जूती के बराबर = अत्यंत तुच्छ। बहुत नाचीज।

(किसी को) जूती के बराबर न होना = किसी की अपेक्षा

अत्यंत तुच्छ होना। किसी के सामने बहुत नाचीज होना।

(खुशामद या तमना से भी कभी कभी लोग इस वाक्य का

प्रयोग करते हैं। जैसे,—तैं तो चापकी हूँ तो के बराबर भी

नहीं हूँ)। जूती आटना = खुशामद करना। चापलूसी करना।

जूती बाल बंटना = १० 'जूतियाँ दाल बंटना'। उ०—छेड़खानी

करनी है, घाघो पड़ोवन दम तुम लवें। दूसरी बोली लवें मेरी

जूती। उसने कहा जूती लगे तेरे सर पर। वह बोली, तेरे होते

सोनों पर। चलो उस जूती दान दवने लगे।—पैर कु० भा०

१, पृ० ३५। जूती देना जूती में मारना। जूती पर जूती

चढ़ना = यात्रा का आगम 'ब्याई पड़ना'। (जब जूती पर जूती

चढ़ने लगती है तब लोग यक्ष समझते हैं कि जिसकी जूती

है उसे कष्टी पाया करनी श्रेंगे)। जूती पर मारना = १०

'जूती की नोक पर मारना'। जूती पर रखकर रोटी देना =

अपमान के साथ रोटी देना। निरादर के साथ रखना

या पालना। जूती पहनना = (१) जूती में पैर डालना। (२)

नया जूता मोल लेना। जूती पहनना = (१) किसी के पैर

में जूती डालना। (२) नया जूता मोल ले देना। जूती से =

१० 'जूती की नोक से'। जूतियाँ खाना = (१) जूतियों से

पिटना। (२) ऊँचा नीचा सुनना। भया बुरा सुनना।

कड़ी बाने मझना। (३) अपमान गहना। जूतियाँ गाँठना =

(१) फटी हुई जूतियाँ को सीना। (२) चमार का काम

करना। अत्यंत तुच्छ काम करना। निकृष्ट व्यवसाय

करना। जूतियाँ छटकाने फिरना = (१) दीनतावण इधर-

उधर मारा मारा फिरना। दुर्दशाग्रस्त होकर घूमना। (फटे

बुगने जूते को घमोटने से चट चट शब्द होता है)। (२)

व्यर्थ इधर उधर घूमना। जूतियाँ दाल बंटना = धापस में

लड़ाई झगड़ा होना। बैर विरोध होना। फूट होना।

जूतियाँ पड़ना = जूतियों की मार पड़ना। जूतियाँ बगल

में दबाना = जूतियाँ उतारकर भागना जिसमें पैर की घाहट न सुनाई दे। घुरचाप भागना। धीरे से चलता बनना। खिसकना। जूतियाँ मारना = (१) जूतियों से मारना। (२) कड़ी बातें कहना। अपमानित करना। विरस्कृत करना। (३) कड़ा उत्तर देना। मुँह तोड़ जवाब देना। जूतियाँ लगना = जूतियों से मारना। जूतियाँ सीधी करना = अत्यंत नीच सेवा करना। दासत्व करना। जूतियों का सदका = नरगुणों का प्रमोद (विनम्र कृतज्ञता ज्ञापन)।

जूतीकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० जूती + कार] जूतों की मार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जूतीखोर—वि० [हि० जूती + फा० खोर] १. जो जूतों की मार खाया करे। २. जो निर्लज्जता से मार और गाला की परवाह न करे। निर्लज्ज। बेहूया।

जूती छुपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जूती + छुपाना] १. विवाह में एक रस्म।

विशेष—स्त्रियाँ कोहबर से वर के चलते समय वर का जूता छिपा देती हैं और तबतक नहीं देती हैं जबतक वह जूते के लिये कुछ नेग न दे। यह काम प्रायः ने स्त्रियाँ करती हैं जो नाते में यश की बहन होती हैं।

२. वह नेग जो नर स्त्रियों को जूतो छुपाई में देना है।

जूती पैजार—संज्ञा स्त्री० [हि० जूती + फा० पैजार] १. जूतों की मार पीट। धोल धप्पड़। २. जड़ार्द दंगा। कलह, भगड़ा।

क्रि० प्र०—करना।

जूथ(५)—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] दे० 'यूथ'। उ०—मयो पंक प्रति रंग को तामे गज से जूथ कंसोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २०४।

यौ०—जूथ जूथ = भूत का भूत। समूहबद्ध। उ०—जूथ जूथ मिलि सजी गुआसिनि। निज अति विदरहि मदन विलासिनी।—मानस, १।३।५।

जूथका—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथिका] दे० 'यूथिका'।

जूथिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथिका] दे० 'यूथिका'।

जूथ—वि० [सं०] शीघ्र। त्वरित। तुरंत। जल्दी।

यौ०—जूथग्रहम—कोई बात तुरंत समझनेवाला। तीव्रबुद्धि।

जूथ—वि० [फा०] तेज। द्रुत [की०]।

जूथ—संज्ञा पुं० [सं० यूथन् = सूर्य पथवा देश] समय। काल। वेला।

जूथ—संज्ञा पुं० [सं० जूथं (= पुराणा)] पुराणा। उ०—का धनि लाभ धन धन तोरे। देखा राम नये के मोरे।—तुलसी (शब्द०)।

जूथ—संज्ञा पुं० [सं० (जूथं = एक तृण)] तृण। घास। तिनका।

जूथ—संज्ञा पुं० [सं०] अंगरेजी वर्ष का छठा महीना जो जेठ के लगभग पड़ता है।

जूथ—संज्ञा पुं० [सं० यथन ?] एक जाति जो सिंधु और सतलज के बीच के प्रदेशों में रहती है और गाय बैल, ऊँट आदि पावती है।

जूना^१—संज्ञा पुं० [सं० जूणं (= एक तृण)] १. घास या फूस को बटकर बनाई हुई रस्सी जो बोझ आदि बाँधने के काम में आती है। २. घास फूस का लच्छा या पूला जिससे दगहन मँजते या मलते हैं। उसकन। उबसन। उ०—रंग ज्यादा गोरा लो नहीं, माँवले मे कुछ निखरा हुआ है। हाथ में जूना है और बरतन मँजते मँजते वह खीझ उठी।—बहकते०, पृ० ६३।

जूना^२—वि० [सं० जीर्ण] [वि० स्त्री० जूनी] दे० 'जीर्ण'। उ०—जूना गीत दोहा चारणां भी कै सुनाया।—शिवर०, पृ० ४७।

जूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'। उ०—सतगुरु ते जोगी जोगु पाया। अस्थिर जोगी फिर जूनी न आया।—प्राण०, पृ० १११।

जूनियर—वि० [सं०] काल क्रम से पिछला। जो पीछे का हो। छोटा।

यौ०—जूनियर हाई स्कूल = वह हाई स्कूल जिसमें कक्षा छह से आठ तक पढ़ाई होती है। पूर्व माध्यमिक विद्यालय।

जूनी—संज्ञा स्त्री० [हि० जूना] दे० 'जूना'। उ०—जूनी से कनाती तेख सींची आगि जाली।—शिवर०, पृ० ४२।

जूनी(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'। उ०—फिर फिर जूनी संकट पावे। गर्भवास में बहु दुख पावे।—सहस्र०, पृ० ८।

जूप—संज्ञा पुं० [सं० जूत, प्रा० जूष्ठा या जूव] १. जूमा। जूत। उ०—जैसे, अंध रूप, विनु गौठ धन जूप की जगों हीन गुण आण है न रूप जल पान की।—हनुमान (शब्द०)। २. विवाह में एक गीति जिसमें वर 'पी' बंधु परस्पर जूमा खेलने हैं। पासा। उ०—कर कपै कंगन नहि छूटे। खेलत जूप जुगम जुवतिन में हारे रघुपति जीति जनक की।—सूर (शब्द०)।

जूप—संज्ञा पुं० [सं० यूप] दे० 'यूप'।

जूम—संज्ञा पुं० [देश०] यूक। पीक। उ०—सुरती का जूम गिब मे जमीन पर गिरा।—नई०, पृ० ३०।

जूमना(५)—क्रि० प्र० [सं० जमा] इकट्ठा होना। जुटना। एकत्र होना। उ०—(क) लामो हुसो हाट एक मदन घनी को जहाँ गोपिन को बुंद रह्यो जूमि चहुँधारी में।—देश (शब्द०)। (ख) गिरिधरदास भूमि जूमि आसु तदि, बाज लौं दराज लेहि परन दबाय के।—गोपाल (शब्द०)।

जूमना(१)—क्रि० प्र० [हि० जूमना] दे० 'जूमना'।

जूर(५)—संज्ञा पुं० [हि० जुरना] जोड़। संघय। उ०—बान आहि सब दरबक जूर। बान लाम होइ बाँचें मूर।—जायसी (शब्द०)।

जूरना(५)—क्रि० प्र० [हि० जोड़ना] जोड़ना। उ०—अबध मे सतन रहूँ दूरि। बंधु सखा गुरु कहत राम को नाते बहुतेक जूरि।—देव स्वामी (शब्द०)।

जूरना(५)—क्रि० प्र० [हि० जोड़ना] इकट्ठा होना। जुटना।

जूरर—संज्ञा पुं० [सं०] पंच। न्यायसभ्य। जूरी का सदस्य।

जूरा—संज्ञा पुं० [हि० जूड़ा] दे० 'जूड़ा'।

जूरिस्ट—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह व्यक्ति जो कानून, विशेषकर दीवानी कानून में पारंगत हो। व्यवहार-शास्त्र-नियुक्त।

जूरिस्टिकशन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह सीमा या विभाग जिसके अंदर शक्ति या अधिकार का उपयोग किया जा सके। जैसे, वह स्थान इस हाई कोर्ट के जूरिस्टिकशन के बाहर है।

जूरी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुरना] १. घास, पत्तों या टहनियों का एक बंधा हुआ छोटा पूला। जुट्टी। जैसे, तमाखू की जूरी। २. सूरन आदि के नए कल्ले जो बंधे हुए निकलते हैं। ३. एक पकवान जो पोथों के नए बंधे हुए कल्लों को गोले बेलन में लपेटकर तबने से बनता है। ४. एक प्रकार का पोषा या झाड़ जिससे झार बनता है।

विशेष—यह पोषा गुजरात, कराची आदि के खारे हलदलों में होता है।

जूरी^२—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] वे कुछ व्यक्ति जो अदालत में जज के साथ बैठकर खून, डाकाजनी, राजद्रोह, षड्यंत्र आदि के संगीन मामलों को सुनते और अंत में अभियुक्त या अभियुक्तों के अपराधी या निरपराध होने के संबंध में अपना मत देते हैं। पंच। सालिस। जैसे,—जूरी ने एकमत होकर उसे बोर बताया तदनुसार जज ने उसे छोड़ दिया।

विशेष—जूरी के लोग नागरिकों में से चुने जाते हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता। खर्च भर मिलता है। इन्हें निष्पक्ष रहकर ध्याय करने की शपथ करनी पड़ती है। जब तक किसी मामले की सुनवाई नहीं हो लेती, इन्हें बराबर अदालत में उपस्थित होना पड़ता है। और देशों में जज इनका बहुमत मानने को बाध्य है और तदनुसार ही अपना फैसला देता है। पर हिंदुस्तान में यह बात नहीं है। हाई कोर्ट और चीफ कोर्ट को छोड़कर, जिले के दोर जज जूरी का मत मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। जूरी से मतैक्य न होने की अवस्था में वे मामले हाई कोर्ट या चीफ कोर्ट भेज सकते हैं।

जूरीमैन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] दे० 'जूरी'।

जूरू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज़र'।

जूरू—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण।

पर्या०—उच्छक। उत्प।

जूरूख्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृणविशेष। २. कुश। दम [को०]।

जूरूख्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवधान्य।

जूरू^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेग। २. आदित्य। ३. देह। ४. बह्ना। ५. कोष। ६. स्थियों का एक रोग। ७. आग्नेयास्त्र [को०]।

जूरू^२—वि० १. वेगयुक्त। वेगवान। तेज। २. द्रवित। गला हुआ। ३. ताप देनेवाला। ४. स्तुति करने में कुशल।

जूरू^३—संज्ञा स्त्री [सं०] १. श्वर। २. ताप। गरमी [को०]।

जूलाई—संज्ञा स्त्री [ग्रं० जुलाई] दे० 'जुलाई'।

जूबला—संज्ञा पुं० [देश०] पैर। उ०—इम पतसाह मुगे अकुलायी। अहिजागे जुबल तल प्रायो।—रा० क०, पृ० ६४।

४-१७

जूवा^१—संज्ञा पुं० [हिं० जूवा] दे० 'जुवा'। उ०—टांडा तुमने लावा मारी। बनिज किया पूरा बेपारी। जूवा खेला पूंजी हारी। अब चलने की भई तयारी।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६।

जूवा^२—वि० [हिं०] दे० 'जुवा'। उ०—नामरूप गुन जूवा जूवा पुनि व्यवहार भिन्न ही ठाट।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७३।

जूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी उबाली या पकाई हुई वस्तु का पानी। भोल। रसा। २. उबाली या पकाई हुई दाल का पानी।

जूषण—संज्ञा पुं० [सं०] घाय नामक पेड़ जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

जूस^१—संज्ञा पुं० [सं० जूष] १. मूँग भरहर आदि की पकी हुई दाल का पानी जो प्रायः रोगियों को पथ्य रूप में दिया जाता है।

मुहा०—जूस देना = उबली हुई दाल का पानी पिलाना। जूस सेना = (१) उबली हुई दाल का पानी पीना। (२) रोगी का सशक्त होकर खाने पीने लायक होना।

२. उबली हुई चीज का रस। रसा।

क्रि० प्र०—काड़ना। निकालना।

जूस^२—संज्ञा पुं० [फा० जुस्त, तुलनीय सं० युक्त] १. युग्म संख्या। सम संख्या। ताक का उलटा। जैसे,—२, ४, ६, ८।

यौ०—जूस ताक।

जूस ताक—संज्ञा पुं० [हिं० जूस + फा० ताक] एक प्रकार का जुआ जिसे लड़के खेलते हैं।

विशेष—एक लड़का अपनी मुट्ठी में छिपाकर कुछ कौड़ियां ले लेता है और दूसरे से पूछता है—'जूस कि ताक?' अर्थात् कौड़ियों की संख्या सम है या विषम? यदि दूसरा लड़का ठीक बूझ लेता है तो जीत जाता है और यदि नहीं बूझता तो उसे हारकर उतनी ही कौड़ियां बुझानेवाले को देनी पड़ती हैं जितनी उसकी मुट्ठी में होती हैं।

जूस ताखा—संज्ञा पुं० [हिं० जूस + फा० ताक] दे० 'जूस ताक'। उ०—बसन के दाग धोवे, नखलत एक टोवे, चूर लै चुरी को खेन एक जूस ताख है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १६१।

जूसी—संज्ञा स्त्री [हिं० जूस] वह गाढ़ा लसीला रस जो ईख के पकते रस को गुड़ के रूप में ठोस होने के पहले उतारकर रस देने से उसमें से छूटता है। खंड का पसेब। चोटा। छोटा।

जूह^१—संज्ञा पुं० [सं० यूथ, प्रा० जूह] झुंड। समूह। उ०—(क) इह इह बज्जे इमरु, जूह जुगिनि जुरि नाची।—हम्मीर०, पृ० ५८। (ख) एकदि बार तासु पर छाईन्हि गिरि तरु जूह।—मानस, ६।६५।

जूहर—संज्ञा पुं० [फा० जोहर या हिं० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार दुर्ग में शत्रु का प्रवेश निश्चित जान लिये चिता पर बैठकर जल जाती थी और पुरुष दुर्ग के बाहर लड़ने के लिये निकल पड़ते थे। वि० दे० 'जोहर'।

जूहारना^१—क्रि० सं० [हिं० जूहारना] दे० 'जूहारना'। उ०—सासु जूहारवा चाल्यो छह राई।—बी० रासो, पृ० २६।

जूहिया—वि० [हि० जूही + इया (प्रत्य०)] जूही वैसी । उ०—
हेमंती भोस की जूहिया नमी भीतर पहुँच रही थी ।—नई०,
पृ० ४२ ।

जूही^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी] १. फैलनेवाला एक झाड़ू या पोधा
जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर
नीचे मुकीली होती हैं । उ०—जाही जूही बगुचन लावा ।
पुढ़प सुदरसन लाग सुहावा ।—जायसी ग्रं०, पृ० १३ ।

विशेष—यह हिमालय के पंचाल में प्रायः प्राय उगता है । यह
पोधा फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है । इसके फूल
सफेद चमेली से मिलते जुलते पर बहुत छोटे होते हैं । सुगंध
इसकी चमेली ही की तरह हलकी सीठी और मनभावनी होती
है । ये फूल बरसात में लगते हैं । जूही को कहीं कहीं पहाड़ी
चमेली भी कहते हैं । पर जूही का पोधा फैलने में चमेली से
नहीं भिन्नता, कुंद से मिलता है । चमेली की पत्तियाँ सीकों के
दोनों ओर पंक्तियों में लगती हैं पर इसकी नहीं । जूही के फूल
का घनत्व बनता है ।

२. एक प्रकार की घातशबाजी जिसके घूटने पर छोटे छोटे फूल
से झड़ते दिखाई पड़ते हैं ।

जूही^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यूक] एक प्रकार का कीड़ा जो सेम, मटर
आदि की फसियों में लगता है । जूई ।

जूभ—संज्ञा पुं० [सं० जूम्भ] [स्त्री० जूभा, वि० जूभक] १. जँभाई ।
जमुहाई । २. आलस्य । ३. प्रस्फुटन । विकास । खिलना (को०)
४. विस्तार । फैलाव (को०) । ५. एक पत्ती (को०) ।

जूभक^१—वि० [सं० जूम्भक] जँभाई लेनेवाला ।

जूभक^२—संज्ञा पुं० १. रुढ़ गणों में एक । २. एक ग्रन्थ जिसके
चरानों से ण्यु निद्राग्रत होकर लड़ाई छोड़ जँभाई लेने लगते,
तो जाते या निश्चित पकड़ जाते थे ।

विशेष—जब राम ने ताड़का धारि को मारा था तब विश्वामित्र
ने प्रसन्न होकर मंत्र सहित यह ग्रन्थ उन्हें दिया था । विश्वामित्र
को यह ग्रन्थ और सपरवा के उपरान्त अग्नि से प्राप्त
हुआ था ।

जूभकास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० जूम्भकास्त्र] दे० 'जूभक' ।

जूभण^१—संज्ञा पुं० [सं० जूम्भण] १. जँभाई लेना । २. घणों को
फैलाना (को०) । ३. खिलना । विकास (को०) ।

जूभण^२—वि० १. जँभाई लेनेवाला (को०) ।

जूभमान—वि० [सं० जूम्भमान] १. जँभाई लेता हुआ या जँभाई
लेनेवाला । २. प्रकाशमान । खिलता हुआ । विकासमान ।

जूभा—संज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भा] १. जँभाई । २. आलस्य या प्रमाद
से उत्पन्न जड़ता । ३. एक शक्ति का नाम । ४. खिलना ।
विकास (को०) ५. विस्तार । फैलाव (को०) ।

जूभिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भिका] १. आलस्य । २. जूभा ।
३. एक रोग जिससे मनुष्य शिथिल पड़ जाता है और बार
बार जँभाई लिया करता है ।

विशेष—यह रोग निद्रा का अवरोध करने से उत्पन्न होता है ।

जूभिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भिणी] एलापर्णी लता (को०) ।

जूभिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भिणी] एलापर्णी लता ।

जूभित^१—वि० [सं० जूम्भित] १. चेष्टित । २. प्रवृद्ध । फैला या
फैलाया हुआ । ४. जिसने जँभाई ली हो (को०) ।

जूभित^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. रंभा । २. स्फोटन । ३. स्त्रियों की
ईहा यः इच्छा ।

जूभो—वि० [सं० जूम्भन्] १. जँभाई लेनेवाला । २. खिलने-
वाला (को०) ।

जेटिलमैन—संज्ञा पुं० [जं०] सम्य पुरुष । भद्रजन । संभ्रांत व्यक्ति
जेट—संज्ञा पुं० [?] १. हिंदू । २. हिंदुओं की भाषा ।

विशेष—पहले पहल पुतंगालियों ने भारत के मूर्तिपूजकों के लिये
इस शब्द का प्रयोग किया था । बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के
समय घोररेख लोग उक्त अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करने लगे ।

जैताक—संज्ञा पुं० [सं० जैत्ताक] रोगी के शरीर में पसीना लाकर दूषित
ग्रंथ और विकार आदि निकालने की एक क्रिया । मफारा ।

जे गना—संज्ञा पुं० [प्रा० खोइंगण] दे० 'जुगुगु-१' । उ०—सुंदर
कहत एक रवि के प्रकास बिनु जे गना की ज्योति, कहा रजनी
बिसात है ।—संत वाणी०, भा० २, पृ० १२३ ।

जैगरा—संज्ञा पुं० [देश०] उदं, मूँग, मोथी, उवार, बाजरे आदि के
बंडल जो दाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं । जैगरा ।

जैण^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जही' । उ०—बाल सखी तिण मंदिरई,
सज्जन रहियउ जैण । कोइक मीउउ बोलइइ, लागो होसइ
सैण । डोला०, दू० ३५६ ।

जेना—क्रि० सं० [सं० जेमनम्] दे० 'जैवना' ।

जैवना^१—संज्ञा पुं० [हि० जेवना] भोजन । खाने की वस्तु ।

जैवना^२—क्रि० सं० [सं० जेमन] भोजन करना । खाना । भक्षण
करना । उ०—(क) त्रि प्रभु निगम घगम करि गए । जैवन
मिस ते हम पे आए ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०४ । (ख) प्रानंद-
घन ब्रज जीवन जैवत हिलिमिलि ग्वार तोरि पतानि ठाक ।
—धनानंद, पृ० ४७३ ।

जैवना^३—संज्ञा पुं० भोजन । भोजन । खाने का पदार्थ । वह जो कुछ
खाया जाय ।

जैवनार—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जैवनार' । उ०—चट्ट प्रकार
जैवनार थई बहुत भतिन्ह ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६० ।

जैवाना^१—क्रि० सं० [हि० जैवना] भोजन कराना । खिलाना ।
जिमाना ।

जो^१—सर्व० [सं० ये] १. 'जो' का बहुवचन । २. दे० 'जो' ।
उ०—जलचर बलचर नभचर नाना । जे जइजेन जीब
बहाना ।—मानस, १।३ ।

जो^२—सर्व० [सं० एतत्] यह का बहुवचन । उ०—माई, जे
दोऊ, कीन गोष के डोटा । इनकी बात कहा कही तोसी,
गुनन बड़े, देखन के छोटा ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५१ ।

जो^३—सर्व० [सं० इदम्] यह । उ०—आगामिनी जामिनी जुग
ही । ब्रजभामिनीन सो जे कही ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१७ ।

जोई^१—सर्व० [हि०] दे० 'जो' । उ०—हनिबंत बीर संक जेई

जारी । परबत मोहि रहा रखवारी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५६ ।

जेड^५—सर्व० [हि०] दे० 'जो' ।

जेड^६—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यो' । उ०—टपकै महुव आमु तस परई । होइ महुवा बसंत जेड^६ भरई ।—जायसी ग्रं०, पृ० २५६ ।

जेड, जेड^५—सर्व० [हि०] दे० 'जो' ।

जेज^५—संज्ञा स्त्री० [हि० भेर] देर । विलंब । उ०—जन रामा यष जेज न कीजे सतगुर ज्ञान जगावै हो ।—राम० धर्म०, पृ० २४८ ।

जेझ^५—संज्ञा स्त्री० [हि० भेर] विलंब । देरी । उ०—परी बात धाँसा जेझ बिसरी जिए सायत ।—रा० रू०, पृ० ३२६ ।

जेड^७—संज्ञा स्त्री० [म० यूय] १. सपूट । यूय । देर । २. रोटियों की तही । ३. मिट्टी के बरतनों का वह समूह जिसमें वे एक दूसरे के ऊपर रखे हों । ४. गोद । कोरा ।

जेड^८—संज्ञा पुं० [म०] एक प्रकार का वायुयान ।

जेटी—संज्ञा स्त्री० [म०] नदी या समुद्र के किनारे पर बना हुआ वह बड़ा चबूतरा जिसपर से जहाजों का मान चढ़ाया और उतारा जाता है ।

जेठसां—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ + श्रांश] पौर्णमासी में बड़े भाई का बड़ा हिस्सा ।

जेठसां—वि० [सं० ज्येष्ठश्रांश] पौर्णमासी में बड़े भाई की हस्तिगत से बड़े हिस्से का अधिकारी ।

जेठ—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] १. एक चांद्र मास जो बैशाख और असाढ़ के बीच में पड़ता है ।

विशेष—जिस दिन इस मास की पूर्णिमा होती है उस दिन चंद्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र में रहता है, इसी से इसे ज्येष्ठ या जेठ कहते हैं । यह प्रौष्ठम श्रद्धा का पहला और संवत् का तीसरा मास है । सौर मास के हिसाब से जेठ वर्ष संक्रांति से आरंभ होकर मियुन संक्रांति तक रहता है ।

२. [स्त्री० जेठानी] पति का बड़ा भाई । असुर ।

जेठ^१—वि० अग्रज । बड़ा । उ०—जेठ स्वामि सेवक सधु भाई । यह दिनकर कुल रीति मुहाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

जेठउत—संज्ञा पुं० [हि० जेठ + उत (प्रत्य०)] पति का बड़ा भाई ।

जेठरां—वि० [हि० जेठ + रा (प्रत्य०)] दे० 'जेठ' (वि०) ।

जेठरैत^१—संज्ञा पुं० [हि० जेठरा + ऐत (प्रत्य०)] गव का मुखिया ।

जेठरैतां—वि० ज्येष्ठ । बड़ा ।

जेठरैवत—संज्ञा पुं० [हि० जेठ + वत० रंयत] गव का मुखिया, जिसकी संहति के अनुसार गव के सब शोष कार्य करते हों ।

जेठवा—संज्ञा पुं० [हि० जेठ] एक प्रकार की कपास जो जेठ में तैयार होती है । इसे भुलवा भी कहते हैं । वि० दे० 'भुलवा' ।

जेठा—वि० [सं० ज्येष्ठ] [वि० स्त्री० जेठी] १. अग्रज । बड़ा । २. सबसे उत्तम । सबसे धन्य ।

मुहा०—जेठा रंग = वह रंग जो कई बार की रंग ई में सबसे अंतिम बार रंगा जाय ।

जेठाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जेठा] जेठ होने का भाव या दशा । बड़ाई । जेठापन ।

जेठानी—संज्ञा स्त्री० [हि० जेठ] जेठ की स्त्री । पति के बड़े भाई की स्त्री ।

जेठी^१—वि० [हि० जेठ + ई (प्रत्य०)] १. जेठ संबंधी । जेठ का । जैसे, जेठी धान । जेठी कपाम । २. बड़ी । गहरी ।

जेठी^२—संज्ञा स्त्री० १. एक प्रकार की कपाम जो जेठ में पकती और फूटती है ।

विशेष—इसे बरार या विदर्भ में टिकड़ी या झड़ी और काठिया-वाड़ में गंगरी कहते हैं ।

२. जेठानी । उ०—जेठी पठाई गई दुलही हंमि तेहि हरे मतिराम बुलाई ।—इतिहास, पृ० २५४ ।

जेठी^३—संज्ञा पुं० बोरो नाम का धान जो चैत व नदियों के किनारे बोया और जेठ में काटा जाता है ।

जेठी मनु—संज्ञा स्त्री० [म० अष्टमधु] मुलेठी ।

जेठुआं—वि० [हि०] दे० 'जेठी' ।

जेठौत—संज्ञा पुं० [म० ज्येष्ठ + पुत्र] [स्त्री जेठौती] १. जेठ का लड़का । पति के बड़े भाई का पुत्र । जेठारी का पुत्र । २. पति का बड़ा भाई । असुर ।

जेठौता—संज्ञा पुं० [हि० जेठौत] दे० 'जेठौत' ।

जेता^१—वि० [हि०] दे० 'जितना' । उ०—जेत बगती श्री प्रसवारा । प्राए मोर सब चाल निहारा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३११ ।

जेतक^५—वि० [हि०] दे० 'जितना' । उ०—जेतक नम धरम किए रो में बहु प्रिधि धंग धंग भई मैं तो खन मई गी ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४५ ।

जेतना^५—वि० [हि० जितना] दे० 'जितना' । उ०—बिधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेनेहि काज । मागे वारिद देहि जन रामचंद्र के राज ।—मानस, ७।२३ ।

जेतवारा^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जेतवारा' ।

जेता^२—वि० [म० जेतृ] १. जीतनेवाला । विजय करनेवाला । विजयी ।

जेता^३—संज्ञा पुं० [म०] विष्णु ।

जेता^४—क्रि० वि० [म० आवत्] जितना ।

जेता^५—वि० [हि० जितना + तना (प्रत्य०)] जिस मात्रा का । जिस परिमाण का । जितना । उ०—सकल दीप मई जेती रानी । तिन्ह मई दीपक बारह बानी ।—जायसी (शब्द०) ।

जेतार^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जेता' ।

जेति^५—वि० [हि० जितना] जितना । उ०—हरे रंग बहु जानति लहरै जेति समुंद । पै पिय को चतुराई सकि उँ न एकी बुंद । जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० ३४१ ।

जेतिक^१—क्रि० वि० [हि० जितना] जितना। जिस कदर। जिस मात्रा में। जिस परिमाण में।

जेतिक^२—वि० दे० 'जितना'। उ०—जेतिक भोजन बजत आयो। गिरि रूपी हरि सिंगरी लायो।—नंद० प्र०, पृ० ३०७।

जेती^१—वि० स्त्री० [हि० जेता] जितनी। उ०—जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर। सहज हीरा नीपज जो मन आवे दौर।—कबीर सा०, पृ० ५५।

जेती^२—क्रि० वि० [हि०] जितना। जिस कदर। उ०—धीरज जान सयान सबै, गंग जेतीई सारत तेतोई डहै।—गंग०, पृ० ७७।

जेती^३—वि० दे० 'जितना'।

जेती^४—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जेती'।

जेती^५—वि० दे० 'जितना'। उ०—प्रभु वह रूप प्रनूपम जेती। नैननि गह्यो गयो नहीं तेतो।—नंद० प्र०, पृ० १२८।

जेन केन^१—क्रि० वि० [सं० येन + केन] जैसे तैसे। उ०—जेन केन परकार होइ धनि कृष्ण मगन मन। धनाकर्ण चैतन्य कछु न चितवै साधन तन।—नंद० प्र०, पृ० ४६।

जेनरल^१—वि० [प्र०] १. ग्राम। सामान्य।

यो०—जेनरल इलेक्शन = ग्राम चुनाव। साधारण निर्वाचन। जेनरल मर्चेंट = सामान्य उपयोग के सामान का विक्रेता।

२. बड़ा। प्रधान।

यो०—जेनरल सेक्रेटरी = संस्था, संस्थान या विभाग का प्रधान मंत्री। जेनरल स्टाफ = सेनापति का सहकारी मंडल।

जेनरल^२—संज्ञा पु० [प्र०] पौजी प्रफसर का एक पद जो सेनापति के अधीन होता है [को०]।

जेना^१—क्रि० सं० [सं० जेमन] दे० 'जीमना'।

जेन्य—वि० [सं०] १. अभिजात। कुलीन। २. प्रसली। सच्चा। ३. विजेता [को०]।

जेन्यायसु—संज्ञा पु० [सं०] १. इन्द्र। २. अग्नि।

जेपाल—संज्ञा पु० [सं०] एक भ्रूषोपयोगी पौधा। जैपाल। जमाल-गोटा [को०]।

जेप्लिन—संज्ञा पु० [जर्मन] एक विशेष प्रकार का बहुत बड़ा हवाई जहाज।

विशेष—इसका आविष्कार जर्मनी के काउंट जेप्लिन साहब ने किया था। इसका ऊपरी भाग गिगार के आकार का लंबोतरा होता है जिसके खानों में गैस से भरी हुई बहुत बड़ी बड़ी थैलियाँ होती हैं। बड़े लंबोतरे चौखटे में नीचे की ओर एक या दो संदूक भटकते हुए लगे रहते हैं जिनमें घादमी बैठते हैं और तोपें रखी जाती हैं। सब प्रकार के आकाशयानों से इसका आकार बहुत बड़ा होता है।

जेब^१—संज्ञा पु० [प्र०] पहनने के कपड़ों (कोट, कुरते, कमीज, धंगे आदि) में बगल या सामने की ओर लगी वह छोटी थैली या चकती जिसमें रुमाल, कागज आदि चीजें रखते हैं। खीसा। खगीता। पाकेट।

क्रि० प्र०—कतरना।—काटना।

यो०—जेबकट। जेबखर्च। जेबघड़ी।

मुहा०—जेब कतरना = जेब काटकर रुपए पैसे का प्रपहरण। जेब खाली होना = पास में पैसा न होना। जेब भरी होना = पास में काफी रुपया होना।

जेब^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेब] शोभा। सौंदर्य। फबन।

मुहा०—जेब तन बबलना = पहनना। धारण करना। जेब देना = शोभित होना।

यो०—जेबदाब = तर्जदार। अच्छा। सुंदर।

जेबकट—संज्ञा पु० [फ्रा० जेब + हि० काटना] वह मनुष्य जो चोरी से दूसरों के जेब से रुपया पैसा लेने के लिये जेब काटता हो। जेबकतरा। गिरहकट।

जेबकतरा—संज्ञा पु० [हि० जेब + कतरना] दे० 'जेबकट'।

जेबखर्च—संज्ञा पु० [फ्रा० जेबखर्च] वह धन जो किसी को निज के खर्च के लिये मिलता हो और जिसका हिसाब लेने का किसी को अधिकार न हो। भोजन, वस्त्र आदि के व्यय से भिन्न, निज का और ऊपरी खर्च।

जेबखास—संज्ञा पु० [फ्रा० जेब + प्र० खास] राज्यकोष से राजा या बादशाह के निजी खर्च के लिये दिया जानेवाला धन।

जेबघड़ी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेब + हि० घड़ी] वह छोटी घड़ी जो जेब में रखी जाती है। जेबी घड़ी। वाच।

जेबदार—वि० [फ्रा० जेबदार] सुंदर। शोभायुक्त।

जेबरा—संज्ञा पु० [प्र० जेबरा] जेबरा नाम का जंगली जानवर। दे० 'जबरा'।

जेबा—वि० [फ्रा० जेबा] सुंदर। मनोरम। शोभनीय। ललित [को०]।

मुहा०—जेबा देना = शोभा देना। सुंदर लगना।

जेबी—वि० [फ्रा०] १. जेब में रखने योग्य। जो जेब में रखा जा सके। जैसे, जेबी घड़ी।

२. बहुत छोटा।

जेबीजीनत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेब + प्र० जीनत] बनाव सिंगार। वेश भूषा। ठाट बाट। शृंगार। सजावट [को०]।

जेमन—संज्ञा पु० [सं०] १. भोजन करना। जीमना। २. आहार। खाय [को०]।

जेय—वि० [सं०] जीतने योग्य। जो जीता जा सके।

जेर^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] श्राविल। वह झिल्ली जिसमें गर्भवत बालक रहता और पुष्ट होता है।

जेर^२—अव्य० [फ्रा० जेर] नीचे। तले [को०]।

जेर^३—वि० [फ्रा० जेर] [देश० जेरबरी] १. परास्त। पराजित। २. जो बहुत दिक किया जाय। जो बहुत तंग किया जाय।

क्रि० प्र०—करना = हराना। पछाड़ना।

जेर^४—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेर] अरबी और फारसी के अक्षरों के नीचे लगनेवाला एक संकेत चिह्न जो इ, ई, और ए की मात्राओं का सूचक होता है।

जेर^५—संज्ञा पु० [देश०] एक पेड़।

विशेष—यह सुंदरवन में अधिकता से होता है। इसके हीरे की लकड़ी खाली लिए सफेद होती है और मजबूत होने के कारण इसकी लकड़ी से मेज, कुर्सी, आलमारी इत्यादि बनती हैं।

जेरजामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेरजामह्] १. अधोवस्त्र । कटिवस्त्र ।
२. घोड़े की जीन के नीचे पीठ पर डाला जानेवाला कपड़ा [की०] ।

जेरतजबीज—वि० [फ्रा० जेर + अ० तजबीज] विचाराधीन [की०] ।

जेरदस्त—वि० [फ्रा० जेरदस्त] अधीन । बशीभूत । असहाय [की०] ।

जेरनजर—क्रि० वि० [फ्रा० जेर + अ० नजर] आँखों में । दृष्टि में ।
क्रि० प्र०—पड़ना ।—होना ।

जेरनाउ—क्रि० स० [हि० जेर] तंग करना । सताना । उत्पीड़ित करना ।

जेरपाई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेरपाई] १. स्त्रियों के पहनने की छूती । स्लीपर । २. साधारण छूता ।

जेरपेच—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेरपेच] पगड़ी के नीचे पहनी जानेवाली छोटी पगड़ी या टोपी [की०] ।

जेरबंद—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेरबार] घोड़े की मोहरी में लगा हुआ वह कपड़ा या चमड़े का तस्मा जो तंग में फँसाया जाता है ।

जेरबार—वि० [फ्रा० जेरबार] १. जो किसी विशेष आपत्ति के कारण बहुत तंग और दुखी हो । आपत्ति या दुःख की भोभ से लदा हुआ । २. क्षतिग्रस्त । जिसकी बहुत हानि हुई हो ।

जेरबारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेरबारी] १. आपत्ति या क्षति के कारण बहुत दुखी होने की क्रिया । तंगी । २. हैरानी । परेशानी ।
क्रि० प्र०—होना ।—सहना ।

जेरिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० जेरी २. और ३. ।

जेरी—संज्ञा स्त्री० [?] १. दे० 'जेर' । २. वह लाठी जो चरवाहे कंटीली झाड़ियाँ इत्यादि हटाने या दबाने के लिये सदा अपने पास रखते हैं । उ०—उतहि सखा कर जेरी लीन्हें गारी देहि सकुच तोरी की । इतहि सखा कर बाँस लिए बिच माह मची भोरा भोरी की ।—सूर (शब्द०) । ३. खेती का एक औजार जो फस के प्रकार का काठ का होता है । इसका व्यवहार अन्न बाँवने के समय पुष्पल हटाने में होता है । सिचाई के लिये दूरी चलाने में भी यह काम में आता है ।

जेरेखाक—क्रि० वि० [फ्रा० जेरेखाक] १. मिट्टी के नीचे । २. कब्र में [की०] ।

क्रि० प्र०—जाना ।—होना ।

जेरे नजर—क्रि० वि० [फ्रा० जेर + अ० नजर] दे० 'जेरनजर' ।

जेरेसाया—वि० [फ्रा० जेरेसायह्] किसी का आश्रित । किसी की छाया में [की०] ।

जेरे हिरासत—वि० [फ्रा० जेरे + अ० हिरासत] गिरफ्तारी में पड़ा हुआ [की०] ।

क्रि० प्र०—होना ।

जेरे हुकुमत—वि० [फ्रा० जेर + अ० हुकुमत] शासन के अधीन । मातहत देव [की०] ।

जेरोजबर—क्रि० वि० [फ्रा० जेरोजबर] नीचे ऊपर उथल पुथल । अस्तव्यस्त [की०] ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जेर^१—संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ राज्य द्वारा दंडित अपराधी आदि कुछ निश्चित समय के लिये रखे जाते हैं । कारागार । बंदी गृह ।

मुहा०—जेल काटना, जाना या भोगना = जेल में रहकर दंड भोगना ।

जेल^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेर] जंजाल । हैरानी या परेशानी का काम । उ०—खेलत खेल सहलिन मे पर खेल नवेली को जेल सों लागे ।—मतिराम (शब्द०) ।

जेलखाना—संज्ञा पुं० [अ० जेल + फ्रा० खानह्] कारागार । वि० दे० 'जेल' ।

जेलर—संज्ञा पुं० [अ०] जेलखाने का अध्यक्ष । जेल का प्रफसर ।

जेलार्टीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] जानवरों विशेषतः कई प्रकार की मछलियों के मांस, हड्डी खाल आदि को उबालकर तैयार की हुई एक बहुत साफ और बढ़िया सरेस जिसका व्यवहार फोटोग्राफी और चिट्टियों आदि की नकल करने के लिये पैदा बनाने में होता है ।

विशेष—यह पशुओं को खिलाई भी जाती है । पर इसमें पोषक द्रव्य बहुत ही थोड़े होते हैं । खूब साफ की हुई जेलार्टीन से गोबरों की गोलियाँ भी बनाई जाती हैं ।

जेली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जेरी] घास या भूसा इकट्ठा करने का औजार । पाँचा ।

जेली^२—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की विदेशी मिठाई या गाढ़ी मीठी चटनी जो फलों आदि द्वारा चीनी के साथ उबालकर बनाई जाती है । इसे गाढ़ा या कड़ा कर देते हैं ।

जेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेवरी' ।

जेवना—क्रि० स० [हि०] दे० 'जीमना' ।

जेवनार—संज्ञा स्त्री० [हि० जेवना] १. बहुत से मनुष्यों का एक साथ बैठकर भोजन करना । भोज । २. रसोई । भोजन ।

जेवर^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेवर] धातु या रत्नों आदि की बनी हुई वह वस्तु जो शोभा के लिये अंगों में पहनी जाती है । गहना । आभूषण । अलंकार । आभरण ।

जेवर^२—पुं० [देश०] एक प्रकार का महोत्सव पक्षी जिसे जधी या घिघ मोनाल भी कहते हैं ।

विशेष—यह शिमले में बहुत पाया जाता है ।

जेवर^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेवरी' ।

जेवरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योरा' ।

जेवरात—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेवरात] जेवर का बहुवचन ।

जेवरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी ।

जेष्ठ^१—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] १. जेठ मास । २. जेठ । पति का बड़ा भाई ।

जेष्ठ^२—वि० [सं० ज्येष्ठ] अग्रज । जेठा । बड़ा ।

जेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्येष्ठा] दे० 'ज्येष्ठा' ।

जेह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जिह (= चिल्ला), तुलनीय सं० जया] १. कमान की ढोरी में वह स्थान जो आँख के पास लगाया जाता है और

त्रिमकी सीध में निशान रहता है। चित्ना। उ०—तिथ कत कमनैती पड़ी बिन जेह भौह कमान। चित चल बेधे चुकति नहि, बंक बिलोकनि बान।—बिहारी (ण०२०) २. दीवार में नीचे की ओर दो तीन हाथ की ऊँचाई तक पनस्तर या मिट्टी आदि का वह पैग जो कुछ अधिक मोटा और उसके तल से अधिक उभरा हुआ होता है। उ०—गदा, पदम औ चक्र मंल भसि, पंचतत्व सूचक अनुक्त। अफ, इन पाँचन की गति हरि के बस यही जगत का जेह। भरम गंग लोचन अहि उमरु पंचतत्व अरु भौस, हर के बस पाँचड़ पटु पंचरु जिनसे पिउ डरेह।—देवरवामो (ण०२०)।

क्रि० प्र०—उतारना।—निकालना।

जेहड़—संज्ञा स्त्री० [हि० जेट + ट] एक पर एक रखे हुए पानी में भरे हुए बहुत गंधे।

जेहन—संज्ञा पुं० [म० जेल] [हि० जहीन] बुद्धि। धारणाशक्ति।

जेहबदार—वि० [म० जेह + दार (प्रत्य०)] धारणाशक्ति-वाला। बुद्धिमान को।

जेहरा—संज्ञा स्त्री० [?] पैर में पहने का पुष्पकार पाजिब नाम का जेवर।

जेहरि(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० जेहर] दे० जेहर। उ० (क) पग जेहरि निरुपन भी जे जेन चरन परस्पर बाजत।—सूर (श०६०)। (म) पग जेहरि जे जेन चरन परस्पर बाजत।—सूर (श०६०)। (न) अमित मुमिन सीढ़ी मदन मदन की कि जगमगे पग गुग जेहि जराय की।—केशव (श०२०)।

जेहल^१—संज्ञा स्त्री० [म० जेल] [हि० जेली] दूध। जिव।

जेहल^२—संज्ञा पुं० [म० जेल] दे० जेल।

जेहलखाना—संज्ञा पुं० [हि० जेलखाना] दे० 'जेलखाना' या 'जेल'।

जेहली—वि० [म० जेल] जो जल में से भाँकिनी रात की भलाई बुराई त समझे और फसो दूठ न छोड़े। हठी। जिद्दी।

जेहि(१)—सर्व० [म० जेहि, प्रा० जेहि, त्रिम, नहि] जिसको। उ० जेहि मुमिनस गिबि रा० गणनायक कारवर वदन।—तुलना (श०२०)।

जेह—संज्ञा पुं० [म० जेल] बुद्धि। धारणाशक्ति।

जैता^१—संज्ञा पुं० [म० जयती] जितना पैड़।

जै(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जय'।

जै^२(१)—वि० [म० जयति, प्रा० जय] जितने। जित सख्या में।

जैकरी(१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जयकरी'।

जैकार(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जयकार'।

जैकारा(१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जयकार'।

जैगापव्य—संज्ञा पुं० [म०] योगशास्त्र के वेत्ता एक मुनि का नाम।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा विस्तार से लिखी है। असित देवन नामक एक ऋषि आदित्य तीर्थ में निवास करते थे। एक दिन उनके यहाँ जैगीषव्य नामक एक ऋषि आए और उन्होंने

के यहाँ निवास करने लगे। थोड़े ही दिनों में जैगीषव्य योग साधन द्वारा परम सिद्ध हो गए और असित देवल सिद्धि लाभ न कर सके। एक दिन जैगीषव्य कहीं से घूमते फिरते भिक्षुक के रूप में देवल के पास आकर बैठे। देवल यथाविधि उनकी पूजा करने लगे। जब बहुत दिन तक पूजा करते हो गए और जैगीषव्य अत्यंत भाव में बैठे रहे कुछ बोलेवाले नहीं तब देवल ऊबकर आकाश पथ से स्नान करने चले गए। समुद्र के किनारे उन्होंने जाकर देखा तो जैगीषव्य को स्नान करते पाया। आश्चर्य में चकित होकर देवल जल्दी से आश्रम को लौट गए। वहाँ पर उन्होंने जैगीषव्य को उसी प्रकार अटल भाव से बैठे पाया। इसपर देवल आकाश मार्ग में जाकर उनकी गति का निरीक्षण करने लगे। उन्होंने देखा कि आकाशचारी अनेक सिद्ध जैगीषव्य की सेवा कर रहे हैं, फिर देखा कि वे नाना मार्गों में स्वेच्छा-पूर्वक भ्रमण कर रहे हैं। ब्रह्मलोक, गोलोक, पतिव्रत लोक इत्यादि तक तो वेस्त सीधे गए पर इसके आगे वे न देख सके कि जैगीषव्य कहाँ गए। मिट्टी से पूछने पर मालूम हुआ कि वे सारस्वत ब्रह्मलोक में गए हैं जहाँ कोई नहीं जा सकता। इस पर देवल धर लौट आए। वहाँ जैगीषव्य को ज्यों का त्यों बैठे देव उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इसके बाद वे जैगीषव्य के शिष्य हुए और उनसे योगशास्त्र की शिक्षा ग्रहण करके सिद्ध हुए।

जैचंद(१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जयचंद'।

जैजकार—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जयजयकार'।

जैजैवती—संज्ञा स्त्री० [म० जयजयवती] भैरव राग की एक रागिनी जो सबरे गाई जाती है।

जैडक—संज्ञा पुं० [म० जय + टक्का] एक प्रकार का बड़ा ढोल। विजय ढोल। जंगी ढोल।

जैत^१(१)—संज्ञा स्त्री० [म० जेत] विजय। जीत। फतह।

जैत^२—संज्ञा पुं० [म०] जैतून वृक्ष। २ जैतून की लकड़ी।

जैत^३—संज्ञा पुं० [म० जयन्ती] अगस्त की तरह का एक पेड़।

विशेष—इसमें पीले फूल और लकी फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तरकारी होती है। पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं।

जैतपत्र(१)—संज्ञा पुं० [म० जयपत्र + पत्र] जयपत्र। जीत की सनद।

जैतवार(१)—वि० [हि० जेत + वार (प्रत्य०)] जीतनेवाला। विजयी। विजिता। उ०—सत्ता को सपूत राव सगर को सिंह गाहै, जैतवार जगत करेरी किरवान को।—मनि० प्र०, पृ० ३७७।

जैतश्री—संज्ञा स्त्री० [म० जयतिश्री] एक रागिनी।

जैती—संज्ञा स्त्री० [म० जयति] एक प्रकार की धास जो रबी की फसल में खेतों में आप से आप उगती है।

जैतून—संज्ञा पुं० [म०] एक मशवहार पेड़।

विशेष—यह अरब, शान आदि से लेकर यूरोप के दक्षिणी भागों तक सर्वत्र होता है। इसकी ऊँचाई अधिक से अधिक ४० फुट तक होती है। इसका आकार ऊपर गोलाई लिए होता है।

पत्तियाँ इसकी नरकट की पत्तियों से मिलती जुलती, पर उनसे छोटी होती हैं। ये ऊपर की ओर हरी ओर नीचे की ओर सफेदी लिए होती हैं। फूल छोटे-छोटे होत हैं और गुच्छों में लगते हैं। फल कचरी के मे होते हैं। पश्चिम की प्राचीन जातियाँ इसे पवित्र मानती थी। रोमन और यूनानी विजेता इसकी पत्तियों की माला गिर पर धारण करते थे। अरबवाले भी इसे पवित्र मानते थे जिसमें मुसलमान लोग अबतक इसकी लकड़ी की तरबीह (माला) बनाते हैं। इस पेड़ के फल और बीज दोनों काम में आते हैं। फल पकन पर नीलापन लिए काले होते हैं। कच्चे फलों का मुरब्बा और अचार पड़ता है। बीजों से तेल निकसता है। लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी लकड़ी घुप से बिटकती नहीं।

जैन—वि० [म०] [वि० बी० जैनी] १. विजेता। विजयी। ३०—चार चक्र चित्रित विचित्रित परम जगत विजयी व्यक्ति कृष्ण को जैन रथ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४४७।

ज्यो—जंघरथ = विजयी।

१. सर्वोच्च (को०)।

जैन^२—संज्ञा पु० १. पारा। २. धोषध। ३. विजयी व्यक्ति। विजेता पुरुष (को०)। ४. विजय (को०)। ५. सर्वोच्चता (को०)।

जैत्री—संज्ञा बी० [सं०] जयंती वृज। जैन का पेड़।

जैन—संज्ञा पु० [सं०] १. जिन का अर्पित धर्म। भारत का एक धर्म संप्रदाय जिसमें अहिंसा को परम धर्म माना जाता है और कोई ईश्वर या सृष्टिकर्ता नहीं माना जाता।

विशेष—जैन धर्म कितना प्राचीन है ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। जैन धर्म के अनुगार महावीर या वर्धमान ने ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था। इसी समय से थोड़े कुछ लोग विशेषकर यूरोपियन विद्वान् जैन धर्म का प्रवर्तित होना मानते हैं। उनके अनुसार यह धर्म बौद्ध धर्म के पीछे उसी के कुछ तत्वों को लेकर और उनमें कुछ अंतरण धर्म की गैरी मिलाकर खड़ा किया गया। जिस प्रकार बौद्धों में २४ बुद्ध हैं उसी प्रकार जैनों में भी २४ तीर्थंकर हैं। हिंदु धर्म के अनुसार जैनों ने भी अपने पणों को आगम, पुराण आदि में विभक्त किया है पर प्रो० जेकोबा आदि के आधुनिक अन्वेषणों के अनुसार यह सिद्ध किया गया है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से पहले का है। उषयगिरि, भूनागढ़ आदि के गिलालेखों से भी जैनमत की प्राचीनता पाई जाती है। ऐसा पता पड़ता है कि यज्ञों की हिंसा आदि देख जो विरोध का सूत्रपात बहुत पहले से होता था रहा था उसी ने आगे चमकर जैन धर्म का रूप प्राप्त किया। भारतीय ज्योतिष में यूनानियों की जैनी का प्रचार विजयीय संवत् से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ। पर जैनों के मूल ग्रंथ ग्रंथों में यवन ज्योतिष का कुछ भी आभास नहीं है। जिस प्रकार ब्राह्मणों की वेद संहिता में पंचवर्षात्मिक युग है और कृत्तिका से नक्षत्रों की गणना है उसी प्रकार जैनों के ग्रंथ ग्रंथों में भी है। इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। जैन लोग सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानते, जिन या महत् को ही ईश्वर

मानते हैं। उन्हीं की प्रार्थना करते हैं और उन्हीं के निमित्त मंदिर आदि बनवाते हैं। जिन २४ हुए हैं, जिनके नाम ये हैं—श्रवभदेव, अजितनाथ, संबधनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मपभ, सुपाण्डे पदाम, मुनिधनाथ, गीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य स्वामी, विमलनाथ, प्रमत्तनाथ, धर्मनाथ, शातिनाथ, कुरुनाथ, अरुणथ, मन्दिनाथ, मुनिसुप्रत स्वामी, नमिनाथ, मेधिनथ, पद्मनाथ, महावीर स्वामी। इनमें से केवल महावीर स्वामी ऐतिहासिक पुरुष हैं जिनका ईसा से ५२७ वर्ष पहले होना ग्रंथों में पता चलता है। शेष के विषय में अधिक प्रचार का अभाव है और प्रकृतविवाद कया है। श्रवभदेव की कथा आगम आदि कई पुराणों में आई है और उनकी गणना हिंदुओं के २४ अवतारों में है। जिन प्रकार काल हिंदुओं में मयंनर और आदि में विभक्त है उसी प्रकार जैन लोगों में काल दो प्रकार का है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में चौबीस तीर्थंकर विद्यमान तीर्थंकर होत हैं। ऊपर जो २४ तीर्थंकर गिनाए गए हैं वे वर्तमान अवसर्पिणी के हैं। जो एक बार तीर्थंकर हो जाते हैं वे फिर दूसरी उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में जन्म नहीं लेते। प्रत्येक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में नए नए जीव तीर्थंकर दुष्टा करत हैं। उन्हीं तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर मनुष्य लोग द्वावध धर्म की रचना करते हैं। ये ही द्वावधाय जैन धर्म के मूल ग्रंथ माने जाते हैं। इनके नाम ये हैं—

आचारण, सूत्रसूत्र, स्वार्ण, अमरनाथ, भगवती सूत्र, ज्ञानार्थकथा, उपसर्ग दशान, अष्टांग दशान, अनुशोधप्रातिक दशान, भूत आचारण, निरुद्धा, अविवाद। इनमें से अष्टांग अंश ही अमर है पर बाकी अष्टांग नहीं मिलता। ये सब ग्रंथ अष्टांग ही प्रचार में हैं और बाकी से अधिक बीस बर्षों से नहीं पुराने हैं। इन ग्रंथों या अंशों को श्वेतांबर जैन मानते हैं। पर जिनका पुराना पुराना नहीं मिलता। उनके ग्रंथ संस्कृत में अत्यंत हैं जिनमें इन तीर्थंकरों की कथाएँ हैं और २४ पुराणों के नाम से विभक्त हैं। ग्रंथार्थ में जैन धर्म के तत्वों को संस्कृत के अंशों के अंशों में महावीर स्वामी ही हुए हैं। उनके प्रचार जिन इंद्रजित या गीतम थे जिन्हें कुछ यूरोपियन विद्वानों ने अमर या अमर मुनि गीतम समझा था। जैन धर्म में दो संप्रदाय हैं—श्वेतांबर और दिगंबर। श्वेतांबर अष्टांग आचारण को मुख्य धर्म मानते हैं और दिगंबर अपने २४ पुराणों का। इसके अतिरिक्त श्वेतांबर लोग तीर्थंकरों की मूर्तियों की स्तुति या स्तुति पढ़नाते हैं और दिगंबर लोग नंगी रखते हैं। इन आचारण के अतिरिक्त तत्व या विद्वानों में कोई अंतर नहीं है। महत् देव में अष्टांग को द्वावध धर्म की प्रवेक्षा में अनादि बनवाते हैं। अमर का मत तो कोई नहीं होता है और न जीवों को कोई मुक्त दुःख देनेवाला है। अपने अपने कर्मों के अनुसार जीव मुक्त दुःख पाते हैं। जीव या आत्मा का मूल स्वभाव शुद्ध, बुद्ध, मन्दिनाथ है, केवल पुद्गल या कर्म के आवरण से उसका मूल स्वरूप अच्छादित हो जाता है। जिस समय यह पौद्गलिक आवरण हट जाता है उस समय आत्मा परमात्मा की उच्च दशा को प्राप्त होता है। जैन मत स्याद्वाच

के नाम से भी प्रसिद्ध है। स्याद्वाद का अर्थ है अनेकांतवाद अर्थात् एक ही पदार्थ में निश्चयत्व और अनिश्चयत्व, सादृश्य और विरूपत्व, सत्त्व और असत्त्व, अभिलाष्यत्व और अनभिलाष्यत्व आदि परस्पर भिन्न धर्मों का सापेक्ष स्वीकार। इस मत के अनुसार प्राकाश से लेकर दीपक पर्यंत समस्त पदार्थ नित्यत्व और अनित्यत्व आदि उभय धर्म युक्त हैं।

२. जैन धर्म का अनुयायी। जैनी।

जैनी—संज्ञा पुं० [हि० जैन] जैन मतावलंबी।

जैनु^१—संज्ञा पुं० [हि० जेवना] भोजन। आहार। उ०—इहाँ रहो जहाँ जूठनि पावे ब्रजबासी के जैनु।—सूर (शब्द०)।

जैपत्र^२—संज्ञा पुं० [सं० जयपत्र] दे० 'जयपत्र'।

जैपाल—संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

जैबो, जैबौ—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जाना'। उ०—बनत नहीं जमुना की पेबी। सुँहर स्याम घाट पर ठाढ़े, कही कोन विध जैबो।—सूर०, १०। ७७६।

जैमंगल—संज्ञा पुं० [सं० जयमङ्गल] १. एक वृक्ष जिसकी लकड़ी मजबूत होती है।

विशेष—इसकी लकड़ी से मेज, कुर्सी आदि सजावट को चीजे बनाई जाती है।

२. खास राजा की सवारी का हाथी। ३. संगीत में एक ताल (ते०)। ४. जयकार (की०)।

जैमाल^३—संज्ञा श्री० [सं० जयमाल] दे० 'जयमाल'।

जैमाला^४—संज्ञा श्री० [सं० जयमाला] दे० 'जयमाल'।

जैमिनि—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वमीनांसा के प्रवर्तक एक ऋषि जो व्यास जी के ४ मुख्य शिष्यों में से एक थे।

विशेष—कहते हैं, इनकी रची एक भारतसंहिता भी थी जिसका प्रबन्ध केवल प्रथममेव पर्व ही मिलता है। यह प्रथममेव पर्व व्यास के प्रथममेव पर्व से बड़ा है, पर नई नई बातों के समावेश के कारण इसकी प्रामाणिकता में संदेह है।

जैमिनीय^५—वि० [सं०] १. जैमिनि संबंधी। २. जैमिनि प्रणीत। ३. जैमिनि का अनुयायी (की०)।

जैमिनीय^६—संज्ञा पुं० १. जैमिनिज्ञान ग्रंथ।

जैयट—संज्ञा पुं० [सं०] महाभाष्य के तिलककार कैयट के पिता।

जैयद—वि० [प्र०] १. बड़ा भारी। धीर। बहुत बड़ा। जैसे, जैयद बैलरूक। जैयद आनिम। ३. बहुत धनी। सारी मालदार। जैसे, जैयद भसानी।

जैल^७—संज्ञा पुं० [प्र० जैल] १. दामन। २. नीचे का स्थान। निम्न नक्षत्र। ३. पक्ति। सफ। समूह। ४. हलाका। हलका।

यौ०—जैनदार।

जैल^८—प्रथ० नीचे।

जैलदार—संज्ञा पुं० [प्र० जैल + दार (प्रत्य०)] वह सरकारी ओहदेदार जिसके अधिकार में कई गाँवों का प्रबंध हो।

जैव^९—वि० [सं०] १. जीव संबंधी। २. बृहस्पति संबंधी।

जैव^{१०}—संज्ञा पुं० १. बृहस्पति के क्षेत्र में धनु राशि और मीन राशि २. पुष्य नक्षत्र। ३. जीव अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कच (की०)।

जैवातृक^{११}—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपूर। २. चंद्रमा। ३. शीत ४. किधान (की०)। ५. पुत्र (ते०)।

जैवातृक^{१२}—वि० १. [वि० श्री० जैवातृकी] दीप्तपु। २. दू पतला।

जैवात्रिक^{१३}—संज्ञा पुं० [सं० जैवातृक] दे० 'जैवातृक'।

जैविक—वि० [सं०] दे० 'जैव'।

जैवेय—संज्ञा पुं० [सं०] जीव अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कच (की०)।

जैसा^{१४}—वि० [हि० जैसा] दे० 'जैसा'। उ०—(क) घरठाह गगन सों नेहा। पलहि धाव बरषा ऋतु मेहा।—जार (शब्द०)। (ख) कोई भल जस धान तुझारा। कोई जैस गरिबारा।—जायसी ग्रं०, (गुप्त) पु० २२६।

जैसन^{१५}—वि० [हि० जैसा] दे० 'जैसा'। उ०—भय माजु व न राज धाम सों, बससि निजपुर जैसनं।—द० सा० पु० १७।

जैसवार—संज्ञा पुं० [हि० जायस + वाला] कुरमियों और कलवा का एक भेद।

जैसा^{१६}—वि० [सं० यादृश, प्रा० जारिस, पेशाबी जइस्तो वि० श्री० जैस] १. जिस प्रकार का। जिस रूप, रंग, आकृति या गुण का जैसे,—(क) जैसा देवता वैसी पूजा। (ख) जैसा राजा वै प्रजा। (ग) जैसा कपड़ा है वैसी ही सिलाई भी हो चाहिए।

मुहा०—जैसा चाहिए = ठीक। उपयुक्त। जैसा उचित हो। जैसा तैसा = दे० 'जैसे तैसे'। जैसे,—काम जैसा तैसा चल रहा है जैसे का तैसा = ज्यों का त्यों। जिसमें किसी प्रकार की घटा बढ़ती या फेरफार आदि न हुआ हो। जैसा पहले था, वैसा ही। जैसे—(क) दरजी के यहाँ अभी कपड़ा जैसे का तैसा रखा है, हाथ भी नहीं लगा है। (ख) खाना जैसे का तैसा पड़ा है, किसी ने नहीं खाया। (ग) वह माठ वर्ष का बच्चा पर जैसे का तैसा बना हुआ है। जैसे को तैसा = (१) जो वैसा हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला। (२) जो जैसा है उसी प्रकृति का। एक ही स्वभाव और प्रकृति का। उ०—जैसे को तैसा मिले, मिले नीच को नीच। पानी में पानी मिले मिले नीच में नीच।—(शब्द०)।

२. जितना। जिस परिमाण का या मात्रा का। जिस कदर (इस अर्थ में केवल विशेषण के साथ प्रयुक्त होता है)। जैसे,—जैसा अच्छा यह कपड़ा है, वैसा वह नहीं है।

विशेष—संबंध पूरा करने के लिये जो दूसरा वाक्य आता है वह वैसा शब्द के साथ आता है।

३. समान। सदृश। तुल्य। बराबर। जैसे,—उस जैसा आदमी बूढ़े न मिलेगा।

जैसा^{१७}—क्रि० वि० [हि०] जितना। जिस परिमाण या मात्रा में। जैसे,—जैसा इस लड़के को याद है वैसा उस लड़के को नहीं।

जैसी—वि० [हि०] 'जैसा' का की०। दे० 'जैसा'।

जैसे—क्रि० वि० [हि० जैसा] जिस प्रकार से । जिस ढंग से । जिस तरीके पर ।

मुहा०—जैसे जैसे = जिस क्रम से । ज्यों ज्यों । उ०—जैसे जैसे रोग कम होता जायगा वैसे ही वैसे शरीर में शक्ति भी आता जायगी । जैसे तैसे = किसी प्रकार । बहुत यत्न करके । बड़ी कठिनाता से । उ०—खैर जैसे तैसे उनको यहाँ ले आता । जैसे बने, जैसे हो = जिस प्रकार संभव हो । जिस तरह हो सके । उ०—जैसे बने वैसे कल शान तक चले आग्रो । जैसे कंवा घर रहे वैसे रहे विवेक = जिसके रहने या न रहने से काम में कोई भ्रंतर न पड़े । निरर्थक व्यक्ति । जैसे मिया काठ, वैसी सन की दाढ़ी = अनुपयुक्त व्यक्ति के लिये अनुपयुक्त वस्तु ही उपयुक्त होती है ।

जैसो^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जैसा' । उ०—अब कैसे पैत सुख मानी । जैसोइ बोहये तैसोइ लुनिए कर्मन भोग आगो । —सूर०, १।११।

जैसो^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जैसा' ।

जो^१—संज्ञा पुं० [सं० जोङ्ग] भ्रमर । भ्रमर ।

जो^२—संज्ञा पुं० [सं० जोङ्ग] दे० 'जोङ्ग' ।

जो^३—संज्ञा पुं० [सं० जोङ्गट] दे० 'दोहड़' (क) ।

जो^४—संज्ञा स्त्री० [सं० जोत्ताला] देवधान्य । पुनेरा ।

जो^५—क्रि० वि० [हि०] ज्यों । ज्यों । जैसे । जिस प्रकार से । जिस तरह से । जिस भाँति ।

विशेष—दे० 'ज्यों' ।

जोंक—संज्ञा स्त्री० [सं० जलौगस्] १. पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो बिलकुल मीली के आकार का होता है और जीने के शरीर से चिपककर उनका रक्त चूसता है ।

विशेष—इसकी आठी बड़ी अनेक जातियाँ हैं जिनमें से प्रायः सभी तालाबों और खोरी नदियों आदि में, कुछ तर घाटों में और बहुत थोड़ी जगहों समुद्र में होती हैं । साधारण रंग डेढ़ से दस अंश होती है पर किसी किसी जाति में समुद्री जोंक लाल फुट तक लंबी होती है । साधारणतः जोंक का शरीर कुछ चिपटा और कलापन मिले हरे रंग का या भूरा होता है जिसपर या तो धारियाँ या बुँदकियाँ होती हैं । माँसे इसे बहुत मी होती है, पर काटने और लहू चूसने की शक्ति केवल आगे, भुँह की ओर ही होती है । आकार के विचार से साधारण जोंक तीन प्रकार की मानी जाती है—कागजी, गभौली और भेंनिया । सुथुस ने बारह प्रकार की जोंकें लिखी हैं—कृष्णा, पल्लवा, इन्द्राधुषा, गोबंजना, कडूरा और सामुद्रिक ये छह प्रकार की जोंकें जहरीली और कपिला, पिगला, शंकुमुखी, मुषिका, पुंडरीक-मुखी और सावरिका ये छह प्रकार की जोंकें बिना जहर की बतलाई गई हैं । जोंक शरीर के किसी स्थान में चिपककर खून चूसने लगती है और पेट में खून भर जाने के कारण खूब फूल उठती है । शरीर के किसी अंग में फोड़ा फुँसी या गिलटी

आदि हो जाने पर वहाँ का दूषित रक्त निकाल देने के लिये लोग इसे चिपका देते हैं और जब वह खूब खून पी लेती है तब उसे उँगलियों से खूब कसकर दुह लेते हैं जिसमें सारा खून उसकी गुदा के मार्ग में निकल जाता है । भारत में बहुत प्राचीन काल से इस कार्य के लिये इसका उपयोग होता आया है । कभी कभी पशुओं के जब पीने के समय जन के साथ जोंक भी उनके पेट में चली जाती है ।

पर्या०—रक्तपा । जलूका । जलोराही । नीक्षणा । बमनी । वेधनी । जलसपिण्डी । जलसूची । जलाटनी । जलाका । पटालुका । वेणीवेधनी । जलास्त्रिपत्ता ।

क्रि० प्र०—लगाना । —लपवाना ।

२. उह मनुष्य जो घना काम निकालने के लिये बेतरह पीछे पड़ जाय । वह जो बिना धरना काम निकाले फिर न छोड़े । ३. सेवार का बनाया हुआ एक प्रकार का छतना जिससे चीनी साफ की जाती है ।

जोंकी—संज्ञा स्त्री० [हि० जोंक] १. वधू ब्रतन जो पशुओं के पेट में पानी के साथ जोड़कर उनसे चने के कारण होती है । २. लोहे का एक प्रकार का कंटा जो दो तल्लों को मजबूती के साथ जोड़ने के काम में आता है । ३. एक प्रकार का लाल रंग का कीड़ा जो पानी में होता है । ४. दे० 'जोंक' ।

जों जों—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यों ज्यों' ।

जों तों—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यों ज्यों' ।

मुहा०—जों तों करते = बड़ी कठिनाई में । उ०—गरज जों तों करके बिन तो काटा । —लल्लु (शब्द०) ।

जोंधरी—संज्ञा पुं० [हि०] जोंधरी ।

जोंधरी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोंधरी' ।

जोंधरी—संज्ञा पुं० [सं० जूर्ण] १. उठे दानों की उबाल । २. जोधरी का गुला इठम । कसपी । बकठा ।

जोंधरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जूर्ण] १. छोटी खार । छोटे दानों की उबाल । २. बाजरा (वृक्ष) ।

जोंधिया—संज्ञा स्त्री० [सं० जोरस्ता, हि० जोधिया] चौदनी । चंद्रिका ।

जो^१—संज्ञा पुं० [सं० य] एक संबंधावत सर्वनाम जिसके द्वारा कही हुई संज्ञा या सर्वनाम के स्थान में कुछ और वस्तु की योजना की जाती है । जैसे—(क) जो बोड़ा आपने भेजा था वह मर गया । (ख) जो लोग कन गद्दी आप ये, वे गए ।

विशेष—पृथ्वी हिंदी में इसके साथ 'सो' का व्यवहार होता था । अब भी लोग प्रायः इसके साथ 'सो' बोलते हैं पर अब इसका व्यवहार कम होता जा रहा है । जैसे—जो बोधना सो काटेगा । आजकल बहुधा इसके साथ 'वह' या 'वे' का प्रयोग होता है ।

जो^२—अव्य० [सं० यद्] १. यदि । अगर । उ०—(क) जो करनी समुझे प्रभु मोरी । वहि निहार कन शत कोरी । —तुलसी (शब्द०) । (ख) जो बालक कलु प्रनुचित करहीं । गुह, पितु मातु मोद मन सरहीं । —तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इस अर्थ में इसके साथ 'तो' का व्यवहार होता है।

जैसे,—इसमें पानी देना हो तो अभी दे दो।

२. यद्यपि। अगच्छे। (शब्द०)। उ०—पोरि पोरि कोतवार जो बैठा। नेमक लुबुध सुरंग होइ पैठा।—जायसी (शब्द०)।

जोश्रंदा^५—संज्ञा पुं० [सं० युवन्] जवान। युवा। उ०—जोश्रंदा धावहि तुम्य एवावहि बोलहि गाढिम बोला।—कीर्ति० पृ० ६४।

जोअण^५—संज्ञा पुं० [सं० योजन, प्रा० जोअण] दे० 'योजन'। उ०—सिधु परइ सत जोअण, खिवियां बीजलियां।—सुरहउ लोद महविकियां, भीनी ठोवडियां।—ढोला०, दू० १६०।

जोअना^५—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जोवना'।

जोइ^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] जोरू। पत्नी। भार्या। स्त्री। उ०—विरध घर विभाग हू को पतिन जो पति होइ। जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाही जोइ।—सूर (शब्द०)।

जोइ^५—सर्व० [हि०] दे० 'जो'।

जो०—जोइ सोइ = जो सो। जो जी में घाए। उ०—जसोदा हरि पालने झुलावे। हनरावे दुलराइ मल्हावे जोइ सोइ कछु गावे।—सूर०, १०।६६१।

जोइ^५—वि० [सं० योग्य, प्रा० जो, जोअ, जोअ] योग्य। उचित। उ०—राजा राणी नूँ कहइ, बात विचारउ जोइ।—ढोला०, दू० ७।

जोइन^५—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि, हि० जोनि] दे० 'योनि'। उ०—तीन लोक जोइन धोतारा। धावागमन में फिरि फिरि पारा।—कबीर सा०, पृ० ८०६।

जोइसी^५—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—चित पितु मारक जोग गान भयो भये सुत सोगु। फिरि हुलस्यो जिय जोइसी समुझे जारज जोग।—बिहारी (शब्द०)।

जोउ—सर्व० [हि०] दे० 'जो'।

जोक^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जोक] दे० 'जोक'।

जोक^५—संज्ञा पुं० [प्रा० जोक] उ०—मंगे जीव तो घर बुला भेज उमूँ। करे जोक पूसा सूँ, भर सेज कूँ।—दक्खिनी०, पृ० ८७। २. रक्षक। रक्षक। उ०—लुधियां इशरती जोक दायम मो नित नित सहा के मंदिर में टिमटिम्या बजाय।—दक्खिनी०, पृ० ७३।

जोख^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] जोखने का कार्य या भाव। तील।

जोखता^५—संज्ञा स्त्री० [सं० योषिता] स्त्री। लुगाई।

जोखना^५—क्रि० सं० [सं० जुष (= जाँचना)] जोखना। वजन करना।

जोखना^५—क्रि० प्र० [सं० जुष = जाँचना] विचार करना। सोचना। उ०—काहू साथ न तन गा, सकति मुए सब पोखि। मोछ पूर तेहि जामब जो थिर धावत जोखि।—जायसी (शब्द०)।

जोखमा^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोखिम'।

जोखी^५—संज्ञा पुं० [हि० जोखना] १. लेखा। हिसाब।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार बहुधा योगिक में ही होता है। जैसे, लेखा जोखी।

†२. तोलने का काम करनेवाला आदमी।

जोखी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० योषा] स्त्री। लुगाई।

जोखी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जोखना] १. जोखने का काम। तीलाई। २. जोखने या तोलने का भाव। ३. तोलने की मजदूरी।

जोखी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० जोखिम] दे० 'जोखिम'। उ०—तुम सुखिया अपने घर राजा। जोखिउ एत सहहु केहि काजा।—जायसी (शब्द०)।

जोखिम—संज्ञा स्त्री० [?] १. भारी अनिष्ट या विपत्ति की आशंका अथवा संभावना। भौंकी। जैसे,—इस काम में बहुत जोखिम है।

मुहा०—जोखिम उठाना या सहना = ऐसा काम करना जिसमें भारी अनिष्ट की आशंका हो। जोखिम में पड़ना = जोखिम उठाना। जान जोखिम होना = प्राण जाने का भय होना।

२. वह पदार्थ जिसके कारण भारी विपत्ति घाने की संभावना हो, जैसे, रुपया, पैसा, जेवर आदि। जैसे,—तुम्हारी यह जोखिम हम नहीं रख सकते।

जोखुआ^५—संज्ञा पुं० [हि० जोखना + उआ (प्रत्य०)] तीलनेवाला। बया।

जोखुआ^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोखुआ'।

जोखी^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोखिम'।

मुहा०—जान जोखी होना = प्राण का संकट में होना।

जोगंधर—संज्ञा पुं० [सं० योगन्धर] एक युक्ति जिसके द्वारा शत्रु के चलाए हुए अस्त्र से अपना बचाव किया जाता है। यह युक्ति श्री रामचंद्र जी को विश्वामित्र ने सिखाई थी। उ०—पद्मनाभ घर महानाभ दोउ बंदहु सुभाभा। ज्योति निकुंत निराश विमल युग जोगंधर बहू आभा।—रघुराज (शब्द०)।

जोग^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योग'।

जोग^५—जोगमुद्रा = योग की मुद्रा। जोग समाधि = योग की समाधि।

जोग^५—अर्थ० [सं० योग्य] १. के लिये। वास्ते। उ०—अपने जोग लागि अस नेला। गुरु भएउं प्रापु कीन्ह तुम नेला।—जायसी (शब्द०)। २. को। निकट। (पु० हि०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुधा पुरानी परिपाटी की चिट्ठियों के प्रारंभिक वाक्यों में होता है। जैसे,—स्वस्ति श्री भाई परमानंद जी जोग लिखा काशी से सीताराम का राम राम बाँचना।' बहुधा यह द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर काम में आता है। जैसे,—इनमें से एक साड़ी भाई कृष्ण-चंद्र जी जोग देना।

जोगड़ा—संज्ञा पुं० [हि० जोग + ड़ा (प्रत्य०)] बना हुआ योगी। पालंडी। जैसे,—घर का जोगी जोगड़ा घान गाँव का सिद्ध। (कहा०)।

जोगता^५—संज्ञा स्त्री० [सं० योग्यता] दे० 'योग्यता'।

जोगन^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोगिन'।

जोगनिया^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोगिनी'।

जोगनिया^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोगिनिया'।

जोगमाया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'योगमाया' ।

जोगवना—क्रि० सं० [सं० योग + वना (प्रत्य०)] १. किसी वस्तु को यत्न से रखना जिसमें वह नष्ट भ्रष्ट न हो पाए । रक्षित रखना । उ०—जिवन मुरि जिमि जोगवत रहऊँ । दीप बाति नहि टारन कहऊँ ।—तुलसी (शब्द०) । २. संचित करना । बटोरना । ३. लिहाज रखना । भादर करना । उ०—ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन ममं कुभाउ ।—तुलसी (शब्द०) । ४. दर गुजर करना । जाने देना । कुछ ख्याल न करना । उ०—खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत घनट धपाउ ।—तुलसी (शब्द०) । ५. पूरा करना । पूर्ण करना । उ०—काय न कलस लेस लेत मानि मन की । सुमिरे सकृचि रुचि जोगवत जन की ।—तुलसी (शब्द०) ।

जोगसाधन(५)—संज्ञा पुं० [सं० योगसाधन] तपस्या ।

जोगा—संज्ञा पुं० [देश०] अफीम का खूदड़ । वह मेल जो अफीम को छानने से बच रहती है ।

जोगानल(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० योगानल] योग से उत्पन्न आग । उ०—दूर विरह जाइ बहोरि पितु के जग्य जोगानल जरी—तुलसी (शब्द०) ।

जोगिन्द(५)—संज्ञा पुं० [सं० योगीन्द्र] १. योगिराज । योगिश्रेष्ठ । २. महादेव (हि०) ।

जोगि(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० योगी] दे० 'योगी' ।

जोगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० योगिनी] १. योगी की स्त्री । २. विरक्त स्त्री । साधुनी । ३. पिशाचिनी । ४. एक प्रकार की रणदेवी जो रण में कटे मरे मनुष्यों के ढंड मुंडों को देखकर आनंदित होती है और मुंडों को गेब बनाकर खेलती है । ५. एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा जिसमें नीले रंग के फूल लगते हैं । ६. दे० 'योगिनी' ।

जोगिनिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. लाल रंग की एक प्रकार की ज्वार । २. एक प्रकार का आम । ३. एक प्रकार का धान जो भगहन में तैयार होता है ।

विशेष—इसका चावल वर्षों ठहर सकता है ।

जोगिनी^१—संज्ञा [सं० जोगिनी] १. दे० 'योगिनी' । उ०—भूमि प्रति जगमगी जोगिनी सुनि जगी सहस्र फन सेव सो सीस काँधो ।—सूर (शब्द०) । २. दे० 'जोगिन' ।

जोगिनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योतिरिङ्गण, प्रा० जोइंगण] ज्योति । खद्योत ।

जोगिया^१—वि० [हि० जोगी + इया (प्रत्य०)] १. जोगी संबंधी । जोगी का । जैसे, जोगिया भेस । २. गेरू के रंग में रंगा हुआ । गैरिक । ३. गेरू के रंग का । मटमैलापन लिए लाल रंग का ।

जोगिया^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० १. 'जोगड़ा' । दे० २. 'जोगी' । ३. एक रागिनी ।

जोगीन्द्र(५)—संज्ञा पुं० [सं० योगीन्द्र] १. योगिराज । बड़ा योगी । योगिश्रेष्ठ । २. शिव । महादेव ।

जोगी—संज्ञा पुं० [सं० योगिन्] १. वह जो योग करता हो । योगी । २. एक प्रकार के भिक्षुक जो सारंगी लेकर भट्टहरि के गीत गाते और भीख माँगते हैं । इनके कपड़े गेरू रंग के होते हैं ।

जोगीड़ा—संज्ञा पुं० [हि० जोगी + डा (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का चलता गाना जो प्रायः बसंत ऋतु में ढोलक पर गाया जाता है । २. गाने बजानेवालों का एक समाज ।

विशेष—इस समाज में एक गानेवाला लहका, एक ढोलक बजानेवाला और दो सारंगी बजानेवाले रहते हैं । इनमें गानेवाले लहके का भेस प्रायः योगियों का सा होता है और वह कुछ अलंकार आदि भी पहने रहता है । इसका गाना देहातों में सुना जाता है ।

३. इस समाज का कोई आदमी ।

जोगीश्वर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योगीश्वर' ।

जोगीश्वर(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योगीश्वर' । उ०—जोगीश्वरन के ईश्वर राम । बहुरूपी जदपि आत्माराम ।—नंद० प्र०, पृ० ३२१ ।

जोगेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० योगेश्वर] १. श्रीकृष्ण । २. शिव । ३. देवहोत्र के पुत्र का नाम । ४. योग का अधिकारी । योग का ज्ञाता । सिद्ध योगी ।

जोगेसर(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योगेश्वर' । उ०—यूँ कमधज्ज धरे धूँ भंबर । ज्यूँ गगा मेजे जोगेसर ।—रा० क०, पृ० ७६ ।

जोगेस्वर(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योगेश्वर' । उ०—जोग मार्ग जोगेस्वर जोगि जोगेस्वर जानें ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८४ ।

जोगोटा^१(५)—वि० [हि० जोगो] जोग या योग करनेवाला ।

जोगोटा^२(५)—संज्ञा पुं० [हि० जोगोटा] दे० 'जोगोटा' ।

जोगौटा(५)—संज्ञा पुं० [सं० योगपट्ट] १. योगी का वस्त्र । कोपीन । लंगोटा । २. झोला । उ०—मेलल सिंगी चक्र घंघारी । जोगौटा रुद्राक्ष अधारी । कंधा पहिरि ढंड कर गहा । सिद्ध होइ कहै गोरख कहा ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २०५ ।

जोग्य(५)—वि० [हि०] दे० 'योग्य' ।

जोजन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योजन' । उ०—कह मुनि तात मएउ अंबियारा । जोजय सत्तारि नगर तुष्टहारा ।—मानस, १।१५६ ।

जोजनगंधा(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'योजनगंधा' ।

जोट^१(५)—संज्ञा पुं० [सं० योटक] १. जोड़ा । जोड़ी । २. साथी । संवाती ।

जोट^२—वि० समान । बराबरी का । मेल का ।

जोटा(५)—संज्ञा पुं० [सं० योटक] १. जोड़ा । युग । उ०—(क) ए दोऊ दशरथ के जोटा । बाल मरननि के कल जोटा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) भला सनेत मनोहर जोटा । लखउ न लखन सघन बन छोटा ।—तुलसी (शब्द०) । २. टाट का बना हुआ एक बड़ा दोहरा पैला जिसमें अनाज भरकर बैलों पर लादा जाता है । गोना । खुरजी ।

जोटिंग—संज्ञा पुं० [सं० जोटिङ्ग] १. महादेव । शिव । २. अत्यंत कठिन तपस्या करनेवाला साधक [ज्ञो] ।

जोटो(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० जोट] १. जोड़ी । युग्मक । उ०—काँधो दूध पियावत पचि पचि देत न साखन रोटी । सूरदास

चिरजीवहु बोक हरि हलधर की जाटी । —सूर (शब्द०) । २. बराबरी का । जोड़ का । समान । ३. जो गुण धावि में किसी दूसरे के समान हो । जिसका मेल दूसरे के साथ बैठ जाता हो ।

जोड़—संज्ञा पु० [सं०] बंधन [को०] ।

जोड़—संज्ञा पु० [सं० योग] १. गणित में कई संख्याओं का योग । जोड़ने की क्रिया । २. गणित में कई संख्याओं का योगफल । वह संख्या जो कई संख्याओं को जोड़ने में निकले । भीजान । ठीक । टोटल ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

३. वह स्थान जहाँ दो या अधिक पदार्थ या टुकड़े जुड़े भयवा मिले हों । जेग, कपड़े में मिलाई के कारण पड़नेवाला जोड़, लोटे या धाती आदि का जोड़ ।

मुहा०—जोड़ उलड़ना = जोड़ का ढीला पड़ जाना । सधि स्थान में कोई ऐसा विकार उत्पन्न होना जिसके कारण जुड़े हुए पदार्थ भलग हो जायें ।

४. वह टुकड़ा जो किसी चीज में जोड़ा जाय । जैसे,—यह चाँदनी कुछ छोटी है इसमें जाड़ लगा दो । ५. वह चिह्न जो दो चीजों के एक में मिलने के कारण सधि स्थान पर पड़ता है । ६. शरीर के दो अवयवों का संधि स्थान । गाँठ । जैसे, कंधा, घुटना, कलाई, पोर आदि ।

मुहा०—जोड़ उलड़ना = किसी अवयव के मूल का अपने स्थान से हट जाना । जोड़ बैठना = अपने स्थान में हटे हुए अवयव के मूल का अपने स्थान पर आ जाना ।

७. मेल । मिलान । ८. बराबरी । समानता । जैसे,—तुम्हारा धीर उनका कोन जोड़ है ?

विशेष—प्रायः इस अर्थ में इस शब्द का रूप जोड़ का भी होता है । जैसे,—(क) यह गमला उसके जोड़ का है । (ख) इसके जोड़ का एक लप से आधो ।

९. एक ही तरह की भयवा साथ साथ काम में आनेवाली दो चीजें । जोड़ा । जैसे, पहलवानों का जोड़, कपड़ों (धोती और दुपट्टे) का जोड़ ।

मुहा०—जोड़ बाँधना = (१) कुश्ती के लिये बराबरी के दो पहलवानों को चुनना । (२) किसी काम पर भलग भलग दो दो प्रादमियों को नियत करना । (३) चौपड़ से दो मोटियाँ एक ही घर में रखना ।

१०. वह जो बराबरी का हो । समान धर्म या गुण धादिवाला । जोड़ । ११. पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे,—उनके पास चार जोड़ कपड़े हैं । १२. किसी वस्तु या कार्य में प्रयुक्त होनेवाली सब आवश्यक सामग्री । जैसे,—पहनने के सब कपड़ों या भ्रम प्रत्यय के आभूषणों का जोड़ । १३. जोड़ने की क्रिया या भाव । १४. छल । धि ।

यौ०—जोड़ तोड़ = (१) बर्बाद पंच । छल कपट । (२) किसी कार्य विशेष युक्ति । ढग ।

विशेष—बहुधा इस अर्थ में इसके साथ 'लगाना' । 'भिड़ना' क्रियाओं का व्यवहार होता है ।

१५. दे० 'जोड़ा' ।

जोड़ती—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ + ती (प्रत्य०)] १. गणित में कई संख्याओं का योग । जोड़ । २. गणना । गिनती । शुमार ।

जोड़न—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़] १. जोड़ने की क्रिया या भाव । २. वह पदार्थ जो दही जमाने के लिये दूध में डाला जाता है । जावन । जामन ।

जोड़ना—क्रि० सं० [सं० जुड़ (=बाँधन) या सं० युक्त, प्रा० जुह] १. दो वस्तुओं को सीकर, मिलाकर, चिपकाकर भयवा इसी प्रकार के किसी धीर उपाय से एक करना । दो चीजों को मजबूती से एक करना । जैसे, सँबाई बढ़ाने के लिये कागज या कपड़ा जोड़ना । २. किसी टूटी हुई चीज के टुकड़ों को मिला कर एक करना । ३. द्रव्य या सामग्री को क्रम से रखना, लगाना या स्थापित करना । जैसे, भक्षर जोड़ना, ईंट या पत्थर जोड़ना । ४. एकत्र करना । इकट्ठा करना । संभू करना । जैसे, रुपए जोड़ना । कुनबा जोड़ना, सामग्री जोड़ना । ५. कई संख्याओं का योगफल निकालना । भीजान लगाना । ६. वाक्यों या पदों आदि की योजना करना । वर्णन प्रस्तुत करना । जैसे, कहानी जोड़ना, कविता जोड़ना, बात जोड़ना, तूमार या तूफान जोड़ना (= झूठा दोषारोपण करना) । ७. प्रज्वलित करना । जलाना । जैसे, भाग जोड़ना, दीआ जोड़ना । ८. संबंध स्थापित करना । ९. संबंध करना । संबंध उत्पन्न करना । जैसे, दोस्ती जोड़ना । † १०. जोतना ।

संयो० क्रि०—देना ।

जोड़ना—वि० [हि० जोड़ा + ला (प्रत्य०)] एक ही गर्भ से एक ही समय में जन्मे हुए दो बच्चे । यमज ।

जोड़वाँ—वि० [हि० जोड़ा + वाँ (प्रत्य०)] वे दो बच्चे जो एक ही समय में धीर एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए हों । यमज ।

जोड़वाई—संज्ञा पु० [हि० जोड़वाँ] १. जोड़वाने की क्रिया । २. जोड़वाने का भाव । ३. जोड़वाने की मजदूरी ।

जोड़वाना—क्रि० सं० [हि० जोड़ना का प्रे० रूप] दूसरे को जोड़ने में प्रवृत्त करना । जोड़ने का काम दूसरे से कराना ।

जोड़ा—संज्ञा पु० [हि० जोड़ना] [स्त्री० जोड़ी] दो समान पदार्थ । एक ही सी दो चीजें । जैसे, धोतियों का जोड़ा, तस्वीरों का जोड़ा, गुलदानों का जोड़ा ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

विशेष—जोड़े में का प्रत्येक पदार्थ भी एक दूसरे का जोड़ा कहलाता है । जैसे, किसी एक गुलदान को उसी तरह के दूसरे गुलदान का जोड़ा कहेंगे ।

२ दोनों पैरों में पहनने के छूते । उपानह । ३. एक साथ या एक मेल में पहने जानेवाले दो कपड़े । जैसे, धाँगे धीर पेजामे का जोड़ा, कोट धीर पतलून का जोड़ा, लहंगे धीर ओढ़नी का जोड़ा । ४. पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे,—(क) उनके पास चार जोड़े कपड़े हैं । (ख) हम तो छोड़े जोड़े से तैयार हैं, तुम्हारी ही देर थी ।

यौ०—जोड़ा जामा = (१) वे सब कपड़े जो विवाह में धर पहनता है । (२) पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक ।

क्रि० प्र०—पहनना ।—बढ़ाना ।

५. स्त्री और पुरुष । जैसे, बर कन्या का जोड़ा । ६. नर और मादा (केवल पशु और पक्षियों आदि के लिये) । जैसे, सारस का जोड़ा कबूतर का जोड़ा, कुत्तों का जोड़ा ।

विशेष—शंक ५ और ६ के अर्थों में स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को भी एक दूसरे का जोड़ा कहते हैं ।

क्रि० प्र०—मिलाना । —लगाना ।

मुहा०—जोड़ा खाना = संभोग करना । मंथन करना । जोड़ा लिखाना = संभोग में प्रवृत्त करना । मैथुन कराना । जोड़ा लगाना = नर और मादा को मैथुन में प्रवृत्त करना ।

७. वह जो बराबरी का हो । जोड़ा । ८. दे० 'जोड़' ।

जोड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ना + आई (प्रत्य०)] १. दो या अधिक वस्तुओं को जोड़ने की क्रिया या भाव । २. जोड़ने की मजदूरी । ३. दीवार आदि बचाने के लिये ईंटों या पत्थरों के टुकड़ों को एक दूसरे पर रखकर जोड़ने की क्रिया । ४. धातुओं, पीतल, ताँबा, लोहा आदि जोड़ने का काम ।

जोड़ासंदेश संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की बँगला मिठाई जो छेने से बनती है ।

जोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ा] १. दो समान पदार्थ । एक ही सी दो चीजें । जोड़ा । जैसे, शाल की जोड़ी, तस्बीरों की जोड़ी, किवाड़ों की जोड़ी, घोड़ों या बैलों की जोड़ी ।

क्रि० प्र०—मिलाना । —लगाना ।

यौ०—जोड़ीदार = जोड़वाला । जो किसी के साथ में हो । (किसी काम पर एक साथ नियुक्त होनेवाले दो आदमी परस्पर एक दूसरे को अपना जोड़ीदार कहते हैं ।)

विशेष—जोड़ी में प्रत्येक पदार्थ को भी परस्पर एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं । जैसे,—किसी एक तस्बीर को उमी तरह की दूसरी तस्बीर की 'जोड़ी' कहेंगे ।

२. एक साथ पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे, उनके पास चार जोड़ी कपड़े हैं । ३. स्त्री और पुरुष । जैसे, बर बन्धु की जोड़ी । ४. नर और मादा (केवल पशुओं और पक्षियों के लिये) । जैसे, घोड़ा की जोड़ी, सारस की जोड़ी, मोर की जोड़ी ।

विशेष—शंक ३ और ४ के अर्थों में स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को एक दूसरे का जोड़ी कहते हैं ।

५. दो घोड़ों या दो बैलों की गाड़ी । वह गाड़ी जिसे दो घोड़े या दो बैल खींचते हो । जैसे,—जब से ममुराल का मान आपको मिला है तबसे आप जोड़ी पर निकलते हैं । ६. दोनों भुगदर जिनसे कसरत करते हैं ।

क्रि० प्र०—फेरना । —भाँजना । —हिलाना ।

यौ०—जोड़ी की बैठक = वह बैठकी (बरार) जहाँ भुगदरों की जोड़ी पर हाथ टेककर खी जाती है । भुगदरों के समाव में दो लकड़ियों से भी काम लिया जाता है ।

७. मजीरा । ताल ।

यौ०—जोड़ीवाल = जो गाने बजानेवाला के साथ जोड़ी या मंजीरा बजाता हो ।

८. वह जो बराबरी का हो । समान धर्म या गुण आदि वाला । जोड़ ।

जोड़ूआ—संज्ञा पु० [हि० जोड़ा + उआ (प्रत्य०)] पैर में पहनने का चाँदी का एक प्रकार का गहना ।

विशेष—इसमें एक सिकरी में छोटे बड़े दो छल्ले लगे रहते हैं । बड़ा छल्ला झंगूटे में और छोटा सबसे छोटी उँगली में पहना जाता है । सिकरी बीच की उँगलियों के ऊपर रहती है ।

जोड़ू—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोड़' ।

जोत—संज्ञा स्त्री० [हि० जोतना अथवा सं० योक्त्र, प्रा० जोत्त] १. वह चमड़े का तस्मा या रस्सी जिसका एक सिरा घोड़े, बैल आदि जोते जानेवाले जानवरों के गले में और दूसरा सिरा उस चीज में बंधा रहता है जिसमें जानवर जोते जाते हैं । जैसे, एक्के की जोत, गाड़ी की जोत, मोट या चरसे की जोत ।

क्रि० प्र०—बाँधना । —लगाना ।

२. वह रस्सी जिसमें तराजू की डंडी से बंधे हुए उसके पत्ते लटकते रहते हैं । ३. वह छोटी सी रस्सी या पगड़ी जिसमें बैल बांधे जाते हैं और जो उन्हें जोतन समय जुझाटे में बांध दी जाती है । ४. उतनी भूमि जितनी एक भसामी को जोतने बोन के लिये मिली हो । ५. एक क्रम या पलटे में जितनी भूमि जोती जाय ।

जोता^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] १. दे० 'ज्योति' । २. दे० 'जोति' ।

जोता^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] सप्तल पहाड़ी । उ०—यद्यपि वहाँ पहुँचने के लिये कुल्हू से दो जबरदस्त जोतें पार करनी पड़ेगी ।—फिरर०, पृ० ६४ ।

जोत^४—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—घनग पुहवे नरेस व्यास जग जोत बुलाइय । लगन निदि अनुजा सुत नाम चिहु चक्क बनाइय ।—पृ० रा०, १. ६८६ ।

जोतक^५—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—माता पूछे पंडिता जोतक पढ़हि धनेक । जो बिधि ने लिख पाया को बूझै न जान निवेक ।—पाण०, पृ० २११ ।

जोतखी^६—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—जोतखी जी ठीक कहते हैं । गाँव के ग्रह अच्छे नहीं हैं ।—मेना०, पृ० २६ ।

जोतगी—(पुं०) संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—तब बुलाय सब जोतगी, कही सुपनफल सत्य । दिवस पंच के अतरे, होय सु दिल्लीपत ।—पृ० रा०, ३. ११ ।

जोतड़िया^७—संज्ञा स्त्री० [हि० जोत] दे० 'ज्योति' । उ०—ऊँची पाँड़ी से गगनंतरि चढ़ीया । अनहद बीचार चमकी जोतड़िया ।—प्रास०, पृ० २२३ ।

जोतदार—संज्ञा पु० [हि० जोत + दा० दार (प्रत्य०)] वह भसामी जिसे जोतने बोन के लिये कुछ जमीन (जोत) मिली हो ।

जोतना—क्रि० सं० [सं० योजन पा० युक्त, प्रा० जुत + हि० ना (प्रत्य०)] १. रथ, गाड़ी, कोल्हू, चरसे आदि को चलाने के लिये उसके आगे बैल, घोड़े आदि पशु बाँधना । जैसे,—घोड़ा जोतना । २. गाड़ी या रथ आदि को उनमें घोड़े बैल आदि को जोतकर चलने के लिये तैयार करना । जैसे, गाड़ी जोतना । ३. किसी को जबरदस्ता किसी काम में लगाना । ४. हुल चलाकर

खेती के लिये जमीन की मिट्टी खोदना । हल खनाना जैसे, खेत जोतना ।

जोतनी—संज्ञा स्त्री० [हि० जोत या जोतना] १. वह छोटी रस्सी जो जुए में जुते हुए जानवर के गले के नीचे दोनों घोर बंधी होती है । २. जुताई । जोतने का काम ।

जोतसी—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० ज्योतिषी ।

जोतात—संज्ञा स्त्री० [हि० जोतना] खेत की मिट्टी की ऊपरी तह । (कुम्हार) ।

जोता—संज्ञा पुं० [हि० जोतना] १. जुआड़े में बंधी हुई वह पतली रस्सी जिसमें बैलों की गरदन फंसाई जाती है । २. जुआड़ों की परिभाषा में वे दोनों डोरियाँ जो करघे पर फैलाए हुए ताने के अन्तिम सिरे पर उसके सूतों को ठीक रखनेवाली कमाँची या मंजनी के दोनों भिरों पर बंधी हुई होती हैं । इन दोनों डोरियों के दूसरे सिरे धापस में भी एक दूसरे से बंधे और पीछे की ओर तनते होते हैं । ३. करघे में सूत की वह डोरी जो बरोछी में बंधी रहती है । ४. बहुत बहुत बड़ी धरन या गहनीर जो एक ही पक्ति में लगे हुए कई रंगों पर रखी जाती है और जिसके ऊपर दीवार उठाई जाती है । ५. वह जो हल जोतता हो । खेती करनेवाला । जैसे, हरजोता ।

जोताई—संज्ञा स्त्री० [हि० जोतना + घाई (प्रत्यय)] १. जोतने का काम । २. जोतने का भाव । ३. जोतने की मजदूरी ।

जोतात—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोतात' ।

जोति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] १. वो का वह दिया जो किसी देवी या देवता आदि के आगे प्रथवा उसके उद्देश्य से जलाया जाता है ।

क्रि० प्र०—जलाना ।—बारम्बार ।

यौ०—जोतिभोग—किसी देवता के सामने जाति जलाने और भोग लगाने आदि की क्रिया ।

२. दे० 'ज्योति' ।

जोति(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० जोतना] जोतने बोलने योग्य भूमि । उ०—एषे तजि देखो क्रिया देखि पग बुरो होइ जोति बहु दई दाम राम मति सानिए ।—प्रिया० (शब्द०) ।

जोतिक(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिष' । उ०—विद्या पढ़ेउं करन सतीना । सामुद्रिक जोति० सुन गीता ।—मधवानल०, पृ० २०८ ।

जोतिखोड़—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' ।

जोतिग(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] १. ज्योतिष शास्त्र । उ०—न ईह बात जोतिग पट मनस भूष थिरताव ।—पृ० २१०, २१३ । २. ज्योतिषी । उ०—जोगनैर जोतिग कहै, प्रभु सु दीप प्रचुराव । पृ० २१०, २१३ ।

जोतिमय(पुं०)—वि० [हि०] दे० 'ज्योतिर्मय' । उ०—रतनपुत्र नृपनाथ रतन जिमि ललित जोतिमय ।—पति० ग्रं०, पृ० ४१४ ।

जोतिमिंग—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिमिंग' ।

जोतिबंत(पुं०)—वि० [सं० ज्योतिवन्त] ज्योतिष्युक्त । चमकदार । उ०—

पावक पवन मणि पद्म पतंग पितृ जेते जोतिबंत जग ज्योतिषिन गाए हूँ ।—केशव (शब्द०) ।

जोतिष—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिष' ।

जोतिषटोम—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषटोम] दे० 'ज्योतिषटोम' ।

जोतिषी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' ।

जोतिस(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिष' ।

जोतिस्ना(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ज्योतिस्ना' ।—प्रने०, पृ० १०१ ।

जोतिहा—संज्ञा पुं० [हि० जोतना] जोतनेवाला किसान । जोता ।

जोती(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. दे० 'ज्योति' । उ०—बदन पै सलिल कन जगमगाम जोती । इंदु सुधा तामें मर्तों धमी मय मोती ।—नद० ग्रं०, पृ० ३४७ । २. दे० 'जोति' ।

जोती^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जोतना] १. तराजू के पल्लों की डोरी जो डाँड़ी से बंधी रहती है । जोत । २. घोड़े की रास । लगाम । ३. चक्की में की वह रस्सी जो बीच की कीली और हत्ये में बंधी रहती है । इसे कसने या ढीली करने से चक्की हलकी या भारी चलती है और चीज मोटी या महीन पिमती है । ४. वे रस्मियाँ जिनमें खेत में पानी खींचने की डोरी बंधी रहती है ।

जोतस्ना—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योतिस्ना] दे० 'ज्योतिस्ना' ।

जोध(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योद्धा' । उ०—कबि लखन प्रबला कहत, मबला जोध कहंत ।—हम्मोर रा०, पृ० २७ ।

जोधन—संज्ञा स्त्री० [सं० योग + धन] वह रस्सी जिससे बैल के जुए को ऊपर नीचे को लकड़ियाँ बंधी रहती हैं ।

जोधा(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योद्धा' । उ०—(क) प्रगट कपाट बड़े दीने है बहु जोधा रथवाहे ।—सूर (शब्द०) । (ख) सूर प्रभु सिंह ध्वनि करत जोधा सकल जहाँ तहँ करन लागे सराई ।—सूर (शब्द०) ।

जोधा^२—संज्ञा पुं० [हि०] जोधा नाम की रस्सी जो जुआड़े में बंधी रहती है और जिसमें बैलों के सिर फंसाए जाते हैं ।

जोधार(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० योद्धा] योद्धा । सूर । उ०—नकं कुंड मे ना पड़ूँ जोतू मन जोधार । ऐसी मुझ उपदेश दी सतगुर कर उपकार ।—राम० चम०, पृ० ३१३ ।

जोना—संज्ञा स्त्री० [सं० योन] दे० 'योन' ।

जोनराज—संज्ञा पुं० [दे०] राजनरगिणी के द्वितीय लेखक जिन्होंने स० १२०० के बाद का हाल लिखा है । इनका लिखा हुआ 'पुष्पोराजनिचय' नामक एक ग्रंथ और 'किरातार्जुनीय' की एक टीका भी है ।

जोनरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] ज्वार नामक घस ।

जोना(पुं०)—क्रि० प्र० [हि०] देखना । उ०—रइबारी ठोलउ कहइ करहुउ छाछउ जोइ ।—ढोला०, पृ० ३०६ । (ख) प्रेम के पंथ सु प्रीति की पेठ में पेठत हो है दसा यह जो ले ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७३ ।

जोनि(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि' । उ०—जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं । तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ।—मानस, २।२४ ।

जोनी०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'योनि' । उ०—कवन पुरुष जोनी बिना कवन मोत बिना काल । —गमानंद०, पृ० ३३ ।

जोन्हा०—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोएहा] १. जुन्हाई । चंद्रिका । चाँदनी । ज्योत्स्ना । २. चंद्रमा ।

जोन्हरी०—संज्ञा स्त्री० [देशी जोएणलिआ] ज्वार नामक अन्न ।

जोन्हाई०—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोएहा] १. चंद्रिका । चाँदनी । चंद्रज्योति । २. चंद्रमा ।

जोन्हारी०—संज्ञा पु० [हि०] ज्वार नामक अन्न ।

जोष०—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'यूष' ।

जोषै०—अव्य० [हि० जो + पर अथवा सं० यद्यपि] १. यदि । अगर । २. यद्यपि । अगरचे ।

जोफ—संज्ञा [अ० जोफ] १. बुढ़ापा । बुढ़ावस्था । २. सुस्ती । निर्वंशता । कमजोरी । नाताकती ।

यौ०—जोफ ज़िगर = (१) ज़िगर का ठीक ठीक काम न करना । (२) ज़िगर या यकृत की कमजोरी । जोफ दिमाग = दिमाग की कमजोरी । जोफ बेदा = पाचन की कमजोरी । मंदाग्नि । अजीर्ण ।

जोबन—संज्ञा पु० [सं० यौवन] १. युवा होने का भाव । यौवन । उ०—वन जोबन अभिमान अल्प जल कहैं कूर आपुनी बोरी । सूर (शब्द०) ।

मुहा०—जोबन लूटना = (किसी स्त्री की) युवावस्था का अनांद लेना ।

२. सुंदरता, विशेषतः युवावस्था अथवा मध्यकाल की सुंदरता । रूप । खूबसूरती ।

क्रि० प्र०—छाना । —पर छाना ।

मुहा०—जोबन उतरना = युवावस्था समाप्त होना । जोबन चढ़ना = युवावस्था का सौंदर्य छाना । जोबन हजना = दे० 'जोबन उतरना' ।

३. रौनक । बहार । ४. कुष । स्तन । छाती । उ०—लूष दुहैं जोबन सौं लागी । —जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—उडना । —उभरना । —हलना ।

५. एक प्रकार का फूल ।

जोबना०—क्रि० सं० [हि० जोबना] दे० 'जोबना' ।

जोम—संज्ञा पु० [अ० जोम] १. उर्मंग । उरसाह । २. जोश । जुग । आवेश । ३. अहंकार । अभिमान । घमंड ।

क्रि० प्र०—दिलाना ।

४. धारणा । खयाल (को०) । ५. प्रबलता (को०) । ६. समूह (को०) ।

जोय०—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] जोरू । स्त्री । पत्नी ।

जोय—सर्व० पु० [हि०] जो । जिस ।

जोयना०—क्रि० सं० [हि० जोड़ना (जैसे, दीया जोड़ना)] १. बाँधना । जलाना । उ०—चौसर दीया जोय कै चौदह चंदा माहि । तिहि घर किसका चाँदना जिहि घर सतगुर नाहि । —कबीर (शब्द०) । २. दे० 'जोवना' ।

जोयसी०—संज्ञा पु० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी' ।

जोर—संज्ञा पु० [फा० जोर] बल । शक्ति । ताकत ।

क्रि० प्र०—घाजमाना । —देखना । —दिखाना । —लगना । —लगाना ।

मुहा०—जोर करना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) प्रयत्न करना । कोशिश करना । जोर दूटना = बल घटना या नष्ट होना । प्रभाव कम होना । शक्ति घटना । जोर डालना = बोझ डालना । दे० 'जोर देना' । जोर देना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) शरीर आदि का) बोझ डालना । भार देना । जैसे,— इस जंगल पर जोर मत दो नहीं तो वह टूट जाएगा । किसी बात पर जोर देना = किसी बात को बहुत ही आवश्यक या महत्वपूर्ण बतलाना । किसी बात को बहुत जरूरी बतलाना । जैसे,— उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि सब लोग साथ चले । किसी बात के लिये जोर देना = किसी बात के लिये आग्रह करना । किसी बात के लिये हठ करना । जोर देकर कहना = किसी बात को बहुत अधिक दृढ़ता या आग्रह से कहना । जैसे,— मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि इस काम में आपको बहुत फायदा होगा । जोर मारना या लगाना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) बहुत प्रयत्न करना । खूब कोशिश करना । जैसे,— उन्होंने बहुतेरा जोर मारा पर कुछ भी नहीं हुआ ।

यौ०—जोर जुल्म = अत्याचार । उपादत्ती ।

२. प्रचलता । तेजी । बरनी । जैसे, माँग का जोर, बुलार का जोर ।

विशेष—कभी कभी लोग इस अर्थ में 'जोर' शब्द का प्रयोग 'से' विभक्ति उड़ाकर विशेषण की तरह और कभी कभी 'का' विभक्ति उड़ाकर क्रिया की तरह करते हैं ।

मुहा०—जोर पकड़ना या बाँधना = (१) प्रबल होना । तेज होना । जैसे,— (क) अभी से इलाज करो नहीं तो यह बीमारी जोर पकड़ेगी । (ख) इस फोड़े ने बहुत जोर बाँधा है । (२) दे० 'जोर में छाना' । जोर करना या मारना = प्रबलता दिखाना । जैसे,— (क) रोग का जोर करना । काम का जोर करना । (ख) आग्रह या पसी मुहंवन ने जोर मारा, तभी आप यहाँ आए हैं । जोर में छाना = ऐसी स्थिति में पहुँचना जहाँ घना-घास हो उन्नति या वृद्धि हो जाय । जोर या जोरों पर होना = (१) पूरे ध्यान पर होना । बहुत तेज होना । जैसे,— (क) यादगल शहर में चेचक बहुत जोरों पर है । (ख) इस समय उन्हे बुलार जोरों पर है । (२) खूब उन्नत दशा में होना । ३. वश । अधिकार । इस्तिवार । काबू । जैसे — हम क्या करें, हमारा उनपर कोई जोर नहीं है ।

क्रि० प्र०—चलना । —चलाना । —जताना । —होना ।

मुहा०—जोर डालना = किसी काम के लिये कुछ अधिकार जत लाते हुए विशेष आग्रह करना । दबाव डालना ।

४. वेग । आवेश । झोंक ।

महा०—जोरों पर = बड़े वेग से । बड़ी तेजी से । जैसे, गाड़ी का जोरों पर जाना, नदी का जोरों पर बहना ।

५. भरोसा । धामरा । सहारा । जैसे,—घाप किसके जोर पर कूदते हैं ?

महा०—शतरंज में किसी मोहरे पर जोर देना या पहुँचाना = किसी मोहरे की सहायता के लिये उसके पास कोई ऐसा मोहरा ला रखना जिसमें उस पहले मोहरे के मारे जाने की संभावना न रह जाय अथवा यदि उस पहले मोहरे को विपक्षी अपने किसी मोहरे से मारना चाहे तो उसका मोहरा भी तुरन्त उस मोहरे से मार लिया जा सके जिससे पहले मोहरे को जोर पहुँचाया गया है । शतरंज के मोहरे का जोर पर होना = मोहरे का ऐसी स्थिति में होना जिसमें यदि उसे विपक्षी का कोई मोहरा मारना चाहे तो वह स्वयं भी मारा जा सके । किसी के जोर पर कूदना = किसी को अपनी सहायता पर देखकर अपना बल दिखाना । बेजोर = जिसकी सहायता पर कोई न हो ।

६. परिश्रम । मेहनत । जैसे,—घोंधेरे में पड़ने से आँखों पर जोर पड़ता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

७. व्यायाम । कसरत ।

जोरई—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़] १. एक ही में बंधे हुए लंबे लंबे धीरे मजबूत दो बाँस जिनके सिरों पर मोटी रस्सी का एक फंदा लगा रहता है धीरे जिसका उपयोग कोल्हू धोने के समय जाठ को रोकने धीरे उसे कोल्हू में से निकालकर अलग करने में होता है ।

विशेष—जाठ का ऊपरी भाग इसके फंदे में फँसा दिया जाता है धीरे तब जाठ का निचला भाग दोनों बाँसों की सहायता से उठाकर कोल्हू के ऊपरी भाग पर रख दिया जाता है ।

२. एक प्रकार का हरे रंग का कीड़ा जो फसल की डालियाँ और पत्तियाँ खा जाता है ।

विशेष—चने की फसल को यह अधिक हानि पहुँचाता है ।

जोरदार—वि० [फ्रा० जोरदार] जिसमें बहुत जोर हो जोरवा ।

जोरना—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'जोड़ना' । उ०—जोरन द तब दही जबाई ।—सं० दरिया, पृ० ६ ।

जोरना—क्रि० सं० [हि०] १. १० 'जोड़ना' । उ०—रति रण जानि धनंग नपति धाप नपति रात्रि बल जोरति ।—सूर (शब्द०) । २. जोतना । जानवर को जूँ में नौधना । ३. किसी टूटी चीज के टुकड़ों को मिलाकर एक करना । उ०—जो पति प्रिय तो करिय उपाई । जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई ।—सुलसी (शब्द०) ।

जोरशोर—संज्ञा पुं० [फ्रा० जोरशोर] बहुत अधिक जोर । बहुत अधिक प्रबलता या प्रचंडता । जैसे,—कल शाम को जोर शोर से आँधी आई थी ।

जोरा—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'जोड़ा' ।

जोराजोरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जोर] जबरदस्ती । धीमा धीमी ।

जोराजोरी—क्रि० वि० जबरदस्ती । बलपूर्वक ।

जोराबर—वि० [फ्रा० जोरावर] बलवान् । ताकतवर । जबरदस्त ।

जोराबरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जोरावरी] १. जोरावर होने का भाव । २. जबरदस्ती । धीमाधीमी ।

जोरिल्ला—संज्ञा पुं० [रू०] एक प्रकार का गंधबिलाव ।

जोरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. समानता । समता । १० 'जोड़ी' । उ०—स्वर्ग सूर सभि करेँ अजोरी । तेहि ते अधिक देउ केहि जोरी ।—जायसी (शब्द०) । २. सहेली । साथिन । ३० 'जोड़ी' । उ०—पूछत है रुक्मिणी इनमें की वृषभानु किशोरी । बारेक हूँ दिखाओ अपने बालपने की जोरी ।—सूर (शब्द०) । ३. १० 'जोड़ी' ।

जोरी^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जोर] जोरावरी । जबरदस्ती । उ०—जोरी मारि भजत उतही को जात यमुन के तीर । इक घावत पोछे उनही के पावत नहीं अधीर ।—सूर (शब्द०) ।

जोरू—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ा] स्त्री । पत्नी । भार्या । घरवाली ।

मुहा०—जोरू का गुलाम = स्त्री का भक्त या उसके वश में रहने-वाला । स्त्रैण् ।

यौ०—जोरू जाता = गृहस्थी । परिवार । घर बार ।

जोल^१—संज्ञा पुं० [हि०] मेल । मिलाप ।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः मेल के साथ होता है । जैसे, मेल जोल ।

जोल^२—संज्ञा पुं० [हि० जोड़] समूह । संघ । जमघट । उ०—कहा वारी बारिज मुख ऊार, निधके पटपद जोल । सूरस्याम करि ये उतकरषा, बस कीन्ही बिनु मोल ।—सूर०, १०।१७६२ ।

जोलहटो—संज्ञा स्त्री० [हि०] जुलाहों की बस्ती ।

जोलहा—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'जुलाहा' ।

जोलाहला—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] ज्वाला । अग्नि । आग । उ०—रोम रोम पावक शिला जगी जोलाहल जोर ।—रघुराज (शब्द०) ।

जोलाहा—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'जुलाहा' ।

जोलाही—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. जोलाहे की स्त्री । उ०—काशी में जोलाहा जोलाही हुए ।—कबीर भं०, पृ० १०३ । २. जोलाहे का काम या धंधा ।

जोली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ी] वह जो बराबरी का हो । जोड़ । जोड़ी ।

यौ०—हमजोली ।

जोली^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] जानी या किरमिच आदि का बना हुआ एक प्रकार का लटकीया बिस्तर ।—(लश०) ।

विशेष—इसके दोनों सिरों पर अद्वान की तरह कई रस्सियाँ होती हैं । दोनों धीरे की ये रस्सियाँ दो कड़ियों में बँधी होती हैं धीरे दोनों कड़ियाँ दो तरफ खूंटियों आदि में लटका दी जाती हैं । बीच का बिस्तरवाला हिस्सा लठकता रहता है जिसपर आदमी सोते हैं । इसका व्यवहार प्रायः जहाजी लोग जहाजों में करते हैं ।

२. वह रस्सी जो तूफान के समय जहाजों में पाल चढ़ाने या उतारने के काम में आती है। — (सश०) । ३. एक प्रकार की गाँठ जो रस्से के एक सिरे पर उसकी लड़ों से बनाई जाती है।

जोषना ④—क्रि० स० [सं० जुषण (= सेवन), अथवा प्रा० जो (ओष = देखना)] १. जोहना । देखना । तकना । २. हँड़ना । तलाश करना । ३. घासरा देखना । रास्ता देखना । उ०—रेणु बिहाणी जोवती दिन भी बीतो जाय । रामदास बिरहिन भुरे पीव न पाया जाय । —राम० धर्म०, पृ० १६३ ।

जोषसी ④—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—सुं दिन कहे रुझा जोवसी । चतुर नागर ईसउ प्राण ज्यों बंन । —बी० रासो०, पृ० ६ ।

जोवारो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मैना जिसका रंग बहुत चमकीला होता है ।

बिशेष—यह बहुत अच्छी तरह कई प्रकार की बोलियाँ बोख सकती है, इसीलिये लोग इसे पासते और बोखना सिखाते हैं । यह ऋतुपरिवर्तन के अनुसार भिन्न भिन्न देशों में घूमा करती है । फूलों और फलनों को बहुत हानि पहुँचाती है और तिड़ियों का खूब नाश करती है । इसके अंके बिना चित्ती के और नीले रंग के होते हैं । इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है ।

जोश—संज्ञा पुं० [फा०] १. किसी तरल पदार्थ का धींच या गरमी के कारण उबलना । उफान । उबाल ।

मुहा०—जोश खाना = उबलना । उफनना । लोलना । जोश देना = पानी के साथ उबालना । जैसे,—इस दवा का जोश देकर पीओ । जोश मारना = उबलना । मथना ।

यो०—जोशदा = क्वाथ । काढ़ा ।

२. चित्त की तीव्र धृति । मनोवेग । आवेश । जैसे,—उन्होंने जोश में भाकर बहुत ही उलटी सीधी बातें कह डालीं ।

मुहा०—जोश खाना = आवेश में भाना । जोश देना = आवेश में मारना या करना । जोश मारना = उमड़ना । जोश में भाना = उत्तेजित हो उठना । आवेश में भाना । 'रून का जोश' = प्रेम का वह वेग जो अपने वंश या कुल के किसी मनुष्य के लिये उत्पन्न हो । जैसे,—खून के जोश ने उन्हें रहने न दिया, वे मरने भाई की मदद के लिये उठ दौड़े ।

यो०—जोश खरोश = अधिक आवेश । जोशे जवानी = जवानी का जोश । जोशे जुनून = पायलान का शौर । सम्पाद का जोर । सनक ।

जोशन—स्त्री० पुं० [फा०] १. भुषाओं पर पहनने का चाँदी या सोने का एक प्रकार का पहना ।

बिशेष—इसमें छह पहल या घाठ पहलवाने नंबोतरे पोले दातों की पाँच, छह या सात जोड़ियाँ खंवाई में रेशम या सूत आदि के डोरे में पिरोई रहती हैं । दोनों बाँहों पर दो जोशन पहने जाते हैं ।

२. बिरह बकतर । कवच । चार भाईना ।

४-१६

जोशदा—संज्ञा पुं० [फा० जोशदाह] दवा के काम के लिये पानी में उबाली हुई जड़ या पत्तियाँ आदि । क्वाथ । काढ़ा ।

जोशिश—संज्ञा स्त्री० [फा०] उत्साह । जोश [को०] ।

जोशी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोषी' ।

जोशीला—वि० [फा० जोश + हि० ईला (प्रत्यय)] [वि० स्त्री० जोशीली] जोश से भरा हुआ । जिसमें खूब जोश हो । आवेग-पूर्ण । जैसे,—उन्होंने कम बड़ी जोशीली वक्तृता दी थी ।

जोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रीति । प्रेम । २. सुख । आराम । ३. सेवा । ४. संतोष (को०) । ५. मोन (को०) ।

जोष^२—संज्ञा स्त्री० [सं० योषा] स्त्री । नारी ।

जोष^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोष' । उ०—चढ़े न चातिक चित कबहुँ प्रियपयोध के दोष । तुलसी प्रेम पयोधि की तावें माप न जोख । —तुलसी (शब्द०) ।

जोषक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक ।

जोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रीति । प्रेम । २. सेवा । ३. दे० 'जोष' (को०) ।

जोषणा—संज्ञा स्त्री० [ग०] दे० 'जोषण' (को०) ।

जोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी । स्त्री ।

जोषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलियों का स्तवक या गुच्छा । २. नारी । स्त्री (को०) ।

जोषित—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री (को०) ।

जोषति—संज्ञा स्त्री० [सं० जोषित] दे० 'जोषिता' । उ०—जुवा खेल खेलन गई जोषित जोषन जोर । —स० सप्तक, पृ० ३६४ ।

जोषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । नारी । औरत । उ०—जवपि जोषिता अन्न अधिकारी । दासी मन कम बचन तुम्हारी । —मानस, १ । ११० ।

जोषी—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] १. गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति । २. महाराष्ट्र ब्राह्मणों की एक जाति । ३. पहाड़ी ब्राह्मणों की एक जाति । ४. ज्योतिषी । गणक—(व०) ।

जोष्य—वि० [सं०] कमनीय । प्रिय । प्यारा (को०) ।

जोसा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोश' ।

जोसना ④—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना] दे० 'ज्योत्स्ना' । उ०—इह बरनी तुम जोष बंद जोरना मान वृत्त । —पृ० २१०, २५ । १८९ ।

जोसी ④—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिष, ज्योतिषी, जोइसी, जोसी] ज्योतिषी । उ०—पाँझा तोहि बोलावहि हो राय । ले पतझो जोरी बेगो तुं पाई । —बी० रासो, पृ० ६ ।

जोह ④—संज्ञा स्त्री० [हि० जोहना] १. खोज । तलाश ।

क्रि० प्र०—खगाना ।

२. इंतजार । प्रतीक्षा । ३. बजर । दृष्टि । विशेषतः कृपायुक्त दृष्टि ।

क्रि० प्र०—रखना ।

जोहड़(७)—संज्ञा पुं० [देश०] कच्छा तालाब ।

जोहून(७)†—संज्ञा स्त्री० [हि० जोहना] १. देखने या जोहने की क्रिया । उ०—सघन कला तर तर मनमोहन । दक्षिण चरन चरन पर दीन्हें तनु निभंभ मृदु जोहून ।—सूर (शब्द०) । २. तलाश । खोज । ढूँढ़ । ३. प्रतीक्षा । इंतजार ।

जोहना‡—क्रि० म० [सं० जूषण (= सेवन) अथवा प्रा० जोव (= देखना)] १. देखना । अवलोकन करना । ताकना । निहारना । उ०—(क) दर्पन शाह भीत तहें लावा । देखों जोहि झरोखे घावा ।—आयगी (शब्द०) । (ख) जो गन ठीर खंभ हू होहि । कह्यो प्रह्लाद घाहि तू जोहि ।—सूर (शब्द०) । २. खोजना । ढूँढ़ना । पता लगाना । उ०—शकटोप तेहि आगे सोहा । बत्तिस लख योजन कर जोहा ।—विधाम (शब्द०) । ३. राह देखना । इंतजार देखना । प्रतीक्षा करना । घामरा देखना । उ०—फूलन सेजरिया कोठरिया बिलोले बलबिरबा जोहेला तोरी बाट ।—बलबीर (शब्द०) ।

जोहर^१†—संज्ञा स्त्री० [हि० जोहड़] बावली । छोटा तालाब ।

जोहर(७)^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोहर' । उ०—जोहर करि देह त्यागी ।—ह० रासो, पृ० १६० ।

जोहार^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] अभिवादन । वंदन । प्रणाम । नमस्कार ।

जोहार^२(७)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोहर' ।

जोहारना†—क्रि० प्र० [हि०] प्रणाम या नमस्कार आदि करना । अभिवादन करना ।

जोहारी—संज्ञा स्त्री [हि० जोहार] नमस्कार । प्रणाम । उ०—एक एक बाण भेज्यो सकल नपति पे मानी सब साथ कीन्हे जोहारी ।—सूर (शब्द०) ।

जौ^१†—अव्य० [हि० ज्यों] यदि । जो ।

जौ^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यों' ।

जौकना(७)—क्रि० स० [धनु०] झटना । डपटना । क्रुद्ध होकर ऊँचे स्वर से कुछ कहना ।

जौची†—संज्ञा स्त्री० [देश०] गेहूँ या जौ की फसल का एक रोग जिससे बाल काली हो जाती है और उसमें दाने नहीं पड़ते ।

जौरा†—संज्ञा पुं० [हि० जौरा] दे० 'जौरा' ।

जौरा(७)—संज्ञा पुं० [सं० जवर, प्रा० हि० जौरा] १. जवर । जूड़ी । ताप । २. व्याघ्र । उ०—जाप करत जौरा दल्या, सुंदर मानी लोच ।—संत ब्राह्मी, पृ० १-८ ।

जौराभौरा†—संज्ञा पुं० [देश०] किम्वं या महलों के भीतर का वह गहरा तहखाना जिसमें गुप्त खजाना आदि रहता है ।

जौराभौरा^२—संज्ञा पुं० [हि० जोरा + भौरा] १. दो बालकों का जोड़ा ।—(त्यार का शब्द) । २. दो पल्लव भित्तों का जोड़ा ।

जौरै(७)†—क्रि० वि० [फा० जवार] निकट । समीप । घामपास ।

जौ^३—संज्ञा पुं० [सं० यव] १. चार पाँच महीन रहनेवाला एक पोषा जिसके बीज या दाने की गिनती घनाजों में है ।

विशेष—यह पोषा पृथ्वी के प्रायः समस्त उष्ण तथा समप्रकृतिस्थ स्थानों में होता है । भारत का यह एक प्राचीन धान्य और

हविष्यान्न है । भारतवर्ष में यह मैदानों के अतिरिक्त प्रायः पहाड़ों पर भी १४००० फुट की ऊँचाई तक होता है । इसकी बोआई कातिक अग्रहन में होती है और कटाई फागुन चैत में होती है । इसका पोषा बहुत कुछ गेहूँ का सा होता है । अंतर इतना होना है कि इसमें जड़ के पास से बहुत से डंठल निकलते हैं जिन्हें कभी कभी छाँटकर अलग करना पड़ता है । इसमें दूँड़दार बाल लगती है जिसमें कोश के साथ बिसकुल चिपके हुए दाने पंक्तियों में गुंथे रहते हैं । दानों के ऊपर का नुकीला कोश कठिनाई से अलग होता है इसी से यह घनाज कोश सहित बिकता है, पर काश्मीर में एक प्रकार का जौ प्रिम नाम का होता है जिसके दाने गेहूँ की तरह कोश से अलग रहते हैं । गेहूँ के समान जौ के या जौ की गूरी के भी घाटे का व्यवहार होता है । भूमी रहित जौ या उसके मैदा का प्रयोग रोगियों के लिये पथ्य के काम आता है । सूखे हुए पोषे का भूसा होता है जो चौपायों को प्रिय, लाभकर है और उनके खाने के काम में आता है । यूरोप में और अब भारतवर्ष के भी कई स्थानों में जौ से एक प्रकार की शराब बनाई जाती है । जौ कई प्रकार के होते हैं । इस घस की मनुष्य जाति अत्यंत प्राचीन काल से जानती है । वेदों में इसका उल्लेख बराबर है । अब भी हवन आदि में इस घस का व्यवहार होता है । ईसा से २७०० वर्ष पहले चीन के बादशाह शिन्ग ने जिन पाँच धान्यों को बोझाया था उनमें एक जौ भी था । ईसा से १०१५ वर्ष पहले सुलेमान बादशाह के समय में भी जौ का प्रचार खूब था । मध्य एशिया के करहेंग नामक स्थान के खंडहर के नीचे दबे हुए जौ स्टीन साहब को मिले थे । इस खंडहर के स्थान पर सातवीं शताब्दी में एक अच्छा नगर था जो बालू में दब गया । तबक में जौ तीन प्रकार के माने गए हैं—शूक, निःशूक और हरित वणं । शूक को यव, निःशूक को अतियव और हरे रंग के यव को स्तोक्ष्य कहते हैं । जौ झीतल, खूआ, वीर्यवर्धक, मलरोधक तथा पित्त और कफ को दूर करने-वाला माना जाता है । यव से अतियव और अतियव से स्तोक्ष्य (घोड़जई भी) हीन गुणवाला माना जाता है ।

पर्या०—यव । मेघ्य । सितशूल । दिग्घ । अजान । कंचुकि । धान्यराज । तीक्ष्णशूक । तुरगप्रिय । शक्तु । ह्येष्ट । पवित्र धान्य ।

मुहा०—जौ जौ बढ़ना=धीरे धीरे बिना लक्षित हुए बढ़ना या विकसित होना । तिल तिल बढ़ना । क्रमशः बढ़ना । जौ बराबर=जौ के दाने के बराबर लंबा । जौ भर=जौ के दाने के परिमाण का । खाए पिए सो सो हिसाब करे जौ जौ, या वे ले सो सो हिमाब करे जौ जौ=अधिक से अधिक सामूहिक व्यय करे पर हिमाब पाई पाई या पैस पैस का रखे ।

२. एक पोषा जिसकी लचीली टहनियों से पजाब में टोकरे आड़ू आदि बनते हैं । मध्य एशिया के प्राचीन खंडहरों में मकान के परवों के रूप में इसकी टट्टियाँ पाई गई हैं । ३. एक तोल जौ ६ राई (खरदल) के बराबर मानी जाती है ।

जौ^४†—अव्य० [सं० यद्] यदि । अगर । उ०—जौ सरिका कुछ

अनुचित करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरही।—तुलसी (शब्द०)।

जो^३—क्रि० वि० [हि०] जब।

यौ०—जो लौं, जो लगि, जो लहि=जब तक।

जोक^१—संज्ञा पुं० [तु० जूक] १. सेना। २. कतार। ३. झुंड। गिरोह। उ०—तुजे देखना या बड़ा हम कूँ शोक। तुजे देख पाए हजारा सौ जोक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

जोक^२—संज्ञा पुं० [प्र० जोक] रवाद। मजा। शोक। आनंद (को०)।

जोकेराई—संज्ञा स्त्री० [हि० जो + केराव] मटर मिला हुआ जो।

जोख^१—संज्ञा पुं० [तु० जूक] १. झुंड। जत्था। २. फौज। सेना। ३. पक्षियों की श्रेणी। उ०—बनी गोम वे जोख को मोख सोहे। पताकानु केकी पिकी ही भरोहे। सूदन (शब्द०)। ४. प्रादमियों का गोल। समूह। भीड़।

जोगदवा—संज्ञा पुं० [हि० जोगद (= कोई स्थान) + वा (प्रत्यय)] एक प्रकार की घन।

विशेष—यह प्रगहन के महीने में तैयार होता है और इसका चावल सैकड़ों वर्ष तक रह सकता है।

जोचनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] चना मिला हुआ जो।

जोजा—संज्ञा स्त्री० [प्र० जोजा] जंजू। भार्या। पत्नी।

जोजीयत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जोजीयत] पत्नीत्व।

जोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० जेवरी या जेवड़ी] मोटा रस्ता। उ०—फूस क जोड़ा दूरि करि, ज्यूं बहुरि न लागै लाह।—कबीर ग्रं०, पृ० ७१।

जोतुक—संज्ञा पुं० [सं० योतुक] दे० 'योतुक'।

जोधिक^१—संज्ञा पुं० [सं० योद्धिक] तलवार या खड्ग के ३२ हाथों में से एक। उ०—पुष्पम प्रथित जोधिक प्रथित ये हाथ जानी बत्तिसे।—रघुराज (शब्द०)।

जोना^१—संज्ञा पुं० [सं० यः पुनः (क. पुनः) कोन के समय पर बना] जो।

जोन^२—वि० जो। उ०—जोन ठोर मोहि आज्ञा होई। ताहि ठोर रेही में जोई।—सूर (शब्द०)।

जोन^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यवन'।

जोनाल—संज्ञा स्त्री [सं० यव + नाल] १. वह जमीन जिसपर जो प्रादि रबी की फसल बोई जाय। रबी का खेत। २. जो क. डल।

जोन्ह^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोन्ह'।

जोपै^१—संज्ञा पुं० [हि० जो + पै] अंगर। यदि।

जोबति^१—संज्ञा स्त्री० [सं० योवती] दे० 'योवती'।

जोवन^१—संज्ञा पुं० [सं० योवन] दे० 'योवन'।

जोम—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोम'।

जोर—संज्ञा पुं० [प्र०] प्रत्याचार। जुल्म। उ०—अब तक खींच खींच खींचो जफा। हर तरह दोस्ती निवाही है।—कविता को०, भा० ४, पृ० १७।

जौरा^१—संज्ञा पुं० [हि० जूरा] वह मनाज जो गाँवों में नाक बारी प्रादि पोनियों की उनके काम के बदले में दिया जाता है।

जौरा^२—संज्ञा पुं० [सं० ज्या + वर अथवा हि० जेवरी] बड़ा रस्ता।

जोनावर^१—वि० [हि०] दे० 'जोनावर'। उ०—जोनावर कोई ना बने, रावण या दशकधा।—कबीर सा०, पृ० ८८७।

जोलाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जुलाई'।

जोसाऊ—संज्ञा पुं० [हि० जोसाय (= बारह)] प्रति वर्ष बारह वैसे। फी हाया तीन घाना। (दवाली)।

जोतानी^१—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. तेजी। फुरती। उ०—गराब मंगाओ तो प्रवल को घोर जोतानी हो। प्रेमवन०, भा० २, पृ० ८८। २. घोडा (को०)। ३. गराब का घाना (को०)। ४. मनोरंजन (को०)।

जोलाय—वि० [हि० जोलाय] बारह। (दलान)।

जोशन—संज्ञा पुं० [फा०] बाहु पर पहनने का एक आभूषण। दे० 'जोशन'।

जोहर^१—संज्ञा पुं० [फा० जोहर का अरबी रूप] १. रत्न। बहुमूल्य पत्थर। २. मार वस्तु। सारांश। तत्त्व।

क्रि० प्र०—निकायना।

३. तलवार या धीर किमी लोहे के धारदार हथियार पर वे सूक्ष्म चिह्न या धारियाँ जिनसे लोहे की उत्तमता प्रकट होती है। हथियार की घोष। ४. गुण। विशेषता। उत्तमता। गूबी। लागे की बात जैसे—(क) पुलने पर हम अपने का जोहर देखिएगा। (ख) मैदान में वे अपना जोहर दिखाएंगे।

क्रि० प्र०—खुलना।—दिखाना।

मुहा०—जोहर खुलना = (१) गुण का विकास होना। गुण प्रकट होना। खूबी जाहिर होना। (२) करतब प्रकट होना। भेद खुलना। गुप्त कार्रवाई जाहिर होना। जोहर खोलना = गुण प्रकट करना। उत्कर्ष दिखाना। खूबी जाहिर करना। करतब दिखाना।

३. धाँदे की चमक।

जोहर^२—संज्ञा पुं० [हि० जोव + हर] १. राजपूतों में युद्ध के समय की एक प्रथा जिसके अनुसार नगर या गढ़ में शत्रु के प्रवेश का निरोध होना पर उनकी स्त्रियाँ और बच्चे दहकती हुई चिता में जल जाते थे।

विशेष—राजपूत लोग जब देखते थे कि वे गढ़ की रक्षा न कर सकेंगे और शत्रुओं का प्रवेश अधिकार होगा तब वे अपनी स्त्रियों और बच्चों से विदा लेकर और उन्हें दहकती चिता में भस्म होने का आदेश देकर आप युद्ध के लिये समजित होकर निकल पड़ते थे। स्त्रियाँ भी आत्महत्या करके बड़े भारी दहकते कुंड में कूदकर प्राण विगर्जन करती थीं। प्रसिद्ध है कि जब अलाउद्दीन ने चित्तौरगढ़ को घेरा था तब महाराणी पद्मिनी सोलह हजार स्त्रियों को लेकर भस्म हुई थीं। इसी प्रकार जब बैसलमेर का दुर्ग घिरा था तब नगर की समस्त स्त्रियाँ और बच्चे अर्थात् २४००० प्राणियों के लगभग क्षण भर में जल मरे थे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जोहर होना = चिता पर जल मरना। उ०—जोहर भई सब स्त्री पुरुष भए संग्राम।—जायसी (शब्द०)।

२. आत्महत्या । प्राणत्याग ।

क्रि० प्र०—करना ।

३. वह चिता जो बुगं में स्त्रियों के जलने के लिये बनाई जाती थी ।
उ०—(क) जोहर कर साज रनिवास । जेहि सत हिये कहीं
तेहि पायु ।—जायसी (शब्द०) । (ख) अजहूँ जोहर साज
के कीन्ह चहो उजियार । झोरी खेलउ रन कठिन कोउ न
समेटे छार ।—जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—माजना ।

जोहरी—संज्ञा पुं० [फा०] १. हीरा, लाल आदि बहुमूल्य पत्थर बेचने-
वाला । रत्नविक्रेता । २. रत्न परखनेवाला । जवाहिरात की
पहचान रखनेवाला । पारखी । परखैया । जँचवेया । ३. किसी
वस्तु के गुण दोष की पहचान रखनेवाला । ४. गुण का आवर
करनेवाला । गुणग्राहक । कदरदान ।

ज्ञान्य—वि० [म० ज्ञान्य] अपने आपको ज्ञानी माननेवाला [की०] ।

ज्ञी—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्ञान । बोध । २. ज्ञानी । जाननेवाला ।
जैसे, शास्त्रज्ञ, सर्वज्ञ, गायज्ञ, निमित्तज्ञ । ३. ब्रह्मा । ४. बुद्ध
ग्रह । ५. सांख्य के अनुसार निष्क्रिय निर्विकार पुरुष जिसको
ज्ञान लेने से बंधन नष्ट जाते हैं । ६. मंगल ग्रह । ७. ज और ज
के संयोग से बना हुआ संयुक्त प्रसर ।

ज्ञ—वि० १. जाननेवाला । जैसे, शास्त्रज्ञ । २. बुद्धिमान् । जैसे, विज्ञ ।

हपित—वि० [सं०] १. जाना हुआ । २. मारा हुआ ३. तुष्ट किया
हुआ । ४. तेज किया हुआ । बोखा किया हुआ । ५. जिसकी
स्तुति या प्रशंसा की गई हो ।

हप्त—वि० [सं०] जाना हुआ ।

हप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जानकारी । २. बुद्धि । ३. मारण । ४.
तोषण । तुष्टि । ५. स्तुति । ६. जलाने की क्रिया ।

हवार—संज्ञा पुं० [सं०] बुधवार । बुध का दिन ।

हा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानकारी ।

हाती—वि० [सं०] विदित । जाना हुआ । अवगत । मालूम ।

हात—संज्ञा पुं० जान ।

हातजोबना पुं०—[सं० ज + योबना] ३० 'हातयोबना' । उ०—
निज तनु जोबन अगमन जानि परत है जाहि । कबि कोविद
सब कहत है जातजोबना ताहि ।—मति० बं०, पृ० २७६ ।

हातनंदन—संज्ञा पुं० [फा० हातनन्दन] जैनों के तीर्थंकर महावीर
स्वामी का एक नाम ।

हातयोबना—संज्ञा पुं० [सं०] मुग्धा गायिका का एक भेद । वह
मुग्धा गायिका जिसे अपने यौवन का ज्ञान हो । इसके दो
भेद हैं—नवोढ़ा और विश्रब्धनोढ़ा ।

हातव्य—वि० [सं०] जो जाना जा सके । जिसे जानना हो अथवा
जिसे जानना उचित हो । ज्ञेय । वेद्य । बोधगम्य ।

विशेष—श्रुति उपनिषद् आदि में आत्मा को ही एक मात्र ज्ञातव्य
माना है । उसे जान लेने पर फिर कुछ जानना बाकी नहीं
रह जाता ।

हाता—वि० [सं० हात] [वि० स्त्री० ज्ञात्री] जाननेवाला । ज्ञान रखने
वाला । जानकार ।

ज्ञाति—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही गोत्र या वंश का मनुष्य । गोती ।
माई । बंधु । बांधव । सपिंड समानोदक आदि । उ०—ते
मोहि मिले जात घर अपने में बूझी सब जात । हंसि हंसि दोरि
मिले प्रकम भरि हम तुम एकै जाति ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) अहिर ज्ञाति छोड़ी मति कीन्ही । अपनी जाति प्रकट
करि दोन्ही ।—सूर (शब्द०) ।

ज्ञातिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोत्रज का पुत्र । २. जैन तीर्थंकर
महावीर स्वामी का नाम ।

ज्ञातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जानकारी । अभिज्ञता ।

ज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्तुओं और विषयों की वह भावना जो
मन या आत्मा को हो । बोध । जानकारी । प्रतीति ।

क्रि० प्र०—होना ।

विशेष—न्याय आदि दर्शनों के अनुसार जब विषयों का इंद्रि-
यों के साथ, इंद्रियों का मन के साथ और मन का आत्मा
के साथ संबंध होता है तभी ज्ञान उत्पन्न होता है । मान
लोजिए, कहीं पर एक घड़ा रखा है । इंद्रियों ने उस घड़े
का साक्षात्कार किया, फिर उस साक्षात्कार की सूचना मन
को दी । फिर मन ने आत्मा को सूचित किया और आत्मा ने
निश्चित किया कि यह घड़ा है । ये सब व्यापार इतने शीघ्र
होते हैं कि इनका अनुमान नहीं हो सकता । एक ही साथ दो
विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता । ज्ञान सदा अयुगपद होता
है । जैसे,—मन यदि एक ओर है और हमारी भाँख किसी
दूसरी ओर है तो इस दूसरी वस्तु का ज्ञान नहीं होगा । न्याय
में जो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, ये चार प्रमाण
माने गए हैं उन्हीं के द्वारा सब प्रकार का ज्ञान होता है ।
चक्षु, श्रवण आदि इंद्रियों द्वारा जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष
कहलाता है । व्याप्य पदार्थ को देख व्यापक पदार्थ का जो
ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं । कभी कभी एक वस्तु
(व्याप्य) के होने से दूसरी वस्तु (व्यापक) का प्रभाव नहीं
हो सकता, ऐसे अवसर पर अनुमान से काम लिया जाता
है । जैसे, धुएँ को देखकर अग्नि का ज्ञान । अनुमान तीन
प्रकार का होता है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतो दृष्ट ।
कारण को देख कार्य के अनुमान को पूर्ववत् (कारणलिंगक)
अनुमान कहते हैं । जैसे, बादलों का उमड़ना देख होने-
वाली वृष्टि का ज्ञान । कार्य को देख कारण के अनुमान
को शेषवत् (या कार्यलिंगक) अनुमान कहते हैं । जैसे,
नदी का जल बढ़ता हुआ देख वृष्टि का ज्ञान । व्याप्य को
देख व्यापक के ज्ञान को सामान्यतो दृष्ट अनुमान कहते
हैं । जैसे, धुएँ को देख अग्नि का ज्ञान, पूर्ण चंद्रमा को
देख शुक्ल पक्ष का ज्ञान इत्यादि । प्रसिद्ध या ज्ञात वस्तु के
साधारण द्वारा जो दूसरी वस्तु का ज्ञान कराया जाता है, उसे
उपमान कहते हैं । जैसे,—गाय ही ऐसी नीलगाय होती है ।
दूसरों के कथन या शब्द के द्वारा जो ज्ञान होता है उसे शब्द
कहते हैं । जैसे गुरु का उपदेश आदि । सांख्य शास्त्र प्रत्यक्ष,
अनुमान और शब्द ये तीन ही प्रमाण मानता है उपमाव को
इनके अंतर्गत मानता है । ज्ञान दो प्रकार का होता है—प्रमा

अर्थात् यथार्थ ज्ञान और अप्रमा या अयथार्थ ज्ञान। वेदांत में ब्रह्म को ही ज्ञानस्वरूप माना है अतः उसके अनुसार प्रत्येक का ज्ञान पुथक् नहीं हो सकता। एक वस्तु से दूसरी वस्तु में या एक के ज्ञान से दूसरे के ज्ञान में जो विभिन्नता दिखाई देती है, वह विषय रूप उपाधि के कारण है। वास्तविक ज्ञान एक ही है जिसके अनुसार सब विभिन्न दिखाई पड़नेवाले पदार्थों के बीच में केवल एक चित् स्वरूप सत्ता या ब्रह्म का ही बोध होना है।

पारंपारिक दर्शन में भी विषयों के साथ इंद्रियों के संयोग रूप ज्ञान को ही ज्ञान का मूल अथवा प्रथम रूप माना है। किसी एक वस्तु के ज्ञान के लिये भी यह भावना आवश्यक है कि वह कुछ वस्तुओं के समान और कुछ वस्तुओं से भिन्न है अर्थात् बिना साधर्म्य और वैधर्म्य की भावना के किसी प्रकार का ज्ञान होना असंभव है। इस साक्षात्करण रूप ज्ञान से आगे चलकर सिद्धांत रूप ज्ञान के लिये संयोग, सहकालत्व आदि की भावना भी आवश्यक है। जैसे,—‘वह पेड़ नदी के किनारे है’ इस ज्ञान का ज्ञान केवल पेड़ ‘नदी’ और किनारा का साक्षात्कार मात्र नहीं है बल्कि इन तीन पुथक् भावों का समाहार है।

प्राणिविज्ञान के अनुसार खोपड़ी के भीतर जो मज्जा-तंतु-जाल (नाड़ियाँ) और कोश हैं, चेतन व्यापार उन्हीं की क्रिया से संबंध रखते हैं। इनमें क्रिया को ग्रहण करने और उत्पन्न करने दोनों की शक्ति है। इंद्रियों के साथ विषयों के संयोग द्वारा संचालन नाड़ियों के द्वारा भीतर की ओर जाता है और कोशों को प्रोत्साहित करके परमाणुओं में उत्तेजना उत्पन्न करता है। भूतवादियों के अनुसार इन्हीं नाड़ियों और कोशों की क्रिया का नाम चेतना है, पर अधिकांश लोग चेतना को एक स्वतंत्र शक्ति मानते हैं।

क्रि० प्र०—होना।

मुद्रा०—ज्ञान छोटना—अपनी विद्या या जानकारी प्रकट करने के लिये लंबी चौड़ी बातें करना।

२. यथार्थ ज्ञान। सम्यक् ज्ञान। तत्त्वज्ञान। आत्मज्ञान। प्रमा। केवलज्ञान।

विशेष—मीनासा को छोड़कर प्रायः सब दर्शनों ने ज्ञान से मोक्ष माना है। न्याय में ज्ञान द्वारा मिथ्या ज्ञान का नाश, मिथ्या ज्ञान के नाश से दोष का नाश, दोष न रहने पर प्रवृत्ति से निवृत्ति, प्रवृत्ति के नाश से जन्म से निवृत्ति और जन्म की निवृत्ति से दुःख का नाश, दुःख के नाश से मोक्ष माना जाता है। सांख्य ने पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान प्राप्त होने से जब प्रकृति हट जाती है तब मोक्ष का ज्ञान होना बतलाया है। वेदांत का मोक्ष ऊपर लिखा जा चुका है।

ज्ञानकांड—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानकाण्ड] वेद के तीन कांडों या विभागों में से एक जिसमें ब्रह्म आदि सूक्ष्म विषयों का विचार है। जैसे,— उपनिषद्।

ज्ञानकुल—वि० [सं०] जो पाप ज्ञान बूझकर किया गया हो, भूल से न हुआ हो।

विशेष—ज्ञानकृत पापों का प्रायश्चित्त दूना लिखा गया है।

ज्ञानगम्य—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान की पहुँच के भीतर। जो जाना जा सके।

ज्ञानगर्भ—वि० [सं०] ज्ञान से पूर्ण या भरा हुआ [को०]।

ज्ञानगोचर—वि० [सं०] ज्ञानेन्द्रियों में जानने योग्य। ज्ञानगम्य।

ज्ञानधन—संज्ञा पु० [सं०] शुद्ध ज्ञान। केवल ज्ञान [को०]।

ज्ञानचक्षु^१—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानचक्षुस्] ज्ञान के नेत्र। अंतर्दृष्टि [को०]।

ज्ञानचक्षु^२—वि० ज्ञान की दृष्टि से देखनेवाला। पंडित [को०]।

ज्ञानज्येष्ठ—वि० [सं०] जो ज्ञान में बढ़कर हो [को०]।

ज्ञानतः—क्रि० वि० [सं० ज्ञानतस्] ज्ञान बूझकर। जानकारी में। समझ बूझकर।

ज्ञानतत्त्व—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानतत्त्व] यथार्थ ज्ञान [को०]।

ज्ञानतपा—वि० [सं० ज्ञानतपस्] शुद्ध ज्ञान के लिये तप करने-वाला [को०]।

ज्ञानद—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान देनेवाला। गुरु [को०]।

ज्ञानदग्धदेह—संज्ञा पु० [सं०] वह जो चतुर्थ आश्रम में हो। संन्यासी।

विशेष—स्पृतिषों में लिखा है कि संन्यासी जीवित अवस्था ही में देह अर्थात् सुख दुःख आदि को ज्ञान द्वारा दग्ध कर डालता है अतः मृत्यु हो जाने पर उसके दाह कर्म की आवश्यकता नहीं। उसके शरीर को एक गड्ढा खोदकर प्रणव मंत्र के उच्चारण के साथ गाड़ देना चाहिए।

ज्ञानदा—संज्ञा की० [सं०] सरस्वती। [को०]।

ज्ञानदाता—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानदातृ] ज्ञान देनेवाला मनुष्य। गुरु।

ज्ञानदात्री—संज्ञा की० [सं०] ज्ञान देनेवाली देवी। सरस्वती [को०]।

ज्ञानदुर्बल—वि० [सं०] ज्ञान में दुर्बल या असमर्थ [को०]।

ज्ञानधन—वि० [सं०] ज्ञानी। तत्त्वविद्। उ०—क्रिया समाहित चित्त ज्ञानधन तुम्हें जानकर।—अपरा, पु० १६३।

ज्ञानधाम—वि० [सं० ज्ञानधामन्] परम ज्ञानी। उ०—खोजे सो कि अज इन नारी। ज्ञानधाम श्रीपति असुगारी।—मानस, १।५१।

ज्ञाननिष्ठ—वि० [सं०] १. अज्ञान, मनन, निदिध्यासन, आदि ज्ञान साधनोंवाला। २. तत्त्वज्ञानी [को०]।

ज्ञानपिपासा—संज्ञा की० [सं०] ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा। ज्ञान की प्यास [को०]।

ज्ञानपिपासु—वि० [सं०] ज्ञानप्राप्ति की इच्छावाला। जिज्ञासु [को०]।

ज्ञानप्रभ—संज्ञा पु० [सं०] एक तथागत का नाम।

ज्ञानमद—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान का अभिमान। ज्ञानी या जानकार होने का घमंड।

ज्ञानमुद्र—वि० [सं०] ज्ञानी। ज्ञानवाला [को०]।

ज्ञानमुद्रा—संज्ञा की० [सं०] तपस्वार के अनुसार राम की पूजा की एक मुद्रा।

विशेष—इसमें दाहिने हाथ की तर्जनी को अंगूठे से मिलाकर हाथ

में रखते हैं और बाएँ हाथ की उँगलियों को कमलसंयुत के घाकार की करके उनसे सिर से लेकर बाएँ जंघे तक रक्षा करते हैं।

ज्ञानयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा का परमात्मा में वृत्त अर्थात् आत्मा और परमात्मा का संयोग या अभिद्वान। ब्रह्मज्ञान।

ज्ञानयोग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मोक्ष का साधन। उ०—एक ज्ञानयोग विस्तरे। ब्रह्म जानि सबसे द्रित करे।—सूर (शब्द०)।

ज्ञानलक्षण—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. न्याय में अलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद।

विशेष—नैयायिकों ने प्रत्यक्ष के दो भेद माने हैं, लौकिक और अलौकिक। अलौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं, सामान्य-लक्षण, ज्ञानलक्षण और योगज। ज्ञानलक्षण वह है जिसमें विशेषण के ज्ञात होने पर विशेष्य का ज्ञान होता है। जैसे, घटत्व का ज्ञान होने पर घट शब्द से घड़े का ज्ञान।

२. ज्ञान का निर्देशक, एकैक साधन या उपाय (को०)।

ज्ञानलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'ज्ञानलक्षण' (को०)।

ज्ञानवान—वि० [सं०] जिसे ज्ञान हो। जानी।

ज्ञानवापी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशीस्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ।

ज्ञानविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १. विभिन्न प्रकार का या पवित्र ज्ञान। २. वेद, उपवेद सहित उसकी शाखाओं का ज्ञान (को०)।

ज्ञानवृद्ध—वि० [सं०] ज्ञान में वृद्ध। जिसकी जानकारी अधिक हो।

ज्ञानशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] भावस्थ का विचार अथवा कथन करने वाला शास्त्र (को०)।

ज्ञानसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इन्द्रिय। २. ज्ञानप्राप्ति का प्रयत्न।

ज्ञानाजन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञानाजन। ज्ञानजन। ब्रह्मज्ञान (को०)।

ज्ञानाकर—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

ज्ञानापोह—संज्ञा पुं० [सं०] भूल जाना। ज्ञान न रहना। विस्मरण (को०)।

ज्ञानावरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्ञान का परदा। ज्ञान का बाधक। २. वह पाप कर्म जिसमें ज्ञान का यथार्थ लाभ जीव को नहीं होता है।

विशेष—एक ही प्रकार का है,—(१) मतिज्ञानावरण। (२) अतिज्ञानावरण। (३) अयोग्यज्ञानावरण। (४) मनःपर्याय ज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण। (जैन)।

ज्ञानावरणीयकर्म—[सं०] ३० 'ज्ञानावरण'।

ज्ञानामन—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रयामन के धनुष्मर योग का एक भासत।

विशेष—इसमें योगाभ्यास से शीघ्र सिद्धि होती है। इसमें दाहिनी जाँघ पर बाएँ पैर के अङ्गुली रखना पड़ता है। इससे पैर की नसे ढीली हो जाती है।

ज्ञानी—वि० [सं०] ज्ञानवि। १. जिस ज्ञान हो। ज्ञानवान्। जानकार। २. आप्तजानी। ब्रह्मजानी।

ज्ञानेन्द्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञानेन्द्रिय। वे इन्द्रियाँ जिनसे जीवों को विषयों का बोध या ज्ञान होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं,—दर्शनेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना और स्पर्शेन्द्रिय।

विशेष—इन इन्द्रियों के मोक्षक या माध्यम क्रमशः प्राँख, कान, जीभ,

नाक और त्वक् हैं। इन पाँचों के प्रतिरिक्त कोई कोई छठी इन्द्रिय मन या अतः कण मानते हैं पर मन केवल ज्ञानेन्द्रिय नहीं है बस इन्द्रिय भी है अतः उसे दार्शनिकों ने उभयात्मक माना है।

ज्ञानोदय—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान का उदय (को०)।

ज्ञापक—वि० [सं०] १. जतानेवाला। जिससे किसी बात का बोध या पता चले। सूचक। व्यञ्जक (वस्तु)। २. बतानेवाला। सूचित करनेवाला (व्यक्ति)।

ज्ञापक—संज्ञा पुं० १. गुरु। आचार्य। २. धनु। स्वामी (को०)।

ज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ज्ञापित, ज्ञाप्य] जताने या बताने का कार्य।

ज्ञापयिता—वि० [सं०] जतानेवाला। बतानेवाला। ज्ञापक (को०)।

ज्ञापित—वि० [सं०] जताना हुआ। बताना हुआ। सूचित।

ज्ञाप्य—वि० [सं०] जताने या सूचित करने योग्य (को०)।

ज्ञोत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा (को०)।

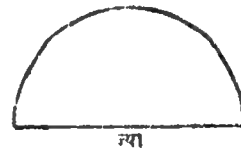
ज्ञेय—वि० [सं०] १. जिसका ज्ञान योग्य या कर्तव्य हो। जानने योग्य।

विशेष—ब्रह्मजानी लोग एतन्मात्र ब्रह्म को ही ज्ञेय मानते हैं, जिसको जाने बिना मोक्ष नहीं हो सकता।

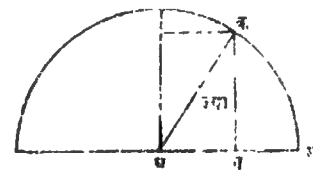
२. जो जाना जा सके। जिसका जानना संभव हो।

ज्याना(पुं०) [सं०] हि० जिमाना, जेजाना। खिलाना। उ०—सुभग सुरवाद सुविजय प्राप्ति। जननी ज्याये अपने पति।—नंद० प्र०, पृ० २७८।

ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष की डोरी। २. वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हो।



३. वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से उस व्यास पर लंब रूप से गिरी हो जो चाप के दूसरे सिरे से होकर गया हो।



४. त्रिकोणमिति में केंद्र पर के कोण के विचार से ऊपर बतलाई हुई रेखा (क ग) और त्रिज्या (क ध) की निष्पत्ति। ५. प्रत्यो। ६. नाता। ७. किसी वृत्त का व्यास। ८. सर्वोच्च शक्ति (को०)। ९. अत्यधिक माँग (को०)। १०. एक प्रकार की छड़ी। शम्भा (को०)। १०. सेना का पृष्ठ भाग (को०)।

ज्याग(पुं०) [सं०] १० 'ज्या'। उ०—जेहा केहा ज्याग हैवर राखोडा हुवे।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १४।

ज्याघात—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी के स्पर्श या रगड़ से होने वाला उर्ध्वनियों पर का निशान या चिह्न (को०)।

यौ०—ज्याघातवारण = धनुषों द्वारा पहना जानेवाला शृंगुलित्राण।

ज्याघोष—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की टंकार (को०)।

ज्यादती—संज्ञा स्त्री० [फा० ज्यादती] १. अधिकता । बहुतायत । अधिकारी । २. जुलूम । अत्याचार ।

ज्यादा—क्रि० वि० [फा० ज्यादह्] अधिक । बहुत ।

ज्यान^१—संज्ञा पुं० [फा० जियान] नुकसान । हानि । घाटा ।
उ०—हैंकै अजान जु कान्ह सो कीनो सु मान भगो यहै ज्यान है जी को ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११६ ।

ज्यान^२—संज्ञा स्त्री० [फा० जान] १० 'जान' । उ०—(क) पातमाह की ज्यान बखसोस करो ।—ह० रासो, पृ० १५६ । (ख) अरे हस्त ऐसा बुरा, फिर लेता है ज्यान ।—बन० ग्रं०, पृ० ४८ ।

ज्याना^३—क्रि० सं० [हि०] १० 'जियाना' । उ०—ज्याइए तो जानकी रमन जन जानि जिय, मारिए नो माँगी भीतु सूषिए कहतु हो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४० ।

ज्यानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वृद्धावस्था । जरा । बुढ़ापा । २. क्षय । ३. त्याग । परित्याग । ४. नदी । ५. अत्याचार । उत्पीड़न । ६. हानि [को०] ।

ज्यानी^४—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्यानि, तुलनीय फा० जियान] हानि । घाटा । उ०—ता दिन तैं ज्यानी सी बिकानी सी बिलानी बिलसानी सी बिलानी राजधानी जमराज की ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६३ ।

ज्याफत—संज्ञा स्त्री० [फा० जियाफत] १. दावत । भोज । २. मेह-मानी । आतिथ्य ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।

ज्यामिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहु गणित विद्या जिससे भूमि के परिमाण, मिश्र भिन्न क्षेत्रों के धर्मों आदि के परस्पर संबंध तथा रेखा, कोण, तल आदि का विचार किया जाता है । श्रेय गणित । रेखागणित ।

विशेष—इस विद्या में प्राचीन यूनानियों (यवनों) ने बहुत उत्पत्ति की थी । यूनान देश के प्राचीन इतिहासवेत्ता हेरोडोटस के अनुसार ईसा से ११५३ वर्ष पूर्व सिसोस्ट्रस के समय में मिस्र देश में इस विद्या का आविर्भाव हुआ । राजकर निर्धारित करने के लिये जब भूमि को मापने की आवश्यकता हुई तब इस विद्या का सूत्रपात हुआ । कुछ लोग कहते हैं कि नीप नदी के बढ़ाव उतार के कारण लोगो की जमीन जो डूब मिट जाया करती थी, उसी से यह विद्या निकाली गई । इजिप्ट के टीकाकार प्रोक्लस ने भी लिखा है कि येलस ने मिस्र में जाकर यह विद्या सीखी थी और यूनान में इसे प्रचलित की थी । घीरे घीरे यूनानियों ने इस विद्या में बड़ी उत्पत्ति की । पाइथागोरस ने सबसे पहले इसके संबंध में सिद्धांत स्थिर किए और कई प्रतिज्ञाएँ निकाली । फिर तो प्लेटो आदि अनेक विद्वान् इस विद्या के अनुश्रुति में लगे । प्लेटो के अनेक शिष्यों ने इस विद्या का विस्तार किया जिनमें मुख्य प्रमटू (एरिस्टाटिल) और इडोडसस थे । पर इस विद्या का प्रधान प्राचार्य इजिप्ट (उगैदस) हुआ जिसका नाम रेखागणित का पर्याय स्वरूप हो गया । यह ईसा से २८४ वर्ष पूर्व जीवित था और इसकंदरिया (अलेजेंड्रिया, जो मिस्र में है) के विद्यालय में गणित की शिक्षा देता था । वास्तव में इजिप्ट ही यूरप में

ज्यामिति विद्या का प्रतिष्ठापक हुआ है और इसकंदरिया ही इस विद्या का केंद्र था पीछे रहा है । जब अरबवालों ने इस नगर पर अधिकार किया तब भी वहाँ इस विद्या का बड़ा प्रचार था । प्राचीन हिंदू भी इस विद्या में बहुत पहले अभिरुचि हुए थे । वैदिक काल में प्राचीन यज्ञ की वेदियों के परिमाण, आकृति आदि निर्धारित करने के लिये इस विद्या का प्रयोजन पड़ा था । ज्यामिति का आश्रय शुक्लसूत्र, कारणाग्न श्रौतसूत्र, शतपथ ब्राह्मण आदि में वेदियों के निर्माण के प्रकरण में पाया जाता है । इस प्रकार यद्यपि इस विद्या का सूत्रपात भारत में ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व हुआ था पर इसमें यहाँ कुछ उत्पत्ति नहीं की गई । यूनानियों के समय के पीछे बहगुप्त और भारकराचार्य के धर्मों में ही ज्यामिति विद्या का विशेष विवरण देखा जाता है । इस प्रकार जब हिंदुओं का ध्यान यवनों के संसर्ग से फिर इस विद्या की ओर हुआ तब उन्होंने उसमें बहुत से नए निरूपण किए । परिधि और व्यास का सूक्ष्म अनुपात ३१४१६ : १ भारकराचार्य को विदित था । इस अनुपात को अरबवालों ने हिंदुओं से सीखा, पीछे इसका प्रचार यूरप में (१२वीं शताब्दी के पीछे) हुआ ।

ज्यायस्—क्रि० [सं०] [वि० फा० ज्यायसी] १. जेटु । बड़ा । २. सर्वश्रेष्ठ । ३. विशाल । महत् । ४. जो नाशालय न हो । प्रोढ़ । ५. वयोवृद्ध । वृद्ध । ६. शीघ्र । अग्रणी । ७. उत्तम । शक्तिशाली । वरेण्य [को०] ।

ज्यायिष्ठ—क्रि० [सं०] १. सर्वश्रेष्ठ । २. पथम । सर्वप्रथम [को०] ।

ज्यारना^१—क्रि० प्र० [हि०] १० 'जियाना', 'जयाना' । उ०—प्रायो किमि विम मेहु ओजहूँ न पायो वहु सरसायो वातै लै दिखायो म्याम ज्यायि ।—पद्माकर (ग्रं०) ।

ज्यारना^२—क्रि० प्र० [हि०] १० 'जियाना' । उ०—चिता जाले ममन, ज्याम ।—दत्तनी०, पृ० १३४ ।

ज्यावना^३—क्रि० सं० [हि०] १० 'जियाना' ।

ज्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योति [को०] ।

ज्यूँ^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'ज्यो' ।

ज्येष्ठ—क्रि० [सं०] १. बड़ा । बेटा । जैसे, ज्येष्ठ भाता । २. वृद्ध । बड़ा । बुढ़ा ।

ज्यो—ज्येष्ठ भात = बचपन का भाई । ज्येष्ठ वर्ण = ब्राह्मण । ज्येष्ठ पञ्च = पत्नी जो बड़ी बहन । बड़ी माली ।

ज्येष्ठ—संज्ञा पुं० १. जेठ का पहला दिन । वह महीना जिसमें ज्येष्ठा नक्षत्र में गुरुणा का व्रजमा पड़ता है । वह वर्ष का तीसरा और गुरुणा ऋतु का पहला मसूना है । २. वह वर्ष जिसमें गुरुणा का उदय ज्येष्ठा नक्षत्र में हो ।

विशेष—यह वर्ष कर्कशी धीरे-धीरे की ओर अश्वी के लिये हानिकारक माना जाता है । इसी कारण रमज होना है और श्रेष्ठता जाति, कुल और धन में होती है ।—(मुद्रमहिता)

३. सामान का एक भेद । ४. परमेश्वर । ५. प्राण ।

ज्येष्ठता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्येष्ठ होने का भाव । बड़ाई । २. श्रेष्ठता ।

ज्येष्ठबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] महदेई नाम की जड़ी जो घीषध के काम में पाती है ।

ज्येष्ठसामग—संज्ञा पुं० [सं०] घरत्यक साम का पढ़नेवाला ।

ज्येष्ठसामा—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठसामन्] ज्येष्ठ सामवेद का पढ़नेवाला ।

ज्येष्ठांशु—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठांशु] १. चावलों का धोवन । २. माड़ (को०) ।

ज्येष्ठांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़े माई का हिस्सा या अंश । २. पैतृक संपत्ति में बड़े माई को मिलनेवाला अधिक अंश । ३. उत्तम अथवा हिस्सा [को०] ।

ज्येष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. २७ नक्षत्रों में से अठारहवाँ नक्षत्र जो तीन तारों से बन कुइल के आकार का है । इसके देवता चंद्रमा हैं । २. वह स्त्री जो धीरों की अपेक्षा अपने पति को अधिक प्यारी हो । ३. छिपकली । ४. मध्यमा उंगली । ५. गंगा । ६-पद्मपुराण के अनुसार प्रलक्ष्मी देवी ।

विशेष—ये समुद्र मथने पर लक्ष्मी के पहले निकली थीं । जब इन्होंने देवताओं से पूछा कि हम कहाँ निवास करें तब इन्होंने बतलाया कि जिसके घर में सदा कलह हो, जो निरप्य गंदी या बुरी बातें बके, जो अशुचि रहे इत्यादि उसके यहाँ रहो । निगपुराण में लिखा है कि जब देवताओं में से किसी ने इन्हें प्रहृण नहीं किया तब दुःसह नामक तेजस्वी ब्राह्मण ने इन्हें पानी रूप से प्रहृण किया ।

ज्येष्ठा—वि० स्त्री० बड़ी ।

ज्येष्ठाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तमाश्रम । गृहस्थाश्रम ।

ज्येष्ठाश्रमी—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठाश्रमिन्] गृहस्थ । गृही ।

ज्येष्ठो—संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहभोगा । पत्नी । छिपकली । बिस-तुइया ।

ज्यों—क्रि० वि० [सं० या + इत्] १. जिस प्रकार । जैसे । जिस ढंग से । जिस रूप से । उ०—(क) तुमसिदास जगदव जवाय ज्यों धनघ आगि लागे बाढ़न । —तुलसी (शब्द०) । (ख) करी न प्रीति श्याम गुंजर सो जन्म जुधा ज्यों हाथो । —सूर (शब्द०) ।

विशेष—अब यद्यपि १० अक्षर का प्रयोग अकेले नहीं होता केवल कविता में सहाय्य दिखलाने के लिये होता है ।

मुहा०—ज्यों त्याग—(१) किसी व किसी प्रकार । किसी ढंग में । अभद्र और बड़े-बड़े के साथ । (२) अरुचि के साथ । अच्छी तरह नहीं । ज्यों त्यों करके—(१) किसी न किसी प्रकार । किसी ढंग में । किसी लयाय है । जिस प्रकार हो सके उस प्रकार । जैसे,—ज्यों त्यों करके उसे हमारे पास से आओ । (२) अजड़ और बसेड़े के साथ । दिक्कत के साथ । कठिनाई के साथ । जैसे,—रास्ते में बड़ी गहरा छाँधी आई, ज्यों त्यों करके घर पहुँचे । ज्यों का त्यों—(१) जैसे का तैसा । उसी रूप रंग का । तद्रूप । सदृश । (२) जैसा पहले था वैसा ही । जिसमें कुछ केर फार या घटती बढ़ती न हुई हो । जिसके साथ

कुछ क्रिया न की गई हो । जैसे,—सब काम ज्यों का त्यों पड़ा है कुछ भी नहीं हुआ है ।

विशेष—वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द के साथ 'त्यों' का प्रयोग होता है पर यद्यपि प्रायः नहीं होता ।

२. जिस क्षण । जैसे ही । जैसे,—(क) ज्यों मैं धाया कि पानी बरसने लगा । (ख) ज्यों ही मैं पहुँचा, वह उठकर चला गया ।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग 'ही' के साथ अधिक होता है ।

मुहा०—ज्यों ज्यों—जिस क्रम से । जिस मात्रा से । जिनना ।

उ०—जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न । त्यों त्यों मुकुट सुभल कलि भूपति निदरि लगे बहि काढ़न । —तुलसी (शब्द०) ।

ज्योतिःपुंज—वि० [सं० ज्योतिःपुञ्ज] प्रखर या दिव्य प्रकाशवाला । जिसमें प्रकाश भरा हो । उ०—स्वर्ग को ज्योतिःपुंज प्राप्त हो । —पाराशरा, पु० ८ ।

ज्योतिःशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष ।

ज्योतिःशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लघु गुरु वर्णों की गणना के अनुसार विषम वर्णवृत्तों का एक भेद जिसके पहले दल में ३२ लघु और दूसरे दल में १६ गुरु होते हैं ।

ज्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योतिस्] १. प्रकाश । उजाला । द्युति । २. अग्निशिखा । खपठ । लो ।

मुहा०—ज्योति जगना—(१) प्रकाश फैलना । (२) किसी देवता के सामने दीपक जलाना ।

३. अग्नि । ४. सूर्य । ५. तक्षक । ६. मेघी । ७. संगीत में अष्टताक का एक भेद । ८. अश्वि की पुतली के मध्य का वह बिंदु या स्थान जो बर्षों का प्रधान साधन है । ९. दृष्टि । १०. अग्नि-प्लोम यज्ञ की एक संख्या का नाम । ११. विष्णु । १२. वेदांत में परमात्मा का एक नाम ।

ज्यो—ज्योतिमयी—प्रकाश से भरी हुई । ज्योतिमुख—ज्योति का मुख ।

ज्योतिकपु—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'ज्योतिकी' । उ०—बार बार ज्योतिक सो घरी ब्रुकि आवै । एक जाइ पहुँचै वहि और एक पठावै । —सूर (शब्द०) ।

ज्योतिष—वि० [सं० ज्योति + हि० त (प्रत्य०)] प्रकाशित । उद्भासित । ज्योतिष पूर्ण । उ०—मा ! तब तूने मुझे दिखाई अपनी ज्योतिष छटा अपार । —बोद्या, पु० ५५ ।

ज्योतिरिग—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्ग] जुगप् ।

ज्योतिरिगण्य—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्गण्य] जुगप् ।

ज्योतिर्मय—वि० [सं०] प्रकाशमय । द्युतिपूर्ण । जयमवाता हुआ ।

ज्योतिर्लिङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिर्लिङ्ग] १. महादेव । शिव ।

विशेष—शिवपुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब वे बबकाकर कमलनाल पर इधर के उधर घूमने लगे । विष्णु ने कहा कि तुम सृष्टि बनाने के लिये उत्पन्न किए गए हो । इसपर ब्रह्मा बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि तुम कौन हो, तुम्हारा भी तो कोई कर्ता है ? जब दोनों

में घोर युद्ध होने लगा तब भगड़ा निपटाने के लिये एक कालाग्नि सदृश ज्योतिर्लिंग उत्पन्न हुआ जिसके चारों घोर भयंकर ज्वाला फैल रही थी। यह ज्योतिर्लिंग प्रादि, मध्य घोर अंत रहित था। इस कथा का अग्रिप्राय ब्रह्मा और विष्णु से शिव को श्रेष्ठ सिद्ध करना ही प्रतीत होता है।

२. भारतवर्ष में प्रतिष्ठित शिव के प्रधान लिंग जो बारह हैं। वैद्यनाथ माहात्म्य में इन बारह लिंगों के नाम इस प्रकार हैं। सोभनाथ सोराष्ट्र में, मल्लिकार्जुन श्रीशैल में, महाकाल उज्जयिनी में, शोकार नर्मदा तट पर (अमरेश्वर में), केदार हिमालय में, भीमशंकर ढाकिनी में, विश्वेश्वर काशी में, श्र्यंबक गोमती किनारे, वैद्यनाथ चित्तौड़ में, नागेश्वर द्वारका में, रामेश्वर सेतुबंध में, धृष्टोश्वर शिवाल्य में।

ज्योतिर्लोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कालचक्र प्रवर्तक ध्रुव लोक। २. उस लोक के अधिपति परमेश्वर या विष्णु।

विशेष—भागवत में इस लोक को सप्तमि मंडल से १३ लाख योजन घोर दूर लिखा है। यहीं उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव स्थित हैं जिनकी परिक्रमा इंद्र कक्षप प्रजापति तथा ग्रह नक्षत्र आदि बराबर करते रहते हैं।

ज्योतिर्विद्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष जाननेवाला। ज्योतिषी।

ज्योतिर्विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या।

ज्योतिर्विज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ज्योतिर्विज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र और राशियों का मंडल।

ज्योतिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह विद्या जिससे अंतरिक्ष में स्थित ग्रहों नक्षत्रों आदि की परस्पर दूरी, गति, परिमाण आदि का निश्चय किया जाता है।

विशेष—भारतीय आर्यों में ज्योतिष विद्या का ज्ञान अत्यंत प्राचीन काल से था। यज्ञों की तिथि आदि निश्चित करने में इस विद्या का प्रयोजन पड़ता था। अयन चलन के क्रम का पता बराबर वैदिक ग्रंथों में मिलता है। जैसे, पुनर्वसु से मृगशिरा (ऋग्वेद), मृगशिरा से रोहिणी (ऐतरेय ब्रा०), रोहिणी से कृत्तिका (तैत्तिरीय सं०) कृत्तिका से भरणी (वेदांग ज्योतिष)। तैत्तिरीय संहिता से पता चलता है कि प्राचीन काल में वासंत विषुवद्दिन कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था। इसी वासंत विषुवद्दिन से वैदिक वर्ष का आरंभ माना जाता था, पर अयन की गणना माघ मास से होती थी। इसके पीछे वर्ष की गणना आरंभ विषुवद्दिन से आरंभ हुई। ये दोनों प्रकार की गणनाएँ वैदिक ग्रंथों में पाई जाती हैं। वैदिक काल में कभी वासंत विषुवद्दिन मृगशिरा नक्षत्र में भी पड़ता था। इसे पंडित बाबू गंगाधर तिलक ने ऋग्वेद से अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है। कुछ लोगों ने निश्चित किया है कि वासंत विषुवद्दिन की यह स्थिति ईसा से ४००० वर्ष पहले थी। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि ईसा से पाँच छह हजार वर्ष पहले हिंदुओं को नक्षत्र अयन आदि का ज्ञान था और वे यज्ञों के लिये पत्रा बनाते थे। आरंभ वर्ष के प्रथम मास का नाम अग्रहायण था जिसकी पूर्णिमा मृगशिरा

नक्षत्र में पड़ती थी। इसी से कृष्ण ने कहा है कि 'महीनों में मैं मार्गशीर्ष हूँ'। प्राचीन हिंदुओं ने ध्रुव का पता भी अत्यंत प्राचीन काल में लगाया था। अयन चलन का सिद्धांत भारतीय ज्योतिषियों ने किसी दूसरे देश से नहीं लिया; क्योंकि इसके संबंध में जब कि युगोप में विवाद था, उसके सात आठ सौ वर्ष पहले ही भारतवासियों ने इसकी गति आदि का निरूपण किया था। बराहमिहिर के समय में ज्योतिष के संबंध में पाँच प्रकार के सिद्धांत इस देश में प्रचलित थे—सौर, पैतामह, वासिष्ठ, पोलिश और रोमक। सौर सिद्धांत संबंधी सूर्य सिद्धांत नामक ग्रंथ किसी और प्राचीन ग्रंथ के आधार पर प्रणीत जान पड़ता है। बराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त दोनों ने इस ग्रंथ से सहायता ली है। इन सिद्धांत ग्रंथों में ग्रहों के भ्रमण, स्थान, युति, उदय, अस्त आदि जानने की क्रियाएँ सविस्तर दी गई हैं। अक्षांश और देशांतर का भी विचार है। पूर्व काल में देशांतर संज्ञा या उज्जयिनी से लिया जाता था। भारतीय ज्योतिषी गणना के लिये पृथ्वी को ही केंद्र मानकर चलते थे और ग्रहों की स्पष्ट स्थिति या गति लेते थे। इससे ग्रहों की कक्षा आदि के संबंध में उनकी और आज की गणना में कुछ अंतर पड़ता है।

कतिपय पहले २८ नक्षत्रों में ही विभक्त किया गया था। राशियों का विभाग पीछे से हुआ है। वैदिक ग्रंथों में राशियों के नाम नहीं पाए जाते। इन राशियों का यज्ञों से भी कोई संबंध नहीं है। बहुत से विद्वानों का मत है कि राशियों और दिनों के नाम यवन (यूनानियों के) संपर्क के पीछे के हैं। अनेक पारिभाषिक शब्द भी यूनानियों से लिए हुए हैं, जैसे,—होग, दुष्काण केंद्र, इत्यादि।

ज्योतिष के आनकल दो विभाग माने जाते हैं—एक सिद्धांत या गणित ज्योतिष, दूसरा फलित ज्योतिष। फलित में ग्रहों के शुभ अशुभ फल का निरूपण किया जाता है।

२. अस्त्रों का एक मंदार या रोक जिससे चलाया हुआ अस्त्र निष्फल जाता है।

विशेष—इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है।

ज्योतिषिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करनेवाला। ज्योतिषी।

ज्योतिषिक^२—पि० ज्योतिष संबंधी।

ज्योतिषी^१—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषिन्] ज्योतिष शास्त्र का जाननेवाला मनुष्य। ज्योतिर्विद्। देवज। गणक।

ज्योतिषी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा। ग्रह। नक्षत्र।

ज्योतिष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रह, तारा, नक्षत्र आदि का समूह।

२. मेथी। ३. चित्रक वृक्ष। चोता। ४. मनियारी का पेड़।

५. मेघ पर्वत के एक शृंग का नाम। ६. जैन मतानुसार देवताओं का एक मेघ जिसके अंतर्गत चंद्र, तारा, ग्रह, नक्षत्र और अर्क हैं।

ज्योतिष्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी।

ज्योतिष्टोम—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें १६ ऋत्विक् होने थे। इस यज्ञ के समापनात् में १२०० गोदान का विधान था।

ज्योतिष्पथ—संज्ञा पु० [सं०] आकाश।

ज्योतिष्पुंज—संज्ञा पु० [सं०] नक्षत्रसमूह।

ज्योतिष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मालकोगनी। २. रात्रि। ३. एक नदी का नाम। ४. एक प्रकार का वैदिक छंद। ५. सारंगी की तरह का एक प्राचीन बाजा। ६. सत्वगुणप्रधान मन की शांत अवस्था (की०)।

ज्योतिष्मान्—वि० [सं० ज्योतिष्मन्] प्रकाशयुक्त। ज्योतिर्मय।

ज्योतिष्मान्—संज्ञा पु० [सं०] १. सूर्य। २. प्लक्ष द्वीप के एक पर्वत का नाम। ३. ब्रह्मा का तृतीय पाद या चरण (की०)। ४. प्रलयकाल में उद्दिन होनेवाले सात सूर्यों में से एक (की०)।

ज्योतिस्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्युति। ज्युति। प्रकाश। २. परम ज्योति। ब्रह्म की ज्योति। ३. विद्युत्। बिजली। ४. दिव्य सत्ता। ५. नक्षत्र। तारा आदि। ६. आकाशीय प्रकाश (तमस् का विलोम)। ७. सूर्य चंद्र। ८. दिव्य प्रकाश या बुद्धि। ९. ग्रह नक्षत्र संबंधी शास्त्र या विज्ञान। वि० दे० 'ज्योतिष'। १०. देखने की शक्ति। ११. दिव्य जगत्। १२. गाय (की०)।

ज्योतिस्—संज्ञा पु० १. सूर्य। २. अग्नि। ३. विष्णु (की०)।

ज्योतिसास्त्र(पु०)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योतिःशास्त्र'। उ०—ज्योतिसास्त्र प्रति हृंदी ज्ञान। ताके सुम ही बीन निदान।—नंद० ग्रं०, पु० २४४।

ज्योतिस्ना(पु०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ज्योत्स्ना'।—अनेकाग्रं, पु० ३१।

ज्योतिस्नात—वि० [सं० ज्योति + स्नात] प्रकाशपूर्ण। उ०—ज्योतिस्नात जीवनपथ पर अब चरण चार गतव्य एक हो।—अग्नि०, पु० ३५।

ज्योतिहीन—वि० [सं० ज्योति + हीन] प्रकाश से रहित। प्रभाहीन। उ०—लंका राज्य व भूमादि से हृत विषणं ज्योतिहीन होने पर।—ब्रह्मसंहिता, पु० ८२।

ज्योतीरथ—संज्ञा पु० [सं०] ध्रुव (जिसके आश्रित ज्योतिषधक है)।

ज्योतीरस—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का रत्न जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण और बृहत्संहिता में है।

ज्योत्स्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंद्रमा का प्रकाश। चांदनी। २. चांदनी रात। ३. सफेद फूल की तोरई। ४. सौंफ। ५. दुर्गा का एक नाम (की०)। ६. प्रकाश। उजाला (की०)।

ज्योत्स्नाकाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सोम की कन्या जो वरुण के पुत्र पूषकर की पत्नी थी।

ज्योत्स्नाधौत—वि० [सं०] दे० 'ज्योत्स्नास्नान'।

ज्योत्स्नाप्रिय—संज्ञा पु० [सं०] नकीर।

ज्योत्स्नावृक्ष—संज्ञा पु० [सं०] दीपाधार। दीवट। फतिलसोज।

ज्योत्स्नास्नान—वि० [सं०] चांदनी में नहाया हुआ। चांदनी से पूर्ण।

ज्योत्स्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चांदनी रात। २. सफेद फूल की तोरई।

ज्योत्स्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ज्योत्स्निका'।

ज्योत्स्नेश—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा (की०)।

ज्योनार—संज्ञा स्त्री० [सं० जैमन (= खाना)] १. पका हुआ भोजन। रमोई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. भोज। दावत। ज्याफत।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

मुहा०—ज्योनार बैठना = प्रतियियों का भोजन करने बैठना।

ज्योनार लगाना = प्रतियियों के सामने रखने के लिये व्यंजनों को कम में लगाना या रखना।

ज्योवन(पु०)—संज्ञा पु० [सं० योवन] दे० 'जोवन'। उ०—तन धन ज्योवन बहुत नहीं भावत हरि मुखदाई री।—दक्खिनी०, पु० १३२।

ज्योरा—संज्ञा पु० [देश०] वह अनाज जो फसल तैयार होने पर गाँवों में नाइयों चमारों आदि को उनके कामों के बदले में दिया जाता है।

ज्योरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीरा] रस्मी। रज्जु। डोरी।

ज्योरू(पु०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोरू'। उ०—माँ बाप बेटे ज्योरू लड़के सब देखन लीजन सरीखे।—दक्खिनी, पु० १२२।

ज्योहता(पु०)—संज्ञा पु० [सं० जीव + हत] आत्महत्या। जोहर। उ०—केश गहि करमि जमूना धार डारिहै, मुन्यो नृप नारि पति कुरा मारयो। भई व्याकुल सबै हेतु रोवन लगीं मरन को तुरत रोहत बिचारयो।—सूर (शब्द०)।

ज्योहरा—संज्ञा पु० [सं० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार उनकी गिनती मृत्यु के शत्रुओं से घिर जाने पर चिता में जलकर भस्म हो जाती थी। दे० 'जोहर'।

ज्यौ—वि० वि० [हि०] दे० 'ज्यो'।

ज्यौ—अव्य० [सं० यदि] जो। यदि। उ०—जो न जुगुति पिय मिलन की पूर मुक्ति मोहि दोन। ज्यौ लहिधै संग सजन तो सरक लकड़ की न।—बिहारी (शब्द०)।

ज्यौ(पु०)—संज्ञा पु० [सं० जीव, प्रा० जीम, जीय] दे० 'जीव'। उ०—बूझत थी धनधानंद सोचि, दई बिधि दगाधि असाधि नई है।—अनंद, पु० ५।

ज्यौ—संज्ञा पु० [सं०] बृहस्पति ग्रह (की०)।

ज्यौतिष—वि० [सं०] ज्योतिष संबंधी।

ज्यौतिषिक—संज्ञा पु० [सं०] ज्योतिषी।

ज्यौत्स्न—वि० [सं०] चंद्रकिरणों से प्रकाशित (की०)।

ज्यौत्स्न—संज्ञा पु० शुक्ल पक्ष। उजाला पाल (की०)।

ज्यौत्स्निका, ज्यौत्स्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा की रात (की०)।

ज्यौनार—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योनार'।

ज्यौरा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योरा'।

ज्वर—संज्ञा पु० [सं०] १. शरीर की वह गरमी या ताप जो स्वाभाविक से अधिक हो और शरीर की अस्वस्थता प्रकट करे। ताप। बुखार।

विशेष—सुश्रुत, चरक आदि ग्रंथों में ज्वर सब रोगों का राजा और आठ प्रकार का माना गया है—वातज, पित्तज, कफज, वात-पित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सांनिपातिक और आगंतुज। आगंतुज ज्वर वह है जो लोट नगने, विष खाने आदि के कारण हो जाता है। इन सब ज्वरों के लक्षण और आचार भिन्न भिन्न हैं। ज्वर से उठे हुए, कृश या मिथ्या आहार विहार करनेवाले मनुष्य का शोष या रहा सहा दोष जब वायु के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होकर आमोशय, हृदय, कंठ, मिर और संधि इन पाँच कफ स्थानों का आश्रय लेता है तब उसमें अंतरा, तिजरा और चौथिया आदि विषम ज्वर उत्पन्न होने हैं। प्रत्येक ज्वर से शरीरस्थ धातु सूख जाती है। जब कई एक दोष कफ स्थान का आश्रय लेते हैं तब चिरय नाभ का विषम ज्वर उत्पन्न होता है। विषयं ज्वर यह है जो एक दिन न आकर दो दिन बराबर आवे। इसी प्रकार आगंतुज ज्वर के भी कारणों के अनुसार कई भेद किए गए हैं। जैसे, कामज्वर, क्रोधज्वर, भयज्वर इत्यादि। ज्वर अपने आरंभ दिन से आठ दिनों तक मध्यम, १४ दिनों तक मध्यम २१ दिनों तक प्राचीन और २१ दिनों के उपरांत जीर्ण ज्वर कहलाता है। जिस ज्वर का पेश अत्यंत अधिक हो, जिससे शरीर की वाति बिगड़ जाय, शरीर शिथिल हो जाय, नाड़ी जल्दी न मिले उसे भालज्वर कहते हैं। पेशक में गुडच, चिरायता, पिप्पली, नीम आदि कटु वस्तुएं ज्वर को दूर करने के लिये दी जाती हैं।

पाश्चात्य मत के अनुसार मनुष्य के शरीर में स्वाभाविक गरमी ९८° और ९९° के बीच होता है। शरीर में गरमी उत्पन्न होते रहने और निकलते रहने का ऐसा हिसाब है कि इस मात्रा की उष्णता शरीर में बराबर बनी रहती है। ज्वर की अवस्था में शरीर में इसी गरमी उत्पन्न होती है जितनी निकलने नहीं पाती। यदि गरमी बहुत तेजी से बढ़ने लगती है तो रक्त त्वचा से हटने लगता है जिसके कारण चट्टा लगता है और शरीर में कंपकंपी होती है। ज्वर में यद्यपि स्वस्थ दशा के अंश गरमी अधिक उत्पन्न होती है पर उतनी ही गरमी यदि स्वस्थ शरीर में उत्पन्न हो तो वह बिना किसी प्रकार का अधिक ताप उत्पन्न किए उसे निकाल सकता है। अस्वस्थ शरीर में गरमी निकालने की शक्ति उतनी नहीं रह जाती, क्योंकि शरीर की धातुओं का जो क्षय होता है वह पुनर्प्राप्ति को अपेक्षा अधिक होता है। ज्वर में शरीर क्षीण होने लगता है, पेशाब अधिक आता है, नाड़ी और श्वास जल्दी जल्दी चलने लगता है, प्रायः कोष्ठबद्ध भी हो जाता है, प्यास अधिक लगती है, भुज्ज कम हो जाती है, सिर में दर्द तथा अंगा में विलक्षण पीड़ा होती है। विभिन्न कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश और वृद्धि, अंगों की सूजन, घृण आदि के ताप तथा कभी कभी नाड़ियों या स्नायुओं की अव्यवस्था से भी ज्वर उत्पन्न होता है।

ज्वर के संबंध में हरिवंश में एक कथा मिली है। जब कृष्ण के पीन अनिरुद्ध बाणासुर के यहाँ बंदी हो गए तब कृष्ण और

बाणासुर में घोर संग्राम हुआ था। उसी अवसर पर बाणासुर की मद्दयता के लिये शिव ने ज्वर उत्पन्न किया। जब ज्वर ने बलराम आदि को गिरा दिया और कृष्ण के शरीर में प्रवेश किया तब कृष्ण ने भी एक वैष्णव ज्वर उत्पन्न किया जिसने माहेश्वर ज्वर को निकालकर बाहर किया। माहेश्वर ज्वर के बहुत प्रार्थना करने पर कृष्ण ने वैष्णव ज्वर समेट लिया और माहेश्वर ज्वर को ही पृथ्वी पर रहने दिया। दूसरी कथा यह है कि दक्ष प्रजापति के अपमान से क्रुद्ध होकर महादेव जी ने अपने श्वास से ज्वर को उत्पन्न किया।

क्रि० प्र०—आना । होना ।

मुहा०—ज्वर उतरना = ज्वर का जाता रहना। बुखार दूर होना। (किसी को) ज्वर चढ़ना = ज्वर आना। ज्वर का प्रकोप होना।

२. मानसिक क्लेश। दुःख। शोक (को०)।

ज्वरकुटुंब—संज्ञा पु० [मं० (ज्वर कुटुंब)] ज्वर के साथ होनेवाले उपद्रव, ज्वर, प्यास, श्वास, अर्चाच, हिचकी इत्यादि।

ज्वरघ्न—संज्ञा पु० [मं०] १. गुडच। २. बभ्रवा।

ज्वरचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [मं०] ज्वर का उपचार या इलाज (को०)।

ज्वरप्रतीकार—संज्ञा पु० [मं०] ज्वर का उपचार (को०)।

ज्वरराज—संज्ञा पु० [मं०] ज्वर की एक श्रेष्ठ जो पारे, माक्षिक, मेनसिन, हरताल, गंधक तथा भिलाब के योग से बनती है।

ज्वरहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वरहंत्री] मंजीठ।

ज्वरहर—वि० [सं०] ज्वर को दूर करनेवाला (को०)।

ज्वरहर—संज्ञा पु० ज्वर का चिकित्सक (को०)।

ज्वराकुश—संज्ञा पु० [सं० ज्वराकुश] १. ज्वर की एक श्रेष्ठ जो पारे, गंधक, प्रत्येक विष और धतूरे के बीजों के योग से बनती है। २. कुश की तरह की एक सुगंधित धास।

विशेष—यह उत्तरी भारत में कुमायूँ गंगाल से लेकर पेशावर तक होती है। इसकी जड़ में में नीबू की सी सुगंध आती है। यह बास चारे के काम की उतनी नहीं होती। इसकी जड़ और डंठलों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकाला जाता है जो शरबत आदि में डाला जाता है।

ज्वरांगी—संज्ञा स्त्री० [मं० ज्वरांगी] भद्रदत्ती नाम का पौधा।

ज्वरांतक—संज्ञा पु० [सं० ज्वरांतक] १. चिरायता। २. अमननास।

ज्वरा—संज्ञा पु० [मं०] मृत्यु। मीत। उ०—लिये सब आधिन व्याधित जरा जब आवै ज्वरा की सहंती।—केशव (शब्द०)।

ज्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वर।

ज्वरापह—वि० [मं०] ज्वर को दूर करनेवाला।

ज्वरापहा—संज्ञा स्त्री० [मं०] बेलपत्री।

ज्वरार्त—संज्ञा [सं०] ज्वरपीड़ित।

ज्वरित—वि० [सं०] ज्वरयुक्त। जिसे ज्वर चढ़ा हो।

ज्वरी—वि० [सं० ज्वरित] [वि० स्त्री० ज्वरित] जिसे ज्वर हो।

ज्वरी—संज्ञा पुं० [हि० ज्वरी] दे० 'ज्वरी' । उ०—ज्वरी बाज बासे कुही बहरी लगर सोने, टोने जरकटो स्थी शचान सानवारे हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

ज्वलंत—वि० [सं० ज्वलन्त] १. जलता हुआ । प्रकाशमान् । दीप्त । दीप्तिमान् । २. प्रकाशित । अत्यंत स्पष्ट । जैसे, ज्वलन्त दृष्टांत, ज्वलन्त प्रमाण ।

ज्वलन्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्वाला । अग्नि । २. दीप्ति । प्रकाश ।

ज्वलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिखा । आग की लपट । लौर ।

ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलने का कार्य या भाव । जलन । दाह । उ०—(क) अधर रसन पर लाली मिसी मलूम । मदन ज्वलन पर सोहति, मानहु धूम ।—(शब्द०) । (ख) मुदसा ज्वरन सनेहवा कारन तोर । अंजन सोइ उर प्रगटत लगि दग कोर ।—रहीम (शब्द०) । २. अग्नि । आग । ३. लपट । ज्वाला । ४. चित्रक वृक्ष । चीता ।

ज्वलन—वि० १. प्रकाश करनेवाला । प्रकाशयुक्त । २. दाहक [को०] ।

ज्वलनांत—संज्ञा पुं० [सं० ज्वलनान्त] बौद्ध ग्रंथों के अनुसार दस हजार देवपुत्रों का नायक जिमने बौद्ध मठ में प्रवेश करते ही बोधिज्ञान प्राप्त कर लिया था ।

ज्वलित—वि० [सं०] १. जला हुआ । दग्ध । २. उज्ज्वल । दीप्ति-युक्त । चमकता या भलकता हुआ ।

ज्वलिनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्खी लता । मुरी । मरुकफली ।

ज्वलिनी सीमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो गाँवों के बीच की सीमा जो ऊँचे पेड़ लगाकर बनाई गई हो ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि पीपल, बड़, जाल, ताड़ तथा ढाक के वृक्ष गाँव की सीमा पर लगाए ।

ज्वाइन(शु०) संज्ञा स्त्री० [हि० अजनाइन] एक प्रकार का पोधा जिसके बीज प्रोथम और माले के काम में आते हैं । अजवाइन । उ०—विमूर्चित तन नहिँ सकै सभारि । पीपल मूल ज्वाइन सारि ।—पाण०, पृ० १२० ।

यौ०—ज्वाइनसारि = अजवाइन का सत्त ।

ज्वानी—वि० [फा० जवान] दे० 'जवान' ।

ज्वानी—संज्ञा स्त्री० [फा० जवानो] दे० 'जवानो' ।

ज्वाब—संज्ञा पुं० [अ० जवाब] दे० 'जवाब' । उ०—का रखै या भूमि पर, रक्षित करे को ज्वाब ।—ह० रासो, पृ० ४८ ।

ज्वार—संज्ञा स्त्री० [सं० यवना, यवाकार या ज्वर] १. एक प्रकार की घास जिसकी बाज के दाने मोटे घनाजों में गिने जाते हैं ।

विशेष—यह घनाज संसार के बहुत से भागों में होता है । भारत, चीन, अरब, अफ्रीका, अमेरिका आदि में इसकी खेती होती है । ज्वार सूखे स्थानों में अधिक होती है, सीढ़ लिए हुए स्थानों में उतनी नहीं हो सकती । भारत में राज-पूताना, पंजाब आदि में इसका व्यवहार बहुत अधिक होता है । बंगाल, मद्रास, बरमा आदि में ज्वार बहुत कम बोई जाती है । यदि बोई भी जाती है तो दाने अच्छे नहीं पड़ते । इसका पोधा नरकट की तरह एक डंठल के रूप में सीधा

५-६ हाथ ऊँचा जाता है । डंठल में सात सात घाठ घाठ अंगुल पर गाँठें होती हैं जिनसे हाथ डेढ़ हाथ लंबे तलवार के धाकार के पत्ते दोनों ओर निकलते हैं । इसके सिरे पर फूल के जौरे और सफेद दानों के गुच्छे लगते हैं । ये दाने छोटे छोटे होते हैं और गेहूँ की तरह खाने के काम में आते हैं । ज्वार कई प्रकार की होती है जिनके पौधों में कोई विशेष भेद नहीं दिखाई पड़ता । ज्वार की फसल दो प्रकार की होती है, एक रबी, दूसरी खरीफ । मक्का भी इसी का एक भेद है । इसी से कहीं कहीं मक्का भी ज्वार ही कहलता है । ज्वार को जोन्हरी, जुंड़ी आदि भी कहते हैं । इसके डंठल और पौधे को चारे के काम में लाते हैं और खरी कहते हैं । इस अन्न के उत्पत्ति-स्थान के संबंध में मतभेद है । कोई कोई इसे अरब आदि पश्चिमी देशों से आया हुआ मानते हैं और 'ज्वार' शब्द को अरबी 'दूरा' से बना हुआ मानते हैं, पर यह मत ठीक नहीं जान पड़ता । ज्वार की खेती भारत में बहुत प्राचीन काल से होती आई है । पर यह चारे के लिये बोई जाती थी, अन्न के लिये नहीं ।

२. समुद्र के जल की तरंग का चढ़ाव । लहर की उठान । भाटा का जलदा ।

विशेष—दे० 'ज्वारभाटा' ।

ज्वारभाटा—संज्ञा पुं० [हि० ज्वार + भाटा] समुद्र के जल का चढ़ाव उतार । लहर का बढ़ना और पटना ।

विशेष—समुद्र का जल प्रतिदिन दो बार चढ़ता और दो बार उतरता है । इस चढ़ाव उतार का कारण चंद्रमा और सूर्य का आकर्षण है । चंद्रमा के आकर्षण में दूरस्थ के वर्ग के हिसाब से कमी होती है । पृथ्वी जल के उस भाग के अणु जो चंद्रमा से निकट होगा, उस भाग के अणुओं की अपेक्षा जो दूर होगा, अधिक आकर्षित होंगे । चंद्रमा की अपेक्षा पृथ्वी से सूर्य की दूरी बहुत अधिक है, पर उसका पिंड चंद्रमा से बहुत ही बड़ा है । अतः सूर्य की ज्वार उत्पन्न करनेवाली शक्ति चंद्रमा से बहुत कम नहीं है । सूर्य की यह शक्ति कभी कभी चंद्रमा की शक्ति के प्रतिकूल होती है; पर अभावस्था और पूर्णिमा के दिन दोनों की शक्तियाँ परस्पर अनुकूल कार्य करती हैं; अर्थात् जिस अंश में एक ज्वार उत्पन्न करेगी, उसी अंश में दूसरी भी ज्वार उत्पन्न करेगी । इसी प्रकार जिस अंश में एक भाटा उत्पन्न करेगी दूसरी भी उसी में भाटा उत्पन्न करेगी । यही कारण है कि अभावस्था और पूर्णिमा को और दोनों की अपेक्षा ज्वार अधिक ऊँची उठती है । सप्तमी और अष्टमी के दिन चंद्रमा और सूर्य की आकर्षण शक्तियाँ प्रतिकूल रूप से कार्य करती हैं, अतः इन दोनों तिथियों को ज्वार सबसे कम उठती है ।

ज्वारी(शु०) संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुमारी' ।

ज्वाला—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निशिखा । लौ । लपट । आँच । उ०—चिता ज्वाला खरीर बन दावा लगि लगि जाय ।—गिरिधर (शब्द०) । २. मणाल (को०) ।

ज्वाला^२—वि० जलता हुआ । प्रकाशयुक्त [को०] ।

ज्वालामाली—संज्ञा पुं० [सं० ज्वालामालिन्] सूर्य ।

ज्वाला—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निशिखा । लपट । २. विष आदि की गरमी का ताप । ३. गरमी । ताप । जलन ।

मुहा०—ज्वाला फूँकना = (१) गरमी उत्पन्न करना । शरीर में दाह उत्पन्न करना । (२) प्रचंड क्रोध घाना ।

४. दग्धान्न । भुना हुआ चावल । ५. महाभारत के अनुसार तक्षक की पुत्री ज्वाला जिससे ऋक्ष ने विवाह किया था ।

ज्वालाजिह्वा—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । भाग । २. एक प्रकार का चित्रक वृक्ष ।

ज्वालादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शारदापीठ में स्थित एक देवी ।

विशेष—इनका स्थान काँगड़ा जिले के अंतर्गत देरा तहसील में है । तंत्र के अनुसार जब सती के शव को लेकर शिव जी घूम रहे थे तब यहाँ पर सती की जिह्वा गिरी थी । यहाँ की देवी 'मंजिका' नाम की और भैरव 'उन्मत्त' नामक हैं । यहाँ पर्वत के एक बरार से भूगर्भस्थ अग्नि के कारण एक प्रकार की जलनेवाली भाप निकला करती है जो दीपक दिसलाने से जलने लगती है । इसी को देवी का ज्वलंत मुख कहते हैं ।

ज्वालाध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

ज्वालामालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम ।

ज्वालामाली—संज्ञा पुं० [सं० ज्वालामालिन्] शिव । महादेव [को०] ।

ज्वालामुखी पर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] वह पर्वत जिसकी चोटी के पास गहरा गड्ढा या मुँह होता है जिसमें धुआँ, राख तथा पिघले

या जले हुए पदार्थ बराबर अथवा समय समय पर बराबर निकला करते हैं ।

विशेष—ये वेग से बाहर निकलनेवाले पदार्थ भूगर्भ में स्थित प्रचंड अग्नि के द्वारा जलते या पिघलते हैं और सचित भाप के वेग से ऊपर निकलते हैं । ज्वालामुखी पर्वतों से राख, ठोस और पिघली हुई चट्टानें, कीचड़, पानी, धुआँ आदि पदार्थ निकलते हैं । पर्वत के मुँह के चारों ओर इन वस्तुओं के जमने के कारण कँगूरेदार ऊँचा किनारा सा बन जाता है । कहीं कहीं प्रधान मुख के अतिरिक्त बहुत से छोटे छोटे मुख भी इधर उधर दूर तक फैले हुए होते हैं । ज्वालामुखी पर्वत प्रायः समुद्रों के निकट होते हैं । प्रशांत महासागर (पैसिफिक समुद्र) में जापान से लेकर पूर्वीय द्वीप समूह तक अनेक छोटे बड़े ज्वालामुखी पर्वत हैं । अकेले जावा ऐसे छोटे द्वीप में ४६ टीले ज्वालामुखी के हैं । सन् १८८३ में कक्रोटोया टापू में ज्वालामुखी का जैसा भयंकर स्फोट हुआ था, वैसा कभी नहीं देखा गया था । टापू के आसपास प्रायः चालीस हजार आदमी समुद्र की घोर हलचल से डूबकर मर गए थे ।

ज्वालाध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

ज्वालाहृदी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] रंगने की एक हलदी ।

ज्वेहर(पुं०)—संज्ञा पुं० [अ० जवाहर] बेजकीमत पत्थर । रत्न । जवाहर । उ०—होरे रत्न ज्वेहर नाल । सचु सूची साची टकसाल ।—प्राण०, पृ० १६७ ।

भ

भ—हिंदी व्यंजन वर्णमाला का नवौं और चवथे का चौथा वर्ण जिसका स्थान तालु है । यह स्पर्श वर्ण है और इसके उच्चारण में सँवार, नाद और घोष प्रयत्न होते हैं । च, छ, ज, और ञ इसके सवर्ण हैं ।

भं—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वह शब्द जो धातुखंडों के परस्पर टकराने से निकलता है । २. हथियारों का शब्द ।

भंखना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'भोखना' ।

भंकाड़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भंसाड़' ।

भंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्कार] १. भंभनाहट का शब्द जो किसी धातुखंड से निकलता है । भन् भन् शब्द । भनकार । जैसे, पाजेब की भंकार, भाँझ की भंकार । उ०—शुभे, बन्ध भंकार है घाम में, रहे किनु टंकार सँग्राम में ।—साकेत, पृ० ३०५ । २. भीगुर आदि छोटे छोटे जानवरों के बोलने का शब्द जो प्रायः भन् भन् होता है । भनकार । जैसे, भिल्लियों की भंकार । ३. भन् भन् शब्द होने का भाव ।

भंकारना^१—क्रि० अ० [सं० भङ्कार] धातुखंड आदि में से भनभन शब्द उत्पन्न करना । जैसे, भाँझ भंकारना ।

भंकारना^२—क्रि० अ० भन भन शब्द होना । जैसे, भिल्लियों का भंकारना ।

भंकारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्कारिणी] गंगा । भागीरथी [को०] ।

भंकारित^१—संज्ञा पुं० [पुं० भङ्कारित] दे० 'भंकार' [को०] ।

भंकारित^२—वि० भंकार करता हुआ । भंक्रुत [को०] ।

भंकारो—वि० [सं० भङ्कारिन्] भंकार करनेवाला । भन् भन् करनेवाला । भंकार-गुण-युक्त [को०] ।

भंक्रुत^१—वि० [सं० भङ्क्रुत] भंकार करता हुआ । भंकारयुक्त [को०] ।

भंक्रुत^२—संज्ञा पुं० धीरे धीरे होनेवाली मधुर ध्वनि । भंकार [को०] ।

भंक्रुता—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्क्रुता] तंत्र के अनुसार दस महाविद्या में से एक । देवी तारा [को०] ।

भंक्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्क्रुति] भंकार । मधुर ध्वनि [को०] ।

भंखना—संज्ञा स्त्री० [देशी √भंख, हिं० भंखना] भोखना । रोना-धोना । दुःख का प्रकाशन । उ०—भखन भुरवन सबही छोड़ो । भमकि करो गुह सेव ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २५ ।

भंखना—क्रि० अ० [हिं० खीजना] बहुत अधिक दुखी होकर पछताना और कुढ़ना । भोखना । उ०—(क) बरस दिवस

घन रोय के द्वार परी चित भंख ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पाँच तत्व का बना पीजरा तामें मुनिया रहती । उड़ि मुनिया डारी पर बैठे भंखन लागे सारी दुनिया ।—कबीर (शब्द०) ।

भंखर—संज्ञा पुं० [देशी भंखर] शुष्क वृक्ष । उ०—घन भूरा बन भंखरा नही सु चंपउ जाइ । गुगु सुगंधी मारवी, महकी सह वणराइ ।—दोला०, दू० ४६८ ।

भंखाट—वि० [हि० भंखाड़] दे० 'भंखाड़' ।

भंखाड़—संज्ञा पुं० [हि० 'भाड़' का अनु०] १. घनी घोर काटदार भाड़ो का पोषा । २. ऐसे काटदार पोषों या भाड़ियों का घना समूह जिसके कारण भूमि या कोई स्थान ढँक जाय । उ०—ऊँचे भाड़, कंटीले भंखाड़ों ने वन मग छाया ।—कवासि, पु० ७२ । ३. वह वृक्ष जिसके पत्ते झड़ गए हों । ४. व्यर्थ की घोर रही, विशेषतः काट की चीजों का समूह ।

भंगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरा या देश०] १. गुफा । कंदरा । उ०—मिले सिध गिर भंगरी, सो एकलो सदीव । रच टोली फिरता रहै, जटै तठ बन जीव ।—बांकी० प्र०, पु० २७ । २. घनी भाड़ो ।

भंजार(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० जंजाल] जंजाल । मायाजाल । दुःख । उ०—इनके चरन सरन जे धाए मिटे सकल भंजार । छीत ह्यामी गिरिधरन श्री विट्ठल सकल वेद की मार ।—छीत०, पु० १४ ।

भंभकार(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० भंभकार] भंभकार । भन् भन् की मधुर ध्वनि । उ०—निगम बारि उपपति भयो चतुरानन मुख त्रै । उचरेउ शब्द घनाहदा भंभकार मद ऐन ।—संत० दरिया, पु० ४० ।

भंभ—संज्ञा पुं० [भन् भन् मे अनु०] दे० 'भंभ' । उ०—कोउ बीणा मुरली पटह चग मृदंग उपग । भालरि भंभ बजाई कै गावहि तिनके मंग ।—(शब्द०) ।

भंभ०—वि० [देश०] खाली । रीता । शुष्क । रहित ।

भंभट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. व्यर्थ का झगडा । टटा । बवेड़ा । २. प्रपंच । परेशानी । कठिनाई ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—मे पड़ना ।—में फँसना ।

भंभटियाँ, भंभटिहाँ—वि० [हि० भंभट] दे० 'भंभटी' ।

भंभटी—वि० [हि० भंभट] १. भंभट करनेवाला । २. भंभट से भरा हुआ (काम) ।

भंभन—संज्ञा पुं० [सं० भंभन] प्राभूषण की भंभर । भुन भुन की मधुर ध्वनि (को०) ।

भंभनाना—क्रि० सं० [सं० भंभन] भन भन का शब्द करना । भंभर करना । भंभरना ।

भंभनाना—क्रि० प्र० १. भंभर होना । २. कोई बात इस ढंग से कहना जिसमें लीभ और अल्लाहट भरी हो । अल्लाना ।

भंभर—संज्ञा पुं० [सं० भंभर] दे० 'भंभर' ।

भंभर—संज्ञा स्त्री० [हि० भंभरी] दे० 'भंभरी' ।

भंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० भंभा] १. वह तेज प्राणी जिसके साथ

वर्षा भी हो । उ०—मन को मसूसी मनभावन सों रुसि सखी दामिनि को दूषि रही रंभा भुकि भंभा सी ।—देव (शब्द०) ।

यौ०—भंभानिल । भंभामस्त । भंभामस्त = दे० 'भंभावात' ।

२. तेज प्राणी । प्रघड । ३. बड़ी बड़ी वृद्धों की वर्षा । ४. भंभ ।

५. खोई हुई वस्तु । हिराई हुई चीज (को०) ।

भंभा(पुं०)—वि० प्रचंड । तीखा । तेज ।

भंभानिल—संज्ञा पुं० [सं० भंभानिल] १. प्रचंड वायु । प्राणी । २. वह प्राणी जिसके साथ वर्षा भी हो ।

भंभार—संज्ञा पुं० [सं० भंभार] घाग की वह लपट जिसमें से कुछ अव्यक्त शब्द के साथ पुँआ और चिनगारियाँ निकलें । उ०—(क) अति अग्नि भार भंभार, धुंधार करि, उचटि अंगार भंभार छायो ।—सूर०, १० । ५६६ । (ख) लाल तिहारे विरह की लागी अग्नि प्रवार । सरत बरस नीहूँ मिटे न भर भंभार ।—भारतेदु प्र०, भा० २, पु० ४६५ ।

भंभावात—संज्ञा पुं० [सं० भंभावात] १. प्रचंड वायु । प्राणी । २. वह प्राणी जिसके साथ पानी भी बरसे ।

भंभो—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फूटी कोड़ी । २. दलाली का घन । भंभो । (दलालों की बोली) ।

भंभोरना(पुं०)—क्रि० सं० [हि० भंभोरना] दे० 'भंभोड़ना' ।

भंभोटी, भंभोटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक राग । दे० 'भंभोटी' । उ०—तीसरे ने कहा बाह भंभोटी है ।—श्रीनिवास प्र०, पु० २०४ ।

भंभोरना(पुं०)—क्रि० सं० [हि० भंभोरना] दे० 'भंभोड़ना' । उ०—विषम वायु जिम लता मोरि मास्त भंभोरे । (कै) चित्र लिखी पुत्तरी जोरि जोरत निहोरे ।—पु० रा०, २।३४८ ।

भंभोटी—संज्ञा स्त्री० [देशी] छोटे घोर उठे हुए बाल । भौंटा ।

भंभे—संज्ञा पुं० [सं० जट, या देशी] १. छोटे बालकों के मुँह के पहलू के केश । २. करील ।

भंभडा—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ता या देश०] १. तिकोने या चौकोर कपड़े का टुकड़ा जिसका एक सिरा लकड़ी प्रादि के डंडे में लगा रहता है और जिसका व्यवहार चिह्न प्रकट करने, संकेत करने, उत्सव प्रादि सूचित करने अथवा इसी प्रकार के अन्य कामों के लिये होता है । पनाका । निशान । फरहरा । खजा ।

गुह्या० भंभे तले की दोस्ती = बहुत ही साधारण या राह चलते की जान पहचान । 'भंभे पर चढ़ना' = बदनाम होना । अपने सिर बहुत बदनामी लेना । भंभे पर चढ़ाना = बहुत बदनाम करना ।

२. जवार, बाजरे प्रादि पोषों के ऊपर का नर फूल । जीरा ।

भंभडा कप्तान—संज्ञा पुं० [हि० भंभडा + प्र० कैप्टन] १. उस जहाज का प्रधान जिसपर प्रतीकात्मक ध्वजा रहती है (नीमैनिक) । २. वह व्यक्ति जिसपर संस्था के प्रतीकात्मक ध्वज की जिम्मेदारी हो ।

भंभडा जहाज—संज्ञा पुं० [हि० भंभडा + प्र० जहाज] बेड़े का प्रधान जहाज जिसपर बेड़े का नायक रहता है ।

भंभडा दिवस—संज्ञा पुं० [हि० भंभडा + सं० दिवस] वह दिन जब

किसी कार्य से प्रेरित होकर लोगों से सहायता या चंदा लिया जाता है और चित्त स्वरूप सहायता देनेवाले को भंडी दो जाती है (नौसैनिक) ।

भंडाबरदार—संज्ञा पुं० [हि० भंडा + बरदार] वह व्यक्ति जो किसी राज्य या संस्था का भंडा लेकर चलाता है ।

भंडी—संज्ञा स्त्री० [हि० 'भंडा' का स्त्री० प्रत्यय०] छोटा भंडा जिसका व्यवहार प्रायः संकेत आदि करने और कभी कभी सजावट आदि के लिये होता है ।

मुहा०—भंडी दिखाना = भंडी से संकेत करना ।

भंडीदार—वि० [हि० भंडी + फा० दार] जिसमें भंडी लगी हो । भंडीवाला ।

भंडोसोलन—संज्ञा पुं० [हि० भंडा + सं० उत्सोलन] भंडा फहराना ध्वज फहराने का कार्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—होना ।

भंग—संज्ञा पुं० [सं० भंग] १. उच्छान्न । फलंग । कुदान ।

मुहा०—भंग देना = कूटना । उ०—करि अपनों कुन नास बनहि सो अगिन भंग दे आई ।—सूर (शब्द०) ।

पुं० २. हाथियों और घोड़ों आदि के गले का एक आभूषण । गलभंग ।

भंगण—संज्ञा पुं० [भप०] भाँवों की आधा खुनी रखना । नेत्रों का अर्धोन्मीलन ।—मुहा० पु०, भा० १, पु० १२ ।

भंगणी—संज्ञा स्त्री० [देशी] बरुनी । बरौनी । पदम ।

भंगन—संज्ञा पुं० [सं० भंगन] १. उखलने की क्रिया । उच्छान्न । २. भौका । उ०—निराशा सिकता कुण्ठ में अग्ररेखा सी सुशंकित । बायु भंगन में धवन से हिमशिलर सी तुम अकंपित ।—कवासि, पु० ६६ ।

भंगन^१—संज्ञा पुं० [सं० आच्छादन, पा० भंगन, हि० भंगना] छिपाने की क्रिया । आधरित करने का कार्य । उ०—तिहि अवसर लालन आइ गए उपमा कदि श्रद्धा कही नहि जाई । कंचन कुंभ के भंगन की भुक्ति भवत चंद भवकत आई ।—प्रकबरी०, पु० ३४६ ।

भंगना^२—क्रि० सं० [सं० आच्छादन प्रा० भंगण] छिपाना । ठकना । आच्छादित करना । उ०—कंचन कुंभ के भंगन की भुक्ति भंगत चंद भवकत आई ।—प्रकबरी०, पु० ३४६ ।

भंगक—संज्ञा सं० [सं० भंगक] [स्त्री० भंगकी] बानर । बंदर [को०] ।

भंगानी—संज्ञा पुं० [सं० भंग या देश०] १. दे० 'भंगान' । २. कुदान । उच्छान्न ।

भंगपात^३—संज्ञा पुं० [सं० भंग + पात] ऊँचाई से गहरे पानी में भंग से हूँद जाना । कूँदकर प्राणत्याग करना । उ०—(क) जोग जग अपतप तीरथ बनादि और, भंगपात लेत जाइ हिंवारे गरत हैं ।—सुंदर०, प्र०, भा० १, पु० ४५५ । (ख) की बूड़े भंगपाती, इंदिय बसि करि न जाती ।—सुंदर प्र०, भा० १, पु० १४७ ।

भंगपातो^४—वि० [हि० भंगपात] बहुत ऊँचाई से नदी में गिरकर प्राणत्याग करनेवाला ।

भंगपात^५—क्रि० सं० [सं० भंगन] १. हिलाना । कंपाना । उ०—भनभनात झिल्ली, भंगपात भरना भर भर भाड़ी ।—श्यामा०, पु० १२० । २. उच्छालना । कुदान । उ०—फागुण मासि बसंत एत आयउ जइ न सुगोसि । चाचरिकइ मिस खेलती होसी भंगपावेसि ।—ढोला०, दू० १४५ ।

भंगारु—संज्ञा पुं० [सं० भंगारु] बानर । बंदर [को०] ।

भंगित—वि० [सं० भंग] डंका हुआ । खिपा हुआ । आच्छादित । छाया हुआ ।

भंगी—वि० [सं० भंगिन्] कवि । भंगक । बंदर [को०] ।

भंग—संज्ञा पुं० [सं० स्तबक या हि० भंग्वा] भोपा । गुच्छा । स्तबक [को०] ।

भंगना^६—क्रि० सं० [हि०] दे० 'भंगना' । उ०—ब्रज जुवतिन की दर्पन जोई । तामै मुँह भंगि आई सोई ।—नंद० प्र०, पु० १२६ ।

भंग^७—संज्ञा [हि०] दे० 'भंग' ।

भंगिया—संज्ञा स्त्री० [हि० भंगिया] १. छोटी खिड़की । भरोखा । २. भंगरी । जाली ।

भंगोरा^८—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भंगोरा' ।

भंगोरना^९—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भंगोरना' ।

भंगोलना^{१०}—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भंगोरना' ।

भंगोला^{११}—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भंगोरा' ।

भंगवना^{१२}—क्रि० प्र० [हि० भंगवना] दे० 'भंगवना' । उ०—(क) शीतल प्रात समय दोउ बीर । मालन मांगत, बान न मानत, भंगवत जसोदा जननी तीर ।—सूर०, १० । १६१ । (ख) सूरज प्रभु भावत हैं हलधर को नहि लखत भंगवति कहति तो होते संग दोऊ ।—सूर (शब्द०) ।

भंगरा^{१३}—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस का जालदार गोल भाँपा जिसे बोरा भी कहते हैं ।

भंग्रा—संज्ञा पुं० [हि० भंगा] दे० 'भंगा' । उ०—(क) नव नील कलेवर पीत भंगा भलकै पुलकै रुप गोद छिए ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) घाव लाल ऐसे महु पीजे तेरी भंगा मेरी अंगिया कीर ।—हरिदाम (शब्द०) ।

भंगिया^{१४}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भंगुली' ।

भंगुआ—संज्ञा पुं० [देश०] मठिया नामक गहने में की, कुहनी की ओर से तीसरी चूड़ी । दे० 'मठिया' ।

भंगुला^{१५}—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भंगा' ।

भंगुलिया^{१६}—संज्ञा स्त्री० [हि० 'भंगा' का प्रत्यय०] छोटे बालकों के पहनने का भंगा या डीला कुरता । उ०—(क) पुट्टन चलत वनक अगिन में कोशित्या छवि देखत । नील नलिन तनु पीत भंगुलिया धन दामिनि युति देखत ।—सूर (शब्द०) ।

भंगुली^{१७}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भंगुलिया' । उ०—(क) लठि कइ और अयो भंगुली दे मुदित महिर लखि आतुरताई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कोउ भंगुली कोउ मृदुल बदनिया कोउ लावै रचि ताजा ।—रघुराज (शब्द०) ।

मँगूली^①—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मँगुलिया', 'मँगुली' । उ०—
कुलही बिन्न बिचित्र मँगूली । निरखहि मातु मुदित मन
फूली ।—सुलसी ग्रं०, पृ० २८५ ।

मँगनना—क्रि० प्र० [अनु०] भन भन शब्द होना । भनक भनक
शब्द होना । भंकारना । उ०—नेकु रही मति बोलो धवे मनि
पायनि पैजनिया भंभनैगी ।—(शब्द०) ।

मँगरा^१—संज्ञा पुं० [सं० जजर (= छिद्रयुक्त), प्रा० जजर, या हि०]
मिट्टी का जालीदार ढँकना जो खोले हुए दूध के बर्तन पर
रखा जाता है ।

मँगरा^२—वि० [स्त्री० मँगरी] जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों ।
झीना ।

मँगरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जजर, हि० भर भर से अनु०] १. किसी
बीज में बहुत से छोटे छोटे छेदों का समूह । जाली ।
उ०—(क) मँगरी के भरोखनि हूँ के भकोरति राखटी हूँ मैं
न बात सही ।—देव (शब्द०) । (ख) मँगरी फूट चूर
होई जाई । तबहि काल उठि चला पराई ।—कबीर मं०,
पृ० ५१४ । २. दीवारों आदि में बनी हुई छोटी जालीदार
खिडकी । ३. लोहे का वह गोल जालीदार या छेददार टुकड़ा
जो दमचूल्हे आदि में रहता है और जिसके ऊपर सुलगते हुए
कोयले रहते हैं । जले हुए कोयले की राख इसी के छेदों में से
नीचे गिरती है । दमचूल्हे की जाली या भरना । ४. लोहे
आदि की कोई जालीदार चादर जो प्रायः खिड़कियों या
बरामदों में लगाई जाती है । ५. घाटा छानने की छलनी ।
६. घाग आदि उठाने का भरना । ७. दुग्ध या घी की आदि
के घावल में उसके बाने के सूतों का, सुंदरता या शोभा के
लिये बनाया हुआ छोटा जाल, जो कई प्रकार का होता है ।

मँगरी^२—वि० स्त्री० [हि० मँगरा का प्रत्य० स्त्री०] दे० 'मँगरी' ।

मँगरीदार—वि० [हि० मँगरी + फा० दार] जालीदार । सूरखदार ।
जिसमें मँगरी या जाली हो ।

मँगरेना^①—क्रि० प्र० [सं० भर्जन] दे० 'मँगरेना' । उ०—
देख्यो भक्त प्रधान जब राजा जायो नाहि । सुंदर संक करी
नही पकरि मँगरी बाहि ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७११ ।

मँगोटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मँगोटी' ।

मँगोड़ना—क्रि० प्र० [सं० भर्जन] १. किसी चीज को बहुत वेग
और भटके के साथ ढिलाना जिसमें वह टूट फूट जाय या नष्ट
हो जाय । भकभोरना । जैसे,—वे सोए हुए थे, इन्होंने जाते
ही उन्हें खूब मँगोड़ा । २. किसी जानवर का अपने से छोटे
जानवर को मार डालने के लिये दाँतों से पकड़कर खूब
भटका देना । भकभोरना । जैसे, कुत्ते या बिल्ली का बूढ़े को
मँगोड़ना ।

मँगोरा—संज्ञा पुं० [प्रा०] कचनार का पेड़ ।

मँगोटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मँगोटी' ।

मँगूलना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मँगूल' ।

मँगूला^१—वि० [हि० मँग + ऊल (प्रत्य०)] १. जिसके सिर पर

गर्भ के बाल हों । जिसका मुँह संस्कार न हुआ हो । गर्भ के
बालोंवाला (बालक) । २. मुँह संस्कार के पहले का ।
गर्भ का (बाल) । उ०—बर बचनहीं कंठ कटुला मँगूले
केस मेढ़ी लटकन मसिविदु मुनि मनहर ।—सुलसी ग्रं०,
पृ० २८६ ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द प्रायः बहुवचन रूप में बोला जाता
है । जैसे, मँगूले केश, मँगूले बार । उ०—उर बचनहीं, कंठ
कटुला, मँगूले बार, बेनी लटकन मसि बुंदा मुनि मनहर ।
सूर १०।१५१ ।

३. घनी पतियोंवाला । सघन ।

मँगूला^२—संज्ञा पुं० १. वह बालक जिसके सिर पर गर्भ के बाल हों ।
वह लड़का जिसके गर्भ के बाल अभी तक मुँह न हों ।
२. मुँह संस्कार से पहले का बाल । गर्भ का बाल जो अभी
तक मूँहा न गया हो । ३. घनी पतियोंवाला वृक्ष ।
सघन वृक्ष ।

मँगकना—क्रि० प्र० [हि० भपकना] दे० 'भपकना' ।

मँगकी—संज्ञा स्त्री [हि० भपकी] दे० 'भपकी' ।

मँगताल—संज्ञा पुं० [हि० भपताल] दे० 'भपताल' ।

मँगक—संज्ञा पुं० [सं० भप्पाक] बंदर ।

मँगना^१—क्रि० प्र० [सं० भप्प] १. ढँकना । छिपना । घाड़ में
होना । २. उछलना । कूदना । लपकना । भपकना । उ०—
(क) छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध । ठीर ठीर
भोरत भँपत भोरें भोर मधु प्रंध !—बिहारी (शब्द०) ।
(ख) जबहि भँपति तबहि कंपति विहंसि लगति उरोज ।—
नूर (शब्द०) । ३. दूट पड़ना । एक दम से भा पड़ना ।
उ०—जागत काल सोवत काल काल भँपे आई । काल चलत
काल फिरत कबहूँ ले जाई ।—दाह (शब्द०) । ४. मँगना ।
लज्जित होना ।

मँगना^२—क्रि० प्र० पकड़कर दबा लेना । छोप लेना । ढाँक
लेना । उ०—नीची में नीची निपट लीं बोधि कुही होरि ।
उठि ऊँचे नीची दियो मनु कुलिगु भँपि भोरि ।—बिहारी
(शब्द०) ।

मँगरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० भपना (= ढँकना)] पालकी को
ढाँकने की छोली । गिलाफ । ओहार । उ०—घाठ कोठरिया
नो दरवाजा दसयें सापि केवरिया । खिड़की खोलि पिया हम
देखल ऊपर भपि मँगरिया ।—कबीर (शब्द०) ।

मँगरी—संज्ञा स्त्री० [हि० मँगरिया] दे० 'मँगरिया' ।

मँगपक—संज्ञा पुं० [सं० भप्पाक] बंदर । कपि ।

मँगपान—संज्ञा पुं० [सं० भप्प] सवारी के लिये एक प्रकार की खटोली
जिसमें दोनों ओर दो लंबे बाँस बंधे होते हैं । भप्पान ।

विशेष—इन बाँसों के दोनों ओर बीच में रस्सियाँ बंधी होती हैं,
जिनमें छोटे छोटे दो ओर बाँस पिरोए रहते हैं । इन्हीं बाँसों
को चार घादमी कंधों पर रखकर सवारी ले चलते हैं । यह
सवारी बहुधा पहाड़ की चढ़ाई में काम आती है ।

अँपोला—संज्ञा पु० [हि० अँप + पोला (प्रत्यय०)] [स्त्री० अँपला०
अँपोली, अँपोलिया] छोटा अँपा या भाबा । छाबड़ा ।

अँफाना—संज्ञा पु० [सं० अफ] कांतिहीन होना । समाप्त या नष्ट
होना । गलित होना । उ०—रूप रंग ज्यों फूलड़ा तन तरवर
ज्यों पान । हरिया भोलो काल को अँडि अँडि हुए अँफान ।
—राम० धर्म०, पृ० ६७ ।

अँवकार^(१)—[हि० अँवला + काला] कृष्ण वर्ण का । अँवले रंग
का । कुछ कुछ काला । उ०—गैड गयंद जरे भए कारे । ओ
बन मिरग रोअ अँवकारे ।—जायसी (शब्द०) ।

अँवराना—क्रि० प्र० [हि० अँवर] १. कुछ काला पड़ना । २.
कुम्हलाना । सूखना । फीका पड़ना ।

अँवा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'अँवा' । उ०—अककत हिये गुलाब के
अँवा अँवावति पाँय ।—बिहारी (शब्द०) ।

अँवाना^१—क्रि० प्र० [हि० अँवा] १. अँवे के रंग का हो जाना ।
कुछ काला पड़ जाना । जैसे, धूप में रहने के कारण चेहरा
अँवा जाना । २. अग्नि का मंद हो जाना । धाग का कुछ
ठंडा हो जाना । ३. किसी चीज का कम हो जाना । घट
जाना । ४. कुम्हलाना । मुरझाना । ५. अँवे से रगड़ना
जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

अँवाना^२—क्रि० प्र० १. अँवे के रंग का कर देना । कुछ काला कर
देना । जैसे,—धूप ने उनका चेहरा अँवा दिया । २. अग्नि को
मंद करना । धाग ठंडी करना । ३. किसी चीज को कम
करना । उ०—जान को अभिमान किए मोको हरि पठ्यो ।
मेरोई भजन थापि माया सुख अँवायो ।—सूर (शब्द०) । ४.
कुम्हला देना । मुरझा देना । ५. अँवे से रगड़ना । ६. अँवे
से रगड़वाना ।

अँवावना^(१)—क्रि० प्र० [हि० अँवाना] अँवे से रगड़ना या
रगड़वाना । उ०—अककत हिये गुलाब के अँवा अँवावति
पाँय ।—बिहारी (शब्द०) ।

अँसना—क्रि० प्र० [अनु०] १. सिर या तलुए आदि में में तेल या
घोर कोई चिकना पदार्थ लगाकर हुयेसी से उसे बार बार
रगड़ना जिसमें बहुत उस अंग के अंदर समा जाय । जैसे—
सिर में कदपु का तेल अँसने से तुम्हारा सिर दर्द दूर होगा ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. किसी को बहकाकर या अनुचित रूप से उसका धन आदि ले
लेना । जैसे—इस आँभा ने भूत के बहाने उससे दस रुपए
अँस लिए ।

संयो० क्रि०—लेना ।

अ—संज्ञा पु० [अ०] १. अँभावात । वर्षा मिली हुई तेज आँधी । २.
सुरगुरु । वृद्धस्पति । ३. दैत्यराज । ४. ध्वनि । गुंजार शब्द ।
५. तीव्र वायु । तेज हवा ।

अँई^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अँई' । उ०—अरतहि देखि मातु
उठि आई । मुरझित अवनि परी अँई आई ।—तुलसी (शब्द०) ।

४-२१

अँई^(२)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अँई' । उ०—को जाने काहू के
जिय की छिन छिन होत नई । सूरदास स्वामी के बिछुरे लागे
प्रेम अँई ।—सूर (शब्द०) ।

अउआ^(१)—संज्ञा पु० [हि० आआ] खाँवा । टोकरा । भाबा ।

अउआ^(२)—संज्ञा पु० [सं० आउक, हि० आऊ] दे० 'आऊ' । उ०—
साधो एक बन आकर अउआ । लावा तितिर तेहि माह
मुलाने सान बुभावन की आ ।—दरिया, पृ० १२५ ।

अउआ^(३)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'अउआ' ।

अक^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. कोई काम करने की ऐसी धुन जिसमें
आगा पीछा या भला बुरा न सूझ । २. धुन । मनक । लहर ।
मोज ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—लगना ।—समाना ।—सवार होना ।

३. धाँच । ताप । ज्वाला । उ०—मात्रा के अक जग जरे, कनक
कामिनी लागि । कह कबीर कस बाचिहै, रई लपेटो आगि ।
—संतबानी०, पृ० ५७ । ४. भीका । भ्रमक । भाक ।

क्रि० प्र०—आना ।

अक^२—संज्ञा स्त्री० [सं० अक] दे० 'अक' ।

अक^३—वि० चमकीला । साफ । ओपदार । जैसे, सफेद अक ।

अककेतु^(१)—संज्ञा पु० [सं० अककेतु] दे० 'अककेतु' ।

अकअक^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. व्यर्थ की हजमत । फजूल भगड़ा
या तक़ार । किचकिच । २. व्यर्थ की बकबात । निरर्थक
वादविवाद । बकबक ।

यौ०—बकबक अकअक ।

अकअक^२—वि० [अनु०] चमकीला । ओपदार । चमकदार । उ०—
अकअक अकअकी वृत्ति बाभा के हग लो लयो ।—अपरा,
पृ० ४७ ।

अकअका—वि० [अनु०] चमकीला । ओपदार । चमकदार ।

अकअकाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ओप । चमक । जगमगाहट ।

अकअकलना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'अकअकलना' ।

अकभोरा^१—संज्ञा पु० [अनु०] अकभ । अटका । उ०—तन जस पियर
वात भा भोरा । तेहि पर बिहू देह अकभोरा ।—जायसी
(शब्द०) ।

अकभोरा^२—वि० ओपदार । तेज । दिगमें खूब भौंका हो । उ०—
काम कोय भयेत तृष्णा पवन अति अकभोरा । नाहि चितवन
देनि तिय सुत नाम नीका भोरा ।—सूर (शब्द०) ।

अकभोरना—क्रि० प्र० [अनु०] किसी चीज को पकड़कर खूब
हिनाना । भौंका देना । अटका देना । उ०—(क) सूरदास
तनको जज युवती अकभोरति उर अक भरे ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) अधिक सुगंधनि सेवक बाध मनिदन सो अकभोरति
है ।—सेवक (शब्द०) । (ग) बातन ते डरपेए कहा
अकभोरत हूँ न अरी अरसात है ।—(शब्द०) ।

अकभोरा—संज्ञा पु० [अनु०] अटका । धक्का । भौंका । उ०—मंद

विलंब घबेरा दलकनि पाइब दुख भक्तभोरा रे।—तुलसी (शब्द०) ।

भक्तभोरी—संज्ञा स्त्री० [धनु०] छीनाभपटी । होडाहोड़ी । उ०—
भारत में मची है होरी । एक घोर भाग प्रभाग एक दिशि
होय रही भक्तभोरी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४०५ ।

भक्तभोलना—क्रि० स० [हि० भक्तभोला] दे० 'भक्तभोरना' ।

भक्तभोलना(पु०)—क्रि० घ० कापना । हिलना डलना । भोका
खाना । उ०—पकरयो घोर दुष्ट दुस्मासन विलस बदन भइ
डोलै । जैसे राहु नीच दिग घाएँ चंद्रकिरण भक्तभोलै ।—सूर०,
१।२५६ ।

भक्तभोला—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'भक्तभोरा' । उ०—मोर घोर
तोर देत भक्तभोला, चलत बेक नहि जोर ।—तुरसी० श०,
पृ० ७ ।

भक्तभोली—संज्ञा पुं० [धनु०] घाघात । धक्का । भक्तभोरा । उ०—
रचना यह परब्रह्म की चोराखी भक्तभोल ।—सुंदर० ग्रं०,
भा० १, पृ० ३१५ ।

भक्तड़—संज्ञा पुं० [हि० भक्त] दे० 'भक्तड़' ।

भक्तड़ा—संज्ञा स्त्री० [देश०] मूत की निकली हुई जड़ । (ग्रं०
काइवर्म) ।

भक्तड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बोहनी । बूध दुहने का बरतन ।

भक्तना—क्रि० घ० [धनु०] १ बकवाद करना । व्यर्थ की बातें
करना । २. क्रोध में आकर अनुचित वचन कहना । उ०—
वेगि चलो सब कहैं, भक्तिं तिन सौं निज हठ तैं ।—नंद०
ग्रं०, पृ० २०६ । ३. भुक्कना । भोक्कना । उ०—हुरि की
नाम, दाम खोटे लौ भक्ति भक्ति डारि दयो ।—सूर०,
१।६४ । ४. पछाया । कुढ़ना । उ०—ऊधो कुलिश भई
गड़ छाती । मेरी मन बसिख लयो नंदलालहि भक्त रहत
दिन राती ।—सूर (शब्द०) ।

भक्तरा—संज्ञा पुं० [हि० भक्तड़] दे० 'भक्तड़' ।

भक्ता—वि० [हि०] दे० 'भक्त' ।

भक्ताभक्त(पु०)—वि० [धनु०] जो लूब साफ सोर चमकता हुआ हो ।
दलालक । भक्तभोला । भक्तभोल । उज्ज्वल । जैसे,—फेरी होने
से यह कमरा भक्ताभक्त हो गया । उ०—भोकि कै प्रीति सौं
भोने भरोखनि भारि कै आका भक्ताभक्त भोकी ।—गुणराज
(शब्द०) ।

भक्ताभक्त(पु०)—वि० [धनु०] चमकीला । उज्ज्वल । उ०—खंसी है
कटारी कटरी में धन्यारी । भक्ताभक्त कवारी धई की सभारी ।
—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८२ ।

भक्ताभोर—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'भक्तभोर' । उ०—चहूँ घोर तोपे
बले बान लूँ । भक्ताभोर गगन की मार बोलै ।—हम्मीर०,
पृ० १६ ।

भक्ताभोरी—संज्ञा स्त्री० [धनु०] हिलाने या भक्तभोरने का क्रिया या
प्रवृत्ति । उ०—योरी हूँ भिमोरी गोरी रोरी रंग बोरी तब,
मनो हूँ घोर भक्ताभोरी है ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २६ ।

भक्तुराना—क्रि० घ० [हि० भक्तुरा] भक्तुरा लेना । भूमना ।

उ०—रक्थी साँकरे कुंजमग करतु भोकि भक्तुरातु । मंद मंद
मारुत तुरंग खंडतु आवतु जातु ।—बिहारी (शब्द०) ।

भक्तुराना—क्रि० स० भक्तुरा देना । भूमने में प्रवृत्त करना ।

भक्ती(पु०)—संज्ञा पुं० [धनु०] १. हवा का भोँका । पवन की हिलोर ।
हिलवोर । उ०—(क) बाठ लोचन हँसि विलोकनि देखि कै
चितचोर । मोहनी मोहन दयावत लटक प्रकुट भक्ती ।—
—गूर (शब्द०) । (ख) पवि पाहन दामिनी गरज भरि
चकोर खरि ग्रीष्मि । रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी
रागहि रोषि ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) चारिदूँ घोर तैं पीन
भक्ती भक्तीरन घोर घटा पहारानी ।—पद्माकर (शब्द०) ।
२. भटका । भोका । धक्का ।

भक्तीरना—क्रि० घ० [धनु०] हवा का भोँका मारना । उ०—(क)
चहुँ दिशि पवन भक्तीरत घोरत मेघ घटा गंभीर ।—सूर
(शब्द०) । (ख) भक्ती के भरोखनि हँसै कै भक्तीरति रावटी
हैं मैं न जात सही ।—देव (शब्द०) ।

भक्तीरा—संज्ञा पुं० [धनु०] हवा का भोँका । वायु का वेग ।

भक्तीर(पु०)—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'भक्तीर' या 'भक्तीरा' । उ०—
मृदु पदनास मंद मलयानिल विलगत शोष निचोल । नील
रीत सित पवन ध्वजा चम सीर समीर भक्तीर ।—सूर
(शब्द०) ।

भक्तीरना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भक्तीरा' । उ०—(क) धन भई वारी
पुरुष भए भोला सुरत भक्तीरना लाय ।—कबीर सा० सं०,
पृ० ७५ । (ख) उन्हें कभी कोई नौका उमड़े हुए सागर में
भक्तीरना खाती नजर आती ।—रंगभूमि, पृ० ४७६ ।

भक्ती—वि० [प्रा० जगजग (=चमकना) प्रयत्न धनु०] लूब साफ
घोर चमकता हुआ । भक्ताभक्त । प्रोपदार ।

भक्ती—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'भक्त' ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—उत्तरना ।

भक्तड़—संज्ञा पुं० [धनु०] तेज घाँधी । तूफान । तीव्र वायु । धक्का ।

क्रि० प्र०—घाना ।—उठना ।—जलना ।

भक्तड़—वि० [हि० भक्त + ङ (प्रत्य०)] दे० 'भक्ती' ।

भक्ता—संज्ञा पुं० [धनु०] १. हवा का तेज भोँका । २. भक्तड़ ।
घाँधी (लश०) ।

भक्ता भुक्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० भक्ति भूँक] किसी बात को ध्यान
से न सुनकर ह्मर उपर भोँकना । बात को गौर से न सुनना ।
महटियावा । उ०—घाघ कहै सब धनते चितनै भक्ताभुक्ती
करते ।—वि० दरिया, पृ० १३५ ।

भक्ताभोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भक्तभोरना] दे० 'भक्तभोरी' । उ०—
भक्ताभोरी ऐंचातानी, जहँ तहँ गए बिलाई ।—जग० बानी,
पृ० ६८ ।

भक्ती—वि० [धनु० या प्रा० भक्त] १. व्यर्थ की बकवाद करनेवाला ।
बहुत बक बक करनेवाला । २. जिसे भक्त सवार हो । जो
बादमी अपनी धुन के आगे किसी की न सुने । सनकी ।

भक्तखना(पु०)—क्रि० घ० [प्रा० भक्तखण, भक्तखण] दे० 'भक्तिखना' ।

उ०—कह गिरधर कविराय मातु भवखे वहि टाही ।—
गिरधर (शब्द०) ।

भक्तवर्(५)†—संज्ञा पु० [हि० भक्तवर्] भक्तोरा । उ०—घर अंबर
बीच बेलड़ी, तहें लाल मुगंधा बूल । भक्तवर् इक माँ आयो,
नानक नहीं कबूल ।—संतवाणी०, पृ० ७० ।

भक्तवर्—संज्ञा स्त्री [हि० भोखना] भोखने का भाव या क्रिया ।

मुहा०—भक्त मारना = (१) व्यर्थ समय नष्ट करना । वक्त
खराब करना । जैसे,—घाब सवेरे से यहाँ बैठे हुए भक्त मार
रहे हैं । (२) पानी मिट्टी खराब करना । (३) विवश
होकर बुरी तरह भोखना । लाचार होकर खूब कुटना । जैसे,—
(क) तुम्हें भक्त मारकर यह काम करना होगा । (ख) भक्त
मारो और वहीं जाओ । उ०—नीर विधानत का फिरे घर घर
सायर बारि । तृषावंत जो होइया पोयेगा भक्त मारि ।—
कबीर सा० मं०, भा० १, पृ० १५ ।

भक्तवर्(५)†—संज्ञा पु० [सं० भव] मत्स्य । मछली । उ०—आखिन तें
झाँसु उमड़ि परत कुचन पर धान । जनु गिरिस के सीम पर
हारत भक्त मुकतान ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७० ।

यौ०—भक्तकेतु । भक्तनिकेत । भक्तराज । भक्तलग्न ।

भक्तकेतु—संज्ञा पु० [सं० भक्तकेतु] दे० 'भक्तकेतु' । उ०—आखों को नचा
नचाकर भक्तकेतु ध्वजा फहरात ।—बौ० शा० महा०, १८८ ।

भक्तना(५)†—क्रि० प्र० [प्रा० भक्तलण] दे० 'भोखना' । उ०—(क)
बाबा नंद भक्त केहि कारण यह काह मया गोह अभाय ।
मूरदास प्रभु मातु गिता को तुरतहि दुख डारयो बिसराय ।
—सूर (शब्द०) । (ख) पुनि प्राह भरी हरि प्र की भुजान तें
धूटिबे को बहू भाँति भली री ।—केशव (शब्द०) । (ग) कवि
हरिजन नेरे उर बनमान्य तरे बिन गुन मान देख देख देखि
भक्तिया ।—हरिजन (शब्द०) ।

भक्तनिकेत(५)†—संज्ञा पु० [सं० भक्तनिकेत] दे० 'भक्तनिकेत' ।

भक्तराज(५)†—संज्ञा पु० [सं० भक्तराज] मकर । नरक । भक्तराज ।
उ०—भक्तराज परयो गजराज कृपा उत्काय बिलंब कियो न
तहाँ ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १९६ ।

भक्तलग्न(५)†—संज्ञा पु० [सं० भक्तलग्न] दे० 'भक्तलग्न' ।

भक्तिया—संज्ञा स्त्री [हि० भक्त + इया (प्रत्य०)] दे० 'भक्त्या' ।

भक्त्या(५)†—संज्ञा स्त्री [सं० भक्त] भोख । मछली । मत्स्य । उ०—
(क) घाबत बन ते सँक देखो मैं गायन मौस, काह को
ढोढारी एक गीत मोर पखिया । अतसो कुसुप जैसे चंचल
वीरध नैन मानी रग भरी जो लरत जूगल भक्तिया ।—सूर
(शब्द०) । (ख) गोकुल माह में मान करै ते मई तिय
बारि बिना भक्तिया है ।—(शब्द०) ।

भगइना—क्रि० प्र० [देशी भगइ (= भगड़ा, कलह) + हि० ना
(प्रत्य०) या भक्तभक्त से अनु०] दो आदिमियों का आवेश
में आकर परस्पर विवाद करना । भगड़ा करना । हुज्जत
तकरार करना । लड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

भगइना—संज्ञा पु० [देशी भगइ या हि० भक्तभक्त से अनु०] दो
मनुष्यों का परस्पर आवेशपूर्ण विवाद । लड़ाई । टना । बनेड़ा
कलह । हुज्जत । तकरार ।

क्रि० प्र०—करना ।—उठाना ।—समेटना ।—डालना ।—
फेंसाना ।—तोड़ना ।—खड़ा करना ।—मचाना ।—लगाना ।

यौ०—भगइ बखेड़ा । भगइ भमेला ।

मुहा०—भगइ खड़ा होना = भगइ पैदा होना । भगइ खरीदना
= प्रकारण कोई ऐसी बात कह देना जिसमें अनायास भगइ
खड़ा हो जाय । उ०—शेख भो जहाँ बैठे हे भगइ जरूर
खरीदते हैं ।—फिसाना०, भा० १, पृ० १० । भगइ मोल
लेना = दे० 'भगइ खरीदना' ।

भगइलू—क्रि० [हि० भगइ + लू (प्रत्य०)] लड़ाई करनेवाला ।
जो बात बात में भगइ करता हो ।

भगइ(५)†—संज्ञा स्त्री [हि० भगइ] अपने नेग के लिये भगइ
करनेवाली स्त्री ।

भगर—संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार की चिड़िया । उ०—तूनी लाल
कर करे मारस भगर तोले तीतर तुरमनी बटेर गहिान है ।—
रघुनाथ (शब्द०) ।

भगरना—क्रि० प्र० [देशी भगइ; हि० भगइ] दे० 'भगइना' ।
उ०—जगुमति मम धमिलख करे । कब मेरी अंधरा गहि
मोहन जोड़ सोइ कहि मोसो भगरे ।—सूर०, १०।७६ ।

भगरा(५)†—संज्ञा पु० [देशी भगइ] दे० 'भगइ' ।

भगराऊ(५)†—क्रि० [हि० भगइलू] दे० 'भगइलू' उ०—गाहि कहा
मैया मुंह लावति, गनति कि एक लँगिर भगराऊ ।—तुलसी
ग्रं०, पृ० ४३४ ।

भगरिनि(५)†—संज्ञा स्त्री [हि० भगइ] दे० 'भगइ' । उ०—(क)
बहुन दिनन की आसा लागी भगरिनि भगरी कीनी ।—सूर०,
१०।१५ । (ख) भगरिनि तें हो बहुत खिभाई । कननहार
दिए नहि मानति तुहीं मनोखी दाई ।—सूर०, १०।१३ ।

भगरो(५)†—संज्ञा स्त्री [हि० भगइ] दे० 'भगइ' । उ०—यशोमति
लटकने पाँव परे । तेरो भलो मनइहो भगरी तूँ मनि मनहि
बरे ।—सूर (शब्द०) ।

भगरो(५)†—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'भगइ' । उ०—(क) और जो वा
समय प्रभुन को मुरारीदास यह वस्तु न देते नब भी श्री
बालकृष्ण जो प्राकृतिक बालक की नाई भगरो मुरारी-
दास सो करते ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १०० ।
(ख) तहें तुम सुनहु बड़ा धन तुम्हरी । एक मोक्षता पर सब
भगरो—नंद० ग्रं०, पृ० २७३ ।

भगला(५)†—संज्ञा पु० [हि० भगा + ला (प्रत्य०)] दे० 'भगा' ।

भगा—संज्ञा दे० [दे०] १. छोटे बच्चों के पहनने का कुछ डोला कुरता ।
उ०—नंद उदै सुनि आयो हो वृषभानु की जा । दैरे की
बड़ो महुर, देत ना लावे गहर लाल की बधाई राज लाल की
भगा ।—सूर० १०।३६ । २. वस्त्र । शरीर पर पहनने का
कपड़ा । उ०—(क) भगा पगा यह पाग पिछोरी ढाँठि को
पहिरायो । हरि दरियाई कंठ लगाई परदा सात उठायो ।
—सूर (शब्द०) । (ख) सीस पगा न भगा तन मे प्रभु जाने

को ग्राहि बने किहि ग्रामा ।—कवितां की०, भा० १, पृ० १४६ ।

भंगुलि, भंगुलिया (पुं०—संज्ञा स्त्री० [हि० भगा का प्रत्यय] दे० 'भगा' । उ०—प्रफुलित हों के ग्रानि, दोनी है जमोदा रानी, भी नीर्य भंगुलि नारी कंचन तगा ।—गूर०, १०।३६ ।

भंगुली (पुं०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भगा' ।

भंगूला (पुं०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भगा' । उ०—डार दम पलना पिछोना नव पल्लव की, सुपन भंगूला मोहैं तन छवि भारी है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १४७ ।

भङ्गभर—संज्ञा पुं० [सं० भालिञ्जर] कृष्ण चीड़े पुँह का पानी रखने का मिट्टी का एक बरतन ।

विशेष—इस बरतन की ऊपरी गह पर पानी को ठंडा करने के लिये थोड़ी सी बालू लगा दी जाती है । इसको ऊपरी सतह पर सुँवरता के लिये सरस नरह की नफाणियाँ भी की जाती हैं । इसका व्यवहार प्रायः गरमी के दिनों में जल को अधिक ठंडा करने के लिये होता है ।

भङ्गभी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फटी कीरी । २. दलाली का घन ।—(दलालों की भाषा) ।

भङ्गक—संज्ञा स्त्री० [हि० भङ्गकना] १. भङ्ग करने की क्रिया का भाव । किसी प्रकार के भय की धाँका से रकने की क्रिया । चमक । भडक । जैसे,—घभी इनकी भङ्गक नहीं गई है, इसी से चुनकर नहीं बालने ।

क्रि० प्र०—जाना ।—मिटना ।—होना ।

मुहा०—भङ्गक निकलना = भङ्गक दूर होना । भय का नष्ट होना । भङ्गक निकालना = भङ्गक या भय दूर करना ।

जैसे,—हम चार दिन में इनकी भङ्गक निकाल देंगे ।

२. बुद्ध क्रोध में नोलने की क्रिया या भाव । भङ्गमाहट ।

३. किसी पदार्थ में जो रह रहकर निकलनेवाली विशेषतः अप्रिय गंध ।

क्रि० प्र०—घाना ।—निकलना ।

४. रह रहकर होनेवाला पागलपन का हलका दौरा । कभी कभी होनेवाली सनक ।

क्रि० प्र०—घाना ।—पड़ना ।—पकार होना ।

भङ्गकन (पुं०—संज्ञा स्त्री० [हि० भङ्गकना] भङ्गकने या भङ्गकने का भाव । डरकण पड़ने का रहने का भाव । भङ्गक ।

भङ्गकना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. किसी प्रकार के भय की धाँका में अस्तमान् किसी काम से हटा जाना । अवानक डरकर टिठकना । बिदकना । चमकना । भडकना । उ०—(क) कवहुँ चुँबन देत आर्कषि जिय पेन बरनि बिन चेत सब हेत प्रपने । मिला नि मुन कच बँ रहनि पग लटक के जात दुख हूँ हूँ भङ्गक सपने ।—सूर (शब्द०) । (ख) छाँसे परिवे के डरन सकै न हाथ जुवाड । भङ्गक हिमहि गुलाब के भँवा भँवावति पाह ।—बिहारी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।—पड़ना ।

२. भुँकना । खिजलाना । ३. चौक पड़ना । उ०—जैसुमति

मन मन यहै विचारति । भङ्गक उठ्यो सोवत हरि अबहीं कछु पढ़ि पढ़ि तन दोष निवारति ।—सूर०, १०।२०० । ३. संकुचित होना । भङ्गकना । उ०—भति प्रतिपाल कियो तुम हमरो सुनत नंद जिय भङ्गक रहे ।—सूर०, १०।३११२ ।

भङ्गकनि (पुं०—संज्ञा स्त्री० [हि० भङ्गकना] दे० 'भङ्गकन' । उ०—वह रस को भङ्गकनि वह महिमा, वह मुसुकनि वँसो संजोग ।—सूर (शब्द०) ।

भङ्गकाना—क्रि० स० [हि० भङ्गकना का प्रे० रूप] १. अवानक किसी प्रकार के भय की धाँका कराके किसी काम से रोक देना । चमकाना । भडकाना । उ०—जुज्यों उभकि भाँपति बदन फुकति बिहँसि सतराइ । तुल्यो गुलाब मुठी भुठी भङ्गकावत पिय जाइ ।—बिहारी (शब्द०) । २. चौका देना ।

भङ्गकार—संज्ञा स्त्री० [हि० भङ्गकारना] भङ्गकारने की क्रिया या भाव ।

भङ्गकारना—क्रि० स० [प्रनु०] १. डपटना । डाँटना । २. दुर-दुराना । ३. अपने सामने कुछ न गिनना । किसी को अपने प्रागे मंद बना देना । उ०—नख भानो चंद्र बाण साजि कै भङ्गकारत उर धायो । सूरदास मानिनि रण जीत्यो समर संग हरि रण भायो ।—सूर (शब्द०) ।

भङ्गकना (पुं०—क्रि० प्र० [प्रनु०] भाँक बाजे का बजना । भाँक की ध्वनि होना । उ०—भङ्ग भङ्गकत उठत तरंग रंग, धरि उच्चारहि दंद दंद मिरदंग ।—माधवानल०, पृ० १६४ ।

भङ्गरो—संज्ञा स्त्री० [सं० भजंर, हि० भँकरी] जालीदार खिड़की । भँकरी । उ०—भङ्गक भङ्गक भङ्गरिन जहाँ भाँकति भुकि भुकि भूमि ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३ ।

भङ्गिया (पुं०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भङ्गिया' ।

भट—क्रि० वि० [सं० भटिति] तुरंत । उसी समय । तत्क्षण । फौरन । जैसे,—हमारे पहुँचते ही वे भट उठकर चले गए ।

मुहा०—भट से = जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक ।

यौ०—भट पट ।

भटक (पुं०—संज्ञा पुं० [प्रनु०] वायु का भौंका । धौंसी । उ०—भटक भाटल छोडल ठाम, कएल महातव तर बिसराम ।—विद्यापति, पृ० ३०३ ।

भटकनहार—वि० [हि० भटकना + हार] भटकनेवाला । भटका देनेवाला । उ०—भटकनहार भटकबो । भटकनहार भटकबो ।—प्राण०, पृ० ११८ ।

भटकना—क्रि० स० [हि० भट] १. किसी चीज को इस प्रकार एक-बारगी भौंके से हिलाना कि उसपर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या घलग हो जाय । भटके से हलका धक्का देना । भटका देना । उ०—नासिका ललित बेसरि बानी प्रघर तट सुवग तारक छबि कहि न आई । धरनि पद पटक भटक भौंहनि मटक भटक तहाँ रोके कन्हई ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग उस चीज के लिये भी होता है जो किसी दूसरी चीज पर चढ़ती या पड़ती है । और उस चीज के लिये भी होता है जिसपर कोई दूसरी चीज चढ़ती

या पड़ती है। जैसे,—यदि घोड़ी पर कनखजुरा चढ़ने लगे तो कहेंगे कि 'घोड़ी भटक बो' और यदि राम ने कृष्ण का हाथ पकड़ा और कृष्ण ने भटका देकर राम का हाथ अपने हाथ से छलग कर दिया तो कहेंगे कि 'कृष्ण ने राम का हाथ भटक दिया'।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी चीज को जोर से हिलाना। भोंका देना। भटका देना।

मुहा०—भटककर = भोंके से। भटके से। तेजी से। उ०—भटकि बढ़ति उतरति घटा नेक न थाकति देह। भई रहति नट को बटा भटकि नागरी नेह।—बिहारी (शब्द०)।

३. बबाव डालकर चालाकी से या जबरदस्ती किसी की चीज लेना। ऐंठना। जैसे,—(क) राज एक बरमाण ने रास्ते में दस रुपए उनसे भटक लिए। (ख) पंडित जी राज उनसे एक घोड़ी भटक लाए।

संयो० क्रि०—लेना।

मुहा०—भटके का माल = जबरदस्ती छीना या चुराया हुआ माल।

भटकना^२—क्रि० प्र० रोग या दुःख आदि के कारण बहुत दुर्बल या क्षीण हो जाना। जैसे,—चार ही दिन के बुखार में वे तो बिलकुल भटक गए।

संयो० क्रि०—जाना।

भटका—संज्ञा पु० [भनु०] १. भटकने की क्रिया। भोंके से दिया हुआ हलका थक्का। भोंका।

उ०—पिउ भोलियन की माल है, पोई कावे धान। जतन करो भटका घना, नहि टूटै कहूँ लागि।—संतवाणी०, पृ० ४२।

क्रि० प्र०—खाना।—बैना।—पारना।—लगना।—लगाना।

२. भटकने का भाव। ३. पशुधन का बहु प्रकार जिसमें पशु एक ही घाघात से काट डाला जाता है। उ०—मुसलमान के जबहु हिंदू के मारे भटका।—पलटू०, पृ० १०६।

यौ०—भटके का भास = उक्त प्रकार के मारे हुए पशु का भास।

४. आपत्ति, रोग या शोक आदि का घाघात।

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।—लगना।

५. कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की गरदन उस समय जोर से दोनों हाथों से दबा दी जाती है जब वह भीतरी दायें करने के द्वारा से पेट में घुस जाता है।

भटकाना^३—क्रि० प्र० [हि० भटकना] भटके से स्थानान्तरित कर देना। भटके से अस्तव्यस्त कर देना।—उ०—यहि खालच धेकवारि भरत हो, हार तोरि चोली भटकाई।—सूर (शब्द०)।

भटकारी—संज्ञा स्त्री [हि०] १. भटकारने का भाव। भटकने का भाव वा क्रिया। २. दे० 'फटकार'।

भटकारना—क्रि० प्र० [भनु०] किसी चीज को इस प्रकार हिलाना जिसमें उसपर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या छलग हो जाय। भटकना। जैसे, ऊपर पड़ी हुई गर्द साफ

करने के लिये चादर भटकारना या किसी का हाथ भटकारना। दे० 'भटकना'।

भटक्कना^४—क्रि० प्र० [हि० भटकना] भटका देना। भोंका देना। उ०—भटक्कत हक्कन की गहि हक्क।—प० रासो, पृ० ४१।

भटकारी—क्रि० वि० [भनु०] जल्दी जल्दी। उ०—भाजु आभोत हरि गोकुल रे, पथ चलु भटकारी।—विद्यापति, पृ० ३६५।

भटपट—अव्य० [प्रा० भडप्पड या हि० भट + भनु० पट] प्रति शीघ्र। तुरंत ही। तत्क्षण। फौरन। बहुत जल्दी। जैसे,—तुम भटपट जाकर बाजार से सोदा ले आओ उ०—राम युधिष्ठिर बिक्रम की तुम भटपट सुरत करो री।—भारतेदु० प्र० भा० १, पृ० ५०३।

भटा—संज्ञा स्त्री [सं०] भू आबला।

भटाका—क्रि० वि० [भनु०] दे० 'भड़ाका'।

भटापटा^५—संज्ञा स्त्री [प्रा० भडप्पड = छीना भपटी, (भडप्पिअ = छीना हुआ)] हलचल। उरपात। उपद्रव। उ०—तिहुँ लोक होत भटापटा, अब चार जुगन निवास हो —कबीर, सा०, पृ० ११।

भटासी—संज्ञा स्त्री [हि० भड़ी] बीमार।

भटि—संज्ञा स्त्री [सं०] १. छोटा पेड़। २. भाड़ी। गुल्म [की०]।

भटिका—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'भाटा'।

भटिति^६—क्रि० वि० [सं०] १. भट। चटपट। फौरन। तरकाल। तुरंत। उ०—कटत भटिति पुनि मूतन भए। प्रभु बहु बार बाहु सिर हए।—तुलसी (शब्द०)। २. बिना समझे बूझे।

भटोला^७—संज्ञा पु० [देश०] बहु खाट जिसकी बुनावट टूट टूटकर ढीली हो गई हो। उ०—माटी के कुडिल न्हायो, भटोले सुनायो। फाटी गुदारीया बिछाओ, छोरा कहि कहि बोलो।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ११७।

भटु^८—क्रि० वि० [भनु०] दे० 'भट'। उ०—दुधं तीन पानं हयं-तोहि पानं। वहै धम्म भटु सुदाहिम घट्टं।—पृ० रा०, २४। १७५।

भठ^९—क्रि० वि० [हि० भट] शीघ्र। दे० 'भट'। उ०—जद जावे रे जद जावे। भठ सेम गयो समभावे।—रघु० क०, पृ० १५६।

भड^{१०}—संज्ञा स्त्री [हि० भड़ना] १. दे० 'भड़ी'। २. ताले के भीतर का खटका जो चाभी के घाघात से घटता बढ़ता है।

भडकना—क्रि० प्र० [भनु०] दे० 'भड़कना'।

भडक्का^{११}—संज्ञा पु० [भनु०] दे० 'भड़ाका'।

भडभड़ाना—क्रि० प्र० [भनु०] १. दे० 'भड़कना'। दे० 'भँभड़ना'।

भड़न—संज्ञा स्त्री [हि० भड़ना] १. जो कुछ भड के गिरे। भड़ी हुई चीज। २. भड़ने की क्रिया या भाव। ३. लगाए हुए धन का मुनाफा या सूद।—(कव०)।

यौ०—भड़नभड़न = दे० 'भरन'।

भङ्गना क्रि० प्र० [सं० धरण या √णद्, अथवा सं० भ्र ('निर्भर' में प्रयुक्त), प्रा० भङ्ग] किसी चीज से उसके छोटे छोटे अंगों या अणुओं का टूटकर गिरना । जैसे, आकाश से तारे भरना, बदन की हड्डी भङ्गना, पेड़ में से पत्तियाँ भङ्गना, वर्षा की बूँदें भङ्गना ।

मुहा०—फूट भङ्गना । दे० 'फूट' के मुहावरे ।

२. अधिक मान या मर्यादा में गिरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

३. धीरे का पतन होना । (वाजारू) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

४. भाटा जाना । माफ किया जाना । ५. वाद्य का बजना । जैसे, नौबत भङ्गना ।

भङ्गप'—संज्ञा स्त्री [अ०] १. दो जीवों की परस्पर मुठभेड़ । लड़ाई । २. क्रोध । गुस्सा । ३. आवेश । जोश । ४. धाम की ली । खरट ।

भङ्गप'—क्रि० वि० [देशी भङ्गप या अ०] दे० 'भङ्गाका' ।

भङ्गपना—क्रि० प्र० [अ०] १. आक्रमण करना । हमला करना । बेग से किसी पर गिरना । २. छोड़ लेना । ३. लड़ना । भङ्गना । उ० भ० पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

४. जबरदस्ती किसी से कुछ छीन लेना । भटकना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

भङ्गपा—संज्ञा स्त्री [अ० या देशी भङ्गप] हाथापाई । गुन्यमगुन्या । यो—भङ्गपाभङ्गपी । हाथापाई । बड़ा सुनो ।

भङ्गपाना—क्रि० प्र० [अ०] दो जीवों विशेषतः पक्षियों को लड़ाना । (वन०) ।

भङ्गपी—संज्ञा स्त्री [अ०] दे० 'भङ्गा' ।

भङ्गवेरी—संज्ञा स्त्री [हि० भाङ्ग + वेर] १. जगली बेर । २. जगली बेर का पीषा ।

मुहा०—भङ्गवेरी का काटा = लड़ने या उसभनेवाला मनुष्य । अर्थ भङ्ग करनेवाला मनुष्य ।

भङ्गवेरी—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'भङ्गवेरी' ।

भङ्गवाई(पुं)—संज्ञा स्त्री [हि० भङ्ग (= भङ्गी) + सं० वायु, हि० वाह] वह वायु जो भङ्गी पिए हो । वर्षा की भरी से भरी हुई वायु । वह वायु जिसमें वर्षा की छुहारे भरी हो । उ०—अति घन रंगीत आनन्द भाभी रति भङ्गवाई । बग ही भना त बप्पड़ा धरणि न मूकसि पाह ।—दीना०, दू० २४७ ।

भङ्गवाई—संज्ञा स्त्री [हि० भाङ्गना] दे० 'भङ्गाई' ।

भङ्गवाना—क्रि० प्र० [हि० भाङ्गना का प्र० रूप] भाङ्गने का काम दूसरे से कराना । दूसरे का भाङ्गने में प्रयुक्त करना ।

भङ्गाई—संज्ञा स्त्री [हि० भाङ्गा] भाङ्गने का मान । भाङ्गने का काम या भाङ्गने की मजदूरी ।

भङ्गाक—क्रि० प्र० [अ०] दे० 'भङ्गाका' ।

भङ्गाका—संज्ञा पुं० [अ०] भङ्गप । दो जीवों की परस्पर मुठभेड़ ।

भङ्गाका—क्रि० वि० जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक । खटपट ।

भङ्गाभङ्ग—क्रि० वि० [अ०] १. लगातार । बिना रुके । बराबर । एक के बाद एक । उ०—भर भर तोप भङ्गाभङ्ग मारो ।—कबीर० श०, पृ० २८ । २. जल्दी जल्दी ।

भङ्गाभङ्गि(पुं)—क्रि० वि० [अ०] दे० 'भङ्गाभङ्ग' । उ०—रन में पैठि भङ्गाभङ्गि खेल सन्मुख सस्तर खावे ।—चरण० बानी०, पृ० ८७ ।

भङ्गी—संज्ञा स्त्री [हि० भङ्गना अथवा सं० भ्र (= भरना) या देशी भङ्गी (= निरंतर वर्षा)] १. लगातार भङ्गने की क्रिया । बूँद या कण के रूप में बराबर गिरने का कार्य या भाव । २. छोटी बूँदों की वर्षा । ३. लगातार वर्षा । बराबर पानी बरसना । ४. बिना रुके हुए लगातार बहुत सी बातें कहते जाना या चीजें रखते, देते अथवा निकालते जाना । जैसे,—उन्होंने बातों (या गालियों) की भङ्गी लगा दी ।

क्रि० प्र०—बँधना ।—बाँधना ।—लगना ।—लगाना ।

५. ताले के भीतर का खटका जो चाबी के आघात से हटता बढ़ता है ।

भणभण, भणभण—संज्ञा स्त्री [सं०] भन् भन् की ध्वनि । भनभन का शब्द (को०) ।

भणत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भनकार' (को०) ।

भन—संज्ञा स्त्री [अ०] वह शब्द जो किसी धातुखंड आदि पर आघात लगने से होता है । धातु के टुकड़े के बजने की ध्वनि । यौ०—भन भन ।

भनक—संज्ञा स्त्री [अ०] भनकार का शब्द । भन भन का शब्द जो बहुधा धातु आदि के परस्पर टकराने से होता है । जैसे, हथियारों की भनक, पाजेब की भनक, चूड़ियों की भनक । उ०—ढोल ढनक भाँझ भनक गोमुख सहनार्ह ।—घनानंद, पृ० ४८६ ।

भनकना—क्रि० प्र० [अ०] १. भनकार का शब्द करना । २. क्रोध आदि में हाथ पैर पटकना । ३. चिड़चिड़ाना । क्रोध में आकर जोर से बोल उठना । ४. दे० 'भोलना' ।

भनकमनक—संज्ञा स्त्री [अ०] मंद मंद भनकार जो बहुधा आभूषणों आदि से उत्पन्न होती है । उ०—भनक मनक धुनि होत लगत कानन को प्यारी ।—ब्रज० प्र०, पृ० ११९ ।

भनकबात—संज्ञा स्त्री [अ० भनक + सं० बात] घोड़ों का एक रोग जिसमें वे अपने पैरों को कुछ भटका देकर रखते हैं ।

भनकाना—क्रि० प्र० [अ० भनकना का प्रे० रूप] भनकार उत्पन्न करना । बजाना ।

भनकार—संज्ञा स्त्री [सं० भणत्कार, प्रा० भणवकार] दे० 'भंकार' । उ०—घर घर गोपी दही बिलोबहि कर कंकन भनकार ।—सूर (शब्द०) ।

भनकारना—क्रि० प्र० [हि० भनकार] दे० 'भंकारना' ।

भनकारना—क्रि० प्र० दे० 'भंकारना' ।

भनकोर(पुं)—संज्ञा पुं० [हि० भनकार या भकोर] दे० 'भनकार' । उ०—लोका लोके विजुनी चमके भिगुर बोले भनकोर के ।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ३० ।

भनभन—संज्ञा स्त्री० [घनु०] भन भन शब्द । भनकार । भन-भनाहट ।

भनभना^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो तमाचू की नसों में छेद कर देता है । इसे चनचना भी कहते हैं ।

भनभना^२—वि० [घनु०] जिसमें से भनभन शब्द उत्पन्न हो ।

भनभनाना^१—क्रि० घ० [घनु०] १. भन भन शब्द होना । २. (लाल०) भय, सिहरन या हर्ष से रोमांचित होना । किसी घनुभूति से पुलकित होना । जैसे, न रोएँ भनभनाना ।

भनभनाना—क्रि० म० भनभन शब्द उत्पन्न करना ।

भनभनाहट—संज्ञा स्त्री० [घनु०] १. भनभन शब्द होने की प्रिया या भाव । भंकार । २. भन भनी ।

भनभोरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ ।

भनभुक्त—वि० [सं०] दे० 'भंक्त' । उ०—दूध अंतर का सरल, अम्लान, खिल रहा मुखदेश पर युनिमान । किंतु है अब भी भनभुक्त तार, बोलते हैं भूष बारंबार ।—साम०, पु० ४८ ।

भननन—संज्ञा पुं० [घनु०] भन भन शब्द । भंकार ।

भननाना^१—क्रि० घ० घोर सं० [घनु०] दे० 'भंकारना' ।

भनबाँ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घान ।

भनस—संज्ञा पुं० [देश० ?] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर बमड़ा मट्ठा हुषा होता था ।

भनाभन^१—संज्ञा स्त्री० [घनु०] भंकार । भनभन शब्द ।

भनाभन^२—क्रि० वि० भनभन शब्द सहित । हम प्रकार जिसमें भन भन शब्द हो । जैसे,—भनाभन खाड़े बजने लगे, भनाभन प-बरसने लगे ।

भनिया—वि० [हिं० भीना] दे० 'भीना' । उ०—कनक रतन मनि चरित कदि किंकन कसित पीत पट भनिया ।—सूर (शब्द०) ।

भन्नाना—क्रि० घ० [घनु०] दे० 'भनभनाना' । उ०—मुखर भन्नाते रहे या गूक हों सब शब्द, पोपले वाचाल मे थोथे निहोरे ।—हरी घास०, पु० २१ ।

भन्नाहट—संज्ञा स्त्री० [घनु०] भनकार का शब्द । भनभनाहट । उ०—टुटे मार सन्नाह भन्नाहटे सो । परे छूटि के भूमि कन्नाहटे सो ।—सूदन (शब्द०) ।

भप—क्रि० वि० [सं० भप] (= जलरी से गिरना, कूदना) । जलरी से । तुरंत । भट । उ०—खेलत खेलत जाइ कदम चढ़ि भप यमुना बल लीनो । सोवत काला जाइ जगायो फिरि भारत हरि कीनो ।—सूर (शब्द०) ।

भौ०—भप भप । भपाभप ।

मुहा०—भप खाना=(१) पतंग का जलरी से पेंदी के बल गिर पड़ना । (२) भप खाना । भपना ।

भपक—संज्ञा स्त्री [हिं० भपकना] १. उतना समय जितना पलक गिरने में लगता है । बहुत थोड़ा समय । २. पलकों का परस्पर मिलना । पलक का गिरना । ३. हलकी नींद । भपकी । ४. लज्जा । शर्म । हया । भप ।

भपकना—क्रि० घ० [सं० भप] (= जोर से पड़ना, कूदना) । १.

२. पलक गिराना । पलकों का परस्पर मिलना । भपकी लेना । ऊँघना ।—(घव०) । ३. तेजी से भागे पड़ना । भपटना । ४. ढकेलना । ५. भपना । शरमिदा होना । उ०—तभी, देवि, क्यों सहभा दीख, भपक, छिप जाना तेरा रिमत मुख, कविता की सजीव रेखा भी मानस पद पर घिर जाती है ।—इत्यलपु, पु० ६८ । ६. डरना । सहम जाना । उ०—कहु देत भपकी भपकि भपकहु देत खाली दाऊं ।—रघुराज (शब्द०) ।

भपका—संज्ञा पुं० [घनु०] हवा का भोका ।—(लश०) ।

भपकाना—क्रि० सं० [घनु०] पलकों को बार बार बंद करना । जैसे, घालि भपकाना ।

भपकारी—वि० स्त्री० [हिं० भपक + कारी (प्रत्य०)] १. निदियारी । भपकानेवाली । २. हयादार । लज्जा से झुकनेवाली । उ०—कारी भपकारी अनियारी बरनी सधन मुहाई ।—भारतेंदु सं०, भा० २, पु० ४१४ ।

भपकी—संज्ञा स्त्री० [घनु०] १. हलकी नींद । थोड़ी निद्रा । उँघाई । ऊँघ । जैसे,—जरा भपकी ले लें तो चले ।

क्रि० प्र०—भाना ।—लगना ।—लना ।

२. घालि भपकने की क्रिया । ३. वह कपड़ा जिसमें घनाज घोसाने या बरसाने में हुषा देते हैं । चंदरा । ४. सोया । चकमा । बहकाना । उ०—कहुँ देत भपकी भपकि भपकहुँ देत खाली दाऊं । बड़ि जान कहुँ द्रुत बगन हैं बलगत दक्षिण पाउँ ।—रघुराज (शब्द०) ।

भपको^(१)—संज्ञा पुं० [हिं० भपका] हवा का भोका । उ०—दीपक बरत बिदेक की तो ली या चित भाहि । जो लौ नारि कटाश पट भपको लागत नाहि ।—व्रज० घ०, पु० ८८ ।

भपकोहीँ, भपकोहीँ^(२)—वि० [हिं० भपका] [वि० स्त्री० भपकीहीँ] १. नींद से भरा हुआ (नेत्र) । जिसमें भपकी आ रही हो (बहु प्रांल) । भपकता हुआ । उ०—(क) भपकीहे पलनि पिया के पीक लीक लखि भकि भहराई न नेकु घनुरागे त्यो ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) भकि भकि भपकीहे पलनु फिरि फिरि जुरि, बमुहाइ । बीदि निघागम नीद गिनि दी सब अली उठाय ।—बिहारी ४०, दो० १८२ । २. मत्त । नेत्रों में चूर । मत्तवाला । नशे में भरा हुआ । उ०—पनि अंश लहरी चहुँधा पूरी जोति समूरो माल लमे । इगदुनि भपकोहीँ भाहि बड़ीही नाक चडौही अधर हँसे ।—सूदन (शब्द०) ।

भपट—संज्ञा स्त्री० [सं० भप] (= कूदना) । भपटने की क्रिया या भाव । उ०—(क) देखि महीप सकल मकुवाने । बाज भपट जनु नवा लुकाने ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मय पंखो जब लग उड़े विषय वासना माहि । जान बाज की भपट मे नव लागि प्राया नाहि ।—कबीर (शब्द०) ।

यौ०—लपट भपट—लपटने या भपटने की क्रिया या भाव । उ०—लपट भपट भहराने हहगाने जात भहगाने भट परधो प्रबल परावनो ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—भपट लेना=बहुत तेजी से बढ़कर छीनना ।

भपटना^१—क्रि० प्र० [सं० भंप (= बड़ना)] १. किसी (वस्तु या व्यक्ति) की ओर भौंक के साथ बड़ना । वेग से किसी की ओर चलना । २. पकड़ने या आक्रमण करने के लिये वेग से बड़ना । दटना । धावा करना ।

मुहा०—किसी पर भपटना = किसी पर आक्रमण करना । जैसे, बिल्ली का तूहे पर भपटना ।

भपटना^२—क्रि० सं० बहुत तेजी से बढकर कोई चीज ले लेना । भपटकर कोई चीज पकड़ या छीन लेना । —जैसे, तोते को बिल्ली भपट ले गई ।

संयो० क्रि०—लेना ।

भपटना^३—संज्ञा स्त्री० [हि० भपटना] भपटने का क्रिया ।

भपटाना—क्रि० सं० [हि० भपटना का प्रेरणारूप] धावा कराना । आक्रमण कराना । हमला कराना । इशियालक देना । वार कराना । लड़ने को उभारना । उमकाना । बढ़ावा देना । किसी को भपटने में प्रवृत्त करना ।

भपटाना^४—संज्ञा स्त्री० [हि० भपटना] दे० 'भपट' ।

क्रि० प्र०—मारना ।

यो०—भपटामार = भपट्टा मारनेवाला । भपटनेवाला ।

भपताल—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में एक ताल जो पाँच मात्राओं का होता है और जिसमें चार पूर्ण और दो अर्ध होती हैं । इसमें तीन आघात और एक खाली रहता है । इसका मृदंग का बोल यह है—

+ १ २ ० +

धाग, धागे, ते, धागे, ने धा । और इसका तबले का बोल यह है—धिन धा, धिन धिन धा, देन, ता तिन तिन ता । धा^१ ।

भपना^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] अपने या मुदनेवाली वस्तु । पलक । उ०—अगमपुरी की मेकरी गजियां झड़बड़ है चलना । ठोकर लगी गुर जान शब्द की उगरी गए भपना । —कबीर० श० भा० १, पृ० ६७ ।

भपना^२—क्रि० प्र० [अनु०] १. (पलकों का) गिरना । (पलकों का) बंद होना । २. (पलकों) भपकना या बंद होना । झुकना । ३. लज्जित होना । भपना । भिपना ।

भपनी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठकना । वह जिससे कोई चीज ढकी जाय । २. पिटारी ।

भपलैया^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भपोला' । उ०—अम कहि भपलैया बिलरायो । शिलपिल्ले को उरस करायो । —रघुराज (शब्द०) ।

भपवाना—क्रि० प्र० [अनु०] भपाना का प्रेरणार्थक रूप । किसी को भपाने में प्रवृत्त करना ।

भपस—संज्ञा स्त्री० [हि० भपसना] १. गुंजान होने की क्रिया या भाव । २. कहारों की परिभाषा में पेड़ की झुकी हुई डाल ।

विशेष—इसका व्यवहार पिछले कहार को आगे पेड़ की डाल होने की सूचना देने के लिये पहला कहार करता है ।

भपसट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. घोखा । दबसट । कपट । २. एक गाली ।

भपसना—क्रि० प्र० [हि० भपना (= ठकना)] लता या पेड़ की डालियों का खूब घना होकर फैलना । पेड़ या लता आदि का गुंजान होना । जैसे,—यह लता खूब भपसी हुई है ।

भपाक—क्रि० वि० [हि० भप] पलक माँजते । चटपट । उ०—भकोरि भपाक भपटि नर समय गँवाई । नहि समुझत निज मूल ग्रथ हूँ दृष्टि छिपाई । —मीरा श०, पृ० ८७ ।

भपाका^१—संज्ञा पुं० [हि० भप] शीघ्रता । जल्दी ।

भपाका^२—क्रि० वि० जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक ।

भपाटा^३—क्रि० वि० [हि० भप] भपट । तुरंत । शीघ्र ही ।

भपाटा^४—संज्ञा पुं० [हि० भपट] चपेट । आक्रमण । दे० 'भपट' ।

भपाटा^५—क्रि० वि० [हि० भपाट] शीघ्र । भपट ।

भपाना—क्रि० सं० [हि० भरना] १. अपने का सकर्मक रूप । मुँदना या बंद करना (विशेषतः घाँवों या पलकों का) । २. झुकावा । ३. दे० 'भपाना' ।

भपाव—संज्ञा पुं० [देश०] घास काटने का एक प्रकार का औजार ।

भपावना^१—क्रि० सं० [हि० भपाना] छिपाना । गोपन करना । उ०—बदन भपावए अलकत भार, चाँदमडल अनि मिलए ग्रंथार । —विद्यापति, पृ० ३४० ।

भपित—क्रि० वि० [हि० भपना] १. भपा हुआ । मुँदा हुआ । २. जिसमें नींद मरी हो । भपकोहा या उनीदा (नेत्र) । ३. लज्जित । लज्जायुक्त । लजालु । उ०—कवि पदमाकर छकित भपित भपि रहत दगंवन । —पदमाकर (शब्द०) ।

भपिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गले में पहनने का एक प्रकार का गहना ।

विशेष—यह गहना हंसुली की तरह का बना होता है और इसके सोने या चाँदी के बीच में एक घकीक जड़ा रहता है । यह गहना प्रायः डोम जाति की स्त्रियाँ पहनती हैं ।

२. पेटारी । पच्छी ।

भपेट—संज्ञा स्त्री० [हि० भपट] दे० 'भपट' ।

भपेटना—क्रि० सं० [अनु०] आक्रमण करके दबा लेना । चपेटना । दबोचना । छोप लेना । उ०—सहमि सुखात बात जात की सुरति करि लवा ज्यों लुकात तुलसी भपेटे बाज के । —तुलसी श्र०, पृ० १८३ ।

भपेटा^३—संज्ञा पुं० [अनु०] १. चपेट । भपट । आक्रमण । २. भूत-प्रेतादि कृत बाधा या आक्रमण । ३. हवा का झोंका । भकोरा । —(लल०) ।

भपोला—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० अल्पा० भपोली] दे० 'भपोला' ।

भपोली—संज्ञा स्त्री० [हि०] भपोला का अल्पाथक । छोटा भपोला या भाबा । भपोली ।

भप्पड़—संज्ञा पुं० [अनु०] भापड़ । थप्पड़ ।

भप्परी—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दे० 'भप्पड़' । २. मार । चोट । उ०—दीनो मुहीम को भार बहादुर ढागो सहे क्यों गयंद को भप्पर । —भूषण श्र० पृ० ७१ ।

कम्पान—संज्ञा पुं० [हि० कम्पान] कम्पान नाम की एक प्रकार की पहाड़ी सवारी जिसे चार घादमी उठाकर ले चलते हैं ।

कम्पानी—संज्ञा पुं० [हि० कम्पान] कम्पान उठानेवाला कहार या मजदूर ।

कम्पक—संज्ञा स्त्री० [हि० कम्पक] दे० 'कम्पकी' ।

कम्पकी^(७)—क्रि० वि० [हि० कम्पक] कम्पकी में ही । उ०—सांभलि राजा बोल्या रे प्रवध सुणी मनोपम बाणी जी । निरगुण नारी सूं नेह करंता कम्पकी रेणु बिहाणी जी ।—गोरख०, पृ० १५३ ।

कम्पकना^(१)—क्रि० प्र० [प्रनु०] कम्प कम्प करना । ज्योति सी उठना । दोस होना । चमकना । उ०—काया कम्पकइ कनक जिम, सुंदर केहें सुख । तेह सुरंगा किम हुवइ, जिए वेहा बहु दुख ।—ढोला०, पृ० ५४६ ।

कम्पकनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] काल में पहनने का एक प्रकार का तिकोना पत्ते के आकार का गहना ।

कम्पड़ा—वि० [प्रनु०] दे० 'कम्परा' ।

कम्पधरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो गेहूं को हानि पहुंचाती है ।

कम्परी^(७)—संज्ञा पुं० [प्रनु०] जलते हुए दोपक में मोटी बत्ती । उ०—कसतूरी मरदन कीयो कम्परी दीप से गहरी बाट ।—वी० रासी, पृ० ६८ ।

कम्परा^(१)—वि० [प्रनु०] वि० स्त्री० कम्परी] चारों तरफ बिखरे घोर घूमे हुए बड़े बड़े वालोंवाला । जिसके बहुत लंबे लंबे बिखरे हुए बाल हों । जैसे, कम्परा कुत्ता । उ०—कलुषा कम्परा मोतिया कम्परा बुलवा मोहि डेरवाये ।—मलुक० बानी, पृ० २५ ।

कम्परा^(२)—संज्ञा पुं० कलंदरों की भाषा में तर भात ।

कम्परीला—वि० [हि० कम्परा + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० कम्परीली] कुछ बढ़ा, चारों तरफ बिखरा घोर घूमा हुआ (बाल) ।

कम्परीरा^(७)—[हि० कम्परा + ऐरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० कम्परीरी] दे० 'कम्परीला' । उ०—कुंतल कुटिल छवि राजत कम्परीरी । मोहन चपल तारे शबिर कम्परीरी ।—सूर (शब्द०) ।

कम्परा—संज्ञा पुं० [प्रनु०] दे० 'कम्परा' । उ०—(क) सीस फूल धरि पाटी पौछत फूँचनि कम्परा निहारत । वदन विद जराइ की बेदी तापर बने सुधारत ।—सूर (शब्द०) । (ख) छहरे निर पै छवि मोर पखा उनकी नय के मुकता यहरे । फहरै पियरी पट बेनी इतै उनकी चुनरी के कम्परा भहरे ।—बेनी कवि (शब्द०) ।

कम्परा^(१)—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] टंटा । बखेड़ा । कणड़ा । उ०—भरि नयन लखहु रघुकुल कुमार । तजि देहु और जग की कम्परा ।—रघुराज (शब्द०) ।

कम्परा^(२)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कम्परा' । उ०—(क) बड़े घर की बहू बेटी करति वृथा कम्परा । सूर मन्यों बंध पावे जाहि घर कम्प मारि ।—सूर (शब्द०) । (ख) बहुत कम्परी जिन करो अजहूँ तजो कम्परा । एकरि कंस ले जाइगो काबिहि

सूर खबारि ।—सूर (शब्द०) । (ग) यह कम्परो बगरो जय रोधत हरिपद प्रति अनुरागा । ताते सज्जन रसिक शिरोमणि यह कम्पारि सब त्यागा ।—रघुराज (शब्द०) ।

कम्पिया^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० कम्पि का स्त्री० प्रत्य०] १. छोटा कम्प छोटा फुंदना । २. सोने या चांदी आदि की बनी हुई बहुत ही छोटी कटोरी जो बाजूबंद, जोशान, हुमेल, आदि गहनों में सूत या रेशम में पिरोकर गूँथी जाती है । उ०—मदनानुर ती तिनऊ पर श्याम हुमेलन की भमके कम्पिया ।—जाल कवि (शब्द०) ।

कम्पिया^(२)—संज्ञा स्त्री० [हि० कम्पि का स्त्री० प्रत्य०] वह कम्प जो आकार में छोटा हो ।

कम्पी—संज्ञा स्त्री० [हि० कम्पि का स्त्री० प्रत्य०] दे० 'कम्पि' । उ०—कम्पी जराऊ जोरि, अमित गूँथननि सवारी ।—नंद० प्र०, पृ० ३८६ ।

कम्पुआ^(१)—वि० [प्रनु०] दे० 'कम्परा' ।

कम्पुकड़ा^(७)—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] [अन्य रूप—कम्पुकड़ा, कम्पुकड़ा] चमका जगमगाहट । उ०—(क) ऊँचउ मंदिर प्राति घणाउ प्राव सुहावा कंत । वीजलि लियइ कम्पुकड़ा सिहराँ गलि लागत ।—ढोला०, पृ० २६८ । (ख) बीज न देख चहुँदुयाँ, प्री परदेश गयाइ । घापण लीय कम्पुकड़ा गलि लागी सहरीह ।—ढोला०, पृ० १५२ ।

कम्पुकना^(१)—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. चमकना । जगमगाना । दोस होना । ज्योतिन होना । उ०—(क) मंदिर माँहि कम्पुकती दीवा कैषी जोति । हंस बटाऊ चलि गया काढ़ी घर की छोति ।—कबीर प्र०, पृ० ७३ । (ख) भमकै उड़ै यों कम्पुकै फुलंगा । मनो अग्नि बेताल नचै खुनंगा ।—सूदन (शब्द) । २. कम्पकना ।

कम्पुआ—संज्ञा पुं० [प्रनु०] १. एक ही में बंधे हुए रेशम या सूत आदि के बहुत से तारों का गुच्छा जो कपड़ों या गहनों आदि में जोना बढ़ाने के लिये लटकया जाता है । जैसे, पगड़ी का कम्पुआ । २. एक में लगी गूँथी या बंधी हुई छोटी छोटी चीजों का समूह । गुच्छा । जैसे, तालियों का कम्पुआ घुँघुस्रों का कम्पुआ । उ०—कम्पुआ से बहु छोटे बट्टए भूलत सुंदर ।—पेमघन०, भा० १, पृ० १२ ।

कम्पकना^(७)—क्रि० प्र० [प्रनु०] कम्प कम्प की ध्वनि होना । कम्पकार होना । उ०—अधु सहुँख नाड़ी पवन चलैगा, कोटि कम्पकै नाद । बहुतारि चंदा बाई सोप्या किरण प्रगटी जय प्राव ।—गोरख०, पृ० १६ ।

कम्पकार^(७)—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] कम्प कम्प की ध्वनि । कम्पार । उ०—तमते तमते तम तेज मारे । कम्पते कम्पते कम्पकार मारे ।—पृ० रा०, १२ । ८६ ।

कम्पक—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १. चमक का अनुकरण । २. प्रकाश । उजला । ३. कम्प कम्प शब्द । उ०—पग जेहूरि बिछियन की कम्पकनि चलत परस्पर बाजत । सूर स्याम सुख जोरी

मणि कंचन छवि लाजत ।—सूर (शब्द०) ४. ठसक या नखरे की चाल ।

भमकड़ा^१—संज्ञा पु० [हि० भमक + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'भमक' ।
उ०—मिरजा साहब—एक भमकड़ा नजर आया ।—
फिसाना०, भा० ३, पृ० ८ ।

भमकड़ा^२—वि० भनभनानेवाले । भमभम शब्द करनेवाले । उ०—
बड़े बड़े कच छुटि पड़े उमड़े नैन बिमाल । कड़े भमकड़े हो
गड़े घड़े लड़े नैदलाल ।—स० सप्तक, पृ० २५१ ।

भमकना—क्रि० प्र० [हि० भमक] १. प्रकाश की किरणें फैकना ।
रह रहकर चमकना । दमकना । प्रकाश करना । प्रज्वलित
होना । २. भपकना । छाया । छा जाना । उ०—घालस सौ
कर कोर उठावत नैननि नीब भमकि रहि घारी । दोउ
माना निरखत घालस मुख छवि पर सब मन डारति
वारी ।—सूर०, १०।१२६ । ३. भम भम शब्द होना ।
भनकार की ध्वनि होना । उ०—भूमि भूमि भुकि भुकि
भमकि भमकि घाली रिमभिम रिमभिम घसाढ़ बरसतु
है ।—ठाकुर, पृ० १६ । ४. भम भम करते हुए उछलना
कूदना । गहनों की भनकार के साथ हिलना डोलना । उ०—
(क) कबटूक निकट देखि बर्षा ऋतु भूत सूर्य हिमोरे ।
रमकत भमकत जगक सुता सेंप हाव भाव खित चोरे ।—सूर
(शब्द०) । (ख) ज्यों ज्यों घावति निकट निसि त्यों त्यों
खरी उताल । भमकि भमकि टहलै करै लगी रहचठै बाल ।—
बिहारी २०, वी० ३४३ । ५. गहनों की भनकार करते हुए
नाचना । १. लड़ाई में हथियारों का चमकना घोर खनकना ।
उ०—भलत लगे चमकन लग्य लगे भमकन मूल लगे दमकन
तेग लगे छहुरान ।—गोपाल (शब्द०) । ७. झकड़ दिख-
लाना । तेजी दिखाना । भोक दिखाना । ८. भम भम शब्द
करना । बजने का सा शब्द करना । उ०—तैसिये नन्हूँ बूँदनि
बरसतु भमकि भमकि भकोर ।—गूर (शब्द०) ।

भमकाना—क्रि० प्र० [हि० भमकना का स० रूप] १. चमकाना ।
बार बार हिलाकर चमक पैदा करना । २. चलने में भाभूपण
घाबि बजाना घोर चमकाना । उ०—सदृज भियार उठत
जोवन सम बिधि निज हाव बनाई । सूर स्याम धाय दिग
प्रापुन घट भरि बलि भमकाई ।—सूर०, १०।१४४७ ।
३. युद्ध में हथियारों घाबि का चमकाना घोर खनकाना ।

भमकारा—वि० [हि० भम भम] [वि० स्त्री० भमकारी] भमाभम
बरसनेवाला (बादल) । उ०—सोखे सिंधु सिंधुर से बंधुर त्यों
बिध्य मंधमादन के बंधु गरज गुरवानि के । भमकारै भूमत
गगन घने घूमत पुकारे मुख धूमत पयोढ़ा मोरान के ।—
देव (शब्द०) ।

भमभम^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. भम भम शब्द जो बहुधा घुंघुरणों
आदि के बजने से उत्पन्न होता है । छम छम । २. पानी बरसने
का शब्द । ३. चमक दमक ।

भमभम^२—वि० जिसमें से सब चमक या घाभा निकले । चमकता
हुआ ।

भमभम^३—क्रि० वि० १. भम भम शब्द के साथ । जैसे, घुंघुरणों का

भमभम बोलना, पानी का भमभम बरसना । २. चमक दमक
के साथ । भमाभम ।

भमभमाना^१—[क्रि० प्र०] १. भम भम शब्द होना । २. चमचमाना ।
चमकना । ३. (लाक्ष०) भनभनाना । पुलकित होना ।
रोमांचित होना । उ०—एक विशिष्ट धनुभूति से मिस मेहता
की त्वचा भमभमा उठी ।—पिजरे०, पृ० ५५ ।

क्रि० प्र०—उठना ।

भमभमाना^२—क्रि० स० १. भमभम शब्द उत्पन्न करना । २.
चमकाना ।

भमभमाहट—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. भमभम शब्द होने की क्रिया
या भाव । २. चमकने की क्रिया या भाव ।

भमना—क्रि० प्र० [धनु०] नम्र होना । झुकना । दबना । उ०—
सुरली श्याम के कर अधर बिबं रमी । लेति सरबस जुवतिजन
को मदन विबित घमी । महा कठिन कठोर घाली बाँस बंस
जमी । सूर पूरन परसि श्रीमुख नैकु नाहि भभी ।—
सूर०, १०।१२२८ ।

भमा^१—संज्ञा पु० [सं० भामक] दे० 'भवाँ' या 'भावाँ' ।

भमाका—संज्ञा पु० [धनु०] १. भम भम शब्द । पानी बरसने या
गहनों के बजने आदि का शब्द । २. ठसक । मठक । बल्लरा ।

भमाभम—क्रि० वि० [धनु०] उज्ज्वल कानि के सहित । दयक
के साथ । जैसे, सलमे सितारे डँके हुए कपड़ों का भमाभम
चमकना । २. भमभम शब्द सहित । जैसे, पाजेब का भमाभम
बोलना, पानी का भमाभम बरसना ।

भमाठ—संज्ञा पु० [धनु०] भुरमुठ । उ०—पर्वत के सिर पर क्या
देखाता है कि षट्पन से सुते भाइयों के भमाठ से बड़ा बटाटोप
धूम निकल रहा है ।—व्यास (शब्द०) ।

भमाना^१—क्रि० प्र० [धनु०] झपकना । छाना । घिरना । उ०—
(क) खेलत तुम मिसि अधिक गई सुत नैननि नीब भमाई ।
बदन जंभात मंग ऐडावत जननि पलोडत पाई ।—सूर
(शब्द०) । (ख) त्यों पदमाकर भोरि भमाई सुखी सैं हरि
पै इक वाठ ।—पद्माकर (शब्द०) ।

भमाना^२—क्रि० प्र० [हि० भाँवी या भमा + णा (प्रत्य०)] दे०
'भवाना' ।

भमाना^३—क्रि० स० [हि० जयाना ? यथवा धनु० भमाठ] झकड़ा
करना । एकत्र करना ।

भमारना^१—क्रि० स० [हि० भवाना का प्रे० रूप] भाँवना करना ।
भाँवी की तरह कर देना कुछ कुछ श्याम वण का कर देना ।
उ०—दोहम करत बजमोहन मनोरथनि, धानंद को घन रंग
भननि भमारई ।—घनानंद, पृ० २०४ ।

भमाल^१—संज्ञा पु० [देशी] इन्द्रजात्र । माया [को०] ।

भमाल^२—संज्ञा पु० [हि०] एक प्रकार का डिगल गीत । उ०—बूढ़े
पर चंद्रायणों, घरे डलासो घार । गीतों रूप भमाल पुण,
वरणें मंछ विचार ।—रघु० ६०, पृ० ६२ ।

भमूरा—संज्ञा पु० [हि० भवरा या भमाट ?] १. घने बालोंवाला
पशु । जैसे, रीछ, भवरा कुत्ता आदि । २. वह लड़का जो
बाजीगर के साथ रहता है और बहुत से खेलों में बाजीगर

को सहायता देता है। ३. वह बच्चा जो ढोले ढाले कपड़े पहनता हो। ४. कोई प्यारा बच्चा।

भ्रमेख—संज्ञा स्त्री० [हि० भ्रमेला] दे० 'भ्रमेला'।

भ्रमेला—संज्ञा पुं० [अनु० भावि भावि] १. बखेड़ा। भ्रमट। भ्रगड़ा। टंटा। २. लोगों का झुंड। भीड़ भाड़। उ०—शत्रु के भ्रमेला बीर पाय शस्त्र ठेला प्राण त्यागि झलबेला तन खड़े काम चेला सो।—गोपाल (शब्द०)।

भ्रमेलिया—संज्ञा पुं० [हि० भ्रमेला + इया (प्रत्य०)] भ्रमेला करनेवाला। भ्रगड़ालू। बखेड़िया।

भर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी गिरने का स्थान। निर्भर। २. भरना। सोता। चश्मा। पर्वत से निकलता हुआ जलप्रवाह। ३. समूह। झुंड। ४. तेजी। वेग। उ०—प्रात गई नीके उठि ते घर। मैं बरजी कहाँ जाति री प्यारी तब खीझी रिस भर ते।—सूर (शब्द०)। ५. भड़ो। लगातार घुड़। ६. किसी वस्तु की लगातार वर्षा। उ०—(क) वर्षत घन कवच घर फूटे। मघा मेघ मानो भर जुटे।—लाल (शब्द०)। (ख) पावक भर ते मेह भर दाहक दुसह बिसेलि। दहै देह बाके परस याहि दगन की देखि।—बिहारी (शब्द०)। (ग) सूरदास तबही तम नासै जान घगिन भर फूटे।—सूर (शब्द०)। ७. घाँव। ताप। लपट। ज्वाला। भाल। उ०—(क) श्याम अंकम भगि लीन्हीं विरह घगिन भर तुरत बुझानी।—सूर (शब्द०)। (ख) श्याम गुणराशि मानिनि मनाई। रह्यो रस परस्पर मिटयो तनु बिरह भर भरी आनंद प्रिय उर न माई।—सूर (शब्द०)। (घ) सठपगति सी मसिमुखी मुख घूँघट पट ढाँकि। पावक भर सी भ्रमकि कै गई भरोखे भ्रमिक।—बिहारी (शब्द०)। (च) नेकु न भुरसी बिरह भर नेह लता कुंभिलाति। नित नित होत हरी हरी खरी भालरवि जाति।—बिहारी (शब्द०)। ८. ताले का खटक। ताले की भीतर की कल। ताले का कुत्ता।

भरका—संज्ञा स्त्री० [हि० भरक] दे० 'भरक'।

भरकना—क्रि० प्र० [हि०] १. दे० 'भरकना'। उ०—सरल विमल विराजही विद्रुम खभ सुजोर। चान पाटियनि पूरत की भरकत सरकत भोर।—सुलसी (शब्द०)। २. दे० भिड़कना। उ०—रोवति देखि जननि सकुलानी बियो तुरत नीवा की भरकी।—सूर (शब्द०)।

भरकना—क्रि० प्र० [हि० भरकना] दे० 'भरकना'। उ०—हंसत दसन घस घमके साहन उठे भरकिक। दारिउँ सरि जो न कै सका फाटेउ हिया वरकिक।—जायसी ग्रं०, पृ० ७४।

भरकना—क्रि० प्र० [सं० भर (=पानी का बहना)] धीरे धीरे बहना। भर भर शब्द करते चलना। उ०—पीन भरकके हिय मुरख साये सिमरि बतास।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५०।

भरकाना—क्रि० प्र० [सं० भर (=समूह, झुंड)] एकत्र होना। झुंड में आ जाना। उ०—इत चौका मई घस भो माई। बहु बिउंटी बुरह भरकाई।—कबीर सा०, पृ० ४०९।

भरभर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. जल के बहने, बरसने या हवा के चलने आदि का शब्द। २. किसी प्रकार से उत्पन्न भर भर शब्द।

भरभराना—क्रि० प्र० [अनु०] किसी बर्तन में से किसी वस्तु को इस प्रकार भाड़कर गिरा देना कि उस वस्तु के गिरने से भरभर शब्द हो।

भरभराना—क्रि० प्र० भरहरा उठना। काँप उठना। कंपित होना। उ०—भरभराति भरहराति लपट घति, देखियत नहीं उबार।—सूर०, १०।५६३।

भरन—संज्ञा स्त्री० [हि० भरना] १. भरने की क्रिया। २. वह जा कुछ भरकर निकला हो। वह जो भरा हो। ३. दे० 'भड़न'।

भरना—क्रि० प्र० [सं० भरण] १. भड़ना। २. किसी ऊँचे स्थान से जल की धारा का गिरना। ऊँची जगह से सोते का गिरना। जैसे,—पहाड़ों में भरने भर रहे थे। उ०—नंद नंदन के बिलुने घखियाँ उपमा जोग नहीं। भरना लों ये भरत रैन दिन उपमा सकल नहीं। सूरदास प्रासा मिलिने की घब घट साँस रही।—सूर (शब्द०)। ३. बीर्य का पतन होना। बीर्य रक्षित होना।—(बाजारू)। ४. बजना। भड़ना। जैसे, तोबत भरना।

विशेष—(१) दे० 'भड़ना'।

विशेष—(२) इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिये भी होता है जिसमें से कोई चीज भरती है।

भरना—संज्ञा पुं० [सं० भर] ऊँचे स्थान से गिरनेवाला जलप्रवाह। पानी का वह स्रोत जो ऊपर से गिरता हो। सोता। चश्मा। जैसे, उस पहाड़ पर कई भरने हैं।

भरना—[सं० भरण] [स्त्री० भरणा० भरनी] १. लोहे या पीतल आदि की बनी हुई एक प्रकार की छननी जिसमें लगे लगे छेद होते हैं और जिसमें रखकर समूचा घना ज द्याना जाता है। २. लोहे की बनी वह कण्टी या चम्पच जिसका प्रयोग छोटे तवे का सा होता है और जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं। पीना।

विशेष—इससे खुले घी या तेल आदि में तली जाने वाली चीजों को उसते पलटत, बाहर निकालते अथवा इसी प्रकार का कोई और काम तेते हैं। भरने पर जो चीज ले ली जाती है उसपर का कालतू घी या तेल उसके छेदों से नीचे गिर जाता है और तब वह चीज निकाल ली जाती है।

२. पशुओं के खाने की एक प्रकार की पास जो कई वर्षों तक रखी जा सकती है।

भरना—क्रि० [हि० स्त्री० भरनी] १. भरनेवाला। जो भरता हो। जिसमें से कोई पदार्थ भरता हो।

भरनाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भरभनाहट। उ०—भीभर भरनाहट पर जेहर का झनका था।—नट०, पृ० १११।

भरना—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भरन'। उ०—सूपुर बजत मानि पृथ से अधीन होत मीन होत चरणावृत भरनि को।—चरण (शब्द०)।

भरनी—क्रि० [हि० भरना का स्त्री० भरणा०] भरनेवाली। दे०

‘भरना’ । उ०—भरनी सुरग विदु घरनी मुकुंद लू की घरनी सुफल रूप जेत कर्म काल की । नरनी सुधरनी उधरनी वर बानी चार पात तम तरनी भगति नंदलाल की ।—गोपाल (शब्द०) ।

भरपा (५)—संज्ञा स्त्री० [घनु०] १. भोंका । भकोर । उ०—बंघु कीए मधुप मंदंघ कीए पुरजन सुमोहो मन गंधी की सुगंध भरपन सी—देव (शब्द०) । २. वेग । तेजी । उ०—धेरि धेरि घहर घन घाए घोर तापे महा मारत भकोरत भरप सों ।—कमलापति (शब्द०) । ३. किसी चीज को गिरने से बचाने के लिये लगाया हुआ सहारा । चाँड़ । टेक । ४. चिक । चिलमन । चिलवन । परदा । उ०—(क) तासन की गिलमें गलीचा मखनून के भरप भुमाऊ रही भूमि रंग द्वारी में ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) भाकै भुकी युवती ते भरोखन भूँनि ते भरपै कर टारी ।—रघुराज (शब्द०) । ५. दे० ‘भड़प’ ।

भरपना (५)—क्रि० घ० [घनु०] १. भोंका देना । बोझार मारना । उ०—वर्षत गिरि भरपत ब्रज ऊपर । सो जल जँह तँह पूरन भू पर ।—सूर (शब्द०) । २. दे० ‘भड़पना’ । ३. दे० ‘भड़पना’—३ । उ०—एते पर कष्टू जब घावत भरपत लरत घनेरो ।—सूर (शब्द०) ।

भरपेटा—संज्ञा पुं० [घनु०] दे० ‘भपट’ ।

भरफ—संज्ञा स्त्री० [घनु०] चिलमन । परदा । भरप ।

भरवेरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘भड़वेरी’ ।

भरवेरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘भड़वेरी’ । उ०—महके कटहल, मुकुलित जाभुन, जगन मे भरवेरी भूली ।—ग्राम्या, पु० ३६ ।

भरवेरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘भड़वेरी’ ।

भरर—संज्ञा पुं० [सं०] भाड़ देनेवाला । स्थान भाड़नेवाला ।

विशेष—कैटिल्य ने लिखा है कि भाड़ू देनेवाले को जब कोई पड़ी हुई चीज मिलती थी तो उसका ३ भाग चंद्रगुप्त का राज्य लेता था और २ भाग उसको मिलता था ।

भरवाना—क्रि० सं० [हि०] भारना का प्रे० रूप । १. भारने का काम दूसरे में कराना । दूसरे को भारने में प्रवृत्त करना । २. दे० ‘भड़वाना’ ।

भरसना (५)†—क्रि० घ० [घनु०] १. दे० ‘भुलसना’ । २. सुखना । मुरभाना । कुहलाना ।

भरसना (५)†—क्रि० सं० १. दे० ‘भुलसना’ । २. सुखाना । मुरभा देना । उ०—विषय विकार को जयस भरस्यो करे ।—प्रेम-घन०, भा० १ पु० २०१ ।

भरहरना†—क्रि० घ० [घनु०] भर भर शब्द करना । उ०—अजहँ चेति मूढ़ चहुँ दिसि ते उपजो काल अगनि भर भरहरि । सूर काल बन ब्याल प्रसत है श्रीगति सरन परति किन फरहरि ।—सूर०, १।३१२ ।

भरहरा—वि० [हि०] भँभरा । [वि० स्त्री०] भरहरी । दे० ‘भँभरा’ । उ०—भुकि भुकि भूमि भूमि भिल भिल भेल भेल भरहरी भौपन में भमकि भमकि उठै ।—पद्माकर (शब्द०) ।

भरहराना†—क्रि० घ० [घनु०] पत्तों का वायु या वर्षा के कारण शब्द करना या शब्द करते हुए गिरना । हवा के भोंके से पत्तों का शब्द करना अथवा शब्द सहित गिरना । उ०—भरहरात बनपात, गिरत तरु, घरनि तराकि तराकि सुनाई । जल बरषत गिरिवर तर बाँचे अब कैसे गिरि होत सहाई ।—सूर०, १०।५६४ ।

भरहराना†—क्रि० सं० १. भरभर शब्द सहित किसी चीज को, विशेषतः पेड़ों के पत्तों को, गिराना । पेड़ की डाल हिलाना । २. भटकना । भाड़ना ।

भरहिल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

भर्रा†—संज्ञा पुं० [हि०] भरना । नष्ट होना । बेकार होना ।

भरा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान, जो पानी भरे हुए खेतों में उत्पन्न होता है ।

भरा†—संज्ञा स्त्री० [सं०] भरना । सोत । सोता (को०) ।

भराभर—क्रि० वि० [घनु०] १. भरभर शब्द सहित । २. लगातार । बराबर । ३. वेग सहित । उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी दोउ मिलि लरत भराभरि ।—हरिदास (शब्द०) ।

भरापना (५)—क्रि० घ० [हि०] भपट । हमला करना । भपटना ।

भराबोर—संज्ञा पुं० वि० [हि०] दे० ‘भलाबोर’ ।

भराहर (५)—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वाला + धर । सूर्य ।

भरि (५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] भर । दे० ‘भड़ी’ । उ०—दस दिसि रहे बान नभ छाई । मानहु मघा मेघ भरि लाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

भरिफ (५)—संज्ञा पुं० [हि०] भरप । चिक । चिलमन । परदा ।

भरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] भरना । १. पानी का भरना । सोत । चरमा । २. वह घन जो किसी हाट, बाजार या सट्टी प्रादि में जाकर सौदा बेचनेवाले छोटे छोटे दुकानदारों विशेषतः खोनचेवाले और कुंजड़ी प्रादि से प्रतिदिन किराए के रूप में वहाँ के जमींदार या ठीकेदार प्रादि को मिलता है । ३. दे० ‘भड़ी’ । उ०—कुंकुम अंगर अरगजा छिरवाहि भरहि गुलाल अधीर । नभ प्रसून भरि पुरी कोलाहल भइ मनभावति भीर ।—तुलसी (शब्द०) ।

भरुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास ।

भरोखा—संज्ञा पुं० [सं०] जाल + गवाक्ष अथवा घनु० भर भर (= वायु बहने का शब्द) + गोल अथवा सं० जालगवाक्ष [स्त्री०] भरोखी । दीवारों प्रादि में बनी हुई भँभरी । छोटी खिड़की या मोखा जिसे हवा और रोशनी प्रादि के लिये बनाते हैं । गवाक्ष । मोखा । उ०—होर राणीघाँ भरोखियों पर बैठीघाँ सो भी सुणकर सभ के मन पवन इच्छिर हो गए ।—प्राण०, पु० १८३ ।

भर्भर—संज्ञा पुं० [सं०] १. हुड़क नाम का लकड़ी का बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता है । २. कलियुग । ३. एक नक्षत्र का नाम । ४. हिरण्यक्ष के एक पुत्र का नाम । ५. लीहे प्रादि का बना हुआ भरना जिससे कढ़ाही में पकनेवाली चीज चलाते हैं । ६. भर्भ । ७. पैर में पहनने का भर्भ या भर्भर नाम का गहना ।

भर्भरक—संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग ।

भर्भरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तारा देवी का नाम । २. वेश्या । रंजी ।

भर्भरावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा नदी । २. कटसरैया का पीघा ।

भर्भरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी ।

भर्भरी^१—संज्ञा पुं० [सं० भर्भरिन्] शिव ।

भर्भरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] भर्भ नामक बाजा ।

भर्भरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देश । २. शरीर । ३. चित्र ।

भर्ना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भरना' । उ०—नदी, भर्ना, वृक्ष और आकाश में, मुझको घापके साथ अत्यंत सुख मिलता था ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६८ ।

भर्प(पु)—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'भरप' ।

भर्पा—संज्ञा पुं० [देश०] १. बया पक्षी । २. एक प्रकार की छोटी चिड़िया ।

भर्पैया—संज्ञा पुं० [देश०] बया नाम की चिड़िया ।

भल—संज्ञा पुं० [हि० भार, सं० भल (= ताव, बिलचिलाती धूप) । अथवा सं० ज्वल, प्रा० भल] १. दाह । जलन । भाव । २. उग्र कामना । किसी विषय की उत्कट इच्छा । उ०—(क) जीव विलंबा जीव सो भलख लख्यो नहि जाय । साहब मिले न भल बुझ रहो बुझाय बुझाय ।—कबीर (शब्द०) । (ख) भल बायें भल दाहिने भल ही में व्यवहार । भागे पीछे भल जसे राखे मिरजनहार ।—कबीर (शब्द०) । ३. काम की इच्छा । विषय या लभोग की कामना । ४. क्रोध । गुस्सा । रिस । ५. समूह । उ०—पुनि घाए सरल सरित तीर । 'कछु घापु न अथ अथ गति चलति । भल पतितन को ऊरध फलति ।—केशव (शब्द०) ।

भलक—संज्ञा स्त्री० [सं० भलिका (= चमक)] १. चमक । दमक । प्रकाश । प्रभा । युति । आभा । उ०—मनि खंभन प्रतिबिम्ब भलक छाबि छलकि रहै भारी भागिनी ।—तुलसी (शब्द०) । २. आकृति का आभास । प्रतिबिम्ब । जैसे,—वे खाली एक भलक दिखलाकर चले गए । उ०—मकराकृत कुंडल की भलक इतहूँ भुज मूल में छाव परो री ।—पद्माकर (शब्द०) ।

भलकदार—वि० [हि० भलक + प्रा० दार] चमकीला । चमकने-वाला । उ०—छोटी छोटी भौंगुली भलभल भलकदार छोटी सी छुरी को लिए छोटे राज डोटे हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

भलकना—क्रि० प्र० [सं० भलिका (= चमक)] १. चमकना । दमकना । उ०—भलका भलकत पायन्हु कैसे । पंकज कोस घोस कन जैसे ।—तुलसी (शब्द०) । २. कुछ कुछ प्रकट होना । आभास होना । जैसे,—उनकी भाव की बातों से भलकता था कि वे कुछ नाराज हैं । उ०—कुंडल लोल कपोलनि भलकत मनु दरपन में आई री ।—सूर०, १०।१३७ ।

भलकनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भलक' । उ०—(क) अवन कुंडल मकर जानो नैन मीन बिसाल । ललित भलकनि रूप

आभा देख री नंदलाल ।—सूर (शब्द०) । (ख) मदन मोर के चंद की भलकनि निदरति तनजोति । नील कमल, मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७८ ।

भलका—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल (= जलना) ; प्रा० भल + हि० का (प्रत्य०)] चलने या रगड़ लगने आदि के कारण शरीर में पड़ा हुआ छाला । उ०—भलका भलकत पायन्हु कैसे । पंकज कोस घोसकन जैसे ।—तुलसी (शब्द०) ।

भलकाना—क्रि० सं० [हि० भलकना का सक० रूप] १. चमकाना । दमकाना । लसकाना । २. दरसाना । दिखलाना । कुछ आभास देना ।

भलकावनी(पु)—वि० [हि० भलकना] चमकानेवाली । दीप्त करने-वाली । भनकानेवाली । उ०—सुरतव लतान चार फल है फलित किषों, कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी । कैषों चितामनिन की माल उर सोभित, बिसाल कंठ मे घरे हैं जोति भलकावनी ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३०५ ।

भलकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भलक' ।

भलकना(पु)—क्रि० प्र० [हि० भलकना] दीप्त होना । भलकना । उ०—भलकत मूर चमकत सेल ।—ह० रासो, पृ० ६२ ।

भलज्भला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बूँदों के गिरने का शब्द । वर्षा की झड़ी से उत्पन्न शब्द । २. हाथी के कान की फटफटाहट (को०) ।

भलभली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भलकना] चमक दमक ।

भलभली^२—क्रि० वि० रह रहकर निकलनेवाली आभा के साथ । जैसे, भलभल चमकना ।

भलभला—वि० [धनु०] भलभल करनेवाली । चमचमाती हुई । चमकनेवाली । उ०—तरवार बनी ज्यों भलभला ।—पलटू, पृ० ४५ ।

भलभलाना^१—क्रि० प्र० [धनु०] चमकना । चमचमाना । उ०—भलभलात रिस ज्वाल बदनसुत चहुँ दिसि चाहिय ।—सुदन (शब्द०) । २. दे० 'भल्लाना' ।

भलभलाना^२—क्रि० सं० चमकाना । चमचमाना ।

भलभलाहट—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. चमक । दमक । २. भल्लहट ।

भलना^१—क्रि० सं० [हि० भलभल (= हिलना) से धनु०] १. किसी चीज को हिलाकर किसी दूसरी चीज पर हवा लगाना या पहुँचाना । जैसे,—(क) जरा उन्हें पंखा भल दो । (ख) वे मक्खियाँ भल रहे हैं । २. हवा करने के लिये कोई चीज हिलाना । जैसे, पंखा भलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

† १. डकेलना । ठेलना । धक्का देकर आगे बढ़ाना ।

भलना^२—क्रि० प्र० १. किसी चीज के अगले भाग का इधर उधर हिलना । उ०—फूल रहे, भूल रहे, फैल रहे, फबि रहे, भपि रहे, भलि रहे, भुकि रहे भूमि रहे ।—पद्माकर (शब्द०)

† २. जेली बघारना । झींग हलकना ।

भलना^३—क्रि० प्र० [हि० भलना का प्रक० रूप] १. दे० 'भलाना' । २. दे० 'भेलना' ।

भलफला—संज्ञा पुं० [प्रा० भलहल] उजियाला । दे० 'भलमल' ।
भलमल—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल (= दीप्ति)] १. झेंधे के बीच थोड़ा थोड़ा उजाला । हलका प्रकाश । २. झेंधेरा (कहारो की परि०) । ३. चमक दमक ।

भलमल—क्रि० वि० दे० 'भलभल' ।

भलमलताई—संज्ञा स्त्री० [हि० भलमल + ताई (प्रत्य०)] चमक । भलमलाहट । उ०—हुवि तिय तम धम दीन्हि दिखाई । मरब चंद जल भलमलताई ।—नंद० पं०, पृ० १२४ ।

भलमला—वि० [हि० भलमलाना] चमकीला । चमकता हुआ । उ०—मोर मुकुट प्रति मोहई अश्रुनि वर कुङ्कल । ललित कपोलनि भलमले सुंदर प्रति निर्मल ।—सूर (शब्द०) ।

भलमलाना—क्रि० घ० [हि० भलमल] १. रह रहकर चमकना । रह रहकर मंद धीरे तीव्र प्रकाश होना । चमचमाना । २. ज्योति का अस्थिर होना । अस्थिर ज्योति निकलना । ठहरकर बराबर एक तरह न जलना या चमकना । निकलते हुए प्रकाश का हिलना डोलना । जैसे, हवा के झोंके से दीप का भलमलाना । उ०—(क) मैया री मैं चंद लहोगी । कहा करी जलपुट भीतर को बाहर व्योकि गहोगी । यह तो भलमलत भलभोरत कैस के जु लहोगी ।—सूर०, १० १६४ । (ख) श्याम अलक बिच मोती मंगा । मानहु भलमलति सीम गंगा ।—सूर (शब्द०) । (ग) बालकैलि बातबम भलकि भलमलत सोभा की दीपति मानो रूप दोष दियो है । तुलसी प्र० पृ० २७३ ।

भलमलाना—क्रि० म० किसी स्थिर ज्योति या लो को हिलाना डोलाना । हवा के झोंके आदि से प्रकाश को अस्थिर या बुझने के निकट करना ।

भलमलित(पु)—वि० [हि० भलमलाना] भलमलाता हुआ । हवा में हिलता हुआ । उ०—धरती जिव भलमलित दीप ज्यों होत प्रधार करो धंधियारी ।—सरनी० बा० पृ० २६ ।

भलर—संज्ञा पुं० [हि० भालर] १. एक प्रकार का एकवान जिसे 'भालर' भी कहते हैं ।

भलरा—संज्ञा स्त्री० दे० 'भालर' ।

भलराना—क्रि० घ० [हि० भालर] फैलकर खाना । बढ़ना । भालरना ।

भलरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० भालर] दे० 'भालर' । न०—चंद्र दिस लायी भलरिया, तो लोक असंल हो । बरम०, पृ० ४४ ।

भलरी—संज्ञा स्त्री० [ल०] १. हुडक नाम का राजा । २. बजाने की भाँस ।

भलरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भलरा या भालर का घन्पा० स्त्री०] दे० 'भालर' ।

भलवाना—क्रि० स० [हि० भलना] भलना का प्रेरणार्थक रूप । भलने काम दूसरे से कराना ।

भलवाना—क्रि० स० भालना का प्रेरणार्थक रूप । भालने का काम दूसरे से कराना ।

भलहल—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भलहल] दे० 'भलभल' । उ०—

भलहल तीर तरवारि बरछी देखि काँदरे काचा । छुटै तीर तुपक बर गोला धाव सहे मुख साँचा ।—सुंदर० पं० भा० २, पृ० ८८५ ।

भलहलना—क्रि० घ० [घनु०] चमकना । दमकना । उ०—तप तेज पुंज भलहलत तहें, दरसन तें पातक मुषर ।—ह० रासो, पृ० १० ।

भलहला—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भलहल] उजियाला । भलमल ।

भलहाया—संज्ञा पुं० [हि० भल + हाया (प्रत्य०)] [स्त्री० भलहाई] वह जो डाह करता हो । हसद करनेवाला आदमी । ईर्ष्यालु व्यक्ति ।

भलहाला—संज्ञा पुं० [घनु०] भलमलाहट । प्रकाश की मंद तेज चमक । उ०—नयन दामिनी होत भलहाला । पाछे नहीं अनिल उजियाला ।—कबीर सा०, पृ० ६६ ।

भला—संज्ञा पुं० [हि० भल] १. हलकी वर्षा । २. भालर, तोरण या बंदनवार आदि । ३. पंखा । बीजना । देना । ४. समूह । उ०—भलकत आर्य भुंड भिलिम भलानि भय्यो, तमकन आर्य तेगवाही धो मिलाही है ।—पद्माकर (शब्द०) । ५. तीव्र वर्षा । भला लगना ।

भला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धानप । धूप । चिनचिलाती धूप । चमका । २. पुत्री । कन्या । बेटी (को) । ३. भिल्ली । भौंगुर (को) ।

भला—संज्ञा पुं० [सं० उवासा अथवा भल] १. क्रोध । गुस्सा । २. जलन । दाह ।

भलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० भला + ई (प्रत्य०)] दे० 'भलाई' ।

भलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० भल + घाई (प्रत्य०)] पंखा भलने का काम या उसकी मजदूरी ।

भलाभल—वि० [घनु०] खूब भलभलाता या चमचमाता हुआ । चमचम । उ०—(क) छोटी छोटी भंगुली भलाभल भलकशर छोटी सी छुरी का लिये छोटे राज ढोटे हैं ।—पुुराज (शब्द०) । (ख) कंचन के कलस भराए भूरि पवन के ताने तुग तीरन तहाँई भलाभल के ।—पद्माकर (शब्द०) ।

भलाभलि—वि० [हि०] दे० 'भलाभली' । उ०—नख सिख ले सब भुखन बनाई । बसन भलाभलि पेशे आई ।—सं० दरिया, पृ० ३ ।

भलाभली—वि० [घनु०] चमकीला । चमकदार । भलाभल । उ०—जिन्हें सखे भलाभली हवाहली हिये लजे ।—गोपाल (शब्द०) ।

भलाभली—संज्ञा स्त्री० भलाभल होने की क्रिया या भाव ।

भलाना—क्रि० घ० [घनु० भलभल] हड़ो, जोड़ या नस आदि पर एकबारगी खोट लगने के कारण एक विशेष प्रकार की सवेदना होना । सुन्न सा हो जाना । जैसे,—ऐसी ठोकर लगी कि पैर भला गया ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

भलाना—क्रि० स० [हि० भालना] दूसरे से भालने का काम कराना । भालने में किसी को प्रवृत्त करना ।

भलाना—क्रि० स० [हि० भलना] दे० 'भलवाना' ।

भलाबोर—संज्ञा पुं० [हि० भल भल (= चमक)] १. कलाबत्त

का बना हुआ साड़ी का चौड़ा अंचल । २. कारचोबी । उ०—
मलाबोर का घाँवरा घूम घुमाला तिस पर सच्चे मोती टके
हुए ।—लल्लू (शब्द०) । ३. एक प्रकार की घातिशबाजी ।—
४. काटा । भाड़ी । ५. चमक । दमक ।

मलाबोर^२—वि० चमकीला । ओपदार ।

मलामल^१—संज्ञा स्त्री [हि० भलभल (= चमक)] चमक । दमक ।
उ०—चहुँ दिस लगी है बजार मलामल हो रही । भूमर होत
धपार धधर बोरी लगी ।—कबीर (शब्द०) ।

मलामल^२—वि० चमकीला । चमक दमकवाला । ओपदार ।

मलारा^१—वि० [सं० ज्वल, पुं० हिं० भल, हिं० भाल, भार] तीखा ।
तेज । मित्र के स्वादवाला । भालवाला ।

मलासी—संज्ञा स्त्री [देशी] सुखी हुई पतली लकड़ी या पतली टहनियाँ ।
उ०—सोच विचारकर मैं सूखी मलासियों से झोंपड़ी
बनाके लया । लतरों को काढ़कर उसपर छाजन हुई ।
—इंद्र०, पु० ७२ ।

मलि—संज्ञा स्त्री [सं०] लुपारी । पूगी फल [को०] ।

मलुसना^१—क्रि० सं० [देश० प्रथवा सं० ज्वल से विकसित हिं०
नामिक धातु] दे० 'मलसना' ।

मलूस^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जलूस' । उ०—सुख अतुल साज
मलूस सारा मिले छक मियलेम ।—पु० ६०, पु० ८३ ।

मल्ल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण धर्मात् संस्कारहीन धर्मिय घोर
सवर्ण स्त्री से उत्पन्न वर्णमंकर जाति । २. भाँड या विद्रुपक ।
३. पटलु या हुडक नामक बाजा । ४. लपट । जवाला । उ०—
बहिन को देखकर उस अधिक क्रोध आता, क्योंकि उसकी
घालों में जैसे भल्ल सी उठने लगरी, जिसे देखकर हम तीनों
मयभीत हो जाते ।—ग्रंथरे०, पु० २६ ।

मल्ल^२—संज्ञा स्त्री [धनु०] भल्ला होने का भाव ।

मल्लकंठ—संज्ञा पुं० [सं० भल्लकण्ठ] परेवा ।

मल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँटे का बना करताल । भाँक । २.
मंजीरा । जोड़ी ।

मल्लकी—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'मल्लक' ।

मल्लाना^१—क्रि० प्र० [धनु०] बहुत झूठी झूठी बातें करना । बहुत
बुरा हाकना या गप्प उड़ावा ।

मल्लारा—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'मल्लारी' [को०] ।

मल्लारी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. हुडक नाम का बाजा । २. भाँक ।
३. पछीना । स्वेद । ४. पमेव । ५. गुड़ता । सुन्वापन [को०] ।
६. पुँपुराले कण [को०] ।

मल्ला^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. साँचा । बड़ा टोकरा । २. वपा । वृष्टि । ३.
बौथार । ४. वे दावे जो पकें हुए तमाखु के पत्ते पर पड़ जाते हैं ।

मल्ला^२—वि० [हिं० जल] बहुत तरल या पतला । जिसमें अधिक पानी
मिला हो । जो गाढ़ा न हो । जैसे, मल्ला रस, मल्ला भाँग ।

मल्ला^३—वि० [हिं० भल्लाना] १. पागल । २. बहुत बड़ा
बेवकूफ । ३. भल्लानेवाला ।

मल्लाना^१—क्रि० प्र० [हिं० भल्ल] बहुत चिढ़ना । खिजलाना ।
किडकिडाना । झुंझलाना ।

मल्लाना^२—क्रि० प्र० ऐसा काम करना जिससे कोई बहुत चिढ़े ।
किसी को भल्लाने या चिढ़ने में प्रवृत्त करना ।

मल्लानी—संज्ञा स्त्री [देश०] भल्ला । पानी की फुद्दी । उ०—
भल्लानी भर फुट्टि, छुट्टि मंका सामंता । ज्यों लट्टी पर नारि,
धीग मिल्यो घावंता ।—पु० रा०, १२ । ३१६ ।

भल्लिका—संज्ञा स्त्री [सं०] १. देह पोंछने का कपड़ा । प्रंगोछा ।
२. शरीर का वह मेल जो उबटन आदि लगाने, किसी चीज से
मलने या पोछने से निकले । ३. दोमि । प्रकाश । ४. सूर्य की
किरणों का तेज ।

भल्लो^१—वि० [हिं० भल्लना] बातूनिया । गप्पी । चकवादी ।

भल्लो^२—संज्ञा स्त्री [सं०] हुडक की तरह का एक बाजा जिसपर
चमड़ा मढ़ा होता है ।

भल्लो^३—संज्ञा स्त्री [हिं० भल्ला] बनी टोकरी । भावा । उ०—
धहीर भल्लो ढोकर खो कुछ ला पाता, उसी में गुजारा चल
रहा था ।—प्रभिशप्त, पु० १३ ।

भल्लोवाला—संज्ञा पुं० [हिं० भल्ला] भावा या भल्लो होने का
काम करनेवाला । उ०—वहीं एक भल्लोवाला रहता है,
जवाला ।—प्रभिशप्त, पु० २३ ।

भल्लोसक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य ।

भल्लकना—क्रि० प्र० [देश०] भल्लकना । चमकना । उ०—काया
भल्लकई कनक जिम सुंदर केहे सुख । तेह सुरंगा जिम हुवाई ।
जिगु वेहा बहु दुख ।—ढोला०, दू० ५४६ ।

भवरा^१—संज्ञा पुं० [हिं० भगड़ा] भगड़ा ।

भवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भाँवा' । उ०—अलखेखी सुजान के पायनि
पाति पयो न टायी मन मेगे भवा ।—घनानंद, पु० ८ ।

भवारी^१—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'भवार' ।

भष—संज्ञा पुं० [सं०] १. म.स्थ. मीन । मछली । उ०—संकुन
मकर उरग भष जातो । धति घगाध दुस्तर सब भौती ।—
गुलामी (शब्द०) । २. मकर । मगर । ३. ताप । गरमी । ४.
वन । ५. मीन राशि । ६. मीन लग्न । ७. दे० 'भल्ल' ।

भषकेत—पुं०—संज्ञा पुं० [सं० भग + केत (= पताका)] दे० 'भष
केतन' । उ०—हरिहि हरि ही हरि गयो विसिख लगे
भषकेत । बहुरि घमन ते दे करि बहुरि बहुरि के खेत ।—
सं० समक, पु० ८६१ ।

भषकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव जिसकी पताका में मीन का
चिह्न है । भषकेतु [को०] ।

भषकेतु—संज्ञा पुं० [सं० भषकेतु] कंदर्प । कामदेव ।

भषध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भषकेतु' [को०] ।

भषना^१—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'भल्लना' या, 'भौलना' ।

भषनिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जनास्थ । २. समुद्र ।

भषराज—संज्ञा पुं० [सं०] मगर । मकर ।

भषलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] मीन लग्न ।

भषांक—संज्ञा पुं० [सं० भषाङ्क] कामदेव ।

भषा—संज्ञा स्त्री [सं०] नागवला । गुलसकरी ।

अक्षरान—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार नामक बलजंतु। सूँस।

अक्षोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता। मरुत्यगंधा।

अक्षना—क्रि० स० [हि०] दे० 'अक्षना'।

अक्षनना^१—क्रि० घ० [घनु०] १. अक्षनाना। अक्षानाटे या सन्नाटे में घाना। २. (रोएँ का) खड़ा होना। उ०—गहन गहन लागीं गावन मयूरमाला अक्षन अक्षन लागे रोम रोम छन में।—श्रीपति (शब्द०) ३. अक्षन अक्षन शब्द करना।

अक्षनना^२—क्रि० स० दे० 'अक्षनाना'।

अक्षनाना—क्रि० स० [घनु०] १. अक्षनना का सकर्मक रूप। २. अक्षनकार शब्द करना। अक्षनकारना। उ०—गति गयं कुच कुंभ किकिनी मनहु घंट अक्षनाने।—सूर (शब्द०)।

अक्षरना^१—क्रि० घ० [घनु०] १. अक्षर अक्षर शब्द करना। अक्षर का सा शब्द करना। उ०—अक्षरि अक्षरि भुकि भीनी अक्षर लाये देव अक्षरि अक्षरि छोटी बूँदनि अक्षरिया।—देव (शब्द०) २. (शरीर आदि का) बहुत थिथिल पड़ना। ढीला हो जाना। उ०—अक्षरि अक्षरि परे पाँचुरी लखाय देह बिरह बसाय हाय कैसे दूबरे भये।—रघुनाथ (शब्द०)।

अक्षरना^२—क्रि० स० अक्षरकन। अक्षराना। उ०—सुनि सजनी में रह्यो अकेली बिरह बहेली इत गुह जन अक्षरै।—सूर (शब्द०)।

अक्षराना—क्रि० घ० [घनु०] १. थिथिल होकर अक्षर अक्षर शब्द के साथ या लड़खड़ाकर गिरना। उ०—(क) असुर लै तर सों पछारयो गिरयो तर अक्षराइ। ताल सों तर ताल लाग्यो उठयो बन अक्षराइ।—सूर (शब्द०)। (ख) बागु गए जमलाजुन तर तर, परसत पात उठे अक्षराई।—मूर०, १०। ३८३। (ग) लपट भाट अक्षरान, हृदयाने बात अक्षराने भट परयो प्रबल परावनो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७१। २. अक्षराना। कट-कटाना। बिजलाना। उ०—(क) एक अभिमान हृदय करि बैठी एते पर अक्षरानो।—सूर (शब्द०)। (ख) नागरि हँसति हँसी उर छाया तापर अति अक्षरानो। अक्षर कंठ रिम भौंह मरोरी मन की मन अक्षरानो।—भूर (शब्द०)। ३. हिलाना। उ०—बालवी फिरावै बार बार अक्षरावै, भरै बुँदियाँ सी, लंक पधिलाइ पाणि पाणिहै।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७३।

अक्षरक—संज्ञा पुं० [सं० अक्षरक] १. अक्षर आदि के गिरने या नुपूर के बजने का शब्द। अक्षरक। २. पैर का एक गहना जिसमें घुँघरू लगे रहते हैं। नूपुर (की०)।

अक्षि, अक्षि—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि] १. परछाई। प्रतिबिम्ब। छाया। छाया। अक्षि। उ०—(क) अक्षि न मितन पाई आप हरि बाधुर जै जब जान्यो गव प्राहु लए जात जल में।—सूर (शब्द०)। (ख) बेसरि के भुक्ता में अक्षि बरष बिराजत चारि। मानो मुर गुर शुक्र भीम शनि चमकत चंद्र मभारि।—सूर (शब्द०)। (ग) कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि मह प्रकट भूमि की अक्षि।—तुलसी (शब्द०)। (क) मेरी भव बाधा हरी राधा नागरि मोह। जा तन की अक्षि परे स्याम हरित दूति होइ।—बिहारी (शब्द०)। २. अक्षकार। अक्षेरा। उ०—रेखमी सतत बाल लाल पट लपटे महल भीतरे न भीत

भीत रनि की न अक्षि है।—देव (शब्द०)। ३. घोखा। छल।

मुह०—अक्षि बताना = छल करना। घोखा देना।

यौ०—अक्षि अक्षि = घोखा घड़ी।

४. प्रतिशब्द। प्रतिध्वनि। उ०—कुहकि उठे बन मोर कंदरा गरजति अक्षि। चित चकृत मृग वृंद बिया मनमथ सरसाई।—नागरीदास (शब्द०)। ५. एक प्रकार के हलके काले घबड़े जो रक्तविकार से मनुष्यों के शरीर विशेषतः मुँह पर पड़ जाते हैं। अक्षि मॉई—संज्ञा स्त्री० [घनु०] बच्चों का एक खेल जिससे वे 'अक्षि मॉई कौनों की बरात आई' कहते जाते और घूमते जाते हैं।

मुह०—अक्षि मॉई होना = नजरों से गायब हो जाना। अक्षि हो जाना।

अक्षि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० अक्षि] अक्षिने की क्रिया या भाव।

यौ०—ताक अक्षि = दे० 'ताक अक्षि'।

अक्षि^२—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अक्षि'।

अक्षिना—क्रि० घ० [सं० अक्षि] (= अक्षि = देखना) या अक्षि + अक्ष, अक्षयक्ष, प्रा० अक्षयक्ष (= अक्षि के समाने)। १. घोट के बगल में से देखना। उ०—(क) जह तह उभकि अक्षिना अक्षि जनक नगर की नारि।—सूर (शब्द०)। (ख) तुलसी मुदित मन जनक नगर जन अक्षि अक्षि लागी शोभा रानी पावती।—तुलसी (शब्द०)। २. अक्षर उधर अक्षर देखना।

अक्षिनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० अक्षिनी] १. अक्षिनी। दर्शन। उ०—अक्षिनी है कर कक्षिनी की सुनि कानन बैन अक्षिनी कीने।—देव (शब्द०)। २. कुम्भी (कहारों की परि०)।

अक्षि^२—संज्ञा पुं० [प्रा० अक्षि] दे० 'अक्षि'।

अक्षिरी^१—वि० स्त्री० [प्रा० अक्षिरी] (= अक्षिरी) अक्षिरी हुई। दुर्धन। सूखी हुई। उ०—उमड़ि उमड़ि हग रोवत अक्षिरी भए, मुख दुति पीरी पीरी बिरह महा भरी। 'हरिचंद' प्रेम मातो मनहु गुलाबी छकी, काम कर अक्षिरी सी दुति तन की करी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १७३।

अक्षि^२—संज्ञा पुं० [हि० अक्षि] १. रहते का छाँटा। जालीदार छाँटा। २. अक्षिरी। उ०—सभा मॉई औपनि पति राखी पति पानिप कुल ताकी। बसन छोड़ करि कोट बिसंभर परन न दीन्ही अक्षि।—सूर०, १। ११३।

अक्षि^३—संज्ञा स्त्री० [हि० अक्षि] १. दर्शन। अवलोकन। अक्षिने या देखने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मिलना।—लेना।—होना।

२. दृश्य। वह जो कुछ देखा जाय। उ०—काँटे छमेटती, फूँव छींटी अक्षि।—साकेत, पृ० २१०।

क्रि० प्र०—देखना।

३. वह जिसमें से अक्षि जाय। अक्षिरी।

अक्षि^४—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा जंगली हिरन। उ०—ठाढ़े ढिग बाघ बिग भीते चितवत अक्षि मृग शाखायुग सब रीति रीति रहे हैं।—देव (शब्द०)।

अक्षिना^१—क्रि० घ० [हि० अक्षिना] दे० 'अक्षिना'। उ०—

(क) इंद्री वन भ्यारी परी सुख लुटति भाँखि । सुरवास संग रहैं तेक भरै भाँखि ।—सूर (शब्द०) । (ख) एहि विधि राउ मनहि मन भाँखा । देखि कुभाति कुमति मनु भाँखा ।—तुलसी (शब्द०) ।

भाँखर—संज्ञा पुं० [प्रा० भंखर; हि० भंखाइ] १. 'भंखाइ' । उ०—भाँखर जहाँ सुखाइहु पंथा । हिलगि मकोय न फारहु कंथा ।—जायसी (शब्द०) । २. घरहूर की वे खूंटियाँ जो फसल काटने के बाद खेत में रह जाती हैं ।

भाँगला—वि० [देश०] ढीला ढाला (कपड़ा) । उ०—पहिर भाँगले पटा पाग सिर टेढ़ी बाँधे । घर में तेल न लोन प्रीत चेरी सों साधे ।—गिरधर (शब्द०) ।

भाँगा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भागा' । उ०—पीत बसन पहिरे सुठि भाँगा । चक्षु चपल झलकै जनु नागा ।—विश्राम (शब्द०) ।

भाँजन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भाँजन' ।

भाँक—संज्ञा स्त्री० [सं० भल्लक या भनभन से अनु०] १. मजीर की तरह के, पर उससे बहुत बड़े काँसे के ढले हुए तश्तरी के आकार के दो ऐसे गोलाकार टुकड़ों का जोड़ा जिसके बीच में कुछ उभार होता है । भाल । उ०—(क) घंटा घंटा पलाउज आउज भाँक बेनु डफ ताल ।—तुलसी प्र०, पु० २१५ । (ख) ताल मृदंग भाँक इद्रिनि मिलि बीना बेनु बजायो ।—सूर०, १ । २०५ ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—बजाना ।

विशेष—इसकी उभार में एक छेद होता है जिसमें डोरी पिरोई रहती है । इसका व्यवहार एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर आघात करके पूजन आदि के समय घड़ियालों और शंखों के साथ यों ही बजाने में, रामायण की चौपाइयों के गाने के समय राम-लीला में अथवा ताशे और ढोल आदि के साथ ताल देने में होता है ।

२. कोध । गुस्सा ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—बढ़ाना ।—निकालना ।

३. पाजीवन । शरारत । उ०—रुखो साँकरे जुंज मग करत भाँक भकरात । मंद मंद मास्त तुरंग खूँदन आवत जात ।—बिहारी (शब्द०) । ४. किसी दुष्ट मनोविकार का आवेग । ५. सुखा हुआ कुर्मा या तालाब । ६. भोग की इच्छा । विषय की कामना । ७. दे० 'भाँक' ।

भाँक^२—वि० [सं० जर्जर] जो बाढ़ा या गड़रा न हो । मामूली । हलका (भाँग आदि का नशा) ।

भाँकड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भाँक+ड़ी (प्रत्य०)] १. दे० 'भाँक' । २. दे० 'भाँकन' ।

भाँकण^१—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ में खुशी का एक गीत । उ०—सुंदर बंछि बिषै सुख की घर बूझत हैं यस भाँकण गावै ।—सुंदर प्र०, भा० २, पु० ४५१ ।

४-२३

भाँकन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कड़े की तरह का पैर में पहनने का एक प्रकार का गहना । पैजनी । पायल ।

विशेष—यह गहना चांदी का बनता है और इसमें नकाशी और जाली बनी होती है । यह भीतर से पोला होता है और इसके अंदर छर्रे पड़े होते हैं जिनके कारण पैरों के उठाने और रखने में 'भन भन' शब्द होता है । कभी कभी लोग घोड़ों और बैलों आदि को भी शोभा के लिये और भन भन शब्द होने के लिये पीतल या ताँबे की भाँकन पहनाते हैं ।

भाँकर^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. भाँकन । पैजनी । उ०—बोहे सुंदरी बहरखा, चासुं छुड़ स वचार । मनु हरि कटि पल मेखला, पग भाँकर भणुकार ।—ढोला०, दू० ४८१ । २. दे० 'छलनी' ।

भाँकर^२—वि० १ पुराना । जर्जर । छिन्न भिन्न । फूटा टूटा । २. छेदवाला । छिद्रयुक्त । उ०—मान अनुरागे पिया मान देख गेला । पिया बिना पाँजर भाँकर भेछा ।—विद्यापति, पु० १७६ ।

भाँकरा—वि० [सं० जर्जर] [वि० स्त्री० भाँकरी] पोला । जर्जर । खोखला । उ०—मलूक कोटा भाँकरा भीत परी महराय ।—मलूक०, पु० ४० ।

भाँकरि^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भाँकन' । उ०—(क) सहस्र कमल सिंहासन राजें । अनहद भाँकरि मितही बाँधे ।—चरण० बानी, पु० २१८ ।

भाँकरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] भाँक नामक बाजा । भाल । उ०—बजे भाँकरी शंख नगारे । गए प्रेत सब देव अगारे ।—रघुराज (शब्द०) । २. भाँकन नामक पैर का गहना । उ०—भाँकरियाँ भनकेगी खरी तरकेगी तनी तनी तन की तन तारे ।—देव (शब्द०) ।

भाँकरी^२—वि० स्त्री० [सं० जर्जर] छिद्रों से भरी हुई । जिसमें बहुत से छेद हों । उ०—(क) कबिरा नाव त भाँकरी कूटा खेवन-हार । हलका हलका तरि गया बूढ़े जिन सिर भार ।—कबीर (शब्द०) । (ख) गहिरी नदिया नाथ भाँकरी, बोझा अधिक भई ।—घरम० श०, पु० २६ ।

भाँका^१—संज्ञा पुं० [हि० भाँकरा] १. फसल में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा ।

विशेष—यह बड़ी हुई फसल के पत्तों की बीच बीच में से लाकर बिल्कुल भँभरा कर देता है । यह छोटा बड़ा कई आकार और प्रकार का होता है और बहुधा तमाकू या मुकली (मुली ?) के पत्तों पर पाया जाता है ।

२. जो और चीनी के साथ सूनी हुई भाँग की फंकी । † ३. सेव खाने का पीना ।

भाँभा^२—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'भाँक' । २. भंभट । बखेड़ा ।

भाँभिया—संज्ञा पुं० [हि० भाँक+इया (प्रत्य०)] भाँक बजानेवाला अनुष्य । बाजेवालों में से वह जो भाँक बजाता हो ।

भाँट—संज्ञा स्त्री० [सं० जट, हि० भड (बाल)] १. पुरुष या स्त्री

का मूर्त्रेद्रिय पर के बाल । उपस्थ पर के बाल । पशम । शष्प । उ०—घाबरू की घाँस में एक गठि है । घाबरू सब शायरों की भाँट है । —कविता की०, भा० ४, पृ० १० ।

मुहा०—भाँट उल्लाड़ना = (१) बिलकुल ध्येय समय नष्ट करना । कुछ भी काम न करना । (२) कुछ भी हानि या कष्ट न पहुँचा सकना । इतनी हानि भी न पहुँचा सकना जितनी एक भाँट उल्लाड़ जाने से हो सकती है । भाँट जल जाना या राख हो जाना = किसी को अधिमान भाँटि की बातें करते देखकर बहुत बुरा मानूस होना ।

विशेष—इस मुहावरे का व्यवहार अधिमान करनेवाले के प्रति बहुत अधिक उपेक्षा दिखलाने के लिये किया जाता है ।

२. बहुत तुच्छ वस्तु । बहुत छोटी या निकम्मी चीज ।

मुहा०—भाँट बराबर = (१) बहुत छोटा । (२) अत्यंत तुच्छ । भाँट की भँटुल्ली = अत्यंत तुच्छ (परायण या मनुष्य) ।

भाँटा^१—संज्ञा पु० [देश०] १. भँकट । २. भाङ्ग । ३. भापड़ । शष्पड़ ।

भाँटि^२—संज्ञा स्त्री० [हि० भाँट] दे० 'भाँट' । उ०—एकोहं धापुहि भयो द्वितीया दीन्हों काटि । एकोहं कासों कहै महापुरुष की भाँटि । —कबीर (शब्द०) ।

भाँटी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] देह । शरीर । उ०—दाहू भाँटी पाप पसु पिरी धँवरि सो आहै । होणी पाणे बिच में मिहर न लाहै । —दाहू० बानी, पृ० १६३ ।

भाँप^४—संज्ञा स्त्री० [हि० भाँपना] १. वह जिससे कोई चीज ढाँकी जाय टोकरा, भाँबा आदि । २. पट्टी हुई चीजें निकालने की एक प्रकार की कल । ३. नींद । अपकी । ४. पर्दा । चिक । उ०—भुकि भुकि भूमि भूमि भिन्न भिन्न भेल भेल भरहरी भाँपन मे भमकि भमकि उठै । —पद्माकर (शब्द०) । ५. निकास । मस्तूख का भुकाव (लश०) । ६. मूँज का बना पिटारा । भाँपा ।

भाँप^५—संज्ञा पु० [सं० भ्रम] छद्म कृत् ।

क्रि० प्र०—देना = दे० 'भँप' का मुहा० 'भँप देना' ।

भाँपना^६—क्रि० घ० [सं० उज्झम्पय, हि० भाँपना] १. ढाँकना । धावरण डालना । ओढ़ में करना । धाड़ में करना । उ०—जया गगन धब पटल निहारी । भाँपिउ मानू कहहि कुविचारी । —तुलसी (शब्द०) । २. एकड़कर दबा देना । छोप देना ।

भाँपना^७—क्रि० घ० लजाना । शरमाना । भँपना ।

भाँपा^८—संज्ञा पु० [हि० भाँपना] १. ढाँकने का बाँस धाँस का बना हुषा बड़ा टोकरा । २. मूँज का बना हुषा पिटारा ।

भाँपी^९—संज्ञा स्त्री० [हि० भाँपना] १. ढकने की टोकरी । २. मूँज की बनी हुई पिटारी, जिससे कभी कभी जमड़ा भी मड़ा होता है । ३. भपकी । नींद । ऊँघ ।

भाँपी^{१०}—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. घोड़िन चिड़िया । खंजन पक्षी । २. छिनाल स्त्री । पुंश्चली ।

यौ०—भाँपी केड़ा = एक गाली ।

भाँमी^{११}—वि० [देशी या सं० दण्ड] १. दीप्त । दण्ड । २. अनुज्वल ।

भाँयँ^{१२}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भाँई' । उ०—चंद्रकांति मनि माझ जिमि, परति चंद की भाँय । —मंद० प्र०, पृ० १३१ ।

भाँयँ भाँयँ—संज्ञा स्त्री० [घनु०] १. किसी स्थान की वह स्थिति जो सघाटे या सुनेपव के कारण होती है । २. दे० 'भाँव भाँव' ।

भाँव भाँव—संज्ञा स्त्री० [घनु०] १. शोर गुल । २. रंभ ढंग । भाव ताव । उ०—बनियऊँ भाँव भाँव दिखलाने के लिये..... । —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३६ ।

क्रि० प्र०—करना । —बिखाना । —होना ।

भाँवना^{१३}—क्रि० सं० [हि० भाँवा] भाँवे से रगड़कर (हाथ पैर आदि) घोना । उ०—हूँ गई भेंट भई न सहेट मैं तातें रखाहुठ सो मन छायगो । कालिंदी के सब भाँवत पाँप हूँ धायो तहाँ लखि कले सुधायगो । —प्रतापसिंह सवाई (शब्द०) ।

भाँवर^{१४}—संज्ञा स्त्री० [हि० डाबर] वह नीची भूमि जिसमें वर्षाकाल में जल भर जाता है और जिसमें मोटा मल्ल जमता है । डाबर ।

विशेष—ऐसी भूमि घास के लिये बहुत उपयुक्त होती है ।

भाँवर^{१५}—वि० [सं० श्यामल][वि० स्त्री० भाँवरी] १. भाँवे के रंग का । कुछ कुछ काँचि रंग का । २. मखिन । उ०—साँची कहीं रावरे सों भाँवरे लगे तमाल । —(शब्द०) । ३. मुरकाया हुषा । कुम्हलाया हुषा । ४. शियल । मंघ । सुस्त । उ०—निसि न नीध धावे निवस न भोजन पावे चितवत मग भई दष्टि भाँवरी । —सूर (शब्द०) ।

भाँवरा^{१६}—वि० [हि० भाँवर] कुछ कुछ काले रंग का । उ०—बलिहारी धब कयो कियो सैन साँवरे रंग । नहि कछु गोरे धंग ये भए भाँवरे रंग । —स० सप्तक, पृ० २४६ ।

भाँवली^{१७}—संज्ञा स्त्री० [हि० छाँव (= छाया)] १. भलक । २. छाँल की कलखी । कमली ।

यौ०—भाँवलीबाण ।

मुहा०—भाँवली देना = (१) छाँल से इशारा करना । (२) बातों से फँसावा । भुसावा देना ।

भाँवी^{१८}—संज्ञा पु० [सं० भ्रमक] जली हुई ईंट । वह ईंट जो बचकर काभी हो गई हो । इससे रगड़कर मल, मल्ल आदि चीजों की, विशेषतः पैरों की, मल छुड़ाते हैं । उ०—भाँवी खेदे जोग तेग को मल बनाई । —पसटू०, पृ० २ ।

भाँसना^{१९}—क्रि० सं० [हि० भाँसा] १. ठगना । धोखा देना । भाँसा देना । २. किसी स्त्री को व्यभिचार में प्रवृत्त करना । स्त्री को भाँसना ।

भाँसा^{२०}—संज्ञा पु० [सं० ध्यास (= मिथ्या ज्ञान), प्रा० अम्भास] अपना काम साधने के लिये किसी को बहकाने की क्रिया । धोखा । दमबुत्ता । छल । उ०—अरे मन उसे क्या है दुनियाँ का भाँसा । लिया हात में भीक का जिसने काँसा । —दक्खिनी०, पृ० २५७ ।

क्रि० प्र०—देना । उ०—अम्बासी लल्ली पतो करके कहाँ ले गई

कैसा झाँसा दे गई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४१०।
—बताना। उ०—रूपया पैसा अपने पास रखऽ, यारन के दूर
से झाँसा बतावऽ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३३५।

यो०—झाँसा पट्टी = धोखा घड़ी।

मुहा०—झाँसे में घाना = धोखे में घाना। उ०—यही बड़े बड़ों
की धाँखें देखी हैं। आपके झाँसे में कोई उनेला आए तो आए
हमपर चकमा न चलेगा।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५।

झाँसिया—संज्ञा पुं० [हि० झाँसा+इया (प्रत्य०)] झाँसा देनेवाला।
धोखेबाज।

झाँसी—संज्ञा पुं० [देश०] १. उत्तर प्रदेश का एक प्रसिद्ध नगर जहाँ
की रानी लक्ष्मीबाई ने, जो झाँसी की रानी नाम से प्रसिद्ध हैं,
सन् १८५७ में स्वतंत्रता संग्राम (युद्ध) के घबरेल पर अंग्रेजों
से जमकर लोहा लिया और युद्धक्षेत्र में लड़ती हुई मारी
गई थीं। २. एक प्रकार का गुबरेला जो बाल और तमाखू
की फसल को हानि पहुँचाता है।

झाँसूँ—संज्ञा पुं० [हि० झाँसा] झाँसा देनेवाला। धोखेबाज।

झा—संज्ञा पुं० [सं० उपाध्याय; पा० उपज्झाय प्रा० उज्ज्झाय,
उज्ज्झाय, उज्झ, उज्झाय, उज्झाओ, ओज्झाय, हि० धोखा
अथवा सं० ध्या (= ध्यान, चिंतन); प्रा० भा] मैथिली
या गुजराती भाषाओं की एक उपाधि।

झाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'झाई'। उ०—मनि दपन सम भवनि
रमनि तापर छवि देही। बियुरति कुंडल अलक तिलक झुकि
झाई लेहीं।—नंद प्र०, पृ० ३२।

झाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'झाई'।

झाऊ—संज्ञा पुं० [सं० भावुक] एक प्रकार का छोटा भाड़ जो दक्षिणी
एशिया में नदियों के किनारे रेतीले मैदानों में अधिकता से
होता है। पिंडुल। अफल। बहुप्रति।

विशेष—यह भाड़ बहुत जल्दी जल्दी और खूब फँडता है।
इसकी पत्तियाँ सरो की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं
और गरमो के अंत में इसमें बहुत अधिकता से छोटे छोटे
हल्के गुलाबी फूल लगते हैं। बहुत कड़ी सर्दी में यह भाड़
नहीं रह सकता। कुछ देशों में इससे एक प्रकार का रंग
निकाला जाता है और इसकी पत्तियों धाँवि का व्यवहार
घोषधों में किया जाता है। इसमें से एक प्रकार का क्षार भी
निकलता है। इसकी टहनियों से टोकरियाँ और रस्सियाँ
धाँवि बनती हैं और सूखी लकड़ी जलाने के काम में आती
है। कहीं कहीं रेगिस्तानों में यह भाड़ बहुत बढ़कर पेड़ का
रूप भी धारण कर लेता है।

झाऊ(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० भाऊ] बख्शपात। अक्षयिपात। उ०—(१)
बहु बहु रक्त के के हाक। बड़े विषम आवध भाऊ।—पृ०
रा०, १।११३।

झाऊर—संज्ञा पुं० [देशी अखर] कँडीली झाड़ियों और पौधों का
समुच्चय। अखाड़। उ०—साधो एक बन भाऊर अखरा। लावा
विचरि तेहि भाह भुलाने सान बुझावत कीया।—सं० दरिया,
पृ० १२५।

झाग—संज्ञा पुं० [हि० गाज] पानी आदि का फेन। गाज। फेन।
क्रि० प्र०—उठना।—छूटना।—छोड़ना।—निकलना।—
फँकना।

झागाड़(पु)¹—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'झाड़ा'। उ०—सहज ही सहज
पग धारा जब घागम को दसो परकार भागाड़ बजाई।—
चरण० बानी, पृ० ५५।

क्रि० प्र०—बजाना।

झागना¹—क्रि० प्र० [हि० भाग] भाग उत्पन्न होना। फेन
निकलना।

झागना²—क्रि० सं० भाग उत्पन्न करना। फेन निकालना।

झाज(पु)¹—संज्ञा पुं० [प्रा० झहाज] दे० 'जहाज'। उ०—किया था
बुदा यूँ उसे सरफराज, जो थे सातों दरिया उपर उसके
भाज।—दक्खिनी०, पृ० ७७।

झाज²—संज्ञा पुं० [?] महीन कागज। बैलून। गुंबारा। उ०—बम्बा
गिरा गिरा की तोपी चन्ना बला की। भाजी मे भर को ग्यासी
हवा में तू उड़ा की।—दक्खिनी०, पृ० २१६।

झाझ¹—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'झाँझ'।

झाझ²(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० जहाज; दक्खिनी; भाज] दे० 'जहाज'।

झाझन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'झाँझन'। उ०—बाजे शंस
बीन स्वर सोई। झाझन केरी बाजन होई।—कबीर सा०,
पृ० १८४।

झाझी(पु)¹—वि० [सं० बाघ; प्रा० बज्झ, बाझ; राज० भाऊ] १.
दगध करनेवाली। जलानेवाली। इतनी अधिक शीतल
जिससे जलने का भाव प्रतीत हो। उ०—अति घण अनिमि
धावियउ, झाझी रिति झड़वाइ। बग ही भला त बप्पड़ा,
धरणि न मुकई पाइ।—दोला०, दृ० २५७।

झाटी¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंज। निकुंज। २. झाड़ी। ३. बाण
का प्रक्षालन। धाव की घोंटा।

झाटी²—संज्ञा पुं० [देश०] अस्त्रों का प्रहार। उ०—पड़ भाट पाठ
छल राज पाठ, दिल्लीस जले दल बले दाट।—रा० क०,
पृ० ७४।

झाटकपट—संज्ञा पुं० [सं० शाटक पट ?] एक प्रकार की ताबीज
जो राजपूताने के राजदरबारों में अधिक प्रतिष्ठित सरदारों
को मिला करती थी।

झाटल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का लोभ। गोलोड। घंटा-
पटल। २. मोरवा नामक वृक्ष।

विशेष—यह सफेद और काला होने के कारण दो प्रकार का
होता है। धाँक की भाँति इसमें से भी दूध निकलता है।
इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं और फल पंठियों की भाँति
लटकते हैं।

झाटल(पु)²—वि० [?] घाहत। जस्त। उ०—भटक झाटल
छोड़ल ठाय। कएल महातव तर बिसराम।—विद्यापति,
पृ० ३०३।

झाटा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जूही। २. भुईं धाँबला।

भाटास्त्रक—संज्ञा पु० [सं०] तरबूज । मतीरा [सं०] ।

भाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुई पाँवला ।

पर्या०—भाटा । भाटीका । भाटी ।

भाङ्ग^१—संज्ञा पु० [सं० भाट; देशी भाङ (=सतागहन)] १. वह छोटा पेड़ या कुछ बड़ा पौधा जिसमें पेड़ी न हो और जिसकी डालियाँ जड़ या जमीन के बहुत पास से निकलकर चारों ओर खूब छितराई हुई हों । पौधे से इसमें अंतर यह है कि यह कटीला होता है । २. भाङ के आकार का एक प्रकार का रोशनी करने का सामान जो छत में लटकाया या जमीन पर बैठकी की तरह रखा जाता है ।

विशेष—इसमें कई ऊपर नीचे वृत्तों में बहुत से शीशे के गिलास लगे हुए होते हैं, जिनमें मोमबत्ती, गैस या बिजली आदि का प्रकाश होता है । नीचे से ऊपर की ओर के गिलासों के द्वारा बराबर छोटे होते जाते हैं ।

यौ०—भाङ फानूस = शीशे के भाङ, हाड़ियाँ और गिलास आदि जिनका व्यवहार रोशनी और सजावट आदि के लिये होता है ।

१. एक प्रकार की आतिशबाजी जो छूटने पर भाङ या बड़े पौधे के आकार की जान पड़ती है । ४. छीपियों का एक प्रकार का छाया, जो प्रायः दस अंगुल चौड़ा और बीस अंगुल लंबा होता है और जिसमें छोटे पेड़ या भाङ की आकृति बनी रहती है । ५. समुद्र में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास जिसे जरस या जार भी कहते हैं ।—(लक्ष०) । ६. गुच्छा । लच्छा ।

भाङ्ग^२—संज्ञा स्त्री० [हि० भाङना] १. भाङने की क्रिया । भटक-कर या भाङू आदि देकर साफ करने की क्रिया ।

यौ०—भाङ पोछ = भाङ और पोछकर साफ करने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग भौगिक शब्दों ही में विशेषतः होता है । जैसे, भाङपोछ, भाङबुहार, भाङभूङ ।

२. बहुत डाँट या फटकारकर बही हुई बात । फटकार । डाँटडपट ।

क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।—सुनना ।—सुनाना ।

३. मंत्र से भाङने की क्रिया ।

यौ०—भाङ फूँक = मंत्रोपचार ।

भाङ्ग^३—संज्ञा पु० [हि० भाङना] भटका (कुपरी) ।

भाङ्गखंड—संज्ञा पु० [हि० भाङ्ग + भंड] १. कटिहार जंगल । बन । ऐसा वनविभाग जिसमें अधिकतर भरबेरी आदि के कंटीले भाङ हों । २. अत्यंत घना और भयंकर जंगल । ३. छलीसगढ़ और गोडवाने का उत्तरी भाग । भारखंड ।

भाङ्ग भंडाङ्ग—संज्ञा पु० [हि० भाङ्ग + भंडाङ्ग] १. कटिहार भाङियों का समूह । २. व्यर्थ की निकम्मी चीजों का समूह ।

भाङ्गबुहार^१—क्रि० [हि० भाङ्ग + फा० वार] १. सघन । घना । २. कंटीला । कटिहार । ३. जिसपर भाङ या बेलबूटे आदि बने

हों । ४. जिसमें शीशे के भाङ की सजावट हो । जैसे,—भाङ्गवार कमरा ।

भाङ्गबुहार^२—संज्ञा पु० १. एक प्रकार का कसीया जिसमें बड़े बड़े बेल बूटे बने होते हैं । २. एक प्रकार का गलीचा जिसपर बड़े बड़े बेल बूटे बने होते हैं ।

भाङ्गना—संज्ञा स्त्री [हि० भाङना] १. वह जो कुछ भाङने पर निकसे । २. वह कपड़ा आदि जिससे कोई चीज गर्द भाँति दूर करने के लिये भाङी जाय । भाङने का कपड़ा ।

भाङ्गना^१—क्रि० सं० [सं० क्षरण] १. किसी चीज पर पड़ी हुई गर्द आदि साफ करने या और कोई चीज हटाने के लिये उस चीज को उठाकर भटका देना । भटकारना । फटकारना । जैसे,—जरा दूरी और आँदनी भाङ्ग दो । २. भटका देकर किसी एक चीज पर पड़ी हुई किसी दूसरी चीज को गिराना । जैसे,—इस अँगोछे पर बहुत से बीस बिपक गए हैं, जरा उन्हें भाङ्ग दो । ३. भाङ्गू या कपड़े आदि की रगड़ या भटके से किसी चीज पर पड़ी या लगी हुई दूसरी चीज गिराना या हटाना । जैसे,—इन किताबों पर की गबं भाङ्ग दो । ४. भाङ्गू या कपड़े आदि के द्वारा पथवा और किसी प्रकार गर्द मैल, या और कोई चीज हटाकर कोई दूसरी चीज साफ करना । जैसे,—(क) सबेरे उठते ही उन्हें सारा घर भाङ्गना पड़ता है । (ख) इस मेज को भाङ्ग दो ।

संयो० क्रि०—झाँपना ।—देना ।—लेना ।

५. बल या युक्तिपूर्वक किसी से धन ऐँठना । भटकना ।—(बव०) ।

संयो० क्रि०—लेना ।

६. रोग या प्रेतबाधा आदि दूर करने के लिये किसी को मंत्र आदि से फूँकना । मंत्रोच्चार करना । जैसे, वजर भाङ्गना ।

संयो० क्रि०—देना ।

७. बिगड़कर कड़ी कड़ी बातें कहना । फटकारना । डाँटना ।

संयो० क्रि०—देना ।

८. निकालना । दूर करना । हटाना । छुड़ाना । जैसे,—मुम्हारी सारी बढमासी भाङ्ग देगे । उ०—मोहें ते बे चतुर कहावति ये मनही मन सोको नारति । ऐसे वचन कहूँगी इन तें चतुराई इनकी मैं भारति ।—सूर (शब्द०) । ९. अपनी योग्यता दिखाने के लिये गढ़ गढ़कर बातें करना । जैसे,—वह आते ही अँगरेजी भाङ्गने लगा । १०. त्यागना । छोड़ना । गिराना । जैसे, बिडियों का पंख भाङ्गना ।

भाङ्गफूँक—संज्ञा स्त्री [हि० भाङ्गना + फूँकना] मंत्र आदि से भाङ्गने या फूँकने की वह क्रिया जो भूत प्रेत आदि की बाधाओं का पथवा रोगों आदि को दूर करने के लिये की जाती है । मंत्र आदि पढ़कर भाङ्गना या फूँकना ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—होना ।

भाङ्गबुहार—संज्ञा स्त्री [हि० भाङ्गना + बुहारना] भाङ्गने और बुहारने की क्रिया । सफाई ।

भाड़ा—संज्ञा पुं० [हि० भाड़ना] १. भाड़ फूँक । २. तलाशी । ३. सितार के सब तारों (विशेषतः बाजे का तार और चिकारी का तार) को एक साथ बजाना । भाला । ४. मल । गुह । मैला ।

मुहा०—भाड़ा फिरना = मलोत्सर्ग करना । हगना । भाड़ा फिराना = हगाना । छोटे बच्चों को मलत्याग कराना ।

५. मलोत्सर्ग का स्थान । पाखाना । टट्टी ।

क्रि० प्र०—जाना ।

भाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० भाड़] १. छोटा भाड़ । पीषा । २. बहुत से छोटे छोटे पेड़ों का समूह या भुरमुट । ३. सुघर के बालों की कूँची । बर्लोछी ।

भाड़ीदार—वि० [हि० भाड़ी + फा० दार] भाड़ी की तरह का । छोटे भाड़ का सा । २. कँटीला । कटिदार ।

भाड़ू—संज्ञा स्त्री० [हि० भाड़ना] १. बहुत सी लंबी सीकों आदि का समूह जिससे जमीन, फस आदि भाड़ते हैं । कूँचा । बोहारी । सोहनी । बड़नी ।

मुहा०—भाड़ू देना = (१) भाड़ू की सहायता से कड़ा करकट साफ करना । (२) दे० 'भाड़ू केरना' । भाड़ू फिरना = सफाया हो जाना । कुछ न रहना । भाड़ू केरना = बिलकुल नष्ट कर देना । भाड़ू मारना = (१) धृष्ट करना । (२) निरादर करना । (स्त्रि०) ।

२. पुच्छल तारा । केतु । दुमदार सितारा ।

भाड़ूकश—संज्ञा पुं० [हि० भाड़ू + फा० कश] १. भाड़ू देनेवाला । भाड़ू बरबार । २. भंगी । मेहतर । चमार ।

भाड़ूदुमा—संज्ञा पुं० [हि० भाड़ू + दुम] वह हाथी जिसकी दुम भाड़ू की तरह फैली हो । ऐसा हाथी ऐसी गिना जाता है ।

भाड़ूबरदार—संज्ञा पुं० [हि० भाड़ू + फा० बरदार] १. वह जो भाड़ू देता हो । २. चमार । भंगी । मेहतर ।

भाड़ूबाला—संज्ञा पुं० [हि० भाड़ू + बाला] १. वह जो भाड़ू देता हो । भाड़ू बरदार । २. भंगी, मेहतर या चमार ।

भायू—संज्ञा पुं० [सं० ध्यान, प्रा० भाण] १. अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव । मानसिक प्रत्यक्ष । ध्यान । २. हठयोग के अनुसार वह साधना जिसमें शरीर के भीतरी पाँच तत्वों के साथ पंचमहाभूतों का ध्यान करके उन्हें ऊर्ध्व में स्थित किया जाता है ।

भाती^५—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्यातृ, प्रा० भाती या वेण०] ध्यान करनेवाला । चित्तक । उ०—संश्रित निद्रा मल्प भहारी । भाती पावे मनभे बारी ।—प्राण०, पृ० ८६ ।

भापा^५—संज्ञा पुं० [हि० भापना] गोपन । छिपाव । उ०—भातर दुतर नरि, से कइसे अपबहु तरि, धारति न करइ भाप ।—विद्यापति, पृ० १५८ ।

क्रि० प्र०—करना ।

भापड़—संज्ञा पुं० [सं० बपेटा] बप्पड़ । पड़ाका । लप्पड़ । तलाचा ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—भापड़ कसना । भापड़ देना । भापड़ मारना = बप्पड़ मारना । उ०—यदि कोई बोल दे तो बिना एकाध भापड़ भारे मानते भी नहीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६७ ।

भापा^५—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भाप, हि० भापना] १. भपकी । तंत्रा । २. कमबोरी । शिथिलता । उ०—कहा होई जो नी दुख तापा । सूखे जीम दाह्यो भापा ।—ईदरा०, पृ० १५१ ।

भाबर^१—संज्ञा पुं० [?] दलदली मृमि ।

भाबर^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भाबा' । उ०—जुनि भाबर पै भाबर भाई । धिरित खीड़ का कहौ मिठाई ।—जायसी (शब्द०) ।

भाबा—संज्ञा पुं० [हि० भापना (= ठाँकना)] १. टोकरा । लाँची । हठ्ठे का बड़ा दौरा । उ०—हम लोग दो रोटो के लिये सिर पर भाबा रखे तरकारी बेचते फिरें ।—कूलो०, पृ० ३१ । २. ची, तेल आदि तरल पदार्थों के रखने का चमड़े का टोटीदार बरतन । ३. चमड़े का बना हुआ गोल घाल जिसमें पंजाब में खोग घाटा छानते हैं । इसे सफरा कहते हैं । ४. रोशनी का भाड़ जो लटकया जाता है । ५. दे० 'भाबा' ।

भाबी—संज्ञा स्त्री० [हि० भाबा] छोटा भाबा । टोकरी ।

भाम^५—संज्ञा पुं० [दे०] १. भग्ना । गुच्छा । उ०—सुंदर दसन चिबुक प्रति सुंदर हृदय विराजत दाम । सुंदर भुजा पीत पट सुंदर कनक मेखला भाम ।—सूर (शब्द०) । २. एक प्रकार की बड़ी कुदाल जिससे कुएँ की मिट्टी निकालते हैं । ३. धुड़की । डाट डपट । ४. धोखा । छल । कपट ।

भामक—संज्ञा पुं० [सं०] जली हुई ईंट । भावी ।

भामर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. टेकुप्रा रगड़ने की सान । तर्कशाण । सिल्ली । २. स्त्रियों का पैर में पहनने का एक गहना जो पैजनी की तरह का होता है ।

भामर^२—वि० [सं० श्यामल, प्रा० भामर] मलिन । लविला । भाँवर । उ०—एष भेल विपरीत भामर देहा । दिखै मलिन जनु चाँदक रेहा ।—विद्यापति, पृ० १३३ ।

भामरभूमर^५—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमक दमक । धूमधाम । भूँडा प्रपंच । ठकोसला । उ०—दुनिया भामरभूमर भवभी ।—कबीर० श०, पृ० ४१ ।

भामरि^५—वि० स्त्री० [सं० श्यामल, प्रा० भामर] दे० 'भामर' । उ०—सामरि हे भामरितोर देह, की कह के सयँ लाएलि नेह ।—विद्यापति, भा० २, पृ० ५६ ।

भामा^५—संज्ञा पुं० [सं० श्यामल, प्रा० भामल] 'भाँवा' । उ०—शरीर का पसीना शरीर पर सुख कैवियों की त्वचा कड़ी घोर भामे की तरह खुरदुरी हो गई ।—मस्माभूत०, पृ० २० ।

भामी^५—वि० संज्ञा पुं० [हि० भाम] बोखेबाज । चालाक । धूर्त । जिनके मंत्र न कोऊ भामी । झूठ न बादि न परतिभ-गामी ।—पद्माकर (शब्द०) ।

भायँ भायँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. भनकार । भन् भन् शब्द । २. छलाटे में हवा का शब्द । वह शब्द जो किसी सुषसान

स्नान में हवा के चलने तथा गूँज आदि के कारण सुनाई पड़ता है और जिससे कुछ भय सा होता है। जैसे, इतना बड़ा सुना घर कार्य भायें करता है।

भार^१—वि० [सं० सर्व, प्रा० सारो, हि० सारा] १. एकमात्र। निपट। केवल। उ०—दीयो दधि बाव को सुकेछे ताहि भावत है जाहि पत्र पायो भार भगरो गोपाय को।—पद्माकर (शब्द०)। २. संपूर्ण। कुल। सब। समस्त। उ०—कै नख तें सिख लीं पदमाकर जाहिरे भार सिंगार कियो है।—पद्माकर प्र०, पृ० १६८। ३. समूह। भुँड।

यो०—भारभार। भाराभार।

भार^२—संज्ञा स्त्री० [सं० भाला (= ताप,)] १. दाह। डाह। जलन। ईर्ष्या। उ०—मोसों कही बात बाबा यह बहुत करत तुम सोच बिचार। कहा कही तुम सो में प्यारे कंस करत तुमसों कछु भार।—सूर०, १०।५३०। २. ज्वाला। लपट। धाँव। उ०—(क) जनहुँ छहि मँहु धूप विछाई। तैसे भार लाग जो धाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) नाम लें चितात बिलसात झकुलात प्रति तात तात तौसियत भोसियत भारहीं।—तुलसी प्र०, पृ० १७०। (ग) गरज किलक आघात उठत मनु दामिनि पावक भार।—सूर (शब्द०)। ३. भाल। चरपरपन्न। उ०—छाँछ छबीबी घरी घुँगारी। भरहै उठत भार की प्यारी।—सूर (शब्द०)। ४. वर्षा की बूँदें। झड़ी।

भार^३—संज्ञा पुं० [हि० भडना] भरना। पीना।

भार^४—संज्ञा पुं० [सं० भाट, देशी भाड़ (= लता गहन)] १. वृक्ष। पेड़। भाड़। २. एक पेड़ का नाम।

भारखंड—संज्ञा पुं० [हि० भाड़ + खंड] १. एक पहाड़ जो वैद्यनाथ होता हुआ जगन्नाथ पुरी तक चला गया है।

विशेष—मुसलमानों ने अपने इतिहास ग्रंथों में छत्तीसगढ़ और गोंडवाने के उत्तरी भाग को भारखंड के नाम से लिखा है।

२. दे० भाड़खंड।

भारन—क्रि० सं० [हि० भाड़ना] दे० 'भाड़न'।

भारना^१—क्रि० सं० [सं० भर] १. बाल साफ करने के लिये कंघी करना। २. छुटना। अलग करना। जुदा करना। ३. दे० 'भाड़ना'।

भारना^२—क्रि० सं० [हि० भरना] दे० 'भरना'। उ०—सुरति खँवर ले सनमुख भारे।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १७।

भारफूँकना—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भाड़फूँक'।

भारा^१—संज्ञा पुं० [हि० भारवा] १. पतली छवी हुई भाँप। २. वह सूप जिससे घस की फटकर सरसों इत्यादि से पुष्प करते हैं। भरना। † ३. लाठी तेजी से चलाने का हुनर।

भारा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला, हि० भाल] भार। ज्वाला। उ०—धौद दगध का कहीं धपारा। सुनै सो जरे कठिन धसि भारा।—पद्मावत, पृ० २४१।

भारि^१—वि० [हि० भार] दे० 'भारी'। उ०—कहहु सुमंत

बिचारि केहि बालक घोटक गह्यो। बसैं इहाँ ऋषि भारि अत्रिन कर न निवास इत।—(शब्द०)।

भारि^२—संज्ञा स्त्री० [हि० झड़ी, या सं० भार (= धारा)] धनवरत वर्षा की झड़ी। पल्लव बूँदों की धारा। उ०—मेघवि जाइ कही पुकारि। सात दिन भरि बरसि बज पर गई नैकु न भारि।—सूर०, १०।८८२।

भारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भरना] लुटिया की तरह एक प्रकार का लंबोतरा पात्र जिसमें जल गिराने के लिये एक छोटा एक टोंटी लगी रहती है। इस टोंटी में से धार बँधकर जल निकलता है। इसका व्यवहार देवताओं पर जल चढ़ाने प्रथवा हाथ पैर आदि धुलाने में होता है। उ०—(क) घासन दे चौकी घागे धरि। जपुनाजल राख्यो भारी भरि।—सूर (शब्द०)। (ख) घापुन भारी माँगि विप्र के चरन पखारे। इती दूर श्रम कियो राज द्विज भए दुखारे।—सूर (शब्द०)।

भारी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० भारि] वह पानी जिसमें घमचूर, जीरा, नमक आदि घुला हुआ हो। इसका व्यवहार पश्चिम में अधिक होता है।

भारी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० भाड़ी] दे० 'भाड़ी'। उ०—कूल भरें सखीं फुलवारी। दिस्टि परीं उकठीं 'सब भारी'।—जायसी प्र०, पृ० २५४।

भारी^४—वि० [हि०] दे० 'भार'।

भारू—संज्ञा पुं० [हि० भाड़ू] दे० 'भाड़ू'।

भारनेवाला—वि० [सं० भद्र प्रा० भाड़, हि० भारा+वाला (प्रत्य०)] पटा खेसनेवाला। पटा। बनेठी या लकड़ी चलानेवाला।

भार्भर—संज्ञा पुं० [सं०] ढोल या हुड़क बाजा बजानेवाला [ले०]।

भाल^१—संज्ञा पुं० [सं० भल्लक] भाँक। काँसे का बना हुआ ताल देने का वाद्य। उ०—सहस्र गुंजार में परमली भाल है, भिलमिली उलटि के पीन भरना।—पल्लव, पृ० ३०।

भाल^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. रहड्डे का बड़ा खाँचा। २. भाँसने की क्रिया या भाव।

भाल^३—संज्ञा स्त्री० [सं० भाला] १. चरपराहट। तीतापन। तीक्ष्णता। जैसे, राई की भाँज, मिरचे की भाल। २. तरंग। मौज। झहर। ३. कामेच्छा। चुल। प्रसंग करने की कामना। भल।

भाल^४—संज्ञा पुं० [हि० भाड़] दो तीन दिन की लगातार पानी की झड़ी जो प्रायः जाड़े में होती है। उ०—जिन जिन संबल नाँ किया घसपुर पाटन पाय। भाल परे दिन घायए संबल किया न जाय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

भाल^५—वि० [हि० भार] दे० 'भार'।

भाल^६—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल, प्रा० भाल] १. धाँव। ज्वाला। उ०—अग्नि के भाल में साँकड़े पैसता बैठे ठठे श्री राम रखा करें।—रामानंद०, पृ० ६। †२. ग्रीष्म ऋतु। उ०—घाये भेल भाल कुसुम सब चूछ। बारि विहून सर केमो वहिँ पूछ।—बिद्यापति, पृ० ३१५।

मालव—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लरी] १. घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है । २. दे० 'मालर' ।

मालना^(१)—क्रि० सं० [हि०?] १. घातु की बनी हुई वस्तुओं में टाँका देकर जोड़ लगाना । २. पीने की चीजों को बोतल आदि में भरकर ठंडा करने के लिये बरफ या सोड़े में रखना । संयो० क्रि०—देना ।

मालना^(२)—क्रि० सं० [सं० ध्वेल; प्रा० भेल; हि० भेलना] प्रहस्य करना । धारण करना । उ०—जिण्ण दीहे तिल्लो निव्वइ, हिरणी भालइ गाभ । ताँह दिहारी मोरड़ी पडुतउ भालइ घाभ ।—डोला०, दू० २८२ । २. कबूल करना । स्वीकार । करना । उ०—वेताँह भाली धाकरी, हूँण इजाका बीध ।—रा०, पृ० १२६ ।

मालर^१—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लरी] १. किसी चीज के किनारे पर ओषा के लिये बनाया, लगाया या टाँका हुआ वह हाथिया जो लचकता रहता है ।

विशेष—इसकी चौड़ाई प्रायः कम हुमा करती है और उसमें सुंदरता के लिये कुछ बेल बूटे आदि बने रहते हैं । मुख्यतः मालर कपड़े में ही होती है, पर दूसरी चीजों में भी ओषा के लिये मालर के आकार की कोई चीज बना या लगा लेते हैं । जैसे, गद्दी या तकिये की भावर, पंखे की भावर । २. मालर के आकार की या किनारे पर लटकती हुई कोई चीज । ३. किनारा । छोर ।—(शब्द०) । ४. भाँक । भाँस । उ०—(क) सुन्न सिलर पर भालर भालके बरसे घमो रस बुँद हुमा ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १० । (ख) घुरत निस्सान तहँ गैब की भालरा गैब के घंट का नाद आवै ।—कबीर श०, पृ० ८८ । ५. घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है । उ०—धटे क्रिया बभगु, मिटे मालर परसादा । ईन प्रजा उपजे, निरख दुर रीत निसादा ।—रा० क०, पृ० २०

मालर^२—संज्ञा पुं० [देश० १.] एक प्रकार का पकवान जिसे भलरा भी कहते हैं । उ०—भालर मडि घाए पोई । देखन उजर पाग जस घोई ।—बायसी (शब्द०) ।

मालरदार—वि० [हि० मालर + दार प्रत्य०] जिसमें मालर लगी हो ।

मालरना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'मलराना' । उ०—नेक न भरसी बिरह भर नेह लता कुँभिलाति । निति निति होति हरी हरी लरी भालरखि जाति ।—बिहारी (शब्द०) ।

मालरा^१—संज्ञा पुं० [हि० मालर] एक प्रकार का उपह्ला हार । हुबेल ।

मालरा^२—संज्ञा पुं० [हि० ताल] चौड़ा कुर्मा । बावली । कुंड ।

मालरि^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० मालर] बंदनधार । लटकते हुए मोती आदि की पंक्ति । उ०—कनक कलस धरि भंगल गावो, मोलियन मालरि लाव हो ।—बरम०, पृ० ४९ ।

मालरी^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लरी] दे० 'माल' । उ०—बंटा ताल

मालरी बाजै । जग मग जोति प्रवधि पुर छाजै ।—रामानंद०, पृ० ७ ।

माला^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. राजपूतों की एक जाति जो गुजरात और मारवाड़ में पाई जाती है । २. सितार बजाने में गत के अंत में द्रुत गति से बाज और बिकारी के जातों का आड़ा बजाना । ३. बकभक । झंझ ।

माला^(२)—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला, प्रा० भाला] दाह । ताप । जलन । बीष । उ०—तपन नव, जिष उठत माला, कठिन हृष प्रब को सहे ।—संतबानी०, भा० २, पृ० १६ ।

मालि^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० मल] पानी की झड़ी । भाँस । उ०—भालि परे दिन प्रयए अंतर परि गइ साँझ । बहुत रसिक के लागते वेषया रहिगै बभ्रि ।—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—छाना ।—पड़ना ।

मालि^(२)—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की काँजी जो कच्चे घाम को पीसकर उसमें राई, लमक और सूनी हाँग मिलाकर बनाई जाती है । मारी ।

माँव माँव—संज्ञा स्त्री० [प्रगु०] १. बकवाद । बकबक । २. हुज्जत सकार ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

मावरि^(१)—संज्ञा पुं० [हि० भूपर] दे० 'भूपर' उ०—कडत योल की गोल खेल खेलन भावरि दिन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३३

मावना^(१)—क्रि० सं० [हि० भाँस से नाम०] भाँसे से रगड़कर घोना । मील साफ करना । उ०—नायन गृहवायके गुमायनि के पाँप भावै, उभकि उभकि उठे वा कर लसन ते ।—नट०, पृ० ७४ ।

मावर—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'भावर' ।

मावु, भावुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भाऊ' ।

मिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गाक] तगेई । तोरी । तुरई ।

मिंगनसंज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्ती से लाल रंग बनता है । २. सारस्वत ब्राह्मणों की एक जाति ।

मिंगरि^(१)—संज्ञा पुं० [दे० प्रा० मिंगिर] । उ०—मिंगरि सलूर पावस निगाव ।—पृ० रा०, १ । ४३४ ।

मिंगा^(१)—वि० [देश०? मिंगिर(१) मिंगर] मींगुर के समान । मींगुर की ध्वनि सा । उ०—घनहृष मिंगा शब्द सुनायो ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३७ ।

मिंगाक—संज्ञा पुं० [सं० मिङ्गाक] तोरई । तगेई ।

मिंगिनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गिनी] एक प्रकार का जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है । इसके पत्ते महुए के समान और शाखाओं में दोनों ओर लगते हैं । फूल सफेद और कल बेर के समान होते हैं ।

पर्या०—मिंगी । मिंगिनी । मिंगिनी । प्रमोदिनी । सुनिर्यास ।

२. प्रकाश । ज्योति । चमक । लुक (को०) ।

मिंगिनी^(२)—संज्ञा स्त्री० [देश०] शुद्ध कीटविशेष । खद्योत । जुगमु । उ०—चमकत सार सनाह पर, हय गय नर भर

सगि । मनो वृद्ध पर किगिनियो, करत केसि निसि जगि ।
—पु० रा०, ८ । ४३ ।

किंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्गी] दे० 'किगिनी' ।

किङ्गी—वि० [देशी] प्रत्यंत सीण । दुबल ।

किङ्गिम—संज्ञा पुं० [सं० किङ्गिम] जलता हुआ वन (को०) ।

किङ्गिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'किङ्गिया' ।

किङ्गिरिस्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्गिरिस्टा] किङ्गिरिस्टा नामक क्षुप ।

किङ्गिरिटा—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्गिरिस्टा] एक प्रकार का क्षुप ।

किङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्गी] भिल्ली । भीगुर ।

किङ्गीटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । यह दिन के चौथे पहर में गाई जाती है ।

किङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्गी] कठसरैया । पियाबासा ।

किङ्गी—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कीका' । उ०—बोले बलु जंतवा, भूमिकि लेहु किङ्गी, देवस मुखल भैया पाहुन रे की ।—कबीर (शब्द०) ।

किङ्गीनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] तरौई । तुरई ।

किङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्गीट, किङ्गीट] एक प्रकार की छोटी मछली जिसके मुँह और पूँछ के पास दोनों तरफ बाल होते हैं ।

किङ्गीरना(पुं०)—कि० प्र० [हि० भीगुर या भनकार] भीगुर का शब्द होना । भीगुर का शब्द करना ।

किङ्गीली(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० भगा] छोटे बच्चों के पहनने का कुरता । भगा । उ०—पीत भीन किङ्गीली तन सोही । किङ्गीलि चितवनि भावति मोही ।—तुलसी (शब्द०) ।

किङ्गीरना(पुं०)—कि० प्र० [सं० कङ्कुरण] भंकार करना । कूकना आवाज करना । पिङ्कना । उ०—हंगरिया हरिया हुआ बणे किङ्गीरना मोर । इगु रिति तीगुइ नोसरइ, जाचक, चातक, मोर ।—ढोला०, दू० २५३ ।

किङ्गी(पुं०)—वि० स्त्री० [देशी] भीनी । प्रत्यंत सीण । उ०—कहहि कबीर किहि देवहु सोरी । जब बलिहहु भिङ्गी आसा तोरी ।—कबीर बी०, पु० २८२ ।

किङ्गिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छोटे छोटे छेदोंवाला वह घड़ा जिसमें दीया बाल कर कुप्रार के महीने में सड़कियां घुमाती है । उ०—जानरघ्र मग हूँ कड़े तिय तब होपति पुं० । किङ्गिया कैसो घट भयो दिन ही में बनकुंज ।—सतिराम (शब्द०) ।

किङ्गीटी, किङ्गीटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'किङ्गीटी' ।

किङ्गीरना—कि० प्र० [हि० भकभोरना] दे० 'भकभोरना' । उ०—नहि नहि करण नयन ठर नोर । काँच कमल भमरा भिङ्गीर ।—विद्यापति, पु० २०४ ।

किङ्गी(पुं०)—कि० प्र० [हि० भकिवा] देखना । ताकना । उ०—

बरनीन हूँ नैन भिके भिङ्गीके मनो खंजन मीन पे बाल परे ।
—ठाकुर (शब्द०) ।

किङ्गीना(पुं०)—कि० प्र० [हि०] टिमटिमाना । उ०—भक्तकंठ बगत्तर टोप भिले । रसबाहू निसा प्रतिव्यंभ रले ।—रा० क०, पु० ३४ ।

किङ्गीना(पुं०)—कि० प्र० [हि० भीखना] दे० 'भीखना' । उ०—भोर जगि प्यारी भब ऊरध इतै सी भोर भाखी लिङ्गी भिरकि उचारि भब पलकै ।—पद्माकर (शब्द०) ।

किङ्गीड़ा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'भगड़ा' ।

किङ्गीमिगा(पुं०)—वि० [हि० भिलमिल] दे० 'भिलमिल' । उ०—दीस रह्या दिख माहि दर्शन साईं दा । साईं दा साईं दा भिङ्गीमिग भाईं दा ।—राम० धर्म०, पु० ४६ ।

किङ्गीरा, किङ्गीरो(पुं०)—संज्ञा पुं० [अनु०] भगड़ा । भक्त । उ०—समुझिय जग जनमें को फल मन में, हरि सुमिरन में दिन भरिए । किङ्गीरो बहुतेरो धेव घनेरो मेरो तेरो परिहरिए ।—भिलारी० प्र०, भा० १, पु० २२६ ।

किङ्गीक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'भक्त' ।

किङ्गीकना—कि० प्र० [हि० भक्त, भिङ्गीक] दे० 'भक्तना' । उ०—वहाँ साँचे चलै तजि आपुनपी भिङ्गीके कपटी गो निसाकि नहीं ।—घनानंद (शब्द०) ।

किङ्गीकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'भक्तकार' ।

किङ्गीकारना—कि० प्र० [अनु०] १. दे० 'भक्तकारना' । उ०—वोही डँग तुम रहे कन्हैयाँ सबै उठी भिङ्गीकारि । लेहु प्रसीस सबन के मुख ते कतहि दिवावत गारि ।—सूर (शब्द०) । २. दे० 'भक्तना' । उ०—रसना मति इत नैना निज गुन जीन । कर तें पिय भिङ्गीकारे अजुगति कीन ।—रहीम (शब्द०) ।

किङ्गीकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भक्त' । उ०—भुकि भक्ति भिङ्गीकी करति, उभकि भरोखनि बाल ।—ब्रज० प्र०, पु० २ ।

किङ्गीक(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भक्त' ।

किङ्गीकना(पुं०)—कि० प्र० [हि० भिङ्गीक + ना (प्रत्यय)] उ०—बरनीन हूँ नैन भिके भिङ्गीके मनो खंजन मीन पे बाल परे ।
—ठाकुर (शब्द०) ।

किङ्गीया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'किङ्गीया' ।

किङ्गीड़ना—कि० प्र० [अनु०] दे० 'भक्तभोरना' । उ०—उसे किङ्गीड़कर उसने हिना दिया, क्योंकि मधुबन का वह रूप देखकर मैना को भी भय लगा ।—तिल्ली, पु० १८६ ।

किङ्गीका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भक्तका' उ०—एक भिङ्गीका सा लगा सहृणं । निरखने लगे लुटे से, कीन । गा रहा यह सुंदर संगीत ? कुतूहल रह न सका फिर मीन ।—कामायनी, पु० ४५ ।

किङ्गीकारना—कि० प्र० [हि० भिङ्गीका] दे० 'भक्तकारना' या 'भक्तना' ।

किङ्गीकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'किङ्गीकी' ।

किङ्गीकना—कि० प्र० [अनु०] १. प्रवक्ता या तिरस्कारपूर्वक बिगड़कर कोई बात कहना । २. प्रसंग फेंक देना । भक्तना ।—(शब्द०) ।

मिड़की—संज्ञा स्त्री० [हि० मिड़कना] १. वह बात जो मिड़ककर कही जाय। डाँट। फटकार।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—सुनना।

२. मिड़कने की क्रिया या भाव।

मिड़मिड़ाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] भला बुरा कहना। कटु वचन कहना। बिड़बिड़ाना।

मिड़मिड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० मिड़मिड़ाना] मिड़मिड़ाने का भाव या क्रिया।—(स्व०)।

मिनमिन(५)—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] दे० 'मन मन'। उ०—यह मिन-मिन जंतर बाजै आला। पीवे प्रेम होय मतवाला।—ब० सागर, पृ० ३८।

मिनबा—संज्ञा पुं० [देश०] महोन चावल का भाव। उ०—राय-भोग धी काकररावी। मिनबा कद धी बाउदखानी।—बायसी (शब्द०)।

मिनबा—वि० [सं० क्षीण, प्रा० भीण] दे० 'भीना'।

मिप् मिप्—क्रि० वि० [प्रनु०] रिमकिम शब्द के साथ। उ०—पहले नन्हीं नन्हीं बूँदे पड़ीं, पीछे बड़ी बड़ी बूँदों से मिप् मिप् पायी बरसने लगा।—ठेठ०, पृ० ३२।

मिपना—क्रि० प्र० [हि० छिपना] दे० 'मैपना'।

मिपाना—क्रि० प्र० [हि० मिपना का सं० रूप] लज्जित करना। शरमिषा करना।

मिमकना—क्रि० प्र० [प्रनु०] दे० 'ममकना'।

मिममिमी—वि० [हि० भीनी; या देशी मिमिष (= प्रवयवों की जड़ता)] मंद ज्योतिषालो। उ०—ससकी मिममिमी झालों से उल्लास के प्राप्ति झड़ने लगते।—पिजरे०, पृ० ७५।

मिमिटना—क्रि० प्र० [हि० सिमटना] झट्टा होना। एक जगह जुट आना। उ०—मिमिट आते हैं जहाँ जो लोग, झकट कर कोई प्रकय अभियोग। मौव रहते हैं लड़े देखें, सिर झुका-कर फिर उठाते हैं न।—साकेत, पृ० १७१।

मिर—संज्ञा स्त्री० [हि० मिरा] बूँद। कुहार। मिराँ। उ०—मिर पिचकारी की मची घाँवी उड़त गुलाब। यह धुँवरि वेंसि लीजिए पकरि छबीले बास।—स० सप्तक, पृ० ३९०।

मिरकनहारी—वि० स्त्री० [हि० मिरकना + हारी (प्रत्य०)] मिड़कने-वाली। उ०—पातें तुमकी ठीठि कही। स्यामहि तुम यह मिरकनहारी एते पर पुनि हारि नहीं।—सुर०, १०।१५।३९।

मिरकना(५)—क्रि० प्र० [हि० मिड़कना] दे० 'मिड़कना'। उ०—(क) खरीदार बैराग बिनोखी मिरकि बाहिरें कीन्हें।—सुर०, १।४०। (ख) धोर जधि प्यारी घष ऊरव हत की धोर भाखी लिभि मिरकि उधारि प्रथ पसकै।—पद्माकर (शब्द०)। २. घसग फेंक देना। मटकना।—(स्व०)। उ०—मुकुट शिर आखंड सोहै निरखि रवि हजगारि। कोठि सुर कोषं भाषा मिरकि डारें वारि।—सुर (शब्द०)।

मिरमिर—क्रि० वि० [प्रनु०] १. मंद मंद। धीरे धीरे। उ०—

मिर मिर बहै बयार प्रेम रस डोलै हो।—घरम०, पृ० ४६।

२. मिर मिर शब्द के साथ।

मिरमिरा—वि० [हि० मरना] बहुत पतला या बारीक (कपड़ा आदि)। मँमरा। भीना।

मिरमिराना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. मिरमिर शब्द के साथ बहना (वायु, जल आदि)। २. दे० 'मिड़मिड़ाना'।

मिरना^१—क्रि० प्र० [सं० √ सर, प्रा० मिर, हि० √ मरना] बहकना। गिरना। प्रवाहित होना। 'मरना'। उ०—जहाँ उदाँ झाड़ी में मिरती है मरनों की झड़ी यहाँ।—पंचवटी, पृ० ९।

मिरना^२—संज्ञा पुं० १. छेद। छिद्र। सुराख। २. दे० 'मरना'।

मिरमिर(५)—वि० [हि०] दे० 'मिलमिल'। उ०—मिरमिर बरसै मुर। बिब कर बाँसै ताल मुर।—दरिया० बानी, पृ० ४८।

मिरहर, मिरहिर(५)—वि० [हि०] १. भीना। छिद्रित। छेदोंवाला। उ०—छिनहर घर अरु मिरहर टाटी। घन मरबत कपे मेरा छाती।—कबीर ग्रं०, पृ० १८१। २. मिलमिल। मलकदार उ०—गंग जमुन के बीच में एक मिरहिर तीरा हो।—घरम०, पृ० ३७।

मिरा—संज्ञा स्त्री० [हि० मरना (= रस कर निकलना)] घामदनी। घाव।

मिराना—क्रि० प्र० [हि०] मुराना।

मिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भींगुर (को०)।

मिरिहरी(५)—वि० [प्रनु०] मंद मंद। धीरे धीरे। उ०—मिरि-हरी बहै बयारि, अमी रस ढरकै हो।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७३।

मिरो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० मरना] १. छोटा छेद जिससे कोई द्रव पदार्थ धीरे धीरे बह जाय। दरज। शिगाफ। २. वह गड्ढा जिसमें पानी मिर मिरकर झट्टा हो। ३. कुएँ के बगल में से निकला हुआ छोटा सोता। ४. तुपार। पाखा। ५. वह फसल जिसे पानी मार गया हो।

मिरो^२—संज्ञा [सं०] भींगुर। मिहली (को०)।

मिरीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मिरिका' (को०)।

मिरी—संज्ञा स्त्री० [हि० मरना या मिरा] वह छोटा गड्ढा जो ताली आदि में पानी रोकने के लिये खोदा जाता है। वेवसा।

मिल्लगा^१—संज्ञा पुं० [हि० डीला + गंग] १. दूटी हुई खाट का भाग। २. ऐसी खाट जिसकी बुनावट ढीली पड़ गई हो।

मिल्लगा^२—वि० १. ढीला ढाला। भोलदार। २. भीना।

मिल्लगा^३—संज्ञा पुं० [हि० भीगा] दे० 'भीगा'।

मिलना^१—क्रि० प्र० [?] १. बच्चपूर्वक प्रवेश करना। घेंसना। घुसना। उ०—मिली फौज प्रतिभट गिरे साइ बाव पर बाव। कुँवर होरि परबत बढयो बढयो युद्ध को बाव।—लाख (शब्द०)। २. तुल्य होना। घषा जाना। उ०—मिले राम कृष्ण, मिले पादक मनोरथ की, हिले रूप रूप किए चुरि

चूरि चूरि की।—प्रिया (शब्द)। ३. मग्न होना। तलबीन होना। उ०—कटथो कर चले हरि रंग मोह मिले मानो जानी कलु चूक मेरी यहै उर धारिए।—प्रिया (शब्द०)। ४. (कष्ट, आपत्ति आदि) भेला जाना। सहा जाना। सहन होना। उठाया जाना।

मिलना^३—संज्ञा पु० [सं० मिलनी] भीगुर।

मिलम—संज्ञा स्त्री [हि० मिलमिल] लोहे का बना हुआ एक प्रकार का भीमरीदार पहनावा जो सड़ाई के समय गिर घोर मुँह पर पहना जाता था। एक प्रकार का लोहे का टोप या खोल। उ०—भलकन धावे भुड मिलम भलानि भयो तमकत धावे तेगवाही धो सिलाही के।—पद्माकर (शब्द०)।

मिलमटोप—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'मिलम'।

मिलमलित(पुं०) - वि० [हि० मिलमिल + इत (प्रत्य०)] मिलमिलाता हुआ। झपटा हुआ।

मिलमा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का धान जो संयुक्त प्रांत में होता है।

मिलमिल^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ कौपती हुई रोशनी। हिलता हुआ प्रकाश। भलमलना हुआ उजाला। २. ज्योति की अस्थिरता। रह रहकर प्रकाश के घटने बढ़ने की क्रिया। उ०—(क) हेरि हेरि बिल में न लौन्हो हिलमिल में रही हों हाथ भिन में प्रभा की मिलमिल में।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) चूधर के घूमि के सु भूमके जवाहर के मिलमिल भासर को भूमि मिल भुक्त जात।—पद्माकर (शब्द०)। ३. बड़िया मलमल या तनजेब की तरह का एक प्रकार का गरीब धीर मुलायम कपड़ा। उ०—(क) चंदनोता जो खरदुख भारी। बाँस-पूर मिलमिल की सारी।—बायली (शब्द०)। (ख) राम धारवी होन लगी है, मगमग जपमग जोति जगी है। कंचन भवर रस सिंहासन। गारुड बाँधे मिलमिल हासन। तापर राखत जपत प्रकाशन। देखात छवि मनि प्रेम पगी है।—महालाख (शब्द०)। ४. घुड़ में पहनने का जोड़े का कवच। उ०—बरस पास जोन्दैर के छंदू। विप्र रूप धरि मिलमिल ईषू।—बायली (शब्द०)।

मिलमिल—वि० रह रहकर चमकना हुआ। भलमलना हुआ। उ०—बही किनारे में लड़ी गली मिलमिल होय। मैं मैली प्रिय ऊँचरे मिथना किस विधि होय।—(शब्द०)।

मिलमिला—वि० [अनु०] [वि० लो० मिलमिली] १. जो गफ या नाहा न हो। २. जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों। भीमरा भीना। ३. जिसमें रह रहकर हिलता हुआ प्रकाश निकले। ४. भलमलना हुआ। भयकता हुआ। ५. जो बहुत स्पष्ट न हो।

मिलमिलाना^१—क्रि० प्र० [अनु०] १. रह रहकर चमकना। जुगजुगाना। उ०—गल नल कधर शीघ्र पुनि कंठ कपोटी केन ? पीक लीक जहं मिलमिलत सो छवि कीने घैन।—अनेकाथ०, पृ० २६। २. प्रकाश का हिलना। ज्योति का अस्थिर होना। ३. प्रकाश का टिमटिमाना।

मिलमिलाना—क्रि० प्र० १. किसी चीज को इस प्रकार हिलाना कि जिसमें वह रह रहकर चमके। २. हिलाना। कंपाना।

मिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] मिलमिलाने की क्रिया या भाव।

मिलमिली—संज्ञा स्त्री० [हि० मिलमिल] १. एक दूसरे पर तिरछी लगी हुई बहुत सी घाड़ी पटरियों का ढाँचा जो किवाड़ों और खिड़कियों आदि में बड़ा रहता है। खड़खड़िया।

विशेष—ये सब पटरियाँ पीछे की घोर पतली मंजी लकड़ी या छड़ में बड़ी होती हैं जिनकी सहायता से मिलमिली खोजी या बंद की जाती है। इसका व्यवहार बाहर से घानेवाला प्रकाश घोर गर्द आदि रोकने के लिये प्रयुक्त इसलिये होता है कि जिसमें बाहर से भीतर का दृश्य दिखाई न पड़े। मिलमिली के पीछे लगी हुई लकड़ी या छड़ को चरा या नीचे की घोर लीचने से एक दूसरे पर पड़ी पटरियाँ प्रत्यक्ष छड़ी हो जाती हैं और उन सबके बीच में इतना अन्तर्काश निकल जाता है जिसमें से प्रकाश या वायु आदि अच्छी तरह घा सके।

क्रि० प्र०—उठाना।—खोलना।—गिराना।—बढ़ाना।

२. चिक। बिलमन। ३. कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। ४. देखने या शोभा के लिये मकानों में बनी जाती।

मिलमिलाना^२—क्रि० प्र० [हि० मिलना का प्रे० रूप] मिलने का काम कराना। सहन कराना।

मिलमिलि(पुं०)—वि० [अनु०] दे० 'मिलमिल'। उ०—छाड़ी मिलमिलि नेह, पुरुष गम राखि के।—धरम०, पृ० ५२।

मिलिमि(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० मिलम] दे० 'मिलम'। उ०—धरे टोप कुरी कने कीच घंग। मिलिमि घटाढोप पेड़ी अभाग—हमगीर०, पृ० २४।

मिल्ली^१(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मिल्ली'। उ०—अबबात गोलिन की चनक जनु धनि थुकार मिल्लीन की।—पद्माकर शं०, पृ० १२।

मिल्ल—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीख की आवाज का एक प्रकार का पीथा। इसकी छाल घोर कूल लाल होते हैं और पत्तों, घोर कछ बहुत छोटे होते हैं।

मिल्लड़—वि० [हि० मिल्ला] (बहु कपड़ा) जिसकी बुनावट दूर दूर पर हो। पतला घोर भलरा (कपड़ा)। कछ का उलटा।

मिल्लन^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] बरी बुनने की करवे की वह कड़ी लकड़ी जिसमें से का बाँस लगा रहता है। गुरिया।

मिल्ला^१—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० मिल्ली] १. पतला। बारोक। २. भीमरा। जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों।

मिल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक बाजे का नाम। २. भीमुर। मिल्ली। २. चिमड़ा कागज। चमपत्र [को०]।

मिल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भीमुर। मिल्ली। २. मिल्ली की अंकार (को०)। ३. सूर्य का प्रकाश (को०)। ३. चमक।

प्रकाश । दीप्ति (को०) । ५. उबटन, अंगराग आदि शरीर पर मलने से गिरनेवाली मेल (को०) । ६. रंग आदि लगाने में प्रयुक्त वस्त्र (को०) ।

भिल्लो^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. भीगुर । २. चर्मपत्र (को०) । ३. एक वाद्य (को०) । ४. दीए की बत्ती (को०) । ५. दे० 'भिल्लिका' ।

भिल्लो^२—संज्ञा स्त्री० [सं० चैल अथवा सं० भिल्लिका (= चमकदार पारदर्शी पतला आवरण) या अ० जिल्ब (= आवरण) अथवा सं० झुट] १. किसी चीज की ऐसी पतली तह जिसके ऊपर की चीज दिखाई पड़े । जैसे, चमड़े की भिल्लो । २. बहुत बारीक छिलका । ३. मांस का जाला ।

भिल्लो^३—वि० स्त्री० बहुत पतला । बहुत बारीक ।

भिल्लो^४—संज्ञा पुं० [सं०] भीगुर ।

भिल्लोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भीगुर । भिल्लो । २. सूर्य की दीप्ति या प्रकाश । ३. उबटन आदि का मेल । भिल्लो (को०) ।

भिल्लोदार—वि० [हि० भिल्लो + फा० दार] जिसके ऊपर किसी चीज की बहुत पतली तह लगी हो । जिसपर भिल्लो हो ।

भीका^१—संज्ञा पुं० [दे०] दे० 'भीका' ।

क्रि० प्र०—लेना ।—डालना ।

भीकना^१—क्रि० प्र० [प्रा० शंख] दे० 'भीखना' । उ०—तुम्हें हर समय भीकते रहना पड़ता है ।—सुखदा, पु० ७८ ।

भीकना^२—क्रि० प्र० [दे०] फेंकना । पटकना ।

भीका^२—संज्ञा पुं० [दे०] १. उतना अन्न जितना एक बार पीसने के लिये चक्की में डाला जाता है । २. सीका । झोका ।

भीखना^१—संज्ञा स्त्री० [प्रा० शंख] भीखने की क्रिया या भाव । खीज ।

भीखना^२—क्रि० प्र० [प्रा० शंख, हि० भीखना] १. किसी अनिवायं अनिष्ट के कारण दुःखी होकर बहुत पछताना और कुड़ना । खीजना । २. दुखड़ा रोना । अपनी विपत्ति का द्रुत मुनाता । उ०—छाट पड़े तर भीखन लागे, निरुधि भान गयो खोरी मी ।—कबीर सा० स०, भा० २, पृ० ५ ।

भीखना^३—संज्ञा पुं० १. भीखने की क्रिया या भाव । २. दुःख का वर्णन । दुखड़ा ।

भीगट—संज्ञा पुं० [दे०] पतवार धामनेवाला । मल्लाह । कणुभार ।—(लस०) ।

भीगम—संज्ञा पुं० [दे०] भौंभोले आकार का एक उच्चार का वृक्ष जिसका तना मोटा होता है और जिसमें डालियाँ अपेक्षाकृत बहुत कम होती हैं ।

विशेष—यह सारे उत्तरी भारत, आसाम, बरमा और लंका में पाया जाता है । इसमें से पीलापत्र लिए सफेद रंग का एक प्रकार का रोंव निकलता है जिसका व्यवहार छींटों की छपाई और घोषार्थ के रूप में होता है । इसकी छाल से टस्सर रंगा जाता है और चमड़ा सिभाया जाता है । इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं और हीर की लकड़ी से कई तरह के सामान बनते हैं ।

भीगा^१—संज्ञा पुं० [सं० चिङ्गट] १. एक प्रकार की मछली जो प्रायः सारे भारत की नदियों और बलाखियों आदि में पाई जाती है । भिगवा ।

विशेष—इस मछली के प्रगले भाग में छाती के नीचे बहुत पतले पतले घोर लंबे घाठ पैर होते हैं; इसीलिये प्रायः शास्त्रज्ञ इसे केकड़े आदि के प्रतंगत मानते हैं । घाठ पैरों के प्रतिरिक्त इसके दो बहुत लंबे धारदार डंभ भी होते हैं । इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं और यह संझाई में चार अंगुल से प्रायः एक हाथ तक होती है । इसका मिर घोर मुँह मोटा होता है और दुम की तरफ इसकी मोटाई बराबर कम होती जाती है । यह मछली अपना शरीर इस प्रकार झुका सकती है कि सिर के साथ इसकी दुम लग जाती है । इसके सिर पर अंगुलियों के आकार के दो छोटे छोटे अंग होते हैं जिनके सिरों पर आँखें होती हैं । इन आँखों से बिना मुँह यह चारों ओर देख सकती है । यह अपने घड़े सदा अपने पेट के प्रगले भाग में छाती पर ही रखती है । इसके शरीर के पिछले भाग पर बहुत कड़े छिलके होते हैं जो समय समय पर घाव से घाव साँप की कँचुकी की तरह उतर जाते हैं । छिलके उतर जाने पर कुछ समय तक इसका शरीर बहुत कोमल रहता है पर फिर ज्यों का त्यों हो जाता है । इसका मास वर्षों में बहुत स्थाविर होता है । बहुधा मास के लिये यह सुझाकर भी रखी जाती है ।

२. एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है । इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है । ३. एक प्रकार का कोड़ा जो कपास की फसल को हानि पहुँचाता है ।

भीगुर—संज्ञा पुं० [अनु० भी+कर] एक अभिद छोटा कोड़ा । घुरघुरा । जंजीरा । भिल्लो ।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं । यह सफेद, काला और भूरा कई रंगों का होता है । इसकी छद्म टांगें घोर दो बहुत बड़ी मुँछें होती हैं । यह प्रायः घंघेरे पत्तों में पाया जाता है तथा खेतों और मैदानों में भी होता है । पत्तों में यह कोमल पत्तों आदि को काट डालता है । इसकी आवाज बहुत तेज भी भी होती है और प्रायः बरसात में प्राधिकता से सुनाई देती है । नीच जाति के लोग इसका नाम भी जानते हैं ।

भीमझा^१—संज्ञा पुं० [दे०] दे० 'झिझड़ा' । उ०—जैा चील भीमझे पर छापा मारे ।—शरद, पृ० ७३ ।

भीमना^१—क्रि० प्र० [अनु०] भौंभाना । लिबलाना ।

भीमो^१—संज्ञा पुं० [दे०] १. एक रस्म । भिक्षिया ।

विशेष—इस रस्म में प्राशिवन शुक्ल चतुर्दशी को मिट्टी की एक कच्ची हाड़ी में बहुत से छेद करके उसके बीच में एक दीया बालकर रखते हैं । इसे कुमारी कन्यार् हाथ में लेकर अपने संबंधियों के घर जाती है और उस शेषक का देन उनके मिर में लगाती है और वे सोच उन्हें पुत्र देने हैं । उनी द्रव्य से वे सामग्री भोगकर पूणिमा के दिन पुत्रन करती हैं और प्रापस में प्रसाद बाँटती हैं । लोगों का यज्ञ भी विराम है कि इसका तेल लगाने से सँतुषा रोग नहीं होता अथवा अच्छा हो जाता है ।

२. मिट्टी की वह कच्ची हाड़ी जिसमें छेद करके इस काम के लिये दीया रखते हैं ।

भीटना—क्रि० प्र० [देश०] दे० 'भीकना' ।

भीपना—क्रि० प्र० [देशी रूप] १. दे० 'भैपना' । २. 'डैपना' ।

भीमना—क्रि० प्र० [हि० भूमना] दे० 'भूमना' । उ०—मानों भीम रहे हैं तब भी मंद पवन के भोको से ।—पंचवटी, पृ० ५ ।

भीवर^७—संज्ञा पु० [सं० भीवर] दे० 'भीवर' । उ०—उज्जल उदक धुवाया घोघण, लेंधे पार सरिता पृष्ठ सोयण । प्रभु भीवर कीधो भवपार ।—रघु० क०, पृ० ११० ।

भीसा—संज्ञा पु० [हि० भीमी] दे० 'भीमी' ।

भीसी—संज्ञा स्त्री० [मनु० या हि० भीना (= बहुत महीन)] फुहार । छोटी छोटी बूंदों की वर्षा । वर्षा की बहुत महीन बूंदें ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

भीक^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'भीका' । उ०—काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे । तिरगुन डारे भीक पकर के सबे निकारे ।—पलटू०, पृ० ८४ ।

भीक^२—क्रि० वि० [हि०] भटके से । शीघ्रता से । उ०—काबाडी नित काटता, भीक कुहाड़ा भाड़ ।—बाकी० प्र०, भा० १, पृ० ३२ ।

भीका—संज्ञा पु० [सं० शिकव] रस्सी का लटकता हुआ जालदार फँदा जिसपर बिल्ली आदि के डर से दूध या खाने की दूसरी वस्तुएं रखते हैं । झोका । सिकहर ।

भीखना—क्रि० प्र० [प्रा० भंख] दे० 'भीखना' ।

भीमा^१—वि० [सं० भीम] [वि० स्त्री० भीमी] भीना । भँकरा ।

भीमा^७, भीमा^७—वि० [सं० भीम, प्रा० भीम] दे० 'भीमा' । उ०—(क) पाँखी हों तें पातला, धुँवाँ ही तें भीम ।—कबीर प्र०, पृ० २६ (ख) मनवाँ तो घबर बस्या बहुतक भीम होइ ।—कबीर प्र०, पृ० २० । (ग) मारु सेकइ हत्यड़ा, भीमो धँगारेइ ।—ढोला०, पृ० २०६ ।

भीत—संज्ञा पु० [लण०] जहाज के पाल का बटन ।

भीन^१—वि० [सं० भीण; प्रा० भीण] दे० 'भीना' ।

भीना—वि० [सं० भीण] [वि० स्त्री० भीनी] १. बहुत महीन । बारीक । पतला । उ०—प्रफुल्लित हँ के धानि बीन है जमोवा रानि भीनियँ भँगुली तामें कंचन को तगा ।—सूर (शब्द०) । २. जिसमें बहुत से छेद हों । भँकरा । ३. गुल दुबला । दुर्बल । ४. मंद । धीमा ।

भीनासारी^१—संज्ञा पु० [हि०] धान का एक प्रकार ।

भीमना—क्रि० प्र० [हि० भूमना] दे० 'भूमना' । उ०—बब नील कुंज हैं भीम रहे, कुसुमों की कथा न बंद हुई ।—कामायनी, पृ० ६५ ।

भीमर—संज्ञा पु० [सं० भीवर] दे० 'भीवर' ।

भीर^७—संज्ञा पु० [देश०] मार्ग । रास्ता । उ०—हरिजन सहजे उत्तरि गए ज्यों सुखे ताल की भीर ।—मोखा प्र०, पृ० २४ ।

भीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भीगुर [को०] ।

भीरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भीगुर । फिल्ली [को०] ।

भील—संज्ञा स्त्री० [सं० भीर (= जल)] १. वह बहुत बड़ा प्राकृतिक जलाशय जो चारों ओर जमीन से घिरा हो ।

विशेष—भीलें बहुत बड़े मैदानों में होती हैं और प्रायः इनकी लंबाई और चौड़ाई सैकड़ों मील तक पहुँच जाती है । बहुत सी भीलें ऐसी होती हैं जिनका सोता उन्हीं के तल में होता है और जिनमें न तो कहीं बाहर से पानी आता है और न किसी ओर से निकलता है । ऐसी भीलों के पानी का निकास बहुधा माप के रूप में होता है । कुछ भीलें ऐसी भी होती हैं जिनमें नदियाँ आकर गिरती हैं और कुछ भीलों में से नदियाँ निकलती भी हैं । कभी कभी भीम का संबंध नदी आदि के द्वारा समुद्र से भी होता है । अमेरिका के संयुक्त राज्यों में कई ऐसी भीलें हैं जो माघस में नदियों द्वारा सब एक दूसरे से संबद्ध हैं । भीलें खारे पानी की भी होती हैं और मीठे पानी की भी ।

२. तालाबों आदि से बड़ा कोई प्राकृतिक या बनावटी जलाशय । बहुत बड़ा तालाब । ताल । सर ।

भीलणा^७—क्रि० प्र० [सं० स्ना, प्रा० भिल्ल] स्नान करना । नहाना । उ०—ढोला हूँ तुझ बाहिरी, भीलण गइय तलाइ । उजल काला नाग जिउँ लहिरी ले ले लाइ ।—ढोला०, पृ० ३६३ ।

भीलम—संज्ञा स्त्री० [हि० भिल्लम] दे० 'भिल्लम' । उ०—साँगि समाहि कियो सुर ऐसी, दूटि परा सिर भीलम जाई ।—सं० दरिया, पृ० ६३ ।

भीलरा^७—संज्ञा पु० [हि० भील, अथवा छीलर] छोटी भील । छोटा तालाब । छीलर । उ०—हंस बसे सुख सागरे, भीलर नहि आवै ।—कबीर प्र०, भा० ३, पृ० ४ ।

भीली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भिल्ली] १. मलाई । २. दे० 'भिल्ली' ।

भीवर^७—संज्ञा पु० [सं० भीवर] मीभी । मरलाह । मछुआ । दे० 'भीवर' ।

भुंड—संज्ञा पु० [सं० भुण्ड] १. पेड़ । २. झाड़ी [को०] ।

भुंड—संज्ञा पु० [सं० भूय] बहुत से मनुष्यों, पशुओं या पक्षियों आदि का समूह । प्राणियों का समुदाय । बृंद । गिरोह । बैसे, भेड़ियों का भुंड, कबूतरों का भुंड ।

मुहा०—भुंड के भुंड=संख्या में बहुत अधिक (प्राणी) ।

भुंड में रहना—अपने ही वर्ग के दूसरे बहुत से जीवों में रहना ।

भुंडी—संज्ञा स्त्री० [देशी भुंड (= खूँटी) या सं० भुण्ड (= झाड़)] १. वह खूँटी जो पोषों को काट लेवे के बाद खेतों में लड़ी रह जाती है । २. चिखमन या परदा लटकाने का कुसाबा जो प्रायः कुंड़े में लपटा रहता है ।

भुँकवाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भुँकवाई' ।

भुँकवाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भुँकवाना' ।

भुँकाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भुँकाई' ।

भुंगना^१—संज्ञा पु० [हि० बिगना, छुँपना] छुगनु ।

भुंगरा^१—संज्ञा पु० [देश०] लोवा नामक पक्ष ।

भुँकना—संज्ञा पुं० [भुङ्ग] बच्चों का एक खिलौना । भुङ्गना ।
भुँकलाना—क्रि० प्र० [भुङ्ग] खिलाना । फिटकटाना । बहुत
दुःखी और क्रुद्ध होकर बात करना । चिड़चिड़ाना ।

भुँकलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० भुँकलाना] खीज । चिड़ ।

भुँकाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] निदा । चुगली । चुगलखोरी ।

भुँकायो—संज्ञा स्त्री० [हि० ?] खीज । भुँकलाहट । उ०—
माखन चोर री में पायो । नितप्रति रीती देखि कमोरी मोहि
प्रति लगत भुँकायो ।—सूर०, १०।१८८ ।

भुङ्कभोरना—क्रि० प्र० [भुङ्ग] दे० 'भुङ्कभोरना' ।

भुङ्कना—क्रि० प्र० [भं० भुङ्ग, युङ्ग, हि० भुङ्ग] १. किसी खड़ी
चीज के ऊपर के भाग का नीचे की ओर टेढ़ा होकर लटक
जाना । ऊपरी भाग का नीचे की ओर लटकना । निहुरना ।
नवाना । जैसे, घादमी का सिर या कमर भुङ्कना ।

मुहा०—भुङ्ग भुङ्ग पड़ना=नशे या नींद आदि के कारण किसी
वस्तु का सीधा या झुकी तरहू खड़ा या बैठा न रह सकना ।
उ०—प्रमिय हलाहल मदमरे सेत स्याम रतनार । जियत
भरत भुङ्गि भुङ्गि परत जेहि चितवत एक बार ।—(शब्द०) ।

२. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का किसी ओर प्रवृत्त
होना । जैसे, खड़ी का भुङ्कना । ३. किसी खड़े या सीधे
पदार्थ का किसी ओर प्रवृत्त होना । जैसे, खम्भे या तस्ते का
भुङ्कना । ४. प्रवृत्त होना । दत्तचित्त होना । रज्जु होना ।
मुजातिब होना । ५. किसी चीज को लेने के लिये आगे
बढ़ना । ६. नम्र होना । विनीत होना । धवसर पड़ने पर
अभिमान या उग्रता न दिखलाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

७. क्रुद्ध होना । रिसाना । उ०—(क) सुनि प्रिय वचन मलिन
मनु जानी । भुङ्गी रानि भवरहु भरणानी ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) जब भूठो अभिमान करति सिय भुङ्गति हमारे तई ।
सुख ही रहसि मिली रावण को अपने सहज सुभाई ।—सूर
(शब्द०) । (घ) मनत बसे निसि की रिसनि उर भर
राखो बिसेबि । तऊ लाज भाई भुङ्गत जरे लजोई देखि ।—
बिहारी (शब्द०) । † ८. शरीरान्त होना । मरना ।

भुङ्कमुख—संज्ञा पुं० [हि० भुङ्कना+मुख] प्रातःकाल या संध्या का
वह समय जब कि कोई व्यक्ति स्पष्ट नहीं पहचाना जाता ।
ऐसा धँधेरा समय जब कि किसी व्यक्ति या पदार्थ को पहचानने
में कठिनाता हो । भुटपुटा ।

भुङ्करना—क्रि० प्र० [भुङ्ग] भुँकलाना । खिलाना ।

भुङ्कराना—क्रि० प्र० [हि० भुङ्का] भुँकना । उ०—क्यों
साँकरे कुंज मय करतु भौंभ भुङ्करात । मंथ मंथ मास्त तुरंग
खँदव बाधत जात ।—बिहारी (शब्द०) ।

भुङ्कवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० भुङ्कवाना] १. भुङ्कवाने की क्रिया या
भाव । २. भुङ्कवाने की मजदूरी ।

भुङ्कवाना—क्रि० प्र० [हि० भुङ्कना] भुङ्काने का काम दूसरे से
कराना । किसी को भुङ्काने में प्रवृत्त करना ।

भुङ्काई—संज्ञा स्त्री० [हि० भुङ्कना] १. भुङ्काने की क्रिया या भाव ।
२. भुङ्काने की मजदूरी ।

भुङ्काना—क्रि० प्र० [हि० भुङ्कना] १. किसी खड़ी चीज के ऊपरी
भाग को टेढ़ा करके नीचे की ओर लाना । निहुराना ।
नवाना । जैसे, पेड़ की डाल भुङ्काना । २. किसी पदार्थ के एक
या दोनों सिरों को किसी ओर प्रवृत्त करना । जैसे, वेत
भुङ्काना, खड़ भुङ्काना । ३. किसी खड़े या सीधे पदार्थ को
किसी ओर प्रवृत्त करना । ४. प्रवृत्त करना । रज्जु करना ।
५. नम्र करना । विनीत बनाना । ६. अपने अनुकूल करना ।
अपने पक्ष में करना ।

भुङ्कामुकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भुङ्कामुखी' । उ०—सखि बिखर
गई हैं कलियाँ । कहाँ गया प्रिय भुङ्कामुकी में करके वे रंग-
रलियाँ ।—साकेत, पृ० २६७ ।

भुङ्कामुखी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भुङ्कामुख' । उ०—जानि भुङ्का-
मुखी मेघ छपाय के बागरी ले घर तँ निकरी ती ।—ठाकुर
(शब्द०) ।

भुङ्कारा—संज्ञा पुं० [हि० भुङ्कारा] हवा का भौंका । भुङ्कारा ।

भुङ्काव—संज्ञा पुं० [हि० भुङ्कना] १. किसी ओर लटकने, प्रवृत्त
होने या भुङ्कने की क्रिया । २. भुङ्कने का भाव । ३. डाल ।
उतार । ४. प्रवृत्ति । मन का किसी ओर लगना ।

भुङ्कावट—संज्ञा स्त्री० [हि० भुङ्कना+वावट (प्रत्य०)] १. भुङ्कने या
नम्र होने की क्रिया या भाव । २. प्रवृत्ति । बाह । भुङ्काव ।

भुङ्गिया—संज्ञा स्त्री० [? या देश०] भोपड़ी । कुटिया । उ०—
हरि तुम क्यों न हमारे आए । ताके भुङ्गिया में तुम बैठे, कोन
बढ़प्यन पायो । जाति पाति कुलहू तँ स्यारी, है दासी को
जायो ।—सूर०, १।२४४ ।

भुङ्गी—संज्ञा स्त्री० [हि० भुङ्गिया] दे० 'भुङ्गिया' ।

भुङ्काना, भुङ्कलाना—क्रि० प्र० [सं० युङ्ग, प्रा० भुङ्ग; हि०
भुँकलाना] उत्तेजित करना । आगे बढ़ाना । भिड़ा देना ।
संघर्ष कराना ।

भुङ्काऊ—वि० [भुङ्काऊ] दे० 'भुङ्काऊ' । उ०—बाजत भुङ्काऊ
सहनाई सिधू राग पुनि सुनत ही काहर की छूटि जाव कल है ।
—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ४८४ ।

भुङ्कार—वि० [हि० भुङ्क+आर (प्रत्य०)] दे० 'भुङ्कार' ।
उ०—गुजरात देश सितर हमार । बालुका राह बालुक
भुङ्कार ।—पृ० रा०, १।४३० ।

भुट—संज्ञा पुं० [हि० भूठ] दे० 'भूठ' । उ०—देख सखि भुट
कमान । कारव किछुमो बुझइ नाहि पारिए तब काहे रोखल
कान ।—बिद्यापति, पृ० ४२९ ।

भुटपुट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भुटपुटा' । उ०—घरे, उस धूमिल
विजन में ? स्वर मेरा या चिकना ही, सब घना हो बला
भुटपुट ।—हरी वास०, पृ० ३२ ।

भुटपुटा—संज्ञा पुं० [भुङ्ग] कुछ धँधेरा और कुछ उजला समय । ऐसा
समय जब कि कुछ धँधकार और कुछ प्रकाश हो । भुङ्कमुख ।

भुटलाना—क्रि० प्र० [हि० भूठ] दे० 'भुटलाना' ।

भुटलाना—क्रि० प्र० [हि० भूठा अथवा सं० अघ्यस्त > अघ्यभट्ट >
अघ्यभट्ट > भूठ] भूठा करना । जुठारना ।

भुङ्गा—वि० [हि० भुङ्गा] जिसके खड़े खड़े ओर बिखरे हुए बाज

हों। भोंटेवाला। जटावाला। दे० 'भोटंग'। उ०—जोगिनी भुटंग भुटं भुटं बनी तापसी सी तीर तीर बैठी छो समयसरि सोरि के।—नुवसी प०, पृ० १२५।

भुट्टा^(१)—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र, हि० जुट्ट] विरोध। भुट्ट। उ०—छोहो परि छुट्टे कैसी छुट्टे भुट्टक भुट्टे भुव छुट्टे।—पुत्रान०, पृ० ११।

भुट्टा—वि० [हि० भूटा] दे० 'भूटा'।

भुट्टकाना—क्रि० स० [हि० भूट] १. भूटी बात कहकर प्रथवा किसी प्रकार (विशेषतः बच्चों आदि को) धोखा देना। २. दे० 'भुट्टाना'।

भुट्टाना—क्रि० स० [हि० भूट + णाना (प्रत्य०)] १. भूटा ठहराना। भूटा प्रमाणित करना। भूटा बनाना। २. भूट कहकर धोखा देना। भुट्टकाना।

भुट्टाई^(२)—संज्ञा स्त्री० [हि० भूट + णाई (प्रत्य०)] भूटापन। धमत्यता। भूट का भाव। उ०—(क) जानि परत नहिं सौं भुट्टाई सेन नरावत ये भूटैया।—सूर (शब्द०)। (ख) धाधि भयत मन ध्याधि विकल तन बचन मलीन भुट्टाई।—तुलसी (शब्द०)।

भुट्टाना—क्रि० स० [हि० भूट + णाना (प्रत्य०)] भूटा ठहराना। भूटा साधित करना। भुट्टकाना।

भुट्टामुठी^(३)—क्रि० वि० [हि० भूट] दे० 'भूटामुठी'।

भुट्टालना—क्रि० प्र० [हि०] १. दे० 'भूटालना'। २. दे० 'जुट्टारना'।

भुन—संज्ञा स्त्री० [शब्द०] १. एक प्रकार की चिड़िया। २. दे० 'भुनभुनी'।

भुनक^(४)—संज्ञा पुं० [भुन०] मृगपुर का शब्द।

भुनकना^(५)—क्रि० प्र० [भुन०] भुन भुन शब्द करना। भुन भुन बोलना या बजना।

भुनकना^(६)—संज्ञा पुं० [भुन०] दे० 'भुनभुनी'।

भुनका^(७)—संज्ञा पुं० [हि०] १. घोखा। छल। २. दे० 'भुनभुनी'। उ०—दुनो घोर भुनका भुन भुन बाजे, ताहीं दीपक ले बारी।—संत हरियार, पृ० १०६।

भुनकारी^(८)—क्रि० [हि० भूना] [स्त्री० भुनकारी] भिन्नता। पतला। भीना। मलीन। बारीक। उ०—अंगिया भुनकारी खरी शितजग की मेरुकी कुच दू पर ली।—(शब्द०)।

भुनकारी^(९)—संज्ञा स्त्री० [हि० भुनकार] दे० 'भुनकारी'।

भुनभुन—संज्ञा पुं० [भुन०] भुन भुन शब्द जो तुपूर धावि के बजने से होता है। उ०—अधन तरनि लख ज्योति अगमिनि भुन भुन करत पाय वैजनियां।—सूर (शब्द०)।

भुनभुना—संज्ञा पुं० [हि० भुन भुन से भुन०] [स्त्री० भुनभुनी] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खिलौना जो चातु, काठ, ताड़ के पत्तों या कागज धावि से बनाया जाता है। धुनधुना। उ०—कधहुँक ले भुनभुना बजावति मोठी बतियव बोले।—भारतेंदु पं०, भा० २, पृ० ४६७।

विशेष—यह कई आकार और प्रकार का होता है, पर साधारणतः

इसमें पकड़ने के लिये एक डंडी होती है जिसके एक या दोनों सिरों पर पोला गोल लट्टू होता है। इसी लट्टू में कंकड़ या किसी चीज के छोटे छोटे दाने भरे होते हैं जिनके कारण उसे हिलाने या बजाने से भुन भुन शब्द होता है।

भुनभुनाना^१—क्रि० प्र० [भुन०] भुन भुन शब्द होना। धुंधक के जैसा बोलना।

भुनभुनाना^२—क्रि० स० भुन भुन शब्द उत्पन्न करना। भुन भुन शब्द निकालना।

भुनभुनियाँ^३—संज्ञा स्त्री० [भुन०] सनई का पोधा।

भुनभुनियाँ^४—संज्ञा स्त्री [भुन०] १. पैर में पहनने का कोई आभूषण जो भुन भुन शब्द करे। २. वेड़ी। विगड़।

क्रि० प्र०—पहनना।—पहनना।

भुनभुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० भुनभुनाना] हाथ या पैर के बहुत देर तक एक स्थिति में मुड़े रहने के कारण उसमें उत्पन्न एक प्रकार की मनमनाहट या धीम। २. दे० 'भुनभुनी'।

भुनी—संज्ञा स्त्री [शब्द०] जलाने की पतली लकड़ी।

भुनुक^(५)—संज्ञा पुं० [भुनु०] भुन भुन बजने की आवाज। उ०—भुनुक भुनुक वह पगनि की बोलनि। मधुर ते मधुर सुनुतरी बोलनि।—नंद पं०, पृ० २४५।

भुनुकी^६—संज्ञा स्त्री [भुनु०] दे० 'भुनभुनी'—१। उ०—पावों में भुनुकी लड़ गई।—जिप्सी, पृ० १३०।

भुपभुपी—संज्ञा स्त्री [भुप०] दे० 'भुनभुनी'।

भुपरी^७—संज्ञा स्त्री [शब्द०] दे० 'भुनभुनी'। उ०—साधुन की भुपरी भली ना साकट को गाय। चंदन की कुटकी भली ना बबूल बनराव।—कबीर (शब्द०)।

भुप्पा—संज्ञा पुं० [भुप्पा०] १. दे० 'भुनभुनी'। २. दे० 'भुनभुनी'।

भुनभुनी—संज्ञा स्त्री [शब्द०] एक प्रकार का गहना जो देहाती स्त्रियाँ कान में पहनती हैं।

भुमुक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भुनभुनी'। उ०—पाँच रागिनी भुमुक पचीसो, छठवें घरम नगरिया।—धरम०, पृ० ३४।

भुमका—संज्ञा पुं० [हि० भुमना] १. कान में पहनने का एक प्रकार का भूलनेवाला गहना जो छोटी गोल कटोरी के आकार का होता है। उ०—सिर पर है चंदन शीश फूल, कानों में भुमके रहे भूष।—प्राप्ता, पृ० ४०।

विशेष—इस कटोरी का मुँह नीचे की ओर होता है और इसकी पेदी में एक कुंदा लगा रहता है जिसके सहारे यह कान में नीचे की ओर लटकती रहती है। इसके किनारे पर सोने के तार में गुथे हुए मोड़ियों धावि की आबर लगी होती है। यह सोने, चाँदी या परावर धावि का और सादा तथा जड़ाऊ भी होता है। यह पहना भी कान में पहना जाता है और कदम फूल के नीचे लटककर भी।

२. एक प्रकार का पोधा जिसमें भुमके के आकार के फूल लगते हैं। ३. इस पोधे का फूल।

भुमङ्गना^(८)—क्रि० प्र० [हि० भुमङ्गना] दे० 'भुमङ्गना'। उ०—खे

भूमनि घन गगन घन भौ तम तोम बिमेल । निसि बासर समुझ
न परत प्रफुलित पंकज पेख ।—स० सप्तक, पु० ३९३ ।

भूमना^१—वि० [हि० भूमना] [वि० बी० भूमनी] भूमनेवाला ।
हिलनेवाला ।

भूमना^२—संज्ञा पु० [हि०] वह देश जो अपने खूँटे पर बँधा हुआ अपने
पिछले पैर उठा उठाकर भूमा करे । यह एक कुलश्रम है ।

भूमरन^३—संज्ञा बी० [हि० भूमना] भूमने का भाव । लहरने
का कार्य । उ०—वेनी सिविल असिन कच भूमरन लुबित पीठ
पर सोहे ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पु० ५३२ ।

भूमरा—संज्ञा पु० [देश०] लुहारों का एक प्रकार का घन या बहुत
भारी हथौड़ा जिसका व्यवहार खान में से लोहा निकालने में
होता है ।

भूमरी—संज्ञा बी० [देश०] १. काठ की मुँगरी । २. गन्ध पीटने
का घोषार । पिटना ।

भुमाऊ—वि० [हि० भूमना] भूमनेवाला । जो भूमता है ।

भुमाना—क्रि० स० [हि० भूमना का स० रूप] किसी को भूमने में
प्रवृत्त करना । किसी बीज के ऊपरी भाग को चारों ओर
धीरे धीरे हिलाना ।

भुमिरना^४—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भूमना' ।

भुरकुट—वि० [प्रभु०] १. भुरक्या हुआ । भूखा हुआ । २. दुबला ।
कृश ।

भुरकुटिया^५—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पक्का लोहा जिसे
बेड़ी कहते हैं ।

बिरोष—दे० 'खेड़ी'—१ ।

भुरकुटिया^६—वि० [प्रभु०] दुबला पतला । कृश ।

भुरकुटा^७—संज्ञा पु० [हि० भुर + कृष] किसी बीज के बहुत छोटे
छोटे टुकड़े । पुर ।

भुरकुरी—संज्ञा बी० [प्रभु०] १. कोंपकी को कुरी के पदों पर प्राप्ति
है । २. कोंपकी । कपन ।

भुरना—क्रि० प्र० [हि० भुर या भुर] १. सुखना । सुख होना ।
दे० 'भुरना' । उ०—हाइ भई भुरि किगड़ी नखे भई सब
छाति । रोष रोष तन धुन उठे कहौ विषा कैहि मति ।—
जायसी (शब्द०) । २. बहुत अधिक दुःखी होना या शोक
करना । उ०—(क) सौभ भई भुरि भुरि पग हेरो । कोच
बौ धरी करी पिय केरो ।—जायसी (शब्द०) । (ख) इसका
बोझ धापके छिर है, धाप इसकी खबर न खेंगे तो समार
में इसका कहीं रता न समेगा । वे बेचारे यो हो भुर भुर
कर मर जायेंगे ।—भोनिवासदास (शब्द०) । ३. बहुत
अधिक चिंता, रोग या परिश्रम आदि के कारण दुर्बल
होना । घुसना । उ०—(क) ये दोऊ भेरे गाइ चरैया ।
आबि परन नहि सौचि कठाई चारत वेगु भुरैया । मूरदास
जमुदा में चेरी कहि कहि लेति नखैया ।—सूर०, १०।५।३ ।
(ख) सूनी के परम पद, उनी के अनंत मद सूनी के नदीस
नव हंदिरा भुरे परी ।—देव (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना (वच०) ।—उपरना । उ०—
सिद्धि की सिद्धि दिगपालन की रिद्धि वृद्धि वेधा की समृद्धि
सुरसदन भुरे परी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

भुरमुट—संज्ञा पु० [सं० भुट (= भाड़ी)] १. कई भाड़ों या पत्तों
आदि का ऐसा समूह जिससे कोई स्थान ढक जाय । एक ही
में भिजे हुए या पाय पाय कई भाड़ या छुप । उ०—पानेदवन
बिबोदभर भुरमुट भणै बने न परत भाड़यो ।—मनानंद,
पु० ४४५ । २. बहुत से लोगों का समूह । घिरोह । उ०—
जन इक मेंहु भुरमुट होइ बीता । हर मेंहु चड़े रहै सो बीता ।
—जायसी (शब्द०) । ३. बाहर या छोड़ने आदि से शरीर
को चारों ओर से छिपाये या ढक देने की क्रिया ।

मुहा०—भुरमुट मारना = बाहर या छोड़ने आदि से सारा शरीर
इस प्रकार ढक देना कि जिसमें खली कोई पहचान न सके ।

भुरबना^८—संज्ञा बी० [हि० भुरना + बन (प्रत्य०)] वह पंख जो
किसी बीज के सुखने के कारण उसमें से निकल जाता है ।

भुरबना^९—क्रि० प्र० [हि० भुरना या मारना] दुःखी होना ।
चिंता से क्षीण होना । दे० 'भुरना' । उ०—मन मन भुरवै
हुसहिनि काह कीन्ह करतार हो ।—कबीर ग्रं०, पु० २ ।

भुरबाना—क्रि० स० [हि० भुरना] १. सुखाने का काम दूसरे से
से कराना । दूसरे को सुखाने में प्रवृत्त करना । २. भुरावा ।
उ०—कोख रंजक भुरवतहि लोली आरहि पोछहि ।—
प्रेमघन०, भा० १, पु० २४ ।

भुरसना—क्रि० प्र० क्रि० स० [हि० भुलसना] दे० 'भुलसना' ।
उ०—पानेदवन सौं उपरि मिलौगी भुरमति बिरहा भर मैं ।
—मनानंद, पु० ५३३ ।

भुरसाना—क्रि० स० [हि० भुलसाना] दे० 'भुलसाना' ।

भुरहुरी—संज्ञा बी० [हि० भुरहुरी] दे० 'भुरहुरी' ।

भुराना^{१०}—क्रि० स० [हि० भुरना] सुखाना । भुरक करना ।

भुराना^{११}—क्रि० प्र० १. सुखना । २. दुख या भय से घबरा जाना ।
दुःख से स्तब्ध होना । उ०—यह बानी सुनि खारि भुरानी ।
मीन भए माबो चित पानी ।—सूर (शब्द०) । ३. दुबला
होना । क्षीण होना । दे० 'भुरना' ।

संयो० क्रि०—जाना ।

भुरावन—संज्ञा बी० [हि० भुरना + बन (प्रत्य०)] वह पंख जो किसी
बीज को सुखाने के कारण उसमें से निकल जाता है । भुरवन ।

भुरावना^{१२}—क्रि० प्र० [हि० भुरना] दे० 'भुराना' । उ०—मंजन
के बित न्हागके पंख घोंबोछि के बार भुरावन जानी ।—मति०,
पु० ३२३ ।

भुरी^{१३}—संज्ञा बी० [हि० भुरना] किसी बीज की सतह पर संबी रेखा
के रूप में उभरा या घंसा हुआ चिह्न जो उस बीज के सुखने,
मुड़ने या पुरानी हो जाने आदि के कारण पड़ जाता है ।
सिकुड़न । मिचवड । शिकन । जैसे, ग्राम पर की भुरी, चेहरे
पर की भुरी ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

विशेष—बहुधा इसका प्रयोग बहुवचन में ही होता है। जैसे—घब
वे बहुत बुढ़े हो गए, उनके सारे शरीर में झुरियाँ पड़ गई हैं।

मुलकना^७—क्रि० घ० [हि० भुलना] दे० 'भूलना'। उ०—सुरह
सुगंधी बास मोती काने भुलकते। सूती मंदिर सास जाणू
दोसह जागवी।—दोला०, दू० ५०७।

मुलका—संज्ञा पु० [धनु०] दे० 'भुलना'।

मुलना^१—संज्ञा पु० [हि० भूलना] स्थियों के पहनने का एक प्रकार
का ढोला ढाबा कुरता। भूला। भूला।

मुलना^२—वि० [हि० भूलना] भूलनेवाला। जो भूलता हो।

मुलना^३—संज्ञा पु० [सं० दोलन या दोला] दे० 'भूला'।

मुलनिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भुलनी + इया (प्रत्य०)] दे०
'भुलनी'। उ०—भुलनियावासी हंसि के जियरा ले गेली
हुमार।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ३९३।

मुलनी—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलना] १. सोने घाबि के तार में गुथा
हुया छोटे छोटे मोतियों का गुच्छा जिसे स्त्रियाँ शोभा के लिये
नाक की नथ में लटका लेती हैं अथवा बिना नथ के एक
आधुवण की तरह पहनती हैं। २. दे० 'भूमर'।

मुलनीबोर—संज्ञा पु० [देश०] धान का बाख।—(कहारों की परि०)।

मुलमुला^१—वि० [धनु०] दे० 'भिलमिल'। उ०—जाननि कनिक
पत्र चक्र चमकत चार ध्वजा भुपमुल भलकति प्रति सुखवाह।
—केशव (शब्द०)।

मुलमुला^२—वि० [धनु०] [वि० स्त्री० भुलमुली] दे० 'भिलमिल'।
उ०—भीने पठ मे भुलमुली भलकति ओप भवार। सुरतह की
मनु सिधु मै लसति मपरलव डार।—विहारी (शब्द०)।

मुलबना^७—क्रि० स० [हि० भुलाना] दे० 'भुलाना'। उ०—
निकट रहति जछपि श्री ललना। कब बाँधि कब भूलवै पलना।
—नंद० प्र०, पृ० २५०।

मुलबा—संज्ञा पु० [देश०] १. एक प्रकार की कपास को बहुराष्ट्र,
बनिया, गाजीपुर और गोंडा घाबि में उत्पन्न होती है। यह
अच्छी जाति की है पर कम निकलती है। यह जेठ में तैयार
होती है, इसलिये इसे जेठवा भी कहते हैं। २. दे० 'भूला'।

मुलवाना—क्रि० स० [हि० भुलना] भुलाने का काम दूसरे से
कराना। दूसरे का भुलाने में प्रवृत्त करना।

मुलसना^१—क्रि० घ० [सं० वलन + संज्ञ] १. किसी पदार्थ के ऊपरी
भाग या तल का इस प्रकार प्रसृत: बन जाना कि उसका रंग
काला पड़ जाय। किसी पदार्थ के ऊपरी भाग का अथवला
होना। भौंसना। जैसे,—यह लकड़ा धँसीठी पर बिर पड़ा
ब; इसी से इसका सारा हाथ भुलस गया। २. बहुत अधिक
गर्मी पड़ने के कारण किसी चीज के ऊपरी भाग का सुखकर
कुछ काला पड़ जाना। जैसे,—गरमी के दिनों में कोयल
पोथी की पलियाँ भुलस जाती हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

मुलसना^२—क्रि० स० १. किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल को

इस प्रकार प्रसृत: जाना कि उसका रंग काला पड़ जाय और
तल खराब हो जाय। भौंसना। जैसे—उन्होंने जापूझ कर
अपना हाथ भुलस लिया। २. अधिक गर्मी से किसी पदार्थ
के ऊपरी भाग को सुखाकर अथवला कर देना। जैसे,—घाब
दोपहर की धूप ने सारा शरीर भुलसा दिया।

संयो० क्रि०—जानना।—देना।

मुहा०—मुँह भुलसना = देखो 'मुँह' के मुहावरे।

मुलसवाना—क्रि० स० [हि० भुलसवा का प्रेर० रूप] भुलसने का
काम दूसरे से कराना। दूसरे को भुलसने में प्रवृत्त करना।

मुलसाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'भुलसना'। २. दे० 'भुलसवाना'।

मुलाना—क्रि० घ० [हि० भूलना] हिडोलें या भूले में बैठकर
हिलाना। किसी को भूलने में प्रवृत्त करना। उ०—रहो रहो
नाहीं नाहीं अब ना भुलाओ लाल बाबा की ली मेरो ये जुवल
जंघ पहरात।—तोष (शब्द०)। २. घबर में लटकाकर या
टांगकर इधर उधर हिलाना। बार बार भौंका देकर हिलाना।
३. कोई चीज देने या कोई काम करने के लिये बहुत अधिक
समय तक घासरे में रखना। अनिश्चित या अनिर्णीत अवस्था
में रखना। कुछ निष्पत्ति या निपटेरा न करना। जैसे—इस
कारीगर को कोई चीज मत दो, यह महीनों भुलावा है।

मुलाबना^७—क्रि० स० [हि० भुलाना] दे० 'भुलाना' उ०—
लेह उद्यंग कबहुँक हलरावह। कबहुँक पालने घालि भुलावह।
—तुलसी (शब्द०)।

मुलाबनि^७—संज्ञा स्त्री० [हि० भुलाना] भुलाने का भाव या
क्रिया।

मुलुआ^१—संज्ञा पु० [हि० भूआ] दे० 'भूला'।

मुलौवा^७—संज्ञा पु० [हि० भूला (= कुरता)] बनाना कुरता।

मुलौवा^७^२—वि० [हि० भूलना] जो भूलता या भुलाया जा
सकता हो। भूलने या भूल सकनेवाला।

मुलौवा^३—संज्ञा पु० भूलना। पालना। भूला।

मुल्ला^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'भूला'।

मुहिरना^१—क्रि० घ० [हि० ?] लवना। लावा जाना। उ०—
रतव पदारथ नग जं बलावे। औरत मँह देखे मुहिराने।—
जायसी (शब्द०)।

मुहिराना^१—क्रि० स० [हि० ?] लादना। बोझ रखना।

मूँक^७^१—संज्ञा पु० [हि० भौंक] दे० 'भौंका'। उ०—(क) मुहमद
गुरु जो विधि खिली का कोई सेहि फूँक। जेहि के भार जव
पिर रहा उकै न पवन के मूँक।—जायसी (शब्द०)। (ख)
ह्यौ पपाकर पौन के मूँकन बँधलिया कूकन को सहि लेहैं।—
पपाकर (शब्द०)।

मूँक^७^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'भौंक'। उ०—किफिनी की कमकानि
भुलाबनि भूँकनि सौ भूँकि जाय कटी की।—देव (शब्द०)।

मूँकना^७^१—क्रि० स० [हि०] १. दे० 'भौंकना'। २. दे०
'भूलना'।

मूँका^(१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भोंका' । उ०—यह गड़ छार होइ एक भूँके ।—जायसी (शब्द०) ।

मूँखना^(१)—क्रि० प्र० [हि०] 'भोंखना' । उ०—अवधि गनत इकटक मग जोवत तब इतनी नहीं मूँखी ।—गूर (शब्द०) ।

मूँभल—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भूँभलाहट' ।

मूँभा^(१)—वि० [देश०] [वि० स्त्री० भूँभी] इधर की उधर लगानेवाला । घुगलखोर । निदक ।

मूँटा^(१)—संज्ञा पुं० [हि० भोंटा] पेंग । दे० 'भोंटा' ।

मूँटा^(२)—वि० [हि० भूँटा] दे० 'भूँटा' ।

मूँठा^(१)—वि०, संज्ञा पुं० [हि० भूँठा] दे० 'भूँठा' ।

मूँठा^(२)—वि० [हि० भूँठा, भूँठा भूँठी] दे० 'भूँठी' । उ०—धंजन धधर धरे, पीक लोक सोई आछी काहे को लजाव भूँठी सोई खाव ।—नंद० प्र०, पृ० ३५७ ।

मूँठी—संज्ञा स्त्री० [हि० जुँठी] वह डंठल जो नील के मझाने पर बंध रहता है ।

मूँपड़ा^(१)—संज्ञा पुं० [देशी भुँपड़ा] दे० 'भोपड़ा' । उ०—सुणि करहा डोलउ कहइ साची धाखे जोइ । अंगर जेहा भूँपड़ा नउ धामगे सोइ ।—डोला०, पृ० ३१४ ।

मूँवणहार^(१)—वि० स्त्री० [?] जानेवाली । उ०—हिव सुँवर हेग लवड, माऊ भूँवणहार । पिगल बोलावा दिया, सोहइ सो असवार ।—डोला०, पृ० २०७ ।

मूँबना^(१)—क्रि० प्र० [प्रा० भूँप] दे० 'भूमना' । उ०—डोलउ इन्ताराण करइ, धण हुलिया न देव । भूँबन भूँबइ पागइइ, इतउन्न नथन गरेह ।—डोला०, पृ० ३०४ ।

मूँमना^(१)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भूमना' । उ०—भूमत प्यागी मारी पहिरे सजत सु कटि लटकाइ ।—नंद प्र०, पृ० ३८६ ।

मूँसना^(१)—क्रि० प्र०, क्रि० स० [हि० भौंसना] दे० 'भूमसना' ।

मूँसना^(२)—क्रि० स० [धनु०] किगी को बहुकाकर या दण्डाट्टी देकर मरका घट धारि लेना । भौंसना ।

मूँसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास ।

मूँकटी—संज्ञा स्त्री० [हि० झूठ + काँटा] छोटी भाड़ी । उ०—(क) वह झूकटी निःसृत प्रकृति को अनुसरती है ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) । (ख) जमि बर्धत नव फूल मूँकटी तले खलाई ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) ।

मूँकना^(१)—क्रि० प्र० [हि० भूँखना] दे० 'भोंखना' । उ०—(क) जाकी दीनामाय निवाजे । धवसागर में कहइ न भूँके धमध निसाने बाजे ।—सूर०, १।३६ । (ख) पावस रिनु बरगे खब मेहा । भूँकति मरौ हौ मुमिरि मनेहा ।—हि० प्रेमसाया०, पृ० २२० ।

मूँखना^(१)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भोंखना' ।

मूँभ^(१)—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध, प्रा० भूँभ] दे० 'युद्ध' । उ०—परे खंड खंड निज सामि धगै । न को हारि मने न को भूँभ धगै ।—पृ० रा०, २।१५३ ।

मूँमना—क्रि० प्र० [हि० भूँमना] दे० 'भूमना' । उ०—साहब को ४-२५

भावइ नही सो बाट न बूझी रे । साईं मो सनमुख रहे इस मन से भूँझी रे ।—दादू (शब्द०) ।

मूँभाउ^(१)—वि० [सं० युद्ध, प्रा० भूँभ + हि० भाउ (प्रत्य०)] दे० 'जुभाऊ' । उ०—बाबत भूँभाउ सिधू राग सहनाई पुनि सुनत ही काहर की छुटि जात कल है ।—सुंदर० प्र० भा० १, पृ० ४८५ ।

मूँभार—वि० [हि० भूँभ + भार (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० भूँभारि^(१)] दे० 'जुभार' । उ०—पंच महागिषि तही कुटवाल । तिनकी तुया महा भूँभारि ।—प्राण०, पृ० १६७ ।

मूँठ—संज्ञा पुं०, वि० [देशी भूँठ] दे० 'भूँठ' ।

मूँठ^(१)—संज्ञा पुं० [सं० प्रयुक्त, प्रा० अजुता प्रयवा देशी भूँठ] वह कथन जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो । वह बात जो यथार्थ न हो । सच का उलटा ।

क्रि० प्र०—कहना ।—बोलना ।

मुहा०—भूँठ सच कहना = निंदा करना । शिकायत करना । भूँठ का पुल बांधना = लगातार एक के बाद एक भूँठ बोलने जाना । भूँठ सच जोड़ना = दे० 'भूँठ सच कहना' ।

यौ०—भूँठ का पुतला = भारी भूँठा । एकदम असत्य बातें कहने-वाला । भूँठपूठ । भूँठसच ।

मूँठ^(२)—वि० [हि०] दे० 'भूँठा' । (शब्द०) । उ०—मुख संपति दारा सुत हय गय भूँठ सब समुदाइ । छन भंगुर यह सब स्याम बिनु अंत नाहि संग जाइ ।—सूर०, १।३१७ ।

मूँठ^(३)—संज्ञा स्त्री० [हि० झूठ] दे० 'झूठन' ।

मूँठन—संज्ञा स्त्री० [हि० झूठन] दे० 'झूठन' ।

मूँठमूँठ—क्रि० वि० [हि० भूँठ + धनु० मूँठ] बिना किसी वास्तविक आधार के । झूठे ही । यों ही । व्यर्थ । जैसे,—उन्होंने मूँठमूँठ एक बात बनाकर कह दी ।

मूँठसच—वि० [हि०] ठीक बेंटीक । जिसमें सत्य और असत्य का मिश्रण हो ।

मूँठा^(१)—वि० [हि० भूँठा] १. जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो । जो झूठ हो । जो सत्य न हो । मिथ्या । असत्य । जैसे, भूँठी बात, भूँठा परिचय । २. जो झूठ बोलता हो । झूठ बोलने-वाला । मिथ्यावादी । जैसे,—ऐसे भूँठे धादमियों का क्या विश्वास ।

क्रि० प्र०—ठहरना ।—विकलना ।—बनना ।

३. जो सच्चा या असली न हो । जो केवल रूप और रंग धादि में समान हो पर गुण धादि में नहीं । जो केवल बिलोभा और बनावटी हो या किसी असली चीज के स्थान पर यों ही काम देने, सुधीना उत्पन्न करने अथवा किसी को धोखे में डालने के लिये बनाया गया हो । नकली । जैसे—झूठे जवाहिरात, झूठा गोटा पट्टा, झूठी घड़ी, झूठा मसाला या काम (जरदोजी का), झूठा इस्तावेज, झूठा कागज ।

विशेष—इस अर्थ में 'मूँठा' शब्द का प्रयोग कुछ विशिष्ट शब्दों के साथ ही हो है ताजिनमें से कुछ ऊपर उदाहरण में दिए गए हैं ।

४. जो (पुरजे या घंग घादि) बिगड़ जाने के कारण ठीक ठीक काम न दे सकें । जैसे, ताले या खटके घादि का भूठा पड़ जाना । हाथ या पैर का भूठा पड़ना ।

कि० प्र०—पड़ना ।

मूठा^३—वि० [हि० मूठा] दे० 'मूठा' ।

मूठामूठी—क्रि० वि० [हि०] दे० 'मूठमूठ' ।

मूठों—क्रि० वि० [हि० भूठा] १. मूठमूठ । यों ही । २. नाम मात्र के लिये । कहने भर को । जैसे,—वे मूठों भी हमें बुलाने के लिये न आए । उ०—मूठों हि दोस लगावे मोहे राजा ।—गीत (शब्द०) ।

मूथि—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की गुपारी । २. एक प्रकार का घण्टन ।

मूना^१—वि० [सं० जीरा, प्रा० जूरा, गुज० जून] दे० 'मूना' । उ०—(क) तब लो दया बनो दुसह दुख दारिद को सायरी को सोइबो मोदबो भाने येस को ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तेहि वण उड़े भूने मुमीकर परम शीतल तृण परे ।—रघुराज (शब्द०) ।

भूम—संज्ञा स्त्री० [हि० भूमना, तुल० भूग० 'भूम'] १. भूमने की क्रिया या भाव । २. उंच । उँचाई । भूपकी ।—(व०) ।

भूमक^१—संज्ञा पुं० [हि० भूमना] १. एक प्रकार का गीत जिसे होली के दिनों में देहात की स्त्रियाँ भूम भूमकर एक घेरे में नाचती हुई गाती हैं । भूमर । भूमकरा । उ०—लिए छरी बेत सौंधे विभाग । चाचरि भूमक कहै गरम राग ।—तुलसी (शब्द०) । २. इस गीत के साथ होनेवाला नृत्य । ३. एक प्रकार का पुरबी गीत जो विशेषतः विवाह घादि मंगल अवसरों पर गाया जाता है । भूमर । उ०—करै मनोग भूमक होइ । फर छो फूल लिये सब कोई ।—जायसी (शब्द०) । ४. गुच्छा । स्तम्भ । ५. लौरी गीत घादि के छोटे छोटे भूमकों या मोतियों घादि के गुच्छों की वह कतार जो साड़ी या छाड़नी घादि के उस भाग में लगी रहती है जो माथे के ठीक ऊपर पड़ता है । इसका व्यवहार पूरब में अधिक होता है । ६. दे० 'भूमका' ।

भूमकसाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० भूमक + साड़ी] १. वह साड़ी जिसके सिर पर रहनेवाले भाग में भूमके या सोने मोती घादि के गुच्छे टँके हों । २. लेंहों पर की वह छाड़नी जिसमें सिर के पल्ले पर सोने के पत्ते या मोती के गुच्छे टँके हों ।

भूमकसारी^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भूमकसाड़ी' । उ०—(क) लाख टका भय भूमकसारी देहु बाइ को नेग ।—सूर (शब्द०) । (ख) सुनि उमगा नारी प्रकुलित मन पहिरे भूमकसारी ।—छीत०, पृ० ६ ।

भूमका^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'भूमका' । उ०—मरवा मयारि विरोज जान लटकत सुंदर सुंदर उरावनी । मोतिन फालरि भूमका राजा । बिच नील मणि बहु भावनी ।—सूर (शब्द०) । २. दे० 'भूमक' । उ०—पग पटकत लटकत लटकाह । मटकत मोहन हस्त उल्लाह । मचल चंचल भूमका ।—सूर (शब्द०) ।

भूमड़—संज्ञा पुं० [हि० भूमड़] दे० 'भूमर' । उ०—घाट छोड़ नौकाओं के भूमड़ धारा में पड़ चले ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११५ ।

भूमड़भूमड़—संज्ञा पुं० [हि० भूमड़] डकोसला । भूठा प्रपंच । निरर्थक विषय । उ०—भपने हाथे करै थापना भजया का सिस काटी । सो पूजा घर लेगो माली भूरति कुतान चाटी । दुनियाँ भूमड़भूमड़ भटकी ।—कबीर (शब्द०) ।

भूमड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि०] चौदह मात्रा का एक ताल । दे० 'भूमरा' । भूमना^१—क्रि० घ० [सं० भूम्य (= कूटना)] १. घाघार पर स्थित किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या सिरे का बार बार घागे पीछे, बीच ऊपर या इधर उधर हिलना । बार बार भोंके खाना । जैसे, हवा के कारण पेड़ों की डालों का भूमना ।

मुहा०—बादल भूमना = बादलों का एकत्र होकर झुकना ।

२. किसी लड़े या बैठे हुए जीव का अपने सिर और धड़ को बार बार घागे पीछे और इधर उधर हिलाना । सहराना । जैसे, हाथी या रीछ का भूमना । नशे या नींद में भूमना । उ०—भाई सुधि प्यारे की बिचारे मति टारै तब, धारै पग मग भूमि द्वारावति घाए है ।—प्रिया (शब्द०) ।

विशेष—यह क्रिया प्रायः मस्ती, बहुत अधिक प्रसन्नता, नींद या नशे घादि के कारण होती है ।

मुहा०—वरबाजे पर हाथी भूमना = इतना घमीर होना कि दरबाजे पर हाथी बंधा हो । इतना खपन्न होना कि हाथी पाल सके । उ०—भूमत द्वार अनेक मतंग जंजीर जड़े मढ़ घंघु चुचाते ।—तुलसी (शब्द०) । भूम भूम कर = सिर और धड़ को घागे पीछे या इधर उधर खूब हिल हिलाकर । सहरा सहराकर । जैसे—भूम भूमकर पड़ना, नाचना या (भुत प्रेत घादि बाधाओं के कारण) खेसना ।

भूमना^१—संज्ञा पुं० १. बेलों का एक रोग जिसमें वे खूँटे पर बंधे इधर उधर सिर हिलाया करते हैं । २. वह बेल जो भूमता हो ।

भूमर—संज्ञा पुं० [हि० भूमना या सं० युग्म, प्रा० जुग्म + र (प्रत्य०)] १. सिर में पहनने का एक प्रकार का गहना जिसमें प्रायः एक या डेढ़ घंगुल चौड़ी, चार पाँच घंगुल लंबी और भीतर से पोखी सीधी घणवा अनुधाकार एक पट्टी होती है ।

विशेष—यह गहना प्रायः सोने का ही होता है और इसमें छोटी जंजीरी से बंधे हुए घुँघरू या भूँबे लटकते रहते हैं । किसी किसी भूमर में जंजीरों से लटकती हुई एक के बाद एक इस प्रकार दो पट्टियाँ भी होती हैं । इसके पिछले भाग के कुंड में चाँप के आकार के एक गोल टुकड़े में दूसरी जंजीर या डोरी लगी होती है जिसके दूसरे सिरे का कुंडा सिर की खोटी या माँग के पास के बालों में धटका दिया जाता है । यह गहना सिर के घणले बालों या माथे के ऊपरी भाग पर लटकता रहता है और इसके आगे के लच्छे बराबर हिलते रहते हैं । संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में केवल एक ही भूमर पहना जाता है जो सिर पर दाहिनी ओर रहता है, और यही इसका व्यवहार वेश्याएँ करती हैं, पर पंजाब में इसका व्यवहार गृहस्थ स्त्रियाँ भी करती हैं और वहाँ भूमरों की जोड़ी पहनी जाती है जो माथे पर आगे दोनों ओर लटकती रहती है ।

२. कान में पहनने का भूमका नामक गहना । ३. भूमक नाम का गीत जो होली में गाया जाता है । ४. इस गीत के साथ

होनेवाला नाच । ५. एक प्रकार का गीत जो बिहार प्रांत में सब ऋतुओं में गाया जाता है । ६. एक ही तरह की बहुत सी चीजों का एक स्थान पर इस प्रकार एकत्र होना कि उनके कारण एक गोल धेरा सा बन जाय । जमघटा । जैसे, तावों का भूमर ।

क्रि० प्र०—डाचना ।—पड़ना ।

७. बहुत सी स्त्रियों या पुरुषों का एक साथ मिलकर इस प्रकार घूम घूमकर नाचना कि उनके कारण एक गोल धेरा सा बन जाय । ८. भालू को खड़ा करने पर रस्सी लेकर भागना । —(कलंदरों की भाषा) । ९. गाड़ीवानों की मोंगरी । १०. भूमरा नामक ताल । दे० 'भूमरा' । ११. एक प्रकार का काठ का खिलोना जिसमें एक गोल टुकड़े में चारों ओर छोटी छोटी गोलियाँ लटकती रहती हैं ।

भूमरा^१—संज्ञा पुं० [हि० भूमर] एक प्रकार का ताल जो चौदह मात्राओं का होता है । इसमें तीन आघात और एक विराम होता है ।

वि० वि० तिरकिट, वि० वि० पा० पा०, तिता तिरकिट, वि० वि० पा० पा० ।

भूमरा^२—वि० [हि० भूमना] भूमनेवाला । उ०—बहुवि० घनेक भगाध जु सरवर । रस भूमरे, धूमरे तरवर ।—नंद० प्र०, पृ० २८५ ।

भूमरि^३—संज्ञा स्त्री० [हि० भूमर] दे० 'भूमर' ।

भूमरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] बालक राग के पाँच भेदों में से एक ।

भूमर^४—वि० [हि० घूर या चूर] सूखा । लुप्त । शुष्क ।

भूमर^५—वि० [हि० भूठ] १. लाली । रीता । २. व्यर्थ ।

भूमर^६—वि० [सं० जुष्ट] जड़ा । उच्छिष्ट ।

भूमर^७—संज्ञा स्त्री० [सं० उवल, हि० फार] १. जलन । बाह । २. परिताप । दुःख । उ०—भजहुं कहे सुनाइ कोई करें कुबिजा हरि । सूर बाहनि मरत गोपी कूबरी के भूमरि ।—सूर (शब्द०)

भूमरा^८—क्रि० प्र० [हि० भूर] दे० 'भूराना' । उ०—मन ही माहे भूरणा, रोवे मनही माहि । मन ही माहि बाह दे, बाह बाहरि नाहि ।—बाहू०, पृ० ७३ ।

भूरना^९—क्रि० स० [हि० भूर] दे० 'भूराना' ।

भूरा^{१०}—वि० [हि० भूर] १. शुष्क । सूखा । लुप्त । २. लाली । उ०—किगरी गहे बजाए भूरी । भोर साँझ मिगी नित पूरी ।—जायसी (शब्द०) । ३. दे० 'भूर' ।

भूरा^{११}—संज्ञा पुं० १. सूखा स्थान । वह स्थान जो पानी से भीगा न हो । २. जलवृष्टि का प्रभाव । अवर्षण । सूखा ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

३. न्यूनता । कमी । उ०—करी कराह माज सब पूरा । काइहु पूरी वरी न भूरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

भूरि^{१२}—संज्ञा स्त्री० [हि० भूर] दे० 'भूर' ।

भूरै^{१३}—क्रि० वि० [हि० भूर] व्यर्थ । निष्प्रयोजन ।

भूरै^{१४}—वि० दे० 'भूर' । उ०—बाँधि बची डोरी नहि पूरे । बार बार बीजठ रिस भूरै ।—सूर (शब्द०) ।

भूल^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलना] १. वह चौकोर कपड़ा जो प्रायः शोभा के लिये चौपायों की पीठ पर डाला जाता है । उ०—शेर के समान जब नीन्दे सावधान श्वान भुलन करान जिन वेग बेप्रमान है ।—रघुराज (शब्द०) ।

विशेष—इस देश में हाथियों और घोड़ों आदि पर जो भूल डाली जाती है वह प्रायः मखमल की और अधिक दामों की होती है और उसपर कारचोबी आदि का काम किया होता है । बड़े बड़े राजाओं के हाथियों की भूलों में मोतियों की झालरें तक टंकी होती हैं । जंतों तथा रथों के बैलों पर भी इसी प्रकार की भूलें डाली जाती हैं । आजकल कुत्तों तक पर भूल डाली जाने लगी है ।

मुहा०—गधे पर भूल पड़ना—बहुत ही प्रीति या कुरूप मनुष्य के शरीर पर बहुमूल्य और बढ़िया वस्त्र होना ।—(व्यंग्य) ।

२. वह कपड़ा जो पड़ना जाने पर भड़ा और गेहूँम जान पड़े ।—(व्यंग्य) । (पु) ३. दे० 'भूना' । उ०—मखतून के भूल भुलावन केशव भानु मनो जनि बंक लिए ।—केशव (शब्द०) ।

भूला^२—संज्ञा पुं० [हि०] भुड । समूह । उ०—जो रखवाले जगत में, भाडी बँक भूल ।—बाँसी० प्र०, भा० १, पृ० १४ ।

भूल^३—संज्ञा पुं० [हि० भूलन] भूलने समय भूलने की प्राप्ति और पीछे झोंका देना । पंग । उ०—विच भुरमुट भूना चलत, जल छवे लाँबी भूल ।—घनानंद, पृ० २१५ ।

भूलदंड—संज्ञा पुं० [हि० भूलना + सं० दण्ड] एक प्रकार की कसरत जिसमें बारी बारी से बैठक और भूलते हुए बंड करते हैं ।

भूलन^४—संज्ञा पुं० [हि० भूलना] १. एक उत्सव । हिंदोल ।

विशेष—इस उत्सव में देवमूर्ति, विशेषतः श्रीकृष्ण या रामचंद्र आदि की मूर्तियों को भूले पर बैठकर भूलाने हैं और उनके सामने नृत्य गीत आदि करते हैं । यह मध्याह्नक वर्षा ऋतु में और विशेषतः श्रावण शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक होता है ।

२. एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना ।

भूलना^५—संज्ञा स्त्री० भूलने की क्रिया या भाव ।

भूलना—क्रि० प्र० [सं० दोलन] १. किसी लटकती हुई वस्तु पर रिक्त होकर प्रथवा किसी आधार के सहारे नीचे की ओर लटककर बार बार आगे पीछे या इधर उधर हटने बढ़ते रहना । लटक कर बार बार इधर उधर हिलना । जैसे, पंखे की रस्मी भूलना, भूले पर बैठकर भूलना । २. भूले पर जेठकर पेंग लेना । उ०—(क) पेम रंग बोरी भोरी नवल-किसोरी गोरी भूषति हिंदोरे यो सोहाई सखियान मे । काम भूले उर में, उरोजन मे दाम भूले स्याम भूले प्यारी की अन्यारी सखियान में ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) फूली फूनी बेली सी नवेली झलबेली वधू झलति झकेली काम केली सी बहति हैं ।—पद्माकर (शब्द०) । ३. किसी कार्य के होने की आशा में अधिक समय तक पड़े रहना । आसरे में प्रथवा अनिर्णीत अवस्था में रहना । जैसे—जो लोग बरसों से भूल रहे हैं उनका काम होता ही नहीं और प्रायः सभी से अल्बो मचाने लगे ।

भूलना^२—वि० [वि० बी० भूलनी] भूलनेवाला । जो भूलता हो ।
जैसे भूलना पुल ।

भूलना^३—संज्ञा पु० १. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ७, ७, ७ और ५ के विराम से २६ मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं । जैसे—हरि राम बिभु पावन परम, गोकुल बसन मनमान । २. इसी छंद का दूसरा भेद जिसके प्रत्येक चरण में १०, १० १० और ७ के विराम से ३७ मात्राएँ और अंत में यगण होता है । जैसे,—जैति हिम बालिका मयुर कुम घालिका कालिका मालिका सुरस हेतु । ३. हिडोला । भूला । (वव०) । उ०—घोंबवा की बालों तले आली भूलना डला दे ।—गीत (शब्द०) ।

भूलनि^४—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलना] भूलने का भाव या स्थिति ।
उ०—हन यह ललित लतन की फूलनि । फूल फूल जमुना जल भूलनि ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१६ ।

भूलनी बगली—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलना + बगली] मुगदर की एक प्रकार की कसरत जो बगली की तरह की होती है ।

विशेष—बगली की अपेक्षा इसमें यह विशेषता है कि पीठ पर से बगल में मुगदर छोड़ने समय पजे की इस प्रकार उलटना पड़ता है कि मुगदर बराबर भूलता हुआ जाता है । इससे कलाई में बहुत जोर आता है ।

भूलनी बैठक—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलना + बैठक (= कसरत)] एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—बैठक की इस कसरत में बैठक करके एक पैर को हाथी के सूँड़ की तरह झुलाकर और तब उसे समेटकर बैठना और फिर उठकर दूसरे पैर को उसी प्रकार झुलाना पड़ता है । इसमें शरीर को तोलने की विशेष माधना होती है ।

भूलर^५—संज्ञा पु० [हि० भूल] भुंड । जमघट । उ०—बालूवाघा देसणउ जहाँ पाणी सेवार । ना पाणिहारी भूलरउ ना कूबड़ लेकर ।—ढोला०, पृ० ६६४ ।

भूलरि^६—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलना] भूलना हुआ छोटा गुच्छा या भुमका । उ०—बर बिलान बहु तने तनावन । मनि भालरि भूलरि लटकावन ।—गोपाल (शब्द०) ।

भूला—संज्ञा पु० [सं० भूला] १. पेड़ की शाल, छत या और किसी ऊँचे स्थान में बाँधकर लटकाई हुई दोहरी या चौहरी रस्सियाँ जंजीर आदि से बंधी पटरी जिसपर बैठकर झूलते हैं । हिडोला ।

विशेष—भूला कई प्रकार का होता है । इस प्रांत में लोग साधारणतः वर्षा ऋतु या पेड़ों की शालों में झूलते हुए रस्से बाँधकर उसके निचले भाग में लसता या पटरी आदि रखकर उसपर झूलते हैं । दक्षिण भारत में भूलों का रवाज बहुत है । वहाँ प्रायः सभी घरों में छतों में तार या रस्सी या जंजीर लटका दी जाती है और बड़े तस्ते या चौकी के चारों कोने से उन रस्सियों को बाँधकर जंजीरों की जड़ देते हैं । भूले का निचला भाग जमीन से कुछ ऊँचा होना चाहिए जिसमें वह सरसता से बराबर झूल सके । भूले के घांसे और पीछे

जाने और आने की पैंग कहते हैं । भूले पर बैठकर पैंग देने के लिये या तो जमीन पर पैर को तिरछा करके आघात करो है या उसके एक सिरे पर खड़े होकर भूले से नीचे की ओर झुकते हैं ।

क्रि० प्र०—भूलना ।—डोलना ।—पड़ना ।

२. बड़े बड़े रस्से, जंजीरों या तारों आदि का बना हुआ पुल जिसके दोनों सिरे नदी या नाले आदि के दोनों किनारों पर किसी बड़े खंभे, खट्टान या बुर्ज आदि में बंधे होते हैं और जिसके बीच का भाग अधर में लटकता और झूलता रहता है । झूलता हुआ पुल । जैसे, लछमन भूला ।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष में पहाड़ी नदियों आदि पर इसी प्रकार के पुल होते थे । आजकल भी उत्तरी भारत तथा दक्षिणी अमेरिका की छोटी छोटी पहाड़ी नदियों और बड़ी बड़ी खाइयों पर कहीं कहीं जंगलों जानियाँ के बनाए हुए इस प्रकार के पुराने चाल के पुल पाए जाते हैं । पुराने चाल के पुल दो तरह के होते हैं—(१) एक बहुत छोटे और मजबूत रस्से के दोनों सिरे नदी या खाई आदि के दोनों किनारों पर की दो बड़ी खट्टानों आदि में बाँध दिए जाते हैं और उनमें बहुत बड़ा बोरा या चौखटा आदि लटका दिया जाता है । ऊपरवाले रस्से को पकड़कर यात्री उसे कभी कभी स्वयं सरकाता चलता है । (२) मोटी मोटी मजबूत रस्सियों का जाल पुनः पुनः आववा छोटे छोटे डबे बाँधकर नदी की चौड़ाई के बराबर लंबी और अंदू हाथ चौड़ी एक पटरी सी बना लेते हैं और उसे रस्सों में लटकाकर दोनों ओर रस्सियों से इस प्रकार बाँध देते हैं कि नदी के ऊपर उन्हीं रस्सों और रस्सियों को लटकती हुई एक गली सी बन जाती है । इसी में से होकर आदमी चलते हैं । इसके दोनों सिरे भी नदी के दोनों किनारों पर खट्टानों से बंधे होते हैं । आजकल यूरोप, अमेरिका आदि की बड़ी बड़ी नदियों पर भी मोटे मोटे तारों और जंजीरों से इसी प्रकार के बहुत बड़े, बढ़िया और मजबूत पुल बनाए जाते हैं ।

३. वह बिस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों में बाँधकर दोनों ओर दो ऊँची गुँटियों या खंभों आदि में बाँध दिए गए हों ।

विशेष—इस देश में साधारणतः देहाती लोग इस प्रकार के टाट के बिस्तर पेड़ों में बाँध देते हैं और उनपर सोते हैं । जहाजों में खलामी लोग भी इस प्रकार के कनवास के बिस्तों का व्यवहार करते हैं ।

३. पणुओं की पीठ पर डालने की भूल । ५. देहाती स्त्रियों के पहनने का ढोखा ढाला कुरता । ६. भोंका । भटका ।—(वव०) । † ७. तरबूज । † ८. स्त्रियों का एक प्रकार का आभूषण । २. दे० 'भुलना' ।

भूलाना^७—क्रि० सं० [हि० भूलाना] दे० 'भुलाना' । उ०—तामैं श्री ठाकुर जी को डोल भूलाए ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० २३० ।

मूली—संज्ञा स्त्री० [हि० भुलना] १. वह कपड़ा जिससे हुवा करके घाघ्रा मोसाया जाता है। परती। २. खलासियों आदि का जहाजी बिस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों से बांधकर दोनों ओर ऊंची पूँटियों या लम्बा घाति में बांध दिए जाते हैं। दे० 'भूला'।

मूसर(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० युग, हि० सूया] वह लकड़ी जो बैलों को नाधने के लिये उनके कंधों पर रखी जाती है। सूया।
उ०—मूसर भार न भूलही गोधा गावड़ियाह। इम अस भार न ऊपड़े मोला मारवाड़ियाह।—बीकी० प्र०, भा० २, पृ० १५।

मूसा—संज्ञा पुं० [दश०] एक प्रकार की बरसाती घास। गुनमुना। पलंजी। बड़ा मुरमुरा।

विशेष—यह घास उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता में होती है और इसे छोड़े तथा गाय बैल आदि बड़े जानवरों से खाते हैं।

मेँडा(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० जयन्त, हि० भंडा] भंडा। ध्वज। उ०—कहे काशी पल लाल मेँडे बहुत। पाय दल जावे तहत क्या सरयत खबर।—दक्खिनी०, पृ० ४६।

मेँप—संज्ञा स्त्री० [हि० भपना] लाज। शर्म। दया।

भपना—क्रि० प्र० [हि० छिपना] सरमाना। लजाना। लज्जित होना। भंयो० क्रि०—जाना।

भेकना—क्रि० प्र० [अनु०] झुकाना। बैठना। उ०—(क) डोलइ मनह विमासियउ, साँव कहइ छइ एह। करह भेकि दोनूँ चढा कूट न संभालेह।—ढोला०, दू० १३७। (ख) घाली टापर बाग मुखि, भेकज राजदुआरि।—ढोला०, दू० ३४५।

विशेष—ऊट के बैठने का राजस्थानों में भेकना कहते हैं। ऊँट को बैठाने समय भेके किया जाता है। उभो के अनुकरण पर यह शब्द बना है।

भेपना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भपना'।

भेर(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [फा० देर] बिलंब। देर। उ०—(क) चलहु तुरत जिनि भेर लगावहु धबहो घाइ करी विश्राम।—सूर (शब्द०)। (ख) काहे को तुम भेर लगावात। दान देहु घर जाहु बेचि शोध तुम ही को वह भावति।—सूर (शब्द०)।

भेर(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० छेड़ना] बखेड़ा। भगड़ा। उ०—(क) सूरवास प्रभु रासबहारी श्री बनबारी कृपा करत काहे भेर।—(शब्द०)। (ख) मधुकर समाजा ऐसा बैरन।—मंदकुमार छाँड़ि का लेहै योग दुखन को टेरन। जहाँ न परम लखार नद सुन मुक्त परो किन भेरन।—सूर (शब्द०)।

भेरना(पुं०)—क्रि० प्र० [हि० भेखना] भेखना। सहना। उ०—कहु चप पब प्रब ते गही गहे रानि सुख भेरि। मन में भयो न बैल कछु लागे सेवन भेरि।—विश्राम (शब्द०)।

भेरना—क्रि० प्र० [हि० छेड़ना] शुरू करना। प्रारंभ करना। उ०—मेरी बड़ेरी बाहि भेरी मुरली बहुतेरी बनी।—गोपाल (शब्द०)।

भेरा(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० भेर ?] १. भूकट। बखेड़ा। भेर। उ०—(क) जीव का जनम का जीवक आप ही आपसे

भानि भेरा।—दादू (शब्द०)। (ख) दीपक में घरघो बारि देखत भुज भए चारि हारी हो घरति करत दिन दिन को भेरी।—सूर (शब्द०)। (ग) सुंदर वाही जवन है जामहि कछु बिबेक। नातर भेरा में परघो बोलत मानो भेक।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७२९। २. छोटा सोता। भिरी। थोड़े पानीवाला गढ़ा। ३. समूह। कुंड।

भेल—संज्ञा स्त्री० [हि० भेलना] १. पानी में तैरने आदि में हाथ पैर से पानी हटाने की क्रिया। २. हलका धक्का या हिलोरा। उ०—सुरत समुद्र मगन दंपति गो भेलन प्रति मुख भेल।—सूर (शब्द०)। ३. भेलने की क्रिया या भाव।

भेल—संज्ञा स्त्री० [हि० भेल] बिलंब। देर। भेर। उ०—(क) सब कहै देखि भूप मणि बोले सुनहु सकल भम बैना। भये कुमार विवाहन लायक उचित भेल कछु है ना।—रघुराज (शब्द०)। (ख) भौकति है का भरीखा लगी लग लागिवे को इहाँ भेल नही फिर।—पद्माकर (शब्द०)।

भेलना—क्रि० प्र० [श्वेल (= हिलाना डुलाना)] १. ऊपर लेना। सहारना। सहना। बरदाश्त करना। जैसे, दुःख भेलना, कष्ट भेलना, मुसीबत भेलना। उ०—टूटे परत प्रकाश को कीन सकत है भेलि।—कबीर (शब्द०)। २. पानी में तैरने या चलने में हाथ पैर से पानी हटाना। पानी को हाथ पैर से हिलाना। उ०—(क) पर पग गाँव प्रंगुठा मुख भेलत। प्रभु पीछे पालने प्रकेले हल्लि हल्लि अपने रंग खेलत। शिष सोचन बांध बुद्धि विचारत वट जाइयो सागर जल भेलत।—सूर (शब्द०)। (ख) बालकेलि को विशद रम सुख सुख समुद्र रुप भेलत। सूर (शब्द०)। ३. पानी में हिलना। हेमना। जैसे, कष्ट तक पानी भेलकर नदी पार करना। ४. ठेलना। ठकेना। धागे बढ़ाना। धागे चलाना। उ०—दूध की सहज बिसात दूँ मिलि सतरंज खेलत। उर, रुख, नैन चपल प्रभव चतुर बराबर भेलत।—हरिदास (शब्द०)। ५. पचाना। हजम करना। ६. सहना। ग्रहण करना। मानना। उ०—पयिन आनि परे तो परे रहे केती करी मनुआरि न भेनी।—बनिराम। (शब्द०)।

भेलनी—संज्ञा स्त्री० [हि० भेलना] एक प्रकार की जंजीर जो कान के धातुषण का भार सँभालने के लिये बालों में घटकाई जाती है।

भेली—संज्ञा स्त्री० [हि० भेलना] बच्चा जनते समय स्त्री को विशेष प्रकार से हिलाने डुलाने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देवा।

भेलुआ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भूला'।

भेर(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० जहर] दे० 'जहर' उ०—जपुरनाथ जैसा धाम बेटा तीन पाया। प्याला भर पाया एक बेटा नै मराया।—सिखर०, पृ० ७४।

भौक—संज्ञा स्त्री० [सं० युज, युक्त, युक्त, हि० भुक्ता] १. भुकाव। प्रवृत्ति। २. तराजू के किसी पलड़े का किसी ओर अधिक नीचा होना।

मुहा०—भोंक मारना = डाँडी मारना । कम तोलना ।

३. बोझ । भार । जैसे—इसकी भोंक सब उसी पर पड़ती है ।

४. वेग । भटका । तेजी । प्रचंड गति । जैसे—(क) गाड़ी बड़ी भोंक से घा रही थी । (ख) साइं घा रहा है कहीं भोंक में पड़ जाओगे तो बड़ी चोट आवेगी । (ग) नशे की भोंक, क्रोध की भोंक, लिखने की भोंक, नींद की भोंक, ५. किसी काम का धूमधाम से उठाना । कार्य की गति । जैसे—पहली भोंक में उसने इतना काम कर डाला । ६. ठाट । सजावट । चाल । घंदाज ।

यौ०—नोक भोंक = ठाट बाट । धूम धाम ।

७. पानी का हिलोरा । ८. दे० 'भोंका' । ९. दो लड़के जो बैल-गाड़ी की मजदूरी के लिये दोनों ओर लगे रहते हैं ।

भोंकना—क्रि० स० [हि० भोंक] १. भटके के साथ एकबारगी किसी वस्तु को धागे की ओर फेंकना । वेग से सामने की ओर डालना । फेंककर छोड़ना । जैसे, भाड़ में पत्ते भोंकना । इंजन में कांयला भोंकना । ग्रास में धूल भोंकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—भाड़ भोंकना—(१) भाड़ में सूँघ पत्ते आदि फेंकना ।

२. तुच्छ व्यवसाय करना (व्यंग्य में) । जैसे—इतने दिन दिल्ली में रहे, भाड़ भोंकते रहे ।

२. ठकेलना । ठेलना । जबरदस्ती धागे की ओर बढ़ाना या करना । जैसे—उसने मुझे एकबारगी धागे को ओर भोंक दिया । ३. प्रधापुंघ खर्च करना । बहुत अधिक व्यय करना । बहुत अधिक खर्च करना । बहुत अधिक किसी काम में लगाना । जैसे, व्याहृ शादी में रुपया भोंकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—डालना ।

४. किसी आपत्ति या दुःख के स्थान में डालना । भय या कष्ट के स्थान में कर देना । बुरी जगह ठेलना । जैसे—(क) तुमने हमें कहाँ लाकर भोंक दिया, बिन रात आपत्त में जान पड़ी रहती है । (ख) उसने अपनी लड़की को बुरे घर भोंक दिया । ५. कार्य का बहुत अधिक भार देना । बहुत ज्यादा काम उपर डालना । बिना सोचे समझे काम लादना । जैसे—तुम जो काम श्रोतः है हमारे ही ऊपर भोंक देते हो । ६. बिना विचारे आरोपित करना । (दोष आदि) मटना । (दोष) लगाना । जैसे—सारा कसूर उसी पर भोंकते हो ।

भोंकरना—क्रि० प्र० [भनु०] १. भौं भौं करना । २. बहुत जोर से रोना । ३. झुलस जाना ।

भोंकवा—संज्ञा पु० [देश०] मट्टे या भाड़ में खड़पताई भोंकने-वाला मनुष्य ।

भोंकवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० भोंकना] १. भोंकने की क्रिया या भाव । २. भोंकवाने की क्रिया या भाव । ३. भोंकने के काम की उजरत । भोंकने की मजदूरी ।

भोंकवाना—क्रि० स० [हि० भोंकना का प्रे० रूप] १. भोंकने का काम कराना । २. किसी को धागे की ओर जोर से डालना ।

भोंका—संज्ञा पु० [हि० भोंक] १. वेग से जानेवाली किसी वस्तु

के स्पर्श का आघात । तेजी से चलनेवाली किसी चीज के झुंजाने से उत्पन्न भटका । धक्का । रैला । भपट्टा । २. वेग से चलनेवाली वायु का आघात । हवा का भटका या धक्का । वायु का प्रवाह । हवा का बहाव । भकोरा । जैसे—ठंडी हवा का भोंका आया । ४. पानी का हिलोरा । ५. बगल से लगने-वाला धक्का जिसके कारण कोई वस्तु गिर पड़े या अपने स्थान से हट जाय । रैला । ६. इधर से उधर झुकने या हिलने डोलने की क्रिया ।

मुहा०—भोंके घाना = नींद के कारण झुक झुक पड़ना । ऊँध लगना । भोंका खाना = किसी आघात या वेग आदि के कारण किसी ओर झुकना । जैसे, भोंका खाकर गिरना, नींद से भोंका खाना ।

७. ठाट । सजावट । चाल । घंदाज । उ०—पट्टिरे राती चूनरी सिर उपरना सोहै । कटि लहगा लीलो बन्यो भोंको जो देखि मन मोहै ।—सूर (शब्द०) । ८. कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—यह पेंच (दाँव) उस समय किया जाता है जब दोनों पहलवानों के हाथ एक दूसरे की कसर पर होते हैं । इसमें एक हाथ विपक्षी के हाथ के बाहर निकालकर मोड़ पर चढ़ाते और दूसरा बगल से मोड़ पर ले जाते हैं और फिर भोंका देकर गिराते हैं ।

भोंकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० भोंकना] १. भोंकने की क्रिया या भाव । २. भोंकने की मजदूरी ।

भोंकारना—क्रि० स० [हि०] कुछ कुछ झुनसा देना । जला देना ।

भोंकिया—संज्ञा पु० [हि० भोंकना] भाड़ में पताई आदि भोंकने-वाला । भोंकवा ।

भोंकी—संज्ञा स्त्री० [हि० भोंक] १. भार । बोझ । जवाबदेही । जैसे—सब भोंकी मेरे ही सिर ? २. भारी अनिष्ट या हानि की प्राशंका । जोखी । जोखिम । जैसे—दूसरे का माल रखकर भोंकी कोन सदै ।

क्रि० प्र०—सहना ।

भोंक(पुं०)—संज्ञा पु० [देश०] १. खोता । धोंसला । २. कुछ पक्षियों (जैसे, टेक, गोघ आदि) के गले की थैली या सटकता हुआ मांस । ३. खुजली । सुरसुराहट । चुल ।

मुहा०—भोंक मारना = खुजली होना । चुल होना ।

भोंकल(पुं०)—संज्ञा पु० [हि० भोंकलाना] भोंकलाहट । क्रोध । कुढ़न । गुस्सा ।

क्रि० प्र०—माना ।

भोंट—संज्ञा पु० [सं० भ्रुट (= भाड़ी)] १. भाड़ी । २. भाड़ । भुर-मुट । ३. समूह । जूरी । जुट्टी । ४. दे० 'भोंटा' । ५. चाल । ठाट । भोंक । घंदाज । उ०—लोचन बिलोच पोच सलित की ओटन हाव, भाव भरी करत भोंटन पै ललित बात ।—नंद० प्र०, पु० ३७६ ।

भोंटमभोंटी—संज्ञा पु० [हि०] भोंटाभोंटी । उ०—बस भोंटम भोंटा की नीबत घानेवाली है और सारा कसूर मुपसानी का है ।—फिसाना०, भा० ३, पु० २१४ ।

मोटा^१—संज्ञा पुं० [सं० टुट] १. बड़े बड़े बालों का समूह । इधर उधर बिखरे बड़े बड़े बालों का जुटा । उ०—हमारे सबद बिबेक सगहि चूतर मे सोटा । भाबरुह ले भागु पकरि के कटिहों मोटा ।—पलटु०, भाग ३, पृ० ८६ ।

मुहा०—मोटे पकड़कर काटना, मारना, निकालना, घसीटना या इसी प्रकार का और कुव्यवहार करना = सिर के बाल खींचकर वे सब व्यवहार करना ।—(स्त्रियों के लिये गृह अपमान की बात है) । मोटे खसोटना = सिर के बाल खींचना ।

यौ०—मोटा मोटी = ऐसा लड़ाई भगड़ा या मारपीट जिसमें मोटा पकड़ने की नीवत पावे ।

२. जुटा । पतली लंबी वस्तुओं का इतना बड़ा समूह जो एक बार हाथ में धा सके ।

मोटा^२—संज्ञा पुं० [हि० भोंका] १. वह घक्का जो भूले को इधर हिलाने के लिये दिया जाता है । भोंका । पेंग । उ०—(क) ललिता बिनासा देहि भोंटा रीझि भंग न समाति ।—सूर (शब्द०) । (ख) एक समय एकांत वन में डोल भूलत कुषविहारी । भोंटा देत परस्पर प्रबोर उड़ावत डारी ।—हरिदास (शब्द०) ।

मुहा०—मोटा देना = भूले को बढ़ाने के लिये घक्का देना । पेंग मारना । मोटा मारना = दे० 'मोटा देना' ।

२. भटका । भौक । चाल । प्रंराज ।

मोटा^३—संज्ञा पुं० [हि० ढोटा] १. भैंस का बच्चा । पड़ना । २. भैंसा ; महिष ।

मोटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० मोटा] दे० 'मोटा'—१ । उ०—सुनि रिपुहृन् लखि नख सिख छोटी । लगे घसीन धरि धरि मोटी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—मोटीमोटा = लड़ाई भगड़ा । दे० 'मोटाभोटी' ।

मोटी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मोका'—१ ।

मोप—वि० [प्रा० भोप, हि० भोपना] डक लेनेवाला । घाच्छाविल कर लेनेवाला । बना । निविड़ । उ०—सो रहा है भोप बंधियाला नदी की जाँघ पर ।—हरी रास०, पृ० ४८ ।

मोपड़ा—संज्ञा पुं० [हि० छोपना (= छाना) प्रथवा प्रा० भोप, हि० भोप] [स्त्री० छोपड़ी] वह बहुत छोटा सा घर या मनुष्यों के रहने का स्थान जो विशेषतः गाँवों या जंगलों आदि में कच्ची मिट्टी की छोटी छोटी दीवारों को उठाकर और धास फूस से छाकर बना लेते हैं । कुटी । परांशाला ।

मुहा०—प्रधा मोपड़ा = पेठ । उदर (फकीर०) । ग्रंथ मोपड़े में भाग लगना = धूल लगना (फकीर०) ।

मोपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० भोपड़ा का स्त्री० छोपड़ा] छोटा भोपड़ा । कुटिया । परांशाला । मदी । उ०—कंत बीस सोचन बिलोकिए कुमंत फल ख्याल लंका लाई कपि राई की सी भोपड़ी ।—तुलसी (शब्द०) ।

मोपा—संज्ञा पुं० [हि० भोपा] भोपा । गुच्छा । उ०—भूलहि रतन पाट के मोपा । साज मदन नेहि का कह कोपा ।—जायसी (शब्द०) ।

भोक^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भोंक' । उ०—वाम घमल ले भो मतवाला, भोक में भोक सो धावे ।—सं० दरिया, पृ० ११२ ।

भोखना—क्रि० स० [हि० भोंकना] डालना । छोड़ना । देना । उ०—धम भोखे बाहुत भाल में जो ।—रघु० ६०, पृ० २११ ।

भोका—संज्ञा स्त्री० [हि० भोंक] १. किसी वस्तु का वह घनावश्यक लटकता हुआ अंश जो फूला फूला वैनी जैसा दिखाई दे । उ०—नितम्ब गुह्य कपड़ों के भोका लटकाकर लाना चाह्य ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६१ ।

भोकर—संज्ञा पुं० [प्रा० भोजकर] पचीनी । भोकर ।

भोका—संज्ञा पुं० [प्रा० भोजकर] दे० 'भोकर' ।

भोटा^१—संज्ञा पुं० [हि०] पेंग । दे० 'भोंका' । उ०—(क) गाजे घण सुण गावणो, प्याला भर मध पाव । भूले रेशम रंग भड, भोटा देर भूलाव ।—बांकी० प्र०, भा० २, पृ० ८ । (ख) कोउ घंचल छोरि कटि मे बाँधि कयिके देत । कोउ किए सावन की कछोटी बहुत भोटा देत ।—भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० ११८ ।

भोटिंग^१—वि० [हि० भोंटा] भोंटवाला । जिसके सिर पर बहुत बड़े बड़े और लड़े बाल हों । उ०—मज्जहि भूत पिशाच बैताला । प्रथम महा भोटिंग कराला ।—तुलसी (शब्द०) ।

भोटिंग^२—संज्ञा पुं० बहुत बड़े बड़े और लड़े बालोंवाला । भूत प्रेत या पिशाच आदि ।

भोड़—संज्ञा सं० [सं० भोड] सुपारी का वृक्ष ।

भोपड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भोपड़ा' ।

भोपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भोपड़ी' ।

भोपरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भोपड़ी + रिया (प्रत्य०)] दे० 'भोपड़ी' । उ०—खिरकी बैठ गोरी चितवन लागी, उपरि भोप भोपरिया ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५५ ।

भोबाभोब—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'भम भम'—१ । उ०—सहजो गुरु ऐसा मिले सम दृष्टी निलेभि । सिष कू प्रेम समुद्र में कर दे भोबाभोब ।—सहजो, पृ० १२ ।

भोरा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भोल' ।

भोरई^१—वि० [हि० भोल + ई (प्रत्य०)] जिसमें भोल हो । रसेदार । उ०—सूर करतरि सरस तोरई । सेमि सींगरी छमकि भोरई ।—सूर (शब्द०) ।

भोरई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० भोल] रसेदार तरकारी ।

भोरना^१—क्रि० स० [सं० डोलन] १. भटका देकर हिलाना या कंगाना । उ०—कह्यो कहारनि हमै न सोरि । नयो कहार चलत पग भोरि ।—सूर (शब्द०) । २. किसी चीज को इस प्रकार भटका देकर बार बार हिलाना जिसमें उसके साथ लगी हुई दूसरी चीजें गिर पड़े । जैसे पेड़ की डाल भोरना । घाम भोरना । हमली भोरना, आदि । उ०—भोरि से कौन लए बन बाग ये कौन जु घामन को हरियाई ।—रसकुसुमाकर (शब्द०) । † वृत्तिपूर्वक भोजन करना । छककर खाना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

३. इकट्ठा करना । एकत्र करना ।—(बव०) ।

भोरा^५—संज्ञा पु० [हि० भोरा] गुच्छा । भण्डा ।

भोरा^५—संज्ञा पु० [हि० भोला] दे० 'भोला' । उ०—लाभ मलमलो रुचिर पान को भोरा धारे ।—प्रेमवन०, भा० १, पृ० १२ ।

भोरि^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भोली' ।

भोरी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० भोली] १. भोली । उ०—(क) भाय करो मन को पदमाकर ऊपर नाय भोरी की भोरी ।—पदमा-कर (शब्द०) । (ख) हमारे कोन वेद विधि साधे । बहुधा भोरी दंड प्रधारी इतनेन को धाराये ।—सूर (शब्द०) । २. पेट । भोभर । भोभर । उ०—जो धावे घनगत करोरी । डारे लाइ भरे नहि भोरी ।—विश्राम (शब्द०) । ३. एक प्रकार की रोटी । उ०—रोटी बाटी पोरी भोरी । एक कोरी एक खोब चमोरी ।—सूर (शब्द०) । ४. रस्सी आदि के जालों या फंदों में गुंथ भोला के आकार का बड़ा जाल जिनमें धातु लोगों को उठाकर पट्टनाने से । दे० 'भोली'—७ । उ० (क) बजाइय दिल्ली नगर अवर सेन जुषमग । घाय घुमत भोगिन घले, अवन सुनंतव भगि ।—पु० रा०, ६१ । २३६८ । (ख) बाजीद बान भोरी धारय, धाउ पंच रघर नृपति ।—पु० रा० १० । ३४ ।

भोल^१—संज्ञा पु० [हि० भालि (= धाम का पना)] तरकारी आदि का गाढ़ा रस । भोरवा । २. किसी अन्न के आटे में मसाले देकर कड़ी आदि की तरह पकाई हुई कोई पतली जेई । ३. भाँड़ । पील । ४. मुग्धा या गोलट जो धातुओं पर चढ़ाया जाता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—चढ़ाना ।—केरना ।

यो०—भोलकार ।

भोल^३—संज्ञा पु० [सं० भोल (रोलन), हि० भलना] १. पहने या ताने हुए कपड़े आदि में वह बंध जो डीजा होने के कारण भूल या लटककर भूलने की तरह हो जाता है । जैसे, कुन्ते या कोट में का भोल, धन की खादनी में का भोल आदि । २. कपड़े आदि के ढीले होने के कारण उसके भूलने या लटकने का भाव या क्रिया । तनाव या कसाव का उलटा ।

क्रि० प्र०—डालना ।—निशाना ।—निकालना ।—पड़ना ।

३. पल्ला । पावन । उ०—पूली फिरत जसोबा घर घर सबडि कान्हु अन्हलाय भमोल । तनक बचन सोउ तनक तनक कर तनक चरन पोछा पट भोल ।—सूर (शब्द०) । ४. परवा । भोट । भाड़ । उ०—ऊरी सुनत तिहारो बोल । त्याए हरि कुसनी भय तुम घर पर पारयो गोल । कहन देहु कहा करे हमी बन उठि वेहे भोल । आवत ही याको पहिचान्यो निपटहि भोले तोल ।—सूर (शब्द०) । ५. हाथी की चाल का एक ऐव जिसके कारण वह बिल्कुल सीधा न चलकर बराबर झूलता हुआ चलता है ।

भोल^३—वि० १. ढीला । जो कसा या तना न हो ।

यो०—भोलभाल = ढीलाढाला ।

२. निकम्मा । खराब । बुरा ।

भोल^३—संज्ञा पु० भूल । गलती । जैसे—गदहे की गोने में नी मन का भोल ।—(कहा०) ।

भोल^३—संज्ञा पु० [हि० भिल्ली या भोली] १. वह भिल्ली या थैली जिसमें गर्भ से निकले हुए बच्चे या भंडे रहते हैं । जैसे, कुतिया का भोल, मुरगी का भोल, मछली का भोल आदि ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल पशुओं और पक्षियों आदि के संबंध में ही होता है, मनुष्यों आदि के संबंध में नहीं ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

मुहा०—भोल बैठाना = मुरगी के नीचे सेने के लिये धंड़े रखना ।

२. गर्भ । उ०—भक्ति बीज बिनसै नहीं धाय परे जो भोल । जो कंचन बिठा परे घट न ताको भोल ।—कबीर (शब्द०) ।

भोल^३—संज्ञा पु० [सं० ज्वाल हि० भाल] १. राख । भस्म । चाक । उ०—(क) तुम बिन कता धन हरखे (हृदं या हृदं) वन वृन बरमा डोल । तेहि पर बिरह जराइ के चहे उझावा भोल ।—जायसी (शब्द०) । (ख) आगि जो लगी समुद्र में टुटि टुटि खगै जो भोल । रोवै कबिरा जिनया मोरा हीरा जरे धमोल ।—कबीर (शब्द०) । २. दाह । जनन ।

भोलदार—वि० [हि० भोल + का० दार] १. जिसमें रसा हो । रसेदार । २. जिसपर गिलट या मुलम्मा किया हो । ३. भोल संबंधी । ४. जिसमें भोल पड़ा हो । ढीलाढाला ।

भोलना—क्रि० सं० [सं० ज्वलन] जलाना । उ०—हमको तुझ बिन सबै सतायत । पूछ पूछ सदाग मखन के इहि बिधि दई बड़ाई । तिन अति बोल भोलि तनु डारयो घनन भँवर की नाई ।—सूर (शब्द०) ।

भोला^३—संज्ञा पु० [हि० भलना वा सं० बोल] [स्त्री० भलपा० भोली] १. कपड़े की बड़ी भोली या थैली । २. ढीलाढाला गिराक । खोली । जैसे, बटुक का भोला । ३. साधुओं का शोभा कुरता । चोला । ४. बात का एक रोग जिसमें कोई अंग (जैसे, हाथ पैर आदि) ढीला पड़कर बेकाम पड़ जाता है । एक प्रकार का खकवा या पक्षाघात ।

मुहा०—किसी को भोला मारना = (१) बात रोग से किसी अंग का बेकाम हो जाना । पक्षाघात होना । (२) मुग्ध पड़ जाना । बेकाम हो जाना ।

५. पेड़ों के फासा लू आदि के कारण एकबारगी कुम्हला जाने या सुल जाने का रोग ।

क्रि० प्र०—मारना ।

६. भटका । धायात । धक्का । भोंका । बाधा । आपत्ति । उ०—पाकी खेती देखिके गरवे कहा किसान । अजहँ भोला बहुत है घर भावे तब जान ।—कबीर (शब्द०) । ७. हाथ का संकेत । इशारा । ८. पाल की गोन या रस्सी को भटका देने या ढीलने की क्रिया ।

झोला^१—संज्ञा पुं० [हि० झलना] झोका । झोकोरा । हिसोर ।
उ०—कोई खादि पवन कर झोला । कोई करहि पात घस
झोला ।—जायसी (शब्द०) ।

झोलाहल—संज्ञा पुं० [सं० आज्वल्, प्रा० झलहल] (युद्ध की)
चमक । दीप्ति । प्रकाश । उ०—हय हिंसहि गज चिकरि
मगर सभ दिषि कुलाहल । बलि पंषिनि बेताल नंदि नंदिय
झोलाहल ।—पु० रा०, दा१४ ।

झोलिका—संज्ञा स्त्री० [हि० झोली] दे० 'झोली' । उ०—ऊघम
प्रति होत जात घंघट में नहि लखात छूटत बहुरंग उड़त घबिर
झोलिका ।—मारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३६३ ।

झोलिहारा—संज्ञा पुं० [हि० झोली + हारा (प्रत्य०)] १. झोली
लटकानेवाला । २. कहार । (सोनारों की बोली) ।

झोली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० झूलना] १. इस प्रकार मोड़कर हाथ
में लिया या लटकाया हुआ कपड़ा कि उसके नीचे का भाग
एक गोले बरतन के आकार का हो जाय और उसमें कोई
वस्तु रखी जा सके । कपड़े को मोड़कर बनाई हुई थैली ।
घोकरी । जैसे, गुलाल की झोली, साधुओं की झोली ।

विशेष—यह किसी चौखुंटे कपड़े के चारों कोनों को लेकर इकट्ठा
बांधने से बन जाती है । कभी कभी इसके नीचे के खुले हुए
चारों कोनों को कुछ दूर तक सी भी देते हैं ।

मुहा०—झोली छोड़ना = बुढ़ापे के कारण शरीर के चमड़े का
झूल जाना । झोली डालना = भिक्षा मागने के लिये झोली
उठाना । साधु या भिक्षुक हो जाना । झोली भरना = साधु
को भरपूर भिक्षा देना ।

२. पंख बांधने का जाल । ३. मोट । चरसा । पुर ४. वह कपड़ा
जिसमें ललिहान में प्रनाज में मिला हुआ भूमा उड़ाकर अलग
किया जाता है । ५. बीरा । कुश्ती का एक पेश ।

विशेष—यह पेश उस समय किया जाता है । जब विपक्षी किसी
प्रकार अपनी पीठ पर आ जाता है । इसमें एक हाथ उलटकर
उसकी कमर पर देते हैं और दूसरे में उसकी टांगों की
संधि पकड़ कर उठाते हैं ।

६. मुफरी बिस्तर जो चारों कोनों पर लगी हुई रस्सियों के द्वारा
खंभे पेड़ आदि में बांधकर फैलाया जाता है । ७. रस्सियों का
एक प्रकार का फंदा जिसके द्वारा भारी चीजों को उठाते हैं ।

झोली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल या झाला] राख । भस्म ।

मुहा०—झोली बुझाना = सब काम हो चुकने पर पीछे उसे करने
बचना । कोई बात हो जाने पर व्यर्थ उसके संबंध में कुछ
करना । जैसे,—पंचायत तो हो चुकी अब क्या झोली बुझाने
आए हो ?

विशेष—यह मुहावरा घर जलने की घटना से लिया गया है
पर्याप्त जब घर बलकर राख हो गया तब पानी लेकर बुझाने
के लिये पहुँचे ।

झोंकट^१—संज्ञा पुं० [हि० झंफट] दे० 'झंफट' ।

४-२६

झाद—संज्ञा पुं० [हि० झोफ] पेट । उदर । उ०—कोई कर्न
बिहीन या नासा बिन कोई । झोद फुटे कोई पड़े स्वासा बिन
होई ।—सूदन (शब्द०) ।

झौर^१—संज्ञा पुं० [सं० युग्म, प्रा० जुम्म, हि० झूमर] १. झुंड ।
समूह । उ०—छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध । ठौर
ठौर झोरत भरत झोर झोर मधु ग्रंथ ।—बिहारी (शब्द०) ।
२. फूलों, पत्तियों या छोटे छोटे फलों का गुच्छा । उ०—
दाख कैसी झोर झलकति जोति जोबन की चाटि जाते झोर
जो न होती रंग चरा की ।—(शब्द०) । ३. एक प्रकार
का गहना जिसमें मोतियों या चांदी सोने के दानों के गुच्छे
लटकते रहते हैं । झब्बा । उ०—कलगी तुराँ झोर जग
सरपेच सुकुडल ।—गूर (शब्द०) । ४. पेड़ों या झाड़ियों
का घना समूह । झापस । कुंज । उ०—बंस झोर गंभीर
भोतिकर नहि सुझत दस घामा ।—रघुराज (शब्द०)
५. दे० 'झावर' ।

झौर^२—संज्ञा स्त्री० [घनु०] झंफट । उ०—तुम काहे को झोर
करी इतनी, नहि काज है लाज हिये मढ़िबे को ।—नट०,
पृ० ५४ ।

झौरना—क्रि० घ० [घनु०] १. गुंजना । गुंजारना । उ०—छकि
रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध । ठौर ठौर झोरत भरत
झोर झोर मधु ग्रंथ ।—बिहारी (शब्द०) । २. दे० 'झोरना' ।

झौरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'झोर' ।

झौराना^१—क्रि० घ० [हि० झोना या झोना] १. झंवर रंग का
हो जाना । बदरंग हो जाना । काला पड़ जाना । २. मुरझाना ।
कुम्हलाना ।

झौराना^२—क्रि० घ० [हि० झूमना] इधर उधर हिलना ।
झूमना । उ०—साठिह रंक चले झौराई । निसेठ राव सब
कह झौराई ।—जायसी (शब्द०) ।

झौंसना—क्रि० स० [हि०] दे० 'झुलमना' । उ०—नाम लं चिलात
बिललान प्रकुलात प्रति तात तात तौसियत भौसियत भारहीं ।
—तुलसी (शब्द०) ।

झोनी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] टोकरी । दोरी ।

झोर—संज्ञा पुं० [घनु० झंज भाव] १. झंफट । बखेड़ा । हुज्जत ।
तकरार । हीरा । विवाद । उ०—(क) नहीं ठीठ नैनन ते
झोर । कितनों में बरजति समभावति उलटि करत है झोर ।
—सूर (शब्द०) । (ख) महारि तुम ब्रज चाहति कछु
झोर । बात एक में कही कि नाही आप लगवति झोर ।—
सूर (शब्द०) । २. डाँट । फटकार । कहासुनी । ऊँचा
नोचा । उ०—झोर को केतउ झोर सहै पे न बावरी रावरी
आस भुनैहै ।—द्विजदेव (शब्द०) ।

झोरना—क्रि० स० [हि० झपटना] छोप लेना । दबा लेना ।
झपट कर पकड़ना । उ०—इती भाषि के दुग रणों बीर
धीरयो । मृगाघोश ज्यों मृग के जूह झोरयो ।—सूदन
(शब्द०) ।

मौरी—संज्ञा पुं० [अनु० भावे भावे] मंभट। बखेड़ा। हुज्जन।
तकरार। होरा। विवाद।

क्रि० प्र०—करवा।—मचाना।

यौ०—होरा मोरी।

मौरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० भोल] दे० 'भोले'। उ०—उलटा कुंभ
भरे जख नाहीं बगुला खोजे मोरी।—सं० दरिया, पृ० १२७।

मौरे—क्रि० प्र० [हि० धोरे] १. मसोष। पास। निवट।
२. साथ। संग। उ०—सोरे अंग सुभन न पोरे खोलि
धोरे राति अधिक लो गधिका के मोरे ई लगे रहै।—देव
(शब्द०)।

भोल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भोल'। उ०—यह नर गरम मुलहया
देखि माया को भोल।—कबीर सा०, पृ० ५४३।

भोवा—संज्ञा पुं० हि० भावा] रहठे की बनी हुई वह छोटी बोरी
जिसमें मजदूर लोग खोदी हुई मिट्टी भरकर फेंकने के लिये ले
जाते हैं। खेंचिया।

भोहाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. गुराना। २. जोर से चिड़चिड़ाना।
क्रोध में भल्लाना।

भयूखना(पु)। क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भूलना'। उ०—येंक घाए
फिर वासुदेव बोले। ज्यों मानंद मद सुं भयूले।—बक्सनी, ०
पृ० १२२।

ट

ट—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला में ग्यारहवाँ व्यंजन जो टवर्ग का
पहला वर्ण है। इसका उच्चारण रथान मूर्धा है। इसका
उच्चारण करने में तालु से जीभ का अग्र भाग जगाना
पड़ता है।

टंक'—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. एक तोल जो चार माशे की
होती है।

विशेष—कोई कोई इसे तीन माशे या २४ रस्ती की भी
मानते हैं।

२. वह नियत मान या बाट जिससे तोल तोलकर बातु वजन
में निश्चय बनने के लिये ली जाती है। ३. सिक्का। ४. मोती
की तोल जो २१ १/२ रस्ती की मानी जाती है। ५. पत्थर काटने
या मचने का घोमार। टाँकी। टैनी। १. कूँदाड़ी। परणु।
करवा। ७. कुदाल। ८. गडग। नखार। ९. पत्थर का
कटा हुआ टुकड़ा। १०. छाप। ११. नील छविस्थ। नीला
केय। गाली। १२. कोय। क्रोध। १३. टाँ। अभिमाय।
१४. पर्वत का खडू। १५. मुहावा। १६. कोय। कबाना।
१७. सपूर्ण जाति का एक रास जो श्री, भैरव और कान्हड़ा
के योग से बना है।

विशेष—इसके याने का समय रात ११ बजे से २० बजे तक है।
इसमें कोमल ऋषभ लगता है और इसका सरगम इस प्रकार
है सा रे ग म प ध नि। हनुमत् के मत से इसका स्वरग्राम
हे—म ग म प ध नि रा स।

१८. स्थान। १९. एक कटिवाश पेड़ जिसमें बेज या केय के बराबर
फल लगती है। २०. सौंदर्य (को०)। २१. गुरुक (को०)।

टंक'—संज्ञा पुं० [सं० टंक] १. तामाक, पानी रखने का होज।

टंक(पु)। संज्ञा पुं० [?] पलाश। थोड़ा घम। उ०—जाको जस
टंक सातो होय नय संक महिमंजन की कहु बहाना समान
है।—भूषण० पं०, पृ० २२२।

टंकक'—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. चाँदी का सिक्का या रुपया। २.
टाँकी। टैनी (को०)।

टंकक'—संज्ञा पुं० [हि० टंकण] टंकण यंत्र पर टंकण कार्य करने-
वाला व्यक्ति। (सं० टाइपिस्ट)।

टंककपति—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ककपति] दे० 'टंकपति' (को०)।

टंककशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ककशाला] टंकशाला घर।

टंकटीक—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कटीक] शिव।

टंकण'—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कण] १. सुहागा। २. बातु की जीब में
टाँका मारकर जोड़ खाने का कार्य। ३. घोड़े की एक जाति।
४. एक देश जिसका नाम जो बृहत्संहिता में कौकण आदि के
साथ आया है।

टंकण'—संज्ञा पुं० [अनु०] टाइपराइटर पर टंकित करनेका कार्य।
टाइप करना। उ०—छपाई और टंकण की कठिनाइयाँ कैसे
दूर हों।—भा० शिक्षा, पृ० ५६।

टंकणसार—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कणसार] सोहागा (को०)।

टंकन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'टंकण'। उ०—एक ओर की प्रेम, जोर
करने पर जोरिए। ज्यों टंकन वै हेम, पितरन प्रान भकोरिए।
—ब्रज० पं० १४१।

टंकणयंत्र—संज्ञा पुं० [हि० टंकण + सं० यंत्र] एक प्रकार का छापने
का छोटा यंत्र जिसपर अक्षरों की पंक्तियाँ अक्षम अक्षर बनी
होती हैं और जब छापना होता है तो उन्हीं पंक्तियों को उँच-
मियों से दबाते जाते हैं और पंच के ऊपर बसे हुए कागज
पर अक्षर छपते जाते हैं। टाइपराइटर।

विशेष—कार्बन पेपर की सहायता से इस यंत्र पर एकाधिक
पंक्तियाँ टंकित की जा सकती हैं।

टंकना'—क्रि० प्र० दे० [हि० टाँकना] दे० 'टंकना'।

टंकना(पु)। क्रि० प्र० [?] टंकना। धातुत करना। उ०—बहुं न
भील कवि छोन हूँ अज्य मान टंकनि फिर।—पृ० रा०,
२५।६९।

टंकपति—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कपति] टंकशाला का अधिकारी।

टंकवान्—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कवत्] एक पहाड़ जिसका नाम बाल्मीकि
रामायण में आया है।

टंकवाना'—क्रि० प्र० [हि० टंकवाना] दे० 'टंकाना'।

टंकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कशाला] टंकशाला।

टंका'—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. पुराने समय में चाँदी की एक तोल

जो एक तोले के बराबर होती थी। २. तबि का एक पुराना सिक्का। टका। ३. सिक्का। मुद्रा। उ० पान कसए सोनाक टंका चादन क मूल ईंधन बिका।—कीर्ति०, पृ० ६८।

टंका^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मन्ना या ईन्ध।

टंका^२—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्का] १. जंघा। २. वारा देवी। ३. संयुक्त जाति की एक रागिनी जो भिषङ्ग और भावि मुख्यतः युक्त होती है। हनुमत् के अनुसार इसका स्वरप्राम यों है—स रे ग म प ष नि स।

टंकानक—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कानक] ब्रह्मदार। गहतून।

टंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कार] १. वह शब्द जो धनुष की कसी हुई डोरी पर बाण रखकर खींचने से होता है। धनुष की कसी हुई पतचिका खींच या तानकर छोड़ने का शब्द। २. टबटब शब्द जो कसे हुए तार आदि पर उँगली मारने से होता है।

३. धातुखंड पर आघात लगने का शब्द। ठनाका। फनकार।

४. विस्मय। ५. कीर्ति। नाम। प्रसिद्धि। ६. कोलाहल। शोरगुल (को०)। ७. प्रपञ्च। कुर्याति (को०)।

टंकारना—क्रि० सं० [सं० टङ्कार + ना (प्रत्यय)] धनुष की डोरी खींचकर शब्द करना। पतचिका तानकर ध्वनि उत्पन्न करना। चिल्ला खींचकर बजाना।

टंकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कारी] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ लंबोतरी होती हैं।

विशेष—फूल के भेद से इसकी कई जातियाँ हैं। किसी में माल फूल खसते हैं, किसी में गुलाबी और किसी में सफेद। फूल गुच्छों में लगते हैं जिनके भङ्गने पर छोटे छोटे फलों के गुच्छे खसते हैं। यह सुप जंगलों में बहुत होता है। वैद्यक में इसका स्वाद कटु और गुण वात कफ का नाशक और भ्रमिदापक लिखा है। टंकारी ज्वर रोग और विसर्प रोग में भी दी जाती है।

टंकारी^२—क्रि० [सं० टङ्कारिन्] [क्रि० स्त्री० टङ्कारिणी] टंकार करनेवाला (को०)।

टंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्किका] परस्पर काटने का औजार। टांकी। छेनी। उ०—सुतर सुजन बन उल्लस सभ खल टंकिका खलान। परहित अनहित लागि सब सौसति सहत समान।—तुलसी (ध्रुव०)।

टंकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्का] श्री राग की एक रागिनी।

टंकी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्का (= लङ्का या गङ्गा)] १. दीवार उठाकर बनाया हुआ पानी भरने का एक छोटा सा कुंड। खोबन्चा। टांका। २. पानी भरने का बड़ा बर्तन। टब। ३. तेल भरने या संचित करने का पात्र।

टंकुत—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कूत] टंकार की ध्वनि (को०)।

टंकोर—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कार] दे० 'टंकार'। उ०—देखे राम पथिक बाधत मुषित भोर। मानत मनहु सतहित सलित घब, धनु सुरधनु, गरजन टंकोर।—तुलसी ग्रं० पृ० ३६३।

टंकोरवा—क्रि० सं० [धनु०] १. धनुष की रस्सी को खींचकर

उससे शब्द उत्पन्न करना। टंकारना। २. ठोकर लगाना। ठोकर मारकर शब्द उत्पन्न करना। ३. तंजनी या मध्यमा उँगली की कुडली बनाकर उसकी नोक को धंगू से दबाकर बलपूर्वक छोड़ना जिससे किसी वस्तु में जोर से टक्कर लगे।

टंग—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ग] १. टांग। टंगड़ी। २. कुन्हाड़ी। ३. कुदाल। परशु। फरमा। ४. सुहागा। ५. चार मासे की एक तोल। ६. एक प्रकार की तार (को०)।

टंगण—संज्ञा पुं० [सं० टङ्गण] टङ्गण। सोहागा।

टगा—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्गा] टांग। पेर (को०)।

टंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंगिनी] पाठा।

टंक्क—क्रि० [सं० चण्ड, हिं० चठ] १. सूझा। कल्लू। कपण। २. कठोरहृदय। निष्ठुर।

टंच—क्रि० [हिं० टंचन] तैयार। मुस्तैद।

टंटघट—संज्ञा पुं० [धनु० टन टन + घट] पूजा पठ का भारी आडंबर। चड़ी पटा आदि बजाकर पूजा करने का भारी प्रान्त। मिथ्या आडंबर।

क्रि० प्र०—करना।—कनाना।

टंटा—संज्ञा पुं० [सं० तरडा (= आक्रिय)] प्रयत्न धनु० टनटन] १. उपद्रव। हलबल। दगा। फलद।

क्रि० प्र०—मचाना।

मुहा०—टंटा खड़ा करना = उपद्रव करना। भगडा मचाना।

२. तकरार। लड़ाई। कलह।

यौ०—भगडा टंटा।

३. आडंबर। प्रपञ्च। बखड़ा। खटराग। लवी चौड़ी प्रक्रिया। जैसे,—हम दवा के बनाने में तो बड़ा टंटा है।

टंडर—संज्ञा पुं० [ग्रं० टेंडर] १. वह कागज दिने के द्वारा कोई मनुष्य किसी दूसरे से कुछ काम करने या कोई मान किसी नियत दर पर बेचने खरीदने का इकरार करता है। निवेदा। २. अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी के प्रति अपना देना अदा करने में दायित्व करे। निवेदा।

टंडल^१—संज्ञा पुं० [ग्रं० जेनरल, हिं० जडेन] मन्त्रदूत का मेठ या जमादार।

टंडल—संज्ञा पुं० [ग्रं० टेंडर] दे० 'टंडर'।

टंडस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० टंडा] दिवावटी काम। भूडा काम। उ०—टंडस में बाढ़े जंजाला।—धरती०, पृ० ४१।

टंडेल—संज्ञा पुं० [ग्रं० जेनरल, हिं० जंडेल] दे० 'टंडल'।

टंसरी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बीछा।

टंकना—क्रि० सं० [हिं० टांकना का प्रक० रूप] १. टोका जाना। कील आदि जड़कर जोड़ा जाना। जैसे—एक छोटी सी चिप्पी टंक जायगी तो यह गगरा काम देने लायक हो जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

२. सिलाई के द्वारा जुड़ना। मिलना। मिला जाना। जैसे, फटा सूता टंकना, बकसी टंकना, गोटा टंकना।

संयो० क्रि०—जाना।

३ सीकर चँटकाया जाना । मिलाई के द्वारा ऊपर से लगाया जाना । जैसे, भालर में मोती टँके हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

४. रेती या सोहन के दाँतों का नुकीला होना । रेती का तेज होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५. धँकित होना । निखा जाना । दर्ज किया जाना । जैसे,—यह रुपया बही पर टँका है या नहीं ?

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—इस अर्थ में हथ क्रिया का प्रयोग ऐसी वस्तु, रकम या नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है ।

६. मिल, चक्की आदि का टाँकी से गड़ु करके खुरदरा किया जाना । छिनना । रेखा जाना । कुटना ।

टँकवाना क्रि० सं० [हि०] ३० 'टँकना' ।

टँकसालि(पु)—संज्ञा स्त्री [हि०] ३० 'टँकसाल' । उ०—चड़ी और शब्द रची टँकसालि । -प्राण०, पृ० १०२ ।

टँकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टँकना] १. टाँकने की क्रिया या भाव । २. टाँकने की मजदूरी ।

टँकाना—क्रि० सं० [टँकना का प्रे० रूप] १. टाँकों से जोड़वाना या मिलवाना । जैसे, रेशा टँकाना । २. मिलाकर लगवाना । जैसे, बटन टँकाना । ३. (सिल, जोता, चक्की आदि) खुरदुरा करना । कुटाना । ४. लिखवाना । टँकवाना ।

टँकाना^१—क्रि० सं० [सं० टङ्क (= सिक्का)] सिक्कों का परखवाना सिक्कों की जाँच कराना ।

टँकारना—क्रि० सं० [हि० टँकारना] ३० 'टँकारना' । उ०—सुफलक बढ़ि निज धनुष टँकायो । बीग बाण बाहलीकहि मांयो । -गोपाल (शब्द०) ।

टँकावल(पु) वि० [सं० टङ्क (= सिक्का) + आवल (= वाला)] टकोंवाला । बहुवचन । उ०—काने कुंडन मलमलइ कंठ टँकावल हार । -दोला०, दू० ४८० ।

टँकोर(पु)—संज्ञा पुं० [हि० टँकोर] ३० 'टँकोर' । उ० प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा । -तुलसी (शब्द०) ।

टँकोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] ३० 'टँकोरी' ।

टँकौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] सोना, चाँदी आदि चीजों का छोटा तराजू । छोटा कौटा ।

टँगड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] घुटने से लेकर एँडों तक का भाग । टाँग ।

मुद्दा०—टँगड़ी पर उड़ाना = लंग मारकर गिराना । कुश्ती में पैर से पैर फँसाकर गिराना । घबंरा मारना ।

टँगना^१—क्रि० प्र० [सं० टङ्क या टङ्गण (= जड़ा जाना)] १. किसी वस्तु का किसी ऊँचे आधार पर बहुत थोड़ा सा इस प्रकार घटकना या ठहरा रहना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर गया हो । किसी वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार बँधना वा फँसना प्रथवा उसपर इस प्रकार

टिकना या घटकना कि उसका (प्रथम वस्तु का) बहुत सा भाग नीचे की ओर लटकता रहे । लटकना । जैसे, (खूँटी पर) कपड़े टँगना, परदा टँगना, तसवीर टँगना ।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा अंश आधार पर हो और थोड़ा सा अंश आधार के नीचे लटका हो तो उस वस्तु को टगी हुई नहीं कहेंगे । 'टँगना' और 'लटकना' में यह अंतर है कि 'टँगना' क्रिया में वस्तु के फँसने या टिकने या घटकने का भाव प्रधान है और 'लटकना' में उसके बहुत से अंश का नीचे की ओर अक्षर में दूर तक जाने का भाव ।

संयो० क्रि०—उठना । -जाना ।

२. फाँसी पर चढ़ना । फाँसी लटकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टँगना^२—संज्ञा पुं० १. वह घाड़ी बँधी हुई रस्मी जिमपर कपड़े आदि टाँगे या रखे जाते हैं । झलमनी । झिलमनी । २. जुलाहों की वह रस्सी जिमसे लठौनी टाँगी जाती है । ३. वह फँदा जिसे भेंटी, लोटे आदि के गले में फँसाकर हाथ में लटकाए हुए ले चलने के लिये बनाते हैं ।

टँगरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'टँगड़ी' ।

टँग्रा—संज्ञा पुं० [देश०] मूँज ।

टँगरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] कुल्हाड़ी । कुठार ।

टँड पु—संज्ञा पुं० [हि० टटा] झगड़ा । प्रपंच । सांसारिक माया । उ०—टँड सकट में प्रसित है सुत दारा रह्याई । -भीखा श० पु० ८७ ।

टँड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड अथवा देश०] बाँह में पहनने का एक गहना जो अंगुली के आकार का, पर उससे भारी और बिना धुँडी का होता है । टाँड़ । बहूँरा ।

टँडुलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] बनबीलाई जो कुछ फाँटेदार होती है । यह साग और दवा दोनों के काम आती है ।

टँसहा^१—संज्ञा पुं० [हि० टँस + हा (प्रत्य०)] वह बैन जो नभों के सिकुड़ जाने से लँगड़ा हो गया हो ।

ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. नारियल का खोपड़ा । २. बामन । ३. चौपाई भाग । ४. शब्द ।

टई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'ठहो' ।

टक—संज्ञा स्त्री० [सं० टक (= बाँधना) या सं० भाटक] १. ऐसा ताकना जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे । किसी और लगी या बँधी हुई दृष्टि । गड़ी हुई नजर । स्थिर दृष्टि ।

क्रि० प्र०—लगना । -लगाना ।

मुद्दा०—टक बँधना = स्थिर दृष्टि होना । टक बाँधना = किसी की ओर स्थिर दृष्टि से देखना । टकटक देखना = बिना पलक गिराए लगातार कुछ काल तक देखते रहना । टक लगाना = आसरा देखते रहना । प्रतीक्षा में रहना ।

२. लकड़ी आदि भारी वस्तुओं को तोलनेवाले बड़े तराजू का चौखूँटा पलड़ा ।

टकभक्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० टकटकी + भक्ति] ताकभक्ति ।

उ०—टकटक सौं भुकि बदन निहारत पलक सेवारत पलक न मारत जान गई नंदरानी ।—नंद० प्र० पु० ३३८ ।

टकटक(७)—क्रि० वि० [हि० टकटकाना] टकटकी लगाकर देखना । एक टक देखना । उ०—टकटक ताकि रह्यो ठग मुरी घापा घाप बिसारी हो ।—पलटू० भा० ३, पु० ८४ ।

क्रि० प्र०—ताकना ।—देखना ।

टकटका(७)†—संज्ञा पु० [हि० टक या सं० त्राटक] [भी० टकटकी] स्थिर दृष्टि । टकटकी । उ०—सुनि सो बात राजा मन जागा । पलक न मार टकटका लागी ।—जायसी (शब्द०) ।

टकटका^२—वि० स्थिर या बंधी हुई (दृष्टि) । उ०—रूपासक्त चकोर कवक करि पावक को छात कन । रामचंद्र को रूप निहारत साधि टकाटक तकन ।—देवस्वामी (शब्द०) ।

टकटकाना†—क्रि० सं० [हि० टक] १. एक टक ताकना । स्थिर दृष्टि से देखना । उ०—टकटके मुख भुकी नैनही भागरी, उरहुनों देत कवि अधिक बाढ़ी ।—सूर (शब्द०) । २. टकटक शब्द उत्पन्न करना । ३. फल गिराने के लिये किसी पेड़ आदि को हिलाना ।

टकटकाना^२—क्रि० सं० [हि० टका (= सिक्का)] १. रुपए लेना । चालाकी से रुपए लेना । २. धन कमाना । घाय करना ।

टकटकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टक या सं० त्राटकी] ऐसी तकाई जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे । अनिमेष दृष्टि । स्थिर दृष्टि । गड़ी हुई नजर । उ०—टकटकी चंद चकोर ज्यों रहत है । सुरत घोर निरत का तार बाँधे ।—कबीर म०, भा० १, पु० ८८ ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टकटकी बंधना = स्थिर दृष्टि होना । टकटकी बाँधना = स्थिर दृष्टि से देखना । ऐसा ताकना जिसमें कुछ काल तक पलक न गिरे । उ०—घोर की खोट देखती बेना । टकटकी लोग बाँध देते हैं ।—खोखे०, पु० १५ ।

टकटोना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टकटोलना' । उ०—पुनि पीवत ही कब टकटोने भठ जननि रठे ।—सूर (शब्द०) ।

टकटोरना†—क्रि० सं० [सं० त्वक् (= चमड़ा) + तोलन (= घंटाज करना)] हाथ से छूकर पता लगाना या जाँचना । स्पर्श द्वारा अनुसंधान या परीक्षा करना । टटोलना । उ०—(क) सूर एकहू भंग न काँची में देखी टकटोरि ।—सूर (शब्द०) । (ख) नहि सगुन पायउ एक मिसु करि एक धनु देखन भए । टकटोरि कपि ज्यों नारियस सिर नाइ सब बैठत भए ।—तुलसी ग्रं०, पु० ५३ । २. तलाश करना । हूँटना । खोजना । उ०—मोहि न पस्याहु तो टकटोरी देखो पन वै ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

टकटोलना—क्रि० सं० [सं० त्वक् (= चमड़ा) + तोलन (= घंटाज करना)] हाथ से छूकर पता लगाना या जाँचना । टटोलना ।

टकटोहना—संज्ञा पु० [हि० टकटोना] टटोलकर देखने की क्रिया । स्पर्श । उ०—श्याम श्यामा मन रिझवत पीन कुचन टकटोहन ।—सूर (शब्द०) ।

टकटोहना(७)—क्रि० सं० [हि० टकटोना] दे० 'टकटोलना' । उ०—या बानक उपमा दीवे को सुकवि कहा टकटोहै । देखन भंग यके मन में शशि कोटि मदन छवि मोहै ।—सूर (शब्द०) ।

टकतंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० हि० टक + सं० तंत्री] सितार के ढंग का एक प्राचीन बाजा ।

टकना†—संज्ञा पु० [सं० टक्क (= टाँग)] घुटना ।

टकना†—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टकना' ।

टकवीड़ा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की भेट जो किसानों की धोर से विवाहादि के प्रवसरो पर जमींदारों को दी जाती है । मधवच । शादिया ।

टकराना†—क्रि० प्र० [हि० टकर] १. एक वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार वेग के साथ सहसा मिलना या छू जाना कि दोनों पर गहरा घाघात पहुँचे । जोर से भड़ना । धक्का या ठोकर लेना । जैसे,—(क) चट्टान से टकराकर नाव चूर चूर होना । (ख) ग्रंथिरे में उसका सिर दीवार से टकरा गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. इधर से उधर मारा फिरना । डाँवाडोल घूमना । कार्य-सिद्धि की प्राप्ति से कई स्थानों पर कई बार घूमना जाना । घूमना । जैसे,—उसका घर मालूम नहीं मैं कहाँ टकराता फिल्लूमा ? उ०—जँदु तँहूँ फिरत स्वान की नाई द्वार द्वार टकरात ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—टकराते फिरना = मारे मारे फिरना । हैरान घूमना ।

३. लड़ाई या भगड़ा होना ।

टकराना^२—क्रि० सं० १. एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर जोर से मारना । जोर से भिड़ाना । पटकना ।

मुहा०—भाषा टकराना = (१) दूसरे के पैर के पास सिर पटककर विनय करना । अत्यंत अनुनय विनय करना । (२) जोर प्रयत्न करना । सिर मारना । हैरान होना ।

२. किसी को किसी से लड़ा देना ।

टकराव—संज्ञा पु० [हि० टकर + भाव (प्रत्यय)] टक्कर । टकराहट । टकराहट—संज्ञा स्त्री० [हि० टकराना] १. टकराने का भाव या क्रिया । उ०—वह स्वर जिसकी तीखी सशक्त टकराहट से, नारी की आत्मा में भी कुछ जग जाता है ।—ठठाल, पु० ७१ ।

२. संघर्ष । लड़ाई ।

टकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

टकसरा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो घासाम, चटगाँव घोर बर्मा में होता है । इससे अनेक प्रकार के सजावट के सामान बनते हैं ।

टकसारा†—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. दे० 'टकसाल' । उ०—पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार । पारस से पारस भया, परख भया टकसार ।—कबीर (शब्द०) ।

मुहा०—टकसार बाणी = प्रामाणिक बात । सच्ची बाणी । उ०—दूसरे कबीर साहब की जो टकसार बाणी है ।—कबीर म०, पु० १८ ।

२. जैसी या प्रामाणिक वस्तु। उ०—नष्टे का यह राज है न फरक बरते द्वेक। मार शब्द टकसार है हिरदय मर्हि विवेक।
—कबीर (शब्द०)।

टकसारी(५)—वि० [हि० टकसार] दे० 'टकसारी'।

टकसाल—संज्ञा स्त्री० [म० टकसाला] १. यह स्थान जहाँ सिक्के बनाए या बाँटे जाते हैं। रुपए ऐसे बाँटने के कार्यालय।

मुहा०—टकसाल का खोटा=नीच। दुष्ट। कमीना। कम भयस्य प्रणिष्ट। टकसाल के चट्टे बट्टे=टकसाल में ठले हुए। विनिष्ट प्रकृति के। उ०—राज्य के अधिकारी तो वही पुरानी टकसाल के चट्टे बट्टे थे।—किन्नर०, पृ० २५। टकसाल बढ़ना=(१) टकसाल में परखा जाना। सिक्के या धातु-खड्ग की परीक्षा होना। (२) कृषि विद्या या कला कोशल में दक्ष माना जाना। मारग माना जाना। (३) बुराई में प्रभयस्त होना। शुद्ध या दुष्टता में परिपक्व होना। बदमाशी में पक्का होना। निवृत्त होना। टकसाल बाहर=(१) (सिक्का) का राज्य का टकसाल का न होने के कारण प्रामाणिक न माना जाय। जो पंचार में न हो। (२) (वाक्य या शब्द) जो प्रामाणिक न माना जाय। जिसका प्रयोग निष्ठ न माना जाय।

२. जैसी या प्रामाणिक वस्तु। प्रमत्त चीज। निर्वीच वस्तु।

टकसाली—वि० [हि० टकसाल + द (प्रत्य०)] १. टकसाल का। टकसाल संबंधी। २. जो टकसाल का बना हो। खरा। खोला। जैसे, टकसाली रुपया। ३. सर्वसमत। अधिकारियों या विज्ञों द्वारा अनुमोदित। माना हुआ। जैसे, टकसाली भाषा। ४. जैसा हुआ। पक्का। प्रामाणिक। परीक्षित। जैसे, टकसाली बात।

मुहा०—टकसाली बात=पक्की बात। ठीक बात। ऐसी बात जो प्रमथ्या न हो। टकसाली बोली=सर्वसंगत भाषा। विज्ञों द्वारा अनुमोदित भाषा। निष्ठ भाषा। ऐसी भाषा जिसमें प्राम्य बाँट दोष न हों।

टकसाली—संज्ञा पुं० टकसाल का अधिकारी। टकसाल का अध्यक्ष।

टकहाई—वि० स्त्री० [हि० टका] जो टके टके पर व्यापक करती हो। जो वेश्याओं में नीच हो। जैसे, टकहाई रंगी।

टका—संज्ञा पुं० [सं० टक्का] १. बाँटो का एक पुराना सिक्का। रुपया। उ०—(क) रतन सेन होगमन चीन्हा : लाख टका बाह्यन कट्टे दे. ॥—जायसी (शब्द०) (ख) लाख टका घर भूमक मारो दे लाई बी मंग।—सूर (शब्द०)। २. ताँबे का एक सिक्का जो दो पैसों के बराबर होता है। धवना। दो पैसे। जैसे—धंधेर नगरी लोचन राजा। ठके मेर बाबी टके धेर राजा।

मुहा०—टका पास न होना=निघन होना। वरिद्ध होना। टका सा जवाब देना=(१) सट से जवाब देना। तुरंत प्रस्वीकार करना। किसी की प्रार्थना, याचना, अनुरोध या आज्ञा को तुरंत प्रस्वीकार करना। सफ़्त स्वीकार करना। कोरा जवाब देना। जैसे,—मैंने दो दिन के लिये उनसे घोड़ा माँगा तो उन्होंने टका सा जवाब दे दिया। (२) सफ़्त जवाब देना कि मैंने इस

काम को नहीं किया है या मैं इस बात को नहीं जानता। साफ निकल जाना। कानों पर हाथ रखना। टका सा मुँह लेकर रह जाना=छोटा सा मुँह लेकर रह जाना। लज्जित हो जाना। खिसिया जाना। टका सी जान=घबैरा वम। एका हो जीव। (स्त्रि०)। टके ऐठना=अनुचित रूप से या पूर्वतः से रुपया प्राप्त करना। रुपया ऐठना। उ०—क्यों टका सा जबाब उसको दे। जिस किसी से सदा टके ऐंठे।—बोले०, पृ० २७। टके की मोकात=(१) साधारण वित्त का भादमी। गरीब भादमी। (२) अस्तित्वहीनता। उ०—हम गरीब भादमी हैं, टके की हमारी मोकात।—फिमाना०, भा० ३ पृ० ८७। टके को न पूछना=लेखमात्र महत्व न देना। महत्वहीन समझना। उ०—भूखो मरते हैं कोई टके की भी नहीं पूछता। फिमाना०, भा० ३, पृ० २६७। टके कास का दोड़नेवाला=थोड़ी मजदूरी पर अधिक परिश्रम करनेवाला। गरीब नोकर। उ०—टके कोस के दोड़नेवाले, हमको दोड़ने धूपने से काम है।—मेर कुं०, भा० १, पृ० २१। टके गज की चाल=मोटी चाल। कफायत न निधीत। टके गिनना=हुक्के का गुड़ गुड़ बोलना।

३. घन। द्रव्य। रुपया पैसा। जैसे,—जब टका पास में रहेगा, तब सब सुनेंगे। ४. तीन तोले की तोल। दो बालाशाही पैसे भर की तोल। अर्ध छंटाक का मान। (वैद्यक)।

मुहा०—टका भर=(१) तीन तोले का परिमाण। (२) थोड़ा सा। जरा सा।

५. गड़वाल की एक तोल जो सवा सेर के बराबर होती है।

टकाई—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'टकाही', 'टकहाई'।

टकाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टकासी'।

टकाउल(५) वि० [हि० टका (-सिक्का) उल (=वाला) (प्रत्य०)] टकावाला। टके का। उ०—अंगिरसु कोड़ि टकाउल हार।—बी० रासो, पृ० ३६।

टकाटकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टकटकी'।

टकातोप—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की तोप जो जहाजों पर रहती है।—(संज्ञ०)।

टकाना—क्र० सं० [हि०] दे० 'टंकाना'।

टकानी—संज्ञा स्त्री० [हि० टका] बेलगाड़ी का जुआ।

टकासी—संज्ञा स्त्री० [हि० टका] १. टके रुपए का व्याज। दो पैसे रुपए का मुद। २. यह कर या चढ़ावा प्रति अनुष्य से एक एक टके के हिसाब से लिया जाय।

टकाही—वि० [हि० टका + ही (प्रत्य०)] दे० 'टकहाई'।

टकाही—संज्ञा स्त्री० दे० 'टकासी'।

टकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टक] दे० 'टकटकी'।

टकी—वि० [हि० टकना] टकी हुई।

टकुआ—संज्ञा पुं० [म० तकुंक, प्रा०, लघुकुप्र] १. एक प्रकार का गुआ जो बरखे में लगा रहता है। तकला। २. बिनोबा निकालने की बरखी में लगा हुआ लोहे का एक पुरजा। ३. छोटे वराह या कटि के पलकों में बँधा हुआ ताया।

टकुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिमालय की तराई में होनेवाला एक ऐसा पेड़ जिसकी पत्तियाँ झर जाया करती हैं। चपोट सिरोस।

टकुली—संज्ञा स्त्री० [सं० टकु] १. पत्थर काटने का औजार। २. पेशकश की तरह लोहे का एक औजार जो नक्काशी बनावे के काम में आता है।

टकुवा—संज्ञा पुं० [सं० तकुं, प्रा० तक्कुम] दे० 'टकुपा'। उ०—
टकुली सेदुर टकुवा चरखा नसी ने फरमाया।—कधीर०,
श०, भा० ४, पृ० २५।

टकुचना—क्रि० सं० [हि० टाकना] खाना।—(दलाल)।

टकैट—क्रि० [हि०] दे० 'टकैत'।

टकैल—क्रि० [हि० टका + ऐल (प्रत्यय)] १. टकेवाला। खपए पैसवाला। धनी। २. कम हैसियत या थोड़ी पूँजीवाला।

टकैया—क्रि० [हि० टका + इया (प्रत्यय)] १. टके का। टके-
वाला २. तुच्छ। साधारण।

टकोर—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्कार] १. ठूलकी चोट। प्रहार। घाघात।
ठेस। धपेड़।

क्रि० प्र०—देना।

२. हँके की चोट। नगाड़े पर का घाघात। ३. हँके का शब्द।
नगाड़े की घाघात। ४. घमूष की बोरी लीचने का शब्द।
हंकार। ५. दवा घरी हुई गरम पोतली को किसी घंग पर
रखकर छुवाने की क्रिया। सेंक। ६. दाँतों की बहुत टोस जो
किसी वस्तु के खाने से होती है। दाँतों के गुठने होने का
भाव। चमक।

क्रि० प्र०—लगना।

७. भास। परपराहट। उ०—कवहूँ कीर खात मिरवन की
नयी दसन टंकोर।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

टकोरना—क्रि० प्र० [हि० टकोर से नामिक वातु] १. ठोकर
लगाना। ठूलका घाघात पहुँचाना। ठेस या धपेड़ मारना।
२. हँके आदि पर चोटे खपाना। खजाना। ३. दवा घरी हुई
किसी गरम पोतली को किसी घंग पर रख रखकर छुवाना।
सेकना। सेंक करना।

टकोरा—संज्ञा पुं० [सं० टक्कार] हँके की चोट। लोखत की घाघात।

टकौना—संज्ञा पुं० [हि० टका + कोना (प्रत्यय)] दे० 'टका'।

टकौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्कु] १. खोना या बि तोखने का छोटा
तराजू। छोटा काँटा। २. दे० 'टकाशी'।

टक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. कजुस व्यक्ति। कूपर। २. बाह्यिक वासीय
व्यक्ति (को०)।

टक्कदेश—संज्ञा पुं० [सं०] वनाब और ग्रास के बीच के प्रदेश का
प्राचीन नाम।

विशेष—राजरंतिगुणी में टक्क देश को गुजंर (गुजरात) राज्य
के अंतर्गत लिखा है। टक्क जाति किसी समय में अत्यंत प्रताप-
शालिनी थी और सारे पंजाब में राज्य करती थी। चीनी

यात्री हुएनसांग ने टक्क राज्य तथा उसके अधिपति मिहिरकुल
का उल्लेख किया है। मिहिरकुल का हूण होना इतिहासों में
प्रसिद्ध है। ये हूण पंजाब और राजपूताने में बस गए थे।
यशोधर्मन् द्वारा मिहिरकुल के पराजित होने (५२८ ईसवी)
के ७५ वर्ष पीछे हूणधर्मन राजसिंहासन पर बैठे थे जिनके
राजत्वकाल में हुएनसांग आया था। टक्क आर्य हूण जाति
की ही कोई जाति नहीं हो।

टक्कदेशीय—वि० [सं०] टक्कदेश का। टक्क देश में उत्पन्न।

टक्कदेशीय—संज्ञा पुं० बगुआ नाम का माग।

टक्कबाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० टक + बाड़ी] एक प्रकार का बात-
रोग जिसमें रोषों का शरीर सुन्न हो जाता है और वह टक
बाधकर ताकता रहता है।

टक्कर—संज्ञा स्त्री० [पगु० ठक] १. वह घाघात जो दो वस्तुओं
के वेग के साथ मिलने या घुं जाने से लगता है। दो वस्तुओं
के भिड़ने का धक्का। ठोकर।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—टक्कर खाना = १. किसी कड़ी वस्तु के साथ इतने वेग से
भिड़ना या घुं जाना कि गहरा घाघात पहुँचे। जैसे,—चट्टान
से टक्कर खाकर नाव धूर धूर हो गई। २. मारा मारा
फिरना। जैसे,—नोकरी झूठ जाने से वह इधर उधर टक्करे
खाता फिरता है।

२. मुकाबिला। मूठभेड़। भिड़ंत। लड़ाई। जैसे,—दिन भर में
दोनों की एक टक्कर हो जाती है।

मुहा०—टक्कर का = जोड़ का। मुनादिले का। बराबरी का।
समान। तुल्य। जैसे,—उनकी टक्कर का विद्वान् यहाँ कोई
नहीं है। टक्कर खाना = (१) मुकाबिला करना। समुझ होना।
लड़ना। भिड़ना। (२) मुकाबिले वा होना। समान होना।
तुल्य होना। उ०—इस टोपी का काम सच्चे काम से टक्कर
खाना है। टक्कर लड़ना = बराबरी होना। समानता होना।
उ०—इस ठास में रहती है कि बन्धी भन्धी रईस जातियों
से टक्कर लड़े।—फिसाना०, भा० १, पृ० १। टक्कर देना =
वार सहना। धोड़ सहारना। मुकाबिला करना। लड़ना।
भिड़ना। पहाड़ से टक्कर लेना = बड़े भारी शत्रु से भिड़ना।
अपने से अधिक सामर्थ्यवाले शत्रु से लड़ना।

३. जोर से सिर मारने का धक्का। किसी कड़ी वस्तु पर माथा
मारने या पटकने का घाघात।

क्रि० प्र०—खपाना।

मुहा०—टक्कर मारना = (१) घाघात पहुँचाने के लिये जोर से
सिर मारना या पटकना। धिरे से धक्का लगाना। (२)
माथा मारना। हैरत होना। जोर पराक्रम और उद्योग
करना। ऐसा प्रयत्न करना जिसका फल शीघ्र न दिखाई
दे। जैसे,—लाख टक्कर मारो सब वह तुम्हारे हाथ नहीं
आता। टक्कर लड़ना = दूसरे के सिर पर सिर मारकर
लड़ना। माथे से माथा भिड़ाना। जैसे,—दोनों मेढ़े खूब
टक्कर लड़ रहे हैं। टक्कर लड़ना = सिर से धक्का मारना।

४. घाटा । हानि । नुकसान । धक्का । ज़ेबे,—(१०) की टक्कर बैठे बैठाए जग गई ।

क्रि० प्र०—लगना ।

मुहा०—टक्कर भेजना = (१) हानि उठाना । नुकसान सहना । (२) संकट या आपत्ति सहना ।

टक्कर^१—संज्ञा पु० [सं०] शिव [शिव] ।

टखना—संज्ञा पु० [सं० टङ्क (= टाँग)] एड़ी के ऊपर निकली हुई हड्डी की गाँठ । पैर का गट्टा । गुल्फ । पादग्रंथि ।

टग(पु)—संज्ञा स्त्री० [?] 'टकटकी' । उ०—दिशि चालुक भ्रत तेह टग कुलह बाजि अनु हारि ।—पु० रा०, ५।५५ ।

टगटग(पु)—क्रि० वि० [हि० टकटकाना] टकटकी लगाकर । एकटक । उ०—कबीर टग टग खोचत पल पल गई बिहाइ ।—कबीर ग्रं०, पु० ७२ ।

टगटगाना—क्रि० सं० [हि०] ३० 'टकटकाना' ।

टगटगी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'टकटकी' । उ०—पलु एक कबहुँ न होइ अंतर टगटगी लागी रहे ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पु० २८ ।

टगटग(पु)—क्रि० वि० [हि० टगटगी] स्थिर दृष्टि से । टकटक । उ०—टटग चाहि रहे सब लोई । दिव्यो वर तेज भद्रभुत सोई ।—पु० रा०, १२।१३६ ।

टगण—संज्ञा पु० [सं०] मात्रिक गणों में से एक । यह छह मात्राओं का होता है और इसके १३ उगभेद हैं । जैसे,—ऽऽऽऽ, ऽऽऽऽ, इत्यादि ।

टगमग(पु)—क्रि० वि० [हि० टकटकी] एकटक । स्थिर । उ०—टगमग नयन सु मग मग विमग सु भुल्लिय भंग ।—पु० रा०, २।४५७ ।

टगना(पु)—क्रि० प्र० [?] टनना । डिगना । उ०—टगी न टक टटि नहि जाई । टल काल धीरहि की पाई ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पु० २२२ ।

टगर^१—संज्ञा पु० [सं०] १. टंकण । सोहागा । २. विनाम । कीड़ा । ३. तगर का पेड़ । ४. बेंड़ (कौ०) । ५. लीला (कौ०) ।

टगर^२—वि० तिरछी निगाह से देखनेवाला । ऐंजाताना [कौ०] ।
क्रि० प्र०—देखना ।

टगरगोड़ा—संज्ञा पु० [?] लड़कों का एक खेल जिसमें कुछ कीड़ियाँ चित्त करके जमा कर देते हैं और फिर एक कीड़ी से उन्हें मारते हैं ।

टगर टगर(पु)—क्रि० वि० [हि०] धीमे धीमे हुए । ध्यान लगाकर । टकटकी बांधकर । उ०—सोभासदन रदन मोहन की देखि जी जिये टगर टगर ।—धनानंद, पु० ४८६ ।

टगरा—वि० [सं० टेरक] ऐंजाताना । भेंगा ।

टगाटगी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० टकटकी] समाधि की अवस्था । उ०—टगाटगी जीवन मरण, ब्रह्म बराबरि होइ ।—बादल, पु० १४४ ।

टघरना—क्रि० प्र० [सं० तघ (= गरम करना) + गरण

(= पिघलना)] १. घी, चरबी, मोम आदि का घाँच साकर द्रव होना । पिघलना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. हृदय का द्रवीभूत होना । चित्त में दया आदि उत्पन्न होना । हृदय पर किसी की प्रार्थना या कष्ट आदि का प्रभाव पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टघराना—क्रि० सं० [हि० टघरना] घी, मोम, चरबी आदि को घाँच पर रखकर द्रव करना । पिघलाना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

टचटच(पु)—क्रि० वि० [हि० टचना (= जलना)] धीरे धीरे । धक धक (भाग की लपट का शब्द) उ०—टच टच तुम धिनु भागि मोहि लागी । पाँचों दाध विरह मोहि जागी ।—जायसी (शब्द०) ।

टचना—क्रि० प्र० [हि० टचटच] भाग का जलना ।

टचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] लोहे का एक प्रोजार जिससे कसेरे बरतनों पर नक्काशी करते हैं ।

टट(पु)—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'तट' । उ०—घ्राएउ भागि समुंद टट तबहुँ न छाई पास ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पु० ३७० ।

टटका—वि० [सं० तत्काल] [वि० स्त्री० टटकी] १. तत्काल का । तुरंत का प्रस्तुत या उपस्थित । जिसको वर्तमान रूप से घ्राए हुए बहुत देर न हुई हो । हाल का । ताजा । उ०—(क) मेरे क्यों हूँ न मिटति छाव परी टटकी ।—सूर (शब्द०) । (ख) मनहार गये सुकुमार गये नट भेग गये पिय को टटकी ।—रसखान (शब्द०) । २. नया । कोरा ।

टटका—संज्ञा पु० [देश०] [स्त्री० टटकी] टट्टी । टटिया । टाटी ।

टटकी—संज्ञा स्त्री० [पंजाबी] १. खोपड़ी । २. ३० 'ठठरी' । ३. ३० 'टट्टी' ।

टटपूँज्यौ(पु)—वि० [हि०] ३० 'टटपूँजिया' । उ०—कीड़ी फिर उछालती जो टटपूँज्यौ होइ ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पु० ७६७ ।

टटरा—संज्ञा पु० [हि० टटड़ा] [स्त्री० टटरी] बड़ी टटिया या टाटी ।

टटरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'टट्टी' ।

टटलबटली—वि० [अनु०] भटसट । झंझ बंझ । उत्पटीग । उ०—टटलबटल बोल पाटल कपोल देख दीपति पटल में भटल हैं के भटकी ।—देव (शब्द०) ।

टटाना—क्रि० प्र० [ठाँठ] सूख जाना ।

टटांबरी(पु)—वि० [हि० टाट + अंबर] टाट पहननेवाला । जिसका वस्त्र टाट हो । उ०—सुंदर गए टटांबरी बहिर दिगंबर होइ ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पु० ३५ ।

टटाबक(पु)—संज्ञा पु० [!] टाबक । टामक । टामन । टोटका । टोना । उ०—नंददास सकि मेरी कहा बच काम के घ्राए टटाबक टोने ।—नंद० ग्रं०, पु० ३४३ ।

टटाझ—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'टल' [कौ०] ।

टटावली—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभावली] टिट्टिहरी नाम की चिड़िया ।
कुररी ।

टटियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टट्टी' उ०—देखत कछु कीतिगु
इत देखी नैक निहारि । कब की इकटक बटि रही टटिया
भंगुरिनु फारि ।—बिहारी २०, दो० ६३४ ।

टटियाना—क्रि० प्र० [हि० ठाँठ] मूख जाना । सुखकर झकड़
जाना ।

टटीबा—संज्ञा पुं० [अनु०] घिरनी । चक्कर । उ०—खैचूँ तो घावे
नही जो छोड़ूँ तो जाय । कबीर मन पूछ रे प्राण टटीबा लाय ।
—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—खाना ।

टटीरो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिट्टिहरी' । उ०—चोरती, ज्यों
वेदना का तीर, लबी टटीरी की घाह ।—इत्यसम् पु० २१६ ।

टट्टा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टट्टू' । उ०—ताके धागे प्राइके
टट्टा फेर बाल ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पु० ७३७ ।

टट्टई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० टट्टू] मादा टट्टू ।

टट्टवा(पु)—संज्ञा पुं० [हि० टट्टू] दे० 'टट्टू' । उ०—काहे का
टट्टवा काहे क पाखर काहे क भरी गोनियाँ ।—कबीर श०,
भा० १, पु० २२ ।

टट्टोना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टट्टोलना' ।

टट्टोरना—क्रि० सं० [हि० टट्टोलना] दे० 'टट्टोलना' । उ०—
कबहुँ जगला चला पाइ के टेढ़े टेढ़े जान । कबहुँक मग पग
पूरि टट्टोरत भोजन की बिलखात ।—सूर (शब्द०) ।

टट्टोल—संज्ञा स्त्री० [हि० टट्टोलना] टट्टोलने का भाव । उँगलियों
से धू या दबाकर मातृम करने का भाव या क्रिया । गूढ़ स्पर्श ।

टट्टोलना—क्रि० सं० [सं० त्वक् + तोलन (= मदाज करना)] १.
मातृम करने के लिये उँगलियों से धूना या दबाना । किसी
वस्तु के त्व की व्यवस्था प्रयत्न उसकी कड़ाई आदि जानने
के लिये उसपर उँगलियाँ फेरना या गड़ाना । गूढ़ संस्पर्श
करना । जैसे,—ये आम पके हैं, टट्टोलकर देख लो ।

संयो० क्रि०—लेना ।—डालना ।

२. किसी वस्तु को पाने के लिये इधर उधर हाथ फेरना । ढूँढ़ने
या पता लगाने के लिये इधर उधर हाथ रखना । जैसे,—
(क) झोंपे में क्या टट्टोलने हो ! रुपया गिरा होगा तो सबेरे
मिल जायगा । (ख) वह भ्रंवा टट्टोलता हुआ अपने घर तक
पहुँच जायगा । (ग) घर के कोने टट्टोल बाले कहीं पुस्तक का
पता न लगा ।

संयो० क्रि०—डालना ।

३. किसी से कुछ बातचीत करके उसके बिचार या आशय का इस
प्रकार पता लगाना कि उसे मातृम न हो । बानों में किसी के
हृदय के भाव का मंदाज लेना । याह लेना । यहाना । जैसे,—
तुम भी उसे टट्टोलो कि वह कहीं तक देने के लिये तैयार है ।

मुहा०—मन टट्टोलना = हृदय के भाव का पता लगाना ।

४-२७

४. जाँच या परीक्षा करना । परखना । माजमाना । जैसे,—
(क) हम उसे खूब टट्टोल चुके हैं, उसमें कुछ विशेष विद्या
गहीं है । (ख) मैंने तो सिर्फ तुम्हें टट्टोलने के लिये रुपए
माँगे थे, रुपए मेरे पास हैं ।

टट्टोहना(पु)—क्रि० सं० [हि० टोहना] दे० 'टट्टोलना' ।

टट्टड़ी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टट्टर' ।

टट्टनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकनी ।

टट्टर—संज्ञा पुं० [सं० तट (= ऊँचा किनारा) या सं० स्थात (= जो खड़ा
हो)] बाँस की फट्टियों, सरकंडों आदि को परस्पर जोड़कर
बनाया हुआ ढाँचा । जैसे,—(क) कुत्ता टट्टर खोलकर भोपड़े
में घुस गया । (ख) टट्टर खोलो निखटू आए । (कहावत) ।

मुहा०—टट्टर देना या लगाना = टट्टर बंद करना ।

टट्टरी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. ढोल का शब्द । नगाड़े आदि का शब्द ।
२. संबी चौड़ी बात । ३. चुहलबाजी । ठट्टा । ४. झूठ (की०) ।

टट्टा—संज्ञा पुं० [सं० तट (= ऊँचा किनारा) या सं० स्थाता (= जो
खड़ा हो)] [स्त्री० टट्टी] १. बाँस की फट्टियों का परदा
या पल्ला । टट्टर । बड़ी टट्टी । २. लकड़ी का पल्ला । बिना
पुस्तवान का तस्ता । ३. मंडकोश ।—(पञ्जाबी) ।

टट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० तटी (= ऊँचा किनारा) या सं० स्थात्री
(= जो खड़ी हो)] १. बाँस की फट्टियों, सरकंडों आदि को
परस्पर जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा जो झाड़ू, रोक या रक्षा
के लिये दरवाजे, बरामदे प्रयत्न और किसी खुले स्थान
में लगाया जाता है । बाँस की फट्टियों आदि का बना पल्ला
जो परदे, किवाड़ या छाजन आदि का काम दे । जैसे, लस
की टट्टी ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टट्टी की झाड़ू (या घोट) से शिकार खेलना = (१)
किसी के विरुद्ध छिपकर कोई चाल चलना । किसी के विरुद्ध
गुप्त रूप से कोई काररवाई करना । (२) छिपाकर गुप्त काम
करना । लोगों की दृष्टि बचाकर कोई अनुचित कार्य करना ।
टट्टी का शीशा = पतले दल का शीशा । टट्टी में छेद करना =
किसी की बुराई करने में किसी प्रकार का परदा न रखना ।
प्रकट रूप से कुकर्मा करना । खुल खेलना । निलंज हो जाना ।
लोकलज्जा छोड़ देना । टट्टी लगाना = (१) झाड़ू करना ।
परदा खड़ा करना । (२) किसी के सामने भीड़ लगाना ।
किसी के धागे इस प्रकार पंक्ति में खड़ा होना कि उसका
सामना रुक जाय । जैसे,—यहाँ क्या टट्टी लगा रखी है, क्या
कोई तमाशा हो रहा है ! धोखे की टट्टी = (१) वह टट्टी
जिसकी झाड़ू में शिकारी शिकार पर बार करते हैं । (२)
ऐसी वस्तु जिसे ऊपर से देखने से उससे होनेवाली बुराई का
पता न चले । ऐसी वस्तु या बात जिसके कारण लोग धोखा
खाकर हानि उठावें । जैसे,—उसकी दूकान वगैरह सब धोखे
की टट्टी है; उसे भुलकर भी रुपया न देना । (३) ऐसी वस्तु
जो ऊपर से देखने में सुंदर जान पड़े, पर काम देनेवाली न

हो । चटपट टूट या बिगड़ जानेवाली वस्तु । काजू मोजू बीज ।
२. चिक । चिममन । ३. पतली दोधार जो परदे के लिये लड़ी
की जाती है । ४. पाखाना ।

क्रि० प्र०—जाना ।

५. पुलवारी का तस्ता जो बरातों में निकलता है । ६. बाँस
की फट्टियों आदि की बनी हुई वह दीवार और छाजन जिस-
पर संगूर आदि की बेलें चढ़ाई जाती हैं ।

टट्टी संप्रदाय—संज्ञा पु० [हि० टट्टी + संप्रदाय] एक धार्मिक वैष्णव
संप्रदाय जिसके संस्थापक स्वामी हरिदास जी हैं ।

टट्टर—संज्ञा पु० [सं०] भेरी का शब्द ।

टट्ट—संज्ञा पु० [अनु०] [वि० टट्टपानी, टट्टई] १. छोटे कव का
घोड़ा । टाँगन ।

मुहा०—टट्ट पार होना = बेड़ा पार होना । काम निकल जाना ।
प्रयोजन विरुद्ध हो जाना । भाँके का टट्टू = रुपया लेकर दूसरे
की ओर से कोई काम करनेवाला । २. छिगेन्निय ।—(बाजार)

मुहा०—टट्टू भड़कना = कामोदीपन होना ।

टठिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टाठी' ।

टठिया^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की माँग ।

टडिया—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड] बाँह में पहनने का एक गहना जो
मनत के आकार का पर उससे मोटा और बिना धुँडो का
होता है । टाँड़ ।

टण्—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टना' ।

टन^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घंटा बजने का शब्द । किसी घातु खंड
पर आघात पड़ने से उत्पन्न ध्वनि । टनकार । झनकार ।
जैसे,—टन से घंटा बोला ।

विशेष—'खटपट' आदि शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग
भी अधिकतर 'सि' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही होता है ।
घटः इमका लिंग उत्तमा निश्चित नहीं हैं ।

मुहा०—टन हो जाना = खटपट मर जाना ।

टन^२—संज्ञा पु० [सं०] एक संघेजी तौल जो सट्टाईस मन के
समकक्ष होती है ।

टनकना—क्रि० प्र० [अनु० टन] १. टनटन बजना । २. धूप या
गरमी लगने के कारण सिर में दर्द होना । रह रहकर आघात
पड़ने की सी पीड़ा देना । जैसे, माथा टनकना ।

टनकार^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० टन] दे० 'टंकार' । उ०—कड़ी
कमान जब ऐठि के खैचिया, तीन बेर टनकार सहज टका ।—
कबीर श०, भा० ४, पृ० १३ ।

टनटन—संज्ञा स्त्री० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

टनटनाना^१—क्रि० प्र० [हि० टनटन से नामिक धातु] घंटा
बजाना । किसी घातु खंड पर आघात करके उससे 'टनटन'
शब्द निकालना ।

टनटनाना^२—क्रि० प्र० टनटन बजना ।

टनमन^१—संज्ञा पु० [सं० तन्मन् मन्त्र] तंत्र मंत्र । टोना । जादू ।

टनमन^२—वि० [हि० टनमना] दे० 'टनमना' ।

टनमना—वि० [सं० तन्मनस्] जो सुस्त न हो । जिसकी चेष्टा मंद
न हो । जिसकी तबीयत हरी हो । जो निश्चिन्त न हो । स्वस्थ ।
चंगा । 'मनमना' का उल्टा ।

टनमनाना—क्रि० प्र० [हि० टनमना + ना (प्रत्य०)] १. तबीयत
हरी होना । स्वस्थ होना । २. कुलबुलाना । टसमनाना ।

टना—संज्ञा पु० [सं० तुण्ड] [स्त्री० प्रत्या० टनी] १. स्त्रियों की
योनि में निकला हुआ वह मांस का टुकड़ा जो दोनों किनारों
के बीच में होता है । २. योनि । भग ।

टनाका^१—संज्ञा पु० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द ।

टनाका^२—वि० बहुत कड़ी (धूप) । माथा टनकानेवाली (धूप) ।

टनाटन^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] लगातार घंटा बजने का शब्द ।

टनाटन^२—क्रि० वि० १. भला । चंगा । २. अच्छी हालत में ।
बढ़िया ।

क्रि० प्र०—होना ।

टनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टना' ।

टनेछ—संज्ञा पु० [सं०] सुरंग खोदकर बनाया हुआ मार्ग । ऐसा रास्ता
जो जमीन या किसी पहाड़ आदि के नीचे होकर गया हो ।

टन्नाका^१—संज्ञा पु० [हि० टनाका] दे० 'टनाका' ।

टन्नाका^२—वि० दे० 'टनाका' ।

टन्नाना^१—क्रि० प्र० [हि० टनटन] टनटन की आवाज करना । टनटन
की ध्वनि उत्पन्न होना ।

टन्नाना^२—क्रि० प्र० [हि०] बिगड़ना । नाराज होना । बहसक
करना ।

टप^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टोप, तोप (= आच्छादन, ढाँचा, घटाटोप)]
१. जोड़ी, फिटन, टमटम या इसी प्रकार की और लुली
गाड़ियों का मोहार या सायबान जो इच्छानुसार चढ़ाया या
गिराया जा सकता है । कसंदरा । २. सटकानेवाले संप के
ऊपर की छतरी ।

टप^२—संज्ञा पु० [सं० टप] नाँव के आकार का पानी रखने का
लुला बरतन । टाँका ।

टप^३—संज्ञा पु० [सं० ट्यूब] जहाजों की गति का पता लगाने का
एक योजन ।—(सश०) ।

टप^४—संज्ञा पु० [हि० ठप्पा] एक योजन जिससे डिबरी का वेच
धुमावदार बनाया जाता है ।

टप^५—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बूँद बूँद टपकने का शब्द । उ०—
(क) परत अम बूँद टप टपकि आनन बाल मई बेहाथ
रति मोहू मारी ।—सूर (शब्द०) । (ल) प्यारी बिनु
कटत न कारी रेन । टप टप टपकत दुख भरे नैन ।—हरिश्चंद्र
(शब्द०) ।

यौ०—ठप टप ।

२. किसी वस्तु के एकबारगी ऊपर से गिर पड़ने का शब्द ।
जैसे—घाम टप से टपक पड़ा ।

यौ०—टप टप ।

टप^१—संज्ञा पुं० [अं० टोप] काबों में पहनने का स्त्रियों का एक आभूषण ।

टप^२—क्रि० वि० [अनु०] शीघ्र । तुरत । उ०—कैसे कहे कुछ भोई सवाव मिले बड़ी बेर सों याहि मिल्यो टप ।—घनानंद, पृ० १५१ ।

मुहा०—टप से = चट से । झट से बड़ी जल्दी । जैसे,—(क) बिस्ली ने टप से चूहे को पकड़ लिया । (ख) टप से घाघो ।

विशेष—झट, पट आदि और अनुकरण शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ क्रि०वि०वत् ही होता है । अतः इसका लिंग उतना निश्चित नहीं है ।

टपक—संज्ञा स्त्री० [हि० टपकना] १. टपकने का भाव । २. बूँद बूँद गिरने का अव्यय । ३. एक एककर होनेवाला द्रव । ठहर ठहरकर होनेवाली पीड़ा । जैसे, फोड़े की टपक ।

टपकन—संज्ञा स्त्री० [हि० टपकना] १. टपकने की क्रिया या भाव । २. लगातार बूँद बूँद गिरने की स्थिति । ३. एक एककर पीड़ा होना । टीसना । टकसना ।

टपकना—क्रि० प्र० [अनु० टपटप] १. बूँद बूँद गिरना । किसी द्रव पदार्थ का बिंदु के रूप में ऊपर से थोड़ा थोड़ा पड़ना । घूना । रसना । जैसे, षड़े से पानी टपकना, छत टपकना । उ०—टप टप टपकत दुख भरे नैन ।—हरिवचन (शब्द०) ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग जो वस्तु गिरती है तथा जिस वस्तु में से कोई वस्तु गिरती है, दोनों के लिये होता है ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

२. फल का एककर आपसे आप पेड़ से गिरना । जैसे, आम टपकना । महुआ टपकना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

३. किसी वस्तु का ऊपर से एकबारगी सीध में गिरना । ऊपर से सहसा पतित होना । टट पड़ना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

मुहा०—टपक पड़ना = एकबारगी या पहुँचना । अकस्मात् प्राकर उपस्थित होना । जैसे,—हैं ! तुम बीच में कहाँ से टपक पड़े । या टपकना = ३० 'टपक पड़ना' ।

४. किसी बात का बहुत अधिक आभास पाया जाना । अधिकता से कोई भाव प्रगट होना । लक्षण, लब्ध, चेष्टा या रूप रंग से कोई भाव व्यंजित होना । जाहिर होना । झलकना । जैसे,—(क) उसके चेहरे से उदासी टपक रही थी । (ख) मुहल्ले में चारों ओर उदासी टपकती है । (ग) उसकी बातों से बरमाही टपकती है ।

संयो० क्रि०—पड़ना । जैसे,—उसके अंग अंग से बौबन टपका पड़ता था ।

५. (चित्त का) तुरंत प्रवृत्त होना । (हृदय का) झट प्राकटित होना । डब पड़ना । फिसलना । मुभा जाना । मोहित हो जाना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

६. स्त्री का संभोग की ओर प्रवृत्त होना । डल पड़ना ।—(बाजाऊ) ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

७. धाव, फोड़े आदि का मवाद घाने के कारण रह रहकर ददं करना । बिलकना । टीस मारना । टीसना । ८. फोड़े का पककर बहना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

९. लड़ाई में घायल होकर गिरना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

टपकवाना—क्रि० प्र० [हि० टपकाना] किसी को टपकाने के कार्य में प्रवृत्त करना । टपकाने के लिये प्रेरित करना ।

टपका—संज्ञा पुं० [हि० टपकना] १. बूँद बूँद गिरने का भाव ।

यौ०—टपका टपकी ।

२. वह जो बूँद बूँद करके गिरा हो । टपकी हुई वस्तु । रसाव ।

३. पककर आपसे आप गिरा हुआ फल । ४. रह रहकर बठने-वाला द्रव । टीस । ५. चौपायों के खुर का एक रोग । खुरपका ।

† ६. डाल में पका हुआ आम ।

टपका टपकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टपकाना] १. बूँदाबूँदी । (मेह की) हलकी झड़ी । फुहार । फुही । २. फलों का लगातार एक एक करके गिरना । ३. किसी वस्तु को लेने के लिये आदमियों का एक पर एक टटना । ४. एक के पीछे दूसरे आदमी की मृत्यु । एक एक करके बहुत से आदमियों की मृत्यु (जैसे हेजे आदि में होती है) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

टपका टपकी^२—वि० इसका दुबकी । भूला भटकना । एक प्राध । बहुत कम । कोई कोई ।

टपकाना—क्रि० प्र० [हि० टपकाना] १. बूँद बूँद गिराना । चुभाना ।

२. झरक उतारना । भबके से झरक लौंचना । चुभाना । जैसे, झराव टपकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

टपकाव—संज्ञा पुं० [हि० टपकना] टपकाने का भाव ।

टपना^१—क्रि० प्र० [हि० टपना] १. बिना कुछ खाए पीए पड़ा रहना । बिना दाना पानी के समय काटना । जैसे,—सबेरे से पड़े टप रहे हैं; कोई पानी पीने को भी नहीं पूछना । २. बिना किसी कार्यासिद्धि के बैठा रहना । व्यर्थ आसरे में बैठा रहना ।—(दलान) ।

विशेष—३० 'टापना' ।

टपना^२—क्रि० प्र० [हि० टापना] १. कुदना । उछलना । उचकना । फाँटना । २. जोड़ा खाना । प्रसंग करना ।

टपना^३—क्रि० प्र० [हि० तोपना] ठाँकना । प्राच्छादित करना ।

टपनामा—संज्ञा पुं० [हि० टिप्पन] जहाज पर का वह रजिस्टर जिसमें समुद्रयात्रा के समय तूफान, गर्मी आदि का लेखा रहता है ।—(लक्ष०) ।

टपमाल—संज्ञा पुं० [अं० टपमाल] एक बड़ा भारी लोहे का चन जो जहाजों पर काम आता है ।

टपरा^१—संज्ञा पु० [हि० तोपना] [श्री० टपरी, टपरिया] १. छप्पर। छाजन। २. भोपड़ा।

टपरा^२—संज्ञा पु० [हि० टप्पा] छोटे छोटे खेतों का विभाग।

टपरिया(पुं०) संज्ञा श्री० [हि० टपरा] भोपड़ी। मड़िया। घास-फूस का मकान।

टपाक(पुं०)---वि० [हि० टप] टप से। शीघ्र। उ०—ऐसे तोहि काल घाइ सेइगो टपाकि दे।—गुंजर ग्रं०, भा० २, पृ० ४१२।

टपाटप—क्रि० वि० [अनु० टपटप] १. लगातार टपटप शब्द के साथ (गिरना)। बराबर बूंद बूंद करके (गिरना)। जैसे,—छाने पर से टपाटप पानी गिर रहा। २. भट पट। जल्दी जल्दी। एक एक करके शीघ्रता से। जैसे,—बिल्ली वृहों को टपाटप ले रही है।

टपाना^१—क्रि० स० [हि० तपाना] १. बिना दाना पानी के रखना। बिना खिलाए पिलाए पड़ा रहने देना। २. व्यर्थ आसरे में रखना। निष्प्रयोजन बैठाए रखना। व्यर्थ हैरान करना।

टपाना^२—क्रि० स० [हि० टाप] कुदाना। फेंदना।

टप्परी—संज्ञा पु० [हि० तोपना] १. छप्पर। छाजन।

मुहा०—टप्पर उलटना = दे० 'टाट उलटना'।

२. दे० 'टापर'।

टप्पा—संज्ञा पु० [सं० रथापन, हि० थाप, टाप] १. किसी सामने फेंकी हुई वस्तु का जाते हुए बीच बीच में भूमि का स्पर्श। उछल उछलकर जाती हुई वस्तु का बीच में टिकान। जैसे,—गेद गई टप्पे खाती हुई गई है।

मुहा०—टप्पा खाना—किसी फेंकी हुई वस्तु का बीच में गिरकर जमीन से छू जाना और फिर उछलकर आगे बढ़ना।

२. उतनी दूरी जितनी दूरी पर पर कोई फेंकी हुई वस्तु जाकर पड़े। किसी फेंकी हुई ओज की पहुँच का फासला। जैसे, गोली का टप्पा। ३. उछाल। रूढ़। फाँद। फलांग।

मुहा०—टप्पा देना—अंगे लंबे उग बढ़ाना। कूदना।

४ नियत दूरी। मुहरेर फासला। ५ दो स्थानों के बीच पड़ने-वाला मैदान। जैसे,—दोनो गायों के बीच में बालू का बड़ा भारी टप्पा पड़ता है। ६. छोटा भूविभाग जमीन का छोटा हिस्सा। पगने वा हिस्सा। ७. अंतर। बीच। फाँद। उ०—पोपर सूना फूल बिन फल बिन सूना राय। एकाएकी मानुषा टप्पा दीया अय। कबीर (शब्द०)।

मुहा०—टप्पा देना—अंतर डालना। फाँद डालना।

८. दूर दूर की भद्दी सिलाई। मोटी सीवन (स्त्रि०)।

मुहा०—टप्पे डालना, भरना मारना—दूर दूर बखिया करना। मोनी और भद्दी सिलाई करना। लंगर डालना।

९. पालकी में जानेवाले कहारों की टिकान जहाँ कहार बबले जाते हैं। पालकीवालों की चौकी या डाक। † १०. डाकखाना। पोस्ट आफिस। ११. पाल के जोर से चलनेवाला बेटा। १२. एक प्रकार का चलता यान जो पंजाब से आता है।

† १३ एक प्रकार का ठेका जो तिलवाड़ा ताल पर बजाया जाता है। १४. एक प्रकार का हुक या काँटा।

टब^१—संज्ञा पु० [टब] पानी रखने के लिये नौद के आकार का खुला बरतन।

टब^२—संज्ञा पु० [टब] जलाने का एक प्रकार का लप जो छत या किसी दूसरे ऊँचे स्थान पर लटकाया जाता है।

टबलना(पुं०)---संज्ञा पु० [?] चलाचली की स्थिति। महाप्रयाण की स्थिति होना। उ०—खंजर जुदाई बबला, अब तो इधर भी टबला। बज० ग्रं०, पृ० ४३।

टबूकना(पुं०)---क्रि० प्र० [हि० टपकना] टपकना। टप टप करके गिरना। उ०—हियड़ बादल छाव्यउ, नयण टबूकई मेहु।—दोला०, दू० ३६०।

टब्वरी—संज्ञा पु० [सं० कुटुंब] कुटुंब। परिवार। (पंजाब)।

टमकना(पुं०)---क्रि० प्र० [हि० टमकना] बजना। शब्द कन्ना। उ०—टमकंत तबल टामक विहद। टमकंत टाम विनु मुख गरह।—सुजान०, पृ० ३८।

टमकी—संज्ञा श्री० [सं० टङ्कार] छोटा नगाड़ा जिसे बजाकर किसी प्रकार की घोषणा की जाती है। डगड़गिया।

टमटम—संज्ञा श्री० [प्र० टैडम] दो ऊँचे ऊँचे पहियों की एक खुली हलकी गाड़ी जिसमें एक घोड़ा लगता है और जिसे सवारी करनेवाला अपने हाथ से हाँकता है।

टमठी—संज्ञा श्री० [देश०] एक प्रकार का बरतन। उ०—अठ्ठा घर घाघार भर्त के बहुत खिलोना। परिया टमठी अतरदान रुपे के सोना।—सूदन (शब्द०)।

टमस—संज्ञा श्री० [सं० तमसा] टोस नदी। तमसा।

टमाटर—संज्ञा पु० [अ० टमैटो] एक प्रकार का फल जो गोलाई लिए हुए चिपटा तथा स्वाद में खट्टा होता है। बिलायती भटा।

बिशेष—यह कच्चा रहने पर हरा और उकने पर लाल हो जाता है तथा तरकारी, चटनी, जेली आदि के काम आता है।

टमुकी—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'टमकी'।

टर—संज्ञा श्री० [अनु०] १. कर्कश शब्द। कर्कश वाक्य। कर्गुंजु वाक्य। अप्रिय शब्द। कड़ुई बोली।

यौ०—टर टर।

मुहा०—टरटर करना = (१) ठिठाई से बोलते जाना। प्रतिवाह में बार बार कुछ कहते जाना। जवानदराजी करना। जैसे,—टर टर करता जायगा, न मानेगा। (२) बकबाद करना। टर टर लगाना = व्यर्थ बकबाद करना। झूठ बक बक करना। इतना और इस प्रकार बोलना जो अच्छा न लगे।

२. मेड़क की बोली।

यौ०—टर टर।

३. धमंड से भरी बात। ध्वनिहीन बचन और बेष्ट। ऐंठ।

घकड़। जैसे—शेखों की शेखी, पठानों की टर। ४. हठ।
जिद। घड़। ५. तुच्छ बात। पोच बात। बेमेल बात।
६. ईद के बाद का मेला (मुसलमान)। उ०—ईब पीछे
टर, बरान पीछे घोमा।

टरकना—क्रि० प्र० [हि० टरना] १. चला जाना। हट जाना।
खिमक जाना। टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—टरक देना—वीरे से चला जाना। चुपचाप हट जाना।
जैसे,—जब काम का वक्त आता है तो वह वहीं टरक देता
है। (गु०) (२) टर टर करना। कर्कश स्वर से बोलना।
उ०—टरं टरं टरकन जगे दमटु दिमा मंडूक।—गोपाल
(शब्द०)।

टरकनी—संज्ञा स्त्री० [टर] ईख या गन्ने की दूसरी बार की
सिंचाई।

टरकाना—क्रि० प्र० [हि० टरकना] १. एक स्थान से दूसरे स्थान
पर कर देना। हटाना। खिमकाना। जैसे, (क) देखते रहो,
ये नीजे इधर उधर टरकाने न पावें। (ख) जब कोई हूँढ़ने
आवे तब उस लड़के को कही टरका दो। २. किसी काम के
लिये आए हुए मनुष्य को बिना उसका काम पूरा किए कोई
बहाना करके लौटा देना। टाल देना। चलना करना। घना
बताना। जैसे,—जब हम अपना रुपया माँगे आते हैं तो
तुम भी ही टरका देते हो।

टरकी—संज्ञा पुं० [टुरकी] १. एक प्रकार का मुग़ा जिसकी बोंच
के नीचे गले में साल भालर रहती है और जिसके काने परों
पर छोटी छोटी सफेद बुदकियाँ होती हैं।

विशेष—इसका माँस बहुत स्वादिष्ट माना जाता है। इसे पेरू
भी कहते हैं।

२. एक देश। तुरकी।

टरकुल—वि० [हि० टरकाना] १. बहुत साधारण। बिल्कुल
मामूली। घटिया। खराब।

टरगी—संज्ञा पुं० [टर] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में
आती है। इसे जैस बड़े बाव से खाती है।

विशेष—यह मुखाकर चारह तेरह बरस तक रखी जा सकती
है और घोड़ों के लिये अत्यंत पुष्ट और लाभदायक होती है।
हिंदुस्तान में यह घास हिस्पर, भाटगोमरी (पंजाब) यादि
स्थानों में होती है, पर विलायती के ऐसी सुगन्धित नहीं
होती। इसे पलका या पलवन भी कहते हैं।

टरटराना—क्रि० स० [हि० टर] १. बक बक करना। २.
ढिंढाई से बोलना। टर टर करना।

टरना—क्रि० स० [हि० टलना] ३० 'टलना'। उ०—(क)
तृण से कुलिस कुलिस तृण करई। तामु दून पग कटु किमि
टरई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अस विचारि सोचहि मति
माता। सो न टरइ जो रचह विधाता।—तुलसी (शब्द०)।

टरना—संज्ञा पुं० [टलना] तेली के कोल्हू में ठँका और कठरी से
बँधी हुई रस्सी।

टरनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टरना] टरने का भाव।

टरं टरं—संज्ञा स्त्री० [हि० टरना] १. मेढक की आवाज। २.
बे मतलब की बात। बकवाद। उ०—सत्य बंधु, सत्य; वहाँ
नहीं टरं टरं; नही वहाँ भेक, वहाँ नही टरं टरं।—प्रतापिका,
पृ० ११।

टरा—वि० [अनु० टर टर] १. टरनिमाना। ऐंठकर बात करने-
वाला। अविनीत और कठोर स्वर से उत्तर देनेवाला।
घमंड के साथ चिढ़ चिढ़कर बोलना। सीधे न बोलने-
वाला। २. धृष्ट। कटुवादी।

टराना—क्रि० प्र० [अनु० टर] ऐंठकर बात करना। अविनीत और
कठोर स्वर से उत्तर देना घमंड के साथ चिढ़ चिढ़कर बोलना।
सीधे से न बोलना। घमंड लिए हुए कटु वचन कहना।

टरापन—संज्ञा पुं० [हि० टरा] बाचीत में अविनीत भाव।
कटुवादिता।

टरू—संज्ञा पुं० [हि० टर टर] १. टराने आदमी। २. मेढक। ३.
घमंड की झिल्ली मटा हुआ एक खिलौना जो घोड़े की पूँछ
के बाज से एक लकड़ी से बंधा होता है। इसे घुमाने से टरं
की आवाज निकलती है। मेढक। मोरा। कोरा।

टल—संज्ञा पुं० [म०] घबराहट। परेशानी [को०]।

टलन—संज्ञा पुं० [म०] घबराहट। परेशानी [को०]।

टलूटलू—क्रि० वि० [अनु०] कलकल स्वर के साथ। उ०—तेरे
गीतों को वह जिसमे गानो हैं टलू टलू छलू छलू।—वीणा,
पृ० २८।

टलना—क्रि० प्र० [स० टल (= विचलित होना)] १. अपने स्थान
से भलग होना। हटना। खिमकना। सरकना। जैसे,—वह
पत्थर तुमसे नहीं टलेगा।

मुहा०—अपनी बात से टलना—प्रतिज्ञा पूरी न करना।
मुकना।

२. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। अनुपस्थित होना।
किसी स्थान पर न रहना। जैसे,—(क) काम के समय तुम
सदा टल जाते हो। (ख) जब इसके आने का समय हो,
तब तुम कहीं टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. दूर होना। भिटना। न रह जाना। जैसे, आपत्ति टलना,
सकट टलना, बला टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

४. (किसी कार्य के लिये) निश्चित समय से और आगे का
समय स्थिर होना। (किसी काम के लिये) मुकर्रर वक्त से
और आगे का वक्त ठहराया जाना। मुलतवी होना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये
होता है। जैसे, तिथि टलना, तारीख टलना, विवाह की
सायत टलना, दिन टलना, सभ टलना, विवाह टलना,
इस्तहान टलना।

संयो० क्रि०—बाना।

५. (किसी बात का) ध्वंसा होना । धीर का धीर होना । ठीक न ठहरना । क्षिप्त होना । जैसे,—हमारी कही हुई बात कभी नहीं टल सकती । ६. (किसी आदेश या अनुरोध का) न माना जाना । उल्लंघित होना । पूरा न किया जाना । जैसे,—बावशाह का हुक्म कहीं टल सकता है । ७. समय व्यतीत होना । बीतना ।

टलमल^१—वि० [हि० टलमलाना] हिलता हुआ । कंपित । उ०—छोटे युग दल राक्षस पद तल पृथ्वी टलमल ।—घपरा, पृ० ३८ ।

टलमल^२—क्रि० वि० [धनु०] कलकल ध्वनि के साथ ।

टलमलाना—क्रि० प्र० [धनु०] हिलना डलना । टलमल होना ।

टलहा^१—वि० [देश०] [वि० ली० टलही] छोटा । खराब । दूषित । जैसे, टलहा कपड़ा, टलही चाँदी ।

टलाटली^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'टालटूल' । उ०—पति रति की बतियाँ कही, सखी लखी मुसकाई । कै कै सबे टलाटली, धनी चली सुनु पाई ।—बिहारी २०, दो० २४ ।

टल्ला^१—संज्ञा पुं० [धनु०] पक्षी । भाषात । ठोकर । उ०—तो बस उस एक टल्ले से ही हो जाए जीवन कल्याण ।—अपलक, पृ० २६ ।

मुहा०—टल्ले मारना = ठोकर खाते फिरना । मारा मारा फिरना । इधर से उधर निष्फल घूमना ।

टल्ली—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का बीस । ३० 'टोली' । (पृ० २. आधार) । उ०—चंद सूर्य दुह टल्ली लावे । इहि विधि लिखा विंसनि न पावे ।—प्राण०, पृ० ८ ।

टल्लेनबीसी—संज्ञा स्त्री० [हि० टल्ला + फ्रा० नबीसी] ३० 'टल्लेनबीसी' ।

टल्ली^१—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव ?] १. हरी टहनी । २. पल्लव ।

टल्लग^१—संज्ञा पुं० [सं०] ट ठ ड ढ ण—इन पाँच वर्णों का समूह ।

टवाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० घटन (= घूमना)] भावारण । व्यर्थ घूमना । उ०—फेर रखो पुर करत टवाई । मान्यो नहि जो जननि सिखाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

टस^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. किसी भारी चीज के खिसकने का शब्द । टसकने का शब्द ।

मुहा०—टस से मस म होना = (१) किसी भारी चीज का जरा सी भी जगह न छोड़ना । कुछ भी न खिसकना । (२) किसी कड़ी वस्तु का (पकाने या पलाने आदि से) जरा सी भी न गलना ।

३. कहने सुनने का कुछ भी प्रभाव न पड़ना । किसी के अनुकूल कुछ भी प्रवृत्त न होना । ४. कपड़े आदि के फटने का शब्द । मसकने का शब्द ।

टसक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टसकना] रह रहकर उठनेवाली पीड़ा । कसक । टीस । बसक ।

टसकना—क्रि० प्र० [सं० टस (=केलना) + करण] १. किसी भारी चीज का जगह से हटना । जगह से हिलना । खिसकना । जैसे,—यह पत्थर जरा सा भी इधर उधर नहीं टसकता । २. रह रहकर बर्द करना । टीस मारना । कसकना । ३.

प्रभावित होना । हृदय में प्रार्थना या कहने सुनने का प्रभाव अनुभव करना । किसी के अनुकूल कुछ प्रवृत्त होना । किसी की बात मानने को कुछ तैयार होना । जैसे,—उससे इतना कहा सुना पर वह ऐसा कठोर हृदय है कि जरा भी न टसका । ४. पककर गदराना । गुदार होना । † ५. रोना बौना । घाँसु बहाना । ६. घसकना । चलना । जाना । उ०—किसी को भी आपके टसकने का पूर्ण विश्वास न था ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० १३६ ।

टसकाना—क्रि० प्र० [हि० टसकना का प्रे० कर] किसी भारी चीज को जगह से हटाना । खिसकाना । सरकाना ।

टसना^१—क्रि० प्र० [धनु० टस] कपड़े आदि का फटना । मसक जाना । दरकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टसर—संज्ञा पुं० [सं० तसर] १. एक प्रकार का कड़ा और मोटा रेशम जो बंगाल के जंगलों में होता है ।

विशेष—छोटा बागपुर, मयूरभंज, बालेश्वर, बीरभूम, मेदिनीपुर आदि के जंगलों में सागू, बहेड़ा, पियार, कुसुम, बेर इत्यादि वृक्षों पर टसर के कीड़े पलते हैं । रेशम के कीड़ों की तरह इन कीड़ों की रक्षा के लिये अधिक यत्न नहीं करना पड़ता । पालनेवालों को जंगल में घाप से घाय्र होनेवाले कीड़ों को केवल चींटियों और चिड़ियों आदि से बचाना भर पड़ता है । पालनेवाले इनकी वृद्धि के लिये कोश से निकले हुए कीड़ों को जंगल में छोड़ पाते हैं । जहाँ अपने जोड़े ढूँढ़कर वे अपनी वृद्धि करते हैं । मादा कीड़े पेड़ की पत्तियों पर सरसों के ऐसे पर चिपटे चिपटे घंठे देते हैं जो पत्तियों में चिपक जाते हैं । एक कीड़ा तीन चार दिन के भीतर दो ठाईं सी तक घंठे देता है । घंठे देकर ये कीड़े मर जाते हैं । दस बारह दिनों में इन घंठों से सुँडी या ढोल के आकार के छोटे छोटे कीड़े निकल पाते हैं और पत्तियाँ खाट खाटकर बहुत जल्दी बड़ जाते हैं । इस बीच में ये तीन चार बार कलेवर या खोली बदलते हैं । अधिक से अधिक पंद्रह दिन में ये कीड़े अपनी पूरी बाढ़ को पहुँच जाते हैं । उस समय इनका आकार ८, १० अंगुल तक होता है । ये भटमैले, भूरे, नीले, पीले कई रंगों के होते हैं । पूरी बाढ़ को पहुँचने पर ये कीड़े कोश बनाने में लग जाते हैं और अपने मुँह से एक प्रकार की लार निकालते हैं जो सुखकर सूत के रूप में हो जाती है । सूत निकालते हुए घूम घूमकर ये अपने लिये एक कोश तैयार कर लेते हैं और उसी में बंद हो जाते हैं । ये कोश घंटाकार होते हैं । बड़ा कोश ६—६½ अंगुल तक लंबा होता है । कोश के भीतर तीन चार दिनों तक सूत निकालकर ये कीड़े मुरदे की तरह चुपचाप पड़ जाते हैं । पालनेवाले कोशों के पकने पर उन्हें इकट्ठा कर लेते हैं; क्योंकि उन्हें मय रहता है कि पर निकलने पर कीड़े सूत को कुतर कुतरकर निकल जायेंगे; घतः सड़ने के पहले ही इन कोशों को लार के साथ परम पानी में उबालकर वे कीड़ों को मार डालते हैं । जिन कोशों को उबालना नहीं पड़ता, उनका टसर सबसे अच्छा होता है ।

जो कोश पकने के पहले ही उबाले जाते हैं, उनका सूत कच्चा और निकम्मा होता है।

२. टसर का बुना हुआ कपड़ा।

टसुधा—संज्ञा पुं० [सं० पशु, हि० घ्रासु, घंसुधा] घ्रासु। पशु। (पश्चिम)

क्रि० प्र०—बहाना।

मुहा०—टसुए बहाना = झूठमूठ घ्रासु गिराना।

टसुधा—संज्ञा पुं० [सं० पशु, हि० घ्रासु, घंसुधा] दे० 'टसुधा'।

मुहा०—टसुए बहाना = दे० 'टसुए बहाना'। उ०—बड़ी बेगम, अब टसुए पीछे बहाना। पहले हमारी बात का जवाब दो। —फिसाना०, भा० ३, पृ० २१५।

टहका—संज्ञा स्त्री० [हि० टसक] शरीर के जोड़ों की पीड़ा। रह रहकर उठनेवाली पीड़ा। असक।

टहकना—क्रि० प्र० [हि० टसकना] १. रह रहकर दर्द करना। असकना। टीस मारना। २. (घी, मोम, चरबी आदि का) घीब झाकर तरल होना या बहना। पिघलना।

टहकाना—क्रि० प्र० [हि० टहकना] घाँव से पिघलाना।

टहटह(पु)—क्रि० वि० [देश०] स्पष्टतापूर्वक। उ०—टहटह सु सुलिय मोर।—प० सो०, पृ० ८१।

मुहा०—टहटह चाँदनी = निर्मल चाँदनी। श्वेत चाँदनी।

टहटहा—वि० [हि० टटका] टटका। ताजा।

टहना^१—संज्ञा पुं० [सं० तनुः (=पतला या शरीर)] [स्त्री० टहनी] १. वृक्ष की पतली शाखा। पतली डाल।

टहना^२—संज्ञा पुं० [सं० घण्टीवान्] घुटना। टेढ़ना। उ०—जल टहने तक पहुँच गया था।—हुमायूँ०, पृ० ५४।

टहनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टहना] वृक्ष की बहुत पतली शाखा। पेड़ की डाल के छोर पर की कोमल, पतली और लचीली उपशाखा जिसमें पतियाँ लगती हैं। जैसे, नीम की टहनी।

टहरकट्टा—संज्ञा पुं० [हि० ठहर + काठ] काठ का टुकड़ा जिसपर टकुए या तकले से उतारा हुआ सूत लपेटा जाता है।

टहरना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टहलना'।

टहल—संज्ञा स्त्री० [हि० टहलना] १. सेवा। श्रुषा। सिद्धमत। क्रि० प्र०—करना।

यौ०—टहल टई = सेवा श्रुषा। उ०—कल करनी बरगिए कहीं लौ करत फिरत नित टहल टई है।—तुलसी (सम्ब०)। टहल टकीर = सेवा श्रुषा।

मुहा०—टहल बजाना = सेवा करना।

२. नौकरी चाकरी। काम श्रमा।

टहलना—क्रि० प्र० [?] १. धीरे धीरे चलना। मंद गति से भ्रमण करना। धीरे धीरे कदम रखते हुए फिरना।

मुहा०—टहल जाना = धीरे से खिसक जाना। चुपचाप अन्यत्र चला जाना। हट जाना। जान बूझकर उपस्थित न रहना। २. केवल जी बहलाने के लिये धीरे धीरे चलना। हवा जाना।

सैर करना। जैसे,—वे सँव्या को नित्य टहलने जाते हैं। ३. परलोक गमन करना। मर जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

टहलनी—संज्ञा स्त्री० [हि० बहल + नी (प्रत्यय०)] १. टहल करनेवाली। सेवा करनेवाली। दासी। मजदूरनी। लोड़ी। चाकरानी। उ०—म्हौसी वकि घड़ी टहलनी भँवर कमल फुल बास लुभावै।—घनानंद, पृ० ३३४। २. वह लकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है।

टहलान—संज्ञा स्त्री० [हि० टहलना] टहलने की क्रिया या भाव।

टहलाना—क्रि० प्र० [हि० टहलना] १. धीरे धीरे चलाना। घुमाना। फिराना। २. सैर कराना। हवा खिलाना। ३. हटा देना। दूर करना। ४. बिकनी चुपड़ी बातें करके किसी को अपने साथ ले जाना।

मुहा०—टहला ले जाना = उड़ा ले जाना। गायब करना। चोरी करना। उ०—पेशकार, हुजूर जूता कोई जात शरीफ टहला ले गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४९।

टहलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० टहलना] दे० 'टहल'। उ०—छोट सी भँव सोहने सीगनि टहलि करनि को गोली लू।—नंद० प्र०, पृ० ३३७।

टहलुआ—संज्ञा पुं० [हि० टहल] [स्त्री० टहलुई, टहलनी] टहल करनेवाला। सेवक। नौकर। सिद्धमतगार।

टहलुई—संज्ञा स्त्री० [हि० टहल] १. दासी। ठिकरी। लोड़ी। चाकरानी। मजदूरनी। नौकराणी। २. वह लकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है।

टहलुनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० टहल] दे० 'टहलनी'। उ०—पहले गाँव में से एक लकड़ी आई, फिर एक टहलुनी आई, उसके पीछे एक और आई।—ठेठ०, पृ० ३०।

टहलुवा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टहलुआ'। उ०—घोर सब वज्रवासी टहलुवान को महाप्रसाद लिवायो।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० १४।

टहलू—संज्ञा पुं० [हि० टहल] नौकर। चाकर। सेवक।

टहाका—वि० [देश०] दे० 'टहाटह'।

यौ०—टहाका मजोरिया = निर्मल चाँदनी।

टहाटहा—वि० [देश०] निर्मल। चटकीला।

यौ०—टहाटह चाँदनी = निर्मल चाँदनी।

टरी—संज्ञा स्त्री० [हि० घाट, घात] मतलब निकालने की बात। प्रयोजनसिद्धि का ढंग। ताक। मुक्ति। जोड़ तोड़।

मुहा०—टही लगावा = जोड़ तोड़ लगाना। टही में रहना = काम बिकालने की ताक में रहना।

टहुआटारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] इधर की उधर लगाना। घुमलखोरी।

टहकड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [हि० टहकना] शब्द। ध्वनि। उ०—करहइ किया टहकड़ा, निद्रा जागी नारि।—दोला०, पृ० ३४५।

टहकना(पु)—क्रि० प्र० [धनु०] बोलना। धावाज करना। उ०—मोर टहकइ सीखर भी।—बी० रासो०, पृ० ७०।

टहका^१—संज्ञा [हि० ठक या ठहाका] १. पहेली। २. चमत्कारपूर्ण उक्ति। चुटकुला।

टहका^३—संज्ञा पुं० [हि० टहकना] आवाज । स्वर । उ०—टहका मोर का साले । हिये मे हूँ सी चाले ।—राम० बर्म०, पृ० ३८ ।

टहल^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टहल] दे० 'टहल' । उ०—सो वह योगी नित्य अपने हाथ में श्री ठाकुर जी की सेवा टहल करती ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १२१ ।

टहोका—संज्ञा पुं० [हि० ठोकर अथवा ठोका] हाथ या पैर से दिया हुआ धक्का । भटका ।

मुहा०—टहोका देना=हाथ या पैर से धक्का देना । भटकना । ठकेलना । टेलना । टहोका खाना=धक्का खाना । ठोकर सहना । उ०—मैंने इनकी ठंडी मांस की फाँस का टहोका खाकर कुंभनाकर कहा ।—इंशा अस्ला खाँ (शब्द०) ।

टांक—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्क] एक प्रकार की शराब [को०] ।

टांकर—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्कर =] १. कामी । संपट । २. छटना चुगलखोर [को०] ।

टांकार—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्कार] दे० 'टंकोर' [को०] ।

टाँक^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टाङ्क] १. एक प्रकार की तेल जो चार माशे की (यिनी किसी के गत से तीन माशे की) होती है । इसका प्रचार जोहरियो में है । २. धनुष की शक्ति की परीक्षा के लिये एक तेल जो पचीस गेर को होती थी ।

विशेष—इस तेल के बटवरे को धनुष की होरी में बांधकर लटका देने थे । जितने बटवरे बांधने से धनुष की डोरी अपने पूरे संघान या विंचान पर पहुँच जाती थी, उतनी टाँके का, वह धनुष समझा जाता था । जैसे, कोई धनुष सवा टाँक का, कोई डेढ़ टाँक का, यहाँ तक कि कोई दो या तीन टाँक तक होता था जिसे अत्यंत बलवान पुरुष ही चढ़ा सकते थे ।

३. जाँच । पूत । प्रवाज । धाँक । ४. हिरटेदारों का हिस्सा । बखरा । ५. एक प्रकार का छोटा कटोरा । उ०—घोड़ टाँक में हूँ सोध मेरा । नौग मिरचि तेहि उपर नावा ।—जायसी (शब्द०) ।

टाँक^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँकना] १. लिखावट । लिखने का अंक या चिह्न । लिखन । उ०—छती नेह कागर हिये मई ललायन टाँक । विरह तयो उभरयो सु अब सेंहुड़ को सो धाँक ।—बिहारी (शब्द०) । २. बलम की गोक । लेखनी का डंक । उ०—हरि जाय चित चित पुलि रमाही भरि जाय, भरि जाय कागद कलम टाँक जरि जाय ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

टाँकना—क्रि० म० [सं० टाँकना] १. एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को कील आदि जड़कर जोड़ना । कील कटि ठोककर एक वस्तु (धातु की चद्दर आदि) को दूसरी वस्तु में मिलाना या एक वस्तु पर दूसरी को बँटाना । जैसे, फूटे हुए बरतन पर चिप्पी टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. सुई के भूँदरे एक ही तामे को दो वस्तुओं के नीचे ऊपर ले जाकर उन्हें एक दूसरे से मिलाना । सिलाई के द्वारा जोड़ना ।

सीना । जैसे, चकती टाँकना, गोटा टाँकना, फटा सूता टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

३. सीकर घटकाना । सुई तामे से एक वस्तु पर दूसरी इस प्रकार लगाना वा ठहराना कि वह उसपर से न हटे या गिरे ।

जैसे, दहन टाँकना । मोती टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

४. सिल, चक्की आदि को टाँकी से गड़डे करके खुरदरा करना । छूटना । रेहना । झीलना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

६. किसी कागज, बही या पुस्तक पर स्मरण रखने के लिये लिखना । दर्ज करना । चढ़ाना । जैसे,—ये दस रुपए भी बही पर टाँक लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—मन में टाँक रखना = स्मरण रखना । याद रखना ।

† ७. लिखकर पेश करना । दाखिल करना । जैसे, अर्जी टाँकना ।

८. चट कर जाना । उड़ा जाना । साना । (बाजारू) । जैसे—देखते देखते वह सब मिटाई टाँक गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

९. अनुचित रूप से रुपया पैसा आदि ले लेना । मार लेना । उड़ा लेना ।—(दलाल) ।

टाँकली^१—संज्ञा स्त्री० [?] पाल लपेटने की धातु या गड़ारी । (लश०) ।

टाकली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० टाङ्कली] एक प्रकार का पुराना बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता था ।

टाँका—संज्ञा पुं० [हि० टाँकना] १. वह जड़ी हुई कील जिससे दो वस्तुएँ (विशेषतः धातु की चद्दरें) एक दूसरे से जड़ी रहती हैं । जोड़ मिलानेवाली कील या काँटा ।

क्रि० प्र०—उखड़ना ।—निकालना ।—लगना ।—लगाना । सीवन का उतना घंश जितना सुई को एक बार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर ले जाने में तैयार होता है । सिलाई का पृथक् पृथक् अंश । डोभ । जैसे,—दो टाँके लगा दो । ज्यादा काम नहीं है ।

क्रि० प्र०—उखड़ना ।—खुलना ।—टूटना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—टाँका चलाना=धाने के धिये कपड़े आदि में धार पार सुई बालना । टाँका भरना=सुई से छेदकर तामा फँसाना या घटकाना । सीना । सिलाई करना । टाँका मारना=दे० 'टाँका भरना' ।

३. सिलाई । सीवन । ४. टाँकी हुई चकती । धिगड़ी । चिप्पी ।

५. शरीर पर के घाव या कटे हुए स्थान की सिलाई जो घाव पूरने के लिये की जाती है । जोड़ ।

क्रि० प्र०—उखड़ना ।—खुलना ।—टूटना ।—लगना ।—लगाना ।

६. धातुओं के जोड़ने का मसाला जो उनकी गलाकर बनाया जाता है ।

क्रि० प्र०—भरना ।

टाँका^३—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] [श्री० अल्पा० टाँकी] लोहे की कील जो नीचे की ओर चौड़ी ओर धारदार होती है और पत्थर छीलने या काटने के काम में आती है। पत्थर काटने की चौड़ी छेनी।

टाँका^३—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (= लहु या गड़ा)] १. दीवार उठाकर बनाया हुआ पानी इकट्ठा रखने का छोटा सा कुंड। होज। चहबन्धा। २. पानी रखने का बड़ा बरतन। कंडाल।

टाँकाटूक—वि० [हिं० टाँक + तोल] तोल में ठीक ठीक। वजन में पूरा पूरा। ठीक ठीक तुला हुआ।—(दुकानदार)।

टाँकी^१—संज्ञा श्री० [सं० टङ्क] १. पत्थर गढ़ने का औजार। वह लोहे की कील जिससे पत्थर तोड़ते, काटते या छीलते हैं। छेनी। उ०—यह तेलिया पखान हठी, कठिनाई याकी। दूटी याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी।—दीनदयाल (शब्द०)।

कि० प्र०—चलना।—चलाना।—बैठना।—मारना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—टाँकी बजना=(१) पत्थर पर टाँकी का आघात पड़ना। (२) पत्थर की गढ़ाई होना। इमारत का काम लगना।

२. तरबूज या खरबूजे के ऊपर छोटा सा चौखूँटा कटाव या छेद जिससे उसके भीतर का (कच्चे, पक्के, सड़े आदि होने का) हाल मालूम होता है।

विशेष—फल बेचनेवाले प्रायः इस प्रकार थोड़ा सा काटकर तरबूज रखते हैं।

३. काटकर बनाया हुआ छेद। ४. एक प्रकार का फोड़ा। बुबल। ५. गम्भी या दुजाक का घाव। ६. घारी का दाँत। दाँता। दंदा।

टाँकी^२—संज्ञा श्री० [सं० टङ्क (= लहु या गड़ा)] १. पानी इकट्ठा रखने का छोटा होज। छोटा टाँका। छोटा चहबन्धा। २. पानी रखने का बड़ा बरतन। कंडाल।

टाँकीबंद—वि० [हिं० टाँकी + का० बंद] (इमारत, दीवार या जुड़ाई) जिसमें लगे हुए पत्थर पट्टियों या दोनों ओर गढ़नेवाली कीलों के द्वारा एक दूसरे से खूब जुड़े हों। जैसे, टाँकीबंद जुड़ाई। टाँकीबंद इमारत।

विशेष—दो पत्थरों के जोड़ के दोनों ओर घामने सामने दो छेद किए जाते हैं। इन्हीं छेदों में दो ओर भुकी हुई कीलों को ठोककर छेदों में गला हुआ सीसा भर देते हैं जिससे पत्थर के दोनों टुकड़े एक दूसरे से जकड़कर मिला जाते हैं। किसे की दीवारों, पुल के खंभों आदि में इस प्रकार की जुड़ाई प्रायः होती है।

टाँग—संज्ञा श्री० [सं० टङ्ग] १. शरीर का वह विपला भाग जिसपर थूठ रहता है और जिससे प्राणी चलते या दीड़ते हैं। साधारणतः जीव की जड़ से लेकर एड़ी तक का अंग जो पतले खंभे या बंडे के रूप में होता है, विशेषतः घुटने से लेकर एड़ी तक का अंग। जीवों के चलने फिरने का अवयव। (जिसकी संख्या भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों में भिन्न भिन्न होती है)।

मुहा०—टाँग घड़ाना=(१) बिना अधिकार के किसी काम में योग देना। किसी ऐसे काम में हाथ डालना जिसमें उसकी आवश्यकता न हो। फजूल दखल देना। (२) अड़ंगा लगाना। बिघन डालना। बाधा उपस्थित करना। (३) ऐसे विषय पर कुछ कहना जिसकी कुछ जानकारी न हो। ऐसे विषय में कुछ विचार या मत प्रकट करना जिसका कुछ ज्ञान न हो। अनधिकार चर्चा करना। जैसे,—जिम बात को तुम नहीं जानते उसमें क्यों टाँग घड़ाते हो? टाँग उठाना=(१) स्त्रीसंभोग करना। स्त्री के साथ संभोग करने के लिये प्रस्तुत होना। आसन लेना। (२) जल्दी जल्दी पैर बढ़ाना। जल्दी जल्दी चलना। टाँग उठाकर मूतना=कुत्तों की तरह मूतना। टाँग की राह निकल जाना=३० 'टाँग तले (या नीचे) से निकलना। उ०—उस अंबर के अखाड़े से कोरे निकल जाओ तो टाँग की राह निकल जाऊँ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ७। टाँग टूटना=चलने फिरने से थकावट आना। उ०—हुर रोज आप दीड़ते हैं। साहब हमपर भलग खफा होते हैं और टाँगें पलंग टूटती हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५७। टाँग तले (या नीचे) से निकलना=द्वार मारना। परास्त होना। नीचा देखना। घचीन होना। टाँग तले (या नीचे) से निकालना=हुराना। परास्त करना। नीचा बिलाना। घचीनता या हीनता स्वीकार करना। टाँग तोड़ना=(१) अंगभंग करना। (२) बेकाम करना। निकम्मा करना। किसी काम का न रहना। (३) किसी भाषा की थोड़ा सा सीखकर उसके टूटे फूटे या अशुद्ध वाक्य बोलना। जैसे,—क्या अंग्रेजी की टाँग तोड़ते हो? (अपना) टाँग तोड़ना=चलते चलते पैर थकना। घूमते घूमते हैरान होना। टाँग पसारकर सोना=(१) निद्रांद होकर सोना। बिना किसी प्रकार के खटके के सैन से दिन बिनाना। टाँगें रह जाना=(१) चलते चलते पैर दर्द करने लगना। चलते चलते पैरों का शिथिल हो जाना। (२) लकड़ा या गठिया से पैर का बेकाम हो जाना। टाँग लेना=(१) टाँग का पकड़ना (२) (कुत्ते आदि का) पैर पकड़कर काट खाना। (३) कुत्ते की तरह काटना। (४) पीछे पड़ जाना। सिर होना। पिछ न छोड़ना। टाँग बराबर=छोटा सा। जैसे,—टाँग बराबर सबका, ऐसी ऐसी बातें कहता है। (किसी की) टाँग से टाँग बाँधकर बैठना=किसी के पास से न हटना। सदा किसी के पास बना रहना। एक घड़ी के लिये भी न छोड़ना। टाँग से टाँग बाँधकर बैठाना=अपने पास से हटने न देना। सदा अपने पास बैठाए रहना। एक घड़ी के लिये भी कहीं जाने जाने न देना।

२. कुपती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की टाँग में टाँग मारकर या अड़ाकर उसे चित्त कर देते हैं।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है। जैसे,—(क) पिछली टाँग=जब विपक्षी पीछे या पीठ की ओर हो तब पीछे से उसके घुटने के पास टाँग मारने को पिछली

टाँग कहते हैं। (ख) बाहरी टाँग=जब दोनों पहलवान आमने सामने छाती से छाती मिलाकर भिड़े हों तब विपक्षी के घुटने के पिछले भाग में जोर से टाँग मारने को बाहरी टाँग कहते हैं। (ग) बगली टाँग=विपक्षी को बगल में पाकर बगल से उसके पैर में टाँग मारने को बगली टाँग कहते हैं। (घ) भीतरी टाँग=जब विपक्षी पीठ पर हो, तब मोका पाकर भीतर ही से उसके पैर में पैर फँसाकर भटका देने को भीतरी टाँग कहते हैं। (च) छड़ानी टाँग=विपक्षी को दोनों टाँगों के बीच में टाँग फँसाकर मारने छड़ानी टाँग कहते हैं।

(१) चतुर्थांश। चौथाई भाग। चहाकम।—(दलाल)।

टाँगना—संज्ञा पुं० [सं० तुरंगम या हि० टँगना] छोटी जाति का घोड़ा। वह घोड़ा जो बहुत कम ऊँचा हो। पहाड़ी टटू।

विशेष—नेपाल और बरमा के टाँगन बहुत मजबूत और तेज होते हैं।

टाँगना—क्रि० सं० [हि० टँगना] १. किसी वस्तु को किसी ऊँचे आधार से बहुत थोड़ा सा लगाकर इस प्रकार घटकाना या ठहराना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर हो। २. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से इस प्रकार से बाँधना या फँसाना यथवा उसपर इस प्रकार टिकाना या ठहराना कि उसका (प्रथम वस्तु का) सब (या बहुत सा) भाग नीचे की ओर लटकता रहे। किसी वस्तु को इस प्रकार ऊँचे पर ठहराना कि उसका आध्या ऊपर की ओर हो। लटकाना। जैसे, (खूँटी पर) कपड़ा टाँगना, परदा टाँगना, भाड़ टाँगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा भाग आधार के नीचे लटकता हो, तो उसे 'टाँगना' नहीं कहेंगे। 'टाँगना' और 'लटकाना' में यह अंतर है कि 'टाँगना' किया में वस्तु के फँसाने, टिकाने या ठहराने का भाव प्रधान है और 'लटकाना' में उसके बहुत से भाग की नीचे की ओर दूर तक पहुँचाने का भाव है। जैसे,—कुएँ में रस्सी लटकाना कहेंगे रस्सी टाँगना नहीं कहेंगे। पर टाँगना के अर्थ में लटकाना का भी प्रयोग होता है।

संयो० क्रि०—देना।

२. काँपी चढ़ाना। पाँपी लटकाना।

टाँगा^१—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ग] बड़ी गुल्हाड़ी।

टाँगा^२—संज्ञा पुं० [सं० टँगना] एक प्रकार की दो पाँहए की गाड़ी जिसका डीया इतना ढीला होता है कि वह पीछे की ओर कुछ झुका या लटका या आगे पीछे टँगा भी रहता है। टाँगा।

विशेष—इसमें सवारी प्रायः पीछे की ओर ही मुँह करके बैठती है और जमीन से इनने रास रहती है कि छोड़े के भड़कने आदि पर भट से जमीन पर उतर सकती है। इस गाड़ी के इधर उधर उलटने का भय भी बहुत कम रहता है। यह प्रायः पहाड़ी रास्तों के लिये बहुत उपयुक्त होती है। इसमें घोड़े या बैल दोनों जोते जाते हैं।

टाँगानोचन—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँग + नोचना] नोचलसोट। खींचा-खींची। खींचातानी।

टाँगी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँग] कुल्हाड़ी।

टाँगुन—संज्ञा स्त्री० [देश० या हि० कङ्कनी (वैसे ही जैसे किशुक से टेसू)] बाजरे या कँगनी की तरह का एक घनाज जिसकी फसल सावन भादों में पककर तैयार हो जाती है।

विशेष—इसके दाने महीन और पीले रंग के होते हैं। गरीब लोग इसका भात खाते हैं।

टाँघना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टाँगन'।

टाँच^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँकी] ऐसा वचन जिसमें किसी का चित्त फिर जाय और वह जो कुछ दूसरे का कार्य करनेवाला हो, उसे न करे। दूसरे का काम बिगाड़नेवाली बात या वचन। भाँजी। उ०—मेरे व्यवहारों में टाँच मारी है, मेरे मित्रों को ठंढा और मेरे शत्रुओं को गर्म किया है।—भारतेंदु० प्र०, भाग० १, पृ० ५६६।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँच^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँका] १. टाँका। सिलाई। डोम। २. टंकी हुई चकती। धिगली। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचा।—तुलसी (शब्द०)। ३. छेद। सुरास।

टाँच^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] हाथ पैर का सुन्न पड़ जाना या सो जाना। टाँम।

क्रि० प्र०—धरना।—पकड़ना।—होना।

टाँचना^१—क्रि० सं० [हि० टाँच] १. टाँकना। डोम लगाना। सीना। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचो।—तुलसी (शब्द०)। २. काटना। तराशना। छीनना। छाँटना।

टाँचना—क्रि० प्र० फूला फूला फिरना। गुलछरें उड़ाते हुए घूमना।

टाँची^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क (=खपया)] खपया भरने की लम्बी धैली जिसमें रुपए भरकर कमर में बाँध लेते हैं। न्योली। मियानी। बसनी।

टाँची^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँकी] भाँजी।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँची^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टाँच'।

टाँटी—संज्ञा पुं० [हि० टट्टी] खोपड़ी। कपाल।

मुह०—टाँट के बाल उड़ना = (१) सिर के बाल उड़ना। (२) सर्वस्व निकल जाना। पास में कुछ न रह जाना। (३) खूब मार पड़ना। भुरकुस निकलना। टाँट के बाल उड़ना = सिर पर खूब झूठे लगाना। मारते मारते सिर पर बाल न रहने देना। टाँट खुजाना = मार खाने को जी चाहना। कोई ऐसा काम करना जिससे मार खाने की नोबत आवे। दंड पाने का काम करना। टाँट गंजी कर देना = (१) मारते मारते सिर गंजा करना। (२) खूब खर्च करवाना। खूब रुपए गलवाना। खर्च के मारे हैरान कर देना। पास का धन निकलवा देना। टाँट गंजी होना = (१) मार खाते खाते सिर गंजा होना। खूब मार पड़ना। (२) खर्च के मारे धुरें निकलना। खर्च करते करते पास में धन न रह जाना।

टॉटर—संज्ञा पुं० [हि० टट्टर] खोपड़ी । कपाल ।

टॉठ—वि० [भ्रु० ठन ठन या सं० स्थाणु] १. जो सूखकर कड़ा हो गया हो । करारा । कड़ा । कठोर । उ०—राम सौं साम किए नित है हित कोमल काज न कीजिए टांठे ।—तुलसी (शब्द०) ।

२. दृढ़ । बली । तगड़ा । मुस्टंडा ।

टॉठा—वि० [हि० टांठ] [वि० स्त्री० टांठी] १. करारा । कड़ा कठोर । २. दृढ़ । हृष्ट पुष्ट । तगड़ा ।

टॉङ्गा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाणु] १. लकड़ी के खंभों पर या दो दीवारों के बीच लकड़ी की पटरियाँ या बाँस के लट्टे ठहरा कर बनाई हुई पाटन जिसपर चीज अमवाब रखते हैं । परछत्ती । २. मचान जिसपर बैठकर खेल को रखवाली करते हैं । ३. गुल्ली डंडे के खेल में गुल्ली पर डंडे का आघात । टोला ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

टॉङ्गा^२—संज्ञा पुं० [सं० ताड] बाहु पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना । टेंडिया ।

टॉङ्गा^३—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल, हि० अटाला, टाल] १. ढेर । अटाला । टाल । राशि । २. समूह । पंक्ति । ३. घरों की पंक्ति । ४. दे० 'टांड' ।

टॉङ्गा^४—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंकड़ मिली मिट्टी । कंकरीली मिट्टी ।

टॉङ्गा^५—संज्ञा पुं० [हि० टांड (= समूह)] १. अन्न आदि व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए बैलों या पशुओं का भुंड जिसे व्यापारी लेकर चलते हैं । बरसी । बनजारों के बैलों आदि का भुंड । बनजारों के बैल ज्यों टांडो उतरघो प्रायः ।—कबीर (शब्द०) । २. व्यापारियों के माल की चलान । बिक्री के माल का खेप । व्यापारी का माल जो लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय । उ०—अति सीन भूनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दे आवनो है । सुई बेह लो बेह सकी न तहाँ परतीति को टांडो लदावनो है ।—बोधा (शब्द०) ।

मुद्दा०—टांडा लदना = (१) बिक्री का माल लदना । (२) कूच को तैयारी होना । (३) मरने की तैयारी होना ।

३. व्यापारियों का चलता समूह । बनजारों का भुंड जो एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हो । ४. नाव पर चढ़कर इस पार से उस पार जानेवाले पथिकों और व्यापारियों का समूह । उ०—लीजै बैगि निबेरि सूर प्रभु यह पतितन को टांडो ।—सूर (शब्द०) । ५. कुटुंब । परिवार ।

टॉङ्गा^६—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड, हि० टूँड] एक प्रकार का हरा कीड़ा जो पत्तों आदि की जड़ों में लगकर फसल को हानि पहुँचाता है ।

क्रि० प्र०—लगना ।

टॉङ्गी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टिड्डी । उ०—उमड़ि राति तुरकन र्यों मीठी । छुटे तीर उड़ति र्यों टांडी ।—बाब (शब्द०) ।

टाँण^७—संज्ञा पुं० [सं० ताड] दे० 'टांडा' । उ०—बारी टाँण सलोनी हटी ।—जायसी ग्रं०, पृ० १४१ ।

टॉयटॉय संज्ञा स्त्री० [भ्रु०] १. कर्कश शब्द । अप्रिय शब्द । कड़ुई बोली । टें टें । २. बक बक । बकवाद । प्रलाप ।

मुद्दा०—टॉय टॉय करना । बकवाद करना । निरर्थक बोलना । निना ममके वृत्ति बोलना । उ०—तुम कुछ समझते तो हो नहीं बेकार टॉय टॉय करते हो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ११५ । टॉय टॉय फिस = (१) बकवाद, पर फज कुछ नहीं । किसी कार्य के संबंध में बातचीत तो बहुत बढ़कर पर परिणाम कुछ नहीं । (२) किसी कार्य के आरंभ में तो बड़ी मारी तत्परता पर अंत में सिद्धि कुछ भी नहीं । कार्य का आरंभ तो बड़ी धूमधाम के साथ, पर अंत को होना जाना कुछ नहीं ।

टॉस—संज्ञा स्त्री० [हि० टानना (= खींचना)] हाथ या पैर के बहुत देर तक मुड़े रहने के कारण नमों की पिकुडन या तनाव जिससे पोंसने की सो असह्य पीड़ा होने लगती है । यह पीड़ा प्रायः क्षणिक होती है ।

क्रि० प्र०—बढ़ना ।

टॉमना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टाँचना', 'टाँचना' ।

टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी । २. अपथ । कमम [को०] ।

टाइटिल पेज—संज्ञा पुं० [ग्रं०] किसी पुस्तक के सबसे ऊपर का पृष्ठ जिसपर पुस्तक और ग्रंथकार का नाम आदि कुछ बड़े अक्षरों में रहता है । आवरण पृष्ठ ।

टाइप—संज्ञा पुं० [ग्रं०] सीसे अथवा सीसे और ताम्र के मिश्रण से ढले हुए अक्षर जिनको मिलाकर पुस्तकें छापी जाती हैं । कटि का अक्षर ।

टाइपकास्टिंग मशीन—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] कटि का अक्षर ढालने का कल ।

टाइपमोल्ड—संज्ञा पुं० [ग्रं०] कटि के अक्षर ढालने का साँचा ।

टाइपराइटर—संज्ञा पुं० [ग्रं०] एक कल या यंत्र जिसमें कागज रखकर टाइप के से अक्षर छापे जाते हैं । यह दफ्तरी और कार्यालयों में चिट्ठी पत्र आदि छापने के काम में आता है । टंकण पत्र ।

टाइफायड—संज्ञा पुं० [ग्रं० टाइफायड] एक प्रकार का विषेला ज्वर जिसमें स्वेद आस घट जाता है और संख्या को बढ़ जाता है । मोतीभरा ।

टाइफोन—संज्ञा पुं० [ग्रं० टाइफून, तुलनीय तूफान] एक प्रकार का तूफान जो चीन के समुद्र में और उसके आसपास बरसात के चार महीनों में आया करता है ।

टाइम—संज्ञा पुं० [ग्रं०] समय । वक्त ।

यौ०—टाइमटेबुल । टाइमपीम ।

टाइमटेबुल—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह विवरणपत्र या सारणी जिसमें भिन्न भिन्न कार्यों के लिये निश्चित समय लिखा रहता है । जैसे, स्कूल का टाइमटेबुल, दफ्तर का टाइमटेबुल, रेलवे का टाइमटेबुल ।

टाइमपीस—संज्ञा स्त्री० [घं०] कमरे में भेज, भालमारी भषवा डेस्क पर रहनेवाली वह छोटी घड़ी जो केवल समय बताती है, बजती नहीं। किसी किसी में जगाने की घंटी समय निर्धारित करने पर बजती है।

टाई—संज्ञा स्त्री० [घं०] १. कपड़े की एक पट्टी जो. घंघेजी पहनावे में कालर के धंवर गाँठ देकर बाँधी जाती है। नेकटाई। २. जहाज के ऊपर के पाल की वह रस्सी जिसकी मुट्ठी मस्तूल के छेदों में लगाई जाती है।

टाउन—संज्ञा पुं० [घं०] शहर। कसबा।

टाउन ड्यूटी—संज्ञा स्त्री० [घं०] चुंगी। पौटूटी।

टाउनहाल—संज्ञा पुं० [घं०] किसी नगर में वह सार्वजनिक भवन जिसमें नगर की सफाई, रोशनी आदि के प्रबंधकर्ताओं की तथा दूसरी सर्वसाधारण संबंधी सभाएँ होती हैं।

टाकरी लिपि—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुरी, ठक्कुरी ?] एक प्रकार की लिपि जो शारदा लिपि का घसीट रूप है।

विशेष—इस लिपि में इ, ई, उ, ए, ग, घ, च, ज, ङ, ढ, त, थ, द, ध, प, भ, म, य, र, ल, और ह वरुं वर्तमान शारदा लिपि से मिलते जुलते हैं। शेष वरुं भिन्न हैं, जिसका कारण संभवतः शीघ्रता से लिखना और चलतू कलम है। इसमें 'ख' के स्थान पर 'ष' लिखा जाता है।

टाका—संज्ञा पुं० [हि०] कंडाल। दे० 'टीका'। उ०—घाने सगुन सगुनिघाँ ताका। बहिउ मच्छ रूपे कर टाका।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पु० २११।

टाकू—संज्ञा पुं० [सं० तर्कु] टकुआ। तकना। टेकुरी।

टाकोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेंट। नजराना। उ०—उन्होंने उड़ीसा के समस्त जमींदारों से टाकोली या पेशकश वसूल किया।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पु० ६६।

टाटी—संज्ञा पुं० [सं० तत्तु] १. सन या पट्टए की रस्मियों का बना हुआ मोटा घुरघुरा कपड़ा जो बिछाने, परदा डालने आदि के काम में आता है।

महा०—टाट में मूँज का बखिया = वैसी भद्दा बीज, वैसी ही उसमें लगी हुई सामग्री या साज। टाट में पाट का बखिया = बीज तो मही और सस्ती, पर उसमें लगी हुई सामग्री बकिया और बहुमूल्य। बेमेल का साज।

२. बिरादरी। कुल। जैसे,—वे दूसरे टाट के हैं।

मुहा०—एक ही टाट के = (१) एक ही बिरादरी के। (२) एक साथ उठने बैठनेवाले। एक ही मंडली के। एक ही दख के। एक ही विचार के। टाट बाहर होना = बाह्यकृत होना। जाति पंक्ति से अलग होना।

३. साहूकार के बैठने का बिछावन। महाजन की गद्दी।

मुहा०—टाट उसटना = दिवाला निकालना। दिवालिया होने की सूचना देना।

विशेष—पहले वह रीति थी कि जब कोई महाजन दिवाला बोलता था, तब वह अपनी कोठी या दुकाव पर का टाट और

गद्दी उसटकर रख देता था जिससे व्यवहार करनेवाले लौट जाते थे।

टाटर—वि० [घं० टाइट] कसा हुआ।—(लक्ष०)।

महा०—टाट करना = मस्तूल खड़ा करना।

टाटका—वि० [हि०] दे० 'टटका'। उ०—(क) धिउ टाटक महँ सोधि सेरावा।—पदमावत, पु० ५८६। (ख) भीखा पावत मगन रेन दिन टाटक होत न बासी।—भीखा श०, पु० १२।

टाटक—संज्ञा पुं० [सं० त्राटक] दे० 'त्राटक'। उ०—टाटक ध्यान जपे नोकारा। जब या जीव को होइ उबारा।—घट०, पु० ८५।

यौ०—टाटक टोटक।

टाटबाफ—संज्ञा पुं० [हि० टाट + फा० बाफ] १. टाट बुननेवाला। २. कपड़ों पर कलाबत्तू का काम करनेवाला।

टाटबाफी—संज्ञा स्त्री० [हि० टाट + फा० बाफी] १. कलाबत्तू का काम। २. टाट बुनने का काम।

टाटबाफीजूता—संज्ञा पुं० [फा० तारबाफी] वह छूता जिसपर कलाबत्तू का काम हो। कामदार छूता।

टाटर—संज्ञा पुं० [सं० स्थातृ (= जो खड़ा हो)] १. टट्टर। टट्टी। २. सिर की हड्डी या परदा। खोपड़ी। कपाल। उ०—टाटर टूट, टूट सिर तासु।—जायसी (शब्द०)।

टाटर—संज्ञा पुं० [?] घोड़ों की सजाने की सामग्री। उ०—टाटर पाषर सज्जित कियो राव।—बी० रासो, पु० १६।

टाटरिकएसिड—संज्ञा पुं० [घं०] इमली का सत। इमली का चुक।

टाटिका—संज्ञा स्त्री० [हि० टाटी] टट्टी। उ०—विरचि हरि भक्त को बेष बर टाटिका, कपट दल हरित पल्लवान छावो। तुलसी (शब्द०)।

टाटी—संज्ञा स्त्री० [हि० स्थात्री ता तटी] छोटा टट्टर। टट्टी। उ०—(क) पाँचो आई जाल की वही भरम की भीति। माया टाटी उड़ि गई आई नाम सों प्रीति।—कबीर (शब्द०)। (ख) सूरदास प्रभु कहा निहारो मानत रक पास टाटी को।—सूर (शब्द०)।

टाठी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थात्री (= बटवाई), प्रा० ठाली, ठाही] थाली।

टाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड] भुजा पर पहनने का एक पहना। टाड़। टेंडिया। बट्टा। उ०—बाहु टाड़ कर कंकल बाजुबज एते पर हो लोकी।—सूर (शब्द०)।

टाडर—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

टाण्णी—संज्ञा पुं० [?] (विवाहवि) उत्सव। उ०—प्रदत्ता टाण्णी ऊपर, नाणा खरचे नाहि।—बाँकी० ग्रं० भा० ३, पु० ८२।

टान—संज्ञा स्त्री० [सं० तान (= फैलाव, खिंचाव)] १. तनाव। खिंचाव। फैलाव। २. खींचने की क्रिया। खींच। ३. सितार के परदे पर ऊँचली रखकर इस प्रकार खींचने की क्रिया जिससे बीच के सब स्वर निकल पावें। ४. सीप के दाँत

लगने का एक प्रकार जिसमें दाँत घँसता नहीं केवल खोलता या खरोंच डालता हुआ निकल जाता है।

दान^२—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु (=थुन या लकड़ी का खंभा)] टाँड़। मचान।

दान^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दान] प्रेस में किसी कागज को एकाधिक बार छापने का भाव। एक दान प्रायः एक हजार प्रतियों का होता है।

दानना—क्रि० सं० [हि० दान + ना (प्रत्य०)] तानना। खींचना।

दानिक—संज्ञा पुं० [सं० दानिक] वह भोज्य जो शरीर का बल बढ़ाती हो। बलवर्धक भोज्य। पुष्टिकारक भोज्य। शक्ति की दवा। पुष्टि : जैसे,—डाक्टर ने उन्हें कोई दानिक दिया है।

टाप—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, थाप] १. धोड़े के पैर का वह सबसे निचला भाग जो जमीन पर पड़ता है और जिसमें नाखून लगा रहता है। धोड़ों का यघर्चंद्राकार पावतल। सुम। उ०—जो जल चमहि यलहि की नाई। टाप न बूड़ वेग प्राधिकई। तुलसी (शब्द०)। २. धोड़े के पैरों के जमीन पर पड़ने का भाव। जैसे,—दूर पर धोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। ३. पलंग के पास का तल भाग जो पृथ्वी से लगा रहता है और जिसका घेरा उभरा रहता है। ४. बेंत या और किसी पेड़ की लचीली टहनियों का बना हुआ मछली पकड़ने का भावा जिसकी पेदी में एक छेद होता है। मछली पकड़ने का ढोचा। ५. मुरगियों के बंद करने का भावा।

टापड़—संज्ञा पुं० [हि० टप्पा] ऊसर मैदान।

टापदार—वि० [हि० टाप + दार (प्रत्य०)] जिसके सिरे या छोर पर के कुछ भाग का घेरा उभरा हुआ हो। जिसके ऊपर या नीचे का छोर कुछ फैला हुआ हो। जैसे, टापदार पाया।

टापना^१—क्रि० प्र० [हि० टाप + ना (प्रत्य०)] १. धोड़ों का पैर पटकना।

विशेष प्रायः जब दाना पाने का समय होता है, तब धोड़े टाप पटककर अपनी भूस की सूचना देते हैं। इससे 'टापने' का अर्थ कभी कभी 'दाना माँगना' भी लेते हैं।

२. टक्कर मारना। किसी वस्तु के लिये इधर उधर दौड़ना फिरना। ३. व्यर्थ इधर उधर फिरना। ४. उछलना। कुदना।

टापना^२—क्रि० सं० कुदना। फाँटना। उछलकर लौटना। जैसे, दीवार टापना।

टापना^३—क्रि० म० [सं० तप] १. बिना कुछ खाए पिए पड़ा रहना। बिना दाना पानी के समय बिताना। जैसे,—सबरे से बैठे टाप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पूछता। २. ऐसी बात के आसरे में रहना जो होती हुई न दिखाई दे। व्यर्थ प्रतीक्षा करना। घाशा में पड़े पड़े उद्विग्न और व्यग्र होना। जैसे,—घंटों से बैठे टाप रहे हैं कोई घाशा जाता नहीं दिखाई देता। ३. किसी बात से निराश और दुखी होना। हाथ मलना। पछताना। जैसे,—बहु खया गया, मैं टापता रह गया।

टापर^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. धोड़ने का मोटा कपड़ा। चट्टर। २. धोड़ों को धीत से बचाने के लिये धोड़ने का मोटा वस्त्र। तप्पड़। जीन के नीचे का मोटा कपड़ा। उ०—(क) जिए दीहे पालउ पड़इ, टापर तुगी सहाइ।—ढोला०, दू० २७६। (ख) घाली टापर बाग मुक्ति, भैरव राबदुमारि। करहइ किया टहकड़ा निद्रा जागो नारि।—ढोला०, दू० ३४५। ३. तिरपाल। ४. ओपड़ा।

टापर^२—संज्ञा पुं० [हि० टाप] छोटी मोटी सवारी। टट्टू आदि की सवारी।

टापा—संज्ञा सं० [सं० स्थापन, हि० थाप] १. टप्पा। मैदान। २. उजाड़ मैदान। ऊसर मैदान। ३. उछाल। हुँव। छलंग। फाँद।

मुहा०—टापा देना = लंबे डग भरना। उ०—कबिरा यह संसार में घने मनुष्य मतिहिन। राम नाम जाना नहीं आए टापा दीन।—कबीर (शब्द०)।

४. किसी वस्तु को ढकने या बंद करने का टोकरा। भावा।

टापू—संज्ञा पुं० [हि० टापा या टप्पा] १. स्थल का वह भाग जिसके चारों ओर जल हो। वह भूखंड जो चारों ओर जल से घिरा हो। द्वीप। २. टप्पा। टापा।

टाबरी—संज्ञा पुं० [सं० टाबर] १. बालक। लडका। उ०—घर की सब टाबर मुवो सुंदर कही न जाइ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७५२। २. परिवार।

टाबू—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी की बुनी हुई कटोरे के आकार की जाली जिसे बैलों के मुँह पर इसलिये चढ़ा देते हैं जिसमें वे काम करते समय इधर उधर चर न सकें। जाबा।

टामका—संज्ञा पुं० [अनु०] टिमटिमी। डिमडिमी। उ०—दुंदुभि पटह मृदंग डोलकी डकला टामक। मंदरा तबला सुमक संजरी तबला धामक।—सुदन (शब्द०)।

टामकटोया—संज्ञा पुं० [हि०] टकटोहना। टटोलना।

क्रि० प्र०—मारना = अंधरे में टटोलना या भटकना।

टामन—संज्ञा पुं० [सं० तन] तन्त्राविधि। टोटका। उ०—जावत हौं जु बई मुंदरी पड़ि राम कछु जनु टामन कीन्हो।—हनुमान (शब्द०)।

यौ०—टामन दमन = सर्वस्व। उ०—इतना कहत हाथ तब जोरे। टामन दमन सब ही तोरे।—राम० धर्म०, पृ० ३४६।

टार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. धोड़ा। २. गह्वर। लौंठा। लंग। ३. स्त्री पुरुष का संयोग करानेवाला व्यक्ति। फुटना। दलाल। मंडूषा।

टार^२—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल, हि० टाल] ढेर। राशि। टाल।

टार^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टारना] टालदूल। वि० दे० 'टाल'।

टार^४—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार हल जिसमें खगी हुई चोंगी से बीज गिरता रहता है।

टारन—संज्ञा पुं० [हि० टारना] १. टाखने या सरकावने की वस्तु।

२. कोल्हू में पड़ा हुआ वह लकड़ी का ढंढा जिससे गेंडेरियां बलाई या हिनाई जाती हैं।

टारना—क्रि० म० [हि०] दे० 'टालना'। उ०—(क) भूप सहम दस एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) त्रियन मूरि त्रिमि जोगवत रहेऊँ। दीप बाति नहि टारन कहेऊँ।—तुलसी (शब्द०)।

टारपीडो—संज्ञा पु० [अंग०] एक विध्वंसकारी यंत्र जिसमें भीषण विस्फोटक पदार्थ भरा रहता है और जो बड़े समुद्री मत्स्य के आकार का होता है। विस्फोटक यंत्र।

विशेष—यह जल के अंदर धिमाया रहता है। युद्ध के समय जहाज के जहाज पर इसे चलाते हैं। इसके लगने से जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है और वह वहीं डूब जाता है।

टारपीडो कैचर—संज्ञा पु० [अंग०] तेज चलनेवाला एक शक्तिशाली रणपोत या जमी जहाज जो टारपीडो बोट के प्रयत्न को विफल करने और उसे नष्ट करने के काम में लाया जाता है।

टारपीडो बोट—संज्ञा पु० [अंग०] तेज चलनेवाली एक छोटी स्टीम बोट जो युद्ध के समय जहाज के जहाज को नष्ट करने के लिये उसपर टारपीडो या विस्फोटक यंत्र चलाती है। नाशक जहाज।

टाला—संज्ञा स्त्री० [सं० घट्टाल, हि० घटाला] १. नीचे ऊपर रखी हुई वस्तुओं का ढेर जो दूर तक ऊँचा उठा हो। ऊँचा ढेर। भारी राशि। घटाला। गंज। जैसे, लकड़ी की टाल, भुस की टाल, प्यास की टाल, घास की टाल। २. लकड़ी, भुस, प्यास आदि की बड़ी दुकान। ३. बेनगाड़ी के पहिए का किनारा।

मुहा०—टाल मारना = पहिए के किनारों का छीजना।

टाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का घंटा जो गाय, बैल, हाथी आदि के गले में बांधा जाता है।

टाल—संज्ञा स्त्री० [हि० डालना] १. टालने का भाव। २. किसी बात के लिये आजकल का झूठा वादा। ऐसा बहाना जिससे किसी समय किसी काम को करने से कोई बच जाय।

थो०—टाखटूल। टालबटाल। टालमटाल। टालमटूल। टाल-मटोल।

टाल—संज्ञा पु० [सं० टार] अभिचार के लिये स्त्री पुरुष का समागम करानेवाला। फुटना। भंडूषा।

टालटूल—संज्ञा स्त्री० [हि० टाल + टूल] दे० 'टालमटूल'।

टालना—क्रि० स० [हि० टालना] १. अपने स्थान से अलग करना। हटाना। खितकाना। सरकाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. दूसरे स्थान पर भेज देना। अनुपस्थित कर देना। दूर करना। भगा देना। जैसे,—जब काम का समय होता है तब तू उसे कहीं टाल देते हो।

संयो० क्रि०—देना।

३. दूर करना। मिटाना। न रहने देना। निवारण करना।

जैसे, प्रापति टालना, संकट टालना, बला टालना। उ०—मुनि प्रसाद बन तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

४. किसी कार्य का निश्चित समय पर न करके उसके लिये दूसरा समय स्थिर करना। नियत समय से और आगे का समय ठहराना। मुलतबी करना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये होता है। जैसे, निधि टालना, धिवाड़ की सायत या लगन टालना, धिवाड़ टालना, इम्तदान टालना।

संयो० क्रि०—देना।

५. समय व्यतीत करना। समय बिताना। ६. किसी (आदेश या अनुरोध) का न मानना। न पालन करना। उल्लंघन करना। जैसे,—(क) हमारी बात वे कभी न टालेंगे। (ख) राजा की आज्ञा का कोन टाल सकता है? ७. किसी काम को तत्काल न करके दूसरे समय पर छोड़ना। मुलतबी करना। जैसे,—जा काम आवे, उसे तुरत कर डालो, कल पर मत टालो। ८. बहाना करके किसी काम से बचना। किसी कार्य के संबंध में इस प्रकार की बातें कहना जिससे वह न करना पड़े।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—किसी पर टालना = स्वयं न करके किसी के करने के लिये छोड़ देना। किसी के मिर मड़ना। जैसे,—जो काम उसके पास जाता है, वह दूसरो पर टाल देता है।

६. किसी बात के लिये आजकल का झूठा वादा करना। किसी काम को और आगे चलकर पूरा करने की मिथ्या आशा देना या प्रतिज्ञा करना। जैसे,—तुम इसी तरह महीनो से टालते आए हो, आज हम स्वयां जरूर लेंगे। १०. किसी प्रयोजन से भाए हुए मनुष्य को निष्फल लौटाना। किसी मनुष्य का कोई काम पूरा न करके उसे इधर उधर की बातें कहकर फेर देना। घता बताना। टरकाना। जैसे,—इस समय इसे कुछ कह सुनकर टाल दो, फिर माँगने आवेगा तब देखा जाएगा। ११. पलटना। फेरना। मोर का मोर करना। १२. कोई अनुचित या अपने विरुद्ध बात देख सुनकर न बोलना। बचा जाना। तरह दे जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

टालबटाल—संज्ञा स्त्री० [हि० टाल + बटाल] दे० 'टालमटाल'।

टालमटाल—संज्ञा स्त्री० [हि० टाल + म (प्रत्य०) + टाल] दे० 'टालमटूल'।

टालमटाल—क्रि० वि० [(दलाली) टाली (= घठन्नी)] आधे आध। निस्का निस्क।

टालमटूल—संज्ञा पु० [हि० टालना] बहाना।

टाला—क्रि० [(दलाली) टाली (= घठन्नी)] [स्त्री० टाली] आधा। अर्ध (दखाल)।

टालादूली^④—संज्ञा स्त्री० [हि० टालना] टालदूल । उ०—टाला-दूली दिन गया, ब्याज बढ़ता जाय ।—कबीर सा०, पृ० ७५ ।

टालिमा^⑤—वि० [हि० टालना ?] चुने हुए । चुनिदा । उ०—तिणि मई लेस्यो टालिमा, बाँकड़ मुहो विडंग ।—ढोला०, दू० २२७ ।

टाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गाय बैल आदि के गले में बाँधने की घंटी । २. जवान गाय या बछिया जो तीन वर्ष से कम की हो और बहुत चंचल हो । उ०—पाई पाई है भैया कुंश वृंश में टाली । घब के अपनी घट ही चगावह जैहें हटसी घाली ।—सूर (शब्द०) । ३. एक प्रकार का बाजा । ४. घठन्ती । साधा दपया । घेनी ।—(दलाल) ।

टालही—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शोणम जिसके पेड़ पंजाब में बहुत होते हैं ।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी भूरी और बहुत मजबूत होती है । यह इमारतों में लगती है तथा गाड़ी, खेती के सामान आदि बनाने के काम में आती है ।

टावर—संज्ञा पुं० [अंग०] १. लाट । मीनार । बुज । २. किना । कोट ।

टाहली—संज्ञा पुं० [हि० टहल] टहल करनेवाला । टहलुआ । दास । सेवक । खिदमतगार । उ०—कादर को आदर काहू के नाहि देखियत सबनि सोहात है सेवा गुजान टाहली ।—तुलसी (शब्द०) ।

टाहुली^⑥—संज्ञा स्त्री० [हि० टाहली] टहलुई । नौकरानी । उ०—यान समारो टाहुली, बोधा बदन भग मुहाई ।—बी० रासो, पृ० ४६ ।

टिंगा—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्री की योनि । भग ।—(प्रणिष्ट) ।

टिंचर—संज्ञा पुं० [अंग० टिंचर] किसी औषध का सार जो स्फिरिट के योग से तरल रूप में बनाया जाता है ।

टिंचर आयोडीन—संज्ञा पुं० [अंग० टिंचर आयोडीन] मूजन आदि पर लगाने के लिये आयोडिन और स्फिरिट आदि का घोल ।

टिंचर ओपियाई—संज्ञा पुं० [अंग० टिंचर ओपियाई] प्रकीम और स्फिरिट आदि का घोल ।

टिंचर कार्बिमम—संज्ञा पुं० [अंग० टिंचर कार्बिमम] इलायची का अर्क ।

टिंचर स्टील—संज्ञा पुं० [अंग० टिंचर स्टील] फोनाद आदि का स्फिरिट में बनाया हुआ घोल ।

टिट्रिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्रिनिका] १. जल सिरिस का पेड़ । अंबु शिरीषिका । दाढ़ीन । २. जोंक ।

टिंडा—संज्ञा पुं० [सं० टिंडा] १. ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें गोल गोल फल लगते हैं । इन फलों की तरकारी बनती है । डेंडसी । डेंडसी । २. रहट में लगा हुआ बरतन जिसमें पानी भरकर आता है । डब्बू ।

टिंडर—संज्ञा पुं० [सं० टिंडर (= डेंडसी)] रहट में लगी हुई हेंडिया ।

टिंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिंडा] टिंड नाम की तरकारी । डेंडसी ।

टिंडा—संज्ञा पुं० [सं० टिंडा] ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें

छोटे खरबूजे के बराबर गोल फल लगते हैं । इन फलों की तरकारी बनती है । डेंडसी । डेंडसी ।

टिंडिश—संज्ञा पुं० [सं० टिंडिश] टिंडा । डेंडसी । डेंडसी ।

टिंडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. हज को पकड़कर दबानेवाली मुठिया । २. जाता घुमाने का झुंड ।

टिक—संज्ञा पुं० [?] टिककर । लिट । ठोकवा । पूछा ।

टिकई—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. टाकेवाली गाय । वह गाय जिसके माथे पर सफेद टीका हो । २. एक छोटी चिड़िया जो तालों में उतरती है और जाड़ा बीतने पर बाहर चली आती है ।

टिकट—संज्ञा पुं० [अंग० टिकट] १. वह कागज का टुकड़ा जो किसी प्रकार का महसूल, भाड़ा, कर या फीस चुकानेवाले को दिया जाय और जिसके द्वारा वह कहीं या जा सके या कोई काम कर सके । जैसे, रेल का टिकट, डाक का टिकट, थिएटर का टिकट । २. कही जाने जाने या कोई काम करने के लिये अधिकारपत्र । ३. संसद् या विधानसभा या नगरपालिका के चुनाव के लिये किसी प्रत्याशी को दलविशेष के प्रतिनिधि के रूप में चुनाव लड़ने के लिये दिया जानेवाला अधिकार या स्वीकृति । ४. वह कर, फीस या महसूल जो किसी काम के करनेवालों पर लगाया जाय । जैसे, स्नान या टिकट, मेल का टिकट ।

मुहा०—टिकट लगाना = महसूल लगाना । कर नियत करना ।

टिकटघर—संज्ञा पुं० [अंग० टिकट + हि० घर] वह स्थान या कमरा जहाँ टिकट बिकता है ।

टिकटिक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. घोड़ों को हौकने के लिये मुंह से बिपा हुआ शब्द । २. घड़ी के बोलने का शब्द ।

टिकटिकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकठी] १. तीन तिरछी खड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अक्षराधियों के हाथ पैर बाँधकर उनके शरीर पर बेन या कोई लगाए जाते हैं । ऊँची तिपाई जिसपर अक्षराधियों को खड़ा करके उनके गले में जामी लगाते हैं । टिकठी । २. ऊँची तिपाई । टिकठी ।

मुहा०—टिकटिकी पर खड़ा करना = लड़ई में न हटनेवाले चोट खाकर मरे हुए मुरग की तीन लकड़ियों पर खड़ा करना ।

विशेष—मुरगों की लड़ाई में जब कोई महादुर मुरगा लड़ते ही लड़ते चोट खाकर मर जाता है और मरते दम तक नहीं हटता है, तब उसके शरीर को तीन लकड़ियों पर खड़ा कर देते हैं । यदि दूसरा मुरगा लात मारकर उसे लकड़ी के नीचे गिरा देता है तो उसकी जोन समझी जाती है और यदि वह किसी और तरफ चला जाता है तो मरे हुए मुरग की जोन समझी जाती है ।

टिकटिकी^२—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पाठ तो अंग्रेज़ लंबी एक चिड़िया जिसका रंग स्याही और पैर कुछ लाली लिए होते हैं ।

विशेष—जाड़े में यह सारे भारतवर्ष में देखी जाती है और प्रायः जलाशयों के किनारे झड़ियों में घोंसला बनाती है । यह एक बार में चार अंडे देती है ।

टिकटिकी^३—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'टकटकी' ।

टिकठी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकाष्ठ या हि० तीन काठ] १. तीन तिरछी खड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे घपराधियों के हाथ पैर बाँधकर उनके शरीर पर बेत या कोड़े लगाए जाते हैं । टिकटिकी । २. ऊँची निपाई जिसपर घपराधियों को खड़ा करके उनके गले में फाँसी का फटा लगाया जाता है । ३. काठ का ग्रासन जिसमें तीन ऊँचे पाए लगे हों । तिपाई । ४. बुना हुआ कपड़ा फेंकाने के लिये दो लकड़ियों का बना हुआ एक ढाँचा । यह कपड़े की चौड़ाई के बराबर फैल सकता है ।—(जुलाहे) । ५. घरकी जिसपर शव को संश्लेषित क्रिया के लिए रखा जाता है ।

टिकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० टिकिया] [स्त्री० घट्टा० टिकड़ी] १. चिपटा गोल टुकड़ा । घातु, पत्थर, लपड़े या धीर किसी कड़ी वस्तु का चक्राकार खंड । २. घाँच पर सँकी हुई छोटी मोटी रोटी । बाटी । घंगाकड़ी ।

मुहा०—टिकड़ा लगाना = घाग पर बाटी सँकना या पकाना ।

३. जड़ाल या ठप्पे के गहनों में कई नगी को जड़कर बनाया हुआ एक एक निभाग या घंग ।

टिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकड़ा] छोटा टिकड़ा ।

टिकना—क्रि० प्र० [सं० स्थित + √ क या घ (= बही) + टिक (= चलना)] १. कुछ काल तक के लिये रहना । ठहरना । बंरा करना । मुकाम करना । उ०—टिकि नीजियो रात मे काहू अटा जहाँ मोक्ष होय परेषा परे ।—सदमण (सन्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—रहना ।—लेना ।

२. किसी घुनी हुई वस्तु का नीचे बैठना । तल में जमना । तलछट के रूप में नीचे पड़े में झकट्टा होना । ३. स्थायी रहना । कुछ दिनों तक चलना या बना रहना । कुछ दिनों तक काम देना । जैसे,—यह जता मुझसे पैर में कितने दिन टिकेगा ! ४. स्थित रहना । अड़ा रहना । इधर उधर न गिरना । ठहरना । सहारे पर रहना । बनना या बैठना । जैसे,—(क) यह गोला बड़े की लोक पर टिका हुआ है । (ख) इसपर तो पैर ही नहीं टिकता, कैसे खड़े हो । ५. युद्ध या लड़ाई में सामना करते हुए जम रहना । ६. विश्राम के उद्देश्य से थोड़ी देर के लिये कहीं रुकना । ७. प्रतिकूल समय या मोसम में किसी पदार्थ का विकृत न होना । ८. ध्यान या निगाह का स्थिर होना ।

टिकरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकिया] १. नमकीन पकवान जो बेसन और मैदे की दो मोयनदार छोड़ियों को एक में बेलकर और धी में तलकर बनाया जाता है । २. टिकिया । ३. सिट्टी ।

टिकरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] सिर पर पहनने का एक गहना ।

टिकली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकिया या टीका] १. छोटी टिकिया । २. पत्नी या कौश की बहुत छोटी बिंदी के आकार की टिकिया जिसे स्त्रियाँ शृंगार के लिये अपने माथे पर चिपकाती हैं । सितारा । चमकी । ३. छोटा टीका । माथे पर पहनने की छोटी बंदी ।

टिकली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्क, हि० तकला] सूत बटने की फिरकी । सूत कातने का एक योजार ।

विशेष—यह बाँस या लोहे की सलाई पर लगी हुई काठ की गोल टिकिया होती है जिसे नचाने या फिराने से उसमें खपेटा हुआ सूत ऐंठकर कड़ा होता जाता है ।

टिकस—प्रज्ञा पुं० [सं० टेक्स] महसूल । कर । जैसे, पानी का टिकस, इनकम टिकस । उ०—सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, बन है मुझको बन्न ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४७३ ।

मुहा०—टिकस लगना = महसूल या कर नियत होना ।

टिकसारी—वि० [हि० टिकना + सार (प्रत्य०)] टिकाऊ । टिकने-वाला ।

टिकारी—संज्ञा पुं० [हि० टीका] राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो । युवराज । उत्तराधिकारी राजकुमार ।

टिकाऊ—वि० [हि० टिक + आऊ (प्रत्य०)] टिकनेवाला । कुछ दिनों तक काम देनेवाला । चलनेवाला । पायदार ।

टिकान—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकना] १. टिकने या ठहरने का भाव । २. टिकने या ठहरने का स्थान । गड़ाव । बट्टी ।

टिकाना—क्रि० सं० [हि० टिकन] १. रहने के लिये जगह देना । निवासस्थान देना । कुछ काल तक किसी के रहने के लिये स्थान ठीक करना । ठहराना । जैसे,—इन्हें तुम अपने यहाँ टिका लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. सहारे पर खड़ा करना या रोकना । अडाना । ठहराना । स्थित करना । जमाना । जैसे,—(क) एक पैर जमीन पर अच्छी तरह टिका लो, तब दूसरा पैर उठाओ । (ख) इसे दीवार से टिकाकर खड़ा कर दो । (ग) बोझ को चबूतरे पर टिकाकर थोड़ा दम ले लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

+ ३. किसी उठाए जाते हुए बोझ में सहारे के लिये हाथ लगाना । बोझ उठाने या ले जाने में सहायता देना । जैसे,—(क) अकेले उससे चारपाई न जायगी, तुम भी टिका लो । (ख) चार आदमी जब उसे टिकाते हैं, तब वह उठता है ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

४. देना । प्रस्तुत करना ।

टिकानी—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकाना] छकड़ा गाड़ी की वे दोनों लकड़ियाँ जिनमें पैजनी बासकर रस्सी से बाँधते हैं ।

टिकाव—संज्ञा पुं० [हि० टिकना] १. स्थिति । ठहराव । २. स्थिरता । स्थायित्व । ३. वह स्थान जहाँ यात्री आदि ठहरते हैं । पड़ाव ।

टिकावली^(१)—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का प्रासूषण । उ०—टीका टीक टिकावली हीरा हार हमेल ।—छीत०, पृ० २५ ।

टिकिया^१—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिका] १. गोल धीर चिपटा छोटा टुकड़ा । गोल धीर चिपटे आकार की छोटी वस्तु । चक्राकार छोटी मोटी वस्तु । जैसे, दवा की टिकिया, कुनैन की टिकिया ।

विशेष—चकती धीर टिकिया में यह अंतर है कि टिकिया का प्रयोग प्रायः ठोस धीर उभरे हुए मोटे दल की वस्तुओं के लिये होता है, पर चकती का प्रयोग कपड़े, चमड़े आदि महीन परत की वस्तुओं के लिये होता है। जैसे, कपड़े या चमड़े की चकती, मैदे की टिकिया।

२. कोयले की बुकनी को किसी लसीली चीज में सानकर बनाया हुआ चिपटा गोल टुकड़ा जिससे चिलम पर भाग सुलगाते हैं।
३. एक प्रकार की चिपटी गोल मिठाई जो मोयनदार मैदे की छोटी लोई को घी में तलने धीरे आशनी में डुबाने से बनती है। ४. भरतन के संचे का ऊपरी भाग जिसका सिरा बाहर निकला रहता है। ५. छोटी मोटी रोटी। बाटी। लिट्टी।

टिकिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] १. माथा। ललाट। २. माथे पर लगी हुई बिंदी। ३. अंगली में घुना, रंग या धीरे कोई वस्तु पोतकर बनाई हुई खड़ी रेखा या चिह्न।

विशेष—अनपढ़ लोग नित्य प्रति के लेन देन की वस्तु का लेखा रखने के लिये इस प्रकार के चिह्न प्रायः दीवार पर बनाते हैं।

टिकोरा—संज्ञा पुं० [देश०] टीका। बीटा।

टिकुरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्रुं, हि० टकुषा] सूत बटने या कातने की फिरकी। टिकली।

टिकुरी^२—संज्ञा पुं० [देश०] निसोय। तुबुंद।

टिकुला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टिकोरा'।

टिकुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकली'।

टिकुषा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टकुषा', 'टकुषा'।

टिकैत—संज्ञा पुं० [हि० टीका + ऐत (प्रत्य०)] १. राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजनिलक का अधिकारी हो। राजा का उत्तराधिकारी कुमार। युवराज। २. अधिकारता। सरदार।

टिकोर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकोर'।

टिकोरा^१—संज्ञा पुं० [सं० बटिका, हि० टिकिया] आम का छोटा धीरे कच्चा फल। आम का वह फल जिसमें आधी न पड़ी हो। आम की बतिया।

टिकोला^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टिकोरा'।

टिकोना, टिकौना—संज्ञा पुं० [हि० √ टिक + नीना (प्रत्य०)] आषार। टेक। सहारा। उ०—जिन टिकौनों से उसने अपने मन को संभाला था, वे सब इस झुकप में नीचे धा रहे धीरे वह झोपड़ा नीचे गिर पड़ा।—गोदान, पृ० ११४।

टिककड़—संज्ञा पुं० [हि० टिकिया] १. बड़ी टिकिया। २. हाथ की बनी छोटी मोटी रोटी जो सेंकी गई हो। बाटी। लिट्टी। धंकाड़ी। ३. मालपुवा।—(साधु)

टिककस^१—संज्ञा पुं० [सं० टिकस] कर। महसुब। उ०—टिककस लगा रे कस कस के छोड़ो अपना रोजगार।—प्रेमचन्द, भा० २, पृ० ३६१।

टिकका^१—संज्ञा पुं० [देश०] मुंगफली के पीछे का एक रोग।

टिकका^२—संज्ञा पुं० [हि० टीका] [स्त्री० टिककी] १. टीका। तिलक। बिंदी। २. अंगली में रंग आदि लगाकर बनाया हुआ सड़ा चिह्न।

विशेष—दे० 'टिककी'।

३. मुख। स्मरण। याद।

टिकका साहब—संज्ञा पुं० [हि० टीका (= तिलक) + प्र० साहब] राजा का वह बड़ा लड़का, जिसका योवराज्याभिषेक होने को हो। युवराज।—(पंजाब)।

टिककी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकिया] १. गोल धीरे चिपटा छोटा टुकड़ा। टिकिया।

मुहा०—टिककी जमना, बैठना या लगना = प्रयोजनसिद्धि का उपाय होना। युक्ति लड़ना। प्राप्ति आदि का होल होना। गोटी जमना।

२. धंकाड़ी। बाटी। लिट्टी।

टिककी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] अंगली में रंग या धीरे कोई वस्तु पोतकर बनाया हुआ गोल चिह्न। बिंदी। २. माथे पर की बिंदी। गोल टीका। ३. ताश की बूटी। ताश में बना हुआ पान आदि का चिह्न।

टिककी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] कान्ही सरसों।

टिकटिख—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकटिक'।

टिखटो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकठी] तक्ती। पटिया। उ०—कै शिव तंत्र सटीक खुल्यो विखसत टिखटो पर।—का० सुपमा, पृ० १।

टिखलना—क्रि० प्र० [सं० तप + गलन] पिघलना। धीरे से द्रवीभूत होना।

विशेष—दे० 'पिघलना'।

टिखलाना—क्रि० प्र० [हि० टिखलना] पिघलाना।

टिचन—वि० प्र० अटेंशन] १. तैयार। ठीक। दुरुस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. उद्यत। मुस्तीव।

क्रि० प्र०—होना।

टिटकारना—क्रि० प्र० [प्रनु०] टिक टिक शब्द करके किसी पशु को चलने के लिये उभारना। 'टिक टिक' करके हँकना। जैसे, घोड़े को टिटकारना।

मुहा०—टिटकारी पर खगना = (पशु का) इशारा पाकर काम करना। संकेत पाकर या बोली पहचानकर पास चला जाना।

टिटकारो—संज्ञा स्त्री० [हि० टिटकारना] घोड़े या अन्य पशु को टिकटिक करके हँकने की ध्वनि। उ०—टमटमवालों ने अपनी टिटकारियाँ भरनी शुरू की।—नई०, पृ० २०।

टिटिया^१—संज्ञा पुं० [प्र० तटिम्मह] १. अनावश्यक भ्रमण। २. ठकोसला। प्रपंच। ३. आहंकार।

टिटिम्मा—संज्ञा पुं० [सं० तटिम्मा] दे० 'टिटिमा' ।

टिटिह—संज्ञा पुं० [सं० टिटिह] टिटिहरी चिड़िया का नर । उ०—
देखा टिटिह टिटिहरी आई । चौंके भरि भरि पानी लाई ।—
नारायणदास (शब्द०) ।

टिटिहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिटिह, हि० टिटिह] पानी के किनारे
रहनेवाली एक चिड़िया जिसका सिर लाल, गरदन सफेद, पर
चितकबरे, पीठ खेरे रंग की, दुम मिलेजुले रंगों की और खोच
काली होती है । कुररी ।

विशेष—इसकी बोली कड़ई होती है और मुँह में 'टी टी' की
ध्वनि के समान जान पड़ती है । स्मृतियों में द्विजातियों के
लिये इसके मांसभक्षण का निषेध है । इस चिड़िया के संबंध
में ऐसा प्रवाद है कि यह रात को इस भय से कि कहीं आकाश
न टूट पड़े, उसे रोकने के लिये दोनों पैर ऊपर करके चित
सोती है ।

टिटिहा—संज्ञा पुं० [सं० टिटिह] टिटिहरी चिड़िया का नर । उ०—
टिटिहा कहीं जाऊँ लै कहीं । यहि ठे नीक और है जहाँ ।—
नारायणदास (शब्द०) ।

टिटिहारोर—संज्ञा पुं० [हि० टिटिहा + रोर] १. चिल्लाहट । शोर-
गुल । २. रोना पीटना । क्रंदन ।

टिटुआ—संज्ञा पुं० [हि० टटू का अल्पा०] [स्त्री० टिटुई] छोटा टटू ।
उ०—टिटुई ऊँटन को भोभा बहि सकत नहीं जिमि ।—
प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५७ ।

टिटिभ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० टिटिभी] १. टिटिहा । नर टिटिहरी ।
दे० 'टिटिहरी' । उ०—उमा रावनहि मस ममिमना । जिमि
टिटिभ खग सुत उत्ताना ।—सुलसी (शब्द०) । २. टिटु ।

टिटिभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] टिटिभ की मादा । टिटिहरी ।

टिटिभी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिटिभ] टिटिभ की मादा ।

टिटो(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० टिटो] दे० 'टिटो' । उ०—भड़ भौ टिटो
को काज कीबै ।—कबीर० २०, पृ० २६ ।

टिटोबिटो—वि० [देश०] दे० 'टिटोबिटो' ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

टिटु—संज्ञा पुं० [सं० टिटिभ] एक प्रकार का परदार कीड़ा जो खेतों
में तथा छोटे पेड़ों या पौधों पर बिछाई पड़ता है ।

विशेष—यह चार पाँच अंगुल संबा और कई तरह का होता है,
जैसे,—हरा, भूरा, चित्तीदार । यह नरम पत्ते खाकर रहता
है । गुबरेले, तितली, रेशम के कीड़े आदि की तरह इसके
जीवन में आकृतिपरिवर्तन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ मढ़ी
होती । मच्छियों की तरह इसके मुँह में भी चबाने के लिये
दोड़ होते हैं ।

टिटु—संज्ञा पुं० [सं० टिटिभ या सं० तत्+डीन (= उड़ना)] एक जाति
का टिटु या उड़नेवाला कीड़ा जो भारी दल या समूह बाँधकर
चलता है और मार्ग के पेड़ पौधे और फसल को बड़ी हानि
पहुँचाता है । इसका आकार साधारण टिटु के ही समान,
पैर और पेट का रंग लाल या नारंगी तथा शरीर भूरापन लिए
और चित्तीदार होता है । जिस समय इसका दल बादल की

घटा के समान उमड़कर चलता है, उस समय आकाश में
अंधकार सा हो जाता है और मार्ग के पेड़ पौधों और खेतों में
पत्तियाँ नहीं रह जाती । टिटुयाँ हजारों तो हजारों कोस तक
की संबो यात्रा करती हैं और जिन जिन प्रदेशों में होकर
जाती हैं, उनकी फसल को नष्ट करती जाती हैं । ये पर्वत की
कंवराभो और रेगिस्तानों में रहती हैं और बालू में अपने अंडे
देती हैं । अफ्रीका के उत्तरी तथा एशिया के दक्षिणी भागों
में इनका आक्रमण विशेष होता है ।

मुहा०—टिटु दल = बहुत बड़ा झुंड । बहुत बड़ा समूह । बड़ी
भारी भीड़ या सेना ।

टिटुबिगा—वि० [हि० टेड़ा + बंक] जो सीधा और सुटोल न हो ।
टेढ़ामेढ़ा ।

टिटुबिङगा—वि० [हि० टेड़ा + बेङगा] टेढ़ामेढ़ा । बेङगा ।

टिप्पाना—क्रि० प्र० [हि०] १. क्रुद्ध होना । छट्ट होना । २. (शिरन
का) उत्तेजित होना ।

टिप्पानाफिस्स—संज्ञा पुं० [हि० टिप्पाना + फिस्स] घालोचना । निष्ठा ।
कहासुनी । उ०—तिस पर भी आपने जो इतना टिप्पानाफिस्स
किया तो बड़ा परिश्रम पड़ा ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३ ।

टिप^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] साँप के काटने का एक प्रकार । साँप
का ऐसा दंश जिसमें दाँत चुभ गए हों और विष रक्त में मिल
गया हो ।

टिप^२—संज्ञा स्त्री० [अं०] पुरस्कार के रूप में अल्प मात्रा में दिया
जानेवाला द्रव्य । बख्शीश ।

विशेष—भोजनालय और होटलों आदि में बैरों तथा मोटर
ड्राइवरों को दिया जानेवाला पुरस्कार 'टिप' कहा जाता है ।

टिपकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टपकना' ।

टिपका(पु)—संज्ञा पुं० [हि० टिपकना] बूँद । कतरा । बिंदु । उ०—
नव मन दूध बटोरिया टिपका किया बिनास । दूध फाटि काँजी
भया भया घोव का नास ।—कबीर (शब्द०) ।

टिपकारी—संज्ञा पुं० [हि० टिप] दीवारों पर ईंटों की बीच की
जोड़ाई पर सीमेंट मलवा भूने की लकीर ।

टिपटाय—वि० [प्र० टिप + टोप] १. चुस्त । २. साफ सुथरी सुंदर
वस्त्रभूषण पहने हुए ।

टिपटिप—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बूँद बूँद गिरने का शब्द । टपकने
का शब्द । वह शब्द जो किसी वस्तु पर बूँद के गिरने से
होता है । २. बूँद बूँद के रूप में होनेवाली वर्षा । हलकी
बूँदाबाँदी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—टिप टिप करना = बूँद बूँद गिरना या बरसना ।

टिपटिपाना—क्रि० प्र० [हि० टिपटिप से नामिक घातु] हलकी
वर्षा होना ।

टिपरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० टोपना] बाँस, बेंत या मूँज के छिलके
से बना हुआ ढक्कनदार छोटा पिटारा । पिटारी ।

टिपवाना—क्रि० प्र० [हि० टोपना] १. ढक्कना । ढँपवाना ।

मिसवाना । जैसे, पैर टिपवाना । २. पिटवाना । धीरे धीरे प्रहार करना । ३. लिखवाना । टंकवाना ।

टिपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] टीपने की क्रिया । लेखन । अंकन । उ०—इतिहास में भूतकाल की घटनाओं का उल्लेख और अनुस्मरण रहता है । उसकी टिपाई सच्ची होनी चाहिए । —हिंदु० सभ्यता, पृ० १ ।

टिपारा—संज्ञा पुं० [हि० तीन + फा० पारह (= टुकड़ा)] मुकुट के याकार की एक टोपी जिसमें कौलगी की तरह तीन शाखाएँ निकली होती हैं, एक सिरे पर, दो बगल में । उ०—भोर फूल बीनिये को गए फुलवाई हैं । सीसनि टिपारो, उपवीत पीन पट कटि, दोना बाम करनि सलोने भंसवाई हैं । —तुलसी (शब्द०) ।

टिपिर टिपिर—क्रि० वि० [अनु०] टिपटिप की ध्वनि । हवा के साथ पानी की बूँदों के गिरने की ध्वनि । उ०—बूँदें टिपिर टिपिर टपती दल बादल से । —क्यासि, पृ० ४५ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

टिपुर—संज्ञा पुं० [देश०] १. गुमान । अभिमान । गुरुर । २. बहुत अधिक आचार विचार । पालंड । घाउंवर ।

टिप्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण । टीका । व्याख्या । २. किसी घटना के संबंध में समाचारपत्रों में संपादक की ओर से लिखा जानेवाला छोटा लेख ।

टिप्पन—संज्ञा पुं० [सं०] १. टीका । व्याख्या । २. जन्मकुंडली । जन्मपत्री ।

मुहा०—टिप्पन का मिलान = दिवाहसंबंध स्थिर करने के लिये वर कन्या की जन्मपत्रियों का मिलान ।

टिप्पनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण । टीका । व्याख्या । उ०—संपादक लोग अपनी अपनी टिप्पणियों में इसपर शोक सूचित करते..... । —प्रेमचन०, भा० २, पृ० २६६ ।

टिप्पसा—संज्ञा स्त्री० [देश०] अभिप्रायसाधन का ढंग । युक्ति ।

क्रि० प्र०—जमना ।—जमाना ।—बैठना ।—भिड़ना ।—लगना । विशेष—दे० 'टिक्की' ।

टिप्पा(यु)¹—संज्ञा पुं० [?] १. धावा । उ०—छुटे सब मिये करे दिग्ध टिप्पे, सबे सत्रु छिपे कहूँ हैं न दिप्पे । —पद्माकर प्र०, पृ० ११ । २. टिप्पस । युक्ति ।

टिप्पा²—संज्ञा पुं० [देश०] पुरुषेन्द्रिय । निग । —(अशिष्ट) ।

टिप्पी—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] १. उंगली में रंग आदि लगाकर बनाया हुआ चिह्न । २. ठाण की बुटी ।

विशेष—दे० 'टिक्की' ।

टिफिन—संज्ञा स्त्री० [सं० टिफिन] अंगरेजों का दोपहर के बाद का जलपान ।

टिबरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहाड़ों की छोटी चोटी ।

टिबिल—संज्ञा पुं० [सं० टेबुल] मेज । उ०—नाक पर चश्मा देगे,

काटा और चिमटे से टिबिल पर लाएंगे । —भारतेंदु प्र०, भा० ३, पृ० ८५६ ।

टिब्बा—संज्ञा पुं० [हि० टीला] दे० 'टीबा' । उ०—जीनसार और गढ़वाल की नाग टिब्बा श्रृंखला..... सब भीतरी श्रृंखला के पहाड़ों के नमूने हैं । —भा० भू०, पृ० १११ ।

टिमकना¹—क्रि० प्र० [देश०] १. सकना । ठहरना । २. चमकना । प्रकाशयुक्त होना ।

टिमकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. छोटा मोटा बरतन । २. बच्चों का पेट ।

टिमटिमा¹—वि० [हि० टिमटिमाना] मद्धिम या मंद (प्रकाश) । उ०—टिमटिम दीपक के प्रकाश में पड़ते निज पोथी शिशुगण । —रेणुका, पृ० १० ।

टिमटिमाना—क्रि० प्र० [सं० तिम (= ठंडा होना)] १. (दीपक का) मंद मंद जलना । क्षीण प्रकाश देना । जैसे,—कोठरी में एक दीया टिमटिमा रहा था । २. समान बंधी हुई चीजों के साथ न जलना । बुझने पर ही होकर जलना । क्लिप्तिलाना । जैसे,—दीपक टिमटिमा रहा है, बुझा चाहता है ।

मुहा०—घ्रात टिमटिमाना = घ्रात को थोड़ा थोड़ा लोलकर फिर बंद कर लेना ।

२. मरने के निकट होना । कुछ ही घड़ी के लिये और जीना ।

टिमटिम्यो¹—संज्ञा पुं० [देश०] डोल की तरह का एक बाजा । उ०—शहा के मंदिर टिमटिम्यो बाजाया । —दक्खिनी०, पृ० ७३ ।

टिमाक—संज्ञा स्त्री० [देश०] बनाव । सिंगार । ठसक । (स्त्रि०) ।

टिमिला¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] [स्त्री० टिमिली] लड़का । छोकरा ।

टिमिली¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] लड़की । छोकरा ।

टिम्मा¹—वि० [देश०] छोटे डोल डोल का । नाटा । ठगना । बोना ।

टिर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टर' ।

टिरफिस—संज्ञा स्त्री० [हि० टिर + फिस] चीचपड़ । प्रतिवाद । विरोध । बात न मानने की डिग्री । जैसे,—सीधे से जो कहते हैं वह करो, जरा भी टिरफिस करो तो मार बैठेगे ।

क्रि० प्र०—करना ।

टिरिकबाजी—संज्ञा स्त्री० [सं० ट्रिक + फा० बाजी] चालाकी । फरेब । उ०—तुम हमको टिरिकबाजी दिखाती हो । —मेला०, पृ० ३५६ ।

टिरी¹—वि० [हि० टरी] दे० 'टरी' ।

टिरीना¹—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'टरीना' । उ०—माया को कस के एक बप्पड़ लगाया तो वह टिरीने लगी । —सं० कु०, भा० १, पृ० १४ ।

टिलटिलाना¹—क्रि० प्र० [अनु०] पतला दस्त फिरना । दस्त घाना ।

टिलटिलो¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पतला दस्त फिरने की क्रिया या भाव ।

क्रि० प्र०—माना ।—घुटना ।

टिक्का—संज्ञा पु० [देश०] १. लकड़ी का वह टुकड़ा जो छोटा, मंठीला और टेढ़ा हो । गठीला और टेढ़ा मेढ़ा कुंदा । २. नाटा या ठिगना आदमी । ३. चापलूस आदमी ।

टिलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. छोटी मुर्गी । २. मुर्गी का बच्चा ।

टिलोलिली—संज्ञा स्त्री० [घनु०] बीच की उंगली हिला हिलाकर चढ़ाने का शब्द ।—(लटके) ।

विशेष—जब एक लकड़ा कोई वस्तु नहीं पाता या किसी बात में प्रकृतकाय होता है, तब दूसरे लकड़े उसके सामने हथेली सोपी करके और बीच की उंगली हिलाकर 'टिलोलिली' कहकर चढ़ाते हैं ।

टिलेहू—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का नेवला जिसके शरीर से दुर्गन्ध निकलती है ।

विशेष—इसका सिर मूँदर के ऐसा और दुम बहुत छोटी होती है । यह तलवों के बन चलता है और अपने धूपन से जमीन की मिट्टी खोदता है । सुमाना, जावा आदि टापुओं में यह पाया जाता है ।

टिलोरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] मुर्गी का बच्चा ।

टिल्ला—संज्ञा पु० [हि० ठेलना] धक्का । धक्का । धोत ।—(बाजार) । यौ०—टिल्लेनबीसी ।

टिल्लेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० टिल्ली + फा० नबीसी] १. निष्कृत सेवा । नीच सेवा । २. व्यर्थ का काम । ऐसा काम जिससे कोई लाभ न हो । निष्ठलापन । ३. हीलाहवाली । टाल-मटल । बहाना ।

क्रि० प्र०—करना ।

टिसुआ—संज्ञा पु० [सं० प्रभु] प्रभू ।—(पंजाबी) ।

टिहुका—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठठका । रुकाव । २. चौकना । ३. चमक । ४. रुटना । ५. रोना । रुदन । ६. कोयल की कूक ।

टिहुकना—क्रि० प्र० [देश०] १. ठठकना । २. चौकना । ३. रुटना । ४. चमकना । ५. रोना । ५. कोयल का कूकना ।

टिहुकारा—संज्ञा स्त्री० [देश०] कोयल की कूक ।

टिहुकारना(०)†—क्रि० प्र० [हि० टिहुका से नामिक धातु] कोयल का कूकना ।

टिहुनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० घुण्ट, हि० घुटना] घुटना । २. कोहनी ।

टिहुका—संज्ञा स्त्री० [देश०] चौकन की क्रिया या भाव । चौक । भ्रमक । उ०—एक ताग बनवल, दूसर गैन टूटी । बिसरे काटल, उठलि टिहुकी ।—कबीर (शब्द०) ।

टिहुकना†—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टिहुकना' ।

टीगा†—संज्ञा पु० [देश०] भग । योनि ।

टीटी†—संज्ञा स्त्री० [घनु०] एक विशेष प्रकार की ध्वनि । टीं टीं की ध्वनि । उ०—तब एकाकी लग कोई तिनकों के बंदीघर में । कर टीटीं चुप हो बैठा अपने मूने पिजर में ।—दीप०, पृ० ६५ ।

टींही—संज्ञा पु० [सं० टिण्डिष (= डेंडसी)] रहट में बाँधने की हुईया ।

टींहीसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिष] ककड़ी की बात की एक बेल जिसमें थोल गोल फल लगते हैं । इन फलों की तरकारी होती है ।

टींड़ा—संज्ञा पु० [देश०] १. जाँता घुमाने का खूँटा । २. दे० 'टिड़ा' ।

टींड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिड़ी' । उ०—जिमि टींड़ी बल गुहा समार्ई ।—सुलसी (शब्द०) ।

टी†—संज्ञा स्त्री० [घं०] चाय ।

टीक—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलक] १. गले में पहनने का सोने का एक गहना जो ठप्पेदार या जड़ाऊ बनता है । २. माथे में पहनने का सोने का एक गहना ।

टी गार्डेन—[घं० टी (= चाय); + गार्डेन (= बाग)] वह जमीन जहाँ चाय होती है । चाय बगीचा । जैसे,—घासाम के टी गार्डनों के कुलियों की दशा शोचनीय और कष्टाजनक है ।

टीकठा†—संज्ञा पु० [हि० टिकना] रीढ़ की हड्डी ।

टीकन—संज्ञा पु० [हि० टेकना] धूनी । चाड़ । वह खंभा या लकड़ी लकड़ी जो किसी भार को संभाले रहने या किसी वस्तु को एक स्थिति में रखने के लिये लगाई जाती है ।

मुहा०—टीकन देना = बढ़ते पोथों को सीधा और सुझोल रखने के लिये धूनी लगाना ।

टीकना—क्रि० प्र० [हि० टीका] १. टीका लगाना । तिलक देना । २. ऊँगली में रंग आदि पोतकर बिज्जु या रेखा बनाना ।

टीका†—संज्ञा पु० [सं० तिलक] १. वह बिज्जु जो उँगली में गीला चंदन, रोली, केसर, मिट्टी आदि पोतकर मस्तक, बाहु आदि अंगों पर शृंगार आदि या सांप्रदायिक संकेत के लिये लगाया जाता है । तिलक ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टीका टाकना = बकरे को बलिदान करने के पहले टीका लगाना । उ०—छेरी खाए मेढ़ी खाए बकरी टीका टाके ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ५२ । टीका देना = टीका लगाना । माथे पर बिसे हुए चंदन आदि से बिज्जु बनाना ।

विशेष—टीका पूजन के समय तथा अनेक शुभ अवसरों पर लगाया जाता है । यात्रा के समय भी जानेवाले के शुभ के लिये उसके माथे पर टीका लगाते हैं ।

२. विवाह स्थिर होने की रीति जिसमें कन्यापक्ष के लोच बर के माथे में तिलक लगाते हैं और कुछ द्रव्य वरपक्ष के लोगों को देते हैं । इस रीति के हो चुकने पर विवाह का होना निश्चित समय माना जाता है । तिलक ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।—भेजना ।

३. दोनों भों के बीच माथे का मध्य भाग (जहाँ टीका लगाते हैं) । ४. किसी समुदाय का शिरोमणि । (किसी कुल, मंडली या जनसमूह में) भेष्ट पुरुष । उ०—समाभाव करि सो सबही का । गयउ जहाँ बिनकर कुल टीका ।—सुलसी (शब्द०) । ५. राजतिलक । राजसिंहासन या गद्दी पर बैठने का कृत्य ।

कि० प्र०—देना ।—होना ।

१. वह राजकुमार जो राजा के पीछे राज्य का उत्तराधिकारी होनेवाला हो । युवराज । जैसे, टीका साहब । ७. बाधित्य का चिह्न । प्रधानता की छाप । जैसे,—क्या तुम्हारे ही माथे पर टीका है और किसी को इसका अधिकार नहीं है ?

मुहा०—टीके का = विशेषता रखनेवाला । अनोखा । जैसे,—क्या वही एक टीके का है जो सब कुछ रख लेगा ? —(स्त्रि०) ।

८. वह भेंट जो राजा या जमींदार को रीयत या भसामी देते हैं । ९. सोने का एक गहना जिसे स्त्रियाँ माथे पर पहनती हैं । १०. छोटे की दोनों आँखों के बीच माथे का मध्य भाग जहाँ भँवरी होती है । ११. चन्दा । दाग । चिह्न । १२. किसी रोग से बचाने के लिये उस रोग के चप या रस से बनी घोषवि को लेकर किसी के शरीर में सुइयों से चुभाकर प्रविष्ट करने की क्रिया । जैसे, शीतला का टीका, प्लेग का टीका ।

विशेष—टीके का व्यवहार विशेषतः शीतला रोग से बचाने के लिये ही इस देश में होता है । पहले इस देश में माली लोग किसी रोगी की शीतला का नीर लेकर रखते थे और स्वस्थ मनुष्यों के शरीर में सुई से गोदकर उमका संचार करते थे । संथाल लोग प्रायः शरीर में फफोले डालकर उनके फूटने पर शीतला का नीर प्रविष्ट करते हैं । इस प्रकार मनुष्य को शीतला के नीर द्वारा जो टीका लगाया जाता है, उसमें ज्वर रोग से आता है, कभी कभी सारे शरीर में शीतला भी आती है और डर भी रहता है । सन् १७६८ में डा० जेनर नामक एक अंगरेज ने गोधन में उत्पन्न शीतला के दानों के नीर से टीका लगाने की युक्ति निकाली जिसमें ज्वर आदि का उतना प्रकोप नहीं होता और न किसी प्रकार का भय रहता है । इंग्लैंड में इस प्रकार के टीके से बड़ी सफलता हुई और धीरे धीरे इस टीके का व्यवहार सब देशों में फैल गया । भारतवर्ष में इस टीके का प्रचार अंग्रेजी शासनकाल में हुआ है । कुछ लोगों का मत है कि गोधन शीतला के द्वारा टीका लगाने की युक्ति प्राचीन भारतवासियों को ज्ञात थी । इस बात के प्रमाण में भ्रमन्तरि के नाम से प्रसिद्ध एक शाक्त ग्रंथ का एक श्लोक देते हैं—

धनुस्तन्यमसूरिका मराणां च ममुरिका ।
तज्जसं बाहुमुलाच्च शस्त्रतेन गृहीतवान् ॥
बाहुमूले च शस्त्राणि रक्तोत्पत्तिकराणि च ।
तज्जसं रक्तमिलितं रफोटकज्वर संभवम् ॥

टीका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य, पद या ग्रंथ का अर्थ स्पष्ट करनेवाला वाक्य या ग्रंथ । व्याख्या । अर्थ का विवरण । विवृति । जैसे, रामायण की टीका, सतसई की टीका ।

टीकाई—वि० [हि० टीका] टीका लेनेवाला । टीका किया हुआ । उ०—लालबास जी के बालकृष्ण जी टीकाई चेले गद्दी बैठे ।
—सुंदर ग्रं०, भा० १, (जी०), पृ० १४० ।

टीकाकार—संज्ञा पुं० [सं०] व्याख्याकार । किसी ग्रंथ का अर्थ लिखनेवाला । वृत्तिकार ।

टीका टिप्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं० टीका + टिप्पणी] १. मालोचना । तर्क वितर्क । २. प्रशंसा । निंदा ।

टीकारो(पु)—वि० [हि० टीका] टीकाई । प्रधान । सर्वोच्च । उ०—टीकारो मालक तिको श्रीकारो मुख पास ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७७ ।

टीकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] १. टिकुली । २. टिकिया । टिकी । ३. टीका । उ०—ब्रजभाषा से बीच लगावत पिय के टीकी ।
—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६ ।

टीकुरा—संज्ञा पुं० [देश०] १. ऊँची पृथ्वी । नदी के बाहर की ऊँची और रेतीली भूमि । २. जंगल । वन ।

टीटा—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों की योनि में वह मांस जो कुछ बाहर निकला रहता है । टना ।

टीडरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टीड' । उ०—बाँधे ज्यूँ भरहर की टीडरि, आवत जात बिगूते ।—कबीर ग्रं०, पृ० १५५ ।

टीड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिड़ी' । उ०—(क) कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई । जनु टीड़ी गिरि गुहा समाई ।—मानस, ६।६६ । (ख) मानो टीड़ी दल गिरत सभ्र धरुण की बार ।
—शकुंतला, पृ० २५ ।

टीन—संज्ञा पुं० [सं० टिन] १. राँगा । २. राँगे की कलाई की हुई लोहे की पतली चद्दर । ३. इस प्रकार की चद्दर का बना बरतन या डिब्बा ।

टीप^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] १. हाथ से दबाने की क्रिया या भाव । दबाव । दाब । २. हलका प्रहार । धीरे धीरे ठोकने की क्रिया या भाव । ३. गव कूटने का काम । गव की पिटाई । ४. बिना पलस्तर की दीवार में ईंटों के जोड़ों में मसाला देकर नहले से बनाई हुई लकीर । ५. टंकार । ध्वनि । घोर शब्द । ६. गाने में ऊँचा स्वर । जोर की तान ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

७. हाथी के शरीर पर लेप करने की घोषवि । ८. दूध और पानी का शीरा जिससे चीनी का मेल छूटता है । ९. स्मरण के लिये किसी बात को भटपट लिख लेने की क्रिया । टाँक सेने का काम । नोट । १०. वह कागज जिसपर महाजन की मूल और व्याज के बदले में फसल के समय धनाज आदि देने का इस्तेमाल लिखा रहता है । ११. दस्तावेज । १२. हुडी । चेक । १३. सेना का एक भाग । कंपनी । १४. गंजीफे के खेल में विपक्षी के एक पत्ते को दो पत्तों से मारने की क्रिया । १५. लड़की या लड़के की जन्मपत्री । कुंडली । टिप्पन ।

टीप^२—वि० चोटी का । सबसे अच्छा । चुनिंदा । बढ़िया । —(स्त्रि०) ।

टीपटाप—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठाटबाट । सजावट । तड़क मड़क । दिखावट । २. दरारों या संघियों में मसाला भरना ।

टीपणा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पणी] दे० 'टीपना' । उ०—पोथी पुस्तक टीपणो जय पंडित को काम ।—राम० घर्म०, पृ० ५७ ।

टीपदार—वि० [हि० टीप + दार (प्रत्य०)] सुरीला । मधुर । उ०—बल्लाह क्या टीपदार थाबाज है, बस यह मालूम पड़ता है कि कोई बीन बजा रहा है ।—फिसाना०, भा० १, पृ० २ ।

टीपन^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] शरीर में वह स्थान जहाँ कीटा या कंकड़ चुभने से मांस ऊँचा होकर बड़ा हो जाता है। गाँठ। टाँका। घट्टा।

टीपन^१—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पणी] जन्मपत्री। टीपना।

टीपना^१—क्रि० सं० [टीपन (= फेंकना)] १. हाथ या उँगली से दबाना। चापना। मसलना। जैसे, पैर टीपना। २. धीरे धीरे ठोकना। हलका प्रहार करना। ३. ऊँचे स्वर में गाना। ४. गजों के खेल में दो पक्षों से एक पक्षा जीतना। ५. बीवाल या फरश की दरारों को ममाते से भरना।

टीपना^१—क्रि० सं० [सं० टिप्पनी] लिख लेना। टाँक लेना। प्रकित कर लेना। दर्ज कर लेना।

टीपना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टिप्पणी] जन्मपत्री। उ०—श्रीमन् गंगाधर राव की जन्मपत्री मिलाकर देखूँ नागव टक्कर खा जाय। टीपना प्राप्त हो गई। मिल गई।—भासी०, पृ० ४२।

टीला—संज्ञा पुं० [हि० टीला] टीला। दूह। भीटा।

टीम—संज्ञा स्त्री० [प्रं०] खेलनेवालों का दल। जैसे, क्रिकेट की टीम।

टीमटाम—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बनाव सिंगार। मजावट। २. ठाठबाट। तड़क भड़क। उ०—टीमटाम बाहर बहुतेरे दिल दासी से बंधा।—बकीर श०, भा० ४, पृ० २५।

टीला—संज्ञा पुं० [सं० उठ्ठीला (= भार)] १. पृष्ठों का वह उमरा हुआ भाग जो घासपास के तल से ऊँचा हो। दूह। भीटा। २. मिट्टी या बाँस का ऊँचा ढेर। धुग। ३. छोटी पहाड़ी। ४. साधुओं का मठ।

टीशन—संज्ञा स्त्री० [प्रं० स्टेशन] रेलगाड़ी के ठहरने का स्थान। स्टेशन। उ०—पुरेनिया टीशन पर गाड़ी पहुँची भी नहीं थी।—मैला०, पृ० ७।

टीस^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] चुभती हुई पीड़ा। रह रहकर उठनेवाला दर्द। कसक। चसक। हून।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—टीस उठना=दर्द शुरू होना। रह रहकर पीड़ा होना। (घाव घाँव का) टीस मारना=रह रहकर दर्द करना।

टीस^२—संज्ञा स्त्री० [प्रं० स्टिच] किताब की सिलाई। जुबबदा।

टीसना—क्रि० प्रं० [हि० टीस] १. चुभती पीड़ा होना। रह रहकर दर्द उठना। कसक होना। घाव फोड़े आदि का दर्द करना।

टुंगा^१—संज्ञा पुं० [सं० उत्तङ्ग] पहाड़ की चोटी।

टुंच—वि० [सं० तुच्छ] धुँध। तुच्छ। टुंचा।

मुहा०—टुंच भिड़ाना—थोड़ी पूँजी से काम करना। टुंच लड़ाना—(१) थोड़ी पूँजी से काम प्रारम्भ करना। (२) थोड़ी पूँजी से जुझा खेलना। धीरे धीरे जीतना।

टुंटा—वि० [सं० टुण्ड या हि० टूटा] १. जिसका हाथ कटा हो। बिना हाथ का। लूला। २. टूँटा।

टुंठुक^१—संज्ञा पुं० [सं० टुण्डुक] १. खोनाक। सोना पाठा। बालू। टेट्ट। २. काला लैर।

टुंठुक^१—वि० १. छोटा। २. क्रूर। दुष्ट। ३. कठोर [की०]।

टुंठुका—संज्ञा स्त्री० [सं० टुण्डुका] पाठा।

टुंठ—संज्ञा पुं० [सं० टुण्ड (= बिना सिर का बड़), या स्थागु (= क्षिप्त वृक्ष)] १. वह पेड़ जिसकी डाल टहनी घाँव कट गई हो। क्षिप्त वृक्ष। टूँठ। २. वह पेड़ जिसमें पत्तियाँ न हों। ३. कटा हुआ हाथ। ४. एक प्रकार का प्रेत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह घोड़े पर सवार होकर घोर घपना कटा सिर भागे रखकर रात को निकलता है। ५. खंड। टुकड़ा। उ०—बहु सुंठन टुंठन टुंठ कियं। निरखै नभ नाइक अच्यरिय।—रसर०, पृ० २२७।

टुंठा^१—वि० [हि० टुंठ] [स्त्री० प्रल्पा० टुंठी] १. जिसकी डाल टहनी घाँव कट गई हो। टूँठा। २. जिसका हाथ कट गया हो। बिना हाथ का। लूला। लुंजा। ३. (बैल) जिसका सींग टूटा हो। एक सींग का बैल। टूँठा।

टुंठा^१—संज्ञा पुं० १. हाथ कटा आदमी। लूला मनुष्य। २. एक सींग का बैल।

टुंठी †—संज्ञा स्त्री० [सं० तुग्गिड] नाभि। ढोड़ी।

टुंठी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड] बाहुवड। भुजा। मुश्क।

मुहा०—टुंठिया बाँधना या कसना = मुश्कें बाँधना। टुंठियाँ लिखना = मुश्कें बाँधना। हथकड़ी पहनना।

टुंठी^१—वि० स्त्री० [सं० स्थागु, हि० टुंठ, टुड, टुडा, टुटी] जिसे हाथ न हो। कटे हाथ की। लूली।

टुंड़ा—संज्ञा पुं० [प्रं०] साइबेरिया के उत्तर में स्थित एक हिमप्रदेश।

टुंगना—क्रि० सं० [हि० टुनगा] १. (चीपायों का) टहनी के सिरे की पतियों को दाँत से काटना। कुतरना। २. कुतर कर चबाना। थोड़ा सा काटकर खाना।

मंयो० क्रि०—जाना।—लेना।

टुइयाँ^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी जाति का सुप्रा या तोता। सुग्गी।

विशेष—इसकी चोच पीली और गरदन बैंगनी रंग की होती है।

टुइयाँ^२—वि० डेगना। नाटा। बोना।

टुइल—संज्ञा स्त्री० [प्रं० टिल] एक प्रकार का मोटा मुलायम सूती कपड़ा।

टुक^१—वि० [सं० स्तोक (= थोड़ा)] थोड़ा। जरा। किंचित्। तनिक।

मुहा०—टुक सा = जरा सा। थोड़ा सा।

टुक^१—क्रि० वि० थोड़ा। जरा। तनिक। जैसे,—टुक इधर देखो।

उ०—मात०, कातर न हो, यहो, टुक धीरज धारो।—साकेत, पृ० ४०४।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग क्रि० वि० वत् ही अधिक होता है। कभी कभी यह यों ही बेपरवाई करने के लिये किसी क्रिया के साथ बोला जाता है। जैसे,—टुक जाकर देखो तो।

टुक टुक^१—क्रि० वि० [प्रनु०] दे० 'टुकुर टुकुर'।

टुक टुक^१—क्रि० वि० [हि० टुकड़ा] टुक टुक। टुकड़े टुकड़े।

उ०—वरजी ने टुक टुक कीन्ह दरद नहि जाना हो।—धरनी०, पृ० ३६।

क्रि० प्र०—करना।

टुकड़गदा^१—संज्ञा पुं० [हि० टुकड़ा + फा० गदा] वह भिलमंगा जो घर घर रोटी का टुकड़ा माँगकर खाता हो । भिलारी । मँगता ।

टुकड़गदा^२—वि० १. तुच्छ । २. अत्यंत निर्धन । बरिद्ध । कंगाल ।

टुकड़गदाई^१—संज्ञा पुं० [हि० टुकड़ा + फा० गदा + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'टुकड़गदा' ।

टुकड़गदाई^२—संज्ञा स्त्री० टुकड़ा माँगने का काम ।

टुकड़तोड़—संज्ञा पुं० [हि० टुकड़ा + तोड़ना] दूसरे का दिया हुआ टुकड़ा खाकर रहनेवाला आदमी । हमरे का आश्रित मनुष्य ।

टुकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक (= थोड़ा), हि० टुक, टुक + डा (प्रत्य०)] [स्त्री० प्रत्य० टुकड़ी] १. किसी वस्तु का वह भाग जो उससे टूट फूट या कट छँटकर अलग हो गया हो । खंड । छिन्न भंग । रेखा । जैसे, रोटी का टुकड़ा, कागज या कपड़े का टुकड़ा, परावर या ईंट का टुकड़ा ।

मुहा०—टुकड़े उड़ाना = काटकर कई भाग करना । टुकड़े करना = काटकर या तोड़कर कई भाग करना । खंड करना । टुकड़े टुकड़े उड़ाना = काटकर खंड खंड करना । (किसी वस्तु को) टुकड़े टुकड़े करना = इस प्रकार तोड़ना कि कई खंड हो जायें । चूर चूर करना । खंडित करना ।

२. विह्वल भादि के द्वारा विभक्त भंग । भाग । जैसे, खेत का टुकड़ा । ३. रोटी का टुकड़ा । रोटी का तोड़ा हुआ भंग । घास । कीर ।

मुहा०—(दूसरे का) टुकड़ा तोड़ना = दूसरे की शी हुई रोटी खाना । दूसरे के लिए हुए भोजन पर निर्वाह करना । जैसे,—वह ससुराल का टुकड़ा तोड़ता है । टुकड़ा तोड़कर जवाब देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना' । टुकड़ा देना = भिलमंगे को रोटी या खाना देना । (हमरे के) टुकड़ों पर पड़ना = हमरे की शी हुई खाकर रहना । दूसरे के यहाँ के भोजन पर निर्वाह करना । पराई कमाई पर गुजर करना । जैसे,—वह ससुराल के टुकड़े पर पड़ा है । टुकड़ा माँगना = भोज माँगना । टुकड़ा सा जवाब देना = भट और स्पष्ट शब्दों में आम्दीकार करना । संकोच नहीं करना । साफ इनकार करना । लगी लिपटो न रखना । कोरा जवाब देना । टुकड़ा सा तोड़कर हाथ में देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना' । टुकड़े टुकड़े की मुहताज होना = अत्यंत दरिद्रावस्था को पहुँच जाना । उ०—भगर जूए की लत थी सब बीलत दाँव पर रख दी तो टुकड़े टुकड़े की मुहताज । करें तो क्या करें ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६२ ।

टुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० टुकड़ा] १. छोटा टुकड़ा । खंड । जैसे, एक टुकड़ी नमक, बाँस की टुकड़ी । २. घान । कपड़े का टुकड़ा । ३. समुदाय । मंडली । दल । जैसे, यारों की टुकड़ी । ४. पशु पक्षियों का दल । कुंड । मोल । जत्था । जैसे, कबूतरों की टुकड़ी । ५. सेना का एक भंग । हिस्सा । कंपनी । ६. स्त्रियों का लहंगा । ७. कातिक के स्नान का मेला ।

टुकना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोकनी' ।

टुकना^२—संज्ञा पुं० [हि० टुकाना (प्रत्य०)] टुकड़ा । टुका ।

टुकनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोकनी' ।

टुकनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टुक + नी (प्रत्य०)] छोटा टुकड़ा ।

टुकरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टुकड़ा] छोटा टुकड़ा । टुकड़ी । खंड । टुक । उ०—दरजी और जू नाहि, यहै बाँस की टुकरिया ।—ब्रज० प्र०, पृ० ५१ ।

टुकरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] सल्लम की तरह का एक टुकड़ा ।

टुकरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टुकड़ी' ।

टुकुर टुकुर—क्रि० वि० [अनु०] निनिमेष । बिना पलक गिराए हुए । उ०—उहुगण अपना रूप देखते टुकुर टुकुर ये ।—साकेत, पृ० ४०६ ।

मुहा०—टुकुर टुकुर ताकना = दे० 'टुकुर टुकुर देखना' । उ०—चिड़ियाएँ सुख से घोंसलों में बैठी टुकुर टुकुर ताकतीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६ । टुकुर टुकुर देखना = ललचाई हुई दृष्टि से या विवशता के साथ किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर देखना ।

टुकड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० टुकड़ा] १. टुकड़ा । २. चौपाई भाग । उ०—दुई टुक होइ भुमि अद्व काय ।—ह० रासो, पृ० ८२ ।

टुकड़ा^२—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] 'टुकड़ा' ।

टुककर^१—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] दे० 'टुकड़ा' ।

टुका—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'टुकड़ा' ।

मुहा०—टुका सा जवाब देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना' ।

२. चौपाई भाग या भंग ।

टुकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. छोटा टुकड़ा । २. चौपाई भंग ।

टुगर टुगर^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'टुकुर टुकुर' । उ०—टुगर टुगर बेव्या करे सुंदर बिरहा ऐन ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ६८३ ।

टुघलाना—क्रि० प्र० [देश०] १. चुभलाना । मुँह में रखकर घीरे घीरे कुँचना । २. जुगाली करना ।

टुचकाग—संज्ञा पुं० [हि० टुच्चा] निवा । टुच्ची बात । अपसव्य । उ०—तब अपने मुहसे मैं लोटती समय कई मसखरियाँ, बोलीठोली और टुचकारे उसे सुनने पड़ते ।—अभिषेता, पृ० १२७ ।

टुच्चा—वि० [सं० तुच्छ, या देश०] १. तुच्छ । ओछा । नीच । नीचाशय । छिछोरा । थुड़ प्रकृति का । कमीना । शोहदा । जैसे, टुच्चा आदमी । २. छोटा या बेनाप का (कपड़ा) ।

टुटका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटका' ।

टुटुटुटु—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों के बोलने की एक प्रकार की ध्वनि । उ०—हैं चहक रही चिड़ियाँ टी बी टी—टुटुटुटु । युगात, पृ० १६ ।

टुटना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टुटना' । उ०—फिर फिर चित्तु उन ही रहसु टुटी लाज की लाव । भंग भंग छवि और मैं भयी और की नाव ।—बिहारी र०, दो० १० ।

टुटना^२—वि० [हि०] [वि० स्त्री० टुदनी] टुटनेवाला ।

टुटनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टोंटी] झारी या गड़बड़े की पतली नली । छोटी टोंटी ।

टुटपूँजिया—वि० [हि० टूटी + पूँजी] थोड़ी पूँजी का । जिसके पास किसी काम में लगाने के लिये बहुत थोड़ा धन हो ।

टुटरूँ—संज्ञा पुं० [अनु०] छोटी पेंडुकी । छोटी फास्ता ।

मुहा०—टुटरूँ सा = प्रकेला । एकाकी ।

टुटरूँ टूँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पेंडुकी के बोलने का शब्द । पेंडुकी या फास्ता की बोली ।

टुटरूँ टूँ—वि० १. प्रकेला । एकाकी । जैसे,—सब लोग अपने अपने घर गए हैं, मैं ही टुटरूँ टूँ रह गया हूँ । २. हुबला पतला । कमजोर । जैसे,—बेचारे टुटरूँ टूँ धावभी कहाँ तक करें ।

टुटहाँ—वि० [हि० टूटना] [वि० स्त्री० टूटही] १. टूटा हुआ । २. टूटे (हाथ आदि) वाला । ३. जातिबहिष्कृत ।

टुटाना^१—क्रि० प्र० [हि० टूटना का प्रेरणा०] टूटने के लिये प्रेरित करना । टुटवा देना । उ० बरनै को बारण के पथ से, काजे तारे को टुटा दिया ।—प्रबन्ध, पृ० ३८ ।

टुटाना^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] बमड़ा मड़ा हुआ एक बाजा ।

टुटियल—वि० [हि० टूट + इयल (प्रत्य०)] १. टूटा फूटा हुआ या टूटने फूटनेवाला । जीर्णशीर्ण । २. कमजोर । निर्बल ।

टुटुहाँ—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम ।

टुटेल्लाँ—वि० [हि० टूट + एला (प्रत्य०)] टूटा हुआ ।—(लण०) ।

टुटना^३—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टूटना' । उ०—पाघो पहारे पृह्वि कप गिरि सेहर टुटइ ।—कीर्ति, पृ० १०२ ।

टुड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टुडि] १. नाभि । २. ठोड़ी ।

टुड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टुकड़ी] टुकड़ी । बली ।

टुनकी—संज्ञा पुं० [देश०] बार बार मूत्रलाव होने और उसके साथ धातु गिरने का रोग ।

टुनकाँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक परिवार कीड़ा जो घास को हानि पहुँचाता है ।

टुनगाँ—संज्ञा पुं० [सं० तनु (= पतला) + अग्र (= अग्रला) - तन्वग्र] [स्त्री० टुनगी] बाल का टहनी के सिरे का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं । टहनी का अग्रला भाग ।

टुनगी—संज्ञा स्त्री० [हि० टुनगा] बाध या टहनी के सिरे पर का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं । टहनी का अग्रला भाग ।

टुनटुनाँ—संज्ञा पुं० [देश०] मैदे का बना हुआ एक बमकीन पकवान जो मैदे की चिकनी लकी अत्तियों को घी में तलकर बनाया जाता है ।

टुनटुनाना—क्रि० प्र० [हि० टुनटुन] घंटियों के बजने की आवाज । टुनटुन की ध्वनि । उ०—और ध्वनि ? कितनी न जाने घंटियाँ, टुनटुनाती थीं, न जाने शंख किनने ।—हरी वास० पृ० २० ।

टुनहायाँ—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० टुनहाई] दे० 'टोनहाया' ।

टुनाका—संज्ञा स्त्री [सं०] तालमूली ।

टुनियाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० तुएड] मिट्टी का टोंटीदार बरतन ।

टुनिहाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोनहाई' । उ०—टुनिहाई सब टोल में रही छु सीति कहाय । सुती ऐँचि पिय आप स्त्री करी भरोखिल भाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

टुनिहायाँ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोनहाया' ।

टुन्ना—संज्ञा पुं० [सं० तुएड] वह नाल जिसमें फल लगते हैं और लटकते हैं । जैसे, कद्दु का टुन्ना ।

टुपकनाँ—क्रि० प्र० [अनु०] १. धीरे से काटना या डंक मारना । २. किसी के विरुद्ध धीरे से कुछ कह देना । चुगली खाना । अवांछित रूप से बीच में पड़ना ।

संयो० क्रि०—देना ।

टुबी—संज्ञा स्त्री० [हि० टूबना] गोता । डूबी । उ०—टुबी देख पाण में, बिठो हँकेई ।—बाबू०, पृ० ६७ ।

टुमकना—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'टपकना' ।

टुम्मा—संज्ञा पुं० [देश०] बपए पाने की एक गैरमामूली रसीद ।

टुरन^३—क्रि० प्र० [पं० टुर] चलना । उ०—शिव शांति सरोवरि संत समाने, फिरन टुरन के गवन मिटाने ।—प्राण०, पृ० ६५ ।

टुरा—संज्ञा पुं० [?] १. टुकड़ा । डली । दाना । रवा । कण । २. मोटे अनाज का दाना । ज्वार, बाजरे आदि का दाना ।

टुलकनाँ—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टुलकना' ।

टुलड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो पूरबी बंगाल और बासाम में होता है ।

टुसकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टसकना' ।

टूँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पादने का शब्द ।

टूँक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टूक' ।

टूँगना—क्रि० प्र० [हि० टूंगना] १. (चोपायों का) टहनी के सिरे की कोमल पत्तियों को दाँत से काटना । कुतरना । २. थोड़ा सा काटकर खाना । कुतरकर चबाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।

टूँगा^३—वि० [सं० तुङ्ग] ऊँचा ।

टूँटा^३—वि० [हि०] जिसके हाथ टूटे हुए या खराब हों । उ०—टूँटा पकरि उठावै पर्वत पंगुल करे नृत्य महलाव ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ५०८ ।

टूँड—संज्ञा पुं० [सं० तुएड] [स्त्री० अल्पा० टूँड़ी] १. पच्छड़, मच्छी, टिड्डे आदि कीड़ों के मुँह के आगे निकली हुई बाल की तरह की पतली नलियाँ जिन्हें खँसाकर वे रक्त आदि चूसते हैं । २. जो, गेहूँ आदि की बाल में बाने के कोश के सिरे पर निकला हुआ बाल की तरह का पतला नुकीला अवयव । सींग । सीपूर ।

टूँकी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुएड] १. जो, गेहूँ, घान आदि की बाल में दानों के खोलों के ऊपर निकली हुई बाल की तरह पतली मोक्ष । सीगा । २. बोंड़ी । नाभि । ३. गाजर, मूखी आदि की नोक । ४. किसी वस्तु की दूर तक निकली हुई नोक ।

दूधरां—वि० [देश०] बहु प्रसहाय बालक जिसकी माँ मर गई हो ।
दूका—संज्ञा पुं० [सं० स्तोत्र] दुकड़ा । खंड । उ०—तिहि मारि
करे तसकाल दूक ।—ह० रासो, पृ० ४८ ।

यौ०—दूक दूक । उ०—मन को मार्ले पटक के, दूक दूक होइ
जाय ।—कबीर सा०, पृ० ५५ ।

मुहा०—दो दूक करना = स्पष्ट करना । किसी प्रकार का भेद
न रहने देना । = दो दूक जवाब देना = स्पष्ट जवाब देना ।
साफ साफ नकार देना ।

दूकड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुकड़ा' । उ०—दूकड़ा दूकड़ा होई
जावे ।—कबीर० १०, पृ० २३ ।

दूकरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुकड़ा' ।

दूका—संज्ञा पुं० [हि० दूक] १. दुकड़ा । २. रोटो का दुकड़ा ।
उ०—केचित् घर घर माँगहि दूका । बासी कूसी कूला चुका ।
—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ११ । ३. रोटो का चौथाई
भाग । ४. भिक्षा । भोख । उ०—बहु तन राख जगाय चाह
भर, लाय घरन के दूका ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० १४ ।

क्रि० प्र०—माँगना ।

दूकी—संज्ञा स्त्री० [हि० दूक] १. दूक । खंड । दुकड़ा । २. अंगिया
के मुलकट के ऊपर की चकती ।

दूक्यो—संज्ञा पुं० [(हि०)] भालू ।

दूट—संज्ञा स्त्री० [सं० धुटि, हि० दूटना] १. वह अंश जो टूटकर
अलग हो गया हो । खंड । टूटन ।

संयो० क्रि०—जाना ।

यौ०—दूटपूड ।

२. टूटने का भाव । ३. लिखावट में वह भूल से छूटा हुआ शब्द
या वाक्य जो पीछे से किनारे पर लिख दिया जाता है ।
उ०—भी विनती पंडितन मन भजा । दूट संवारहु मेढबहु
सजा ।—जायसी (शब्द०) ।

दूट^१—संज्ञा पुं० टोटा । धाटा । कमी ।

मुहा०—दूट में पड़ना = चाटे में पड़ना । हाजि उठाना । कमी
होना । उ०—दूट में जाय पड़ नहीं कोई । दूटकर भी कमर
न दूट सके ।—चुमते०, पृ० ४७ ।

दूटदार—वि० [हि० दूटना] दूटनेवाला । जोड़ पर से छुलने बंद होने-
वाला (कुर्सी, टेबल आदि) ।

दूटना—क्रि० प्र० [सं० धुट] १. किसी वस्तु का भाषात, दबाव या
भटके के द्वारा दो या कई भागों में एकबारगी विभक्त
होना । टुकड़े टुकड़े होना । खंडित होना । अग्र होना । जैसे,—
खड़ी दूटना, रस्सी दूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

यौ०—दूटना फूटना ।

विशेष—'दूटना' और 'फूटना' क्रिया में यह अंतर है कि फूटना
खरी वस्तुओं के लिये बोला जाता है, विशेषतः ऐसी जिनके
भीतर प्रवकाश या खाली जगह रहती है । जैसे, बड़ा

४-१०

फूटना, बरतन फूटना, खपड़े फूटना, सिर फूटना । लकड़ी
आदि चोमड़ वस्तुओं के लिये 'फूटना' का प्रयोग नहीं होता ।
पर फूटना के स्थान पर परिचयी हिंदी में 'दूटना' का प्रयोग
होता है, जैसे, बड़ा दूटना ।

२. किसी अंग के जोड़ का उखड़ जाना । किसी अंग का चोट
खाकर ढीला और बेकाम हो जाना । जैसे,—हाथ दूटना,
पैर दूटना । ३. किसी लगातार चलनेवाली वस्तु का रुक
जाना । चलते हुए क्रम का अंग होना । मिनसिला बंद होना ।
जारी न रहना । जैसे,—पानी हग प्रकार गिराओ कि धार
न दूटे । ४. किसी ओर एकबारगी वेग से जाना । किसी वस्तु
पर भपटना । झुकना । जैसे, चील का मांस पर दूटना,
बच्चे का खिलौने पर दूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

५. अधिक समूह में घाना । एकबारगी बहुत सा ओ पड़ना । पिल
पड़ना । जैसे,—दुकान पर ग्राहकों का दूटना, विपत्ति या
आपत्ति दूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

मुहा०—दूट दूटकर बरसना = बहुत अधिक पानी बरसना ।
मुसलाधार बरसना ।

६. दल बाँधकर सहज प्राक्रमण करना । एकबारगी धावा
करना । जैसे, फौज का दुश्मन पर दूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

७. घनायास कहीं से आ जाना । अकस्मात् प्राप्त होना । जैसे,—
दो ही महीने में इतनी संपत्ति कहीं से दूट पड़ी ? उ०—
आयो हमारे मया करि मोहन मोकों तो मानो महानिधि
दूटो ।—देव । (शब्द०) । ८. पुष्क होना । अलग होना ।
अ्युत होना । मेल में न रहना । जैसे, पंक्ति से दूटना,
गवाह का दूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

९. संबंध छूटना । लगाव न रह जाना । जैसे, नाता दूटना ।
मित्रता दूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१०. दुबल होना । ऊण होना । दुबला पड़ना । क्षीण होना ।
जैसे,—(क) वह खाने बिना दूट गया है । (ख) उसका
सारा बल दूट गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—(कुर्ण का) पानी दूटना = पानी कम होना ।

११. घनहीन होना । कंगाल होना । बिगड़ जाना । जैसे,—इस
रोजगार में बहुत से महाजन दूट गए ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१२. चलता न रहना । बंद हो जाना । किसी संस्था, कार्यालय
आदि का न रह जाना । जैसे, स्कूल दूटना, बाजार दूटना,
कोठी दूटना, मुकदमा दूटना

संयो० क्रि०—जाना ।

!

१३. किसी स्थान, जैसे गढ़ आदि का शत्रु के अधिकार में जाना । जैसे, किला दूटना । उ०—मेघनाद उन्हें करइ खराई । दूट न द्वार परम कठिनाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१४. रुपए का बाकी पड़ना । वसूल न होना । जैसे,—अभी हिसाब साफ नहीं हुआ, हमारे १०० दूटते हैं । १५. टोटा होना । घाटा होना । हानि होना । १६. शरीर में ऐंठन या तनाव लिए हुए पीड़ा होना । जैसे,—बुखार बढ़ने पर जोड़ जोड़ दूटता है ।

महा०—बदन या धंग दूटना = भंगड़ाई खाना ।

१७. पेड़ों से फल का तोड़ा जाना । फलों का इकट्ठा किया जाना । फल उतरना । जैसे, आम दूटना ।

दूटा^१—वि० [हि० दूटना] [वि० बी० दूटी] १. टुकड़े किया हुआ । भग्न । खंडित ।

यौ०—दूटा फूटा = जीरा । निकम्मा ।

मुहा०—दूटी फूटी जवान, बात या बोली = (१) असंबद्ध वाक्य । ऐसे वाक्य जो व्याकरण से शुद्ध और संबद्ध न हों । जैसे, दूटी फूटी अंग्रेजी । उ०—क्या कहें हाले दिल गरीब जिगर । दूटी फूटी जवान है ग्यारे ।—वि० भा० । २. अस्पष्ट वाक्य । उ०—शीत, पित्त कफ कंठ निरोधे रसना दूटी फूटी बात ।—सूर (शब्द०) । दूटी बाह गले पड़ना = अपाहिज के निर्वाह का भार अपने ऊपर पड़ना । किसी संबंधी का खर्च अपने जिम्मे होना ।

२. दुबला । कमजोर । क्षीण । शिथिल । ३. निधन । दगिर । दीन ।

दूटा^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटा' । उ०—कह द्योपार सहज है सोदा, दूटा कबहुं न परना ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १० ।

दूटा फूटा—वि० [हि० दूटना + फूटना] बिगड़ा हुआ । जिसकी हालत बुरी हो गई हो । उ०—आप भी उन्हीं दूटे फूटे भवाबो में हैं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५६ ।

दूटना^३—क्रि० प्र० [सं० तुष्ट, प्रा० तुष्ट, हि० दूट + ना (प्रत्य०)] तुष्ट होना । प्रसन्न होना । उ०—हमसों भिने वर्ष द्वादश दिन चारिक तुम सों दूटे । सूर आपने प्रानन खेलें ऊषम खेलें रुठे ।—सूर (शब्द०) ।

दूठनि^४—संज्ञा स्त्री० [हि० दूठना] संतोष । तुष्टि । प्रसन्नता । उ०—टुमुक टुमुक पग भरनि नटनि सरसरनि सुदाई । भजन मिलनि रुठनि दूठनि किलकनि प्रवलोकनि बोलनि बरनि न जाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

दूनरोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० टाउन इयूटी] चुंगी ।

दूना^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोना' ।

दूम—संज्ञा स्त्री० [अनु० टून टून] गहना पाता । आभूषण ।

यौ०—दमादम = (१) गहना पाता । आभूषण । (२) बनाव सिंगार । दूम छल्ला = छोटा मोटा गहना । साधारण गहना ।

२. सुंदर स्त्री । ३. बनी स्त्री । मालदार स्त्री । ४. नीची । (बाजाक) ५. चालाक और चतुर आदमी । ६. उकसाने या खोदने की किया । भटका । धक्का ।

मुहा०—दूम देना = कबूतर को छतरी पर से उड़ाना ।

७. ताना । व्यंग्य ।

क्रि० प्र०—दूम आरना या तोड़ना = ताना मारना ।

दूमना—क्रि० सं० [अनु०] १. धक्का देना । भटका देना । खोदना । २. ताना मारना । व्यंग्य बोलना ।

दूरनामेंट—संज्ञा पुं० [सं० दूरनामेंट] खेल जिनमें जीतनेवालों को इनाम मिलता है ।

दूल^१—संज्ञा पुं० [अ०] धौजार जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय ।

दूल^२—संज्ञा पुं० [अ० दूल] ऊँचे पावों की छोटी चौकी जिसपर लड़के बैठते हैं या कोई चीज रखी जाती है । तिपाई ।

दूसा^१—संज्ञा पुं० [सं० तुष (= भूसी) ?] १. मंदार का फल । डोडा । २. रेशा । फुचड़ा । सूत । ३. पकड़ का फूल । पाकर का फूल । ४. पतझड़ के बाद टहनियों के सिरे पर पत्तियों का सश्लिष्ट नुकीला धाकार जो नीम, पाकर आदि वृक्षों में मिलता है ।

दूसा^२—संज्ञा पुं० [सं०] टुकड़ा । खंड ।

दूसी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दूसा] कली । बिना खिला हुआ फूल ।

टेंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टेंकिका] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक ।

टेंकी—संज्ञा स्त्री० [सं० टेंकी] १. शुद्ध राग का एक भेद । २. एक प्रकार का नृत्य ।

टेंपरेचर—संज्ञा पुं० [अ०] शरीर या किसी स्थान की उष्णता या गर्मी का मान जो थर्मामीटर से जाना जाता है । तापमान । जैसे,—(क) सवेरे उसका टेंपरेचर लिया था; १०२ डिग्री बुखार था । (ख) दस बार इलाहाबाद में ११८ डिग्री टेंपरेचर हो गया था ।

क्रि० प्र०—लेना ।—होना ।

टें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तोते की बोली । सुए की बोली ।

यौ०—टें टें ।

मुहा०—टें टें = व्यर्थ की बकवाद । हुज्जत । टें होना या बोलना = उसी तरह चटपट मर जाना जिस प्रकार बिल्ली के पकड़ने पर तोता एक बार टें शब्द निकालकर मर जाता है । भट प्राण छोड़ देना । मर जाना । न बचना ।

टेंगड़—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेंगरा' ।

टेंगड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेंगरा' ।

टेंगन^३—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] टेंगरा मछली । उ०—मंथ सुगंध धरे जल बाढ़ । टेंगन मुवे टोय सब काढ़े ।—जायसी (शब्द०) ।

टेंगना^४—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेंगरा' ।

टेंगर—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड (= एक प्रकार की मछली)] एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह टेंगरा ही के तरह की पर उससे बहुत बड़ी अर्थात् दो ढाई हाथ तक लंबी होती है । टेंगरा की तरह इसे भी बाँटे होते हैं ।

टेंगरा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड (= एक प्रकार की मछली)] एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह भारत के अनेक भागों में, विशेषकर प्रवच, बिहार और बंगाल के उत्तर के जलाशयों में पाई जाती है। यह बड़े बालिशत लंबी तथा सफेद या कुछ कालापन लिए बादामी होती है। इसके शरीर में सेहरा नहीं होता और इसके मुँह के किनारे लंबी मूँछें होती हैं। इसके शरीर में तीन काँटे होते हैं, दो अगल बगल और एक पीठ में। क्रुद्ध होने पर यह इन काँटों से मारती है। सबसे बड़ी विलक्षणता इस मछली में यह है कि यह मुँह से गुनगुनाहट के ऐसा शब्द निकालती है।

टेंपुना—संज्ञा पुं० [सं० अण्डोवान्] [श्री० टेंपुनी] घुटना।

टेंपुनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टेंपुना'।

टेंपनी—संज्ञा पुं० [हि० टेक] खमा। टेक। चाँड़।

टेंट—संज्ञा स्त्री० [हि० तट + ऐठ] धोती की वह मंडलाकार एंठन जो कमर पर पड़ती है और जिसमें लोग कभी कभी रुपया पैसा भी रखते हैं। पुरी।

मुहा०—टेंट में कुछ होना = पास में कुछ रुपया पैसा होना।

टेंट—संज्ञा स्त्री० [हि० टोंट] १. कपास की ठोंड़। कपास का डोडा जिसमें से रुई निकलती है। २. करील का फल। ३. करील। ४. पशुओं के शरीर पर का ऐसा घाव जो ऊपर से देखने में सूखा जान पड़े पर जिसमें से समय समय पर रक्त बहा करे। ५. दे० 'टेटर'।

टेंटड़—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेटर'।

टेटर—संज्ञा पुं० [देश०] रोग या चोट के कारण माँस के डले पर का उभरा हुआ मांस। डेडर।

क्रि० प्र०—निकलना।

टेंटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पत्ती।

विशेष—इसकी चौंच बालिशत भर की और पैर डेढ़ हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसका बदन चितकबरा पर चौंच काली होती है।

टेंटार—संज्ञा पुं० [हि० टेंट + आर (प्रत्य०)] दे० 'टेंटा'।

टेंटिहा—वि० [हि०] दे० 'टेंटी'।

टेंटिहा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के अत्रिय जो पायः बिहार के झाड़ाबाद जिले में पाए जाते हैं।

टेंटी—संज्ञा स्त्री० [हि० टेंट] १. करील। उ०—सूर बड़ी कैसे रुबि माने टेंटी के फल लारे।—सूर (शब्द०)। २. करील का फल। कचड़ा।

टेंटी—वि० [अनु० टें टें] बात बात में बिगड़नेवाला। व्यर्थ झगड़ा करनेवाला।

टेंटु—संज्ञा पुं० [सं० ट्रेंटक] श्योनाक। सोनापाठा।

टेंटवा—संज्ञा पुं० [देश०] १. गला। घेंदू। बीची। २. ग्रंथु।

टेंटें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. तोते की बोली। २. व्यर्थ की बकवाद। हुज्जत। धृष्टतापूर्ण बात। जैसे,—कहाँ राम राम कहाँ टें टें।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

मुहा०—टें टें लगाना = बकवाद करना। अनावश्यक बोलना।

उ०—तुमको इन बातों में क्या दखल है। नाटक बिन नाटक की टें टें लगाई है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३७१।

टेंड—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिंडसी'।

टेंबा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टेव'। उ०—गुन गोपाल उचारत रसना, टेव एह परी।—संतवाणी०, पृ० ४८।

टेउ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टेव'।

टेउकनी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेकन'।

टेउका—संज्ञा पुं० [हि० टेक] [स्त्री० टेउकी] दे० 'टेकन'।

टेउकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] १. किसी वस्तु को लुढ़कने या गिरने से बचाने के लिये उसके नीचे लगाई गई वस्तु। २. जुलाहों की वह लकड़ी जो ताने की बाँधी में इसलिये लगाई जाती है जिसमें ताना जमीन पर न गिरे, ऊपर उठा रहे। ३. साधुओं की प्रधानी।

टेक—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकना] १. वह लकड़ी या खंभा जो किसी भारी वस्तु को झड़ाए या टिकाए रखने के लिये नीचे या बगल से भिड़ाकर लगाया जाता है। चाँड़। तूरी। थम।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. टिकने या भार देने की वस्तु। भोटंगने की चीज। उ. सना। सहारा। ३. आश्रय। प्रवचन। उ०—दे मुद्रिका टेक तेहि प्रवसर सुचि समीरसुत पैर गहे री।—तुलसी (शब्द०)। ४. बैठने के लिये बना हुआ ऊँचा खजूर या बंशी। बैठने का स्थान। जैसे, राम टेक। ५. ऊँचा टीला। छोटो पहाड़ी। ६. चित्त में टिका या बैठा हुआ संकल्प। मन में ठानी हुई बात। दृढ़ संकल्प। झड़। हठ। जिद। उ०—सोइ गोसाईं जो बिधि गति छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—टेक गहना = दे० 'टेक पकड़ना'। टेक पकड़ना = जिद पकड़ना। हठ करना। टेक निभाना = (१) जिस बात के लिये आग्रह या हठ हो उसका पूरा होना। (२) प्रतिज्ञा पूरी होना। टेक निबाहना = दे० 'टेक निभाना'। टेक निभाना = प्रतिज्ञा या आग्रह का पूरा होना। टेक निभाना = प्रतिज्ञा पूरी करना। टेक रहना = दे० 'टेक निभाना'।

७. वह बात जो अभ्यास पड़ जाने के कारण मनुष्य अशक्य करे। बान। प्रादत। संस्कार।

क्रि० प्र०—पड़ना।

८. गीत का वह टुकड़ा जो बार बार गाया जाय। स्थायी। ९. पृथ्वी की नोक जो पानी में कुछ दूर तक चली गई हो।—(लश०)।

टेकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक + डी (प्रत्य०)] १. टीला। ऊँचा घुस्स। २. छोटी पहाड़ी। उ०—टेकड़ियों के पार, कहीं कैसे बढ़कर भाते हो?—हिम०, पृ० १०१।

टेकन—संज्ञा पुं० [हि० टेकना] [स्त्री० टेकनी] वह वस्तु जो भारी या लुढ़कनेवाली वस्तु को टिकाए रखने के लिये उसके नीचे

या बगल में लगाई जाय । अटुकन । रोक । जैसे,—घड़े के नीचे टेकन लगा दो ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

टेकना^१—क्रि० म० [हि० टेक] १. खड़े खड़े या बैठे बैठे श्रम से बचने लिये शरीर के बोझ को किसी वस्तु पर थोड़ा बहुत ढालना । सहारे के लिये किसी वस्तु को शरीर के साथ भिड़ाना । सहारा लेना । ढामना लेना । आश्रय बनाना । जैसे, दीवार या खंभा टेककर खड़ा होना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

२. किसी धंग को सहारे आदि के लिये कही टिकाना । ठहराना या रक्कना ।

मुहा०—घुटने टेकना = पराजय स्वीकार करना । हार मानना । माथा टेकना = प्रणाम करना । दंडवत् करना ।

३. चलने, चढ़ने, उठने बैठने आदि में शरीर का कुछ भार देने के लिये किसी वस्तु पर हाथ रखना या उसको हाथ से पकड़ना । सहारे के लिये धामना । जैसे, चारपाई टेककर उठना बैठना, लाठी टेककर चलना । उ०—(क) सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुँ टेकत ठहरि ।—सूर (शब्द०) । (ख) नाचन गावत गुन की गानि । समित भए टेकन पिय गानि ।—सूर (शब्द०) । ४. चलने में गिरन पड़ने से बचने के लिये किसी का हाथ पकड़ना । हाथ का सहारा लेना । उ०—गृह गृह गृहद्वार फि (यो) तुमको प्रभु छोड़े । धंध धंध टेकि चलै क्यों न परे गाड़े ।—सूर (शब्द०) । † (पु) ५. टेक करना । हठ करना । ठानना । उ०—सोह गोसाईं जेइ निधि गति छैंकी । सकइ की टारि टेक जो टेकी ।—तुलसी (शब्द०) । ६. किसी को कोई काम करते हुए बीच में रोकना । पकड़ना । उ०—(क) रोवहि मातु पिता श्री माई । कोउ न टेक जो कंत चलाई ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जनहुँ छोटि के मित गए तस दूनी भए एक । कंचन कसत नमोटी हाथ न कोउ टेक ।—जायसी (शब्द०) ।

टेकना^२—संज्ञा पुं० [शब्द] एक प्रकार का जंगली धान । चनाच ।

टेकनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकना] टेकने का आहार, छोटी आदि । उ०—उन्हीं की टेकनी के सहारे वे चल सकते हैं ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० २७३ ।

टेकनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकन + ई (प्रत्यय)] दे० 'टेकन' ।

टेकर—संज्ञा पुं० [हि० टेक] [स्त्री० टेकरी] १. टीला । उठी हुई भूमि । २. छोटी पहाड़ी ।

टेकरा—संज्ञा पुं० [हि० टेक] दे० 'टेकर' ।

टेकरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टेकर' । उ०—यमुना अपनी घोती लेकर बजरे से उतरी और बाजु की एक ऊँची टेकरी के कोने में बसी गई ।—कंकाल, पृ० ८८ ।

टेकली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] धुन । रट । उ०—बन बन पुकाऊँ एकला, डाकूँ गले बिच मेंखला । एक नाम की है टेकना, सोहवत की तई में क्या करूँ ।—कबीर (शब्द०) ।

टेकली—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] किसी चीज को उठाने या गिराने का औजार ।—(लश०) ।

टेकान—संज्ञा पुं० [हि० टेकना] १. टेक । वह लकड़ा जो किसी गिरनेवाली धरन या छत आदि को संभालने के लिये उसके नीचे खड़ी कर दी जाती है । चौड़ । २. ऊँचा चबूतरा या खंभा जिसपर बोझावाले अपना बोझा झड़ाकर थोड़ी देर सुस्ता लेते हैं । धरम ढोहा ।

टेकाना^१—क्रि० म० [हि० टेकना] १. किसी वस्तु को कहीं ले जाने में सहायता देने के लिये पकड़ना । उठाकर ले जाने में सहारा देने के लिये धामना । जैसे,—चारपाई को टेका लो, भीतर कर दें ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. उठने बैठने या चलते फिरते में सहायता देने के लिये धामना । जैसे,—ये इतने कमजोर हो गए हैं कि दो आदमी टेकाकर उन्हें भीतर बाहर ले जाते हैं ।

टेकानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकना] पहिए को रोकने की कील । किल्ली ।

टेकी संज्ञा पुं० [हि० टेक] १. कही हुई बात पर जमा रहनेवाला । प्रतिज्ञा पर खड़ा रहनेवाला । २. पड़नेवाला । हठी । दुराग्रही । जिद्दी । ३. आहार । टेक । सहारा । उ०—कहि बहली टेकी थूनी है, कहि घास कड़ब की थूली है ।—राम० धर्म०, पृ० ६२ ।

टेकुआ^१—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुं, प्रा० टक्कुआ] बरखे का तकला जिसपर सूत कातकर लपेटा जाता है । तकुआ ।

टेकुआ^२—संज्ञा पुं० [हि० टेक] १. टिकाने या झड़ाने का वस्तु । अटुकन । २. सहारे की वह लकड़ी जो एक पहिया निकाल लेने पर गाड़ी को ऊपर ठहराए रखने के लिये लगाई जाती है ।

टेकुरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] पान ।

टेकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्कुं, हि० टेकुआ] १. फिरकी लगा हुआ सूझा जिसके घूमने से फंसी हुई रुई का सूत कातकर लिपटता जाता है । सूत कासने का तकला । २. बांस की डोड़ी के एक छोर पर लाह लगाकर बनाई हुई जुलाहों की फिरकी जिसमें रेशम फँसाया रहता है । ३. रस्सी बटने का तकला या औजार । ४. जमारों का सूझा जिससे वे तागा खींचते और निकालते हैं । ५. गोप नाम का गहना बनाने के लिये मुनारों की सलाई जिससे तार खींचकर फंदा दिया जाता है । ६. मूर्ति बनानेवालों का चिपटी धार का एक औजार जिससे वे मूर्ति का तल साफ और चिकना करते हैं ।

टेकुवा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेकुआ' । उ०—टेकुवा साथत जो बनि आवे, मँहुगे मोल बिकाय ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ४४ ।

टेचरना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टिचलवा' ।

टेचिन—संज्ञा पुं० [घं० स्तिचिंग] एक प्रकार का काँटा जिसके एक ओर माथा होता है और दूसरी ओर डिबरी होती है । वह

किसी चीज को बढ़ाने या घटाने के काम में आता है ।
— (लक्ष०) ।

टेढ़का†—संज्ञा पुं० [सं० ताटङ्क] कान में पहनने का एक गहना ।

टेढ़ुआ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेंदुवा' । उ०—मजी घब बनाने की बात तो और है पूरी दास्तान भी नहीं सुनी और टेढ़ुए पर चढ़ बैठे ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६६ ।

टेढ़ही†—संज्ञा स्त्री० [हि० टेढ़ा] टेढ़ी लकड़ी की छड़ी । उ०—लिये हाथ में ढाल टेढ़ही ।—ग्राम्या, पृ० ४४ ।

टेढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० टेढ़ा] १. टेढ़ापन । वक्रता । २. मकड़ । ऐंठ । उजड़ुपन । नटखटी । शरारत ।

मुहा०—टेढ़ की लेना = नटखटी करना । शरारत करना । उजड़ुपन करना ।

टेढ़ी—वि० दे० 'टेढ़ा' ।

टेढ़बिड़ंगा—वि० [हि० टेढ़ा + वेढंगा] टेढ़ामेढ़ा । टेढ़ा और वेढंगा । बेबोल ।

टेढ़ा—वि० [सं० तिरस् (= टेढ़ा)] [वि० स्त्री० टेढ़ी] १. जो लगातार एक ही दिशा को न गया हो । इधर उधर झुका या घूमा हुआ । फेर खाकर गया हुआ । जो सीधा न हो । वक्र । कुटिल जैसे, टेढ़ी लकीर, टेढ़ी छड़ी, टेढ़ा रास्ता ।

यी०—टेढ़ा मेढ़ा = जो सीधा और सुधील न हो । टेढ़ा बाँका = नोक झोंक का । बना ठना । छेल धिक्किया ।

मुहा०—टेढ़ी चितवन = तिरछी चितवन । भावमरी दृष्टि । २. जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो । जो समानांतर न गया हो । तिरछा । ३. जो सुगम न हो । कठिन । बँड़ा । फेरफार का । मुश्किल । पेंचोला । जैसे, टेढ़ा काम, टेढ़ा प्रश्न, टेढ़ा मामला । उ०—मगर जे रों का मुकाबिला जरा टेढ़ी खीर है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४ ।

मुहा०—टेढ़ी खीर = मुश्किल काम । कठिन कार्य । दुष्कर कार्य ।

बिरोध—इस मुहा० के संबंध में लोग एक कथा कहते हैं । एक आदमी ने एक झंघे से पूछा 'खीर खाओगे ?' । झंघे ने पूछा 'खीर कैसी होती है ?' उस आदमी ने कहा 'सफ़ेद' । फिर झंघे ने पूछा 'सफ़ेद कैसा ?' । उसने उत्तर दिया 'जैसा बगला होता है ?' इसपर उस आदमी ने हाथ टेढ़ा करके बताया । झंघे ने कहा—'यह तो टेढ़ी खीर है, न खाई जायगी' ।

४. जो लिप्ट या नम्र न हो । उदत । उग्र । उजड़ु । दुःशील । कोपवाग् । जैसे, टेढ़ा आदमी, टेढ़ी बात । उ०—टेढ़े आदमी से कोई नहीं बोलता ।—(शब्द०) ।

मुहा०—टेढ़ा पड़ना या होना = (१) उग्र रूप धारण करना । जैसे,—कुछ टेढ़े पड़ोगे तभी रुपया निकलेगा, सीधे से माँगने से नहीं । (२) मकड़ना । ऐंठना । टराना । जैसे,—वह जरा सी बात पर टेढ़ा हो जाता है । टेढ़ी झाल से देखना = क्रूर दृष्टि करना । शत्रुता की दृष्टि से देखना । अनिष्ट करने का विचार करना । बुरा व्यवहार करने का विचार करना । टेढ़ी झालें करना = क्रुपित दृष्टि करना । क्रोध की भावना बनाना ।

बिगड़ना । टेढ़ी सीधी सुनाना = ऊँची नीची सुनाना । खरी खोटी सुनाना । भला बुरा कहना । टेढ़ी सुनाना = दे० 'टेढ़ी सीधी सुनाना' ।

टेढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टेढ़ा] टेढ़ा होने का भाव । टेढ़ापन ।

टेढ़ापन—संज्ञा पुं० [हि० टेढ़ा + पन (प्रत्य०)] टेढ़ा होने का भाव ।

टेढ़ामेढ़ा—वि० [हि० टेढ़ा + ग्रनु० मेढ़ा] जो सीधा न हो । टेढ़ा । वक्र ।

टेढ़े—क्रि० वि० [हि० टेढ़ा] सीधे नहीं । घुमाव फिराव के साथ । जैसे,—वह टेढ़े जा रहा है ।

मुहा०—टेढ़े टेढ़े जाना = इतराना । धमंड करना । उ०—(क) कबहुँ कमला चपल पाय के टेढ़े टेढ़े जात । कबहुँ मग मग धूरि टटोरत, भोजन को बिलसात ।—सूर (शब्द०) । (ख) जो रहीम ओछो बढ़े तो अति ही इतरात । प्यादा सों फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जात ।—रहीम (शब्द०) ।

टेना†—क्रि० सं० [हि० टेव + ना (प्रत्य०)] १. किसी हथियार की धार को तेज करने के लिये पथर आदि पर रगड़ना । उ०—कुबरी करी कुबलि कैकेई । कपट छुरी उर पाहन टेई ।—तुलसी (शब्द०) । २. मूँछ के बालों को खड़ा करने के लिये ऐंठना । जैसे, मूँछ टेना ।

टेना①—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेनी' ।

मुहा०—टेना मारना = दे० 'टेनी मारना' । उ०—करै बिबेक दुकान ज्ञान का लेना देना । गादी हैं संतोष नाम का मारे टेना ।—पलटू०, भा० १, पृ० १०० ।

टेनिया①†—संज्ञा स्त्री० [हि० टेनी + इया (प्रत्य०)] दे० 'टेनी' । उ०—काहे की बंडी काहे का पलरा काहे की मारी टेनिया ।—कबीर श०, भा० २, पृ० १५ ।

टेनिस—संज्ञा पुं० [अंग०] गेंद का एक प्रकार का अंगरेजी खेल ।

टेनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी जंगली ।

मुहा०—टेनी मारना = सोदा तोलने में जंगली को इस तरह घुमाना फिराना कि चीज कम चढ़े । (सीधा) कम तोलना ।

टेनेट—संज्ञा पुं० [अंग०] १. किराएदार । २. मसामी । पहरेदार । रेत ।

टेप—संज्ञा पुं० [अंग०] फीता ।

यी०—टेप रिकार्डर = रिकार्ड करनेवाला । वह यंत्र जो बैटरी से चालित होता है और प्रवचनों को फीते पर रिकार्ड करने के काम आता है ।

टेपारा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठिपारा' । उ०—ग्रहन अति खलित माल जटिल लाल टेपारो ।—नंद०, अं० पृ० ३६५ ।

टेबलेट—संज्ञा पुं० [अंग०] १. छोटी ठिकिया । जैसे, विनाइल टेबलेट । २. पथर, काँसे आदि का फलक जिसपर किसी की स्मृति में कुछ लिखा या खुदा रहता है । जैसे,—किसान सभा ने उनके स्मारक स्वरूप एक टेबलेट लगाना निश्चित किया है ।

टेबिल—संज्ञा पुं० [अंग० टेबुल] मेज । उ०—अंगरेजों के साथ एक टेबिल पर खाना न खाएँगे ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ७८ ।

टेबुल'—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेज ।

यी०—टेबुल पलाय=मेजपोश ।

२. नकशा । ३. वह जिगमें बहुत से खाने या कोष्ठक बने हों ।
नकशा । सारिणी ।

टेम'—संज्ञा स्त्री० [हि० टिमटिमाना] दीपशिखा । दीप की ली ।
दीपक की ज्योति । लाट । उ०—श्यामा की मूरति दीप की
टेम में दिखाने लगी ।—श्यामा०, पृ० १५६ ।

टेम'—संज्ञा पुं० [सं० टाइम] समय । वक्त ।

टेमन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सार ।

टेमा—संज्ञा पुं० [देश०] कटे हुए चारे की छोटी घंटिया ।

टेर'—संज्ञा स्त्री० [सं० तार (= संगीत में ऊँचा स्वर)] १. गाने में
ऊँचा स्वर । तान । टीप ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. बुलाने का ऊँचा शब्द । पुकारने की आवाज । बुलाहट ।
पुकार । हाँक । उ०—(क) टेर लखन मुनि बिरुन जानकी
भति प्रातुर उठि भाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) दुश के टेर
सुनी जय फूल फिरे शत्रुन ।—केनव (शब्द०) ।

टेर'—संज्ञा स्त्री० [सं० तार (= ते करना)] निर्वाह । गुजर ।

मुहा०—टेर करना = गुजारना । बिनाना । जानना । जैसे,—
जिदगी टेर करना ।

टेर'—वि० [सं०] निरखी निगाह का । ऐंछाताना (की०) ।

टेरक—वि० [सं०] ऐंछाताना (की०) ।

टेरना'—क्रि० सं० [हि० टेर + ना (प्रत्यय)] १. ऊँचे स्वर से
गाना । तान लगाना । २. बुलाना । पुकारना । हाँक लगाना ।
उ०—(क) भई साँझ जानी टेरना है कहाँ गए चारो
भाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) फिर फिर राम सीय तन
हेरत । गूँथित जानि जल सेन लखन गए, भुज उठाये ऊँचे
चढ़ि टेरत ।—तुलसी ।—(शब्द०) ।

टेरना'—क्रि० सं० [सं० तीरण (= ते करना)] १. ते करना । चलना
करना । निवाहना । पूरा करना । जैसे,—थोड़ा सा ताम और
रह गया है किसी प्रकार टेर ले चली । २. बिनाना ।
गुजारना । नाटना । जैसे,—तुहूँ इसी प्रकार जिदगी टेर ले
जायगा ।

संयो० क्रि०—ले चलना ।—ले जाना ।

टेरनि(३) —संज्ञा स्त्री० [हि० टेरना] टेर । पुकार । उ०—हरि की
सी गाइ निबेरनि टेरीन घँवर केरनि ।—नंद० सं०, पृ० २६ ।

टेरवा—संज्ञा पुं० [देश०] हुपके की नली जिसपर चिलम रखी
जाती है ।

टेरा'—संज्ञा पुं० [?] १. टेरा । फंफूल का पेड़ । २. पेड़ों का पड़ ।
तना । बुधरतम । जैसे, केले का टेरा । ३. शाखा । जैसे,—
हाथी के लिये टेरा काटना है ।

टेरा'—वि० [सं० टेर] ऐंछाताना । टेपरा । भेगा ।

टेरा(७) —संज्ञा पुं० [हि० टेरना] बुलावा । उ०—पाछे टेरा

घायो । तब यह सावधान हूँ विचार करने लाग्यो ।—शेरी
बावन०, भा० १, पृ० २३२ ।

टेराकोटा—संज्ञा पुं० [सं०] १. पकी हुई मिट्टी जिससे मूर्तियाँ,
इमारतों में लगाने के लिये बेलबूटे, आदि बनते हैं । २. पकी
हुई मिट्टी का रंग । ईटकोहिया रंग ।

टेरिऊल—संज्ञा पुं० [सं०] टेरिलिन और ऊन के मिश्रित धागे या उनसे
बना वस्त्र ।

टेरिकाट—संज्ञा पुं० [सं० टेरिकाट] टेरिलिन और सूत के धागे या
उनसे बना हुआ वस्त्र ।

टेरिटोरियल फोर्स—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सैन्यदल जिसका संबंध
अपने स्थान से हो । नागरिक सेना । देशरक्षणी सेना ।
देशरक्षक सेना ।

विशेष—इन्हे साधारणतः देश के बाहर लड़ने को नहीं जाना
पड़ता ।

टेरिलिन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कृत्रिम रेशा या उन रेशों
से बुना हुआ वस्त्र ।

टेरो'—संज्ञा स्त्री० [देश०] टहनी । पतली शाखा । जैसे, नीम की टेरो ।

टेरो'—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकुरी] दरी बुनने का सूजा ।

टेरो'—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक बीधा जिसकी कलियाँ रेंपने और
चमड़ा बिछाने में काम आती हैं । इसे 'बखेरी' और 'कुंती'
भी कहते हैं । २. बकम की फली ।

टेरो —संज्ञा स्त्री० [देश०] सरसों का एक भेद । उलटी ।

टेलपेल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] टेलठाल । धक्कापुक्की । उ०—हम
लोग भी टेल पेलकर रेल पर चढ़ बैठे ।—प्रेमचन०, भा०, २
पृ० ११२ ।

टेलर'—वि० [?] नाम मात्र को । कहने भर के लिये । उ०—उन्हें
टेलर कहलाने की अपकीर्ति से बचाना ।—प्रेमचन०, भा०
२, पृ० २५७ ।

टेलर'—संज्ञा पुं० [सं०] दर्जी । सीने का काम करनेवाला ।

टेलिग्राफ—संज्ञा पुं० [सं०] तार जिसके द्वारा खबरें भेजी जाती हैं ।
३० तार ।

टेलिग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] तार से भेजी हुई खबर । तार ।

टेलिपेथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मानसिक क्रिया जिसके द्वारा दूसरों
की भावनाओं का ज्ञान होता है ।

टेलिप्रिंटर—संज्ञा पुं० [सं०] विद्युत् संचालित वह टाइपराइटर या
टंकण यंत्र जिसमें तार द्वारा प्राप्त समाचार आदि अपने आप
टंकित होते हैं ।

टेलिफोटोग्राफी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूरबीक्षण यंत्र द्वारा फोटो लेना ।

टेलिफोन—संज्ञा पुं० [सं०] वह यंत्र जिसके द्वारा एक स्थान पर
कहा हुआ शब्द कितने ही कोस दूर के दूसरे स्थान पर सुनाई
पड़ता है ।

विशेष—इसकी साधारण युक्ति यह है कि दो चोंगे लो जिनका
मुँह एक ओर कागज, चमड़े आदि से मढ़ा हो तथा दूसरी
ओर खुला हो । मढ़े हुए चमड़े के बीचोबीच से लोहे का
एक संवा तार ले जाकर दोनों चोंगों के बीच लगा दो ।

यदि एक चोगे में कोई बात कही जायगी और दूसरे चोगे में (जो दूर पर होगा) किसी का कान लगा होगा तो वह बात सुनाई पड़ेगी । पर यह युक्ति थोड़ी ही दूर के लिये काम दे सकती है । अधिक दूर के लिये बिजली के प्रवाह का सहारा लिया जाता है । चुंबक की एक छड़, जिसमें रेशम (या और कोई ऐसा पदार्थ जिससे होकर बिजली का प्रवाह न जा सके) से लिपटा हुआ ताम्र का तार कमानी की तरह घुमाकर जड़ा रहता है, एक नली के भीतर बँटाई रहती है । चुंबक के एक छोर के पास लोहे का एक पत्तर बँधा रहता है । यह पत्तर काठ की खोली में रहता है—जिसका मुँह एक और चोगे की तरह खुला रहता है । इस प्रकार दो चोगों की आवश्यकता टेलीफोन में होती है एक बोलने के लिये, दूसरा सुनने के लिये । इन दोनों चोगों के बीच तार लगा रहता है । शब्द वायु में उत्पन्न तरंग या कंप मात्र हैं । मुँह से निकला हुआ शब्द चोगे के भीतर की वायु को कंपित करता है जिसके कारण बँधे हुए लोहे के पत्तर में भी कंप होता है अर्थात् वह धागे पीछे जल्दी जल्दी हिलता है । इस हिलने से चुंबक की शक्ति एक बार घटती और एक बार बढ़ती रहती है । इस प्रकार तार की मँडलाकार कमानी के एक बार एक ओर दूसरी बार दूसरी ओर बिजली उत्पन्न होती रहती है । इसी बिजली के प्रवाह द्वारा बहुत दूर के स्थानों पर भी शब्द पहुँचाया जाता है । टेलीफोन के द्वारा स्थल पर हजारों कोस दूर तक की ओर समुद्र में सेकड़ों कोस तक की कही बातें सुनाई पड़ती हैं ।

टेलिविजन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] किसी वस्तु, दृश्य या पटना के चित्र को बेतार के तार से या तार द्वारा संप्रेषित करने की वह प्रक्रिया जिससे दूरस्थ व्यक्ति भी उसे तत्काल उषों का रूप देख सुन सके ।

विशेष—टेलिविजन में प्रकाशतरंगों को किसी दृश्य पर से विद्युत् तरंगों में परिवर्तित कर दिया जाता है जो बेतार के तार या तार द्वारा संप्रेषित होती हैं और इसके बाद उनको पुनः प्रकाशतरंगों में परिवर्तित कर दिया जाता है जो टेलिविजन पट पर उस दृश्य को चित्रित करती हैं ।

टेलिस्कोप—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह यंत्र जो दूरस्थ वस्तुओं को निकटतर और विमालतर दिखाने का कार्य करता है ।

टेली—संज्ञा पुं० [देश०] मछले आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी लाल और मजबूत होती है तथा चारपाई, झोझारों के दस्ते आदि बनाने के काम में आती है ।

विशेष—यह पेड़ ग्रामाम, कछार, सिलहट और जटगाँव में बहुत होता है ।

टेब—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] अभ्यास । आदत । बान । स्वभाव । प्रकृति । उ०—(क) सुनु मैया याकी टेब लरन की, मकुच देषि सी खाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तुम तो टेब जानतिहि हँहा तऊ मोहि कहि भावै । प्रात उठउ मेरे लाल लईतहि माखन रोटी भावै ।—मूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।

टेवकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेवकन, टेकन] १. दोनों छोरों पर कुछ दूर तक बाँस की एक चिरी लकड़ी जो जुलाहों की डाँड़ी में इसलिये लगी रहती है जिसमें तागा गिरने न पावे । २. नाव के पालों में से सबसे ऊपर का छोटा पाल ।

टेवना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'टेना' ।

टेवा—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पन] १. जन्मपत्री । जन्मकुंडली । २. लग्न-पत्र जिसमें विवाह की मिति, दिन, घड़ी आदि लिखी रहती है और जिसे लड़की के यहाँ से गुरून के साथ नाई ले जाकर लड़के के पिता का विवाह से १० या बारह दिन पहले देता है ।

टैवैया—संज्ञा पुं० [हिं० टेवना] १. टेनेवाला । सिल्ली पर चार तेज करनेवाला । २. मोखा करनेवाला । तीक्ष्ण या पैना करनेवाला । उ०—जहाँ जमजातन धोर नदी भट कीटि जलचर दत्त टैवैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

टेसुआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टैसू' ।

टैसू—संज्ञा पुं० [सं० किणुक] १. पलाश का फूल । ढाक का फूल ।

विशेष—इसे उबालने से इसमें से एक बहुत अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे पहले कपड़े बहुत रंगे जाते थे । दे० 'पलाश' ।

२. पलाश का पेड़ । ३. लड़कों का एक उत्सव । उ०—जे कच कतक कचोरा भरि भरि मेलत तेल कुलैल । तिन केसन को असम चढ़ावन टैसू के से खेल ।—मूर (शब्द०) ।

विशेष—इसमें विजयादशमी के दिन बहुत से लड़के इकट्ठे होकर घास का एक पुतला या लेकर निकलते हैं और कुछ गाते हुए घर घर घूमते हैं । प्रत्येक घर से उन्हें कुछ भोजन या पैसा मिलता है । इसी प्रकार पाँच दिन तक अर्थात् शरद पूर्ण तक करते हैं और जो कुछ भिक्षा मिलती है उसे इकट्ठा करते जाते हैं । पूर्णों की रात को भिसे हुए द्रव्य से लावा, मिठाई आदि लेकर वे बीए हुए खेतों पर जाते हैं जहाँ बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं और बलाचन की राधा संबंधी बहुत सी कसरतें और खेल होते हैं । सबके घन में लावा, मिठाई लड़कों में बँटती है । टेसू के गीत इस प्रकार के होते हैं—इमली के जड़ से निकली पतंग तनी सी मोरी तनी सी रंग । रंग रंग की बनी कमल । टेसू आगा घर के द्वार । खोलो रानी खंदन किवार ।

टेहखाना—संज्ञा पुं० [देश०] विवाह के व्यवहार । व्याह की रीति रस्म ।

टेहना—संज्ञा पुं० [हिं० पुटना] घुटना ।

टेहुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोहनी' ।

टेक—संज्ञा पुं० [ग्रं०] १. मोटर की तरह का एक युद्धयान जो मजबूत इस्पात का बना होता है और जिसमें तोपें लगी रहती हैं । २. तालाब ।

टैडी—संज्ञा पुं० [?] चंचल । उ०—पैठत प्रात खरी घनखिली सु नाक चढ़ाई डोलत टैडी ।—घनानंद, पृ० ३७ ।

टैयों—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी कोड़ी जिसकी पीठ साधारण कोड़ी से कुछ चिपटी होती है और उसपर दो चार उमरे हुए बड़े दाने से होते हैं ।

विशेष—इसका रंग नीलापन लिए या बिलकुल सफ़ेद होता है।
फेंकने से यह चित अधिक पड़ती है इसी से इसका व्यवहार
घुए में अधिक होता है। इसे चिल्ली भी कहते हैं।

टैरॉ^२—वि० नाटा घोर दृष्ट पुष्ट।

टैक्स—संज्ञा पु० [सं०] कर या महसूल जो राज्य अथवा नगरपालिका
अथवा जिला परिषद् या संघायत की ओर से किसी वस्तु पर
लगाया जाय। जैसे, इनकम टैक्स।

टैक्सो—संज्ञा स्त्री० [सं०] किराए पर चलनेवाली मोटर गाड़ी।

टैन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो चमड़ा सिंभाने के
काम में आती है।

टैना^१—संज्ञा पु० [देश०] घास का पुतला या डंडे पर रखी हुई काली
होड़ी आदि जिन्हें खेतों में पक्षियों को डराने के लिये
रखते हैं।

टैनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों का झुंड।—(गढ़रिए)।

टैरा^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टेरा'।

टैरो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टैरी'।

टैब्लेट—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'टेब्लेट'।

टॉक^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टोका'।

टॉक^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोक'। उ०—उलझन की भीठी
रोक टोंक, यह सब उसकी है नोक भोंक।—कामायनी,
पृ० २३५।

टॉका^३—संज्ञा पु० [सं० स्तोक (= षोड़ा)] १. छोर। सिरा।
किनारा। २. नोक। कोना। ३. जमीन जो नदी में कुछ दूर
तक गई हो।—(मरलाह)।

टॉगा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टांगा'।

टॉगू—संज्ञा पु० [देश०] फैलनेवाली एक भाड़ी जिसकी छास के रेणों से
रस्सी बनाई जाती है। जितनी। जक।

टॉब—संज्ञा स्त्री० [हि० टोंचना] १. सीपन। सिलाई का टीका।
२. टोंबने की क्रिया।

टॉचना^१—क्रि० सं० [सं० टड्डन] चुमाना। गड़ाना। घंसाना।
कौंभना।

टॉचना^२—संज्ञा पु० [हि० ताना] १. ताना। ध्वंग्य। २. उपाखंड।
उलाहना।

टॉट—संज्ञा स्त्री० [सं० तुएड] ठोर। चोंच। उ०—मारत टोट भुजा
उधिराना।—अग० बानी, पृ० ८२।

टॉटरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोटो'।

टॉटा—संज्ञा पु० [सं० तुएड] १. चिड़िया की चोंच के आकार की
निकली हुई कोई वस्तु। २. चोंच के आकार के गड़े हुए काठ
के डेढ़ दो हाथ लंबे टुकड़े जो घर की दीवार के बाहर की
ओर पंक्ति में बड़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाए
जाते हैं। चोड़िया। ३. पानी आदि ढालने के लिये बरतन
में नगी हुई नली।

टॉटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुएड] १. पानी आदि ढालने के लिये भारी।
मोटे आदि में लगी हुई नली जो दूर तक निकली रहती है।
तुलतुची। २. पशुओं का पूषन। जैसे, सूअर की टॉटी।

टॉस—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोस'।

टोआ^१—संज्ञा पु० [सं० तोय (= पानी)] गड्ढा।—(पंजाबी)।

टोआ^२—संज्ञा पु० [सं० तोकम] अंकुर [को०]।

टोआ^३—संज्ञा पु० [हि० टोहना] जहाज या नाव के आगे के भाग
पर पानी की बाढ़ बने के लिये बैठनेवाला मरलाह।

टोआ^४—संज्ञा पु० [हि० टोह] दे० 'टोह'।

टोइया^१—संज्ञा स्त्री० [देश० या *हि० तोतिया] छोटी जाति का सुभा
जिसकी चोंच तक सारा भाग बैंगनी होता है। तोरी।

टोई^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] पोर। पर्व। एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक
का भाग।

टोक^१—संज्ञा पु० [सं० स्तोक] एक बार में मुँह से निकला हुआ
शब्द। किसी पद या शब्द का टुकड़ा। उच्चारण किया हुआ
अक्षर। जैसे,—एक टोक मुँह से न निकला।

टोक^२—संज्ञा स्त्री० १. छोटा सा वाक्य जो किसी को कोई काम करते
देख उसे टोकने या पूछताछ करने के लिये कहा जाय।
पूछताछ। प्रश्न आदि द्वारा किसी कार्य में बाधा। जैसे,—
'क्या करते हो?', 'कहाँ जाते हो?' इत्यादि।

यो०—टोक टाक = पूछताछ। प्रश्न आदि द्वारा बाधा। जैसे,—
बड़े जरूरी काम से जा रहे हैं, टोकटाक न करो। रोक
टोक = मनाही। मुमानिमत। निषेध।

२. नजर। बुरी दृष्टि का प्रभाव।—(स्त्रि०)।

मुहा०—टोक में आना = नजर लगानेवाले आदमी के सामने
पड़ जाना। जैसे—बच्चा टोक में पड़ गया।

टोक^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] टेक। प्रतिज्ञा। उ०—चित्र सूत्र
जोगी तपी सुकवि कहत करि टोक।—ब्रज० पं०, पृ० ११८।

टोकणी^१—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का हंडा। उ०—कबीर
तथा टोकणी लीए फिर मुभाई।—कबीर पं०, पृ० ३५।

टोकनहार—वि० [हि० टोकना + हार (प्रत्य०)] टोकनेवाला।
बाधा पहुँचानेवाला।—उ०—कोई न टोकनहार नफा घर
बैठे पावो।—पखद्द०, पृ० १४।

टोकना^१—क्रि० सं० [हि० टोक] १. किसी को कोई काम करते
देखकर उसे कुछ कहकर रोकना या पूछताछ करना। जैसे,
'क्या करते हो?' 'कहाँ जाते हो?' इत्यादि। बीच में बोल
बठना। प्रश्न आदि करके किसी कार्य में बाधा डालना।
उ०—गोपिन के यह ध्यान कन्हाई। नेकु न अंतर होय
कन्हाई। घाट बाट जमुना तट रोके। मारण बचत जहाँ
तहँ टोके।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यात्रा के समय यदि कोई रोककर कुछ पूछता है तो
यात्री अपने कार्य की सिद्धि के लिये बुरा लज्जन समझता है।

२. नजर लगाना। बुरी दृष्टि डालना। हँसना। ३. एक पहलवान
का दूसरे पहलवान से सड़ने के लिये कहना। ४. बलती
बतसाना। अशुद्धि की ओर ध्यान दिलाना। ५. आपत्ति
करना। एतराज करना।

टोकना^२—संज्ञा पु० [?] [स्त्री० टोकनी] १. टोकरा। डहा। २.

पानी रखने का घातु का एक बड़ा बरतन। एक प्रकार का हंडा।

टोकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टोकना] १. टोकरी। डलिया। उ०—
भाज के दिन छोटी छोटी टोकनियों में अनाज बोया जाता है और देवी के गीत गाए जाते हैं।—शुक्ल० अभि० प्र०, पृ० १३८। २. पानी रखने का छोटा हंडा। ३. बटलोई। देगची।

टोकरा—संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० टोकरी] बांस की चिरी हुई फट्टियों, परहर, भाज की पतली टहनियों आदि को गल्लकर बनाया हुआ गोल और गहरा बरतन जिसमें घास, तरकारी, फल आदि रखते हैं। छावड़ा। डला। भाबा। खीचा।

मुहा०—टोकरे पर हाथ रहना = इज्जत बनी रहता। परदा न खुलता। भ्रम बना रहना।

टोकरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० टोकरी का अल्पा०] दे० 'टोकरी'।

टोकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० टोकरा] १. छोटा टोकरा। छोटा डला या छावड़ा। भापी। झपोली। २. देगची। बटलोई।

टोकवा—संज्ञा पुं० [देश०] उत्पाती लड़का। नटखट लड़का।

टोकसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] नरियरी। नारियल की आधी खोपड़ी।

टोका—संज्ञा सं० [देश०] एक कीड़ा जो उर्ब की फसल को नुकसान पहुंचाता है।

टोका^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोका'।

यो०—टोकाटोकी = बाधा। टोकटाक।

टोकाना^(१)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टिकाना-४'। उ०—इहि विधि चारि टकोर टोकावे।—कबीर सा०, पृ० १५८४।

टोकारा—संज्ञा पुं० [हि० टोक] वह संकेत का शब्द जो किसी को कोई बात चिताने या स्मरण दिलाने के लिये कहा जाय। इगारे के लिये मुँह से निकाला हुआ शब्द।

टोट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटा'। उ०—रोम रोम पूरि पीर, व्याकुल सरीर महा, धूमै मति गति भासै, प्यास की न टोट है।—धनानंद, पृ० ६६।

टोटक^(१)—संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] दे० 'टोटका'। उ०—स्वारथ के नाथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक, ओचट उलटि न हेरो।—तुलसी प्र०, पृ० ५६३।

टोटका—संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] १. किसी भाषा को दूर करने या किसी मनोरथ को मिट्ट करने के लिये कोई ऐसा प्रयोग जो किसी अलौकिक या ईवी शक्ति पर विश्वास करके किया जाय। टोना। यंत्र मंत्र। तांत्रिक प्रयोग। खटका। उ०—तन की सुधि रहि जात जाय मन अंतै अटका। बिसरी भूख पियास किया मनपुर ने टोटका।—पलटू, भा० १, पृ० ३२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टोटका करने आना = धाकर कुछ भी न ठहरना।

४-३१

थोड़ी देर भी न बैठना। तुरत चला जाना। जैसे,—थोड़ा बैठो, क्या टोटका करने आई थी?—(स्त्रि०)। टोटका होना = किसी बात का चटपट हो जाना। किसी बात का ऐसी जल्दी हो जाना कि देखकर आश्चर्य हो।

२. काली हाड़ी जिसे खेतों में फसल को नजर से बचाने के लिये रखते हैं।

टोटकेवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टोटका + हाई (प्रत्य०)] टोटका करनेवाली। टोना या जादू करनेवाली।

टोटल—संज्ञा पुं० [अंग०] जोड़। ठीक। पीजान।

मुहा०—टोटल मिलाना = जोड़ ठीक करना।

टोटा^१—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १. बांस आदि का कटा हुआ टुकड़ा। २. मोमबत्ती का जलने से बचा हुआ टुकड़ा। ३. कारतूस। ४. एक प्रकार की प्रातःवाजी।

टोटा^२—संज्ञा पुं० [हि० टूटना, टूटा] १. घाटा। हानि। उ०—
लेन न देन दुकान न जागा। टोटा करज नाहि कस जागा।—
घट०, पृ० २७५।

क्रि० प्र०—उठाना। सहना।

मुहा०—टोटा देना या भरना = नुकसान पूरा करना। घाटा पूरा करना। हरजाना देना।

२. कमी। धभाव। जैसे,—यही कागज का क्या टोटा है!

क्रि० प्र०—पड़ना।

टोटि^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] त्रुटि। गलती। उ०—कोटि विनायक जो लिखें, महि से कागर कोटि। ता परि तेरे पीय के गुन महि आवै टोटि।—नंद० प्र०, पृ० ६१।

टोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] चोंच के आकार का गढ़ा हुआ काठ का बड़ा हाथ लंबा टुकड़ा जो घर की दीवार के बाहर की ओर पंक्ति में बड़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाया जाता है। टोंटा।

टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रोटकी] १. एक रागिनी जिसके गाने का समय १० वंश से १६ वंश पर्यंत है।

विशेष—इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि स स नि ध प म ग रे न। रे सा नि स नि ध ध नि स ग रे म नि स नि ध। प ग ग म रे ग रे स रे नि स नि ध स रे ग म प ध ध प। भ ग म ग रे स नि स रे रे स नि ध ध ध नि म। अनुमत मत से इसका स्वरग्राम यह है—म प ध नि स रे ग म ध ध ध प रे ग म प ध नि स। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है। इसमें शुद्ध मध्यम और तीव्र मध्यम के प्रतिरिक्त बाकी सब स्वर कोमल होते हैं। यह भैरव राग की स्त्री मानी जाती है और इसका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—हाथ में बीणा लिए हुए, प्रिय के विरह में गाती हुई, श्वेत वस्त्र धारण किए और सुंदर नेत्रोंवाली।

२. चार मात्राओं का एक ताल जिसमें २ आघात और २ खाली रहते हैं। इसका सबसे का बोल यह है—घिन् वा, गेदिन, ३ ० +

जिनता, गेदिन, वा। अथवा

+ ० ० ० +

धेदा के टे, मेदा के टे। वा।

टोनहा—वि० [हि० टोना + हा (प्रत्य०)] [वि० बी० टोनही] टोना करनेवाला। जादू मारनेवाला।

टोनहाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टोना + हाई (प्रत्य०)] १. टोना करनेवाली। जादू मारनेवाली। ३. टोना करने की क्रिया।

टोनहाया—संज्ञा पुं० [हि० टोना + हाया (प्रत्य०)] टोना करनेवाला मनुष्य। जादू करनेवाला मनुष्य।

टोना—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १. मंत्र तंत्र का प्रयोग। जादू।

क्रि० प्र०—करना।—बलाभा।—मारना।

२. एक प्रकार का गीत जो विवाह में गाया जाता है और जिसमें 'होना' शब्द कई बार आता है।

टोना—संज्ञा पुं० [देश०] एक शिकारी चिट्ठिया। उ०—जुर्रा बाज बसि, फुही, बहरी, चरर लोन टोने जरकटी स्थो सचान सानवारे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

टोना—क्रि० म० [सं० त्वक् (= स्पर्शद्रव्य) + ना (प्रत्य०)] १. हाथ से टटोलना। छुना। छूकर मालूम करना। उ०—साँव बड़े घँघरे को हाथी और सन्नि है सपरे। हाथ की टोई साँव कहत हैं हैं। साँव के घँघरे :—कबीर ज०, भा० १, पृ० ५४। २. चक्की तरह समझना। अनुभव करना। उ०—जग में आन कोई नहीं, देखा सब टोई।—संनयासी०, पृ० ४३।

टोनाहाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टोना + हाई (प्रत्य०)] ३० 'टोनहा'।

टोपी—संज्ञा पुं० [हि० तोपना (= ठाकना)] १. बड़ी टोपी। गिर का बड़ा पहनावा। उ०—सुंदर सोन सनाह करि सोन विगो चिर टोप।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७४०।

यौ०—कमटोप।

२. सिर की रक्षा के लिये सड़ाई में पहनने की कोढ़ी टोपी। गिरस्त्राण। खोद। कुँड़। ३. खोल। गिराफ। ४. घंगुरताना।

टोप—संज्ञा पुं० [अनु० टप टप या सं० स्त्रोक] बूँद। कतरा।

यौ०—टोप टोप = बूँद बूँद।

टोपन—संज्ञा पुं० [देश०] टोकरा।

टोपरा—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'टोकरा'।

टोपरा—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'टोकरा'।

टोपरी—संज्ञा स्त्री० [हि० टोपर] ३० 'टोकरा'।

टोपरी—संज्ञा स्त्री० [हि० टोपा] टोप। गिरस्त्राण विशेष। उ०—फुटंत वीं मू घोपरी। कि जोग पत्र टोपरी।—पृ० रा० ५। ७७।

टोपही—संज्ञा स्त्री० [हि० टोप] वरतन के साने का सबसे ऊपरी भाग जो कटोरे के आकार का होता है।

टोपा—संज्ञा पुं० [हि० टोप] बड़ी टोपी।

टोपा—संज्ञा पुं० [हि० तोपना] टोकरा।

टोपा—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कन, हि० तोपना, तुरपना] टीका। डोम। सीवन।

मुहा०—टोपा भरना = तागा भरना। सीना।

टोपी—संज्ञा स्त्री० [हि० तोपना (= ठाकना)] १. सिर पर का पहनावा। सिर पर ठाँकने के लिये बना हुआ आच्छादन।

क्रि० प्र०—पहनना।—लगाना।

मुहा०—टोपी उछलना = निरादर होना। बेइज्जती होना। टोपी उछालना = निरादर करना। बेइज्जती करना। टोपी देना = टोपी पहनना। टोपी बदलना = भाई भाई का संबंध जोड़ना। भाईचारा करना। टोरी बदल भाई = वह जिससे टोपी बदलकर भाई का संबंध जोड़ा गया हो।

विशेष—लड़के खेल में जब किसी से मित्रता करते हैं तब अपनी टोपी उसे पहनाते और उसकी टोपी आप पहनते हैं।

२. राजमुकुट। ताज।

मुहा०—टोपी बदलना = राज्य बदलना। दूसरे राजा का राज्य होना।

३. टोपी के आकार की कोई गोल और गहरी वस्तु। कटोरी।

४. टोपी के आकार का घातु का गहरा ढक्कन जिसे बंदूक की निपुल पर चढ़ाकर घोड़ा गिराने से घाग लगती है। बंदूक का पड़ाका। ५. वह धैली जो शिकारी जानवर के मुँह पर चढ़ाई रहती है। ६. लिंग का अग्र भाग। सुपारा। ७. मस्तूल का सिरा।—(लश०)।

टोपीदार—वि० [हि० टोपी + दा०] जिसपर टोपी लगी हो। जो टोपी लगने पर काम दे। जैसे, टोपीदार बंदूक, टोपीदार तमंचा।

टोपीवाला—संज्ञा पुं० [हि० टोपी] १. वह आदमी जो टोपी पहने हो। २. अहमदशाह और नादिरशाह के सिपाही जो लाल टोपियाँ पहनकर आए थे। ये टोपीवाले कहलाते थे।

३. अंगरेज या यूरोपियन जो हैट पहनते हैं। ४. टोपी बेचनेवाला।

टोम—संज्ञा पुं० [हि० डोम] टीका। तोपा। उ०—बैरनि जीमही टोम दे रो मन बैरी की भूँजि के मोन धरीयो।—देव (शब्द०)।

टोभा—संज्ञा पुं० [हि० टोभ] ३० 'टोम'।

टोया—संज्ञा पुं० [सं० तोय] गड्ढा।—(पंजाबी)।

टोर—संज्ञा स्त्री० [देश०] कटार। कटार। उ०—तुम सौं न जोर चोर भूपन के ओर रूप काँकरी को चोर काऊ मारो है न टोर के।—हुनुमान (शब्द०)।

टोर—संज्ञा स्त्री० [देश०] थोरे की मिट्टी का वह पानी जो साधारण नमक की कलमों को छानकर निकाल लेने पर बच रहता है और जिसे फिर उबाल और छानकर थोरा निकाला जाता है।

टोर—संज्ञा पुं० [हि० ठोर] ठोर। मुँह। उ०—लखी टोर निरहट्ट गरबं मिषायं।—प० रासो, पृ० १४१।

टोरेना—क्रि० स० [सं० घुट] तोड़ना । उ०—(क) रिक्तकार दृग देखि कै मनमोहन की ओर । मोहन मारत रोहि जनु डारत है तन टोर ।—रसनिधि (शब्द०) । (ख) कोउ कहै टोरन देत न माली । मोगेहु पर मुरके हृम खाली ।—रघुराज (शब्द०) ।

मुहा०—घाल टोरवा = लज्जा आदि से दृष्टि हटाना या भलग करना । घाल मोड़ना । दृष्टि छिपाना । उ०—सूर प्रभु के चरित सखियन कहत लोचन टोरि ।—सूर (शब्द०) ।

टोरा^१—संज्ञा पु० [देश०] जुलाहों का सूत तोलने का तराजू ।

टोरा^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टोड़ा' ।

टोरा^३—संज्ञा पु० [सं० तोक] [श्री० टोरी] लड़का । छोड़का ।

टोरी^१—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'टोड़ी' ।

टोरी^२—संज्ञा श्री० [सं०] दे० 'कंसरवेटिब' ।

टोरी^३—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'टोली' । उ०—दो दो पंजे तो कसा लें इधर या उधर देखिए तो मेरी टोरी कैसी बढ़ बढ़के लात देती है ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ३ ।

टोरी^४—संज्ञा पु० [सं० लुवर] घरहर का वह छिनके सहित खड़ा दाना जो बनाई हुई दाल में रह जाय ।

टोरी^५—संज्ञा पु० [देश०] १. रोड़ा । कंकड़ । ईंट का टुकड़ा । २. लड़का ।

टोली^१—संज्ञा श्री० [सं० तोलिका (= गढ़ के चारों ओर का घेरा, बाड़ा)] १. मंडली । समूह । जत्था । भुंड । उ०—(क) अपने अपने टोल कहत ब्रजवासी आई । भाव भक्ति लै चली सुदंपति आसी आई ।—सूर (शब्द०) । (ख) दुनिहाई सब टोल में रही जु सीत कहाय । सुती ऐंचि तिय आप त्यों करी प्रबोखिस प्राय ।—बिहारी (शब्द०) ।

यौ०—टोल मटोल = भुंड के भुंड ।

२. मुहल्ला । बस्ती । टोला । उ०—आजु भीर तमचुर के रोख । गोकुल मैं धानंद होत है, मंगल धुनि महराने टोल ।—सूर०, १०।१४ । ३. बटसार । पाठशाला ।

टोली^२—संज्ञा पु० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । इसके गाने का समय २५ देंड से २८ देंड तक है ।

टोली^३—संज्ञा पु० [सं० टाल] सड़क का महसूल । मार्ग का कर । चुंगी ।

यौ०—टोल कलेक्टर = कर लेनेवाला । महसूल वसूल करनेवाला

टोलना^१—क्रि० स० [हि०] दे० 'टोलना' । उ०—नौ ताली दे बसवाई तोलिया । तब इस गढ़ महि एकी टोलिया ।—प्राण०, पृ० २८ ।

टोला^१—संज्ञा पु० [सं० तोलिका (= किसी स्तंभ या गढ़ के चारों ओर का घेरा, बाड़ा)] १. आदमियों की बड़ी बस्ती का एक भाग । मुहल्ला । उ०—घर में छोटे बड़े भीर टोला परोसियों के बस्ताहू बंध हो गए ।—श्यामा०, पृ० ४७ । २. एक प्रकार

का व्यवसाय करनेवाले या एक जातिवाले लोगों की बस्ती । जैसे, चमरटोला ।

टोला^२—संज्ञा पु० [देश०] बड़ी कीड़ी । कौड़ा । टग्घा ।

टोला^३—संज्ञा पु० [देश०] १. गुल्ली पर डंडे की चोट ।

क्रि० प्र०—खगाना ।

२. उंगली को मोड़कर पीछे निकली हुई हड्डी से मारने की क्रिया । ठूंग । उ०—जो बंध्यव आन तो तके मुँड में टोला देतो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३३१ । ३. पत्थर या ईंट का टुकड़ा । रोड़ा । ४. बेत आदि के आधात का पड़ा हुआ बिल्लू जो कभी लाल और कभी कुछ नीलापन लिए होता है । साँट । नील ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

टोलिया—संज्ञा श्री० [सं० तोलिका (= घेरा, हाता)] टोली । छाटा मुहल्ला ।

टोली—संज्ञा श्री० [सं० तोलिका (= हाता, बाड़ा)] १. छोटा मुहल्ला । बस्ती का छोटा भाग । उ०—नैन बचाय धवाइन के नहि रेन में हूँ निकसी यह टोली ।—संस्क (शब्द०) । २. समूह । भुंड । जत्था । मंडली । उ०—दस टोली ते मतगुण राखें ।—प्राण०, पृ० ८८ । ३. पत्थर की चौकीर पटिया । मिल । ४. एक जाति का बाँस जो पूर्वीय हिमालय सिक्किम और आसाम की ओर होता है ।

विशेष—इसकी आकृति कुछ कुछ पेड़ों की होती है और इसमें ऊपर जाकर टहनियाँ निकलती हैं । यह बाँस बहुत सोचा और सुडौल होता है । टोली बनाने के लिये यह बाँस सबसे अच्छा समझा जाता है । यह छप्परो में लगता है और बटाइयाँ बनाने के काम में भी आता है । इसे 'नान' और 'पकोक' भी कहते हैं ।

टोलीधनवा—संज्ञा पु० [हि० टोली + धान] धान की तरह की एक घास जिसके नरम पत्ते छोड़े और बोयाए बड़े चाव में खाते हैं । इसके दानों को भी कहीं कहीं गरीब लोग खाते हैं ।

टोवना^१—क्रि० स० [हि०] दे० 'टोना' ।

टोवा—संज्ञा पु० [देश०] गलहो पर बैठनेवाला वह माँकी जो पानी की गहराई जाँचता है ।

टोह—संज्ञा श्री० [हि० टोली] १. टटोल । खोज । ढूँढ़ । तलाश । पता ।

मुहा०—टोह मिलना = पता लगना । टोह में रहना = तलाश में रहना । ढूँढ़ते रहना । टोह लगाना या लेना = पता लगाना । सुराग लगाना ।

२. खबर । देखभाल ।

मुहा०—टोह रखना = खबर रखना । देखभाल रखना ।

टोहना—क्रि० स० [हि० टोह] १. ढूँढ़ना । खोजना । २. हाथ लगाना । छूना । टटोलना । उ०—घब तनही धीरज न सपत हाथ अपनी सो मैं बहुते टोहो ।—धनानंद, पृ० ३४० ।

टोहाटाई—संज्ञा श्री० [हि० टोह] १. छानबीन । ढूँढ़ । तलाश । २. देखभाल ।

टोहाली(७) — संज्ञा स्त्री० [हि० टोहना] टोह । देखभाल । उ० — करि टोहाली नाम की बिगड़न हूँ कछु नाहि । — राम० धर्म०, पृ० ७१ ।

टोहिया — वि० [हि० टोह] १. टोह लगानेवाला । हूँढ़नेवाला । २. जामूस ।

टोहियाना — क्रि० स० [हि०] ३० 'टोहना' ।

टोही — संज्ञा स्त्री० [हि० टोह] तलाश करनेवाला । पता लगानेवाला ।

टौना(७) — संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'टोना' । उ० — धुनि सुनि मोही राधिका भी ब्रज सिंगरी नाहि, मनी टौना कन्यो । — नंद० प्र०, पृ० १६८ ।

टौस — संज्ञा स्त्री० [म० तमसा] १. एक छोटी नदी जो प्रयोध्या के पश्चिम से निकलकर बलिया के पास गंगा में मिलती है ।

विशेष — रामायण में लिखी हुई तमसा यही है जहाँ बन को जाते हुए रामचंद्र जी ने अपना डेरा रिया या तथा जिससे आगे चलकर गोमती और गंगा पड़ी थी । बालकांड के आदि में तमसा के तट पर वाल्मीकि के आश्रम का होना लिखा है । प्रयोध्याकांड में प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए भी रामचंद्र को वाल्मीकि का आश्रम मिला था पर वही तमसा का कोई उल्लेख नहीं है । इससे संभव है कि वाल्मीकि दो स्थानों पर रहे हों ।

२. एक नदी जो मैहर के पास कैमोर पहाड़ से निकलकर रीवाँ होती हुई मिर्जापुर और इलाहाबाद के बीच गंगा से मिलती है ।

विशेष — इस नदी के तट पर वाल्मीकि का एक आश्रम बतलाया जाता है जो संभवतः उस आश्रम को सूचित करता हो जिसका उल्लेख प्रयोध्याकांड में है ।

३. एक नदी जो जमुना की पहाड़ से निकलकर देहरी और देहरादून होती हुई जमुना में जा मिली है ।

टोहना(७) — क्रि० स० [हि० टोहना] ३० 'टोहना' । उ० — टोहन को पतिया लिखी भेजतु टोहन को सबही धन धर्म । — मं० वर० प्र०, भा० १, पृ० ६३ ।

टोडिक(७) — वि० [?] पेड़ । उ० — टोडिक हूँ घनघनंद डाउत काटत क्यों नहीं दीनता मो दिन । — घनानंद, पृ० २५३ ।

टोनहाल — संज्ञा पुं० [म० टाउनहाल] ३० 'टाउनहाल' ।

टौना टामन(७) — संज्ञा पुं० [हि० टोना + अनु० टामन] जाड़ टोना । तन मन्त्र । उ० — टौना टामन मंत्र यंत्र सब साधन साधे । — ब्रज० प्र०, पृ० १४ ।

टौर(७) — संज्ञा पुं० [हि० टोल] समूह । झुंड । यूथ । उ० — यह भीतर फाग की नीकी फकी मिथियारी हिले कई टौरनि सों । — घनानंद, पृ० ५६८ ।

टौरना — क्रि० स० [हि० टेरना ?] मली बुरी बात की जाँच करना । २. किसी व्यक्ति या बात की जाह्न लेना । पता लगाना ।

टौरिया — संज्ञा स्त्री० [देश०] ऊँचा टीला । छोटी पहाड़ी । उ० — बैरी

अपनी टोपे ऊँची टौरिया पर चढ़ा ले जावेगा और वहाँ से फाटक और बुज की घुस्स करने का उपाय करेगा । — भासी०, पृ० ३२० ।

टौरी — संज्ञा स्त्री० [देश०] टीला । घुस्स । पहाड़ी ।

ट्योम्मा — संज्ञा पुं० [देश०] भँफट । बखेड़ा ।

ट्रंक — संज्ञा पुं० [मं०] लोहे का सफरी संदूक ।

ट्रंप — संज्ञा पुं० [मं०] १. ताश के खेल में वह रंग जो और रंगों के बड़े से बड़े पत्ते को काटने के लिये नियत किया जाता है । ह्वम का रंग । तुरप । २. ट्रंप का खेल ।

ट्रक — संज्ञा स्त्री० [मं०] बोझा ढोनेवाली खुली मोटर ।

ट्राम — संज्ञा स्त्री० [मं०] बड़े बड़े नगरों में एक प्रकार की लंबी गाड़ी जो लोहे की बिछी हुई पटरियों पर चलती है । इसमें पहले घोड़े लगते थे पर अब यह बिजली से चलाई जाती है ।

ट्रेडमार्क — संज्ञा पुं० [मं०] वह चिह्न जो व्यापारी लोग पहचानने के लिये अपने यहाँ के बने या भेजे हुए माल पर लगाते हैं । छाप ।

ट्रस्ट — संज्ञा पुं० [मं०] संपत्ति या दान । संपत्ति को इस विचार या विश्वास से दूसरे व्यक्ति के सुपुर्द करना कि वे संपत्ति का प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखापट्टी या दानपत्र के अनुसार करेंगे ।

ट्रस्टी — संज्ञा पुं० [मं०] वह व्यक्ति जिसके सुपुर्द कोई संपत्ति इस विचार और विश्वास से की गई हो कि वह उस संपत्ति का प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखापट्टी या दानपत्र के अनुसार करेगा । अभिभावक ।

ट्रांसपोर्ट — संज्ञा पुं० [मं०] १. माल प्रसवाव एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना । बारबदारी । २. वह जहाज जिसपर सैनिक या युद्ध का सामान आदि एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है । ३. सवारी । गाड़ी ।

ट्रांसलेटर — संज्ञा पुं० [मं०] वह जो एक भाषा का दूसरी भाषा में उल्था करता है । भाषांतरकार । अनुवादक । जैसे, गवर्न-मेंट ट्रांसलेटर ।

ट्रांसलेशन — संज्ञा पुं० [मं०] एक भाषा में प्रदर्शित भावों या विचारों को दूसरी भाषा के शब्दों में प्रगट करना । एक भाषा को दूसरी में उल्था करना । भाषांतर । अनुवाद । उल्था । तर्जुमा ।

ट्रूप — संज्ञा स्त्री० [मं० ट्रूप] १. पलटन । मैन्डल । जैसे, ब्रिटिश ट्रूप । २. घुड़सवारों का एक दल जिसमें एक कप्तान की अधीनता में प्रायः साठ जवान होते हैं ।

ट्रूस — संज्ञा स्त्री० [मं०] दो लड़नेवाली सेनाओं के नायकों की स्वीकृति से लड़ाई का स्थगित होना । कुछ काल के लिये लड़ाई बंद होना । क्षणिक संधि ।

ट्रेक्टर — संज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का मशीनी हल ।

ट्रेजरर — संज्ञा पुं० [मं० ट्रेजरर] खजानची । कोषाध्यक्ष ।

ट्रेडिङ — संज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र ।

ट्रेडिल मशीन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र जिसे एक घाबरी पैर या बिजली आदि से चलाता तथा हाथ से उसमें कागज रखता जाता है। स्याही इसमें घापसे घाप लग जाती है। इसमें (हाफटोन ब्लॉक) फोटो की तसवीरे बहुत साफ छपती हैं और कार्य बहुत शीघ्रता से होता है।

ट्रेन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. रेलगाड़ी में लगी हुई गाड़ियों की पंक्ति। २. रेलगाड़ी।

मुहा०—ट्रेन छूटना = रेलगाड़ी का स्टेशन पर से चल देना।

ट्रेजेडियन—संज्ञा पुं० [प्र०] १. वह अभिनेता जो विषाद, शोक

और गंभीर भावव्यंजक अभिनय करता हो। २. वियोगांत नाटक लिखनेवाला। वियोगांत नाटकलेखक।

ट्रेजेडी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] नाटक का एक भेद जिसमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटना का वर्णन हो, मनोविकारों का खूब संघर्ष और दंड दिखाया गया हो और जिसका अंत शोक जनक या दुःखमय हो। वह नाटक जिसका अंत करुणोत्पादक और विषादमय हो। दुःखांत नाटक। वियोगांत नाटक।

ठ

ठ—व्यंजनों में बारहवाँ व्यंजन जिसके उच्चारण का स्थान भारत के प्राचीन वैयाकरणों ने मूर्धा कहा है। इसका उच्चारण करने में बहुधा जीभ का अग्रभाग और कभी कभी मध्य भाग तालु के किसी हिस्से में लगाना पड़ता है। यह अशोष महाप्राण वर्ण है।

ठ'कना(पुं)—क्रि० सं० [हि० ठ'कना, ठ'कना] छुपाना। ठ'कना। उ०—(क) मावड़िया मुख ठाँकया, वैसे फाड़े बाक।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० १६। (ख) गोरख के गुरु महा मछीदा तिनहे पकरि सिर ठंका।—सं० दरिया, पृ० १३१।

ठ'खाँ—संज्ञा पुं० [देश०] वृक्ष। पेड़ पीछा। उ०—बहिन बान सब ओपहूँ बेधे रन बन ठंख।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १८६।

ठ'ठ—वि० [सं० स्थाणु] १. जिसकी ढाल और पत्तियाँ सूखकर या कटककर गिर गई हों। ठूँठा। सूखा (पेड़)। २. वृक्ष न देने वाली (गाय)। ३. धनहीन। निर्धन।

ठ'ठनाना^१—क्रि० प्र० [ठंठ से नाम०] ठंठ शब्द की ध्वनि होना।

ठ'ठनाना^२—क्रि० सं० ठठ की ध्वनि करना।

ठ'ठसाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० डिमिडश] डेडस। डेडसी।

ठ'ठार(पुं)—वि० [हि० ठंठ + आर (प्रत्य०)] खाली। रीता। खूँखा। उ०—जसु कछु बीजे धरन कहुँ घापन सेहु संभार। तस सिंगार सब लोन्हेंसि कीन्हेंसि मोहि ठंठार।—जायसी (शब्द०)।

ठ'ठी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंठ + ई (प्रत्य०)] ज्वार, भूँगे आदि का वह पक्ष जो दाना पीटने के बाद बाल में लगा रहता है।

ठ'ठी^२—वि० स्त्री० (बूढ़ी गाय या भैंस) जिसके बच्चा और दूध देने की संभावना न हो। जैसे, ठठी गाय।

ठ ठोकना^१—क्रि० सं० [हि०] ठोकना। पीटना। उ०—तन कूँ जसरो लूटसी लूटै धन कूँ लोक। नान्हों करि करि बालसी हरिया हाइ ठंठोक।—रम० धर्म०, पृ० ७०।

ठ'ड—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंड'।

ठ'डई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंडाई'।

ठ'डक—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंडक'।

ठ'डा—वि० [हि०] दे० 'ठंडा'।

ठ'डाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंडाई'।

ठ'ड—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंडा] शीत। सरदी। जाड़ा।

मुहा०—ठड पड़ना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना।

ठड लगना = शीत का अनुभव होना।

ठ'डई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंडाई'।

ठ'डक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंडा + क (प्रत्य०)] १. शीत। सरदी। उष्णता या गरमी का ऐसा प्रभाव जिसका विशेष रूप से अनुभव हो।

मुहा०—ठडक पड़ना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना।

ठडक लगना = शीत का अनुभव होना। शीत का प्रभाव पड़ना।

२. ताप वा जलन की कमी। ताप की शक्ति। तरी।

क्रि० प्र०—घाना।

३. प्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्ति से उत्पन्न संतोष। मृति। प्रसन्नता। तसल्ली।

क्रि० प्र०—पड़ना।

४. किसी उपद्रव या फैले हुए रोग आदि की शक्ति। किसी हलचल या फैली हुई बीमारी आदि की कमी या अभाव। जैसे,—इधर शहर में हैजे का बड़ा जोर था पर अब ठडक पड़ गई है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

ठंढा—वि० [सं० स्तब्ध, प्र० तड, थड, ठड] [वि० स्त्री० ठंडी] १. जिसमें उष्णता या गरमी का इतना अभाव हो कि उसका अनुभव शरीर को विशेष रूप से हो। सदां। शीतल। गरम का उलटा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—ठंडे ठंडे = ठंड के वक्त में। धूप निकलने के पहले। तड़के। सबेरे। उ०—रात भर सोप्रो, सबेरे उठकर ठंडे ठंडे चले जाना।

थी०—ठंडी प्राग = (१) हिम। बरफ। (२) पाखा। तुषार। ठंडी कड़ाही, ठंडी कढ़ाई = हलवाईयों और बनियों में सब पकवान बना चुकने के पीछे हलुपा बनाकर बटिने की रीति। ठंडी मार = भीतरी मार। ऐसी मार जिसमें ऊपर देखने में कोई दूटा फूटा न हो पर भीतर बहुत चोट आई

हो। गुसी मार। (जैसे, खात घूसों आदि की)। ठंडी मिट्टी = (१) ऐसा शरीर जो जल्दी न बढ़े। ऐसी देह जिसमें जवानों के चिह्न जल्दी न मानूम हों। (२) ऐसा शरीर जिसमें कामोद्दीपन न हो। ठंडी साँस = ऐसी साँस जो दुःख या शोक के आवेग के कारण बहुत खींचकर ली जाती है। दुःख से भरी साँस। शोकोन्मुखता। आह।

मुहा०—ठंडी साँस लेना या भरना = दुःख की साँस लेना।

२. जो जलता हुआ या दहकता हुआ न हो। बुझा हुआ। बुता हुआ। जैसे, ठंडा दीया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३. जो उद्दीप्त न हो। जो उद्विग्न न हो। जो भड़का न हो। उद्गाररहित। जिसमें आवेश न हो। शांत। जैसे, क्रोध ठंडा होना, जोश ठंडा होना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग आवेश और आवेश धारण करनेवाले व्यक्ति दोनों के लिये होता है। जैसे, क्रोध ठंडा पड़ना, उत्साह ठंडा पड़ना, क्रुद्ध मनुष्य का ठंडा पड़ना, उत्साह में पाए हुए मनुष्य का ठंडा पड़ना, आदि।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

मुहा०—ठंडा करना = (१) क्रोध शांत करना। (२) डाढ़स देकर शोक कम करना। डाढ़स बँधाना। तसल्ली देना। माता या शीतला ठंडी करना = शीतला या चेचक के अन्धे होने पर शीतला की प्रतिम पूजा करना।

४. जिसे कामोद्दीपन न होता हो। नामर्द। वपुंसक। ५. जो उद्देगशील या चंचल न हो। जिसे जल्दी क्रोध आदि न आता हो। धीर। शांत। गंभीर। ६. जिसमें उत्साह या उमंग न हो। जिसमें तेजी या फुरती न हो। बिना जोश का। धीमा। सुस्त। मंद। उदासीन।

यो०—ठंडी गरमी = (१) ऊपर की प्रीति। बनावटी स्नेह का आवेश। (२) बातों का जोश। उ०—बस बस यह ठंडी गरमियाँ हमें न दिलाया करो।—तेर०, पृ० १४। ठंडा युद्ध, ठंडी लड़ाई = आधुनिक राजनीति में दाँव पेंच वीं लड़ाई। इसे भीत युद्ध भी कहते हैं। यह अंग्रेजी शब्द कोल्ड वार का अनुवाद है।

७. जो हाथ पैर न हिलाए। जो इच्छा के प्रतिकूल कोई बात होते देखकर क्रुद्ध न बोले। चुपचाप रहनेवाला। विरोध न करनेवाला। जैसे,—वे बहुत इधर उधर करते थे पर जब खरी खरी सुनाई तब ठंडे पड़ गए।

क्रि० प्र०—पड़ना।—रहना।

मुहा०—ठंडे ठंडे = चुपचाप। बिना तूँ किए। बिना विरोध या प्रतिवाद किए।

८. जो प्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्ति से संतुष्ट हो। तृप्त। प्रसन्न। खुश। जैसे,—लो, आज वह चला जायगा, अब तो ठंडे हुए।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ठंडे ठंडे = हँसी खुशी से। कुशल आनंद से। ठंडे घर आना = बहुत तृप्त होकर लौटना (अर्थात् प्रसन्न होकर) या निराश होकर लौटना (व्यंग्य)। ठंडे पेटों = हँसी खुशी से। प्रपन्नता से। बिना मनमोटाह या लड़ाई भगड़े के। मीठी से। ठंडा रखना = आराम चैन से रखना। किसी बात पर तकलीफ न होने देना। संतुष्ट रखना। ठंडे रहो = प्रसन्न रहो। खुश रहो। (स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त एवं आशीर्वादात्मक)। ९. निश्चेष्ट। जड़। मृत। मरा हुआ।

मुहा०—ठंडा होना—मर जाना। ताजिया उठा करना = ताजिया दफन करना। (मूर्ति या पूजा की सामग्री आदि को) ठंडा करना = जल में विसर्जन करना। डुबाना। (किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को) ठंडा करना = (१) जल में विसर्जन करना। डुबाना। (२) किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को फेंकना या तोड़ना फोड़ना। जैसे, चुड़ियाँ ठंडी करना।

१०. जिसमें चहल पहल न हो। जो गुलजार न हो। बेरोनक।

मुहा०—बाजार ठंडा होना = बाजार का चलता न होना। बाजार में लेनदेन खूब न होना।

ठंडाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंडा + ई (प्रत्यय)] १. वह दवा या मसाला जिससे शरीर की गरमी शांत होती है और ठंडक आती है।

विशेष—रौफ, इलायची, कासनी, ककड़ी, कदु, खरबूजे आदि के बीज, गुलाब की पंखड़ी, गोल मिर्च आदि को एक में पीसकर प्रायः ठंडाई बनाई जाती है।

२. ऊपर लिखे मसालों से युक्त भाँग या शर्बत।

क्रि० प्र०—पीना।—लेना।

ठंडा मुलम्मा—संज्ञा पु० [हि० ठंडा + प्र० मुलम्मा] बिना आँच के सोना चाँदी चढ़ाने की रीति। सोने चाँदी का पानी जो बेटरी के द्वारा या तेजाब की लाग से चढ़ाया जाता है।

ठंडी—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'ठंडा' और उसके मुहा०।

ठंडी—संज्ञा स्त्री० शीतला। चेचक (स्त्रि०)।

मुहा०—ठंडी लगन = शीतला के शर्मों का मुरझाना। चेचक का जार कम होना। ठंडी निकलना = शीतला के दाने शरीर पर होना। शीतला यह चेचक का रोग होना।

ठंभनी—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भन, प्रा० ठंभन] रुकने की स्थिति। रुकावट। उ०—घिन यो ठंभन जग माहीं, एक हरि बिभ हुआ नाहीं।—राम० धर्म०, पृ० २५३।

ठंसरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तंत्रवाद्य [स्त्री०]।

ठः—संज्ञा पु० [सं० अनुध्व०] एक ध्वनि जो किसी घातुपात्र के कड़ी जमीन या सीढ़ियों पर गिरने से अंत में होती है [स्त्री०]।

ठ—संज्ञा पु० [सं०] १. शिव। २. महाध्वनि। ३. चंद्रमंडल या सूर्य-मंडल। ४. मंडल। घेरा। ५. शून्य। ६. गोचर। इन्द्रियग्राह्य वस्तु।

ठई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठह > ठही] स्थिति। थाह। व्यवस्था।

ठकरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठीर' । उ०—उहाँ सब सुखा निधि प्रति बिलास है अनंत धानसम ठकरा ।—प्राण०, पृ० ६५ ।

ठकरवाँ†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठाव' । उ०—जंगम जोग विचारे जहूँ, जीव सीव करि एकै ठकरवाँ ।—कबीर ग्रं०, पृ० २२३ ।

ठक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० ठक] एक वस्तु पर दूसरी वस्तु को जोर से मारने का शब्द । ठोकने का शब्द ।

ठक—वि० [सं० स्तब्ध, प्रा० टहु] स्तब्ध । भीचका । आश्चर्य या घबराहट से निश्चेष्ट । सप्ताटे में धाया हुआ ।

मुह्रां—ठक से होना = स्तब्ध होना । आश्चर्य में होना । उ०—उनकी सोम्य मूर्ति पर लोचन ठक से बँध जाते ।—प्रमथन०, भा० २, पृ० ३८ ।

क्रि० प्र०—रह जाना ।—हो जाना ।

ठक—संज्ञा पुं० [दे०] चंद्रबाजों की सलाई या सूजा जिसमें धकीम का किस्म लगाकर सँकेते हैं ।

ठक†—संज्ञा पुं० [हि० ठग] दे० 'ठग' । जैसे, ठकमूरी (= ठगमूरी) । उ०—ठाकुर ठक भए गेल चोरें चप्परि घर लिज्जिम ।—कीर्ति०, पृ० १६ ।

ठकठक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० ठकठक] १. लगातार होनेवाली ठकठक की ध्वनि या आवाज । २. झगड़ा । बहस । टंटा । झगडा । उ०—ठकठक जन्म मरन का मेटे जम के हाथ न आवै ।—कबीर० ग्रं०, पृ० २६ । (ख) उठि ठकठक एती कहा, पावस के अभिसार । जानि परैगी देखि यों दामिनि घन घँघियार ।—विहारी (शब्द०) ।

ठकठकाना—क्रि० सं० [अनुध्व० ठकठक] १. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु पटककर शब्द करना । खटखटाना । २. ठोकना । पीटना ।

ठकठकाना†—क्रि० प्र० स्तब्ध होना । ठक से होना ।

ठकठकिया—वि० [अनुध्व० ठकठक + हि० हया (प्रत्य०)] १. हृज्जती । थोड़ी सी बात के लिये बहुत दलील करनेवाला । सकरार करनेवाला । बखेदिया ।

ठकठौआ—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. एक प्रकार की कपतान । २. करताब बजाकर भीख माँगेवाला । ३. एक प्रकार की छोटी नाव ।

ठकमूरी†—संज्ञा स्त्री० [हि०] स्तब्ध या निश्चेष्ट करनेवाली बड़ी । दे० 'ठगमूरी' । उ०—जा दिन का डर मानता बौड़ बला बाई । भक्ति न कीन्हो राम की ठकमूरी बाई ।—मल्ल०, भा० १, पृ० ११ ।

ठका†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठक (= घाघात या धक्का)] धक्का । धोड़ । घाघात । उ०—करै मार वगं ठका देन जावे ।—प० रासी, पृ० १४४ ।

ठकार—संज्ञा पुं० [सं०] 'ठ' ध्वनि ।

ठकुरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठोकवा' ।

ठकुरई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठकुराई' ।

ठकुरसुहाती†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर (= मालिक) + सुहाती]

ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न करने के लिये कही जाय । ललोचप्पो । खुशामद । तोषमोद । उ०—हमहु कह्य अब ठकुरसुहाती ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठकुर सोहाती—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठकुरसुहाती' । उ०—ठकुर-सोहाती कर रहे हो कि एकाध पत्तल मिला जाय ।—मान०, भा० ५, पृ० ३० ।

ठकुराइत†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठकुरायत' । उ०—जो कही क्यों गई दामी हमारी । तमि तवि गृह ठकुराइत भारी ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२१ ।

ठकुराइति, ठकुराइती†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठकुरायत + ई (प्रत्य०)] स्वामित्व । प्रभुत्व । आधिपत्य । उ०—रमा उमा सी दासी जाकी । ठकुराइति का कहिये ताकी ।—नंद० ग्रं०, पृ० १३० ।

ठकुराइन†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] १. ठाकुर की स्त्री । स्वामिनी । मालकिन । उ०—नहि दामो ठकुराइन कोई । जहँ देखो तहँ बह्य है सोई ।—भूर (शब्द०) । २. क्षत्रिय की स्त्री । अत्राणी । ३. नाहन । नाउन । नाई की स्त्री । उ०—देव स्वक्य की रामि निहारति पाय ते सीस लौ सीस ते पाइन । त्वँ रही और ही टाढ़ी ठगी मी हमे कर टोकी दिए ठकुराइन ।—देव (शब्द०) ।

ठकुराइसी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठकुरायन' ।

ठकुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] १. आधिपत्य । प्रभुत्व । सरदारी । प्रधानता । उ०—अब तुलसी गिरवर बिनु गोमूल को करिहै ठकुराई ।—तुलसी (शब्द०) । २. ठाकुर का अधिकार । स्वामी होने के अधिकार का उपयोग । जैसे,—खेत में कैसी ठकुराई ? उ०—न्याय न किय कोनी ठकुराई । बिना किए लिखि सोनि बुराई ।—जायसी (शब्द०) । ३. वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो । राज्य । रियासत । ४. उच्चता । बढ़पन । महत्व । बढ़ाई । उ०—हरि के जन की प्रति ठकुराई । महाराज ऋषिराज राजहूँ देखत रहे लबाई ।—भूर (शब्द०) ।

ठकुरानी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] १. ठाकुर या सरदार की स्त्री । जमींदार की स्त्री । २. रानी । उ०—निज मंदिर ते गई बकिमल्लो पहनाई बिधि ठानी । सूरदास प्रभु तँह पग धारे जहँ दोऊ ठकुरानी ।—सूर (शब्द०) । ३. मालकिन । स्वामिनी । अधीश्वरी । ४. क्षत्रिय की स्त्री । अत्राणी ।

ठकुरानी तीज†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठकुरानी + तीज] श्रावण शुक्ल तृतीया को मनाया जानेवाला एक व्रत । हरियाली तीज ।

ठकुराय†—संज्ञा पुं० [हि० ठाकुर] क्षत्रियों का एक भेद । उ०—गहरवार परहार सकरे । कलहस घोर ठकुराय जूरे ।—जायसी (शब्द०) ।

ठकुरायत—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] आधिपत्य । स्वामित्व । प्रभुत्व । उ०—ठकुरायत गिरवर की साँची । कीरव जीति जुधिठिर राजा कीरति तिहँ लोक मे माँची ।—सूर०, १।१७ । २. वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो । रियासत ।

ठकुराला—संज्ञा पुं० [हि० ठाकुर + ाल (प्रत्य०)] दे० 'ठाकुर' ।
उ०—चल्या ठकुराल्या न लाबीय वार । भोज तणी
मिलिया भ्रमवार ।—बी० रासो०, पृ० १६ ।

ठकुरास—संज्ञा स्त्री० [हि०] ठकुरास । अधिकारक्षेत्र । रियामत ।
उ०—सुम्हे मिली है मानव हिय की यह चंचल ठकुरास । पर,
हमको तो मिली अचंचल मस्ती की जागीर ।—अपलक,
पृ० ७३ ।

ठकोरा—संज्ञा पुं० [हि० ठक + धोरा (प्रत्य०)] टंकोर । आघात ।
चोट । उ०—कजर के पहर गजर ठकोरा बगे ।—रघु० ६०,
पृ० २३८ ।

ठकोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठकना, ठकना + धोरी (प्रत्य०)] १.
सहारा लेने की लकड़ी । उ०—(क) भक्त भरोसे राम के
निधरक ऊँची दीठ तिनको करम न लागई राम ठकोरी
पीठ ।—कबीर (शब्द०) । (ख) देखादेखी पकरिया गई
छिनक में छूटि । कोई बिरला जन ठाहरे जासु ठकोरी पूठि ।—
कबीर (शब्द०) ।

विशेष—यह लकड़ी घड़े के आकार की होती है । पहाड़ी
लोग जब बोझ लेकर चलते चलते थक जाते हैं तब इस लकड़ी
को पीठ या कमर से भिड़ाकर उसी के बल पर थोड़ी देर
खड़े हो जाते हैं । साधु लोग भी इसी प्रकार की लकड़ी सहारा
लेने के लिये रखते हैं और कभी कभी इसी के सहारे बैठते
हैं । इसे वे वैरागिन या जोगिनी भी कहते हैं ।

ठक्क—संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी । को० ।

ठक्कर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठक्कर' ।

ठक्कर—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] गुजरातियों की एक जातीय
उपाधि या धरल ।

ठक्कुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. देनता । ठाकुर । पूज्य प्रतिमा । २.
मिथिला के ब्राह्मणों की एक उपाधि ।

ठग—संज्ञा पुं० [सं० स्थग] [स्त्री० ठगनी, ठगिन ठगिनी] १.
धोखा देकर लोगों का धन हरण करनेवाला व्यक्ति । वह
लुटेरा जो छल धोर धूर्तता से माल लूटता है । भुलावा देकर
लोगों का माल छीननेवाला । उ०—जग हटवाग स्वाद ठग,
माया वेश्या लाय । राम नाम गाढ़ा गहो जनि कहूँ जाहु
ठगाय ।—कबीर (शब्द०) ।

विशेष—ठाकू धोर ठग से यह अंतर है कि ठाकू प्रायः जबरदस्ती
बल दिखाकर माल छीनते हैं पर ठग अनेक प्रकार की धूर्तता
करते हैं । भारत में इनका एक अलग संप्रदाय सा हो
गया था ।

मुहा०—ठग लगना—ठगों का आक्रमण करना या पीछे पड़ना ।
जैसे,—उस रास्ते में बहुत ठग लगते हैं । ठग के लाडू=दे०
'ठगलाङ्ग' ।

यौ०—ठगमूरी । ठगमोदक । ठगलाङ्ग । ठगविद्या ।

२ छली । धूर्त । धोखेबाज । चक्क । पतारक ।

गई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + ई (प्रत्य०)] १. ठगपना । ठग
का काम । २. धोखा । छल । फरेब ।

ठगण—संज्ञा पुं० [सं०] मात्रिक छंदों के गणों में से एक । यह पाँच
मात्राओं का होता है और इसके ८ उपभेद हैं ।

ठगना—क्रि० सं० [हि० ठग + ना (प्रत्य०)] धोखा देकर माल
लूटना । छल धोर धूर्तता से धन हरण करना । २. धोखा
देना । छल करना । धूर्तता करना । भुलावे में डालना ।

मुहा०—ठगा सा, ठगी सी=धोखा खाया हुआ । भुला हुआ ।
चकित । भौचक्का । आश्चर्य से स्तब्ध । दंग । उ०—(क)
करत कछु नही धाजु बनी । हरि आए हों रही ठगी सी जैसे
चित्र धनी ।—सूर (शब्द०) । (ख) चित्र में काढ़ी सी ठाढ़ी
ठगी सी रही कछु देख्यो सुन्यो न मुशत है ।—सुंदरीसर्वस्व
(शब्द०) ।

३. उचित से अधिक मूल्य लेना । बाजिब से बहुत ज्यादा दाम
लेना । सोदा बेचने में बेईमानी करना । जैसे,—यह दूकानदार
लोगों को बहुत ठगता है ।

संयो० क्रि०—लेना ।

ठगना—क्रि० प्र० १. ठगा जाना । धोखा खाकर लुटना । २.
धोखे में आना । चकित होना । आश्चर्य से स्तब्ध होना ।
ठक रह जाना । दंग रहना । उ०—(क) तेउ यह चरित देखि
ठगि रहहीं ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बिनु देखे बिन ही
सुने ठगत न कोउ बाँच्यो ।—सूर (शब्द०) ।

ठगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग] १. ठग की स्त्री । २. ठगनेवाली
स्त्री । ३. धूर्त स्त्री । छलनेवाली स्त्री । ४. कुटनी ।

ठगपन—संज्ञा पुं० [हि० ठग + पन (प्रत्य०)] दे० 'ठगपना' ।

ठगपना—संज्ञा पुं० [हि० ठग + पन + आ (प्रत्य०)] १. ठगने
का काम या भाव । २. धूर्तता । छल । चालाकी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठगमूरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + मूरी] वह नशीली जड़ी बूटी जिसे
ठग लोग पयिकों को बेहोश करके उनका धन लूटने के लिये
खिलाते थे ।

मुहा०—ठगमूरी खाना=मतवाला होना । होशहवाश में न
रहना । उ०—(क) काहूँ तोहूँ उगोरी लाई । बूझति सखी
सुतति नहिँ नेकहु तुहीँ किधो ठगमूरी लाई ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) यो ठगमूरी खाइके मुखहि न बोले बिन । दुगर दुगर देखा
करै सुंदर बिरहा ऐन ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६८३ ।

ठगमूरी—वि० स्त्री० ठगमूरी से प्रभावित । उ०—टक टक ताकि
रही ठगमूरी आपा आप बिसारी हो ।—पलटू०, भा० ३,
पृ० ८४ ।

ठगमोदक—संज्ञा पुं० [हि० ठग + सं० मोदक] दे० 'ठगलाङ्ग' ।
उ०—चलन चितै मुसकाय के मृदु बचन सुनाए । तेही
ठगमोदक आए, मन धीर न, हरि तन छूछो छिउकाए ।—सूर
(शब्द०) ।

ठगलाङ्ग—संज्ञा पुं० [हि० ठग + लाङ्ग (= लड्डू)] ठगों का लड्डू
जिसमें नशीली या बेहोशी करनेवाली बीज मिली रहती थी ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि ठग लोग पयिकों से रास्ते में मिलकर
उन्हें किसी बहाने से अपना लड्डू खिला देते थे जिसमें विष

या कोई नशीली चीज मिली रहती थी। जब लड़कू खाकर पथिक मुर्छित या बेहोश हो जाते थे तब वे उनके पास जो कुछ होता था सब ले लेते थे।

मुहा०—ठगलाडू खाना = मतवाला होना। होशहवास में न रहना। बेसुध होना। उ०—सूर कहा ठगलाडू खायो। इत उत फिरत मोह को मातो कबहूँ न सुधि करि हरि चित लायो।—सूर (शब्द०)। ठगलाडू देना = बेसुध करनेवाली वस्तु देना। उ०—मनहु दीन ठगलाडू देल प्राय तस मीच।—जायसी (शब्द०)।

ठगलोला—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + लोला] ठगों का मायाजाल। बंचना। धोखाधड़ी। उ०—छूटेगी जग की ठगलीखा होंगी भाखें प्रतःशीला।—बेला, पृ० ७६।

ठगवा(५)†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठग'। उ०—कोनो ठगवा नगरिया लूटल हो।—कबीर० श०, भा० १, पृ० २।

ठगवाना—क्रि० स० [हि० ठगना का प्रे० रूप] दूसरे से किसी को धोखा दिलवाना।

ठगविद्या—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + सं० विद्या] ठगों की कला। धूर्तता। धोखेबाजी। छल। बंचकता।

ठगहाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + हाई (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगहारी†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + हारी (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगाइनि(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ठगनेवाली स्त्री। ठगिनी। उ०—बदि परे नर काल के बुद्धि ठगाइनि जानि।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० ८८।

ठगाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + घाई (प्रत्य०)] दे० 'ठगपना'।

ठगाठगी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग] धोखेबाजी। बंचकता। धोखाधड़ी।

ठगाना†—क्रि० प्र० [हि० ठगना] १. ठगा जाना। धोखे में आकर हानि सहना। २. किसी वस्तु का अधिक मूल्य दे देना। दूकानदार की बातों में आकर ज्यादा शम दे देना। जैसे,—इस सोदे में तुम ठगा गए। ३. (किसी पर) आसक्त होना। मुग्ध होना।

संयो० क्रि०—जाना।

ठगाही†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठगाई', 'ठगहाई'। उ०—नाहक नर सुली धरि कीन्हों। जिन बन भाँहि ठगाही कीन्हों।—विश्राम (शब्द०)।

ठगिन—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + इन (प्रत्य०)] १. धोखा देकर लूटनेवाली स्त्री। लुटेरिन। २. ठग की स्त्री। ३. धूर्त स्त्री। चालबाज औरत।

ठगिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + इनी (प्रत्य०)] १. लुटेरिन। धोखा देकर लूटनेवाली स्त्री। उ०—ठगति फिरति ठगिनी तुम नारी। जोइ भावति सोइ सोइ कहि डारति जाति जनावति वे दे गारी।—सूर (शब्द०)। २. ठग की स्त्री। ३. धूर्त स्त्री। चालबाज स्त्री।

ठगिया†—संज्ञा पुं० [हि० ठग + इया (प्रत्य०)] दे० 'ठग'।

उ०—जुरे सिद्ध साधक ठगिया से बड़ो जाल फैलायो।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४४६।

ठगिया†—वि० ठगनेवाला। छलनेवाला। उ०—ठगिया तेरे नैन ये छल बल भरे कितेब।—स० समक, पृ० १६३।

ठगी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + ई (प्रत्य०)] १. ठग का काम। धोखा देकर माल लूटने का काम। २. ठगने का भाव। ३. धूर्तता। धोखेबाजी। चालबाजी।

ठगोरी(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + बीरी] ठगों की सी माया। मोहित करने का प्रयोग। मोहिनी। सुधबुध भुलानेवाली शक्ति। टोना। जादू। उ०—(क) जानहु लाई काहु ठगोरी। खन पुकार खन बाँधे बीरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) इसन चमक अधरन धरनाई देखत परी ठगोरी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—हालना।—पढ़ना।—लगना।—लगाना।

ठगौरी(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० ठगोरी] दे० 'ठगोरी'। उ०—रूप ठगौरी डार मन मोहन लेगी साथ। तब नैं सखि धरत है नारी नारी हाथ।—स० समक, पृ० १८५।

ठट—संज्ञा पुं० [सं० स्थाता (= जो खड़ा हो), या देश०] १. एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह। एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पंक्ति।

मुहा०—ठट के ठट = झुंड के झुंड। बहुत से। उ०—रात का वक्त था मगर ठट के ठट लगे हुए थे।—फिसाना०, भा० २, पृ० १०४। ठट लगना = (१) भीड़ जमना। भीड़ खड़ी होना। (२) ढेर लगना। राखि इकट्ठी होना।

२. समूह। झुंड। पंक्ति। उ०—संबर समर हरखत बरखत फूल सनेहु सिधिल गोप गाइन के ठट है।—तुलसी (शब्द०)।

३. बनाव। रचना। सजावट। उ०—परखत प्रीति प्रतीति पैष पन रहे काज ठट ठानि है।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—ठटवारी = सजाववाली। बनाव वाली।

ठटकीला—वि० [हि० ठाट] [वि० स्त्री० ठटकीली] सजा हुआ। ठाटदार। सजीला। तड़क भड़कवाला। उ०—भाछी चरननि कंचन लकुट ठटकील बनमाल कर टेके द्रुमबार टेढ़े ठाढ़े नंदलाल छबि छाई घट घट।—सूर० (शब्द०)।

ठटना†—क्रि० स० [सं० स्थाता (= जो खड़ा या ठहरा हो)। हि० ठाट, ठाढ़] १. ठहराना। निश्चित करना। स्थिर करना। उ०—होत सु जो रघुनाथ ठटी। पचि पचि रहे सिद्ध, साधक, मुनि तऊ बड़ी न घटी।—सूर (शब्द०)। २. सजाना। सुसज्जित करना। तैयार करना। उ०—(क) रुप बन्यो बिकट रन ठाट ठाठि मार मार घर मार रटि।—गोपाल (शब्द०)। (ख) कोऊ करि जलपान मुरेठा ठाठि ठाठि बान्हत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४०।

मुहा०—ठटकर बातें करना = बना बनाकर बातें करना। एक एक शब्द पर जोर देते हुए बातें करना।

३. (राय) खेड़ना। आरम्भ करना। उ०—नव निकुञ्ज गृह नवल भागे नवल बीना भवि राग गोरी ठटी।—हरिदास (शब्द०)।

ठटना^२—क्रि० प्र० १. लड़ा रहना । घड़ना । ठटना । उ०—खैचत स्वाद स्वाद पातर ज्यों बातक रटत ठटी ।—सूर (शब्द०) ।
२. विरोध में जमना । विरोध में ठटा रहना । ३. सजना । सुसज्जित होना । तैयार होना । उ०—जबहीं घाह चढ़े दल ठटा । देखत जैसे पगन पन घटा ।—जायसी (शब्द०) ।
४. एकत्र होना । जमाव होना । पुंजीभूत होना । उ०—छत्तीस राग रागनि रसनि तंत ताल कंठन ठटहि ।—पृ० रा०, ८।२ । ५. स्थित होना । धरना । करना । साधना । उ०—कोई नाँव रटे कोई ध्यान ठटे कोई खोजत हो एक जावता है ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० २६८ ।

ठटनि(५), ठटनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठटना] बनाव । रचना । सजावट । उ०—नाचि भँवर त्रिवली तरंग गति पुलिन पुलिन ठटनी ।—सूर (शब्द०) ।

ठटया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंयलो जानवर ।

ठटरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाठ] १. हड्डियों का ढाँचा । अस्थिपंजर ।

मुहा०—ठटरी होना = दुबला होना । ह्वाय होना ।

२. पास भूसा घावि बाँधने का जाज । खरिया । खड़िया । ३. किसी वस्तु का ढाँचा । ४. मुरदा उठाने की रीति । धरयो ।

ठट्टा—संज्ञा पुं० [हि० ठाठ] बनाव । रचना । सजावट ।

ठट्ट—संज्ञा पुं० [सं० तट, हि० टट्टी वा सं० स्थाता] १. एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह । एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पंक्ति । २. समूह । भुंड । समुदाय । पंक्ति । उ०—(क) इस रहहि गणता विरुद भणता, भट्टा ठट्टा पेक्षीषा ।—कीर्ति०, पृ० ४८ । (ख) देखि न जाय कपिन के ठट्टा । प्रति विनाश तनु मानु मुमट्टा ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) पिपट भट्ट के ठट्ट घर गुजरातिन के बुंद ।—हरिवंश (शब्द०) ।

ठट्टना(५)—क्रि० प्र० [हि० ठटना] आयोजन करना । ठाटना । उ०—सु रोमराह राजई उषम कवि साजई । धुमेर भृंग कंद के, चढ़े परीख चंद के । उषम कवि ठट्टई बबक मुट्टि चहुई ।—पृ० रा०, २६ । १३२ ।

ठट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाठ] ठट्टरी । पंजर । हड्डी का ढाँचा । उ०—उर संतर धुंधुपाह जरे जस काँच की भट्टी । रक्त मांस जरि जाय रहे रज्जर की ठट्टी ।—मिरसर (शब्द०) ।

ठट्टा—संज्ञा पुं० [हि० ठट्ट] दे० 'ठट' और 'ठट्ट' ।

ठट्टई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्टा] टट्टा । दिल्गी । हंसी ।

ठट्टा^१—संज्ञा पुं० [सं० घट्टहास या सं० टट्टरी (= उपहास)] हंसी । उपहास । दिल्गी । मसखरापन । खिल्ली । उ०—तब नीरू ने कहा कि लोग मुझको हँसेंगे और ठट्टा में उड़ावेंगे ।—कबीर मं०, पृ० १०४ ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—ठट्टाबाज, ठट्टेबाज = दिल्गीबाज । ठट्टेबाजी = दिल्गी ।

मुहा०—ठट्टा उड़ाना = उपहास करना । दिल्गी करना । उ०—और लोग तरह तरह की नकसे करके उसका ठट्टा उड़ाते थे ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० १७६ । ठट्टा मारना =

खिलखिलाना । घट्टहास करना । ठट्टा में उड़ाना = किसी की चर्चा या कथन को मजाक समझना । खिल्ली उड़ाना । ठट्टा लगाना = खिलखिलाकर हँसना । ठाठकर हँसना । घट्टहास करना ।

ठठ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठठ' । २. 'ठाठ' । उ०—करि पान गंवा जल बिमल फिर ठठे ठठ घमसान के ।—हिम्मत०, पृ० २२ ।

ठठई(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० टट्टरी] हंसी । ठट्टा । मसखरापन । उ०—हुतो न गँवो सनेह मिटयो मन को, हरि परे उधरि, संदेसहु ठठई ।—तुलसी प्र०, पृ० ४४३ ।

ठठकना(५)†—क्रि० प्र० [सं० स्तेय + करण] १. एकबारगी रुक या ठहर जाना । ठठकना । उ०—(क) ठठकति चले मटक मुँह मोरे बंकट भौह चलावे ।—सूर (शब्द०) । (ख) डग कुडगति सी चलि ठठकि चितई चली निहारि । लिये जाति चित चोरटी वहे गोरटी बारि ।—बिहारी (शब्द०) । २. स्तंभित हो जाना । क्रियाशून्य हो जाना । ठक रह जाना । उ०—मन में कछु कहन चहै देखत ही ठठकि रहै सूर श्याम निरखत दुरी तन सुधि बिसराय ।—सूर (शब्द०) ।

ठठकाना†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठकना] ठठकने का भाव ।

ठठना†—क्रि० सं० क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठटना' । उ०—चौकि चले, ठठि छैल छले, सु छबीली छराय लौ छहि न छवावे ।—घनानंद, पृ० २१२ ।

ठठरी†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठट्टरी' ।

ठठवा†—संज्ञा पुं० [हि० टाट] एक प्रकार का रुखा और मोटा कपड़ा । इकतारा । समगजा ।

ठठा†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठट्टा' ।

ठठाना^१—क्रि० सं० [अनु० ठक् ठक्] ठोकना । आघात लगाना । पीटना । जोर जोर से मारना । उ०—फले फूले फँले लल, सीधे साधु पल पल, बाती दीपमालिका ठठाइयत सुप है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दंत ठठाइ टोठरे कीने । रहे पठान सकल भय भीने ।—खाल (शब्द०) ।

ठठाना^२—क्रि० प्र० [सं० घट्टहास] खिलखिलाना । घट्टहास करना । कहकहा खगाना । जोर से हँसना । उ०—दुइ कि होइ इक संघ भुषालु । हँसत ठठाइ फुलावत गालु ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठठिया(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्टर (= ढाँचा या ठट्टरी)] हड्डियों का ढाँचा । काया । शरीर । उ०—काह अप टठिया के भेटे । शीख दरस बिनु भरम न भेटे ।—कबीर सा०, पृ० ४१२ ।

ठठियार^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्टरी (= ढाँचा)] ढाँचा । टट्टर । अस्थिशेष । उ०—तस सिगार सब लीन्हैसि मोहि कीन्हैसि ठठियारि ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३४१ ।

ठठियार^२—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली चीपायों को चरानेवाला । चरवाहा ।—(नेपाल तराई) ।

ठठिरिन†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठेरा] ठठेरिन । ठठेरे की स्त्री । उ०—ठठिरिन बहुतइ ठाठर कीन्ही । चली महीरिन काजर कीन्ही ।—जायसी (शब्द०) ।

ठठकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठठकना', 'ठठकना' । उ०—
दूर ही से मुझे घाट में नहाते देख ठठके ।—श्यामा०,
पृ० १७ ।

ठठेर मंजारिका—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठेरा + सं० मंजारिका] ठठेरे
की बिल्ली । उ०—ग्रहे बजंभी हरित भ्रम कहा बजावे बोन ।
या ठठेर मंजारिका सुर सुनि मोहिगी न ।—दीनदयाल
(शब्द०) ।

विशेष—ठठेरी की बिल्ली के सामने रात दिन बरतन पीटे जाने
से न तो वह बोड़ी लड़खड़ाहट से डरती है न किसी अच्छे
शब्द पर मोहित होती है ।

ठठेरा^१—संज्ञा पुं० [अनु० ठन ठन अथवा हि० टाटी + एरा (प्रत्यय०)]
[स्त्री० ठठेरिन, ठठेरी] धातु को पीट पीटकर बरतन
बनानेवाला । बरतन बनानेवाला । कसेरा ।

मुहा०—ठठेरे ठठेरे बदलाई=जैसे का वैसा व्यवहार । एक ही
प्रकार के दो मनुष्यों का परस्पर व्यवहार । ऐसे दो भादमियों
के बीच व्यवहार जो चालाकी, धूर्तता, बल आदि में एक
दूसरे से कम न हों । ठठेरे की बिल्ली=ऐसा मनुष्य जो कोई
अशुभ काम देखते देखते या सुनते सुनते अश्वस्त हो गया
हो । ऐसा मनुष्य जो कोई खटके की बात देखकर न चौंके
या न चबराय ।

विशेष—ठठेरे की बिल्ली दिन रात बरतन का पीटना सुना
करती है । इससे वह किसी प्रकार की आहट या खटका सुनकर
नहीं डरती ।

ठठेरा^२—संज्ञा पुं० [हि० ठठ] ज्वार बाजरे का डंठल ।

ठठेरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठेरा] १. ठठेरा की स्त्री । २. ठठेरा
बाति की स्त्री । ३. ठठेरा का काम । बरतन बनाने का काम ।
यौ०—ठठेरी बाजार ।

ठठेरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टट्टर (= रोक)] अवरोध । रोक ।
घाड़ । उ०—बीसा तीस गोलासू ठठेरी तोड़ नापी । सारे
तोप राजा की अर्चना झोड़ नांभी ।—शिक्षर०, पृ० ७५ ।

ठठोल—संज्ञा पुं० [हि० ठठ्ठा] [स्त्री० ठठोलिन] १. ठठ्ठेबाज ।
विनोद प्रिय । दिल्लगीबाज । मसखरा । उ०—पूँछ मरौरत
झोलई ऐठ्यो फिरत ठठोल ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १,
पृ० ३१६ । २. ठठोली । हँसी । दिल्लगी । उ०—याद परी
सब रस की बातें बढ़ि गयो विरह ठठोलन सौं ।—भारतेंदु
ग्रं०, भा० २, पृ० ३८५ ।

ठठोली—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठ्ठा] हँसी । दिल्लगी । मसखरापन ।
मजाक । वह बात जो केवल विनोद के लिये की जाय ।
उ०—ऐसी भी रही ठठोली ।—अर्चना, पृ० ३४ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठठकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठठकना', 'ठठकना' ।

ठठ्ठा—वि० [सं० स्थातृ] खड़ा । दंडायमान ।

यौ०—ठठ्ठा व्योहार=वह सामाजिक व्यवहार जिसमें रूपों
का खेब देव च होता हो ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठड़िया—संज्ञा पुं० [हि० ठाड़] वह नैचा जिसकी निगाली बिनकुल
खड़ी होती है ।

विशेष—ऐसा नैचा लखनऊ में बनता है और मिट्टी की फरशी में
लगाया जाता है । मुसलमान इसका व्यवहार अधिक
करते हैं ।

ठड़ा—संज्ञा पुं० [हि० ठड़ा] १. पीठ की खड़ी हड्डी । रीढ़ ।

यौ०—ठड़ाहट्टी=जिसकी कमर झुकी हो । कुबड़ी ।—(स्त्रि०) ।

२. पतंग में लगी हुई खड़ी कमाची । काँप का उलटा । ३. ठाँचा ।
टट्टर । उ०—दुर्वीन और केलों के ठड्डे खड़ा कर देते ।—
प्रेमधन०, भा० २, पृ० ६ ।

ठढ़ा—वि० [सं० स्थातृ] खड़ा । दंडायमान । उ०—तरकि तरकि
अति बज्र से ढारें । मदमत इद्र ठढ़ी फलकारें ।—नद०
ग्रं०, पृ० १६२ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठड़िया—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाड़ (= खड़ा)] १. काठ की वह ऊँची
भोखली जिसमें पड़े हुए धान को खिया खड़ी होकर कुटती
है । २. मरसा नाम का शाक । ३. पशुओं का एक रोग ।

ठड़ियाना—क्रि० प्र० [हि० ठड़ा (= खड़ा)] खड़ा करना ।

ठठुई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठठिया' ।

ठन—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठन ठन] धातुखंड पर आघात पड़ने का शब्द ।
किमी धातु के बजने का शब्द ।

यौ०—ठन ठन=चमड़े से मड़े हुए बाजे का शब्द ।

ठनक—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठन ठन] १. मृदंगादि की ध्वनि । चमड़े
से मड़े बाजे पर आघात पड़ने का शब्द । उ०—लनक चुरीन
की त्यो ठनक मृदगन की खुनुक झुनुक सुर तुरुर के जाल को ।
—पद्माकर (शब्द०) । २. रह रहकर आघात पड़ने की
सी पीड़ा । टीस । चसक । ३. धातुखंड पर आघात होने
से उत्पन्न शब्द । ठन ।

मुहा०—ठनककर बोलना=कड़ी आवाज में कुछ कहना ।

उ०—सिंह ठनाने होए बोले ठनकि के, रन जीते फिरि
भावे ।—सं० दरिया, पृ० ११५ ।

ठनकना—क्रि० प्र० [अनु० ठन ठन] १. ठन ठन शब्द करना ।
धातुखंड अथवा चमड़े से मड़े बाजे आदि का आघात पाकर
बजना । जैसे, तबला ठनकना । २. रह रहकर आघात पड़ने
की सी पीड़ा होना । जैसे, माथा ठनकना ।

मुहा०—तबला ठनकना=दृश्य गीत आदि होना । उ०—हम ओ
रस्ते रात के आगत रहे तो तबला ठनकत रहा ।—भारतेंदु
ग्रं०, भा० १, पृ० ३२६ । माथा ठनकना=किसी बुरे खलखल
को देखकर चित्त में घोर आशंका उत्पन्न होना । जैसे, छार
पाते ही माथा ठनका ।

ठनका—संज्ञा पुं० [हि० ठनक] १. धातुखंड आदि पर आघात पड़ने
का शब्द । २. आघात । ठोकर । ३. रह रहकर आघात
पड़ने की सी पीड़ा ।

ठनकाना—क्रि० स० [हि० ठनकना] किसी धातुखंड या चमड़े से मड़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना । बजाना । जैसे, सबला ठनकाना, रुपया ठनकाना ।

मुहा०—रुपया ठनका लेना = रुपया बजाकर ले लेना । रुपया बसूल कर लेना । उ०—जैसे, तुमने रुपए तो ठनका लिए मेरा काम हो या न हो ।

ठनकार—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठन ठन] धातुखंड के बजने का शब्द ।

ठनकारना—क्रि० प्र० [हि० ठनकार] फुफकारना । क्रुद्ध सपं का फन काढ़कर फुफकारना । उ०—सन सन करके रात खनकती भीगुर फनकारें । कभी कभी बादुर रट कर जिय व्याकुल कर डारें । साँप खंडहर पर ठनकारें ।—मारतेहु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८६ ।

ठनगन—संज्ञा पुं० [हि० ठनना] विवाह आदि मंगल अवसरों पर नेमियों या पुरस्कार पानेवालों का अधिक पाने के लिये हठ या झड़ । उ०—ठनगन तैं सब बाम बसनन सजि सजि कै गई ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३३ ।

क्रि० प्र०—करना ।—ठानना ।—होना ।

२. हठ । झड़ । मान । उ०—बनि आएँ ठनगन ठानति है सर्वोपर राधे तोहि लहो ।—घनानंद, पृ० ४५६ ।

ठनठन—क्रि० वि० [अनुध्व०] धातुखंड के बजने का शब्द ।

ठनठन गोपाल—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठनठन + गोपाल (= कोई व्यक्ति)] १. धूँधी और निःसार वस्तु । वह वस्तु जिसके भीतर कुछ भी न हो । २. खुबल आदमी । निर्धन मनुष्य । वह व्यक्ति जिसके पास कुछ भी न हो ।

ठनठनाना^१—क्रि० स० [अनुध्व०] किसी धातुखंड या चमड़े से मड़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना । बजाना ।

ठनठनाना^२—क्रि० प्र० ठन ठन बजना या आवाज होना । ठनठन की ध्वनि होना ।

ठनना—क्रि० प्र० [हि० ठानना] १. (किसी कार्य का) तत्परता के साथ प्रारंभ होना । दृढ़ सकल्पपूर्वक प्रारंभ किया जाना । अनुष्ठित होना । समारंभ होना । छिड़ना । जैसे, काम ठनना, भगड़ा ठनना, बैर ठनना, युद्ध ठनना, लड़ाई ठनना । २. (मन में) स्थिर होना । ठहरना । निश्चित होना । पक्का होना । दृढ़ होना । चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण किया जाना । दृढ़ संकल्प होना । जैसे, मन मे कोई बात ठनना, हठ ठनना । उ०—हरिषद ज्ञ बात ठनी तो ठन नित की कलकानि ते छूटनी है ।—हरिषचंद्र (शब्द०) । ३. ठहरना । लगना । जमना । धारण किया जाना । प्रयुक्त होना । उ०—दुसरी कल कोकिल कंठ बनी मृग संजन धंजन भांति ठनी ।—केशव (शब्द०) । ४. उद्यत होना । मुस्तैद होना । सन्नद्ध होना । उ०—रम जीवन काजे भटन निवाजे आनंद छाजें युद्ध ठने ।—गोपाल (शब्द०) ।

मुहा०—किसी बात पर ठनना = किसी बात या काम को करने के लिये उद्यत होना ।

ठनमनाना—क्रि० प्र० [हि०] ३० 'ठनमनाना' ।

ठनाका—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठन] ठन ठन शब्द । ठनकार ।

ठनाठन—क्रि० वि० [अनुध्व० ठन ठन] ठन ठन शब्द के साथ । फनकार के साथ । जैसे, ठनाठन बजना ।

ठप—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. खुले हुए ग्रंथ को एकाएक बंद करने से उत्पन्न शब्द या ध्वनि । २. किसी कार्य या व्यापार का पूरी तरह बंद रहना या रुक जाना ।

क्रि० प्र०—करना ।—रहना ।—होना ।

ठपका—संज्ञा पुं० [दंश०] धक्का । ठोकर । ठेस । उ०—यह तन काबा कुंभ है लिया फिर या साथ । ठपका लाग्या फूट गया कछु न आया हाथ ।—कबीर (शब्द०) ।

ठपाका—संज्ञा पुं० [फ्रा० तपाक] जोश । आवेश । वेग । तेजी । उ०—रामसिंह नशे में थे ही ठपाक से आल्हा की लड़ियाँ गाने लगे ।—काले०, पृ० २४ ।

ठपोरना—क्रि० स० [हि० ठप ठप अनुध्व०] थपथपाना । ठोकना । उ०—जन दरिया बानक बना गुरु ठपोरी पूठ ।—दरिया० बानी, पृ० १६ ।

ठप्पा—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हि० थापन, थाप, अथवा अनुध्व० ठप] १. लकड़ी, धातु, मिट्टी आदि का खंड जिसपर किसी प्रकार की आकृति, बेलबूटे या प्रक्षर आदि इस प्रकार खुदे हों कि उसे किसी दूसरी वस्तु पर रखकर दबाने से या दूसरी वस्तु को उसपर रखकर दबाने से उस दूसरी वस्तु पर वे आकृतियाँ, बेलबूटे या प्रक्षर उभर आवें अथवा बन जाय । सीचा ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. लकड़ी का टुकड़ा जिसपर उभरे हुए बेलबूटे बने रहते हैं और जिसपर रंग, स्याही आदि पोतकर उन बेलबूटों को कपड़े आदि पर छापते हैं । छापा । ३. गोटे पट्टे पर बेलबूटे उभारने का सीचा । ४. सचि के द्वारा बनाया हुआ चित्र, बेलबूटा आदि । छाप । नकश । ५. एक प्रकार का चौड़ा नक्काशीदार गोटा ।

ठपका—संज्ञा स्त्री० [हि० ठपका] आघात । ठोकर । ठेस । उ०—या तनु को कह गर्व करत है भोला ज्यों गल जावे रे । जैसे बर्तन बनो काँच को ठबक लगे बिगसावे रे ।—राम० धर्म०, पृ० ३६० ।

ठबकना—क्रि० प्र० [हि० ठमक] ठेस या ठोकर देते हुए चलना । ठसक के साथ चलना । उ०—हबकि न बोलिबा, ठबकि न बालिबा बीरे धरिबा पावं । गरब न करिबा, सहजै रहिबा भणंत गोरख रावं ।—गोरख०, पृ० ११

ठभोली—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठोली वा देख०] ३० 'ठठोली' ।

ठमकना(७)—क्रि० स० [अनु०] ठम की ध्वनि के साथ गिरना, ठहरना या रुकना उ०—उरें फुट सप्ताह धरनी ठमके ।—प० रासो, पृ० ४५ ।

ठमक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठमकना] १. चलते चलते ठहर जाने का भाव । रुकावट । २. चलने की ठसक । चलने में हावभाव । लचक ।

ठमकना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन] १. चलते चलते ठहर जाना । ठिठकना । रुकना । जैसे,—तुम चलते चलते ठमक क्यों जाते हो । २. ठमक के साथ रुक रुककर चलना । हाव भाव बिखाते हुए चलना । धंग मरोड़ते या मटकते हुए चलना । लचक के साथ चलना । उ०—ठमकि ठमकि सरकौही चालन घाउ सामुहें मेरे ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८६ ।

ठमका^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनुष्ण०] ठम् ठम् की स्थिति या क्रिया । ठक ठक । भँकट बखेड़ा । उ०—धमण धमंती रह गई सीला पड़पा रंगार । धहरण का ठमका मिटचा री लाव चले लोहार ।—राम० धर्म०, पृ० १६ ।

ठमका^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] झोंका । उ०—इसलिये कांग सेठानी नींद का ठमका ले रही थी ।—जनानी०, पृ० ३८ ।

ठमकाना—क्रि० सं० [हिं० ठमकना] ठहराना । चलते चलते रोकना ।

ठमकारना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'ठमकाना' ।

ठमठमाना^१—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन] ठमकना । ठिठकना । उ०—दूल्हा जू जरा जरा ठमठमाया ।—भाँसी०, पृ० ३१६ ।

ठमिकना^१—क्रि० प्र० [देश०] दे० 'ठमकना' । उ०—चोवा को लँहंगो भूना को ताव । ठमिक ठमिक घन देखइ पाव ।—बी० रासो, पृ० ११४ ।

ठमकड़ा^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठमक (= ठमक) + ढा (प्रत्य०)] ठक ठक की आवाज । टपका । टमका । उ०—घबणि घबंती रहि गई, बुझि गए रंगार । धहरण रखा ठमकड़ा जब उठि चले लुहार ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७५ ।

ठयना—क्रि० सं० [सं० अनुष्ठान] १. ठानना । दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ करना । छेड़ना । उ०—(क) हासी सहस प्रगट तँह भई । इंद्रलोक रचना आदि ठई ।—सूर (शब्द०) । (ख) जब नैननि प्रीति ठई टग श्याम सौं, स्यानी सखी हठि ही बरजी ।—तुलसी (शब्द०) । २. कर चुकना । पूरी तरह से करना । (इसका प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में हुआ है) । उ०—देवता निहोरे महामारिन सौं कर जोरे भोरानाय भोरे प्रापनी सी कहि ठई है ।—तुलसी (शब्द०) । ३. मन में ठहराना । निश्चित करना । उ०—तुलसिदास कीन पास मिलन की ? कहि गए सो तो एकी चित न ठई ।—तुलसी (शब्द०) । (स) एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठएऊ ।—मानस, पृ० ७१ ।

ठयना^२—क्रि० प्र० १. ठनना । दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ होना । २. मन में दृढ़ होना । ३. प्रयोग में आना । कार्य में प्रयुक्त होना ।

ठयना^३—क्रि० सं० [सं० स्थापन, प्रा० ठावन] १. स्थापित करना । बैठाना । ठहराना । २. लगाना । प्रयुक्त करना । नियोजित करना । उ०—बिधिना प्रति ही पोच कियो री । ...रोम रोम लोचन इक टक करि युवतिन प्रति काहे न टयो री ।—सूर (शब्द०) ।

ठयना^४—क्रि० प्र० १. ठहरना । स्थित होना । बैठना । जमना । उ०—राज वल्ल खलि गुरु सपुर सुभासनहि समय समाज की

ठयनि भली ठई है ।—तुलसी (शब्द०) । २. प्रयुक्त होना । लगना । नियोजित होना ।

ठरना—क्रि० प्र० [सं० स्तब्ध, प्रा० ठड्ड, हिं० ठार + ना (प्रत्य०)] १. धत्यंत शीत से ठिठुरना । सरदी से झकड़ना या सुन्न होना । जैसे, हाथ पाँव ठरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. धत्यंत सरदी पड़ना । बहुत अधिक ठंड पड़ना ।

ठरकना—क्रि० प्र० [हिं० ठरका (= ठोकर, टक्कर)] ठकराना । उ०—चकमक ठरकै मगनि भरें यूँ दध मधि धृत करि लीया ।—गोरख०, पृ० २०८ ।

ठरमरुआ^१—वि० [हिं० ठार + मारना [वि० स्त्री० ठरमरई] बहु फसल जिसे पाला मार गया हो ।

ठराना—क्रि० प्र० [हिं० ठहरना] टिक जाना । स्थिर होना । ठहरना । उ०—हरि कर बिपका निरखि तियन के नैना छबिहि ठराई ।—तंद० ग्रं०, पृ० ३८१ ।

ठराना^२—क्रि० सं० [हिं० ठडा (= खड़ा) + ना (प्रत्य०)], या ठहराना] खड़ा करना । तैयार करना । बनाना । ठहराना । उ०—जमी के तले यक ठरा कर मकान ।—दक्खिनी०, पृ० ३३६ ।

ठरारा—वि० [हिं० ठार] सदैव । तंडा । उ०—कबहुँ मनहि मन सोचत, सोचत स्वास ठरारे ।—तंद० ग्रं०, पृ० २०१ ।

ठरुआ^१—वि० [हिं० ठार] [वि० स्त्री० ठरई] फसल जिसे पाला मारा गया हो ।

ठरुका^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोकर] ठोकर । आघात । उ०—जिनसौ प्रीति करत है गाढ़ी सो मुख लावे लूकी रे, जारि बारि तन लेह करैगे दे दे मूँह ठरुकी रे ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१० ।

ठरी^१—संज्ञा पुं० [हिं० ठड़ा (= खड़ा)] १. इतना कड़ा बटा हुआ मोटा सूत जो हाथ में लेने से कुछ तना रहे । मोटा सूत । २. बड़ी धषपकी ईंट । ३. महुवे की निकट कड़ी शराब । फूल का उलटा । ४. भंगिया का बंद । तनी । ५. एक प्रकार का भड़ा जूता । ६. भड़ा और बेडोल मोती ।

ठरी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बिना घंक्रुर उठा हुआ घान का बीज जो छितराकर बोया जाता है । २. बिना घंक्रुर उठे हुए घान की बोआई ।

ठलवारि^१—वि० पुं० [हिं० टिल्ला, टल्ल > टल्लेनवीसी (= बहाना, निठल्लापन)] बहाना करनेवाला । किसी बात को हँसी में उड़ा देनेवाला । ठट्टेबाज । उ०—कहा तेरेई प्रायो राज लाज तजि खोरत धीरे काज, कहा तोहि ठलवारि घरबसे न जानत बात बिरानी ।—घनानंद, पृ० ४२६ ।

ठलाना^१—क्रि० सं० [प्रा० ठल्ल] ठेलना । रखना । उ०—(क) ता पाछे रीति अनुसार सामग्री ठलाइ प्रभुन को पलना कुलाइ... प्राति करि मनोसर करते ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १०१ । (ख) पाछे वह सब पल्ल तुमको तुम्हारे बासन में ठलाइ देहुगी ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २५५ ।

ठलाना^२—क्रि० स० [हि० ठालना] गिराना । निकालना ।

ठलुआ—वि० [अ० ठल (= रिक्त) या हि० ठाला + उ आ (प्रत्य०)] मिठला । खाली । उ०—मधुवन की बातों ही में मालुम हुआ कि उस घर में रहनेवाले सब ठलुए बेकार हैं ।—तिलसी, पृ० २२७ ।

ठलुआ—वि० [अ० ठल या हि० ठाला + उक (प्रत्य०)] दे० 'ठलुआ' ।

ठलुआ^३—वि० [अ० ठलिय ठल] १. निधन । धनरहित । दरिद्र । २. खाली । शून्य । रिक्त । उ०—नमणी खमणी बहु गुणी सगुणी अनह सियाई । जे धण एही सपजह, तउ जिम ठलउ जाइ ।—ढोला०, पृ० ४५९ ।

ठवैका^४—संज्ञा स्त्री० [हि० ठमक] दे० 'ठमक', 'ठसक' । उ०—चंदेलिनि ठवैकन्ह पगु ढारा । चली चौहानी होइ झन-कारा ।—जायसी ग्रं०, पृ० २४६ ।

ठवक^५—संज्ञा पुं० [हि० ठोंक] धायात । धपकी । ठोंका । उ०—पवन ठवक लगि ताहि खगावे । तब ऊरध को शीश उठावे ।—चरण० बानी, पृ० ८० ।

ठवन—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापण, प्रा० ठावण] दे० 'ठवनि' ।

ठवना^६—क्रि० स० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना । रखना । उ०—बाधस वोजउ नाम, ते प्रागलि सल्लउ ठवइ । जइ तू दुई सुजाण तउ तू वहिलउ मोफलइ ।—ढोला०, पृ० १४२ । २. योजना करना । ठानना । उ०—भाठम प्रहर संभा समै धण ठवै सिणगार ।—ढोला०, पृ० ५८६ ।

ठवना^७—क्रि० अ० [हि०] दे० 'ठयना' ।

ठवनि^८—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, हि० ठवना (= बैठना) वा सं० स्थान] १. बैठक । स्थिति । उ०—राज रुख लसि गुरु सुसुर सुभासनन्ह समय समाज की ठवनि भली ठई है ।—तुलसी (शब्द०) । २. बैठने या खड़े होने का ढंग । भासन । मुद्रा । धंग की स्थिति या संचालन का ढंग । अंदाज । उ०—(क) कुजर मनि कंठा कलित उर तुलसी की माव । वृषभ कंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु बिसाव ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ठाढ़ भए उठि महज सुभाए । ठवनि जुवा मृगराज सजाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठवरी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठोर' । उ०—कथनी कथि कथि बहु चतुराई । चोर चतुर कहि ठवर ना पाई ।—स० दरिया, पृ० ८ ।

ठस—वि० [सं० स्थासु (= ठठना से जमा हुआ, एक)] १. जिसके कण परस्पर इतने मिले हो कि उसमें उंझली आदि न घंस सके । जिसके बीच में कहीं रंध वा अक्काश न हो । जो मुरभुरा, गीला या मुलायम न हो । ठोस । कड़ा । जैसे, बरफी का खूबकर ठस होना, गोले घाटे का ठस होना । २. जो भीतर से पोखा था खाली न हो । भीतर से भरा हुआ । ३. जिसके सत परस्पर खूब मिले हों । जिसकी बुनावट घनी हो । गफ । जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा । उ०—इस टोपी का काम खूब ठस है ।—(शब्द०) । ४. छद्म । मजबूत । ५. भारी । बजनी । गुरु । ६. जो अपने स्थान से जल्दी न दृष्टि । जो हिले ढोले नहीं । निष्क्रिय । सुस्त । मट्टर । घालसी । ७.

(रूपया) जिसकी झनकार ठीक न हो । जो करे सिक्के के ऐसा न हो । जो कुछ खोटा होने के कारण ठीक आवाज न दे । जैसे, ठस रूपया । ८. भरा पूरा । संपन्न । घनाटप । जैसे, ठस प्रसामी । ९. कृपण । कंजूस । १०. हठी । बिदी । अड़ करनेवाला ।

ठसक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठस] १. अभिमानपूर्ण हाव भाव । गर्वीली चेष्टा । नखरा । जैसे,—वह बड़ी ठसक से चलती है । २. अभिमान । दप । शान । उ०—कढ़ि गई रैयत के जिय की कसक सब मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की ।—भूषण (शब्द०) ।

ठसकदार—वि० [हि० ठसक + फा० दार] १. धमंडी । अभिमानो । २. शानदार । तड़क भड़कवाला । उ०—ठोर ठकुराई को जू ठाकुर ठसकदार नंद के कन्हाई सो सु नंद को कन्हाई है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

ठसका—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वह खासी जिसमें कफ न निकले और गले से ठन ठन शब्द निकले । सूखी खासी । २. ठोकर । धक्का ।

क्रि० प्र०—खाना ।—मारना ।—लगना ।

ठसाठस—क्रि० वि० [हि० ठस] ऐसा दबाकर भरा हुआ कि और भरने की जगह न रहे । ठूसकर भरा हुआ । खूब कसकर भरा हुआ । लबाब । जैसे,—(क) वह संदूक कपड़ों से ठसाठस भरा हुआ है । (ख) इस कुप्पे में ठसाठस चीनी भरी हुई है ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल चूर्ण या ठोस वस्तुओं के लिये ही होता है, पानी आदि तरल पदार्थों के लिये नहीं । जो वस्तु भरी जाती है और जिस वस्तु में भरी जाती है दोनों के संबंध में इस शब्द का व्यवहार होता है । जैसे, संदूक ठसाठस भरा है, कपड़े ठसाठस भरे हैं ।

ठस्सा—संज्ञा पुं० [देश०] १. नक्काशी बनाने की एक छोटी रस्सानी । २. गर्वपूर्ण चेष्टा । अभिमानपूर्ण हाव भाव । ठसक । ३. घमंड । अहंकार । ४. ठाट बाट । शान । ५. ठवनि । मुद्रा । अंदाज ।

मुहा०—ठस्से के साथ बैठना = घमंड के साथ बैठना । गर्व भरी मुद्रा में शान के साथ बैठना । उ०—कोचवान भी ठस्से के साथ बैठा है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६ । ठस्से से रहना = ठाट बाट से रहना या जीवन बिताना । उ०—इस ठस्से से रहती है कि अच्छी अच्छी रईस जातियों से टक्कर लें ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १ ।

ठह—संज्ञा पुं० [हि०] ठाँव । ठहरी । स्थान ।

ठहक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नगरे का शब्द ।

ठहकना—क्रि० अ० [देश०] ध्वनि करना । बोलना । आवाज करना । उ०—पिक ठहकै झरणां पड़े हरिण डूंगर हाव ।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ८ ।

ठहकाना^९—क्रि० स० [हि० ठह (= स्थान)] किसी वस्तु को उसके ठीक स्थान पर बैठाना या जमाना । उ०—तन बंदूक सुमति के सिगरा, ज्ञान के गज ठहकाई । सुरति पलीता हरदम

सुलगे, कसपर राख बढ़ाई।—पलट०, भा० ३, पृ० ४० ।
(क) दम को दाख सहज की सीसा जान के गज ठहकाई।—
कबीर० भा०, भाग २, पृ० १३२ ।

ठहना^१—क्रि० सं० [अनुध्व०] १. हिनहिनाना । घोड़े का बोलना ।
२. घनघनावा । घंटे का बजना ।

ठहना^१—क्रि० प्र० [सं० स्था, प्रा० ठा] किसी काम को करते हुए
सोच विचार करने या बनाने सँवारने के लिये बीच बीच में
ठहरना । धीरे धीरे धैर्य के साथ करना । बनाना । सँवारना ।
किसी काम को करने में लूब जमना ।

मुहा०—ठह ठहकर बोलना = हाव भाव के साथ ठक ठककर
बोलना । एक एक शब्द पर जोर दे देकर बोलना । मठार
मठारकर बोलना । ठहकर = धन्धी तरह जमकर ।

ठहनाना—क्रि० प्र० [अनुध्व०] १. घोड़ों का बोलना । हिन-
हिनावा । उ०—गज धरु कुवपति खवि खई । चहुँविडि
पुरप रहे ठहनाई ।—सबल (शब्द०) । घंटे का बजना ।
घनघनाना । ठनठनाना उ०—दुँद घंट ध्वनि धति ठहनाई ।
भाव राग सहित सहनाई ।—सबल (शब्द०) । ३. ३०
'ठहना' ।

ठहर—संज्ञा पु० [सं० स्थल या स्थिर] १. स्थान । जगह । उ०—ठाकुर
महेश ठकुराइन उमा सी जहाँ लोक बेव हूँ विदित महिमा
ठहर की ।—तुलसी (शब्द०) । २. रसोई के लिये मिट्टी
से लिपा हुआ स्थान । चौका । ३. रसोईघर घाबि में मिट्टी
की लिपाई । पोताई । चौका । उ०—नेम धधार षटकर्म
नहीं नाहीं पाति को पान । चौका चंदन ठहर नहीं मीठा देव
निधान ।—सं० दरिया०, पृ० ३८ ।

क्रि० प्र०—लगाता ।

मुहा०—ठहर देना = रसोईघर वा भोजन के स्थान को खीप पोत-
कर स्वच्छ करना । चौका लगाना ।

ठहरना—क्रि० प्र० [सं० स्थिर + हि० ना (प्रत्य०), धयवा सं०
स्थल, हि० ठहर + ना (प्रत्य०)] १. चलना बंद करना ।
गति में न होना । रुकना । जमना । जैसे,—(क) थोड़ा ठहर
जाओ पीछे के लोगों को भी धा देने दो । (ख) रास्ते में
कहीं न ठहरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. विश्राम करना । डेरा ठाखना । टिकना । कुछ काल तक के
लिये रहना । जैसे,—घाप काशी में किसके यहाँ ठहरेंगे ?

संयो० क्रि०—जाना ।

३. स्थित रहना । एक स्थान पर बना रहना । इधर उधर न
होना । स्थिर रहना । जैसे,—यह नौकर चार दिन भी किसी
के यहाँ नहीं ठहरता ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—मन ठहरना = चित्त स्थिर और शांत होना । चित्त की
आकुलता दूर होना ।

४. नीचे न फिसलना या गिरना । धड़ा रहना । टिका रहना ।
बहने या गिरने से रुकना । स्थित रहना । जैसे, (क) यह

गोला डंडे की नोक पर ठहरा हुआ है । (ख) यह घड़ा फूटा
हुआ है इसमें पानी नहीं ठहरेगा । (ग) बहुत से योगी देर
तक प्रवर में ठहरे रहते हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५. दूर न होना । बना रहना । न मिटना या न नष्ट होना ।
जैसे,—यह रंग ठहरेगा नहीं, उड़ जायगा । ६. जल्दी न
टूटना फटना । नियत समय के पहले नष्ट न होना । कुछ दिन
काम देने लायक रहना । चलना । जैसे,—यह जूता तुम्हारे
पैर में दो महीने भी नहीं ठहरेगा । ७. किसी गुनी हुई वस्तु
के नीचे बैठ जाने पर पानी या धर्क का स्थिर और
साफ होकर ऊपर रहना । धिराना । ८. प्रतीक्षा करना ।
धैर्य धारण करना । धीरज रखना । स्थिर भाव से रहना ।
चंचल या आकुल न होना । जैसे,—ठहर जाओ, देते हैं,
आफत क्यों मचाए हो । ९. कार्य प्रारंभ करने में देर करना ।
प्रतीक्षा करना । मासरा देखना । जैसे,—धब ठहरने का वक्त
नहीं है झटपट काम में हाथ लगा दो । १०. किसी लगातार
होनेवाली क्रिया का बंद होना । लगातार होनेवाली बात
या काम का रुकना । जमना । जैसे, मेह ठहरना, पानी
ठहरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

११. निश्चित होना । पक्का होना । स्थिर होना । ठे पाना ।
करार होना । जैसे, दाम या कीमत ठहरना, भाव ठहरना ।
बात ठहरना, न्याह ठहरना ।

मुहा०—किसी बात का ठहरना = किसी बात का संकल्प होना ।
विचार स्थिर होना । ठनना । जैसे,—(क) क्या प्रब चलने
हो की ठहरी ? (ख) गप बहुत हुई, प्रब खाने की ठहरे ।
ठहरा = है । जैसे,—(क) वह तुम्हारा भाई हो ठहरा कहाँ
तक लबर न लेगा ? (ख) तुम घर के धादमी ठहरे तुमसे
क्या छिपाना ? (ग) अपने संबंधी ठहरे उन्हें क्या कहे ।

बिरोध—इस मुहा० का प्रयोग ऐसे स्थलों पर ही होता है जहाँ
किसी व्यक्ति या वस्तु के धन्यता होने पर विरुद्ध घटना या
व्यवहार की संभावना होती है ।

† ११. (पशुओं के लिये) यंत्र धारण करना ।

ठहराई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहराना] १. ठहराने की क्रिया । २.
ठहराने की मजदूरी । कच्चा । अधिकार ।

ठहरावा—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'ठहराव' ।

ठहराऊ—क्रि० [हि० ठहरना] १. ठहरनेवाला । कुछ दिन बना
रहनेवाला । जल्दी नष्ट न होनेवाला । २. टिकाऊ । चलने-
वाला । दृढ़ । मजबूत । † १. ठहरानेवाला । टिकानेवाला ।
किसी कार्य को निश्चित करानेवाला । किसी व्यक्ति को कहीं
टिकानेवाला ।

ठहराना^१—क्रि० सं० [हि० ठहरना का प्रेर० रूप] १. चलने से
रोकना । गति बंद करना । स्थिति कराना । जैसे,—(क)
वह चलता जा रहा है उसे ठहराओ । (ख) यह चक्का हुआ
पहिया ठहरा दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—मेना ।

२. ठिकावा । विश्राम कराना । डेरा देना । कुछ काल तक के लिये निवास देना । जैसे,—इन्हें अपने यहाँ ठहराओ । ३. इस प्रकार रखना कि नीचे न खिसके या गिरे । ढ़ाना । ठिकाना । स्थित रखना । जैसे, ठंडे की नोक पर गोला ठहराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

४. स्थिर रखना । इधर उधर न जाने देना । एक स्थान पर बनाए रखना । ५. किसी लगातार होनेवाली क्रिया को बंद करना । किसी होते हुए काम को रोकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

६. निश्चित करना । यक्का करना । स्थिर करना । तै करना । जैसे, बात ठहराना, भाव ठहराना, कीमत ठहराना, व्याह ठहराना ।

ठहराना(७)^१—क्रि० प्र० [हि० ठहरना] रुकना । ठिकना । स्थिर होना । उ०—(क) रूप दुपहरी छाँह कब ठहरानी इक ठौर । —स० सप्तक, पृ० १८३ । (ख) जबै धाऊँ साधु संगति कछुक मन ठहराइ ।—सूर (शब्द०) ।

ठहराव—संज्ञा पु० [हि० ठहरना] ठहरने का भाव । स्थिरता । २. निश्चय । निर्धारण । नियति । मुकरंदी । ३. दे० 'ठहरीनी' ।

ठहराई—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ठहर' ।

ठहरीनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहराना, पु० हि० ठहरावनी] १. बिवाह में लेन देन का करार । २. किसी भी प्रकार का पारस्परिक करार या निश्चय ।

ठहाका^१—संज्ञा पु० [अनुध्व०] अट्टहास । जोर भी हँसी । कहकहा । क्रि० प्र०—मारना । —लगाना ।

ठहाका^२—वि० चटपट । तुरत । तड़ से ।

ठहियाँ^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठह, ठाँव] ठाँह । जगह । ठिकाना । स्थान ।

ठही^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठह] स्थान । ठाँव । ठाँह ।

'ठहोर(७)^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहर] ठहरने योग्य स्थान । विश्राम योग्य स्थल । उ०—कतए भवन कत प्रागन बाप कतए कत माय । कतहु ठहोर नहि ठहर ककर एहन जमाय । —विद्यापति, पृ० ३६८ ।

ठाँ^१—संज्ञा स्त्री० पु० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] दे० 'ठाँव' । उ०—यौ सब ठाँ दरसे बरसे घबघानंद भीजि धराधि कृपाई । —धनानंद, पृ० १५० ।

यौ^१—ठाँ ठाँ = स्थान स्थान पर । उ०—ठाँ ठाँ मधुर मयानी बजै । जनु नव धानंद बुद धंगजै । —नंद० प्र०, पृ० २४८ ।

ठाँ^२—संज्ञा पु० [अनुध्व०] बंदूक की धावाज ।

ठाँही^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाँव] स्थान । जगह । उ०—मीन रूप जो कीन बवाई । तीन छोड़ रह चौथे ठाँई । —कबीर सा०, पृ० १७ । ९. तई । प्रति । उ०—पाव भखे मुख नैन रची

रखि धारसी देखि कहँ हम ठाँई । —केशव (शब्द०) । ३. समीप । पास । निकट ।

ठाँउँ, ठाँऊँ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान] १. ठौर । ठाँव । स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—रंक सुदामा कियो भजाची, दियो अभयपद ठाँउँ । —सूर०, १।१६४ । २. पास । समीप । उ०—चार मीत जो मुहमद ठाँऊँ । जिन्हहि दोन्हि जग निरमल नाऊँ । —जायसी (शब्द०) ।

ठाँठ—वि० [सं० स्थान] (= ठूँठा पेड़) वा अनु० ठन ठन] १. जो सुखकर बिना रस का हो गया हो । नीरस । २. (गाय या भेंस) जो दूध न देती हो । दूध न देनेवाला (चोपाया) । जैसे, ठाँठ गाय । दे० 'ठाँठ' ।

ठाँठरी^१—संज्ञा पु० [हि०] ठठरी । ठाँवा ।

ठाँठरी^२—वि० [हि० ठाँठ] दे० 'ठाँठ' ।

ठाँण^१—संज्ञा पु० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] थान । जगह । उ०—तूँटइ जीण न मोजड़ी कबधी नही केकाण । साजनिया सालइ नही, सालइ माही ठाँण । —ढोला०, पृ० ३७५ ।

ठाँमी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] ठाँवी । स्थान । उ०—ठगिया रूप निहारि, ठाँमि ठाँमि ठाँवो खरी । —ब्रज० प्र०, पृ० २ ।

ठाँय^१—संज्ञा पु० स्त्री०, [सं० स्थान, प्रा० ठाण] १. स्थान । जगह । ठिकाना ।

विशेष—दे० 'ठाँव' ।

२. समीप । निकट । पास । उ०—जिन लागि निज परलोक विगारयो ते लजात होत ठाँये ठाय । —तुलसी (शब्द०) ।

ठाँय^२—संज्ञा पु० [अनुध्व०] बंदूक छूटने का शब्द । जैसे,—ठाँय से गोली मार दो ।

ठाँयँ ठायँ—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] १. लगातार बंदूक छूटने का शब्द । २. रगड़ा । झगड़ा । उ०—तेर जब इस ठायँ ठायँ से क्या मतलब । —फिसाना०, भा० ३, पृ० ७७ ।

ठाँव—संज्ञा स्त्री०, पु० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—(क) निहरी, नीच, निर्गुन निधन कहँ जग दुसरों न ठाकुर ठाँव । —तुलसी (शब्द०) । (ख) नाहिव मेरे धोर कोउ बलि चरन कमल बिनु ठाँव । —सूर (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः सब कवियों ने पु० किया है धोर अधिक स्थानों में पु० ही बोला जाता है पर दिल्ली मेरठ आदि पश्चिमी जिलों में इसे स्त्री० बोलते हैं ।

२. अचसर । मोका । उ०—इहै ठाँव हों बारति रही । —जायसी प्र०, पृ० ८४ । ३. रुकने या ठिकने का स्थान । ठहराव । उ०—बार कोस लै गाँव, ठाँव एको नहीं । —चरनी० प्र०, पृ० ४५ ।

ठाँसना^१—क्रि० स० [सं० स्थास्तु (= दृढ़ता से बैठायी हुआ)] १. जोर से घुसाना । कसकर घुसेड़ना । दबाकर प्रविष्ट करना । २. कसकर भरना । दबा दबाकर भरना । ३. रोकना । अवरोध करना । मना करना ।

ठासना^२—क्रि० प्र० ठन ठन शब्द के साथ सासना । बिना कफ निकाले हुए सासना । ठासना ।

ठाहीं^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठाई' । उ०—मन माया काल गति नहीं । जीव सहाय बसे तेहि ठाहीं ।—कबीर सा०, पृ० ८२३

ठाउरी^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाँ + र (प्रत्य०)] ठौर । आश्रयस्थान । ठिकाना । उ०—मनुवाँ भोर भइल रंग बाउर । सहज नगरिया लागल ठाउर ।—गुलाल० बानी, पृ० १०४ ।

ठाकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्ताघ घथवा स्तम्भन घथवा हि० थाक (= थकना) घथवा सं० स्था + क (प्रत्य०)] बाधा । रोक । रुकावट । उ०—(क) जब मन गाहि लेत खलवारा । छूटी ठाक भूए सिकदारा ।—प्राण०, पृ० ५० । (ख) जाके मन गुरु का उपदेश । ताँ की ठाक नहीं उह देश ।—प्राण०, पृ० ११ ।

ठाकना^१—क्रि० प्र० [हि० ठाक + ना (प्रत्य०)] ठीक करना । रोकना । स्थिर करना । उ०—दृष्टि की ठाकि मन की समझावे । काम की सावि जाय महलि समावे ।—प्राण०, पृ० २६ ।

ठाकुर^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाकुर, गुज० ठक्कर] प्रदेश का स्वामी । सरदार । नायक । उ०—इसलिये कहा गया कि पहले यहाँ कोई राजा या ठाकुर रहता था ।—किन्नर०, पृ० ४६ ।

ठाकुर^२—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] [स्त्री० ठकुराइन, ठकुरानी] १. देवता, विशेषकर विष्णु या विष्णु के अवतारों की प्रतिमा । देवमूर्ति ।

यौ०—ठाकुरद्वारा । ठाकुरबाड़ी ।

२. ईश्वर । परमेश्वर । भगवान् । ३. पूज्य व्यक्ति । ४. किसी प्रदेश का अधिपति । नायक । सरदार । अधिष्ठाता । उ०—सब कुँवरन फिर खेचा हाथ । ठाकुर जेव तो जेवै साथ ।—जायसी (शब्द०) । ५. जमींदार । गाँव का मालिक । ६. दानियों की उपाधि । ७. मालिक । स्वामी । उ०—(क) ठाकुर ठक भट्ठ गेल चोरें चपरि घर लिजिम्र ।—कीर्ति०, पृ० १६ । (ख) निहट, नीच, निर्गुन, निर्धन कहै जग दूसरो न ठाकुर ठाँव ।—तुलसी (शब्द०) । ८. नाइयों की उपाधि । नापित ।

ठाकुरद्वारा—संज्ञा पुं० [हि० ठाकुर + सं० द्वार] १. किसी देवता विशेषतः विष्णु का मंदिर । देवालय । देवस्थान । २. जगन्नाथ जी का मंदिर जो पुरी में है । पुरुषोत्तम धाम । ३. मुरादाबाद जिले में हिंदुओं का एक तीर्थस्थान ।

ठाकुरप्रसाद—संज्ञा पुं० [हि०] १. देवता की निवेदित वस्तु । नैवेद्य । २. एक प्रकार का भोजन जो मादों महीने के अंत और वार के आरंभ में हो जाया करता है ।

ठाकुरबाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर + बाड़ा या बाँ + बाड़ी (= घर)] देवालय । मंदिर ।

ठाकुरसेवा—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर + सेवा] १. देवता का पूजन । २. वह संपत्ति जो किसी मंदिर के नाम उत्सर्ग की गई हो ।

ठाकुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर + ई (प्रत्य०)] ठकुराई ।

स्वामित्व । आधिपत्य । शासन । उ०—बिस्तु की ठाकुरी दीख जाई ।—कबीर० श०, १० ४, पृ० १५ । (ख) जम के जमूस बिनय जस सौं हमेषा करे तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

टाट^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थातृ (= खड़ा होनेवाला)] १. फूस और बाँस की फट्टियों को एक में बाँधकर बनाया हुआ ढाँचा जो बाँध करने या छाने के काम में आता है । लकड़ी या बाँस की फट्टियों का बना हुआ परदा । जैसे,—इस खपरेल का टाट उजड़ गया है ।

यौ०—टाटबंदी । टाटबाट । नवटट = छाने के काम में आने-वाले पुराने टाट को पूरी तौर से नया करना ।

२. ढाँचा । ढाँडा । पंजर । किसी वस्तु के मूल अंगों की योजना जिनके आधार पर जेब रचना की जाती है ।

मुहा०—टाट खड़ा करना = ढाँचा तैयार करना । टाट खड़ा होना = ढाँचा तैयार होना ।

३. रचना । बनारट । मज्जावरट । वेशविन्यास । शृंगार । उ०—(क) बज बनवारि खाल बालक कहै कोने टाट रख्यो ।—सूर (शब्द०) । (ख) पहिरि पितंबर, करि भाँडंबर बहु तन टाट सिंगारयो ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—ठटना ।—रनाना ।

मुहा०—टाट बदलना = (१) वेश बदलना । नया रूप रंग दिखाना । (२) और का और भाव प्रकट करना । प्रयोजन निकालने या श्रेष्ठता प्रकट करने के लिये झूठे लक्षण दिखाना । (३) श्रेष्ठता प्रकट करना । झूठ-झूठ अधिकार या बहुपन जताना । रंग बाँधना । टाट मजिना = दे० 'टाट बदलना' ।

४. भाँडंबर । तडक भड़क । तैयारी । शान शोक । दिखावट । धूमधाम । जैसे—राजा की मकारी बड़े टाट से निकली ।

यौ०—टाट बाट ।

५. चैनचान । मजा । आराम ।

मुहा०—टाट मारना = मोज उड़ाना । मजे उड़ाना । चैन करना । टाट से काटना = चैन से दिन बिताना ।

६. ढंग । शैली । प्रकार । ढब । तर्ज । अंदाज । जैसे,—(क) उसके चलने का टाट ही निरासा है । (ख) वह पोड़ा बड़े गट से चलता है । ७. आयोजन । सामान । तैयारी । अनुष्ठान । समारंभ । प्रबंध । बंदोबस्त । उ०—(क) पालव बैठि पेड़ एट काटा । मुख में सोक टाट धरि टाटा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कासों कहौ, कहौ, कैसी करौ सब क्यों निबहै यह टाट जो टायो ।—मुंदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना । उ०—रघुवर बहेउ लखन भल घाट । करहुँ कतहुँ सब ठाहर ठाट ।—मानस, २।१३३ ।

८. सामान । माल प्रसबाब । सामग्री । उ०—सब टाट पड़ा रह आवेगा जब लाद चलेगा बनजारा ।—नजीर (शब्द०) ।

९. युक्ति । ढब । ढंग । उपाय । डोल । जैसे—(क) किसी टाट से

अपना रुपया वहाँ से निकालो । (ख) वह ऐसे ठाट से माँगता है कि कुछ न कुछ देना ही पड़ता है । उ०—राज करत बिनु काज ही ठटहि जे कर कु ठाट । तुलसी ते कुराज ज्यों जैहें बारह बाट ।—तुलसी (शब्द०) । १०. कुरती या पटेबाजी में लड़े होने या बार करने का ढंग । पैतरा ।

मुहा०—ठाट बदलना = दूसरी मुद्रा से खड़ा होना । पैतरा बदलना । ठाट बाँधना = बार करने की मुद्रा से खड़ा होना । ११. कबूतर या मुरगे का प्रसन्नता से पर फड़फड़ाने या भाँकने का ढंग ।

मुहा०—ठाट मारना = पर फड़फड़ाना । पंख भाँकना ।

१२. सितार का तार । १३. संगीत में ऐसे स्वरों का समूह जो किसी विशेष राग में ही प्रयुक्त होते हों । जैसे, ईमन का ठाट, मँरवी का ठाट ।

मुहा०—ठाट बाँधना = तब बाध में किसी राग में प्रयुक्त होने-वाले स्वरों को उस स्थान पर नियोजित करना जिससे प्रतीक्षित राग में प्रयुक्त स्वरों की ध्वनि प्राप्त हो । उ०—बाँधकर फिर ठाट, अपने अंक पर अंकार दो ।—अपरा, पृ० ७३ ।

ठाट^३—संज्ञा पुं० [हि० ठट्ट, ठाट] [श्री० ठाटी] १. समूह । झुंड । उ०—(क) बिले रजनी हेरए बाट, जमि धुरिनी बिछुरल ठाट ।—विद्यापति, पृ० १६८ । (ख) गज के ठाट पचास हजार । सत्र सहस्र रहे धसवारा ।—रघुराज (शब्द०) । २. बहुतायत । अधिकता । प्रचुरता । ३. बैल या साँड़ की नरदन के ऊपर का डिल्ला । कुबड़ ।

ठाटना—क्रि० सं० [हि० ठाट + ना (प्रत्य०)] १. रचना । बनाना । निमित्त करना । संयोजित करना । उ०—बालक को तन ठाटिया निकड सरोवर तीर । मुर नर मुनि सब देखहि सादेब धरेउ घरीर ।—कबीर (शब्द०) । २. अनुष्ठान करना । ठानना : करना । आयोजन करना : उ०—(क) महतारी को कछो ब मानत कपड चतुरई ठाटी ।—सूर (शब्द०) । (ख) पालव बँटि पेड़ पड़ काठा । सुक मेंहु सोक ठाट धरि ठाटा ।—तुलसी (शब्द०) ३. सुसज्जित करना । सजाना । पँवारना ।

ठाठबंदी—संज्ञा श्री० [हि० ठाट + फा० बंदी] छाजन वा परदे बाहि के दिखे फूस धीर बाँस की फट्टियों बाहि को परस्पर जोड़कर ढाँचा बनाने का काम । २. इस प्रकार का ढाँचा । ठाट । टट्टर ।

ठाटबाट—संज्ञा पुं० [हि० ठाट + बाट (= राह, तरीका)] १. सजावट । बनावट । सजधज । २. तड़क भड़क । आश्चर्य । आन शोक । जैसे,—आज बड़े ठाट बाट से राजा की सवारी निकली ।

ठाटर—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] १. बाँस की फट्टियों धीर फूस बादि को जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा जो छाजन या परदे के काम में आता है । टाट । टट्टर । टट्टी । २. ठठरी । पंजर । ३. ढाँचा । ४. कबूतर बादि के बैठने की छतरी जो टट्टर के रूप में होती है । ५. ठाटबाट । बनाव । सजावट । सजावट ।

उ०—ठठरिन बहुतय ठाटर कीन्ही । चली महीरिन काबर कीन्ही ।—जायसी (शब्द०) ।

ठाटी^१—संज्ञा श्री० [हि० ठाट] ठट । समूह । झेणी । उ०—जस रय रंगि बलद गज ठाटी । बोहित चले समुद्र मे पाटी ।—जायसी (शब्द०) ।

ठाटु^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] दे० 'ठाट' ।

ठाटी^२—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] दे० 'ठाट' ।

ठाठना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ठाटना' ।

ठाठर^१—संज्ञा पुं० [हि०] [श्री० ठाठरी] ढाँचा । ठठरी । उ०—पाए बीरा जीव चलावा । निकसा जिब ठाठरी पड़ावा ।—कबीर सा०, पृ० ५६३ । दे० 'ठाटर' ।

ठाठर^२—संज्ञा पुं० [देश०] नदी में वह स्थान जहाँ अधिक गहराई के कारण बाँस या लगी ब लगे ।—(मल्हाह) ।

ठाठा^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाड़] छेत की वह जोताई जिसमें एक बल जोतकर फिर दूसरे बल जोधते हैं ।

ठाड़ा^२—वि० [वि० श्री० ठाड़ी] दे० 'ठाड़ा' । उ०—नंददास प्रभु जही जही ठाड़े होत, तहीं तहीं लटक लटक काहू सों हाँ करी भी ना करी ।—नंद०, पृ०, पृ० ३४३ ।

ठाड़ी^१—क्रि० [हि०] दे० 'ठाड़ा' । उ०—ठाड़ रहा प्रति कंपित गाता ।—मानस, १।१४ ।

ठाड़ा^३—वि० [सं० रघाट्ट (= जो खड़ा हो)] १. खड़ा । डंडायमान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—रहना ।

२. जो पिसा या कुटा न हो । समूचा । साबित । उ०—भूँजि समोसा घिब मेंहु काड़े । जौग मिचं वैहि भीतर ठाड़े । जायसी (शब्द०) । ३. उपस्थित । उत्पन्न । पैदा । उ०—कीन बहुत लीला हरि जबहीं । ठाठ करत हैं कारन तबहीं ।—विश्राम (शब्द०) ।

मुहा०—ठाड़ा देना = स्थिर रखना । ठहराना । रखना । ठिकाना । उ०—बारह वर्ष दयो हम ठाड़ी यह प्रताप बिनु जाने । अब प्रगटे नमुदेव सुवन तुम गर्ग बचन परिमाने ।—सूर (शब्द०) ।

ठाड़ा^२—वि० दृष्ट । कट्टा । दृष्ट पुष्ट । बली । छाँप । मजबूत ।

ठाड़ेश्वरी—संज्ञा पुं० [हि० ठाड़ सं० ईश्वर + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के राधु जो दिन रात खड़े रहते हैं । वे खड़े ही खड़े खाते पीते तथा बीवार भावि का सहारा लेकर सोते हैं ।

ठावर^१—संज्ञा पुं० [देश०] राह । अगड़ा । मुठभेड़ । उ०—देव आपनों नही संभारत करत हंन सो ठावर ।—सूर (शब्द०) ।

ठान^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण, ठाणु] स्थान । ठाँव । जगह । उ०—तब तबीब तसलीम करि, लै धरि भाइ लुहान । नव दीहे सिर अल्लयो, ढँढोलन गय ठान ।—पृ० रा०, ४।६ । (ख) राजे लोक सब कहे तू आपना । जब काल नहि पाया ठाना ।—दक्खिनी०, पृ० १०४ ।

ठान^२—संज्ञा श्री० [सं० अनुष्ठान] १. अनुष्ठान । कार्य का आबो-जन । शुभारंभ । काम का छिड़ना । २. जोड़ा हुआ काम ।

कार्य । उ०—जानती इतक तो न ठानती अठान ठान मूलि पय प्रेम के न एक पग डारती ।—हनुमान (शब्द०) । ३. चेष्टा । मुद्रा । अंगस्थिति या संचालन का ढङ्ग । अंशज । उ०—पाछे बंक चितै मधुरै हंसि घात किए उलटे सुठान सों ।—सूर (शब्द०) । ४. दृढ़ निश्चय । दृढ़ संकल्प । पक्का इरादा । उ०—क्यों निर्दोषियों को हलाकान करने की ठान ठानते हो ? —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४६७ ।

मुद्रा०—ठान ठानना = दृढ़ निश्चय करना । पक्का इरादा करना ।

ठानना^१—क्रि० सं० [सं० अनुष्ठान, हिं० ठान अथवा सं० स्थापन > प्रा० ठाप्न, > ठान + ना (प्रत्य०)] १. किसी कार्य को उत्प्रेरता के साथ प्रारंभ करना । दृढ़ संकल्प के साथ प्रारंभ करना । अनुष्ठित करना । छेड़ना । जैसे; काम ठानना, भगड़ा ठानना, बैर ठानना, युद्ध ठानना, यज्ञ ठानना । उ०—(क) तब हरि और खेल इक ठान्यो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८५ । (ख) तिन सो कह्यो पुत्र हित हय मख हम बीनो हैं ठानी ।—रघुराज (शब्द०) । २. (मन में) स्थिर करना । (मन में) ठहराना । निश्चित या ठीक करना । पक्का करना । चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण करना । दृढ़ संकल्प करना । जैसे, मन में कोई बात ठानना, हठ ठानना । उ०—(क) सदा राम एहि प्राज समाना । कारन कौन कूटित पन ठाना ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मैंने मन में कुछ ठान उनका हाथ पकड़ बोली ।—श्यामा०, पृ० ६८ ।

ठानना^२—क्रि० सं० [हिं० ठान] १. ठानना । दृढ़ संकल्प के साथ प्रारंभ करना । छेड़ना । करना । उ०—काहे को सोहै हजार करो तुम तो कबहूँ अपराध न आयो ।—मतिराम (शब्द०) । २. मन में ठहराना । निश्चित करना । दृढ़तापूर्वक चित्त में धारण करना । पक्का विचार करना । उ०—विश्वामित्र दुःखी हूँ तँह पुनि करन महा तप ठायो ।—रघुराज (शब्द०) । वि० दे० 'ठयना' । ३. स्थापित करना । रखना । करना । उ०—मुरली तऊ गोपालहि भावति । अति प्राचीन सुजान कनौठे गिरिधर नार नवावति । आपुन पीढ़ि प्रघर सज्या पर करपल्लव पदपल्लव टावत ।—सूर (शब्द०) ।

ठानना^३—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठाना' ।

ठाना^४—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्थान] १. स्थान । जगह । उ०—(क) इधर अपुरा को करमो वीरसण निज ठाम ।—कीर्ति०, पृ० ६० । (ख) जो चाहत चित 'ठान' उतै ही यह पढ़िवावत । बचे बीच के गाम ठाम को नाम मुनावत ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७ ।

विशेष—दे० 'ठाव' ।

२. अंगस्थिति या अंगसंचालन का ढंग । ठवनि । मुद्रा । अंशज । १. धंगेठ । अंगलेट ।

ठाव^१—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्थान] दे० 'ठाव', 'ठाव' ।

ठाव^२—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ठाव' ।

ठार—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० ठड्ड, ठड या देश०] १. गहरी जाड़ा । अत्यंत शीत । गहरी सरबो । २. पाखा । हिम ।

क्रि० प्र०—पड़वा ।

ठार^३—[सं० स्थान, प्रा० ठाण; अप० ठाम, ठाव, ठाय] १. स्थान । ठोर । जगह । उ०—(क) राति दिवस करि चासीयउ, पुनरमइ दिवस पहुँतो तिणि ठार ।—बी० रासो, पृ० १०४ । (ख) मामो, तूँ सालिक राह दिवाने चलते न लाए बार । मुकाम राहे मंजिन बूझै उलजा हे किस ठार ।—दक्खिनी०, पृ० ५४ । २. वेत या खलिहान का वह स्थान जहाँ किसान अपने सामान आदि रखता है और देखरेख करता है ।

ठार^४—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० ठारि] दे० 'ठाव', 'ठावा' । उ०—(क) तन दाहत कर धीचहि तूरत, ठार रहत है सोई । पासन मारि बिबोरी होवै, तबहूँ भक्ति न होई ।—जग० शं०, भा० २, पृ० ३३ । (ख) ठारि भेलिहि बनि आगो न बोले ।—विद्यापति, पृ० ४६ ।

ठारौ—संज्ञा पुं०, वि० [सं० अष्टादश, प्रा० अष्टार, अष्टारस, अष्टारह] दे० 'अष्टारह' । उ०—ठाँ सेर दुहोतरा अगहन मास सुजान ।—सुजान०, पृ० ७ ।

ठाला^१—संज्ञा स्त्री० [देशी ठलिय (=रिक्त); अथवा हिं० निठल्ला] १. व्यवसाय या काम धंधे का अभाव । जीविका का अभाव । बेकारी । बेरोजगारी । २. खाली वक्त । फुरसत । अवकाश ।

ठाला^२—वि० जिसे कुछ काम धंधा न हो । खाली । निठल्ला ।

ठाला—संज्ञा पुं० [देशी ठल्ल (=निर्धन); वा हिं० निठल्ला] १. व्यवसाय या काम धंधे का अभाव । बेकारी । रोजगार का न रहना । २. रोजी या जीविका का अभाव । आमदनी का न होना । वह दशा जिसमें कुछ प्राप्ति न हो । रूप पैसे की कमी । जैसे,—आजकल बढ़ा ठाला है, कुछ नहीं दे सकते । मुद्रा०—ठाले पड़ना = शून्यता, रिक्तता या खालीपन का अनुभव होना । ठाला बताना = बिना कुछ दिए चलता करना । बताना बताना (दलाव) । बैठे ठाले = खाली बैठे हुए । कुछ काम धंधा न रहने हुए । जैसे,—बैठे ठाले यही किया करो, अच्छा है ।

गौ०—ठाला ठलिया = खाली । रीता । खँझा । उ०—नैन नबावत बधि मटुकिन की करिके ठाला ठलिया ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १६४ ।

ठाली^१—वि० [देशी० ठलिय (=रिक्त); वा हिं० निठल्ला] १. खाली । जिसे कुछ काम धंधा न हो । निठल्ला । बेकाम । उ०—(क) ऐसी को ठाली बैठो है तोसो मूढ़ चरावै । झूठी बात तुसी सी बिनु कन फरकत हाथ न धावै ।—सूर (शब्द०) । (ख) ठाली ग्वालि जानि पटए मखि कह्यो पछोरन लूछो ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) प्लेटफार्म पर ठाली बैठे समय की बरबादी अनुभव करने लगे ।—भस्मा०, पृ० ४३ ।

ठाली^२—संज्ञा स्त्री० [?] द्वारस । अरोसा । आश्वासन । उ०—कहा कही माली खाली वेत सब ठाली, पर मेरे बनमाली की न काली ते छुड़ावही ।—रसखान०, पृ० ३० ।

ठाव^३—संज्ञा स्त्री०, पुं० [हिं०] दे० 'ठाव' ।

ठाव^४—संज्ञा पुं० [हिं०] ठाव । स्थान । उ०—होरी सब ठावन लै राखी पूजत छै लै रोरी । घर के काठ मारि सब बीने पावत पीत व गोरी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४०७ ।

ठावना—क्रि० सं० [हि० ठाना] दे० 'ठाना' ।

ठासा—संज्ञा पुं० [हि० ठासना] लोहारों का एक औजार जिससे तंग जगह में लोहे की कोर निकालते और उभारते हैं । उ०—देवे ठासा वेहद परे सनबाती सीका । चारि सूँट में चले जियत एक होय रती का ।—पलटू० बानी, पृ० ११५ ।

थौं—गोल ठासा = गोल सिरे का ठासा जिससे लोहे की चद्दर को गड़कर गोला बनाते हैं ।

ठाह^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान वा हि० ठहरना] धीरे धीरे और अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय लगाकर गाने या बजाने की क्रिया ।

विशेष—जब गाने या बजानेवाले लोग कोई चीज गाना या बजाना प्रारंभ करते हैं, तब पहले धीरे धीरे और अधिक समय लगाकर गाने या बजाने हैं । इसी को 'ठार' या 'ठाह' में गाना बजाना कहते हैं । प्रागे चलकर वह चीज क्रमशः जल्दी जल्दी गाने या बजाने लगते हैं । जिसे दून, तिगून या चौगून कहते हैं । उ० दे० 'चौगून' ।

२. स्थान । ठाँव । उ०—वस्यो जहाँ सब हथिनी ठाहीं । गज मकरंद देखि तेहि माई ।—घट०, पृ० २४१ ।

ठाह^२—संज्ञा स्त्री० [सं० स्था (= स्थल)] दे० 'थाह' ।

ठाहरा^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हि० ठहर] १. स्थान । जगह । उ०—शुकसुता जब भाई बाहर । पाए बसन परे तेहि ठाहर ।—सूर (शब्द०) । २. निवास स्थान । रहने या ठिकने का स्थान । डेरा । उ०—रघुवर कह्यो नवन भल घाट । करहु कतहु भब ठाहर ठाह ।—सुलसो (शब्द०) ।

ठाहरना^१—क्रि० घ० [हि० ठाहर] दे० 'ठहरना' । उ०—घर में सब कोइ बंकुषा मारहि गाल भनेक । सुंदर रण में ठाहरें सूर बीर को एक ।—सुंदर रा०, भा० २, पृ० ७२८ ।

ठाहरना^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठाहर' ।

ठाहरूपक—संज्ञा पुं० [सं० स्था + रूपक या देश०] मृदंग का एक ताल जो सात मात्राओं का होता है । इसमें और आठ चौताल में बहुत थोड़ा भेद है ।

ठाहीं^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाह] दे० 'ठाही' ।

ठिगना—वि० [हि० ठुठ + भग] [१. स्त्री० ठिगनी] जो कँचाई में कम हो । छोटा कद का । छोटे टाल का । नाटा । (जीव-धारियों विशेषतः मनुष्य के लिये) ।

ठिक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिक्का] धातु की चद्दर का कटा हुआ छोटा टुकड़ा जो जोड़ लगाने के काम में आये । चिगली । चकती ।

ठिक^२—वि० [हि०] दे० 'ठीक' । उ०—यार्त यह ठिक जान्यो परे । अपना बिभी आप बिसरे ।—घनानंद, पृ० २७५ ।

ठिक^३—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थितिक] ठहराव । स्थिरता । उ०—जासों नही ठहरें ठिक मान को, क्यों हट के सठ कठनो ठानति ।—घनानंद, पृ० १२४ ।

ठिकठान^१—संज्ञा पुं० [हि० ठीक] दे० 'ठिकठन' । उ०—पूरेह

ठिकठान में देखति हौं उत सान । यह न सयानी देति हौं पाती मांगत पान ।—सं० सप्तक, पृ० २४५ ।

ठिकठेक^१—वि० [हि०] ठीक ठीक । ठंग से । उ०—एक शरीर में दंग भए बहु एक, धरा पर धाम घनेका । एक शिला मर्हि कोरि किए सब चित्र बनाइ घरे ठिकठेका ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ६४६ ।

ठिकठैन^१—संज्ञा पुं० [हि० ठीक + ठयना] ठीक ठाक प्रबंध । आयोजन । उ०—प्राज कछु और भए ठए नए ठिकठैन । चित के हिन के जुगल ये नित के होय न नैन ।—बिहारी (शब्द०) ।

ठिकठौरी^१—संज्ञा पुं० [हि० ठिकना या ठीक + ठौर] ठिकने लायक स्थान । ऐसा स्थान जहाँ आश्रय लिया जा सके ।

ठिकड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठीकरा' ।

ठिकना^१—क्रि० घ० [सं० स्थिति + √ कृ > करण] ठिकठना । ठहरना । रुकना । प्रहना । उ०—रस भिजए दोऊ दुहुनि तउ ठिकि रहैं टरे न । छवि सों छिरकत प्रेम रंग भरि पिचकारी नैन ।—बिहारी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—रहना ।

ठिकरा^१—संज्ञा पुं० [देशी ठिकरिया] दे० 'ठीकरा' ।

ठिकरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिकरा] दे० 'ठीकरी' ।

ठिकरीर^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जहाँ खपड़े, ठीकरे आदि बहुत पड़े हों ।

ठिकार्ह^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठीक] पाल के जमकर ठीक ठीक बैठने का भाव ।—(लक्ष०) ।

ठिकाना^१—संज्ञा पुं० [हि० ठिकान] दे० 'ठिकाना' ।

ठिकाना^२—संज्ञा पुं० [हि० ठिकान] १. स्थान । जगह । ठौर । २. रहने की जगह । निवासस्थान । ठहरने की जगह ।

यौ०—पता ठिकाना ।

३. आश्रय । स्थान । निर्वाह करने का स्थान । जीविका का प्रबलंब ।

मुहा०—ठिकाना करना = (१) जगह करना । स्थान निश्चित करना । स्थान नियत करना । जैसे,—अपने लिये कहीं बैठने का ठिकाना करो । (२) ठिकना । डेरा करना । ठहरना । (३) आश्रय ढूँढ़ना । जीविका लगाना । नोकरी या काम धंधा ठीक करना । जैसे,—इनके लिये भी कहीं ठिकाना करो, थाली बैठे हैं । (४) व्याह के लिये घर ढूँढ़ना । व्याह ठीक करना । जैसे,—इनका भी कहीं ठिकाना करो, घर बसे । ठिकाना ढूँढ़ना = (१) स्थान ढूँढ़ना । जगह तलाश करना । (२) रहने या ठहरने के लिये स्थान ढूँढ़ना । निवास स्थान ठहराना । (३) नोकरी या काम धंधा ढूँढ़ना । जीविका खोजना । आश्रय ढूँढ़ना । (४) कन्या के व्याह के लिये घर ढूँढ़ना । घर खोजना । (किसी का) ठिकाना लगना = (१) आश्रयस्थान मिलना । ठहरने या रहने की जगह मिलना । उ०—सिपाही जो आगे तो बीच में कहीं ठिकाना बसा ।—(शब्द०) । (२) जीविका का प्रबंध होना । नोकरी

या काम बंधा मिथना । निर्वाह का प्रबंध होना । जैसे,—इस बाल से तुम्हारा कहीं ठिकाना न लगेगा । ठिकाना लगाना = (१) पता चलाना । ढूँढ़ना । (२) आश्रय देना । नौकरी या काम बंधा ठीक करना । जीविका का प्रबंध करना । ठिकाने आना = (१) अपने स्थान पर पहुँचना । नियत वा वांछित स्थान पर वास होना । उ०—जो कोउ ताको निकट बतावे । धीरज धरि सो ठिकाने आवै :—नूर (शब्द०) । (२) ठीक विचार पर पहुँचना । बहुत सोच-विचार या बातचीत के उपरान्त यथार्थ बात करना या समझना । जैसे, बुद्धि ठिकाने आना । उ०—हैं इतनी देर के बाद भ्रष्ट ठिकाने आए ।—(शब्द०) । (३) मूल तत्त्व तक पहुँचना । प्रसली बात छेड़ना या कहना । प्रयोजन की बात पर आना । मतलब की बात उठाना । ठिकाने की बात = (१) ठीक बात । सच्ची बात । यथार्थ बात । प्रामाणिक बात । प्रसन्नी बात । (२) समझदारी की बात । युक्तियुक्त बात । (३) पते की बात । ऐसी बात जिससे किसी व्यक्ति में जानकारी हो जाय । ठिकाने न रहना = चंचल हो जाना । जैसे, बुद्धि ठिकाने न रहना, होश ठिकाने न रहना । ठिकाने पहुँचाना = (१) यथास्थान पहुँचाना । ठीक जगह पहुँचाना । (२) किसी वस्तु को सुप्त वा नष्ट कर देना । किसी वस्तु को न रहने देना । (३) मार डालना । ठिकाने लगाना = (१) ठीक स्थान पर पहुँचना । वांछित स्थान पर पहुँचना । (२) काम में आना । उपयोग में आना । अच्छी जगह खन होना । उ०—बलो अच्छा हुआ, बहुत दिनों से यह चीज पड़ी थी, ठिकाने लग गई ।—(शब्द०) । (३) सफल होना । फलीभूत होना । जैसे, मिहनत ठिकाने लगना । (४) परम धाम सिधारना । मर जाना । मारा जाना । ठिकाने लगाना = (१) ठीक जगह पहुँचाना । उद्युक्त वा वांछित स्थान पर ले जाना । (२) काम में लाना । उपयोग में अच्छी जगह खर्च करना । (३) सार्थक करना । सफल करना । निष्फल न जान देना । जैसे, मिहनत ठिकाने लगाना । (४) दखल देकर देना । खो देना । लुप्त कर देना । भाग्य कर देना । नष्ट कर देना । न रहने देना । (५) खर्च कर डालना । (६) दाखल देना । जीविका का प्रबंध करना । काम धर्मों में लगाना । (७) कार्य को समाप्ति तक पहुँचाना । पूरा कराना । (८) काम समाप्त करना । मार डालना ।

४. निश्चित अस्तित्व । यथार्थता की संभावना । ठीक प्रमाण । जैसे,—उसकी बात का क्या ठिकाना ? कभी कुछ कहता है कभी कुछ । ५. दृढ़ स्थिति । स्थायित्व । स्थिरता । ठहराव । जैसे,—इस दूटी मेज का क्या ठिकाना, दूसरी बनाओ ।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधात्मक या संश्लेषात्मक वाक्यों ही में होता है । जैसे,—इसपर तो तब लगावें जब उनकी बात का कुछ ठिकाना हो ।

५. प्रबंध । आयोजन । बंदोबस्त । डील । प्राप्ति का द्वार या द्वंग । जैसे,—(क) पहले खाने पीने का ठिकाना करो, और बातें पीछे करेंगे । (ख) उसे तो खाने का ठिकाना नहीं है । उ०—

दो करोड़ रुपए साल की आमदनी का ठिकाना हुआ ।—
शिवप्रसाद (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—ठिकाना लगना = प्रबंध होना । आयोजन होना । प्राप्ति का डोल होना । ठिकाना लगाना = प्रबंध करना । डोल लगाना ।

१. पारावार । अंत । हद । जैसे,—(क) यह इतना झूठ बोलता है जिसका ठिकाना नहीं । (ख) उसकी दोलत का कहीं ठिकाना है ?

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधात्मक वाक्यों ही में होता है ।

ठिकाना—क्रि० स० [हि० ठिकाना] १. ठहराना । बड़ाना । स्थित करना । २. किसी अन्य की वस्तु को गुप्त रूप से अपने पास रख लेना या छिपा लेना ।

ठिकानेदार—संज्ञ पुं० [हि० ठिकाना + दार (दाय०)] १. किसी छोटे सुभाष का अधिपति । जागीरदार । २. स्वामी । मालिक ।

ठिगना—वि० [हि० ठिगना] नाश । छोटे कद का । ३. 'ठिगना' । उ०—इंस्पेक्टर अघेय, साँवला, नंगा आदमी था, कौड़ी की भी पाँखें, फूँचे हुए था और ठिगना बंद ।—गबन, पृ० २८३ ।

ठिठकना—क्रि० प्र० [सं० स्थित + करण या देश०] १. चलते चलते एकबारगी रुक जाना । एकदम ठहर जाना । उ०—तनिक ठिठक, कुछ मुड़कर दाएँ, देव अजिर में उनकी ओर ।—साकेत, पृ० ३६६ । २. अंगो जी गति बंद करना । स्तंभित होना । न हिलना न डोलना । ठक रह जाना ।

ठिठरना—क्रि० प्र० [सं० स्थित या हि० ठार अथवा सं० शीत + रतृ-सरण] अधिक भीन में संकुचित होना । सरदी से एँटना या सिझना । जाड़े से अकड़ना । बहुत अधिक ठंड खाना । जैसे, हाथ पाँव ठिठरना ।

ठिठुरना—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिठुरना] ठिठरने या ठरने का भाव । जाड़े की अधिकता से अंगों की सिझना । ठरना । उ०—दर व दीवार सत्र बरफ ही बरफ और ठिठुरन इस कयामत की ।—देव०, पृ० १२ ।

ठिठुरना—क्रि० प्र० [हि०] ३. 'ठिठरना' ।

ठिठोली—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिठोली] ३. 'ठिठोली' । उ०—बाह का बोली है कि रोने में भी ठिठोली है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५ ।

ठिन—संज्ञा पुं० [सं० स्थिति (= स्थान)] स्थान । स्थल । उ०—पवि पचीस एक ठिन आई, जुगुति ते एह समुझाव ।—जग० शा०, भा० २, पृ० २० ।

ठिना—संज्ञा पुं० [अनुज्व०] छोटे बच्चों के द्वारा रक्त रक्तकर रोने की ध्वनि की तरह उत्पन्न आवाज ।

मुहा०—ठिन ठिन करना = रोने की सी ध्वनि करना । रह रह-कर धीरे धीरे रुदन का प्रयास करना । (स्त्रि०) ।

ठिनकना—क्रि० प्र० [पनुध्व०] १. बच्चों का रहकर रोने का सा शब्द निकालना । २. ठमक से रोना । रोने का नखरा करना । (स्त्रि०) ।

ठिया—संज्ञा पु० [सं० स्थित] १. गाँव की सोमा का चिह्न । हृद का पथर या लट्टा । २. चाँड़ । थूनी । ३. दे० 'ठीहा' ।

ठिर—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिर वा स्तब्ध] १. गहरी सरदी । कठिन शीत । गहरी ठंड । पाला ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

२. शीत से ठिठुरने की स्थिति या भाव ।

क्रि० प्र०—जाना ।

ठिरना—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिर] दे० 'ठरन', 'ठठरन' ।

ठिरना^१—क्रि० स० [हि० ठिर] सरदी से ठिठुरना । जाड़े से झकड़ना ।

ठिरना^२—क्रि० प्र० गहरा जाड़ा पड़ना । अत्यंत ठंड पड़ना ।

ठिलना—क्रि० प्र० [हि० ठेलना] १. ठेला जाना । ठकेला जाना । बलपूर्वक किसी धोर सिसकाया या बढ़ाया जाना । उ०—फिरे धर बज्जिय भार करार । ठिले न ठिलाइ न मन्निय हार ।—पृ० रा०, १६।२२१ । २. बलपूर्वक बढ़ना । वेग से किसी धोर झुक पड़ना । घुसना । घँसना । उ०—एक्खिन ते उमके दोउ भाई । ठिले होह दल पुहिम हिलाई ।—लास (शब्द०) । † ३. बैठना । जमना । स्थिर होना ।

ठिलाठिला—क्रि० वि० [हि० ठिलना] एक पर एक गिरते हुए । धक्कमधक्का करते हुए । घने समूह धोर बड़े वेग के साथ । उ०—भलभिल फोज ठिलाठिल भावे । बहुं दिस छोर छुवन नहि पावे ।—लास (शब्द०) ।

ठिलाना—क्रि० प्र० [हि० ठिलना] ठेला जाना । हटाया जाना । उ०—फिरे धर बज्जिय भार करार । ठिले न ठिलाइ न मन्निय हार ।—पृ० रा०, १६।२२१ ।

ठिलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली, प्रा० ठाली (= हँडिया)] छोटा घड़ा । पानी भरने का मिट्टी का छोटा बरतन । गगरी ।

ठिलुआ—वि० [हि० निठल्ला] निठल्ला । निकम्मा । बेकाम । जिसे कुछ काम धंधा न हो । उ०—बहुत ठिलुआ अपना मन बहलाने के लिये धोरो की पंचायत ले बैठते हैं ।—श्रीनिवास दास (शब्द०) ।

ठिल्ला—संज्ञा पु० [हि० ठिलिया] [स्त्री० ठिलिया, ठिल्ली] घड़ा । पानी भरने या रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन । बड़ा गगरा ।

ठिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठिलिया' ।

ठिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठिल्लो' ।

ठिबना(ठो)—क्रि० स० [सं० स्थापय, प्रा० ठब्ब] ठीकना । उ०—सिधराज बंस दूजो सिधर उरम ठिबतो भावियो ।—शिवर०, पृ० ७७ ।

ठिहारा—वि० [सं० स्थिर अथवा हि० ठीहा] १. विश्वास करने योग्य । एतबार के लायक । २. निवास योग्य । स्थिर होने योग्य ।

ठिहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहरना] ठहराव । निश्चय । इकरार । उ०—जैसी हुती हमते तुमते सब होयगी वैसिये प्रीति बिहारी । चाहत जो चित में हित तो जनि बोलिय कुंजन कुंजबिहारी ।—सुंदरीसवंस्व (शब्द०) ।

ठींगा—वि० [हि० धीगा] जबर्दस्त । बलवान् । उ०—सीह धयी बन साहिबो, ठींगारी संकरात ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० १६ ।

ठीक—वि० [सं० स्थितिक या देश०] १. जैसा हो वैसा । यथायं । सच । प्रामाणिक । जैसे,—तुम्हारी बात ठीक निकली । २. जैसा होना चाहिए वंसा । उपयुक्त । अच्छा । भला । उचित । मुनासिब । योग्य । जैसे,—(क) उनका बर्ताव ठीक नहीं होता । (ख) तुम्हारे लिये कहना ठीक नहीं है ।

मुहा०—ठीक लगना = भला जान पड़ना ।

३. जिसमें भूल या अशुद्धि न हो । शुद्ध । सही । जैसे,—प्राठ में से तुम्हारे कितने सवाल ठीक हैं ? ४. जो बिगड़ा न हो । जो अच्छी दशा में हो । जिसमें कुछ बुरि या कसर न हो । दुस्त । अच्छा । जैसे,—(क) यह धड़ी ठीक करने के लिये भेज दो । (ख) हमारी तबीयत ठीक नहीं है ।

थो०—ठीक ठाक ।

५. जो किसी स्थान पर अच्छी तरह बैठे या जमे । जो ढीला या कसा न हो । जैसे,—यह जूता पैर में ठीक नहीं होता ।

मुहा०—ठीक घाना = ढीला या कसा न होना ।

६. जो प्रतिकूल आचरण न करे । सीधा । सुष्ठु । नम्र । जैसे,—(क) वह बिना मार खाए ठीक न होगा । (ख) हम अपनी तुम्हें आकर ठीक करते हैं ।

मुहा०—ठीक बनाना = (१) दंड देकर सीधा करना । राह पर लाना । दुस्त करना । (२) तंग करना । दुर्गति करना । दुर्दशा करना ।

७. जो कुछ भागे पीछे, इधर उधर या लटा बढ़ा न हो । जिसकी आकृति, स्थिति या मात्रा आदि में कुछ अंतर न हो । किसी निदिष्ट आकार, परिमाण या स्थिति का । जिसमें कुछ फर्क न पड़े । निदिष्ट । जैसे,—(क) हम ठीक ग्यारह बजे आवेंगे । (ख) चिड़िया ठीक तुम्हारे सिर के ऊपर है । (घ) यह चीज ठीक वंसी ही है ।

मुहा०—ठीक उत्तरना = जितना चाहिए उतना ही ठहरना । जाँच करने पर न घटना न बढ़ना । जैसे,—प्रनाथ तीलने पर ठीक उत्तरा ।

८. ठहराया हुआ । नियत । निश्चित । स्थिर । पक्का । तै । जैसे, काम करने के लिये आदमी ठीक करना, बाड़ी ठीक करना, भाड़ा ठीक करना, विवाह ठीक करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

थो०—ठीक ठाक ।

ठीक^२—क्रि० वि० जैसे चाहिए वैसे । उपयुक्त प्रणाली से । जैसे, ठीक चलना, ठीक पौड़ना । उ०—(क) यह धोड़ा ठीक नहीं चलता । (ख) यह बनिया ठीक नहीं चीखता ।

थौं—ठीकमठाका, ठीकमठीक=एकदम ठीक। पूर्णतः ठीक।
बिलकुल बुरस्त।

ठीक^३—संज्ञा पुं० १. निश्चय। ठिकाना। स्थिर और असंदिग्ध बात।
पक्की बात। दृढ़ बात। जैसे,—उनके भाने का कुछ ठीक
नहीं, भावें या न भावें।

थौं—ठीक ठिकाना।

मुहा०—ठीक देना=मन में पक्का करना। दृढ़ निश्चय करना।

उ०—(क) नीके ठीक दई तुलसी अवलंब बड़ी उर धाखर
दू की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कर विचार मन बीनहीं
ठीका। राम रजायसु आपन नीका।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस मुहावरे में 'ठीक' शब्द के भागे 'बात' शब्द लुप्त
मानकर उसका प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है।

२. नियति। ठहराव। स्थिर प्रबंध। पक्का आयोजन। बंदोबस्त।
जैसे,—छाने पीने का ठीक कर लो, तब कहीं जाओ।

थौं—ठीक ठाक।

३. जोड़। मीजान। योग। टोटल।

मुहा०—ठीक देना, ठीक लगाना=जोड़ निकालना। योगफल
निश्चित करना।

ठीकठाक^३—संज्ञा पुं० [हि० ठीक] १. निश्चित प्रबंध। बंदोबस्त।
आयोजन। जैसे,—इनके रहने का कहीं ठीक ठाक करो।

कि० प्र०—करना।—होना।

२. जीविका का प्रबंध। काम धंधे का बंदोबस्त। आश्रय। टौर
ठिकाना। जैसे,—इनका भी कहीं ठीक ठाक लगाओ।

कि० प्र०—करना।—लगाना।

३. निश्चय। ठहराव। पक्की बात। जैसे,—विवाह का ठीक
ठाक हो गया?

ठीकठाक^३ वि०—अच्छी तरह बुरस्त। बनकर तैयार। प्रस्तुत। काम
दिये योग्य।

ठीकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० ठीकरा] दे० 'ठीकरा'।

ठीकरा—संज्ञा पुं० [देशी ठिकरिषा] [झी० भल्पा० ठीकरी] १.
मिट्टी के बरतन का फूटा टुकड़ा। खपरैल धाबि का टुकड़ा।
सिटकी।

मुहा०—(किसी के माथे या सिर पर) ठीकरा फोड़ना=दोष
लगाना। कलंक लगाना। (जैसे किसी वस्तु या रूप प्रादि
को) ठीकरा समझना=कुछ न समझना। कुछ भी मूल्यावान्
न समझना। अपने किसी काम का न समझना। जैसे,—
पराए भाव को ठीकरा समझना चाहिए। (किसी वस्तु का)
ठीकरा होना=संधाधुंध खच होना। पानी की तरह बहाया
जाना। ठीकरे की तरह बेमोल एवं तुच्छ होना।

२. बहुत पुराना बरतन। टूटा फूटा बरतन। ३. भोल मांगने का
बरतन। भिक्षापात्र। ४. सिक्का। रुपया (सधु०)।

ठीकरी^३—संज्ञा स्त्री० [देशी ठिकरिषा] १. मिट्टी के बरतन का
छोटा फूटा टुकड़ा। २. तुच्छ। निकम्मा चीज। ३. मिट्टी का
तवा जो बिलम पर रखते हैं।

ठीकरी^३—संज्ञा स्त्री० [देशी ठिकरिषा (=पुरुषेद्रिष)] उपस्थ। स्त्रियों
की योनि का उभरा हुआ तल।

ठीका—संज्ञा पुं० [हि० ठीक] १. कुछ धन प्रादि के बदले में किसी
के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा। जैसे, मकान
बनवाने का ठीका, सड़क तैयार करने का ठीका। २. समय
समय पर धामदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये
इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह धामदनी वसूल
करके और उसमें से कुछ अपना मुनाफा काटकर बराबर
मालिक को देता जायगा। इजारा।

कि० प्र०—देना।—लेना।—पर लेना।

ठीकेदार—संज्ञा पुं० [हि०] १. ठीके पर दूसरों से काम लेनेवाला
व्यक्ति। ठीका देनेवाला। २. किसी काम को कुछ निश्चित
नियमों के अनुसार पूरा करा देने का जिम्मा लेनेवाला व्यक्ति।

ठीटा—संज्ञा पुं० [हि० ठैठा] दे० 'ठैठा'।

ठीठी—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] हँसी का शब्द।

थौं—हाहा ठीठी।

कि० प्र०—करना।—होना।

ठीढ़ी ठाढ़ी^३—वि० [सं० स्थिति + स्थ] जिस हालत में हो उसी
में स्थित। स्पंदनहीन। निश्चेष्ट। उ०—सजि भिंगार कुंजन
गई लहो नहीं बलबीर। ठीढ़ी ठाढ़ी गी तरुन बाढ़ी गाढ़ी
पीर।—सं० सप्तक, पु० ३८६।

ठीखना—कि० सं० [हि०] दे० 'ठैलना'। उ०—मैं तो भूलि ज्ञान
को प्रायो गयउ तुम्हारे टीले।—सूर (शब्द०)।

ठीवन^३—संज्ञा पुं० [सं० ठीवन] धूँक। लतार। कफ। श्लेष्मा।
उ०—धामिष अस्थिषन वाम को धानन, ठीवन तामें नरो
अधिकारी।—रघुगज (शब्द०)।

ठीसा—संज्ञा स्त्री० [हि० टीस] रह रहकर होनेवाली पीड़ा।
टीस। उ०—धूतक होय गुरु पद गहै ठीस करे सब दूर।—
कबीर श०, भा० ४, पृ० २६।

ठीहँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घोड़ों की हींस। हिनहिनाहट का शब्द।
उ०—दुहँ दल ठीहँ तुरगनि दीनी। दुहँ दल बुद्धि जुद्ध रस
मीनी।—लाल (शब्द०)।

ठीह—संज्ञा पुं० [सं० स्था] दे० 'ठीहा'।

ठीहा—संज्ञा पुं० [सं० स्था] १. जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का
कुंदा जिसका घोड़ा या भाग जमीन के ऊपर रहता है।

विशेष—इस कुंदे पर वस्तुओं का रखकर लोहार, बढ़ई प्रादि
उन्हें पीटते, छीलते या गढ़ते हैं। लोहार, कसेरे प्रादि धातु
का काम करनेवाले इसी ठीहे में अपनी 'निहाई' गाड़ते हैं।
पशुओं को खिलाने का चारा भी ठीहे पर रखकर काटा
जाता है।

२. बड़इयों का लकड़ी गढ़ने का कुंदा जिसमें एक मोटी लकड़ी में
ठालुआ गड़वा बना रहता है। ३. बड़इयों का लकड़ी खीरने
का कुंदा जिसमें लकड़ी को कसकर खड़ा कर देते और खीरते
हैं। ४. बैठने के लिये कुछ किया हुआ स्थान। बेदी। गद्दी।
५. दूकानदार के बैठने की जगह। ६. हृद। सीमा। ७. बाँड।
धूनी। ८. उपयुक्त स्थान।

ठुंठ—संज्ञा पुं० [देश० ठुंठ वा सं० स्थाणु] १. सूखा हुआ पेड़।

२. ऐसे पेड़ की लड़ी लकड़ी जिसकी डाल पतियाँ आदि कट या गिर गई हों। ३. कटा हुआ हाथ। ४. वह मनुष्य जिसका हाथ कटा हो। नूना।

ठुं—संज्ञा स्त्री० [हि० ठुंठ] दे० 'ठुंठ'।

ठुंकना^(१)—क्रि० प्र० [हि० ठोंकना] धीरे धीरे हथेली पटककर आघात पहुँचाना। हाथ मारना। उ०—दिन दिन देन उगड़नो भावें ठुंकि ठुंकि करत सरैया।—सूर (शब्द०)।

ठुक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] किसी चीज पर कड़ी वस्तु से आघात करने का शब्द या ध्वनि।

ठुकठुक—संज्ञा स्त्री० किसी वस्तु को ठोंकने से लगातार होनेवाली ध्वनि।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

ठुकना—क्रि० प्र० [अनुध्व०] १. ताड़ित होना। ठोंका जाना। पिटना। आघात सहना। २. आघात पाकर घँसना। गड़ना। जैसे, खूँटा ठुकना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. मार खाना। मारा जाना। जैसे, - घर पर खूब ठुकीये। ४. कुपती आदि में हाथना। ध्वस्त होना। पस्त होना। ५. हानि होना। नुकसान होना। चपन बैठना। जैसे, - घर से निकलते ही २०) की ठुकी। ६. पाठ में ठोंका जाना। कैद होना। पैर में बेटी पहनना। ७. दाखिल होना। जैसे, नालिश ठुकना। ८. बजना। ध्वनित होना। उ०—कहूँ निमत धर धुकत, लुकत कहूँ सुभट छात छल। एकत काल कहूँ पत्र, कुकत कहूँ सेन पाइ जल।—पृ० रा०, ८५२।

ठुकराना—क्रि० प्र० [हि० ठोकर] १. ठोकर मारना। ठोकर लगाना। लात मारना। २. पैर से मारकर किनारे करना। तुच्छ समझकर पैर से हटाना। ३. तिग्गहार या उपेक्षा करना। न मानना। घमास करना। जैसे, बात ठुकराना, सलाह ठुकराना।

ठुकराला—संज्ञा पुं० [सं० ठुकुर] १. दे० 'ठाकुर'। उ०—भनमानै जे पलाणजइ। दिव वालो ठुकराला सभिहा जानि।—बी० रासो, पृ० १६। २. नेपाल के एक वर्ग की उपनिधि।

ठुखाना—क्रि० प्र० [हि० ठोंकना का प्रे० रूप] १. ठोंकने का काम कराना। पिटवाना। २. गड़वाना। घँसवाना। ३. संभोग कराना (प्रणिष्ट)।

ठुकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठुकना] ठोंके जाने या मार खाने की स्थिति, भाव या क्रिया। जैसे, - सुना धाज बड़ी ठुकाई हुई।

ठुठंकना^(२)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठिठंकना'। उ०—ठुठंकिय सकिय कायर पाय। रनंकत ठंड अनंकत जाय।—पृ० रासो, पृ० ४१।

ठुड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० ठुण्ड] चेहर में होठ के नीचे का भाग। चिबुक। जोड़ी। हनु।

ठुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठड़ा (= छड़ा)] वह धुना हुआ दाना जो फूटकर खिलान हो। ठोरी। जैसे, मक्के की ठुड़ी।

ठुनक ठुनक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] ठिठककर चलने के कारण आसूषण से निकलनेवाली ध्वनि। उ०—ठुमक चाल ठिठ ठाठ सो, ठेलयो मदन कटकक। ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि ठठके लाल भटकक।—ब्रजनिधि प्र०, पृ० ३।

ठुनकना^(३)—क्रि० प्र० [हि०] १. दे० 'ठिनकना'। २. प्यार या दुलार के कारण नखरा करना। उ०—सबको है आपको नहीं है? उमने ठुनकते हुए कहा।—भाषी, पृ० ३२।

ठुनकना^(४)—क्रि० प्र० [हि० ठोंकना] धीरे से उंगली से ठोंक या मार देना।

ठुनकाना^(५)—क्रि० प्र० [हि० ठोंकना] धीरे से ठोंकना। उंगली से धीरे से चोट पहुँचाना।

ठुनकार—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] ठुनक की आवाज। उ०—ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि ठठके लाल भटकक।—ब्रज० प्र०, पृ० ३।

ठुनठुन—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. धातु के टुकड़ों या बरतनों के बजने का शब्द। २. बच्चों के एक एककर रोने का शब्द।

मुहा०—ठुन ठुन लगाए रहना = बराबर रोया करना।

ठुनुकना^(६)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठुनकना'। उ०—वह बालिका के गण ठुनुककर बोली।—कंकाल, पृ० २१७।

ठुमक—क्रि० प्र० [अनुध्व०] १. (चाल) जिसमें उमंग के कारण जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलते हैं। बच्चों की तरह कुछ कुछ उछल कूद गा ठिठक लिए हुए (चाल)। २. ममकभरी (चाल)। जैसे, ठुमक चाल।

ठुमक, ठुमक, ठुमुक, ठुमक क्रि० प्रि० [अनुध्व०] जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए (बच्चों का चलना)। फुटाने या रह रहकर हूदते हुए (चलना)। जैसे, बच्चों का ठुमक ठुमक चलना। उ०—(क) कौशल्या जब बोलन जाई। ठुमकि ठुमकि प्रभु चलहि पराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चलन देखि चममति मुख पावै। ठुमुक ठुमुक धरनी पर रंगत जननी देखि दितावै।—सूर (शब्द०)।

ठुमकना, ठुमकना—क्रि० प्र० [अनुध्व०] १. बच्चों का उमंग में जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलना। उ०—ठुमुकि बसत रामचंद्र वाजत पैजनियाँ।—तुलसी (शब्द०)। २. नाचने में पैर पटककर चलना जिसमें धुंधल बनें।

ठुमका^(७)—क्रि० प्रि० [देश०] [क्रि० स्त्री० ठुमकी] छोटे डील का। नाटा। हँसना। उ०—जाति चली ब्रज ठाकुर पै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन।—पद्माकर (शब्द०)।

ठुमका^(८)—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] [स्त्री० ठुमकी] भटकना। थपका।—(पतंग)।

ठुमकारना—क्रि० प्र० [देश०] उंगली से डोरी खींचकर भटकना देना। थपका देना।—(पतंग)।

ठुमकी^(९)—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. हाथ या उंगली से खींचकर दिया हुआ भटकना। थपका।—(पतंग)।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

२. ठिठक। रुकावट। ३. छोटी मोर सरी पूरी।

ठुमकी^१—वि० स्त्री० नाटी। छोटे डोल की। छोटी काठी की।
उ०—जाति चली ब्रज ठाकुर पै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन।
—पद्याकर (शब्द०)।

ठुमठुम—वि० क्रि० वि० [हि०] दे० 'ठुमक ठुमक'। उ०—भाई बंद
सकल परिवारा। ठुमठुम पाव चलै तेहि सारा।—घट०,
पृ० ३७।

ठुमरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. एक प्रकार का छोटा सा गीत। दो
बोलों का गीत जो केवल एक स्थान और एक ही मंत्र में
समाप्त हो।

गौ०—सिरपरदा ठुमरी=एक प्रकार की ठुमरी जो 'मट्टा'
ताल पर बजाई जाती है।

२. उड़ती लहर। गप। मफवाह।

क्रि० प्र०—उड़ना।

ठुरियाना^१—क्रि० प्र० [हि० ठार (=घोत)] ठिठुर जाना।
सिकुड़ जाना। शीत से मकड़ जाना।

ठुरियाना^२—क्रि० प्र० [हि० ठुरी] ठुरी होना। धुने हुए दाने का न
खिलना।

ठुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठड़ा (=खड़ा) या देश०] बह भुना हुआ
दाना जो भुनने पर न खिले।

ठुसकना—क्रि० प्र० [अनुध्व०] १. दे० 'ठिनकना'। २. ठुस खन्व
करके पादना। ठुसकी मारना।

ठुसकी—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] धीरे से पादने की क्रिया।

ठुसना—क्रि० प्र० [हि० ठूसना] १. कसकर भरना। इस
प्रकार समाना या भेंटना कि कहीं खाली जगह न रह जाय।
जैसे,—इस संदूक में कपड़े ठुसे हुए हैं। २. कठिनता से
घुसना। ३. भर जाना। समाप्त हो जाना। न रहना। उ०—
हिदीपन भी न निकले, भाखापन भी ठुस जाय जैसे भले
लोग अच्छों से अच्छे भावस में बोलते चालते हैं, क्यों का क्यों
बढ़ी सब डोल रहे और छाँह किसी की न पड़े।—टेठ०,
(उपो०), पृ० २।

ठुसवाना—क्रि० स० [हि० ठूसना का प्रेरक] १. कसकर
भरवाना। २. जोर से घुसवाना। ३. संभोग कराना।
ठुसवाना (प्रशिष्ट०)।

ठुसाना—क्रि० स० [हि० ठूसना] १. कसकर भरवाना। २. जोर
से घुसवाना। ३. खूब पेट भर खिलाना (प्रशिष्ट०)।

ठूंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. चोंच। जोर। २. चोंच से मारने
की क्रिया। चोंच का प्रहार। ३. उँपली को मोड़कर पीछे
निकली हुई जोड़ की हड्डी की नोक से मारने की क्रिया।
टोला।

क्रि० प्र०—लगाना।—मारना।

ठूंगना^१—क्रि० स० [हि० ठूंग + वा (प्रत्य०)] ठूंगना।
घुगना। उ०—जोबहू तीन्यू लोक सब ठूंगे साथे साथ। दाहू
साधु सब जरे, सतगुरु के बेसास।—दाहू० बानी, पृ० १५६।

ठूंगना—संज्ञा पुं० [हि० ठूंग] दे० 'ठूंग'।

४-१४

ठूँठ—संज्ञा पुं० [हि० ठूटना, वा सं० स्थाणु, या देशी ठुंठ (=स्थाणु)]

१. ऐसे पेड़ की खड़ी लकड़ी जिसकी डाल, पत्तियाँ आदि कट
गई हों। सूखा पेड़। २. कटा हुआ हाथ। ठुंडा। उ०—
विद्या विद्या हरण हिन पड़त होत खल ठूँठ। कछो
निकारो मोन को घुसि भायो गृह ऊँठ।—विश्राम (शब्द०)।
३. एक प्रकार का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, ईख आदि की
फसल में लगता है।

ठूँठा—वि० [हि० ठूँठ वा सं० स्थाणु] [वि० स्त्री० ठूँठी] १. बिना
पत्तियों और टहनियों का (पेड़)। सूखा (पेड़)। जैसे, ठूँठा
पेड़। २. बिना हाथ का। जिसका हाथ कटा हो। लूला।

ठूँठिया—वि० [हि० ठूँठ + इया (प्रत्य०)] १. लूला। लंगड़ा।
२. हिजड़ा। नपुंसक।

ठूँठि—संज्ञा स्त्री० [हि० ठूँठ] ज्वार, बाजरे, मरहर आदि की जड़
के पास का डटल जो खेत काटने पर पड़ा रह जाता है।
खूँटी।

ठूँसना—क्रि० स० [हि०] दे० 'ठूसना'।

ठूँसा—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'ठोसा'। २. मुक्का। घूँसा।

ठूठ—वि० [देशी ठुंठ, हि० ठूँठ, ठूठ] दे० 'ठूँठ'। उ०—दसा सुने
निज बाग की लाल मानिहो भूठ। पावसरि तु हूँ में लखे डाँके
ठाँके ठूठ।—मति० प्र०, पृ० ४४६।

ठूठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजजागुन नाम का वृक्ष। वि० दे०
'राजजागुन'।

ठून्—संज्ञा पुं० [देश०] पत्तों की बह टेढ़ी कील जिसपर वे गहने
श्रृंखलाकर उल्टे गूँथते हैं।

विशेष—यह कील पत्थर में बैठाए हुए खूँटे के सिरे पर
लगी होती है।

ठूसना—क्रि० स० [हि० ठस] १. कसकर भरना। इसना अधिक
भरना कि इधर उधर जगह न रहे। २. घुसेड़ना। जोर से
घुगाना। ३. खूब पेट भरकर खाना। कसकर खाना।

ठेंगना—वि० [हि० हैंड + ङंग] [वि० स्त्री० ठेंगनी] छोटे डोल
का। जो ऊँचाई में पूरा न हो। नाटा।—(जीवधारियों,
विशेषतः मनुष्य के लिये)।

ठेंगा—संज्ञा पुं० [हि० हैंड + ङंग वा अंगूठा या देश०] १. अंगूठा।
ठोसा।

मुहा०—ठेंगा दिखाना = (१) अंगूठा दिखाना। ठोसा दिखाना।
घुल्ला के साथ झूठीकार करना। बुरी तरह से नहीं करना।
(२) विद्वाना। ठेंगे से = बला से। कुछ परवाह नहीं।

विशेष—जब कोई किसी से किसी बात की घमकी या कुछ करने
या होने की सूचना देता है तब दूसरा अपनी बेपरवाही या
निर्भीकता प्रकट करने के लिये ऐसा कहता है।

२. सिग्रेट्रिय। (प्रशिष्ट)। ३. सोंटा। डंडा। गदका। जैसे,—
जबरदस्त का ठेंगा सिर पर।

मुहा०—ठेंगा बजाना = (१) मारपीट होना। जड़ाई बंधा होना।
(२) व्यर्थ की खटखट होना। प्रयत्न निष्फल होना। कुछ

काम न निकलना । उ०— जिसका काम उसी की साजे । और करें तो ठेंगा बाजे ।—(शब्द०) ।

४. वह कर जो बित्री के साल पर लिया जाता है । बुंगी का महसूल ।

ठेंगुर—संज्ञा पु० [हि० ठेंगा (= मोटा)] काठ का लघा कुंदा जो नटखट चोपायों के गले में इसलिये बांध दिया जाता है जिसमें वे बहुत दौड़ और उछल-कूद न सकें ।

ठेंघा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ठेघा' ।

ठेंठ^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठोंठी' ।

ठेंठ^२—वि० [हि०] दे० 'ठेठ' ।

ठेंठा^१—संज्ञा पु० [हि०] गुला हुआ बंटल । उ०—रानी एक मज़ूर से बेलों के लिये जोहरी का ठेंठा कटवा रही थी ।—तितली, पृ० २३८ ।

ठेंठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कान की मेल का लच्छा । कान की मेल । २. कान के छेद में लगाई हुई कई, कपड़े आदि की डाट । कान का छेद मूँदने की वस्तु ।

मुहा०—कान में ठेंठी लगाना = न सूचना ।

३. शीशी बोटल आदि का मुँह बंद करने की वस्तु । डाट । काग ।

ठेंपी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठेंपी' ।

ठेक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिकना] १. सहारा । बल देकर ठिकाने की वस्तु । धौंठगाने की चीज । २. वह वस्तु जो किसी भारी चीज को ऊपर ठहराए रखने के लिये नीचे से लगाई जाय । टेक । चाँड़ । ३. वह वस्तु जिसे बीच में देने या टोकने से कोई वीली वस्तु कस जाय, इसमें उभर न दिते । पच्चड़ । ४. किसी वस्तु के नीचे का भाग जो जमीन पर टिका रहे । पैदा । तला । ५. दृष्टियों आदि में घिरा हुआ वह स्थान जिसमें मनाज भरकर रखा जाता है । ६. धोड़ों की एक चाल । ७. छड़ी या लाठी की सामी । ८. धातु के बरतन में लगी हुई चकती । ९. एक प्रकार की माली महताबी ।

ठेकना—क्रि० स० [हि० ठिकना, टेक] १. सहारा लेना । आश्रय लेना । चलने या उठने बैठने में अपना बल किसी वस्तु पर देना । टेकना । २. आश्रय लेना । ठिकना । ठहरना । रहना । उ०—नी, तेरह, बीबीस धो एका । पुरब दखिन कोन तेह टेका ।—जायसी (शब्द०) । वि० दे० 'ठेकना' ।

ठेकवा बाँस—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह बंगाल और आसाम में होता है और छात्रन तथा चटाई आदि के काम में आता है । इसे देवबाँस भी कहते हैं ।

ठेका^१—संज्ञा पु० [हि० ठिकना, टेक] १. टेक । सहारे की वस्तु । २. ठहरने या रुकने की जगह । बैठक । झुका । ३. तबला या तेल बजाने की वह क्रिया जिसमें पूरे बोल न निकाले जायें, केवल ताल दिया जाय । यह बाएँ पर बजाया जाता है ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—देना ।

मुहा०—ठेका भरना = घोड़े का उछल कूद करना ।

४. तबले का बायाँ । दुग्गी । ५. कीवाली ताल । ६. ठीकर ।

घबका । घपेड़ा । उ०—तरब तरंग रंग की राजहि उछलत छज लगि टेका ।—रघुराज (शब्द०) ।

ठेका^२—संज्ञा पु० [हि० ठीक] १. कुछ घन आदि के बचले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा । ठीका । जैसे, मकान बनवाने का ठेका । सड़क तैयार करने का ठेका । २. समय समय पर धामदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह धामदनी वसूल करके और कुछ अपना निश्चित मुनाफा काटकर बराबर मालिक को देता जायगा । हजारा । पट्टा ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।—पर लेना ।

यौ०—ठेका पट्टा ।

मुहा०—ठेका भेंट = वह नजर जो किसी वस्तु को ठेके पर लेनेवाला मालिक को देता है ।

ठेकाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़ों की छपाई में काबे हाथियों की छपाई ।

ठेकाना^१—क्रि० स० [हि० ठेकना का प्रे० रूप] धौंठगाना । किसी वस्तु को किसी वस्तु के सहारे करना । सहारा देना ।

ठेकाना^२—संज्ञा पु० [हि० ठिकाना] दे० 'ठिकाना' ।

ठेकुरी^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेंकली' । उ०—कहू ठेकुरी ढारि के वारि ढारे ।—प० रासो, पृ० ५५ ।

ठेकेदार—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ठीकेदार' ।

ठेकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] १. टेक । सहारा । २. चाँड़ । ३. विश्राम करने के लिये ऊपर लिए हुए बोझ को कुछ देर कहीं ठिकाने या ठहराने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—लेना ।

ठेगड़ी^(१)—संज्ञा पु० [देश०] कुत्ता ।—(हि०) ।

ठेगना^(१)—क्रि० स० [हि० ठेकना] १. ठेकना । सहारा लेना । उ०—पाणि ठगि मज्जुषा काहीं । रघुनायक चितयो गुह पाहीं ।—रघुराज (शब्द०) । २. रोकना । बरजना । मना करना । उ०—भँवर भुजंग कहा सो पीया । हम ठेगा तुम कान न कीया ।—जायसी (शब्द०) ।

ठेगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेगना] टेकने की लकड़ी ।

ठेघना—क्रि० स० [हि०] दे० 'ठेगना' ।

ठेघनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेघना] टेकने की लकड़ी ।

ठेघा^१—संज्ञा पु० [हि० टेक] टेक । चाँड़ । वह खंभा या लकड़ी जो सहारे के लिये लगाई जाय । ठहराव । ठिकान । उ०—(क) बरनहि बरन गगन जस मेघा । सठहि गगन बैठे जनु ठेघा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) बिरहु बजागि बीज को ठेघा ।—जायसी प्र०, पृ० १६१ ।

ठेघुना^१—संज्ञा पु० [सं० षष्ठोव, हि० ठेहना] दे० 'ठेहना' ।

ठेठ^१—वि० [देश०] १. निपट । निरा । बिलकुल । जैसे, ठेठ गँवार । २. खालिस । जिसमें कुछ मेलजोल न हो । जैसे, ठेठ बोली, ठेठ हिंदी । ३. शुद्ध । निर्मल । निलस । उ०—मैं उपकारी ठेठ का सतगुरु दिया सोहान । दिल दरपन दिखलाय के दुर

किया सब ताग ।—कबीर (शब्द०) । ४. प्रारंभ । शुरु ।
उ०—मैं ठेठ से बेखता आता हूँ कि आप मुझको देखकर
जलते हैं ।—श्रीनिवास दास (शब्द०) ।

ठेठ^२—संज्ञा स्त्री० सीधी सादी बोली । वह बोली जिसमें साहित्य अर्थात्
लिखने पढ़ने की भाषा के शब्दों का मेल न हो ।

ठेठरी—संज्ञा पुं० [अ० थिएटर] दे० 'थिएटर' ।

ठेना^१—क्रि० प्र० [?] १. ठहरना । रुकना । २. धकड़ना ।
एँटना । उ०—नाहक का भगड़ा मोल लेना है, सेतमेत का
ठेना है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५४ ।

ठेप^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] सोन चाँदी का इतना बड़ा टुकड़ा जो घटी
में आ सके ।—(सुनार) ।

विशेष—सुनार सोना या चाँदी गायब करने के लिये उसे इस
प्रकार घटी में लेते हैं ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—लगाना ।

ठेप^२—संज्ञा पुं० [सं० दीप] दीपक । चिराम ।

ठेपी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. डाट । काग जिससे बोतल वा किसी
बरतन का मुँह बंद किया जाता है । २. छोटा ढँकना ।

ठेरी^१—संज्ञा पुं० [हि० ठहर] ठहराव । रुकाव का स्थान । टक ।
उ०—पद नवकल रो ठेर पुण्णोज, गीत सतखणो मंझ गुणो
ज ।—रघु० क०, पृ० १३७ ।

ठेलना—क्रि० सं० [हि० टलना या अ० टल्ल] १. ढकेलना ।
धक्का देकर आगे बढ़ाना । रेलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

थो०—ठेलठाल, ठेलमठेल=धक्कम धक्का । ठेलाठेल । ठेलमेल=

एक पर एक आगे बढ़ते हुए । ठेलाठेली=धक्कम धक्का ।

२. जबदंस्ती करना । बलात् किसी को धाकियाते हुए आगे बढ़ना ।

ठेला—संज्ञा पुं० [हि० ठेलना] १. बगल से लगा हुआ धक्का
जिसके कारण कोई वस्तु खिसककर आगे बढ़े । पार्श्व का
आघात । टक्कर । २. छिछली नदियों में चलनेवाली नाव जो
खग्री के सहारे चलाई जाती है । ३. बहुत से आदमियों का
एक के ऊपर एक गिरना पड़ना । धक्कम धक्का । ऐसी भीड़
जिसमें देह से देह रगड़ लाय । रेलना । ४. एक प्रकार की
गाड़ी जिसे आदमी ठेल या ढकेलकर चलाते हैं ।

थो०—ठेलागाड़ी ।

ठेलाठेल—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेलना] बहुत से आदमियों का एक
के ऊपर एक गिरना पड़ना । रेलना पेल । धक्कम धक्का । उ०—
ठानि ब्रह्म ठाकुर ठगोगिन की ठेलाठेलि मेला के मझार हित
हेला के भयो गयो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

ठेवका^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थापक] वह स्थान जहाँ भेष मीचने के लिये
पुरखट का पानी गिराया जाता है ।

ठेवकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेवका] किसी लुढ़कनेवाली वस्तु को
धकाने या टिकाने की जगह या वस्तु ।

ठेस—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. आघात । चोट । धक्का । ठोकर । उ०—
बीछए दिस पर खंगेफिराक की ऐसी ठेस लगी कि चकनाचुर
हो गया ।—फिसावा०, भा० १, पृ० १२ ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगना ।—लगाना ।

२. सहारा । टेक ।

ठेसना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ठूसना' ।

ठेसमठेस—क्रि० वि० [हि० ठेस] सब पालों को एकबारगी खोले
हुए (जहाज का चलना) ।—(लक्ष०) ।

ठेहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह छोटी सी लकड़ी जो पुरानी चाल के
दरवाजों के पल्लों की खून के नीचे गड़ी रहती है और जिस-
पर खून घूमती है ।

ठेही—संज्ञा स्त्री० [देश०] मारी हुई ईल ।

ठेहुका^१—संज्ञा पुं० [हि० ठेक] वह जानवर जिसके पिछले घुटने
चलते समय आपस में रगड़ खाते हों ।

ठेहुना^१—संज्ञा पुं० [म० अष्टीवान्] [स्त्री० ठेहुनी] घुटना ।

ठेहुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेहुना] हाथ की कुहनी ।

ठैकर—संज्ञा पुं० [देश०] नीबू का सा एक खट्टा फल जिसे हलदी के
साथ उबालकर हलका पीला रंग बनाते हैं ।

ठैन(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [म० स्थान, हि० ठाय] जगह । स्थान । बैठने
का ठाँव । उ०—क्रीडत सघन कुज वृंदावन बंसावट जमुना
को ठैन ।—पूर (शब्द०) ।

ठैर्या^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाय] दे० 'ठाई' ।

ठैरना^१—क्रि० प्र० [हि० ठहरना] दे० 'ठहरना' । उ०—उनकी
कोई बात हिकमत से खाली नहीं ठैरती ।—श्रीनिवास ग्रं०,
पृ० १८४ ।

ठैनाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहरना] दे० 'ठहराई' ।

ठैराना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ठहराना' । उ०—(क) मैं बीजक
दिवाकर इन्से कीमत ठैरा लूँगा ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ०
१६० । (ख) हे सारथी, तपोवनवासियों के काम में कुछ
विघ्न न पड़े इन्से रख यही ठैरा दो हम उतर लें ।—
शकुंतला, पृ० १२ ।

ठेलपेल—संज्ञा स्त्री० [हि० ठेलना] दे० 'ठलपेल' ।

ठैहरना^१—क्रि० प्र० [हि० ठहरना] रुकना । ठहरना । उ०—(कछु
ठैहरि कें) प्यारे, जो यैही गति करती हीं तो अपनायो
क्यों ?—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४६५ ।

ठोंक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठोंकना] ठोकने की क्रिया या भाव ।
प्रहार । आघात । २. वह लकड़ी जिससे दरी बुननेवाले सूत
ठोंककर ठस करते हैं ।

ठोंकना—क्रि० सं० [अनु० ठक टक] १. जोर से चोट मारना ।
आघात पहुँचाना । प्रहार करना । पीटना । जैसे,—इसे हथोड़े
से ठोंको ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. मारना । पीटना । लात, धंसे डंडे आदि से मारना । जैसे,—
घर पर जाओ खूब ठोंके जाओगे ।

संयो० क्रि०—देना ।

३. ऊपर से चोट लगाकर धंसाना । गाड़ना । जैसे, कील ठोंकना,
पक्कर ठोंकना । ४. (नालिख, धरजी आदि) दाखिल करवा ।
बायर करना । जैसे, नालिश ठोंकना, दाबा ठोंकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. काठ में डालना । बेड़ियों से जकड़ना । ६. धीरे धीरे हथेली पटककर आघात पहुँचाना । हाथ मारना । जैसे, पीठ ठोंकना, ताल ठोंकना, बच्चे को ठोंककर सुलाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—ठोंक ठोंककर लड़ना = ताल ठोंककर लड़ना । हटकर लड़ना । जबरदस्ती भगड़ा करना । ठोंकना बजाना = हाथ से टटोलकर परीक्षा करना । जाँचना । परखना । जैसे,—लोग दमड़ी की हाँडी भी ठोंक बजाकर लेते हैं । उ०—(क) तन राशय मन पाहुरू, मनसा उत्तरी आय । कोड काहू का है नही (सब) देखा ठोंक बजाय ।—कबीर सा० सं०, पृ० ६१ । (ख) ठोंकि बजाय लखे गजराज कहाँ लो कहीं केहि सौ रद काढ़े ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) नंद ब्रज लीखे ठोंकि बजाय । देहु विदा मिलि जाहि मधुपुरी जेहु गोकुल के राय ।—सूर (शब्द०) । पीठ ठोंकना = दे० 'पीठ' का मुहा० । रोटी या बाटी ठोंकना = भाटे की लोई को हाथ से ठोंकते हुए बढ़ाकर रोटी बनाना ।

७. हाथ से मारकर बजाना । जैसे, तबला ठोंकना । ८. कसकर घंटकाना । लगाना । जड़ना । जैसे, ताला ठोंकना । ९. हाथ या लकड़ी से मारकर 'खट खट' शब्द करना । खटखटाना ।

ठोंकवाँ—संज्ञा पु० [हि० ठोंकना] मोटा मिले हुए भाटे की मोटी पूरी । गुना ।

ठोंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. चंचु । बोंब । २. चोच की मार । ३. उंगली झुकाकर पीछे की ओर निकली हुई नोक से मारने की क्रिया । उंगली को ठोकर । खुदका ।

ठोंगना—क्रि० सं० [हि० ठोंग] १. बोंब मारना । २. उंगली से ठोकर मारना । खुदका मारना ।

ठोंगा—संज्ञा पु० [हि० ठोंग] पत्ते कागज का नोश्दार या गोला एक पात्र जिसमें दुकानदार सोदा देते हैं ।

ठोंचना—क्रि० सं० [हि० ठोंग] दे० 'ठोंगना' ।

ठोंठ—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] बोंब का झगला सिरा । ओर । उ०—बाटुकारी का रोषक जाल फैलाकर उनकी रगकुशल बाटोरे की सी टोठ की बोंब हूँ ।—वीणा, (विज्ञापन) ।

ठोंठा—संज्ञा पु० [दे०] एक कीड़ा जो ज्वार, बाजरा और ईख को हानि पहुँचाता है ।

ठोंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. तने के दाने का कोण । २. पोस्ते की ठोड़ी ।

ठो—प्रत्यय० [दे० या हि० ठोर] एक शब्द जो पूरबी हिंदी में संख्यावाचक शब्दों के आग लगाया जाता है । संख्या : अक्षर । जैसे, एक ठो, दो ठो । इस प्रत्यय के बोधक अन्य शब्द गो, ठे आदि भी चलते हैं । जैसे, एक गो, दो गो आदि ।

ठोकवा—प्रत्यय पु० [दे०] आम की गुठली के ऊपर का कड़ा झिलका या आवरण ।

ठोकड़—[हि०] दे० 'ठोंक' । उ०—सुंदर मसकतिदार सौ गुह मधि काढ़े आगि । सवगुह चकमक ठोकते तुरत उठै कफ आगि ।—सुंदर० सं०, भा०, २, पृ० ६७१ ।

ठोकना—क्रि० सं० [हि० ठोंकना] दे० 'ठोंकना' ।

यौ०—ठोक पीट करना = ठोकना पीटना । बारबार ठोकना । ठोक पीटकर गढ़ना = ठोंक पीटकर दुरुस्त करना । तैयार करना । उ०—जब हम सोने को ठोंक पीट गढ़ते हैं, तब मान मूल्य, सोदयं सभी बढ़ते हैं ।—साकेत, पृ० २१३ ।

ठोकर—संज्ञा स्त्री० [हि० ठोकना] १. वह चोट जो किसी धंग विशेषतः पैर में किसी कड़ी वस्तु के जोर से टकराने से लगे । आघात जो चलने में कंकड़, पत्थर आदि के धक्के से पैर में लगे । ठेस ।

क्रि० प्र०—लगना ।

मुहा०—ठोकर उठाना = आघात या दुःख सहना । हानि उठाना । ठोकर या ठोकरें खाना = (१) चलने में एकबारगी किसी पड़ी हुई वस्तु की रूकावट के कारण पैर का चोट खाना और लड़खड़ाना । झटुकना । झटुककर गिरना । जैसे,—जो संभलकर नहीं चलेगा वह ठोकर खाकर गिरेगा (२) किसी मूल के कारण दुःख या हानि सहना । असावधानी या चूक के कारण कष्ट या क्षति उठाना । जैसे,—ठोकर खावे, बुद्धि पावे (३) खोले में आना । झूलचूक करना । चूक जाना । (४) प्रयोजन मिटि या जीविका आदि के लिये चारों ओर घूमना । हीन दशा में भटकना । इधर उधर मारा मारा फिरना । दुर्दशा-ग्रस्त हो कर घूमना । दुर्गति सहना । कष्ट सहना । जैसे,—यदि वह कुछ काम धंधा नहीं सीखेगा तो आप ही ठोकर खायेगा । ठोकर खाता फिरना = इधर उधर मारा मारा फिरना । ठोकर लगना = किसी मूल या चूक के कारण दुःख या हानि पहुँचना । ठोकर लेना = ठोकर खाना । झटुकना । चलने में पैर का कंकड़ पत्थर आदि किसी कड़ी वस्तु से जोर से टकराना । ठेस खाना । जैसे, घोड़े का ठोकर लेना ।

२. रास्ते में पड़ा हुआ उभरा पत्थर वा कंकड़ जिसमें पैर रुककर चोट खाता है ।

मुहा०—ठोकर जड़ाऊ कदम में = ठोकर बचाते हुए । रास्ते का कंकड़ पत्थर बचाते हुए । ठोकर पहाड़िया कदम में = धँसा हुआ पत्थर या कंकड़ बचाते हुए ।

विशेष—इन दोनों मुहावरों का प्रयोग पालकी ठोते समय पालकी डोनेवाले कहार करते हैं ।

३. वह कड़ा आघात जो पैर या जूते के पंजे से किया जाय । जोर का धक्का जो पैर के अगले भाग से मारा जाय । जैसे,—एक ठोकर बेंगे होश ठीक हो जायेंगे ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—ठोकर देना या जड़ना = ठोकर मारना । ठोकर खाना = पैर का आघात सहना । लात सहना । पैर के आघात से इधर उधर झुटुकना । ठोकरों पर पड़ा रहना = किसी की सेवा करके और मार गाली खाकर निर्वाह करना । अपमानित होकर रहना ।

४. कड़ा आघात । धक्का । ५. जूते का अगला भाग । ६. कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी (बोड़) खड़े खड़े भीतर घुसता है ।

विशेष—इसमें बिपक्षी का हाथ बगल में दबाकर दूसरे हाथ की तरफ से उसकी गरदन पर थपेड़ा देते हैं। और जिबर का हाथ बगल में दबाया रहता है उबर ही की टांग से धक्का देते हैं।

ठोकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह गाय जिसे बच्चा दिए कई महीने हो चुके हों। इसका दूध गाढ़ा और मोठा होता है। बकेना गाय।

ठोकषा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठोंकवा'।

ठोका—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के हाथ का एक गहना जो बूड़ियों के साथ पहना जाता है। एक प्रकार की पखेली।

ठोठ—वि० [हि० ठूँठ] १. जिसमें कुछ तत्व न हो। २. जड़। मूर्ख। गावदी।

ठोठ—वि० [हि० ठोठ] मूर्ख। जड़। व्यवहारशून्य। उ०—(क) दादू भावर भाव का भीठा लागे मोठ। बिन भावर व्यंजन बुरा जोमण वाला ठोठ।—राम० धर्म०, पृ० २७१। (ख) ठग कामेती ठोठ गुब चुगल न कीजे सेण।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४७।

ठोठरा—वि० [हि० ठूँठ] [वि० स्त्री० ठोठरी] किसी जमी या लगी हुई वस्तु के निकल जाने से खाली पड़ा हुआ। खाली। पोखला। उ०—सात बीस एहि बिधि लरे बान बाँधि बनवत। रातिहु दिनहु ठठाह के करे ठोठरे बंत।—खाल (शब्द०)।

ठोठा—संज्ञा पुं० [हि० ठीर] स्थान। जगह। उ०—(क) आप ठोठ जे उमंग न धाया फिरता ठोठ अनेक फिरे।—रघु० ७०, पृ० २५१। (ख) दोनू ठोठ जैपुर जोधपुर नै ओर बीनू।—शिल्लर०, पृ० ८२।

ठोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] चेहरे में ओठ के नीचे का भाग जो कुछ गोलाई लिये उभरा होता है। ठुड़ी। चिबुक। दाढ़ी।

मुहा०—ठोड़ी पर हाथ धरकर बैठना = चिंता में मग्न होकर बैठना। ठोड़ी पकड़ना, ठोड़ी में हाथ देना = (१) प्यार करना। (२) किसी बिदे हुए आदमी की स्नेह का भाव दिखाकर मनाना। मीठी बातों से क्रोध शांत करना। ठोड़ी तारा = सुंदरी स्त्री की ठुड़ी पर का तिल या गोदना।

ठोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठोड़ी'। उ०—है मुख अति श्रवि भागरी, कहा सरद की चंद। पै हित मान समान किम नुव ठोड़ी को बुंद।—स० सप्तक, पृ० ३४८।

ठोपा—संज्ञा पुं० [अनु० टप् टप्] बुंद। बिंदु।

थौं—ठोप ठोप, ठोपेठोप = बुँव बुँव। उ०—थ्यों थ्यों गरुई होइ सुने संतन की बानी। ठोपे ठोप अघाय जान के सागर पानी।—पल्लद०, पृ० ६१।

ठोर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार मिठाई या पकवान जो मैदे की मीयनदार बक़ाई हुई लोई को ची में तलने और चाशनी में पागने से बनता है। बल्लभ संप्रदाय के मंत्रियों में इसका भोग प्रायः लगता है।

ठोरा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] बाँच। चंबु। उ०—कौटिया दूध देव बहि कबहीं ठोर बचावे गोखी।—ब० दरिया, पृ० १२७।

ठोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठीर] कोल्हू का वह स्थान जहाँ से रस अथवा तेल टपककर गिरता है। टोंटी। उ०—उकड़ू भुक्त जाती, भरा टाड़ा हटाकर अलग रख लेती और खाली टाड़ा कोल्हू की ठोरी से लगा देती।—नई०, पृ० ८१।

ठोलना(पुं०)—क्रि० स० [हि० ठुलाना] ठुलाना। चलाना। उ०—दासी होई करि निरवहुं, पाय पखारणुं ठोलसुं बाई।—बी० रासो, पृ० ४२।

ठोला—संज्ञा पुं० [देश०] रेषण करनेवालों का एक योजार जो लकड़ी की चौकोर छोटी पट्टी (एक चित्ता लंबी एक चित्ता चौड़ी) के रूप में होता है। इसमें लकड़ी का एक खूँटा लगा रहता है जिसमें सूझा डालने के लिये दो छेद होते हैं।

ठोला—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० ठोली] मनुष्य। आदमी।—(सपरदाई)। उ०—हम ठोली सायर रस जाना।—घट०, पृ० ३६२।

ठोवड़ी—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण; प्रप० ठाव; राज० ठावड़, ठोवड़ी] दे० 'ठीर'। उ०—निधु परइ सत जोभागे खिवियां बीजलियाहु। सुरङ्ग लोद महुकिर्या, भीनी ठोवड़ियाहु।—ढोला०, पृ० १६०।

ठोस—वि० [हि० ठस] जिसके अंदर खाली स्थान न हो। जो भीतर से खाली न हो। जो भीला या खोखला न हो। जो भीतर से भरापूरा हो। जैसे, ठोस कड़ा। उ०—यह मुति ठोस सोगे की है।—(शब्द०)।

विशेष—'ठस' और 'ठोस' में अंतर यह है कि 'ठस' का प्रयोग या तो चदर के रूप की बिना मोटाई की वस्तुओं का घनत्व सूचित करने के लिये अथवा गीले या मुलायम के विरुद्ध कड़ेपन का भाव प्रकट करने के लिये होता है। जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा, गीली मिट्टी वा सूखकर ठस होता। और, 'ठोस' शब्द का प्रयोग 'पोले' या खोखले के विरुद्ध भाव प्रकट करने के लिये अतः लबाई, चौड़ाई, मोटाईवाली (घनात्मक) वस्तुओं के संबंध में होता है।

२. धड़। मजबूत।

ठोस—संज्ञा पुं० [देश०] प्रसक। कुतूब। डाढ़। उ०—इक हरि के दरसन बिनु मरियत मर कुबजा के ठोसनि।—सूर (शब्द०)।

ठोसा—संज्ञा पुं० [देश०] अँगूठा। (हाथ का) ठेंगा।

मुहा०—ठोसा दिखाना = प्रगूँटा दिखाना। इनकार करना। ठोसे में = बला से। ठेंगे से। कुछ परमाह नहीं।

ठोहना(पुं०)—क्रि० स० [हि० ठोहना, ठूँहना] ठिकाना ठूँहना। पता लगाना। खोजना। उ०—आयो कहीं प्रब ही कहि को हो। ज्यों अपना पद पाउँ सो ठोहो।—केशव (शब्द०)।

ठोहरा—संज्ञा पुं० [हि० निठोहर] प्रकार। गिरानी। मईगी।

ठोका—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक, हि० ठाँव + क (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ सिंचाई के लिये तालाब, गड्ढे आदि का पानी दोरी से ऊपर उलोचकर गिराते हैं। ठेक्का।

ठोका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठीर'। उ०—दिल्ली गयो कृष,

मन कीधी । किए ही ठोड़ मुकाम न कीधी ।—रा० ल०,
पृ० २६ ।

ठौनि^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठबनि' ।

ठौर^७—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठान, हि० ठाँव + र (प्रत्य०)]
१. जगह । स्थान । ठिकाना ।

थौ०—ठौर ठिकाना = (१) रहने का स्थान । (२) पता
ठिकाना ।

मुहा०—ठौर कुठौर = (१) घन्टो जगह, बुरी जगह । बुरे
ठिकाने । अनुपयुक्त स्थान पर । जैसे — (क) इस प्रकार ठौर
कुठौर की बीज न उठा लिया करो । (ख) तुम पत्थर फेंकते
हो किसी को ठौर कुठौर लग जाय तो ? (२) बेमोका । बिना
प्रवसर । ठौर न धाना = समोप न धाना । पास न फटकना ।
उ०—हरि को भजे सो हरिपद पावे । जन्म मरन तेहि ठौर
न आवे ।—सूर (शब्द) । ठौर न रहना = स्थान या जगह न
मिलना । निराश्रय होना । उ०—कबीर ते नर ग्रंथ हैं, गुरु
को कहते धीर । हरि रूते गुरु धीर हैं, गुरु रूते नहि ठौर ।—

कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ४ । ठौर मारना = तुरंत बध
कर देना । उ०—तब अनुग्रह ने बाकों ठौर मारयो । ता पाछें
बाको सोस गाम के द्वार पै बाँधयो ।—दो सी बावन०, भा०
२, पृ० ६६ । ठौर रखना = उसी जगह मारकर गिरा देना ।
मार डालना । ठौर रहना = (१) जहाँ का तहाँ रह जाना ।
पड़ रहना । (२) मर जाना । किसी के ठौर = किसी के
स्थानापन्न । किसी के तुल्य । उ०—किबले के ठौर बाप बाद-
शाह साहजहाँ नाको कैद कियो मानो मक्के प्रागि लाई है ।—
भूपण (शब्द०) ।

२. मोका । घात । प्रवसर । उ०—ठौर पाय पवनपुत्र डारि
मुद्रिका दी ।—केशव (शब्द०) ।

ठौहर—संज्ञा पुं० [हि० ठौर] स्थान । ठाँव । ठौर । उ०—मुंदर मटखी
बहुत दिन अब तू ठौहर आव फेरि न कबहूँ पाइहूँ यह भीसर
यह डाव ।—मुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७०० ।

ठथापा—वि० [देश०] उपद्रवी । शरारती । उतपाती ।

ढ

ढ—व्यंजनों में तेरहवाँ व्यंजन धीर टवर्ग का तीसरा वर्ण । इसका
उच्चारण आभ्यंतर प्रयत्न द्वारा तथा जिह्वामध्य को मूर्धा में
स्पर्श करने से होता है ।

ढंक—संज्ञा पुं० [सं० दंश या दंशी] १. भिड़, बिच्छू, मधुमक्खी
आदि कीड़ों के पीछे का जहरीला काँटा जिसे वे क्रोध में या
अपने बचाव के लिये जीवों के शरीर में धँसाते हैं । उ०—
उलटिया सूर प्रहूँ ढंक छेदन किया, पोखिया नंद सही कला
मारी ।—राम० धर्म०, पृ० ३१२ ।

विशेष—भिड़, मधुमक्खी आदि उड़नेवाले कीड़ों के पीछे जो
काँटा होता है, वह एक नल के रूप में होता है जिससे
होकर जहर की गूँठ से जहर निकलकर छुमे हुए स्थान
में प्रवेश करता है । यह काँटा केवल मादा कीड़ों को
होता है ।

क्रि० प्र०—मारना ।

२. कलम की जोभ । निब । ३. ढंक मारा हुआ स्थान । ढंक
का घाव ।

ढंक^७—संज्ञा पुं० [सं०, प्रा० ढक (= वा० विशेष) अथवा धनु०]
डमरू । डिगडिगी । उ०—बाजीगर ने ढंक बजाया । सब
खोग तमागे आया ।—कबीर म०, पृ० ३३८ ।

ढंकदार—वि० [हि० ढंक + प्रा० दार] ढंकवाला । काटेदार ।

ढंकना—क्रि० प्र० [धनु०] शब्द करना । गरजना । भयानक
शब्द करना । उ०—हुथनाल हकिय तोष ढंकिय धुनि अमंकिय
बंढ ।—सूदन (शब्द०) ।

ढंका^१—संज्ञा पुं० [सं० ढका (= दुंदुभि का शब्द)] एक प्रकार का
बाजा जो नाँव के आकार के तबे या लोहे के बरतनों पर
बमड़ा मढ़कर बनाया जाता है । पहले लड़ाई में ढंके का

जोड़ा ऊँठों और हाथियों पर चलता था और उसके साथ
झंडा भी रहता था ।

क्रि० प्र०—बजना ।—बजाना ।—पीटना ।—पीटना ।

मुहा०—ढंके की चोट कहना = खुल्लम खुल्ला कहना । सबको
सुनाकर कहना । बेषइक कहना । ढंका डालना = (१)
मुरगे से मुरगे को लड़ाना । (२) मुरगे का चोंच मारना ।
ढंका देना या पीटना = (१) दे० 'ढंका बजाना' । (२) मुनाही
करना । झुगो फेरना । डौंडो फेरना । ढंका बजाना = हुल्ला
करके सबको सुनाना । सबपर एकट करना । प्रसिद्ध करना ।
घोषित करना । किसी का ढंका बजना = किसी का शासन
या अधिकार होना । किसी की चलती होना । उ०—सजे
अभी साकेत, बजे हूँ, जय का ढंका । रह न जाय अब कहीं
किसी रावण की लंका ।—साकेत, पृ० ४०२ ।

थौ०—ढंका निशान = राजाओं की सवारी में आगे बजनेवाला
ढंका धीर बजना ।

ढंका^२—संज्ञा पुं० [प्र० डाक] जहाजों के ठहरने का पक्का घाट ।

ढंकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी' ।

ढंकिनी बंदोबस्त—संज्ञा पुं० [प्र० दवामी + प्रा० बंदोबस्त] स्थायी
व्यवस्था । दे० 'दवामी बंदोबस्त' ।

ढंकी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कुश्ती का एक पेंच । २. मालखंब की
एक कसरत ।

ढंकी^२—वि० [हि० ढंक] ढंकवाला ।

ढंकुर—संज्ञा पुं० [हि० ढंका] एक प्रकार का पुराना बाजा जिससे
ताल दिया जाता था ।

ढंख^१—संज्ञा पुं० [देश०] पलाश । ढंख ।

डंख^(१)—संज्ञा पुं० [हि० डंक] विष का दाँत । उ०—ये देखो ममता नागन घाई रे भाई घाई । तिनें तो डंख मारा रे मारा ।
—बख्खनी०, पृ० ५८ ।

डंग—संज्ञा पुं० [देश०] घषपका छुहारा ।

डंगम—संज्ञा पुं० [देश०] दूध विशेष । एक पेड़ का नाम ।

विशेष—यह पेड़ बहुत बड़ा होता है । हर साल जाड़े के दिनों में इसके पत्ते झड़ जाते हैं । इसकी लकड़ी भीतर से भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत निकलती है । दारजिलिंग के घासपास तथा लसिया की पहाड़ियों में यह अधिक मिलता है ।

डंगर^१—संज्ञा पुं० [देश०] चौपाया (जैसे, गाय, भैंस) । उ०—मानुष हो कोइ मुवा नहि, मुवा सो डंगर धूर ।—कबीर मं०, पृ० ३६४ ।

डंगर^२—वि० दे० 'डंगर' ।

डंगू उवर—संज्ञा पुं० [सं० डंगू + सं० उवर] एक प्रकार का उवर जिसमें धीरे-धीरे उठता है और उसपर चक्के पड़ जाते हैं । इसे लेंपडा उवर भी कहते हैं ।

डंगोरी^१—संज्ञा पुं० [देशी डंगा (= यष्टि) + हि० घोरी (प्रत्य०)] डङ्गोकी । यष्टि । छड़ी । उ०—हथ डंगोरी पग लिमहि बोली देहि नीमाणु ।—प्राण०, पृ० २५० ।

डंटा^१—संज्ञा पुं० [हि० डंटा] दे० 'डंटा' । स०—साले नगाहवी ने ठीक सामने कपाल पर ही डंटा चलाया था ।—मैला०, पृ० ७५ ।

डंठल—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] छोटे पीधों की पेड़ी और शाखा । नरम छाल के भाड़ों और पीधों का सड़ और टहनी । जैसे, उबार का डंठल, मुली का डंठल ।

डंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड] डंठल ।

डंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डंड] १. डंडा । मोटा । उ०—कंधा पहिरि डंड कर महा । सिद्ध होइ कहूँ गोरख कहा ।—आयसी प्र० (गुप्त), पृ० २०५ । २. बाहुदंड । बाहु । ३. मेखंड । रीढ़ । उ०—हरिया चढिया गगन को, मेक उलंग्या डंड । सुख उपजा साईं मिला, भेटा ब्रह्म पखंड ।—हरिया० बानी, पृ० १५ । ४. एक प्रकार का व्यायाम जो हाथ पैर के पंजों के बल पृथ्वी पर पट और सोपा पड़कर किया जाता है । हाथ पैर के पंजों के बल पर पड़कर की जायेवाली कसरत ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—डंडपेल । डंड बैठक = डंड और बैठक नाम की कसरत ।

मुहा०—डंड पेलना = खूब डंड करना ।

५. दंड । सजा । ६. धर्मदंड । जुरमाना । वह रूपया जो किसी अपराध या हानि के बदले में दिया जाय ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।—लगाना ।

मुहा०—डंड डालना = धर्मदंड नियत करना । जुरमाना करना ।

डंड भरना = हानि के बदले में धन देना । जुरमाना या हुरजाना देना । उ०—भूमि घास जो करहि भरहि तो डंड सेव करि ।—पृ० रा०, ८३ ।

७. पाटा । हानि । नुकसान ।

मुहा०—डंड पड़ना = नुकसान होना । व्यर्थ व्यर्थ होना । जैसे,—कुछ काम भी नहीं हुआ, इतना रुपया डंड पड़ा । ८. घड़ी । दंड । दे० 'दंड' । उ०—डंड एक माया कर मोरें । जोगिबि होउं चली संग तोरें ।—पदमावत, पृ० ६५८ ।

डंडक^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] दे० 'दंडक' । उ०—परे घाई धर बनखेंद माही । डंडक धारन बीक बनाही ।—पदमावत, पृ० १३२ ।

डंडकारन^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] दे० 'दंडकारण्य' ।

डंडण^(१)—वि० [सं० दण्डन] दंड देनेवाला । उ०—अरि डंडण नव खंड प्रवीही ।—रा० क०, पृ० १२ ।

डंडताल—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + ताल] एक प्रकार का बाजा जिसमें लंबे चिमटे में मजोर जड़े रहते हैं । उ०—झाँक मजोरा डंडताल करताल बजावत ।—प्रमथन०, भा० १, पृ० २४ ।

डंडधारी—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + हि० धारी] दंडी । संन्यासी । उ०—स्वामी कि तुम्हे ब्रह्मा कि ब्रह्मधारी । कि तुम्हें ब्राम्हण पुस्तक कि डंडधारी ।—धोरख०, पृ० २२७ ।

डंडन^(१)—वि० [सं० दण्डन, प्रा० डंडण] दंड देनेवाला । वह जो दंड दे । उ०—पुनि गुज्जर बलिबंड लोह धनडडनि डंडन ।—पृ० रा०, १३३० ।

डंडना^(१)—क्रि० सं० [सं० दण्डन, प्रा० डंडण] दंड देना । जुरमाना लगाना । दंडित करना । उ०—डंडयी (डंडू) साह साहःबदी घट्ट मझन हैवर सुवर ।—पृ० रा०, २०६३ ।

डंडपेल—संज्ञा पुं० [हि० डंड + पेलना] १. खूब डंड करनेवाला । कसरती पहलवान । २. बलवान या तगड़ा पादमी ।

डंडल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह बंगाल और ब्रह्म में पाई जाती है । यह मछली पानी के ऊपर अपनी आँखें निकालकर तैरती है । इसकी लंबाई १८ इंच होती है ।

डंडवत^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्' । उ०—(क) सोऊँ तब कहूँ डंडवत पूजूँ और न देवा ।—कबीर रा०, भाग १, पृ० ७२ । (ख) डंडवो डंड दीन्ह जंतु ताई । भाप डंडवत कीन्ह सवाई ।—आयसी (शब्द०) ।

डंडा^१—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] १. लकड़ी या बाँस का सीधा खंडा टुकड़ा । जंबो सीधी लकड़ी या बाँस जिसे हाथ में ले सकें । मोटा । मोटी छड़ी । पाटी ।

मुहा०—डंडा खाना = डंडे की मार सहना । डंडा चलाना = डंडे से प्रहार करना । डंडे खेलना = डंडों की लड़ाई का खेल खेलना । (भादों बपी चौथ की पाटशालाओं के लड़के यह खेल खेलने निकलते हैं) । डंडा चलाना = डंडे से प्रहार करना । डंडे देना = विवाह संबंध होने के पीछे भादों बपी चौथ को बेटीवाले का बेटेवाले के यहाँ चांदी के पत्तर चढ़े हुए कलम, दवात आदि भेजने की रीति करना । डंडा बजाते फिरना = मारा मारा फिरना ।

३. डंड । डंडवारा । वह कम ऊँची दीवार जो किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय । चारदीवारी ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

मुहा०—डंढा खींचना = चारदीवारी उठाना ।

डंढा(५)†—संज्ञा पु० [देशी डडय (= रथ्या)] मार्ग । लीक राह । उ०—बाग वृच्छ बेनी पर डंढा । सतगुरु सुरति बसावे डंढा ।—घ०, पु० २४७ ।

डंढाकरन(५)†—संज्ञा पु० [सं० दण्डकारण्य] दंडक वन । उ०—परेउ घाड़ सब वन खेंड माहा । डंढाकरन बीभ बन जाहा ।—जायसी (शब्द०) ।

डंढाकुंडा—संज्ञा पु० [हि० डंढा + कुंडा] बल वेधक । सत्ता । प्रभाव । उ०—उनके प्राँख मुँदते साल भी नहीं बीतेगा कि घंगरेजों का डंढाकुंडा उठ जाएगा ।—किसर०, पु० २३ ।

डंढाडोलो—संज्ञा स्त्री० [हि० डंढा + डोली] लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के को दो घाड़े डंडों पर बैठाकर इधर उधर फिराते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—खेलना ।

डंढाधारी(५)†—संज्ञा पु० [सं० दण्ड + हि० धारी] डंडी । संन्यासी । उ०—मोनी उदासी डंढाधारी ।—प्राण०, पु० ६२ ।

डंढानाच—संज्ञा पु० [हि० डंढा + नाच] वह नृत्य जिसमें डंढा लड़ाते हुए लोग नाचते हैं । उ०—डंढा नाच कुछ अंगों में गुजरात देश के 'गरवा नृत्य' के सदृश होता है । मुख्य अंतर यही है कि डंढा नाच प्ररूपों का है और गरबा स्त्रियों का ।—शुक्ल अभि० प्र० (संहि०), पु० १३६ ।

डंढाबेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] बेड़ी और उसके साथ लगा लोहे का डंढा जिससे कैदी न भाग सके ।

डंढारन(५)†—संज्ञा पु० [सं० दण्डकारण्य, प्रा० डंढागण्य] 'दंडकारण्य' ।

डंढाल—संज्ञा पु० [हि० डंढा] नगाड़ा । दुर्दृष्टि । डंढा ।

डंढिया†—संज्ञा स्त्री० [हि० डंढी] १. डे० 'डंढी-१६' । २. डे० 'डंढी' ।

डंढी—संज्ञा स्त्री० [हि० डंढा] १. छोटी लंबी पतली पकड़ी । २. हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली धातु का वह लंबा पतला भाग जो मुँह में डिया या पकड़ा जाता है । वस्तु । द्रव्य । नुटिया । जैसे, छाते की डंढी । ३. तराजू का वह सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटका लटकाकर पलड़े बंधे जाते हैं । नौड़ी । उ०—काहे की डंडो काहे का पलड़ा काहे की धारी टेनिया ।—कबीर श०, भा० २, पु० १५ ।

मुहा०—डंढी मारना = सीधा देने में थालाकी से कम डोलना ।

४. वह लंबा डंडल जिसमें पत्ता, फूल या फल लगा होता है । नाच । जैसे, कमल की डंडी । पान की डंडी । उ०—कमलों के पत्ते जीर्ण होकर भड़ गए हैं, फूलों की कणिका और केसर भी गिर गई है, पत्ते के कारण उसमें डंडी मान शेष रह गई है ।—हि० प्र० चि०, पु० १४ । ५. फूल के नीचे का लंबा पतला भाग । जैसे, हरसिंगार की डंडी । ६. हरसिंगार का फूल । ७. धारसी नाम के गहने का वह छल्ला जो उँगली में पड़ा रहता है । ८. डंडे में बँधी हुई भोली के आकार की

एक सवारी जो ऊँचे पहाड़ों पर चलती है । कम्पान । ९. लिंगेद्रिय । १०. डंड धारण करनेवाला संन्यासी ।

डंडो^२—वि० [सं० दण्ड] भगड़ा लगानेवाला । चुगलखोर ।

डंडीमार—वि० [हि०] टेनी मारनेवाला । सीधा कम तोलनेवाला ।

डंडूर—संज्ञा पु० [प्रा० डंडुल] डे० 'डंडूल' । उ०—अग्नि ज्वाला किन तन उठत, किन तन बरसे मेह । अन्न पवन डंडूर के केतन कंकर खेह ।—पु० रा०, ६।५५ ।

डंडूल—संज्ञा पु० [प्रा० डंडुल (= घूमना, चक्कर लगाना)] वात्या-चक्र । घुंवंडर । उ०—कर सेती माला जपे, ह्रिदं बहै डंडूल । पग तो पाला मैं गित्या, भाजण लागी सुल ।—कबीर श०, पु० ४५ ।

डंडौत—संज्ञा पु० [सं० दण्ड, प्रा० दण्ड + म० वत्, हि० प्रीत] डे० 'दंडवत्' । उ०—पलटू उन्हें डंडौत करी, वोही साहब मेरा है जी ।—पलटू०, पु० ५० ।

डंडर—संज्ञा पु० [सं०] १. आयोजन । आडंबर । ठकोसला । धूम-धाम । २. विस्तार । उ०—उड्डि रेन डंडर धमर, दिखी सेन चट्टमान ।—पु० रा०, ६।१३० । ३. समूह । उ०—कुवा बावड़ियों के डंडर, बाड़ी बागू के आडंबर ।—रघु० क०, पु० २३७ । ४. बिलास । ५. एक प्रकार का चंदोवा । चदरछत ।

यौ०—गेघडंडर = बड़ा शामियाना । दलबादल । धंडर डंडर = वह वाली जो संध्य के समय आकाश में दिखाई पड़ती है । उ०—विनसत बार न लागई, छोछे जन की प्रीति । धंडर डंडर सौं के ज्यों बाकू की भीति ।—स० सप्तक, पु० ३१२ ।

डंडल संज्ञा पु० [सं० डंडेल] डे० 'डंडेल' ।

डंडेल—संज्ञा पु० [सं०] १. हाथ में लेकर कसरत करने की लोहे या लकड़ी की गुल्ली जिसके दोनों सिरे लट्ठ की तरह गोले होते हैं । इसे हाथ में लेकर सानते हैं । यह आवश्यकतानुसार भारी और हलकी होती है । कुछ डंडेलों में रिंगें भी लगी रहती हैं । २. वह कसरत जो इस प्रकार के लट्ठ से की जाती है ।

क्रि० प्र०—करना ।

डंडभ(५)†—संज्ञा पु० [सं० दम्भ, प्रा० डंडभ] डे० 'डंडभ' । उ०—डंडभ भने मत मानियो सत कहो परमारथ जानी ।—कबीर श०, भा० ४, पु० २४ ।

डंडस—संज्ञा पु० [सं० दण्ड, प्रा० डंडस] एक प्रकार का बड़ा मच्छर जो बहुत काटता है और जिसका आकार बड़ी मक्खी से मिलता जुलता होता है । डंडस । घनमणक । जंगली मच्छर । उ०—देव विषय सुख लालसा डंडस ममकादि खलु भिल्ली कपादि सब सपं स्वामी ।—तुलसी (शब्द०) २. वह स्थान जहाँ डंड चुभा हो या साँप आदि विषले कीड़ों का दौत चुभा हो ।

डंडरना†—क्रि० प्र० [हि० डंडार] डे० 'डंडारना' ।

डंडारना†—क्रि० प्र० [हि० डंडारना] डंडार लेना । डंडार पाना ।

डंडियाना†—क्रि० प्र० [हि० डंड + पाना (प्रत्य०)] डंड मारना ।

डंडीला†—वि० [हि० डंड + ईला (प्रत्य०)] डंडवाला ।

डंडौरो†—संज्ञा स्त्री० [हि० डंड + ओरी (प्रत्य०)] भिड़ । बरें । तँैया । छड़ा ।

हंगरा—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताङ्गुल] सरबूजा ।

हंगरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० हंगरा] संघी ककड़ी । डंगरी ।

हंगरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डंगर (= दुबला)] एक प्रकार की कुड़िया । बाइल । उ०—बाइल हंगरी नरन चबावत । नजन पुसाइ अकास पठावत ।—गोपाल (शब्द०) ।

हंगरी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा बेंत ।

विशेष—यह बेंत पूर्वी हिमालय, सिक्किम, भूटान के लेकर चट-गाव तक होता है । यह सबसे मजबूत होता है और इसमें से बहुत अच्छी छड़ियाँ और बड़े निकलते हैं । टोकरे बनाने के काम में भी यह आता है ।

हंगवारा—संज्ञा पुं० [हि० हंगर (= बैल, जोपाया)] एक बैल प्रायः की बहुत सहायता बिधे किसान एक दूसरे को देते हैं । जिता ।

हंगौरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत और लकड़दार होती है ।

विशेष—इस पेड़ की लकड़ी से सजावट के सामान बहुत अच्छे बनते हैं । यह पेड़ आसाम और कछार में बहुतायत में होता है ।

हंटैया^(१)—संज्ञा पुं० [हि० डाँटना] डाँटनेवाला । डाँट बतानेवाला । चुड़कनेवाला । धमकानेवाला । उ०—सातसि धोर पुकारत भारत कीन सुनै चहुँ धोर हंटैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

हंठरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० हंठल] दे० 'हंठल' ।

हंड़ी^१—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड; प्रा० डंड] एक प्रकार का व्यायाम । दे० 'हंड-४' ।

हौं—हंडकैठक । हंडपेल ।

हंडका^१—संज्ञा पुं० [हि० डंडा] सीढ़ी का डंडा ।

हंडवारा^१—संज्ञा पुं० [हि० टाँड़ + वार (= किनारा)] [स्त्री० अल्पा० हंडवारी] वह कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय । बूरा तक गई हुई लुची दीवार ।

हि० प्र०—उठाना ।

मुहा०—हंडवारा लीचना = हंडवारा उठाना ।

हंडवारा^२—संज्ञा पुं० [हि० दक्षिण + वार (प्रत्य०)] दक्षिण का वायु । दक्षिणहवा । दक्षिणवायु ।

हि० प्र०—चमना ।

हंडवारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँड़ + वार (= किनारा)] कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाती है ।

मुहा०—हंडवारी लीचना = हंडवारी या चारदीवारी उठाना ।

हंडवी^(१)—संज्ञा पुं० [देश०] डंड या राजकर देनेवाला । करवा । उ०—हंडवी डाँड़ धीन्ध जेहूँ ताहँ । भाप डंडवत कीन्हा खवाई ।—बायसी (शब्द०) ।

हंडहरा^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की मछली जो बंगाल, मध्यभारत और बर्मा में पाई जाती है । यह तीन इंच लंबी

होती है । २. लकड़ी या लोहे का लंबा डंडा जो दरवाजे का खुलना रोकने के लिये किवाड़ के पीछे लगाया जाता है ।

हंडहरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी मछली जो आसाम, बंगाल, उड़ीसा और दक्षिण भारत की नदियों में पाई जाती है ।

हंडहरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दरह + हि० हरी (प्रत्य०)] टहनी ।

हंडहिया^१—संज्ञा पुं० [हि० डंडा] वह डंडा जिससे बैलों की पीठ पर खदे हुए बोरे फेंसाए रहते हैं ।

हंडिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँड़ी (= रेखा)] १. वह साड़ी जिसके बीच में लंबाई के बल मोटे टाँककर मकीरें बनी हों । छत्रीदार साड़ी । उ०—(क) साल बोधी नील हंडिया संग युवतिन भीर । सूर प्रभु अवि निरखि रीके मगन भी मन कीर ।—सूर (शब्द०) । (ख) नख सिख मजि सिंगार युवती तन हंडिया कुसुमे बोरी की ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इसे प्रायः कुम्भारी लड़कियाँ पहनती हैं । कभी कभी यह रंग बिरंगे कई पाट जोड़कर बनाई जाती है ।

२. गेहूँ के पीये में वह लंबी चीज जिसमें बाल लगी रहती है ।

हंडिया^२—संज्ञा पुं० [हि० डाँड़ (= पर्यवह; सीमा)] १. महसूल वसूल करनेवाला । कर उगाहनेवाला । २. सीमा या हद पर कर उगाहनेवाला ।

हंडिया^३—संज्ञा स्त्री० [कुमा० डाँड़ी, नेपाली डाँड़ी (= डोली)] उ०—(क) सालहि बाँध कटाइल हंडिया फँसाइल हो साधो ।—पलटू, पृ० ५८ । (ख) छोटी छोटि हंडिया बंदन के हो, छोटे चार कहार ।—कबीर ज०, भा० २, पृ० ६२ । २. दे० 'डाँड़ी' ।

हंडियाना—हि० सं० [हि० डाँड़ी] किसी कपड़े के दो या अधिक पाटों को सोकर जोड़ना । दो कपड़ों की लंबाई के किनारों को एक में सीना ।

हंडियारा मोला—संज्ञा पुं० [हि० डंडा + मोला] दोहरे सिरे का लंबा (तोप का) मोला । गठिया ।—(अर्थ०) ।

हंडोर—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँड़ी] सीधी लकीर ।

हंडूर डंडूल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'हंडूर' 'डंडूल' ।

हंडोरना—हि० सं० [अनु०] डूँड़ना । हिलोरकर डूँड़ना । उलट पलटकर खोजना । उ०—अबके अब हम दरख पावै देखि लाख कठोर । दूरि मो हीरा मोई के हम रहीं समुय हंडोर ।—सूर (शब्द०) ।

हंडाना^(१)—हि० सं० [देश०] घगबाना । घाघ बिलाना । उ०—करहुत कूडल मनि थकइ अब राखीपउ आए । ठकरडो होका पुनइ अपस हंडापउ आयि ।—होखा०, पृ० ३३९ ।

हंडा^१—संज्ञा पुं० [देश०] या हि० बाँध] बाँध । मोका । युक्ति । जैसे, कोई डंड बैठ जाय तो काम होते क्या देर ।

हंडरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डण्ड] बात का एक रोप जिसमें शरीर के जोड़ लकड़ जाते हैं और उनमें बंध होता है । गठिया । उ०—अहंकार अति पुनइ डंडरुआ । दम कपट मद मान लहकया ।—तुलसी (शब्द०) ।

डँवरुआ साख—संज्ञा पुं० [सं० डमरु (= वाद्य) + हि० सालना]
धातु या लकड़ी के दो टुकड़ों को मिलाने के लिये डमरु के
समान एक प्रकार का जोड़ ।

विशेष—इसमें एक टुकड़े को एक ओर से चौड़ा ओर दूसरी ओर
से पतला काटते हैं और दूसरे टुकड़े में उसी काट की नाप से
गड़ड़ा करते हैं और उस कटे हुए अंश को उसी गड़ड़े में बैठा
देते हैं । यह जोड़ बहुत दृढ़ होता है और खींचने से नहीं
उखलता ।

डँवरु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' । उ०—चँवर बंट घी
डँवरु हाया । गौरा पारवती घनि साया ।—जायसी गं०,
पृ० १० ।

डँवाडोल—[हि० डँव डौव + डोलना] अस्थिर । चंचल । विचलित ।
घबराया हुआ । जैसे, चित्त डँवाडोल होना । उ०—पावक
पवन पानी भानु हिमवान जम काल लोकपाल मेरे डर
डँवाडोल हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—होना ।

डँसना—क्रि० प्र० [सं० डंशन, प्रा० डंसण] दे० 'डसना' ।

ड—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वनि । शब्द । २. नगाड़ा । ३. बड़वाग्नि ।
४. भय । ५. शिव (को०) ।

डडल—संज्ञा पुं० [हि० डोल] दे० 'डोल' ।

डडा—वि० [हि० डोल] डोल डोलवाला । वयस्क । बड़ा । जैसे,—
इतने बड़े डऊ हुए, अकल नहीं आई ।

डक—संज्ञा पुं० [सं० डोक] १. एक प्रकार का पतला सफेद टाट
(कनवास) जिससे छोटे दल के जहाजों के पाल बनाते हैं । २.
एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

डकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी बंदरगाह या नदी के किनारे एक
पिरा हुआ स्थान, जहाँ जहाज आकर ठहरते हैं और जिसका
फाटक पानी में बना होता है । २. अदालत में वह स्थान जहाँ
अभिमुक्त सबे किए जाते हैं । बटवरा ।

डकइता—संज्ञा पुं० [हि० डाका + इत (प्रत्य०)] दे० 'डकैत' ।

डकई—संज्ञा पुं० [हि० डाका (= एक नगर)] केले की एक जाति जो
डाका में होती है ।

डकना—क्रि० प्र० [हि०] 'डाकना' । माघना । उ०—कोउक
तधनि गुनपय उरीर तन सहित खली डकि । भात पित्त
पति अंधु रह भुकि न रहीं डकि ।—नंद ग्रं०, पृ० २६ ।

डकरना—क्रि० प्र० [हि० डकार] १. दे० 'डकारना' । २. दे०
'डकरना' ।

डकरा—संज्ञा पुं० [देश०] काशी मिट्टी जो ताल की बँदिया में
पानी सूख जावे पर निकलती है और जिसमें दरार फटे
होते हैं ।

डकराना—क्रि० प्र० [अनु०] बेल या मेस का बोलना ।

डकवाहा—संज्ञा पुं० [हि० डाक] डाक का चपरासी । डाकिया ।

डकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. पेट की वायु का एकबारगी ऊपर

की ओर छूटकर कंठ से शब्द के साथ निकल पड़ने का
शारीरिक व्यापार । मुँह से निकला हुआ वायु का उद्गार ।

क्रि० प्र०—आना ।—लेना ।

विशेष—योग आदि के अनुसार डकार नाग वायु की प्रेरणा
प्राप्ती है ।

मुहा०—डकार न लेना = (१) किसी का धन या कोई वस्तु
उड़ाकर पता न देना । छुपचाप हजम कर जाना । (२) कोई
काम करके उसका पता न देना ।

२. बाघ सिंह आदि की गरज । दहाड़ । गुराहिट ।

क्रि० प्र०—लेना ।

डकारना—क्रि० प्र० [हि० डकार + ना (प्रत्य०)] १. पेट की
वायु को मुँह से निकालना । डकार लेना । २. किसी का
माल उड़ाकर ले लेना । किसी की वस्तु छुपचाप मार लेना ।
हजम करना । पचा जाना । जैसे,—वह सब माल डकार
जायगा ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. बाघ सिंह आदि का गरजन । दहाड़ना ।

डकूरा—संज्ञा पुं० [देश०] चक्र की तरह घूमती हुई वायु । बवंडर ।
ध्रुवात । बगुना ।

डकैत—संज्ञा पुं० [हि० डाका + ऐत (प्रत्य०)] डाका मारनेवाला ।
जबरदस्ती माल छीननेवाला । लुटेरा ।

डकैती—संज्ञा स्त्री० [हि० डकैत] डकैत का काम । डाका मारने का
काम । जबरदस्ती माल छीनने का काम । लूटमार । छाप ।

डकौत—संज्ञा पुं० [देश०] भड्डर । भड्डरी । सामुद्रिक । ज्योतिष
आदि का डोंग रखनेवाला ।

विशेष—इनकी एक पृथक् जाति है जो अपने को ब्राह्मण कहती
है, पर नीच समझी जाती है ।

डकक(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिन' । उ०—सीन
तुटे तुरी डकक नहं करी ।—सूर रा०, २४ । २११ ।

डक्करना—क्रि० प्र० [अनु०] हुकरना । ध्वनि करना । शब्द
करना । उ०—बुभुख । वह डाकिनी डक्करती ।—कीर्ति०,
पृ० १५६ ।

डक्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चांडाल वीणा (को०) ।

डखना—संज्ञा पुं० [अनु०] पखना । पंख ।

डग—संज्ञा पुं० [हि० डाकिना या सं० दक्ष] १. चलने में एक स्थान
से पैर उठाकर दूसरे स्थान पर रखने की क्रिया की समाप्ति ।
कदम । उ०—मुरि मुरि चितवति नंदगली । डग म परत
ब्रजनाथ राय बिनु, बिरह व्यथा मचली ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) ज्यों कीउ दूरि चलन कीं करे । क्रम क्रम करि डग डग
पग धरे ।—सूर०, ३१३ ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—डग देना = चलने में आगे की ओर पैर रखना । उ०—
पुर ते निकसी रघुबीर बधु धरि धीर दियो मग ज्यों डग दें ।

—तुलसी (शब्द०) । डग भरना = चलने में आगे पैर रखना ।

कदम बढ़ाना । उ०—क्यों नहीं बेडिगे भरें डग हम । पाँच क्यों जाय डगमगा मेरा ।—चुभते०, पृ० १० । डग मारना = कदम रखना । खड़े पैर बढाना । उ०—मारि डगे जब फिर चली-सुंदर बेनि दुरे सब अंग । मनहुँ चंद के बदन सुधा को उड़ि उड़ि लगत भुभंग ।—सूर (शब्द०) ।

२. चलने में जहाँ से पैर उठाया जाय और जहाँ रखा जाय उन दोनों स्थानों के बीच की दूरी । उतनी दूरी जितनी पर एक जगह से दूसरी जगह कदम पड़े । पैर ।

डगकु (पु)—क्रि० वि० [हि० डग + एक] एक दो पग । एकाध कदम । उ०—डगकु डगति सी चलि, ठठुकि चितई, चली निहारि । लिए जाति चितु चोरटी, वरै गोरटी नारि ।—बिहारी २०, दो० १३६ ।

डगचाली—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनो] डाकिनो । उ०—भूतप्रेत डगचाली मादूँ करत बत ।—नट०, पृ० १७० ।

डगडगाना—क्रि० प्र० [प्रतु०] हिलना । इधर से उधर हिलना । काँपना ।

मुहा०—डगडगाकर पानी पीना तेजी के साथ = एक दम में बहुत सा पानी पीना ।

डगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] मार्ग । रास्ता । राह । उ०—बिगड़ी बनती, बन जाय सहो । डगड़ी गड़ती, गड़ जाय मही ।—मर्चन, पृ० ६ ।

डगडोलना—क्रि० प्र० [हि० डग + डोलना] डगमगाना । हिलना । काँपना । उ०—भीषम दोग्य करण सुने कोउ भुलह न बोले । ए पांडव क्यों कादिए घरना डगडोले ।—सूर (शब्द०) ।

डगडौर—वि० [हि० डग + डोलना] डाँवाडोल । हिलनेवाला । चलायमान । उ०—भयाम की एक लुही जान्यो दुराचरनी और । जैसे भट पूरन न डोले अंधभरो डगडौर ।—सूर (शब्द०) ।

डगाय—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल में चार मात्राओं का एक गण ।

डगना (पु)—क्रि० प्र० [सं० दक्ष (= चलना), हि० डगना या डगटना (प्रत्य०)] १. हिलना । टसकना । खटकना । जगह छोड़ना । उ०—डगहन संभु सरासन केसे । कामी बचन सती मन जैसे ।—सुखसी (शब्द०) । २. भ्रुकना । झूठ करना । उ०—तुरंग नचावहि कुँवर बर अकनि भूदंग निसान । नागर मट चितवहि चकित, डगहि न ताल बँभान ।—सुखसी (शब्द०) । ३. डगमगाना । लड़खड़ाना । उ०—डगकु डगति सी चलि ठठुकि चितई चली निहारि । लिए जाति चितु चोरटी वरै गोरटी नारि ।—बिहारी २०, दो० १३६ ।

मुहा०—डग मारना = हिलना । भठका खाना । जैसे,—उठाने पर धालमारी डग मारती है ।

डगवेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डग + वेड़ी] पैर की वेड़ी । उ०—बँध्यो ठाल में आप पाय, डगवेड़ी पाय्यो ।—ब्रज० प्र०, पृ० १६ ।

डगमग—वि० [हि० डग + मग] हिलता डुलता । डगमगाता या

लड़खड़ाता हुआ । उ०—बिहुरत बिबिध बालक संग । डगनि डगमग गति डोलत, धुरि, धूसर अंग ।—सूर०, १०।१८४ । २. विचलित । निश्चयहीन ।

डगमगना (पु)—क्रि० प्र० [हि० डगमग] ३० 'डगमगाना' ।

डगमगाना—क्रि० प्र० [हि० डग + मग] १. इधर उधर हिलना डोलना । कभी इस बल कभी उस बल झुकना । स्थिर न रहना । थरथराना । लड़खड़ाना । जैसे, पैर डगमगाना, नाव डगमगाना । २. विचलित होना । किसी बात पर हड़ न रहना ।

डगमगाना^२—क्रि० स० १. हिलाना डुलाना । कंपित करना । २. विचलित करना । हड़ न रहने देना ।

डगमगी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० डगमग] डाँवाडोल वृत्ति । विचलन । अस्थिरता । उ०—दूटि डगमगी नहि संत की बचन न मानै ।—पतन०, भा० १, पृ० ३ ।

डगर—संज्ञा स्त्री० [हि० डग] मार्ग । रास्ता । पथ । पैड़ा । उ०—नगरक सेनु डगर के मंजर । कुमुदिनि वसु मकरंदा ।—विद्यापति पृ० ३३२ ।

मुहा०—डगर बनाना = (१) रास्ता बनाना । (२) उपाय बनाना । उपदेश देना । डगर पाना = विकास पाना । स्थान पाना । उ०—प्रथमहि गए डगर तिन पायो । पाछे के लोगनि पछितायो ।—सूर०, १०।६१६ ।

डगरना (पु)—क्रि० प्र० [हि० डगर] १. चलना । रास्ता लेना । धीरे धीरे चलना । उ०—ताने इतं डगरो द्विजदेव न जाननी कान्हू अजौ मग सूटे ।—द्विजदेव (शब्द०) । २. लुढ़कना । गिरते पड़ते आगे बढ़ना । जे कूजन तुलनी सुखिन प्रतुल ती अति ही खुलती ते डगरी ।—पद्माकर प्र०, पृ० २८६ ।

डगरबगर—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर + प्रतु० बगर] राह कुराह । उ०—जगर मगर महि, डगर बगर नहि, रबि समि, तिसु दिन, भाव नही ।—केशव प्रमी०, पृ० १० ।

डगरा^१—संज्ञा पुं० [हि० डगर] रास्ता । मार्ग । उ०—गुरु कह्यो राम नाम नीको भोहि लागत राम राज डगरी सो ।—तुलसी (शब्द०) ।

डगरा^२—संज्ञा पुं० [देश०] बाँझ की पतली फट्टियों का बना हुआ खिछला डला । डलना । छाँवना ।

डगराना—क्रि० प्र० [हि० डगरना] १. रास्ते पर ले जाना । ले चलना । चलाना । २. हँकना । ३. लुढ़काना ।

डगरिया^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] ३० 'डगर' ।

डगरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] ३० 'डगर' । उ०—(क) जमुन भरन जल हम गई तहँ रोकत डगरी ।—सूर०, १०।१४२० । (ख) धू चला चले पकड़ी डगरी ।—माराधना, पृ० १८ ।

डगा^३—संज्ञा पुं० [हि० डागा] डागा । डग्री बजाने की लकड़ी । लगाड़ा बजाने की लकड़ी । खोब । उ०—हउ सब कवितन्ह कर पछलगा । किछु कहि चला तबल देइ डगा ।—जायसी (शब्द०) ।

डगाना—क्रि० स० [हि० डग] ३० 'डगाना' ।

डगाल—संज्ञा पुं [देश०] टहनी । छोटी डाल । पतली शाखा ।
उ०—जहाँ काटियाँ अधिक घनी होती हैं वहाँ वृक्षों की
डगालों को काटकर वे जलाते हैं और फिर पानी बरस जाने
के बाद बीज बोते हैं ।—पुष्पक० अभि० प्र० (विवि०),
पृ० ४० ।

डगावना—क्रि० स० [हि० डिगाना] दे० 'डिगाना' । उ०—
कवि बोधा मनी मनी नेजहु ते यदि तावे न चित डगावनी
है ।—भारतेन्दु प्र०, भा० १, पृ० ११८ ।

डगगर—संज्ञा पुं [सं० तक्षुं] १. कुत्ते या भेड़िये की तरह का एक
मांसाहारी पशु ।

विशेष—यह पशु रात को शिकार की खोज में निकलता है
और कभी कभी बस्ती के कुत्तों, बकरी के बच्चों आदि
को उठा ले जाता है । यह कई प्रकार का होता है; पर
मुख्य भेद दो हैं—बिस्तीवाला और बारीवाला । यह एशिया
और अफ्रीका के बहुत से भागों में पाया जाता है । यह
बेखाने में बड़ा डरावना जान पड़ता है । इसका पिछला
बड़ छोटा और थगला भारी होता है । गरदन लंबी और
मोटी होती है, कंध पर लंबे लंबे बाल होते हैं । इसके दाँत
बहुत पैने और तेज होते हैं । यह जानवर डरपोक भी बड़ा
होता है । यह मुरदे लाकर भी रहता है । इसका कन्न में से
पड़े मुरदे ले जाना प्रसिद्ध है ।

२. लंबी टाँपों का दुबका बोड़ा ।

डगा—संज्ञा पुं [हि० डघ] लंबी टाँपों का दुबका बोड़ा ।

डच्चे—संज्ञा पुं [सं०] हाथड संबंध । हालीड का निवासी ।

डट—संज्ञा पुं [देश०] निधान ।

डटना—क्रि० प्र० [सं० रषाट्, हि० टाट या टाढ़] १. जमकर
झड़ना । झड़ना । ठहरा रहना । जैसे,—वे सवेरे से मेले
में डटे हुए हैं ।

संज्ञो० क्रि०—जाना । —जा डटना ।

मुहा०—डटा रहना = सामना करने या कठिनाई झेलने के लिये
खड़ा रहना । न हटना । मुँह न मोड़ना । डटकर खाना =
धुब पेट भर खाना ।

२. भिड़ना । लग जाना । छु जाना । ३. झगड़ा लगना । फटना ।

डटना—क्रि० प्र० [सं० दष्टि, हि० डीठ] टाकना । देखना ।
उ०—(क) उर मानिक की उपबली बटत बटत दग दाघ ।
भलकठ बाहर कड़ि मनी पिय द्विप को अनुराग । (ख)
लटक लटक लटकत जलत डटन मुकुट की छाई । चटक
अरघी नट मिलि पयो, मटक भटक बन माहि ।—बिहारी
(शब्द०) ।

डटाई—संज्ञा स्त्री [हि० डटाना] १. डटाने का काम । २. डटाने
की मजदूरी ।

डटाना—क्रि० स० [हि० डटना] १. एक वस्तु को दूसरी वस्तु
से लपाना । सटाना । भिड़ाना । २. एक वस्तु को दूसरी
वस्तु से लगाकर आगे की ओर ठेकना । ओर से भिड़ाना ।
३. जमाना । खड़ा करना ।

डट्टा—संज्ञा पुं [हि० डाटना] १. हुक्के का नैचा । टेक्का । २.
डाट । काम । गट्टा । ३. बड़ी मेख । ४. छींटा छापने का
ठप्पा । साँचा ।

डडकना—क्रि० प्र० [अनु०] जोर से बजना या शब्द उत्पन्न
होना । उ०—डडकत डीहें चहें फेर सहें ।—प० रासो,
पृ० ८२ ।

डडकना—क्रि० स० [अनु०] जोर से बजाना ।

डडहा—संज्ञा पुं [सं० डुण्डुभ] एक सर्प । डेडहा ।

डडही—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार की मछली ।

डडियाना—क्रि० स० [हि० डीडा] बनाना । डंडे के समान करना ।

डडीची—संज्ञा स्त्री [देश०, या हि० डंडी] पंक्ति । उ०—मन में
धावे तो दो डडीच लिख भेजना ।—श्यामा०, पृ० ६२ ।

डड्ड—वि० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ड, डड्ड] दग्ध । जला हुआ । तप्त ।
संतप्त [को०] ।

डड्डार—संज्ञा पुं [सं० बंष्ट्राल, प्रा० डड्डाल] दे० 'डड्डाल' ।

उ०—डिड न रहे डड्डार बाप बनवर बन बुलिय ।—सुदन
(शब्द०) ।

डड्डार—वि० [सं० बंष्ट्रा, हि० डाढ़, डाढ़ी] बड़ी डाढ़ी रखनेवाला ।

विशेष—मध्य काल में और आज भी बड़ी डाढ़ी रखनेवालों का
वेश समझा जाता है ।

डड्डाली—संज्ञा पुं [सं० बंष्ट्राल, प्रा० डड्डाल] वाराह । शूकर ।
उ०—डड्ड डड्डाल डड्डाल त्रिय भुक्कारन वहु भुक्करहि ।—
पृ० रा०, ६। १०२ । पृ० (उ०) पृ० १२२ ।

डड्डार—वि० [सं० दृढ़, प्रा० डिड; हि० डिड] दृढ़ हृष्य का ।
माहुरी ।

डडन—संज्ञा स्त्री [सं० दग्ध, प्रा० डड्ड, या सं० दहन] जलन ।
ताप । उ०—भक्ति लता फैलन लगी दिन दिन होत पाप की
दहन ।—देवनामी (शब्द०) ।

डडना—क्रि० प्र० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ड + ना (प्रत्य०)]
जलना । सुलगना । बलना । उ०—डडें मनु रूप लसैं इह रूप ।
गढ़े जमि कैयक हैं महि रूप ।—सुदन (शब्द०) । २.
जलना । ताप से पीड़ा होना । जलन होना । उ०—घँबवत
पय तातो जब लाग्यो रोवत जीभि डडें ।—सूर०, १०। १७४ ।

डडार—संज्ञा पुं [सं० दंष्ट्राल] दे० 'डड्डार' ।

डडारी—वि० [हि० डाढ़] १. डाढ़वाला । जिसे डाढ़ हो ।
२. डाढ़ीवाला ।

डडारा—वि० [हि० डाढ़] १. डाढ़वाला । वह जिसके डाढ़ें हो ।
साँचावाला । २. वह जिसे डाढ़ी हो ।

डडाल—संज्ञा पुं [सं० बंष्ट्राल, प्रा० डड्डाल] दे० 'डड्डार' । उ०—
सोमस सुतन आछेड डर हम डडाल उस सहु चसहि ।—पृ०
रा०, ६। १०१ । पृ० रा० (उ०), पृ० १२३ ।

डडियल—वि० [हि० डाढ़ी] डाढ़ीवाला । जिसके बड़ी डाढ़ी हो ।

डडुआ—संज्ञा पुं [सं० डड्ड] बरें, गेहूँ, जने का ढेल जो मोठ में
मजदूरी के लिये लगाया जाता है ।

उड़ना—क्रि० सं० [सं० दग्ध, प्रा० उड़ + हि० ना (प्रत्य०)] जलना ।
उड़योरा(उ)—वि० [हि० उड़ी] उड़ीवाला । उ०—सित घसित
उड़योरे दीह तन सवि सनेह रोसव सने ।—सुदन (शब्द०) ।

उपट^१—संज्ञा स्त्री [सं० उप] बाँट । झिझकी । छुड़की ।

उपट^२—संज्ञा स्त्री [हि० उपट] दोड़ । मोड़े की तेज चाल ।
सरपट चाल ।

उपटना^१—क्रि० सं० [हि० उपट + ना (प्रत्य०)] बाँटना । कोष में
घोर से बोलना । कड़े स्वर से बोलना ।

उपटना^२—क्रि० प्र० [हि० उपटना] तेज दौड़ना । वेध से जाना ।

उपोरसंख—संज्ञा पुं० [अनु० उपोर (= बड़ा) + सं० संख, प्रा०
संख] १. जो कहे बहुत, पर कर कुछ न सके । डींग मारने-
वाला ।

विशेष—इस शब्द के संबंध में एक कहावी प्रचलित है । एक
ब्राह्मण ने दरिद्रता से दुखी हो समुद्र की भारावना की ।
समुद्र ने प्रसन्न होकर उसे एक बहुत छोटा सा संख दिया ।
और कहा कि यह ५००) रोज तुम्हें दिया करेगा । जब उस
ब्राह्मण ने उस संख से बहुत सा धन इकट्ठा कर लिया तब
एक दिन अपने गुरु जी को बुलाया और बड़ी धूम धाम से
उनका सत्कार किया । गुरु जी ने उस संख का हाथ जान
लिया और वे धीरे से उसे उड़ा ले गए । ब्राह्मण फिर दरिद्र
हो गया और समुद्र के पास गया । समुद्र ने सब हाथ सुनकर
एक बहुत बड़ा सा संख दिया और कहा कि 'इससे भी गुरु जी
के सामने रपया माँगता, यह खूब बढ़ बढ़कर बातें करेगा,
पर देना कुछ नहीं । जब गुरु जी इसे माँगे तो दे देना और
पहलेवाला छोटा संख माँग लेना' । ब्राह्मण ने ऐसा ही किया ।
जब ब्राह्मण ने गुरु जी के सामने उस संख से ५००) माँगा
तब उसने कहा—'५००) क्या माँगते हो, इस बीच पचास
हजार माँगे' । गुरु जी को यह सुनकर लालच हुआ और उन्होंने
वह संख लेकर छोटा संख ब्राह्मण को लौटा दिया । गुरु जी
एक दिन उस बड़े संख से माँगने बैठे । पर वह उसी प्रकार
और माँगने के लिये कहता जाता, पर देना कुछ नहीं था ।
जब गुरु जी बहुत व्यग्र हुए, तब उस बड़े संख ने कहा—'यता
सा शक्तिवी, विप्र ! या ते कामान् प्रपूरयेत् । अहं उपोरशं-
खावो यदामि न यदामि ते' ।

२. बड़े डीङ्गरीय का पर मुख । देखने में सपाना पर चर्खा की
सी समझवाला ।

उपू—वि० [देश०] बहुत बड़ा । बहुत मोटा ।

उफ—संज्ञा पुं० [प्र० उफ] १. चमड़ा मड़ा हुआ एक प्रकार का
बड़ा बाजा जो लकड़ी से बनाया जाता है । उफला । उ०—
(क) बिन उफ ताल सुवंग बजावत गात भरत वरस्पर खिन
खिन होरी ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) । (ख) कहे पदमाकर
गालन के उफ बाजि उठे पलपावत गाड़े ।—पद्माकर
(शब्द०) । २. जावलीबाजों का बाजा । चंभ ।

विशेष—यह लकड़ी के गोल बड़े मेंदरे पर चमड़ा मड़कर बनाया
जाता है । होली में इसे बजाते हुए निकलते हैं ।

उफनी—संज्ञा स्त्री [प्र० उफ] १. 'उफनी' । उ०—मड़ि मड़ि पुरंद
उफनी उफ दुंदुमि डोल सु पीट बजाया है ।—पद्माकर प्र०,
पृ० २१७ ।

उफर—संज्ञा पुं० [प्र० उफर] जहाज के एक तरफ का पाल ।

उफला—संज्ञा पुं० [प्र० उफ] उफ नाम का बाजा ।

उफली—संज्ञा स्त्री [प्र० उफ] छोटा उफ । खंभरी ।

मुहा०—उपनी उपनी उफनी उपना उपना राग = जितने लोग
उतनी राय ।

उफाण(उ)—संज्ञा पुं० [सं० दम्पन, दम्पना; फा० उंभणा, कुमा०
उंफाण, पु० हि० उंभान] पाखंड । धाड़ंबर । रस । उ०—
काहे रे नर करहु उफाण, अतिकाधि धर धोर मसाण ।—
दादू, पृ० ४८४ ।

उफारी—संज्ञा स्त्री [अनु०] निगमाद । जोर से रोने या चिल्ला
उठने का शब्द । उ०—नखन रतनसेन भनि धबरा । छौड़ि
उफार पाप ले परा ।—जायसी (शब्द०) ।

उफारना^१—क्रि० प्र० [अनु०] चिल्लाना । दहाड़ मारना । जोर
से रोना या चिल्लाना । उ०—जाग बिहुंगम समुद्र उफारा ।
अरे मन्ध, पानी भा जारा ।—जायसी (शब्द०) ।

उफालची—संज्ञा पुं० [हि० उफना] १. 'उफानी' ।

उफाली—संज्ञा पुं० [हि० उफना] उफना बजानेवाला । एक
मुसलमान जाति ।

विशेष—यह जाति उफला बजाती तथा उफ, ताशे डोल आदि
चमड़े के बाजों की मरम्मत करती है । प्रवक्ष में उफाली
उफला बजाकर पाजी मियाँ के गीत गाते और भील माँगते
फिरते हैं ।

उफोरना^१—क्रि० प्र० [अनु०] झुक देना । चिल्लाना । लज्जकारना ।
घरजना । उ०—बचन विनीत कहि सीता को प्रबोध करि
मुमसी भिक्कु चढ़ि कहत उफोरि के ।—तुलसी (शब्द०) ।

उफोखी—संज्ञा पुं० [हि० उपोर] बकवास । निरर्थक बात । उ०—
मोटे मोर कहावते, करते बहुत उफोल ।—सुंदर प्र०, भा०
१, पृ० ३१७ ।

उफफ(उ)—संज्ञा पुं० [प्र० उफ, हि० उफ] १. 'उफ' । उ०—बीती
जात बहार संवत लपने पर आया । लीजै उफ बजाय सुमय
मानुष समया या ।—पलटू, भा० १, पृ० २० ।

उब^१—संज्ञा पुं० [सं० उब] तरल । जैसे, घाँघों का उब उब होना ।

विशेष—इस शब्द का स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता । उबक, उबकना,
उबकोही आदि प्रचलित शब्दों में इसका रूप मिलता है ।

उब^२—संज्ञा पुं० [हि० उबना] १. जेब । थैला ।

मुहा०—उब पकड़कर कुछ कराना = गरदन पकड़कर कुछ काम
कराना । भला बधाकर काम कराना । जैसे,—रपया देगा कैसे
नहीं, उब पकड़कर लूँगा । उब में घाना = वज्र में होना ।
काबू में घाना ।

२. कुप्पा बनाने का चमड़ा ।

डबकना^१—क्रि० सं० [हि० डब] किसी धातु की चट्ट को कटोरी के आकार का गठन करना ।

डबकना^२—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. पीड़ा करना । टपकना । उदं देना । टीस मारना । २. जंगड़ाकर चलना ।

डबकना^३—क्रि० प्र० [सं० डब या डबक] तरलित होना । अश्रुपूर्ण होना । (नेत्रों में) आँसू भर आना ।

डबकीहाँ—वि० [प्रनु० या हि० डबकना] [वि० स्त्री० डबकीहाँ] आँसू भरा हुआ । डबडबाया हुआ । अश्रुपूर्ण । गीला । उ०—बिलखी डबकीहाँ बखन, तिय लखि गमन बराय । पिय गहवर आयो गरी राखी गरे लगाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

डबडबाना—क्रि० प्र० [प्रनु०, या हि० डब डब] आँसू से आँखें भर आना । आँसू से (आँखों का) गीला होना । अश्रुपूर्ण होना । जैसे, आँखें डबडबाना । उ०—(क) जब जब सुरति करत तब तब डबडबाइ दोउ लोचन उभगि भरत ।—सूर (शब्द०) । (ख) उ०—डबडबाय आँखन में पानी । बूढ़े तन की यही निसानी ।—सहजो, पृ० ३० ।

संयो० क्रि०—आना ।—जाना ।

विशेष—दस शब्द का प्रयोग 'आँख के साथ तो होता ही है, 'आँसू' के साथ भी होता है ।

डबरा—संज्ञा पुं० [सं० डम्बर] भाङ्गबर । उ०—डेरायी साँझ डबर, यह हम कीध पयाण । करवा सुरी सहायकज असुरी सुँ माराण ।—रघु० क०, पृ० १७३ ।

डबरा—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ (= समुद्र या झील)] [स्त्री० दम्भा = डबरी] १. छिछना लंबा गड्ढा जिसमें पानी जमा रहे । कुंड । झील । २. वह नाँची भूमि का टुकड़ा जिसमें पानी लगता हो । ३. खेत का कोना जो जोतने में छूट जाता है । ४. कटोरा । पात्र ।

डबरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डबरा] छोटा गड्ढा या ताल ।

डबल^१—वि० [प्र०] दोहरा । दूना । दोगुना । उ०—टबल जीन और गर्मी में भी फलालीन ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २५६ ।

डबल^२—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ ?] पैसा । मराठी राज्य का पैसा ।

डबलरोटी—संज्ञा स्त्री० [प्र० डबल + हि० रोटी] पःवरीयी ।

डबलबिक—वि० [प्र०] पोहरी बत्ती ।

डबला—संज्ञा पुं० [देश०, मुञ्ज० हि० डबरा] मिट्टी का पुरवा । कुल्हड़ । चुक्कड़ ।

डबा^१—संज्ञा पुं० [हि० डब्बा] १. 'डब्बा', 'डिब्बा' ।

डबारी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डबरा] गड़ही । उ०—को है कूप, गंगाजल को है, को है सलिल डबारी ।—गुलाल०, पृ० ५२ ।

डबिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डब्बा] छोटा डिब्बा । डिबिया ।

डबिरना—क्रि० सं० [देश०] नेत्र में से आँसू को निकाल लाना । (गड़ेरियों की बोली) ।

डबी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डबा] १. 'डब्बी', 'डिब्बी' । उ०—

कंचन की भल रूप डबीन में खोल बरी मनी नील नगी है ।—
सुंदरी सर्वस्व (शब्द०) ।

डबुआ^४—संज्ञा पुं० [देश०] १. 'डबुलिया' । उ०—मिट्टी का कुल्हड़ या डबुआ बुरा नहीं माना होता ।—आधुनिक०, पृ० १६५ ।

डबुलिया^५—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुल्हिया । छोटा पुरवा ।

डबोना—क्रि० सं० [प्रनु० डब डब, या सं० डबण] १. डबाना । गोता देना । बोरना । मग्न करना । २. बिगाड़ना । नष्ट करना । चोपट करना ।

मुहा०—नाम डबोना = नाम में धब्बा लगाना । रूपाति नष्ट करना । वंश डबोना = वंश की मर्यादा नष्ट करना । कुल में कलंक लगाना । लुटिया डबोना = महत्व नष्ट करना । प्रतिष्ठा खोना ।

डबल^६—संज्ञा पुं० [देश०] १. 'डबल' ।

डब्बा—संज्ञा पुं० [तैलंग । वा सं० डिम्ब (= गोल)] १. डबकनदार छोटा गहरा बरतन जिसमें ठोस या भुरभुरी चीजें रखी जाती हैं । संपुट । २. रेलगाड़ी की एक गाड़ी जो अलग हो सकती हो ।

डब्बू—संज्ञा पुं० [हि० डब्बा, तुल० देशी डोम, गुज० डोयो] डाँडी लगा हुआ एक प्रकार का कटोरा जिससे परोसने का काम लिया जाता है ।

डभक—वि० [सं० स्तवक, या देश०] ताजा । पेड़ या पीधे से तत्काल तोड़ा हुआ । उ०—एक पीछा सा डभक अमरुद उसने हाथ बढ़ाकर उठा लिया ।—नई०, पृ० १२६ ।

डभकना^१—क्रि० प्र० [प्रनु० डभ डभ या सं० डब] १. पानी में डूबना, उतराना । घुमकी लेना । २. (आँखों का) डबडबाना । (नेत्रों में) जल भर आना । उ०—बदन पियर जल डभकहि नेता । परगट दुम्री पेम के बैता ।—जायसी (शब्द०) ।

डभका^२—संज्ञा पुं० [हि० डभकना] कुएँ से ताजा निकाला हुआ (पानी) । ताजा । २. अश्रु । नेत्रजल ।

डभका^३—संज्ञा पुं० [देश०] १. भूना हुआ मटर या चना जो फूटा न हो । कोहरा ।

डभकौरी^४—संज्ञा स्त्री० [हि० डभकना] उरव की पोठी की बरी जो बिना नले हुए कढ़ी में डाल दी जाती है । डूबकी । उ०—पानीरा रास्ता पकौरी । डभकौरी मुगछी मुठि सोरी ।—सूर (शब्द०) ।

डभकौहीं—वि० [हि०] ३. 'डबकीहाँ' ।

डम—संज्ञा पुं० [सं०] एक नीच या वर्णसंकर जाति जिसे ब्रह्मचैवर्त पुराण ने लेट और चांडाली से उत्पन्न माना है । डोम ।

डमकना^१—क्रि० प्र० [प्रनु०] ध्वनि या शब्द करना (डोल आदि का) ।

डमकना^२—क्रि० प्र० [हि० दमकना] चमकना । चोतित होना । उ०—चोपग चितामण वणक, वे डमक्या बरबार ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ७५ ।

डमडम—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] डमक बजाने से होनेवाली आवाज । उ०—एक नाद का यही अंत हो, डम डम डमक बजे फिर जात ।—वीणा, पृ० ४८ ।

डमर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भय से पलायन । भगेड़ । भगदड़ । २. हलचल । उपग्रव । ३. गाँवों के साधारण संघर्ष (को०) ।

डमरु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'डमरु' । उ०—खुनखुनाकर हंसत हरि, हर हंसत डमरु बचाइ ।—सूर०, १०।१६० ।

डमरुघा—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] वात का एक रोग जिससे जोड़ों में दर्द होता है । गठिया ।

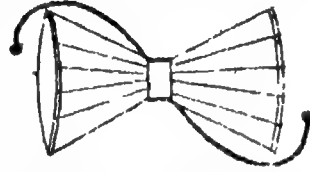
यो०—डमरुघा साल = दे० 'डंवरुघा साल' ।

डमरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथों की एक तांत्रिक मुद्रा (को०) ।

डमरु—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] १. एक बाजा जिसका आकार बीच में पतला और दोनों सिरो की ओर बराबर चौड़ा होता जाता है ।

विशेष—इस बाद्य के दोनों सिरो पर चपड़ा मड़ा होता है । इसके बीच में दो तरफ बराबर बड़ी हुई डोरी बंधी होती है जिसके दोनों ओरों पर एक एक कीड़ी या गोली बंधी होती है ।

बीच में पकड़कर जब बाजा हिलाया जाता है तब दोनों कीड़ियाँ चमड़े पर पड़ती हैं और शब्द होता है । यह बाजा शिव जी को बहुत प्रिय है । बंजर लचानेवाले भी इस प्रकार का एक बाजा अपने साथ रखते हैं ।



२. डमरु के आकार की कोई वस्तु । ऐसी वस्तु जो बीच में पतली हो और दोनों ओर बराबर चौड़ी (उल्टी गाड़ुम) होती गई हो ।

यो०—डमरुमध्य ।

३. एक प्रकार का बंदक वृत्त जिसके प्रत्येक तारण में २२ लघु बरग होते हैं । जैसे,—रहन रजन नग नगर ल गज तं गज खल कलगर गरल तरल धर । मिश्वारीदास ने इसी का नाम जलहरण लिखा है ।

डमरुमध्य—संज्ञा पुं० [सं० डमरु + मध्य] धरती का वह तंग पतला भाग जो दो बड़े बड़े मूलकों को मिलाता हो ।

यो०—जलडमरुमध्य = जल का वह तंग पतला भाग जो जल के दो बड़े भागों को मिलाता हो ।

डमरुयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० डमरु + यंत्र] एक प्रकार का यंत्र या पात्र जिसमें भर्क खींचे जाते तथा सिगरफ का पारा, कपूर, नीसाबर आदि उड़ाए जाते हैं ।

विशेष—यह दो घड़ों का मुँह मिलकर और कपड़मिट्टी के जोड़कर बनाया जाता है । जिस वस्तु का भर्क खींचना होता है उसे घड़ों का मुँह जोड़ने के पहले पानी के माथ एक घड़े में रख देते हैं और फिर सारे यंत्र को (यर्थात् दोनों जुड़े घड़ों को) इस प्रकार घाड़ा रखते हैं कि एक घड़ा घाँच पर रहता है और दूसरा ठंडी जगह पर । घाँच लगते से वस्तु मिले हुए पानी की माथ उड़कर हमारे घड़े में जाकर टपकती है । यही टपका हुआ जल उस वस्तु का भर्क होता है ।

सिगरफ से पारा उड़ाने के लिये घड़ों की खड़े बल नीचे ऊपर रखते हैं । नीचे के घड़े के पेंदे में घाँच लगती है और ऊपर के घड़े के पेंदे को गीला कपड़ा आदि रखकर ठंडा रखते हैं । घाँच लगने पर सिगरफ से पारा उड़कर ऊपरवाले घड़े के पेंदे में जम जाता है ।

डयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उड़ान । उड़ने की क्रिया । २. पालकी (को०) ।

डर—संज्ञा पुं० [सं० डर] १. दुःखपूर्ण मनोरोग जो किसी अनिष्ट या हानि की आशंका से उत्पन्न होता और उस (अनिष्ट वा हानि) से बचने के लिये आकुलता उत्पन्न करता है । भय । भीति । खौफ । त्रास । उ०—नाथ नवनु पृथ देखन चहूँ । प्रभु संकोच डर प्रकट न कहूँ ।—मानस, १।२।१८ ।

क्रि० प्र०—लगना ।—खाना । उ०—पैग पैग भुँड चाँपत पावा । पंखिन्ह देखि सबन्हि डर खावा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ११५ ।

मुहा०—डर के मारे = भय के कारण ।

१. अनिष्ट की संभावना का अनुमान । आशंका । जैसे,—हमें डर है कि वह कहीं भटक न जाय ।

डरना—क्रि० प्र० [हि० डर + ना (प्रत्यय)] १. किसी अनिष्ट या हानि की आशंका से आकुल होना । भयभीत होना । खौफ करना । संशंक होना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. आशंका करना । संदेशा करना ।

डरपक—वि० [हि० डर + पक + पराव] डर में हो पका हुआ (फल) ।

उ०—किष्की सु डरपक प्राय में मति तूँ मिल्यो मलिन । किष्की तनक तूँ तम रह्यो के जेड़ी की निद ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०० ।

डरपना—क्रि० प्र० [हि० डर] डरना । भयभीत होना । उ०—(क) इन्द्र को बहुत डरपन नहीं । राजहेतु डरपत मन माही ।—सूर (शब्द०) । (ख) एकहि डर डरपत मन मोग । प्रभु मोहि देख साय अति घोरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

डरपाना—क्रि० सं० [हि० डरपना] डराना । भयभीत करना ।

डरपुकना—वि० [हि० डरपुकना] दे० 'डरपोक' । उ०—सिपारसी डरपुकने तिठू बोलें बात आभासी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३ ।

डरपोक—वि० [हि० डरना + पोकना] बहुत डरनेवाला । भीर । कायर ।

डरपोकना—वि० [हि० डरना + पोकना] दे० 'डरपोक' ।

डरवाना—क्रि० सं० [हि० डर] दे० 'डराना' ।

डरवाना—क्रि० प्र० [हि० डराना] दे० 'डरवाना' ।

डरा—संज्ञा पुं० [हि० डरा] [स्त्री० डरी] डोका । डला । टुकड़ा ।

डराकू—वि० [हि० डरना] १. बहुत डरनेवाला । भीर । २. डराने या भय उत्पन्न करनेवाला ।

डराडरि—संज्ञा स्त्री० [हि० डर] दे० 'डराडरी' । उ०—जब प्राणि

पेरत कटक काम को तब जिय होत डराडरि ।—स्वामी
हरिदास (शब्द०) ।

डराहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डर] डर । भय । घासंका ।

डरान—वि० [हि० डरावना] डरावना । भयावना । भयंकर । उ०—
रहूँ कह डक डारन डरान । बहुकंठ बिद्धि सिद्धि नय पाव ।—
पृ० रा०, १। १११ ।

डराना—क्रि० प्र० [हि० डरना] डर दिखाना । भयभीत करना ।
छोफ दिखाना ।

संयो० क्रि०—वेना

डरानी—वि० [हि० डरना] १. छोफ पैदा करनेवाली । भयावनी ।
२. डरी हुई । भयभीत । उ०—बोले यों डरानी भावसिंह
बु के डर में ।—सति० प्र०, पृ० ४१८ ।

डरापना—क्रि० प्र० [हि० डर] किसी को डरा देना । भयभीत
करना ।

डराराहुँ—वि० [हि० डरा + आर (प्रत्य०)] (छाँक) जिसमें
कोरे या हल्की रन्नाह रेखा हो । पस्त (छाँक) । उ०—पीन
मधुर पंकज पुन हारे । निरञ्जन ओषध जुगम डरारे ।—
साधनानन्द०, पृ० १६० ।

डरावना—वि० [हि० डर + आवना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० डरावनी]
जिससे डर लगे । जिससे भय उत्पन्न हो । भयावक । भयंकर ।
उ०—कारी घटा डरावनी घाई । पापिनि सापिनि सी यत्र
छाई ।—संय० प्र०, पृ० १६१ ।

डरावा—संज्ञा पुं० [हि० डराना] १. बहुत लकड़ी को फलवार पेड़ों में
बिड़िया उड़ाने के लिये बंधी रहती है । इसमें एक लंबी रस्सी
बंधी होती है जिसे खींचने से खट खट शब्द होता है । खट-
खटा । चड़का । २. डराने की दृष्टि से कही बात ।

डराहुका—वि० [हि० डरना] डरावक ।

डरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डार + रिया (प्रत्य०)] दे० 'डार' या
'डाल' । उ०—सबके राखि सेह भगवान । हम घनाब बेने
हम डरिया पारिधि पावे जान ।—सूर (शब्द०) ।

डरिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डलिया] दे० 'डलिया' । उ०—सीमंत धरे
छाक की डरियनि । सकति गुणन भूल को डरियनि ।—
चनानंद, पृ० ११७ ।

डरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डली] दे० 'डली' । उ०—परसीति दं
कीनी घनीति मद्धा बिष बीनी रिक्ताय पिठास करी ।—
चनानंद, पृ० ८१ ।

डरीला^१—वि० [हि० डार] डारवाला । धावायुक्त । दहलीवार ।
उ०—होवन दलीसे एक दूटत करीछे, मौल होत है फलीसे सेव
कन चमकीसे है ।—रघुराज (शब्द०) ।

डरीला^२—वि० [हि० डर + ला (प्रत्य०)] दे० 'डरीला' ।

डरीरना—क्रि० प्र० [हि० डरीरना] दे० 'डरीरना' । उ०—भुजा
कोरि के तोर प्रसकी डरीरे ।—प० रासो, पृ० ४५ ।

डरीला^३—वि० [हि० डर] डरावना । भयानक । खौफनाक । उ०—
बिटरन घंटा भरत नाह उच्चरत डरीला ।—श्रीधर पाठक
(शब्द०) ।

डली^१—संज्ञा पुं० [हि० डला (= टुकड़ा)] टुकड़ा । खंड ।

मुहा०—डल का डल = डेर का डेर । बहुत सा ।

डली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तल्ल] १. मोल । २. काश्मीर की एक
मोल । उ०—बनि सायर सब तूल, विमल विस्तृत डल
बूझर ।—काश्मीर०, पृ० १ ।

डली^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डला] दे० 'डलिया' ।

डलक—संज्ञा पुं० [सं०] दोरा । डला । बाँस भाँस की बनी बड़ी
डलिया (को०) ।

डलना—क्रि० प्र० [हि० डालना] डाला जाना । पड़ना । बैठे,
भूझा डलना ।

डलरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डलिया] छोटी डलिया । मुँह की बनी
हुई छोटी पिटारी । उ०—नए बसन भाभूषन सजि डलरी
गुड़िया बै ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २६ ।

डलबा—संज्ञा पुं० [हि० डला] 'डला' ।

डलवाना—क्रि० प्र० [हि० डालना का प्रे० रूप] डालने का काम
करना । डालने देना ।

डला^१—संज्ञा पुं० [सं० दल] [स्त्री० दल्ला० डली] १. टुकड़ा ।
टोका । खंड । उ०—रोठ पड़े घाक जलाई, घर बड़ डला
उधेड़ ।—रा० क०, पृ० २६० ।

विशेष—साधारणतः इसका प्रयोग नमक, मिर्ची आदि के लिये
प्रयुक्त होता है । जैसे, नमक का डला, मिर्ची की डली ।
२. लिंगेन्द्रिय ।—(बाजाक) ।

डला^२—संज्ञा पुं० [सं० डलक] [स्त्री० दल्ला० डलिया] बाँस, बेंत आदि
की पतली फट्टियों या कमबियों को गाँझकर बनाया हुआ
बरतन । टोकरा । दोरा । उ०—डला भरि हो लाल । कैसे के
रठाऊँ । पठवी ग्वाल छाक बै पावे ।—नंद० प्र०, पृ० ३९० ।

यौ०—डला खुलवाई = बरियों के यहाँ विवाह की एक रीति
जिसमें दुल्हा दुल्हन के यहाँ एक टोकरा बाँधा है ।

डलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डला] छोटा डला । छोटा टोकरा ।
दोरी । उ०—प्रेम के परवर धरो डलिया में, भाँस की भाँसी
लाई । जान के गबरा बड़ करि रालो गगन में हाव लगाई ।
—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४८ ।

डली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डला] १. छोटा टुकड़ा । छोटा डेला ।
खंड । जैसे, मिर्ची की डली, नमक की डली । २. सुपारी ।

डली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डला] दे० 'डलिया' । उ०—बुने डली में
मुचरे, बड़े बड़े भरे भरे ।—वेला, पृ० १९ ।

डल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] डला । दोरा ।

डल्ला^१—संज्ञा पुं० [सं० डलक] दोरा ।

डल्लुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' ।

डल्लू—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' ।

डल्लुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' ।

डवा^१—संज्ञा पुं० [हि० डवा] दे० 'डिम्बा' । उ०—विष को
डवा है के उदेग को घेवा है, कल पजकी न बाँहें अथवा है
चक्र बात को ।—चनानंद, पृ० ८० ।

द्वितीय—संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना हुआ भृगु ।

दस—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की शराब । रम । २. तराजू की होरी जिसमें पलड़े बँधे रहते हैं । जोती । ३. कपड़े की धान का छोर जिसमें ताने और बाने के पूरे तागे नहीं जुने रहते । छोर ।

दसगाँ—संज्ञा पुं० [सं० दशन; प्रा० दसण] दाँत । दशन । उ०—होर दसण बिदम घघर, मारु भुकुटि मयंक।—ढोला०, पृ० ४५४ ।

दसन—संज्ञा स्त्री० [सं० वंशन] १. डसने की क्रिया या भाव । २. डसने या काटने का ढंग । उ०—यह अपराध बढ़ो उन कीनो । तक्षक डसन साप में दीनो।—सूर (शब्द०) ।

दसना^१—क्रि० सं० [सं० दंशन] १. किसी ऐसे कीड़े का दाँत से काटना जिसके दाँत में विष हो । साँप आदि जहरीले कीड़ों का काटना । उ०—घरे घरे कान्हु कि रभसि बोरि । मदन भुजंग डसु बालहि तोरि।—विद्यापति, पृ० ३६६ । २. डंक मारना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

दसना^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डासन', 'दसना' । उ०—सुंदर सुमनन सेज बिझाई । मरगज मरगजि डसनि डसाई।—नंद प्र०, पृ० १४१ ।

दसनी—वि० [सं० वंश, प्रा० डंस] काटनेवाली । उ०—सिमु-चातिनी परम पापिनी । मंतनि की डसनी जु साँपिनी।—नंद प्र०, पृ० २३२ ।

दसधाना—क्रि० सं० [हि०] ३० 'डमाना' ।

दसा—संज्ञा पुं० [सं० दंश] डाढ़ । चौमड़ ।

दसाना^१—क्रि० म० [हि० डसन] बिछाना । उ०—'हे राम' छवित यह नही बीतरा भाई । जिसपर बापू ने अंतिम सेज डसाई।—सूत०, पृ० १३७ ।

दसी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दसी] दे० 'दसी' ।

दसी^२—संज्ञा स्त्री० पहचान या परिचय की वस्तु । पहचान के लिये दिया हुआ चिह्न । चिह्नी । निशानो : सहवानी ।

दस्टर—संज्ञा पुं० [अ०] गर्द आड़ने का कपड़ा । काढ़न ।

डहकना—क्रि० सं० [हि० डहकना] दे० 'डहकना' । उ०—कह दारिया मन डहकत फिरि।—तगिया० बानी, पृ० ३५ ।

डहक—वि० [?] संख्या में छह । ६।—(बलाल) ।

डहकना^१—क्रि० म० [हि० डका] १. छल करना । धोखा देना । ठगना । जटना । उ०—डहकि डहकि परचेहु सब काहू । पति धसंक मन सदा उछाहू।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी वस्तु को देने के लिये दिखाकर न देना । ललचाकर न देना । उ०—बेलत खात, परस्पर डहकत, छीनत कहत करत रग-देया।—तुलसी (शब्द०) ।

डहकना^२—क्रि० म० [हि० दहाड़, धाड़] १. रोने में रह रहकर शब्द निकालना । बिलकना । बिभाष करना । उ०—काल बदन ते राखि लीनो इंद्र गर्व जे सोइ । मोपिनी सब ऊधो पाये डहकि दीनो रोइ।—सूर (शब्द०) । २. हुंकारना । डकार

लेना । दहाड़ मारना । गरजना । उ०—इक दिन कम घसुर इक प्रेरा । आवा घटि वपु विरषम केरा । डहकत फिरत उडावत छारा । पकरि सींग तुरतै प्रभु मारा ।—विश्राम (शब्द०) ।

डहकना^३—क्रि० म० [देश०] छिनराना । छिटकना । फैलना । उ०—चंदन कपूर जल घीत कलधीत घाम उज्जल जुन्हाई डहडही डहकत है।—देव (शब्द०) ।

डहकलाय—वि० [?] सोलह । १६।—(दनात) ।

डहकाना^१—क्रि० सं० [सं० डम (= खोना), हि० डाका] खोना गंवाना । नष्ट करना । उ०—वाद विवाद यज्ञ बन माधे । कतहू जाय जन्म डहकावै।—सूर (शब्द०) ।

डहकाना^२—क्रि० म० किसी के धोखे में आकर अपने पाम का कुछ खोना । किसी के छल के कारण हानि सहना । धोखे में घाना बंचित या प्रतारित होना । ठगा जाना । जैसे, इस सोदे में तुम डहका गए । उ०—(क) इनके कहे कौन डहकावै, ऐसी दीन घजानो ?—सूर (शब्द०) । (ख) डहके ते डहकाइयो मलो जो करिय बिचार।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

डहकाना^३—क्रि० म० १. ठगना । धोखे से किसी की कोई वस्तु ले लेना । धोखा देना । चटना । २. किसी को कोई वस्तु देने के लिये दिखाकर न देना । ललचाकर न देना ।

डहकावनि^१—संज्ञा पुं० [हि० डहकाना] [स्त्री० डहकावनि] ललचाना या धोखा देने का कार्य या स्थिति । उ०—लै लै व्यंजन बखनि बखावनि । हंसनि, हंसावनि, पुनि डहकावनि ।—नंद प्र०, पृ० २६४ ।

डहडह—वि० [अनु०] ३० 'डहडहा' ।

डहडहा—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० डहडही] १. हरा भरा । ताजा । लहलहाता हुआ । जो सूखा या मुरझाया न हो । (पेड़, पौधे, फूल, पत्ते आदि) । उ०—(क) जो काटै तो डहडह, सींचै तो कुम्हिलाय । यहि गुनवंती बेज का कुछ गुन कहा न जाय।—कबीर (शब्द०) । २. प्रफुल्लित । प्रसन्न । आनंदित । उ०—तुम सीतल देखत बई भपने हिय ने लाल । फिरत सबनि में डहडही बहै मरगबी बाल।—बिहारी (शब्द०) । (ख) सेज की चरन चारु गेवनी हमारे जान, हूँ रही डहडही लहि घानैय कंब को।—देव (शब्द०) । (ग) डहडहे इनके नैन धरिह कतहूँ चितए हरि।—नंद प्र०, पृ० १५ । २. धुरंत का । ताजा । उ०—लहलही इंदीवर श्यामता शरीर सोही डहडही चंदन की रेखा राजे माल में।—रघु-राज (शब्द०) ।

डहडहाट^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डहडहा] हरापन । ताजगी ।

डहडहाना—क्रि० म० [हि० डहडहा] १. हरा भरा होना । ताजा होना । (पेड़, पौधे, आदि का) । उ०—दूर दमकत खवन मोभा जलज मृग डहडहत।—सूर (शब्द०) । २. प्रफुल्लित होना । आनंदित होना ।

डहडहाव—संज्ञा पुं० [हि० डहडहा] हराभरा होने का भाव । ताजगी । प्रफुल्लता ।

डहन^१—संज्ञा पुं० [सं० डयन (= उड़ना)] डेना । पर । पंख । उ०—विषदाना कित देव भोगूरा । जिहि भा मरन डहन धरि चूरा ।—जायसी (शब्द०) ।

डहन^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन । डाह ।

डहना^१—संज्ञा पुं० [सं० डयन] दे० 'डेना' । उ०—जो पंखी कहवाँ पिर रहना । ताके जहाँ जाइ जहाँ डहना ।—पद्ममावत, पृ० २५८ ।

डहना^२—क्रि० प्र० [सं० दहन] १. जलना । भस्म होना । २. कुटना । चिड़ना । द्वेष करना । बुरा मानना ।

डहना^३—क्रि० प्र० १. जलाना । भस्म करवा । उ०—रावन खंका ही उही बेह मोहि डाहन पाइ ।—जायसी (शब्द०) । २. सतप्त करना । दुःख पहुँचाना । उ०—डहइ चद भउ चंदन भीक । दगध करइ तन विरह गभीक ।—जायसी (शब्द०) । ३. ताड़ना । बजाना । उ०—डहक संकर डहँ करे जोगण किलकाराँ ।—रघु० ६०, पृ० ४७ ।

डहरा^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डहर] १. रास्ता । मार्ग । पथ । उ०—जिहि डहरत डहर करत कहरो । वित चख चोरत चेटक चेहरो ।—रघुराज (शब्द०) । २. आकाशगंगा । ३. पगडड़ी ।

डहरना—क्रि० प्र० [हि० डहर] चलना । फिरना । टहलना । उ०—जिहि डहरत डहर करत कहरो । वित चख चोरत चेटक चेहरो ।—रघुराज (शब्द०) ।

डहरा^२—संज्ञा पुं० [हि० डहर] मार्ग । डगर । उ०—सखी रो धाज धन घरती धन देसा । धन डहरा मेवात संभारे हरि भाए जन मेसा ।—महभो०, पृ० ५७ ।

डहराना^१—क्रि० प्र० [हि० डहरना] चलाना । दौड़ाना । फिराना । उ०—कोऊ निरखि रही भाख चवन एक चित छाई । कोऊ विरखि बिगुरी भृकुटि पर दैन डहराई ।—सूर (शब्द०) ।

डहरि(पु)^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दधि, हि० दहेड़ी] दही जमाने के काम में प्रयुक्त मिट्टी की हँडिया । उ०—सुत की बरजि रामहु महिर । डहर चलन न देस काहुहि फोरि डारत डहरि ।—सूर०, १०।१४२१ ।

डहरि(पु)^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डहर] राह । उ०—जब भरन कोउ नाहि पायन गोक राखत डहरि ।—सूर०, १०।१४२२ ।

डहरिया^१—संज्ञा पुं० [हि० डहर] गाय बैल का घूमकर व्यापार करनेवाला व्यक्ति ।

डहरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुठिला' ।

डहरी^२—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' । उ०—डहक संकर डहँ करे जोगण किलकाराँ ।—रघु० ६०, पृ० ४७ ।

डहारा^१—वि० [हि० डहना] डहनेवाला । तंग करनेवाला । कष्ट पहुँचानेवाला । उ०—फोरहि सिल जोड़ा मदन लागे डहक पहार । कथर कूर कपूत कलि घर घर सहस डहार ।—तुलसी (शब्द०) ।

डहोली—वि० स्त्री० [हि० डाह + ली (प्रत्य०)] डाह पैदा करनेवाली । उ०—पग द्वे चलति ठठकि रहै ठाढी मोन धरै हरि के रस गोली । धरनी नख चरननि कुरवारति, सीतिनि भाग सुहाग डहोली ।—सूर० १०।१७७२ ।

डहु, डहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्षविशेष । लकुच । २. बड़हर ।

डहोला^१—संज्ञा पुं० [देश०] हलचल । उपद्रव । भय । उ०—महा डहोली मेदनी विसतरियो तिणु वार । साह तपस्या भगलो भकबर सेणु धपार ।—रा० ६०, पृ० ६६ ।

डांकुति—संज्ञा स्त्री० [सं० डाङ्कुति] घटी आदि बजने की छ्वनि [को] ।

डाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० डा] डाकिनी । डाइन ।

डाँक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दमक, दजक अथवा देश०] तबिया चाँदी का बहुत पतला कागज की तरह का पत्तर ।

विशेष—देशी डाँक चाँदी की होती है जिसे घोटकर नगीनों के नीचे बेटाते हैं । अब तबिया के पत्तर की विदेशी डाँक भी बहुत धाती है जिसके पोल धोर चमकीले टुकड़े काटकर स्त्रियों की टिकली, कपड़ों पर टाँकने की चमकी आँख बनती हैं । डाँक घोटने की सान ८-९ अंगुल लंबी और ३-४ अंगुल चौड़ी पट्टी होती है जिसपर डाँक रखकर चमकाने के लिये घोटते हैं ।

डाँका^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँकना] कै । दमन । उलटी ।

क्रि० प्र०—होना ।

डाँका^३—संज्ञा पुं० [हि० डंका] नगाडा । दे० 'डंका' । उ०—दान डाँक बाजै दरबारा । कीरति गई समुंदर पारा ।—जायसी (शब्द०) ।

डाँक^४—संज्ञा पुं० [हि० डक] विप्लव जंतुओं के काटने का डक । धार । उ०—जे तब होत दिखाइखी भई धभी इक भाँक । दये नीरछो डोठि अब हँ वीछो को डाँक ।—विहारी (शब्द०) ।

डाँकना^१—क्रि० प्र० [सं० तक (= चलना)] १. कुदकर पार करना । लपटना । फाँटना । २. पार कर जाना । लप जाना । उ०—अजगर उड़ा सिखर को डाँका, गण्डू धकित होय वैसा ।—दरिया० जानी पृ० ५६ । २. बमन करना । उलटी करना । ३. जोर से पुकारना । आवाज देना ।

डाँकिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी' । उ०—परहु नरक, फलचारि सिनु, मीच डाँकिनी खाउ ।—तुलसी ४०, पृ० ११० ।

डाँगा^१—संज्ञा पुं० [सं० डङ्क (= पहाड़ का किनारा और चोटी)] १. पहाड़ी । जंगल । बन । २. पहाड़ की ऊँची चोटी ।

डाँग^२—संज्ञा पुं० [सं० दङ्क, हि० डागा] मोटे बाँस का डंडा । लट्ट ।

डाँगा^३—संज्ञा पुं० [हि० डाँकना] कुद । फलंग ।

डाँगा(पु)^४—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डंका' ।

डाँगर^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. चौपाया । डोर । गाय, भैंस आदि पशु । २. मरा हुआ चौपाया । (गाय, बैल आदि) चौपाए की लाश (पुरब) ।

मुहा०—डाँगर घसीटना = चमारों की तरह मरा हुआ चीयाया लींचकर ले जाना । अशुचि कर्म करना ।

१. एक नीच जाति का नाम ।

डाँगर^२—वि० १. दुबला पतला । जिसकी हड्डी हड्डी निकली हो ।
२. मूर्ख । जड़ । गायत्री ।

डाँगा—संज्ञा पु० [सं० दण्डक] १. जहाज के मस्तूल में रस्सियों को फँसाने के लिये घाड़ी लगी हुई धरन । २. लंगड़ के बीच का मोटा डंडा । (लण०) ।

डाँट—संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ति (= दमन, वश) या सं० दण्ड] १. शासन । वश । दाव । दबाव । जैसे,—(क) इस लड़के को डाँट में रखो । (ख) इन लड़के पर किसी ही डाँट नहीं है ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।—मानना ।—रखना ।

मुहा०—डाँट में रखना = पामन में रखना । वश में रखना । किसी पर डाँट रखना = किसी पर शासन या दबाव रखना । डाँट पर = पालकी के कहारों की एक बोली । (जब तंग और ऊँचा नीचा रास्ता भागे होता है तब भगला कहार कुछ बचकर चलने के लिये कहता है 'डाँट पर') ।

२. डराने के लिये क्रोधपूर्वक कर्कश स्वर में कहा हुआ शब्द । घुड़की । उपट ।

क्रि० प्र०—बताना ।

डाँटना^१—क्रि० म० [हि० डाँट + ना (प्रत्य०) अथवा सं० दण्डन] १. डराने के लिये क्रोधपूर्वक कड़े मार में खोलना । घुड़कना । उपटना । उ०—(क) जैसे मोन किलकिना दरसन, ऐसे रही प्रभु डाँटत । पुनि पाछें अर्धनिष्ठु बदन है सूर खाल किन राटत । —सूर०, १। १०७ । (ख) जानै ब्रह्म सो विप्रवर धाँखि दिखानहि डाँटि ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) मोई इहाँ जँवरी बाँधे, जननि साँटि ले डाँटि ।—सूर०, १०। ३४६ ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. ठाठ से वस्त्र आदि पहनना । दे० 'डाटना'-६ । उ०—चाकर भी वर्षी डाँटि है ।—फिसाना०, मः० ३, पृ० ३६ ।

डाँठी—संज्ञा पु० [सं० दण्ड] डंठल ।

डाँड़—संज्ञा पु० [सं० दण्ड, प्रा० डड] १. सीधी लकड़ी । डंडा । २. गधका । उ०—सीसत चरकी डाँड़ विविध लकड़ी के शिवन ।—प्रेमधन०, भा० १, पृ० ३८ ।

यो०—डाँड़ पटा = (१) फगी गतका । (२) गतके का खेल ।

१. नाव खेने का लंबा बल्ला या डंडा । चप्पू ।

क्रि० प्र०—खेना ।—चलाना ।—मारना ।—भरना ।—(लण०) ।

४. अंकुश का हस्ता । ५. जुलाहों की वह पोली लकड़ी जिससे ऊरी फँसाई रहती है । ६. सीधी लकड़ी । ७. रोड़ की हड्डी । ८. ऊँची उठी हुई तंग जमीन जो दूर तक लकीर की तरह चली गई हो । ऊँची मेंड़ ।

मुहा०—डाँड़ मारना = मेंड़ उठाना ।

१. रोक, धाड़ आदि के लिये उठाई हुई कम ऊँची सीवार । १०. ऊँचा स्थान । छोटा भीटा या टीला । उ०—सो कर खे पंडा

छिति गाड़े । उपज्यो द्रुत द्रुम इक तेहि डाँड़े ।—रघुराज (शब्द०) । ११. दो खेतों के बीच की सीमा पर की कुछ ऊँची जमीन जो कुछ दूर तक लकीर की तरह गई हो और जिसपर लोग घाने जाते हो । मेंड़ ।

क्रि० प्र०—डाँड़ मारना = मेंड़ बनाना । सीमा या हदबंदी करना ।

यो०—डाँड़ मेंड़ = दे० 'डाँड़मेंड़' ।

१२. समुद्र का डालुघाँ रेतीला किनारा । १३. सीमा । हद । जैसे, गाँव का डाँड़ा । १४. वह मैदान जिसमें का जंगल कट गया हो । १५. अर्यवंड । किसी अपराध के कारण अपराधी से लिया जानेवाला धन । जुरमाना ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

१६. वह वस्तु या धन जिसे कोई मनुष्य दूसरे से अपनी किसी वस्तु के नष्ट हो जाने या खो जाने पर ले । नुकसान का बदला । हरजाना ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

१७. लंबाई नापने का माप । कट्टा । बीस ।

डाँड़ना—क्रि० सं० [हि० डाँड़ + ना (प्रत्य०) ; या सं० दण्डन] अर्थदंड देना । जुरमाना करना । उ०—(क) उदधि अपार अनरसहूँ न लागी बार केगरीकुमार सो भदड ऐसो डाँड़िगो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) पडा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा । का निबित मगटी के मझि ।—जायसी (शब्द०) ।

डाँड़र—संज्ञा पु० [हि० डाँड़] बाजरे के डंठल का गढ़ा हुआ भाग जो फसल कट जाने पर भी खेतों में पड़ा रहता है । बाजरे की सूँटी ।

डाँड़ा—संज्ञा पु० [हि० डाँड़] १. छड़ । डंडा । २. गतका । उ०—बज्र की साँग बज्र का डाँड़ा । उठी प्राणि तन बाँजे लाँडा ।—जायसी (शब्द०) । ३. नाव खेने का डाँड़ । ४. समुद्र का डालुघाँ रेतीला किनारा (लण०) । ५. हद । सीमा । मेंड़ ।

यो०—डाँड़ा मेंड़ा । डाँड़ा मेंड़ी ।

मुहा०—होमी का डाँड़ा = लकड़ी, घास घूम आदि का ढेर जो वसंत पंचमी के दिन से होली जलाने के लिये इकट्ठा किया जाने लगता है ।

डाँड़ामेंड़ा—संज्ञा पु० [हि० डाँड़ + मेंड़] १. एक ही डाँड़ या सीमा का अंतर । परस्पर अत्यंत सामीप्य । लगाव । २. मनबन । भगड़ा ।

क्रि० प्र०—रहना ।

डाँड़ामेंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डाँड़ामेंड़ा' ।

डाँड़ाशहेल—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का माँव जो बंगाल में होता है ।

डाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँड़ा] १. लंबी पतली लकड़ी । २. हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली वस्तु वा वह लंबा पतला भाग जो हाथ में बिया या पकड़ा जाता है । लंबा हस्ता या दस्ता । जैसे, करछी की डाँड़ी । उ०—हरि हू की आरती बनी । प्रति विविध रचना रवि राखी परति न गिरा बनी ।

कच्छप घघ घामन घनूप घति, डाँडी शेष फनी।—सूर (शब्द०)। ३. तराजू की वह सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटकाकर पलके बाँधे जाते हैं। डंडी। उ०—साईं मेरा बानिया सहज करें व्यवहार। बिन डाँड़ी बिन पालके तोलै मब संसार।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—डाँड़ी मारना = सीधा देने में कम तोलना। डाँड़ी सुभीते से रहना = बाजारभाव अनुकूल होना। उ०—भगवान कहीं गों से बरखा कर वे धीर डाँड़ी भी सुभीते से रहे तो एक गाय जरूर लेगा।—गोदान, पृ० ३०।

४. टहनी। पतली शाखा। ५. वह मंवा डठल जिसमें फूल या फल लगा होता है। नाल। उ०—तेहि डाँड़ी सह कमलहि तोरी। एक कमल की दूनी जोरी।—जायसी (शब्द०)। ६. छिड़ोले में लगी हुई वे चार सीधी लकड़ियाँ या डोरी की लड़ें जिनसे लगी हुई बैठने की पटरी लटकती रहती है। उ०—पट्टी लगे नग नाग बहुरंग बनी डाँड़ी चारि। भोरा भवे भजि केलि भूले नवल नागर नारि।—सूर (शब्द०)। ७. जुलाहों की वह लकड़ी जो चरखी की धवनी में डाली जाती है। ८. शहनाई की लकड़ी जिसके नीचे पीतल का घेरा होता है। ९. घनवट नामक गहने का वह भाग जो दूसरी धीर तीसरी डंगली के नीचे इसलिये निकाला रहता है जिसमें घनवट घूम न सके। १०. डाँड़ खेनेवाला घादमी (लश०)। ११. मटुर या सूत घादमी (लश०)। १२. सीधी लकीर। लकीर। रेखा।

क्रि० प्र०—खीचना।

१३. लोक। मर्यादा। १४. सीमा। हब। उ०—डरे लोग वन डाँड़ियाँ, सूते ही सादूल। जे सूते ही जागता, सबलाई माथा सूल।—बाँकी० प्र०, भा० १ पृ० २४। १५. चिड़ियों के बैठने का अड्डा। १६. फूल के नीचे का संडा पतला भाग। १७. पालकी के दोनों धोर निकले हुए लंबे डंडे जिन्हें कहार कंधे पर रखते हैं। १७. पालकी। १८. डंडे में बंधी हुई भोली के आकार की एक सवारी जो ऊँचे पहाड़ी पर चलती है। भाषाण।

डाँदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाघ, प्रा० डु, हि० डाड़ा + री (प्रत्य०)] भूनी हुई मटर की फली।

डाँबू—संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का नरकट जो दलदल में उत्पन्न होता है।

डाँभा—संज्ञा पु० [सं० दाह, प्रा० गह, या सं० दाघ, प्रा० डडु, या हि० दागना] १. जलने का दाग। दाग। २. जलने से उत्पन्न पीड़ा या कष्ट। उ०—बाँधवें बहरी छाहड़ी, नीरू नागर बेल। जाम संभाहूँ करहला, चोपाड़िधूँ चपेल।—दोल०, पृ० ३२०।

डाँवरा—संज्ञा पु० [सं० डिम्ब] [स्त्री० डाँवरी] लड़का। बेटा। पुत्र।

डाँवरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँवरा] लड़की। बेटि। उ०—(क) कचन मन रतन जड़ित रामचंद्र पाँवरी। दाहिन सो राम जाम जनक राय डाँवरी।—देवस्वामी (शब्द०)। (ख)

बाहिर पीरि न दीजिए पाँवरी बाउरी होय सो डाँवरी डोले।—देव (शब्द०)। दे० 'डावरी'।

डाँवरी—संज्ञा पु० [सं० डिम्ब] बाघ का बच्चा।

डाँवाडोल—वि० [हि० डोलना] इधर उधर हिलता डोलता हुआ। एक स्थिति पर न रहनेवाला। चंचल। विचलित। अस्थिर। जैसे, चित्त डाँवाडोल होवा।

डाँवी—क्रि० वि० [प्रा० डाव, गुज० डावो] बाईं ओर। बाईं तरफ। उ०—डाँवी साँड़ तड़कतो जाई।—बी० रासो, पृ० ६०।

डाँशापाहिड़—संज्ञा पु० [दे०] संगीत में रुदतात के ग्यारह भेदों में से एक जिसमें पाँच आघात के पश्चात् एक शून्य (खाली) होता है।

डाँस—संज्ञा पु० [सं० दंश] १. बड़ा मच्छड़। दंश। २. एक प्रकार की मक्खी जो पशुओं को बहुत दुःख देती है। उ०—जरा बछड़े को देखता हूँ...बेचारे को डाँस परेशान कर रहे हैं।—नई०, पृ० ३०। ३. कुकरोँछी।

डाँसरा—संज्ञा पु० [दे०] हमली का बीज। चिन्ना।

डाँ—संज्ञा पु० [अनु०] सितार की गत का एक बोल। जैसे—डा डिङ्ग डा डा डा डा डा।

डाँ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डाकनी। २. टोकरो जो ठोकर ले जाई जाय (को०)।

डाइचा—संज्ञा पु० [सं० दाघ] दे० 'दायजा'। उ०—डाइचो दिद दाहिन दुहम, भुज भुजग कीरति करे।—पृ० २०, १६, १५।

डाइन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकनी] १. भूतनी। चुईल। राखसी। उ०—भोभा डाइन डर से डरपें।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८। २. टोनहाई। वह स्त्री जिसकी दृष्टि प्रादि के प्रभाव से बच्चे मर जाते हैं। ३. कुकपा धीर डरावनी स्त्री।

डाइनामाइट—संज्ञा पु० [सं०] एक विस्फोटक पदार्थ का नाम।

डाइनिंग रूम—संज्ञा पु० [अंग०] भोजन कक्ष। उ०—भाभी ने हम लोगों को डाइनिंग रूम में बुलाया।—जिप्सी, पृ० ४२३।

डाइबोटी—संज्ञा पु० [अंग० डाइबिटीज] बहुमूल्य रोग। मधुमेह।

डाइरेक्टर—संज्ञा पु० [अंग०] १. प्रबंध चलानेवाला। कार्यसंचालक। निर्देशक। निदेशक। मुतजिम। इंतजाम करनेवाला। २. मशीन में वह पुरषा जिसकी क्रिया से गति उत्पन्न होती है।

डाइरेक्टरी—संज्ञा स्त्री० [अंग०] वह पुस्तक जिसमें किसी नगर वा देश के मुख्य निवासियों या व्यापारियों आदि की सूची अक्षर क्रम से हो।

डाइवोर्स—संज्ञा पु० [अंग०] तलाक। पति पत्नी का संबंधविच्छेद।

डाई—संज्ञा पु० [अंग०] १. पासा। २. ठप्पा। साँचा। ३. रंग।

डाईप्रेस—संज्ञा पु० [अंग०] ठप्पा उठाने की कल। उभरे हुए अक्षर उठाने की कल जिससे मोनोग्राम आदि छपते हैं।

डाक'—संज्ञा पु० [हि० उडाँक या उडाँक या डाँकना (= फाँदना)] १. सवारी का ऐसा प्रबंध जिसमें एक एक टिकाव पर बराबर जानवर आदि बद्धे जाते हैं। छोटे पाकी आदि का जगह जगह इंतजाम।

मुहा०—डाक बैठाना = शीघ्र यात्रा के लिये स्थान स्थान पर सवारी बदलने की चोकी नियत करना। डाक लगाना = शीघ्र संवाद पहुँचाने या यात्रा करने के लिये मार्ग में स्थान स्थान पर भावमियों या सवारियों का प्रबंध रहना। डाक लगाना = दे० 'डाक बैठाना'।

यौ०—डाक चोकी = मार्ग में वह स्थान जहाँ यात्रा के छोड़े बदले जायें या एक हरकारा दूसरे हरकारे को चिट्ठियों का पैना दे। उ०—पाछे राजा ने द्वारिका सौ मेरता सौ डाक चोकी बेटारि दीनी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २४६।

२. राज्य की ओर से चिट्ठियों के आने जाने की व्यवस्था। वह सरकारी इंतजाम जिसके मुताबिक सत एक जगह से दूसरी जगह बराबर आते जाते हैं। जैसे, डाक का मुहकमा। उ०—यह चिट्ठी डाक में भेजेंगे, नौकर के हाथ नहीं।

यौ०—डाकखाना। डाकगाड़ी।

३. चिट्ठी पत्री। कागज पत्र प्रादि जो डाक से जाये। डाक से आनेवाली वस्तु। जैसे,—तुम्हारी डाक रखी है, ले लेना।

डाक^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] बमन। उलटी। के।

क्रि० प्र०—होना।

डाक^३—संज्ञा पुं० [धं० डाँक] समुद्र के किनारे जहाज ठहरने का वह स्थान जहाँ मुसाफिर या माल चढ़ाने उतारने के लिये बाँध या चबूतरे प्रादि बने होते हैं।

डाक^४—संज्ञा पुं० [बंग० डाकवा (= चिल्लाना)] नीलाम की बोली। नीलाम की वस्तु लेनेवालों की पुकार जिसके द्वारा वे बाम लगाते हैं।

डाकखाना—संज्ञा पुं० [हि० डाक + खाना] वह स्थान या सरकारी दफ्तर जहाँ लोग भिन्न भिन्न स्थानों पर भेजने के लिये चिट्ठी पत्री प्रादि छोड़ते हैं और जहाँ से भाई हुई चिट्ठियाँ लोगों को बाँटी जाती हैं।

डाकगाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाक + गाड़ी] वह रेलगाड़ी जिसपर चिट्ठी पत्री प्रादि भेजने का सरकार की तरफ से इंतजाम हो। डाक से जानेवाली रेलगाड़ी जो और गाड़ियों से तेज चलती है।

डाकघर—संज्ञा पुं० [हि० डाक + घर] दे० 'डाकखाना'।

डाकनवाला—संज्ञा पुं० [हि० डाकना + वाला (प्रत्य०)] पुकारनेवाला। बुलानेवाला। प्रियतम। उ०—जब डाकनवाले चढ़पो सिर पे तब, लाज कहा सर के चढ़िबे की।—नट०, पृ० ५४।

डाकना^१—क्रि० प्र० [हि० डाक] के करना। बमन करना।

डाकना^२—क्रि० प्र० [हि० डाँक, डाँक + ना (प्रत्य०)] फाँटना। लाना। कुचकर पार करना। उ०—भूग हाथ बीस बग डाँक। एण हाथि उठै तब ताँकै।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १४१। (ब) सुंदर सूर न गासणा डाँकि पड़े रण माँहि। धाव सहे मुख समिही पीठि फिरावे माँहि।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३८।

संयो० क्रि०—जाना।

डाकबंगला—संज्ञा पुं० [हि० डाँक + बंगला] वह बंगला या मकान जो सरकार की ओर से परदेसियों के लिये बना हो।

विशेष—इस्ट इंडिया कंपनी के समय में इस प्रकार के बंगले स्थान स्थान पर बने थे। पहले जब रेल नहीं थी तब इन्हीं स्थानों पर डाक ली जाती और बदली जाती थी। अतः सवारियों का भी यहीं झुंडा रहता था जिससे मुसाफिरों को ठहरने प्रादि का सुबोता रहता था।

डाकमहसूल—संज्ञा पुं० [हि० डाक + प्र० महसूल] वह खर्च जो बीज को डाक द्वारा भेजने या भंगान में लगे। डाकभ्यय।

डाकमुंशो—संज्ञा पुं० [हि० डाक + फा० मुंशा] डाकघर का मफसर। पोस्टमास्टर।

डाकर—संज्ञा पुं० [देश०] तालों की वह मिट्टी जो पानी सूख जाने पर चिटखकर कड़ी हो जाती है।

डाकठग्य—संज्ञा स्त्री० [हि० डाक + सं० ठग्य] डाक का खर्च। डाक नहसूल।

डाका—संज्ञा पुं० [हि० डाकना (= कुटना) वा सं० दस्यु प्रथवा देश०] वह पाक्रमण जो धन हरण करने के लिये सहसा किया जाता है। माल प्रसबाव जबरदस्ती छीनने के लिये कई आदमियों का दल बाँधकर घावा। बटमारी।

मुहा०—डाका डालना = लुटने के लिये घावा करना। जबरदस्ती माल छीनने के लिये बल दोड़ना। डाका पड़ना = लुट के लिये पाक्रमण होना। जैसे,—उस रात पर गाँव डाका पड़ा। डाका मारना = जबरदस्ती माल लुटना। बलपूर्वक धन हरण करना।

डाकाजनी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाका + जनी] डाका मारने का काम। बटमारी।

डाकिन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनो] दे० 'डाकिनी'।

डाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक पिशाचो या देवी जो काशी के गणों में समझी जाती है। २ डाइन। चुईल।

डाकिया—संज्ञा पुं० [हि० डाक + इया (प्रत्य०)] डाक से भाई चिट्ठियाँ प्रादि लोगों के पास पहुँचानेवाला कर्मचारी।

डाकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डाक] बमन। के।

डाकी^२—संज्ञा पुं० १. बहुत खानेवाला। दे० २. डाकू। उ०—सुंदर वृष्णा डाइनी डाकी लोभ प्रचड। दोऊ काई भाँषि जब, कंषि उठै बहान्ड।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७१४।

डाकी^३—वि० मबल। प्रचड (डि०)।

डाकू—संज्ञा पुं० [हि० डाका + ऊ (प्रत्य०), वा सं० दस्यु] १. डाका डालनेवाला। जबरदस्ती लोगों का माल लुटनेवाला। लुटेरा। बटमार। २. अधिक खानेवाला। पेद।

डाकेट—संज्ञा पुं० [धं०] किसी बड़ी चिट्ठी या आज्ञापत्र प्रादि का साराण। चिट्ठी का खुलासा।

डाकोर—संज्ञा पुं० [सं० ठाकुर, हि० ठाकुर] ठाकुर। विष्णु भगवान् (गुजरात)।

डाक्टर—संज्ञा पुं० [प्रं०] १. प्राचार्य। अध्यापक। विद्वान्। २. वैद्य। चिकित्सक। हकीम।

डाकटरी—संज्ञा स्त्री० [धं० डाक्टर + ई (प्रत्य०)] १. चिकित्सा-शास्त्र । २. मोरप का चिकित्साशास्त्र । पाश्चात्य आयुर्वेद ।
३. डाक्टर का पेशा या काम । ४. वह परीक्षा जिसे पास करने पर प्रादमी डाक्टर होता है ।

डाकर—संज्ञा पुं० [धं० डाक्टर] दे० 'डाक्टर' ।

डाखी—संज्ञा पुं० [हिं० डाख] डाक । पलाश । उ०—तरवर भरहि भरहि बन डाखा । भई उपत फूल कर माखा ।—जायसी (शब्द०) ।

डाखिपी—संज्ञा पुं० [?] सूखा सिंह (हिं०) ।

डागरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] दे० 'डगर' ।

डागली—संज्ञा पुं० [देशी डंगर] गैल । पर्वत । उ०—जन दरिया इस झूठ की, टायल ऊपर दोड़ ।—दरिया० बानी, पृ० ३१

डागा—संज्ञा पुं० [सं० बगडक] नगाड़ा बजाने का डंका । चोब ।

डागुर—संज्ञा पुं० [देश०] जाटों की एक जाति । उ०—डागुर पछी-दरे धरि मरोर । बहु जट्ट ठट्ट बट्टे मजोर ।—सूदन (शब्द०) ।

डागुली—संज्ञा पुं० [देशी डगर, हिं० डागन] गैल । पर्वत । उ०—काहे की फिरत नर भटकत ठौर ठौर । डागुल की दौर देवी देव सब जानिए ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४७६ ।

डाचा—संज्ञा पुं० [सं० बंदू, प्रा डड्ड, या देश०] मुख । उ०—(क) छोह घणी ऊछन छरा, केहर फाई डाच ।—बिकी ग्रं०, भा० १, पृ० ११ । (ख) चलकाया रत खात मरे, डाचा पल भबले ।—रघु० क०, पृ० ४० ।

डाट—संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ति] १. वह वस्तु जो किसी बौझ को ठहराए रखने या किसी वस्तु को खड़ी रखने के लिये लगाई जाती है । टक । चाँड ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. वह कील या खूँटा जिसे ठोककर कोई छेद बंद किया जाय । छेद रोकने या बंद करने की वस्तु ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

३. बोलल, पीशी आदि का मुँह बंद करने की वस्तु । ठेंडी । काग । गट्टा ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—लगाना ।

४. मेहराब को रोके रखने के लिये ईंटों आदि की भरती । लदाव की रोक । लदाव का ढोला ।

डाट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डाट' ।

डाट—संज्ञा पुं० [धं०] नुकता । बिद् । उ०—इन कसबियों पर डाट लगाकर ।—प्रेमचन, भा० २, पृ० ४४५ ।

डाटना—क्रि० सं० [हिं० डाट] १. किसी वस्तु को किसी वस्तु पर रखकर जोर से ठकेना । एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कसकर दबाना । मिटाकर टलना । जैसे,—(क) इसे इस डंडे से डाटो तब पीछे खिभकेगा । (ख) हम डंडे को डाटे रहो तब तत्पर हजर न जुड़केगा ।

संदो० क्रि०—देना ।

२. किसी खंभे, डंडे आदि को, किसी बौझ या भारी वस्तु को ठहराए रखने के लिये उससे मिड़ाकर लगाना । टेकना ।

चाँड़ लगाना । ३. छेद या मुँह बंद करना । मुँह कसना । मुँह बंद करना । ठेंडी लगाना । ४. कसकर भरना । ठसकर भरना । कसकर घुसेड़ना । उ०—ज्ञान गोली वही खूब डाटी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६८ । ५. खूब पेट भर खाना । कस कर खाना । उ०—अपनित तरु फल सुगंध मधुर मिष्ट खाटे । मनसा करि प्रभुहि अपि भोजन को डाटे ।—सूर (शब्द०) । ६. ठाट से कपड़ा, गहना आदि पहनना । जैसे, कोट डाटना, घंगरखा डाटना । ७. मिडाना । डाटना । मिलाना । उ०—रंजन साध सुधै सुख की विन राधिके आधिक लोचन डाटे ।—केशव (शब्द०) ।

डाठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दुर्गमना । बुढ़ी आदत । उ०—अमुप्रा मयो करम की डाठी । जम कोई गहे धन की लाठी ।—चिन्ता०, पृ० २७ ।

डाड़ना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'डाड़ना', 'धाड़ना' ।

डाड़ना—क्रि० सं० [हिं० डाड़ना] डाड़ना ।

डाढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० दंष्ट्रा, प्रा० डड्ड] १. चबाने के चौड़े दाँत । चौभड । दाढ़ । उ०—हम दो दो कए नही बदेते । मिठाई आए तो डाढ़ तक गरम न हो । इतने में होता ही क्या है !—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७४ । २. बट आदि वृक्षों की शाखाओं से नीचे की ओर लटकी हुई जटाएँ । बरोह ।

डाढ़ना—क्रि० सं० [सं० दग्ध, प्रा० डट्ट + हिं० ना (प्रत्य०)] जलाना । भस्म करना । उ०—तुलसिदास जगदध जवास ज्यो मनध प्रागि लागे डाढ़न ।—तुलसी (शब्द०) ।

डाढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ड] १. दावानल । वन की आग । २. अग्नि । आग । उ०—रामकृष्ण कवि दन बल बाढ़ा । जिमि तून पाइ लागि अति डाढ़ा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

३. ताप । दाह । जलन ।

क्रि० प्र०—फूंकना ।

डाढार—संज्ञा पुं० [हिं० डाढ] फण । फन उ०—सेस सीस लचि भार टिढय डाढार कराकच ।—रसर०, पृ० १०४ ।

डाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध] दग्ध । पीड़ित । उ०—सखी संग की निरखति यह छवि भई व्याकुल समय की डाढ़ी ।—सूर०, १० । ७३९ ।

डाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [प्रा० डड्ड, हिं० डाढ़ + ई (प्रत्य०)] १. चेहरे पर घोंठ के नाच का गोल उभरा हुआ भंग । ठोड़ी । ठुड़ी । चिबुक । २. ठुड़ी और कनपटी पर के बाल । चिबुक और गडस्थल पर के लोम । दाढ़ी । उ०—दाढ़ी के रखेयन की डाढ़ी सी रहति छाती बाढ़ी मरजाद जस हृद हिंदुवान की ।—भूषण (शब्द०) ।

मुह०—डाढ़ी छोड़ना = डाढ़ी न मुँहवाना । डाढ़ी बढ़ाना । डाढ़ी का एक एक बाल करना = डाढ़ी उखाड़ लेना । असमानित करना । दुर्दशा करना । डाढ़ी को कलप लगाना = बूढ़े प्रादमी को कलंक लगाना । श्रेष्ठ और बुद्ध को दोष लगाना । पेट में डाढ़ी होना = छोटी ही अवस्था में बड़ों की सी जानकारी प्रकट करना या बातें करना । पेशाब से डाढ़ी मुड़वाना = अत्यंत

अपमान करना। अप्रतिष्ठा करना। दुर्गति करना। डाढ़ी फटकारना = (१) हाथ से डाढ़ी के बालों को फटकारना। (२) संतोष और उत्साह प्रकट करना। डाढ़ी रखना = डाढ़ी के बाह्य न मुड़वाना। डाढ़ी बढने देना।

डाढ़ीजारी—संज्ञा पुं० [हि०] डाढ़ीजार। उ०—अमिरती देवी ने पूछा—कोन है डाढ़ीजार, इतनी रात को जगावत है?—मान०, भा० ५, पृ० २३।

डाब्—संज्ञा स्त्री० [सं० दम्भ] १. डाभ नाम की घास। २. कच्चा नारियल। ३. परतला।

डाभक—वि० [अनु०] दे० 'डाभक'।

डाबर^१—संज्ञा पुं० [सं० दध्र (= समुद्र या भील)] १. नीची जमीन। गहरी भूमि जहाँ पानी ठहरा रहे। २. गड़ही। पोखरी। तलेया। गड़हा जिसमें बरसाती पानी जमा रहता है। उ०—(क) सुरसर सुभग बनज वनचारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सो मैं बरनि कहौ विधि केहीं। डाबर कमठ की मंजर लेहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३. हाथ धोने का पात्र। निलमची। ४. मैला पानी।

डाघर^२—वि० मटमैला। गदला। कीचड़ मिला। उ०—भूमि परत भा डाघर पानी।—तुलसी (शब्द०)।

डाबा—संज्ञा पुं० [हि० डब्बा] दे० 'डब्बा'। उ०—संघ सहित धूमन के डाबा। अमल अरध भाजन छवि छावा।—पद्माकर (शब्द०)।

डाबी—संज्ञा स्त्री० [सं० दम्भ] कटी हुई घास वा फसल का पुला।

डाभ—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ] १. कुश वी जाति की एक घास जो प्रायः रेह मिली हुई ऊसर जमीन में अधिक होती है। एक प्रकार का कुश। २. कुश। उ०—अलक डाभ, तिल गाल यों अंसुवन की परबाह। नीदहि देत तिलाजली, मैना तुम बिनु नाह।—मुबारक (शब्द०)। २. घाम का मीर। घाम की मंजरी। उ०—जउ लहि घामहि डाभ न होई। तउ लहि सुगंध बसाय न सोई।—जायसी (शब्द०)। ४. कच्चा नारियल।

डाभक—वि० [अनु० डभक डभक] कुएँ में तुरंत का निकला हुआ। ताजा (पानी)। जैसे, डाभक पानी।

डाभर^३—संज्ञा पुं० [सं० दध्र] दे० 'डाबर'।

डामचा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में खड़ा किया हुआ वह मकान जिसपर से खेत की खेती करके हैं। मैड़ा। माचा।

डामर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिवकथित माना जानेवाला एक तन्त्र जिसके छह भेद किए गए हैं—योग डामर, निब डामर, दुर्गा डामर, सारस्वत डामर, ब्रह्म डामर और गधर्व डामर। २. हलचल। धूम। ३. घाड़घर। ठाटबाट। ४. चमत्कार। ५. दुर्ग के शुभाशुभ जानने के लिये बनाए जानेवाले चक्रों में से एक। ६. क्षेत्रपाल। ४६ भेदों में से एक। ७. एक मिथित या संकर जाति।

डामर^४—संज्ञा पुं० [देश०] १. साल वृक्ष का गोंद। राख। २. एक

प्रकार का गोंद या कहरुपा जो दक्षिण में पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर होनेवाले एक पेड़ से निकलता है और सफेद डामर कहलाता है। दे० 'कहरुपा'। ३. कहरुपा की तरह का एक प्रकार का लसीला राल या गोद जो छोटी मधुमक्खियों के छसे से निकलता है। ४. वह छोटी मधुमक्खी जो इस प्रकार का राल बनाती है। ५. दे० 'डामल'।

डामरी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्ब] दे० 'डायरी'। उ०—उन पानि गहो हुतो मेरो जबै सबै गाय उठी बज डामरियाँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८८।

डामल^५—संज्ञा स्त्री० [अ० डायमुल्डम्] १. जनम कैद। उम्र भर के लिये कैद। २. देशनिकास का दंड।

विशेष—भारतवर्ष में अंगरेजी सरकार भारी भारी अपराधियों को अंडमन टापू में भेजा करती थी। उसी को डामल कहते थे।

डामल^६—संज्ञा पुं० [अ० डायमंड] दे० 'डायमंड कट'।

यौ०—डामल कट। डामल काट।

क्रि० प्र०—छीलना।

डामला^७—संज्ञा पुं० [देश०] अलकतरा। तारकोन। उ०—इस डंडे के पीछे ईश्वर भर मोटा डामल का पलस्तर था जो आल या सील को रोकता था।—हिंदू सभ्यता, पृ० १७।

डामाडोल—वि० [हि०] दे० 'डायमंडोल'।

डामिल^८—संज्ञा पुं० [हि० डामल] दे० 'डामल'। उ०—कैतने गुंटे डामिल गएन, कैतने पाएन फंसिया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४३।

डायँ डायँ—क्रि० वि० [अनु०] व्यर्थ दधर से उधर (घूमना)। कार्यं भूल खानते हुए। जैसे,—वह यों ही दिन भर डायँ डायँ फिरा करता है।

डायट—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. व्यवस्थापिका सभा। राज्यसभा। जैसे, प्राधान की इंपीरियल डायट। २. पथ। ३. भोजन। साध पदार्थ।

डायन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी, प्रा० डाइणी] १. डाकिनी। पिशाचिनी। चुड़ैल। भूति। २. कुरूप स्त्री।

डायनामो—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का छोटा एजिन जिससे बिजली पैदा की जाती है।

डायरिया—संज्ञा पुं० [अ०] दस्त की बीमारी। प्रतिसार।

डायल—संज्ञा पुं० [अ०] १. घड़ी के सामने का वह गोल भाग जिसके ऊपर अंक बने होते हैं और सुइयाँ घूमती हैं। घड़ी का चेहरा। २. पहिए का टेढ़ा हो जाना (विशेषतः साइकिल आदि का)। अपनी जगह पर ठीक न बैठना।

डायलाग—संज्ञा पुं० [अ० डायलॉग] संवाद। कथोपकथन। वार्तालाप। उ०—अबकी दफे अपना डायलाग अच्छी तरह याद कर लो।—आकाश०, पृ० १४२।

डायस—संज्ञा पुं० [अ०] वह ऊँचा स्थान या चतुर्तरा जिसपर किसी सभा के सभापति का आसन रखा जाता है। मंच।

डायमंड कट—संज्ञा पुं० [अ०] गहनों की धातु की इस प्रकार छीबना

जिसमें हीरे की सी चमक पैदा हो जाय । हीरे की सी काट ।
ढामल काट ।

ढायार्की—संज्ञा स्त्री० [प्र०] वह शासनप्रणाली या सरकार जिसमें शासन अधिकार दो व्यक्तियों के हाथों में हो । द्वैष शासन । दुहृषा शासन ।

विशेष—भारत में सन् १९१९ ई० के गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट के अनुसार प्रादेशिक शासनप्रणाली इसी प्रकार की कर दी गई थी । शासन के सुभीने के लिये प्रदेशों से संबंध रखनेवाले विषय दो भागों में बाँट दिए गए थे । एक रिजर्व या रक्षित विषय जो गवर्नर और उनकी शासन-सभा के अधिकार में था, और दूसरा ट्रांसफर या हस्तांतरित विषय, जो मिनिस्टर्स या मंत्रियों के अधिकार में (जो निर्वाचित सदस्यों में से चुने जाते हैं) था । 'रक्षित विषयों' की सुव्यवस्था के लिये गवर्नर और उनकी शासन-सभा भारत सरकार और भारत सचिव द्वारा प्रत्यक्ष रूप से पार्लमेंट प्रथम ब्रिटिश मतदाताओं के सामने उत्तरदाता थी और हस्तांतरित विषयों के लिये गवर्नर के मंत्री प्रत्यक्ष रूप से भारतीय मतदाताओं के सामने उत्तरदायी थे । यद्यपि विशेष व्यवस्थाओं में इनके मत के विरुद्ध कार्य करने का गवर्नर को अधिकार था, परंतु शासनसभा के बहुमत के विरुद्ध गवर्नर प्राथम्य नहीं कर सकता था । शासनसभा के सदस्यों और मंत्रियों में एक अंतर यह भी था कि वे सम्राट के आज्ञापत्र द्वारा नियुक्त होते थे, परंतु मंत्री को नियुक्त करने और हटाने का अधिकार गवर्नर को ही था । मंत्री का वेतन निर्दिष्ट करने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को था ।—भारतीय शासनपद्धति ।

ढार^१—संज्ञा संज्ञा [सं० ढार (= लकड़ी)] १. ढाल । शाखा । उ०—(क) रत्नजटिन कंकन बाणसुंद गगन मुद्रिका सोई । ढार ढार मनु मदन विटप तरु विकस्य देखि मन मोहै ।—पुर (शब्द०) । (ख) जिन दिन देखे थे कुसुम गई सो बीच बहार । अब मलि रही गुलाब में अवन कटीली ढार ।—बिहारी (शब्द०) । फामूस जलाने के लिये दीवार में लगाने की खूँटी ।

ढार^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ढलक] डलिया । चंगेरी । डाली । उ०—बली पालन सद्य गोहूँ फूल ढार लेह हाथ । बिम्बुनाथ कह पूजा पटुमावति के साथ ।—जायसी (शब्द०) ।

ढार^३—संज्ञा स्त्री० [सं० ढार (= मुँड)] गमूहा । झुंड ।

ढारना^१—क्रि० सं० [हि० ढालना] १. 'ढालना' । उ०—(क) जिन्हे जन्म ढारा है तुज कूँ । बिमर गया धनका ध्यान तू ।—बकिनी०, पृ० १५ । (ख) खूँव ढारी धरनि सरन जब पूरि ढारे चूर करि ढारे सुख बिरही तियान के ।—ठाकुर०, पृ० ११ ।

ढागा—संज्ञा पु० [हि० ढालना (= फैलना)] कपड़ा गुलाने के लिये बँधी रस्मी या बाँस । धरगनी ।

ढारियास—संज्ञा पु० [देश०] बाबून बंदर की एक जाति ।

ढारी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढार] १. 'ढार', 'ढाल' ।

ढाल^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ढार (= लकड़ी), हि० ढार] १. पेड़ के बड़ से इधर उधर निकली हुई वह लंबी लकड़ी जिसमें पत्तियाँ और कल्ले होते हैं । शाख । शाखा ।

मुहा०—ढाल का टूटा = (१) ढाल से पककर गिरा हुआ ताजा (फल) । (२) बढ़िया । मनोहा । चोखा । जैसे,—तुम्हीं एक ढाल के टूटे हो जो सब कुछ तुम्हीं को दिया जाय । (३) नया आया हुआ । नवान्तुक । ढाल का पका = पेड़ ही में पका हुआ । ढालवाला = बंदर । शाखापुंग ।

२. फामूस जलाने के लिये दीवार में लगी हुई एक प्रकार की खूँटी । ३. तलवार का फल । तलवार के भूठ के ऊपर का मुख्य भाग । ४. एक प्रकार का गहना जो मध्यभारत और मारवाड़ में पहना जाता है ।

ढाल—संज्ञा स्त्री० [सं० ढलक, हि० ढला] १. डलिया । चंगेरी । २. फूल, फल या खाने पीने की वस्तु जो डलिया में सजाकर किसी के यहाँ भेजी जाय । ३. कपड़ा और गहना जो एक डलिया में रखकर विवाह के समय वर की ओर से बधू को दिया जाता है ।

ढालना—क्रि० सं० [सं० तलन (= नीचे रखना)] १. पकड़ी या ठहरी हुई वस्तु को इस प्रकार छोड़ देना कि वह नीचे गिर पड़े । नीचे गिराना । छोड़ना । फेंकना । गेरना । जैसे,—ऐसी चीज क्यों हाथ में लिए हो ? उधर ढाल दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—ढाल रखना = (१) किसी वस्तु को रख छोड़ना । (२) किसी काम को लेकर उसमें हाथ न लगाना । रोक रखना । ढेर लगाना । झुनाना ।

२. एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कुछ दूर से गिराना । छोड़ना । जैसे, हाथ पर पानी ढालना, धूँक पर राख ढालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

३. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में रखने, ठहराने या मिलाने के लिये उसमें गिराना । किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह उसमें ठहर या मिल जाय । स्थित या मिश्रित करना । रखना या मिलाना । जैसे, घड़े में पानी ढालना, दूध में चीनी ढालना, दाल में धी ढालना, चूल्ह में लक ढालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

४. गुलाना । घुसेड़ना । प्रविष्ट करना । भीतर कर देना या ले जाना । जैसे, पानी में हाथ ढालना, कुएँ में डोल ढालना, बिल या मुँह में हाथ ढालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. परित्याग करना । छोड़ना । खोज खबर न लेना । भुला देना । उ०—केहि अब भीगुन आपनो करि ढारि दिया रे ।—तुलसी (शब्द०) । ६. प्रकित करना । लगाना । बिह्वित करना । जैसे, लकीर ढालना, चित्त ढालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

७. एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु इस प्रकार फैलाना जिसमें

बहु कुछ ठक जाय । फैलाकर रखना । जैसे, झूठ पर चादर डालना, मेज पर कपड़ा डालना, सूखने के लिये गोखी धोती डालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

९. शरीर पर धारण करना । पहनना । जैसे, अंगरखा डालना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

१०. किसी के मत्थे छोड़ना । जिम्मे करना । भार देना । जैसे,—
(क) तुम सब काम मेरे ही ऊपर डाल देते हो । (ख) उसका सारा खर्च मेरे ऊपर डाल दिया गया है ।

संयो०—क्रि०—देना ।

११. गर्भपात करना । पेट गिराना । (बीपायों के लिये) ।

संयो० क्रि०—देना ।

१२. (किसी स्त्री को) रख लेना । पत्नी की तरह रखना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

१३. लगाना । उपयोग करना । जैसे, किसी व्यापार में रुपया डालना । १४. किसी के अंतर्गत करना । किसी विषय या वस्तु के भीतर लेना । जैसे,—यह रुपया व्याह के खर्च में डाल दो । १५. अव्यवस्था प्रादि उपस्थित करना । बुरी बात घटित करना । मचाना । जैसे,—गड़बड़ डालना, आपत्ति डालना, विपत्ति डालना । १६. बिछाना । जैसे, खडिया डालना, पलंग डालना, चारा डालना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में भी, समाप्ति की ध्वनि व्यंजित करने के लिये, सकर्मक क्रियाओं के साथ होता है, जैसे, मार डालना, कर डालना, काट डालना, जला डालना, दे डालना, प्रादि ।

शालफिन—संज्ञा स्त्री० [सं०] हेल मछली का एक भेद ।

डालर—संज्ञा पुं० [सं०] अमेरिका का सिक्का । यह १०० सेंट या टके का होता है । रुपयों में इसका मूल्य विनिमय दर के आधार पर सदा बदलता रहता है । कभी एक डालर तीन रुपए हो जाने के बराबर था । संप्रति उसकी दर भारतीय रुपयों में लगभग ४.८७ न. पैसे है ।

डाल्ला—संज्ञा पुं० [सं० डलक] दे० 'डला', 'डाल' ।

डालिम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दाहिम' [स्त्री०] ।

डाली—संज्ञा स्त्री० [हि० डाला] १. डलिया । चंगेरी । २. फल फूल, मेवे तथा खाने पीने की वस्तुएँ जो डलिया में सजाकर किसी के पास सम्मानार्थ भेजी जाती हैं । जैसे,—बड़े दिन में साहूब लोगों के पास बहुत सी डालियाँ जाती हैं ।

क्रि० प्र०—भेजना ।

मुहा०—डाली लगाना = डलिया में मेवे प्रादि सजाकर भेजना ।

डाली—संज्ञा स्त्री० [हि० डाल] दे० 'डाल' ।

डाब(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दाब' ।—उ०—पाका काबा हूँ गया, जीत्या हारे डाब । अंत काल गाफिल अया, दाबु किसके पास ।—दाबु०, पृ० २१२ ।

४-३७

डाबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] पिठवन ।

डाबड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डावरा' ।

डाबड़ी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'डावरी' ।

डावरा—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब ?] [स्त्री० डावरी] लड़का । बेटा ।

उ०—वधरथ को डावरो सावरो ब्याहे जनककुमारी ।—
रघुराज (शब्द०) ।

डावरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डावरा] लड़की । बेटा । कन्या । उ०—

(क) ठाढ़े मए रघुवंशमणि तिमि जनक भूपति डावरी ।
—रघुराज (शब्द०) । (ख) जिन पानि गहो हुतो मेरी तबै सब गाय उठीं ब्रज डावरियाँ ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

डास—संज्ञा पुं० [देश०] चमारों का एक प्रोजा जिससे चमड़े के भीतर का रक्त साफ करते हैं ।

डासन—संज्ञा पुं० [सं० दर्भासन, हि० डाभ + भासन] बिछाने की चटाई, वस्त्र प्रादि । बिछावन । बिछौना । बिस्तर । उ०—
सोमह भोक्क लोमह डासन । सिस्नोदर पर जमपुर भास न ।
—तुलसी (शब्द०) ।

डासना—क्रि० सं० [हि० डासन] बिछाना । डालना । फैलाना ।
उ०—(क) निज कर डासि नागरिपु छाना । बैठे सहजहि संभु
कृपाला ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) डासत ही गह बीति
निजा सब कबहुँ न नाथ नीव भरि सोयो ।—तुलसी (शब्द०)

डासना(पुं०)—क्रि० सं० [हि० डसना] डसना । काटना । उ०—
डासी वा विसासी विषमेपु विषधर उठै भाटह पहर विष विष
की लहर सी ।—देव (शब्द०) ।

डासनी—संज्ञा स्त्री० [हि० डासन] १. खाट । पलंग । चारपाई ।
२. बिछौना ।

डाह—संज्ञा स्त्री० [सं० दाह] १. जलन । ईर्ष्या । द्वेष । द्रोह ।
उ०—इनके मन में भीरों की डाह बड़ी प्रबल थी ।—श्री-
निवास प्र०, पृ० २१२ ।

क्रि० प्र०—करना । रखना ।

२. ताप । जलन । उ०—पूहकर डाह वियोग, प्राण विरह वस
होहि जब । का समझावहि लोग, प्राणि न थिर पारी रहे ।—
रसरतन, पृ० १४ ।

डाहना—क्रि० म० [सं० दाहन] जलाना । सताना । दिक करना ।
तंग करना । उ०—काहे को मोहि डाहन आए रैन देत सुख
वाको ?—सूर (शब्द०) ।

डाहल, डाहाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश । त्रिपुर देश [स्त्री०] ।

डाही—वि० [हि० डाह] डाह करनेवाला । ईर्ष्या करनेवाला ।
ईर्ष्यालु । जैसे,—यह बड़ा डाही है,

डाहुक—संज्ञा पुं० [सं० दाहुक ? या देश०] १. एक पक्षी जो टिटिहरी
के आकार का होता है और जलाशयों के निकट रहता है ।
२. चातक । पपीहा ।

डिगर—संज्ञा पुं० [सं० टिङ्गर] १. मोटा आदमी । मोटासा । २. दुष्ट ।

बदमाश । ठग । ३. बाम । गुलाम । ४. नीच मनुष्य । निम्न कोटि का व्यक्ति । ५. फेंकना । क्षेपण (को०) । ६. तिरस्कार (को०) ।

डिंगर^२—संज्ञा पुं० [देश०] वह काठ जो नटखट खोपायों के गले में बांध दिया जाता है । टिगुरा । उ०—कबिरा माला काठ की पहिरी मुगद डुलाय । सुभिरन की सुध है नहीं ज्यों डिंगर बांधी गाय ।—कबीर (शब्द०) ।

डिंगल^१—वि० [सं० डिङ्गर] नीच । दूषित ।

डिंगल^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजपूताने की वह भाषा जिसमें भाट और चारण काव्य और बंशावली आदि लिखते चले आते हैं ।

डिंगसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चीड़ ।

विशेष—इसके पेड़ आसिया पर्वत तथा चटगांव और बर्मा की पहाड़ियों में बहुत होते हैं । इससे बहुत बढ़िया गोंद या राल निकलती है । तारपीन का तेल भी इससे निकलता है ।

डिंडस—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिस] डिंड या टिंडसी नाम की तरकारी ।

डिंडिक—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिक] हंसोड भिलारी (को०) ।

डिंडिभ—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिभ] जलमय । डेढ़हा (को०) ।

डिंडिम—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिम] १. प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता था । डिमडिमो । डुगडुगिया । २. करीदा । कृष्णपाक फल ।

यो०—डिंडिमघोष । डिंडिमनाद ।

डिंडिमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिमडिमी] दे० 'डिंडिम' ।

डिंडिर—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिर] १. समुद्रफेन । २. पानी का भाग ।

डिंडिर मोदक—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिरमोदक] १. गृजन । गाजर । २. लहसुन ।

डिंडिश—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिश] टिंड या टिंडसी नाम की तरकारी । डेड़सी ।

डिंडी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] गछली फेंसाने का चारा । (विशेषतः) छोटी मछली ।

डिंडीर—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डीर] दे० 'डिंडिर' ।

डिंड—संज्ञा पुं० [सं० डिण्ड] १. हलचल । पुकार । बावला । २. भयध्वनि । ३. दंगा । लड़ाई । ४. झंडा । ५. फेकड़ा । फुफुस । ६. प्लीहा । पिलही । ७. कीड़े का छोटा बच्चा । ८. आरंभिक अवस्था का अणु । ९. गर्भाशय (को०) । १०. कंदुक । गेंद (को०) । ११. भय । डर । भीति (को०) । १२. शरीर (को०) । १३. सद्योजान शिशु या प्राणी (को०) । १४. मूर्ख (को०) ।

डिंडयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डयुद्ध] दे० 'डिंडाह्व' (को०) ।

डिंडाशय—संज्ञा पुं० [सं० डिण्ड + आशय] गर्भाशय ।

डिंडाह्व—संज्ञा पुं० [सं० डिण्ड + आह्व] सामान्य युद्ध । ऐसी लड़ाई जिसमें राजा आदि सम्मिलित न हों ।

डिंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० डिण्डिका] १. मदमाती स्त्री । २. सोना-पाठा । श्योन्क । ३. फेन । बुलबुला । बुल्ला (को०) ।

डिंडि^१—संज्ञा पुं० [सं० डिण्ड] १. बच्चा । छोटा बच्चा । उ०—धंभ सु, हो डिभ, सो न बुझिए बिबंभ धब धबलंभ नाहीं धाव

राखत हों तेरिये ।—तुलसी (शब्द०) । २. पशु का छोटा बच्चा (को०) । ३. मूर्ख या जड़ मनुष्य । ४. एक प्रकार का उदर रोग जो धीरे धीरे बढ़ता हुआ अंत में बहुत भयानक हो जाता है ।

डिंडि^२—संज्ञा पुं० [सं० डिण्ड] १. घाड़ंबर । पालंड । २. अभिमान । घमंड । उ०—करे नहि कछु डिंडि कबहूँ, डारि मैं तै छोड़ ।—जग० बानी, पृ० ३५ ।

डिंडिक—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिक] १. [स्त्री० डिंडिका] बच्चा । छोटा बच्चा । २. पशु का छोटा बच्चा (को०) ।

डिंडिचक्र—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिचक्र] स्वरोच्च में वर्णित मनुष्यों के शुभाशुभ फल का सूचक एक तांत्रिक चक्र (को०) ।

डिंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० डिण्डा] छोटी बालिका । नन्हीं बच्ची (को०) ।

डिंडिया—वि० [सं० डिण्ड, हिं० डिंड] घाड़ंबर रखनेवाला । पालंडी । २. अभिमानी । घमंडी ।

डिंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिस] टिंड या टिंडसी नाम की तरकारी ।

डिकामाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जो मध्य भारत तथा दक्षिण में होता है ।

विशेष—इसमें एक प्रकार की गोंद या राल निकलती है जो हींग की तरह घुगी रोग में दी जाती है । इसके लगाने से बाघ जल्दी सुखता है और उसपर मक्खियाँ नहीं बैठती ।

डिङ्करी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवा औरत । युवती (को०) ।

डिङ्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० धक्का] १. सींगों का धक्का । (जैसे मेडे देते हैं) । २. झट । वार । धाकमण ।

डिक्टेटर—संज्ञा पुं० [ग्रं०] १. वह मनुष्य जिसे कोई काम करने का पूरा अधिकार प्राप्त हो । प्रधान नेता या पथप्रदर्शक । शासक । २. वह मनुष्य जिसे शासन की अबाधित सत्ता प्राप्त हो । निरंकुश शासक । उ०—देवता रूप के डिक्टेटर, लोह से जिनके हाथ मने ।—मानव०, पृ० ५६ ।

विशेष—डिक्टेटर दो प्रकार के होते हैं—(१) राष्ट्रपक्ष का और (२) राज्य या शासनपक्ष का । जब देश में संकट उपस्थित होता है तब देश या राष्ट्र उस मनुष्य को, जिसपर उसका पूरा विश्वास होता है, पूर्ण अधिकार दे देता है कि वह जो चाहे सो करे । यह व्यवस्था संकट काल के लिये है । जैसे, सं० १६८०—८१ में महात्मा गांधी राष्ट्र के डिक्टेटर या शासक थे । पर राज्य या शासनपक्ष का डिक्टेटर वही होता है जो बड़ा जबरदस्त होता है । जिसका सब लोगों पर बड़ा आतंक छाया रहता है । जैसे, किसी समय इटली का डिक्टेटर मुसोलिनी था ।

यो०—डिक्टेटरशिप = निरंकुश शासन । अधिनायकवाद ।

डिक्शन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह वाक्य जो लिखने के लिये बोला जाय । हमला ।

डिक्की—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] १. आज्ञा । हुक्म । फरमान । २. न्यायालय की वह आज्ञा जिसके द्वारा सज्जनेवाले पक्षों में से किसी पक्ष

को किसी संपत्ति का अधिकार दिया जाय। उ०—प्रदालत डिक्री न दे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७३। वि० ३० 'डिगरी'।

डिक्लरेशन—संज्ञा पु० [प्र०] वह लिखा हुआ कागज जिसमें किसी मजिस्ट्रेट के सामने कोई प्रेस खोलने, रखने या कोई समाचार-पत्र या पत्रिका छापने और निकालने की जिम्मेवारी ली या घोषित की जाती है। जैसे,—(क) उन्होंने अपने नाम से प्रेस खोलने का डिक्लरेशन दिया है। (ख) वे भ्रष्टाचार के मुद्दे और प्रकाशक होने का डिक्लरेशन देनेवाले हैं।

डिक्शनरी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] शब्दकोश। अभिधान।

डिगंबर—वि० [सं० दिगम्बर] वस्त्ररहित। नग्न। दिगंबर। उ०—धंबर छाड़ डिगंबर होई। उहि भगमन भग निवहै सोई।—रसरतन, पृ० २४६।

डिगना—क्रि० प्र० [सं० टिक (= हिलना। डोलना)] १. हिलना। टलना। खिसकना। टटना। सरकना। जगह छोड़ना। जैसे,—उस भारी पत्थर को कई आदमी उठाने गए पर वह जरा भी न डिगा। उ०—असवार डिगत बाहन फिरै, भिरै भूत भैरव विकट।—हुम्मीर०, पृ० ५८।

संयो० क्रि०—जाना।

२. किसी बात पर स्थिर न रहना। प्रतिज्ञा छोड़ना। संकल्प वा सिद्धांत पर दृढ़ न रहना। बात पर जमा न रहना। विचलित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

डिगमिगाना^१—क्रि० प्र० [हि० डगमगाना] ३० 'डगमगाना'। उ०—रणधीर के आने से ये सभी ऐसी डिगमिगाने लगी थी जैसे हाथी के बढ़ने से नाव डिगमिगती है।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ८६। (ख) डिगमिगात पग चलन मुखारो। यही लकुट भव वैति सहारो।—शकुंतला, पृ० ८२।

डिगमिगाना^२—क्रि० स० १. हिलाना। डियाना। २. विचलित करना।

डिगरी—संज्ञा स्त्री० [प्र० डिग्री] १. विश्वविद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण होने की पदवी।

क्रि० प्र०—मिलना।—लेना।

२. अंश। कला। समकोण का दूँध भाग।

डिगरी^३—संज्ञा स्त्री० [प्र० डिग्री] प्रदालत का वह फंसला जिसके जरिए से किसी फरीक को कोई हक मिलता है। न्यायालय की वह आज्ञा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार प्राप्त होता है। जैसे,—उस मुकदमे में उसकी डिगरी हो गई।

यौ०—डिगरीदार।

मुद्दा०—डिगरी जारी कराना = फंसले के मुताबिक किसी जायदाद पर कब्जा गैरहू करने की कार्रवाई कराना। न्यायालय के निर्णय के अनुसार किसी संपत्ति पर अधिकार करने का उपाय कराना। डिगरी देना = अभियोग में किसी के पक्ष में विरुद्ध करवा। फंसले के जरिए से हक कायम

करना। डिगरी पाना = अपने पक्ष में न्यायालय की आज्ञा प्राप्त करना। जर डिगरी = वह रुपया जो प्रदालत एक फरीक से दूसरे फरीक को दिलावे।

डिगरीदार—संज्ञा पु० [प्र० डिग्री + फा० दार] वह जिसके पक्ष में डिगरी हुई हो।

डिगलाना^१—क्रि० प्र० [हि० डग, डिगना] डगमगाना। हिलना। लड़खड़ाना।

डिगलाना^२—क्रि० स० [हि० डिगना] डिगाना। घालिन करना।

डिगवा—संज्ञा पु० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

डिगाना—क्रि० स० [हि० डिगना] १. हटाना। खसकाना। जगह से टालना। सरकाना। हिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बात पर जमा न रहना। किसी संकल्प या सिद्धांत पर स्थिर न रहना। विचलित करना। उ०—सुर नर मुनि देव डिगाय करे यह सबकी हाँसी।—पलटू०, पृ० २५।

संयो० क्रि०—देना।

डिगुलाना^१—क्रि० प्र० [हि० डग] ३० 'डिगलाना'। उ०—डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल। तँपि विसोरी दरसि के खरै लजाने लाल।—निहारी (शब्द०)।

डिगो^१—संज्ञा स्त्री० [सं० बोधिका, बँग० दोघो (= बावली या तालाब)] पोखरा। बावली। जैसे, लालडिगो।

डिगो^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिममत। साहस। जगरा।

डिजाइन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. तर्ज। बनावट। आका।

डिटेक्टिव—संज्ञा पु० [प्र०] जासूस। मुखबिर। गुप्तचर। भेदिया।

यौ०—डिटेक्टिव पुलिस = वह पुलिस जो छिपकर मामलों का पता लगावे। खुफिया पुलिस।

डिठारी—वि० [हि० डीठ + धारा (प्रत्यय)] [वि० डिठारी] दृष्टिवाला। देखनेवाला। आँखवाला। जिसकी आँख से मूँके।

डिठिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिट्टि] ३० 'डिट्टि'। उ०—अधर सुधा मिठी, दूधे धवरि डिठि, मधुसम मधुरे बानि रे।—विद्यापति, पृ० १०३।

डिठियार, डिठियारा—वि० [हि०] ३० 'डिठार'। उ०—(क) तुलसी स्वारथ सामुहो परमारथ तन पीठि। अध कहै दुख पावै डिठियारो कहि डीठि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अटकर सेती अध डिठियारे राह बतावै।—पलटू०, पृ० ७४।

डिठौना—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'डिठौना'। उ०—सब बचाती हैं मुत्तों के गात्र। किन्तु बेटी हैं डिठौना मात्र।—साकेत, पृ० १८०।

डिठौहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डीठ + हरना अथवा देश०] एक जंगली पेड़ के फल का बीज जिसे तागे में पिरोकर बच्चों के गले में उन्हें नजर से बचाने के लिये पहनाते हैं।

विशेष—३० 'बजरबट्ट' या 'नजरबट्ट'।

डिठौना—संज्ञा पु० [हि० डीठ] काजल का टीका जिसे लड़कों के भस्त्रक पर नजर से बचाने की स्त्रियाँ लगा देती हैं। उ०—(क) पहिरायो पुनि बसव रंगीला। दीन्हों भाल डिठौना

मीला ।—रघुराज (शब्द०) । (क) सखि कंजन को परम सलोना भाल डिटीना देहीं । मनु पंकज कोना पर बैठे धलि-छोना मधु लेहीं ।—रघुराज (शब्द०) ।

डिडि—वि० [सं० दृढ़] दे० 'दृढ़' । उ०—नहि बाल वृद्ध किस्सोर सुध धुध समान पै डिड खरी ।—पु० रा०, २। ५१० ।

डिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुहीमा ।

डिडिकारा, डिडिकारी—संज्ञा स्त्री० [धनु०] पशुधों का गुराना ।

डिडई—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो भगहन में तैयार होता है ।

डिड्या—संज्ञा पुं० [देश०] डिडई नाम का धान जो भगहन में तैयार होता है ।

डिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें युवावस्था में ही बाल पकने लगते हैं ।

डिडियाना—क्रि० प्र० [धनु०] शोक के आवेग में गाय का रंभाना । उ०—परी धरनि धुकि यों बिलसाइ । ज्यों धृतबच्छ गाइ डिडियाइ ।—नंद० ग्रं०, पु० २४२ ।

डिडि—वि० [सं० दृढ़, प्रा० डिड] दृढ़ । पक्का । मजबूत । उ०—सुनि दुंदुभि पुंकार घराघर घरघर बुल्लिय । डिड न रहे डड्डार, बाघ बनघर बन बुल्लिय ।—सुजान०, पु० २६ ।

डिडय^५—वि० [सं० दृढ़] दे० 'डिड' । उ०—सेस सौस लखि भार डिडय डड्डार करविय ।—रसरतन, पु० १०४ ।

डिडाना^५—क्रि० स० [हि० डिड] १. पक्का करना । मजबूत करना । २. ठानना । निश्चित करना । मन में दृढ़ विचार करना ।

डिड्या—संज्ञा स्त्री० [देश०] अत्यंत लालच । लालसा । कामना । लुब्धा । उ०—संग्रह करने की लालसा प्रबल हुई तो जोरी से, चोरी से, छल से, कुशामद से, कमाने की डिड्या पड़ेगी और खाने खचने के नाम से जान निकल जायगी ।—श्रीनिवास दास (शब्द०) ।

डिट्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. काठ का बना हाथी । २. विशेष लक्षणों-वाला पुरुष ।

विशेष—सविले, सुंदर, युवा और सर्वशास्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुष को डिट्ठ कहते हैं ।

डिनर—संज्ञा पुं० [प्र०] रात का भोजन । उ०—कहो, सुना तुमने भी है कुछ, बैठ हमारे रामचंद्र ने, दाज दिया हम सब लोगों को, है फरपो में एक डिनर ।—मानव, पु० ९८ ।

डिपटी—संज्ञा पुं० [प्र० डेपुटी] नायब । सहायक । सहकारी । जैसे, डिपटी कलक्टर, डिपटी पोस्टमास्टर, डिपटी इंस्पेक्टर ।

डिपाजिट—संज्ञा पुं० [प्र०] धरोहर । अमानत । तहवील ।

डिपार्टमेंट—संज्ञा पुं० [प्र०] मुहकमा । सरिस्ता । विभाग । गुदाम । अमानतखाना । जखीरा । भांडार । जैसे, बुकडिपो ।

डिप्टी—संज्ञा पुं० [प्र० डिपटी] दे० 'डिपटी' । जैसे, डिपटी कंटोलर ।

डिप्थीरिया—संज्ञा पुं० [प्र०] छोटे बच्चों का एक संक्रामक रोग

जिसे कंठरोहिणी कहते हैं । उ०—कीर्ति का छोटा भाई अकस्मात् एक विचित्र रोग का शिकार बन गया है । डाक्टरों ने कहा डिप्थीरिया हो गया है । औरतों ने कहा हंभा डब्बा ।—संन्यासी, पु० १६० ।

डिप्लोमा—संज्ञा पुं० [प्र०] विद्यासंबन्धिनी योग्यता का प्रमाणपत्र । सनद ।

डिप्लोमेसी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. वह चातुरी या कौशल जो कार्यसाधन के लिये, विशेषकर राजनीतिक कार्यसाधन के लिये किया जाय । कूटनीति । २. स्वतंत्र राष्ट्रों में आपस का व्यवहार संबंध । राजनीतिक संबंध ।

डिप्लोमेट—संज्ञा पुं० [प्र०] वह जो डिप्लोमेसी या कूटनीति में निपुण हो । कूटनीतिज्ञ ।

डिफेंस—संज्ञा पुं० [प्र०] आरक्षा । बचाव । सुरक्षा । २. सफाई (पक्ष संबंधी) ।

डिफेमेशन—संज्ञा पुं० [प्र०] किसी की अप्रतिष्ठा या अपमान करने के लिये गहित शब्दों का प्रयोग । ऐसे गंदे शब्दों का प्रयोग जिससे किसी की मानहानि या बेइज्जती होती हो । हुतक इज्जत । जैसे,—इधर महीनों से उनपर डिफेमेशन केस चल रहा है ।

डिबिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डिब्बा + इया (लघ्वर्थक प्रत्यय०)] वह छोटा ढक्कनदार बरतन जिसके ऊपर ढक्कन अच्छी तरह जमकर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज हिलाने बुलाने से न गिरे । छोटा डिब्बा । छोटा संपुट । जैसे, सुरती की डिबिया ।

डिबिया^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा' । उ०—राम, राम राम, रतन लागी डिबिया ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पु० ६९७ ।

डिबिया टँगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कुश्ती का एक पेश ।

विशेष—यह पेश उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) कमर पर होता है और उसका दाहिना हाथ कमर में लिपटा होता है । इसमें विपक्षी को दाहिने हाथ से जोड़ का बायाँ हाथ कमर के पास से दाहिने जाँघ तक खींचते हुए और बाएँ हाथ से संगोट पकड़ते हुए बाएँ पैर से भीतरी टाँग मारकर गिराते हैं ।

डिक्चर—संज्ञा पुं० [प्र०] १. वह कागज या दस्तावेज जिसमें कोई अक्षर किसी कंपनी या म्युनिसिपैलिटी आदि के लिए हुए ऋण को स्वीकार करता है । ऋण स्वीकारपत्र । २. माल की रफ्तानी के महसूल का रक्का । परमट का बसीका । बहती ।

डिब्बा—संज्ञा पुं० [तैलंग या सं० डिम्ब (= गोला)] १. वह छोटा ढक्कनदार बरतन जिसके ऊपर ढक्कन अच्छी तरह जमकर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज हिलाने बुलाने से न गिरे । संपुट । २. रेलगाड़ी की एक गाड़ी । ३. पसली के दर्द की बीमारी जो प्रायः बच्चों को हुषा करती है । पसई चलने की बीमारी ।

डिब्बी—संज्ञा स्त्री० [हि० डिब्बा] दे० 'डिबिया' ।

डिभगना^५—क्रि० स० [देश०] मोहित करना । मोहना । खसना ।

ठहकना । उ०—दुरजोधन अभिमानहि गयऊ । पंडव केर मरम नहि भयऊ । माया के डिमने सब राजा । उत्तम मध्यम बाजन बाजा ।—कबीर (शब्द०) ।

डिम—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक या दृश्य काव्य का एक भेद ।

विशेष—इसमें माया, इंद्रजाल, लड़ाई और क्रोध आदि का समावेश विशेष रूप से होता है । यह रीढ़ रस प्रधान होता है और इसमें चार भंग होते हैं । इसके नायक देवता, गंधर्व, यक्ष आदि होते हैं । भूतों और पिशाचों की लीला इसमें दिखाई जाती है । इसमें शांत, शृंगार और हास्य के तीनों रस न घाने चाहिए ।

डिमडिम—संज्ञा स्त्री० [मनु०] डमरू से निकलनेवाली धावाज । उ०—डिम डिम डमरू बजा निज कर में नाचो नयन तृतीय तरेरे ।—रेणुका, पु० ३ ।

डिमडिमो—संज्ञा स्त्री० [सं० डिमडिम] बमड़ा मढ़ा हुआ एक बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है । डुगडुगिया । डुगी । उ०—डिमडिमो पटह डोल डफ बीणा मृदंग उमंग बंगतार ।—सूर (शब्द०) ।

डिमरेज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बंदरगाह में जहाज के ज्यादा ठहरने का हर्जाना । २. स्टेशन पर आए हुए माल के अधिक दिन पड़े रहने का हर्जा, जो पानेवाले को देना पड़ता है ।

क्रि० प्र०—लगना ।

डिमाई—संज्ञा स्त्री० [सं०] कागज या छापने के कल की एक नाप जो १८" × २२" इंच होती है ।

डिमाक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिमाक] मस्तिष्क । विभाग । सिर । उ०—डिमाक नाक चुन के कि नाक नाक सों हूरै ।—पद्माकर प्र० पु० २८४ ।

डिमोक्रेसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जनतांत्रिक शासन ।

डिमा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो गोली भूमि में उत्पन्न होती है । मोया ।

डिमा—संज्ञा पुं० [सं० दल] ऊन का सच्छा ।

डिलारा—वि० [फ्रा० दिलावर या विलेर] जवांमंद । घूर । बीर ।

डिलारा—वि० [हि० डील] बड़े कद का । डीलडील वाला । उ०—बलक के भलक के ललक के उमंडे । बुलारेह के हैं डिलारे घुमंडे ।—पद्माकर प्र० पु० २८० ।

डिलिबरी, डिलेबरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डाकघानों में छाई हुई चिट्ठियों, पारसलों, मनीषाडों की बंटवाई जो नियत समय पर होती है । २. किसी चीज का बांटा या दिया जाना । ३. प्रसव होना ।

डिल्ला—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ और अंत में भरण होता है । जैसे,—राम नाम निशि बासर गावहु । जन्म लेन कर फल जय पावहु । सोख हमारी जो हिय लावहु । जन्म मरण के फंद नसावहु । २. एक बयंभुक्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (॥५) होते हैं । इसके अन्य नाम तिलका, तिल्ला और तिल्लाना

भी हैं । जैसे,—सखि वाल खरो । शिव भाल खरो । भमरा हुरवे । तिलका निरखे ।

डिल्ला—संज्ञा पुं० [हि० डोला] बेलों के कंधों पर उठा हुआ कुबड़ । कुम्बा । ककुत्थ ।

डिविजनल—वि० [अंग०] डिवीजन का । उस भूभाग, कमिश्नरी या किस्मत का जिसके अंतर्गत कई जिले हों । जैसे, डिवीजनल कमिश्नर ।

डिविडेड—संज्ञा पुं० [अंग०] वह लाभ या मुनाफा जो जायंट स्टॉक कंपनी या संमिलित पूंजी से चलनेवाली कंपनी को होता है, और जो हिस्सेदारों में, उनके हिस्से के मुताबिक बँट जाता है । जैसे,—कृष्ण काटन मिल ने इस बार अपने हिस्सेदारों को पाँच सैकड़े डिविडेड बाँटा ।

डिवीजन—संज्ञा पुं० [अंग०] १. वह भूभाग जिसके अंतर्गत कई जिले हों । कमिश्नरी । जैसे, बनारस डिवीजन । २. विभाग । श्रेणी । जैसे,—वह मैट्रिक्युलेशन परीक्षा में फर्स्ट डिवीजन पास हुआ ।

डिस्काउंट—संज्ञा पुं० [अंग०] वह कमी जो व्यवहार या लेनदेन में किसी वस्तु के मूल्य में की जाती है । बट्टा । दस्तूरी । कमीशन ।

डिसमिस—वि० [अंग०] १. बरखास्त । २. खारिज । जैसे, अपील डिसमिस करना ।

डिसलायल—वि० [अंग०] अराजक । राजद्रोही । उ०—डिसलायल हिंदुन कहत कहै मूढ़ ते लोग ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पु० ७६५ ।

डिसीप्लिन—संज्ञा पुं० [अंग०] १. नियम या कायदे के अनुसार चलने की शिक्षा या भाव । अनुशासन । २. आज्ञानुवर्तिस्व । नियमानुवर्तिस्व । फरमाबरदारी । ३. व्यवस्था । पद्धति । ४. शिक्षा । नालीम । ५. बंद । सजा ।

डिस्ट्रायर—संज्ञा पुं० [अंग०] नाशक जहाज । वि० दे० 'टारपीडो बोट' ।

डिस्ट्रिक—संज्ञा पुं० [अंग० डिस्ट्रिक्ट] दे० 'डिस्ट्रिक्ट' ।

डिस्ट्रिक्ट—संज्ञा पुं० [अंग०] किसी प्रदेश या सूबे का वह भाग जो एक कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबन्धीन हो । जिला ।

यौ०—डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट । डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड—संज्ञा पुं० [अंग०] दे० 'जिला बोर्ड' ।

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अंग०] दे० 'जिला मजिस्ट्रेट' ।

डिस्पेंसरी—संज्ञा स्त्री० [अंग०] दवाखाना । औषधालय । उ०—पोस्ट आफिस से पहले यहाँ एक डिस्पेंसरी खुलवाना जरूरी था ।—मैला०, पु० ७ ।

डिस्पेंसिया—संज्ञा पुं० [अंग०] मंदाग्नि । अग्निमांश । पाचन शक्ति की कमी ।

डिस्ट्रिब्यूट (करना)—क्रि० सं० [अंग०] छापेखाने में कंपोज किए हुए टाइपों (अक्षरों) को केसों (खानों) में अपने स्थान पर रखना ।

डिस्ट्रिब्यूटर—संज्ञा पुं० [अंग०] १. कंपोज टाइपों को अपने स्थान पर रखनेवाला । २. वितरक । वितरण करनेवाला ।

डिहरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] ६००० गठों का एक मान जिसके अनुसार कालीनों (गलीचों) का शम लगाया जाता है।

डिहरो—संज्ञा स्त्री० [सं० दीघं, हि० दीह, डीह] कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन जिसमें अनाज भरा जाता है।

डींग—संज्ञा स्त्री० [सं० डीह (= उड़ान)] खंबी चौड़ी बात। खूब बढ़ बढ़कर कही हुई बात। अपनी बड़ाई की झूठी बात। प्रमिमान की बात। शेषी। सिद्ध।

क्रि० प्र०—उड़ाना। उ०—माऊँ घुटना फूटे भाँख। पूई डींग उड़ा रही है जमाने भर की।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५१।—मारना।—हाकना।

मुहा०—डींग की लेना = शेली बघारना।

डीक—संज्ञा स्त्री० [देश०] फिल्ली या फाँफो जो भाँख पर पड़ जाती है। जाला। मोतियाबिब।

डीकरा—संज्ञा पुं० [सं० डिम्बक] पुत्र। बेटा।

डीकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्बक] बेटो। कन्या (डि०)।

डीगंबर—वि० [हि०] दे० 'दिगंबर'। उ०—डीगंबर के गाँव में धोबी का क्या काम।—मल्लक०, पृ० ३३।

डीठ—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दिट्ठि, डिठ्ठि] १. दृष्टि। नजर। निगाह। उ०—गुरु शब्दन कूँ ग्रहन करि विषयन कूँ दे पीठ। गोविंद रूपी गदा गहि मारो करमन डीठ।—दया० बानी, पृ० ६।

क्रि० प्र०—डालना।—पसारना।

मुहा०—डीठ चुराना = नजर छिपाना। सामने न ताकना। डीठ छिपाना = दे० 'डीठ' चुराना। डीठ जोड़ना = चार भाँखें करना। सामने ताकना। डीठ बाँधना = नजर बंद करना। ऐसी माया या जादू करना जिसमें सामने की वस्तु ठीक ठीक न सूझे। डीठ मारना = नजर डालना। चितवन से चित्त मोहित करना। डीठ रखना = नजर रखना। निरीक्षण करना। डीठ लगाना = नजर लगाना। किसी अच्छी वस्तु पर अपनी दृष्टि का बुरा प्रभाव डालना।

यौ०—डीठबंध।

२. देखने की शक्ति। ३. ज्ञान। सुझ। उ०—दर्ई पीठि बिनु डीठि हो, तू विश्व विलोचन।—तुलसी (शब्द०)।

डीठना—क्रि० प्र० [हि० डीठ + ना (प्रत्य०)] दिखाई देना। दृष्टि में आना।

डीठना—क्रि० प्र० [हि० डीठ + ना (प्रत्य०)] १. देखना। दृष्टि डालना। उ०—रूप गुरु कर चले डीठा। चित समाई होइ चित्र पराई।—आयसी (शब्द०)। २. बुरी दृष्टि लगाना। नजर लगाना। जैसे,—कल से बच्चे को कुत्तार भा गया, किसी ने डीठ दिया है।

डीठबंध—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिबन्ध] १. ऐसी माया या जादू जिससे सामने की वस्तु ठीक ठीक न सुझाई दे। नजरबंदी। इंद्रजाल। २. क्रोध का क्रोध कर दिखानेवाला। इंद्रजाल करनेवाला। जादूगर।

डीठा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'डीठ'। उ०—कोउ प्रिय रूप नयन भरि उर में धरि धरि ध्यावति। मधुमाखी लौ डीठि दुहैं दिमि अति छवि पावति।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०।

डीठिमूठि—संज्ञा स्त्री० [हि० डीठ + मूठ] नजर। टोना। जादू। उ०—रोवनि धोवनि अनखनि अनरनि डिठिमूठि निदुर नसाइहो।—तुलसी (शब्द०)।

डीहू—संज्ञा पुं० [हि० डेड़हा] दे० 'डेड़हा'। उ०—डीहू समान का सेव गनीजे।—मट०, पृ० १५५।

डीन—संज्ञा स्त्री० [सं०] उड़ान। पक्षियों की गति।

विशेष—ऊपर नीचे आदि इसके २६ भेद किए गए हैं।

डीनडीनक—संज्ञा पुं० [सं०] उड़ान के २६ भेदों में से एक। बीच में रुक रुककर उड़ना [को०]।

डीपो—संज्ञा पुं० [सं० डिपो] १. उ०—पहुचानोगे क्या लाकी वर्यो वालों में। हर एक जगह पर इनके डीपो डेरे हैं।—मिशन०, पृ० १८८।

डीबुआ—संज्ञा पुं० [देश०] पैसा। स०—बबुआ न आवा, मोर भेयन न पावा, याक तुपक को न लावा, गाँठि डीबुआ न छावा है।—सूदन (शब्द०)।

डीमडाम—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब (= धूमधाम)] १. ठाट। ऐँठ। तपाक। ठसक। ग्रहंकार। उ०—पाग पैंब खैंब दे लपेट फट फेंट बाँध ऐँडे ऐँडे भाव, पेने दूटे डीमडाम के।—हृदयराम (शब्द०)। २. धूमधाम। ठाटबाट। घाउबर। उ०—दुंदुभी बजाई ढोल ताल करनाई बड़ी ऊधम मचाई छल कीने डीमडाम को।—हृदयराम (शब्द०)।

डील—संज्ञा पुं० [हि० टीला] १. प्राणियों के शरीर की ऊँचाई। शरीर का विस्तार। कद। उठान। जैसे,—वह छोटे डील का आदमी है। उ०—मई यदापि नैसुक दुबराई। बड़े डील नहि देत खिलाई।—शकुंतला, पृ० ३१।

यौ०—डील डील = (१) देह की लंबाई चौड़ाई। शरीरविस्तार। (२) शरीर का ढाँचा। आकार। आकृति। काठी। डील पील = दे० 'डीलडील'। उ०—दोउ बंस सुद्ध प्रकासु। बड़ि डील पील सु जासु।—ह० रासो, पृ० १२५।

२. शरीर। जिस्म। देह। जैसे,—(क) अपने डील से उसने हवने रूप पैदा किए। (ख) उनके डील से किसी की बुराई नहीं हो सकती। ३. व्यक्ति। माणो। मनुष्य। जैसे,—सो डील के लिये भोजन चाहिए। उ०—जेते डील लेते हाथी, सेतेई खवास साथी, कंचन के कुडेल किरौट पुंज छायो है।—हृदयराम (शब्द०)।

डीला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नरकट जो प्रायः पश्चिमोत्तर भारत में पाया जाता है।

डीवटा—संज्ञा स्त्री० [हि० दीवट] दे० 'दीवट'। उ०—दुष्टर यह पुराने केशन की डीवटा तो हटाइए। लैप मँगवाइए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५६।

डोह—संज्ञा पुं० [फ्रा० देह] १. गाँव। आबादी। बस्ती। २. उबड़े हुए गाँव का टीला। उ०—पतिहीन पंगु सा पड़ा पड़ा ठहकर

जैसे बन रहा डीह । —कामायनी, पृ० १४५ । ३.
ग्राम देवता ।

डीहदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० डीह + फा० दारी] एक तरह का हक
जो उन जमींदारों को मिलता है जो अपनी जमीन बेच डालते
हैं । खरीददार उनको गाँव का कोई भंश दे देता है जिससे
उनका निर्वाह हो ।

डुंगी—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग (= ऊँचा)] १. ढेर । भटाला । उ०—
धर्ती स्वर्ग असूक्त भा तबहुँ न भाग बुझाय । उठहि बज्र जरि
डुंग वे धूम रह्यो जग छाया ।—जायसी (शब्द०) २. टीला ।
भीटा । पहाड़ी ।

डुंडी—संज्ञा पुं० [सं० या स्कन्ध (= तना)] १. टूँठ । पेड़ों की
सूखी डाल जिनमें पत्ते छादि न हों । उ०—देव जू अनंग भंग
होमि के असम संग भंग भंग उमह्यो अखैर ज्यौं डुंड में ।—
देव (शब्द०) । २. शिररहित भंग । धड़ । उ०—जहि मुँह
परत कहूँ हय सु तुंड । कहूँ हय चरन कहूँ परिय डुंड ।
—सुजान०, पृ० २२ ।

डुंडु—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुम] दे० 'डुंडुम' ।

डुंडुम—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुम] पानी में रहनेवाला साँप जिसमें बहुत
कम विष होता है । डेड़हा साँप । ड्योड़ा साँप ।

डुंडुम—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुम] दे० 'डुंडुम' ।

डुंडुल—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुल] छोटा उल्लू ।

डुंडुक—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुक] दे० 'डोडुक' [क्रि०] ।

डुंब—संज्ञा पुं० [सं० डुम्ब, देशी] डोम [क्रि०] ।

डुंबर—संज्ञा पुं० [सं० डुम्बर] डंबर । घाईबर ।

डुंक—संज्ञा पुं० [अनु०] घूँसा । मुक्का ।

डुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० टुकड़ी] दो घोड़ों की बग़ी । उ०—खुद
डुकड़ी पर चढ़ के निकलती थी ।—सैर कु०, पृ० १४ ।

डुकाडुकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डुकना] १. घालिमिचीनी । डुकोवल ।
डुकाडुकी । उ०—प्रति गह्वर तहें बज के बाल । डुकाडुकी
खेलें बहुकाल ।—नंद० ग्रं०, २६२ ।

डुकिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डोका] दे० 'डोकिया' ।

डुकियाना—क्रि० सं० [हि० डुक] घूँसों से मारना । घूँसा लगाना ।

डुक्का डुक्की—संज्ञा स्त्री० [हि०] घूँसेबाजी । घापस में घूँसों की
मार । उ०—डुक्का डुक्की होन लगी ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७ ।

डुगडुगाना—क्रि० सं० [अनु०] किसी चमड़ा मढ़े बाजे को सड़की
से बजाना ।

डुगडुगी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमड़ा मढ़ा हुआ एक छोटा बाजा ।
डोंगी । डुगी । उ०—डुगडुगी सहर में बाजी हो ।—कबीर
श० भा० २, पृ० १४१ ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—फेरना ।

मुहा०—डुगडुगी पीटना=डोंडी बजाकर घोषित करना । मुनादी
करना । चारों ओर प्रकट करना । डुगडुगी फेरना=दे०
'डुगडुगी पीटना' । उ०—घापने पत्रावसंजन भ्रंष करके विश्वे-
श्वर के द्वार पर भी डुगडुगी फेर दी थी जिसकी हमसे

शास्त्रार्थ करना हो पहले जाकर बहुत पत्र देख ले ।—भारतेंदु
ग्रं०, भा० ३, पृ० ५७४ ।

डुगगी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'डुगडुगी' ।

डुचनारी—क्रि० प्र० [हि० डूबना] डूबना । चुकता न होना । उ०—
नाचता है सूदखोर जहाँ कहीं व्याज डुचता ।—कुरुर०,
पृ० १० ।

डुडला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे दूदसा भी
कहते हैं ।

डुङ्गा—संज्ञा पुं० [सं० दादुर] मेंढक ।

डुङ्का—संज्ञा पुं० [देश०] घान के पोथों का एक रोग ।

डुडुहारी—संज्ञा पुं० [हि० डीङ्ग] खेत में दो नालियों (बरहों) के
बीच की मेंड़ ।

डुपटना—क्रि० सं० [हि० दो + पट] चुनना । चुनियाना । उ०—
घन्हुवाइ तन पहिराइ भूषन वसन सुंदर डुपटि के ।—
विश्राम (शब्द०) ।

डुपटारी—संज्ञा पुं० [हि० डुपट्टा] दे० 'डुपट्टा' । उ०—डुपटा है रंघ
किरमची मनु मनके दई कमची ।—ब्रज ग्रं०, पृ० ५७ ।

डुपट्टा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डुपट्टा' ।

डुप्लीकेट—क्रि० प्र० [अनु०] द्वितीय । दूसरी । उ०—कमरा बंद करके,
चाबी अपने परिचित किमी एक मेस महाराज को दे दी,
डुप्लीकेट उमादत्त के पास थी ।—संयासी, पृ० १२३ ।

डुबकना—क्रि० प्र० [हि० डुबकी] १. डूबना उतराना । २. चिताकुल
होना । धवराना । उ०—इन्ही से सब डुबकत डोलें मुकद्दम
और दीवान । खान पान सब न्यारा रखै, मन में उनके मान ।
—कबीर श०, भा० २, पृ० ६४ ।

डुबकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डूबना] १. पानी में डूबने की क्रिया ।
डुबो । गोता । डुबकी । उ०—डुबकी खाइ न काहुँ पावा ।
डूब समुद्र में जोउ गँवावा ।—इंद्रा०, पृ० १५६ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—मारना ।—लगाना ।—नेना ।

मुहा०—डुबकी मारना या लगाना=गायब हो जाना ।

२. पीठी की बनी हुई बिना तली बरी जो पीठी ही की कढ़ी में
हुबाकर रखी जाती है । ३. एक प्रकार का बटेर ।

डुबडुभी—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] दे० 'डुडुभि' । उ०—बाषा
बाजइ डुबडुभी, परणवा चाल्यो बीसलराव ।—बी० रासो,
पृ० ३७ ।

डुबवाना—क्रि० सं० [हि० डुबाना का प्रेरूप] डुबाने का काम
कराना ।

डुबाना—क्रि० सं० [हि० डूबना] १. पानी या घोर किसी द्रव
पदार्थ के भीतर डालना । भग्न करना । गोता देना । डोरना ।
२. चोपट करना । नष्ट करना । सत्यानाश करना । बरबाद
करना । ३. मर्यादा कलंकित करना । यश में दाग लगाना ।

मुहा०—नाम डुबाना=नाम को कलंकित करना । यश को बिगा-
ड़ना । किसी कर्म या चूटि के द्वारा प्रतिष्ठा नष्ट करना ।
मर्यादा खोना । लुटिया डुबाना=महत्त्व खोना । बड़ाई न

रखना । प्रतिष्ठा नष्ट करना । वंश डुबाना = वंश की मर्यादा नष्ट करना । कुल की प्रतिष्ठा खोना ।

डुबाव—संज्ञा पुं० [हि० डूबना] पानी की तलबी गहराई जितनी में एक मनुष्य डूब जाय । डूबने भर की गहराई । जैसे,—यहाँ हाथो का डुबाव है ।

डुबुकी—संज्ञा स्त्री [हि० डूबना] दे० 'डूबकी' । उ०—परन जलज काई कहँ जाऊँ । डुबुकी खाऊँ सुमिरि वह नाउँ ।—इंद्रा०, पृ० ८२ ।

डुबोना—क्रि० स० [हि०] दे० 'डूबना' ।

डुब्बा—संज्ञा पुं० [हि० डूबना] दे० 'पनडूब्बा' ।

डुब्बी—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'डूबकी' । उ०—व्यर्थ लगाने को डुब्बी हाँ ! होगा कौन भला राखी ।—भरना, पृ० १० ।

डुबकीरी—संज्ञा स्त्री [हि० डूबकी + बरी] दे० 'डूबकीरी' । उ०—चोराई तोराई मुरई मुरबा भारी बी । डुबकीरी मुँगछोरी रिकवछ ईँहूर छोर छँछोरी जो ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

डुबकीरी—संज्ञा स्त्री [हि० डूबना, डूबकी + बरी] पीठी की बिना तली बरी जो पीठी ही के भोल में पकाई छोर डुबाकर रखी जाती है । उ०—लँढ़रा बचका जायसी छोर डुबकीरी । पं०, पृ० १२४ ।

डुमई—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार का चावल जो कच्चार में होता है ।

डुरी—संज्ञा स्त्री [हि० डोरी] दे० 'डोरी' । उ०—काम की डुरी नेह में डुरी मानो किसी ने उसी की डुरी से बाँध दिया हो । श्यामा०, पृ० ३१ ।

डुलना^७—क्रि० प्र० [सं० डोलना] दे० 'डोलना' । उ०—मंद मंद मैगख मतंघ लौ चलेई भले भुजन समेत भुज भुषन डुलत जात ।—पद्माकर (शब्द०) ।

डुलाना—क्रि० स० [हि० डोलना] १. हिलाना । चलाना । गति में लाना । चलायमान करना । जैसे, पत्ता डुलाना । २. हटाना । भगाना । उ०—कारे गए करि कृष्ण को ध्यान डुलाई ते काहू के डोलत ना ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) । ३. चलाना । फिराना । ४. घुमाना । टहलाना ।

डुल्लि—संज्ञा स्त्री [सं०] कमठी । कछुई । कल्पपी ।

डुल्लिका—संज्ञा स्त्री [सं०] कंजन के धाकार की एक चिड़िया [की०] ।

डुली—संज्ञा स्त्री [सं०] चिल्ला साग । भास पानी का बगुधा ।

डूंगर—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग (=पहाड़ी)] १. टीला । भीटा । ढूँह । उ०—सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि कैसे दुरत दुराय कहीं घों डूंगरन की छोट सुगेर ।—सूर (शब्द०) । २. छोटी पहाड़ी । उ०—छिनही में ब्रज धोइ बहावै । डूंगर को कहूँ नाबै न पावै ।—सूर (शब्द०) ।

डूंगर फल—संज्ञा पुं० [हि० डूंगर + फल] बंवाल का फल । बेबदाली का फल जो बहुत कड़ुवा होता है और सरदी में चोड़ों को खिलाया जाता है ।

डूंगरी—संज्ञा संज्ञा [हि० डूंगर] छोटी पहाड़ी ।

डूंगा^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] १. चम्मच । चमचा । २. एक लकड़ी की नाव । डोंगा (लश०) । ३. रस्से का गोल सपेटा हुमा लच्छा (लश०) ।

डूंगा^२—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग] छोटी पहाड़ी । टीला । उ०—विविध संसार कौन बिधि तिरबो, जे टढ़ नाव न गहे रे । नाव छाड़ि दे हूँगे बसे तो दूना दुःख सहे रे ।—रे० बानी, पृ० ३८ ।

डूंगा^३—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत की २४ शोभाओं में से एक ।

डूँजा—संज्ञा स्त्री [देश०] माँघी । ठेज हुवा (हि०) ।

डूँडा^१—वि० [सं० टुटि, हि० टूटना] एक सींग का (बैल) । (बैल) जिसका एक सींग टूट गया हो । २. जिसके हाथ कटे हों । जूला । बिना हाथ पावों का । ३. शिरविहीन (घड़) ।

डूँम—संज्ञा पुं० [देशी डूब या डोंब] दे० 'डोम' । उ०—डूँम न जाँणे देवजस सूँम न जाँणे मोज । मृगल न जाँणे थोवया घुगल न जाँणे बोज ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ४८ ।

डूँमणी—संज्ञा स्त्री [हि० डूँम] दे० 'डोमनी-३' । उ०—सीहर संदी डूँमणी, ऊँमर हँदइ सप्य ।—दोला०, दू० ६३० ।

डूक—संज्ञा स्त्री [देश०] पशुओं के फेफड़ों की एक बीमारी ।

डूकना^१—क्रि० स० [सं० टुटिकरण, या हि० चूकना] टुटि करना । धुल करना । गलती करना । मोका खोना । चूकना ।

डूबना—क्रि० प्र० [प्रनु० डूब डूब] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ के भीतर समाना । एकबारगी पानी के भीतर चला जाना । मग्न होना । गोता खाना । डूड़ना । जैसे, नाव डूबना, आरम्भी डूबना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—डूबकर पानी पीना = थोखाथडी करना । छोरों से छिपकर बुरा काम करना । उ०—हमों में डूबकर पानी पीने-वाले हैं ।—चुभते० (दोदो०), पृ० ४ । डूब मरना = लज्जा के मारे मर जाना । शर्म के मारे मुँह न दिखाना । उ०—उन्हें डूब मरने को संसार में धुल्लु भर पानी मिलना मुश्किल हो जाता ।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० ३४१ ।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग विधि और आदेश के रूप में ही प्रायः होता है । जैसे, तू डूब मर ? तू डूब क्यों नहीं मरते ?

धुल्लु भर पानी में डूब मरना = दे० 'डूब मरना' । डूबते को तिनके का सहारा होना = निराश्रय व्यक्ति के लिये पोड़ा सा आश्रय भी बहुत होना । संकट में पड़े हुए निस्सहाय मनुष्य के लिये पोड़ी सी सहायता भी बहुत होना । डूबा नाम उछालना = (१) फिर से प्रतिष्ठा प्राप्त करना । गई हुई मर्यादा को फिर से स्थापित करना । (२) अप्रसिद्धि से प्रसिद्धि प्राप्त करना । डूबना उठराना = (१) चिंता में मग्न होना । सोच में पड़ जाना । (२) चिंताकुल होना । घबराना । जी डूबना = (१) चिंत विह्वल होना । चिंत व्याकुल होना । जी घबराना । (२) बेहोशी होना । मुर्छा खाना ।

विशेष—पद्याकर ने 'प्राण' शब्द के साथ भी इस मुहा० का प्रयोग किया है, जैसे, ऊबत ही, डूबत ही, डगत ही, डोलत ही, बोलत न काहं प्रीति रीतिन रिती चले ।...एरे मेरे प्राण ।

कान्हा प्यारे की चलाचल में तब तों चले न, घाव चाहत किते चले ।

२. सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि का घस्त होना । सूर्य या किसी तारे का घदृश्य होना । जैसे, सूर्य डूबना, शुक्र डूबना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. चौपट होना । सत्यानाश जाना । बरबाद होना । बिगड़ना । नष्ट होना । जैसे, वंश डूबना । उ०—डूबा वंश कबीर का, उपजे पूव कमास ।—(शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना । उ०—घावत जावत कोई न देखा डूब गया बिन पानी ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३१ ।

मुहा०—नाम डूबना = मर्णाया बिगड़ना । प्रतिष्ठा नष्ट होना । मुकमाति होना ।

४. किसी व्यवसाय में लगाया हुआ धन नष्ट होना या किसी को दिया हुआ रुपया न बचूक होना । मारा जावा । जैसे,—(क) रुपये बितना रुपया डूबर डूबर कर्षे दिया या सब डूब गया । (ख) जिसने जिसने हिस्सा करीया सबका रुपया डूब गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५. बेटी का बुरे बर व्याहृत जाना । कन्या का ऐसे बर पड़ना जहाँ बहुत कष्ट हो ।

संयो० क्रि०—जाना ।

६. चित्त में मग्न होना । विचार में धीन होना । धन्यी तरह ध्यान डटाना । जैसे, डूबकर सोचना । ७. जीन होना । लज्जित होना । शिम होना । धन्यी तरह लज्जना । जैसे, विषय बालना में डूबना, ध्यान में डूबना ।

डूमी—संज्ञा पु० [सं० डूम] दे० 'डोम' । उ०—मुँदर पटु मन डूम है, मानस करे न संक । सोम मयो जावत फिरे, राधा होइ कि रंक ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७२९ ।

डूमा—संज्ञा पु० [कवी] कम की पालेमेंड या राबसभा का नाम ।

डूमना—क्रि० घ० [हि० डूमना] दे० 'डोसना' । उ०—गहिले पोहरे रेण के, दिवसा संवर डूम । बरा कस्तूरी हूइ रही, भिन्न बंधारी फूल ।—डोसा०, पृ० ५८२ ।

डेंटिस्ट—संज्ञा पु० [सं० डेंटिस्ट] दंतचिकित्सक । दांत का डाक्टर । दाँत बनानेवाला ।

डेंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डस] ककड़ी की तरह की एक तरकारी जिसके फल मुम्हड़े की तरह योम पर छोटे होते हैं ।

डेडडा—वि०, संज्ञा पु० [हि०] दे० 'डेवडा', 'डण्डा' ।

डेडडी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डण्डी' ।

डेका—संज्ञा पु० [दे०] महाविष । बकायन ।

डेक—संज्ञा पु० [सं०] बहाव पर लकड़ी के पडा हुआ कर्ण या छत ।

डेकरना—क्रि० घ० [घटु०] ध्वनि करना । दे० 'डकरना' । उ०—सब बिदे डाकिनि डेकरह ।—कीर्ति०, पृ० १०८ ।

डेकरारी—संज्ञा पु० [घटु०] डमक ध्वनि । उ०—उछलि डमक डेकरार बर ।—कीर्ति०, पृ० १०८ ।

डेगा—संज्ञा पु० [हि० डग] दे० 'डग' । उ०—बात बात में गाली धीर डेग डेग पर डावी ।—मैला०, पृ० २३ ।

डेगा—संज्ञा पु० [हि० देग] दे० 'देग' ।

डेगाची—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'देगची' ।

डेट—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिथि । तारीख ।

डेडरा—संज्ञा पु० [सं० दादुर] दे० 'दादुर' । उ०—डेडरा से डरे, सीपी मच्छ को मरोड़ डारे । कानन के बीच जाय कुंजर की पकड़े ।—राम० बर्म०, पृ० ८१ ।

डेडरिया—संज्ञा पु० [हि० डेडरा] दे० 'डेडरा' । उ०—डेडरिया बिछु मइ हुबइ बण्ड बूडइ सरनिता ।—डोसा०, पृ० ५४८ ।

डेडहा—संज्ञा पु० [सं० डुण्डुम] पानी का साँप जिसमें बहुत कम निष होता है ।

डेड—वि० [सं० डेड्ड, प्रा० डिब्ड] एक धीर आवा । सार्डेक । जो गिनती में १३ हो । जैसे, डेड रुपया, डेड पाव, डेड सैर, डेड बने ।

मुहा०—डेड हंड की जुदा मसखिर बनाना = बरेपन या धन्यार्थ पक्ष के कारण सबसे घमग काम करना । मियकर काम न करना । डेड गॉड = एक पूरी धीर उसके ऊपर दूसरी आधी गॉड । इसी भाँति माँद की वह गॉड जिसमें एक पूरी गॉड लभाकर दूसरी गॉड का पक्ष लभाते हैं नि भाँति का एक छोर दूसरे छोर की दूसरी धीर बाहुर नहीं खींचते, तागे को छोड़ी दूर से बाहर खींच ही में इस देते हैं । धार्गे दोनों छोर पक्ष ही धीर गहते हैं और दूसरे छोर को खींचने से गॉड कुछ जगती है । मुट्ठी । डेड आदल की बिचड़ी एकाना = अपनी राय सबसे मनग रखना । घटुपत से निम्र मत प्रकट करना । डेड ब्रुल्ल = मोड़ा मा । डेड ब्रुल्ल लहू पीना = मार डालना । खूब बंड देना । (कोलोसि, वि०) ।

बिशेष—जब किसी निर्दिष्ट संख्या के गहने इस शब्द का प्रयोग होता है तब उस संख्या की एकाई या बकर उसके आगे को देने का प्रयोग होता है । जैसे, डेड मो = मो धीर उसका आधा पचास पचास १५०, डेड हजार = हजार धीर उसका आधा पचास मो, धर्मात् १५०० । पर, इस शब्द का प्रयोग दहाई के आगे के संख्याओं को निर्दिष्ट करनेवाली संख्याओं के साथ हो होता है । जैसे, मो, हजार, लाख, करोड़, अरब इत्यादि । पर अनरठ और गैवार, जो पूरी गिनती नहीं जानते, धीर संख्याओं के नाम भी इस शब्द का प्रयोग कर देते हैं । जैसे, डेड बीस धर्मात् तीस ।

डेडसम्पन—संज्ञा स्त्री० [हि० डेड + सं० सम] एक प्रकार का बिरका या गोल बखानो ।

डेडसम्मा—संज्ञा पु० [हि० डेड + सं० सम (= डेडा)] डंकाफ पीने का वह सस्ता पेया जिसमें कुलफी मही होती । इसके घुमाव पर केवल एक कोहे की टेढ़ी मलाई रखकर उसे पयाव धीर चिपके आदि से सपेठ देते हैं ।

डेडगोरी—संज्ञा पु० [हि० डेड + सं० गोबह (= कोना)] एक बहुत छोटा धीर मजबूत बना हुआ जहाज ।

डेढ़ा^१—वि० [हि० डेढ़] डेढ़ गुना । किसी वस्तु से उसका भाषा और अधिक । डेवड़ा ।

डेढ़ा^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें प्रत्येक संख्या की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है ।

डेढ़िया^१—संज्ञा पुं० [देश०] पुष्पाक्षे की जाति का एक बहुत ऊँचा पेड़ जिसके पत्ते सुगन्धित होते हैं ।

विशेष—यह वृक्ष दारजिलिग, सिक्किम और भूटान प्रायों में पाया जाता है । इसके पत्तों से एक प्रकार की सुगंध निकलती है । इसकी लकड़ी मकानों में लमाने तथा चाय के संयुक्त और खेती के सामान (हथ, पाटा प्राय) बनाने के काम में प्राती है । यह पेड़ पुष्पाक्षे की जाति का है ।

डेढ़िया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डेढ़] २० 'डेढ़ी' ।

डेढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डेढ़] किसानों को बोवाई के समय इस जट पर घनाव बनाने के लिये की रीति कि वे कलक कटने पर बिड़ हुए घनाव का ड्योड़ा बने ।

डेना^१—क्रि० म० [प०] देना । प्रदान करना । उ०—तब भी देना, मन भी देना देना विज पलायन है ।—बाहु०, पृ० ५१३ ।

डेपूटेशन—संज्ञा पुं० [मं०] चुने हुए प्रधान प्रधान लोगों की वह मंडली जो जनसाधारण या किसी सभा संस्था की ओर से सरकार, राजा महाराजा अथवा किसी अधिकारी या शासक के पास किसी विषय में प्रार्थना करने के लिये भेजी जाय । प्रतिनिधि मंडल । विनिष्ठ मंडल ।

डेवरा^१—वि० [देश०] देहत्या । बाईं हाथ से काम करदेवाला ।

डेवरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेत का बहुत कोना जो जोतने में कूट जाता है । डोंवर ।

डेवरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डेवरी] डेवरी के प्रकार का टीन, पीछे बाहि का एक बरखन जिसमें डेल नरकर रोखनी के लिये बरी बनावे हैं । डेवरी ।

डेमोक्रेसी—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. वह सरकार या शासनप्रणाली जिसमें राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और उस सत्ता या शक्ति का प्रयोग वे स्वयं या उनके निर्वाचित प्रतिनिधि करें । वह सरकार जो जनसाधारण के अधीन हो । सर्व-साधारण द्वारा परिचालित सरकार । लोकसत्ताक राज्य । लोकसत्तात्मक राज्य । प्रजासत्तात्मक राज्य । २. वह राज्य जिसमें स्वयं राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और वह सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन और न्याय का विधान करते हों । प्रजासत्ता । ३. राजकीय और सामाजिक समता । समाज की वह व्यवस्था जिसमें कुलीन भकुलीन, धनी गरीब, ऊँच नीच या इसी प्रकार का और भेद नहीं माना जाता ।

डेमोक्रेट—संज्ञा पुं० [मं०] १. वह जो डेमोक्रेसी या प्रजासत्ता या लोकसत्ता के सिद्धांत का पक्षपाती हो । वह जो सरकार को प्रजासत्ताक या लोकसत्ताक बनाने के सिद्धांत का पक्षपाती हो । २. वह जो राजनीतिक और प्राकृतिक समानता का

पक्षपाती हो । वह जो कुलीनता भकुलीनता या ऊँच नीच का भेद न मानता हो ।

डेरा^१—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'डर' ।

डेर^२—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'डेरा' । उ०—रह खेत पर ठाढ़ भक्ति की डेर में है ।—पलटू० पृ० ८७ ।

डेरा^३—संज्ञा पुं० [हि० डेरना, डेरान या हि० डर (= स्थान)] १. टिकान । ठहराव । थोड़े काल के लिये निवास । थोड़े दिनों के लिये रहना । पड़ाव । जैसे,—भाज रात को यहीं डेरा करो, सबेरे उठकर चलेंगे ।

क्रि० प्र०—होना ।—सेना = स्थान तयबीजकर टिक जाना या निवास करना । उ०—साहू महसू हैं हकड़ा, ठाढ़ी डेरस जीध ।—दोषा०, पृ० १८७ ।

२. टिकने का आयोग । टिकान का सामान । ठहरने वा रहने के लिये खेचाया हुआ सामान । जैसे, बिस्तर, बरखन, चाँदा, छप्पर, तंबू इत्यादि । छावनी । जैसे—यहाँ से बटपट डेरा उठाओ ।

यौ०—डेरा बंडा = टिकने का सामान । बोरिया बंधना । निवास का सामान । उ०—तसल्ली से बसबाब बनेरहु रखा गया और डेराबंडा ठीक हुआ ।—मेमन०, भा० २, पृ० १५६ ।

मुहा०—डेरा डालना = सामान फैलाकर टिकना । ठहरना । रहना । डेरा पड़ना = टिकान होना । छावनी पड़ना । उ०—(क) भरि खोरासी कोस परे गोपन के डेरा ।—सूर (अव्य०) । (ख) पास मेरे इधर उधर प्राये । है दुखों का पड़ा हुआ डेरा ।—सुभते०, पृ० ४ । डेरा बंडा सजाइना = टिकने का सामान हटाकर चला जाना ।

३. टिकने के लिये साफ किया हुआ और छाया बनाया हुआ स्थान । ठहरने का स्थान । छावनी । जैसे । उ०—नीबत करहि वह सुपति केरन हुंनुमी बुनि हूँ रही ।—रघुराज (अव्य०) । ४. देवा । तंबू । छोलवारी । शामियाना ।

क्रि० प्र०—सजा करना ।

५. नाचने गानेवालों का घर । मंडली । गोल । ६. मकान । घर । निवासस्थान । जैसे,—तुम्हारा डेरा कितनी दूर है ?

डेरा^४—वि० [सं० डहर (= छोड़ा) ?] [स्त्री० डेरी] बायाँ । सम्प । जैसे, डेरा हाथ । उ०—(क) फहमें प्राये फहमें पाछे, फहमें रहिने डेरे ।—कबीर (अव्य०) (ख) सूर श्याम सम्मुख रति मानत मय मय बिसरि बाहिने डेरे ।—सूर (अव्य०) ।

डेरा^५—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा जंगली पेड़ जिसकी सफेद और मधुर लकड़ी सजावट के सामान बचाने के काम में प्राती है । विशेष—यह पेड़ पंजाब, अवध, बंगाल तथा मध्य प्रदेश और मकरास में भी होता है । इसे 'धरोली' भी कहते हैं । इसकी छाल और लकड़ सॉप काटने पर पिलाई जाती है ।

डेराना^१—क्रि० म० [हि० डर] २० 'डरवा' । उ०—जहाँ पुहुप देखत अलि संगू । जिउ डेराइ कापत सब संगू ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३४० ।

डेरावाली—संज्ञा स्त्री० [हि० डेरा + वाली] रखैल । उ०—खेवावन

की डेरावाली खुद भाकर बालदेव की बुढ़िया मोसी से कह गई थी ।—मैला० पु० १२ ।

डेरी—संज्ञा स्त्री० [प्र० डेयरी] बहु स्थान जहाँ गौर, भैंसें रखी और दूध मक्खन आदि देखा जाता है ।

यौ०—डेरीफार्म ।

डेरीफार्म—संज्ञा पु० [प्र०] दे० 'डेरी' ।

डेरु(७)—संज्ञा पु० [हि० डर] दे० 'डर' । उ०—जब को देखि मोहि डेर लाग्यो ।—जग०, बानी०, पु० २८ ।

डेरूँ†—संज्ञा पु० [सं० डमरू] दे० 'डमरू' । उ०—सिव सखी भेल साजिके, धाए गोरा की तजिके । नाचै हैं डेरूँ लैके, बजबास देखि भिभिके ।—बज प्र०, पु० ६१ ।

डेल^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह सूमि जो रबी की फसल के लिये जोतकर छोड़ दी जाय । परेड ।

डेल^२—संज्ञा पु० [देश०] कटहल की तरह का एक बड़ा जँचा पेड़ जो लंका में होता है ।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी बमकदार और मजबूत होती है, इसलिये वह मेज कुर्सी तथा सजावट के अन्य सामान बनाने के काम में आती है । नावें भी इसकी मजबूती बनती हैं । इस पेड़ में कटहल के बराबर बड़े फल लगते हैं जो खाए जाते हैं । बीज भी खाने के काम में आते हैं । इन बीजों में से तेल निकलता है जो दवा और जलाने के काम में आता है ।

डेल^३—संज्ञा पु० [सं० डुएडुल] उल्लु पक्षी । उ०—धननाद, जोवन, राजमद ज्यों पंछिन मंह डेल ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

डेल^४—संज्ञा पु० [सं० दल, हि० डला] डेला । पत्थर, मिट्टी या ईंट का टुकड़ा । रोड़ा । उ०—(क) नाहि न रास रमिक रस चाख्यो तारें डेल सो बारो ।—सूर (शब्द०) । (ख) डेल सो बनाप आय मेखत सभा के बीच लोचन कवित कीबो खेल करि जानो है ।—इतिहास, पु० ३८४ ।

क्रि० प्र०—डेल करना = नष्ट करना । डेला या रोड़ा कर देना । समाप्त करना । उ०—घोरो खर धाप रिस भीने । ठेऊ सबे डेल से कीने ।—नंद० प्र०, पु० २७७ ।

डेल^५—संज्ञा पु० [हि० डला] वह डला जिसमें बहेलिया पक्षी आदि बंध करके रखते हैं । उ०—कित नैहर पुनि आठव, कित सपुरे यह डेल । धापु धापु कई होइहि, परब पंखि जरा डेल ।—बायली (शब्द०) ।

डायरियन—संज्ञा स्त्री० [डायरिज] (स्वतंत्र) डायरसेंड की कार्लमेंट या व्यवस्थापिका परिषद् जिसमें उस देश के लिये कायम कार्याये आदि बनते हैं ।

डूठा—संज्ञा पु० [यू०, प्र०] नदियों के मुहाने या संगमस्थान पर उनके द्वारा लाए हुए कीचड़ और बाल के जमने से बनी हुई वह सूमि जो धारा के कई शाखाओं में विभक्त होने के कारण तिकोनी होती है ।

डा^१—संज्ञा पु० [सं० दल] १. डेला । रोड़ा । २. भाँख का सफेद

उभरा हुआ भाग जिसमें पुतली होती है । भाँख का कोया । ३. एक जंगली वृक्ष । दे० 'डेहरा' । उ०—डेले, पीनु, भाक और जंड़ के कुछमुड़ाए वृक्ष ।—ज्ञानदान, पु० १०३ ।

डेला—संज्ञा पु० [हि० ठेलना] यह काठ जो नटखट चौपायों के घबरे में बाँध दिया जाता है । ठंगुर ।

डेलिगेट—संज्ञा पु० [प्र०] वह प्रतिनिधि जो किसी सभा में किसी स्थान के निवासियों की ओर से भा देने के लिये भेजा जाय ।

डेलिया—संज्ञा पु० [देश०] एक पौधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है । इसका फूल लाल या पीला होता है ।

डेली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डला] डेलिया । बाँस की काँची । दे० 'डेल' । उ०—बाँधिया सुभा करत सुख केली । चूरि पाल मेलेसि धरि डेली ।—जायसी (शब्द०) ।

डेली^२—वि० [प्र०] दैनिक (मालबार आदि) ।

डेवड़ा^१—वि० [हि० डेवड़ा] डेड़ गुना । डेवड़ा । उ०—सुर सेनप डर बहुत उछाहू । विधि से डेवड़ सुलोचन लहू ।—तुलसी (शब्द०) ।

डेवड़ा^२—संज्ञा स्त्री० तार । सिलसिला । कप ।

क्रि० प्र०—लगना ।

डेवड़ना^१—क्रि० प्र० [हि० डेवड़ा] भाँच पर रखी हुई रोटी का फुलना ।

डेवड़ना^२—क्रि० प्र० १. कपड़े को मोड़ना । कपड़ों की तह लगाना । किसी वस्तु में उसका आधा और मिलाना । डेवड़ा करना । ३. भाँच पर रखी हुई रोटी को फुलाना ।

डेवड़ा—वि० [हि० डेड़] आधा और अधिक । किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा । डेड़गुना ।

डेवड़ा—संज्ञा पु० १. ऐसा तंब रास्ता जिसके एक किनारे डाल या बड़ा हो (पालकी के कहार) । २. गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ अधिक ऊँचा हो । ३. एक प्रकार का पहाड़ जिसमें कम से प्रकों की डेड़गुनी संख्या बतलाई जाती है ।

डेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'देहली' । उ०—यल पाँवके डारि रहौगी डटी डेवड़ी डर छोड़ि मधोरतिपाँ ।—श्यामा०, पु० १६२ ।

डेवलप करना—क्रि० प्र० [प्र० डेवलप + हि० करना] फोटोग्राफी में प्लेट को मसाने मिले हुए जल से धोना जिसमें प्रकृत चित्र का आकार स्पष्ट हो जाय ।

डेसिमल—संज्ञा पु० [प्र०] दशमलव । उ०—अपना धाप हिसाब लगाया । पाया महा बीन से बीन । डेसिमल पर दस शून्य जमाकर, लिखे जहाँ तीन पर तीन ।—हिम त०, पु० ७० ।

डेस्क—संज्ञा पु० [प्र०] लिखने के लिये छोटी डालुर्पा मेज ।

डेहरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दरवाजे के नीचे की उठी हुई जमीन जिसपर चौखट के नीचे की लकड़ी रहती है । बहलीज । सतमर्दा ।

डेहरी*—संज्ञा बी० [हि० वह] पथ रखने के लिये कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन ।

डेहल—संज्ञा पु० [सं० देहली] देहली । देहलीज ।

डेंगू फीवर—संज्ञा पु० [सं० डेगू फीवर] दे० 'डंगू ज्वर' । उ०—
दे० १६२६ का डेंगू फीवर ।—मेमघन०, भा० २, पृ० ३४३ ।

डेगना—संज्ञा पु० [हि० डेग] काठ का लंबा टुकड़ा जो नटखट चोपायों के गले में दण्डिले बाँध दिया जाता है जिसमें वे अधिक धाप ब सकें । डेंगुर । लंगर ।

डेन①—संज्ञा पु० [सं० डयन (= डङ्गना)] दे० 'डेना' । उ०—
गरजे पयन पक्षि जब बोला । डोल समुद्र डेन जब बोला ।—
जायसी ग्रं०, पृ० ६३ ।

डेना—संज्ञा पु० [सं० डयन (= डङ्गना)] चिट्ठियों का वह फैलने और सिकटनेवाला अंग जिससे वे हवा में उड़ती हैं । पक्ष । पर । बाण ।

डेमफूल—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रेरेबी गाली । मभागा मुख । नारकी । सत्यानाशी । उ०—घोर इसपर बदमाशों की डेमफूल । तहजीब के साथ बात करना जानते ही नहीं ।—
झाँसी०, पृ० २४१ ।

डेकू†—संज्ञा पु० [सं० डमक] दे० 'डमक' । उ०—भरप मटे बाँवी उठि नाचे कर बिनु डेकू बाजे ।—गोरख०, पृ० २०८ ।

डेश—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रका का प्रेरेबी विर. मणिल्ल जिसका प्रयोग कई उद्देश्यों से किया जाता है ।

विशेष—यदि किसी वाक्य के बीच डेश देकर कोई वाक्य लिखा जाता है तो उस वाक्य का व्याकरणसम्बन्ध मुख्य वाक्य से नहीं होता । जैसे,—जो मन्द बोलचाल में आते हैं—चाहे वे फारसी के हों, चाहे मराठी के, चाहे प्रेरेबी के—उनका प्रयोग बुरा नहीं कहा जा सकता । डेश का चिह्न इस प्रकार का—
होता है ।

डोंगर—संज्ञा पु० [सं० दुर्ग (= पहाड़) या देशों दुर्गर] [बी० प्रस्था० डोंगरी] पहाड़ । टीला । भीटा । उ०—(क) एक फूक बिष ज्वाल के मन डोंगर जरि जाहि ।—सुर (शब्द०) । (ख) डोंगर को बज उवाहि बजाऊँ । ता पाछे बज जोजि बहाऊँ ।—सुर (शब्द०) । (ग) चित्र विचित्र विविध पुग डोलत डोंगर दीप । जमु पुर सीधनि बिहरत छैन ध्वारे स्वांग ।—तुलसी (शब्द०) ।

डोंगा—संज्ञा पु० [सं० द्रोण] [बी० प्रस्था० डापी] १. बिना पाल की नाव । २. बड़ी नाव ।

मुहा०—डोंगा पार होता या नाला = काम निबटना । छुटकारा होना ।

डोंगी—संज्ञा बी० [हि० डोंगा] १. बिना पाल की छोटी नाव । २. छोटी नाव । १. बड़ा बरतन जिसमें मोहार लोहा लाल करके डुभाते हैं ।

डोंगड़ा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'डोंगड़ा' ।

डोंडा—संज्ञा पु० [सं० दुण्ड] १. बड़ी हलयाची । २. टोंटा । कारतूस । उ०—चंद्रबाण सपर्यं धिराजे । जमु हने सोइ बचे

जु धागे । धरि बंदूक घठारह छोड़े । इतने उबिस होय तब बोंड़े ।—हनुमान (शब्द०) ।

डोंडी†—संज्ञा बी० [सं० दुण्ड] १. पोस्ते का फल जिसमें से धकीम निकलती है । कपास की कली । उ०—सोबा, मण्डपुर राजकुमार । ज्यों कपास की डोंडी में सोता है पैर पसार । एक कीठ नन्हा सा श्वेत, दुदुख सुकुमार ।—बंदन०, पृ० ६५ । २. उमरा मुँह । टोंटी ।

डोंडी—संज्ञा बी० [सं० द्रोणी] डोंघी । छोटी नाव ।

डोंडो—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'डोंडो' ।

डोंब—संज्ञा पु० [देशी] दे० 'डोम' ।

डोई—संज्ञा बी० [देशी डोमा; हि० डोकी] काठ की डोंडी की बड़ी करखी जिससे कड़ाह में दूध, घी बाशनी आदि चलाते हैं ।

विशेष—यह वास्तव में छोटे या पीतल का एक कटोरा होता है जिसमें काठ की लंबी डोंडी खड़े बल लगी रहती है ।

डोक—संज्ञा पु० [देश०] छुहारा जो पककर पीछा हो जाय । पकी हुई खजूर ।

डोकनी†—संज्ञा बी० [देश०] कटोरी । उ०—बाँस का डोंगा, काठ की डोकनी तथा बेंत की डलिया ।—नेपाल०, पृ० ३१ ।

डोकर—संज्ञा पु० [हि०] [बी० डोकरी] दे० 'डोकरा' ।

डोकरडा†—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'डोकरा' ।

डोकरा—संज्ञा पु० [सं० दुष्कर, प्रा० दुष्कर ?] [बी० डोकरी] १. बड़ा आदमी । अशक्त और बुद्ध मनुष्य । २. पिता ।

डोकरिया†—संज्ञा बी० [हि० डोकरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'डोकरी' ।

डोकरी—संज्ञा बी० [हि० डोकरा] बूढ़ी स्त्री । उ०—तहाँ माय में एक डोकरी की घर मिल्यो ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १२० ।

डोकरी—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'डोकरा' ।

डोका—संज्ञा पु० [सं० द्रोणक] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं ।

डोका†—संज्ञा पु० [देश०] डठल । उ०—उकरडी डोका चुगइ, भरस डंभायड धाण ।—ढोला०, पृ० ३३६ ।

डोकिया—संज्ञा बी० [हि० डोका] काठ या छोटा कटोरा वा बरतन जिसमें तेल, उधटन आदि रखते हैं ।

डोकी—संज्ञा बी० [हि० डोका] काठ का छोटा बरतन वा कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं ।

डोंगर—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'डोंगर' ।

डोंगरा—संज्ञा पु० [हि० डोंगर] जम्बू, कश्मीर, काँगड़ा आदि में बसी एक प्रसिद्ध जाति या उस जाति के व्यक्ति ।

डोंगरी—संज्ञा बी० [हि०] १. डोंगरा जाति के लोगों की बोली जो पंजाबी की एक शाखा है । २. छोटे छोटे घर । उ०—काम करने के लिये मीलों दूर साधारण से छोटे छोटे घर बना लिए हैं, जिन्हें डोंगरी कहते हैं ।—किन्नर०, पृ० ६६ ।

डोज—संज्ञा बी० [सं० डोज] माया । बुराई । मोटापे ।

डोड़थी—संज्ञा स्त्री० [हि० डीडा + हाथ] तलवार (डि०) ।

डोड़हा—संज्ञा पुं० [सं० डुएडुम] पानी में रहनेवाला साँप ।

डोड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता जो शीशु के काम में आती है ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह मधुर, शीतल, नेत्रों को हितकारी, त्रिदोषनाशक और वीर्यवर्धक मानी जाती है । इसे जीवंती भी कहते हैं ।

डोडो—संज्ञा पुं० [सं०] एक चिड़िया जो अब नहीं मिलती ।

विशेष—यह चिड़िया मारिक्कास (मिरिच के) टापू में जुलाई १६८१ तक देखी गई थी । इसके चित्र यूरोप के भिन्न भिन्न स्थानों में रखे मिलते हैं । सन् १८६६ में इसकी बहुत सी हड्डियाँ पाई गई थीं । डोडो भारी और बेढंगे शरीर की चिड़िया थी । डोलडोल में बत्तख के बराबर होती थी, न अधिक उड़ सकती थी, न और किसी प्रकार अपना बचाव कर सकती थी । मारिक्कास में यूरोपियनों के बसने पर इस दीन पक्षी का समूल नाश हो गया ।

डोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'हथोड़ी' । उ०—(क) इनके मिलने में डोड़ी पहरा नहीं लगता । —श्रीनिवास ग्रं० (नि०), पृ० ५ । (ख) देसोतारी डोड़ियाँ गोला करे मलार ।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ८७ ।

डोब—संज्ञा पुं० [हि० डुबना] डुबाने का भाव । गोता । डुबकी ।

मुहा०—डोब देना = गोता देना । डुबाना । जैसे, कपड़े को रंग में दो तीन डोब देना । कलम को स्याही में डोब देना ।

डोबना—क्रि० सं० [हि० डुबाना] डुबकी देना । डुबाना । गोता देना । उ०—प्रागल डोई पाछल तारे ।—प्राण०, पृ० ४६ ।

डोबा—संज्ञा पुं० [हि० डुबाना] गोता । डुबकी ।

मुहा०—डोब देना या मरना = डुबाना । गोता देना । जैसे, कपड़े को रंग में डोबा देना, कलम को स्याही में डोबा देना ।

डोमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताजा सहभा ।

डोम—संज्ञा पुं० [सं० डम, देशी डुब, डोंब] [जो० डोमिनी, डोमनी] १. अस्पृश्य नीच जाति जो पंजाब से लेकर बंगाल तक सारे उत्तरी भारत में पाई जाती है । उ०—यह देखो डोम लोगों ने सूखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़ पकड़कर बेटी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २६७ ।

विशेष—स्मृतियों में इस जाति का उल्लेख नहीं मिलता । केवल मत्स्यसूक्त वंश में डोमों को अस्पृश्य लिखा है । कुछ लोगों का मत है कि ये डोम बौद्ध हो गए थे और इस धर्म का संस्कार इनमें अब तक बाकी है । इसमें कोई संदेह नहीं कि किसी समय यह जाति प्रबल हो गई थी, और कई स्थान डोमों के अधिकार में आ गए थे । गोरखपुर के पास डोमनगढ़ का किला डोम राजाओं का बनवाया हुआ था । पर अब यह जाति प्रायः निकृष्ट कर्मों ही के द्वारा अपना निर्वाह करती है । समान पर शत्रु बनाने के लिये भाग देना, शत्रु के ऊपर का कफन सेना, सुप, उले आदि बेचना आचक्य डोमों का काम

है । पंजाब के डोम कुछ इनसे भिन्न होते हैं और जंगलों से फल और जड़ी बूटी काकर बेचते हैं ।

२. एक नीच जाति जो पंगल के घबसरो पर लोगों के यहाँ जाती बजाती है । डाडो । मीरसी ।

डोमकीआ—संज्ञा पुं० [हि० डोम + कोआ] बड़ी जाति का कीड़ा जिसका सारा शरीर काटा होता है । डाम काक या डोम काय नाम भी इसके हैं ।

डोमड़ा—संज्ञा पुं० [हि० डोम + ढा (धर)] दे० 'डोम' । उ०—शमशान के डोमड़ों तक की नौकाएँ ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ११३ ।

डोमतमौटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी जाति जो पीतल तबे आदि का काम करती है ।

डोमनी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाम] १. डोम जाति की स्त्री । २. डोम की स्त्री । ३. उस नीच जाति की स्त्री जो उत्सवों पर बाने बजावे का काम करती है । ये स्त्रियाँ पहले वजाने के पतिरिक्त कहीं कहीं वैशाखति भी करती हैं ।

डोमसाह—संज्ञा पुं० [हि० डोम + साह] संभोद आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसे पीपड़ कह भी कहा है । वि० दे० 'पीपड़ वृक्ष' ।

डोमा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पत्ता ।

डोमाकाग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० डोगु + काग] दे० 'डोमकीपा' । उ०—घँवर पनंग चरे भी तागा । काइल, भुमइल, डोमा-काया ।—बायसी ग्रं०, पृ० १६३ ।

डोमिन—संज्ञा स्त्री० [हि० डोम] १. डोम जाति की स्त्री । २. मीरासियों की स्त्री । दे० 'डोमनी' । उ०—नटिनी डोमिन डाङ्गिनी सङ्गनायन परकार । निरतन नाथ विनोद सौं विहंसत खेचत नार ।—बायसी (शब्द०) ।

डोमीनियन—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वतंत्र शासन या सरकार । २. स्वतंत्र शासनवाला देश या साम्राज्य । जैसे, ब्रिटिश डोमीनियन । ३. उपनिवेश । अधिराज्य । उ०—पर भारत को सन् १९३५ के अधिनियम द्वारा डोमीनियन का दर्जा नहीं मिला था ।—भारतीय०, पृ० २६ ।

यौ०—डोमीनियन स्टेट = अधिराज्य का दरजा । अधिनिवेशिक राज्य का पद ।

डोर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डोरा । ताया । बाया । रस्सी । सुत । उ०—डोठि डोर तेना दही, धिरकि कप रस तोय । यदि मो घट प्रीतय लियो मन बबनीत बिलोय ।—रसनिधि (शब्द०) । २. पतल या गुड़ी उड़ावे का मजिदर तागा । १. सिलसिला । कतार । ४. मबलंब । सहारा । लगाव ।

मुहा०—डोर पर बगाना = रास्ते पर जाना । प्रयोजनसिद्धि के अनुकूल करना । डब पर जाना । प्रयुक्त करना । परधाना । डोर भरना = कपड़े के किनारे को कुछ पीड़कर उसके भीतर ताया भरकर सीना । फलीता लगाना । डोर मजबूत होना = जीवन का सुत्र दृढ़ होना । शिदगी बाकी रहना । डोर होना = मुग्ध होना । मोहित होना । लट्टू होना । वि० दे० 'डोरी' ।

डोरक—संज्ञा पु० [सं०] डोरा । तागा । सूत्र । धागा ।

डोरबा—संज्ञा पु० [देश०] धाने का कंकन, जो व्याह में बंधता है और जिसे खोलकर घर वधू को जुवा खेलाने की रीति चलती है । उ०—खेले जुवा डोरबा खोले । सह सुभ कारज सारिया । —रघु० क०, पु० ५७ ।

डोरना—संज्ञा पु० [हि० डोर] १० 'डोरा' । उ०—हरीचंद यह प्रेम डोरना को कैसे करि छूटे ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पु० ४६२ ।

डोरही—संज्ञा जी० [देश०] बड़ी कटाई । बड़ी भटकटैया ।

डोरा^१—संज्ञा पु० [सं० डोरक] १. रुई, सन, रेशम आदि को बटकर बनाया हुआ ऐसा खंड जो चौड़ा या मोटा न हो, पर सबाई में लकीर के समान दूर तक चला गया हो । सूत्र । सूत । तागा । धागा । जैसे, कपड़ा पीने का डोरा, माला गुंथने का डोरा । २. धारी । लकीर । जैसे, —कपड़ा हुरा है, बीच बीच में खाल डोरे हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—होना ।

३. माँझों की बहुत महीन लाल लसों जो साधारण मनुष्यों की माँझ में उस समय दिखाई पड़ती हैं जब वे नये की उम्र में होते हैं या सोकर उठते हैं । जैसे, —माँझों में लाल डोरे कानों में बाधियाँ । ४. तलवार की धार । उ०—डोरन में बाछे पीनी आछे घाये पाछे प्रति मारी ।—पद्माकर प्र०, पु० २८७ । ५. तपे धी की धार, जो दास आदि में ऊपर से डालते समय बंध जाती है ।

मुहा०—डोरा देना = तपा हुआ धी ऊपर से डालना ।

६. एक प्रकार की करछी जिसकी डीढ़ी लड़े बल लगी रहती है और जिससे धी निकालते हैं या दूध बाधिकाह में चलाते हैं । परी । ७. स्नेहसूत्र । प्रेम का बंधन । लयन ।

मुहा०—डोरा डालना = प्रेमसूत्र में बद्ध करना । प्रेम में फँसाना । अपनी धोर प्रयुक्त करना । परचाना । उ०—यह डोरे कहीं धोर डालिए, समझे आप ।—फिसाना०, भा० ३, पु० १२५ । डोग लगना = स्नेह का बंधन होना । प्रीति संबंध होना ।

८. वह वस्तु जिसका अनुसरण करने से किसी वस्तु का पता लगे । अनुसंधान सूत्र । सुराग । उ०—जुबति जोरु में मिलि यह नेकु न देन लखाय । सोधे के डोरे झपी, झली चली संघ जाय ।—बिहारी (शब्द०) । ९. काजल वा घुस्मे की रेखा । १०. नृत्य में कंठ की पति । नाचने में गरदन हिलाने का भाव ।

डोरा^२—संज्ञा पु० [हि० डोड़] पोस्ते का डोड़ । डोडा ।

डोरि—संज्ञा जी० [हि० डोर] १० 'डोरी' । उ०—ज्यों कवि डोरि बांधि बाजीगर कन कन की चौहटें नचायो ।—सूर०, १।३२९ ।

डोरिया^१—संज्ञा पु० [हि० डोरा] १. एक प्रकार का सूती कपड़ा जिसमें कुछ मोटे सूत की लंबी धारियाँ बनी हों । २. एक प्रकार का बगला जिसके पैर हरे होते हैं । यह श्वेत के अनुसार रंग बदलता है । ३. जुलाहों के यहाँ तागा उठाने वाला लड़का । ४. एक नीच जाति जो राजाओं के यहाँ

शिकारी कुत्तों की रक्षा पर नियुक्त रहती थी । ये लोग कुत्तों को शिकार पर सवारी थे ।

डोरिया^२—संज्ञा जी० [हि०] १० 'डोरी' । उ०—सुरत सुहागिनि जल भरि लावे बिन रसरी बिन डोरिया ।—घरम०, पु० ३५ ।

डोरियाना—क्रि० सं० [हि० डोरी+प्राना (प्रत्य०)] पशुओं को रस्सी से बांधकर ले चलना । बागडोर लगाकर घोड़ों को ले जाना । उ०—गवने भरत पयादेहि पाये । कोतल संग जाहि डोरियाये ।—तुलसी (शब्द०) । २. परचाना । हिलगाना ।

डोरिहार—संज्ञा पु० [हि० डोरी+हारा] [जी० डोरिहारिन] पटवा ।

डोरी—संज्ञा जी० [हि० डोरा] १. कई डोरों या तागों को बटकर बनाया हुआ खंड जो सबाई में दूर तक लकीर के रूप में चला गया हो । रस्सी । रज्जु । जैसे, पानी भरने की डोरी, पंखा खींचने की डोरी ।

मुहा०—डोरी खींचना = सुध करके दूर से अपने पास बुलाना । पास बुलाने के लिये स्मरण करना । जैसे,—जब भगवती डोरी खींचेगी तब जायेंगी (स्त्रि०) । डोरी लगना = (१) किसी के पास पहुँचने या उसे उपस्थित करने के लिये लगातार ध्यान बना रहना । जैसे,—प्रब तो घर की डोरी लगी हुई है । उ०—आरति धरज लेहु सुनि मोरी । चरनन लागि रहे दृढ़ डोरी ।—जग० श०, पु० ५८ ।

२. वह तागा जिसे कपड़े के किनारे को कुछ मोड़कर उसके भीतर डालकर सीते हैं ।

क्रि० प्र०—भरना ।

३. वह रस्सी जिसे राजा महाराजाओं या बादशाहों की सवारी के आगे आगे हृद बांधने के लिये सिपाही लेकर चलते हैं ।

विशेष—यह रास्ता साफ रखने के लिये होता है जिसमें डोरी की हृद के भीतर कोई जा न सके ।

क्रि० प्र०—प्राना ।—चलना ।

४. बांधने की डोरी । पाषा । बंधन । उ०—मैं मेरी करि जन्म गंवावत जब लगि परत न जम को डोरी ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—डोरी टूटना = संबंध टूटना । उ०—का तकसीर भई प्रभु मोरी । काहे टूटि जाति है डोरी ।—जग० श०, पु० ६४ । डोरी ढीली छोड़ना = देखरेख कम करना । चौकसी कम करना । जैसे,—वहाँ डोरी ढीली छोड़ी कि बच्चा बिगड़ा ।

५. बाँझदार कटोरा जिससे कड़ाह में दूध, बाणनी आदि चलाते हैं ।

डोरे—क्रि० वि० [हि० डोर] साथ पकड़े हुए । साथ साथ । संग संग । उ०—(क) प्रयुक्त निचोरे कल बोलत निहोरे नैक, सखिन के डोरे 'देव' डोले जित तित कों ।—देव (शब्द०) । (ख) बानर फिरत डोरे डोरे ग्रंथ टापसनि, शिव को समाज कैधों आधि को सदन है ।—केशव (शब्द०) ।

डोला^१—संज्ञा पु० [सं० डोल (= झूलना, लटकाना)] १. जोड़े का एक बोल बरतन जिसे कुर्पे में खटकाकर पानी खींचते हैं ।

२. हिडोला । झूला । पामना । उ०—(क) सघन कुंज में डोल बनायो झूलत है पिय प्यारी ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) प्रभुहि चितै पुनि चितै यहि, राजत लोचन ओख । सेहत मनसिज मीन जुग, अनु बिचि मंडल डोल ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—डोल उत्पन्न=दे० 'डोलोत्पन्न' । उ०—सो इतने ही उनको सुधि आई जो पाजु सो डोल उत्पन्न की बिब है ।—
सो सो बावन, भा० १, पृ० २२६ ।

३. डोली । पालकी । शिविका । उ०—यहा डोल दुलहिन के चारी । रेह बताय होह उपकारी ।—रघुराज (शब्द०) ।
† ४. बायिक उत्सवों में निकलनेवाली चौकियाँ या विमान ।
६. जहाज का मस्तूल (जहा०) ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।

७. कंप । कलथली । झकथल । उ०—बावसाह कहे देव न बोव । चढ़े ली परे जवत मई डोव ।—जायसी (कव्द०) ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

डोल^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की काजी मिट्टी जो बहुत उपजाऊ होती है ।

डोला^३—वि० [हि० डोलना] डोलनेवाला । चंचल । उ०—तुम बिनु कोरे पवि हिया, तब तिनउर था डोल । तेहि पर बिरह जराइके, यह उड़ावा भोख ।—जायसी (शब्द०) ।

डोलक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काज का ताल देने का एक प्रकार का बाजा ।

डोलखी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोल + खी (प्रत्य०)] १. छोटा डोल । २. फूल या फल आदि रखकर हाथ में लटकाकर ले चलने योग्य बसि, बेंत आदि का पाज ।

डोलखाल—संज्ञा पुं० [देश०] १. खलना फिरना । २. हिसा के लिये खाल । पालाने खाल ।

क्रि० प्र०—डरना ।

डोलढाक—संज्ञा पुं० [हि० ढाक ?] पैंगरा नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी के तख्ते बनते हैं । वि० दे० 'पैंगरा' ।

डोलवहल—संज्ञा पुं० [हि०] झूलचल । उ०—डोलवहल अणनंगुर है, मत व्यर्थ डरो । सो बार उजड़ने पर भी है दुनिया बसती ।—सुत०, पृ० ४८ ।

डोलना^१—क्रि० प्र० [सं० डोलना (= लकड़वा, झुलना)] १. झुलना । चलायमान होना । गति में होना । २. चलना । फिरना । टहलना । जैसे,—चोपाए चारों ओर डोल रहे हैं ।
उ०—(क) भक्तविरह कातर कवनामय, डोलत पाछे सागे ।—सूर०, १।८। (ख) जाहि बन कैजो न डोल रे । ताहि बन पिया हसि बोल रे ।—विद्यापति०, पृ० ११६ ।

यौ०—डोलना फिरना = चलना घूमना ।

३. चला जाना । हटना । डूर होना । जैसे,—यह ऐसा झकड़कर मांगता है कि डूलाने से नहीं डोलता । ४. (चिरा) बिचलित होना । (चिरा का) छू न रह जाना । (चिरा का) किसी

बात पर) जमा न रहना । टिगना । उ०—(क) ममं बचन जब सीता बोला । हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बटु करि कोटि कुतर्क जयारवि बोलइ । अचल सुता मनु अचल बयारि कि डोलई ?—तुलसी (शब्द०) ।

डोलना^२—संज्ञा पुं० [सं० डोलन] दे० 'डोला' ।

डोलनि^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डोलना] डोलने की स्थिति या कार्य । उ०—वैसिए हंसनि, चहुनि पुनि डोलनि । वैसिए सटकनि, मटकनि, डोलनि ।—नंद० प्र०, २६५ ।

डोलरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोल + री (प्रत्य०)] पलंग । छाट । भोषी ।

डोला—संज्ञा पुं० [सं० डोल] [स्त्री० भत्या० डोली] १. स्त्रियों के बैठने की वह बंद सवारी जिसे कहार कंधों पर लेकर चलते हैं । पालकी । मियाना । शिविका ।

मुहा०—(किसी का) डोला भेजना = दे० 'डोला देना' उ०—
डोला भेजि दीवै जोन मांगत दिल्ली को पति, मोरहव कहत दीव मेरी सीस वध रे ।—हम्मीर०, पृ० ९० । डोला मांगना = ब्याह के लिये कन्या मांगना । उ०—मुसलमानों द्वारा डोला की मांग को प्रस्वीकार करने पर अनुर धाकमल किया गया तथा उनका किना जीत लिया गया ।—पं० दरिया (भू०), पृ० १० । (किसी का) डोला (किसी के) सिर पर या चौड़े पर उछलना = किसी दूसरी स्त्री का संबंध या प्रेम किसी स्त्री के पति के साथ होना । डोला देना = (१) किसी राजा या सरदार की भेंट की तरज पर अपनी बेटी देना । (२) पूर्वी धीर नीची जातिओं में प्रचलित एक प्रथा । अपनी बेटी की वर के घर पर से जाकर ब्याहना । डोला निकालना = दुलहिन को बिदा करना । डोला लेना = भेंट में कन्या लेना ।

२. वह भाँका जो भूले में दिया जाता है । पैग ।

डोलाना—क्रि० प्र० [हि० डोलना] १. झुलाना । चलाना । गति में रखना । जैसे, पंखा डोलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. हटाना । डूर करना । भगाना ।

डोलायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० डोलायंत्र] दे० 'डोलायंत्र' ।

डोलिया^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डोली] डोली । पालकी । उ०—
छोट मोट डोलिया चदन कं, छोटे चार कहार हो ।—
धरम०, पृ० ६२ ।

डोलियाना—क्रि० प्र० [हि० डोलना] १. किसी वस्तु को चुपके से हटा देना । किसी चीज को गायब कर देना । २. दे० 'डोली करना' ।

डोली—संज्ञा स्त्री० [हि० डोला] स्त्रियों के बैठने की एक सवारी जिसे कहार कंधों पर उठाकर ले चलते हैं । पालकी । शिविका । उ०—गाँव चोपासर की डोली के बाबत जो हाल महकमे बंदोबस्त से मिला उसकी नकल आपकी सेवा में भजता हूँ ।—सुंदर प्र० (जी०), भा० १, पृ० ७५ ।

डोली करना—क्रि० प्र० [हि० डोलना] धता धताना । हटाना । टालना ।—(दलाल) ।

डोली डंडा—संज्ञा पुं० [हि०] बालकों का एक खेल ।

डोल—संज्ञा स्त्री० [देख०] १. रेबेंब चीनी ।

विशेष—इसका एक हिमालय के काँचका, नेपाल, सिक्किम आदि प्रदेशों के जंगल में होता है। वहाँ से इसकी लक, जो पीली सीली होती है, मोटे की धोर सेकी जाती है धोर बाजारों में बिकती है। पर, गुल में यह चीन की रेबेंब (रेबेंब चीनी), छुन की रेबेंब (रेबेंब जलाई) या बिजायती रेबेंब के समान नहीं होती। इसे परमचल धोर चुकरी भी कहते हैं।

२. एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह बाँस पूर्वी बंगाल, आसाम और सूतान से लेकर बरमा तक होता है। इसकी लो जातियाँ होती हैं—एक छोटी, दूसरी बड़ी। यह दोनों धोर छाते बनाने के काम में अधिकतर जाती है। डोकने धोर पान रखने के डले भी इससे बनते हैं।

डोलोत्सव—संज्ञा पुं० [सं० धोलोत्सव] दे० 'डोलोत्सव'। उ०—
जब भी सुसाँ की बाँसलुव लो कहें, जो जब जो दुख
डोलोत्सव कीन दीन कीन प्रकार करयो ?—जो सो बावन०,
भा० १, पृ० २२१।

डोला—संज्ञा पुं० [देख०] बड़द गा बावक को पीछकर खीर
छठने पर बनाया जानेवाला चिबड़ा या सजटा।

डोहरा—संज्ञा पुं० [देख०] काठ का एक प्रकार का बरतव जिसके
कोरू के बिना हुआ रम निकाला जाता है।

डोहली—संज्ञा स्त्री० [हि० डोलो, अर्धगम डोहली (जैसे, बंहर ०
बंवर] दे० 'डोली'। उ०—मोर गयो डोहली माँहि। साकुर
पयो नयो बज माँहि।—रा० क०, पृ० २१३।

डोहि, **डोही**—संज्ञा स्त्री० [हि० डोहि] दे० 'डोही'। उ०—छतनी
बचनी डोहि धोर कछी बहु कछी।—सूदन (शब्द०)।

डोहीजना—क्रि० प्र० [देख०, गुल० हि० डोहना] मन्वेपर
करना। डूँकना। डोलना। उ०—मन धीखाण्डत बड़ हुबड़
बाली हुबड़ त प्राण। काइ मिथीबड़ मावली डोहीबड़
महिराण।—डोला०, पृ० २११।

डोहा—संज्ञा पुं० [हि०] डोहा। नाव। उ०—बसके पहार
भार प्रगटयो पहार भस डोहानि डोहा चले समर सुकाने हैं।
रसरतन, पृ० १०।

डोहाना—क्रि० प्र० [हि० डोहाडोल] डोहाडोल रहना। विचलित
होना। बबरना।

डोही—संज्ञा स्त्री० [सं० डोही] १. एक प्रकार का डोल जिसे
बजाकर किसी बात को बतलाना की जाती है। डोहोरा।
हुगडुमिया। उ०—जिसे डोही बुझि फेरी जाये। मन हुनो के
भीड़ उठाले।—हिन्दी प्रेम०, पृ० २७४।

क्रि० प्र०—डोहना।—बचना।—बनाना।

मुहा०—डोही देना = (१) डोल बजाकर सर्वसाधारण को सूचित
करना। मुनाही करना। (२) मन किसी से कहते फिरना।
डोही बजना = (१) बोधना होना। (२) डुहाई फिरना।
जय जयकार होना। बबती होना। उ०—लोड़ी के बर डोही
बाणी धोछी निपट अजानो।—सूर (शब्द०)।

२. वह सूचना जो सर्वसाधारण को डोल बजाकर दी जाय
बोधना। मुनाही।

क्रि० प्र०—फिरना।—फेरना। उ०—तब ब्रज के गामन डोई
फेरी।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १००।

डोरा—संज्ञा पुं० [देख०] एक प्रकार की घास जो खेतों में पैद
हो जाती है। इसमें खाँकी की तरह दाने पड़ते हैं जो खाने
कठ्ठूए होते हैं।

डोह, **डोहू**—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु'। उ०—नील पा
परोह अणिगण कणिग धोखे जाइ। खुनखुनाकर हँसत मोह
नचत डोह बजाइ।—सूर (शब्द०)।

डोभा—संज्ञा पुं० [देख०] काठ का चमचा। काठ की हाँकी व
बड़ी करछी। उ०—मकड़ी डोभा कछुली सरस का
अनुहारि। सुप्रभु संपर्हहि परिहरहि धेवक सखा विचारि।—
बुचरी (शब्द०)।

डोका, **डोकी**—संज्ञा स्त्री० [देख०] पंडुक पत्ती। पंडुकी। उ०—
अधिचारिकापों की डोका ऐसी प्रगल्भ मानो डोका
—श्यामा०, पृ० ११।

डोर—संज्ञा पुं० [हि० डोल] डोल। डंग। प्रकार। उ०—(क)
घोरे डोर झोरन पे बोरन के वे गए।—पदमाकर प्र०, पृ०
१९१। (ख) पदमाकर चाँदनी चंवहु वे कछु मोर ही डोर
वे गए हैं।—पदमाकर प्र०, पृ० २०६।

डोर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डोर' उ०—गुहनी डोर सुरति के धों
मेरा मुभक्त मिलाहीं।—राम० धर्म०, पृ० ३७५।

डोर, **डोरू**—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु'। उ०—(क) का
बजियं डोर रुद्र समारी।—प० रासो पृ० १७७। (ख) बर
डक डोक डमरुं तडकैं। धके मेह धुअै हके गेन हकै।—
पृ० रा० १३६०।

डोली—संज्ञा पुं० [हि० डोल ?] किसी रचना का प्रारंभिक रूप
डोचा। आकार। ढुहा। ठाट। ठट्टर।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

मुहा०—डोल डालना = डोचा खड़ा करना। रचना का प्रारंभ
करना। बनाने में हाथ लगाना। लगना लगाना। डोल पर
लाना = काठ छाँटकर सुडोल बनाना। हुस्त करना।

२. बनावड का डंग। रचना। प्रकार। ढब। जैसे,—इसी डोल
का एक पिलास मेरे लिये भी बना दो।

मुहा०—डोल से लगाना = ठीक क्रम से रखना। इस प्रकार
रखना जिससे देखने में अच्छा लगे।

३. तरह। प्रकार। भाँति। किस्म। तोर। तरीका। ४.
अभिप्राय के साधन की युक्ति। उपाय। तदवीर। न्योत।
आयोजन। सामान। उ०—कबीर राम सुमिरिए क्यों फिरे
धोर की डोल।—कबीर मं०, पृ० ३६५।

डौ—डोलडाल।

मुहा०—डोल पर लाना = अभिप्रायसाधन के अनुकूल करना।
ऐसा करना जिससे कोई मतलब निकल सके। इस प्रकार

प्रवृत्त करना जिसे कुछ प्रयोजन सिद्ध हो सके। डोल बांधना = दे० 'डोल लगाना'। डोल लगाना = उपाय करना। युक्ति बैठाना। जैसे,—कहीं से सी रूपए १०० का डोल लगाओ।

५. रंग ढंग। लक्षण। मायोजन। मामान। जैसे,—पानी बरसने का कुछ डोल नहीं दिखाई देता। ६. बटोबस्त में जमा का तकदमा। तखमीना।

डोल^२—संज्ञा स्त्री० खेतों की मेड़। डड़।

डोलहाल—संज्ञा पुं० [हि० डोल] उपाय। प्रयत्न। युक्ति। व्योत।

डोलदार—वि० [हि० डोल + फा० दार (प्रत्यय)] सुडोल। सुंदर। खूबसूरत।

डोलना^१—क्रि० स० [हि० डोल] गठना। किसी वस्तु को काट छाँट या पीट पाटकर किसी ढाँचे पर लाना। दुरुस्त करना।

डोला^१—संज्ञा पुं० [दे०] हाथ का गट्टा। उ०—(क) नब्बन की बाँह के डोले में गोली लगी थी।—फूफो०, पृ० ६१। (ख) करि हिकमत रहकला बनाई। डोलि नले ले धरी कलाई।—प्राण०, पृ० २२।

डोलियाना^१—क्रि० स० [हि० डोल] १. ढंग पर लाना। कह सुनकर अपनी प्रयोजन सिद्धि के अनुकूल करना। काट छाँटकर किसी ठीक प्रकार का बनाना, गड़कर दुरुस्त करना।

डोबर—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की बिड़िया जिसके पर, छाती और पीठ सफेद, घुम बाली और बीच लाल होती है।

डोबा—संज्ञा पुं० [दे०] दे० 'डोबा'।

ड्यम्भक^१—संज्ञा पुं० [मं० ड्यम्भक] दे० 'ड्यम्भक'। उ०—मेव बिबिजित भीख बिबिजित, बिबिजित ड्यम्भक रूपं। कहै बबीर निहँ लोग बिबिजित, ऐसा तत्त अनूप।—बबीर ग्रं०, पृ० १६३।

ड्यूक—संज्ञा पुं० [मं०] [स्त्री० ड्यूज] १. इंग्लैंड, फ्रांस, इटली आदि देशों के सामंतों और भूम्यधिकारियों की वंशपरंपरागत उपाधि। इंग्लैंड के सामंतों और भूम्यधिकारियों को दो जानेवारी सर्वोच्च उपाधि जिसका दर्जा प्रिंस के नीचे है। जैसे, कनाडा के ड्यूक, विक्टोरिया के ड्यूक।

विशेष—जैसे हमारे देश में सामंत राजाओं तथा बड़े बड़े जमींदारों को सरकार से महाराजाधिराज, महाराजा, राजाबहादुर, राजा आदि उपाधियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार इंग्लैंड में सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों को ड्यूक, मार्क्विस्, एर्ल, बाइकोट, बैरन आदि की उपाधियाँ मिलती हैं। ये उपाधियाँ वंशपरंपरा के लिये होती हैं। उपाधि पानेवाले के मरने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र या उत्तराधिकारी उपाधि का भी अधिकारी होता है। इस प्रकार अधिकारी क्रम से उस वंश में उपाधि बनी रहती है। अब यह भी नियम हो गया है कि जिसे सरकार चाहे केवल जीवन भर के लिये यह उपाधि प्रदान करे। मार्क्विस्, एर्ल, बाइकोट और बैरन उपाधिधारी लार्ड कहलाते हैं। मार्क्विस्,

बैरन आदि उपाधियाँ जापान में भी प्रचलित हो गई हैं।

२. सामंत। सरदार। राजा।

ड्यूटी—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. करने योग्य कार्य। कर्तव्य। धर्म। फज। जैसे,—स्वयंसेवकों ने बड़ी तत्परता से अपनी ड्यूटी पूरी की। २. वह काम जो सुपुं किया गया हो। सेवा। खिद्यमत। पहरा। जैसे,—(क) स्वयंसेवक अपनी ड्यूटी पर थे। (ख) कल सबेरे वहाँ उसकी ड्यूटी थी। ३. नौकरी का काम। जैसे,—वह अपनी ड्यूटी पर चला गया। ४. कर। चुंगी। महसूल। जैसे,—सरकार ने नमक पर ड्यूटी कम नहीं की।

ड्योढ़ा^१—वि० [हि० डेढ़] [स्त्री० ड्योड़ी] आधा और अधिक। किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा। डेढ़गुना।

यो०—ड्योड़ी गठ = एक पूरी और उसके ऊपर दूसरी आधी गठ। डेढ़गठ। मुदी।

ड्योढ़ा^२—संज्ञा पुं० १. ऐसा तंग रास्ता जिसके एक किनारे पर ढाल या गड्ढा हो।—(पासकी के कहार)। २. गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ ऊँचा हो। ३. एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें क्रम से अंकों की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

ड्योड़ी^३—संज्ञा स्त्री० [मं० देहली] १. द्वार के पाम की भूमि। वह स्थान जहाँ से होकर किसी घर के भीतर प्रवेश करते हैं। बोखट। दरवाजा। फाटक। २. वह स्थान जो पटे हुए फाटक के नीचे पड़ता है या वह बाहरी कोठरी जो किसी बड़े मकान में घुसने के पहले ही पड़ती है। उ०—महरी ने दरोगा साहब को ड्योड़ी पर जगया।—फिमाता०, भा० ३, पृ० २४। ३. दरवाजे में घुसते हो पड़नेवाला बाहरी कमरा। पोरी। पंवरी।

यो०—ड्योड़ीदार। ड्योड़ीवान।

मुहा०—(किसी की) ड्योड़ी खुलना = दरबार में आने की इजाजत मिलना। आने जाने की आज्ञा मिलना। (किसी की) ड्योड़ी बंद होना = किसी राजा या रईस के यहाँ आने जाने की मनाही होना। आने जाने का निरध होना। ड्योड़ी लगना = द्वार पर द्वारपाल बैठना जो बिना आज्ञा पाए लोगों को भीतर नहीं जाने देता। ड्योड़ी पर होना = दरवाजे पर या अधीनता में होना। नौकरी में होना। उ०—बन्नी : हुजूर, हमने यह बात किसी रईस के घर में आज्ञाक देखी ही नहीं। यहाँ चाहे बड़ बड़ के जो बातें बनाएँ किसी और की ड्योड़ी पर होती तो सके सके निकलवा दी जाती।—सेर कु०, पृ० ३२।

ड्योड़ी—[हि० डेढ़] डेढ़गुनी। दे० ड्योढ़ा।

ड्योड़ीदार—संज्ञा पुं० [हि० ड्योड़ी + फा० दार] दे० 'ड्योड़ीवान'।

ड्योड़ीवान—संज्ञा पुं० [हि० ड्योड़ी] ड्योड़ी पर रहनेवाला सिपाही या पहरेदार। द्वारपाल। दरबान उ०—जहाँ न ड्योड़ीवान पायजामा तन धारे।—धीधर पाठक (बन्नी०)।

ठ्योढ़, ठ्योढ़ा—संज्ञा पुं० [हि० ठेढ़] [वि० स्त्री० ठ्योढ़ी] १. एक धीर आधा अधिक। उ०—वह जिसके न, दून ठ्योढ़, पीन। जो वेदों में है सत्य, साम।—आराधना, पृ० २०।

ठ्योढ़ी—संज्ञा पुं० [हि० ठ्योढ़िया] द्वारपाल। ठ्योढ़ीदार। दरबान। उ०—सोभा ठ्योढ़ी प्रीत सवाई।—रा० ४०, पृ० ३१५।

ठूम—संज्ञा पुं० [धं०] १. एक प्रकार का घंगरेजी बाजा। होल। नगाड़ा। २. ढोल जैसे आकार का बड़ा पात्र या पीपा।

ठूङ्ग—संज्ञा स्त्री० [धं०] रेखाओं के द्वारा घनेक प्रकार की आकृति बनाने की कला। लकीरों से चित्र या आकृति बनाने की विद्या।

ठूङ्गरूम—संज्ञा पुं० [धं०] बैठने का कपरा। जिस कमरे में आनेवालों को बैठाया जाए। उ०—उनके लिये ठूङ्गरूम बनाकर मजाना पड़ता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७७।

ठूहवर—संज्ञा पुं० [धं०] नाकी हाँकने या चलावेवाला। जैसे, रेल का ठूहवर।

ठूई मिटिंग—संज्ञा स्त्री० [धं०] सूखी छपाई। छापेलाने में वह छपाई जो भिषाए हुए सूखे कागज पर की जाती है।

विशेष—इस प्रकार की छपाई के कागज की चमक नहीं जाती है और छपाई साफ होती है।

ठूान—वि० [धं०] बराबर। हारजीतशून्य। उ०—बाजी डूान रही।—गोदान, पृ० १३२।

ठूाप—संज्ञा पुं० [धं०] १. बूँद। बिंदु। २. वे० 'ठूाप सीन'।

ठूाप सीन—संज्ञा पुं० [धं०] १. नाट्यशाला या थिएटर के रंगमंच के धागे का परदा जो नाटक का एक अंक पूरा होने पर मिराया जाता है। यवनिका।

ठूापट—संज्ञा पुं० [धं०] १. धसबिबा। धसोहा। खर्चा। जैसे,—धपील का ठूापट पैपार कर कमिटी में भेज दिया गया। २. चेक। हुंडी।

ठूापट्समैन—संज्ञा पुं० [धं०] नक्शा बनानेवाला। स्थूल मानचित्र

प्रस्तुत करनेवाला। जैसे,—ड्राफ्ट्समैन ने मकान का नक्शा इंजीनियर के पास भेजा।

ठूाम—संज्ञा पुं० [धं०] पानी आदि द्रव पदार्थों को नापने का एक घंगेजी मान जो तीन मासे के बराबर होता है।

ठूामा—संज्ञा पुं० [धं०] १. रंगमंच पर पात्रों या नटों का आकृति, हाव भाव, वचन आदि द्वारा किसी घटना या दृश्य का प्रदर्शन। रंगमंच पर किसी घटना या घटनाओं का प्रदर्शन। अभिनय। २. वह रचना जिसमें मानव जीवन का चित्र अंकों और गभीकों आदि में चित्रित हो। नाटक।

ट्रिक—संज्ञा पुं० [धं०] मद्यपान। उ०—कैलाश ने कहा पहले ट्रिक चले, फिर खाना मंगाया जायगा।—संन्यासी, पृ० १४०।

ट्रिक्स—संज्ञा स्त्री० [धं०] बहुत से सिपाहियों या लड़कों को कई प्रकार के कम से लड़े होने, चलने, अंग हिलाने आदि की नियमित शिक्षा। कवायब। जैसे,—स्कूल में ट्रिल नहीं होती।

ट्रौ—ट्रिक्स मास्टर = कवायब सिखानेवाला शिक्षक।

ट्रैटनाट—संज्ञा पुं० [धं०] जंगी जहाज का एक भेद जो साधारण जंगी जहाजों से बहुत अधिक बड़ा, शक्तिशाली और भीषण होता है।

ट्रैने—संज्ञा पुं० [धं०] नगर के गंदे पानी के निकास का परनाला। मोरी। गंदगी के बहाववाली नाली।

ट्रैस—संज्ञा पुं० [धं०] पोशाक। वेशभूषा।

ट्रैस करना—क्रि० सं० [धं०] ट्रैस + हि० करना] जाव में दवा आदि भरकर बांधना। भरहम पट्टी करना। परस्पर आदि को चिकना और सुहोल करना। ३. बाल छोटना।

ट्रैगून—संज्ञा पुं० [धं०] १. सवार। सिपाही।

विशेष—पहले ट्रैगून पैदल और सवार दोनों का काम देते थे। पर अब वे सवार ही होते हैं।

२. रिसाले का नोकर। ३. क्रूर या उद्दंड व्यक्ति। जंगली आदमी। ४. पंखदार सौंप। सल नाग।

ढ

ढ—हिंदी वरांभाषा का चौदहवाँ व्यंजन और टवर्ष का चौथा अक्षर। इसका उच्चारण स्पष्ट भूज है।

ढंक—संज्ञा पुं० [सं० आवाहक, हि० ढाक] पलाश या छिदल की एक किस्म। उ०—जरी से भरती ठाँवहि ठाँवी। ढंक पराश जरे तेहि ठाँवी।—पद्मनाभत, पृ० १७।

ढंकना—संज्ञा पुं० [प्रा० ढंकण, हि० ढकना] ३० 'ढंकण'।

ढंकना(७) क्रि० सं० [सं० द्वापय, प्रा० धा० ढक, ढंक] ३० 'ढकना'। उ०—(क) धिमत केस पुरुष नहि धंकिय। प्रवीराज देखत सिर ढंकिय।—पृ० रा०, ६१। ७१४। (ख) समझि हासि सिर भर निन ढंक्यो।—पृ० रा०, ६१। ७१६।

ढंकी(७) संज्ञा स्त्री० [हि० ढंकना] ढकना। आच्छादन। उ०—

बेर कतेब न छाँपी बाँधी। सब ढंकी तजि छाणी।—मोरच०, पृ० २।

ढंका(७) संज्ञा पुं० [हि० ढाक] पलाश। ढाक। उ०—बकरी बान घस धनी बेधी रन बन ढंख। सजजहि तब सब रोवाँ पंखिहि तन सब पंख।—आयसी (शब्द०)।

ढंग—संज्ञा पुं० [सं० तङ्ग, तङ्गन (= चाल, गति ?)] १. क्रिया। प्रणाली। शैली। ढब। रीति। तोर। तरीका। जैसे,—(क) बोलने बालने का ढंग, बैठने उठने का ढंग। (ख) जिस ढंग से तुम काम करते हो वह बहुत अच्छा है। २. प्रकार। भाँति। तरह। किस्म। ३. रचना। प्रकार। बनावट। गढ़न। ढाँचा। जैसे,—वह गिलास और ही ढंग का है। ४.

प्रमिप्रायसाधन का मार्ग । युक्ति । उपाय । तद्विरी । डोल ।
जैसे,—कोई ढंग ऐसा निकालो जिसमें रुपया मिल जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—निकालना ।—बताना ।

मुहा०—ढंग पर चढ़ना = प्रमिप्रायसाधन के अनुकूल होना ।
किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ
अर्थ सिद्ध हो । जैसे,—उससे भी कुछ रुपया लेना चाहता हूँ,
पर वह ढंग पर नहीं चढ़ता है । ढंग पर लाना = प्रमिप्राय
साधन के अनुकूल करना । किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना
जिससे कुछ मतलब निकले । ढंग का = कार्यकुशल । व्यवहार-
बल । चतुर । जैसे,—वह बड़े ढंग का घादमी है ।

५. चाल ढाल । पावरण । व्यवहार । जैसे,—यह मार खाने का
ढंग है ।

मुहा०—ढंग बरतना = शिष्टाचार दिखाना । दिखाऊ व्यवहार
करना ।

६. धोखा देने की युक्ति । बहाना । होला । पाखंड । जैसे,—यह
तुम्हारा ढंग है ।

क्रि० प्र०—रचना ।

७. ऐसी बात जिससे किसी होनेवाली बात का अनुमान हो ।
लक्षण । आसार । जैसे,—रंग ढंग अच्छा नहीं दिखाई देता ।
८. दशा । अवस्था । स्थिति । न०—नैनन को ढंग सों अनंग
पिचकारिन ते, गातन को रंग पीरे पातन ते जानबी ।—
पद्माकर (शब्द०) ।

ढंगलजाड़—संज्ञा पुं० [हि० ढंग + उजाड़] धोड़ों के ढुम के नीचे
की एक भोरी जो ऐंनों में समझी जाती है ।

ढंगी—वि० [हि० ढंग] चालबाज । चतुर । चालाक ।

ढंढस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढंढरच' । उ०—ढंढस कर मन ते
हूर, सिर पर साहुब सवा हूर ।—गुलाब०, पृ० १२७ ।

ढंढार—वि० [देश०] बड़ा डरडा । बहुत बड़ा और बेडंग ।

ढंढेरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढंढेरा' । उ०—ता पाछे राजा जेम-
लजी ने सगरे ग्राम में ढंढेरा पिटाइ दियो ।—दी सी बावन०,
भा० १, पृ० २५७ ।

ढंढोलना(७)—क्रि० स० [प्रा० ढंढुल्ल, ढंढोल (= खोजना)] दे०
'ढंढोरना' । उ०—प्रहू फूटी दिसि पुंढरी हणहुलिया हय चट्ट ।
ढोलइ धण ढंढोनियउ, सीतल सुंदर घटु ।—ढोला०,
दृ० ६०२ ।

ढंकनः—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढकना', 'ढक्कन' ।

ढंकना^१—क्रि० स० [हि०] दे० 'ढकना' ।

ढंकना^२—संज्ञा पुं० [हि०] [श्री० ढंकनी] दे० 'ढकना' ।

ढंकुली—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'ढंकली' ।

ढंग(७)—संज्ञा पुं० [हि० ढंग] प्रमिप्राय साधने का उपाय । डोल ।
दे० 'ढंग' । उ०—वाही के जेए बलाय लो, बालम । हूँ तुम्हे
नीकी बतावति हो ढंग ।—देव (शब्द०) ।

ढंगलाना—क्रि० स० [हि० ढाल] लुढ़काना ।

ढंगिबाः—वि० [हि० ढंग + बा (प्रत्य०)] दे० 'ढंगी' ।

ढंढरच—संज्ञा पुं० [हि० ढंग + रचना] धोखा देने का प्रयोजन ।
पाखंड । बहाना । होला ।

ढंढोर—संज्ञा पुं० [धनु० धार्य धार्य] १. भाग की लपट । जवाला ।
लौ । उ०—(क) रहे प्रेम मन उरभा लटा । बिरह ढंढोर
परहि सिर जटा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कंधा जरे प्रगति
जनु लाए । बिरह ढंढोर जगत न बराए ।—जायसी (शब्द०)
२. काले मुँह का बंदर । लंगूर ।

ढंढोरची—संज्ञा पुं० [हि० ढंढोर + ची (प्रत्य०)] ढंढोरा फेरने-
वाला । मुनादी फेरनेवाला । उ०—लेकिन झूँकी और मोरा-
बियन धर्मप्रचारकों से ढंढोरची मुक्ति सैनिकों की तुलना नहीं
की जा सकती ।—किन्नर०, पृ० ६४ ।

ढंढोरना—क्रि० स० [हि० ढंढना] टटोलकर ढंढना । हाथ
ढालकर इधर उधर खोजना । उ०—(क) तेरे लाल मेरो
माखन लायो । दुपहर दिवस जानि घर सुनो ढंढोरि
आपही भायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) ब्रह्म पुरान भागवत
गीता चारों बरन ढंढोरी—कबीर० भा०, भा० १, पृ० ८५ ।

ढंढोरा—संज्ञा पुं० [धनु० ढम + ढोल] १. घोषणा करने का ढोल ।
डुगडुगी । डोड़ी ।

मुहा०—ढंढोरा पीटना = ढोल बजाकर चारों ओर जताना ।
मुनादी करना ।

२. वह घोषणा जो ढोल बजाकर की जाय । मुनादी ।

मुहा०—ढंढोरा फेरना = दे० 'ढंढोरा पीटना' ।

ढंढोरिया—संज्ञा पुं० [हि० ढंढोरा] ढंढोरा पीटनेवाला । डुगडुगी
बजाकर घोषणा करनेवाला । मुनादी करनेवाला ।

ढंढोलना—क्रि० स० [हि०] दे० 'ढंढोरना' उ०—रतन निराला
पाइया, जगत ढंढोछा वादि ।—कबीर ग्रं०, पृ० १५ ।

ढंपना^१—क्रि० घ० [हि० ढकना] किसी वस्तु के नीचे पड़कर दिखाई
न देना । किसी वस्तु के ऊपर से छेक लेने के कारण उसकी
छोट में छिप जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

ढंपना^२—संज्ञा पुं० ढाकने की वस्तु । ढक्कन ।

ढ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा ढोल । २. कुत्ता । ३. कुत्ते की पूंछ ।
४. ध्वनि । नाव । ५. माँग ।

ढई देना—क्रि० घ० [हि० धरना ?] किसी के यहाँ किसी काम
से पहुँचना और जबतक काम न हो जाय तबतक न हटना ।
धरना देना ।

ढकई^१—वि० [हि० ढाका] ढाके का ।

ढकई^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का केला जो ढाके की ओर होता है ।

ढकना^१—संज्ञा पुं० [सं० ढक् (= छिपाना)] [श्री० घल्पा० ढकनी]
वह वस्तु जिसे ऊपर ढाल देने या बैठा देने से नीचे की वस्तु
छिप जाय या बंद हो जाय । ढक्कन । चपनी ।

ढकना^२—क्रि० घ० किसी वस्तु के नीचे पड़कर दिखाई न देना ।
छिपना । जैसे—मिठाई कपड़े से ढकी है ।

संयो० क्रि०—जाना ।

ढकना^३—क्रि० सं० दे० 'ढाँकना' ।

ढकनिया^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढकनी' । उ०—सुभग ढकनिया
ढाँपि पट जतन राखि छीके समदायो ।—सूर (शब्द०) ।

ढकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढकना] १. ढाँकने की वस्तु । ढक्कन ।
२. फूल के आकार का एक प्रकार का गोदना जो हथेली के
पीछे की ओर गोदा जाता है ।

ढक्कपन्ना—संज्ञा पुं० [हि० ढक्कपन्ना (= पन्ना)] पलास पापड़ा ।

ढक्केढरु—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम ।

ढक्का^३—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. सूखी खाँसी में गले से होनेवाला
ठन ठन शब्द । २. सूखी खाँसी ।

ढका^३—संज्ञा पुं० [सं० ढाक] तीन मेर की एक तोल या बाट ।

ढका^३—संज्ञा पुं० [सं० ढाक] घाट । जहाज ठहरने का स्थान ।
(लण०) ।

ढका^३—संज्ञा पुं० [सं० ढका] बड़ा ढोल । उ०—नवति दुंदुभि
ढका बदन मारु ढका, चलत लागत धका कहत आगे ।—
सूरदास (शब्द०) ।

ढका^३—संज्ञा पुं० [अनु०] धक्का । टक्कर । उ०—(क) ढकनि
ढरेनि नेलि भबिब चले ले ठेलि नाथ न चलेगो बल धनल
भगवानो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ढकि गढ भड़ हड़
कोट के कंगुरे कोरि नेकु ढका देहँ ठेलन की डेरी सी ।—
तुलसी (शब्द०) ।

ढकिल^३—संज्ञा स्त्री० [हि० ढकेलना] एक दूसरे को ढकेलते हुए
वेग के साथ धावा । चढ़ाई । आक्रमण । उ०—ढकिल करी
सब ने अधिकारी । छोड़ी गुह लोगन की धाई ।—लाल कवि
(शब्द०) ।

ढकेलना—क्रि० सं० [हि० धक्का] १. धक्के से गिराना । ठेलकर
आगे की ओर गिराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. धक्के से हटाना । उल्टा कर सकलना । जैसे,—भीड़ को पीछे
ढकेलो ।

ढकेला ढकेली—संज्ञा स्त्री० [हि० ढकेलना] ठेलमठेला । आपस
में धक्का धुक्की ।

क्रि० प्र०—करना ।

ढकोरना^३—क्रि० सं० [अनु०] पी जाना । दे० 'ढकोसना' ।

ढकोसना—क्रि० सं० [अनु० ढक ढक] एकबारगी पीना । बहुत
खानापीना । जैसे, इतना दूध मत ढकोस लो कि कै
हो जाय ।

संयो० क्रि०—जाना ।—देना ।

ढकोसला—संज्ञा पुं० [हि० ढग + सं० कोशल] ऐसा आयोजन
जिससे लोगों की धोखा हो । धोखा देने का या मतलब साधने
का ढंग । धाँवर । मिथ्या जाल । कपट व्यवहार । पालख ।
उ०—इन ढकोसलों में क्या तथ्य है ।—कंकाल, पृ० १०४ ।
(ख) मगर यह इश्क सब ढकोसला ही ढकोसला है ।—
फिसाना, भा० १, पृ० ११ ।

क्रि० प्र०—करना ।—फैलाना ।

ढक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम । (कदाचित् 'ढाका') ।
२. विष्णाल आराधना मंदिर । बड़ा मंदिर (को०) ।

ढक्कन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढाकने की वस्तु । वह वस्तु जिसे
ऊपर से टाल देने या बैठा देने में कोई वस्तु छिप जाय या बंद
हो जाय । जैसे, बिबिया का ढक्कन, बरतन का ढक्कन । २.
(दरवाजा आदि) बंद करना या ढक देना (को०) ।

ढक्का^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक बड़ा ढोल । २. नगाड़ा । ढंका ।
उ०—गल भंगे पणव मुरन ढक्का बाद घनिन । घंटा नाद
बिच बिच गुनन :—भारतेंदु यंत्र, भा० २, पृ० ६०५ ।
२. ढमक । ३. छिया । दूराय (को०) । ४. अदर्शन ।
लोप (को०) ।

ढक्का^३—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ढका' ।

ढक्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रियों की उपासना में तारा देवी का
एक नाम (को०) ।

ढक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाल] पहाड़ की ढाल जिनसे होकर लोग
चढ़ते उतरते हैं ।—(पंजाब) ।

ढगण—संज्ञा पुं० [सं०] गिराने में एक मात्र गण जो तीन
मात्राओं का होता है । इसके तीन भेद हो सकते हैं; यथा—
१. ढ, २. ढा इनमें से ढहने की उच्चारण और ध्वजा,
दूसरे की पवन, तंद गमल, ताल और तीसरे की बलय है ।

ढचर—संज्ञा पुं० [हि० ढाँचा] १. किसी वस्तु को बनाने या ठीक
करने का सामान या ढाँचा । आयेजन और सामान ।

क्रि० प्र०—फैलाना । बधिन ।

२. टटा । बगेडा । जंजाल । धधा । कायधार । ३. घाड़ंबर । झूठा
आयोजन । ढकोसला ।

क्रि० प्र०—फैलाना ।

४. बहुत दुबला पतला और धूँड़ा ।

ढटौंगड़—संज्ञा पुं० [सं० ढट्टर (= मोटा आदमी), हि० भीग, धीगड़ा]
१. बड़े डोनाडोत का । डींग । जैसे—इतने बड़े ढट्टीगड़ हुए पर
कुछ शऊर न हुआ । २. हष्ट पुष्ट । मुटंडा । मोटा ताजा ।

ढटौंगड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढटौंगड़' ।

ढटौंगर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढटौंगड़' ।

ढट्टा^३—संज्ञा पुं० [हि० डाढ़ या देश०] बड़ा भारी माका या मुरेडा जो
सिर के आतिरिक्त टाढ़ी और कानों को भी ढाँके हो ।

ढट्टा^३—संज्ञा पुं० [हि० डाट] बंद या मुँह बसकर बंद करने की
वस्तु । डाट । ठेपी । कान ।

ढट्टी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डाढ़] टाढ़ी बाँधने की पट्टी ।

ढट्टी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डाट] किसी छेद को बंद करने की वस्तु ।
डाट । ठेपी ।

ढड्डकाना^३—क्रि० सं० [हि०] आगे बढ़ाना । जोर लगाकर ठेलना ।
ढलकाना । उ०—गाड़ी याकी मार्ग में, बल्लड़न करी न पेश ।
अब गाड़ी ढड्डकाय दे, धवल धंग हिरदेश ।—शुक्ल अभि०
अं० (इति०), पृ० ८८ ।

ढड्डा^३—संज्ञा [देश०] बहुत बड़ा । आवश्यकता से अधिक बड़ा ।
बड़ा और बेढंग ।

ठड्डा^१—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] १. ढाँचा । धंगों की वह स्थूल योजना जो किसी वस्तु की रचना के प्रारंभ में की जाती है ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।

२. घाटंबर । दिखावट का सामान । झूठा ठाट बाट ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।

ठड्डो—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठड्डा] १. बुड्ढी स्त्री । वह बूढ़ी स्त्री जिसके शरीर में ढड्डो का ढाँचा ही रह गया हो । २. जह्मदिन स्त्री । ३. मटमैले रंग की एक डिडिया जिसकी चोच पीली होती है । यह बहुत लडगी और निल्लानी है । चरखी ।

मुहा०—ठड्डो का ठड्डोवाला = पूर्ण बेवकूफ ।

ढडेसुरी—संज्ञा पुं० [हिं० ठाड + ग० ईश्वर] दे० 'ढाडेश्वरी' । उ०—कोउ बाँह को उठाप ढडेसुरी कहाइ, जाइ कोउ तो मथन कोउ नयन बिचार है ।—भीखा श०, पृ० ५५ ।

ठड्डर—संज्ञा पुं० [हिं०] शरीर । देह । ठड्डर । उ०—चडुधान तुच्छ ठड्डर बहिय कुरिग मीर बिय सिर टापी ।—पृ० ग०, १०१७ ।

ढनढन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढन ढन का शब्द ।

क्रि० प्र०—करना ।

ढनका—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढोल, नगाड़ा, आदि बाजो की ध्वनि । उ०—पेन रुपनि दुहुँ ओर चोप चुहल जाबरि सोर ढोल ढनक घोष मंगल सुनत सफल होत कान ।—धनानंद, पृ० ६०४ ।

ढनमनाना—क्रि० अ० [अनु०] लुढ़कना । ढलकना । उ०—मुठिका एक महाकवि हनी । दधिर बमत धनी ढनमनी ।—गुलसी (शब्द०) ।

ढपा—संज्ञा पुं० [अ० ढफ, हिं० ढफ] दे० 'ढफ' ।

ढपना^१—संज्ञा पुं० [हिं० ढापना] ढाकने का वस्तु । ढक्कन ।

ढपना^२—क्रि० अ० [हिं० ढकना] ढका होना । उ०—लससु सेत मारी दप्यो, तरल तरौना कान । परचो मनी सुरसर मलिल रवि प्रतिबिंबु बिहान ।—बिहारी (शब्द०) ।

ढपना^३—क्रि० स० [हिं० ढापना] ढाकना । ऊपर से ढोढ़ाना । छिपाना ।

ढपरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुपहरिया' । उ०—आर गहर पैडा मी रगड़ो लरो ढपारया पेहो ।—कबीर श०, भा० पृ० २२ ।

ढपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढापना] चूड़ीवालो की मंगीठी का ढकना ।

ढपला^१—संज्ञा पुं० [अ० ढफ, हिं० ढफ, ढप] दे० 'ढफला' ।

ढपली^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढफला] दे० 'ढफली' ।

ढपीला^१—वि० [हिं० ढापना] धाच्छादित करदेवाली । ढापनवाली । उ०—योवम के वसंत स्मृति की उपमा खंड की काली, बोझिल, ढपील, ढाल से देना अनुचित प्रतीत होता है ।—प्राधुनिक०, पृ० २३ ।

ढपू—वि० [देश०] बहुत बड़ा । ढड्डा ।

ढफ^१—संज्ञा पुं० [हिं० ढफ] दे० 'ढफ' । उ०—संज मुरज ढफ ताल बाँसुरी, मालर की झंकार ।—सूर (शब्द०) ।

ढफला^१—संज्ञा पुं० [हिं० ढफला] [अ० ढफली] दे० 'ढफला' । उ०—ढमकंत ढोल ढफला घगार । धमकंत धरनि धौसा फुंकार ।—सुजान०, पृ० ३८ ।

ढफारा^१—संज्ञा पुं० [अनु०] चिघड़ाइ । जोर से रोने या चिल्लाने का शब्द । ढफार । उ०—तब यः हृषभु छुड़ि ढफारा । कहै लाग का तोर बिगारा ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २६५ ।

ढव—संज्ञा पुं० [अ० ढव (= चलना, गति) या देश०] १. क्रियाप्रणाली । ढंग । रीति । तार तरीका । जय, काम करने का ढव । उ०—ताकन को उबना । उब को भात है न्यारी ।—पल्लव०, पृ० ४८ । २. प्रकार । ढाँचा । तरह । किस्म । जैसे,—जड़न जाने किस भाँति आदमी है । ३. रचना-प्रकार । बनाने का ढंग । ढाँचा । जैसे,—वह गिलास घोर हो ढव का है । उ०—आमियापान का ढव । युक्ति । उपाय । तदबीर । जैसे,—कौनो ढव से कामानकालता नाहिए ।

मुहा०—ढव पर चढ़ना = धर्मपथव्यवहार के अनुसृत होना । किसी का ढम प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दुर्गरका) कुछ धर्म सिद्ध हो । किसी का ऐसा व्यवसाय होना जिससे कुछ मतलब मिले । जैसे,—वही ढव पर चढ़ गया जो बहुत काम होगा । ढव पर लगना या लगना = धर्मपथव्यवहार के अनुसृत करना । किसी को ढम प्रकार प्रवृत्त करना कि उससे कुछ धर्म सिद्ध हो । आने पाने का ढव ।

५. गुण और स्वभाव । प्रकृति । यत्न । बान । देव ।

मुहा०—ढव बावना—(१) मत्वा करना । अनुसरण करना । (२) अच्छी आदत डालना । आचार व्यवहार की शिक्षा देना । धाऊँ गिराता । ढव पड़ना = आदत होना । बान या देव पड़ना ।

ढवका^१—संज्ञा पुं० [हिं०] उपाय । युक्ति । उ०—चेरनि असवार म्यान गुड़ काँट ओर तयो सब ढवका ।—गोरख०, पृ० १०३ ।

ढवरा^१—वि० [हिं० ढावर] दे० 'ढावर' ।

ढवरो—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढवरी] मिट्टी का तेल जलाने की गुच्छी-दार डिडिया । ढवरी । उ०—धुँआ अशिक देतो है, टिन की ढवरी, कम करतो उजियाया ।—आस्था, पृ० ६५ ।

ढवीला^१—वि० [हिं० ढव + ईला (प्रत्य०)] ढव का । ढववाला । बालाक । चतुर ।

ढवुआ^१—संज्ञा पुं० [देश०] देशों के मजान के ऊपर का छप्पर ।

ढवुआ^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. मज प्रकार का तख्ति का पवित्रित देसी सिक्का जिसकी धलन बंद कर दी गई है । २. पैसा ।

ढवैला—वि० [हिं० ढावर + एला (प्रत्य०)] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पात) । मटमैला । गंदला ।

ढमक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढम ढम शब्द ।

ढमकना—क्रि० अ० [अनु०] ढम ढम शब्द होना । ढम ढम की आवाज होना ।

ढमकाना—क्रि० स० [हिं० ढमकना] १. ढोल, नगाड़ा आदि वाद्य बजाना । २. ढम ढम शब्द उत्पन्न करना ।

ढमढम—संज्ञा पुं० [अनु०] ढोल वा अन्यवाद्यवाद्य का शब्द ।

ढमलाना^१—क्रि० अ० [देश०] लुढ़कना ।

ढमलाना^२—क्रि० स० लुढ़काना ।

ढयना—क्रि० प्र० [म० ध्वंसन, हि० ढहना] १. किसी दीवार, मकान आदि का गिरना। ध्वस्त होना। २. पस्त होना। शिथिल होना। उ०—ढीले से दए से फिरत ऐसे कीन पे ढहे हो।—नंद० प्र०, पृ० ३५६।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—ढय पड़ना = उतर पड़ना। सहसा आकर टिक जाना। एकबारगी आकर डेरा डाल देना (व्याप)।

ढरकना†—क्रि० प्र० [हि० ढार या ढाल] १. पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना। ढलना। गिरकर बह जाना। उ०—वाके पानी पत्र न सारै ढरकि चले जस पारा हो।—कबीर श०, भा० १, पृ० २७।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

२. नीचे की ओर जाना। उ०—(क) सकल मनेहु शिथिल रघुबर के। गए कोस दुइ दिनकर ढरके।—तुलसी (शब्द०)। (ख) परसत भोजन प्रातःहि ते सब। रवि माये ते ढरकि गयो खब।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—दिन ढरकना = सूर्यास्त होना। दिन ढूबना।

३. माराम करना। शय्या पर शयन करना। लेटना।

ढरका—संज्ञा पु० [हि० ढरकना] १. माल का एक रोग जिसमें माल से मालू बढ़ा करता है। २. माल से मालू बढ़ना।

क्रि० प्र०—लगना।

२. सिरे पर कलम की तरह छीनी हुई बाँस की नली जिससे चौपायों के गले में दबा उतारते हैं। बाँस की नली से चौपायों के गले में दबा उतारने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना।

ढरकाना†—क्रि० स० [हि० ढरकना] पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। गिराकर बहाना। जैसे, पानी ढरकाना।

संयो० क्रि०—देना।

ढरकी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढरकना] जुआहो का एक घीबार जिससे वे लोग बाने का सुन फेंकते हैं। उ०—सब ढरकी चले नाहि छीने।—पलटू०, पृ० २५।

विशेष—ढरकी की आकृति करतल की सी होती है और यह भीतर से पोती रहती है। खाली स्थान में एक कटि पर लपेटा हुआ सूत रखा रहता है। जब ढरकी को हथर में उधर फेंकते हैं तब उसमें से सूत खुलकर बाने में भरना जाता है। इसे भरनी भी कहते हैं।

यो०—जुआहे की ढरकी = परिचरमति आदमी। कभी उधर कभी उधर होनेवाला व्यक्ति।

ढरकीला—वि० [हि० ढरकना + ईना (प्रत्य०)] बह जानेवाला। ढरक जानेवाला। उ०—रजनी के श्याम कपोलों पर ढरकीले भ्रम के कन।—यामा, पृ० १६।

ढरना^①—क्रि० प्र० [हि० ढलना] १. ढ० 'ढलना'। २. बहना। प्रवाहित होना। उ०—(क) मलिन कुसुम तनु बीरे, करतल कमल नयन ढर नीरे।—विद्यावति, पृ० ५५४।

(ख) ऊपर तैं दधि दूध, सीसन गागरि गन ढरै।—नंद० प्र०, पृ० ३३४।

ढरनि^②—संज्ञा स्त्री० [हि० ढरना] १. गिरने वा पड़ने की क्रिया। पतन। उ०—सखी बचन सुनि कीसिला लखि सुंदर पासे ढरनि।—तुलसी (शब्द०)। २. हिलने ढोलने की क्रिया। गति। स्पंदन। उ०—कंठसिरी दुसरी हीरन की नासा मुक्ता ढरनि।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। ३. चित्त की प्रवृत्ति। भ्रुकाव। उ०—रिस भी रुचि हों समुक्ति देखिहों वाके मन की ढरनि, वाकी भावती बात चलाय हो।—सूर (शब्द०)। ४. किसी की दशा पर हृदय द्रवीभूत होने की क्रिया। दीन दशा दूर करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति। स्वाभाविक कष्टना। दयाशीलता। सहज कृपालुता। उ०—(क) राम नाम सों प्रतीत प्रीति राखे कबहुँक तुलसी ढरैगे राम अपनी ढरनि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कृपासिंधु कीसल धनी सरनागत पालक ढरनि अपनी ढरिए।—तुलसी (शब्द०)।

ढरहरना^③—क्रि० प्र० [हि० ढरना] खसकना। सरकना। ढलना। झुकना। उ०—दीनदयाल गोपाल गोपपति गावत गुण आबत ढिग ढरहरि।—सूर (शब्द०)।

ढरहरी†—वि० [हि० ढार + हार (प्रत्य०)] [स्त्री० ढरहरी] डालुवा। ढालु।

ढरहरी^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] पकीड़ी। उ०—रायभोय लियो भात पसाई। मुँग ढरहरी हीग लगाई।—सूर (शब्द०)।

ढरहरी^२—वि० स्त्री० [हि० ढरहरी] ढालु। ढालुवा।

ढराई†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढलाई'।

ढराना†—क्रि० स० [हि०] १. दे० 'ढलाना'। उ०—खैच खराह चढ़ाए नहीं न मुठार के ढरानि मध्य ढराए।—सरदार (शब्द०)। २. दे० 'ढरकाना'।

ढरारा—वि० [हि० ढार] [वि० स्त्री० ढरारी] १. उलनेवाला। ढरकनेवाला। गिरकर बह जानेवाला। २. लुढ़कनेवाला। थोड़े आघात से पृथ्वी पर आपसे आप सरकनेवाला। जैसे, गोलो।

यो०—ढरारा रवा = गहना बचाने में सोने चांदी का वह गोल दाना जो जमीन पर रखने से लुढ़क जाय।

३. शीघ्र प्रवृत्त होनेवाला। झुक पड़नेवाला। आकर्षित होनेवाला। चलायमान होनेवाला। उ०—जोबन रंग रंगीली, सोने से ढरारे नैना, कंठपात मखतूली।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

ढरैया†—संज्ञा पु० [हि० ढारना] १. ढालनेवाला। २. ढलनेवाला। किसी घोर प्रवृत्त होनेवाला।

ढर्रा—संज्ञा पु० [हि० या देश०] १. मार्ग। रास्ता। पथ। २. किसी कार्य के निर्वाह की प्रणाली। शैली। ढंग। तरीका। ३. मुक्ति। उपाय। तद्विध। जैसे,—कोई ढर्रा ऐसा निकालो जिसमें इन्हें भी कुछ लाभ हो जाय।

क्रि० प्र०—निकासना।

४. आचरणपद्धति। चाल चलन। जैसे,—यह लड़का बियड़ रहा है, इसे अच्छे ढर्रे पर लगाओ।

ढलकना—क्रि० प्र० [हि० ढाल] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना । ढलना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. लुढ़कना । नीचे ऊपर चक्कर खाते हुए सरकना । ३. हिलना ।

उ०—कुंडल भलक ढलक सीसनि की ।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ३८३ ।

ढलका—संज्ञा पु० [हि० ढलकना] भ्रातृ का एक रोग जिसमें भ्रातृ से बराबर पानी बहा करता है । डरका ।

ढलकाना—क्रि० स० [हि० ढलकना] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना । लुढ़काना ।

संयो० क्रि०—देना ।

ढलकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढरकी' ।

ढलाना—क्रि० प्र० [हि० ढाल] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का नीचे की ओर सरक जाना । डरकना । गिरकर बहना । जैसे, पत्ते पर की बूँद का ढलना । उ०—मधरन बुवाई सेउं सिंगरो रस तनिको न जान देउं इत उत ठरि ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—जवानी ढलना = युवावस्था का जाता रहना । छाती ढलना = स्तनों का लटक जाना । जीवन ढलना = युवावस्था के बिल्लों का जाता रहना । जवानी का उतार होना । दिन ढलना = सूर्यास्त होना । संध्या होना । दिन ढले = संध्या को । शाम को । सूरज वा चाँद ढलना = सूर्य या चंद्रमा का अस्त होना ।

२. बीतना । गुजरना । निकल जाना । उ०—काहे न प्रगट करी जूषति सों दुमह दोष की अवधि गई तरि ।—सूर (शब्द०) ।

३. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से गिरना । पानी, रस आदि का एक बरतन से दूसरे बरतन में ढाला जाना । उड़ला जाना ।

मुहा०—बोतल ढलना = खूब शराब पिया जाना । भल पिया जाना । शराब ढलना = भल पिया जाना ।

४. लुढ़कना । ५. झुकना । झुकल होना । मान जाना । उ०—भुसलमान इसपर ढल भो गए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४५ । ६. किसी सूत या डोरी के रूप की वस्तु का इधर से उधर हिलना । लहर लाकर इधर उधर डोलना । झहराना । जैसे, खँवर ढलना । ७. किसी ओर आकर्षित होना । प्रवृत्त होना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

८. झुकल होना । प्रसन्न होना । रीझना । उ०—देत न अघात, रीझि जात पात आक ही कै, भोजाभाष जोगी जब ओडर करत है ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

९. पिघली या गली हुई सामग्री से सचि के द्वारा बनना । सचि में ढालकर बनाया जाना । ढाला जाना । जैसे, खिलौने ढलना, बरतन ढलना ।

मुहा०—सचि में ढला हुआ = बहुत सुंदर और सुधील ।

ढलमल—वि० [प्रनु०] १. श्रान्त । क्षिपित । २. प्रस्थिर । चंचल । कभी इधर कभी उधर होना ।

ढलवाई—वि० [हि० ढालना] जो पिघली हुई धातु आदि को सचि में ढालकर बनाया गया हो । जैसे, ढलवाई बरतन ।

ढलवाईकी—संज्ञा पु० [म० ढाल + वाहक] ढालवाले सिपाही । ढाल धारण करनेवाले सैनिक । दलैत । उ०—कोटि धनुदर धावधि पायक । लक्ष संख चलिअउं ढलवाईक ।—कीर्ति०, पृ० ८८ ।

ढलवाना—क्रि० स० [हि० ढालना का प्रेरक] ढालने का काम कराना ।

ढलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ढालना] १. सचि में ढालकर बरतन आदि बनाने का काम । ढालने का काम । २. ढालने की मजदूरी ।

ढलान^१—वि० [हि० ढाल] दे० 'ढालना' ।

ढलान^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ढालना] ढालने का काम । ढलाई ।

ढलाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'ढलवाना' । उ०—नाम अगर पूछे कोई तो कहना बस पीनेवाला । काम, ढालना और ढलाना, सबको मदिरा का प्याला ।—मधुबाला, पृ० ८४ ।

ढलवाई—वि० [हि०] १. दे० 'ढलवाई' । २. दे० 'ढालवाई' ।

ढलैत—संज्ञा पु० [हि० ढाल] ढाल बांधनेवाला । सिपाही ।

ढलैया—संज्ञा पु० [हि० ढालना] धातु आदि को ढालनेवाला कारीगर ।

ढवका—संज्ञा पु० [देश० ?] पोखा । उ०—हूँठे चौपड़ि दुखि मिलि जाई । ढवका तब काहे को खाई ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २२२ ।

ढवरी^१—[देश०] धुन । ठोरी । ली । लगन । रट । दे० 'ढोरी' । उ०—सूरदास गोपी बड़ भागी । हरि वरदान की ढवरी लागी ।—सूर (शब्द०) ।

ढसक—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १. ठन ठन शब्द जो सूखी खाँसी में गले से निकलता है । २. सूखी खाँसी जिसमें गले से ठन ठन शब्द निकलता है ।

ढहना—क्रि० प्र० [सं० ध्वंसन या दह] १. धीवार, मकान आदि का गिर पड़ना । ध्वस्त होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. नष्ट होना । मिट जाना । उ०—तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो, कोल कलमत्यो ढहि कमठ को बल गो ।—तुलसी (शब्द०) ।

ढहरना^१—क्रि० प्र० [हि० ढार] १. लुढ़कना । गिरना । २. (किसी की ओर) गिरना झुकना या झुकल होना । उ०—ढोले से उए से फिरत ऐसे कोन पै ढहे हो ।—नद० ग्रं०, पृ० ३६६ ।

ढहरना^२—क्रि० स० [हि० ढार] १. लुढ़काना । २. सूत के धल में से गोल बाने की कंकड़ी, मिट्टी आदि को मुड़काकर प्रलग करना । पछोरना । फटकना ।

ढहरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] डेहरी । देहली । दहलीज । उ०—सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुं टेकत ढहरि ।—सूर (शब्द०) ।

ढहरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का बरतन । मटका । उ०—डगर न देत काहुँहि फोरि डारत ढहरि ।—सूर (शब्द०) ।

ढह्वाना—क्रि० स० [हि० ढह्वाना का प्रेरक] ढह्वाने का काम करना । गिरवाना ।

ढह्वाना—क्रि० स० [सं० ढ्वंसन या ढह] दीवार मराना आदि गिराना । ध्वस्त करना । उ० एक ही बान की, पापान की कोट सब हुती चहं घोर, सो दियो ढहवाई ।—गुर (शब्द०) ।

ढह्वाना(पुं०)—क्रि० स० [हि०] दे० 'ढह्वाना' । उ० तोपे दई केरि धति भारी । मंदर मेरु ढह्वान हारी ।—हम्पीर०, पृ० ३० ।

ढाँक—संज्ञा पुं० [देश०] १. कुम्भी के एक पेंव का नाम । २. पलाश । ढाक ।

ढाँकना—क्रि० म० [सं० ढक (धिक्वाना)] १ किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के इस प्रकार नीचे करना जिसमें वह दिखाई न दे या उसपर गर्द आदि न पड़े । ऊपर से कोई वस्तु फैला या डालकर (किसी वस्तु को) छोट में करना । कोई वस्तु ऊपर से डालकर छिपाना । जैसे,—(क) पानी का बरतन खुला मत छोड़ो, ढाँक दो । (ख) मिठाई को कपड़े से ढाँक दो ।

संयो० क्रि० देना ।

२. इस प्रकार ऊपर पलना या फैलाना जिसमें कोई वस्तु नीचे छिप जाय । जैसे,—ऊपर कपड़ा ढाँक दो ।

संयो० क्रि० देना ।

ढाँखा—संज्ञा पुं० [हि० ढाक] दे० 'ढाक' । उ०—तरिवर भरहि भरहि इन होला । भरे भवत फूलि कर गाला ।—जयसी प्र० (गुप्त, पृ० ३४६) ।

ढाँगा—वि० [देश०] दे० 'अनुर्वी' ।

ढाँच—संज्ञा पुं० [हि० ढाँचा] दे० 'ढाँचा' ।

ढाँचा—संज्ञा पुं० [सं० ढेच] या [हि० ढाँचा] १. किसी वस्तु की रचना की प्राथमिक आकृति या आकार में मृदादि पदार्थों की समष्टि । इसी आकृति बनाने के लिये पृथक् जोड़ जाड़कर बैठाने हुए उसके भिन्न भिन्न भागों में मृदादि पदार्थों का कुछ आकार खड़ा हो जाता है । मटल । मट्टर । डोल । जैसे,—ग्रामी ता इस पाली वा ढाँचा खड़ा हुआ है । लगे आदि नहीं लड़े गये हैं ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना । बनाना ।

२. भिन्न भिन्न रूपों से बनाया हुआ प्रकार जोड़े हुए लकड़ी आदि के बने या छेद कि उनमें बीच में कोई वस्तु उमाई या जड़ी जा सके । जैसे—बालक, बिना पूरा करपाई कुरसी आदि । ३. पंजर । टट्टी । ४. पार लकड़ियों का बना हुआ वह खड़ा चौखटा जिसमें जुनाड़े लकड़ों का टुकड़ा है । ५. रचनाप्रकार । मटल । बनावट । जैसे,—इस गिलास का ढाँचा बहुत अच्छा है । ६. प्रकार । भाति । तरह । जैसे,—यह न जाने किस लीन का आदमी है ।

ढाँढा—वि० [देशी डंड (= निकम्मा । कपटी)] कपटी । तुच्छ । पशु । नीच । उ०—रे ढाँढा करि छोड़ो करइ करहारी काणि ।—डोला० (परि०२), पृ० २६६ ।

ढाँपना—क्रि० स० [हि०] दे० 'ढाँकना' । उ०—श्यामा हू तन

पुलकित पल्लव अगुरिन मुख निज ढाँपि ।—श्यामा०, पृ० १०७ ।

ढाँस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह 'ठन ठन' शब्द जो सूखी खाँसी आने पर गले से निकलता है । ढसक ।

ढाँसना—क्रि० म० [हि० ढाँस] सूखी खाँसी खाँसना ।

ढाँसी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाँस] सूखी खाँसी ।

ढाई—वि० [सं० अर्द्ध द्वितीय, प्रा० अर्द्धादय, हि० अर्द्धाई] दो घोर आधा । जो गिनती में दो से आधा अधिक हो । उ०—रूसी उनकी गुप्तगुप्ता समझते । वह अपनी कहते थे, यह अपने ढाई चावल गलाते थे ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४२ ।

मुहा०—ढाई घड़ी की घाना = चटपट मोत घाना । (स्त्रियों का कोसना) जैसे,—तुम ढाई घड़ी की घाये । ढाई चुल्लू लहू पीना = मार डालना । कठिन दंड देना (क्रोधवाक्य) । जैसे,—तेरा ढाई चुल्लू लहू पीऊँ तब मुझे कल होगी । ढाई दिन की बादशाहत करना = (१) थोड़े दिनों के लिये खूब ऐश्वर्य भोगना । (२) दूल्हा बनना ।

ढाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाना] १. लड़कों का एक खेल जिसे वे कीड़ियों से खेलते हैं । इनमें कीड़ियों का समूह एक घेरे में रखकर उसे गोलियों में मारते हैं । २. वह कीड़ी जो इस खेल में रखी जाती है ।

ढाक—संज्ञा पुं० [सं० आषाढक (= पलाश)] १. पलाश का पेड़ । छिउला । छीउल । उ०—आनंदधन ब्रजजीवन जैवत हिलमिलि स्वार तीरि पगानि ढाक ।—घनानंद, पृ० ४७३ ।

मुहा०—ढाक के तीन पतल = सदा एक या निर्धन । कभी भरा पूरा नहीं ।—(निर्धन मनुष्य के संबंध में बोलते हैं) । ढाक तले की फूहड़, मटुण तले की सुबड़ = जिसके पास धन नहीं रहता वह निर्धुंगी, और धनवाला सवंगुलसंपन्न समझा जाता है ।

२. कुम्भी का एक पेंव । दे० 'ढाँक' । उ०—उस्ताद सफूले रहते हैं । मगर जोर वे मनोहर के जैसे दो तीन की करा सकते हैं । दम्नी, उत्तार, लोवान, पट, ढाक, कलाजंग, बिस्से आदि दीव चले घोर वडे ।—काले०, पृ० ४ ।

ढाकर—संज्ञा पुं० [सं० ढका] लड़ाई का बड़ा ढोल । उ०—गोमुख, ढाक, ढोल परावानक । बाजत रव धति होत भयानक ।—सबल (शब्द०) ।

ढाकनी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढक्कन' ।

ढाकना—क्रि० स० [हि०] दे० 'ढाँकना' ।

ढाका—संज्ञा पुं० [सं० ढक] पुराने समय में महीन सूती कपड़ों के लिये प्रसिद्ध पूर्वी बंगाल का एक नगर । जैसे, ढाके की चट्टर, ढाके की मलमल ।

ढाकापाटन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फूलदार महीन कपड़ा ।

ढाकेवाला पटेल—संज्ञा पुं० [हि० ढाक + पटेल (= पटी नाव)] एक प्रकार की पूरबी नाव जिसके ऊपर बराबर छप्पर छाया रहता है । छप्पर के नीचे बैठकर माँझी नाव खेते हैं ।

ढाटा—संज्ञा पुं० [हि० ढाड़ी] १. कपड़े की वह पट्टी जिससे ढाड़ी बाँधी जाती है ।

क्रि० प्र०—बाधना ।

२. वह बड़ा साफा जिसका एक फेंट ढाढ़ी और गाल से होता हुआ जाता है । ३. वह कपड़ा जिससे मुरवे का मुँह इसलिये बांध देते हैं जिससे कफन सरकने से मुँह खुल न जाय ।

ढाठा—संज्ञा पुं० [हि० ढाढ़ी] दे० 'ढाटा' । उ०—चारों ने खाना खाया और ढाठे बांधा, बांधकर तलवारें लटकाकर चले ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४४ ।

ढाड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चिंघाड़ । चीख । गरज (बाघ, सिंह आदि की) । दे० 'दहाड़' । २. चिल्लाहट ।

मुहा०—ढाड़ मारना = चिल्लाकर रोना ।

विशेष—दे० 'धाड़' ।

ढाड़सा—संज्ञा पुं० [सं० दड] दे० 'ढाड़स' ।

ढाड़ी—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ढाढ़ी' । उ०—धुन किसी ढाड़ी बच्चे से पूछिए । मैं धुन उन नहीं जानता ।—फिसाना०, भा० १, पृ० २ ।

ढाड़'—संज्ञा स्त्री० [देश० या हि० धाड़] चिल्लाहट । उ०—क्यों भला काम लें न ढाड़स से । क्यों लगे ढाड़ मारकर रोने ।—चुभते०, पृ० ५२ ।

ढाड़ु^१—संज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का बज्जा जिसे ढाढ़ी बजाने हैं । उ०—ढाड़िनि भेरी नाचें गावै हों हैं ढाड़ बजाऊँ ।—मुर०, १०।३७ ।

ढाड़ना^१—क्रि० सं० [हि० ढाड़ना] दे० 'ढाड़ना' । उ०—एक परे गाढ़े, एक ढाड़न ही काढ़े, एक देखत है ठाढ़े, कहीं रावक भयावनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

ढाड़स—संज्ञा पुं० [सं० दड, प्रा० ढिड] १. संकट, कठिनाई या विपत्ति के समय चित्त की स्थिरता । धैर्य । धीरज । शांति । आश्वासन । सात्वता । तगत्वमी । उ०—क्यों भला काम लें न ढाड़स से । क्यों लगे ढाड़ मारकर रोने ।—चुभते०, पृ० ५२ ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ढाड़स देना या बाधना = बच्चों से दुखी चित्त को शांत करना । तसल्ली देना ।

२. थक साहस । हिम्मत ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ढाड़स बाधना = साहस उत्पन्न करना । उत्साहित करना ।

ढाड़िन—संज्ञा संज्ञा [हि० ढाढ़ी] ढाढ़ी की स्त्री । उ०—कृष्ण जनम मुनि भरने पति सो हंसि ढाड़िन यों बोली लू ।—नंद० प्र०, पृ० ३३६ ।

ढाढ़ी—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० ढाड़िन] एक प्रकार के नीच गवैए जो जन्मोत्सव के अवसर पर लोगों के यहाँ जाकर बधाई आदि के गीत गाते हैं । उ०—ढाढ़ी और ढाड़िन गावै हरि के ठाढ़े बजावै हरषि असीम देत मस्तक नवाई के ।—सुर (शब्द०) ।

४-४०

ढाढ़ीन—संज्ञा पुं० [सं० ढिग्ढिणी] जल सिरिस का पेड़ ।

विशेष—यह पेड़ पानी के किनारे होता है और जंगली सिरिस से कुछ छोटा होता है । वैद्यक के अनुसार यह त्रिदोष, कफ, कुष्ठ और बवासीर का दूर करता है ।

ढाण^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] उंट की तेज चाल । गति । उ०—क्रम क्रम, ढोला पंथ कर ढाण म नूक ढाल । आ मारु बीजो महल, आखइ झूठ एवाल ।—ढोला०, दू० ४४० ।

मुहा०—ढाण घालना = तेज चलाना । उ०—उंट ने बढ़ता ही ढाण नहीं घालणो ।—ढोला० (परि० १), पृ० २५४ ।

ढाना—क्रि० सं० [हि० ढाड़ना] १. दीवार, मकान आदि को गिराना । ऊंची उठी हुई वस्तु को तोड़ फोड़कर गिराना । ध्वस्त करना । उ०—जब मैं बनाकर प्रस्तुत करता हूँ तब वह आकर ढा जाता है ।—कबीर म०, पृ० ७६ ।

संयो० क्रि०—जाना ।—देना ।

२. गिराना । गिराकर जमीन पर डालना । जैसे, किसी को मारकर ढाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

ढापना—क्रि० सं० [देश०] दे० 'ढाँपना' ।

ढाबर^१—वि० [हि० ढाबर (= गढ़ा)] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी) । मटमैला । गंदला । उ०—भूमि परत भा ढाबर पानी । अनु जीवहि मया लपटानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

ढावा—संज्ञा पुं० [देश०] १. झोलती । २. जाल । ३. परध्वती । ४. रोटी आदि की दुकान । वह दुकान जहाँ लोग दाम देकर भोजन करते हैं ।

ढामक—संज्ञा पुं० [अनु०] ढोल नगारे आदि का शब्द । उ०—ढमकत ढोल ढामक ढकपा तबल ढामक जोर ।—सूदन (शब्द०) । ५. बंस, मिट्टी आदि से बनी कच्ची छत ।

ढामना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप ।

ढामरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसिनी । हूमी । मादा हंस [स्त्री]

ढार^१—संज्ञा पुं० [सं० धार या सं० अवधार, *प्रा० ओढार > ढार] १. वह स्थान जो बराबर क्रमण, नीचा होना गया हो और जिसपर से होकर कोई वस्तु नीचे फिना या बह सके । डतार । उ०—सकृष सुरत धारभ ही बिछुरी लाज सजाय । ठरकि ढार दुरि डिग भई ढीठ डिडाई प्राय ।—बिहारी (शब्द०) । २. पथ । मार्ग । प्रणाली । उ०—(क) सब द्वै धावै धावै ढार । मोन मिनन दुसंभ ससार ।—नंद० प्र०, पृ० २३६ । (ख) ढेर ढार तेरी ढरत, दूजे ढार ढरे न । क्यों हँ धानन धान सौ मैना भागन नैन ।—बिहारी (शब्द०) । ३. प्रकार । ढाँचा । ढंग । रचना । बनावट । उ०—(क) दग घरकोई अधलुले, देह धकोई ढार । सुरति सुखी सी देखित, दुखित मगम के धार ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) तिय को मुख सुंदर बन्यो, बिधि केनो परगार । तिलन बीच की बिजु है, गाल गोल हक ढार ।—मुबारक (शब्द०) ।

ढार^२—संज्ञा स्त्री० १. ढाल के आकार का कान में पहनने का एक गहना । बिरिया । २. पछेली नामक गहना ।

ढार^३—संज्ञा स्त्री० [घनु०] रौने का घोर लब्ध । धातनाद । चित्ला-कर रौने की ध्वनि ।

मुहा०—ढार मारना या ढार मारकर रौना = धातनाद करना । चित्ला चित्लाकर रौना ।

ढारना^१—क्रि० स० [सं० धार, हि० ढार + ना (प्रत्य०)] १. पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना । गिराकर बहाना । उ०—(क) ऊतक देह न, लेह उसासू । नारि चरित करि ढारइ प्रायू ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) उरय नारि प्रागे भई गढ़ी नैननि ढारति नीर ।—सूर०, १०।५७५ । २. गिराना । ऊपर से छोड़ना । डाधना । जैसे, पासा ढारना ।

विशेष—दे० 'ढालना' ।

३. चारों ओर घुमाना । डुलाना (बैठने के लिये) उ०—रवि बिजान सो साजि सँवारा । चहुँ दिशि चँवर करहि सब ढारा ।—जायसी (शब्द०) । ४. धातु आदि को गला कर सचि के द्वारा तैयार करना । दे० 'ढालना'—६ ।

ढारस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढाड़स' । उ०—ढारस विल को जरा ढारस दीजि ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७ ।

ढाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार, भाले आदि के चारों ओर रोकने का घल जो चमड़े, धातु आदि का बना हुआ घाली के आकार का गोल होता है । फरी । बर्म । धाड़ । फलक ।

विशेष—ढाल गेहे के पुट्टे, बछुए की पीठ, धातु आदि कई चीजों की बनती है । जिस ओर इसे हाथ से पकड़ते हैं उधर यह गहरी ओर घागे की ओर उभरी हुई होती है । घागे की ओर इसमें ४-५ कांटे या मोटी फुबिया बड़ी होती है ।

मुहा०—ढाल बांधना = ढाल हाथ में लेना ।

२. एक प्रकार का बड़ा भंडा जो राजाओं की मवारी के साथ चलता है । उ०—बैरख ढाल गगन या छाई । बला कटक भरती न समाई ।—जायसी (शब्द०), पृ० २२४ ।

ढाल^२—संज्ञा स्त्री० [सं० धवधार] १. वह स्थान जो घागे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु नीचे की ओर खिसक या लुढ़क या बह सके । उतार । जैसे,—(क) पानी ढाल की ओर बहेगा । (ख) वह पहाड़ की ढाल पर से खिसल गया । २. ढंभ । धकार । तीर तरीका । उ०—(क) महा भति जान मँ मु ऐसे एक ढाल है ।—हनुमान (शब्द०) । (ख) ढाल धरो घनसंघ उबारा ।—धरनी०, पृ० ४१ । ३. उगाही । धंका । बेहरी ।—(पंजाब) ।

ढालना—क्रि० स० [सं० धार] १. पानी या घोर किसी द्रव पदार्थ को गिराना । डुलाना । जैसे,—(क) हाथ पर पानी ढाल दो । (ख) घड़े का पानी इस बरतन में ढाल दो । (ग) बोटल की जराब गिलाश में ढाल दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—ढोतल ढालना = जराब पीना । मद्यपान करना ।

२. जराब पीना । मद्यपान करना । मदिरा पीना । जैसे,—धाब-कल तो खूब ढालते हो । ३. बेचना । बिक्री करना (दखाल) । ४. थोड़े दाम पर माल निकालना । सस्ता बेचना । लुटाना । ५. ताना छोड़ना । ध्यंग्य बोलना । † १. चंदा उतारना । उगाही करना ।—(पंजाब) । ७. पिघली हुई धातु आदि को सचि में ढालकर बनाना । पिघली हुई सामग्री से सचि के द्वारा निमित्त करना । जैसे, छोटा ढालना, खिलोने ढालना । उ०—कोउ ढालत गोली कोउ बुँदवव बैठि बनावत ।—प्रेम-घन०, भा० १, पृ० २४ ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

ढालवाँ—वि० [हि० ढाल] [वि० ढाली] जो घागे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु खल्दी से लुढ़क, फिसक या बह सके । जिसमें ढाल हो । ढालदार । ढालू । जैसे,—यह रास्ता ढालवाँ है, सँवख-कर चलना । उ०—हूँ इसी ढालवाँ को जब, बस सहज उतर जावँ हम । फिर संमुख तीर्थ मिलेगा, वह प्रति उजबल पावनतम ।—कामायनी, पृ० २७६ । २. ढाला हुआ । सचि के धनुष तैयार किया हुआ ।

ढालिया—संज्ञा पुं० [हि० ढालना] फूल, पीतल, ताँबा, जस्ता इत्यादि पिघली धातुओं की सचि में ढालकर बरतन, गहने आदि बनानेवाला । भरिया । झुलवा । साँबिया ।

ढाली—संज्ञा पुं० [सं० ढालिन्] ढाल से सुसज्ज योद्धा (वीर) ।

ढालुआँ—वि० [हि० ढालना] दे० 'ढालवाँ' ।

ढालुवाँ—वि० [हि० ढालना] दे० 'ढालवाँ' ।

ढालू—वि० [हि० ढाल] दे० 'ढालवाँ' ।

ढावना^१—क्रि० स० [देश०] गिराना । ढाहना ।

ढासी—संज्ञा पुं० [सं० दस्तु] टग । लुटेरा । डाकू । उ०—बासर ढासिन के डका, रजनी चहुँ दिशि चोर । चंकर निज पुर राखिए, चितै सुलोचन कोर ।—तुलसी (शब्द०), पृ० १२२ ।

ढासना—संज्ञा पुं० [सं० √ धा (= धारण करना) + भासन] १. वह ऊँची वस्तु जिसपर बैठने में पीठ या शरीर का ऊपरी भाग टिक सके । सहारा । टेक । उठगन । उ०—यह पल्लव की एक स्तंभ का ढासना लगाकर सो गया ।—दे० न०, पृ० २५४ ।

२. तकिया । शिरोपधान ।

ढाहना^१—क्रि० स० [सं० धवसन] दीवार, मकान आदि को गिराना । ध्वस्त करना । ढाना । उ०—(क) ढाहत भूपरुष तह मूसा । बजो विपति वारिधि धनुदला ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बृक्ष वन काटि महलात ढाहन लग्यो नगर के द्वार दीनो गिराई ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—दे० 'ढाना' ।

ढाहा^१—संज्ञा पुं० [हि० ढाहना] नदी का ऊँचा करारा ।

ढिंग^१—संज्ञा पुं० [हि० ढिंग] दे० 'ढिंग' । उ०—भरना भरे दसो दिस द्वारे, कस ढिंग आवाँ साहेब तुम्हारे ।—धरम० श०, पृ० १६ ।

दिंगलाना^१—क्रि० प्र० [दि०] लुढ़कना । गिरना ।

दिंगलाना^२—क्रि० स० [पूर्वी रूप दिंगलाना] ठहाना । लुढ़काना । गिराना । उ०—कैहर हाथल घाव कर, कुंजर दिंगलो कीध । —बांकी० प्र०, भा० १, पृ० १५ ।

दिंढा—संज्ञा पु० [हि० ढोंढी (= नाभि)] पेट । उदर । उ०—भरि दिंढ खाइन जनम गवाइन, काहु न भापु संभार ।—गुलाल०, पृ० १५ ।

दिंढोरना—क्रि० स० [प्रनु०] १. मंथन करना । मथना । बिलोडन करना । २. हाथ डालकर ढूँढ़ना । खोजना । तलाश करना । उ०—(क) क्यों बचिऐ भजिहूँ घनघानद, बैठी रहै घर पैठि दिंढोरत ।—घनानंद (शब्द०) । (ख) भूल गई माछन की छोरी खात रहै घर सकल दिंढोरी ।—विश्राम (शब्द०) ।

दिंढोरा—संज्ञा पु० [प्रनु० शब्द+गोल] १. वह डोल जिसे बजाकर सर्वसाधारण को किसी बात की सूचना दी जाती है । घोषणा करने की भेरी । डुगडुगिया ।

मुहा०—दिंढोरा पीटना या बजाना=डोल बजाकर किसी बात की सूचना सर्वसाधारण को देना । चारों ओर घोषित करना । मुनाबी करना । उ०—खुदा जाने इन्सान क्या बातें करता है । तुम जाकर दिंढोरा पिटवा दो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२७ ।

२. वह सूचना जो डोल बजाकर सर्वसाधारण को दी जाय । घोषणा । मुनाबी । उ०—ओ मैं ऐसा जानती प्रीति किए दुख होय । नगर दिंढोरा फेरती, प्रीति करो जनि कोय ।—(प्रबलित) ।

क्रि० प्र०—फेरना ।

दिण^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'दिग' । उ०—एकै हँसै हँसावै एके । सहित बसाव जाति दिए एके ।—हम्मीर०, पृ० ६ ।

दिक्चन—संज्ञा पु० [दि०] गन्ने का एक भेद ।

दिक्कलना^१—क्रि० प्र० [हि० ठकेलना] धक्के से घाने जाना । घाने होना । उ०—बिना बड़े ही मैं घाने को जाने किस बल से ठिकला ।—आश्रम, पृ० ५४ ।

दिक्कुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेकुली' ।

दिग^१—क्रि० वि० [सं० दिक् (= धोर)] पास । समीप । निकट । नजदीक । उ०—मुरली धुनि सुनि सबै गवालिनी हरि के दिग बलि आई ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—यद्यपि यह संज्ञा शब्द है, तथापि, इसका प्रयोग सप्तमी विभक्ति का लोप करके प्रायः क्रि० वि० बत ही होता है ।

दिग^२—संज्ञा स्त्री० १. पास । समीप्य । २. तट । किनारा । छोर । उ०—सेतुबंध दिग बढि रघुराई । चितव कृपालु, सिधु बहुताई ।—तुलसी (शब्द०) । ३. कपड़े का किनारा । पाड़ । कोर । हाशिया । उ०—(क) खाल दिगन की सारी ताको पीत ओढ़निया कीनी ।—सूर (शब्द०) । (ख) पट की दिग कत ठापियत सोभित सुभग सुदेस । हृद रव श्रव छवि देखियत सद रदछद की देख ।—बिहारी (शब्द०) ।

दिटोना^१—संज्ञा पु० [हि० ठोटा] दे० 'ढोटा' । उ०—रूपमनी मन होत बिरागे, बाबबहादुर के नंद दिटोना ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३५६ ।

दिठपना^१—संज्ञा पु० [हि० ठीठ+पन (प्रत्य०)] धृष्टता । दिठाई । उ०—न घर केस न कर दिठपन । भलपे भलापे करह निषुवन ।—विद्यापति, पृ० ४५३ ।

दिठाई—संज्ञा स्त्री [हि० ठीठ+आई (प्रत्य०)] गुरुजनों के समक्ष व्यवहार की अनुचित स्वच्छंदता । संकोच का अनुचित प्रभाव । धृष्टता । अप्रयत्नता । गुस्ताखी । उ०—छमिहहि सज्जन मोरि दिठाई ।—तुलसी (शब्द०) । २. लोकलज्जा का प्रभाव । निलंजिता । उ०—गोने की चूनरी वैसि है, दुलही प्रबही से दिठाई बगारी ।—मति० प्र०, पृ० २६६ ।

क्रि० प्र०—बगारना = (१) धृष्टता करना । (२) निलंजिता करना ।

३. अनुचित साहस ।

दिठोना^२—संज्ञा पु० [हि० ठोटा] पुत्र । उ०—इगर डगमगे डोलने, परी कीठि डहुकाय । निडर दिठोना नद के, डर उठे बराराय ।—ब्रज० प्र०, पृ० ५ ।

दिपुनो^१—संज्ञा स्त्री० [दि०] १. फल या पत्ते के साथ लगा हुआ टहनरी का पतला नरम भाग । २. किसी वस्तु के सिरे पर जाने की तरह उभरा हुआ भाग । ठोंठी । ३. कुश का अग्रभाग । बोंड़ी । चूचुक ।

दिबरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डिब्बा] १. टीन, शीशे, या पकी मिट्टी की डिबिया या कुप्पी जिसके मुँह पर बत्ती लगाकर मिट्टी का तेल जलाते हैं । मिट्टी का तेल जलाने की गुच्छीदार डिबिया । २. बरतन के साँचे के पल्ले के तीन भागों में से सबसे नीचे का भाग । साँचे की पैदी का भाग ।

दिबरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ढपना] १. किसी कसे जानेवाले पेच के सिरे पर लगा हुआ लोढ़े का चौड़ा टुकड़ा जिससे पेच बाहर नहीं निकलता । २. चमड़े या मूँज की वह चकती जो चरखे में इसलिये लगाई जाती है जिसमें तकड़ा न घिसे ।

दिबुबा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'देबुबा' । उ०—गछत गछन जब भागं भाबा । बित उनमान दिबुबा एक पावा ।—कबीर प्र०, पृ० २३७ ।

दिमका, दिमाका—सर्व० [हि० अमका का प्रनु०] [स्त्री० दिमकी] प्रमुक । अमका । फला । फलाना ।

यौ०—फलाना दिमका=प्रमुक प्रमुक अनुष्य । ऐसा ऐसा आवासी ।

दिलड़^१—वि० [हि० डीला] दे० 'ढीला' । उ०—जन रेदास कहै बनजरिया तेरे दिलड़े परे परान बे ।—रे० बानी, पृ० २७ ।

दिलदिल^१—वि० [हि० डीला] दे० 'दिलदिला' ।

दिलदिला—वि० [हि० डीला] १. डीला ढाला । २. (रस आदि) जो गाढ़ा न हो । पानी की तरह पतला ।

डिलाई^१—संज्ञा स्त्री [हि० डीला] १. डीला होने का भाव । कस न रहने का भाव । २. शिथिलता । सुस्ती । आलस्य । किंच

कार्य के करने में अनुचित बिलंब । जैसे,—सुन्दारी ही ढिलाई से यह काम पिछड़ा है ।

ढिलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीलना] ढीलने की क्रिया या भाव । ढीला करने का काम ।

ढिलाना^१—क्रि० सं० [हि० ढीलना का प्रेरण] १. ढीलने का काम कराना । २. ढीला कराना ।

ढिलाना(ढु)†—क्रि० सं० १. ढीला करना । २. कमी या बंधी हुई वस्तु को खोलना । उ०—जगु स्वामी जब उठे प्रभाता । बैलन बंधे लसे सुवदाता । लेनी हित लै गए ढिलाई । भेद न जान्यो गए चोराई ।—रघुराज (शब्द०) ।

ढिलाना^२—वि० [हि० ढीला] १. ढील करनेवाला । मटुर । सुस्त ।

ढिल्ली^३—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीला] दिल्ली का एक पुराना नाम ।

ढिल्लीवै^४—संज्ञा पुं० [हि० ढिल्ली + वै = (पति)] दिल्ली का नरेश । दिल्लीपति ।

ढिल्लेस^५—संज्ञा पुं० [हि० ढिल्ली + ईस] दिल्ली का राजा ।

ढिसरना^६—क्रि० प्र० [म० ध्वंसन] १. फिसल पड़ना । सरक पड़ना । २. पवत होना । झुकना । उ०—उक्ति युक्ति सब तबही बिसरे । जब पड़ित पड़ि तिय ने ढिसरे ।—निश्चल (शब्द०) । ३. फलों का कुछ कुछ पकना ।

ढीकू† संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'ढेकुली' । उ०—ल्यो की लैज, पवन का ढीकू, मन मटका ज बनाया । सत की पाटि, सुरत का चाटा, सहज नीर मुकलाया ।—कबीर ग्रं०, पृ० १६१ ।

ढींगरी—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर] १. बडे ढील ढील का घादमी । मोटा मुस्टंडा घादमी । २. पति या उपपति । उ०—कहू कबीर ये हुरि के काज । जोइया के ढींगर कोन है लाज ।—कबीर (शब्द०) ।

ढीङ्ग—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढीङ्गा' ।

ढीङ्गस—संज्ञा पुं० [सं० टिङ्गस] डिङ्गसी नाम की तरकारी । टिङ्गा ।

ढीढा†—संज्ञा पुं० [सं० दुण्ड (= लबोदर, गणेश)] १. बड़ा पेट । निकला हुआ पेट ।

मुहा०—ढीढा फूलना = पेट में बच्चा होने के कारण पेट निकलना । २. गर्भ । हमल ।

मुहा०—ढीढा गिराना = गर्भपात करना ।

ढीमे^७†—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ढीम' ।

ढीकुली^८†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेकुली' । उ०—सुरति ढीकुली ले जलपी, मन निम ढीलनहार । कंवल कुवाँ मैं प्रेम रस पीवे बारंबार ।—कबीर ग्रं०, पृ० १८ ।

ढी†—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीह या ढीह] दे० 'ढीह' ।

ढीच†—संज्ञा पुं० [देश०] १. कूबड । २. सफेद चील ।

ढीट†—संज्ञा स्त्री० [देश०] रेखा । लकीर । डंडीर । उ०—रेख छाड़ि जाऊँ तो डराऊँ लछिमन जी तें भीख बिनु दिए भीख भीच हौं न पावती । कोऊ मवभागी यह राम के न भाये भायो, दरसन पावत हौं देव न सकावती । ढीट भेट ॲऊँ फिर ढीट ही

मिलाय लेऊँ, हूँ है बात सोई भगवंत जू को भावती ।—हनुमान (शब्द०) ।

ढीठ—वि० [सं० धृष्ट, प्रा० ढिट्ठ] १. वह जो गुरुजनों के सामने ऐसा काम करे जो अनुचित हो । बड़ों का संकोष या डर न रखनेवाला । बड़ों के सामने अनुचित स्वच्छदता प्रकट करनेवाला । वेप्रदब । शोल । उ०—बिनु पूछे कुछ कहूँ गोसाईं । सेवक समय न ढीठ ढिठाई ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी काम को करने में उसके परिणाम का भय न करनेवाला । ऐसे कामों में प्रागा पीछा न करनेवाला जिससे लोगों का विरोध हो । अनुचित साहम करनेवाला । बिना डर का । उ०—ऐसे ढीठ भए हैं कान्हा दधि गिराय मटकी सब फोरी ।—सूर (शब्द०) । ३. साहसी । हिम्मतवर । हियाववाला । किसी बात से जल्दी न डर जानेवाला ।

ढीठता^९—संज्ञा स्त्री० [सं० धृष्टता] ढिठाई ।

ढीठा†—वि० [हि० ढीठ] दे० 'ढीठ' ।

ढीठा†^२—संज्ञा पुं० [सं० धृष्ट] ढिठाई । धृष्टता ।

ढीठ्यो^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढीठा' ।

ढीङ्गा†—संज्ञा पुं० [देश०] ग्रास का कीवड़ । उ०—भोड़े मुख लार बहै ग्रासिन मे ढीङ्गा, राधिकात मे, सिनकरेट भीतन में डार देति ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १६३ ।

ढीठपन—संज्ञा पुं० [हि० ढीठ + पन (प्रत्यय)] धृष्टता । ढिठाई । उ०—तखनक ढीठपन कहइ न जाय लाजे विमुखी धनि रहल सजाय ।—बिद्यापति, पृ० ५२ ।

ढीमा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. पत्थर का बड़ा टुकड़ा । पत्थर का ढोका । उ०—सिला ढीम ढाहै, इला वीर वाहै । धड़ा धडु सई, भड़ा मडु हूँ हूँ ।—सूदन (शब्द०) ।

ढीमको^४†—संज्ञा पुं० [देश०] कूप । कुप्पा ।—(हिमाल) ।

ढीमर^५—संज्ञा स्त्री० [सं० धीवर, या दे०] १. धीमर या धीवर जाति की स्त्री । २. वह स्त्री जो जल प्रादि भरती है । उ०—ढीमर वह छीमर पहिरि लूमर मदन परेर । चितहि चुरावत पाहिकै बेचत बेर सुरेर ।—स० सप्तक, पृ० ३८१ ।

ढीमा—संज्ञा पुं० [देश०] ढेला । ईट पत्थर प्रादि का टुकड़ा । ढोका ।

ढील—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीला] १. कार्य में उत्साह का अभाव । शिथिलता । अतत्परता । नामुस्तेदी । सुन्नी । अनुचित बिलंब । जैसे,—इस काम में ढील करोगे तो ठीक न होगा । उ०—व्याह्र जोग रंभावती, बरष त्रयोदस माहि । तातै बेगि विवाहिजे कामु ढील की नाहि ।—रसरत्न, पृ० ८७ ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—ढील देना = ध्यान न देना । वृत्ति न होना । बेपरवाही करना । उ०—हज़ूर तो गजब करते हैं, अब फरमाइए ढील किसकी है ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ३२३ । २. बंधन को ढीला करने का भाव । ढोरी को कड़ा धा तना न रखने का भाव ।

मुहा०—ढील देना = (१) पतंग की डोर बड़ाना जिससे वह

भागे बढ़ सके । (२) स्वच्छंदता देना । मनमाना करने का व्यवसर देना । वण में न रखना ।

ढील^१—वि० दे० 'ढीला' ।

ढील^१—संज्ञा पुं० [देश०] बालों का कीड़ा । जूँ ।

ढीलना—क्रि० सं० [हि० ढीला] १. ढीला करना । जसा या तना हुआ न रखना । बंधन आदि की लंबाई घटाना जिससे जंजीर हुई वस्तु घोर भागे या इधर उधर बढ़ सके । जैसे, पतंग की डोरी ढीलना, रास ढीलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. बंधनमुक्त करना । छोड़ देना । उ०—'पै सूर बछुदवन ढीलत बन बन फिरत रहे ।—सूर (शब्द०) । ३. (रकड़ी हुई रस्सी आदि को) इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह भाग या नीचे की ओर बढ़ती जाय । डोरी आदि को बढाना या ढालना । जैसे, कुएँ में रस्सी ढालना । ४. कमी गार्की वस्तु को पतला करने के लिये उसमें पानी आदि ढालना । ५. संभोग करना । प्रसंग करना । (बाजारू) । † ६. धारण करना । जैसे, आज वे श्री ढीलार निकल हैं ।

ढीलम ढाला—वि० [हि० ढीला + ढाला] जो ठोस न हो । शिथिल । उ०—ढीलमढाला फूला हुआ घास का गह्वर ।—प्राधुनिक०, पृ० १ ।

ढीला—वि० [सं० शिथिल, प्रा० सिथिल] १. जो कसा या तना हुआ न हो । जो सब ओर से खूब खिंचा न हो । (डोरी, रस्सी तागा आदि) जिसके ठहरे या बंधे हुए छोरों के बीच भोल हो । जैसे, लगाम ढीली करना, डोरी ढीली करना, चारपाई (की बुनावट) ढीली होना ।

मुहा०—ढीली छोड़ना या देना = बंधन ढीला करना । अकुशल न रखना । मनमाना इधर उधर करने के लिये स्वच्छंद करना ।

२. जो खूब कसकर पकड़ा हुआ न हो । जो अच्छी तरह जमा या बँठा न हो । जो दृढ़ता से बंधा या लगा हुआ न हो । जैसे, पेंच ढीला होना, जंगले की छड़ ढीली होना । ३. जो खूब कसकर पकड़े हुए न हो । जैसे, मुट्ठी ढीली करना, गँठ ढीली होना, बंधन ढीला होना । ४. जिसमें किसी वस्तु को ढालने से बहुत सा स्थान इधर उधर लूटा हो । जो किसी सामनेवाली चीज के हिसाब से बड़ा या छोड़ा हो । फरस । कुशादा । जैसे, ढीला झूठा, ढीला घंटा, ढीला पायजामा । ५. जो कड़ा न हो ; बहुत मीला । जिसमें जल का भाग अधिक हो गया हो । पनीला । जैसे, रसा ढीला करना, चाशनी ढीली करना । ६. जो धरने हठ पर घड़ा न रहे । प्रयत्न या संकल्प में शिथिल । जैसे,—ढीले मत पड़ना, बराबर अपने स्वप्न का तकाजा करते रहना ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

७. जिसके क्रोध आदि का वेग मंजूर पड़ गया हो । धीमा । शांत । नरम । जैसे,—जरा भी ढीले पड़े कि वह सिर पर चढ़ जायगा ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

८. मंद । सुस्त । धीमा । शिथिल । जैसे, उससाह ढीला पड़ना ।

मुहा०—ढीली आँख = मंद मंद दृष्टि । अधलुनी आँख । रसपूर्ण या मदभरी चितवन । उ०—'देह लयों दिग मेहपति तऊ नेह निरवाहि । ढीली प्रेमियन हो हौ गई कनखियन चाहि ।—विहारी (शब्द०) ।

९. मंदिर । सुस्त । आलसी । लाहिल । १०. जिसमें काम का वेग कम हो । नपुंसक ।

ढीलापन—संज्ञा पुं० [हि० ढीला + पन (प्रत्यय)] ढीला होने का भाव । शिथिलता ।

ढीलो—वि० स्त्री० [हि० ढीला] दे० 'ढीला' ।

ढीलो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीला] दे० 'ढली' । उ०—ढीली मबल पुण जोईयउ । जउआ छई मुरी मंडण राय । बी० रामो, पृ० ८ ।

ढीह—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घ, हि० दीह] ऊँचा टीला । डूँह ।

ढीहा—संज्ञा पुं० [हि० दीह] डूँह । ढाह । ढीला । उ०—सो नाग जी के वंश की तो उठी कोठ हूणो न हो । घोर बहू गिरयो वस्ती हीहा होइ रह्यो । दो सो बचन०, भा० १, पृ० २६ ।

ढुंढा—संज्ञा पुं० [हि० डूँढना] चाई । उचकना । ठग । लुटेरा । उ०—'घोर डूँढ घटसार अन्याई अपमारणी कहाँ जे ।—सूर (शब्द०) ।

ढुंढन—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डनम्] तलाश । खोज । पता लगाना (की) ।

ढुंढपाणि—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डपाणि] १. जिन के एक गण का नाम । २. दंडपाणि भैरव । उ०—पुनि काल भैरव दुंढपाणिहू और भिगरे देव को ।—तबीर (शब्द०) ।

ढुंढपानि—संज्ञा पुं० [हि० दुंढपाणि] दे० 'दुंढपाणि' ।

ढुंढा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुण्डा] १. पुराण के अनुसार एक राक्षसी का नाम जो हिरण्यकशिपु की बहिन थी ।

विशेष—इसकी जिन से यह वर प्राप्त था कि अग्नि में न जलेगी । जब प्रह्लाद को मारने के अनुरोध करके हिरण्यकशिपु हार गया तब अपने दुंढा को बुलाया । वह प्रह्लाद को लेकर भाग में बैठी । विष्णु भगवान् की क्रुधा से प्रह्लाद तो न जले, दुंढा जलकर भस्म हो गई ।

† २. भुने अन्न नाई आदि का चाशनी के साथ बना लड्डू ।

ढुंढा^१—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डन (= भस्मेषण, खोजना)] पृथ्वीराज रासो में वर्णित एक राक्षस । उ०—'हूँकि हूँकि खाए नरनि तन दुंढा नाम ।—पु० रा०, १।५१७ ।

ढुंढाहर(पुं०)—संज्ञा पुं० [देश०] जयपुर राज्य का एक पुराना नाम । उ०—'प्रायो पत्र उतान सो ताहि बचि ब्रजएस । सुत सूरज सो तब कहाँ यमि दुंढाहर देन ।—सुजान०, पृ० २५ ।

विशेष—इस राज्य की भाषा जो जयपुर, झलवर, हाड़ोती आदि में बोली जाती है, आज भी 'दुंढाणी' या 'जयपुरी' कही जाती है । राजस्थानी गद्य साहित्य का अधिकांश इसी भाषा में प्राप्त होता है, जहाँ पृथ्वीराज की 'बेख किसन समझी री' की

टीका जो १६७३ में लिखी गई थी, इसी भाषा के गद्य में प्राप्त होती है।

दुंढि—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डि] गणेश का एक नाम। ये ५६ विनायकों में से हैं।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि सारे विषय इनके हुंठे हुए या अन्वेष्टित हैं। इसी से इनका नाम दुंढि या दुंढिराज है।

दुंढित—वि० [सं० दुण्डित] अन्वेष्टित। १. हुंढा हुंढा (वि०)।

दुंढिराज—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डिराज] दे० 'दुंढि'।

दुंढो—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बाँह। नाह। मुसुक।

दुंढो—संज्ञा स्त्री० [हि० ढोंढ़] दे० 'ढोढो'।

मुहा०—दुंढिया चढ़ाना—मुसकें बाधना। उ०—उसने भट उसकी पगड़ी उतार दुंढिया चढ़ाय मुख, डाढ़ी धोर सिर मुँह रथ के पीछे बांध लिया।—लल्लू (शब्द०)।

हुंढवाना—क्रि० सं० [हि० हुंढना या प्रे० कर] हुंढने का काम कराना। खोजवाना। तलाश कराना। पता लगवाना।

हुंढाई—संज्ञा स्त्री० [हि० हुंढना] हुंढने का काम।

हुंढाहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० हुंढना] खोज। तलाश।

दुकना—क्रि० प्र० [देश०] १. पुसना। प्रवेश करना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. झुक पड़ना। हट पड़ना। पिल पड़ना। एकबारगी किसी ओर धावा करना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

३. किसी बात को सुनने या देखने के लिये झाड़ में छिपना। लुकना। घात में छिपना। जैसे दुकक कोई बात सुनना। किसी को पकड़ने के लिये दकना। उ०—(क) दुकी रही जहाँ तहाँ सब गोरी। (ख) मउ न होत चारा कह भासा। कित बिहिरा दुकत लेह लासा।—जायसी (शब्द०)।

दुकास—संज्ञा स्त्री० [मनु० दुक दुक] पानी पीने की बहुत अधिक इच्छा। अधिक प्यास।

क्रि० प्र०—लगना।

दुक्का—संज्ञा पुं० [देश० दुका] दे० 'दुका'।

दुच्छा—संज्ञा पुं० [देश०] घूसा। मुक्का।

दुटीना—संज्ञा पुं० दे० 'ढोडा'।

दुनमुनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दुनमनाना] १. लुढ़कने की क्रिया या भाव। २. सारन में कजली गाने का एक बंग। जिसमें स्त्रियाँ एक मंडल में घूमती हुई गोल बाँधकर हाथ से तालियाँ बजाती हुई जाती हैं और बीच बीच में झुकती घोर लड़ी होती है।

क्रि० प्र०—खेलना। उ०—रात को कजली गाती कुछ दुनमुनिया भी खेलती है।—प्रेमघन०; भा० २, पृ० ३२६।

दुरकना—क्रि० प्र० [हि० डार] १. लुढ़कना। फिसलकर सरकना या गिरना। उ०—लाप बढ़ी घात मोहन की गति मोह महा गिरि तें दुरकी।—देव (शब्द०)। २. झुकना। उ०—संग में

सईस तें रईस तें नफीस बेस सीस उमनीम बना बाम धोर दुरकी।—गोपाल (शब्द०)। ३. डरकना। टपकना। बहना।

दुरकी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुरकना] लेटकर किधा जानेवाला विश्राम। लेटने या शयन करने की स्थिति। झपकी।

दुरना—संज्ञा पुं० [हि० डार] दे० 'दुनमुनिया'—२।

दुरना—क्रि० प्र० [हि० डार] १. गिरकर बहना। डरकना। डलना। टपकना। नैनन दुरहि मोति धोर मूँगा। कस गुड़ खाय रहा हूँ मूँगा।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—पड़ना।

२. कभी इधर कभी उधर होना। इधर उधर डोलना। डग-मगाना। ३. सुत या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना। लहर खाकर डोलना। लहराना। जैसे, खँवर दुरना। उ०—जोबन मदपाती इतराती बेनी दुरत कटि पे छवि बाढी।—सूर (शब्द०)। ४. लुढ़कना। फिसल पड़ना। ५. प्रवृत्त होना। ६. झुकना। उ०—कभी दुर दुर कर स्त्रियों की भाँति दुनमुनिया भी खेलते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४४।

संयो० क्रि०—पड़ना।

६. झुकल होना। प्रसन्न होना। कृपालु होना। उ०—बिन करनी मोपे दुरी काह गरीब निवाज।—रमनिधि (शब्द०)।

दुरदुरिया—वि० [हि० दुरना] दबडा। चढ़ाव उतारवाला। उ०—भंग छोड़ पातर मुँह दुरदुरिया, चूहे, मेखन के रेख।—शुक्ल० ग्रंथि० प्र० (सा०), पृ० १४०।

दुरदुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुरना] १. लुढ़कने की क्रिया का भाव। नीचे ऊपर होते हुए फिसलने या बढ़ने की क्रिया। उ०—तूटि सी करति कलहस जुग देव कहै, तूटि मोतिसिर छिति धुटि दुरदुरी सेति।—देव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।

२. पगडंडी। पतला रास्ता। नथ में लगी हुई सोने के गोल दानों की पंक्ति।

दुराना—क्रि० सं० [हि० दुरना] १. गिराकर बहाना। डरकाना। डलकाना। टपकाना। २. इधर उधर हिलाना। लहराना। उ०—बबजा फहराई छून खोर सो दुराय बागे बीरन बताय यों बलाइ बाम बाम के।—हुसैन (शब्द०)। ३. लुढ़कना। फिसलकर गिरना।

दुरावना—क्रि० सं० [हि० दुराना] दे० 'दुरना-१'। उ०—पलक न लावति, रहत ध्यान धरि, बारंबार दुरावति पानी।—सूर (शब्द०)।

दुरुआ—संज्ञा सं० [हि० दुरना] गोल मटर। केराव मटर।

दुरुकना—क्रि० प्र० [हि० दुलकना] दे० 'दुलकना'।

दुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुरना] वह पतला रास्ता जो लोगों के चलते चलते बन जाय। पगडंडी।

दुलकना—क्रि० प्र० [हि० डाल + कना (प्रत्य०), या सं० लुण्ठन,

हि० लुढ़कना] १. नीचे ऊपर होते हुए फिसलना या सरकना । ऊपर नीचे चक्कर खाते हुए बढ़ना या चल पड़ना । लुढ़कना । ढँगलाना । २. दे० 'दुरना' ।

संयो० क्रि०—जाना ।

हुलकाना क्रि० सं० [हि० हुलकना] टपकाना । गिराना । बहाना । लुढ़काना । ढँगलाना । उ०—जिसे छोड़ जल ने दमकाया । धवल धूलि ने नहलाया ।—बोणा, पृ० १२ ।

हुलहुल वि० [हि० हुलना] एक ओर स्थिर न रहनेवाला । लुढ़कनेवाला । अस्थिर । कभी इधर कभी उधर होनेवाला ।

हुलना^१ क्रि० प्र० [हि० डाल] १. गिरकर बहना । ढरकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. लुढ़कना । फिसल पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. प्रवृत्त होना । झुकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

४. अनुकूल होना । प्रसन्न होना । कुपालु होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

५. कभी इधर कभी उधर होना । इधर उधर डोलना । इधर से उधर हिलना । उ०—हुलहि घोव, लटकति लकनेमरि, मंद मंद गति पावे ।—सूर (शब्द०) । ६. मृत या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना । झट्ट खींचकर डोलना । लहराना । जैसे, चँवर हुलना ।

हुलना^१—संज्ञा पु० [सं० डोल] एक वाद्य । दे० 'डोल' । उ०—हुलना सुनी धधकारी । महली उठै भनकारी ।—घट०, पृ० ३७१ ।

हुलमुल वि० [हि० हुलना, या धनु०] दे० 'हुलहुल' । उ०—या गया फिर यत्त हुलमुल चाहुता छि वासना को आत्मलानेर ।—इत्यमर, पृ० १६७ ।

हुलमुलाना—क्रि० प्र० [हि० हुलना] कपित होना । हिलना । उ०—पत्तियों की चुनकियाँ भट भी बजा, डालियाँ कुछ हुलमुलाने ली लगीं । किस परम ध्यानदलधि के चरण पर, विश्व समिँ गीत पाने ली लगीं ।—हिममत०, पृ० ४० ।

हुलवाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डोना] १. डोने का काम । २. डोने की मजदूरी ।

हुलवाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० हुलना] १. हुलाने की क्रिया । २. हुलाने की मजदूरी ।

हुलवाना^१—क्रि० सं० [हि० डोना का प्रे० रूप] डोने का काम कराना । शीक लेकर जाने का काम कराना ।

हुलवाना^२—क्रि० सं० [हि० हुलाना का प्रे० रूप] हुलाने का काम कराना ।

हुलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० हुलाना] १. हुलाने की क्रिया । २. डोप जाने की क्रिया । जैसे,—भाजकल सामान की हुलाई हो रही है । ३. डोने की मजदूरी ।

हुलाना^१—क्रि० सं० [हि० डाल] १. गिराकर बहाना । ढरकाना । डालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. नीचे डालना । टहना न रहने देना । गिराना । उ०—स्यंघन खडि, महारथ खंडी कपिध्वज सहित हुलाऊँ ।—सूर (शब्द०) । ३. लुढ़काना । ढँगलाना । ४. पीड़ित करना । जलाना । जलन या दाह उत्पन्न करना । उ०—रमैया बिन नींद न पावे । नींद न पावे बिगड़ सतावे, प्रेम की धाँच हुलावे ।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ७३ ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. प्रवृत्त करना । झुकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

६. अनुकूल करना । प्रसन्न करना । कुपालु करना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

७. कभी इधर, कभी उधर करवा । इधर उधर डुलाना । इधर से उधर हिलाना । जैसे, चँवर हुलाना । ८. चलाना । फिराना । उ०—सूर स्वाम श्यामा वष कोनो ज्यों संग छाँड़ हुलावे हो ।—सूर (शब्द०) । (पुं०) ९. फेरना । पोतना । उ०—ऊँचा महल चितारया जूना कली दुलार ।—कबीर (शब्द०) ।

हुलाना^२—क्रि० सं० [हि० डोना] डोने का काम कराना ।

हुलिया^१—संज्ञा पु० [हि० डोल + हया (प्रत्यय)] दे० 'डोलकिया' । उ०—जैसे लटवा चढ़न बाँस पर, हुलिया डोल बजावे ।—कबीर० भा०, भा० १, पृ० १०२ ।

हुलिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० हुलना] १. छोटी डोलक । २. छोटा पालन । या डोली । मउरा सहित एक हुलिया लैयो श्री पानन की डोली ल ।—नद० प्र०, पृ० ३३१ ।

हुलुआ^१—संज्ञा स्त्री० [शब्द] खरूर या ताड़ की बनी लकड़ ।

हुलारा^१—संज्ञा पु० [देश०] हुन नाम का कीड़ा ।

हुँकना क्रि० प्र० [हि०] दे० 'हुकना' ।

हुँका संज्ञा पु० [हि० हुकना] किसी बात या वस्तु को गुप्त रूप से देखने के लिये झाड़ म । खनन का कार्य । बिना अपनी ग्राहट दिए कुछ देखने की बात में छिपने का काम ।

क्रि० प्र०—लगना ।

हुँद—संज्ञा स्त्री० [हि० हुँडना] खोज । तलाश । धन्वेष्टन ।

मुहा०—हुँद डीढ़ = खोज । तलाश ।

हुँदना—क्रि० सं० [सं० दुष्टन] खोजना । तलाश करना । धन्वेष्टन करना । पता लगाना ।

संयो० क्रि०—जानना ।—देना (दूसरे के लिये) ।—लेना (अपने लिये) ।

यो०—हुँदना डीढ़ना = खोजना । तलाश करना ।

हुँडला^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुष्टा] हुँडा नाम की राक्षसी ।

हुँडी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. किसी खोज वा गोल पिंड या लोहा । २. भुने हुए घाटे घाबि का बड़ा गोल लड्डू जिसमें गुड़ और तिल आदि मिला रहते हैं । अधिकतर यह देहातों में बनती है ।

ढुकड़ा—अर्थ० [सं० √ ढूक, प्रा० ढुक] पास । निकट । समीप ।
उ०—वागवाव विचारियऊ, ए मति उत्तिम कीध । मालह
महलहें ढुकड़ा, ढाढी डेरउ लीध ।—ढोला०, दू० १८७ ।

ढुकना—क्रि० प्र० [सं० √ ढूक, प्रा० ढुक, हि० ढुकना] १. पास
जाना । समीप जाना । उ०—अहर रंग रत्तउ ढुवइ, मुख
काजम मसि अन्न । जागियउ गु जाहल अन्नइ, तेण न ढूकउ
मन्न ।—ढोला०, दू० ५७२ ।

ढुका—संज्ञा पुं० [देश०] डठल, घास आदि के बोझ का एक मान जो
बस पूरे का होता है ।

ढुका—संज्ञा पुं० [हि० ढुकना] दे० 'ढुका' ।

ढुकिया—संज्ञा पुं० [देश०] इवेनांवर जैनों का एक भद्र ।

विशेष—इम संप्रदाय के लोग मृत्ति नहीं पूजते और भोजन स्नान
के समय को छोड़ सदा मुंह पर पट्टी बांधे रहते हैं ।

ढूसर—संज्ञा पुं० [देश०] बनियों की एक जाति ।

ढुसा—संज्ञा पुं० [देश०] कुशी का एक पेच जिसमें ऊपर आधा ढुसा
पहलवान नीचेवाले की गद्दन पर हाथ मारकर उसे चित
करता है ।

ढुहा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] १. ढेर । छटाला । २. टीला । सीटा ।
उ०—नटि रकवा को साम, धाम गिरि इह रयो बनि ।—
प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११ । ३. मिट्टी का लोटा टीला जो
सामा या हथ मूचित करने के लिये खड़ा किया जाता है ।

ढुहा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] दे० 'ढुहा' ।

ढेंक—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेंक] दे० 'ढेंक' ।

ढेंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेंकिका] एक प्रकार का लुग ।

ढेंक—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेंक] एक प्रकार का लुग जो कि लोहे की
एक छिद्रिया जिसकी नीच और गद्दन लकीरी होती है । उ०
(क) केवा लोन ढेंक एक लेडी । रवे कपूरि योन जल मदी ।
—जायसी (शब्द०) । (ख) एहन पिक मन् गजमाते ।
ढेंक महोल उंट बिगारते ।—बुलही (शब्द०) ।

ढेंक—संज्ञा पुं० [देश०] धान कूटने का लकड़ी का एक यंत्र ।
ढेंकली ।

ढेंकली—संज्ञा स्त्री० [देश०] अथवा ढेंकली (विशेष, जिसकी
गद्दन लंबी होती है) । १. चिचई के लिये ए से पानी
निहाजने का एक यंत्र ।

विशेष—इसमें एक ऊंची खड़ी लकड़ी के ऊपर एक आधी लकड़ी
बोचोबीच से इस प्रकार ठहराई रहती है कि उसमें दोनों छोर
वारी वारी से नीचे ऊपर हो सकने है । इसके एक छोर में,
मिट्टी छोरी रहती है । या पत्थर बरा रहना है और दूसरे
छोर में जो कुएँ के मुँह की ओर होता है, डोल की रस्सी बंधी
होती है । मिट्टी या पत्थर के बोझ से डोल कुएँ में से ऊपर
आती है ।

क्रि० प्र० चलना ।

२. एक प्रकार की सिलाई जो जोड़ की लकीर के समानांतर नहीं
होती, आधी होती है । आधे डोप की सिलाई ।

क्रि० प्र०—मारना ।

३. धान कूटने का लकड़ी का यंत्र जिसका आकार खींचने की
ढेंकली ही से मिलता जुलता पर बहुत छोटा और जमीन से
लगा हुआ होता है । धनकुटी । ढेंकी । ४. सबके से एक
उतारन का यंत्र । वक्तुंड यंत्र । ५. सिर नीचे और पैर ऊपर
करके उलट जाने की क्रिया । कलाबाजी । कलैया ।

क्रि० प्र०—खाना ।

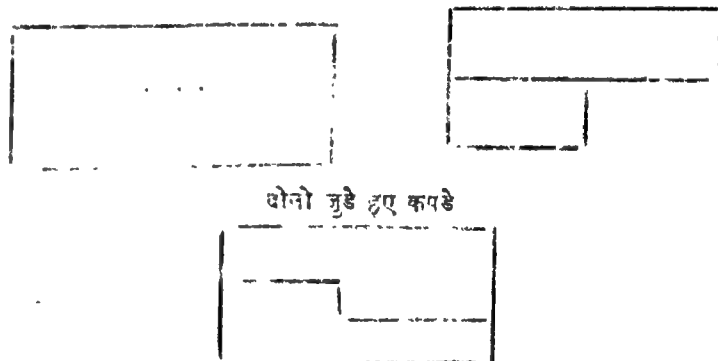
ढेंका—संज्ञा पुं० [हि० ढेंक (=पक्षी)] १. कोल्हू में वह बाँस जो
जाट के सिरे से कतरी तक लगा रहता है । २. बड़ी ढेंकी ।

ढें किया—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेंकी] डेढपटी चद्दर बनाने में कपड़े की
एक प्रकार की काट और सिलाई जिससे कपड़े की लंबाई एक
तिहाई घट जाती है और चौड़ाई एक तिहाई बढ़ जाती है ।

विशेष—इस काट की विशेषता यह है कि इसमें आड़ा जोड़
किनारे तक नहीं आता, बीच ही तक रह जाता है । इसमें
कपड़े की लंबाई को तीन बराबर भागों में तह करके आड़े
निशान डाल देते हैं । फिर एक आड़ी लकीर पर आधी दूर
तक एक किनारे की ओर से फाड़ते हैं । इसी प्रकार दूसरे
किनारे की ओर दूसरी आड़ी लकीर पर भी आधी दूर तक
फाड़ते हैं । इसके उपरान्त बीच में पड़नेवाले भाग को खड़े बल
आधेध्यान बाट देते हैं । इस तरह जो दो टुकड़े निकलते हैं
उन्हे खानी स्थान को पूरा करते हुए जोड़ देते हैं ।

पूरा कपड़ा

कटा हुआ कपड़ा



ढेंकी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेंक (=पक्षी)] धनाज कूटने का
लकड़ी का एक यंत्र । ढेंकली ।

ढेंकी—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेंकिका, ढेंकी] दे० 'ढेंकिका' ।

ढेंकुरा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेंकुरी' ।

ढेंकुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेंकली' ।

ढेंटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] धन का पेड़ ।

ढेंटा—संज्ञा पुं० [देश०] १. कीवा । २. एक सीध जाति जो मरे जान-
वरों का मांस खाती है । उ०—माँव खाँय ते ढेंड सब मद
पीवै सो पीच ।—कबीर (शब्द०) । ३. मूख । मूढ़ । जड़ ।

ढेंड—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड, हि० ढेंड] कपास आदि का डोडा ।
ढेंड । उ०—सेमर सुवना सेइए दुइ ढेंडे की भास ।—
कबीर (शब्द०) ।

ढेंडर—संज्ञा पुं० [हि० ढेंड] धाँस के डेंडे का निकला हुआ विकृत
मांस । टेंटर ।

ढेंडवा—संज्ञा पुं० [देश०] काले मुँह का बंदर । संगूर ।

ढँढा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] दे० 'ढँढ' ।

ढँढी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढँढा] १. कपास का डोडा । २. पोस्ते का डोडा । ३. कान का एक गहना । तरकी । उ०—सीस फूल जड़ाव जड़ा अंजन ज्ञान लगावन । मानसी नयुनी ढँढी शब्द मणि भरावन ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६४ ।

ढँप—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फल या पत्ते के छोर पर का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है । २. कुचाप । बोंड़ी ।

ढँपी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढँप' ।

ढँउआ—संज्ञा पुं० [देश०] पैसा ।

ढँऊ—संज्ञा पुं० [देश०] पानी की लहर । तरंग । हिलोरा ।

ढँकुआ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ढँकनी' ।

ढँदी—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दृष्टि । नजर । झाँक । उ०—रात दिवस घनी पहरीयो । तोही मुँसारी मुँसी गयो ढँदी ।—बी० रासो, पृ० १७ ।

ढँडस—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढँडसी' ।

ढँपनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढँपनी' ।

ढँपुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढँप] १. पत्ते या फल का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है । ढँप । २. किसी वस्तु की बाने की तरह उबरी हुई नोक । ठोंठ । ३. कुचाप । धुपुक ।

ढँबरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डिबरी' ।

ढँबरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चोरो, मामरो घोर रुही भी कहते हैं । वि० दे० 'कही' ।

ढँबुआ—संज्ञा पुं० [सं० ढँबुका ; या देश०] दे० 'ढँबुक' ।

ढँबुका—संज्ञा पुं० [सं० ढँबुका या देश०] ढँउआ । पैसा । उ०—यया ढँबुक मुदा जय माहीं । है सब एक पक्षि सम नाहीं ।—विश्राम (मैन्द०) ।

ढँबुआ—संज्ञा पुं० [सं० ढँबुका, देश०] पैसा । ढँउआ । ताअमुदा ।

ढँममौज—संज्ञा स्त्री० [देश० ढँऊ + फा० मौज] बड़ी जहर । समुद्र की ऊँची लहर (लश०) ।

ढँर—संज्ञा पुं० [हि० धरना] नीचे ऊपर रखी हुई बहुत सी वस्तुओं का समूह जो कुछ ऊपर उठा हुआ हो । राशि । मटाला । पंवार । गंज । टाल ।

ढँक प्र०—करना ।—लगाना ।

मुहा०—ढँर करना=मारकर गिरा देना । मार डालना । उ०—होश की दवा करो । ढँर कर दुँगा ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३७ । ढँर रखना=मारकर रख देना । जीता न छोड़ना । ढँर रहना=(१) गिरकर मर जाना । (२) एककर चूर हो जाना । अत्यंत शिथिल हो जाना । ढँर हो जाना=(१) गिरकर मर जाना । मर जाना । (२) खस्त होना । गिर पड़ जाना । जैसे, मकान का ढँर होना । (३) शिथिल हो जाना ।

ढँर^१—वि० बहुत । अधिक । ज्यादा ।

४-४१

ढँरना—संज्ञा पुं० [देश० या हि० ढरना (= घूमना)] मून या रस्सी बटने की फिरकी ।

ढँरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. सुतली बटने की फिरकी जो परस्पर काटती हुई दो आड़ी लकड़ियों के बीच में एक खड़ा बंडा जड़कर बनाई जाती है । २. मोट के मुँह पर का लकड़ी का लोहे का घेरा जो मोट का मुँह खुला रखने के लिये लगा रहता है । ३. पंकोल का पैर (वैद्यक) ।

ढँरा^२—वि० [देश०] जिसकी धाँकों की पुनर्निर्माण देखने में बराबर न रहती हों । भेंगा । अंतर तक्क ।

ढँराढँक—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली । दे० 'ढँक' ।

ढँरो—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेर] ढेर । समूह । मटाला । राशि ।

ढँरु^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढँर' । उ०—कंवन को ढँर जो सुमेरु से लक्षात है ।—भूषण पं०, पृ० ६६ ।

ढँरु—संज्ञा पुं० [हि० डला] दे० 'ढेला' ।

ढँलवाँस—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेला + सं० पाण] रस्सी का एक फंदा जिससे ढेला फेंकते हैं । मोफना । उ०—इस सभ्यता के लोगों के घाल, धाल, धाके, कटार, परशु, गदा, तीर, धनुष, ढँलवाँस आदि थे ।—आदि० पा०, पृ० ४८ ।

ढँला—संज्ञा पुं० [सं० दल, हि० डला] १. ईंट, मिट्टी, कंकड़, पत्थर आदि का टुकड़ा । चक्का : जैसे, ढेला फेंककर मारना ।

यी०—ढेला चौप ।

२. टुकड़ा । खंड । जैसे, नमक का ढेला । ३. एक प्रकार का घान । उ०—कपूर काट कजरी रतनारी । मधुकर ढेला जोरा सारी ।—जायसी (शब्द०) ।

ढँलाचौथ—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेला + चौथ] भादों सुदी चौथ । भाद्र शुक्ल चतुर्थी ।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि इस दिन चंद्रमा देखने से कलंक लगता है । यदि कोई चंद्रमा देख ले तो उसे लोगों की कुछ गालियाँ सुन लेनी चाहिए । पालियाँ सुनने की सीधी युक्ति दूसरों के घरों पर ढेला फेंकना है । अतः लोग इस दिन ढेला फेंकते हैं । यह प्रायः एक प्रकार का विनोद या खेनवाड़ सा हो गया है ।

ढँवुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पेरे का सिक्का (को०) ।

ढँकली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढँकली' ।

ढँकुरी^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का युद्धयंत्र । ढँलवाँस । मोफन । उ०—घार ढँकुरी जंत्र निवान । गड पर पंछिन पावे जाव ।—छिटाई०, पृ० ५६ ।

ढँचा—संज्ञा पुं० [देश०] चकवेंक की तरह का एक पेड़ जिसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं । हरी खाद के रूप में भी इसका प्रयोग होता है । जयंती । २. घान के मोटे पर छाजन के बिये सन या पटवे का बंठण ।

ढँक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ढँक] दे० 'ढँक' । उ०—ढँक पंखि मटामरे घने ।—लकूरी आरि अनगने ।—छिटाई०, पृ० ६३ ।

ढैया—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाई] १. ढाई सेर की घाट । ढाई सेर तोलने का बटखरा । २. ढाई गुने का पहाड़ा । ३. शनैश्चर के एक राशि पर स्थिर रहने का ढाई वर्ष का काल ।

ढौंका—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'ढोक' ।

ढौंकना—क्रि० सं० [अनु०] पीना । पी जाना । (ग्रन्थि या विनोद) ।

ढौंका—संज्ञा पुं० [देश०] १. पत्थर या और किसी कड़ी वस्तु का बड़ा घनगढ़ टुकड़ा । २. वह बाँस जो कोल्हू में जाट के सिरे से लेकर कोल्हू तक बंधा रहता है । ३. दो ढोली पान । चार से पान (तमोली) ।

ढौंग—संज्ञा पुं० [हि० ढंग] ढकोसला । पालंड । झूठा घाड़ंबर ।
क्रि० प्र०—करना ।—रचना ।

ढौंगधतूरा—संज्ञा पुं० [हि० ढौंग + सं० धृत] धृत विद्या । धूर्तता । पालंड ।

ढौंगबाज—वि० [हि० ढौंग + फा० बाज] दे० 'ढोंगी' ।

ढौंगबाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढौंग + फा० बाजी] पालंड । घाड़ंबर । ढौंग ।

ढौंगा—संज्ञा पुं० [हि० ढौंग] नाप । तोल । मान । चोंगा ।
उ० बाँस का ढौंगा, काठ की ढोकनी तथा बेंत की डलिया द्वारा नाप जोख का प्रचलन उठाकर उनके स्थान पर तबे का माना (आध सेर), पाण्ठी (चार सेर)इत्यादि को प्रमाणित पैमाना माना जायगा ।—नेपाळ०, पृ० ३१ ।

ढौंगी—वि० [हि० ढौंग] पालंडी । ढकोसलेबाज । झूठा घाड़ंबर करनेवाला ।

ढौंटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढोटा' ।

ढौंड़—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] कपास, पोस्ते आदि का ढोड़ा । २. कली ।

ढौंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढोड़] १. नाभि । घुन्नी । २. कली । डोड़ी ।

ढोक—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो १२ इंच लंबी होती है । डेरी । ढोका ।

ढोकना—क्रि० प्र० [हि० ढुकना] झुकना । नम्र रहना । उ०—
दया सब प राखि गुरन के चरनन होकत ।—ब्रज० प्र०
पृ० ११६ ।

ढोका—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'ढौंका' । २. पर्दा । लोल । उ०—
भाति पति के धर्म (ऐनक) के ढाँके लगाए ।—प्रेमधन०,
भा० २, पृ० २५८ ।

ढोटा—संज्ञा पुं० [सं० दुहितृ (= लड़की), हि० ढोटी] [स्त्री०
ढोटो] १. पुत्र । बेटा । उ०—देखत जोठ खोट चपढोटा ।
—सुलसी (शब्द०) । २. लड़का । बालक । उ०—गोकुल के
ग्वेड एक सवरो सो ढोटा माई प्रेखियन के पैर पैठि जी के
पेड़े परधी ले ।—हर (शब्द०) ।

ढोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहितृ] लड़की । पुत्री । बालिका ।

ढोटौना, ढोटौना—संज्ञा पुं० [हि० ढोटा] दे० 'ढोटा' । उ०—
श्याम चरन एक मित्यो ढोटौना तेहि मोहैं मोहिनी लगाई ।
—सूर (शब्द०) ।

ढोड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] ऊँट । (डि०) ।

ढौंड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहितृ] दे० 'ढोटी' । उ०—दुष्ची दुष्ची
ढोड़ियाँ लंदरी पर लोंसे भुलसे पाखी सी, खिसियाए मुँह
बाए ।—इश्वरम्, पृ० २१० ।

ढोना—क्रि० सं० [सं० वोढ (= वहन करना, ले जाना), प्राच्यत
वर्णविपर्यय > ढोव] १. बोझ लादकर ले जाना । भार ले
चलना । भारी वस्तु को ऊपर लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान
पर पहुँचाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—ले जाना ।

२. उठा ले जाना । जैसे,—चोर सारा माल ढो ले गए ।

ढोर—संज्ञा पुं० [हि० दुरना] गाय, बैल, भैंस आदि पशु । चोपाया ।
मवेशी । उ०—जब हरि मधुवन को जु सिधारे धीरज घरत
न ढोर ।—सूर (शब्द०) ।

ढोरना^१—क्रि० सं० [हि० ढारना] १. पानी या और कोई द्रव
पदार्थ गिराकर बहाना । ढरकाना । ढालना उ०—(क) रीते
भरे, भरे पुनि ढोरे, चाहै फेरि भरे । कबहुँक तृण बूझै पानी
में कबहुँ गिला तरै ।—सूर (शब्द०) । (ख) जमनी प्रति
रिस जानि बधायो चित्त वदन लोचन जल ढोरे ।—सूर
(शब्द०) । (ग) वै धकूर कूर कृत जिनके रीत भरे भरे गहि
ढोरे ।—सूर (शब्द०) । २. जुढ़काना । ३. फेरना । ढालना ।
उ०—यमुनाप्रसाद ने आँखें ढीरी । कहा, 'पहुँचवान, मामला
हमारा गद्दी और अब बिलकुल बक्त नहीं रहा' ।—काले०,
पृ० ४१ । ४. डुलाना । हिलाना । उ०—(क) खंवर बाह
ढोरत हूँ ठाढ़ी ।—नंद० प्र०, पृ० २१३ । (ख) लेकर बाउ
विजन कर ढोरौ ।—रसरतन, पृ० २१५ । (ग) पान लवावत
चरन पलोतत ढोरत विजन धीर ।—भारतेंदु प्र०, भा० २,
पृ० ५६६ । ५. नम्र करना । नमाना । नीचा करना । उ०—
जैसे बचनु सुन्यो सुलितान । सीसु ढोरि कै मुँदे कान ।—
खिताई०, पृ० ६१ ।

ढोरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढोर' ।

ढोरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ढोरना] १. ढालने का भाव । ढरकाने की
क्रिया या भाव । उ०—कनक कलस केसरि भरि ल्याई डारि
दियो हरि पर ढोरी की । भति मानव भरी ब्रज युवती गावति
गीत सबे होरी की ।—सूर (शब्द०) । २. रट । धुन । गान ।
लो । लगन । उ०—सूरदास गोपी बड़भागी । हरि बरसन
की ढोरी लागी । (ख) ढोरी लाई सुनन की, कहि गोरी
मुस्कात । धोरी धोरी सकुच सों भोरी भोरी बात ।—बिहारी
(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

ढोरी^२—वि० [हि० ढोरना] १. ठुरी हुई । ठली हुई । २. हिलती
डुलती । मत्त । उ०—ब्रज बनिता धोरी भई होरी खेलत
आज । रस ढोरी दोरी फिरत भिजवत हैं बजरज ।—ब्रज०
प्र०, पृ० ३१ ।

ढोख^३—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जिसके दोनों ओर चमड़ा
मड़ा होता है ।

विशेष—लकड़ी के गोल कटे हुए संबोतरे कुंदे को भीतर से खोखला करते हैं और दोनों ओर मुँह पर चमड़ा मढ़ते हैं। छोटा ढोल हाथ से और बड़ा ढोल लकड़ी से बजाया जाता है। दोनों ओर के चमड़ों पर दो भिन्न भिन्न प्रकार का शब्द होता है। एक ओर तो 'ढब ढब' की तरह गंभीर ध्वनि निकलती है और दूसरी ओर टनकार का शब्द होता है।

यौ०—ढोल डमकका = बाजा गाजा। धूम धाम।

मुहा०—ढोल पीटना या बजाना = घोषणा करना। प्रसिद्ध करना। प्रकट करना। प्रकाशित करना। चारों ओर कहते या जताते फिरना। उ०—(क) नाचो घूँघट खोलि ज्ञान की ढोल बजायो।—पलटू०, पृ० ६१। (ख) ब्रजमंडल में बदनामी के ढोल, निसंक हँ आँख बजे तो बजे।—नट०, पृ० ५८।

२. कान का परदा। कान की वह झिल्ली जिसपर वायु का आघात पड़ने से शब्द का ज्ञान होता है।

ढोल(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] एक वाद्य। दे० 'ढोल'—१। उ०—नाचो घूँघट खोलि ज्ञान की ढोल बजायो।—पलटू०, पृ० ६१

ढोलक—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] छोटा ढोल। ढोलकी।

ढोलकिया—संज्ञा पुं० [हिं० ढोलक] ढोल बजानेवाला।

ढोलकिहवाँ—संज्ञा पुं० [हिं० ढोलक] दे० 'ढोलकिया'। उ०—फटत ढोल बहु ढोलकिहवन की अँगुरिन तर तर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३६।

ढोलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोलक] दे० 'ढोलक'।

ढोलडमकका—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल + धनु० डमकका] दे० 'ढोल' का यौ०।

ढोलन¹—संज्ञा पुं० [सं० ढोलन] दे० 'ढोलना'²।

ढोलना²—संज्ञा पुं० [ध्रु०] दूरहा। प्रिय। प्रियतम। उ०—ढोलन मेरा भावता बेगि मिलहु मुझ बाह। सुंदर व्याकुल विरहनी तलफि तलफि जिय जाय।—सुंदर य०, भा० २, पृ० ६८६।

ढोलनहार—वि० [हिं० ढोलना] ढालने या ढलकनेवाला। उ०—मन निख ढोलनहार।—कबीर ग्रं०, पृ० १८।

ढोलना¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] १. ढोलक के आकार का छोटा जंतर जो रागे में परोकर गले में पहना जाता है। उ०—माने गढ़ि सोना ढोलना पहिराए चतुर सुनार।—सूर (शब्द०)। २. ढोल के आकार का बड़ा बेलन जिसे पहिए की तरह लुढ़का कर सड़क का कंकड़ पीटते या लेट के डेले फोड़कर जमीन खोद करते हैं।

ढोलना²—संज्ञा पुं० [सं० ढोलन] बच्चों का छोटा झूला। पालना।

ढोलना³—क्रि० स० [सं० ढोलन] १. ढरकाना। ढालना। उ०—(क) रे षट्पासी, मैंने वे षट तेरे ही चरणों पर ढोले; कौन तुम्हारी बातें खोले।—हिमंत०, पृ० २६। (ख) बोवा केरे कूँपले ढोली साहिब सीस।—ढोला०, पृ० ५६३। २. हलार उधर हिलाना। झुलाना। झलना। जैसे, खँवर ढोलना।

ढोलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोलन] बच्चों का झूला। पालना। उ०—

धगर खँवन को पालनी गढ़ई गुर ढार मुढार। ले प्रायो गढ़ि ढोलनी बिमकमा सो सुतधार।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह झूला रस्सी से लटका हुआ एक छोटा घेरेदार खटोला या होता है।

ढोलवाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलना] दे० 'ढुलवाई'।

ढोला—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] १. बिना पैर का रेंगनेवाला एक प्रकार का छोटा सुफेद कीड़ा जो श्राप प्रभु में दो अंगुल तक लंबा होता है और सड़ी हुई वस्तुओं (फल आदि) तथा पोषों के हरे ठठलों में पड़ जाता है। २. वह इह या छोटा चबूतरा जो गाँवों की सीमा सूचित करने के लिये बना रहता है। हृद का निशान।

यौ०—ढोलाबदी।

३. गोल मेहराब बनाने का डाट। लदा। ४. पिंड। शरीर। देह। उ०—जो लागि ढोला तो लागि ढोला तो लागि धनव्यवहार।—कबीर (शब्द०)। ५. डंफ या दमाघा। उ०—वामसेनि राजा तब बोला। चहुँ दिसि देह बुझ कहँ ढोला।—हिंदो प्रेम०, पृ० २२३।

ढोला²—संज्ञा पुं० [सं० दुर्लभ, दुल्लह, राजा, प्रं० ढोला] १. पति। प्यारा। प्रियतम। २. एक प्रकार का गीत। ३. मूल मनुष्य। जड़।

ढोलिअरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] ढोल बजानेवाला व्यक्ति। उ०—ढोलिअरा के होलें—होलें ढोलु बजाइ।—पादार. प्रमि० पं०, पृ० २१८।

ढोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० होच] दे० 'ढोल'। उ०—संग राधिका मुजान गावत सारंग तान, बजन बाँसुरी मृदंग बीन ढोलिका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३६३।

ढोलिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोलिया] ढोल बजानेवाली। डफालिन। उ०—नटनि होमिनी ढोलिनी सहनाइनि भेरिकारि। नितंत तंत विनोद सऊँ विहंसत खेलत नारि।—जयगो (शब्द०)।

ढोलिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] [स्त्री० ढोलिनी] ढोल बजानेवाला व्यक्ति। उ०—मीर बड़े बड़े जात बड़े तहाँ डोलिया पार लगावन को है।—ठाकुर (शब्द०)।

ढोलिया(पु)²—[हिं० ढुलकना या ढुलना] एक जगह स्थिर न रहनेवाला। गतिशील। रमता। उ०—ढोलिया माधु मदा मसारा।—धरती०, पृ० ४१।

ढोली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोल] २०० पानों की गड़ो। उ०—ढोलिन ढोलिन पान बिकाना भीटन के मैदाना।—कबीर (शब्द०)।

ढोली²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठोली, ठोली] हँसी। दिल्लगी। ठठाली। ठट्टा। उ०—सूर प्रभु की नारि राधिका नागरी चरचि लीनो मोहि करति ढोली।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ढोव—संज्ञा पुं० [हिं० ढोवना] वह पदार्थ जो किसी मंगल के अवसर पर लोग सरदार या राजा को भेंट ले जाते हैं। डाली। नजर। उ०—लै ले ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाति भाति मरि मरि।—सुलसी (शब्द०)।

ढोवना¹—क्रि० स० [हिं० ढोवा] दे० 'ढोवा'।

ढोवा^१—संज्ञा पुं० [?] धावा । धाक्रमण । हमला । न०—पंच पंच मन की हाथनि गुरज । ढोवा ठारि ठहारे बुरज ।—छिताई०, पृ० ३४ । (ख) निसि वासरु ढोवा करे सोणित बहे प्रवाह ।—छिताई०, पृ० ४२ ।

ढोवा^२—संज्ञा पुं० [हि० ढोना] १. ढोए जाने की क्रिया । ढोवाई । २. लूट । उ०—सूनहि सून संवरि गढ़ रोवा । कस होइहि जो होइहि ढोवा ।—जायसी (शब्द०) ।

ढोवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ढुलाई] दे० 'ढुलाई' ।

ढोहना—क्रि० स० [हि० टोह] टोह लेना । ढोहना ।

ढौचा—संज्ञा पुं० [म० घट्टं, प्रा० घट्ट + हि० चार] वह पहाड़ा जिसमें क्रम से एक एक घंटा का साढ़े चार गुना घंटा बतलाया जाता है । साढ़े चार का पहाड़ा ।

ढौसना—क्रि० प्र० [प्रनु०, हि० धौस] धानंश्चनि करना उ०—तियनि को तल्ला पिय तियन पियल्ला त्यागे ढौसत प्रबता मल्ला धाप राजद्वार को ।—रघुराज (शब्द०) ।

ढौकन—संज्ञा पुं० [सं०] धूस । रिशवत ।

ढौकना—क्रि० स० [देश०] पीना ।—(अणिष्ट) ।

ढौकित—वि० [सं०] समीप या निकट लाया हुआ (को०) ।

ढौरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] रट । धुन । ली । लगन । उ०—(क) रसिक सिर मोर ढौरि लगावत गावत राघः राधा नाम ।—सूर (शब्द०) । (ख) रूखिए खान नही प्रनखान भखे दिन राति रही परि ढौरी ।—देव (शब्द०) ।

ढौरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दुरना] दे० 'दुरी' ।

ण

ण—हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का पंद्रहवाँ व्यंजन । इसका उच्चारण-स्थान मूर्धा है । इसके उच्चारण में आन्तरिक प्रयत्न स्पृष्ट और सानुनासिक है । आह्व प्रयत्न संवार नाद घोष और अल्पप्राण है । इसका संयोग मूधन्य वर्ण, अंतस्थ तथा न और ह के साथ होता है ।

ण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विदुदेव । एक बुद्ध का नाम । २. आसूषण । ३. निर्णय । ४. ज्ञान । ५. शिव का एक नाम । ६. पानी का

घर । ७. दान । ८. पिपल में एक गण का नाम, वि० दे० 'अगण' । ९. बुरा व्यक्ति । खराब आदमी (को०) । १०. अस्वीकारसूचक शब्द । न । नहीं (को०) ।

ण^२—वि० गुणरहित । गुणशून्य ।

णगण—संज्ञा पुं० [सं०] दो मात्राओं का एक मात्रिक गण । इसके दो रूप हो सकते हैं जैसे, 'अ' (ः) और 'इ' (ः) ।

णय—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मलोक का एक समुद्र (को०) ।

त

त—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का १६वाँ और तवर्ग का पहला अक्षर जिसका उच्चारणस्थान दंत है । इसके उच्चारण में विवार, प्रवास और प्रघोष प्रयत्न लगते हैं । इसके उच्चारण में आधी मात्रा का समय लगता है ।

तं—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाव । नौका । २. पुण्य । पवित्रता ।

तंक—संज्ञा पुं० [म० तङ्क] १. भय । डर । वह दुःख जो किसी प्रिय के वियोग में हो । ३. पत्थर काटने की टीकी । ४. पहनने का कपड़ा । ५. कष्टपूर्ण जीवन । विपत्तियुक्त जीवन (को०) ।

तंकन—संज्ञा पुं० [म० तङ्कन] कष्टमय जीवन । दुःख के साथ जीवन व्यतीत करना (को०) ।

तंका^(१)—वि० [हि० तंक] अयकारी । घातक उत्पन्न करनेवाला । उ०—नरवल ओ चितोड़ मृतका । ह० राखो, पृ० ५६ ।

तंग^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] घोड़ों की जीन कमरे का तस्मा । घोड़ों की पेटी । बसन ।

तंग^२—वि० १. कसा । दढ़ । २. आग्निज । दुखी । विक । विकल । हैरान ।

मुहा०—तंग भाना, तंग होना = घबरा जाना । थक जाना । तंग करना = मसाना । दुःख देना । हाथ तंग होना = पैसे पैसा न होना । धनहीन होना ।

३. सँकरा । संकुचित । पतला । चुस्त । संकीर्ण । छोटा । सिकुड़ा हुआ । सकेत । उ०—कहै पदमाकर त्यों उल्लसत उरोजन पै तंग अंगिया है तनो तनिन तनाइके ।—पद्माकर पं०, पृ० १२६ ।

तंगदस्त—वि० [फ्रा०] १. कृपण । कंजूस । २. दरिद्र । धनहीन । गरीब ।

तंगदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. कृपणता । कंजूसी । २. दरिद्रता । धनहीनता । गरीबी ।

तंगदिल—वि० [फ्रा०] कंजूस । उ०—हुमा मानूम यह गुने से हमको । जो कोई जरदार है सो तंगदिल है ।—कविता को०, भाग० ४, पृ० ३० ।

तंगनजर—वि० [फ्रा० तंग + प्र० नजर] १. तुच्छ दृष्टि का । सीमित दृष्टिवाला । बहुत कम देखनेवाला । उ०—उसने उनकी तुलना उन तंगनजर बीटियों से की, जो किसी प्रतिभा के सौंदर्य को इसलिये वही देख पाती क्योंकि उसपर रेंगते समय वे केवल उसके छोटे मोटे उतार चढ़ावों पर ही दृष्टि केन्द्रित रखती हैं ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० 'ब' । २. अनुदार । दकियामूस ।

तंगनजरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तंगनजर + ई (प्रत्य०)] १. दृष्टि की संकीर्णता । दृष्टि की अल्पता । २. अनुदारता । दकियामूसी ।

तंगहाल—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. निर्धन । गरीब । २. विपद्ग्रस्त । कष्ट में पड़ा हुआ । ३. बीमार । रोगग्रस्त । मशरूआसम ।

तंगहाली—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तंग + घ० हाल + फ्रा० ई (प्रत्यय)] १. तंग होने की स्थिति । कठिनाई । २. अभाव । ३. परेशानी । विकत । ४. अर्थाभाव की स्थिति (को०) ।

तंगा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पेड़ । २. अधन्ना । उबल, पैसा ।

तंगिश—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तंगी' ।

तंगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. तंग या सँकरे होने का भाव । संकीर्णता । संकोच । २. दुःख । तबलीफ । क्लेश । ३. निधनता । गरीबी । ४. कमी । उ०—बँध ते निर्बँध कीन्हा तोड़ सब तंगी । कहै कबीर प्रगम गम कीया नाम रंघ रगो ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७७ ।

तंजन—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताजियाना] दे० 'ताजन' । उ०—जल बिनु पदम घ्राति बिनु चंपा विद्या चतुर सोड़ बिनु तंजन ।—सं० हरिया, पृ० ६० ।

तंजेब—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तनजेब] एक प्रकार का उद्दीन घोर बढ़िया मलमल ।

तंड^१—संज्ञा पुं० [सं० तण्डव] नृत्य । नाच । उ०—बहुत गुलाब के सुगंध के समीर सने परत कुही है जल जत्रन के तंड की ।—सुकुसुभाकर (शब्द०) ।

तंड^२—संज्ञा पुं० [सं० तण्ड] एक ऋषि का नाम ।

तंड^३(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तण्डा] १. वध । संहार । २. आक्रमण । प्रहार । उ०—जिन बीरन बसि करन बुंद आराधत तंडहि ।—पृ० रा० ६।५६ ।

तंडक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डक] १. खंजन पक्षी । २. फेन । ३. पेड़ का तना । ४. वह वाक्य जिसमें बहुत से समास हों । ५. बहुवचन । ६. संज्ञा । सजावट (को०) । ७. ऐंद्रजालिक । बाजीगर (को०) । ८. पूर्वाभ्यास घयना पूर्व अश्विनय (को०) ।

तंडना(पु)—क्रि० सं० [सं० तण्ड] नष्ट करना । समाप्त करना । उ०—तोप नगारो तंडियो, मसुराँ देव अमार ।—शिक्षर, पृ० ६५ ।

तंडव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तण्डव] नृत्यविशेष । एक प्रकार का नाच । जैसे,—शोक रति पंडित प्रखंडित करत काम नदन सो मंडित कला कहै पुरन की ।—देव (शब्द०) ।

तंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डा] १. मार डालना । वध । २. आक्रमण । प्रहार (को०) ।

तंडि—संज्ञा पुं० [सं० तण्डि] एक बहुत प्राचीन ऋषि का नाम जिनका वर्णन महाभारत में आया है । इनके पुत्र के बनाए हुए मंत्र यजुर्वेद में हैं ।

तंडीर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तूणीर] तूणीर । तरकस । उ०—तीन पनध धुनहीं करन बहै कटन तंडीर ।—पृ० रा०, ७।७६ ।

तंडु—संज्ञा पुं० [सं० तण्डु] महादेव जी के नविकेश्वर । नंदी ।

तंडुरण—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुरण] १. चावल का पानी । २. कीड़ा मकोड़ा ।

तंडुरीण—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुरीण] १. वह पानी जिसमें चावल धोया गया हो । चावल का धोवन । २. माँड़ । ३. बज्र मूल । बंबर व्यक्ति । ४. कीड़ा मकोड़ा (को०) ।

तंडुल—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुल] १. चावल । २. वायविडंग । ३. तंडुली शाक । चोलाई का साग । ४. प्राचीन काल की हीरे की एक तोल जो घाट सरसों के बराबर होती थी ।

तंडुलजल—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलजल] चावल का पानी जो वैद्यक में बहुत हितकर बनलाया गया है । यह दो प्रकार से तैयार किया जाता है—(१) चावल को सूटकर घटगुने पानी में पकाकर छान लेते हैं, यह उत्तम तंडुलजल है । (२) चावल को थोड़ी देर तक भिगोकर छान लेते हैं । यह तंडुलजल साधारण है ।

तंडुलांबु—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलाम्बु] १. तंडुलजल । २. माँड़ । पीप ।

तंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुला] १. वायविडंग । ककड़ी का पोषा । २. चोलाई का साग ।

तंडुलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुल] चोलाई । चोलाई ।

तंडुली—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुली] १. एक प्रकार की ककड़ी । २. चोलाई का साग । ३. यववित्त नाम की लता ।

तंडुलीक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीक] चोलाई का साग ।

तंडुलीय—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीय] चोलाई का साग ।

तंडुलीयक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीयक] १. वायविडंग । २. चोलाई का साग ।

तंडुलीयिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुलीयिका] वायविडंग ।

तंडुलू—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुल] वायविडंग । बिडंग ।

तंडुलेर—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलेर] चोलाई का साग ।

तंडुलेरक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलेरक] चोलाई का साग ।

तंडुलोत्थ—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोत्थ] चावल का पानी । दे० 'तंडुलजल' ।

तंडुलोत्थक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोत्थक] दे० 'तंडुलोत्थ' (को०) ।

तंडुलोदक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोदक] चावल का पानी । दे० 'तंडुलजल' ।

तंडुलीय—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीय] १. एक प्रकार का बाँस । कट-बाँसी । २. अनाज का ढेर (को०) ।

तंत^१(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तन्तु] 'तन्तु' । उ०—किंगरी हाथ बहे बैरागी । पाँच तंत धुनि यह एक लापी ।—जायसी (शब्द०) ।

तंत^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तुरत] किसी बात के लिये बल्सी । घातुरता । उतावली । उ०—ध्यान की मूर्ति छोड़ि ते घागे जानि परत रघुनाथ ऐसे कहति हैं तंत सों ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लपाना ।

तंत^३—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व] दे० 'तत्त्व' । उ०—योगिहि कोह न चाहो तब न मोहि रिस लाग । योग तंत ज्यों पानी काहि करे तेहि भाग ।—जायसी (शब्द०) ।

तंत^४—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १. वह बाँस जिसमें बजाने के लिये तार बंधे हों । जैसे,—सितार, बोन, सारंगी । उ०—(क) बटिनी

डोमिनि डोलिनी सहनाइनि भेरिकार । निरतन तंत विनोद
सर्वे बिहमत खेलति नारि ।—जायसी (शब्द०) । (ख) तंतन
की भनकार बजत भीनी भीनी ।—संतवाणी०, पृ० २३ । २.
क्रिया । उ०—जनु उन योग तंत छब खेला ।—जायसी
(शब्द०) । ३. तंत्रशास्त्र । उ०—कइ जीउ तंत मंत सउं हेरा ।
गएउ हेराय सो वह भा मेरा ।—जायसी (शब्द०) । ४. इच्छा ।
प्रबल कामना । उ०—(क) दिसि परजंत अनंत स्यात जय
बिजय तंत जिय ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) बुद्धिमंत दुतिमंत
तंत जय मय निरधारत ।—गोपाल (शब्द०) । ५. वंश ।
अधीनता । उ०—स्थौ पदमाकर प्राहगो कंत इकंत जवै निज
तंत में जानी । पयाकर (शब्द०) ।

विशेष— दे० 'तंत्र' ।

तंत'—वि० जो तोल में ठीक हो । जो वजन में बराबर हो ।

तंतमंत^७—संज्ञा पुं० [म० तन्त्रमन्त्र] दे० 'तंत्र मन्त्र' । उ०—कइ जिउ
तंत मंत सौं हेरा । गएउ हिराय जो वह भा मेरा—
जायसी (शब्द०) ।

तंतरी^७—संज्ञा पुं० [म० तंत्री] वह जो तारवाले बाजे बजाता हो ।
उ०—घायो दुसह बसंत री तंत न आए बीर । जन
मन बेधन तंतरी मदन सुमन के तोर ।—शृ० छंद० (शब्द०) ।

तंताल^७—संज्ञा पुं० [?] पाताल । उ०—नभ नाल तंताल
घराल मिले त्रयलोक सुरप्पति बिद्धि सही ।—राम० धर्म०,
पृ० ३०० ।

तंति—संज्ञा स्त्री० [म० तन्ति] १. गो । गाय । २. रस्सी (को०) । ३.
पंक्ति (को०) । ४. शृङ्खला (को०) । ५. फैलाव । प्रसार (को०) ।

तंति^२—संज्ञा पुं० जुलाहा ।

तंति^७—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्री] १. तंत्री । बीणा । उ०—तुलंत
एक सगीत भति । नारद रिभक्त कर धरत तंति ।—पु०
रा०, ६।४१ । २. तंति । प्रत्यक्षा । डोरी । गुण । उ०—नव
पुटपन के धनुष बनावे । धनुष पति तंति चढ़ावे ।
—नंद० ग्रं०, पृ० १६४ ।

तंतिपाछ—संज्ञा पुं० [तन्तिपाल] १. सहदेव का वह नाम जिससे
वह अज्ञातवास के समय विराट के यहाँ प्रविष्ट थे । २. वह जो
गो की रक्षा या पालन करता हो ।

तंती^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तन्त्री' । उ०—तंतिनाद । तंबोल रस
सुरहि सुगंध जहि ।—दोल०, पृ० २२३ ।

तंतु^१—संज्ञा पुं० [सं० तन्तु] १. सूत । डोरा । ताना ।

यौ०—तंतुकीट ।

२. ग्राह । ३. संतति । मतान । बाल बच्चे । ४. विस्तार ।
फैलाव । ५. यज्ञ की परंपरा । ६. वंशपरंपरा । ७. तंति ।
८. मकड़ी का जाला ।

तंतु^७—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] तंत्र । उ०—जिहि मूरि घोषद लगे,
जाहि तंतु नहि मंतु । पिय पठय पावे नही, व्याधि कहत
इमि जंतु ।—रस २०, पृ० ५० ।

तंतुक^१—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुक] १. सरसों । २. (केवल समासांत में)
सूत्र । रस्सा (को०) । ३. सर्प (को०) ।

तंतुक^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी ।

तंतुकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुकाष्ठ] जुलाहों की एक लकड़ी जिसे
तूली कहते हैं ।

तंतुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी ।

तंतुकीट—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुकीट] १. मकड़ी । २. रेशम का कीड़ा ।

तंतुजाल—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुजाल] नशों का समूह (वैद्यक) ।

तंतुण—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुण] १. एक बड़ी मछली । २. मगर (को०) ।

तंतुन—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुन] दे० 'तंतुण' (को०) ।

तंतुनाग—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुनाग] मगर ।

तंतुनाभ—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुनाभ] मकड़ी ।

तंतुनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुनिर्यास] ताड़ का पेड़ ।

तंतुपर्व—संज्ञा पुं० [सं० तंतुपर्व] श्रावण की पूर्णिमा जिस दिन
राखी बांधी जाती है । रक्षाबंधन ।

तंतुभ—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुभ] १. सरसों । २. बछड़ा ।

तंतुमत्—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुमत्] आग ।

तंतुमान्—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुमत्] आग (को०) ।

तंतुर—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुर] मृणाल । असीढ़ । मुरार । कमल की
जड़ । कमलनाल ।

तंतुल—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुल] दे० 'तंतुर' ।

तंतुवर्धन^१—वि० [सं० तन्तुवर्धन] जाति को बढ़ानेवाला (को०) ।

तंतुवर्धन^२—संज्ञा पुं० १. विष्णु । २. शिव (को०) ।

तंतुवादक—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवादक] तंत्री । बीन आदि तार के
बाजे बजानेवाला । उ०—बहुरि तंतुवादक रघुराई । गान
करन में निपुन बनाई ।—रामाश्वमेध (शब्द०) ।

तंतुवाद्य—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवाद्य] १. तारवाला बाजा (को०) ।

तंतुवाप—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवाप] १. तंति । २. तंती । दे० 'तंतुवाय' ।

तंतुवाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपड़े बुननेवाला । तंती ।

विशेष—भिन्न भिन्न रमृतियों में इनकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न
प्रकार से बतलाई गई है । किसी में इन्हें मणिबंध पुरुष घोर
मणिकार स्त्री से घोर किमी मे वैश्य पिता घोर क्षत्रियाणी
माता के गर्भ से उत्पन्न बतलाया गया है । इनकी उत्पत्ति के
संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ भी हैं ।

२. मकड़ी । उ०—आकाश जाल सब घोर तना, रवि तंतुवाय
है आज बना । करता है पदप्रहार वही, मक्खी सी भिन्ना
रही मही ।—साकेत, पृ० २६७ ।

तंतुवायदंड—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवायदण्ड] करघा (को०) ।

तंतुविग्रह—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुविग्रह] केले का पेड़ ।

तंतुविग्रहा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुविग्रहा] केले का पेड़ (को०) ।

तंतुशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुशाला] जुलाहे का कपड़ा बुनने का
स्थान (को०) ।

तंतुसंतत—वि० [स० तन्तुसन्तत] बुना हुआ [को०] ।

तंतुसंतति—संज्ञा स्त्री [स० तन्तुसन्तति] बुनाई [को०] ।

तंतुसंतान—संज्ञा पुं० [स० तन्तुसन्तान] बुनाई [को०] ।

तंतुसार—संज्ञा पुं० [स० तन्तुसार] सुपारी का पेड़ ।

तंत्र—संज्ञा पुं० [स० तन्त्र] १. तंतु । तति । २. सूत । ३. जुलाहा । ४. कपड़ा बुनने की सामग्री । ५. कपड़ा । वस्त्र । ६. कुटुंब के भरण और पोषण आदि का कार्य । ७. निश्चित सिद्धांत । ८. प्रमाण । ९. शोध । दवा । १०. झाड़ने फूँकने का मंत्र । ११. कार्य । १२. कारण । १३. उपाय । १४. राज-कर्मचारी । १५. राज्य । १६. राज का प्रबंध । १७. सेना । फौज । १८. अधिकार । १९. कार्य का स्थान । पद । २०. समूह । २१. प्रसन्नता । आनंद । २२. घर । मकान । २३. जन । संपत्ति । २४. अधीनता । परबधता । २५. श्रेणी । वर्ग । कोटि । २६. दल । २७. उद्देश्य । २८. कुल । सान्दान । २९. शपथ । कसम । ३०. हिंदुओं का उपासना संबंधी एक शास्त्र ।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि यह शास्त्र निरूपणीत है । यह शास्त्र तीन भागों में विभक्त है—आगम, यामल और मुख्य तंत्र । वाराही तंत्र के अनुसार जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, सब कार्यों के साधन, पुरस्चरण, षट्कर्म-साधन और चार प्रकार के ध्यानयोग का वर्णन हो, उसे आगम और जिसमें सृष्टितत्व, ज्योतिष, नित्य कृत्य, क्रम, सूत्र, वर्णभेद और धुगधर्म का वर्णन हो उसे यामल कहते हैं; और जिसमें सृष्टि, लय, मंत्रनिर्णय, देवताओं के संस्थान, यंत्रनिर्णय, तीर्थ, आधम, धर्म, कल्प, ज्योतिष संस्थान, व्रत-कथा, शोच और अशोच, स्त्री-पुरुष-लक्षण, राजधर्म, दान-धर्म, युवाधर्म, व्यवहार तथा 'आध्यात्मिक विषयों' का वर्णन हो, वह तंत्र कहलाता है । इस शास्त्र का सिद्धांत है कि कलियुग में वैदिक मंत्रों, जपों और यज्ञों आदि का कोई फल नहीं होता । इस युग में सब प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिये तंत्रशास्त्र में वर्णित मंत्रों और उपायों आदि से ही सहायता मिलती है । इस शास्त्र के सिद्धांत बहुत गुप्त रहे जाने हैं और इसकी शिक्षा लेने के लिये मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता है । आजकल प्रायः मारण, उच्छादन, बर्शीकरण आदि के लिये तथा अनेक प्रकार की सिद्धियों आदि के साधन के लिये ही तंत्रोक्त मंत्रों और क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है । यह शास्त्र प्रधानतः शाक्तों का ही है और इसके मंत्र प्रायः अर्थहीन और एकाक्षरी हुआ करते हैं । जैसे,—ह्रीं, क्लीं, श्रीं, ह्रीं, शूं, कूं आदि । तांत्रिकों का पंचमकार—मद्य, मांस, मत्स्य, भुद्रा और मैथुन—और चक्रपूजा प्रसिद्ध है । तांत्रिक सब देवताओं का पूजन करते हैं पर उनकी पूजा का विधान सबसे भिन्न और स्वतंत्र होता है । चक्रपूजा तथा अन्य अनेक पूजाओं में तांत्रिक लोग मद्य, मांस और मत्स्य का बहुत अधिकता से व्यवहार करते हैं और भीषण, तेलिन आदि स्त्रियों को नंगी करके उनका पूजन करते हैं । यद्यपि अथर्ववेद संहिता में मारण, मोहन, उच्छादन और बर्शीकरण

आदि का वर्णन और विधान है तथापि आधुनिक तंत्र का उसके साथ कोई संबंध नहीं है । कुछ लोगों का विश्वास है कि कनिष्क के समय में और उसके उपरांत भारत में आधुनिक तंत्र का प्रचार हुआ है । चीनी यात्री फाहियान और ह्वेनसांग ने अपने लेखों में इस शास्त्र का कोई उल्लेख नहीं किया है । यद्यपि निश्चिन्न रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तंत्र का प्रचार कब से हुआ पर तो भी इसमें संदेह नहीं कि यह ईसवी चौथी या पाँचवीं शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है । हिंदुओं की देखादेखी बौद्धों में भी तंत्र का प्रचार हुआ और तत्संबंधी अनेक ग्रंथ बने । हिंदू तांत्रिक उन्हें उपतंत्र कहते हैं । उनका प्रचार तिब्बत तथा चीन में है । वाराही तंत्र में यह भी लिखा है कि जैमिनि, कपिल, नारद, गरुड, पुलस्त्य, भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि ऋषियों ने भी कई उपतंत्रों की रचना की है ।

तंत्रक—संज्ञा पुं० [स० तन्त्रक] नया कपड़ा ।

तंत्रकाष्ठ—संज्ञा पुं० [स० तन्त्रकाष्ठ] दे० 'तंतुकाष्ठ' [को०] ।

तंत्रण—संज्ञा पुं० [स० तन्त्रण] शासन या प्रबंध आदि करने का काम ।

तंत्रता—संज्ञा स्त्री [स० तन्त्रता] कई कार्यों के उद्देश्य से कोई एक कार्य करना । कोई ऐसा कार्य करना जिससे अनेक उद्देश्य सिद्ध हों । जैसे, यदि किसी ने अनेक प्रकार के पाप किए हों तो उनमें प्रत्येक पाप के लिये प्रायश्चित्त न करके एक ऐसा प्रायश्चित्त करना जिसमें सब पाप नष्ट हो जायें प्रत्येक बार बार प्रत्युपपन्न होने की दशा में प्रत्येक बार स्नान न करके सबके घंत में एक ही बार स्नान कर लेना । (भर्मशास्त्र) ।

तंत्रधारक—संज्ञा पुं० [स० तन्त्रधारक] यज्ञ आदि कार्यों में वह मनुष्य जो कर्मकांड आदि की पुस्तक लेकर याज्ञिक आदि के साथ बैठता हो ।

विशेष—स्मृतियों के अनुसार यज्ञ आदि में ऐसे मनुष्य का होना आवश्यक है ।

तंत्रमंत्र—संज्ञा पुं० [स० तन्त्र + मन्त्र] जादूगोरी । जादू टोना । २. उपाय । युक्ति । ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००. १०१. १०२. १०३. १०४. १०५. १०६. १०७. १०८. १०९. ११०. १११. ११२. ११३. ११४. ११५. ११६. ११७. ११८. ११९. १२०. १२१. १२२. १२३. १२४. १२५. १२६. १२७. १२८. १२९. १३०. १३१. १३२. १३३. १३४. १३५. १३६. १३७. १३८. १३९. १४०. १४१. १४२. १४३. १४४. १४५. १४६. १४७. १४८. १४९. १५०. १५१. १५२. १५३. १५४. १५५. १५६. १५७. १५८. १५९. १६०. १६१. १६२. १६३. १६४. १६५. १६६. १६७. १६८. १६९. १७०. १७१. १७२. १७३. १७४. १७५. १७६. १७७. १७८. १७९. १८०. १८१. १८२. १८३. १८४. १८५. १८६. १८७. १८८. १८९. १९०. १९१. १९२. १९३. १९४. १९५. १९६. १९७. १९८. १९९. २००. २०१. २०२. २०३. २०४. २०५. २०६. २०७. २०८. २०९. २१०. २११. २१२. २१३. २१४. २१५. २१६. २१७. २१८. २१९. २२०. २२१. २२२. २२३. २२४. २२५. २२६. २२७. २२८. २२९. २३०. २३१. २३२. २३३. २३४. २३५. २३६. २३७. २३८. २३९. २४०. २४१. २४२. २४३. २४४. २४५. २४६. २४७. २४८. २४९. २५०. २५१. २५२. २५३. २५४. २५५. २५६. २५७. २५८. २५९. २६०. २६१. २६२. २६३. २६४. २६५. २६६. २६७. २६८. २६९. २७०. २७१. २७२. २७३. २७४. २७५. २७६. २७७. २७८. २७९. २८०. २८१. २८२. २८३. २८४. २८५. २८६. २८७. २८८. २८९. २९०. २९१. २९२. २९३. २९४. २९५. २९६. २९७. २९८. २९९. ३००. ३०१. ३०२. ३०३. ३०४. ३०५. ३०६. ३०७. ३०८. ३०९. ३१०. ३११. ३१२. ३१३. ३१४. ३१५. ३१६. ३१७. ३१८. ३१९. ३२०. ३२१. ३२२. ३२३. ३२४. ३२५. ३२६. ३२७. ३२८. ३२९. ३३०. ३३१. ३३२. ३३३. ३३४. ३३५. ३३६. ३३७. ३३८. ३३९. ३४०. ३४१. ३४२. ३४३. ३४४. ३४५. ३४६. ३४७. ३४८. ३४९. ३५०. ३५१. ३५२. ३५३. ३५४. ३५५. ३५६. ३५७. ३५८. ३५९. ३६०. ३६१. ३६२. ३६३. ३६४. ३६५. ३६६. ३६७. ३६८. ३६९. ३७०. ३७१. ३७२. ३७३. ३७४. ३७५. ३७६. ३७७. ३७८. ३७९. ३८०. ३८१. ३८२. ३८३. ३८४. ३८५. ३८६. ३८७. ३८८. ३८९. ३९०. ३९१. ३९२. ३९३. ३९४. ३९५. ३९६. ३९७. ३९८. ३९९. ४००. ४०१. ४०२. ४०३. ४०४. ४०५. ४०६. ४०७. ४०८. ४०९. ४१०. ४११. ४१२. ४१३. ४१४. ४१५. ४१६. ४१७. ४१८. ४१९. ४२०. ४२१. ४२२. ४२३. ४२४. ४२५. ४२६. ४२७. ४२८. ४२९. ४३०. ४३१. ४३२. ४३३. ४३४. ४३५. ४३६. ४३७. ४३८. ४३९. ४४०. ४४१. ४४२. ४४३. ४४४. ४४५. ४४६. ४४७. ४४८. ४४९. ४५०. ४५१. ४५२. ४५३. ४५४. ४५५. ४५६. ४५७. ४५८. ४५९. ४६०. ४६१. ४६२. ४६३. ४६४. ४६५. ४६६. ४६७. ४६८. ४६९. ४७०. ४७१. ४७२. ४७३. ४७४. ४७५. ४७६. ४७७. ४७८. ४७९. ४८०. ४८१. ४८२. ४८३. ४८४. ४८५. ४८६. ४८७. ४८८. ४८९. ४९०. ४९१. ४९२. ४९३. ४९४. ४९५. ४९६. ४९७. ४९८. ४९९. ५००. ५०१. ५०२. ५०३. ५०४. ५०५. ५०६. ५०७. ५०८. ५०९. ५१०. ५११. ५१२. ५१३. ५१४. ५१५. ५१६. ५१७. ५१८. ५१९. ५२०. ५२१. ५२२. ५२३. ५२४. ५२५. ५२६. ५२७. ५२८. ५२९. ५३०. ५३१. ५३२. ५३३. ५३४. ५३५. ५३६. ५३७. ५३८. ५३९. ५४०. ५४१. ५४२. ५४३. ५४४. ५४५. ५४६. ५४७. ५४८. ५४९. ५५०. ५५१. ५५२. ५५३. ५५४. ५५५. ५५६. ५५७. ५५८. ५५९. ५६०. ५६१. ५६२. ५६३. ५६४. ५६५. ५६६. ५६७. ५६८. ५६९. ५७०. ५७१. ५७२. ५७३. ५७४. ५७५. ५७६. ५७७. ५७८. ५७९. ५८०. ५८१. ५८२. ५८३. ५८४. ५८५. ५८६. ५८७. ५८८. ५८९. ५९०. ५९१. ५९२. ५९३. ५९४. ५९५. ५९६. ५९७. ५९८. ५९९. ६००. ६०१. ६०२. ६०३. ६०४. ६०५. ६०६. ६०७. ६०८. ६०९. ६१०. ६११. ६१२. ६१३. ६१४. ६१५. ६१६. ६१७. ६१८. ६१९. ६२०. ६२१. ६२२. ६२३. ६२४. ६२५. ६२६. ६२७. ६२८. ६२९. ६३०. ६३१. ६३२. ६३३. ६३४. ६३५. ६३६. ६३७. ६३८. ६३९. ६४०. ६४१. ६४२. ६४३. ६४४. ६४५. ६४६. ६४७. ६४८. ६४९. ६५०. ६५१. ६५२. ६५३. ६५४. ६५५. ६५६. ६५७. ६५८. ६५९. ६६०. ६६१. ६६२. ६६३. ६६४. ६६५. ६६६. ६६७. ६६८. ६६९. ६७०. ६७१. ६७२. ६७३. ६७४. ६७५. ६७६. ६७७. ६७८. ६७९. ६८०. ६८१. ६८२. ६८३. ६८४. ६८५. ६८६. ६८७. ६८८. ६८९. ६९०. ६९१. ६९२. ६९३. ६९४. ६९५. ६९६. ६९७. ६९८. ६९९. ७००. ७०१. ७०२. ७०३. ७०४. ७०५. ७०६. ७०७. ७०८. ७०९. ७१०. ७११. ७१२. ७१३. ७१४. ७१५. ७१६. ७१७. ७१८. ७१९. ७२०. ७२१. ७२२. ७२३. ७२४. ७२५. ७२६. ७२७. ७२८. ७२९. ७३०. ७३१. ७३२. ७३३. ७३४. ७३५. ७३६. ७३७. ७३८. ७३९. ७४०. ७४१. ७४२. ७४३. ७४४. ७४५. ७४६. ७४७. ७४८. ७४९. ७५०. ७५१. ७५२. ७५३. ७५४. ७५५. ७५६. ७५७. ७५८. ७५९. ७६०. ७६१. ७६२. ७६३. ७६४. ७६५. ७६६. ७६७. ७६८. ७६९. ७७०. ७७१. ७७२. ७७३. ७७४. ७७५. ७७६. ७७७. ७७८. ७७९. ७८०. ७८१. ७८२. ७८३. ७८४. ७८५. ७८६. ७८७. ७८८. ७८९. ७९०. ७९१. ७९२. ७९३. ७९४. ७९५. ७९६. ७९७. ७९८. ७९९. ८००. ८०१. ८०२. ८०३. ८०४. ८०५. ८०६. ८०७. ८०८. ८०९. ८१०. ८११. ८१२. ८१३. ८१४. ८१५. ८१६. ८१७. ८१८. ८१९. ८२०. ८२१. ८२२. ८२३. ८२४. ८२५. ८२६. ८२७. ८२८. ८२९. ८३०. ८३१. ८३२. ८३३. ८३४. ८३५. ८३६. ८३७. ८३८. ८३९. ८४०. ८४१. ८४२. ८४३. ८४४. ८४५. ८४६. ८४७. ८४८. ८४९. ८५०. ८५१. ८५२. ८५३. ८५४. ८५५. ८५६. ८५७. ८५८. ८५९. ८६०. ८६१. ८६२. ८६३. ८६४. ८६५. ८६६. ८६७. ८६८. ८६९. ८७०. ८७१. ८७२. ८७३. ८७४. ८७५. ८७६. ८७७. ८७८. ८७९. ८८०. ८८१. ८८२. ८८३. ८८४. ८८५. ८८६. ८८७. ८८८. ८८९. ८९०. ८९१. ८९२. ८९३. ८९४. ८९५. ८९६. ८९७. ८९८. ८९९. ९००. ९०१. ९०२. ९०३. ९०४. ९०५. ९०६. ९०७. ९०८. ९०९. ९१०. ९११. ९१२. ९१३. ९१४. ९१५. ९१६. ९१७. ९१८. ९१९. ९२०. ९२१. ९२२. ९२३. ९२४. ९२५. ९२६. ९२७. ९२८. ९२९. ९३०. ९३१. ९३२. ९३३. ९३४. ९३५. ९३६. ९३७. ९३८. ९३९. ९४०. ९४१. ९४२. ९४३. ९४४. ९४५. ९४६. ९४७. ९४८. ९४९. ९५०. ९५१. ९५२. ९५३. ९५४. ९५५. ९५६. ९५७. ९५८. ९५९. ९६०. ९६१. ९६२. ९६३. ९६४. ९६५. ९६६. ९६७. ९६८. ९६९. ९७०. ९७१. ९७२. ९७३. ९७४. ९७५. ९७६. ९७७. ९७८. ९७९. ९८०. ९८१. ९८२. ९८३. ९८४. ९८५. ९८६. ९८७. ९८८. ९८९. ९९०. ९९१. ९९२. ९९३. ९९४. ९९५. ९९६. ९९७. ९९८. ९९९. १०००. १००१. १००२. १००३. १००४. १००५. १००६. १००७. १००८. १००९. १०१०. १०११. १०१२. १०१३. १०१४. १०१५. १०१६. १०१७. १०१८. १०१९. १०२०. १०२१. १०२२. १०२३. १०२४. १०२५. १०२६. १०२७. १०२८. १०२९. १०३०. १०३१. १०३२. १०३३. १०३४. १०३५. १०३६. १०३७. १०३८. १०३९. १०४०. १०४१. १०४२. १०४३. १०४४. १०४५. १०४६. १०४७. १०४८. १०४९. १०५०. १०५१. १०५२. १०५३. १०५४. १०५५. १०५६. १०५७. १०५८. १०५९. १०६०. १०६१. १०६२. १०६३. १०६४. १०६५. १०६६. १०६७. १०६८. १०६९. १०७०. १०७१. १०७२. १०७३. १०७४. १०७५. १०७६. १०७७. १०७८. १०७९. १०८०. १०८१. १०८२. १०८३. १०८४. १०८५. १०८६. १०८७. १०८८. १०८९. १०९०. १०९१. १०९२. १०९३. १०९४. १०९५. १०९६. १०९७. १०९८. १०९९. ११००. ११०१. ११०२. ११०३. ११०४. ११०५. ११०६. ११०७. ११०८. ११०९. १११०. ११११. १११२. १११३. १११४. १११५. १११६. १११७. १११८. १११९. ११२०. ११२१. ११२२. ११२३. ११२४. ११२५. ११२६. ११२७. ११२८. ११२९. ११३०. ११३१. ११३२. ११३३. ११३४. ११३५. ११३६. ११३७. ११३८. ११३९. ११४०. ११४१. ११४२. ११४३. ११४४. ११४५. ११४६. ११४७. ११४८. ११४९. ११५०. ११५१. ११५२. ११५३. ११५४. ११५५. ११५६. ११५७. ११५८. ११५९. ११६०. ११६१. ११६२. ११६३. ११६४. ११६५. ११६६. ११६७. ११६८. ११६९. ११७०. ११७१. ११७२. ११७३. ११७४. ११७५. ११७६. ११७७. ११७८. ११७९. ११८०. ११८१. ११८२. ११८३. ११८४. ११८५. ११८६. ११८७. ११८८. ११८९. ११९०. ११९१. ११९२. ११९३. ११९४. ११९५. ११९६. ११९७. ११९८. ११९९. १२००. १२०१. १२०२. १२०३. १२०४. १२०५. १२०६. १२०७. १२०

तंत्रसंस्था—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रसंस्था] वह संस्था जो राज्य का शासन या प्रबंध करे। गवर्नमेंट। सरकार।

तंत्रस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रस्कन्द] ज्योतिष शास्त्र का वह ग्रंथ जिसमें गणित के द्वारा ग्रहों की गति आदि का निरूपण होता है। गणित ज्योतिष।

तंत्रस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रस्थिति] राज्य के शासन की प्रणाली।

तंत्रहोम—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रहोम] वह होम जो तंत्रशास्त्र के मत से हो।

तंत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रा] दे० 'तंत्रा'।

तंत्रायी—संज्ञा पुं० [सं० तंत्रायिन्] सूर्य (को०)।

तन्त्रि—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रि] १. तंत्री। २. तंत्रा। ३. तार। तंत्र (को०)। ४. बीणा का तार (को०)। ५. नख। शिरा (को०)। ६. पुच्छ। दुम (को०)। ७. विभिन्न गुणों के युक्त स्त्री (को०)। ८. बीणा (को०)। ९. धपुता। गूदबी (को०)।

तन्त्रिपाल—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिपाल] दे० 'तन्त्रिपाल'।

तन्त्रिपालक—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिपालक] ज्येष्ठ का एक नाम।

तन्त्रिमुख—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिमुख] हाथ की एक मुद्रा या स्थिति (को०)।

तन्त्रिल—वि० [सं० तन्त्रिल] राजकार्य में लक्ष्य (को०)।

तंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्री] १. बीन, सिद्धार आदि बाजों में बजा हुआ तार। २. गुदबी। गुदध। ३. शरीर की नख। ४. एक नखी का नाम। ५. पुच्छ। रस्सी। ६. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों। तंत्र। जैसे, मितार, बीन, सारंगी आदि। ७. बीणा।

तंत्री^२—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिन्] १. वह जो बाजा बजाता हो। २. वह जो गाता हो। गवैया। उ०—तंत्री काम काष निज शोक अपनी अपनी रीति। दुविधा दुंदुभि है निनिवासर उपजावति विपरीत।—मूर (शब्द०)। ३. सैनिक (को०)।

तंत्री^३—वि० १. जिसमें तार लगे हों। तार का बना हुआ। २. जो तारवाला हो (जैसे, बीणा)। ३. तंत्र का अनुसरण करने वाला (को०)।

तंत्री^४—वि० [सं० तन्त्रिन्] १. प्राज्ञसी। २. प्रवीन।

तंत्रीभांड—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रीभाण्ड] बीणा (को०)।

तंत्रीमुख—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रीमुख] हाथ की एक मुद्रा या व्यवस्थान।

तंदरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रा] दे० 'तंत्रा'। उ०—तारकेव तरणि जुन्हाई ज्यों तरण सम तरणी तपी ज्यों तरण ज्वर तंदरा।—देव (शब्द०)।

तंदान—संज्ञा पुं० [शब्द०] एक प्रकार का बहिया घंगूर जो खेटा के पासपास होता है और जिसको सुखाकर किण्वित बनाते हैं।

तंदिही—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तनदिही] दे० 'तंदेही'। उ०—मगर कोशिश व तंदिही करने से वह सब आसानी से रफा हो सकती है।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० ३२।

तंदुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बारहमासी घास जो ऊसर जमीन में ही जमती है और चारे के काम में आती है। यह ऊसर जमीन में खाद का भी काम देती है।

तंदुरुस्त—वि० [फा०] जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो। जिसे कोई रोग या बीमारी न हो। निरोग। स्वस्थ।

तंदुरुस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. शरीर की आरोग्यता। निरोग होने की अवस्था या भाव। २. स्वास्थ्य।

तंदुल^१—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुल] १. दे० 'तंडुल'। उ०—(क) तंदुल मांगि दो बिछाई सो दीन्हों उपहार। फाटे बसन बाँधि के हजिवर प्रति दुबल तनहार।—सूर (शब्द०) (ख) तिल तंदुल के न्याय सों है संसृष्टि बखान। छीर नीर के न्याय सों संकर कहत नुजान।—पद्याकर ग्रं०, पृ० ७४। २. दे० 'तंडुल'। उ०—प्रातः श्वेत सरसों को तंदुल जानिये। दण तंदुल परिभाष सुगुंजा मानिये।—रत्नपरीक्षा (शब्द०)।

तंदुल^२—संज्ञा पुं० [फा० तंदूर] गर्जन। आवाज। ध्वनि। उ०—बब बिककार फिकार सबहं। तंदुल तबब सुवंग रबहं।—पृ० २०, ६। १२७।

तंदुलीयक—संज्ञा पुं० [सं० तंदुलीयक] बीलाई का शाक। बीलाई का साग।

तंदूर—संज्ञा पुं० [फ्रा० तनूर] धंगीठी, चूल्हे या गट्टी आदि की तरह का बना हुआ एक प्रकार का मिट्टी का बहुत बड़ा, गोल और ऊँचा पात्र जिसके नीचे का भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है। उ०—आज तंदूर से गरम रोटी लपककर भूखे की भोली में घा गिरी।—बंदनवार, पृ० ५६।

विशेष—इसमें पहले लकड़ी आदि की खूब तेज आँध सुलगा देते हैं और जब वह खूब तप जाता है तब उसकी दीवारों पर भीतर की ओर मोटी रोटीयाँ चिपका देते हैं जो थोड़ी देर में सिककर जाल हो जाती हैं। कभी कभी जमीन में गड्ढा खोदकर भी तंदूर बनाया जाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—तंदूर भोंकना = भाड़ भोंकना। निकुष्ट काम करना।

तंदूरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशम जो मालव से आता है।

विशेष—इसका रंग पीला होता है और यह अत्यंत भारीक और मुलायम होता है। यह किरबी से कुछ घटिया होता है।

तंदूरी^२—वि० [हि० तंदूर + ई (प्रत्य०)] तंदूर संबंधी। जैसे, तंदूरी रोटी।

तंदेही—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तनदिही] १. परिश्रम। मेहनत। २. प्रयत्न। कोशिश। ३. किसी काम को करने के लिये बार बार चेतावनी। ताकीद।

क्रि० प्र०—करना। रखना।

तंद्र—वि० [सं० तंद्र] १. थकित। बलात्। २. सुस्त। घालसी (को०)।

तंद्रवाप, तंद्रवाय—संज्ञा पुं० [सं० तन्द्रवाय, तन्द्रवाय] दे० 'तंदुवाय'।

तंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रा] १. वह अवस्था जिसमें बहुत अधिक नींद मालूम पड़ने के कारण मनुष्य कुछ कुछ सो जाय। उँवाई।

ऊँष । २. वह हलकी बेहोशी जो चिंता, भय, शोक या दुर्बलता आदि के कारण हो ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इसमें मनुष्य की व्याकुलता बहुत होती है, इंद्रियों का ज्ञान नहीं रह जाता, जैसाई घाती है, उसका शरीर भारी जान पड़ता है, उससे बोला नहीं जाता तथा इसी प्रकार की दूसरी बातें होती हैं । तंद्रा कटुनिष्ठ या कफनाशक वस्तु खाने और व्यायाम करने से दूर होती है ।

क्रि० प्र०—भाना ।

तंद्रालस—वि० [सं० तंद्रा + अलस] १. तंद्रालीन । अलस्ययुक्त । सुस्त । २. वृक्षांत । यकित । ३. निद्रित । उ०—भीतर नद-राम और प्रेमा का स्नेहालाप बंद हो चुका था । दोनों तंद्रा-लस हो रहे थे :—इंद्र०, पृ० २२ ।

तंद्रालु—वि० [सं० तंद्रालु] जिसे तंद्रा प्राप्ती हो ।

तंद्रि—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रि] दे० 'तंद्रा' ।

तंद्रिक—संज्ञा पुं० [सं० तन्द्रिक] एक प्रकार का ज्वर [को०] ।

तंद्रिक सन्निपात—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा सन्निपात ज्वर जिसमें उँचाई विशेष आए, ज्वर वेग से चढ़े, प्यास विशेष लगे, जीभ काली होकर छुरछुरी हो जाय, दम फूले, दन्त विशेष हों, जलन न हो और कान में दर्द रहे । इसकी अवधि २५ दिन है ।

तंद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रिका] दे० 'तंद्रा' ।

तंद्रित—वि० [सं० तन्द्रित] तंद्रा युक्त । अलसाया हुआ । उ०—यक तंद्रित राग रोग है, प्रब जो जाग्रत है वियोग है ।—साकेत, पृ० ३२१ ।

तंद्रिता—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रिता] तंद्रा में होने का भाव ।

तंद्रिल—वि० [सं० तन्द्रिल] १. जिसे तंद्रा प्राप्ती हो । अलसी । २. तंद्रा या अलस्य से युक्त । ३. अलसाया हुआ । तद्रित । सुस्त । उ०—तंद्रिल तरुतल, छाया शीतल, स्वनिज मर्मर । हो साधारण साथ उवकरण, सुरा पात्र भर ।—मधुबाल, पृ० ६० ।

तंद्रो^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तंद्रो] १. तंद्रा । २. भृकुटी । भौंह ।

तंद्रो^२—वि० [सं० तंद्रिन्] १. थका हुआ । वनात । २. पातसी [को०]

तंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्पा] गी । गाय ।

तंपना—क्रि० प्र० [सं० तम्पना] तम्पना । स्तम्भित होना । उ०—धरि ध्यान ध्यान तब भगनि इस । षडे सु अगि तंके जगीस ।—पृ० रा० १।४८८ ।

तंबा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्बा] गी । गाय ।

तंबा^२—संज्ञा पुं० [सं० तम्बा] बहुत छोड़ी मोहुरी का एक प्रकार का पायजामा । उ०—तंबा सुपन सरो अधिया तनियाँ धवला । पगरी चोरा ताजगीस बंदा सिर मगला ।—सुदन (कश्मीर) ।

तंबाकू—संज्ञा पुं० [सं० टोबैको] दे० 'तमाकू' ।

तंबाकूगर—संज्ञा पुं० [हि० तंबाकू + का० गर] तमाकू बनानेवाला ।

तंबालू^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा । उ० निकल प्राया मुँ तबालू के सार ।—दक्खिनी० पृ० ६० ।

तंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्बिका] गी । गाय ।

तंबिया—संज्ञा पुं० [हि० तंबा + इया (प्रत्य०)] १. तंबे का बना हुआ छोटा तसला या इसी प्रकार का और कोई गोल बरतन । २. किसी प्रकार का तसला ।

तंबीर—संज्ञा पुं० [सं० तम्बीर] ज्योतिष का एक योग । उ०—होय तंबीर जब कठिन कुंदी करे चामदन कष्ट तहूँ परे गाढ़ी ।—राम० धर्म०, पृ० ३८१ ।

तंबीह—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऐसी मूचना या क्रिया आदि जिसके कारण कोई मनुष्य प्राणों के लिये सावधान रहे । नसीहत । शिक्षा । २. दंड । सजा । (लभ०) ।

तंबू—संज्ञा पुं० [हि० तनना] १. कपड़े, टाट, कनवास, आदि का बना हुआ बड़ा बड़ा घर जो खंभों और लूटों पर तना रहता है और जिसे एक स्थाव से उठाकर दूसरे स्थान तक ले जा सकते हैं । बेमा । डेरा । बिबिर । कामियाना ।

विशेष—साधारणतः तंबू का व्यवहार तंगलों में शिकार आदि के समय रहने अथवा नगरों में सांख्यिक समारोह, खेल, तमाशे और नाच आदि करने के लिये होता है ।

क्रि० प्र०—बड़ा करना । तानना ।

२. एक प्रकार की मछली जो बाँव की तरह होती है ।

तंबुआ—संज्ञा पुं० [हि० तम्बू] दे० 'तंबू' । उ०—हाथी घोड़ा तंबुआ पावे कैहि कामा । फूलन सेज बिछावते फिर गोर मुकामा ।—पलटू०, भा०, ३, पृ० ६७ ।

तंबूर^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा ढोल ।

तंबूर^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तंबूरा' ।

तंबूरची—संज्ञा पुं० [सं० तम्बूर + ची (प्रत्य०)] तंबूर बजानेवाला ।

तंबूरा—संज्ञा पुं० [हि० तानपूरा या तुम्बुरु (गंधर्व)] ढोल या सितार की तरह का एक बहुत पुराना बाजा जो अलापचारी में केवल सुर का सहारा देने के लिये बजाया जाता है । तान-पूरा । उ०—अजब तरह का बना तंबूरा, तार लगे छी साठ रे । खूँची टूटी तार बिलगना कोई न पूछे बात रे ।—कबीर म०, पृ० ४७ ।

विशेष—इसके राग के झोल नहीं निकाले जाते । इसमें बीच में जोड़े के दो तार होते हैं जिनके दोनों ओर दो ओर तार पीतल के होते हैं । कुछ लोग कहते हैं कि इसे तुम्बुरु गंधर्व ने बनाया था, इसी से इसका नाम तंबूरा पड़ा । इसकी अवारी पर तारों के नीचे सूत रखा देते हैं जिसके कारण उनसे निकलनेवाले स्वर में कुछ अलभनाहट आ जाती है ।

तंबूरा तोप—संज्ञा स्त्री० [हि० तंबूरा + तोप] एक प्रकार की बड़ी तोप ।

तंबूख—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूख] पान । ताम्बूख ।

तंबेरण—संज्ञा पुं० [सं० तम्बेरण] हाथी (डि०) ।

तंबोरम०—संज्ञा पु० [सं० स्तम्बोरम] हाथी। उ०—पानहु दीन्ह समुद्र हलौरा, लहट मनुज तंबोरम घोरा।—इंद्रा०, पृ० ६६।

तंबोल—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूल] १. दे० 'तांबूल' और 'तमोल'। उ०—अगु सकप सजि भग्नरहि ऐकु तंबोल अरु तेल्लु।—एकबरी०, पृ० ३१२। २. एक प्रकार का पेड़ जिसके पत्ते लिमोड़े के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। ३. वह घन जो बरात के समय वर को दिया जाता है। (पंजाब)। ४. वह घन जो विवाह या बरात के न्योते के साथ भाग्य-व्यय के लिये भजा जाता है। (बुदेखखंड)। ५. वह खून जो लगाम की रगड़ के कारण घोड़े के मुँह से निकलता है। (मार्हम)।

क्रि० प्र०—घाना।

तंबोलिन—संज्ञा स्त्री० [हि० तम्बोली का स्त्री०] पान बेचनेवाली स्त्री। बरहन।

तंबोलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० तम्बूल + हया (प्रत्य०)] पान के छाकार की एक प्रकार की मछली जो प्रायः गंगा और जमुना में पाई जाती है।

तंबोली—संज्ञा पु० [हि० तम्बोल + ई (प्रत्य०)] वह जो पान बेचता हो। पान बेचनेवाला। बरई।

तंभ०—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भ] शृंगार रस के १० भावों में से एक। स्तम्भ। उ०—मोहति मूरति अमि रवेत तंभ पुलक विबर्न कंप गुरभंग मूरछि परति है।—देव (शब्द०)।

तंभन—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भन] शृंगार रस के १० सात्विक भावों में से एक। रतंगन। उ०—भारंभन तंभन सर्वम परिरंभन कषगृह मंरभन चुंवन घनेरे ई।—देव (शब्द०)।

तंभावती—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्भावती या हि०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो रात के दूसरे पहर में पाई जाती है।

तंमोल०—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूल] दे० 'तमोल'। उ०—(क) अक्षरान रागु तंमोल जोम।—प० रासो०, पृ० १६५। (ख) दुनि बसन होर तंमोल रंग। दाड़िमी बीज मानो तुरंग।—रसज्जन०, पृ० २४८।

तंई—प्रत्य० [हि०] दे० 'तई'।

तंकारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टंकारी'।

तंगिया—संज्ञा स्त्री० [हि० तनना] दे० 'तनी'।

तंडलना०—क्रि० स० [सं० तण्ड] तोड़ना। उ०—सेलहु ओक सायबक, तेग साबन कार तंडजा।—रा० ८०, पृ० ८५।

तंवर०—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तवला'। उ०—डोण ऊपर तंवर बाबा, देवी फिरगी या।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३६।

तंबियाना—क्रि० प्र० [हि० तंबा] १. तबि के रंग का होना। २. तबि के बरतन में रहने के कारण किसी पदार्थ में तबि का स्वाद या गंध आ जाना।

तंबुआ०—संज्ञा पु० [हि० तंबू] दे० 'तंबू'।

तंबूरची—संज्ञा पु० [फा० तंबूर + ची (प्रत्य०)] दे० 'तंबूरची'।

उ०—कहै पदमाकर तिलंगी भीर भृंगन की मेजर तंबूरची मयूर गुम गायो है।—पद्माकर ग्रं०, पृ०, ३२०।

तंबोर०—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूल] दे० 'तमोर'। उ०—एग धनुगणे पागे रंग तंबोर।—घनानंद, पृ० ३३४।

तंबोल०—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तांबूल'। उ०—मुख तंबोल रंग धारहि रसा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६०।

तंबोलिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तम्बोली] दे० 'तंबोलिन'।

तंबोलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० तंबोल + हया (प्रत्य०)] दे० 'तंबोलिया'।

तंबोली—संज्ञा पु० [हि० तम्बोल + ई (प्रत्य०)] दे० 'तंबोली'।

तंमोर०—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तमोर'। उ०—मंगल घरसाने एग राजत अधर मंगल रुचि रच्यो तंमोर।—घनानंद, पृ० ३२६।

तंवकना०—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तोंकना'। उ०—तंवकि निखंड खंड हैं गयक।—माधवानल०, पृ० २०२।

तंवचुर०—संज्ञा पु० [सं० ताम्रचूड] दे० 'ताम्रचूड'। उ०—विष मंजूर तंवचुर जो हारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६४।

तंवर०—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तमोर'। उ०—कमध्वज कूरम गोड तंवर परिहार समानो।—ह० रासो०, पृ० १२२।

तंवाना०—क्रि० प्र० [हि० तमकना] धावेल में धाना। कूट होना। उ०—सवति भोजिया और जेठनिया ठाढ़ी रहलि तंवई।—गुलाल०, पृ० ५७।

तंवार—संज्ञा स्त्री० [हि० ताव] १. सिर में धानेवाला चक्कर। घुमटा। घुमेर। २. हुरारत। ज्वारांश।

क्रि० प्र०—घाना।—खाना।

तंवारा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तंवार'।

तंवारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तंवार'।

तंवाना०—क्रि० स० [?] १. स्तुति करना। २. प्रतीक्षा करना। उ०—राउत राना ठाढ़ तंवहीं।—चित्रा०, पृ० १७९।

तंह०—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तहाँ'। उ०—ललित लखें सिर पागु तक, तक तंह तंह मुरके।—नंद० ग्रं०, पृ० २०७।

त०—संज्ञा पु० [सं०] १. नौका। नाव। २. पुण्य। ३. चोर। ४. झूठ। ५. पूछ। दुम। ६. गोद। ७. म्लेच्छ। ८. गर्म। ९. शठ। १०. रत्न। ११. बुद्ध। १२. समुद्र। १३. मोट्टा (को०)। १४. रत्न (को०)। १५. एक पिंगल (को०)।

त०—क्रि० वि० [सं० तद, हि० तो] तो। उ०—(क) अह पाएउं मानुस कह भाखा। नाहि त पखि मूठि घर पछा।—जायसी (शब्द०)। (ख) हमहुं कहब अब ठकुर सोहाती। नाहि त मोन रहब दिन राती।—तुलसी (शब्द०) (ग) करतहु राज त तुमहि न दोसु। रामहि होत सुनत संतोसु।—तुलसी (शब्द०)।

तथ्यज्जुब—संज्ञा पु० [अ० तथ्यज्जुब] आश्चर्य। विस्मय। अश्चंभा।

क्रि० प्र०—करना।—में घाना।—होना।

तथ्यम्मुल—संज्ञा पु० [अ० तथ्यम्मुल] १. सोच। क्रि० विचार।

उ०—लिहाजा बिहा तथमुल हँसी घोर मजाक की बातें कर चलते।—प्रेमघन०, भाग० २, पृ० ६३।

२. देर। घरसा। ३. सज। धँयं।

तथमुल(पु)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तथमुल'।

तथल्लुकः—संज्ञा पु० [म० तथल्लुकह्] बहुत से मोर्बों की जर्मी-दारी। बड़ा इलाका।

यी०—तथल्लुकःदार।

तथल्लुकःदार—संज्ञा पु० [म० तथल्लुकह् + फ्रा० दार (प्रत्य०)] इलाकेदार। तथल्लुक का मालिक।

तथल्लुकःदारी—संज्ञा स्त्री० [म० तथल्लुकह् + फ्रा० दारी (प्रत्य०)] तथल्लुकःदार का पद।

तथल्लुक—संज्ञा पु० [म० तथल्लुक] १. इलाका। २. संबंध। लगाव।

तथल्लुका—संज्ञा पु० [म० तथल्लुका] दे० 'तथल्लुकः'।

तथल्लुकादार—संज्ञा पु० [म० तथल्लुकह् + फ्रा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तथल्लुकःदार'।

तथल्लुकेदार—संज्ञा पु० [म० तथल्लुकह् + फ्रा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तथल्लुकादार'।

तथल्लुकेदारी—संज्ञा स्त्री० [म० तथल्लुकह् + फ्रा० दारी (प्रत्य०)] तथल्लुकःदारी।

तथस्सुब—संज्ञा पु० [म०] पक्षपात, विशेषतः धर्म या जाति संबंधी पक्षपात। उ०—तथस्सुब में हुए हैवान विलशावा।—कबोर घ०, पृ० २०८।

तहँ(पु)¹—प्रत्य० [हि० तें भयवा सं० तस् (तसिल), तः, तह्, तह्, तहँ] से। उ०—कोन्हेसि कोइ निभगेसी कोन्हेसि कोइ बारियार। छारहिं तहँ सब कोन्हेसि पुनि कोन्हेसि सब छार।—जायसी (शब्द०)।

तहँ²—प्रत्य० [प्रा०] प्रति। को। से। (क्व०)। जैसे,—मैंने आपके तहँ कह रखा था।

तहँ(पु)³—सर्व [सं० स्वया; प्रा० तहँ] दे० 'तुम'। उ०—तहँ भणुदिठ्ठा सज्जणा, किउँ करि लग्या येम।—ढोला०, पृ० ६।

तहँ(पु)⁴—सर्व० [सं० तत्] बहु। उस। उ०—तहँ हुँती चन्दउ कियह, लह रचियउ भाकाण।—ढोला०, पृ० ४३७।

तहक—संज्ञा पु० [देश०] जमार। (सोनारों की बोली)।

तहनात—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तैनात'।

तहस(पु)⁵—वि० [सं० ताड्य, भय० तहस] दे० 'तैसा'।

तहसन(पु)⁶—वि० [हि०] दे० 'तहसा'। उ०—तनु पसेव पसाहनि चासनि, पुखय तहसन जागु।—विद्यापति, पृ० ३१।

तहसा⁷—वि० [सं० ताड्य] दे० 'तैसा' या 'वैसा'। उ०—जस हीछा भण जेहि कह सो तहसन फल पाउ।—जायसी (शब्द०)।

तहँ⁸—प्रत्य० [सं० तावत्] लिये। बास्ते।

तहँ⁹—क्रि० वि० [हि०] तभी। तब। उ०—हम जरा सँडल पर पालिस करके तहँ भीतर गयेन।—अभिषेक, पृ० ८८।

तहँ¹⁰—संज्ञा स्त्री० [हि० तवा या तया का स्त्री] इसका धाकार

वाली का सा होता है और इसमें कड़े लगे होते हैं। इसमें प्रायः जलेबी या मालपुष्पा ही बनाया जाता है।

तहँ(पु)¹¹—प्रत्य० [हि०] प्रति। को। से। उ०—कोऊ कहै हरि रोति सब तहँ। और मिलन का सब सुख दई।—सूर (शब्द०)।

तहँ(पु)¹²—प्रत्य० [हि० या सं० तहँपि (तहि+अपि)] या तथापि भयवा तहपि (तद्+अपि)] १. दे० 'तब'। २. दे० 'त्यों'। उ०—भा परलउ नियराना जउ हीं। मरह सो ता कह पालउ तउ हीं।—जायसी (शब्द०)।

तहँ(पु)¹³—प्रत्य० [हि० तउ] ती भी। तिस पर भी। तब भी। तथापि।

तह—वि० [हि० तया का बहुव०] गरम किए हुए। गरमाए हुए।

तक¹—प्रत्य० [सं० तावत्, बाधक, तक्क, तक] एक विभाके जो किसी वस्तु या व्यापार की सीमा प्रयवा भयभि सूचित करती है। पर्यंत। जैसे,—वे दिल्ली तक गए हैं। वरसों तक ठहरो। इस रूप तक दे देंगे। उ०—जो पत्र तकिया आदि टग सके न तुव तक भाइ। दरस भीष उनको कहा दीजन नहि पहुँचाइ।—रसनिधि (शब्द०)।

तक²—संज्ञा स्त्री० [सं० तकड़ी] १. तराजू। २. तराह का पल्ला।

तक³—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टक'। उ०—प्रति बल अल बरसत दोउ लोवन दिन मय रहन रहत एकाहि तक।—मुलसी (शब्द०)।

तकड़ा—वि० [हि०] दे० 'तगड़ा'।

तकड़ी⁴—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार की बात जो रेतीली जमीन में बारह महीने खूब पैदा होती है। चरमरा। हेम।

विशेष—इसे छोड़े बहुत चाब से खाते हैं। इसकी फल साल में ६ या ७ बार हुमा करती है।

तकड़ी⁵—संज्ञा स्त्री० [देश०] तराजू (पञ्जाब)। उ०—तकड़ी के एक पलड़े में तो उसके सब पाप रखे और एक पलड़े में भग-वन्नाम रखा, तो पापवाला पनड़ा हलका हो गया।—राम० धर्म०, पृ० २८५।

तकत(पु)⁶—संज्ञा पु० [फ्रा० तान] दे० 'तक'। उ०—बाट संतरि तिरहुत पड़ु। तकत चडिड मुक्तान बड़ु।—कीर्ति०, पृ० ८५।

तकथ(पु)⁷—संज्ञा पु० [फ्रा० तकत] दे० 'तक'। उ०—हाजीर हज़र बैठे तकथ ताहीं कौं क्यों न जाचिये रे।—सं० दरिया, पृ० ६८।

तकदमा—संज्ञा पु० [म० तकदमह्] किसी चीज को तैयारी का वह हिसाब जो पहले से तैयार किया जाय। तख्मीना।

तकदीर—संज्ञा स्त्री० [म० तकदीर] १. मंदाज। मिकदार। २. भाग्य। प्रारब्ध। किस्मत। नसीब।

यी०—तकदीरवर।

विशेष—'तकदीर' के मुहावरों के लिये देखो 'किस्मत' के मुहावरों।

तकदीरवर—वि० [घ० तकदीर + फ्रा० वर] जिसका भाग्य बहुत हो। भाग्यवान्।

तकन—संज्ञा स्त्री० [हि० तकना] ताकने की क्रिया या भाव। देखना। दृष्टि।

तकना†^④—क्रि० घ० [हि० ताकना (सं० तर्कण)] १. देखना। निहारना। अवलोकन करना। उ०—(क) देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गंभ तकइ लेऊँ कैहि भाँती।—तुलसी (शब्द०) (ख) कहि हरिदास जानि ठाकुरी बिहारो तकत न भोर पाट।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। (ग) तेरे लिये तजि ताकि रहे तकि हेत किए बलबीर बिहारो।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। २. शरण लेना। पनाह लेना। आश्रय लेना। उ०—देवन तके मेरु धरि लोहा।—तुलसी (शब्द०)।

तकवर^④—वि० [घ० तकवर] मानी। अभिमानी। उ०—शाह हुमायूँ को नंदन चंदन एक तेष एक लोहा तकवर।—अकबरी०, पृ० १०६।

तकबीर—संज्ञा स्त्री० [घ०] १. किसी को बड़ा मानना या कहना। २. ईश्वर की प्रशंसा। उ०—ऊँ लोहा पीर। ताँबा तकबीर। गोरख०, पृ० ४१।

तकबरी^④—संज्ञा स्त्री० [?] एक तरह की तलवार। उ०—रिपु-भलन भकोरे मुख नहि मोरे बलतर तोरे तकबरी।—पद्याकर घं०, पृ० २८।

तकबुर—संज्ञा पुं० [घ०] १. प्रमंढ। अभिमान। २. अकड़। ३. शोखी (को०)।

तकमा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमगा'। २. दे० 'तुकमा'।

तकमील—संज्ञा स्त्री० [घ०] पूरा होने की क्रिया या भाव। पूर्णता।

तकरमल्ली—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों के ऊपर से ऊन काटने का हँसिया। (गढ़वाल)।

तकरार—संज्ञा स्त्री० [घ०] किसी बात को बार बार कहना। २. हुज्जत। विवाद। ३. झगड़ा। टटा। लड़ाई। ४. कविता में किसी वर्णन को दोहराना। ५. चावन का वह खेत जो फसल काटने के बाद फिर खाद दे के बोता गया हो। ६. वह खेत जिसमें जी, चना, गेहूँ इत्यादि एक साथ बोया गया हो।

तकरारी—वि० [घ० तकरार + हि० ई (प्रत्य०)] तकरार करनेवाला। झगड़ावा। लडाका।

तकरीब—संज्ञा स्त्री० [घ० तकरीब] वह शुभ कार्य जिसमें कुछ लोग संमिलित हों। उत्सव। जलसा।

तकरीर—संज्ञा स्त्री० [घ० तकरीर] १. बातचीत। गुफ्तगू। उ०—दमे तकरीर गोया बाग में बुलबुल चहकते हैं।—भारतेंदु घं०, भाग १, पृ० ८४७। २. वक्तृता। भाषण।

तकहरी—संज्ञा स्त्री० [घ० तकहरी] मुकर्रर होने की क्रिया या भाव। नियुक्ति।

तकला—संज्ञा पुं० [सं० तकल] १. लोहे की वह सलाई जो सूत काटने के चरखे में लगी होती है और जिसपर सूत लिपटता जाता

है। टेकुमा। २. बिटियों की टेकुरी की सलाई जिसपर कला-बत्तू बटकर बढ़ाते जाते हैं। ३. सुनारों को सिकरी बनाने की सलाई। ४. रस्सा या रस्सी बनाने की टिकुरी।

मुद्दा०—किसी के तकले से बल निकासना = सारी शक्ती या पाजीपन दूर करना। अच्छी तरह दुस्त या ठीक करना।

तकली—संज्ञा स्त्री० [हि० तकला] छोटा तकला या टेकुरी।

तकलीद—संज्ञा स्त्री० [घ० तकलीद] अनुसरण। अनुकरण। देखा देखी कोई काम करना। नकल। उ०—क्यों प्रयोजित की तकलीद की जाय।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ६१।

तकलीफ—संज्ञा स्त्री० [घ० तकलीफ] १. कष्ट। क्लेश। दुःख। आपत्ति। मुसीबत। जैसे,—(क) आजकल वह बड़ी तकलीफ से अपने दिन बिताते हैं। (ख) इस तोते को पिजड़े में बड़ी तकलीफ है। २. विपत्ति। मुसीबत।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—देना।—पाना।—भोगना।—मिलना।—सहना।

२. खेद। शोक (को०)। ३. घामंघ। रोग। मर्ज (को०)। ४. मनोव्यथा (को०)। ५. निघ्नता। मुफलसी (को०)।

तकल्लुफ—संज्ञा पुं० [घ० तकल्लुफ] १. शिष्टाचार। दिखावा। दिखाने के लिये कष्ट उठाकर कोई काम करना। २. टीमटाम। बाहुरी सजावट।

मुद्दा०—तकल्लुफ का = बहुत अच्छा। बढ़िया या सजा हुआ।

३. संकोच। पसोपेश (को०)। ४. शील संकोच। लिहाज (को०)। ५. सज्जा। शर्म (को०)। ६. बेगानगी। परायणन (को०)। ७. कष्ट सहन करना। तकलीफ उठाना (को०)।

तकवा—संज्ञा पुं० [घ० तकवह] संयम। इन्द्रियनिग्रह। परहेजगारी। शुद्ध रहना। उ०—तू तो नकस सूँ तकवा राखे शरभ मुहम्मदी भावे।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

तकवाना—क्रि० सं० [हि० तकना का प्रे० रूप] ताकने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना।

तकवाहा^④—संज्ञा पुं० [हि० ताकना] खेती या बागों का रखवाला। देखभाल करनेवाला। निगरानी करनेवाला व्यक्ति। उ०—बड़ी चारपाई जिसपर बैठा तकवाहा।—अपरा, पृ० १६८।

तकवाही†—संज्ञा स्त्री० [हि० तकवाह + ई (प्रत्य०)] १. देखभाल। रखवाली। किसी चीज की रक्षा के लिये उसपर बराबर नजर रखना। २. दे० 'तकाई'।

तकसी†—संज्ञा स्त्री० [?] नाश। दुर्दशा।

तकसीम—संज्ञा स्त्री० [घ० तकसीम] बाँटने की क्रिया या भाव। बँटवारा। विभाजन। बँटाई। २. गणित में वह क्रिया जिससे कोई संख्या कई भागों में बाँटी जाय। बड़ी संख्या का छोटी संख्या से विभाजन। भाग।

क्रि० प्र०—देना।

यौ०—तकसीमेकार = हर एक को बराबर बराबर काम का बाँटना। तकसीमे मूलक, तकसीमे बतन = देश का विभाजन या बँटवारा।

तकसीर^१—संज्ञा स्त्री० [घ० तकसीर] १. अपराध । दोष । कसूर ।
२. भूल । त्रुटि । उ०—सच तो यों है कि हमें इशक
सजावार नहीं । तेरी तकसीर है क्या ।—श्यामा०, पृ० १०२ ।
३. कतंघ में कमी (की०) । ४. न्यूनता । कमी (की०) ।

तकसीर^२—संज्ञा स्त्री० [घ०] १. प्रचुरता । अधिकता । २. वृद्धि
करना । अधिक्य करना [की०] ।

तकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ताकना + ई (प्रत्य०)] ताकने की
क्रिया या भाव । २. वह धन जो ताकने के बदले में दिया
जाय ।

तकाजा—संज्ञा पुं० [घ० तकाजा] १. ऐसी चीज माँगना जिसके
पाने का अधिकार हो । तगादा । जैसे, —जाओ, उनसे रुपयों
का तकाजा करो । २. कोई ऐसा काम करने के लिये कहना
जिसके लिये दान मिल चुका हो । जैसे, —बहुत दिनों से उनका
तकाजा है । चलो आज उनके यहाँ हो जाएँ । ३. किसी
प्रकार की उत्तेजना या प्रेरणा । जैसे, उम्र या वक्त का
तकाजा । ४. आवश्यकता । जरूरत (की०) । ५. किसी काम के
लिये किसी से बराबर कहना (की०) ।

यौ०—तकाजाए उम्र=(१) उम्र की माँग । (२) उम्र के
लिहाज से कोई काम करना या न करना । तकाजाए वक्त =
समय की माँग । किसी समय क्या करना है यह माँग ।

तकातक—क्रि० वि० [हि० तकना] देखते हुए । देखकर निशान
लेते हुए । उ०—धनुष बान ले चढ़ा पारधी धनुषा के परच
नहीं है रे । सरसर बान तकातक मारे मिरगा के घाव नहीं
है रे ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६६ ।

तकान—संज्ञा स्त्री० [हि० थकान] दे० 'थकान' या 'थकावट' ।

तकाना^१—क्रि० सं० [हि० ताकना का प्रे० रूप] १. ताकने का
काम दूसरे से कराना । दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना ।
दिखाना । २. प्रतीक्षा करना । किसी की आशा में रखना ।

तकाना^२—क्रि० घ० किसी ओर को हल करना । किसी ओर को
भागना या जाना । जैसे, उसने अने जंगल का रास्ता तकाया ।

तकावी—संज्ञा स्त्री० [घ० तकावी] वह धन जो जमींदार, राजा या
सरकार की ओर से गरीब खेतहूँ को खेती के औजार
बनवाने, बीज खरीदने या कुआँ आदि बनवाने के लिये ऋण
स्वरूप दिया जाय ।

क्रि० प्र०—बाँटना ।— देना ।

२. इस प्रकार का ऋण देने की क्रिया ।

तकित^१—वि० [हि०] १. शक्ति । शका । २. ताकता हुआ ।
देखता हुआ । उ०—हिय धरक धुंधरह बदन सोइम जल
निभकर । तकित शक्ति संभोख समग संकरिय दुष्भर ।—
पृ० रा०, ६।१०० ।

तकिया—संज्ञा पुं० [फा० तकियह] १. कपड़े का बना हुआ लंबो-
तरा, मोल या जोकोर पैला जिसमें रुई, पर आदि भरते हैं
और जिसे सोने लेटने आदि के समय सिर के नीचे रखते हैं ।
बालिश । उपधान । २. पत्थर की वह पटिया आदि जो छज्जे,
रोक या सहारे के लिये लगाई जाती है । मुतका । ३. बिश्राम

करने या आश्रय लेने का स्थान । ४. आश्रय । सहारा ।
आसरा । शरोसा । उ०—तहँ तुलसी के कोल को काको
तकिया रे ।—तुमगी (शब्द०) ।

यौ०—तकियाकलाम ।

५. वह स्थान विशेषतः शहर के बाहर या कब्रिस्तान के पास का
स्थान जहाँ कोई मुसलमान फकीर रहता हो । कब्रिस्तान का
स्थान । ६. चारजामा । (लश०) ।

तकिया कलाम—संज्ञा पुं० [फा० तकियह + घ० कलाम] दे०
'सखुनतकिया' ।

तकियागाह—संज्ञा स्त्री० [फा० तकियह + गाह] फकीर का निवास ।
पीर या फकीर का स्थान [की०] ।

तकियादार—संज्ञा पुं० [फा०] मजार पर रहनेवाला मुसलमान
फकीर ।

तकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. धुँत । २. घोषध ।

तकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घोषध । दगा । २. एक जड़ी (की०) ।

तकी—वि० [घ० तकी] संघर्षी । द्विद्वयनिग्रही ।

तकुआ—^१—संज्ञा पुं० [सं० तकुंक] दे० 'तकला' ।

तकुआ^२—संज्ञा पुं० [हि० ताकना + उआ (प्रत्य०)] ताकनेवाला ।
देखनेवाला ।

तकैया—संज्ञा पुं० [हि० ताकना + ऐया (प्रत्य०)] ताकने या
देखनेवाला ।

तकोली—संज्ञा पुं० [सं०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा
वृक्ष, जिसे पस्सी भी कहते हैं । वि० दे० 'पस्सी' ।

तक्कर^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तक' । उ०—के गए मुक्ति पाइल
अगय बीर छडि तक्कर परत । दिखयो लग संगवली
बियो न कोई धीरज धरत । पृ० रा०, १७।५ ।

तक्करह^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तक' । उ०—सय सुपच वर विप्र,
वेद मंत्र अधिकारिय । उभय महस कोविद्, छद् तक्करह
अनुसारिय । पृ० रा०, १२।६३ ।

तक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० ताकना] ताकत रहने की क्रिया या भाव ।
दे० 'टकटकी' ।

तक्कोल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ ।

तक्मा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्मन्] १. वसंत नामक चर्मरोग ।
२. शीतला देवी ।

तक्मा^२—संज्ञा पुं० [हि० तमगा] दे० 'तमगा' ।

तक्मा^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुकमा' ।

तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मड़ा । छाछ । मठा । उ०—छलकत तक
उफनि अंग आवत नहि जानति तेहि कालहि सौ ।—सूर
(शब्द०) । २. सहतूत के पेड़ का एक रोग ।

तक्कूबिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटा हुआ दूध । छेना ।

तक्कपिंड—संज्ञा पुं० [सं० तक्कपिण्ड] फटा हुआ दूध । छेना ।

तक्कप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषों का एक रोग जिसमें छाछ का सा
श्वेत मूत्र होता है, और मूठ की सी गंध आती है ।

तक्कभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] कैब । कपित्थ ।

तक्रमांस—संज्ञा पुं० [सं०] मांस का रसा। पखली।

तक्रवामन—संज्ञा पुं० [सं०] नागरंग।

तक्रसंधान—संज्ञा पुं० [सं० तक्रसन्धान] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की काँजी।

विशेष—इसे सौ टके भर छाछ में एक एक टके भर सौंभर नमक, राई और हल्दी का चूर्ण डालकर बनाते हैं। यह काँजी पहले पंद्रह दिन पड़ी रहने दी जाती है, तब तैयार होती है। ऐसा कहते हैं कि यदि २१ दिनों तक यह नित्य दो दो टंक पी जाय तो तापतिरुली अच्छी हो जाती है।

तक्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन।

तक्राट—संज्ञा पुं० [सं०] मधानी।

तक्रार—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्रार] १० 'तक्रार'।

तक्रारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का परिष्ट जो मट्टे में हड़ और आँवले आदि का चूर्ण मिलाकर बनाया जाता है।

विशेष—यह संप्रहृणी रोग का नाशक और अग्निदीपक माना जाता है।

तक्राहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप।

तक्रवा—संज्ञा पुं० [सं० तक्रव] १. चोर। २. शिकारी बिडिया (को०)।

तक्रवीम—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीधा करना। २. मूख निश्चित करना। ३. पचाव। अंतरी। उ०—मुनजिम अक्ल का देखा ताजा तक्रवीम। किया है बात सूँ उस वका तरकीम। —दक्खिनी०, पृ० २७६।

तक्ष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र के भाई भरत का बड़ा पुत्र। २. बृक के पुत्र का नाम। ३. पतला करने की क्रिया।

तक्ष^२—वि० काटनेवाला (केवल ममामात में पात)।

तक्षक^१—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल के भाट नागों में से एक नाग जो कश्यप का पुत्र था और कद्रु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

विशेष—शृंगी ऋषि का शाप पूरा करने के लिये राजा परीक्षित को इसी ने काटा था। इसी कारण राजा जनमेजय इससे बहुत बिगड़े और उन्होंने सत्वार भर के सर्पों का नाश करने के लिये सर्पयज्ञ प्रारंभ किया। तक्षक इससे डरकर इंद्र की शरण में चला गया। इसपर जनमेजय ने अपने ऋषियों को आज्ञा दी कि इंद्र यदि तक्षक को न छोड़ें, तो उसे भी तक्षक के साथ खींच मंगाओ और मरम कर दो। ऋषियों के मंत्र पढ़ने पर तक्षक के साथ इंद्र भी खिंचने लगे। तब इंद्र ने डरकर तक्षक को छोड़ दिया। जब तक्षक खिंचकर अग्निकुंड के समीप पहुँचा, तब आस्तीक ने आकर जनमेजय से प्रार्थना की और तक्षक के प्राण बच गए।

भाजकल के विद्वानों का विश्वास है कि प्राचीन काल में भारत में तक्षक नाम की एक जाति ही निवास करती थी। नाग जाति के लोग अपने आपको तक्षक की संतान ही बतलाते हैं। प्राचीन काल में ये लोग सर्प का पूजन करते थे। कुछ पारश्वत्य विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में कुछ विशिष्ट प्रजातियों को हिंदू लोग तक्षक या नाग कहा करते थे। और ये लोग संभवतः शक थे। तिव्वट, मंगोलिया और

चीन के निवासी अबतक अपने आपको तक्षक या नाग के वंशधर बतलाते हैं। महाभारत के युद्ध के उपरान्त धीरे धीरे तक्षकों का अधिकार बढ़ने लगा और उत्तरपश्चिम भारत में तक्षक लोगों का बहुत दिनों तक, यहाँ तक कि सिकंदर के भारत आने के समय तक राज्य रहा। इनका जातीय चिह्न सर्प था। ऊपर परीक्षित और जनमेजय की जो कथा दी गई है, उसके संबंध में कुछ पारश्वत्य विद्वानों का मत है कि तक्षकों के साथ एक बार पांडवों का बड़ा भारी युद्ध हुआ था जिसमें तक्षकों की जीत हुई थी और राजा परीक्षित मारे गए थे, और अंत से जनमेजय ने फिर तक्षशिला में युद्ध करके तक्षकों का नाश किया था और यही घटना जनमेजय के सर्पयज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हुई है।

२. साप। सर्प। ३. विश्वकर्मा। ४. सूत्रधार। ५. दस वायुओं में से एक। नागवायु। उ०—प्राण, अपान, व्यान, उदान और कट्टियत प्राण समान। तक्षक, वर्णजय पुनि देवदत्ता और पीडक शंख व्युमान।—सूर (शब्द०)। ६. एक प्रकार का पेड़। ७. प्रसेनजित् के पुत्र का नाम जिसका वर्णन भागवत में आया है। ८. एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति सूचिक पिता और ब्राह्मणी माता से मानी गई है।

तक्षक^२—वि० छेदनेवाला। छेदक।

तक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] २. लकड़ी को साफ करने का काम। रंदा करने का काम। २. बढ़ई। ३. लकड़ी पत्थर आदि में खोदकर मूर्तियाँ और बेल बूटे बनाने का काम। लकड़ी पत्थर आदि गढ़कर मूर्तियाँ बनाना।

तक्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़इयों का वह मोजार जिससे वे लकड़ी छीलकर साफ करते हैं। रंदा।

तक्षशिल^१—संज्ञा पुं० [सं०] तक्षशिला का निवासी (को०)।

तक्षशिल^२—वि० तक्षशिला संबंधी (को०)।

तक्षशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहुत प्राचीन नगरी का नाम जो भरत के पुत्र तक्ष की राजधानी थी।

विशेष—विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में इसके आसपास के प्रदेश में तक्षक लोगों का राज्य था, इसलिये इस नगरी का नाम भी तक्षशिला पड़ा था। महाभारत में लिखा है कि यह स्थान गोधार में है। अभी हाल में यह नगर रावलपिंडी के पास जमीन खोदकर निकाला गया है। वहाँपर बहुत से बौद्ध मंदिर और स्तूप भी पाए गए हैं। महाभारत में लिखा है कि जनमेजय ने यहीं सर्पयज्ञ किया था। सिकंदर जिस समय भारत में आया था, उस समय यहाँ के राजा ने उसे अपने यहाँ ठहराया था और उसका बहुत आदर सत्कार किया था। कुछ समय तक इसके आस पास का प्रदेश अशोक के शासन में था। अनेक यूनानियों और चीनी यात्रियों ने तक्षशिला के वैभव और विस्तार आदि का बहुत अच्छा वर्णन किया है। बहुत दिनों तक यह नगरी पश्चिम भारत का प्रधान विद्यापीठ थी। दूर दूर से यहाँ विद्यार्थी आते थे। चाणक्य यहीं का था।

तक्ष—संज्ञा पुं० [सं० तक्षन्] बढ़ई।

तखड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तखड़ी] तराजू ।

तख्त—संज्ञा पुं० [फा० तख्त] दे० 'तख्त' । उ०—दीर्घ मेजि हरम हज़र मरहट्टी बेगि, चाहिये जो कुसल तख्त सिरताजी की ।—हम्मीर०, पृ० २१ ।

मुहा०—तख्त पलटना = तख्ता उलटना । उ०—जब निबन्ध हो बने सबल संगी । तब पलटते न किस तरह तख्ते । तो चले क्यों बराबरी करने । बल बराबर अगर नहीं रखते ।—चुभते० पृ० ६८ ।

तख्तनशीन—वि० [फा० तख्तनशीन] दे० 'तख्तनशीन' । उ०—जो है बिली तख्तनशीन । पातसाह घालाउहीन ।—हम्मीर०, पृ० १७ ।

तख्तीफ—संज्ञा स्त्री० [फा० तख्तीफ] कमी । ग्लानता ।

तख्तीनन्—क्रि० वि० [फा० तख्तीनन्] प्रंदाज से । प्रटकल से । अनुमान से ।

तख्तीना—संज्ञा पुं० [फा० तख्तीनाह] प्रंदाज । अनुमान । प्रटकल । क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

तख्दियल—संज्ञा पुं० [फा० तख्दियल] १. विचारना । २. कल्पना । ३. काव्यविषय ।

तखरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तखड़ी' ।

तखलिया—संज्ञा पुं० [फा० तखलियह] एकांत स्थान । निर्जन स्थान ।

तखल्लुस—संज्ञा पुं० [फा० तखल्लुस] कवि या गायक का वह नाम जो वह अपनी कविता में लिखता है । उपनाम ।

तखाना—संज्ञा पुं० [फा० तखाना] बूझ ।

तखिया—संज्ञा स्त्री० [फा० तखी] लंबी टोपी, जो संग शोग लगाते थे । उ०—बिजु हरि भजन को भेष लिए कहा दिए तिलक निर तखिया ।—भीखा० श०, पृ० ७१ ।

तखिहा—वि० [फा० तखिहा] वह बैब जिसकी दोनों आँखें दो रंग की हों ।

तखीत—संज्ञा स्त्री० [फा० तखीत] १. तलाशी । २. तहकीकात । (तलाश) ।

तख्त—संज्ञा पुं० [फा० तख्त] १. राजा के बैठने का आसन । सिद्दासन । २. तख्तों की बनी हुई बड़ी चौकी ।

यौ०—तख्त की रात = सोहागरात । (मुसल०)

३. राज्य । शासन । हुकूमत (को०) । ४. पसंग । चारपाई (को०) । ५. जैन (को०) ।

तख्तगाह—संज्ञा स्त्री० [फा० तख्तगाह] राजधानी (को०) ।

तख्त ताऊस—संज्ञा पुं० [फा० तख्त + फा० ताऊस] एक प्रसिद्ध राजसिंहासन जिसे शाहजहाँ ने ६ करोड़ रुपया खर्चकर बनवाया था । इसके ऊपर एक जड़ाऊ मोर पंख फैलाए हुए खड़ा था । इस तख्त को सन् १७३९ ई० में नाबिरशाह लूटकर ले गया ।

तख्तनशीन—वि० [फा० तख्तनशीन] जो राजसिंहासन पर बैठा हो । सिंहासनालङ्कृत ।

तख्तनशीनी—संज्ञा स्त्री० [फा० तख्तनशीनी + ई (प्रत्य०)] राज्या-

भियेक । उ०—ग़ौर तख्तनशीनी के दरबार का तो फिर कहना ही क्या है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५४ ।

तख्तपोश—संज्ञा पुं० [फा० तख्तपोश] १. तख्त या चौकी पर बिछाये की चादर । २. चौकी । तख्त ।

तख्तबंद—संज्ञा पुं० [फा० तख्तबंद] १. बंदी । कैदी । २. कारावास । कैद । ३. लकड़ी की वह खपची जो टूटी हुई चीजों को जोड़ने के लिये बाँधी जाती है (को०) ।

तख्तबंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० तख्तबंदी] १. तख्तों की बनी हुई दीवार । २. तख्तों की दीवार बनाने की क्रिया । ३. बाग की क्यारियों आदि को ढँप से सजाना (को०) ।

तख्तरवाँ—संज्ञा पुं० [फा० तख्तरवाँ] १. वह तख्त जिसपर बादशाह सवार होकर निकलता हो । हवादार । २. वह तख्त या बड़ी चौकी जिसपर आदियों में बरात के आगे रंढियाँ, नाचनेवाले या लोडे नाचते हुए चलते हैं । ३. उड़नखटोखा ।

तख्ता—संज्ञा पुं० [फा० तख्ताह] १. लकड़ी का वह चौरा हुआ लंबा चौड़ा और चौकोर टुकड़ा जिसकी मोटाई अधिक न हो । बड़ा पटरा । पल्ला ।

मुहा०—तख्ता उलटना = (१) किसी प्रबंध का नष्ट भ्रष्ट हो जाना । किसी बने बनाए काम का बिगड़ जाना । (२) किसी प्रबंध को नष्ट भ्रष्ट करना । बना बनाया काम बिगड़ना । तख्ता हो जाना = छूट या भगड़ जाना । तख्ते की तरह जड़ हो जाना ।

२. लकड़ी की बड़ी चौकी । तख्त । ३. घरधी । टिखटी । ३. कागज का ताव । ५. खेतों या बागों में जमीन का वह पलग टुकड़ा जिसमें बीज बोए या पौधे लगाए जाते हैं । कियारी ।

यौ०—तख्तए कागज = कागज का ताव । तख्तए ताबूत = वह संदूक या पलंग जिसमें शव ले जाते हैं । तख्तए तालीम = वह काला पटरा जिसपर बच्चों को धक्कर, गिनती आदि सिखाते हैं । शिक्षापटन । ब्लैक बोर्ड । तख्तए नर्वे = चौसर खेलने का तख्ता । तख्तए मरपत = मुर्बों को नहलाने का तख्ता । तख्तए मशक = (१) बच्चों की तख्ती । (२) वह चीज जो बहुत प्रयुक्त हो । तख्तए मोवा = आकाश । आसमान ।

तख्तापुल—संज्ञा पुं० [फा० तख्ताह + पुल] पटरों का पुल जो किले की खंदक पर बनाया जाता है । यह पुल इच्छानुसार हटा भी लिया जा सकता है ।

तख्ती—संज्ञा स्त्री० [फा० तख्ती] १. छोटा तख्ता । २. काठ की वह पटरी जिसपर लकड़के आधार लिखने का अभ्यास करते हैं । पटिया । ३. किसी चीज की छोटी पटरी ।

तख्तोताज—संज्ञा पुं० [फा०] शासनमूत्र । राज्यभार । शासनप्रबंध (को०) ।

तख्तीना—संज्ञा पुं० [फा० तख्तीनाह] दे० 'तख्तीना' ।

तग—अव्य० [हि०] दे० 'तक' । उ०—राजा के हीन हयात तग बादशाह के ताने नहीं हुआ ।—दक्खिनी०, पृ० ४४३ ।

तगड़ा—वि० [हि० तग + कड़ा] [वि० स्त्री० तगड़ी] १. जिसमें ताकत ज्यादा हो । सबल । बलवान् । मजबूत । २. अच्छा और बड़ा ।

तगड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तागड़ी' ।

तगड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तखड़ी' ।

तगण—संज्ञा पुं० [सं०] छंदःशास्त्र में तीन वर्णों का वह समूह जिसमें पहले दो गुरु और तब एक लघु (SSi) वर्ण होता है ।

तगदमा, तगदस्मा—संज्ञा पुं० [अ० तकदमु] १. व्यय प्रावि का किया हुआ अनुमान । तखमीना । २. दे० 'तकदमा' ।

तगना—क्रि० प्र० [हि० तागना] तागा जाना ।

तगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तागना] तागने का भाव । तगाई ।

तगपहनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तागा + पहनना] जुलाहों का एक औजार जो टूटा हुआ सूत जोड़ने में काम आता है ।

तगमा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमगा' ।

तगर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का पेड़ जो अफगानिस्तान, कश्मीर, मूटान और कोकण देश में नदियों के किनारे पाया जाता है ।

विशेष—भारत के बाहर यह मकागास्कर और जंजीबार में भी होता है । इसकी लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और उसमें से बहुत अधिक मात्रा में एक प्रकार का तेल निकलता है । यह लकड़ी अगर की लकड़ी के स्थान पर तथा औषध के काम में आती है । लकड़ी काले रंग की और सुगंधित होती है और उसका बुरादा जलाने के काम में आता है । भावप्रकाश के अनुसार तगर दो प्रकार का होता है, एक में सफेद रंग के और दूसरे में नीले रंग के फूल लगते हैं । इसकी पत्तियों के रस से प्रायः के अनेक रोग दूर होते हैं । वैद्यक में इसे उष्ण, दीर्घवर्धक, शीतल, मधुर, स्निग्ध, लघु और विष, अपस्मार, शूल, रष्टिदोष, विषदोष, भूतोन्माद और त्रिदोष प्रादि का नाशक माना है ।

पर्याय—वक्र । कुटिल । शठ । महोरग । नत । दीपन । विनम्र । कुंचित । घट । नहुष । पायिष । राजहर्षण । क्षत्र । वीन । कालानुशास्त्रिवा । कालानुसारक ।

२. इस वृक्ष की जड़ जिसकी गिनती गंधद्रव्यों में होती है । इसके खाने से दाँतों का बढ़ अचछा हो जाता है । ३. मदनवृक्ष । मैनफल ।

तगर^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की शहब की मक्खी ।

तगला—संज्ञा पुं० [हि० तकला] १. तकला । २. दो हाथ लंबा सरकंडे का एक छड़ जिससे जोलहे गाँधी मिलाते हैं ।

तगसा—संज्ञा पुं० [देश०] वह लकड़ी जिससे पड़ाई प्रातों में ऊन को कातने से पहले साफ करने के लिये पीटते हैं ।

तगा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तागा' । उ०—प्रफुल्लित हूँ के आन हीन है यमोवा रानी भीनी ए भगुनी तामें कंचन को तया ।—सूर (शब्द०) ।

तगा^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति जो रुहेमखंड में बसती है । इस जाति के लोग जनेऊ पहनते और अपने आपको ब्राह्मण मानते हैं ।

तगाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तागना] १. तागने का काम । २. तापने का भाव । ३. तागने की मजदूरी ।

तगाड़—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'तगार' । २. वह चौकोर इंटों का घेरा जिसमें गारा या सुरखी घूना सानते हैं ।

तगाड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गारा] [स्त्री० तगाड़ी] वह तसला या लोहे का छिछला बरतन जिसमें मसाला या घूना गारा रखकर जोड़ाई करनेवालों के पास ले जाते हैं । भड़िया ।

तगाड़ा—संज्ञा पुं० [अ० तकाड़ा] दे० 'तकाजा' ।

क्रि० प्र०—करना ।

तगाना—क्रि० सं० [हि० तागना का प्रे० रूप] तागने का काम कराना । दूसरे को नागने में प्रवृत्त करना ।

तगाफुल—संज्ञा पुं० [अ० तगाफुल] १. गफलत । अपेक्षा । ध्यान । न देना । असावधानी । उ०—हमने माना कि तगाफुल न करोगे लेकिन, साक हो जायेंगे हम तुमको खबर होने तक ।—कविता की०, भा० ४, पृ० ४६६ ।

तगार—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तगारी' ।

तगारा—संज्ञा पुं० [हि० तगर] १. हलवाइयों का नाव । २. तरकारी बेचनेवाले का नाव ।

तगारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. उखली गाड़ने का गड्ढा । २. हलवाइयों का मिठाई बनाने का मिट्टी का बड़ा बरतन या नाँद । ३. घूना गारा इत्यादि ढोने का तसला ।

तगियाना—क्रि० सं० [हि० तागा से नाभिक धातु] दे० 'तागना' ।

तगीर^(१)—संज्ञा पुं० [अ० तगीर, तगईर] बदलने की क्रिया या भाव । परिवर्तन । बदलना । कुछ का कुछ कर देना । तब्दीली । उ०—(क) प्रहदी मह रोग प्रनंता । जागीर तगीर करता ।—विश्राम (शब्द०) । (ख) जोबन आमिल प्राइ के भूषन कर तदबीर । घट बढ़ रकम बनाइ के सिमुता करी तगीर ।—रसनिधि (शब्द०) ।

तगीरी^(२)—संज्ञा स्त्री० [अ० तगीर, हि० तगीर] बदली । परिवर्तन । उ०—गैरहाजिरी लिखिहै कोई । मनमब धटे तगीरी होई । लाल कवि (शब्द०) ।

तगीर्युर—संज्ञा स्त्री० [अ० तगीर्युर] बहुत बड़ा परिवर्तन । उ०—मुझको मारा ये मेरे हाल तगीर्युर न कि है, कुछ गुमाँ और हो धड़के से दिले मुझके ।—श्रीनिवास० प्र०, पृ० ८५ ।

तगना^(१)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तगना' ।

तघार, तघारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तगार' ।

तचना—क्रि० प्र० [हि० तपना] तपना । तप्त होना । उ०—(क) तापन सौ तपती बिरमें बिन काज धूया मन माँहि बिदूषती ।—प्रताप (शब्द०) । (ख) मानों विधि अब उलठि रची रो । जानत नहीं सखी काहे वे बही न तेज तपी रो ।—सूर (शब्द०) ।

तचा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तचा] चमड़ा । खाल । तचा । उ०—तुम बिन नाहू रहै पै तचा । अब नहि बिरह गड़ पै बचा ।—जायसी (शब्द०) ।

तचाना—क्रि० सं० [हि० तपाना] तपाना । जलाना । तप्त करना । संवत करना । उ०—अनल उचाट रूप खाइ मैं तचाई भारी करीगर काम ने सुधारी अभिराम सान ।—दीनदयालु (शब्द०) ।

तच्छ^५—संज्ञा पुं० [सं० तक्ष] दे० 'तक्ष' ।

तच्छक^५—संज्ञा पुं० [सं० तक्षक] दे० 'तक्षक' ।

तच्छना^५—क्रि० सं० [सं० तक्षण] १. फाड़ना । २. नष्ट करना । काटकर टुकड़े करना ।

तच्छप^५—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तक्षक' ।

तच्छिन^५—क्रि० वि० [सं० तक्षण] उसी समय । तत्काल ।

तछन^५—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तक्षण' । उ०—कैसे राखि घापने लये । अग्निनिहि तछन भछन करि गये ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१० ।

तछिन^५—प्रत्य० [सं० तक्षण] दे० 'तच्छिन' । उ०—जाके डर तहँ जात व कोई । तछिन भछन करि शरै सोई ।—नव० ग्रं०, पृ० २७७ ।

तज—संज्ञा पुं० [सं० तज्ज] १. तमाल और दारचीनी की जाति का मशोले कब का एक सदाबहार पेड़ जो कोचीन, मलाबार, पूर्व बंगाल, खासिया की पहाड़ियों और बरमा में अधिकता से होता है ।

विशेष—भारत के प्रतिरिक्त यह चीन, सुमात्रा और जावा आदि स्थानों में भी होता है । खासिया और जयंतिया की पहाड़ियों में यह पेड़ अधिकता से लगाया जाता है । जिन स्थानों पर समय समय पर गहरी वर्षा के उपरांत कड़ी धूप पड़ती है, वहाँ यह बहुत जल्दी बढ़ता है । इसके पेड़ प्रायः पाँच पाँच हाथ की दूरी पर बीज से लगाए जाते हैं और जब पेड़ पाँच वर्ष के हो जाते हैं, तब वहाँ से हटाकर दूसरे स्थान पर रोने जाते हैं । छोटे पीछे प्रायः बड़े पेड़ों या झाड़ियों आदि की छाया में ही रखे जाते हैं । बाजारों में मिलनेवाला तेजपत्ता या तेजपत्ता इस पेड़ का पत्ता और तज (सकड़ी) इसको छाल है । कुछ लोग इसे और दारचीनी के पेड़ को एक ही मानते हैं, पर वास्तव में यह बिल्कुल भिन्न है । इस वृक्ष की डालियों की फुलगियों पर सफेद फूल लगते हैं जिनमें गुलाब की सी सुगंध होती है । इसके फल करोड़ों के से होते हैं जिनमें से तेल निकाला जाता है और द्रव्य तथा घर्ष बनाया जाता है । यह वृक्ष प्रायः दो वर्ष तक रहता है ।

२. इस पेड़ की छाल जो बहुत सुगंधित होती है और औषध के काम में आती है । वैद्यक में इसे चरपरा, शीतल, हलका, स्वादिष्ट, कफ, खाँसी, घाम, कंठ, अरुचि, कुमि, पीनस आदि को दूर करनेवाला, पित्त तथा धातुवर्धक और बलकारक माना जाता है ।

पर्या०—भृंग । वरांग । रामेष्ट । विष्जुल । त्वच । सटक । चोल । सुरभिवल्कल । सूतकट । मुखशोधन । सिहल । सुरस । कामवल्कल । बहुगंध । वनप्रिय । लटपणु । गंधवल्कल । वर । शीत । रामवल्कल ।

तजकिरा—संज्ञा पुं० [प्र० तजकिरह्] १. चर्चा । जिफ ।

क्रि० प्र०—करना । चलना ।—छिड़ना ।—होना ।

२. बातलाप । बातचीत (को०) । ३. रूपाति । प्रसिद्धि (को०) ।

४. प्रसंग । सिलसिला (को०) ।

४-४३

तजगरी—संज्ञा स्त्री० [फा० तेजगरी] सिकलीगरी की दो धंगुल चौड़ी और अनुमानतः डेढ़ बालिशत लंबी लोहे की पट्टी जिसपर तेल गिराकर रदा तेज करते हैं ।

तजबीद्—संज्ञा स्त्री० [प्र० तज्बीद] १. नया करना । नवीनीकरण । २. नवीनता । नयापन (को०) ।

तजन^५—संज्ञा पुं० [सं० त्यजन] तजने की क्रिया या भाव । त्याग । परित्याग ।

तजन^५—संज्ञा पुं० [सं० तजीन] कोडा या चाबुक ।

तजना—क्रि० सं० [सं० त्यजन] त्यागना । छोड़ना । उ०—(क) सब तज । हर भज ।—(शब्द०) । (ख) तजहु पास निज निज गृह जाहू ।—मानस, १।२५२ ।

तजरबा—संज्ञा पुं० [प्र० तज्जबद्, तज्जिबद्, तज्जुबद्] १. वह ज्ञान जो परीक्षा द्वारा प्राप्त किया जाय । अनुभव । जैसे,—मैंने सब बातें अपने तजरबे में कही हैं ।

यौ०—तजरबेकार = जिसने परीक्षा द्वारा अनुभव प्राप्त किया हो । अनुभवी ।

२. वह परीक्षा जो ज्ञान प्राप्त करने के लिये की जाय । जैसे,—आप पहले तजरबा कर लीजिए, तब लीजिए ।

तजरबाकार—संज्ञा पुं० [प्र० तज्जुबद् + फा० कार] जिसने तजरबा किया हो । अनुभवी ।

तजरबाकारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तज्जुबद् + फा० कारी (प्रत्य०)] अनुभव ।

तजरीद्—क्रि० [प्र० तज्जीद] १. उद्घाटित कर किसी चीज को असली दशा में कर देना । तगा कर देना । २. (काट छाँटकर) सजाना या सँवारना । ३. सुधार करना । ४. एकाकी जीवन । ब्रह्मचर्य । उ०—कोई तजरीद तफरीद बोलते हैं कोई नफी ।—दक्खिनी०, पृ० ४३३ ।

तजरुबा—संज्ञा पुं० [प्र० तज्जुबद्] दे० 'तजरबा' ।

तजरुबाकार—संज्ञा पुं० [प्र० तज्जुबद् + फा० कार] दे० 'तजरबाकार' ।

तजरुबाकारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तज्जुबद् + फा० कारी] दे० 'तजरबाकारी' ।

तजरुली—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. प्रकाश । रोशनी । तूर । २. प्रताप । जलाल । ३. प्रख्यात ज्योति । उ०—कीजै फहम फना को लै कै, तूर तजरुली अपना ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६२ ।

तजवोज—संज्ञा स्त्री० [प्र० तज्जीज] १. सम्मति । शाय । २. फैसला । निर्णय । ३. बबोबस्त । इतिजाम । प्रबंध ।

तजबीजसानी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तज्जीज + सानी] किसी अदालत में उसी अदालत के किए हुए किसी फैसले पर फिर से होनेवाला विचार । एक ही हाकिम के सामने होनेवाला पुनर्विचार ।

तजावुज—संज्ञा पुं० [प्र० तजावुज] १. सीमा का उल्लंघन । २. अपने हस्तियार से बाहर कोई काम करना । ३. प्रवृत्ति । हुकमउदुनी । उ०—सरीअत के माने तुफर्मा और हद्दी है जो इस हद्द ये तजावुज न करे ।—दक्खिनी०, पृ० ४२६ । ४. धृष्टता । गुस्ताखी (को०) ।

तजुब^५—अव्य० [अ० तजुब] आश्चर्य । विस्मय । अचंभा ।
उ०—तजुब नहीं कि खोपरी टूट जाय ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० १५५ ।

तज्जनित—वि० [सं०] उससे उत्पन्न ।

तज्जन्य—वि० [सं०] उससे उत्पन्न । उ०—कविता हमारे मन पर
पड़े हुए सामाजिक प्रतिबंधों और तज्जन्य विचारों की प्रति-
क्रिया है ।—नया०, पृ० ३ ।

तज्जातपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] का'निपुण श्रमी । होशियार कारीगर ।

तज्जी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिगुपत्री ।

तज्ज—वि० [सं० तज् + ज (तत् + ज)] १. तत्त्व का जाननेवाला ।
तत्त्वज्ञ । उ०—देवतज्ज सर्वज्ञ जज्ञेण अक्युत विभो विस्व
भववश संभव पुरारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. ज्ञानी ।

तटक^५—संज्ञा पुं० [सं० तटक्] कर्णफूल नामक कान का आभूषण ।
कर्णफूल । उ०—बलि बलि प्रावत श्रवण निकट प्रति सकुचि
तटक फँदा ते ।—सूर (शब्द०) ।

तट^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षेत्र । खेत । २. प्रदेश । ३. तीर ।
किनारा । कूल । ४. शिव । महादेव । ५. जमीन या पर्वत
का ढाल (को०) । ६. आकाश (को०) ।

तट^२—क्रि० वि० समीप । पास । नजदीक । निकट ।

तटक—संज्ञा पुं० [सं०] नदी, तालाब आदि का किनारा (को०) ।

तटका—वि० [हिं०] [ति० स्त्री० तटकी] दे० 'टटका' । उ०—निमि के
उनीदे नैना तैसे रहे टरि टरि । किधौ कहूँ प्यारी को तटकी
लागी नजरि ।—सूर (शब्द०) ।

तटकना—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'तड़कना' । उ०—तटकं डूह छोड़
लोहं चलावै ।—प० रासो, पृ० ८३ ।

तटग—संज्ञा पुं० [सं०] तड़ाग ।

तटनी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तटनी] (तटवासी) नदी । सरिता ।
दरिया । उ०—(क) भदाकिनि तटनि तीर मंजु मृग बिहंग
भीर भीर मुनि गिरा गंभीर साम पान की ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) कदम बिटप के निकट तटनी के धाय भटा चढ़ि चाहि
पीतपट फहरानी सो ।—रसखान (शब्द०) ।

तटवर्ती—वि० [सं०] तट से संबंध रखनेवाला या होनेवाला (को०) ।

तटस्थ^१—वि० [सं०] १. तीर पर रहनेवाला । किनारे पर रहनेवाला ।
२. समीप रहनेवाला । निकट रहनेवाला । ३. किनारे रहने-
वाला । प्रलप रहनेवाला । ४. जो किसी का पक्ष न ग्रहण
करे । उदासीन । निरपेक्ष ।

यौ०—तटस्थ वृत्ति ।

तटस्थ^२—संज्ञा पुं० किसी वस्तु का वह लक्षण जो उसके स्वरूप को
लेकर नहीं बटिक उसके गुण और धर्म आदि को लेकर बत-
लाया जाय । दे० 'लक्षण' ।

यौ०—तटस्थ लक्षण ।

तटस्थित—वि० [सं०] दे० 'तटस्थ' ।

तटाक—संज्ञा पुं० [सं०] तड़ाग । तालाब ।

तटाकिनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा तालाब (को०) ।

तटाघात—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं का अपने सींगों या दाँतों से
जमीन खोदना ।

तटिनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी । सरिता । दरिया ।

तटी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीर । कूल । किनारा । तट । २. नदी ।
सरिता । उ०—ताहि समै पर नाभि तटी को गयो उड़ि सेवक
पीन प्रसंग मैं ।—सेवक (शब्द०) । ३. तराई । घाटी ।

तटी^२—संज्ञा स्त्री० समाधि ।

तठ^१—अव्य० [सं० तत्र] वहाँ । उस जगह पर ।

तठना—क्रि० वि० [सं० तत्र, प्रा० तथ्य] वहाँ । उ०—जुध वेल
खगे रिए छोड़ जठे । तन पाघ जिसी रुघनाथ तठे ।—रा०
क०, पृ० ३५ ।

तड़^१—संज्ञा पुं० [सं० तड] १. समाज में हो जानेवाला विभाग । पक्ष ।
यौ०—तड़बंदी ।

२. स्थल । खुपकी । जमीन ।—(लश०) ।

तड़^२—संज्ञा पुं० [अनु०] १. थप्पड़ आदि मारने या कोई चीज पटकने
से उत्पन्न होनेवाला शब्द ।

यौ०—तड़ातड़ ।

२. थप्पड़ ।—(दलाल) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—देना ।—लगाना ।

३. लाभ का आयोजन । आम्दनी की सूरत ।—(दलाल) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—बैठाना ।

तड़क^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़कना] १. तड़कने की क्रिया या भाव ।
२. तड़कने के कारण किसी चीज पर पड़ा हुआ चिह्न । ३.
भोजन के साथ खाए जानेवाले अचार, चटनी आदि चटपटे
पदार्थ । चाट ।

तड़क^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़क = (धरन)] वह बड़ी लकड़ी जो दीवार
से बँडेर तक लगाई जाती है और जिसपर दासे रखकर छप्पर
छाया जाता है ।

तड़कना^१—क्रि० प्र० [अनु० तड़] १. 'तड़' शब्द के साथ फटना,
फूटना या टूटना । कुछ आवाज के साथ टूटना । चटकना ।
कड़कना । जैसे, शीशा तड़कना; लकड़ी तड़कना । २. किसी
चीज का सुखने आदि के कारण फट जाना । जैसे, झिलका
तड़कना, जलम तड़कना । ३. जोर का शब्द करना । उ०—
कहि योगिनि निशि हित प्रति तड़की । दिव्याचस के ऊपर
लड़की ।—गोपाल (शब्द०) । ४. क्रोध से बिगड़ना । झुंझ-
साना । बिगड़ना । ५. जोर से उछलना या कूदना । तड़पना ।
संयो० क्रि०—जाना ।

तड़कना^२—क्रि० सं० तड़का देना । छोकना । बघारना ।

तड़क भड़क—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वैभव, शान आदि की दिखावट ।

तड़कली—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताटक । तरौना । कर्णभूषण । तरकी ।
उ०—नाग फण का तड़कली, छोटि कसण पयोहर लीची ।—
वी० रासो, पृ० ७२ ।

तड़का—संज्ञा पुं० [हिं० तड़कना] १. सेवरा । सुबह । प्रातःकाल ।
प्रभात । २. छोक । बघार ।

क्रि० प्र०—देना ।

तड़काना—क्रि० सं० [हिं० तड़कना का सक० रूप] १. किसी वस्तु
को इस तरह से तोड़ना जिससे 'तड़' शब्द हो । २. किसी
पदार्थ को सुलाकर या और किसी प्रकार बीच में से फाड़ना ।

३. जोर का शब्द उत्पन्न करना । ४. किसी को क्रोध दिलाना या खिजाना ।

तड़कीला^१—वि० [हि० तड़कना + ईला (प्रत्य०)] १. चमकीला । भड़कीला । २. तड़कनेवाला । फट जानेवाला । ३. फुर्तीला ।

तड़क्का^१—संज्ञा पुं० [प्रनु० तड़] तड़ का शब्द ।

तड़क्का^१—क्रि० वि० [हि० तड़का] जल्दी । छटपट । उ०—चेतहु काहे न सवेर यमन सों रारिहै । काल के हाथ कमान तड़क्का मारिहै ।—कबीर (शब्द०) ।

तड़ग—संज्ञा पुं० [सं० तड़ग] तालाब । तड़ाग [क्रि०] ।

तड़सड़ाना^१—क्रि० प्र० [प्रनु०] तड़ तड़ शब्द होना ।

तड़तड़ाना^१—क्रि० स० तड़ तड़ शब्द उत्पन्न करना ।

तड़तड़हट—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] तड़तड़ाने की क्रिया या भाव ।

तड़ता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ित] बिजली । विद्युत् ।—(हि०) ।

तड़प—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़पना] १. तड़पने की क्रिया या भाव । २. चमक । भड़क ।

तड़प भड़प—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] दे० 'तड़क भड़क' । उ०—केवल ऊपरी तड़पभड़प रखनेवाली पश्चिमीय सभ्यता ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१५ ।

तड़पदार—वि० [हि० तड़प + फा० दार] चमकीला । भड़कदार । भड़कीला ।

तड़पन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तड़प' ।

तड़पना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. बहुत अधिक शारीरिक या मानसिक वेदना के कारण व्याकुल होना । छटपटाना । तड़फड़ाना । तलमलाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. जोर शब्द करना । भयंकर ध्वनि के साथ गरजना । जैसे, किसी से तड़पकर धोला, जोर का तड़पकर झाड़ी में से निकलना ।

तड़पवाना—क्रि० स० [हि० तड़पाना का प्रेरण] किसी को तड़पाने का काम दूसरे से कराना ।

तड़पाना—क्रि० स० [हि० तड़पना का सं० रूप] १. शारीरिक या मानसिक वेदना पहुँचाकर व्याकुल करना । २. किसी को गरजने के लिये बाध्य करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

तड़फड़—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़फड़ाना] तड़पने की क्रिया ।

तड़फड़ाना—क्रि० प्र० [हि०] तड़पना । छटपटाना । तलमलाना ।

तड़फड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़फड़ + आहट (प्रत्य०)] १. छटपटाहट । तलमलाहट । बेचैनी । २. मारे जाने या जलकर मरने के समय की बेचैनी या तड़पन ।

तड़फना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तड़पना' ।

तड़भड़—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] हड़बड़ । जल्दी जल्दी । उ०—पातसाह धजमेर परस्ते । कूच कियो तड़भड़ भड़ कस्ते ।—रा० क०, पृ० २५ ।

तड़बंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़ + फा० बंदी] समाज, विरादरी या धोल में प्रसंग प्रसंग तड़ बनाना ।

तड़ाक^१—संज्ञा पुं० [सं० तड़ाक] तड़ाग । तालाब । सरोवर ।

तड़ाक^२—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] तड़ाके का शब्द । किसी चीज के टूटने का शब्द ।

तड़ाक^३—क्रि० वि० १. 'तड़' या 'तड़ाक' शब्द के सहित । २. जल्दी से । चटपट । तुरंत ।

यौ०—तड़ाक पड़ाक = चटपट । तुरंत ।

तड़ाका^१—संज्ञा पुं० [प्रनु०] १. 'तड़' शब्द । जैसे,—न जाने कहाँ कल रात को बड़े जोर का तड़ाका हुआ । २. कमखवाब सुननेवालों का एक डंडा जो प्रायः सवा गज लंबा होता है और लफे में बंधा रहता है । इसके नीचे तीन और डंडे बंधे होते हैं । ३. पेड़ । वृक्ष ।—(कहारों की परि०) ।

तड़ाका^२—क्रि० वि० [हि० तड़ाक] चटपट । जल्दी से । तुरंत । जैसे,—तड़ाका जाकर बाजार से सोदा ले घामो (बोलचाल) ।

तड़ाग—संज्ञा पुं० [सं० तड़ाग] १. तालाब । सरोवर । ताल । पुष्कर । पोखरा । पचादियुक्त सर । उ०—(क) भरतु हंस रवि बंस तड़ागा । जनमि कोन्हु गुन दोष विभागा ।—मानस, ३।२३१ । (ख) धनुराग तड़ाग में आनु उदै बिगसी मनो मंजुल कंजकली । तुलसी ग्रं०, पृ० १६७ ।

विशेष—प्राचीनों के अनुसार तड़ाग पाँच सौ धनुष लंबा, चौड़ा और खूब गहरा होता था। उसमें कमल आदि भी होने चाहिए ।

तड़ागना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. गर्जन तर्जन करना । तड़फड़ाना । २. डींग मारना । ३. प्रयास करना । उ०—पहुँचेंगे तब कहेंगे वही देश की सीख । अबही कहा तड़ागिए बेड़ी पायन बीच ।—संतवाणी०, पृ० ३५ ।

तड़ागी—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ाग] १. करघनी । २. कमर ।

तड़ाघात—संज्ञा पुं० [सं० तड़ाघात] दे० 'तड़ाघात' [क्रि०] ।

तड़ातड़—क्रि० वि० [प्रनु०] १. तड़तड़ शब्द के साथ । इस प्रकार जिसमें तड़तड़ शब्द हो । जैसे, तड़ातड़ चपत जमाना । उ०—घागे रघुबीर के समीर के तनय के संग तारी दे तड़ाक तड़ातड़ के तमंका में ।—पद्माकर (शब्द०) । २. जल्दी से ।

तड़ातड़ी—क्रि० वि० [प्रनु० मि० बँगला नाहाताड़ी] जल्दी में । क्षीप्रता में । उ०—घो कुछ शुना नेई और बड़ा तड़ातड़ी में भाग ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४५ ।

तड़ाना^१—क्रि० स० [हि० तड़ाना का प्रेरण] किसी दूसरे को तड़ाने में प्रवृत्त करना । मँपाना ।

तड़ाना^२—क्रि० स० [हि०] जल्दी मचना ।

तड़ावा—संज्ञा स्त्री० [हि० तड़ाना (=दिलाना)] १. ऊपरी तड़क भड़क । वह धमक धमक जो केवल दिखाने के लिये हो । २. धोखा छल ।—(कव०) ।

क्रि० प्र०—देना ।

तड़ि^१—संज्ञा [सं० तड़ि] आघात [क्रि०] ।

तड़ि^२—वि० आघात करनेवाला [क्रि०] ।

तड़ि^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ि] बिजली । उ०—मेघनि बिबें प्रसप जल परै । तड़ि भई प्रलुप नेह परिहरे ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६० ।

तद्धित—संज्ञा स्त्री० [सं० तद्धित्] बिजली । विद्युत् । उ०—उपमा एक प्रभूत भई तब जब जननी पट पीत उड़ाए । नील जलध पर उड़गन निरखत तजि सुभानु मनो तड़ित छिपाए । —तुलसी (शब्द०) ।

तद्धिता—संज्ञा स्त्री० [सं० तद्धित्] दे० 'तद्धित्' । उ०—तद्धित तद्धिता चट्ट घोरन तें छिनि छाई समीरन सी लहरें । मदमाते महा गिरि भृंगनि पै गन मंजु मयूरन के कहुरें ।—इतिहास पृ० ३१८ ।

तद्धित्कुमार—संज्ञा पुं० [सं० तद्धित्कुमार] जैनों के एक देवता जो भुवनपति देवगण में से हैं ।

तद्धित्पति—संज्ञा पुं० [सं० तद्धित्पति] बादल । मेघ ।

तद्धित्प्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं० तद्धित्प्रभा] कार्तिकेय की एक मात्रिका का नाम ।

तद्धित्बान्—संज्ञा पुं० [सं० तद्धित्बान्] १. नागरमोषा । २. बादल ।

तद्धित्गर्भ—संज्ञा पुं० [सं० तद्धित्गर्भ] बादल ।

तद्धित्दाम—संज्ञा पुं० [सं० तद्धित्दामन्] बिजुलता । विद्युल्लता । बिजली चमकते समय दीखनेवाली रेखा [को०] ।

तद्धित्मय—वि० [सं० तद्धित्मय] बिजली की तरह चमकने-वाला [को०] ।

तड़िया—संज्ञा स्त्री० [देश०] समुद्र के किनारे की हवा ।—(लश०) ।

तड़ियाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तड़पना' ।

तड़ियाना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तड़पना' ।

तड़ियाना^३—क्रि० प्र० [हि०] जल्दी करना । जल्दी मचाना ।

तड़िल्लता—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़िल्लता] विद्युल्लता [को०] ।

तड़िल्लेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़िल्लेखा] बिजली की रेखा [को०] ।

तड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [तड़ से प्रभु०] १. चपत । घोल ।

क्रि० प्र०—जड़ना । जमाना ।—देना ।—लगाना ।

२. धोखा । छल ।—(दलाल) ३. बहाना । हीला ।

क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।

तड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल्दी । शीघ्रता ।

तड़ीत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तड़ित' ।

तण(पु)—अव्य० [हि० तनु] की तरफ । ओर का ।

तणई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तनया] कन्या । पुत्री ।

तणमीट(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] मुसलमान ।

तणी^१—अव्य० [हि०] दे० 'तड़' ।

तणी^२—अव्य० [हि० तनिक] थोड़ा । अल्प ।

तणु(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनु' ।

तणौ(पु)—अव्य० [हि० तनु] के लिये । की तरफ ।

तत्^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म या परमात्मा का एक नाम । जैसे,—
मों तत् मत् । २. वायु । हवा ।

तत्^२—सर्व० उस ।

विशेष इसका प्रयोग केवल संस्कृत के समस्त शब्दों के साथ उनके आरंभ में होता है । जैसे,—तत्काल, तत्क्षण, तत्पुरुष, तत्पश्चात्, तत्पश्चात्, तत्पश्चात्, तत्पश्चात्, तत्पश्चात्, तत्पश्चात् ।

तत्^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. बायु । २. विस्तार । ३. पिता । ४. पुत्र ।

संतान । ५. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों । जैसे, सारंगी, सितार, बोन, एकतारा, बेहला आदि ।

विशेष—तत् बाजे दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो खाली उंगली या मिजराब आदि से बजाए जाते हैं; जैसे, सितार बोन, एकतारा आदि । ऐसे बाजों को अंगुलित्रयंत्र कहते हैं और जो कमानी की सहायता से बजाए जाते हैं, जैसे, सारंगी, बेला आदि, वे धनुःयंत्र कहलाते हैं ।

तत्^२—वि० १. विस्तृत । फैला हुआ । २. विस्तारित । ३. ढका हुआ । छिपा हुआ । ४. ढुका हुआ । ५. अंतररहित । लगातार [को०] ।

तत्(पु)^३—वि० [सं० तत्] तपा हुआ । गरम । उ०—नखत प्रकामहि चढ़ दिवाई । तत् तत् तूना परहि बुझाई ।—जायसी (शब्द०) ।

तत्(पु)^४—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व] दे० 'तत्त्व' ।

तत्(पु)^५—सर्व० [सं० तत्] उस । जैसे,—तत्खन = तत्क्षण ।

तत्करा—क्रि० वि० [सं० तत्काल] तुरंत । उ०—तत्करा प्रपवित्र कर मानिए जैसे कागदगर करत विचारं ।—रेदास, पृ० ३७ ।

तत्कारा—अव्य० [हि०] दे० 'तत्काल' ।

तत्काल(पु)^१—अव्य० [हि०] दे० 'तत्काल' ।

तत्क्षण—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण; प्रा० तत्क्षण] दे० 'तत्क्षण' । उ०—तत्क्षण मालवणी कहइ सौभल कंत सुरंग ।—ढोला, दू० ६५४ ।

तत्खन(पु)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तत्क्षण' । उ०—तत्खन आइ बिबान पहुँचा । मन तें अधिक गगन ते ऊँचा ।—जायसी (शब्द०) ।

तत्च्छन—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण] दे० 'तत्क्षण' । उ०—(क) राज काज मास्य बिद्यालय बीष तत्च्छन ।—प्रेमघन०, पृ० ४१५ । (ख) प्ररज गरज सुनि देत उचित आदेश तत्च्छन ।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० १५ ।

तत्छन(पु)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तत्क्षण' ।

तत्छिन(पु)—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण, हि० तत्छन] दे० 'तत्क्षण' । उ०—सिध पीरि बृषमानु की, तत्छिन पट्टे जाइ ।—नंद० प्र०, पृ० १६८ ।

तत्ताथेई—संज्ञा स्त्री० [प्रभु०] वृत्त्य का शब्द । नाच के बोल ।

तत्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. विलंबित काल । मंद काल ।—(संगीत) । २. निरंतर्य । निरंतरता [को०] ।

तत्पत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] केले का वृक्ष ।

तत्पर—वि० [सं० तत्पर] दे० 'तत्पर' ।

तत्बाउ(पु)^१—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुबाय] दे० 'तंतुबाय' ।

तत्बीर(पु)^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तद्बीर] दे० 'तद्बीर' । उ०—कोउ गई जल पैठि तत्बीर ओर ठाढ़ी तीर । तिनहि छई बोलाइ राधा करत सुख तत्बीर ।—सूर (शब्द०) ।

तत्वेता—वि० [सं० तत्वेता] जानी । उ०—वैसा दूँदत मैं फिरी, वैसा मिला न कोय । तत्वेता निरगुन रहित, निरगुन से रत होय ।—कबीर सा० सं०, पृ० १८ ।

ततरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फलदार पेड़ ।

तत्त्व—वि० [सं० तत्त्व] तत्त्वज्ञानी । तत्त्व की बात जाननेवाला ।
उ०—तत्त्व मित्र कृष्ण तेहि पागे । ऊषो रोह जप तप को
लागे ।—घट०, पृ० २६२ ।

तत्तसार०—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्तसाला] तापने का स्थान । घाँव
देने या तपाने की जगह । उ०—सतगुरु तो ऐसा मिला ताते
खोह लुहार । कसनी दे कंचन किया ताय लिया तत्तसार ।—
कबीर (शब्द०) ।

तत्तहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तत्त + हि० हड़ा] [स्त्री० घल्पा०
तत्तहड़ी] वह बरतन विशेषतः मिट्टी का बरतन जिसमें
देहातवाले नहाने का पानी गरम करते हैं ।

तत्तार्ही०—संज्ञा स्त्री० [हि० तत्ता] तप्त होने की क्रिया या भाव
गरमी । उ०—बरनि बताई छिति व्योम की तत्तार्ही, जेठ
प्रायी घातताई पुटपाक की करत है ।—कवित्त०, पृ० ५६ ।

तत्तामह—संज्ञा पुं० [सं०] पितामह । दादा ।

तत्तारना—क्रि० सं० [हि० तत्ता (= गरम)] १. गरम जल से
धोना । २. तरेरा देकर धोना । धार देकर धोना । उ०—मनहु
बिरह के सय घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीर तत्तारति ।
—तुलसी (शब्द०) ।

तत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रुति । पंक्ति । ताला । २. समूह । सेना ।
भीड़ । ३. विस्तार । ४. यज्ञ का समारोह । उत्सव (की०) ।

तत्ति—वि० [सं०] लंबा चौड़ा । विस्तृत । उ०—यज्ञोपवीत पुनीत
विश्रान्त गूढ़ जन्म बनि पीन धंस तत्ति ।—तुलसी (शब्द०) ।

तत्तुवाऊ०—संज्ञा पुं० [सं० तत्तुवाय] दे० 'तत्तुवाय' ।

तत्तुरि—वि० [सं०] १. हिसा करनेवाला । २. तारनेवाला । ३.
जीतनेवाला (की०) । ४. रक्षण या पालन करनेवाला (की०) ।

तत्तुरि—संज्ञा पुं० १. अग्नि । २. इंद्र (की०) ।

तत्तैया—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्त या तप्त (= तप्त) + हि० ऐया
(प्रत्य०)] २. बरें । मिड़ । हड़ा । २. जवा मिर्च जो बहुत
कड़ई होती है ।

तत्तैया—वि० [हि० तीता धयवा तत्ता] १. तेज । फुरतीला । २.
बालाक । बुद्धिमान ।

तत्तोधिक—वि० [सं० तत्तोधिक] उससे अधिक (की०) ।

तत्तो—संज्ञा पुं० [हि०] तो । उ०—जो हम सों हित हानि कियो ।
तत्तो भूलिबो वा हरि कौन सों साह यो ।—नट०, पृ० ३४ ।

तत्तकाल—क्रि० वि० [सं०] तुरंत । फौरन । उसी समय । उसी वक्त ।

तत्तकालीन—वि० [सं०] उसी समय का ।

तत्तक्षण—क्रि० वि० [सं०] उसी समय । तत्काल । फौरन । उसी दम ।

तत्त०—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व, हि०] दे० 'तत्त्व' ।

तत्त०—वि० [सं० तप्त, हि०] दे० 'तप्त' । उ०—चुरंगी तु तत्तं,
वरं सिष तत्तं । मिल्यो बध्म भान, दुधं मल्ल जानं ।—पृ०
रा०, १ । ६४५ ।

तत्तद्—वि० [सं०] भिन्न भिन्न (की०) ।

तत्तद्—सर्व० बहु बहु । उन उन (की०) ।

तत्तमत्त०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तत्तमत्त' । उ०—हृथ जोर
मल्लन सो बुल्लिव । तत्तमत्त अंतर कव बुल्लिव ।—पृ०
रा०, पृ० १७२ ।

तत्ता०—वि० [सं० तप] जलता या तपता हुआ । गरम । उष्ण ।

मुहा०—तत्ता तवा = जो बात बात पर सड़े । लड़ाका । भगड़ानू ।

तत्ताथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नाच का बोल ।

तत्ती—वि० स्त्री० [हि० तत्ता] तीक्ष्ण । तप्त । उ०—जगपती उण
जोस मै, रत्ती भाग समाण । वनमपती खल जालवा, कर
तत्ती केवाण ।—रा०, पृ० १२६ ।

तत्तोथंबो—संज्ञा पुं० [हि० तत्ता (= गरम) + थामना] १. दम
दिलामा । बहुलावा २. दो लड़ने हुए आदमियों को समझा
बुझाकर शांत करना । बीच बचाव ।

तत्त्व—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व] १. वास्तविक स्थिति । यथार्थता ।
वास्तविकता । प्रसालयन । २. जगत् का मूल कारण ।

विशेष—सांख्य में २५ तत्त्व माने गए हैं पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व
(बुद्धि), अहंकार, अक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, वाक्,
पाणि, पायु, पान, उपस्थ, मूत्र, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध,
पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश । मूल प्रकृति से जेप तत्त्वों
की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है—प्रकृति से महत्तत्त्व (बुद्धि),
महत्तत्त्व से अहंकार, अहंकार से ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ,
पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन) और पाँच तन्मात्र (पाँच तन्मात्रों
से पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, आदि) । प्रलय काल में ये सब
तत्त्व फिर प्रकृति में व्रमणः विलीन हो जाते हैं । योग में
ईश्वर को और मिलाकर कुल २६ तत्त्व माने गए हैं । सांख्य
के पुरुष से योग के ईश्वर में विशेषता यह है कि योग का
ईश्वर क्लेश, कर्मविपाक आदि से पृथक् माना गया है ।
वेदांतियों के मत से ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थ तत्त्व है । शून्य-
वादी बौद्धों के मत से शून्य या अभाव ही परम तत्त्व है, क्योंकि
जो वस्तु है, वह रहने नहीं थी और भागे भी न रहेगी ।
कुछ और तो जीव और अजीव ये ही दो तत्त्व मानते हैं और
कुछ पाँच तत्त्व मानते हैं—जीव, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल
और अस्तिकाय । चार्वाक के मत में पृथ्वी, जल, अग्नि और
वायु ये ही तत्त्व माने गए हैं और इन्हीं से जगत् की उत्पत्ति
कही गई है । न्याय में १६, वैशेषिक में ६, शैवदर्शन में ३६;
इसी प्रकार अनेक दर्शनों की भिन्न भिन्न मान्यताएँ तत्त्व के
संबंध में हैं ।

यूरोप में १६वीं शती में रसायन के क्षेत्र का विस्तार हुआ ।
पैरासेल्सस ने तीन या चार तत्त्व माने, जिनके मुसाधार लवण
गंधक और वारद माने गए । १७वीं शती में फ्रांस एवं
इंग्लैंड में भी इसी प्रकार के विचारों की प्रश्रय मिलता रहा ।
तत्त्व के संबंध में सबसे अधिक स्पष्ट विचार राबर्ट बायल
(१६२७-१६९१ ई०) ने १६६१ ई० में रखा । उसने परिभाषा
की कि तत्त्व उन्हें कहेंगे जो किसी यांत्रिक या रासायनिक
क्रिया से अपने से भिन्न दो पदार्थों में विभाजित न किए जा
सकें । १७७४ ई० में प्रीस्टली ने आक्सिजन गैस तैयार की ।
कैवेंडिश ने १७८१ ई० में आक्सिजन और हाइड्रोजन के योग
से पानी तैयार करके दिखा दिया और तब पानी तत्त्व न
रहकर यौगिक की श्रेणी में आ गया । लाव्वाज्ये ने १७८६
ई० में यौगिक और तत्त्व के प्रमुख अंतरों को बताया । उसके

समय तक तत्त्वों की संख्या २३ तक पहुँच चुकी थी। १६वीं शती में सर हूफो डेवो ने नमक के मूल तत्व सोडियम को भी पृथक् किया और कैल्सियम तथा पोटैशियम को भी योगिकों में से अलग करके दिखा दिया। २०वीं शती में मोजली नामक वैज्ञानिक ने परमाणु संख्या की कल्पना रखी जिससे स्पष्ट हो गया कि सबसे हल्के तत्व हाइड्रोजन से लेकर प्रकृति में प्राप्त सबसे भारी तत्व यूरेनियम तक तत्वों की संख्या लगभग १०० हो सकती है। प्रयोगों ने यह भी संभव करके दिखा दिया है कि हम अपनी प्रयोगशालाओं में तत्वों का विभाजन और नए तत्वों का निर्माण भी कर सकते हैं।

३. पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश)। ४. परमात्मा। ब्रह्म। ५. सार वस्तु। माराण। जैसे, उनके लेख में कुछ तत्व नहीं हैं।

यौ०—तत्त्वमसि=यह उपनिषद् का एक वाक्य है जिसका तात्पर्य है हर व्यक्ति ब्रह्म है।

तत्त्वज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञ] १ वह जो ईश्वर या ब्रह्म को जानता हो। तत्त्वज्ञानी। ब्रह्मज्ञानी। २ दार्शनिक। दर्शनशास्त्र का ज्ञाता।

तत्त्वज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञान] ब्रह्म, आत्मा और मृष्टि आदि के संबंध का यथार्थ ज्ञान। ऐसा ज्ञान जिससे मनुष्य को मोक्ष हो जाय। ब्रह्मज्ञान।

विशेष—सांख्य और पातंजल के मत से प्रकृति और पुरुष का भेद जानना और वेदांत के मत में अविद्या का नाश और धातु का वास्तविक स्वरूप पहचानना ही तत्त्वज्ञान है।

यौ०—तत्त्वज्ञानार्थ दर्शन = तत्त्वज्ञान का विमर्श या आलोचना।

तत्त्वज्ञानी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञानिन्] १ जिसे ब्रह्म, सृष्टि और आत्मा आदि के संबंध का ज्ञान हो। तत्त्वज्ञ। दार्शनिक।

तत्त्वतः—अव्य० [सं० तत्त्वतः] वस्तुतः। यथार्थतः। वास्तव में [को०]।

तत्त्वता—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्वता] १ तत्व होने का भाव या गुण। २ यथार्थता। वास्तविकता।

तत्त्वदर्श—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वदर्श] १. तत्त्वज्ञानी। २ सावर्णि मन्वंतर के एक ऋषि का नाम।

तत्त्वदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वदर्शिन्] १ जो तत्व को जानता हो। तत्त्वज्ञानी। रैबत मनु के एक पुत्र का नाम।

तत्त्वदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्वदृष्टि] वह दृष्टि जो तत्व का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो। ज्ञानधनु। दिव्य दृष्टि।

तत्त्वनिष्ठ—वि० [सं० तत्त्वानिष्ठ] तत्व में निष्ठा रखनेवाला [को०]।

तत्त्वन्यास—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वन्यास] तंत्र के अनुसार विष्णुपूजा में एक अंगन्यास जो सिद्धि प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

तत्त्वभाव—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वभाव] प्रकृति। स्वभाव।

तत्त्वभाषी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वभाषिन्] वह जो स्पष्ट रूप से यथार्थ बात कहता हो।

तत्त्वभूत—वि० [सं० तत्त्वभूत] तत्व या सार रूप [को०]।

तत्त्वशक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार छी देवता का बीज। बहुबीज।

तत्त्ववाद—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्ववाद] दर्शनशास्त्र संबंधी विचार।

तत्त्ववादी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्ववादिन्] १. जो तत्त्ववाद का ज्ञाता और समर्थक हो। २. जो यथार्थ और स्पष्ट बात कहता हो।

तत्त्वविद्—संज्ञा पुं० [तत्त्वविद्] १. तत्त्ववेत्ता। २. परमेश्वर।

तत्त्वविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दर्शनशास्त्र।

तत्त्ववेत्ता—संज्ञा पुं० [तत्त्ववेत्ता] १. जिसे तत्व का ज्ञान हो। तत्त्वज्ञ। २. दर्शनशास्त्र का ज्ञाता। फिलामफर। दार्शनिक।

तत्त्वशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वशास्त्र] १. दर्शनशास्त्र। २. वैशेषिक दर्शनशास्त्र।

तत्त्वावधान—संज्ञा पुं० [तत्त्वावधान] निरीक्षण। जांच पड़ताल। देख रेख।

तत्त्वावधानक—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वावधानक] देखरेख करनेवाला। निरीक्षक।

तत्था^१—वि० [सं० तत्त्व] मुख्य। प्रधान।

तत्था^२—संज्ञा पुं० शक्ति। बल। ताकत।

तत्पत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केले का पेड़। २. वंशपत्नी नाम की चास।

तत्पद्—संज्ञा पुं० [सं०] परम पद। निर्वाण।

तत्पदार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टिकर्ता। परमात्मा।

तत्पर^१—वि० [सं०] [संज्ञा तत्परता] १. जो कोई काम करने के लिये तैयार हो। उद्यत। मुस्तैद। सन्नद्ध। २. निपुण। ३. चतुर। होशियार। ४. उसके बाद का [को०]।

तत्पर^२—संज्ञा पुं० समय का एक बहुत छोटा भाग। एक निमेष का तीसरा भाग।

तत्परता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तत्पर होने की क्रिया या भाव। सन्नद्धता। मुस्तैदी। २. दक्षता। निपुणता। ३. होशियारी।

तत्परायण—वि० [सं०] किसी वस्तु या ध्येय में पूरी तरह से लगन या दत्तचित्त [को०]।

तत्पश्चात्—अव्य० [सं०] उसके बाद। अनंतर [को०]।

तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। परमेश्वर। २. एक उद्ग का नाम। ३. मत्स्य पुराण के अनुसार एक कल्प (काल विभाग) का नाम। ४. व्याकरण में एक प्रकार का समास जिसमें पहले पद में कर्ता कारक की विभक्ति को छोड़कर कर्म आदि दूसरे कारकों की विभक्ति लुप्त हो और जिसमें पिछले पद का अर्थ प्रधान हो। इसका लिंग और वचन आदि पिछले या उत्तर पद के अनुसार होता है। जैसे, जलचर, नरेश, हिमालय, यज्ञशाला।

तत्प्रतिरूपक व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से एक अतिचार जो बेचने के खरे पदार्थों में छोटे पदार्थ की मिलावट करने से होता है।

तत्फल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुट नामक ओषधि। २. बेर का फल। ३. कुवलय। नील कमल। ४. चीर नामक गंधद्रव्य। ५. श्वेत कमल [को०]।

तत्र—क्रि० वि० [सं०] उस स्थान पर। उस जगह। वहाँ।

तत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जो योरोप, अरब, फारस से लेकर पूर्व में अफगानिस्तान तक होता है।

विशेष—यह धनार के पेड़ के बराबर या उससे कुछ बड़ा होता है। इसकी पत्तियाँ नीम की पत्ती की तरह कटावदार और कुछ ललाई लिए होती हैं। इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमें मसूर के से बीज पड़ते हैं। ये बीज बाजार में धसारों के यहाँ समाक के नाम से बिकते हैं और हकीमी दवा में काम पाते हैं। बीज के छिलके का स्वाद कुछ खट्टा और रुचिकर होता है। इसकी पत्तियों से एक प्रकार का रंग निकलता है। बंठल और पत्तियों से चमड़ा बहुत अच्छा सिझाया जाता है। हिंदुस्तान में चमड़े के बड़े बड़े कारखानों में ये पत्तियाँ सिसली से मंगाई जाती हैं।

तत्रत्य—वि० [सं०] वहाँ रहनेवाला [को०]।

तत्रभवान्—संज्ञा पुं० [सं०] माननीय। पूज्य। श्रेष्ठ।

विशेष—तत्रभवान् की तरह इस शब्द का प्रयोग भी प्रायः संस्कृत नाटकों में अधिकता से होता है।

तत्रस्थ—वि० [सं०] वहाँ स्थित। वहाँ का निवासी।

तत्रापि—अव्य० [सं०] तथापि। तो भी।

तत्संबन्धी—वि० [सं० उत्संबन्धिन] उससे संबंध रखनेवाला [को०]।

तत्सम—संज्ञा पुं० [सं०] भाषा में व्यवहृत होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जो अपने शुद्ध रूप में हो। संस्कृत का वह शब्द जिसका व्यवहार भाषा में उसके शुद्ध रूप में हो। जैसे,—दया, प्रत्यक्ष, स्वरूप, मृष्टि आदि।

तत्सामयिक—वि० [सं०] उस समय से संबंधित। उस समय का [को०]।

तथ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तत्त्व'। उ०—उह मनु कैसा जो कथे अकथु। उह मनु कैसा जो उलटे पुनि तथु।—प्राण०, पु० ३४

तथता—संज्ञा पुं० [सं० तथ+ता] १. सत्यता। वस्तु का वास्तविक स्वरूप में निरूपण। २. तथा का भाव। उ०—यदि आप चाहें तो असंस्कृतों की धर्मता, तथता का प्रज्ञप्ति मान सकते हैं।—संपूर्णा० अमि० प्र०, पु० ३३५।

तथा—अव्य० [सं०] १. और। व। २. इसी तरह। ऐसे ही। जैसे—तथा नाम तथा गुण।

यौ०—तथा रूप। तथा रूपी। तथावादी। तथाविध। तथाविधान। तथावृत्त। तथाविधेय। तथास्तु = ऐसा ही हो। इसी प्रकार हो। एवमस्तु।

विशेष—इस पद का प्रयोग किसी प्रार्थना को स्वीकार करने अथवा माँगा हुआ वर देने के समय होता है।

तथा^१—संज्ञा पुं० १. सत्य। २. सीमा। हृद। ३. निश्चय। ४. समानता।

तथा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तथ्य] दे० 'तथ्य'।

तथाकथित—वि० [सं०] जो मूलतः न हो परंतु उस नाम से प्रचलित हो। नामधारी।

तथाकथ्य—वि० [सं०] दे० 'तथाकथित' [को०]।

तथाकृत—वि० [सं०] इसी या उसी प्रकार किया हुआ या निमित्त [को०]।

तथागत—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध का एक नाम। २. जिन [को०]।

तथागुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैसा ही गुण। २. सत्य। वस्तु-स्थिति [को०]।

तथाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तथता' [को०]।

तथानुरूप—वि० [सं०] दे० 'तदनु रूप'। उ०—सत्य में जो संगति होती है वह तत्त्वों का समवर्गीय होना और उनका और उनसे निकले हुए नियमों का तथानुरूप होता है।—पा० सा० सि०, पु० ५।

तथापि—अव्य० [सं०] तो भी। तिस पर भी। तब भी। उ०—प्रभृति तथापि प्रसन्न बिलोकी। माँगि अगम बर होउं असोकी।—मानस, १। १६४।

विशेष—इसका प्रयोग यद्यपि के साथ होता है। जैसे,—यद्यपि हम वहाँ नहीं गए, तथापि उनका काम हो गया।

तथाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैसा भाव या स्थिति। २. सत्यता [को०]।

तथाभूत—वि० [सं०] १. उस प्रकार के गुण या प्रकृति का। २. उस स्थिति का [को०]।

तथाराज—संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध।

तथेई तथेइ ताथे—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ताथेई'। उ०—लगयी कान्हू के आनि, तथेई तथेइ ताथे। ब्रजनिधि की चित तूर तूर करि डारघी राधे।—ब्रज० प्र०, पु० १६।

तथैव—अव्य० [सं०] वैसा ही। उसी प्रकार।

तथोक्त—वि० [सं०] वैसा बलिप्त। जैसा कहा गया है। २. तथाकथित। उ०—भारत की तथोक्त ऊँची जातियाँ चाहे कितना ही प्रमाण पर पर उनकी धाकृतियाँ और इतिहास पुकार पुकार कर कहते हैं कि वह सांक्य दोष से बची नहीं है।—आर्यो०, पु० १३।

तथ्य^१—वि० [सं०] १. सत्य। सचाई। यथार्थता। २. रहस्य [को०]।

तथ्य^२—अव्य० [सं० तथ] उस जगह। वहाँ [को०]।

तथ्यतः—क्रि० वि० [सं०] सत्य या सचाई के अनुसार [को०]।

तथ्यभाषी—वि० [सं० तथ्यभाषिन्] साफ और सच्ची बात कहनेवाला।

तथ्यवादी—वि० [सं० तथ्यवादिन्] दे० 'तथ्यभाषी'।

तद्—वि० [सं०] वह।

विशेष—इसका प्रयोग योगिक शब्दों के आरंभ में होता है। जैसे,—तदनंतर, तदनुसार।

तदा^१—क्रि० वि० [सं० तदा] उस समय। तब।

तदंतर—क्रि० वि० [सं० तदंतर] इसके बाद। इसके उपरांत।

तदनंतर—क्रि० वि० [सं० तदनंतर] उसके पीछे। उसके बाद। उसके उपरांत।

तदनन्यत्वं—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य और कारण में अभाव। कार्य और कारण की एकता। (वेदात)।

तदनु—क्रि० वि० [सं०] १. उसके पीछे। तदनंतर। उसके अनुसार २. उसी तरह। उसी प्रकार।

तदनुकूल—वि० [सं०] उसके अनुसार। तदनुसार।

तदनु रूप—वि० [सं०] उसी के जैसा। उसी के रूप का। उसी के समान।

तदनुसार—वि० [सं०] उसके मुताबिक । उसके अनुकूल ।

तदन्यबाधितार्थ—संज्ञा पु० [सं०] नव्य न्याय में, तर्क के पाँच प्रकारों में से एक ।

तदपि—अव्य० [सं०] तो भी । तिसपर भी । तथापि ।

तद्वीर—संज्ञा स्त्री० [प्र०] अभीष्ट सिद्धि करने का साधन । उक्ति । तरकीब । यत्न ।

तदर्थ—अव्य० [सं०] उसके लिये । उसके वास्ते [को०] ।

तदर्थी—वि० [सं० तदर्थिन] दे० 'तदर्थीय' ।

तदर्थीय—वि० [सं०] उसके अर्थ की तरह अर्थ रखनेवाला । समानार्थक [को०] ।

तदा—क्रि० वि० [सं०] उस समय । तब । तिम समय ।

तदाकार—वि० [सं०] १. वैसा ही । उसी आकार का । उसी आकृतिवाला । तद्रूप । २. सम्यक ।

तदाशुक्—संज्ञा पु० [प्र०] १. खोई हुई चीज या भागे हुए अपराधी आदि की खोज या किसी दुर्घटना आदि के संबंध में जाँच । २. किसी दुर्घटना को रोकने के लिये पहले से किया हुआ प्रबंध । पेशबंदी । बंदोबस्त । ३. सजा । दंड ।

तदि०—क्रि० [हि०] तब । तब । उस समय । उ०—तदि करथो बोध बहु विधि मुताहि ।—ह० रासो, पृ० ४६ ।

तदीय—सर्व [सं०] उसमें संबंध रखनेवाला । उसका ।

यौ०—तदीय समाज । तदीय सर्वस्व ।

तदुत्तर—वि० [सं०] उसके बाद । उसके प्रतिरिक्त । उ०—कठिन है अपना तर्क तुम्हें समझाना । इह मेरा है पूर्ण, तदुत्तर परलोको का कोन उजाला ।—इत्यनम्, पृ० २१८ ।

तदुपरांत—वि० वि० [सं० तदन उपरान्त] उसके पीछे । उसके बाद ।

तदुपरि—वि० [सं०] उसके ऊपर । उसके बाद । उ०—कस्टों में अल्प उपशम भी प्रवेश को है घटाना । जो होती है तदुपरि व्यथा सो महादमंगा है ।—पियू०, पृ० १२२ ।

तद्गत—वि० [सं०] १. उससे संबंध रखनेवाला । उसके संबंध का । २. उसके अन्तर्गत । उसमें व्याप्त ।

तद्गुण—संज्ञा पु० [सं०] एक अर्थान्कार जिसमें किसी एक वस्तु का अपना गुण त्याग करके समीपवर्ती किसी दूसरे उत्तम पदार्थ का गुण ग्रहण कर लेना वर्णित होता है । जैसे,—(क) अधर धरत हरि के परत ओठ सीठ पट जोति । हरित बसि की बसुरी इदधनुष सी होती ।—बिहारी (शब्द०) । इसमें बसि की बसुरी का अपना गुण छोड़कर इदधनुष का गुण ग्रहण करना वर्णित है । (ख) जाहिरे जागत सी अमुना जय बूझै बहै उमहँ वह बेरी । त्यो पदमाकर हीर के हारन गंग तरंगन को मुख देनी । पावन के रंग सों रँगि जात सुभातिहि भाति सरस्वति सेनी । पीरे जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ नाल में होत बिबेनी ।—पराकर (शब्द०) । यहाँ ताल के बाल का बालो, हीरे, मोती के हारों और तलवों के संगं के कारण बिबेनी का रूप धारण करना कहा गया है ।

तदपि०—अव्य० [हि०] १. 'तथापि' । उ०—अथ उद्ध अम्बो

बहु कमलि नाल । नहि पार मझी तदपि भुवाल ।—ह० रासो, पृ० ४ ।

तद्वन—संज्ञा पु० [सं०] कृपण । कंजूस ।

तद्वर्म—वि० [सं० तद्वर्मन्] जिनका वह धर्म हो । उस धर्मवाला । उ०—किंतु आप कहेंगे कि यद्यपि जाति का तद्वर्मत्व नहीं है तथापि तीक्ष्णस्व और कपिलत्व का अग्निजाति से अविनाभाव है ।—संपूर्ण० अभि० प्र०, पृ० ३३७ ।

तद्धित^१—संज्ञा पु० [सं०] १. व्याकरण में एक प्रकार का प्रत्यय जिसे संज्ञा के अंत में लगाकर शब्द बनाते हैं ।

विशेष—यह प्रत्यय पाँच प्रकार के शब्द बनाने के काम में आता है—(१) अपत्यवाचक, जिससे अपत्यता या अनुयायित्व आदि का बोध होता है । इसमें या तो संज्ञा के पहले स्वर की वृद्धि कर दी जाती है अथवा उसके अंत में 'ई' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है । जैसे, शिव से शीव, विष्णु से वैष्णव, रामानंद से रामानंदी आदि । (२) कर्तृवाचक—जिससे किसी क्रिया के कर्ता होने का बोध होता है । इसमें 'वाला' या 'हारा' अथवा इन्हीं का समानार्थक और कोई प्रत्यय लगाया जाता है । जैसे, कपड़ा से कपड़ेवाला, गाड़ी से गाड़ीवाला, लकड़ी से लकड़ीवाला या लकड़हारा । (३) भाववाचक—जिससे भाव का बोध होता है । इसमें 'आई', 'ई', 'त्व', 'ता', 'पन', 'पा', 'वट', 'हट', आदि प्रत्यय लगाते हैं । जैसे, ठीठ से ठिठाई, ऊँचा से ऊँचाई, मनुष्य से मनुष्यत्व, मित्र से मित्रता, लड़का से लड़कपन, बूढ़ा से बुढ़ापा, मिलान से मिलावट, चिकना से चिकनाहट आदि । (४) ऊनवाचक—जिससे किसी प्रकार की लयनता या लघुता आदि का बोध होता है । इसमें संज्ञा के अंत में 'क', 'इया' आदि लगा देते हैं और 'आ' को 'ई' से बदल देते हैं । जैसे,—बूझ से बूझक, फोडा से फोडिया, जोला से जोली । (५) गुणवाचक—जिससे गुण का बोध होता है । इसके संज्ञा के अंत में 'आ', 'इक', 'इत', 'ई', 'ईला', 'एला', 'लू', 'वत', 'वान', 'दायक', 'कारक', आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं । जैसे, ढंड से ठंडा, मेल से मैला, शारीर से शारीरिक, आनंद से आनंदित, गुण से गुणी, रंग से रंगीला, घर से घरेलू, दया से दयावान्, सुख से सुखदायक, गुण से गुणकारक आदि ।

२. वह शब्द जो इस प्रकार प्रत्यय लगाकर बनाया जाय ।

तद्धित^२—वि० उसके लिये उपयुक्त [को०]

तद्बल—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का बाल ।

तद्भ्रम—संज्ञा पु० [सं०] भाषा में प्रयुक्त होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जिसका रूप कुछ विकृत या परिवर्तित हो गया हो । संस्कृत के शब्द का अपभ्रंश रूप । जैसे, हस्त का हाथ, अश्व का घोड़ा, अर्ध का आधा, काष्ठ का काठ, कपूर का कपूर, दूत का धो ।

तद्यपि—अव्य० [सं०] तथापि । तो भी ।

तद्रूप—वि० [सं०] समान । सदृश । वैसा ही । उसी प्रकार का ।

तद्रूपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सादृश्य । समानता । उ०—जानि जुग जूप में भूप तद्रूपता बहुरि करिई कलुष भूमि भारी ।—सूर (शब्द०) ।

तद्वत्—वि० [सं०] उसी के जैसा । उसके समान । ज्यों का त्यों ।

यौ०—तद्वत्ता=तद्वत् होने का भाव या स्थिति ।

तथी—क्रि० वि० [सं० तथा] तभी (क्व०) ।

तन^१—संज्ञा पुं० [सं० तनु । तुल० क्रा० तन] १. शरीर । देह । गात । चित्तम् ।

यौ०—तनताप = (१) शारीरिक कष्ट । (२) भुख । क्षुधा ।

मुहा०—तन को लयाना = (१) हृदय पर प्रभाव पड़ना । जो मे बैठना । जैसे, —चाहे कोई काम हो, जब तन को न लगे तब तक वह पुरा नहीं होता । (१) (छाद्य पदार्थ का) शरीर को पुष्ट करना । जैसे,—जब चिता छूटे, तब खावा पीना भी तन को लगे । तन तोड़ना = धँसेड़ाई सेना । तन देना = ध्यान देना । मन लगाना । जैसे,—तन देकर काम किया करो । तन मन मारना = इंद्रियों को बंध में रखना । इच्छाओं पर अधिकार रखना ।

२. स्त्री की मुनेन्द्रिय । भग ।

मुहा०—तन बिखाना = (स्त्री का) संभोग करना । प्रसंग कराना ।

तन^२—क्रि० वि० तरफ़ धोर । उ०—बिहँसे कटना धयन चित्त ह्रजानकी बखन तन ।—माधस, २ । १०० ।

तन^३—संज्ञा पुं० [सं० स्तन; प्रा० यणु; हि० वन; राज० तन;] १० 'तन' । उ०—तिया माक रा तन बिस्पा पंहर हवा ज कैस ।—ढोखा०, पृ० ४४२

तनक^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक रागिनी का नाम जिसे कोई कोई मेघ राग की रागिनी मानते हैं ।

तनका^२—वि० [हि०] दे० 'तनिक' । उ०—प्रबहो देसे बवल किशोर । घर धावत हो तनक भसे हैं ऐसे तन के धोर—सूर (शब्द०) ।

तनकना(५)†—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तनकना' ।

तनकीह—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनकीह] १. प्रालोचना । २. परख । [क्रि०] ।

तनकीह—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनकीह] १. जाँच । जोख । तहकीकात । २. म्यादालय में किसी उपस्थित अभियोग के संबंध में विचारणीय धोर विवादास्पद विषयों को हूँद निकालना । बदामत का किसी मुकदमे की उन बातों का पता लगाना जिनके जिये वह मुकदमा चलाया गया हो धोर बिबका फेसला होना जरूरी हो ।

विशेष—भारत में दीवानी अदालतों में जब कोई मुकदमा वायर होता है, तब पहले उसमें प्रचालत की धोर से एक टारीख पड़ती है । उस टारीख को दोनों पक्षों के वकील बहस करते हैं जिससे हाकिम को विवादास्पद धोर विचारणीय बातों को जानने में सहायता मिलती है । उस समय हाकिम ऐसी सब बातों की एक सूची बना लेता है । उन्हीं बातों को हूँद निकालना धोर उनकी सूची बनाना तनकीह कहलाता है ।

तनकना(५)†—क्रि० वि० [हि० तनक] दे० 'तनिक' । उ०—रहे तनक धोर जाय फेर भगि हल्लिय ।—हु० रासी, पृ० ५१ ।

तनखाह—संज्ञा स्त्री० [फा० तनखाह] वह धन जो प्रति सप्ताह, प्रति मास या प्रति वर्ष किसी को नौकरी करने के उपलक्ष्य में मिलता है । वेतन । तलब ।

तनखाहदार—संज्ञा पुं० [फा०] वह जो तनखाह पर काम करता हो । तनखाह पानेवाला नौकर । वेतनभोगी ।

तनखाह—संज्ञा स्त्री० [फा० तनखाह] दे० 'तनखाह' ।

तनखाहदार—संज्ञा पुं० [फा० तनखाहदार] दे० 'तनखाहदार' ।

तनगना(५)†—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तनकना' । उ०—अनतहि बसत अनत हो डोलत धावत किरन प्रकाश । सुनहु सूर पुनि तो कहि धावे तनगि गए ता पास ।—सूर (शब्द०) ।

तनगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] शरीर ठँकने का मामूली वस्त्र । उ०—जई तनगरी तोरि कै सु हरि बोली हरि बोष ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ३१७ ।

तनज—संज्ञा पुं० [प्र० तंज] १. ताना । २. भजाक ।

तनजीम—संज्ञा स्त्री० [प्र० तन्जीम] अपने वगों को संघटित करना । संघटन [क्रि०] ।

तनजील—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनजील] १. प्रतिपद्य करना । २. उतारना [क्रि०] ।

तनजेब—संज्ञा स्त्री० [फा० तनजेब] एक प्रकार का बहुत ही महीन बड़िया सूती कपड़ा । महीन चिकनी मजमल ।

तनजुल—संज्ञा पुं० [प्र० तनजुल] तरक्की का उलटा । घबराति । उतार । घटाव ।

तनजुलो—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनजुल + फा० ई (प्रत्यय)] घबराति । उतार । तरक्की का उलटा ।

तनतनहा—क्रि० वि० [हि० तन + फा० तनहा] बिलकुल प्रकेला । जिसके साथ धोर कोई न हो । जैसे,—वह तनतनहा दुश्मन की धावनी से चला गया ।

तनतना—संज्ञा पुं० [हि० तनतनाना या प्र० तनतनह] १. रोहदाव । दबदबा । २. क्रोध । गुस्सा । (क्व०) ।

क्रि० प्र०—दिखाना ।

तनतनाना—क्रि० प्र० [प्र० या प्र० तनतनह] १. दबदबा दिखलाना । शान दिखाना । २. क्रोध करना । गुस्सा दिखलाना ।

तनत्राण—संज्ञा पुं० [सं० तनुत्राण] १. वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो । २. कवच । बखतर ।

तनदिही—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'तदेही' ।

तनधर—संज्ञा पुं० [सं० तनु + धर] दे० 'तनुधारी' ।

तनधारी(५)†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनुधारी' ।

तनना—क्रि० प्र० [सं० तन या तनु] १. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का इस प्रकार धागे की धोर बढ़ना जिसमें उसके मध्य धाग का मोल निकल जाय धोर उसका विस्तार कुछ बढ़ जाय । भटके, लिचाव या खुरकी धाविके कारण किसी पदार्थ का विस्तार बढ़ना । जैसे, चाबर या चाँदनी तबना, धाव पर कीपपड़ी तनना । २. किसी चीज का धोर से किसी

घोर खिन्नता । आकषिप्त या प्रवृत्त होना । १. किसी चीज का झकड़कर सीधा लड़ना होना । जैसे,—यह पेड़ कल झुक गया था, पर धाज पानी पाते ही फिर तन गया । ४. कुछ अभिमान-पूर्वक दृष्ट या उदासीन होना । ऐंठना । जैसे,—इधर कई दिनों से वे हमसे कुछ तने रहते हैं ।

संज्ञा० क्रि०—जाना ।

तनना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तानना' । उ०—ग्रहपथ के धातुक-वृत्त से काखजाल तनता अपना ।—कामायनी, पृ० ३४ ।

तनना^२—संज्ञा पुं० [हि० ताना] वह रस्ती जिससे तानने का कार्य किया जाता है ।

तनपात^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनुपात' ।

तनपोषक—वि० [सं० तन + पोषक] जो केवल अपने ही शरीर या लाभ का ध्यान रखे । स्वार्थी ।

तनबाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश जिसका नाम महा-भारत में आया है ।

तनमय—वि० [सं० तन्मय] दे० 'तन्मय' । उ०—अपनो अपनो धाम सखी री तुम तनमय मैं कहूँ न नेरे ।—सूर (शब्द०) ।

तनमात्रा^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्मात्रा] दे० 'तन्मात्रा' ।

तनमानसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान की सात भूमिकाओं में तीसरी भूमिका ।

तनय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र । बेटा । लड़का । २. जन्मलग्न से पंचवर्ष स्थान जिससे पुत्र भाव देखा जाता है ।

तनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लड़की । बेटा । पुत्री । २. पिठवन लता ।

तनराग—संज्ञा पुं० [सं० तनु + राग] दे० 'तनुराग' ।

तनरुह^(५)—संज्ञा पुं० [सं० तनुरुह] दे० 'तनूरुह' । उ०—हरषवन्त चर भ्रमर भूमिसुर तनरुह पुलकि जनाई । तुलसी (शब्द०) ।

तनवाह—संज्ञा पुं० [सं०] भौतिकवाद । शरीर को मुख्य माननेवाला सिद्धांत । उ०—वह ठेठ तनवाह और कर्मवाद है ।—मुखदा, पृ० १९१ ।

तनवाना—क्रि० भ० [हि० तानना का प्रे० रूप] तानने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना । तनाना ।

तनवाल—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति ।

तनसल—संज्ञा पुं० [देश०] स्फटिक । बिलौर ।

तनसिज—संज्ञा पुं० [सं०] उरोज । उ०—सब गनना चित चोर सों, बनी भुनत यह चीन । भरेके तनसिज तरुनि के, फरके गोल कपोल ।—सं० सप्तक, पृ० २४२ ।

तनसीख—संज्ञा स्त्री० [सं० तनसीख] रद्द करना । नातिल करना । नाजायज करना । मंजूरी ।

तनसुख—संज्ञा पुं० [हि० तन + सुख] तंजिब या घड़ी की तरह का एक प्रकार का बढ़िया फूलदार कपड़ा । उ०—(क) तनसुख शारी जही धंगिया घतलस घतरोटा छवि चारि चारि चूरी पड़ुंनि पट्टी छमकी बनी नकफूल जेब मुख बीरा चौके कोधे संभ्रम भूली ।—हरिदास (शब्द०) । (ख) होमलता पर रसास तनसुख की सेज लाल मनहुँ सोम सूरज पर सुधाबिंदु बरपे ।—

तनहा^१—वि० [फा०] १. जिसके संग कोई न हो । बिना साथी का । अकेला । एकाकी । २. रिक्त । खाली (को०) ।

तनहा^२—क्रि० वि० बिना किसी संगी साथी का । अकेले

तनहाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. तनहा होने की दशा या भाव । २. वह स्थान जहाँ और कोई न हो । एकांत ।

थौं—तनहाई कैद ।

तना^१—संज्ञा पुं० [फा० तनह] वृक्ष का जमीन से ऊपर निकला हुआ वहाँ तक का भाग जहाँ तक डालियाँ न निकली हों । पेड़ का धड़ । मंदल ।

तना^२—क्रि० वि० [हि० तन] घोर । तरफ । दे० 'तन' । उ०—नील पट ऋषटि लपेटि छिगुनी पे घरि डेरि टरि कहूँ हंसि हेरि हरिज तना ।—देव (शब्द०) ।

तना^३—संज्ञा पुं० [हि० तन] शरीर । जिस्म । उ०—तना सुख में पड़ा तब से गुरु का शुक्र क्यों भूला ।—कबीर मं०, पृ० १४३ ।

तनाई^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनाव' ।

तनाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तनाव' ।

तनाउ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तनाव' । उ०—फटिक छरी सी किरन कुंजरंधनि जब आई । मानो बितनु बितान सुदेस तनाउ तनाई ।—नंद० ग्रं०, पृ० ७ ।

तनाउल—संज्ञा पुं० [सं० तनावुल] भोजन करना । उ०—हुसूर को खासा तनाउल फमनि को नावक्त हुआ जाता है ।—प्रेमचन्द०, पृ० ८५ ।

तनाऊ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनाव' ।

तनाक—वि० [हि०] दे० 'तनिक' । उ०—दर, रतेक, ईखत, अखप, रचक, मंद, मनाक । तब प्रिय सहचरि उन बितै, सुसकी कुंभरि तनाक ।—नंद० ग्रं० पृ० १०० ।

तनाकु^(५)—वि० [हि०] दे० 'तनिक' ।

तनाजा—संज्ञा पुं० [सं० तनाजम्] १. बखेड़ा । झगड़ा । टंटा । दंगा । संघर्ष । फसाद । २. अदावत । कशाकश । शत्रुता । वैर । वैमनस्य ।

तनाना—क्रि० सं० [हि० तानना का प्रे० रूप] तानने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना । उ०—कनस चरन तोरन ध्वज सुवितान तनाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

तनाबा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तनाब] १. खेमे की रस्सी । २. बाजी-गरों का रस्सा जिसपर वे चढ़ते तथा दूसरे खेल करते हैं ।

थौं—तनावे अमल = (१) आशा रूपी डोर । (२) आशा । तनावे अमल = आयुसूत्र । आयु । जीवनकाल ।

तनाय^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनाव' ।

तनाव—संज्ञा पुं० [हि० तनाव०] १. तनने का भाव या क्रिया । २. वह रस्सी जिसपर घोड़ी कपड़े सुखाते हैं । ३. रस्सी । डोरी । जेवरी । रज्जु ।

तनासुख—संज्ञा पुं० [सं० तनासुख] आवागमन (को०) ।

तनि^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तनिक' । सं०—तनि सुख तो च्छिद्यत
हृती हर विष विधिहि मनाथ । भली भई जो सखि भयो
मोहन मयुरे जाय ।—रसनिधि (शब्द०) ।

तनि^२—अभ्य० तरफ । घोर ।

तनि^३—संज्ञा पु० [सं० तनु] शरीर । देह ।

तनिक^१—वि० [सं० तनु (= अल्प)] १. थोड़ा । कम । २. छोटा ।
उ०—इहाँ हुती मेरी तनिक मईया को नुप छाई छम्पी ।—
सूर (शब्द०) ।

तनिक^२—क्रि० वि० जरा । टुक ।

तनिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रस्सी जिससे कोई चीज बाँधी जाय ।

तनिका^२—सर्व० [हि० तिनका] उसका । उ०—भनइ विद्यापति
कवि कंठहार । तनिका दोसर काम प्रहार । —विद्या-
पति०, पृ० २८ ।

तनिमा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिमन्] १. कृशता । २. नजाकत ।
उ०—तनिमा ने हर लिया तिमिर, भंगों में लहरी फिर फिर,
तनु में तनु प्रारति सी स्थिर, प्राणों की पावनता बन ।—
गीतिका, पृ० १६ ।

तनिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तनी] १. लँगोटी । लँगोटी । कोपीन । २.
कछनी । जाँघिया । उ०—तनिया ललित कटि विविध टिपारो
सीस मुनि मन हरत बचन कहै तोतरात ।—तुलसी (शब्द०) ।
३. चोली । उ०—तनिया न तिलक मुघनियाँ पगनियाँ न घामै
धुमरात छोड़ि सेजियाँ मुखन की ।—भूपन (शब्द०) ।

तनिष्ठ—वि० [सं०] जो बहुत ही दुबला पतला, छोटा या कमजोर हो ।

तनिसा^१—संज्ञा पु० [देश०] पुमाल ।

तनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हि० तानना] १. डोरी की तरह
बटा या लपेटा हुआ वह कपड़ा जो भँगरखे, चोली भादि में
उनका पल्ला तानकर बाँधने के लिये लगाया जाता है । बंध ।
बंधन । उ०—कंबुकि ते कुचकलस प्रगट त्वैं दृष्टि न तरक
तनी ।—सूर (शब्द०) । २. दे० 'तनिया' ।

तनी^२—क्रि० वि० [सं० तनु] दे० 'तनिक' ।

तनी^३—वि० दे० 'तनिक' ।

तनीदार—वि० [हि० तनी + फ्रा० दार] तनी या बंदबाला ।

तनु^१—वि० [सं०] १. कृश । दुबला पतला । २. अल्प । थोड़ा । कम ।
३. कोमल । नाजुक । ४. सुंदर । बढ़िया । ५. तुच्छ (को०) ।
६. छिछला (को०) ।

तनु^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शरीर । देह । बदन । २. चमड़ा । छाल ।
त्वक् । ३. स्त्री । घोरत । ४. केंचुली । ५. ज्योतिष में लग्न-
स्थान । जन्मकुंडली में पहला स्थान । ६. योग में अस्मिता,
राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद
जिसमें चित्त में क्लेश की अवस्थिति तो होती है, पर साधन
या सामग्री आदि के कारण उस क्लेश की सिद्धि नहीं होती ।

तनुक^१—वि० [सं० तनु + क (प्रत्य०)] दे० 'तनिक' ।

तनुक^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तनिक' ।

तनुक^३—संज्ञा पु० [सं० तनु] दे० 'तनु' ।

तनुक^४—वि० [सं०] १. पतला । क्षीण । कृश । २. छोटा (को०) ।

तनुकूप—संज्ञा पु० [सं०] रोमछिद्र (को०) ।

तनुकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर बालोंवाली स्त्री (को०) ।

तनुक्षय—संज्ञा पु० [सं०] कीटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार वह लाभ जो
मंत्र मात्र से साध्य हो ।

तनुक्षीर—संज्ञा पु० [सं०] घामड़े का पेड़ ।

तनुगृह—संज्ञा पु० [सं०] अश्विनी नक्षत्र (को०) ।

तनुच्छद्—संज्ञा पु० [सं०] कवच । बखतर ।

तनुच्छाय^१—संज्ञा पु० [सं०] छाल बबूल का पेड़ ।

तनुच्छाय^२—वि० अल्प या कम छायावाला (को०) ।

तनुज—संज्ञा पु० [सं०] १. पुत्र । बेटा । लड़का । २. जन्मकुंडली
में लग्न से पौषदी स्थान जहाँ से पुत्रभाव देखा जाता है ।

तनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या । लड़की । पुत्री । बेटो ।

तनुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लघुता । छोटाई । २. दुर्बलता ।
दुबलापन । कृशता ।

तनुत्याग—वि० [सं०] कम खर्च करनेवाला । कृण (को०) ।

तनुत्र—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'तनुत्राण' ।

तनुत्राण—संज्ञा पु० [सं०] १. वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो ।
२. कवच । बखतर ।

तनुत्रान^१—संज्ञा पु० [सं० तनुत्राण] दे० 'तनुत्राण' ।

तनुत्वचा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी घरणी ।

तनुत्वचा^२—संज्ञा स्त्री० जिसकी छाल पतली हो ।

तनुदान—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगदान । शरीरदान (संभोग के लिये) ।

तनुधारी—वि० [सं०] शरीरधारी । देहधारी । शरीर धारण करने-
वाला । उ०—कहहु सखी भस को तनुधारी । जो न मोह
येहु ऊपु निहारी ।—मानस, १।२२१ ।

तनुधी—वि० [सं०] क्षीणमति । अल्पबुद्धि (को०) ।

तनुपत्र—संज्ञा पु० [सं०] गौदनी या गौदी का पेड़ । इंगुमा वृक्ष ।

तनुपात—संज्ञा पु० [सं०] शरीर से प्राण निकलना । मृत्यु । मोत ।

तनुपोषक—संज्ञा पु० [सं०] वह जो अपने ही शरीर या परिवार का
पोषण करता हो । स्वार्थी । उ०—तनुपोषक नारि नरा
समरे । परविबक जे जग मों बगरे ।—मानस, ७।१०२ ।

तनुप्रकाश—वि० [सं०] धुंधले या मंद प्रकाशवाला (को०) ।

तनुबीज^१—संज्ञा पु० [सं०] राजवेर ।

तनुबीज^२—वि० जिसके बीज छोटे हों ।

तनुभव—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० तनुभवा] पुत्र । बेटा । लड़का ।

तनुभस्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका । नाक (को०) ।

तनुभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध आचार्यों के जीवन की एक अवस्था ।

तनुभृत्—वि० [सं०] देहधारी, विशेषतः मनुष्य (को०) ।

तनुमत्—वि० [सं०] १. समाहित । सन्निहित । २. शरीर युक्त ।
शरीरवाला ।

तनुमध्य—संज्ञा पु० [सं०] कमर वा कटि (को०) ।

तनुमध्य—वि० क्षीण कटि या कमरवाला (को०) ।

तनुमध्यमा—वि० [सं०] पतली कमरवाली (को०) ।

तनुमध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वयुंभुत का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण धोर यगण (SSI—ISS) होता है। इसको चोरस भी कहते हैं। जैसे,—तू यों किमि घाली, घूमे मतदाली।—(शब्द०)।

तनुरस—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनुराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. कैसर, कस्तूरी, चंदन, कपूर, अगार आदि को मिलाकर बनाया हुआ उबटन। २. वे सुगंधित द्रव्य जिनसे उक्त उबटन बनाया जाता है।

तनुरुह—संज्ञा पुं० [सं०] रोम। रोम।

तनुल—वि० [सं०] विस्तृत। फैला हुआ [को०]।

तनुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सता सद्यः सुकुमार पतला शरीर [को०]।

तनुवात—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ हवा बहुत ही कम हो। २. एक नरक का नाम।

तनुवार—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। बलनर।

तनुबीज^१—संज्ञा पुं० [सं०] राजबेर।

तनुबीज^२—वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] बल्मीक रोग। फोसपाँव।

तनुशिरा^१—संज्ञा पुं० [सं० तनुशिरस] एक वैदिक छंद।

तनुशिरा^२—वि० छोटे मिरचाला [को०]।

तनुसर—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र। बेटा। लड़का। २. शरीर। ३. प्रजापति। ४. यो। शाय। ५. अंग। अवयव [को०]।

तनुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. 'तनुज'।

तनूजा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. 'तनुजा'।

तनुजानि—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा [को०]।

तनूजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० तनूजन्म] पुत्र [को०]।

तनूतल—संज्ञा पुं० [सं०] लंबाई की एक माप जो एक हाथ के बराबर थी [को०]।

तनूताप—संज्ञा पुं० [हि०] १. 'तनुताप' [को०]।

तनूनप—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। यो।

तनूनपात् तनूनपाद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। अग्नि। २. चीते का वृक्ष। चीता। चीतावर। चित्रक। ३. प्रजापति के पोते का नाम। ४. धी। धूल। ५. मयखन।

तनूनप्ता—संज्ञा पुं० [सं० तनूनपत्] वायु [को०]।

तनूपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जिससे खाया हुआ अन्न पचता है। जठराग्नि।

तनूपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शरीर को रक्षा करता है। अंगरक्षक।

तनूपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सोमयाग।

तनूर—संज्ञा पुं० [फा०] खमीरी रोटी पकाने की गहरी डहरनुमा भट्टी। संधूर।

तनूरुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोम। लोम। रोम। २. गलियों का पर। पंख। ३. पुत्र। लड़का। बेटा।

तनी—अव्य० [हि० तने] की धोर। की तरफ।

तनेनना—क्रि० सं० [हि०] १. 'तानना'। उ०—तू इत बैठी मोह तनेनत नहि सोहात मोहि यह कखो कलि।—मा० प्र० भा० १, पु० ४८३।

तनेना—वि० [हि० तनना + एना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तनेनी] १. लिखा हुआ। टेढ़ा। तिरछा। उ०—बात के वृक्षत ही मतिराम कहा करती सब भौह तनेनी।—मतिराम (शब्द०)। २. कुद्र। जो नाराज हो। उ०—घाली ही गई ही धाजु भूमि बरसाने कहे तापे तू परे है पचाकर तनेनी क्यों।—पद्माकर (शब्द०)।

तनै^(१)—संज्ञा पुं० [हि०] ३. 'तनय'।

तनै^(२)—वि० [हि० तन (= धोर, तरफ)] तई। लिये। उ०—दोउ जंघ रंभ कंचन दिपत, थरी कमल हाटक तनी।—ह० रासो, पु० २५।

तनेना^(३)—संज्ञा पुं० [हि०] [वि० स्त्री० तनेनी] ३. 'तनेना'। तना हुआ। लिखा हुआ।

तनेया^(४)—संज्ञा स्त्री० [सं० तनया] पुत्री। बेटी। कन्या। लड़की।

तनेया^(५)—वि० [हि० तानना + ऐया (प्रत्य०)] ताननेवाला।

तनेला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसके फूल खुशबूदार और सफेद होते हैं।

तनों—वि० [हि० तन (= तरफ)] तई। के लिये। बास्ते। उ०—नहि तनो मेख को प्रण करिव, तरन धरम छत्रिय तनों।—ह० रासो, पु० ५७।

तनोआ^(६)—संज्ञा पुं० [हि० तानना] १. वह वस्त्र जिसे तानकर छाया की जाती है। २. चंदोआ।

तनोजा^(७)—संज्ञा पुं० [सं० तनूज] १. रोम। लोम। रोम। उ०—अंग थरहरे क्यों भरे खरे तनोज पसेव।—भू० सत० (शब्द०)। २. लड़का। बेटा।

तनोरुह^(८)—संज्ञा पुं० [हि०] ३. 'तनूरुह'।

तनोवा—संज्ञा पुं० [हि०] ३. 'तनोआ'।

तन्ना—संज्ञा पुं० [हि० तानना] १. बुनाई में ताने का सूत जो लंबाई में ताना जाता है। २. वह जिसपर कोई चीज तानी जाय।

तन्नाना^(९)—क्रि० प्र० [हि० तनना] पकड़ना। पेंठना। पकड़ खिलाना। बिगड़ना। क्रुद्ध होना।

तन्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिठवन। २. काश्मीर की चंद्रतुल्या मदी का नाम।

तन्नी^(१०)—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हि० तानना या तनी] १. तराजू में जोड़ी की रस्सी। वह रस्सी जिसमें तराजू के पल्ले लटकते हैं। जोती। २. एक प्रकार की संकुसी जिससे कोड़े की मूल लुपते हैं। ३. जहाज के मस्तूस की बड़ में बंधा हुआ एक प्रकार का रस्सा जिसकी सहायता से पाल आदि चढ़ाते हैं (सल०)।

तन्वी^२—संज्ञा पुं० [हि० तरनी] किसी व्यापारी जहाज का वह प्रफसर जो यात्राकाल में उसके व्यापार संबंधी कार्यों का प्रबंध करता हो।

तन्वी^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरनी'।

तन्मनस्क—वि० [सं०] तन्मय। तल्लीन [को०]।

तन्मय—वि० [सं०] जो किसी काम में बहुत ही मग्न हो। लवलाह। लीन। लगा हुआ। दत्तचित्त। उ०—कबहूँ कहति कोन हरि को मैं यों तन्मय हूँ जाहीं।—सूर (शब्द०)।

तन्मयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लीनता। एकाग्रता। लीनता। लला-कारता। लगन।

तन्मयासक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवान् में तन्मय हो जाना। भक्ति में अपने आपको भूल जाना और अपने को भगवान् ही समझना।

तन्मात्र—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार पंचभूतों का अविशेष भूल। पंचभूतों का आदि, अमिश्र और सूक्ष्म रूप। ये संख्या में पाँच हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और रस।

विशेष—सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति का जो क्रम दिया है, उसके अनुसार पहले प्रकृति से महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। महत्तत्त्व से अहंकार और अहंकार से सोबह पदार्थों की उत्पत्ति होती है। ये सोलह पदार्थ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, एक मन और पाँच तन्मात्र हैं। इनमें भी पाँच तन्मात्रों से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। अर्थात् शब्द तन्मात्र से आकाश उत्पन्न होता है और आकाश का गुण शब्द है। शब्द और स्पर्श से तन्मात्राओं से वायु उत्पन्न होती है और शब्द तथा स्पर्श दोनों ही उसके गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस तन्मात्र के संयोग से जल उत्पन्न होता है और जिसमें ये चारों गुण होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और रस इन पाँचों तन्मात्रों के संयोग से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है जिसमें ये पाँचों गुण रहते हैं।

तन्मात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मात्र'।

तन्मात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मात्रा'। वेदांत शास्त्र की एक संज्ञा। पाँच विषयों की पाँच तन्मात्राएँ। उ०—इति तन्मात्रिका महता। ये पंच विषय की होता।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ६७।

तन्मूलाक—वि० [सं०] उससे निकला हुआ [को०]।

तन्मय—वि० [हि० तनमा] तानने या खींचने योग्य।

तन्मयुक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। हवा। २. रात्रि। रात। ३. गर्जन। गरजना। ४. प्राचीन काल का एक प्रकार का वाद्य।

तन्मंग—वि० [सं० तन्मङ्ग] सुकुमार या लीन शरीरवाला [को०]।

तन्मंगिनी—वि० स्त्री० [सं०] तन्मंगी। उ०—विवसना लता सी, तन्मंगिनि, निजंन में अणुभर की संगिनि।—गुणाव, पृ० ३७।

तन्मंगी—वि० [सं० तन्मंगी] कृशांगी। दुबली पतली।

तन्वि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काश्मीर की चंद्रकुल्या नदी का एक नाम।

तन्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्वी'।

तन्वी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से भगण, तपण, नगण, सगण, भगण, यगण नगण और यगण (SH-SSI-III-1:5-SH-SII-III-ISS) होते हैं। इसमें ५ वें, १२ वें और २४ वें प्रसर पर यति होती है। २. कोमलांगी। कृशांगी [को०]।

तन्वी^२—वि० दुबले पतले और कोमल अंगोंवाली। जिसके अंग कृश और कोमल हों।

तपःकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपस्वी। २. तपसी मछली।

तपःकृश—वि० [सं०] तप में क्षीण।

तपःपूत—वि० [सं०] तपस्या करके जो शरीर एवं मन से पवित्र हो गया हो [को०]।

तपःप्रभाव—संज्ञा पुं० [सं०] तप द्वारा की हुई शक्ति [को०]।

तपःभूत—वि० [सं०] तपस्या द्वारा आत्मशुद्धि प्राप्त करनेवाला [को०]।

तपःसाध्य—वि० [सं०] जो तप द्वारा सिद्ध हो [को०]।

तपःसुत—संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर [को०]।

तपःस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] तप करने का स्थान। तपोभूमि [को०]।

तपःस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०]।

तप—संज्ञा पुं० [सं० तपस्] १. शरीर को कष्ट देने वाले वे व्रत और नियम आदि जो चित्त को शुद्ध और विषयों से निवृत्त करने के लिये किए जायें। तपस्या।

क्रि० प्र०—करना।—साधना।

विशेष—प्राचीन काल में हिंदुओं, बौद्धों, यहूदियों और ईसाइयों आदि में बहुत से ऐसे लोग हुआ करते थे जो अपने इंद्रियों को वश में रखने तथा दुष्कर्मों से बचने के लिये अपने आत्मिक विश्वास के अनुसार बस्ती छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में जा रहते थे। वहाँ वे अपने रहने के लिये घास फूस की छोटी मोटी कुटी बना लेते थे और कंद मूल आदि खाकर और तरह तरह के कठिन व्रत आदि करते रहते थे। कभी वे लोग मोन रहते, कभी गरमी सरसी महते और उपवास करते थे। उनके इन्हीं सब आचरणों को तप कहते हैं। पुराणों आदि में इस प्रकार के तपों और तपस्वियों आदि की अनेक कथाएँ हैं। कभी किसी ब्रह्मचरि की सिद्धि या किसी देवता से वर की प्राप्ति आदि के लिये भी तप किया जाता था। जैसे, गंगा को लाने के लिये अमोरव का तप, शिव जी से विवाह करने के लिये पार्वती का तप। पातंजल दर्शन में इसी तप को क्रियायोग कहा है। पीठा के अनुसार तप तीन प्रकार का होता है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। देवताओं का पूजन, बड़ों का आदर सत्कार, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि शारीरिक तप के अंतर्गत हैं; सत्य और मित्र बोलना, वेदशास्त्र का पढ़ना आदि वाचिक तप हैं और मोनावलंबन, आत्मनिग्रह आदि की गणना मानसिक तप में है।

२. शरीर या इंद्रिय को वश में रखने का धर्म। ३. नियम। ४. मास का महीना। ५. ज्योतिष में लग्न से नवी स्थान।

१. अग्नि । ७. एक कल्प का नाम । ८. एक लोक का नाम ।
वि० १० 'तपोलोक' ।

तप³—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप । गरमी । २. ग्रीष्म ऋतु । ३. बुझार । उबर ।

तपकना^५—क्रि० प्र० [हि० टपकना या तपकना] १. घड़कना उछलना । उ०—रतिया घंघेरी भीरन तिया भरति मुल रतिया कड़ति सठे छतिया तपकि तपकि ।—देव (शब्द०)
२. दे० 'टपकना' ।

तपचाक—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का तुर्की घोड़ा ।

तपच्छद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तपनच्छद्' ।

तपड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. दूह । छोटा टीखा । २. एक प्रकार का फल जो पकने पर पीलापन लिए लाल रंग का हो जाता है । यह जाड़े के अंत में बाजारों में मिलता है ।

तपती—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तपन' ।

तपनि—वि० [देश०] बूढ़ी । वृद्ध । उ०—भोग रहे भरपूर प्रायु यह बीति गई सब । तप्यो नाहि तप मृदु अवस्था तपति भई अब ।—ब्रज० प्र०, पृ० १०६ ।

तपती—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सूर्य की कन्या का नाम ।

विशेष—यह छाया के गर्म ने उत्पन्न हुई थी । सूर्य ने कुरुवंशी संवरण की सेवा भाँव से प्रसन्न होकर तपती का विवाह उन्हीं के साथ कर दिया था ।

तपतोदक^५—संज्ञा पुं० [सं० तप + उदक] गरम पानी । उ०—गह सीनों रसजर के नेती । पीस लिए तपतोदक सेती ।—ईशा०, पृ० १५२ ।

तपन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपने की क्रिया या भाव । ताप । जलन । प्रथि । दाह । २. सूर्य । आदित्य । रवि । ३. सूर्य-कांत मणि । सूरजमुखी । ४. ग्रीष्म । गरमी । ५. एक प्रकार की अग्नि । ६. पुराणानुसार एक नरक जिसमें जाते ही शरीर जलता है । ७. भूष । ८. भिलावे का पेड़ । ९. मदार । भाक । १०. भरनी का पेड़ । ११. वह क्रिया या हाव भाव आदि जो नायक के वियोग में नायिका करे या दिखलावे । इसकी गणना अलंकार में की जाती है ।

यो०—तपनयोवन—सूर्य का यौवन । सूर्य की प्रखरता । उ०—प्रखर से प्रखरतर हुआ तपनयोवन सहसा ।—अपरा, पृ० ६१ ।

तपन²—संज्ञा स्त्री० [हि० तपना] तपने की क्रिया या भाव । ताप । जलन । गरमी ।

मुहा०—तपन का महीना—वह महीना जिसमें गरमी खूब पड़ती हो । गरमी ।

तपनकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण । रश्मि ।

तपनच्छद्—संज्ञा पुं० [सं०] मदार का पेड़ ।

तपनतनय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र—यम, कर्ण, शनि, सुग्रीव आदि ।

तपनतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शमी वृक्ष । २. शमुना नदी ।

तपनमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि ।

तपनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण । रश्मि ।

तपना³—क्रि० प्र० [सं० तपन] १. बहुत अधिक गर्मी, प्रायः धूप आदि के कारण खूब गरम होना । तप्त होना । उ०—निज प्रथ समुक्ति न कुछ कहि जाई । तपह प्रवी दव उ अधिकारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—रसोई तपना=दे० 'रसोई' के मुहाविरे ।

२. संतप्त होना । कष्ट सहना । मुसीबत भेचना । जैसे,—दो घंटों से यहाँ आपके आसरे तप रहे हैं । उ०—सीप से तप कहें तपह समुद मँझ नीर ।—जायसी (शब्द०) । ३. १. या ताप धारण करना । गरमी या ताप फैलाना । उ०—जइस भानु जय ऊपर तापा ।—जायसी (शब्द०) । २. प्रबलता, प्रभुत्व या प्रताप दिखलाना । प्रताप । जैसे,—आजकल यहाँ के कोतवाल खूब तप रहे हैं । (क) सेरसाहि दिल्ली सुलतापू । चारिउ खंड तपह भापू ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कर्मकाल, गुन, सुभाय सबके सीस तपत ।—तुलसी (शब्द०) ।

तपना²—क्रि० प्र० [सं० तप] तपस्या करना । तप करना ।

तपनाराधना—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्या (की) ।

तपनि^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तपन' ।

तपनी¹—संज्ञा स्त्री० [हि० तपना] १. वह स्थान जहाँ बैठकर लोग ध्यान आते हैं । कोड़ा । झलान ।

क्रि० प्र०—तापना ।

२. तपस्या । तप । ३. तपन (की) ।

तपनी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोदावरी नदी । २. पाठा लता (की) ।

तपनीय¹—संज्ञा पुं० [सं०] सोना ।

तपनीय²—वि० तपने या तापने योग्य (की) ।

तपनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तपनीय' ।

तपनेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा ।

तपनोपल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि ।

तपभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस् + हि० भूमि] दे० 'तपोभूमि' ।

तपराशि—संज्ञा पुं० [सं० तपोराशि] दे० 'तपोराशि' ।

तपरासी^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तपोराशि' । उ०—ब्रह्म के उपासी तपरासी बनबासी वर विपुल मुनीश्वर के आश्रम सिंहायो में ।—राम० चर्म०, पृ० २६० ।

तपलोक—संज्ञा पुं० [सं० तपोलोक, हि०] दे० 'तपोलोक' ।

तपवाना—क्रि० प्र० [हि० तपाना का प्रे० रूप] १. गरम करवाना । तपाने का काम दूसरे से कराना । २. किसी से व्यर्थ व्यय कराना । अनावश्यक व्यय कराना ।

तपवृद्ध^५—वि० [सं० तपोवृद्ध, हि०] दे० 'तपोवृद्ध' ।

तपशील—वि० [सं० तपःशील] तपस्या करनेवाला (की) ।

तपश्चरण—संज्ञा पुं० [सं०] तप । तपस्या ।

तपश्चर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्या । तपश्चरण ।

तपस^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. सूर्य । ३. पक्षी ।

तपस^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्] तप । तपस्या । उ०—न्याय, तपस, ऐश्वर्य में पगे, ये प्राणी चमकीले लगते । इस निदाघ मरु में सुखे थे, खेतों के तह जैसे बगते ।—कामायनी, पु० २७० ।

तपस^३—संज्ञा पुं० तपस्वी ।

तपसनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्विनी' । उ०—काम कुमती उषनी दीय तपसनी साप । बीसल दे बुधि चल विचल प्रगटि पुठव की पाप ।—पु० रा०, १।४६५ ।

तपसरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्विनी' । उ०—भय दिवाह पाहुन दुति तपसरनी की कोप । जब बेली बिहू बाग त्रिप । ते जिन भए प्रलोप ।—पु० रा०, १।५०७ ।

तपसा—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या] १. तपस्या । तप । २. ज्ञापनी नदी का दूसरा नाम जो बैतूल के पहाड़ से निकालकर खंभात की खाड़ी में गिरती है ।

तपसालि(१)—संज्ञा पुं० [हिं० तप + साली] दे० 'तपसाली' ।

तपसाली—संज्ञा पुं० [सं० तपःशालिन्] वह जिसने बहुत तपस्या की हो । तपस्वी । उ०—घाए मुनिवर निकर तब कोशिकादि तपसालि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तपसी—संज्ञा पुं० [सं० तपस्वी] तपस्या करनेवाला । तपस्वी । उ०—तपसी तुमको तप करि पावें । सुनि भागवत गृही गुन गावें ।—सूर (शब्द०) ।

तपसी मछली—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या मस्य] एक बालिशत लंबी एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह बंगाल की खाड़ी में होती है । बैसाल या जेठ के पड़ने में भंरे देने के लिये यह नदियों में चली जाती है ।

तपसोमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार बारहवें मन्वंतर के चौथे मावर्णि के साधियों में से एक ।

तपस्तप्त—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

तपस्तलि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

तपस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंठ पुष्प । २. तपस्या । तप । ३. हरिवंश के अनुसार तामस मनु के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम । ४. फाल्गुन का महीना । ५. भजुन ।

विशेष—भजुन का एक नाम फाल्गुन भी था, इसीलिये तपस्य भी भजुन का एक नाम हो गया ।

तपस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तप । व्रतचर्या । २. फाल्गुन मास । ३. दे० 'तपसी मछली' ।

तपस्वन्—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी ।

तपस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्वी होने की व्यवस्था या भाव ।

तपस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तपस्या करनेवाली स्त्री । २. तपस्वी की स्त्री । ३. पतिव्रता या सती स्त्री । ४. जटा-मासी । ५. वह स्त्री जो अपने पति के मरने पर केवल अपनी संतान का पालन करने के लिये सती न हो और कष्टपूर्वक

अपना जीवन बितावे । ६. दीन और दुखिया स्त्री । ७. बड़ी गोरखमुंडी । ८. कुटकी । कटुरोहिणी ।

तपस्विपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दमनक वृक्ष । दौरे का पेड़ ।

तपस्वी^१—संज्ञा पुं० [सं० तपस्विन्] [स्त्री० तपस्विनी] १. वह जो तप करता हो । तपस्या करनेवाला । २. दीन । ३. दया करवे योग्य । ४. चीकुघार । ५. तपसी मछली । ६. तपसोमूर्ति का एक नाम ।

तपस्स(१)—संज्ञा पुं० [सं० तपस] दे० 'तपस्वी' । उ०—धर्मकी धरा धर्म धर्म धरवकी । कठं पिठु कमठु कठु करवकी । द्विगी प्रदुर्गं सो दिगपाल दसं । तरवके चके मुनि जंनं तपस्सं ।—पु० रा०, ६।१३१ ।

तपा^१—संज्ञा पुं० [हिं० तप] तपस्वी । उ०—भठ भंडप बहूपास सँवारे । तपा जपा सब धामन मारे ।—जायसी (शब्द०) ।

तपा^२—वि० तप में मग्न । जो तपस्या में लीन हो । उ०—फेरे भेल रहे था तपा । धूरि लपेटा मात्तिक धूपा ।—जायसी (शब्द०) ।

तपाक—संज्ञा पुं० [का०] १. धावेश । जोश । जैसे,—घाते ही यह बड़े तपाक से बोला ।

मुहा०—तपाक बदलना = नाराज होना । बिगड़ जाना । तेवर बदलना ।

२. वेग । तेजी ।

तपात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म का अंत या वर्षाकाल । बरमात ।

तपानल—संज्ञा पुं० [सं०] तप से उत्पन्न तेज । वह तेज जो तप करने के कारण उत्पन्न हो ।

तपाना—क्रि० सं० [हिं० तपना] १. बहुत अधिक गर्मी, धाव, धूप आदि की सहायता से गरम करना । तप्त करना । २. संतप्त करना । दुख देना । क्लेश देना । ३. तप करके शरीर को कष्ट देना । तप करने में शरीर को प्रवृत्त करना ।

तपायमान—वि० [सं० तप] तप्त । बूझी । उ०—एक काल में भृगु की स्त्री जात रही थी, तिसके विषाग कर वह अपि तपायमान हुआ ।—योग०, पु० ७ ।

तपारी—संज्ञा पुं० [हिं०] तपस्वी (की०) ।

तपावत—संज्ञा पुं० [हिं० तप + वत (प्रत्य०)] तपस्वी । तपसी । वह जो तपस्या करता हो । उ०—तपावत छाला लिखि दीन्हा । वेग बनाव बहूँ सिमि कीन्हा ।—जायसी (शब्द०) ।

तपाव—संज्ञा पुं० [हिं० तपना + आव (प्रत्य०)] तपने की क्रिया या भाव । गरमाहट । ताप ।

तपावस(१)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तपस्या' । उ०—करै तपावस अवली धापी । उन्मन फालु कउ भारे चापी ।—प्राण०, पु० २२७ ।

तपित(१)—वि० [सं०] तपा हुआ । गरम । तप्त ।

तपिय—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तपी' । उ०—सुतत बखान कलिजर ईसु । तपिय चरन पर डारेउ सीसु ।—इंद्रा०, पु० १६ ।

तपिया—संज्ञा पुं० [देशी] एक प्रकार का वृक्ष जो मध्यभारत, बंगाल तथा आसाम में होता है ।

विशेष—इसकी छान तथा पत्तियाँ घोष के काम में आती हैं। इसे बिरमी भी कहते हैं।

तपिश—संज्ञा स्त्री० [का०] गरमी। तपन। घाँस। ताप।

तपो—संज्ञा पुं० [हि० तप + ई (प्रत्य०)] १. तप करनेवाला। तपस्वी। तापस। ऋषि। उ०—धनवंत कुशीन मधीन अपी। द्विष चीन्ह अनेउ उषार तपो।—मानस, ७।१०। २. सूर्य (हि०)।

तपोसर(पु)—वि० [सं० तपोसर] तपस्या करनेवाला। उ०—न सोहामनि महापवीत। तपे तपोसर डाले चीत।—कबीर ग्रं०, पृ० २८४।

तपो^१—संज्ञा पुं० [सं० तपुस्] १. अग्नि। घाग। २. सूर्य। रवि ३. बज्र।

तपो^२—वि० १. तप्त। उष्ण। गरम। २. तापने या गरम करनेवाला।

तपुराम—वि० [सं०] जिसका घबरा या तपा या तपाया हुआ हो [को०]।

तपुरामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरखी या बाबा [को०]।

तपेक्षिक—संज्ञा पुं० [का० तप + क्ष० बिच्] राजपदमा। लयी रोग।

तपेस्सा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'तपस्या'।

तपोज—वि० [सं०] १. जो तपस्या से उत्पन्न हुआ हो। २. जो अग्नि से उत्पन्न हुआ हो।

तपोजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल। पानी।

विशेष—प्राचीन ऋषियों का विश्वास था कि यह घास की अग्नि की सहायता से ही मेघ बनता है, इसीलिये जल का एक नाम 'तपोज' पड़ा।

तपोढी—संज्ञा स्त्री० [देश०] काठ का एक प्रकार का बरतन।—(कश०)।

तपोदान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पुराणतीय जिसका बसंत महा-भारत में आया है।

तपोद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] बारहवें मन्वन्तर के एक ऋषि [को०]।

तपोधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तपस्या के प्रतिष्ठित और कुछ भी न करता हो। तपस्वी। उ०—सिद्ध तपोधन योगि जन सुर किन्नर मुनि त्रुंद।—मानस, १।१०५। २. बीने का पेड़।

तपोधना—संज्ञा स्त्री० [सं०] बोरखमुंजी।

तपोधनी—वि० [सं० तपोधनिन्] १० 'तपोधन'। उ०—तपोधनी में जात कहायो। न तहि ज्ञान्यो सम्भुव भायो।—चकुतला, पृ० १२।

तपोधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोधाम—संज्ञा पुं० [सं० तपोधामन्] १. तप करने का स्थान। २. एक प्राचीन तीर्थ [को०]।

तपोधृति—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मन्वन्तर के चौथे सार्वाणि के सप्तर्षियों में से एक ऋषि।

तपोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] तपानिष्ठ। तपस्वी।

तपानिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तपोवन] १० 'तपोवन'।

तपोवज्र—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्या से प्राप्त बल, तेज या शक्ति [को०]।

तपोभंग—संज्ञा पुं० [सं० तपोभङ्ग] विघ्नादि के कारण तप का भंग होना [को०]।

तपोभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तप करने का स्थान। तपोवन।

तपोमय—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

तपोमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर। २. तपस्वी। ३. पुराणानुसार बारहवें मन्वन्तर के चौथे सार्वाणि के समय के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।

तपोराज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

तपोराशि—संज्ञा पुं० [सं०] तहत बड़ा तपस्वी।

तपोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बौद्ध लोकों में से ऊपर के सात लोकों में से छठा लोक जो जनलोक और सत्य लोक के बीच में है।

विशेष—परमपुराण में लिखा है कि यह लोक वैभोमय है; और जो लोक धर्म प्रकार की कठिन तपस्याएँ करके भी कल्प भगवान् को संतुष्ट करते हैं; वे इस लोक में भेजे जाते हैं।

तपोवट—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ावट ईश।

तपोवन—संज्ञा पुं० [सं०] वह एकान्त स्थान या वन जहाँ तप बहुत अच्छी तरह हो सकता हो। तपस्वियों के रहने या तपस्या करने के योग्य वन।

तपोवरण—वि० [केशी०] तप के व्युत्पन्न करनेवाली। उ०—एक तेरी तपोवरण।—अर्चना, पृ० १।

तपोवज्र—संज्ञा पुं० [सं०] तप का प्रभाव या शक्ति।

तपोवृद्ध^१—वि० [सं०] जो तपस्या द्वारा बूढ़ हो।

तपोवृद्ध^२—संज्ञा पुं० बहुत बड़ा तपस्वी [को०]।

तपोव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपस्या संबंधी व्रत। २. वह जिसने तपस्या का व्रत बारण कर दिया हो [को०]।

तपोशहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तामस अनु के पुत्र तपस्य का एक नाम। २. तपसोमूर्ति का एक नाम।

तपोनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तापना] १. ठणों की एक रसम जो मुष्ठा-फिरों के गिरोह को लुट मार डूकने और उनका मांस खे लेने पर होती है। इसमें सब ठण मिलकर देखी की पूजा करते हैं और गुड़ चढ़ाकर उसी का प्रभाव व्यापक में बाँटते हैं।

मुष्ठा०—तपोनी का गुड़—(१) तपोनी की पूजा के प्रभाव का गुड़ जो किसी नए आदमी को पहले पहल अपनी मंडली में मिचाने के समय ठण खोप खिलाते हैं। (२) किसी नए आदमी को अपनी मंडली में मिलाने के समय किया जानेवाला काम या दिया जानेवाला पदार्थ।

२. दे० 'तपनी'।

तप्त—वि० [सं०] १. तपाया या तपा हुआ। जलता हुआ। तापित। गरम। उष्ण। २. दुःखित। स्तेषित। पीड़ित।

यौ०—तप्त शरीर=जलती हुई देह। उ०—कभी यहाँ देखे थे जिनके, श्याम बिरह से तप्त शरीर।—अपरा, पृ० १०२।

तप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाही [को०]।

तप्तकुंड—संज्ञा पुं० [सं० तप्तकुण्ड] वह प्राकृतिक जलधारा जिसका पानी गरम हो। गरम पानी का सोता या कुंड।

विशेष—पहाड़ों तथा मैदानों आदि में कहीं कहीं ऐसे सोते मिलते हैं जिनका पानी गरम होता है। भिन्न भिन्न स्थानों में ऐसे सोतों का पानी साधारण गरम से लेकर खोलता हुआ तक होता है। पानी के गरम होने का मुख्य कारण यह है कि यह पानी या तो बहुत अधिक गहराई से, या भूगर्भ के अंदर की अग्नि से तपी हुई चट्टानों पर से होता हुआ आता है। ऐसे सोतों के जल में बहुधा अनेक प्रकार के खनिज द्रव्य (जैसे, गंधक, लोहा, अनेक प्रकार के क्षार) भी मिले होते हैं जिनके कारण उन जलों में बहुत से रोगों को दूर करने का गुण आ जाता है। भारतवर्ष में तो ऐसे सोते कम हैं, पर यूरोप और अमेरिका में ऐसे सोते बहुत पाए जाते हैं, जिन्हें देखने तथा उनका जल पीने के लिये बहुत दूर दूर से लोग जाते हैं। बहुत से लोग अनेक प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिये महीनों उनके किनारे रहते भी हैं। प्रायः जहाँ जितना अधिक गरम होता है, उसमें गुण भी उतना ही अधिक होता है। ऐसे सोतों के जल में दस्त आने, बल बढ़ाने या रक्तविकार आदि दूर करनेवाले खनिज द्रव्य मिले हुए होते हैं।

तप्तकुम्भ—संज्ञा पुं० [सं० तप्तकुम्भ] पुराणानुसार एक बहुत मयानक नरक जिसके विषय में यह माना जाता है कि वहाँ खोलते हुए तेल के गण्डारे रहते हैं। उन्हीं कण्डारों में दुराचारियों को तप्त के दहन फेंक दिया करते हैं।

तप्तकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो बारह दिनों में समाप्त होता और प्रायश्चित्तस्वरूप किया जाता है।

विशेष—इसमें व्रत करनेवालों को पहले तीन दिन तक प्रतिदिन तीन पल गरम दूध, तब तीन दिन तक नित्य एक पल घी, फिर तीन दिन तक रोज छह पल गरम जल और अंत में तीन दिन तक गरम वायु सेवन करना होता है। गरम वायु से तात्पर्य गरम दूध से निकलनेवाली भाप का है। यह व्रत करने में द्विजों के सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। किसी किसी के मन में यह व्रत केवल चार दिनों में किया जा सकता है। इसमें पहले दिन तीन पल गरम दूध, दूसरे दिन एक पल गरम घी और तीसरे दिन छह पल गरम जल पीना चाहिए और चौथे दिन उपवास करना चाहिए।

तप्तपापाणु—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

तप्तबालुक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्तमाप—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिससे व्यवहार या अपराध आदि के संबंध में किसी मनुष्य के कथन की सत्यता पानी जाती थी।

विशेष—इसमें सोहे या तबिके बरतन में घी या तेल खोलाया जात था और परीक्षार्थी उस खोलते हुए घी या तेल में अपनी उँगली डालता था। यदि उसकी उँगली में छाले आदि न पड़ते तो वह सच्चा समझा जाता था।

४-४५

तप्तमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारका के शंख चक्रादिके छापे जो तपाकर वैष्णव लोग अपनी मुद्रा तथा दूसरे अंगों पर दाग लेते हैं। चक्रमुद्रा।

विशेष—यह धार्मिक चिह्न माना जाता है और वैष्णव लोग इसे मुक्तिदायक मानते हैं।

तप्तरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] गलाई हुई और साफ चाँदी।

तप्तशुर्मा—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम जिसमें अगम्या स्त्री के साथ संभोग करनेवाले पुरुष और अगम्य पुरुषों के साथ संभोग करनेवाली स्त्रियाँ भेजी जाती हैं।

विशेष—इसमें उन पुरुषों और स्त्रियों को जलते हुए लोहे के संभोग आलिंगन करने पड़ते हैं।

तप्तसुराकुंड—संज्ञा पुं० [सं० तप्तसुराकुण्ड] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्ता—संज्ञा पुं० [सं० तप्त] १. तपा। २. मट्टी। ३.—निदान कहें। अहरे और एक भागी तथा जलाकर आवश्यक कृत्य आरंभ हो जाता।—प्रेमघन० भा० २, पृ० १५२।

तप्ता—वि० तप्त करनेवाला।

तप्ताभरण—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध मोने का गहना (को०)।

तप्तायन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तप्तपत्नी' (को०)।

तप्तायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो दीन दुखियों को बहुत सत्कार प्राप्त की जाय।

तप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] तप्त होने की अवस्था या भाव। गरमी। तार (को०)।

तप्पु—संज्ञा पुं० [हि० तप] दे० 'तप' उ०—माधक सिद्धि न पाय जो लक्ष्मि साधि न तप। सोई जानहि बापुरो सीस जो करहि कलप।—जायसी ग्रं० (गुप्त) पृ० १२१।

तप्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

तप्य—वि० [सं०] जो तपने या तपाने योग्य हो।

तफकुर—संज्ञा पुं० [सं० तफकुर] १. चिना। फिक। २. मयाशंका। उ०—मेरी खुशक आरे से दम तफकुर में आधी हो गई।—मारतेंद्र ग्रं०, भा० १, पृ० ५२२।

तफजुल—संज्ञा पुं० [सं० तफजुल] बढ़ाई। बड़प्पन (को०)।

तफतीश—संज्ञा स्त्री० [सं० तफतीश] छानबीन। खोज। पहेलिया। उ०—मैं दीक्षा हुआ पिता जी के पास गया। वह कहीं तफतीश पर जाने को नैयार लड़े थे। मान०, पृ० ३८।

तफरका—संज्ञा पुं० [सं० तफरक] विरोध। वैमनस्य।

क्रि० प्र०—डाकना।—इना।

तफराका—संज्ञा पुं० [हि०] तमचा। उ०—होर मुसलमानी के मुँ पर तफराका मारना गुनाह कबीरा है।—वसिष्ठनी०, पृ० ४०१।

तफरीक—संज्ञा स्त्री० [सं० तफरीक] १. जुदाई। भिन्नता। अलग-हदगी। २. बाकी निकालना। घटाना (गणित)।

क्रि० प्र०—निकाशना।

३. फरक। अंतर ४४. बंटवारा। बाँट। बँटाई (कापून)।

तफरीह—संज्ञा स्त्री० [ध० तफरीह] १. खुशी। प्रसन्नता। फरह।
२. दिलबहाला। दिलगो। हँसी। ठट्ठा। ३. हवाबोरी।
सैर। ताजापन। ताजगी।

तफरीहन्—कर्म० [ध० तफरीहन्] १. मनबहुलाव के लिये। २. हँसी
खेल के लिये (को०)।

तफर्की—संज्ञा पुं० [ध० अककह् या तफिकह्] १. फूट। परस्पर
विरोध। २. शत्रुता। दुश्मनी। ३. पुथकता। झगडा।
उ०—अगर हल बातों में जिस कदर तफर्की पड़ता जायगा,
मुननेवाले के दिल का अमर बदलता चला जायगा। प्र०,
पृ० ३१।

यौ०—तफर्की अंगसेज, तफर्की अंगेज, तफर्की परवान, तफर्की
पर्वर = फूट डालनेवाला। तफर्की अंगेजी, तफर्की अंदाजी,
तफर्की परवाजी, तफर्की पर्वरी = फूट या विरोध डालना।

तफर्ज—संज्ञा स्त्री० [ध० तफर्ज] १. दरिद्रता और हीनता के
समृद्धि और उन्नति की ओर जाना। ३. सैर। आनंद बिहार।
क्रीड़ा। कौतुक। तमाशा। उ०—तफर्ज सते शाहजादा
निकल। चल्या कामरानी का पर बिख शगल।—दक्कनी०,
पृ० २७०।

यौ०—तफर्ज ग्राह = सैर तमाशे का स्थान। क्रीडास्थल
विनोदस्थल।

तफसील—संज्ञा स्त्री० [ध० तफसील] १. विस्तृत वर्णन। २.
टीका। तशरीह। ३. सूची। फेहरिस्त। फर्द। ४. कैफियत।
व्योरा। बिवरण।

तफसीर—संज्ञा स्त्री० [ध० तफसीर] कुरान शरीफ की टीका।
उ०—मो घालिम तफसीर भूरत नजम में यह लिखता है।
—कबीर मं०, पृ० ७७।

तफाउत—संज्ञा पुं० [ध० तफाउत] दे० 'तफावत'। उ०—पिबर पर
देखकर बबशी मुझे अच, अमानत में तफाउत में करो सब।
—दक्कनी०, पृ० ३३६।

तफावज—संज्ञा पुं० [ध० तफावज] फर्क। तफावत। उ०—
उ०—मुकवि सूँ मस दालिए, नहीं तफावज रेहू।—बाँकी०
प्र०, भा० ३, पृ० ८७।

तफावत—संज्ञा पुं० [ध० तफावत] १. अंतर। फर्क। २.
दूरी। फासिगा।

तफसीर—संज्ञा पुं० [ध० तफसीर] १. व्याख्या। तशरीह। २.
किमी धर्मग्रंथ की व्याख्या या भाष्य। उ०—है तारीख व
तफसीर बहुतर, के अजह्ना नामी एक या खर।—दक्कनी०,
पृ० २२०।

तब—अव्य० [म० तदा] १. उस समय। उस वक्त।

विशेष—इस क्रि० वि० का प्रयोग प्रायः अब के साथ होता है।
जैसे,—अब तुम आओगे, तब मैं चलाँगा।

२. इस कारण। इस वजह से। जैसे,—मेरा उधर काम था तब
मैं गया, नहीं तो क्यों जाता ?

तब^२—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. ताप। तपन। गर्मी। २. ज्वर।
बुखार (को०)।

तबई^३—क्रि० वि० [सं० तबैव] तभी। उ०—जबई आनि पर
तहाँ, तबई ता सिर देहि।—नंद० प्र०, पृ० १३५।

तबक—संज्ञा पुं० [ध० तबक] १. आकाश के वे कल्पित खंड जो
पृथ्वी के ऊपर और नीचे माने जाते हैं। लोक। तल। २.
परत। तह। ३. चाँदी, सोने आदि धातुओं के पत्तों का
पीटकर कागज की तरह बनाया हुआ पतला वरक जो बटुआ
मिठाइयों आदि पर चपकाया और दवाओं में डाला जाता
है। ४. चौड़ी और छिछली थाली। ५. वह पूजा या उपचार
जो मुसलमान स्त्रियाँ परियों की बाधा से बचने के लिये करती
हैं। परियों की नमाज।

क्रि० प्र०—छोड़ना।

६. चोड़ों का एक रोग जिसमें उनके शरीर पर सूजन हो जाती
है। ७. रक्तविकार के कारण शरीर पर पड़ा हुआ बाघ।
चकता।

तबकगर—संज्ञा पुं० [ध० तबक + फा० गर] वह जो सोने चाँदी
आदि के तबक का पत्तर बनाता हो। तबकिया।

तबकड़ी—संज्ञा स्त्री० [ध० तबक + डी (प्रत्य०)] छोटी
रिकाबी।

तबकचा—संज्ञा पुं० [ध० तबक + फा० चह] छोटी रिकाबी (को०)।

तबकफाड़—संज्ञा पुं० [ध० तबक + हि० फाड़] कृपितो का एक पेंच।

विशेष—जब शत्रु पेट में घुस जाता है, तब पहलवान अपनी
दाहिनी टाँग से उसके बाएँ पाँव को भीतर से बाँधते हैं और
बाँवों द्वारा से उसकी दाहिनी टाँग को बाँध की जगह
पकड़कर उसके दोनों पाँव फाड़ते हैं और मोटा पाकर उसे
बित कर देते हैं।

तबका—संज्ञा पुं० [ध० तबकह] १. खंड। विभाग। २. तह।
परत। ३. लोक। तल। ४. आवायियों का गरोह। ५. पद।
कतबा।

तबकिया^१—संज्ञा पुं० [ध० तबक + ह्या (प्रत्य०)] वह जो सोने
चाँदी आदि के तबक या पत्तर बनाता हो। तबकगर।

तबकिया^२—वि० तबक संबंधी। जिसमें तबक या परत हों। जैसे
तबकिया हरताल।

तबकिया हरताल—संज्ञा पुं० [हि० तबकिया + हरताल] एक प्रकार
की हरताल जिसके टुकड़ों में तबक या परत होते हैं। इसके
टुकड़े में से अलग अलग पगड़ियाँ सी उतरती हैं।

तबदील—वि० [ध० तब्दील] जो बदला गया हो। परिवर्तित।

यौ०—तबदील आबोहवा = जलवायु का बदलना। एक स्थान
से दूसरे स्थान पर जाना। तबदीले सूरत = (१) रूप या शक्ल
बदल जाना। (२) हुनिया बदलना। बहुरूपिया बनना।

तबदीली—संज्ञा स्त्री० [ध० तब्दील + फा० ई (प्रत्य०)] १.
बदले जाने या परिवर्तित होने की क्रिया। बदली। परि-
वर्तन। २. स्थानांतरण (को०)। ३. उपल पुषल। क्रांति।

इनकिलाब (को०) । ५. किसी चीज के बदले में कोई दूसरी चीज लेना (को०) ।

तबलदुल—संज्ञा पुं० [ध०] १. बदल जाना । बदलना । २. क्रांति । इनकिलाब ।

तबर^१—संज्ञा पुं० [फा०] १. कुल्हाड़ी । टांगी । २. कुल्हाड़ी की तरह का लड़ाई का एक हथियार ।

तबर^२—संज्ञा पुं० [देश०] मस्तूल के सबसे ऊपरी भाग में लगाई जानेवाली पाल जिसका व्यवहार बहुत हलकी हवा चलने के समय होता है ।

तबरदार—संज्ञा पुं० [फा०] कुल्हाड़ी या तबर चलानेवाला ।

तबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] तबर, कुल्हाड़ी या फरसा चलाने का काम ।

तबरक—संज्ञा पुं० [ध०] प्रसाद । मासोर्वाद रूप में प्राप्त हुई वस्तु (को०) ।

तबरी—[ध०] १. घृणा प्रकट करना । नफरत । २. वे दुर्वचन जो शिया लोग मुस्लिमों के पैगंबरों को कहते हैं । ३. मजहब विरोधियों के लिये गाया जानेवाला गीत (को०) ।

तबल—संज्ञा पुं० [फा०] १. बड़ा ढोल । २. नगाड़ा । डंका ।

तबलची—संज्ञा पुं० [ध० तबलह् + ची (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो । तबलिया ।

तबला—संज्ञा पुं० [ध० तबलह्] १. ताल देने का एक प्रसिद्ध बाजा जिसमें काठ के लंबोतरे और सोखले कूँड़ पर गोल चमड़ा मड़ा रहता है ।

विशेष—यह चमड़ा 'पूरी' कहलाता है और इसपर लोहपत्र, भवि, लोई, सरेस, मंगरेले और तेल को मिलाकर बनाई हुई स्याही की गोल टिकिया अच्छी तरह चमाकर बिकने पत्थर से घोंटी हुई होती है । इसी स्याही पर आघात पड़ने से तबले में से आवाज निकलती है । कूँड़ पर रखकर यह पूरी चारों ओर चमड़े के कीले से, जिसे 'बड़ी' कहते हैं, कसकर बाँध दी जाती है । इस बड़ी और कूँड़ के बीच में काठ की गुल्लियाँ भी रख दी जाती हैं जिसकी सहायता से तबले का स्वर आवश्यकतानुसार चढ़ाने या उतारने में । बातावरण अधिक उँडा हो जाने के कारण भी तबला आपसे आप उतर जाता और अधिक गरमी के कारण आपसे आप चढ़ जाता है । यह बाजा अकेला नहीं बजाया जाता, इसी तरह के और दूसरे बाजे के साथ बजाया जाता है जिसे 'बायाँ', 'ठेका' या 'डुंगी' कहते हैं । साधारणतः बोलचाल में लोग तबले और बाएँ को एक साथ मिलाकर भी केवल तबला ही कहते हैं । तबला दाहिने हाथ से और बायाँ बाएँ हाथ से बजाया जाता है ।

क्रि० प्र०—बजना ।—बजाना ।

मुहा०—तबला उतरना = तबले की बड़ी का ढीला पड़ जाना जिसके कारण तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे । तबला उतारना = तबले की बड़ी को ढीला करके या और किसी प्रकार पूरी पर का तनाव कम कर देना जिससे तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे । तबला चमकना =

दे० 'तबला ठनकना' । तबला चढ़ना = तबले की बड़ी का कस जाना जिससे पूरी पर तनाव अधिक पड़ता है और स्वर ऊँचा निकलने लगता है । तबला चढ़ाना = तबले की बड़ी को कसकर पूरी पर का तनाव अधिक करना जिसमें तबले में से स्वर निकलने लगे । तबला ठनकना = (१) तबला बजना । (२) नाच रंग होना । तबला मिलाना = तबले की गुल्लियों को ऊपर नीचे हटा बढ़ाकर ऐसी स्थिति में लाना जिसमें पूरी पर चारों ओर से समान तनाव पड़े और तबले में से चारों ओर से कोई एक ही विशिष्ट स्वर निकले ।

④२. एक तरह का बर्तन । तबि या पीतल का एक पात्र । उ०—पुनि चरवा चरई तब्ती तबला भारी लोटा भारवाह ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७४ ।

तबलिया—संज्ञा पुं० [हि० तबला + इया (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो । तबलची ।

तबलीग—संज्ञा पुं० [ध० तबलीग] प्रचार । प्रसार । उ०—क्या यही वह इस्लाम है जिसकी तबलीग का तूने बीड़ा उठाया है ?—मान०, भा० १, पृ० १५४ ।

तबल्ल—संज्ञा पुं० [ध० तबलह्] दे० 'तबला' । उ०—किते बीर तोरा तबल्ल बनाए ।—ह० रासो, पृ० १६९ ।

तबस्ता④—संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल का नाम । उ०—बन उनये हरियर होय फूला । कैक भिरंग तबस्ता फूना ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७७ ।

तबस्तुम—संज्ञा पुं० [ध०] मुस्कुराहट (को०) ।

तबह—वि० [फा० तबाह का लघु रूप] दे० 'तबाह' (को०) ।

यौ०—तबहकार = तबाहकार । तबहहास = तबाह हास ।

तबा—संज्ञा पुं० [ध० तिबाय] १. प्रकृति । २. प्रतिभा । उ०—मिसाल हूर के तन यो धमून है जान, तबा बाव की दीड़कर कर पछान ।—बख्शनी०, पृ० २४३ ।

तबाघत—संज्ञा स्त्री० [ध०] मुद्रण । छपाई । उ०—प्रेम बत्तीसी की तबाघत अभी गुल नहीं हुई ।—प्रेम० गो०, पृ० ५२ ।

तबाक—संज्ञा पुं० [ध० तबाक] बड़ा पाल । परान ।

यौ०—तबाकी कुत्ता = केवल खाने पीने का साथी । वह जो केवल अच्छी दशा में साथ दे और आपत्ति के समय भलग हो जाय ।

तबाख—संज्ञा पुं० [ध० तबाक, हि०] दे० 'तबाक' ।

तबाखी—संज्ञा पुं० [हि० तबाख] वह जो परात में रखकर सोदा बैचता है ।

यौ०—तबाखी कुत्ता = स्वार्थी मित्र ।

तबादला—संज्ञा पुं० [ध० तबादल या तबादलह्] १. बदली स्थानीतरण । २. परिवर्तन । उ०—गामने को सब समझा हो या भूठ, मुन्शी का बहुरहाल तबादला हो गया । बरखास्त होते होते बचे, यह उन्होंने अपना सोमाग्य समझा ।—काले०, पृ० ९७ ।

तबावत—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिकित्सा । वैद्यक ।

तबाराशीर—संज्ञा पुं० [सं० तबशीर] बंसलोचन ।

तबाह—वि० [फा०] १. जो नष्टभ्रष्ट या बिल्कुल खराब हो गया हो। भ्रष्ट। बरबाद। खोपट। २. जनशून्य। निजंन (को०)। ३. निकृष्ट। खराब (को०)। ४. दुर्दशाग्रस्त। बदहाल (को०)।
यौ०—तबाहकार = (१) तबाही मचानेवाला। विनाशकारी। प्रत्याचारी। (२) कदाचारी। बदचलन। तबाह रोजगार = कालचक्रग्रस्त। दुर्दशापीडित। तबाह हाल = (१) दुर्दशाग्रस्त (२) निधन। दरिद्र।

तबाही—संज्ञा स्त्री० [फा०] नाश। बरबादी। प्रक्षयन।
क्रि० प्र०—घाना।

मुहा०—तबाही खाना = जहाज का टूट फूटकर रह जाना।—(लश०)। तबाही पड़ना = जहाज का काम के लिये मुहताज रहना। जहाज को काम न मिलना।—(लश०)।

तबीघत—संज्ञा स्त्री० [प्र० तबीघत] दे० 'तबीघत'।

तबी—प्रथम० [हि०] तबी। तब ही उ०—'तो तबी कि जब उनपर'.....।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० २५३।

तबीघत—संज्ञा स्त्री० [प्र० तबीघत] १. चित्त। मन। जी।

मुहा०—(किसी पर) तबीघत घाना = (किसी पर) प्रेम होना। आशिक होना। (किसी चीज पर) तबीघत घाना = (किसी चीज को) लेने की इच्छा होना। तबीघत उलभना = जो घबराना। तबीघत खराब होना = (१) बीमारी होना। स्वास्थ्य बिगड़ना। (२) जो मिचलाना। तबीघत फड़क उठना = चित्त का उत्साहपूर्ण और प्रसन्न हो जाना। उमंग के कारण बहुत प्रसन्न होना। तबीघत फड़क जाना = दे० 'तबीघत फड़क उठना'। तबीघत फिरना = जी हटना। अनुराग न रहना। तबीघत बिगड़ना = दे० 'तबीघत खराब होना'। तबीघत भरना = (१) संतोष होना। तमस्वी होना। (२) संतोष करना। तमस्वी करना। जैसे,—हमने अच्छी तरह उनकी तबीघत भर दी। तब उन्होंने राए लिए। (३) मन भरना। अनुराग या इच्छा न रहना। जैसे,—अब इन कामों से हमारी तबीघत भर गई। तबीघत लगना = (१) मन में अनुराग उत्पन्न होना। (२) स्थाय्य लगन रहना। ध्यान लगा रहना। जैसे,—उधर कई लोगों से उनकी 'चट्टी नहीं आई, इससे तबीघत लगी हुई है। तबीघत लगाना = (१) चित्त को किसी काम में प्रवृत्त करना। जैसे,—तबीघत आगाकर काम किया करो। (२) प्रेम करना। मुहब्बत में फँसना। तबीघत होना = अनुराग या प्रवृत्ति होना। जी चाहना।

२. बुद्धि। समझ। भाव।

मुहा०—तबीघत पर जोर डालना = विशेष ध्यान देना। तबज्जह करना। जैसे,—जब तबीघत पर जोर डाला करो, अच्छी कविता करने लगोगे। तबीघत लटाना = दे० 'तबीघत पर जोर डालना'।

यौ०—तबीघतदार। तबीघतदारी।

तबीघतदार—वि० [प्र० तबीघत + फा० दार (प्रत्य०)] १. जो भावों को षट ग्रहण करता हो। समझदार। २. भावुक। रसिक। रसज्ञ।

तबीघतदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तबीघत + फा० दारी (प्रत्य०)] १. होशियारी। समझदारी। २. भावुकता। रसज्ञता।

तबीघ—संज्ञा पु० [प्र०] वैद्य। चिकित्सक। हकीम। उ०—तब तबीघ तसलीम करि ले घरि।

तबीन—संज्ञा पु० [प्र० तबीन] ताबेदार। सेवक। उ०—पलटू ऐसी साहिबी साहब रहे तबीन। दुइ पासाही फरर की इक दुनियाँ इक बीन।—पलटू०, भा० १, पृ० ६३।

तबेला—संज्ञा पु० [प्र० तबेलह] वह स्थान जहाँ थोड़े बाँधे जाते और गाड़ी, एक्के आदि सवारियाँ रखी जाती हों। अस्तबल। घुड़साण।

मुहा०—तबेले में लट्ठी चलाना = विविध कार्य करने में अट्ठचन उपस्थित होना।

तबेला—संज्ञा पु० [हि० तबि] तबे का एक पात्र।

तबेली(५)—क्रि० प्र० [फा० ताब (= ताप) + हि० ली (प्रत्य०)] छटपटाना। तालाबेली। उ०—कहा करी कैसे मन समझाऊँ व्याकुल जियरा धीर न धरत लागिग्य रहति तबेली।—घनानंद, पृ० ४८०।

तबोताब—संज्ञा पु० [सं० तप + फा० ताब] रंजोगम। गरमी। उ०—माल से उसको बस है वह तबोताब। के होय महशर में उसको तूले हिसाब।—दक्खिनी०, पृ० ११६।

तबोरो(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बोल] पान में लगाया हुआ पान। उ०—अधर अधर सों भोज तबोरो। घलता फिर मुरि मुरि गो मोरी।—जायसी ग्रं० (धुम), पृ० ३४२।

तबी(५)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तब'। उ०—सहज प्रठामी मूनि जो जे तबी न घटा बाजे। वहाँहि कबीर मृग के जेए, पंठ मगन ह्वै गाजे।—कबीर (शब्द०)।

तब—प्रथम० [हि०] दे० 'तब'। उ०—गहा खो न अरबं। कहे दैन तबं।—ह० रासा, पृ० १३६।

तबबर(५)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तबर'।

तभी—प्रथम० [हि० तब + ही] १. उस समय। २. उसी वक्त। उसी घड़ी। जैसे,—जब तुम नहीं आए, तभी मैं समझ लिया कि दाम में कुछ काला है। २. इसी कारण। इसी वजह से। जैसे,—तुम्हारा ऊपर काम था, तभी तुम गए।

तमंग—संज्ञा पु० [सं० तमङ्ग] १. रंगमंच। २. मंच (को०)।

तमंगक—संज्ञा पु० [सं० तमङ्गक] छत या छतजन ३१ प्रागे निकला हुआ भाग (को०)।

तमचा—संज्ञा पु० [फा० तमचह] १. छोटी बंदूक। पिस्तौल।

क्रि० प्र०—चलाना।—दागना।—मारना।—छेड़ना।

यौ०—तमचे की टाँग = कुश्ती का एक पेंच जिसमें शत्रु के पेट में घुस जाने पर बाँट हाथ से कमर पर से उसका लंगोट पकड़ लेते हैं और उसकी दाहिनी बगल से अपना बायाँ पैर चढ़ाकर पीठ पर से उसकी बाईं जाँघ फँसाते और उसे चित कर देते हैं २. एक लंबा पत्थर जो दरवाजों की मजबूती के लिये बगल में लगाया जाता है।

तमः—संज्ञा पु० [सं०] तमस् का समस्तपदों में प्रयुक्त रूप।

यौ०—तमःप्रभ, तमःप्रभा=एक नरक । तमःप्रवेश=(१) अंधेरे में टटोलना । (२) विषाद ।

तम^१—संज्ञा पुं० [सं० तमः, तमस्] १. अंधकार । अंधेरा । २. पैर का अगला भाग । ३. तमाल वृक्ष । ४. राहु । ५. वराह । सुभर । ६. पाप । ७. क्रोध । ८. अज्ञान । ९. कालिल । कालिमा । श्यामता । १०. नरक । ११. मोह । १२. सांख्य के अनुसार अविद्या । १३ सांख्य के अनुसार प्रकृति का तीसरा गुण जो भारी और रोकनेवाला माना गया है ।

विशेष—जब मनुष्य में इस गुण की अधिकता होती है, तब उसकी प्रवृत्ति काम, क्रोध, हिंसा आदि नीच और बुरी बातों की ओर होने लगती है ।

तम^२—वि० १ काला । दूषित । बुरा [को०] ।

तम^३—वि० [सं० तमय्] एक प्रकार का प्रत्यय, जो विशेषण शब्दों में लगने पर प्रतिशय या सबसे अधिक का अर्थ प्रकट करता है जैसे, क्रूरतम, कठिनतम ।

तम^४—सर्व० [सं० तमम्, हि० तुम, गुज० तम] दे० तुम । उ०—हाहुलि राय हमीर सनप पांमार जैन सम । कह्यो राज हम मात तात अयो दिल्ली तम ।—पृ० रा०, १८६ ।

तमअ—संज्ञा स्त्री० [अ० तमय्] १. लालच । लोभ । हिंस्र । २. चाह । इच्छा । स्वादिष्ट ।

तमक^१—संज्ञा पुं० [हि० तमकना] १. जोष । उद्वेग । २. तेजी । तीव्रता । ३. क्रोध । गुस्सा ।

तमक^२—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार श्वास रोग का एक भेद । विशेष—इसमें दम फूलने के साथ साथ बहुत प्यास लगती है, पसीना आता है, जो भिचलता है और गल में घरघराहट होती है । जिस समय आकाश में बादल छाए हों, उस समय इसका प्रकोप अधिक होता है ।

तमकनत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. इज्जत । प्रतिष्ठा । २. गौरव । ३. गौरव का अनुचित प्रदर्शन । ४. आडंबर । ५. धमंड । गठर [को०] ।

तमकना—क्रि० अ० [अनु०] १. क्रोध का आवेष्ट दिखाना । क्रोध के कारण उछल पड़ना । उ०—अंजन पास नजत तमकत नकि तानत दरसन गीठि । हारेहु नहि हटत अमिग बल बदन पयोधि पईठि ।—सूर (शब्द०) २. दे० 'तमतमाना' ।

तमकश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दमा जिसमें कंठ रुक जाता है और घरघराहट होती है ।

विशेष—इसके उत्पन्न होने से प्रायः रोगी के मर जाने का भी भय होता है ।

तमका—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुधामलकी ; मुई अविद्या [को०] ।

तमकाना—क्रि० सं० [हि० तमकना का प्रेरक] तमकने में प्रवृत्त कराना ।

तमकि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तमक] दे० 'तमक' । उ०—सतगुर मिलिअ तमकि मिटि जाई । नानक तपसी की मिली बढ़ाई ।—प्राण०, पृ० ६० ।

तमगा—संज्ञा पुं० [तु० तमगह्] पदक । तमगा । मेडल ।

तमगुन^१—संज्ञा पुं० [सं० तमोगुण] दे० 'तमोगुण' ।

तमगेही^१—वि० [सं० तमगेहीह्] अंधकार में घर बनानेवाला । अंधकार में रहनेवाला [को०] ।

तमगेही^२—संज्ञा पुं० पतंगा ।

तमचर—संज्ञा पुं० [सं० तमोचर] १. राजा । निशाचर । २. उत्तक । उत्तु ।

तमचुर^१—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचुर] मुरमा । कुक्कुट । उ०—(क) सुनि तमचुर को सोर घोष की बागरी । नवसत साजि सिंगार चलो ब्रज नगरा ।—सूर (शब्द०) । (ख) ससि कर हीन छीन दुनि तारे । तमचुर मुखर सुनहु मोरे प्यारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

तमचूर^२—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूर, हि० तमचुर] दे० 'तमचुर' । उ०—(क) बोले लागे डीर डीर तमचूर । दूहि बोली री पिक बैनो ।—नंद० प्र०, पृ० २६३ । (ख) बिल राखे नहि होत भंगूळ । सबद न देखि बिरह तमचूर ।—जायसी (शब्द०) ।

तमचोर^१—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूर] दे० 'तमचुर' ।

तमच्छन्न—वि० [सं० तमस् (श्) न च्छन्न] तम से आवेष्टावित । अंधकारमय । उ० घनमाता । फिर तमच्छन्न । पृथ्वी के उदय शिखर पर, तुम विनेत्र के ज्ञान धनु से प्रकट हुए प्रसंगकर —युगवासी पृ० २८ ।

तमजित्—वि० [सं०] अंधकार को जोतनेवाला । उ०—बांधो, बांधो किरणें चेतन, तेजस्वी, तेजोनिर्ज्जन ।—अपरा, पृ० २०६ ।

तमत—वि० [सं०] १. इच्छुक । अभिलाषी । २. वांछित । चाहा हुआ [को०] ।

तमतमाना—क्रि० अ० [सं० ताम्र] १. क्रोध या क्रोध आदि के कारण चेहरा लाल हो जाना । २. घमकना । दमकना । (तव०) ।

तमतमाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० तमतमाना] तमतमाने का भाव ।

तमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तम का भाव । २. अंधेरा । अंधकार ।

तमदुदुन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहर में एक स्थान पर मिल जुलकर रहना और वहाँ की व्यवस्था करना । नागरिकता । २. किसी की वेशभूषा, रहन सहन का ढंग और आचार व्यवहार । सभ्यता [को०] ।

तमन—संज्ञा पुं० [सं०] दम घुटने की अवस्था [को०] ।

तमना^१—क्रि० अ० [हि०] दे० 'तमकना' ।

तमन्ना—संज्ञा स्त्री० [अ०] आकांक्षा । इच्छा । स्वादिष्ट । कामना । अभिलाषा । उ०—दिल लाखों तमन्ना उस पे और ज्यादा हवस । फिर ठिकाना है कहाँ उसके ठिकाने के लिये ।—तुरसी० श०, पृ० ४ ।

तमप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम ।

तमयी—संज्ञा स्त्री० [सं० तमो अथवा तममयी] रात ।

तमरंग—संज्ञा पुं० [तं०] एक प्रकार का नीवू जिसे 'तुरंज' कहते हैं।
विशेष—दे० 'तुरंज'।

तमर^१—संज्ञा पुं० [तं०] बंग।

तमर^२—संज्ञा पुं० [सं० तम] अंधकार। अंधेरा।

तमराज—संज्ञा पुं० [तं०] एक प्रकार की लकड़ी जो वैद्यक में ज्वर, दाह तथा पित्तनाशक मानी गई है।

तमलूक—संज्ञा पुं० [हि० तामलूक] दे० 'तामलूक'।

तमलेट—संज्ञा पुं० [अ० टम्बलर] १. लुक फेरा हुआ टीन या लोहे का बरतन। २. फोजी सिपाहियों का लोटा।

तमस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार। २. अज्ञान का अंधकार। ३. प्रकृति का एक गुण। तमोगुण। वि० दे० 'गुण'।

तमस^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार। २. अज्ञान का अंधकार। ३. पाप। ४. नगर। ५. कूप। कुम्भी।

तमस^२—वि० काले रंग का। श्याम वर्ण का [को०]।

तमस^(३)—संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] ६. तमसा नदी। टोस।
उ०—घाघो तमस नदी के तीरा। तब लाडिल परिहार सुबीरा।—रघुराज (शब्द०)।

तमसना^(४)—क्रि० अ० [हि०] दे० 'तमकना'। उ०—तमसि तमसि सामंत जाइ वर धीर सुखंघ्यो। उभय पुता एक बंधु भोम भगीरथ बल बंध्यो।—पु० रा०, १२:१५३।

तमसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] टोस नाम की नदी। दे० 'टोस'।

विशेष—इस नाम की तीन नदियाँ हैं।

तमसाच्छन्न—वि० [सं०] अंधकार से ढका हुआ। उ०—उसे अपनी माता के तत्काल न मर जाने पर भुँकनाहट सी हो रही थी। ममीर अधिक नीतल हो चला। प्राची का आकाश स्पष्ट होने लगा, पर जमैरा का अट्टट तमसाच्छन्न था।—इंद्र०, पृ० ११०।

तमसाधृत—वि० [सं०] अंधकार से घिरा हुआ। उ०—मानव उर का मंदिर, वष से भीतर से तमसाधृत।—युगपथ, पृ० १०३।

तमसील—संज्ञा स्त्री० [अ० तमसील] १. उपमा। तुलना। २. समानता। बराबरी। ३. दृष्टान्त। उदाहरण। मिसाल।
उ०—याने इसका तमसील यूँ है।—बक्सिनी०, पृ० ३६५।

तमस्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधेरा। २. विवाद। मतभेद [को०]।

तमस्कांड—संज्ञा पुं० [सं० तमस्काण्ड] जना अंधेरा। भारी अंधेरा [को०]।

तमस्सुर—संज्ञा पुं० [अ० तमस्सुर] मस्त्रापन। उ०—उसके मिजाज में अनाफत और तमस्सुर जियादा है।—प्रेमचन०, भाग २, पृ० १०२।

तमस्तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकार की अधिकता। अंधकार का बाहुल्य। [को०]।

तमस्तरण—वि० [सं०] अंधकार को तरने या पार करनेवाला। उ०—भग्न डगमग पग, तमस्तरण जागे जग।—अर्चना, पृ० १४।

तमस्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तमस्विनी'।

तमस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि। रात। रजनी। २. हल्दी।

तमस्वी—वि० [सं० तमस्विन्] अंधकारयुक्त। अंधकारपूर्ण [को०]।
तमस्सुक—संज्ञा पुं० [अ०] वह कागज जो अणु लेनेवाला अणु के प्रमाण स्वरूप लिखकर महाजन को देता है। वस्तावेज। अणुपत्र। लेख।

तमहँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तंवा + हँड़ी] हँड़ी के आकार का तंबे का एक प्रकार का छोटा बरतन।

तमहर—संज्ञा पुं० [हि० तम + हर] दे० 'तमोहर'।

तमहाया—वि० [सं० तम + हि० हाया] १. अंधकारवाला। २. तमोगुणी।

तमहीद—संज्ञा स्त्री० [अ० तम्हीद] वह जो कुछ किसी विषय को आरंभ करने से पहले किया जाय। भूमिका। दोबाचा।

क्रि० प्र०—बाँधना।

तमाँचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तमाँचह] दे० 'तमाचा'।

तमा^१—संज्ञा पुं० [सं० तमा, तमस्] राहु।

तमा^२—संज्ञा स्त्री० रात। रात्रि। रजनी।

तमा^३—संज्ञा स्त्री० [अ० तमम्] दे० 'तमघ'।

तमा^४—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तमाम] दे० 'तमाम'। उ०—तमा दुनिया की जर पर कर वह नदजात। उठाया दीन से इकबारगी हान।—दक्खिनी०, पृ० १६०।

तमाइ^(५)—संज्ञा स्त्री० [अ० तमम्] दे० 'तमघ'। उ०—(क) लोक परलोक बिसोक सो तिलोक ताहि तुलसी तमाइ कदा काहू धीर धान की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आप कीन तन खप कियो न तमाइ जोग जाग न विराग त्याग तीरथ न तन की।—तुलसी (शब्द०)।

तमाई^१—संज्ञा स्त्री० [तं०] खेत जोतने से पूर्व उसमें की जास प्राप्ति साफ करना।

तमाई^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तम + हि० आई (प्रत्य०)] १. अंधेरा। श्यामता। ताम्रता। २. अज्ञान। उ०—साहब मिल साहब भए कछु रही न तमाई। कहुँ मनुक तिम घर गए जहुँ पवन न जाई।—मल्लक० पृ० ७।

तमाकू—संज्ञा पुं० [पुर्त० टंबैको] १. तीन से छह फुट तक ऊँचा एक प्रसिद्ध पौधा जो एशिया, अमेरिका तथा उत्तर युरोप में अधिकता से होता है। तंबाकू।

विशेष—इसको घनेक जातियाँ हैं, पर खाने या पीने के काम में केवल ५-६ तरह के पत्ते ही आते हैं। इसके पत्ते २-३ फुट तक लंबे, विपाक्त और नशीले होते हैं। भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों में इसके बोने का समय एक दूसरे से भिन्न है, पर बहुधा यह कुप्रार, कातिक से लेकर पून तक बोया जाता है। इसके लिये वह जमीन उपयुक्त होती है जिसमें सार अधिक हो। इसमें खाद की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। जिस जमीन में यह बोया जाता है, उसमें साल में बहुधा केवल इसी की एक फसल होती है। पहले इसका बीज बोया जाता है और जब इसके अंकुर ५-६ इंच के ऊँचे हो जाते हैं, तब इसे दूसरी जमीन में, जो पहले से कई बार बहुत

अच्छी तरह ओती हुई होती है, तीन तीन फुट की दूरी पर रोपते हैं। प्रारंभ से इसमें सिंचाई की भी बहुत अधिक आवश्यकता होती है। इसके फूलने से पहले ही इसकी कलियाँ धीरे नीचे के पत्ते छाँट दिए जाते हैं। जब पत्ते कुछ पीले रंग के हो जाते हैं धीरे उसपर चिटियाँ पड़ जाती हैं, तब या तो ये पत्ते काट लिए जाते हैं या पूरे पोथे ही काट लिए जाते हैं। इसके बाद वे पत्ते धूप में सुखाए जाते हैं और अनेक रूपों में काम में आए जाते हैं। इसके पत्तों में अनेक प्रकार के कीड़े लगते हैं और रोग होते हैं।

सोलहवीं शताब्दी से पहले तंबाकू का व्यवहार केवल अमेरिका के कुछ प्रांतों के आदिम निवासियों में ही होता था। सन् १४९२ में जब कोलंबस पहले पहल अमेरिका पहुँचा, तब उसने वहाँ के लोगों को इसके पत्ते चबाते और इसका धूँआँ पीते हुए देखा था। सन् १५३६ में स्पेनवाले इसे पहले पहल यूरोप के गए थे। भारत में इसे पहले पहल पुर्तगाली पादरी लाए थे। सन् १६०५ में इसे प्रसववेग से बीजापुर (दक्षिण भारत) में देखा था और वहाँ से वह अपने साथ दिल्ली ले गया था। वहाँ उसने इसके धीरे धीरे अनेक प्रचार बहुत बढ़ गया। प्रारंभ में इंग्लैंड, फ्रांस तथा भारत आदि सभी देशों में राज्य की ओर से इसका प्रचार रोकने के अनेक प्रयत्न किए गए थे, प्रशासिकारियों और विद्वानों ने भी इसका प्रचार रोकने के अनेक उद्योग किए थे, पर वे सब निष्फल हुए। अब समस्त संसार में इसका इतना अधिक प्रचार हो गया है कि स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे और बुढ़े प्रायः सभी किसी न किसी रूप में इसका व्यवहार करते हैं। भारत की गलियों में छोटे छोटे बच्चे तक इसे खाते या पीते हुए देखे जाते हैं।

२. इस पेड़ का पत्ता। सुरती।

विशेष—इसका व्यवहार लोग अनेक प्रकार से करते हैं। चुर करके खाते हैं, सुँपते हैं, धूँआँ खींचते के लिये नली में या चिलम पर जलाते हैं। इसमें नशा होता है। भारत में धूँआँ पीने के लिये एक विशेष प्रकार से तमाकू तैयार किया जाता है (दे० तीसरा अर्थ)। इसका बहुत महीन चूर्ण सुंघनी कहलाता है जिसे लोग सूँघते हैं। भारत के लोग इसके पत्तों को सुखाकर पान के साथ अथवा यों ही खाने के लिये कई तरह का चुरा बनाते हैं, जैसे, सुरती, ज़रदा आदि। पान के साथ खाने के लिये इसकी गीली गोली बनाई जाती है और एक प्रकार का अवलेह भी बनाया जाता है जिसे 'किषान' कहते हैं। इस देश में लोग इसके सूखे पत्तों को चूने के साथ मलकर मुँह में रखते हैं। जूना मिलाने से यह बहुत तेज हो जाता है। इस रूप में इसे 'खैनी' या 'सुरती' कहते हैं। यूरोप, अमेरिका आदि देशों में इसके चुरे को कागज या पत्तों आदि में लपेटकर सिगार या सिगरेट बनाते हैं। इसका व्यवहार नशे के लिये किया जाता है और इससे स्वास्थ्य और विशेषतः पाँखों को बहुत हानि पहुँचती है। वैद्यक में यह तीक्ष्ण,

गरम, कड़ुआ, मद और बमनकारक तथा दृष्टि को हानि पहुँचानेवाला माना जाता है।

३. इन पत्तों से तैयार की हुई एक प्रकार की गोली पिंडी जिसे चिलम पर जलाकर मुँह से धूँआँ खींचते हैं।

विशेष—पत्तियों के साथ रेह मिलाकर जो तमाकू तैयार होता है, वह 'कड़ुआ' कहलाता है, गुड़ मिलाकर बनाया हुआ 'मीठा' कहलाता है, धीरे कटहल, बेर आदि की खमीर मिलाकर बनाया हुआ 'खमीरा' कहलाता है। इसे चिलम पर रखकर उसके ऊपर कोयले की आग या सुलगती हुई टिकिया रखते हैं और खाली हाथ गोरिए अथवा हुक्के पर रखकर नली से धूँआँ खींचते हैं।

मुहा०—तमाकू चढ़ाना = तमाकू को चिलम पर रखकर धीरे उसपर आग या टिकिया रखकर उसे पीने के लिये तैयार करना। तमाकू पीना = तमाकू का धूँआँ खींचना। तमाकू चरना = दे० 'तमाकू चढ़ाना'।

तमाखूँ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमाकू'।

तमाचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमंचह] हथेली और उँगलियों के गाल पर किया हुआ प्रहार। थप्पड़। झापड़।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

तमाचारी—संज्ञा पुं० [सं० तमाचारिन्] राक्षस। दैत्य। निशिचर।

तमादी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. अवधि बीत जाना। मुदत या मियाद गुजर जाना। २. उस अवधि का बीत जाना जिसके अंदर लेन देन संबंधी कोई कानूनी कार्रवाई हो सकती हो। उस मुदत का गुजर जाना जिसके अंदर अदालत में किसी दावे की सुनवाई हो सकती हो।

क्रि० प्र०—होना।

तमान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धेरदार पाजामा जिसकी मोहरी नीचे से तंग होती है।

तमाना—क्रि० प्र० [सं० तम से नामिक धातु] ताव में आना। आवेश में आना।

तमाम—वि० [अ०] १. पूरा। संपूर्ण। कुल। सारा। बिल्कुल। जैसे,—(क) दो ही बरस में तमाम खर्च फूँट दिए। (ख) तमाम शहर में बीमारी फैली है। २. समाप्त। खतम।

मुहा०—तमाम होना = (१) पूरा होना। समाप्त होना। (२) मर जाना।

तमामी—संज्ञा स्त्री० [अ० तमाम + फ़ा० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का देशी रेणुमी कपड़ा।

विशेष—इसपर कलाबस्तू की धारियाँ होती हैं। यह प्रायः गोठ लगाने के काम में आता है।

तमारा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तैयार'।

तमारि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। दिनकर। रवि।

तमारि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तैयार'। उ०—पल में पल रूप बीतिया लोगन खगी तमारि।—कबीर (शब्द०)।

तमारी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमारि'। उ०—संत उदय संतत सुखकारी। ब्रिस्व सुखद जिमि हंडु तमारी।—मानस, ७। १२१,

तमारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तविरा' ।

तमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीम पत्थीय फुट ऊँचा एक बहुत सुंदर सदाबहार वृक्ष जो पहाड़ों पर और जमुना के किनारे भी कहीं कहीं होता है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है, एक साधारण और दूसरा श्याम तमाल । श्याम तमाल कम मिलता है । उसके फूल लाल रंग के और उसकी पकड़ी घाबलूम की तरह काली होती है । तमाल के पत्ते गहरे हरे रंग के होते हैं और शरीर के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं । वैशाख के महीने में इसमें सफेद रंग के बड़े फूल लगते हैं । इसमें एक प्रकार के छोटे फल भी लगते हैं जो बहुत अधिक लट्टे होने पर भी कुछ स्वादिष्ट होते हैं । ये फल सावन भादों में पकते हैं और इन्हें गोदड़ बड़े चाव से खाते हैं । श्याम तमाल की वैद्यक में कमेला, मधुर, बलवीर्यवर्धक, भारी, शीतल, श्रम, शोथ और वाह को दूर करनेवाला तथा कफ और पित्ताशक माना है ।

पर्या०—कालस्कंध । तामिरथ । धर्मिष्ठम । लोकस्कंध । नीलवृक्ष । नीलताल । तामिज । तम । तया । कालताल । महाबल ।

२. तेजपत्ता । ३. काले खैर का वृक्ष । ४. बाँस की छाल । ५. वक्ष्य वृक्ष । ६. एक प्रकार की नलवार । ७. तिलक का पेड़ । ८. हिमालय तथा दक्षिण भारत में होनेवाला एक प्रकार का सदाबहार पेड़ ।

विशेष—इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो घटिया रेवद चीनी की तरह का होता है । इसकी छाल से एक प्रकार का बढ़िया पीला रंग निकलता है । पुष्प, माघ में इसमें फल लगता है जिसे लोग यों ही खाने भयना इमली की तरह दाल तरकारियों में डालते हैं । इसका व्यवहार औषध में भी होता है । लोग इसे सुखाकर रखते और इसका सिरका भी बनाते हैं । इसे मरहाना और जमबेल भी कहते हैं ।

६. मुरछी (को०) । १०. तमाल के बीज के रस और चंदन का तिलक (को०) ।

तमालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता । २. तमाल वृक्ष । ३. बाँस की छाल । ४. भोजपत्र । माघ । सुयना साग ।

तमालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल का पत्ता । २. सुरती का पत्ता । ३. साधनादिक तिथि (को०) ।

तमाला—संज्ञा पुं० [हि० तमाला] छाँड़ों में घोंघियारी छा जाना । चकाचीष । उ०—दोम उठे फाट्टे हियो, पड़े तमाला घाय । देखे जुष तसवीर द्रग, मावहिदा भुरकाय ।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० १७ ।

तमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भुईं घाँवला । भूम्यामलकी । २. ताम्रबल्ली नाम की लता ।

तमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ताम्रलिप्त देश का एक नाम । २. भूम्यामलकी । भुईं घाँवला । ३. काले खैर का वृक्ष । कृष्ण खदिर । ४. वह भूमि जहाँ तमाल के वृक्ष अधिक हों (को०) ।

तमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वक्ष्य वृक्ष । २. ताम्रबल्ली नाम की लता जो निम्नफुट में बहुत होती है ।

तमाशगीरी—संज्ञा पुं० [फा० तमाशा + गीर] दे० 'तमाशबीन' ।

तमाशबीन—संज्ञा पुं० [फा० तमाशा + फा० बीन] १. तमाशा देखनेवाला । सैलानी । २. रंडीबाज । वेश्यागामी । ऐयाश ।

तमाशबीनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तमाशबीन + ई (प्रत्य०)] रंडीबाजी । ऐयाशी । बदकारी । उ०—फारसी पढ़ने से इस्कवाजी तमाशबीनी और अट्याशी ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ८२ ।

तमाशा—संज्ञा पुं० [फा०] १. वह दृश्य जिसे देखने से मनोरंजन हो । चित्त को प्रसन्न करनेवाला दृश्य । जैसे, मेला, थिएटर, नाच, घातिशबाजी आदि । उ०—मद मोलक जब खुलत है तेरे दुग गजराज । घाइ तमासे जुरत हैं नेही नैन समाज ।—रसनिधि (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—देखना ।—दिखाना ।—होना ।

२. अद्भुत व्यापार । विलक्षण व्यापार । अनोखी बात ।

मुहा०—तमाश की बात = घाश्चर्य भरी और अनोखी बात ।

यी०—तमाशागर = तमाशा करनेवाला । तमाशागाह = कीड़ा-स्थल । कीतुकागार । तमाशबीन = तमाशा देखनेवाला ।

तमाशाई—संज्ञा पुं० [फा० तमाशा + फा० ई (प्रत्य०)] तमाशा देखनेवाला । वह जो तमाशा देखता हो ।

तमासा(यु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमाशा' । उ०—काहू संग मोह नहि भमता देखहि निर्णय भये तमासा ।—मुंदर प्र०, भा० १, पृ० १५५ ।

तमासा(यु)—संज्ञा पुं० [फा० तमाशा] । उ०—मेहर की आसा तमासा भी मेहर का, मेहर का आब दिल को पिलाइए ।—कबीर रे०, पृ० ३४ ।

तमाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] तालीषपत्र (को०) ।

तमि—संज्ञा पुं० [सं०] १. रात । २. मोह ।

तमिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तमिल^१—संज्ञा पुं० [देश०] तमिल भाषा का प्रदेश । २. तमिल भाषाभाषी ।

तमिल^२—संज्ञा स्त्री० १. तमिल जाति । २. तमिल जाति की भाषा । वि० दे० 'तमिल' ।

तमिल^३—वि० रात्रि में विचरण करनेवाला (को०) ।

तमिसरा(यु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तमिस्रा' । उ०—रवि परभात भगोखे उवा । गयउ तमिसरा बासर हुआ ।—ईंद्रा०, पृ० ८०

तमिस्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रंथकार । ग्रंथेरा । २. क्रोध । गुस्सा । ३. पुराणानुसार एक नरक का नाम । ४. अज्ञान । मोह (को०) । ५. कृष्ण पक्ष (को०) ।

तमिस्रपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] किसी मास का कृष्ण पक्ष । ग्रंथेरा पक्ष ।

तमिस्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्रंथेरी रात । २. गहरा ग्रंथेरा या ग्रंथकार (को०) ।

तमी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. रात । रात्रि । निशा । २. हुरिदा । हलदी ।

तमीचर^१—संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर । राक्षस । दैत्य । दनुज ।

तमीचर^२—वि० रात्रि में विचरण करनेवाला (को०) ।

तमीज—संज्ञा स्त्री [सं० तमीज] १. भले और बुरे को पहचानने की शक्ति । विवेक । २. पहचान । ३. ज्ञान । बुद्धि । ४. भ्रम । कायदा ।

यौ०—तमीजदार = (१) बुद्धिमान । समझदार (२) शिष्ट । सभ्य ।

तमीपति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा । निषाकर । क्षपाकर ।

तमीश—संज्ञा पुं० [सं० तमी + ईश] चंद्रमा । क्षपाकर । उ०—तो ली तम राखे तमी जो ली नहि रजवीश । केशव ऊगे तरणि के तमु न तमी न तमीश ।—केशव (शब्द०) ।

तमु^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तम' ।

तमूरा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तंबूरा' ।

तमूला^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तांबूल' ।

तमे^१—सर्व [गुज० तमे (= तुम)] तुम ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१८ ।

तमोत्य—वि० [सं० तमोऽत्य] सूर्य और चंद्रमा के दस प्रकार के ग्रहों में से एक ।

विशेष—इसमें चंद्रमंडल की पिछली सीमा में राहु की छाया बहुत अधिक और बीच के भाग में बहुत थोड़ी सी जान पड़ती है । फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण से फसल को हानि पहुँचती है और चोरों का भय होता है ।

तमोंध—वि० [सं० तमोऽंध] १. अज्ञानी । २. क्रोधी ।

तमोगुण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तमस'—३ ।

तमागुणी—वि० [सं०] जिसकी वृत्ति में तमोगुण हो । अधम वृत्ति-वाला । उ०—तमोगुणी चाहे या भाई । मम बेरी क्यों ही मर आई ।—मूर (शब्द०)

तमोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. चंद्रमा । ३. सूर्य । ४. बुद्ध । ५. बौद्ध मत के नियम आदि । ६. विष्णु । ७. शिव । ८. ज्ञान । ९. दीपक । दीया । विराग ।

तमोघ्न^२—वि० जिससे संशय दूर हो ।

तमोज्योति—संज्ञा पुं० [सं० तमोज्योतिस्] जुगल [जो] ।

तमोदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न हो ।

तमोनुद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । २. चंद्रमा । ३. अग्नि । आग ।

तमोभिद्^१—संज्ञा पुं० [सं०] जुगल ।

तमोभिद्^२—वि० संशय दूर करनेवाला ।

तमोमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुगल । २. गोमेदक मणि ।

तमोमय^१—वि० [सं०] १. तमोगुणयुक्त । २. अज्ञानी । ३. क्रोधी ।

तमोमय^२—संज्ञा पुं० [सं०] राहु ।

तमोर^१—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] तांबूल । पान । उ०—(क) पार तमोर दूध बधि रोचन हरषि यकोदा लाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) सुरंग अंधर भी लीन तमोरा । सोही पान फूल कर जोरा ।—जायसी ग्रं०, पृ० १४३ ।

तमोरि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तमोरो^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तंबोली' ।

तमोल^१—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] १. पान का बीड़ा । उ०—बंदी भाल तमोल मुख सीम सिलसिले बार । दण अजि राजे खरी ये ही सहज सिंगार ।—बिहारी (शब्द०) । २. दे० 'तंबोल' ।

तमोलिन—संज्ञा स्त्री [हि० तमोली का स्त्री०] दे० 'तंबोलिन' ।

तमोलिप्ती—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'ताम्रलिप्ति' ।

तमोली—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तंबोली' ।

तमोविकार—संज्ञा पुं० [सं०] तमोगुण के कारण उत्पन्न होनेवाला विकार । जैसे, नीद, भ्रालस्य आदि ।

तमोहंत—संज्ञा पुं० [सं० तमोहन्त] दस प्रकार के ग्रहों में से एक ।

विशेष—दे० 'तमोत्य' ।

तमोहपह^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. चंद्रमा । ३. अग्नि । ४. दीपक । दीया ।

तमोहपह^२—वि० १. मोहनाशक । २. संशय दूर करनेवाला ।

तमोहर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. सूर्य । ३. अग्नि । आग । ४. ज्ञान ।

तमोहर^२—वि० [सं०] संशय दूर करनेवाला । २. अज्ञान दूर करनेवाला ।

तमोहरि^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमोहर' ।

तम्मना^१—क्रि० प्र० [हि० तमकना] तप होना । क्रुद्ध होना । उ०—परि सर धरै उठै एक । तम्मी उकसि भारै नेक (नेक) ।—पृ० २१०, २११, २१२ ।

तय^१—वि० [प्र०] १. प्रग किया हुआ । निबटाया हुआ । समाप्त । जेजे, रास्ता तय करना । काम तय करना । २. निश्चित । स्थिर । ठहराया हुआ । मुकद्दर । जैसे,—गोमवार को चलना तय हुआ है ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

मुहा०—तय पाना । निश्चित होना । ठहराना ।

तय^२—अव्य० [हि० तह] तह । घटा । उ०—बुल्लाय दास सुंदर विजय । उठ्यो पति चहुमान तय ।—पृ० २१०, २११ ।

तय^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षा । २. रक्षक [को] ।

तयना^१—क्रि० प्र० [सं० तपन] १. बहुत गरम होना । तपना । उ०—निमि बामर तया तिहूँ ताय ।—तुलसी (शब्द०) । २. संतप्त होना । दुखी होना । पीड़ित होना ।

विशेष—दे० 'तपना' ।

तयना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तपना' ।

तयनाती—वि० [हि०] दे० 'तैनात' ।

तया^१—संज्ञा पुं० [हि०] 'तबा' ।

तयार^१—वि० [हि०] दे० 'तैयार' ।

तयारी④—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तैयारी' ।

तय्यार—वि० [हि०] दे० 'तैयार' । उ०—कोर्मा ऐसा लजीज तैयार हुआ ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८४ ।

तरंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्ग] १. पानी की वह उछाल जो हवा मगने के कारण होती है । लहर । हिलोर । २. मोज ।

क्रि० प्र०—उठना ।

पर्वा०—भंग । ऊर्मि । उर्मि । विधि । बीची । हकी । लहरी । भृंगि । उरकलिका । जललता ।

२. संगीत में स्वरों का चढ़ाव उतार । स्वरलहरी । उ०—बहु भीति तान तरंग सुनि गंधर्व किन्नर लाजही ।—मुलसी (शब्द०) । ३. चित्त की उमंग । मन की मोज । उत्साह या आनंद की अवस्था में सहसा उठनेवाला विचार । जैसे,—(क) भंग की तरंग उठी कि नदी के किनारे चलना चाहिए । ४. वस्त्र । कपड़ा । ५. छोटे प्रादि की फलींग या उछाल । ६. हाथ में पहनने की एक प्रकार की चूड़ी जो सोने का तार उमेठकर बनाई जाती है । ७. हिलना डुलना । इधर उधर घूमना (को०) । (८) किसी ग्रंथ का विभाग या अध्याय जैसे—कथासरित्सागर में ।

तरंगक—संज्ञा पुं० [सं० तरङ्गक] [स्त्री० तरंगिका] १. पानी की लहर । हिलोर । २. स्वरलहरी ।

तरंगभीरु—संज्ञा पुं० [सं० तरङ्गभीरु] चौदहवें भन्तु के एक पुत्र का नाम ।

तरंगवती—संज्ञा पुं० [सं० तरङ्गवती] नदी । तरंगिणी ।

तरंगाघित—वि० [सं० तरङ्गाघित] दे० 'तरंगित' । उ०—सुंदर बने तरङ्गाघित ये सिंधु से, लहराते जब वे मारुतवश भूम के ।—कल्याण०, पृ० २ ।

तरंगालि—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गालि] नदी ।

तरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गिका] १. लहर । हिलोर । २. स्वरलहरी । उ०—स्वर मंद बाजत बाँसुरी गति मिलत उठत तरंगिका ।—राधाकृष्ण दास (शब्द०) ।

तरंगिणी^१—संज्ञा स्त्री [सं० तरङ्गिणी] नदी । सरिता ।

यौ० तरंगिणीनाथ, तरंगिणीभर्ता = समुद्र ।

तरंगिणी^२—वि० तरंगवाली ।

तरंगित—वि० [सं० तरङ्गित] हिलोर मारता हुआ । लहराता हुआ । नीचे ऊपर उठता हुआ ।

तरंगिनी—संज्ञा स्त्री [सं० तरङ्गिणी] नदी ।

तरंगी—वि० [सं० तरङ्गिन्] [स्त्री० तरंगिणी] १. तरंगयुक्त । जिसमें लहर हो । २. जैसा मन में आवे, वैसा करनेवाला । मनमोजी । आनंदी । लहरी । बेपरवाह । उ०—नाचहि गार्वाहि गीत परम तरंगी भूत सब ।—मानस, १ । ६३ ।

तरंड—संज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १. नाव । नौका । २. मछली मारने की डोरी में बंधी हुई लकड़ी जो पानी के ऊपर तैरती रहती है । ३. नाव खेने का डंडा । ४. बेड़ा (को०) ।

यौ०—तरंडपादा = एक प्रकार की नाव ।

तरंडा, तरंडी—संज्ञा स्त्री [सं० तरण्डा, तरण्डी] १. नौका । नाव । २. बेड़ा (को०) ।

तरंत—संज्ञा पुं० [सं० तरन्त] १. समुद्र । २. मेढक । ३. राक्षस । ४. जोर की वर्षा (को०) । ५. भक्त (को०) ।

तरंती—संज्ञा स्त्री [सं० तरन्ती] नाव । कश्ती ।

तरंतुक—संज्ञा पुं० [सं० तरन्तुक] कुक्षेत्र के अंतर्गत एक स्थान का नाम ।

तरंबुज—संज्ञा पुं० [सं० तरम्बुज] तरबूज ।

तरँहुत^१—क्रि० वि० [हि० तर + हुँत (प्रत्य०)] १. नीचे । २. नीचे की तरफ ।

तरँहुत^२—वि० १. नीचेवाला । नीचे की तरफ का । २. नीचा ।

तर^१—वि० [फा०] १. भीगा हुआ । आर्द्र । गीला । जैसे, पानी से तर करना, तेल से तर करना ।

यौ०—तर बतर = भीगा हुआ ।

२. शीतल । ठंडा । जैसे,—(क) तर पानी, तर माल । (ख) तरबूज खाली, तबीयत तर हो जाय । ३. जो सूखा न हो । हरा ।

यौ०—तर व ताजा = टटका । तुरंत का ।

४. भरा पूरा । मालदार । जैसे, तर असामी ।

तर^२—संज्ञा पुं० [सं०] पार करने की क्रिया । २. धरित । ३. वृक्ष । ४. पथ । ५. गति । ६. नाव की उतराई । ७. घाट की नाव (को०) । ८. बड़ जाना (को०) । ९. पराजित करना । परास्त करना (को०) ।

तरा^१—क्रि० वि० [सं० तल] तले । नीचे । उ०—कीन विरिध तर भीजत होइहैं राम लपन दूनो भाई ।—गीत (शब्द०) ।

तर^२—प्रत्य० [सं०] एक प्रत्यय जो गुणवाचक शब्दों में लगकर दूसरे की अपेक्षा आधिवय (गुण में) सूचित करता है । जैसे, गुहतर, अधिकतर, श्रेष्ठतर ।

तरई^१—संज्ञा स्त्री [सं० तारा] नक्षत्र ।

तरक^१—संज्ञा स्त्री [सं० तण्डक] दे० 'तड़क' ।

तरक^२—संज्ञा स्त्री [हि० तड़कना] दे० 'तड़क' ।

तरक^३—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] १. विचार । सोच विचार । उल्लेख । ऊहापोह । उ०—होइहि सोई जो राम रचि राखा । को करि तरक बड़ावहि साखा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. उक्ति । तर्क । चतुराई का वचन । खोज की बात । उ०—(क) सुनत हंसि चले हरि सकुचि भारी । यह कह्यो आज हम आइहैं गेह तुव तरक जिनि कह्यो हम समुझि डारी ।—सूर (शब्द०) । (ख) प्यारी को मुख धोई कै पट पौछि सेंबारयो तरक बात बहुतै कह्यो कछु सुधि न संभारयो ।—सूर (शब्द०) ।

तरक^४—संज्ञा स्त्री [सं० तर (= पथ ?)] वह अक्षर या शब्द जो पुष्ठ या पत्रा समाप्त होने पर उसके नीचे किनारे की ओर आगे के पुष्ठ के आरंभ का अक्षर या शब्द सूचित करने के लिये लिखा जाता है ।

विशेष—हाथ की लिखी पुरानी पोथियों में इस प्रकार अक्षर या शब्द लिख देने की प्रथा थी जिससे पत्र लगाए जा सकें। पुठों पर अंक देने की प्रथा नहीं थी।

तरका^१—संज्ञा पुं० [सं० तर्क (= सोच विचार)] २. अङ्कन। बाधा। २. व्यतिक्रम। भूल चूक।

क्रि० प्र०—पड़ना।

तरक^२—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] १. त्याग। परित्याग। २. छुटना।

क्रि० प्र०—करना।

तरकना(पु)^१—क्रि० प्र० [हि०] ३० 'तड़कना'।

तरकना^२—वि० तड़कना। भड़कनेवाला।

तरकना^३—क्रि० प्र० [सं० तर्क] १. तर्क करना। सोच विचार करना। २. अनुमान करना। उ०—तरकि न सकहि बुद्धि मन बानी। तुलसी (शब्द०)।

तरकना^४—क्रि० प्र० [अनु०] उछलना। कूबना। झपटना। उ०—बार बार रघुवीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी।—तुलसी (शब्द०)।

तरकश—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कश] तीर रखने का चोंगा। भाथा। तूणोर।

तरकशबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कशबंद] तरकश रखनेवाला व्यक्ति।

तरकस—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कस] दे० 'तरकण'।

तरकसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तर्कस] छोटा तरकश। छोटा तूणोर। उ०—घरे धनु सर कर कसे कटि तरकसी पीरे पठ छोड़े चले जाय चालु। प्रंग प्रंग भूषण जगय के जगमगत हुरत जन के जी को तिमिर चालु।—तुलसी (शब्द०)।

तरका(पु)^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तड़का'।

तरका^२—संज्ञा पुं० [प्र०] मरे हुए मनुष्य की जायदाद। वह जायदाद जो किसी मरे हुए आदमी के वारिस को मिले।

तरका(पु)^३—संज्ञा पुं० [हि० ताड़] बड़ी तरकी।

तरकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तरह (= सज्जी, शाक) + कारी] १. वह पोषा जिसकी पत्ती, जड़, डंठल, फल फूल आदि पकाकर खाने के काम में आते हैं। जैसे, पालक, गोभी, मालू, कुम्हड़ा इत्यादि। शाक। सागपात भाजी। सज्जी। २. खाने के लिये पकाया हुआ फल फूल, कंद मूल, पत्ता आदि। शाक भाजी। ३. खाने योग्य मांस।—(गजानन)।

क्रि० प्र०—बनाना।

तरकी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़की] कान में पहनने का फूल के आकार का एक गहना।

विशेष—इस गहने का वह भाग जो कान के मंदर रहता है, ताड़ के पत्ते को गोल लपेटकर बनाया जाता है। इससे यह शब्द 'ताड़' से निकला हुआ जान पड़ता है। सं० शब्द 'ताड़क' से भी यही सूचित होता है। इसके अतिरिक्त इस गहने को तालपत्र भी कहते हैं। इसे आजकल छोटी जाति की लियाँ अधिक पहनती हैं। पर सोने के कर्णफूल आदि के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है।

तरकीब—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. संयोग। मिलान। मेल। २. बनावट। रचना। ३. युक्ति। उपाय। ढंग। ढव। जैसे,—उन्हें यहाँ लाने की कोई तरकीब सोचो। ४. रचना प्रणाली। शैली। तीर। तरीका। जैसे,—इनके बनाने की तरकीब मैं जानता हूँ।

तरकुला—संज्ञा पुं० [सं० ताल + कुल] ताड़ का पेड़।

तरकुला—संज्ञा पुं० [हि० तरकुल] कान में पहनने का एक गहना। तरकी।

तरकुली—संज्ञा स्त्री० [हि० तरकुल] कान का एक गहना। तरकी। उ०—लछिमन संग बूके कमल कंदव कहैं देखी सिय कामिनी तरकुली कमक की।—हनुमान (शब्द०)।

तरक्कना—क्रि० प्र० [हि०] तरकना। उछलना। चमकना। उ०—नवं नह नपफेरि भेरी समालं। तरक्कत वेग मनो बिजु नालं।—पु० रा०, १२।८०।

तरक्की—संज्ञा स्त्री० [प्र० तरक्की] वृद्धि। बढ़ती। उन्नति। (शरीर, पद एवं वस्तु आदि में)।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

तरक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़बग्घा। २. चीता (को०)।

तरक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बाघ। लकड़बग्घा। चरग। २. चीता (को०)।

तरखा—संज्ञा पुं० [सं० तरग] जल का तेज बहाव। तीव्र प्रवाह।

तरखान—संज्ञा पुं० [सं० तखण] लकड़ी का काम करनेवाला। बढ़ई।

तरगुलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] अक्षत रखने का एक प्रकार का छिछला बरतन।

तरचखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पीधा जो सजावट के लिये बगीचों में लगाया जाता है।

तरच्छी—वि० स्त्री० [हि०] तिरछी। टेढ़ी। उ०—संजम अप तप सौपरत, ब्रत जुत जोग बिनाए। झल तरच्छी ईल ताँ जीता समघा जाए।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ३४।

तरछत(पु)—क्रि० वि० [हि० तर] नीचे। नीचे की ओर।

तरछत—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तलछट'।

तरछन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तलछट'।

तरछा—संज्ञा पुं० [हि० तर (= नीचे)] वह स्थान जहाँ तेली गोबर इकट्ठा करते हैं।

तरछाना(पु)—क्रि० प्र० [हि० तिरछा] तिरछी झल से इशारा करना। इंगित करना। ल०—अरध जाम जाभिनि गए सखिन सकुचि तरछाय। देति बिदा तिय इतहि पिय चितवत चित ललचाय।—देव (शब्द०)।

तरछी—वि० [हि०] तिरछी। उ०—भलकत बरछी तरछी तरवारि बहै। मार मार करत परत बलमल है।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ४८५।

तरज—संज्ञा पुं० [प्र० त्रज] दे० 'तर्र'।

तरजना—क्रि० प्र० [सं० तर्जव] १. ताड़न करना। डाटना।

डपटना । उ०—गरजति तरजनिम्ह तरजत बरजत सयन नयन के कोए ।—तुलसी (शब्द०) २. भला बुरा कहना । विगड़ना । ३. गरजना । उ०—सिंह व्याघ्रों का तरजना जिसे सुन बिचारी कोमल बालाघों के हृदय का सरजना—इस दुर्ग के गुणों ही से बैठे बैठे सुन लो ।—श्यामा०, पृ० ७८ ।

तरजनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जनी] अंगूठे के पास की उंगली । उ०—
(क) इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मरुख बरजि तजिय तरजनी कुम्हिलेहै कुम्हरे को जई है ।—तुलसी (शब्द०) ।

तरजनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जन] भय । डर । उ०—ग्रहो रे विहंगम बनवासी । तेरे सोल तरजनी बाढ़ति श्रवणन मुनत नीदऊ नासी ।—सूर (शब्द०) ।

तरजीला—वि० [सं० तर्जन + हि० ईला (प्रत्य०)] १. तर्जन करने वाला । २. कोष में भरा हुआ । ३. प्रचंड । तेज । उग्र ।

तरजीह—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जिह] बरीयत । प्रधानता । श्रेष्ठता । उ०—वे व्यापकता के ऊपर गहवाई की तरजीह देते हैं ।—इति० और मालो०, पृ० ८ ।

तरजूई—संज्ञा स्त्री० [सं० तरजू] छोटी तराजू ।

तरजुमा—संज्ञा पुं० [सं० तर्जुमह] अनुवाद । भाषांतर । उल्था ।

तरजुमान—संज्ञा पुं० [सं० तर्जुमान] वह जो अनुवाद करता है [को०] ।

तरजौहा(उ०)—वि० [हि०] दे० 'तरजोला' ।

तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तटी आदि को पार करने का काम । पार करना । २. पानी पर तैरनेवाला तहता । बेड़ा । ३. निस्तार । उद्धार । ४. स्वयं । ५. लीका (को०) । ६. पराजित करना । (को०) ।

तरणतारण—वि० [सं०] १. संसार सागर से पार करनेवाला उ०—
शोक क्षरण करण करण तरण तारण विष्णु शंकर ।—
अर्चना, पृ० ८८ । २. नदी या जलाशय से पार करनेवाला ।

तरणावप—संज्ञा पुं० [हि० तरण + सं० आवप] सूर्य की धूप । उ०—तरणावप टोप वगत्तरयं । प्रतंबं चमकत पक्खरियं ।—रा० ७०, पृ० ८१ ।

तरणावड—संज्ञा पुं० [सं० तरण; सं० तर्ज + धा०, हि० तरणा भा० पड] दे० 'ताहमय' । उ०—जिम जिम मन अमले कियह तार चढती जाइ । तिम तिम मारनगी तणइ, तन तरणावड याइ ।—ढोला०, पृ० १२ ।

तरणि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मन्दा । ३. किरन ।

तरणि^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तरणी' ।

तरणिकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरणिसुत' ।

तरणिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य की पत्नी, यमुना । २. एक वरणावृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक गुरु होता है । इसका दूसरा नाम 'सती' है । जैसे,—
नगपती । बरसती ।

तरणितनय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरणिसुत' ।

तरणितनूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री, यमुना ।

तरणिधन्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

तरणिपेटक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र या कठोता जिससे न—
पानी उलीचा जाता है [को०] ।

तरणिरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] माणिक्य [को०] ।

तरणिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य का पुत्र । २. यम । ३. ४. कण ।

तरणिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री । यमुना [को०] ।

तरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नौका । नाव । २. वीकुमार । ३. कमलिनी ।

तरतर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तड़तड़' । उ०—बरख प्रथम पानी, न जात काहू वै बखानी, बज हू ते भारी टूटत है तरतर—
—नद० सं०, पृ० ३६२ ।

तरतराता—वि० [हि० तर] धी में अच्छी तरह दूदा दुधा (पकवान) जिसमें से धी निकलता या बहता हो (लाघपदार्थ) ।

तरतराना(उ०)—संज्ञा स्त्री० [सं०] तड़तड़ना । उ०—कहनात पुं मनु अंसमानु, के तड़ित चहैं दिस तरतरान ।—सुजा०, पृ० १७ ।

तरतराना(पुं०)—क्रि० प्र० [सं०] तड़तड़ शब्द करना । लीकना या सा शब्द करना । तड़तड़ाना । उ०—घहरात तरतरात गररात हहरात पररात भहरात माष नाये ।—सूर (शब्द०) ।

तरतीब—संज्ञा स्त्री० [सं०] वस्तुओं की अपने ठीक ठीक स्थानों पर स्थिति । यथास्थान रखा या लगाया जाना । क्रम । सिलसिला । जैसे,—किताबें तरतीब से लगें दें ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।—सजाना ।

मुहा०—तरतीब देना = क्रम से रखना या लगाना । सजाना ।

तरत्समंदीय—संज्ञा स्त्री० [सं० तरत्समन्दीय] वेद के पवमान सूक्त के अंतर्गत एक सूक्त ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि अप्रतिप्राह्य धन ग्रहण करने या निषिद्ध अन्न भक्षण करने पर इस सूक्त का जप करने से दोष मिट जाता है ।

तरदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कंटीला पेड़ ।

तरदीद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काटने या रद्द करने की क्रिया । मंसूखी । २. खंडन । प्रत्युत्तर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरदुदुद—संज्ञा पुं० [सं०] सोच । फिक्र । भ्रंश । चिंता । खटका ।

उ०—एक कमरे तक सीमित रहने पर भी घाने जानेवाले यात्रियों और मुझे भी तरदुदुद रहता ।—किन्नर०, पृ० ५६ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—तरदुदुद में पड़ना = चिंता में पड़ना ।

तरद्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो धी और बही के साथ माड़े हुए आटे की गोलियों को पकाने से बनता है ।

तरन(उ०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरण' ।

तरन^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरौना' ।

तरनतार—संज्ञा पुं० [सं० तरण] निस्तार । मोक्ष । मुक्ति ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरनतारन—संज्ञा पुं० [सं० तरण, हि० तरना] १. उद्धार । निस्तार । मोक्ष । २. उद्धार करनेवाला । वह जो भवसागर से पार करे ।

तरनी^१—क्रि० सं० [सं० तरण] पार करना ।

तरनी^२—क्रि० प्र० १. भवसागर से पार होना । मुक्त होना । सद्गति प्राप्त करना । जैसे,—तुम्हारे पुरखे तर जायेंगे । २. तरना न इचना ।

तरनी^३—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तलना' ।

तरनी^४—संज्ञा पुं० [देश०] व्यापारी जहाज का वह अफसर जो यात्रा में व्यापार संबंधी कार्यों का निरीक्षण करता है ।

तरनान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तरनाछ—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस जिसकी सहायता से पाल को लोहे की धरन में बाँधते हैं ।—(लश०) ।

तरनि^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरणी' ।

तरनि^२—संज्ञा पुं० दे० 'तरणि' । उ०—तरनि तेघ तुलाधार परताप गहिओरे ।—विद्यापति, पृ० ६ ।

यौ०—तरनितनया = शूर्य की पुत्री । यमुना । उ०—तरनितनया तीर जगमगत ज्योतिभय पुहुमि पे प्रगट सब लोक सिरताई ।—बनानंद, पृ० ४६३ ।

तरनिजा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरणिजा' ।

तरनि—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरणि' । उ०—भूषण तीखन तेज तरनि सों बैरन को कियो पानिप होनो ।—भूषण ग्रं०, पृ० ४८ ।

तरनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तरणी] १. नाव । नौका । उ०—रातिहि घाट घाट की तरनी । आई अगनित जाहि न बरनी ।—मानस, २।२२० । २. वह छोटा भोड़ा जिसपर मिठाई का थाल या खोंबा रखते हैं । दे० 'तन्नी' ।

तरनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] बमक के आकार की बनी हुई चीज जिसपर खोमचेवाले अपनी थाली रखते हैं ।

तरन्मुष—संज्ञा पुं० [प्र०] घालाप ।

तरपा^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तड़प' ।

तरपट^१—वि० [हि० तिरपट] (चारपाई) जो टेढ़ी हो । जिसमें तीन ही पाटी सीधी हो ।

तरपट^२—संज्ञा पुं० टेढ़ापन । भेद ।

तरपत—संज्ञा पुं० [सं० तृप्ति] १. सुपास । सुबोता । २. आराम । चैन । उ०—बूँदी सम सर तजत खंड मंडत पर तरपत ।—गोपाल (शब्द०) ।

तरपटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—जुग पानि नाभि ताली बनाय । रभि दिष्ट सिष्ट गिरवान राय । तरपटी साख सिल कमल मुर । इष्टि अंति भाव तप तपनि जूर ।—पृ० रा०, १।५०४ ।

तरपन^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तर्पण' । उ०—तरपन होम करहि बिधि नाना ।—मानस, २।१२६ ।

तरपना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तड़पना' । उ०—तरपी जिमि बिजुल सी पिय पे करी भननाय सबै धर मै ।—सुंदरी-सर्वस्व (शब्द०) ।

तरपर—क्रि० वि० [हि० तर + पर] १. नीचे ऊपर । २. एक के पीछे दूसरा ।

तरपरिया—क्रि० [हि०] १. नीचे ऊपर का । २. पहला और दूसरा (संतान) । क्रम में पहला और बाद का (बच्चा) ।

तरपीछा^१—वि० [हि० तड़प + ईलः प्रत्यय०] तड़पवाला । चमकदार ।

तरपू—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है और मकानों में लगती है । यह पेड़ मनावार और पच्छिमी घाट के पहाड़ों में पाया जाता है ।

तरफ—संज्ञा स्त्री० [प्र० तरफ] १. ओर । दिशा । प्रत्येक । जैसे, पूरब तरफ । पश्चिम तरफ । २. किनारा । पार्श्व । बगल । जैसे, दाहिनी तरफ । बाई तरफ । ३. पक्ष । पामशारी । जैसे,—(क) लड़ाई में तुम किसकी तरफ रहोगे ? (ख) हम तुम्हारी तरफ से बहुत कुछ कहेंगे ।

यौ०—तरफदार ।

तरफदार—वि० [प्र० तरफ + फा० दार (प्रत्यय०)] पक्ष में रहनेवाला । साथी या सहायता देनेवाला । रक्षणी । हिमायती । समर्थक ।

तरफदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तरफ + फा० दारी (प्रत्यय०)] पक्षपात ।

क्रि० प्र०—करना ।

तरफना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तड़फना' । उ०—यानें पनि भोलनि की तिया । हमनि कछु तरफनि है हिया ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६६ ।

तरफराना—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'तड़फना' ।

तरब—संज्ञा पुं० [हि० तरपना, तड़पना] सारंगी में वे तार जो ताल के नीचे एक विशेष क्रम से लगे रहते हैं और सब स्वरों के साथ गूँजते हैं ।

तर बतर—वि० [प्र०] भीगा हुआ । घाट्रं । शराबोर ।

तरबन्ना^१—संज्ञा पुं० [सं० ताल + हि० बन] ताड़ का बन ।

तरबन्ना^२—संज्ञा पुं० [सं० ताडपण] दे० 'तरवन' ।

तरबहना—संज्ञा पुं० [हि० तर + बहना] थाली के आकार का तबे या पीतल का एक बरतन जो प्रायः ठाकुरजी को स्नान कराने के काम में लाया जाता है ।

तरबियत—संज्ञा स्त्री० [प्र० तबियत] १. पालन पोषण करना । देखरेख या परवरिश करना । २. शिक्षा । ३. सभ्यता और शिष्टाचार की शिक्षा (की०) ।

तरबूज—संज्ञा पुं० [फा० तरबूज, तरबुजह] एक प्रकार की बेर जो

जमीन पर फैलती है और जिसमें बहुत बड़े बड़े गोल फल लगते हैं। कलीदा। काश्मिर। कलिंग।

विशेष—ये फल खाने के काम में आते हैं। पके फलों को काटने पर इनके भीतर भिल्लीदार लाल या सफेद गूदा तथा मोठा रस निकलता है। बीजों का रंग लाल या काला होता है। गर्मी के दिनों में तरबूज तरावट के लिये खाया जाता है। पकने पर भी तरबूज के छिलके का रंग गहरा हरा होता है। यह बलुए क्षेत्रों में, विशेषतः नदी के किनारे के रेतीले मैदानों में जाड़े के पत में बोया जाता है। संसार के प्रायः सब गरम देशों में तरबूज होता है। यह दो तरह का होता है—एक फसली या बाषिक, दूसरा स्थायी। स्थायी पोथे केवल अमेरिका के मेक्सिको प्रदेश में होते हैं जो कई साल तक फलते फूलते रहते हैं।

तरबूजई—वि० सं० पु० [फा० तरबूज + ई (प्रत्य०)] दे० 'तरबूजिया'।

तरबूजा—संज्ञा पु० [फा० तरबूज + ई (प्रत्य०)] १. दे० 'तरबूज'। २. ताजा फल।

तरबूजिया—वि० [हि० तरबूज] तरबूज के छिलके के रंग का। गहरा हरा। काही।

तरबूजिया^२—संज्ञा पु० गहरा हरा रंग।

तरबोना^१—क्रि० सं० [हि० तर + बोरना] तर करना। अच्छी तरह भिगोना।

तरबोना^२—क्रि० प्र० तर होना। भिगना।

तरबोर—वि० [हि०] दे० 'तरबोर'। उ०—बूढ़े गए तरबोर को कहुँ खोज न पाया।—मनु० पु० १८।

तरभरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. तड़भड़ की आवाज। २. खलबली।

तरभाची—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरवाची'।

तरमाना^१—क्रि० प्र० [देश०] बिगड़ना। नाखुश होना।

तरमाना^२—क्रि० सं० किसी को नाराज या नाखुश करना।

तरमाना^३—क्रि० प्र० [हि० तर + माना (प्रत्य०)] तर होना।

तरमाना^४—क्रि० सं० तर करना।

तरमानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह तरी जो जोती हुई भूमि में आती है।

क्रि० प्र०—माना।

तरमिरा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पोषा जो प्रायः डेढ़ दो हाथ ऊँचा होता है और पश्चिमी भारत में जो या चने के साथ बोया जाता है। तिरा। तिउरा।

विशेष—इसके बीजों से तेल निकलता है जो प्रायः जलाने के काम में आता है।

तरमीमा—संज्ञा स्त्री० [प्र०] संशोधन। दुरुस्ती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरग्या—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरई'। उ०—जो विशाखा की तरग्या चंद्रकला को बढ़ाई करती क्या अचभा है।—चकुंतला, पृ० ५१।

तरराना^१—क्रि० प्र० [अनु०] ऐठना। एड़ना।

तरलंग—वि० [सं० तरलङ्ग] चपल, चंचल। उ०—ये जेहल कीना अमर, ते दीना तरलंग।—बाकी० प्र०, भा० ३, पृ० ७।

तरल^२—वि० [सं०] १. हिलता डोलता। नलायमान। चंचल। चल। उ०—लखत सेत सारी उक्यो तरल तरीना कान।—बिहारी (शब्द०)। २. अस्थिर। अणुभंगुर। ३. (पानी की तरह) बहनेवाला। द्रव। ४. चमकीला। भास्वर। कातिवान्। ५. खोखला। पोला। ६. विस्तृत (की०)। ७. लपट (की०)।

तरल^३—संज्ञा पु० १. द्वार के बीच की मण्डि। २. द्वार। ३. हीरा। ४. लोहा। ५. एक देश तथा वहाँ के निवासियों का नाम (महाभारत)। ६. तल। पेंदा। ७. घोड़ा।

तरलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंचलता। २. द्रवत्व।

तरलनयन—संज्ञा पु० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार नगण होते हैं। उ०—नचत सुधर सखिन सहित। थिरकि थिरकि फिरत मुदित।

तरलभाव—संज्ञा पु० [सं०] १. पतलापन। २. चंचलता। चरसता।

तरला^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यवागू। जो को मड़। २. मदिरा। ३. मधुमक्षिका। शहद की मक्खी।

तरला^२—संज्ञा पु० [हि० तर] छाजन के नीचे का बाँस।

तरलाई^(३)—संज्ञा स्त्री० [सं० तरल + हि० लाई (प्रत्य०)] १. चंचलता। चपलता। २. द्रवत्व।

तरलायित^१—वि० [सं०] हिलाया हुआ। कँपाया हुआ। [की०]।

तरलायित^२—संज्ञा स्त्री० लहर। तरंग। हिलोर [की०]।

तरलित—वि० [सं०] १. तरल किया हुआ। उ०—कहो कैसे मन को समझा लूँ, ऊफा के मृत आघातों सा द्युति के तरलित ज्वालों सा, या वह प्रणय तुम्हारा प्रियतम।—इत्यलभ, पृ० २७।

तरवँछ⁺—संज्ञा स्त्री० [हि० तर + वँछ (प्रत्य०)] जुए के नीचे की एकड़ी जो बैलों के गले के नीचे रहती है। तरवाँची।

तरवट—संज्ञा पु० [सं०] एक क्षुप। आहुत्य। दंतकाष्ठक [की०]।

तरवड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला + डी (प्रत्य०)] छोटी तराजू का पलड़ा।

तरवन—संज्ञा पु० [सं० तालपण] १. कान में पहनने का एक गहना। तरकी। २. कर्णफूल।

तरवर^१—संज्ञा पु० [सं० तल्वर] बड़ा पेड़। वृक्ष।

तरवर^२—संज्ञा पु० [सं० तरवर] एक प्रकार का लंबा पेड़ जिसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।

विशेष—यह मध्यभारत और दक्षिण में बहुत पाया जाता है। इसे तरोता भी कहते हैं।

तरवरा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तिरमिला'।

तरवरिया—संज्ञा पु० [हि० तर वार] तलवार चलानेवाला।

तरवरिहा—संज्ञा पु० [हि० तरवार] दे० 'तरवरिया'।

तरवाँची—संज्ञा स्त्री० [हि० तर+माँचा] जुए के नीचे की लकड़ी ।
मचेरी ।

तरवाँसी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरवाँची' ।

तरवाँ—संज्ञा पुं० [हि० तलवा] दे० 'तलवा' । उ०—घेंगुरीन
लौ जाय भुलाय तहीं फिरि छाये लुभाय रहै तरवा । अपि
बायनि नूर ह्वै एड़िनि छ्वै अपि छाये छकै छवि छाये छवा ।
—घनानंद, पृ० ८ ।

तरवाई, सिरवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तर+सिर] ऊँची जमीन
और नीची जमीन । पहाड़ और घाटी ।

तरवाना^१—क्रि० प्र० [हि० तरवा+घाना] १. बैलों के तलवों
का चलते चलते घिस जाना जिससे वे खँगाते हैं । २. बैलों
का लँगड़ाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

तरवाना^२—क्रि० स० [हि० तारना का प्रेरण] तारने की प्रेरणा
करना ।

तरवारी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तलवार' ।

तरवार(उ)^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरवर' ।

तरवारी^३—वि० [हि० तर (= नीचा, तले) + वार (प्रत्य०)]
निचली । खलार (भूमि) ।

तरवारि—संज्ञा पुं० [मं०] खड्ग का एक भेद । तलवार । उ०—रोख न
रसना जनि खोलिए बह खोलिए तरवारि ।—तुलसी (शब्द०)

तरवारी^४—संज्ञा पुं० [हि० तरवार] तलवार चलानेवाला ।

तरस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल । २. वेग । ३. बानर । ४. रोग ।
५. तीर । तट ।

तरस्^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रस (= डरना) अथवा फा० तसं (= भय,
डर, खौफ)] दया । कृपा । रहम ।

क्रि० प्र०—माना ।

मुहा०—(किसी पर) तरस खाना = दयाग्रं होना । दया करना ।
रहम करना ।

विशेष—इस शब्द का यह अर्थ विपर्यय द्वारा आया हुआ जान
पड़ता है । जो मनुष्य भय प्रकाशित करता है, उसपर दया
प्रायः की जाती है ।

तरस्^२—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०] ।

तरसना^१—क्रि० प्र० [सं० तर्षण (= घमिलापा)] किसी वस्तु के
अभाव में उसके लिये इच्छुक और आकुल रहना । अभाव का
दुःख सहना । (किसी वस्तु को) न पाकर बेचैन रहना ।
जैसे,—(क) वहाँ लोग दाने दाने को तरस रहे हैं । (ख) कुछ
दिनों में तुम उन्हें देखने के लिये तरसोगे । उ०—बरसत बिनु
अँखियाँ तरस रहीं ।—(गीत) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

तरसना^२—क्रि० प्र० [सं० त्रस्] त्रस्त होना ।

तरसना^३—क्रि० स० त्रस्त करना । त्रास देना ।

तरसा—क्रि० वि० [सं० तरस्] क्षीघ्र । उ०—कमललोचन क्या
कल धा गए, पलट क्या कुकपास किया गई । मुरलिका फिर

क्यों बन में बजी । बन रसा तरसा बरसा सुधा ।—प्रिय०,
पृ० २२८ ।

तरसान—संज्ञा पुं० [मं०] नौका [को०] ।

तरसाना—क्रि० स० [हि० तरसना] १. अभाव का दुःख होना ।
किसी वस्तु को न देकर या न प्राप्त कराकर उसके लिये बेचैन
करना । २. किसी वस्तु की इच्छा और आशा उत्पन्न करके
उससे वंचित रखना । व्यर्थ ललचाना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—माँरना ।

तरसि—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तरसा' । उ०—तरसि पधार हुआ
सधारी । धीर सखी आधी प्रतधारी ।—रा०, पृ० १८ ।

तरसौहाँ^१—वि० [हि० तरसना + सौहाँ (प्रत्य०)] तरसनेवाला ।
उ०—तिय तरसौहैं मुनि किए करि सरसौहैं मेहु । घर परसौहैं
ह्वै रहे भर बरसौहैं मेहु ।—बिहारी (शब्द०) ।

तरस्वान्—वि० [सं० तरस्वत्] १. तेज गतिवाला । वेगवान् । २. वीर ।
३. बीमार तरुण [को०] ।

तरस्वान्^२—संज्ञा पुं० १. शिव । २. गरुड़ । ३. वायु [को०] ।

तरस्वी^१—वि० [सं० तरस्विन्] [वि० स्त्री० तरस्विनी] १. छट् ।
बली । उ०—बली, मनस्वी, तेजस्वी, सूर, तरस्वी जानि ।
ऊर्ज, प्रवणि, भास्वरि, मुभट, राधे जिन करि मान ।—नंद०
प्र०, पृ० ११३ । २. वेगवान् । फुर्तीला ।

तरस्वी^२—संज्ञा पुं० १. धावक । दूत । २. नायक । वीर । ३. पवन ।
वायु । ४. गरुड़ [को०] ।

तरह—संज्ञा स्त्री० [प्र०] प्रकार । भाँति । किस्म । जैसे—यहाँ तरह
तरह की चीजें मिलती हैं ।

मुहा०—किसी की तरह = किसी के सदृश । किसी के समान ।
जैसे,—उसकी तरह काम करनेवाला यहाँ कोई नहीं है ।

२. रचना प्रकार । ढाँचा । शैली । डील । पद्धति । बनावट ।
रूपरंग । जैसे,—इस छोट की तरह अच्छी नहीं है । ३. ढङ्ग ।
तर्ज । प्रणाली । रीति । ढंग । जैसे,—वह बहुत बुरी तरह से
पढ़ता है ।

मुहा०—तरह उड़ाना = ढंग की नकल करना ।

४. युक्ति । ढंग । उपाय । जैसे,—किसी तरह से उनसे
रुपया निकालो ।

मुहा०—तरह देना = (१) खयाल न करना । बधा जाना ।
विरोध या प्रतिकार न करना । अमा करना । जाने देना ।
उ०—इन तरह तें तरह दिए बनि धावै साईं ।—गिरिधर
(शब्द०) । (२) टालटाल करना । ध्यान न देना ।

५. हाल । दशा । अवस्था । जैसे,—आजकल उनकी क्या
तरह है ?

६. समस्या । पद्य का एक चरण ।

मुहा०—तरह देना = पूर्ति के लिये समस्या देना ।

७. न्यास । नींव । बुनियाद । ८. घटाना । बाकी । अवकलन ।
तफरीक । ९. वेकभूषा । पहनावा ।

तरहटी—संज्ञा स्त्री० [हि० तर (= नीचे) + हट (प्रत्य०)] १. नीची
भूमि । २. पहाड़ की तराई ।

तरहदार—वि० [घ० तरह + फा० दार (प्रत्य०)] १. सुंदर बनावट का। अच्छी चाल या ढाँचे का। जिसकी रचना मनोहर हो। जैसे, तरहदार छोट। २. मजबूतवाला। शौकीन। बजादार। जैसे, तरहदार आदमी।

तरहदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] बजादारी। सजधज का ढंग।

तरहर^१—क्रि० वि० [हि० तर + हर (प्रत्य०)] तले। नीचे। उ०—जम करि गुह तगर परचो इहि घर हरि चित लाइ। बिषय पिपा परिहरि अज्यो नर हरि के गुन गाइ।—बिहारी (शब्द०)।

तरहर^२—वि० १. नीचा। तले का। नीचे का। २. निकृष्ट। बुरा।

तरहरि^३—क्रि० वि० [हि० तर + हरि (प्रत्य०)] नीचे।

तरहा—संज्ञा पु० [हि० तर + हा (प्रत्य०)] १. कुर्मी खोदने में एक माप जो प्रायः एक हाथ की होती है। २. वह कपड़ा जिसपर मिट्टी फैलाकर कड़ा ढाखने का साँचा बनाते हैं।

तरहारि^४—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तरहर'।

तरहेल^५—वि० [हि० तर + हर, हल (प्रत्य०)] १. घसीन। निरन्तर। २. बग में माया हुआ। पराजित। उ०—तो चौपट खेती करि दीया। जो तरहेल होय सो नीया।—जायसी (शब्द०)।

तरांधु—संज्ञा पु० [सं० तरांधु] जोड़े पैदे की नाव (को०)।

तरा^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तराना'।

तरा^२—अव्य [सं० तरा] तब। उ०—मन्ती जरां विवाह री, तरां विचारी जल। रा० रू०, पृ० ८२।

तरा^३—संज्ञा पु० [देश] पट्टा। पटसन।

तरा^४—संज्ञा पु० [हि० तरा] १. दे० 'तरा'। २. दे० 'तरावा'।

तराई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तरा (= नीचे) + आई (प्रत्य०)] १. पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ के नीचे का वह मैदान जहाँ सीढ़ या तगी रहती है। जैसे, नैताल की तराई। २. पहाड़ी की पाटी। ३. मूँज के मुँठे जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं।

तराई^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तारा] तारा। नक्षत्र।

तराई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० तराई] छोटा ताल। तलेगा।

तराच^४—संज्ञा स्त्री० [फा० तराच (= काट छोट)] १. 'तराण'। उ०—अंतर कारि कागज कले, एजी कोई ऊंगली तराच कलम।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० १४५।

तराजू—संज्ञा स्त्री०, पु० [फा० तराजू] रस्सियों के द्वारा एक सीधी डींड़ी के छोरों से बंधे हुए दो पलड़ों का एक यंत्र जिससे वस्तुओं की तोल मासूम करते हैं। तोलने का यंत्र। तुला। तकड़ी।

मुहा०—तराजू हो जाना = (१) तीर का निशाने के इस प्रकार धारदार घुसना कि उसका आधा भाग एक ओर, और आधा दूसरी ओर निकला रहे। (२) दो सैनिकों का इस

प्रकार ठीक ठीक बराबर होना कि एक दूसरे को परास्त कर सके।

तराटक^५—संज्ञा पु० [सं० त्राटक] दे० 'त्राटक'। उ०—त्रिकुट संग भ्रूमंग तराटक नैन नैन लगि लागे।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० ११८।

तरातर^६—वि० [फा० तर (= गीला)] अत्यंत गीला। भारं उ०—चलत पिचुका घर पिचकारी करत तरातर।—प्रेमघन०, आ० १, पृ० ३४।

तरात्यथ—संज्ञा पु० [सं०] बिना आजा लिए नदी पार करने का जुरमाना (को०)।

तराना^१—संज्ञा पु० [फा० तरानह्] १. एक प्रकार का चलता गान जिसका बोल इस प्रकार का होता है—दिर दिर ता दि भ ना रे ते दी मू ता दी मू ता ना ना दे रे ता दा रे बा नि त ना ना के रे ना ता ना ना दे रे ना ता ना ना ता ना तो देर ता रे दा नी।

विशेष—तराना हर एक राग का हो सकता है। इसमें कभी कभी सरगम धीरे तबले के बोल भी मिला दिए जाते हैं।

२. कोई अच्छा गाना। बढ़िया गीत।—(कव०)।

तराना^२—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तराना'।

तराना^३—क्रि० प्र० [हि० तर से नामिक घातु] दे० 'तरिधाना'।

तराप^४—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़ाक शब्द। बंदूक, तोप आदि का शब्द। उ०—सैन अफमान रीन सगर मुसन लागी कपिल मरप ली तराप तोपखाने की।—भूषण (शब्द०)।

तरापा^५—संज्ञा पु० [अनु०] हाहाकार। कुहराम। ज़ाहि ज़ाहि। उ०—परी धर्मसुत शिविर तरापा। गजपुर सकल शोकवस काँपा।—सबलसिंह (शब्द०)।

तरापा^६—संज्ञा पु० [हि० तरना] पानी में तैरता हुआ शब्दीर। बेड़ा।—(लश०)।

तराबोर—वि० [फा० तर + हि० बोरना; शुद्ध रूप फा० बाराबोर] खूब मीठा हुआ। खूब डूबा हुआ। सराबोर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरामल—संज्ञा पु० [हि० तर (= नीचे)] १. मूँज के वे मुँठे जो छाजन में खपरेल के नीचे दिए जाते हैं। २. जुए के नीचे की लकड़ी।

तरामीरा—संज्ञा पु० [देश०] सरसों की तरह का एक पोषा जिसके बीजों से तेल निकलता है।

विशेष—उत्तरीय भारत में जाड़े की फसल के साथ इसके बीज बोए जाते हैं। रबी की फसल के साथ इसके दाने भी पक जाते हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। तेल निकाले हुए बीजों की खली भी चौपायों को खिलाई जाती है। इसे दुर्भा भी कहते हैं।

तरायल^७—वि० [देश०] तेज। वेगवान्। फुर्तीला। त्वरावान्। शीघ्रग। उ०—आगे आगे तबन तरायले चलठ चले।—भूषण ग्रं०, पृ० ७३।

तरारा^१—संज्ञा पुं० [देश० या धनु० ?] १. उधाल। छलांग। कुलाच।
क्रि० प्र०—भरना।—मारना।

मुहा०—तरारा भरना=जल्दी जल्दी काम करना। फरटि के साथ काम करना। तरारा मारना=बीग हाकना। बढ़ बढ़कर बातें करना।

२. पानी की धार जो बराबर किसी वस्तु पर गिरे।

तरारा^२—वि० [क्रा० तर+हि० घारा (प्रत्य०)] सीला। सजल। घाट्रं। उ०—घाट्र जब मोहन रंग भरे। क्यों मो नैन तरारे करे।—नंद० प्र०, पु० १५२।

तरालु—संज्ञा पुं० [सं०] छिछले पेंथे की एक बड़ी नाव [को०]।

तरावट—संज्ञा स्त्री० [क्रा० तर+हि० घावट (प्रत्य०)] १. गीघापन। तमी। २. ठंडक। शीतलता। जैसे,—घिर पर पानी पड़ने से तरावट आ गई।

क्रि० प्र०—घाना।

३. क्वांत चित्त की स्वस्थ करनेवाला शीतल पदार्थ। शरीर की गरमी खांत करनेवाला आहार पदार्थ। ४. स्थिर भोजन। जैसे, पी, दूध आदि।

तराश—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. काटने का ढंग। काठ। २. काट-छाँट। बनावट। रचनाप्रकार।

थी०—तराश खराश।

३ ढंग। लज्ज। ४. लाल या गंजीके का वह पत्ता जो दाढ़ने के बाद हाथ में धावे।

तराश खराश—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] काटछाँट। कतरब्योत। बनावट।

तराशना—क्रि० स० [क्रा०] काटना। कतरना। कलम करना।

तरास^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रास] दे० 'त्रास'।

तरास^२—संज्ञा स्त्री० [क्रा० तरास] दे० 'तरास'।

तरासना^१—क्रि० स० [सं० त्रास + ना (प्रत्य०)] धम दिखलाना डराना। त्रस्त करना। उ०—जमक बीजु धन गन्धि तरासा। बिरसु काल होइ सीध तरासा।—जायसी (शब्द०)।

तरासा^१—वि० [सं० तृपिड] व्यासा।

तरासा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] व्यासा।

तराहि^१—अव्य० [सं० त्राहि] दे० 'त्राहि'।

तराही^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तरे'।

तरिवा—संज्ञा पुं० [हि० तरना + ईवा (प्रत्य०)] वह पीपा जो समुद्र में किसी स्थावर पर जमर के द्वारा बाँध दिया जाता है और सहुरों के ऊपर बतराया रहता है।—(लश०)।

विशेष—ये पीपे बट्टान आदि की सुचना के लिये बाँधे जाते हैं और कई आकार प्रकार के होते हैं। इनमें से किसी किसी में बंटा, सीटी आदि भी धगी रहती है।

तरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नौका। नाव। २. कपड़ों का पिटारा। ३. कपड़े का छोर। बामन।

तरिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल में तैरनेवाली लकड़ी। वेड़ा। २.

४-४७

नाव का महसूत लेनेवाला। उतराई लेनेवाला। ३. मल्लाह। केवट। माँझ।

तरिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाव। नौका। २. मक्खन [को०]

तरिका^२—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिडित्] बिजली। विद्युत।

तरिकी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगिन्] माँझ। मल्लाह [को०]।

तरिको^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगिन्] कान का एक गहना। तरकी। तरौना। उ०—नैन नीचे दूर नीमरि को मोती बगरि उड़े सब बन में गयो कान को तरिको।—मूर (शब्द०)।

तरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरणी [को०]।

तरिता^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरांती उँगली। २. भाँग। ३. गीजा।

तरिता^२—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिगिन्] बिजली। उ०—भरपे भरी कंधे कटै तरिता तरौ पुनि लाल छटा में धिरी।—पद्मनैस (शब्द०)।

तरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] (स्त्री० तरित्री) बड़ी नाव। नौका। पोत। [को०]।

तरित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] नार। नौका [को०]।

तरिया^१—[हि० तरना] दे० 'तरा'।

तरियाना^१—क्रि० स० [हि० तरे (—तीचे)] १. तीचे कर देना। तीचे हल देना। सहू से बेठा देना। २. ठाँकना। क्षिपाना। ३. झूठ से पेंथे में मिट्टी बांध आदि पोतना जिससे आँध पर चढ़ाने से हसरत काटिख न चमे। पोतना लगाना।

तरियाना—क्रि० स० तले बैठ जाना। सहू से जमना।

तरियाना^२—क्रि० स० [सं० तरे में नाभिः धानु] तर करना। गोसा करना।

तरिचन—संज्ञा पुं० [हि० तरे] १. जल का एक गहना। जो फूज के आकार का होता है। नौका।

विशेष—इसका बन्धन जल के तल में रहता है, ताड़ के पत्ते की लोटेका—आकार का है।

२. झण्डा।

तरिचर^१—संज्ञा पुं० [सं० तरे] दे० 'तरिचर'।

तरिहंत—[सं० तरे] दे० 'तरिहंत'। उ०—बुद्धि जो तरे तरे दिव्य बीराई। एवं गयो तरिहंत छिर नाई।—जायसी (शब्द०)।

तरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाव। नौका। २. पवा। ३. कपड़ा रखने का पिटारा। पीटा। ४. धूँसी। धूस। ५. कपड़े का छोर। बामन।

तरी^२—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. गीलापन। घाट्रं। २. ठंडक। शीतलता। ३. वह नीची भूमि जहाँ बरसात का पानी बहुत दिनों तक इकट्ठा रहता हो। कट्टार। ४. तराई। तरहटी। ५. समुद्र। बनावट। मालगारी।

तरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० तर (—तीचे)] १. जल का तला। २. तलछट। तलौड़।

तरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ताड़] कान का एक गहना । तरिवन । कण्ठफूल । उ० काने कनक तरी बर बेसरि सोहहि । - तुलसी (शब्द०) ।

तरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] चाल । दृग्गल । उ०—जैसे सुंदर कमल को हंस ग्रहण करे तैसे पिता का चरण ग्रहण किया । जैसे कमल के तरे कोमल तरियाँ होती हैं, तिन तरियों सहित कमल को हंस पकड़ता है, तैसे दशरथ जी की घेंगुरीन को राम जी ने ग्रहण किया । -योग०, पृ० १३ ।

तरीक^१—क्रि० वि० [देश० तड़का, तड़के] प्रातःकाल । तड़का । सबेरा । उ०—कहै साहि गोरी गद्य ग्रहो पान तत्तार । कलिह तरीक सुउंच दिन चढ़ि भरि सद्गो सार । -पृ० रा०, ६।६३ ।

तरीक^२—संज्ञा पुं० [अ० तरीक] १. मार्ग । रास्ता । शीश । रविश । उ०—बाद बड़े हजरते सेखे शफीक, वाकिफे असरारे हुक हादी तरीक । -दक्खिनी०, पृ० २०३ । २. परंपरा । रिवाज । ३. धर्म । मजहब । ४. युक्ति । तरीकब । ५. नियम । दस्तूर ।

तरीकत—संज्ञा स्त्री० [अ० तरीकत] १. आत्मशुद्धि । अंतःशुद्धि । दिल की पवित्रता । २. ब्रह्मज्ञान । अर्थात्मा । तसब्बुक । उ०—यूँ ले निद्रा मुख सपने का जागा कन बैठे, राह तरीकत मारण उनके मुस्तैद होकर उठे । -दक्खिनी०, पृ० ५५ ।

तरीका—संज्ञा पुं० [अ० तरीकह] १. ढंग । विधि । रीति । प्रकार । ठब । २. चाल । व्यवहार । ३. युक्ति । उपाय । तदबीर । तरीकब ।

तरीष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूजा गोबर । २. नौका । नाव । ३. पानी में बहनेवाला तख्ता । बेड़ा । ४. समुद्र । ५. व्यवसाय । ६. स्थग । ७. कुशल शक्ति (को०) । ८. सजावट (को०) । ९. सुंदर आकार या आकृति (को०) ।

तरीषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की कन्या ।

तरु^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष । पड़ । २. गति । वेग (को०) । ३. काठ का एक पात्र जिसमें मोम लिया जाता था (को०) । ४. एक प्रकार का चीड़ जिसके पेड़ खगिया की पहाड़ी, चटगाँव और बरमा में होते हैं ।

विशेष—इसमें से जो विरोजा या गोंद निकलता है, वह सबसे अच्छा होता है । तारपीन का तेल भी इससे बहुत अच्छा निकलता है ।

तरु^२—वि० रक्षक । रक्षा करनेवाला ।

तरुआ^१—संज्ञा पुं० [देश०] उबाले हुए पान का चायन । भुजिया चावल ।

तरुआ^२—संज्ञा पुं० [हि० तलवा] दे० 'तलवा' ।

तरुटी^१—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'शुटि' । उ०—मंडारा समाप्त हो गया । कोई तरुटी नहीं हुई । -मैला०, पृ० ४८ ।

तरुण^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तरुणी] १. युवा । जवान । २. नया । भूतन ।

तरुण^२—संज्ञा पुं० १. बड़ा जीरा । स्थूल जीरक । २. एरंड । रेंड । ३. कूजा का फूल । मोतिया ।

तरुणक—संज्ञा पुं० [सं०] अंकुर [को०] ।

तरुणस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्वर जो सात दिन का हो गया हो ।

तरुणतरणि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरुण सूर्य' ।

तरुणदधि—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच दिन का दही ।

विशेष—वेद्यक के अनुसार ऐसा दही खाना हानिकारक है ।

तरुणपीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल ।

तरुणसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न का सूर्य ।

तरुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती । उ०—भव भ्रमं की तरणी तरुणा । बरसीं तुम नयनों से करुणा । -अर्चना०, पृ० १ ।

तरुणई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + आई (प्रत्य०)] युवावस्था । जवानी ।

तरुणाना^१—क्रि० अ० [सं० तरुण + आना (प्रत्य०)] जवानी पर आना । युवावस्था में प्रवेश करना ।

तरुणास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतली लचीली हड्डी ।

तरुणिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणिमन्] जवानी [को०] ।

तरुणी^१—वि० स्त्री० [सं०] युवती । जवान स्त्री ।

तरुणी^२—संज्ञा स्त्री० १. युवती । जवान स्त्री ।

विशेष—धावप्रकाश के अनुसार १६ वर्ष से लेकर ३२ वर्ष तक की स्त्री को तरुणी कहना चाहिए ।

२. धोकूपार । धारपाठा । ३. दंती । जमालगोटा । ४. चीड़ा नामक गंधद्रव्य । ५. कूजा का फूल । मोतिया । ६. मेघ राग की एक रागिनी ।

तरुणीकटाक्षमाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिलक वृक्ष ।

विशेष—कवि समय के अनुसार तिलक का वृक्ष तरुणियों की कटाक्ष दृष्टि से पुष्पित होता है । अतः इसका एक नाम 'तरुणीकटाक्षमाल' है ।

तरुतूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगावड़ ।

तरुन^१—संज्ञा पुं० [सं० तरुण] दे० 'तरुण' ।

तरुनई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तरुन + ई (प्रत्य०)] दे० 'तरुनाई' ।

तरुना^१—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'तरुण' । उ०—ऐसे बिरह बिकल कन बैन । सुनि कै तरुना कहना ऐन । -नंद ग्रं०, पृ० ३२१ ।

तरुनई^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + हि० आई (प्रत्य०)] तरुणावस्था । जवानी ।

तरुनापा^१—संज्ञा पुं० [सं० तरुण + हि० आपा (प्रत्य०)] युवावस्था । जवानी । उ०—बालापन खेलन में खोयो तरुनापी गरबानी । -सूर (शब्द०) ।

तरुनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणी] दे० 'तरुणी' । उ०—ब्रज तरुनि रमन आनंदधन वातकी निसद भवभुत अखंडित जगत जानी । -घनानंद, पृ० ३८६ ।

तरुबाँही^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तरु + हि० बाँह] पेड़ की भुजा । शाखा । डाल । उ०—इक संशय फल है तरु माहीं । पाँच कोटि दल हैं तरुबाँही । -सदल मिश्र (शब्द०) ।

तरुभुक्—संज्ञा पुं० [सं० तरुभुक्] बंदाक । बाँदा ।

तरुभुज—संज्ञा पुं० [सं० तरुभुक्] दे० 'तरुभुक्' ।

तहराग—संज्ञा पुं० [सं०] नया कोमल पत्ता । किसलय ।
 तहराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कल्पवृक्ष । २. ताड़ का वृक्ष ।
 तहरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा ।
 तहरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा । बंदाक ।
 तरुधर—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष ।
 तरुवरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरवारि] तलवार ।
 तरुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका लता । पानड़ी ।
 तरुवासिनी—वि० [सं० तरु + वासिनी] पेड़ पर रहनेवाली । उ०—
 झूक उठी सहसा तरुवासिनी ! गा तू स्वागत का गाना । किसने
 तुझको अंतर्धामिनि ! बतलाया उसका आना ?—वीणा,
 पृ० ५८ ।
 तरुसार—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।
 तरुस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा ।
 तरुट, तरुट—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़ । असीड़ । मुरार ।
 तरेंदा—संज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १. पानी में तैरता हुआ काठ । वेड़ा ।
 २. वह तैरनेवाली वस्तु जिसका सहारा लेकर पार हो सकें ।
 उ०—सिंह तरेंदा जेइ गहरा पार भयो तिहि साथ । ते पय
 बूके बारि हो भेंड पूछ जिन हाथ ।—जायसी (शब्द०) ।
 तरे^१—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे । तले ।
 मुहा०—(किसी के) तरे बैठना = (किसी को) पति बनाना ।
 तरे^२—वि० [हिं०] दे० 'तरह' । उ०—बाने की लाज राख्यो
 तुमसे है सब इलाखी । गलबाहियाँ आनि नाखी रम उस तरे
 ही चाखी ।—ब्रज ४०, पृ० ४४ ।
 तरेटा^१—संज्ञा पुं० [हिं० तर + टाट (प्रत्य०)] नाभि के नीचे का
 हिस्सा । पेड़ू ।
 तरेटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर] पर्वत के नीचे की भूमि । तराई ।
 तरहुटी । तलहुटी । घाटी ।
 तरेड़ा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'तररा', 'तरारा' ।
 तरेरना—क्रि० सं० [सं० तर्ज (= डाटना) + हिं० हेरना (= देखना)]
 आँखों को इस प्रकार करना जिससे क्रोध या अप्रसन्नता प्रकट
 हो । दृष्टि कुपित करना । आँख के इधारे से डीट बताना ।
 दृष्टि से असम्मति या असंतोष प्रकट करना । उ०—मुनि
 अछिमन बिहूँसे बहुरि नयन तरेरे राम ।—मानस, १।२७८ ।
 विशेष—कर्म के रूप में इस शब्द के साथ आँख या उसके
 पर्यायवाची शब्द आते हैं ।
 तरेरा^१—संज्ञा [सं० तरारह] लहरों का थपेड़ा ।
 तरेरा^२—संज्ञा पुं० [हिं० तरेरना] क्रुद्ध दृष्टि ।
 तरेसा^१—संज्ञा पुं० [सं० तय + ईश, या देश] कल्प वृक्ष । उ०—दंड-
 काल करंसा तरेस सी गणेश पैत ।—रघु० क०, पृ० २४६ ।
 तरेनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर (= नीचे) + ऐनी (प्रत्य०)] वह पत्थर
 जो हरिस और हल को मिलाने के लिये दिया जाता है ।
 तरेयाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरई' ।
 तरेखा—संज्ञा पुं० [हिं० तरे] किसी स्त्री के दूसरे पति का पुत्र ।

तरैली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरैनी' ।
 तरोंचा^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे + ओंच (प्रत्य०), या देश०]
 १. कंधी के नीचे की लकड़ी । २. दे० 'तरौछ' ।
 तरोंचा^२—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे)] [स्त्री० तरोंची] जुए के नीचे
 की लकड़ी ।
 तरोंडा—संज्ञा पुं० [देश०] फसल का उतना अनाज जितना हलवाहे
 आदि मजदूरों को देने के लिये निकाल दिया जाता है ।
 तरौई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरई' ।
 तरौता—संज्ञा पुं० [सं० तरवट] एक लंबा पेड़ जो मध्यभारत और
 दक्षिण भारत में पाया जाता है । इसकी छान चमड़ा सिक्काने
 के काम में आती है । इसे 'तखर' भी कहते हैं ।
 तरौना^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरौना' । उ०—प्रभा तरौना लाल
 की परी कपोलन आनि । कहा छपावत चतुर तिय कंत दंत
 छत जानि ।—नंद० प्र०, पृ० ३३५ ।
 तरौवर, तरौवर^२—संज्ञा पुं० [सं० तरवर] दे० 'तखर' । उ०—
 रोम रोम प्रति गोपिका ह्वी गई सविरे गात । काम तरौवर
 सविरी, ब्रज बनिता ही पत ।—नंद० प्र० पृ० १८६ ।
 तरौछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + ओछ (प्रत्य०)] तलछट ।
 तरौछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + ओछी (प्रत्य०)] १. वह लकड़ी
 जो हथे में नीचे की तरफ लगी रहती है ।—(जुलाहे) । २.
 बैलगाड़ी में लगी हुई वह लकड़ी जो सुजावा के नीचे
 रहती है ।
 तरौंटा—संज्ञा पुं० [हिं० तर + पाट] आटा पीसने की चक्की का
 नीचेवाला पाट । आटे के नीचे का पत्थर ।
 तरौंता—संज्ञा पुं० [हिं० तर + ओंता (प्रत्य०)] छाजन में वे
 लकड़ियाँ जो ठाठ के नीचे हो जाती हैं ।
 तरौंस^१—संज्ञा पुं० [हिं० तर + ओंस (प्रत्य०)] तट । तीर ।
 किनारा । उ०—म्याम सुरास करि राधिका तकति तरनिजा
 तीर । अमुनि करति तरौंस को अक्रिन्त खरौंदो नीर ।—
 बिहारी (शब्द०) ।
 तरौना^२—संज्ञा पुं० [हिं० ताड़ + बना] १. कान में पहनने का एक
 गहना जो फूल के आकार का गोल होता है । तरकी ।
 (इसका वह भंग जो कान के छेद में रहता है, ताड़ के पत्ते
 को मोम लपेटकर बनाया जाता है) ।
 विशेष—दे० 'तरकी', 'ताड़क' ।
 २. कर्णफूल नाम का आभूषण । उ०—लसत सेत सारी डक्यो
 तरल तरौना कान ।—बिहारी (शब्द०) ।
 तरौना^३—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे)] वह मोटा जिसपर मिठाई
 का खोला रखा जाता है ।
 तर्क^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु के विषय में अज्ञात तत्त्व को
 कारणोपपत्ति द्वारा निश्चित करनेवाली उक्ति या विचार ।
 हेतुपूर्ण उक्ति । विवेचना । वलील ।

विशेष—तर्क न्याय के सोलह पदार्थों (विषयों) में से एक है । जब किसी वस्तु के संबंध में वास्तविक तत्त्व ज्ञात नहीं होता, तब उस तरह के ज्ञानार्थ (किसी निगमन के पक्ष में) कुछ हेतुपूर्ण युक्ति भी जाती है जिसमें विशद निगमन की प्रत्युपपत्ति भी दिखाई जाती है । ऐसी युक्ति को तर्क कहते हैं । तर्क में शंका का होना भी आवश्यक है, क्योंकि जब यह शंका होगी कि बात ऐसी है या वैसी, तभी वह हेतुपूर्ण युक्ति भी जायगी जिसमें यह निरूपित किया जायगा कि बात का ऐसा होना ही ठीक है, वैसा नहीं । जैसे, शंका यह है कि आत्मा नित्य है या अनित्य । यहाँ आत्मा का अर्थ क्या ज्ञात नहीं है । इसका अर्थ रूप निश्चित करने के लिये हम इस प्रकार विवेचना करते हैं,—यदि आत्मा अनित्य होती तो अपने कर्म का फल न प्राप्त कर सकती और उसका आवागमन या मोक्ष न हो सकता । पर हम सब बातों का होना समझ ही है । अतः आत्मा नित्य है, ऐसा मानना ही पड़ता है ।

२. अमलकारपूर्ण ब्रह्म । ब्रह्म की बात । बोध की बात । चतुराई से भरी बात । उ०—प्यारी को मुख थोड़े के पठ पोंछि संवारयो । तरफ बात बहुत कही कुछ सुधि न संभारयो । —सूर (शब्द०) । ३. व्यंग्य । ताना । उ०—ते सब तर्क बोलि हैं मोकी तारों बहुत बेराज । —सूर (शब्द०) । ४. चारणा । अनुमान (को०) । ५. विचार । विचारणा । ऊहा । तर्क (को०) । ६. गुट या स्तत्र चित्तन के आधार पर स्थापित विचार व्यवस्था (को०) । ७. छद्म की संख्या (को०) । ८. कारण (को०) । ९. इच्छा । धाकाला (को०) । १०. न्यायशास्त्र (को०) । ११. ज्ञान (को०) । १२. अर्थवाद (को०) ।

यौ०—तर्कशील = तर्क में प्रवीण । तार्किक । तर्क करनेवाला । उ०—प्राचीन हिंदू बड़े तर्कशील थे । —हिंदु० सभ्यता पृ० ६२ ।

तर्क^१—संज्ञा पुं० [म०] १. त्याग । मोहना । २. छूटना ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—तर्कप्रदय = प्रसिद्धता । अर्थ, अर्थ । तर्कमुत्पन्न = साधु या फकीर हो जाता ।

तर्कक—संज्ञा पुं० [म०] १. तर्क करनेवाला । तर्कशास्त्री । तार्किक । २. याचक । मंगता ।

तर्कण—संज्ञा पुं० [सं०] वि० तर्कलोच, नवयं । तर्क करने की क्रिया । बहस करने का काम ।

तर्कणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विषय । विवेचना । ऊहा । २. युक्ति । दलील ।

तर्कना^१—संज्ञा स्त्री० [म० तर्कणा] १. 'तर्कणा' ।

तर्कना^२—क्रि० प्र० [म० तर्क + ना (प्रत्य०)] तर्क करना ।

तर्कना^३—क्रि० प्र० [हि०] उद्वेगना । डरना ।

तर्कमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा ।

तर्कवितर्क—संज्ञा पुं० [म०] १. ऊहापोह । विवेचना । सोच विचार । २. वाद विवाद । बहस ।

क्रि० प्र०—करना ।

तर्कविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्कशास्त्र । [को०] ।

तर्कश—संज्ञा पुं० [फा०] तीर रखने का चोंगा । माथा । तूणीर ।

तर्कशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शास्त्र जिसमें ठीक तर्क या विवेचना करने के नियम आदि निरूपित हों । छिटातों के खंडन मंडन की शैली बतानेवाली विद्या । २. न्याय शास्त्र ।

तर्कस—संज्ञा पुं० [फा० तरकस] दे० 'तर्कश' ।

तर्कसी—संज्ञा स्त्री० [फा० तरकस] छोटा तरकश ।

तर्की—संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्क [को०] ।

तर्कीट—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षुक । याचक [को०] ।

तर्कीतीत—वि० [सं०] तर्क से परे । उ०—तर्कीतीत श्रद्धा से हटकर एक बुद्धिसंगत, लौकिक, मानववादी नैतिक बोध का रूप लिया ।—नदी०, पृ० १०१ ।

तर्कीभास—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तर्क जो ठीक न हो । कुतर्क ।

तर्कारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धंगू का बूझ । धरणी बूझ । २. बैत का पेड़ ।

तर्कारी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरकारी' ।

तर्किण—संज्ञा पुं० [म०] चकवेंड़ । पेंवार ।

तर्किल—संज्ञा पुं० [सं०] चकवेंड़ । पेंवार ।

तर्की^१—संज्ञा पुं० [म० तर्किन] [स्त्री० तर्किनी] तर्क करनेवाला ।

तर्की^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] तरकी । पक्षी ।

तर्की^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरकी' ।

तर्कवि—संज्ञा स्त्री० [हि० तरकीब] दे० 'तरकीब' ।

तर्कु—संज्ञा पुं० [सं०] तकला । टेकुमा ।

यौ०—तर्कुशाण = सान करने का पत्थर ।

तर्कु^१—वि० [सं०] निवेदन करनेवाला । प्रार्थी [को०] ।

तर्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] काटना [को०] ।

तर्कुटो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तकल । टेकुमा । २. काटना [को०] ।

तर्कुपिठ, तर्कुपीठ, तर्कुपीठी—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुपिण्ड] तर्कने की फिरकी ।

तर्कुल—संज्ञा पुं० [सं० ताड + कुल] १. ताड़ का पेड़ । २. ताड़ का फल ।

तर्क्य—वि० [सं०] जिसपर कुछ सोच विचार करना आवश्यक हो । विचार्य । चिंत्य ।

तर्क्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदुषा या चोता नामक जंतु ।

तर्क्य^२—संज्ञा पुं० [सं०] जवालार नामक ।

तर्कशा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तर्कश' । उ०—ना तर्कश न चल खडो न सिपर तलवारि ।—प्राण०, पृ० २८६ ।

तर्ज—संज्ञा पुं०, स्त्री० [म० तर्ज] १. प्रकार । किस्म । तरह । २. रीति । शैली । ढंग । ढब । जैसे, बातचीत करने का तर्ज । जैसे,—इस छोट का तर्ज अच्छा नहीं है ।

तर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्जित] १. धमकाने का कार्य । भयप्रदर्शन । २. क्रोध । ३. तिरस्कार । फटकार । डाँट छपट ।

यौ०—तर्जनं गर्जनं = डीट फटकार । क्रोधप्रदर्शन ।

तर्जना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तर्जन' [को०] ।

तर्जना^२—क्रि० प्र० [सं० तर्जन] डीटना । धमकाना । डपटना ।

तर्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घंगूठे के पास की उँगली । घंगूठे और मध्यमा के बीच की उँगली । प्रवेशिनी । उ०—इहाँ कुम्हड़ बतिया जोड़ बाहीं । जे तर्जनी देखि मरि जाहीं ।—तुलसी (चम्पू) ।

विशेष—इसी उँगली से किसी वस्तु की ओर दिखाते या इशारा करते हैं ।

तर्जनीमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा जिसमें बाएँ हाथ की मुठ्ठी बाँधकर तर्जनी और मध्यमा को फैलाते हैं ।

तर्जिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम । तार्जिक देश ।

तर्जित—वि० [सं०] १. डीटा या फटकारा हुआ । धमकाया हुआ । २. अपमानित । तिरस्कृत [को०]

तर्जुमा—संज्ञा पुं० [सं०] भाषांतर । उल्था । अनुवाद ।

तर्जु—संज्ञा पुं० [सं०] गाय का बछड़ा । बछवा ।

तर्जुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुरंत जन्मा हुआ गाय का बछड़ा । २. शिशु । बच्चा ।

तर्जि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तर्जि' ।

तर्जरीक^१—संज्ञा पुं० [सं०] बाव ।

तर्जरीक^२—वि० १. पार जानेवाला । २. पार ले जानेवाला (को०) ।

तर्जू—संज्ञा स्त्री० [सं०] डोई [को०] ।

तर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्पणीय, तर्पित, तर्पी] १. तृप्त करने की क्रिया । संतुष्ट करने का कार्य । २. कर्मकांड की एक क्रिया । जिसमें देव, ऋषि और पितरों को पुण्य करने के लिये दान या प्रदक्षिणा से पानी देते हैं ।

विशेष—अध्यात्म स्नातक के पीछे तर्पण करने का विधान है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

१. दान की धर्म का ईक्षण (को०) । ४. भोजन । आहार (को०) ।

२. भस्म में तेल डालना (को०) ।

तर्पणी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिरनी का वृक्ष । २. गंगा नदी ।

तर्पणी^२—वि० तृप्ति देनेवाली ।

तर्पणीय—वि० [सं०] तृप्ति के योग्य ।

तर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पपचारिणी अर्थात् स्थापन करानेवाली ।

तर्पणेच्छु^१—वि० [सं०] १. तर्पण करने की इच्छा । २. तर्पण कराने की इच्छा [को०] ।

तर्पणेच्छु^२—संज्ञा पुं० धीम्म [को०] ।

तर्पित—वि० [सं०] तृप्त किया हुआ । संतुष्ट किया हुआ ।

तर्पी—वि० [सं० तर्पित्] [वि० स्त्री० तर्पिणी] १. तृप्त करनेवाला । संतुष्ट करनेवाला । २. तर्पण करनेवाला ।

तर्फ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरफ' । उ०—क्या हुआ पार छिप

गया किस तरफ । इक भल्ल ही मुझे दिखा करके ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २२० ।

तर्बट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चकवैट । पंवार । २. चांद्र वरसर । वर्ष ।

तर्बियत—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिखा दीक्षा । उ०—आप ही की तालीम और तर्बियत का यह पसंद है ।—अमरक, भा० २, पृ० ६१ ।

तर्बूज—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरबूज' ।

तरयोना(१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरीना' ।

तरयोना(२)—संज्ञा पुं० [हि० तरीना] दे० 'तरीना' । उ०—मज्जी तरयोना ही रह्यो धुनि धेवत इकरण बरक बाम बेसरि गह्यो बमि मुकुतनि के मंग ।—बिहारी ४, दो० २० ।

तर्रा—संज्ञा पुं० [देश०] आदुक या पीटा या डारी जो छड़ी से बँधी रहती है ।

तर्राता—संज्ञा पुं० [सं० तराता] एक प्रकार का धागा । दे० 'तराता' ।

तर्राता^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'चरना' ।

तर्रा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे भैंसे बड़े प्रेम से खाते हैं ।

तर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभिधाया । २. दृष्टा । अज्ञोष । उ०—देव शोक भँदेहु मय हर्ष तम तर्ष भव पाषु मयुक्ति बिच्छेदकारी ।—तुलसी (चम्पू) । ३. वेद । ४. मनुष्य । ५. सूर्य ।

तर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] कण का एक भेद ।—माधव, पृ० ५८ ।

तर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्षित] १. पिपासा । प्यास । २. अभिधाया । इच्छा ।

तर्षित—वि० [सं०] १. प्यासा । २. जो साजगता किए हुए । इच्छुक ।

तर्षुल—वि० [सं०] दे० 'तारुल' [को०] ।

तर्स—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरस' । उ०—तर्स है यह देर से, झल्ले बड़ा शृंगार में ।—वेद, पृ० ६७ ।

तर्ह—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तरह' ।

यौ० तर्ह दशावत = तर्ह दशावत = नव आनेवाला । बुनियाद रखनेवाला ।

तर्हदारा—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्ह दारा = दारी (दरबार)] १. बाँकापन । व्यर्थीबापन । साजगता । २. हाथ साज । नाज नखरा । ३. हुस्न । सोदर । उ०—इसी तर्ह तर्हदारी है । सब कह्यो किससे आनन्द नई पायो है ।—अमरक, भा० २, पृ० १३४ ।

तर्ह(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्ह] दे० 'तरह' । उ०—काशी मंडल धरो पाय बहोत तर्ह से मनाय ।—दक्खिनी, पृ० ४६ ।

तल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे का भाग । २. पैदा । तल । ३. जल के नीचे की भूमि । ४. वह स्थान जो किसी वस्तु के नीचे पड़ता हो । वैसे, तरास ।

मुहा०—तल करना = नीचे बहा देना । धिमा लेना ।—(जुमारी) ।

५. पैर का तल । ६. हृदय में । ७. जल । ८. किसी वस्तु का बाहरी पैरा । ९. बरत । १०. प्रसन्न । ११. सतह । जैसे,—भूतल, धरातल, समतल । १२. स्वरूप । स्वभाव । १३.

कानन । जंगल । ११. गड्ढा । गड्ढा । १२. चमके का बल्ला जो घनुष की डोरी की रगड़ बचाने के लिये बाईं बाँह में पहना जाता है । १३. घर की छत । पाटन । जैसे, चार तला भकान । १४. ताड़ का पेड़ । १५. मुठिया । मूठ । दस्ता । १६. बाएँ हाथ से वीणा बजाने की क्रिया । १७. गोधा । गोह । १८. कलाई । पहुँचा । १९. वालिस्त । बित्ता । २०. आधार । सहारा । २१. महादेव । २२. सप्त पातालों में से पहला । २३. एक नरक का नाम । २४. उद्देश्य (को०) । २५. मूल । कारण (को०) । २६. ताल । तलाव (को०) ।

तलक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताल । पोखरा । २. एक फल का नाम ३. सिगड़ी । मोंगीठी (को०) ।

तलक^२—अव्य० [हि० तक] तक । पर्यंत ।

तलकर—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर या लगान जो जमींदार ताल की वस्तुओं (जैसे, सिघाड़ा, मछली आदि) पर लगाता है ।

तलकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ ।

विशेष—यह पंजाब, प्रवच, बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में होता है । इसकी लकड़ी ललाई लिए भूरी होता है और खेती के सामान बनाने तथा भकानों में लगाने के काम में माती है ।

तलकीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तलकीन] १. शिक्षा । उपदेश । २. बीक्षा देना । गुरुमंत्र देना । पीर का भुरीद की समस्त आदि पढ़ाना (को०) ।

तलख—वि० [फ्रा० तलख] १. कड़वा । अप्रिय । २. अव्यक्त । नागवार । उ०—तेरी जैसी राखिनि के हाथ में पड़कर ज़िदगी तलख हो गई ।—गोदान पृ० ५७ ।

तलखी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तलखी] कड़वाहट । कटुता । कड़वापन । उ०—हिज की तलखी नही है जिसमें तलख ज़िदगानी वह है ।—मारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५६६ ।

तलग^१—अव्य० [हि०] दे० 'तलक', 'तक' । उ०—तू आये तलग प्रबल ने कर इलाज । जलाइंगी में सब तेरा मुल्की राज ।—बख्खनी०, पृ० १४५ ।

तलगू—संज्ञा स्त्री० [म० तैलग] तैलग देश की भाषा । तैलगू भाषा ।

तलधरा—संज्ञा पुं० [सं० तल + हि० धरा] तलहाना ।

तलछट—संज्ञा स्त्री० [हि० तल + छटना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ के नीचे बैठी हुई मेल । तलछ । नाव ।

तलछत^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तलछट' । उ०—तिमि उड़त कोठ पञ्जी सहित दल पञ्जी तलछत परे ।—हम्पीर०, पृ० ४३ ।

तलठी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तलछट' । उ०—तिल तिल आर कबीर लए तलठी आर लोग ।—कबीर० मं०, पृ० ३२५ ।

तलत्र, तलत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] घनुष का दस्ताना (को०) ।

तलना—क्रि० स० [सं० तरण (= तिराना)] कड़कड़ाते हुए भी या तेल में डालकर पकाना । जैसे, पापड़ तलना, घुँघनी तलना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

विशेष—भावप्रकाश में 'घी में भुना हुआ' के अर्थ में 'तलना' शब्द आया है, पर वह संस्कृत नहीं जान पड़ता ।

तलप^१—संज्ञा पुं० [सं० तल्प] दे० 'तल्प' । उ०—गुम जानकी, जनकपुर जाह । कहा आनि हम संप भरमिहो, गढ़वर उन दुख-सिधु अयाह । तजि वह जनक राज भोजन सुख, कत तन-तलप, बिपिन फल खाह ।—सूर०, ६ । ३४ ।

तलपट—वि० [देश०] नाव । बरबाद । चौपट ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तलपट^२—संज्ञा पुं० [सं०] काँटा । प्रायव्यय फलक ।

तलपत्त^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] बिछीने की चादर । उ०—हरि भगहि हरनछू करहि तलपत्त पत्त धर ।—पु० रा०, २ । ३०८ ।

तलपना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तलफना' । उ०—तलपन लागे प्रान नगल ते छिनहु होहु ओ ग्यारे ।—मारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १३३ ।

तलफ—वि० [अ० तलफ] नष्ट । बर्बाद ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—मुहरिर तलफ ।

तलफना—क्रि० प्र० [हि० तड़पना अथवा धनु०] १. कष्ट या पीड़ा से भंग टपकना । छटपटाना । २. व्याकुल होना । बेचैन होना । विकल होना ।

तलफाना—क्रि० स० [धनु०] तड़पाना ।

तलफी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तलफी] १. खराबी । बरबादी । नाश । २. हानि ।

यौ०—हक तलफी = स्वत्व का मारा जाना ।

तलफफुज—संज्ञा पुं० [अ० तलफफुज] उच्चारण (को०) ।

तलब—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. खोज । तलाश । २. चाह । पाने की इच्छा । ३. आवश्यकता । माँग ।

मुहा०—तलब करना = माँगना या भेगना ।

४. बुलावा । बुलाहट ।

मुहा०—तलब करना = बुला भोजना । पास बुलाना ।

५. तनखाह । वेतन ।

क्रि० प्र०—खाना ।—चुकाना ।—देना ।—पाना । मिलना ।—लेना ।—माँगना ।—चाहना ।

तलबगार—वि० [फ्रा०] चाहनेवाला । माँगनेवाला ।

तलबदार—वि० [फ्रा०] चाहनेवाला ।

तलबदास्त—संज्ञा पुं० [अ० तलब + फ्रा० दास्त] समन ।

तलबनामा—संज्ञा पुं० [अ० तलब + फ्रा० नामा] समन । अदालत में उपस्थित होने का लिखित आज्ञापत्र ।

तलबाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० तलबाना] १. वह खर्च जो गवाहों को तलब करने के लिये टिकट के रूप में अदालत में दाखिल किया जाता है । २. वह खर्च जो मालगुजारी समय पर ब जमा करके पर जमींदार से बंड के रूप में लिया जाता है ।

विशेष—चपरसियों को खाने पीने आदि के लिये जो भेंट या खर्च जमींदार देते हैं, उसको भी तलबाना कहते हैं।

तलबी—संज्ञा स्त्री० [तल + बी० ई० (प्रत्य०)] १. बुलाहट। २. माँग।

क्रि० प्र०—होना।

तलबेली—संज्ञा स्त्री० [हि० तलफना] किसी वस्तु के लिये भातुरता या बेचैनी। छटपटी। घोर उत्कंठा। उ०—काण्ड उठे प्रति प्रात ही तलबेली लागी। प्रिया प्रेम के रस भरे रति अंतर खागी।—सूर (शब्द०)

तलमल—संज्ञा पुं० [सं०] तलछट। तरौछ। गाढ़।

तलमलाना^१—क्रि० घ० [देश०] तड़फड़ाना। तड़पना। बेचैन होना।

तलमलाना^२—क्रि० घ० दे० 'तलमलाना'।

तलमलाहट^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] व्याकुलता। तड़पने का भाव। बेचैनी।

तलमलाहट^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'तलमलानाहट'।

तलमाना—क्रि० घ० [हि०] दे० 'तलमलाना'।—(शब्०)। उ०—लगे बिबस कई बेग पाया न भान, भी जान उसकी ओर लगी तलमान।—दक्खिनी०, पृ० ८७

तलब—संज्ञा पुं० [सं०] गानेवाला।

तलवकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सामवेद की एक शाखा। २. एक उपनिषद् का नाम।

तलवा—संज्ञा पुं० [सं० तल] पैर के नीचे का भाग जो चलने या खड़े होने में जमीन पर पड़ता है। पैर के नीचे की ओर का वह भाग जो पैर की ओर पंजों के बीच में होता है। पादतल।

मुद्रा०—तलवा जुलाना = तलवे में झुबली होना जिससे यात्रा का शत्रुन समझा जाता है। तलवे घाटना = बहुत खुशामद करना। अत्यंत सेवा शुश्रूषा में लगना। तलवे छलनी होना = चलते चलते पैर घिस जाना। चलते चलते गिरियल हो जाना। बहुत दीढ़ धूप की नोकत आना। तलवे तले घालें मलना = दे० 'तलवों से घालें मलना'। तलवों तले मेटना = कुचलकर नष्ट करना। रौंद डालना।—(स्त्रि०)। तलवे धो धोकर पीना = अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। अत्यंत श्रद्धा भक्ति प्रकट करना। अत्यंत प्रेम प्रकट करना। तलवा न टिकना = पैर न टिकना। जमकर बैठना न रहना जाना। घासन न जमाना। एक जगह कुछ देर बैठे न रहना जाना। तलवा न भरना = दे० 'तलवा न टिकना'।—(स्त्रि०)। तलवों से घालें मलना = (१) अत्यंत पीनता प्रकट करना। बहुत अधिक अधीनता दिखाना। (२) अत्यंत प्रेम प्रकट करना। (३) दे० 'तलवों तले मेटना'। तलवों से घाग लगना = क्रोध से शरीर भस्म होना। अत्यंत क्रोध बढ़ना। तलवों से मलना = पैर से कुचलना। रौंदना। कुचलकर नष्ट करना। तलवों से लगना = (१) क्रोध बढ़ना। (२) बुरा लगना। अत्यंत अप्रिय लगना। कुड़न होना। बिड़ होना। तलवों से लगना, सिर में आकर झुझना = सिर से पैर तक क्रोध बढ़ना। क्रोध से

शरीर भस्म होना। तलवे सहलाना = (१) अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। (२) बहुत खुशामद करना।

तलवार—संज्ञा स्त्री० [सं० तरवारि] लोहे का एक लंबा धारदार हथियार जिसके आघात से वस्तुएँ कट जाती हैं। खड्ग। प्रसि। कृपाण।

पर्या०—प्रसि। विशमन। खड्ग। तीक्ष्णवर्मा। दुरासह। श्रीगर्भ। विजय। धर्मपाल। धर्ममाल। निस्त्रिंश। चंद्रहास। रिष्टि। करवाल। कीलेयक। कृपाण।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—मारना।—लगना।—लगाना।—करना।

मुद्रा०—तलवार करना = तलवार चलाना। तलवार का वार करना। तलवार कसाना = तलवार झुकाना। तलवार का खेत = लड़ाई का मैदान। युद्धक्षेत्र। तलवार का घाट = तलवार में वह स्थान जहाँ से उसका टेंकापन धारण होता है। तलवार का छाला = तलवार के फल में लभरा हुआ दाग। तलवार का डोरा = तलवार की धार जो रस्से सूत की तरह दिखाई देती है। तलवार का पट्टा = तलवार की छोड़ी धार। तलवार का पानी = तलवार की आभा या चमक। तलवार का फल = मूट के प्रतिरिक्त तलवार का सारा भाग। तलवार का बल = तलवार का टेंकापन। तलवार का मुँह = तलवार की धार। तलवार का हाथ = (१) तलवार चलाने का ढंग। (२) तलवार का वार। खड्ग का आघात। तलवार की धाँच = तलवार की धाँच का सामना। तलवार की माला = तलवार का वह जोड़ जो दुबाले से कुछ दूर पर होता है। तलवारों की छाँह में = ऐसे स्थान में जहाँ अपने ऊपर चारों ओर तलवार ही तलवार बिछाई देती हो। रणभेज में : तलवार के घाट उतरना = लड़ते लड़ते मर जाना। तलवार के घाट उतारा जाना = मारा जाना। बीरगति पाना। उ०—रुद्रासे बहुत से लामा और विद्वान् तलवार के घाट सतारे गए हैं।—किन्नर०, पृ० ६१। तलवार लीचना = म्यान से तलवार बाहर करना। तलवार जड़ना = तलवार मारना। तलवार से आघात करना। तलवार तोलना = तलवार को हाथ में लेकर प्रयास करना जिससे तार भरपूर बैठे। तलवार संभालना। तलवार पर हाथ रखना = (१) तलवार निकालने के लिये तैयार होना। (२) तलवार की शपथ होना। तलवार बाँधना = तलवार को कमर में लटकाना। तलवार साथ में रखना। तलवार सीतना = तलवार म्यान से निकालना। धार करने के लिये तलवार खींचना।

विशेष—तलवार का व्यवहार सब देशों में अत्यंत प्राचीन काल से होता आया है। अनुर्वेद आदि ग्रंथों को देखने से जाना जाता है कि भारतवर्ष में पहले बहुत प्रच्यो तलवारें बनती थीं जिनसे पत्थर तक कट सकता था। प्राचीन काल में खट्टर देश, अंग, बंग, मध्यप्रदेश, सह्याद्र, कालिंजर इत्यादि स्थान खड्ग के लिये प्रसिद्ध थे। ग्रंथों में लोहे की उपयुक्तता, खड्गों के विविध परिमाण तथा उनके बनाने का विधान भी

दिया हुआ है। पानी देने के लिये बिन्हा है कि बार पर नमक या आर मिनी मोड़ी मिट्टी का सेप काटि तलवार को प्राग में तपाये और फिर पानी में बुझा दे। तलवार और शुकाचारों के पानी के धनिरिक्त रक्त, धूत, ऊँट के दूध आदि में बुझाये का भी विधान बतलाया है। तलवार की भनकार (ध्वनि) तथा फल पर आये पाप को दूर करने के अनुसार तलवार के धूम, धनुम या धन्नेदुर होने का निगुण किया गया है। ऐसे निगुण के लिये जो परीक्षा की जाती है, उसे धृष्टि परीक्षा कहते हैं। तलवार बनाने के हाथ ३२ गिनाए गए हैं। जिनके नाम ये हैं—भोज, उद्भास, धाविड, धाप्पुव, बिप्पुव, मृग, धनान, धनुवीगु, निज्ज, मयज, वदावकण्ठ, संबाध, मरुतक धामय, भुज धामय, राय, पाव, विवध, भूमि, उद्भमय, गति, मरुतगति, धात्रेय, पावन, सरयानक-प्लुति, धपुता, धोवत, धोमा, रीपे, दृढमुष्टिवा, त्रियंज, प्रचार और ऊर्ध्व प्रचार। इसी प्रकार पट्टिक, मोष्टिक, पहि-पाव आदि तलवार के १७ भेद भी बतलाए गए हैं। धातुकर्म भी तलवारों के कई भेद होते हैं; जैसे खोड़ा, जो मोड़ा और छोड़ पर खोड़ा होता है; मेक, जो लंबी पतली और मोड़ी होती है, दुधारा, जिसके दोनों धार भाग हावी हैं। इसके धार्तरिक्त स्थानों में भी तलवारों के कई नाम हैं। जैसे, धिरोही, बंबरी, धुपुकी इत्यादि। एक प्रकार की बहुत पतली और लंबी तलवार का नाम धात्री है, जिसका नाम तकिप में रक्त करने या कमर में भरो परते हैं। तलवार दुर्गा का प्रधान धाम है; इसी से सभी कर्म तलवार से दुर्गा भी कहते हैं।

तलवारवा [मं०] तलवार धामिनी ।

तलवारियाँ—संज्ञा पुं० [हिं०] तलवार बनाये गये विपुल वस्तु ।

तलवारी—वि० [हिं० तलवार] तलवार संबंधी ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तलवार] तलवार के धाम की धूमि । पहाड़ की उचाई ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलवार की धूमि । उचाई । मुराया, रहे जोषाग मङ्गले । धन धाम तलवार धाम ।

तलवारी—वि० [हिं० तलवार] तलवार संबंधी । तलवार का धाम ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तलवार + धी (प्रत्यय)] तलवार रहनेवाली बिन्हा । उ०—महा तलवारी, मुपारी को भरातुन मारे ।—मेघदूत, पृ० २१ ।

तलवारुणि—संज्ञा स्त्री० [मं० तलवारुणि] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी की धूमि । तलवार । तलवार के धाम । तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [मं०] तलवार धामिनी ।

तलवारी—वि० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तलवार + धी (प्रत्यय)] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तलवार] तलवार धामिनी । तलवार धामिनी । तलवार धामिनी ।

तलवार—संज्ञा पुं० [हिं०] तलवार ।

तलवार—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी का विधानपूर्वक संबंधधाम ।

हिं० प्र० तलवार ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [मं०] तलवार ।

तलवार—संज्ञा पुं० [मं०] तलवार धामिनी का नाम ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [मं० तलवार] तलवार धामिनी । तलवार धामिनी ।

तलवार—संज्ञा पुं० [हिं०] तलवार ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलवार ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलवार ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलवार ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलवार ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलवार ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलवार ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलवार ।

तलवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलवार ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

तलवारी—संज्ञा पुं० [मं० तलवार] तलवार धामिनी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. आवश्यकता । चाह ।

क्रि० प्र०—होना ।

तलाशना—क्रि० सं० [फा० तलाश + हि० ना (प्रत्य०)]
ढूँढ़ना । खोजना ।

तलाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष ।

तलाशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गुम की हुई या छिपाई हुई वस्तु को पाने के लिये घर बार, चीज, वस्तु आदि की देखभाल । जैसे पुलिस ने घर की तलाशी ली, तब बहुत सी चोरी की चीजें निकलीं ।

मुद्दा—तलाशी देना = गुम या छिपाई हुई वस्तु को निकालने के लिये संदेह करनेवाले को भरना घर बार, कपड़ा लत्ता आदि ढूँढ़ने देना । तलाशी लेना = गुम या छिपाई वस्तु को निकालने के लिये ऐसे मनुष्य के घर बार आदि की देखभाल करना जिस पर उस वस्तु को छिपाने या गुम करने का संदेह हो ।

तलाश—संज्ञा स्त्री० [फा० तलाश] दे० 'तलाश' । उ०—तुलसी बिना तलाश पास ग्रंथ ना संगी । हिंदू तुरक पै जबर लाग जम की जो जमी ।—तुरसी श०, पृ० १४३ ।

तलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तोड़का । २. तंग [को०] ।

तलित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तलित्' [को०] ।

तलित्—संज्ञा पु० [सं०] भुना हुआ मांस [को०] ।

तलित्—वि० श्री या बिकने के साथ भुना हुआ । तला हुआ ।

विशेष—यह शब्द संस्कृत नहीं जान पड़ता; संस्कृत ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं मिलता । केवल भाष्यप्रकाश में भुने हुए मांस के लिये आया है ।

तलित्—वि० तल युक्त [को०] ।

तलिन—वि० [सं०] १. चुबला । क्षीण । दुर्बल ।

यौ०—तलिनोदरी—क्षीण बटिवाली स्त्री ।

२. बिरल । छितराया हुआ । भलग भलग । ३. थोड़ा । कम ।

४. साफ । स्वच्छ । शुद्ध । ५. नीचे या तल में स्थित [को०] ।

६. आच्छादित । ढका हुआ [को०] ।

तलिन—संज्ञा स्त्री० [सं०] शय्या । सेज । पलंग ।

तलिस—संज्ञा पु० [सं०] १. छा । पीटन । २. शय्या । पलंग ।

३. लङ्ग । ४. चंदवा । ५. बड़ी छुरी या छुरा [को०] । ६.

जमीन का पक्का फर्श [को०] ।

तलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] समुद्र की याह ।—(हि०) ।

तलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० ताल] छोटा तालाब । उ०—मान-सरोवर की कथा बकुला का जानै । उनके चित तलिया बसे, कही कैसे मानै ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४ ।

तलियार(पु)—संज्ञा पु० [दे०] कोतवाल । जगररक्षक ।

तली—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] १. किसी वस्तु के नीचे की सतह ।

४-४८

पेंदी । २. तलछट । तलीछ । ३. पैर की एड़ी । ४. विवाह में वर वधू के आसन के नीचे रखा हुआ कपड़ा पैसा ।

तलीचरैया—संज्ञा स्त्री० [हि० ताल + चरैया (= चरनेवाला)] एक पत्नीविशेष । उ०—धोबहन, तलीचरैया, कीड़ेनी, चंबा इत्यादि ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३० ।

तलुआ—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तला' ।

तलुआ—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तला' ।

तलुन—संज्ञा पु० [सं०] १. वायु । २. युवा पुरुष ।

तलुन—वि० [वि० स्त्री० तलुनी] युवा । तरुण [को०] ।

तलुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती । तरुणी [को०] ।

तले—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे । ऊपर का उलटा । जैसे, पेड़ के तले ।

मुद्दा—तले ऊपर = (१) एक के ऊपर दूसरा । जैसे,—किताबों को तले ऊपर रख दो । (२) नीचे की वस्तु ऊपर और ऊपर की वस्तु नीचे । उलट पलट किया हुआ । गड़बड़ । जैसे,—सब कागज लगाकर रखे हुए थे; तुमने तले ऊपर कर दिए । तले ऊपर के = प्रागे पीछे के । ऐसे दो जिनमें से एक दूसरे के उपरान्त हुआ हो । जैसे,—ये तले ऊपर के लड़कें हैं । इसी से लड़ा करते हैं ।—(स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसे लड़कों में नहीं बनती ।) । तले ऊपर होना = (१) उलट पुलट हो जाना । (२) संभोग में प्रवृत्त होना । जी तले ऊपर होना = (१) जी मचभाना । (२) जी ऊबना । चित्त प्रवहना । तले की सौंम तले और ऊपर की सौंम ऊपर रह जाना = (१) ठग रह जाना । स्तब्ध रह जाना । कुछ कहते सुनते या करते धरते न बन पड़ना । (२) मौन रह जाना । हक्का बक्का रह जाना । चकित रह जाना । तले की दुनिया ऊपर होना = (१) भारी उभट फेर हो जाना । (२) जो चाहे सो हो जाना । प्रसंभव से असंभव बात हो जाना । जैसे,—चाहे तले की दुनिया ऊपर हो जाय, हम प्रब बड़ा न जायेंगे । (माश चौपाए के) तले नक्का होना = साथ में थोड़े दिनों का बच्चा होगा । जैसे,—इस गाय के तले एक बछड़ा है ।

तलेक्षण—संज्ञा पु० [सं०] शूकर । गधर ।

तलेटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तल + हि० एटी (प्रत्य०)] १. पेंदी । २. पहाड़ के नीचे की भूमि । तलहटी ।

तलंड—वि० [सं०] १. नीचे रहनेवाला । २. हीन । तुच्छ । गया गुजरा । ३. किसी द्वारा शासित ।

तलैचा—संज्ञा पु० [हि० तले] इमारत में मेहराब से ऊपर का और छत से नीचे का भाग ।

तलेटी—संज्ञा स्त्री० [हि० तलहटी] दे० 'तलेटी' । उ०—एक गाँव पहाड़ की तलेटी में तो दूसरा उसकी ढलवान पर ।—फूलो०, पृ० ७ ।

तलेया—संज्ञा स्त्री० [हि० ताल] छोटा ताल ।

तलोदर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तलोदरी] तोंदवाला [को०] ।

तलोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । भार्या ।

तलोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दरिया । नदी ।

तलोछि—संज्ञा स्त्री० [सं० तल (= नीचे) + छि (प्रत्यय०)] नीचे जमी हुई मैन आदि । तलछट ।

तलोबन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह परिवर्तन जो मत, मित्रांत एवं विचार में हो जाता है । २. रंग बदलना । ३. छिछोरा-पन [को०] ।

तलक—संज्ञा पुं० [सं०] वन ।

तलख—वि० [फा० तलख] १. कड़वा । कटु । २. बदमजा । बुरे स्वाद का ।

तलखी—संज्ञा स्त्री० [फा० तलखी] कड़वाहट । कड़वापन ।

तल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. छाया । पलंग । सेज । २. घटालिका । घटांगी । ३. (लाज०) पत्नी । भार्या । जैसे, गुरुतल्प (को०) ।

तल्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलंग । २. वह सेवक जो पलंग पर बिगतर आदि लगाता है [को०] ।

तल्पकीट—संज्ञा पुं० [सं०] मत्तुग । खटमल ।

तल्पज—संज्ञा पुं० [सं०] शेषज पुत्र ।

तल्पन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी की पीठ पर की मामणियाँ । २. हाथी की पीठ या उसका माँप [को०] ।

तलबाना—संज्ञा पुं० [फा० तलबान] गधाहों को तलब कराने का कार्य । उ० 'तलबान' । उ०—स्टॉप, तलबाने वगैरे के हिमाब में लोगो को धोका दे दिया करता था ।—श्रीनिवास० प्र०, पृ० २१० ।

तल्पल—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का मेकड़ह, रीढ़ या गठबण [को०] ।

तल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष । भट्ठा । २. ताल । फोहरा ।

तल्लह—संज्ञा पुं० [सं०] पुता ।

तल्ला^१—संज्ञा पुं० [सं०] तल १. तल की पतल । झतर । भिरहना । २. दिग । पाम । नाभीय । उ०—'तल' को तल्ला विय, तियम तियल्ला हय ने लोका प्रबलना भवना धाय राख्दार को ।—रघुराज (शब्द०) ।

तल्ला^२—संज्ञा पुं० [सं० तल] मकान का मजिद । जैसे, तीन तल्ला भान ।

तल्लास—संज्ञा स्त्री० [फा० तल्लास] १. 'तल्लास' । उ०—फौज तल्लास कर हारी । भाव जहाँ भूप बेजारी ।—तुरसी श०, पृ० ६५ ।

तल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तानी । कुजी

तल्ली^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देने का तला । २. नीचे की तलछट जो गहर में बैठ जाती है ।

तल्ली^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरणी । युवती । २. नौका । नाव । ३. वरण की परती ।

तल्लीन—वि० [सं०] उनमें लीन । उसमें लग्न । दसहित [को०] ।

तल्लुछा—संज्ञा पुं० [सं०] गढ़े की तरह का एक कपड़ा । महपूदी । तुकरो । सल्लस ।

तल्लो^१—संज्ञा पुं० [सं० तल] जल के नीचे की घट ।

तल्लकारा—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तल्लकार' ।

तल्लहार—संज्ञा स्त्री० [हि०] तला । नीचे । उ०—जिता गंज है गो जमी के तल्लहार । तो यक बोल पर ते सहुँ उसहुँ बार ।—दक्खिनी०, पृ० १५२ ।

तल्लचुर(पुं)—संज्ञा पुं० [सं० तल्लचुरणं, हि० तल्लचुर] मुर्गा ।

तल्ल—सर्व० [सं०] तुम्हारा ।

तल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] घोला । वचना । प्रतारणा [को०] ।

तल्लकका(पुं)—संज्ञा स्त्री० [सं० तल्लकका] १. विश्वास । २. आशा । ३. प्रार्थना । उ०—'नहि तू मेरा संगी भया । तुलसी तल्लकका ना किया ।—तुरसी श०, पृ० २४ ।

तल्लकु—संज्ञा पुं० [सं० तल्लकुष] १. विलस । देर । २. डोलापन [को०] ।

तल्लक्षीर—संज्ञा पुं० [सं० फा० तल्लक्षीर] तल्लक्षीर । तीखुर ।

तल्लक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनकपूर जिसकी जड़ से एक प्रकार का तीखुर बनता है । अवीर इसी तीखुर का बनता है ।

तल्लजह—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्यान । हल ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

२. कृपाहटि ।

तल्लन(पुं)—संज्ञा स्त्री० [सं० तल्लन] १. गर्मी । तपन । २. आग ।

तल्लन(पुं)—सर्व० [हि० तीन] वह ।

तल्लन(पुं)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तल्लन' । उ०—चित्त घनेकह बिधि बिवर विल तदिनी निकाल । अत्र रूप गंगा तल्लन लगे करन रिप ताग ।—पु० रा०, १ । १५४

तल्लन(पुं)—वि० सं० [सं० तल्लन] १. तपना । गरम होना । २. ताप से पीड़ित होना । दुःख से पीड़ित होना । उ०—(क) काल के प्रताप कासी तल्ल ताप तई है ।—तुलसी प्र०, पृ० २४२ । (ख) जबने तल्लन गई तई ताग भई बेहाल । भली करी या नारी की नारी दखी लाल ।—शृ० सत० (शब्द०) । ३. प्रताप पैमाना । तेज पैमाना । उ०—छतर गगन लग ताकर सू-तल्लन तप आप ।—जायसी (शब्द०) । ४. क्रोध में जलना । गुस्से में जलना होना । कुढ़ जाना । उ०—(क) भरत प्रसंग जगो कालिना तल्ल देखि तन मे तई ।—नाभावास (शब्द०) । (ख) मल्लदेव बैठे रहि गए । एक देखि के तेहि दुख गए ।—सूर (शब्द०) ।

तल्लना(पुं)—वि० सं० [सं० तल्लन] दे० 'तल्लन' ।

तल्लना(पुं)—वि० सं० [सं० तल्लन] स्तुति करना ।

तल्लना^१—संज्ञा पुं० [हि० तथा] हलका तवा ।

तल्लना^२—संज्ञा पुं० [हि० तल्लना (= ढकना, मूंदना)] ढकन । मूंदने का साधन जो छेद या किसी वस्तु के मुँह को बंद करे ।

तल्लर(पुं)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तल' । उ०—घवनी के तल्लरे प्रगनिज अवरें संजा कंवरे विच मवरें । सिरियादे मिवरे हरि हित हिवरे नगहो निवरे जो जिवरे ।—राम० धर्म०, पृ० १७६ ।

तल्लर^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तल्लर' ।

तवरक—संज्ञा पुं० [सं० तवर] एक पेड़ जो समुद्र और नदियों के तट पर होता है ।

विशेष—इसमें इमली के ऐसे फल लगते हैं जिन्हें खाने से चीपायों का दूध बढ़ता है ।

तवरना—क्रि० सं० [?] कहना । उ०—वदन एक सहस्र दुय सहस्र रसना वणो । तिको फणपत्ती गुणु थकै तवरो ।—रघु० ६०, पु० ५७ ।

तवराज—संज्ञा पुं० [सं०] तुरंजवीन । यवाम शर्करा ।

तवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] त और न के मध्य के सप्तस्त प्रक्षर समूह ।

तवल—संज्ञा पुं० [सं० तवल] तबल । उ०—तवल शत वाज कत भेरि भरे फुकिरया ।—गीति०, पु० ६३ ।

तवलचो(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० तबल ।—गीति०, पु० ६९ ।

तवल्ल(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तबल' ।

तवल्लह—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तबल' । उ०—धरे इक एक धनेक सुमान । कलकत मुंड तवल्लह मान ।—पु० रा०, ६। ६६ ।

तवस्सल—संज्ञा पुं० [सं० तवस्सल] सहायता । उ०—सोलह वंश के हुक्म जारी करें । जो सतगुरु तवस्सल तवारी करें ।—कबीर मं०, पु० १३१ ।

तवस्सुत—संज्ञा पुं० [सं०] मध्यस्थता । बीच में पड़ने का कार्य । उ०—भापके तवस्सुत की मार्फत मेरी ५०० जिल्दों में से भी कुछ निकल जाय तो क्या कहना ।—प्रेम० और मोर्को, पु० ५८ ।

तवा—संज्ञा पुं० [हि० तवना (= जलना)] । लोहे का एक छिछला गोल बरतन जिसपर रोटी सेंकते हैं ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।

मुहा०—तवा मा मुँह=कालिख लगे हुए तब की तरह काला मुँह । तवा सिर पे बाँधना=सिर पर प्रहार सहो के लिये तैयार होना । अपने को गूँब रूँध और मुरलित करना । तवे का हँसना=तवे के नीचे जमी हुई कालिख का बहुत जलते जलते लाल हो जाना जिसमें घर में विवाद होने का कुणकुन समझा जाता है । तवे की बूँद=(१) क्षणस्थायी । देर तक न टिकनेवाला । तथर । (२) जो कुछ भी न मालूम हो । जिससे कुछ भी नृप्ति न हो । जैसे,—इतने से उमरा क्या होता है, इसे तवे की बूँद भ्रमभो ।

२. मिट्टी या लपट्टे का गोल ठाँरा जिसे चिलम पर रखकर तमाखू पीते हैं । ३. एक प्रकार की ताल मिट्टी जो हींग में मेल देने के काम में आती है । ३. तवे के आकार का साधन जो पुख में बचाने के विचार से छाती पर रहता था ।

तवाई(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तवाई' । उ०—दुश्मन देख के तवाई धरना । खुदा मिल के बाँध खाना ।—बख्शनी०, पु० ६५ ।

तवाई(५)^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ताप] ताप ।

तवाखीर—संज्ञा पुं० [सं० तवखीर] बंधरोचन । बंसलोचन ।

तवाजा—संज्ञा स्त्री० [सं० तवाजह] १. भाँवर । मान । प्रावभगत । २. मेहमानदारी । दावत । ज्याफत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तवाना^१—संज्ञा [सं०] बली । मोटा तवा । मुस्टंडा ।

तवाना^२—क्रि० सं० [सं० तापन, हि० ताना] तप्त करना । गरम कराना ।

तवाना^३—क्रि० सं० [हि० ताना] दाँत को चिकाकर बरतन का मुँह बंद कराना ।

तवाना^४—क्रि० प्र० [हि० तान से तापित वायु] ताप या भावेष में धाना ।

तवायफ—संज्ञा स्त्री० [सं० तवायफ] वेश्या । रंजी ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द तवायफ का बहु० है, पर हिंदी में एक-वचन बोला जाता है । कहीं कहीं तवायफ भी बोला जाता है ।

तवारा—संज्ञा पुं० [सं० ताप, हि० तावत या (तवा)] बलन । दाह । ताप । उ०—तबने इन मवहिन मलुआयो । जयते हरि संदेश तुम्हारो सुनत तवारी आयो ।—मूर (शब्द०) ।

तवारीख—संज्ञा स्त्री० [सं० तवारीख] इतिहास ।

विशेष—यह 'तारीख' शब्द का बहुवचन है ।

तवारीखी—संज्ञा [सं० तवारीख + फा० ई (प्रत्यय)] ऐतिहासिक [को०] ।

तवालत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लबाई । दीधत्व । २. प्राधिकार । अधिकता । अधिकारी । ज्यादाती । ३. बखेड़ा । तूल तवील । भ्रंश ।

तविप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. समुद्र । ३. व्यवसाय । ४. शक्ति ।

तविप^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृद्ध । महत् । २. बनवाना । हड़ । बली । ३. पूज्य (को०) ।

तविषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुच्छी । २. नदी । ३. शक्ति । ४. इद्र की एक कन्या का नाम (को०) ।

तविष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति । बल । तेज (को०) ।

तवी—संज्ञा स्त्री० [हि० तवा] १. छोटा तवा । २. पतले किनारे-वाली लोहे की थाली । ३. समीर की एक नदी ।

तवीयन(५)—संज्ञा पुं० [सं० तवीय] वेध । चिकित्सक ।

तवीय—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. समुद्र । ३. सोना (को०) ।

तवेला—संज्ञा पुं० [हि० तवेला] दे० 'तवेला' ।

तवै(५)—संज्ञा [हि०] दे० 'तब' । उ०—तवी आनि तै सेख भू पे जु आयो । कछु वख ही अंग ताको उड़ायो ।—हम्मीर०, पु० ३८ ।

तशखीश—संज्ञा स्त्री० [सं० तशखीश] १. ठहराव । निवचय । २. मर्ज की रहचान । रोग का निदान । ३. लगान निर्धारित करने की क्रिया या स्थिति (को०) ।

तशदुदुद—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाक्रमण । २. कठोर व्यवहार । ज्यादाती । सख्ती (को०) ।

तशफ्फो—संज्ञा स्त्री० [सं० तशफ्फो] १. डाँढस । साँवना । उ०—

ऐसे कठकों को प्रेमचंद ने पूरी तथ्यपत्ती हासिल होती है।—

प्र० म० श्री० गोरकी, पृ० २१७। २. रोगमुक्ति (को०)।

तशरीफ - संज्ञा स्त्री० [अ० तशरीफ] बुजुर्गी। इज्जत। महत्त्व। बड़प्पन।

मुहा० - तशरीफ रखना = बिगड़ना। बैठना (आदर्शार्थक)।

तशरीफ लाना = पदार्पण करना। पाना (आदर्शार्थक)।

तशरीफ ले जाना = प्रस्थान करना। चला जाना।

तश्न - संज्ञा पुं० [फा०] १. थाली के आकार का हलका छिछला बरतन। २. पगल। मगन। ३. तबे का वह बड़ा बरतन जो पाखानों में रखा जाता है। गमला।

तश्तरी - संज्ञा स्त्री० [फा०] थाली के आकार का हलका छिछला बरतन। रिकामी।

तश्वीश - संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चिता। फिक्र। २. भय। डर। त्रास। उ० - किसी किसिम के तश्ददुष और तश्वीश की गुजाइश नहीं है। - प्रेमचंद, भा० २, पृ० १३५।

तषति - संज्ञा पुं० [फा० तषा] दे० 'तस्त'। उ० - तषति निवाम की धा मति माई। - पाण०, पृ० ५३।

तषते - संज्ञा पुं० [अ० तषा] दे० 'तषा'। उ० - सुरति बारी के तषते खोले। तब नानक बिनसे मगने धोले। प्राण०, पृ० ३७।

तष्ट - वि० [म०] १. छोला हुआ। २. कुटा हुआ। पीसकर दो दलों में किया हुआ। ३. पीटा हुआ।

तष्टा - संज्ञा पुं० [म०] १. छोलेवाला। २. छील छानकर गढ़ने-वाला। ३. विश्वकर्मा। उ० - एक आदित्य का नाम।

तष्टा - संज्ञा पुं० [फा० तश] तबे की एक प्रकार की छोटी तश्तरी जिसका व्यवहार ठापुर पूजन के समय मूर्तियों को नहलाने के लिये होता है।

तष्टी - संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तष्टा'। एक प्रकार का बरतन। धातुपात्र। उ० - पुनि चरला चरई तष्टी तबला भारी लोटा गागहि। सुवर० प्र०, भा० १, पृ० ७४।

तषना (पु०) - क्रि० सं० [हि० ताषना] नाचना। देखना। उ० - प्रथिराज राज राजग गुर गिष तरकस तषिगी। - पृ० रा०, १२। ५४।

तषिषा - संज्ञा स्त्री० [सं० तषिषी] नागिन। सर्पिणी। उ० - नयन मुहज्जल रंग, तषिष शिषन छवि कारिय। श्रवणन सहज कटाख, चित्त कर्णन नर नारिय। पृ० रा०, १४, १५६।

तस (पु०) - वि० [सं० तस, प्रा० तसि, पु० तस] तैसा। वैसा। उ० - किए कहि छाया जमय सुखद बहुद भर बात। तस मगु भयेउ न राम कहै जस भा भयोहि जात। - मानस, २। २१५।

तस (पु०) - क्रि० वि० तैसा। वैसा। उ० - तस मति फिरी रही जस भागी। - तुलसी (शब्द०)।

तस (पु०) - सर्व [सं० तस, तस्य] उसका। तत् शब्द का संबंधकारक एकवचन। उ० - ईद्री बाहुल नासिका, तासु

तण्ड डण्डहार। तस भस हुबह प्राहुणउ, तिणु सिएगार उतार। - दोसा०, दू० ५८०।

तसकर - संज्ञा पुं० [सं० तस्कर] दे० 'तस्कर'। उ० - संग तेहि बहुरंग तसकर, बड़ा अजुगुति कीन्ह। - जग० बानी, पृ० ४५।

तसकीन - संज्ञा स्त्री० [अ० तस्कीन] तसल्ली। ठारस। दिलासा।

तसगर - संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहों के ताने में नीलबन्दी के पास की दो लकड़ियों में से एक।

तसगीर - संज्ञा स्त्री० [अ० तस्गीर] १. संक्षेप करना। २. संक्षेप करने की क्रिया या भाव (को०)।

तसदीक - संज्ञा स्त्री० [अ० तस्दीक] १. सचाई। २. सचाई की परीक्षा या निश्चय। समर्थन। प्रमाणों के द्वारा पुष्टि। ३. साक्ष्य। गवाही।

क्रि० प्र० करना। - होना।

तसदीह (पु०) - संज्ञा स्त्री० [अ० तस्दीह] १. दर्दसर। २. तकलीफ। दुःख। क्लेश। उ० - नहि चून धीव मबील ही तसदीह सब ही की सही। - सुदन (शब्द०)। ३. परेशानी। भ्रंश (को०)।

तसदुक - संज्ञा पुं० [अ० तसदुक] १. निष्ठावर। सदाका। २. बलिप्रदान। कुरबानी।

तसनीफ - संज्ञा स्त्री० [अ० तस्नीफ] ग्रंथ की रचना।

तसबी - सं० स्त्री० [अ० तस्बीर] दे० 'तसबीह'। उ० - फेरे न तसबी जे न माला। - पजद०, पृ० ६१।

तसबीर - संज्ञा स्त्री० [अ० तस्बीर] दे० 'तसबीर'। उ० - लिखे-चितेरे चित्र में पिय विचित्र तसबीर। दरमत हग परसत हिरे परसत तिय घर धीर। सं० समक, पृ० ३६७।

तसबीरगर - संज्ञा पुं० [अ० तस्बीर + फा० गर (प्रत्य०)] चित्रकार। उ० - डीठि मिचि जात भिचि हचत ना ऐसी खेची खिचत न तसबीर न तसबीरगर पै। - पजनेस०, पृ० ७।

तसबीह - संज्ञा स्त्री० [अ० तस्बीह] सुमिरनी। माला। जपमाला। (मुसल०)। उ० - मन मनि के तहुँ तसबी केरइ। तब साहब के वह मन भेवइ। - दादू (शब्द०)।

मुहा० - तसबीह फेरना = ईश्वर का नामस्मरण या उच्चारण करते हुए माला फेरना।

तसमा - संज्ञा पुं० [फा० तस्मह] १. चमड़े की कुछ चौड़ी डोरी के आकार की लंबी धज्जी जो किसी वस्तु को बाँधने या कसने के काम में आवे। चमड़े का चौड़ा फीता।

मुहा० - तसमा खींचना = एक विशेष रूप से गले में फंदा डालकर मारना। गला घोटना। तसमा लगा न रखना = गरदन साफ उड़ा देना। साफ धो ठुकरा देना।

२. धूँत का फीता (को०)। ३. चमड़े का कोड़ा या दुर्गा (को०)।

तसर - संज्ञा पुं० [सं०] १. जुलाहों की डरकी। २. एक प्रकार का घटिया रेशम। वि० दे० 'टसर'।

तसरिका - संज्ञा स्त्री० [सं०] बुनाई (को०)।

तसला - संज्ञा पुं० [फा० तश + ला (प्रत्य०)] कटोरे के आकार

का पर उससे बड़ा गहरा बरतन जो लोहे, पीतल, तबे आदि का बनता है।

तसखी—संज्ञा स्त्री० [हि० तसला] छोटा तसला।

तसलीम—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्लीम] १. सलाम। प्रणाम। २. किसी बात की स्वीकृति। हामी। जैसे,—गलती तसलीम करना।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

तसल्ली—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. डारस। सांत्वना। आश्वासन। २. व्यग्रता की निवृत्ति। व्याकुलता की शांति। धैर्य। धीरज। ३. संतोष। सन्न।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

मुहा०—तसल्ली दिनाना = धीरज या संतोष देना। धैर्य धारण कराना।

तसवीर^१—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीर] १. वस्तुओं की छाया जिसमें रंग आदि के द्वारा कागज, पटरी आदि पर बनी हो। चित्र।

क्रि० प्र०—खींचना।—बनाना।—लिखना।

मुहा०—तसवीर उतारना = चित्र बनाना। तसवीर निकालना = चित्र बनाना।

२ किसी घटना का यथातथ्य विवरण।

तसवीर^२—वि० चित्र सा सुंदर। मनोहर।

तसवीस^३—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीस] १. चिता। सोच। फिर। २. भय। डर। आस। ३. व्याकुलता। घबराहट। उ०—ना तसवीस खिराज न माल खोफ न खजा न तरस जवाल।—संत २०, पृ० ११०।

तसखुर—संज्ञा पुं० [अ०] कल्पना। उ०—उसखुर से तेरे रुख के गई हैं नींद आँखों से। मुकामिल जिसके हो खुरशीद क्यों कर उसको खवाब धावे।—कविता को०, भाग ४, पृ० २१।

तसाना—क्रि० स० [हि० तसाना] तस्त करना। डराना। उ०—हाय बई धनधान्य हूँ करि की लौ वियोग के ताप तसायहो।—धनानंद, पृ० ६६।

तसि^४—वि० [हि० तस] वैसी। उस प्रकार की।

तसि^५—क्रि० वि० [हि० तस] तैसी। वैसी। उ०—(क) जनु बाबो तसि शमिनी बीसी। जूमकि उठी तसि भीनि बतीसी।—जायसी श्र० (गुप्त), पृ० १६१। (ख) तसि मति फिरी महइ जसि भाबी। रहसी बेरि घात जनु फाबी।—मानस, २।१७।

तसिल्लार^६—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तहसीलदार'। उ०—बड़ी बड़ी मुली पठवायो तसिल्लार तब।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४१६।

तसी^७—संज्ञा स्त्री० [अ०] तीन बार जोता हुआ खेत।

तसीली^८—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसील] १. तहसील। २. वसूली। प्राप्ति।

तसीलना—क्रि० स० [अ० तहसील, हि० तसील से नामिक धातु] वसूल करना। पाना। उ०—बंक तसीलत कितो, महाजन कितो कोइ धन।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० ५४।

तसू—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + सूक = जो की तरह का एक कदम] लंबाई की एक माप। इमारती गज का २४ चौ अंगुली जो १३ इंच के लगभग होता है।

तस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोर। २. श्रवण। कान। ३. मैनफल। मदन वृक्ष। ४. बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार के केतु जो लंबे और सफेद होते हैं। ये ५१ हैं और बुध के पुत्र माने जाते हैं। ५. चोर नामक गंधद्रव्य। ६. कान (को०)।

तस्करता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोर का काम। चोरी। २. श्रवण। सुनना (को०)।

तस्करवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चोर। पाकेटमार (को०)।

तस्करस्नायु—संज्ञा पुं० [सं०] कावनासा लता। कीवा ठोठी।

तस्करी—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्कर] १. चोर का काम। चोरी। २. चोर की स्त्री। ३. वह स्त्री जो चोर हो। ४. उग्र स्वभाव की स्त्री (को०)।

तस्कीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'तसकीन'। उ०—फिराके यार में होने ये क्या तस्कीन होती है।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० १६७।

तस्थु—वि० [सं०] एक ही स्थान पर रहनेवाला। स्थावर। स्थूल।

तस्नीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्नीफ] १. पुस्तक लेखन। किताब बनाना। २. लिखित पुरतक। बनाई हुई कविता। ३. मनगढ़त या कपोलकल्पित बात (को०)।

तस्फिया—संज्ञा पुं० [अ० तस्फियाह] १. आपस का निपटारा या समझौता। २. निर्णय। फैसला। ३. गुड़ करना। साफ करना। शुद्धि। सफाई। ४. दिलों की सफाई। मेल (को०)।

यो०—तरफिया तसब = वे बातें जिनकी सफाई होनी आवश्यक है। तस्फियानामा = वह कागज जिसमें आपस के तस्फिए की लिखापट्टी हो।

तस्मा—संज्ञा पुं० [फा० तस्मह] १. चमड़े की कम चौड़ी और लंबी पट्टी। २. सूते का फीता। ३. चमड़े का कोड़ा या दुर्गा (को०)।

यो०—तस्माग = जिसका पाँव तस्मे से बँधा हो। तस्माबाज = (१) धूर्त। बचक। भक्कार। छली। (२) चूतकार। जुधारी। तस्माबाजी = (१) छल। कपट। (२) एक प्रकार का जुमा।

तस्मात्—अव्य० [सं०] इसलिये।

तस्य—सर्व० [सं०] उसका।

तस्लीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. सलाम करना। प्रणाम करना। २. स्वीकार करना। कबूल करना। ३. सौंपना। सिपुर्द करना। ४. आज्ञा का पालन करना। (को०)।

तस्वीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चित्र। प्रतिरूप। २. चित्र बनाना। मूर्ति बनाना। ३. बहुत ही सुंदर शकल। ४. प्रतिमा। मूर्ति।

यो०—तस्वीरकशी = चित्रण। चित्रकर्म। तस्वीरखाना = (१) वह स्थान जो चित्रों के लिये हो या जहाँ चित्र बनाए गए हों। चित्रशाला। (२) वह स्थान जहाँ बहुत सी सुंदर स्त्रियाँ हों। परीखाना। तस्वीरे प्रवसी = छायाचित्र। फोटो।

तस्वीरे खयाली—चित्र या खयाल में छाई हुई आकृति।
काल्पनिक चित्र। तस्वीरे गिलो—मिट्टी की मूर्ति।
तस्वीरे नीम रख—एक तरफ से लिखा हुआ चित्र जिसमें
मुख का एक ही रुख आए।

तस्सयीर(पु) संज्ञा स्त्री० [प्र० तरबीह] दे० 'तस्वीर'। उ०—बंधे
साहि गोरी बही तस्वीर। बई राज चौहान न्योतें सरीरं।
—पृ० रा०, २१।११५।

तस्मू—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तपू'।

तह्नी क्रि० वि० [हि०] दे० 'तही'।

यो०—तह् तह् = वही वही। उस उस स्थान पर। उ०—जैह
जह् आवत बंधे वगानी। तह् तह् गिद्ध खया बहु भीती।—
मानस, १।३३३।

तह्नी—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तही'।

तह—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. किसी वस्तु की मोटाई या फैलाव जो
किसी दूसरी वस्तु के ऊपर हो। परत। जैसे, कपड़े की तह,
मलाई की तह, मिट्टी की तह, पहचान की तह। उ० (क)
इमपने घसी मिट्टी की कई तहे चढ़ेंगी (क३३०)। (ख)
इम कपड़े को चार पाँच तहों में लपेटकर रख दो (क३३०)।

क्रि० प्र०—तहना। चढ़ाना। जमाना। बसाना। लगाना।

यो०—तहदार = जिसमें कई परत हों। तह ब तह = एक के नीचे
एक। परत पर परत।

मुहा०—तह करना—किसी फैली हुई (चदर आदि के आकार
की) वस्तु के भागों को कई धोर से मोड़ धोर एक दूसरे
के ऊपर फैलाकर उस वस्तु को समेटना। चौपन करना।
तह कर रखो लिए रहो। मत निकालो या दो। नहीं
छाड़िए। तह जमाना या बैठाना—(१) परत के ऊपर परत
देवाना। (२) भोजन पर भोजन किए जाना। तह तोड़ना =
(१) भगड़ा निबटाना। मर्यादा को पटुचाना। कुछ बाकी
न रखना। निबटना। (२) कुछ का सब पानी निकाल देना
जिससे जमीन दिखाई देने लगे। (किसी चीज की) तह देना =
(१) हलकी परत चढ़ाना। थोड़ी मोटाई में फैलाना या
बिछाना। (२) हटका रग चढ़ाना। (३) धतर बनाने में
जमीन देना। आधार देना। जैसे,—बंदन की तह देना।
तह मिलाना—जाड़ा लगाना। नर धीरे मादा एक साथ
करना। तह लगाना—चौपरत करके समेटना।

२. किसी वस्तु के नीचे का विस्तार। मल। पेदा। जैसे, दस
गिलास में पुष्पी दबा तह से जाकर बन गई है।

मुहा० तह का सच्चा—वह कबूतर जो बराबर अपने छत्ते पर
बसा आवे, अपना स्थान न भूले। तह की बात = छिरी हुई
बात। गुप्त रहस्य। गहरी बात। (किसी बात की) तह
को पटुचना = दे० 'तह उक पटुचना'। (किसी बात की) तह
तक पटुचना = किसी बात के गुप्त अभिप्राय का पता पाना।
अर्थ रहस्य जान लेना। उसकी बात समझ जाना।

१. पानी के नीचे की जमीन। तल। बाहू। ४. महीन पटल।
बरक। झिल्ली।

क्रि० प्र०—उचड़ना।

तहकीक—संज्ञा स्त्री० [प्र० तहकीक] १. सत्य। यथार्थता। २. सचाई
की जाँच। यथार्थ बात का अन्वेषण। खोज। अनुसंधान।
२. जिज्ञासा। पूछताछ।

क्रि० प्र०—करना। होना।

तहकीकात—संज्ञा स्त्री० [प्र० तहकीकात, तहकीक का बहुव०]
किसी विषय या घटना की ठीक ठीक बातों की खोज। अनु-
संधान। अन्वेषण। जाँच। जैसे, किसी मामले की तहकीकात,
किसी इत्म की तहकीकात।

मुहा०—तहकीकात खाना—किसी घटना या मामले के संबंध में
पुलिस क अफसर का पता लगाने के लिये खाना।

तहखाना—संज्ञा पु० [फा० तहखानहू] वह कोठरी या घर जो
जमीन के नीचे बना हो। भूईँहरा। तलगृह।

विशेष—ऐसे घरों या कोठरियों में लोग भूप की गरमी से बचने
के लिये जा रहते या घन रखते हैं।

तहजर्द—वि० [फा० तहजर्द] दे० 'तहजरज' [को०]।

तहर्जाब—संज्ञा स्त्री० [प्र० तहर्जाब] शिट्ट व्यवहार। शिष्टता।
सभ्यता।

तहदरज—वि० [फा० तहदरज] (कपड़ा आदि) जिसकी तह तक
न खोली गई हो। बिल्कुल नया। ज्यों का त्यों नया रखा
हुआ।

तहनशी—वि० [फा०] तरल पदार्थ में नीचे बैठनेवाली (वस्तु)।

तहनिशी—संज्ञा पु० [फा०] लोहे पर सोने चाँदी की पच्चीकारी।

तहपेच—संज्ञा पु० [फा०] पगड़ी के नीचे का कपड़ा।

तहपोशो—संज्ञा स्त्री [फा०] साड़ी के नीचे पहनने का पाजामा [को०]

तहचंद—संज्ञा पु० [फा०] लुंगी [को०]।

तहबाजारी—संज्ञा स्त्री [फा० तहबाजारी] वह महसूल जो सट्टी
में सोदा बेचनेवालों से जमींदार लेता है। भी।

तहमत—संज्ञा पु० [फा० तहमत या तहमत] कमर में लपेटा हुआ
कपड़ा। प्रंगोछा। लुंगी। घेचना।

क्रि० प्र०—बाँधना।—सगाना।

तहम्मूल—संज्ञा पु० [प्र०] १. महिम्नता। सहृदयता। २. गम्भी-
रता। सजीदगी। ३. धैर्य। सब। ४. नम्रता। नमी [को०]।

तहरीर—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तहर्ज़ि'।

तहरी—संज्ञा स्त्री [देश०] १. पेठे की बरी धोर चावल की खिचड़ी।
२. मटर की खिचड़ी। ३. कालीन बुननेवालों की डरकी।

तहरीर—संज्ञा स्त्री [प्र०] १. लिखावट। लेख। २. लेखशैली। जैसे,—
उनकी तहरीर बड़ी जबरबस्त होती है। ३. लिखी हुई बात।
लिखा हुआ मजमून। ४. लिखा हुआ प्रमाणपत्र। लेखबद्ध
प्रमाण। ५. लिखने की उजरत। लिखाई। लिखने का पहचान-
ताना। जैसे,—इसमें १) तहरीर लगेगी। ६. गुरु की कच्ची
छपाई जो कपड़ों पर होती है। कट्टर की बटाई। (छोपी)।

तहरीरी—वि० [फा०] लिखा हुआ। लिखित। लेखबद्ध। जैसे, तहरीरी सवृत, तहरीरी बयान।

तहसीलका—संज्ञा पुं० [अ० तहसीलक] १. मौत। पृत्यु। २. बरबादी। ३. खलबली। धुम। हलचल। विप्लव।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

४ कोलाहल। कोहराम (को०)।

तहसील—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसील] १. पचना। हजम होना। २. घुलना। मिलना (को०)। उ०—जो खाना तहसील करने और हरात मिटाने को सेटे।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० १५६ यो०—तहवीं जहवीं।

तहवीं—अव्य० [हि० तह + वीं (प्रत्य०)] वही। उ०—(क) बंधु समेत गए प्रभु तहवीं।—मानस, ३। २४। (ख) जाएस नगर भरम अस्थान। तहवीं यह कबि कीन्ह बसाय।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३४।

तहवील—संज्ञा स्त्री० [अ० तहवील] १. सुपुर्बगी। २. अमानत। धरोहर। ३. किसी मद की आमदनी का रुपया जो किसी के पास जमा हो। खजाना। जमा। रोकड़। ४. फिरना (को०)। ५. फिराना (को०)। ६. प्रवेश करना। दाखिल होना (को०)। ७. किसी ग्रह का किसी राशि में प्रवेश (को०)।

यो०—तहवालबार। तहवीले आपताब=सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश। संक्रांति।

तहवीलदार—संज्ञा पुं० [अ० तहवील + फा० दार (प्रत्य०)] वह आदमी जिसके पास किसी मद की आमदनी का रुपया जमा होता हो। खजानची। रोकड़िया।

तहशिया—संज्ञा पुं० [अ० तहशियह] किंगो पुस्तक पादि पर पार्श्व में टिप्पणी लिखना (को०)।

तहस नहस—वि० [देश] विनष्ट। बरबाद। नष्ट भ्रष्ट। ध्वस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहसीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसीन] प्रशंसा। तारीफ। इलाफा। उ०—वहाँ बरदानों और नहसीन, इससे मेरा काम न चला।—प्रेम० और गोकर्ण, पृ० ५६।

तहसील—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. बहुत से आश्रमियों से रुपया पैसा वसूल करके इकट्ठा करने की क्रिया। वसूली; उगाही। जैसे,—पोन तहसील करना।

क्रि० प्र०—करना—होना।

२. वह आमदनी जो लगान वसूल करने से इकट्ठी हो। जमीन की सालाना आमदनी। जैसे,—इतकी पचास हजार की तहसील है। ३. वह दफ्तर या कचहरी जहाँ जमींदार सरकारी मालगुजारी जमा करते हैं। तहसीलदार की कचहरी। माल की छोटी कचहरी।

तहसीलदार—संज्ञा पुं० [अ० तहसील + फा० दार (प्रत्य०)] १. कर वसूल करनेवाला। २. वह अफसर जो किसानों से सरकारी मालगुजारी वसूल करता है और माल के छोटे मुकदमों का फैसला करता है।

तहसीलदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसील + फा० दार + ई] १. कर

या महसूल वसूल करने का काम। मालगुजारी वसूल करने का काम। तहसीलदार का काम। २. तहसीलदार का पद।

क्रि० प्र०—करना।

तहसीलना—क्रि० स० [अ० तहसील से नामिक धातु] उगाहना। वसूल करना (कर, लगान, मालगुजारी, चंदा आदि)।

तहाँ—क्रि० वि० [म० तत् + स्थान, प्रा० थाण, थान] वहाँ। उस स्थान पर। उ०—तहाँ जाइ देखी बन सोभा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—लेख में अब इसका प्रयोग उठ गया है, केवल 'जहाँ का तहाँ' ऐसे दो एक वाक्यों में रह गया है।

तहाना—क्रि० स० [फा० तह से नामिक धातु] तह करना। घरी करना। लपेटना।

संयो० क्रि०—ढालना।—देना।

तहिआ—क्रि० वि० [हि०] तब। उस समय। उ०—भुज बल बिस्व जितव तुम्ह जहिआ। धरिहहि विष्णु मनुज तनु तहिआ।—मानस, १। २९।

तहियाँ—क्रि० वि० [सं० तदाहि] तब। उस समय। उ०—कह कबीर कछु अछियो न जहियाँ। हरि बिरवा प्रतिपालेसि तहियाँ।—कबीर (शब्द०)।

तहियाना—क्रि० स० [फा० तह] तह लगाकर लपेटना।

तही—क्रि० वि० [हि० तहाँ] वही। उसी जगह। उसी स्थान पर। उ०—दुखु सुखु जो निता निनार हमरे जाब जहाँ पाउव तही।—मानस, १। १७।

तहूँ—क्रि० वि० [म० तदवि] तब भी। उ०—खंड ब्रह्मंड सूखा पई, तहूँ न निष्फल जाय।—कबीर सा०, पृ० ७।

तहोवाला—वि० [फा०] नीचे ऊपर। ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर। उलट पलट। क्रमभंग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहाँ (पुं०)—क्रि० वि० [हि० तहाँ + प्रो (प्रत्य०)] तहाँ भी। उ०—नही प्रतीपहि कहत है कबि कीबिब सब कोय।—मति० ग्रं०, पृ० ३७२।

तांडव—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डव] १. पुरुषों का नृत्य।

विशेष—पुरुषों के नृत्य को तांडव और स्त्रियों के नृत्य को लास्य कहते हैं। तांडव नृत्य शिव को अत्यंत प्रिय है। इसी से कोई तहु अर्थात् नंदों को इस नृत्य का प्रवर्तक मानते हैं। किसी किसी के अनुसार तांडव नामक ऋषि ने पहले पहल इसकी शिखा दी, इसी से इसका नाम तांडव हुआ।

२. वह नाच जिसमें बहुत उछल कूद हो। उदत नृत्य। ३. शिव का नाम। ४. एक तृण का नाम।

तांडवतालिक—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डवतालिक] नंदीश्वर (को०)।

तांडवप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डवप्रिय] जकर (को०)।

तांडवित—वि० [सं० ताण्डवित] १. नृत्यशील। २. तांडव नृत्य में गोलाई में घूमता हुआ। ३. चक्कर खाता हुआ। ४. कुद (को०)।

सांडवी—संज्ञा पु० [सं० ताण्डवी] संगीत के चौदह ताळों में से एक ।

सांडि—संज्ञा पु० [सं० तण्डि] तंडि मुनि का निकला हुआ नृत्य शास्त्र ।

सांडी—संज्ञा पु० [सं० ताण्डिन्] १. सामवेद की नाट्य शाखा का अध्ययन करनेवाला । २. यजुर्वेद का एक कल्पसूत्रकार ।

तांडय संज्ञा पु० [सं० ताण्डय] १. तंडि मुनि के वंशज । २. सामवेद के एक ब्राह्मण का नाम ।

सांत—वि० [सं० तान्] १. श्रान्त । थका हुआ । २. त्रिमूर्ति के अंत में तू हो । ३. मुरझाया हुआ । (को०) । ४. कष्टमय (को०) ।

सांतवी—वि० [सं० तान्तिव] [वि० रत्नी० सांतवी] जिसमें तंतु या तार हो । जिसमें से तार निकल सके ।

सांतव—संज्ञा पु० १. बुना । २. बुना हुआ कपड़ा । ३. जाल । ४. सुन कातना । (को०) ।

सांतुवायि, तांतुवाय्य—स्त्री० पु० [सं० तान्तुवायि, तान्तुवाय्य] तंतुवाय या बुनकर का पुत्र (को०) ।

सांत्रिक—वि० [सं० तान्त्रिक] [स्त्री० तान्त्रिकी] तंत्र संबंधी ।

सांत्रिक—संज्ञा पु० १. तंत्र शास्त्र का जाननेवाला । यंत्र मंत्र आदि करनेवाला । भारद्वाज, मोहना, उज्ज्वलान आदि के प्रयोग करनेवाला । २. एक प्रकार का सांघपात ।

तांबूल—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूल] १. पान । नागवल्ली दल । २. पान का बीड़ा । ३. किसी प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो भोजनोत्तर खाया जाय (जैन) । ४. सुपारी ।

तांबूलकरं—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूलकर] १. पान रखने का बरतन । चट्टा । बिनहरा । २. पान के बीड़े रखने का डिब्बा । पनडिब्बा ।

तांबूलद—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूलद] पान रखने और तैयार करके देनेवाला नौकर (को०) ।

तांबूलधर—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूलधर] तांबूलद (को०) ।

तांबूलनियम—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूलनियम] पान, सुपारी, लवंग, इलायची आदि खाने का नियम । (जैन) ।

तांबूलपत्र—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूलपत्र] १. पान का पत्ता । २. धरपा नाम की लता जिसके पत्ते पान के स होते हैं । पिंडाल ।

तांबूलबीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूलबीटिका] पान का बीड़ा । बीड़ी ।

तांबूलराग—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूलराग] १. पान की पीक । २. मसूर ।

तांबूलबल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूलबल्ली] पान की बेल । नागवल्ली ।

तांबूलबाहक—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूलबाहक] पान खिलानेवाला सेवक । पान का बीड़ा लेकर चलनेवाला सेवक ।

तांबूलबीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा (को०) ।

तांबूलिक—संज्ञा पु० [सं०] पान बेचनेवाला । तम्बोली ।

तांबूली—संज्ञा पु० [सं० ताम्बूलीन्] पान बेचनेवाला । तम्बोली । तांबूली—वि० तांबूल संबंधी (को०) ।

तांबूली—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूल] पान की बेल । उ०—तांबूली, माहवल्ली, द्विजा, पान की बेल ।—नंद० घं०, पु० १०६ ।

तांबेख—संज्ञा पु० [?] कछुआ । कच्छप ।

तांमुल(पु)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तांबूल' । उ०—घृत बिन भोजन ज्यों घृत बिन तांमुल जटा बिन जोगी जैसे पुंछ बिन लोषरा ।—धकबरी०, पु० ५३ ।

ताँ(पु)१—अव्य० [?] तब तक । उ०—जो जसराज प्रतप्पियो ताँ सुरपूज त्रकाल ।—रा० ६०, पु० १६ ।

ताँ(पु)२—अव्य० [सं० तवा, प्रा० तई, लया; राज० ताँ] वही । उ०—सज्जन घलगा ताँ लगई, जाँ लग लयए दिट्ट ।—ढोला०, पु० ४२० ।

ताई—अव्य० [सं० तावन् या फ्रा० ता] १. तक । पर्यंत । २. पास । तक । समीप । निकट । ३. (किसी के) प्रति । समक्ष । लक्ष्य करके । जैसे, किसी के ताई कुछ कहना । उ०—कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के ताई । इन तेरह तें तरह दिए बनि आवे साई ।—गिरिधर (शब्द०) । ४. विषय में । संबंध में । लिये । वारंते । निमित्त । उ०—दीन्ह रूप भी जोति गोसाई । कीन्ह खंभ दुई जग के ताई ।—जायसी (शब्द०) ।

गुहा० अपने ताई = अपने को ।

विशेष दे० 'तई' ।

ताँगा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टंगा' ।

ताँडा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टींडा' । उ०—राम नाम सोदा किया हुआ दाण चुकाय । जन हरिया गुहजान का ताँडा देह सदाय ।—राम० धर्म०, पु० ५३ ।

ताँण(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तान' । उ०—जहाँ तुपक तरवारि धर सेल टबटुक हँ बाँण की ताँण चढ़ केर हुई ।—मुंदर० ग्रं०, भाग २, पु० ८८१ ।

ताँत—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तु] १. भेड़ बकरी की भैंतड़ी, या बीपायों के पुट्टों को बटकर बनाया हुआ सूत । चमड़े या नखों की बनी हुई डोरी । इससे धनुष की डोरी, सारंगी आदि के तार बनाए जाते हैं ।

मुहा० ताँत सा = बहुत दुबला पतला । ताँत बाजी और राग बूझा = जरा सी बात पाकर खूब पहचान लेना । उवा०—घर की टपकी बासी साग । हम तुम्हारी बात बुनियाद से बाकिफ हैं । ताँत बाजी और राग बूझा ।—सैर कु०, पु० ४४ ।

२. धनुष की डोरी । ३. डोरी । सूत । ४. सारंगी आदि का तार । जैसे, ताँत बाजी राग बूझा । उ०—(क) सो मैं कुमति कहउँ केहि आँती । बाज सुराग कि गाँइर ताँती ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सेइ साधु गुह मुनि पुरान श्रुति बूझ्यो राग बाजी ताँति ।—तुलसी (शब्द०) । ५. जुलाहों का राख ।

ताँवड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँत का धत्वा०] ताँत ।

मुहा०—ताँतड़ी सा = ताँत की तरह दुबला पतला ।

ताँतवा—संज्ञा पुं० [हि० ताँत] ताँत उतरने का रोग ।

ताँता—संज्ञा पुं० [सं० तति (= श्रेष्ठी) धनवा सं० ताति (= क्रम)] श्रेष्ठी । पंक्ति । कतार ।

मुहा० ताँता बाँधना = पंक्ति में बड़ा होना । ताँता लगना = तार न टूटना । एक पर एक बराबर चला चलना ।

ताँति—संज्ञा स्त्री० [हि० तति] दे० 'ताँत' ।

ताँतिया^१—वि० [हि० ताँत] ताँत की तरह दुबला पतला ।

ताँतिया^२—संज्ञा पुं० [हि०] ताँत बजावेवाला । तंतुवाद्यक । उ०—

कहीं कबीर मस्तान माता रहे, बिना कर ताँतिया नाद पावे । कबीर छ०, भा० १, पृ० ६५ ।

ताँती^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँता] १. पंक्ति । कतार । २. बाल बच्चे । घोबाद ।

ताँती^२—संज्ञा पुं० जुलाहा । कपड़ा बुननेवाला ।

ताँती(५)^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताँत' । उ०—उनमनी ताँती बाजन लागी, यही बिधि तृष्णा बाँडी । गोरख०, पृ० १०६ ।

ताँती(५)^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताँत' । उ० गोपी रीति रही रस तानन सों छुष छुष सब बिसगई । पोटार धमि० प्र०, पृ० १५१ ।

ताँबा—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र] लाल रंग की एक धातु जो खानों में मँधक, छोड़े तथा और द्रव्यों के साथ मिली हुई मिलती है ।

विशेष—यह पीटने से बढ़ सकती है और इसका तार भी खींचा जा सकता है । ताप और बिजुत् के प्रवाह का संसार ताँबे पर बहुत अधिक होता है, इससे उसके तारों का व्यवहार टेलिग्राफ धातु में होता है । ताँबे में और दूसरी धातुओं को निश्चित मात्रा में मिलाने से कई प्रकार की मिश्रित धातुएँ बनती हैं, जैसे, रंगीला मिलाने से काँसा, जस्ता मिलाने से पीतल । कई प्रकार के त्रिजायती सोने भी ताँबे से बनते हैं । खूब ठंडी जगह में ताँबा और जरता बराबर बराबर लेकर रखा जाने । फिर गली हुई धातु को खूब छोड़े और थोड़ा भा जस्ता और मिला दे । थोड़े-थोड़े कुथ्र देर में सोने की तरह पीला हो जायगा । ताँबे की खानें संसार में बहुत स्थानों में हैं जिनमें भिन्न भिन्न धार्मिक द्रव्यों के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार का ताँबा निकलता है । कहीं धूमले रंग का, कहीं बैंगनी रंग का, कहीं पीले रंग का । भारतवर्ष में सिन्धुभूमि, हजारीबाग, जयपुर, राजमेर, कच्छ, जागपुर, मेल्नोर इत्यादि अनेक स्थानों में ताँबा निकलता है । जानान से बहुत अच्छे ताँबे के पत्तर बाहर जाते हैं ।

हिन्दुओं के यहाँ ताँबा बहुत पवित्र धातु माना जाता है, अतः उसके धरचे, पक्षपात्र, कलश, झारी आदि पूजा के बरतन बहुत बनते हैं । बाकटरी, हकीमी और वैद्यक तीनों मत की चिकित्साओं में ताँबे का व्यवहार अनेक कर्षों में होता है । आयुर्वेद में ताँबा शोधन की विधि इस प्रकार है । ताँबे का

बहुत पतला पत्तर करके घाग में तपाकर लाल कर डाले । फिर उसे क्रमशः तेज, मट्टे, काँजी, गोमूत्र और कुनपी की पीठी में तीन तीन बार बुझावे । बिना शोषा हुआ ताँबा विष से अधिक हानिकारक होता है ।

पर्या०—तम्रक । शुल्ब । म्लेच्छमुख । द्वयष्ट । वरिष्ठ । उदुंबर । द्विष्ट । शंखक । तपनेष्ट । अरविद । रविलीह । रविप्रिय । रक्त । नैपालिक । मुनिपित्तन । शर्क । लोहितायम ।

ताँबा^२—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रमह्] मांस का वह दुबड़ा जो बाज आदि शिकारी पक्षियों के घागे खाने के लिये डाला जाता है ।

ताँबिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताँबी' ।

ताँबी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँबा] १. छोड़े मूँड का ताँबे का एक छोटा बरतन । २. ताँबे की करछी ।

ताँबेकारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लाल रंग ।

ताँम(५)—क्रि० वि० [?] तब । उ०—जजिब निसाब गजिब सु ताम ।—ह० रासो, पृ० १० ।

ताँवत(५)—क्रि० वि० [सं० तावत्] दे० 'तावत्' । उ०—जैत फूल फल पविय बाही । ताँवत भागमपुर में बाही ।—इंद्रा०, पृ० १४ ।

ताँवर—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हि० ताव] १. ताप । ज्वर । ह्वारत । २. जोड़ा देकर घानेवाला बुझार । जूकी । ३. मूर्छा । पछाड़ । घुमटा । चक्कर ।

क्रि० प्र०—घारा ।

ताँवरि(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताँवर' । उ०—फिरन सोस खलु भा प्रोधियारा । ताँवरि पाइ परी बिकगर ।—विद्या०, पृ० १२३ ।

ताँवरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताँवर' ।

ताँवरी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताँवर' । उ०—ज्यों सुक सेव पास लगी, निसि बासर हठि चित्त लगायो । गीतो परधो जब कल बाक्यो, उड़ि गयो तूल ताँवरी पायो ।—सूर०, १ । ३२६ ।

ताँसना—क्रि० सं० [सं० त्रास] १. डीटना । त्रास देना । धमकाना । घाँव दिखाना । २. क्रुध्यवहार करना । मताना । जैसे, सास का बहू को ताँसना ।

ताँसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा । भीक ।

ताँह(५)—सर्व०—[सं० तत्] वो । सो (वह) सर्वनाम के कर्मकारक का बहुवचन । उ०—घाडा डूंगर वन घण्टा, ताँह मिलिउज्जद कैम ।—दोला०, दू०, २१२ ।

ताँही(५)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ताँह' । उ०—जो अंतरजामी दिगि पाही । का करि सके हंन इन पाँही ।—तंद० प्र०, पृ० १६२ ।

ता^१—प्रत्य० [सं०] एक भाववाचक प्रत्यय जो विशेषण और संज्ञा शब्दों के घागे जगता है । जैसे,—सत्तम, उत्तमता; सत्तु, सत्तुता; मनुष्य, मनुष्यता ।

ता^२—प्रत्य० [क्रा०] तक । पर्यंत । उ०—(क) केस मेधावरि सिर ता पाई । नमकहि दसन बीजु की नाई ।—जायसी

(शब्द०) । (ख) । छट्ठा हूँ हम सब हर बार में । ता
गले तेरे झुं ऐ याद में । कविता की०, भाग ४, पृ० २६ ।

ता^३—सर्व० [म० तद्] उस ।

विशेष — इस रूप में यह शब्द विभक्ति के साथ ही आता है ।
जैसे,—ताकों, तामों, तापे इत्यादि ।

ता^३—वि० उस । उ०—तब शिव उभा गए ता ठीर ।—सुर
(चन्द०)

विशेष — इसका प्रयोग विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ ही होता है ।

ता^३—क्रि० वि० [फा०] जब तक । उ०—कहे ता धो घल्लाह का
नायब वरम । हमारा सधी जाय ये बदा गम ।—इक्किनी०,
पृ० २१४ ।

ता^३—संज्ञा पु० [धनु०] तन्म का बोल । उ०—रास में रसिक होऊ
घानंद भरि नाचन, फादिस दि ता नतयेह ततयेह गति
बोने ।—नद० पं०, पृ० १६६ ।

ताई^३—पु०—धनु० [म० ताय् या फा० ता] दे० 'ताई'—३ ।
उ०—अपुन ओह विदय रा पोयै धृग धृग तिनके ताई ।—
कबीर ज०, भा० १, पृ० ४५ ।

ताई^३—संज्ञा स्त्री [म० ताय, हि० ताय + ई (प्रत्य०)] १. ताप ।
इरादा । हल्ला उबर । २. आवा देकर धानेवाला बुझार ।
छुड़ी ।

क्रि० प्र०—घाना ।

३. एक प्रकार की लकड़ी जिसे मासपुष्प, जलेबी आदि
बनाने हैं ।

ताई^३—संज्ञा स्त्री [हि० ताक का स्त्रीभोग] बाप के बड़े भाई की
स्त्री । जेटी सान्नी ।

ताई^३—पु०—धनु० [म० ताय् या फा० ता] दे० 'ताई'—३ ।
उ०—पुन लानि में रहो मगद । तब जग जाने तेरे ताई ।—
कबीर सा०, पृ० १५१५ ।

ताई^३—वि० [म० ताय] गरी । उ०—साजे सार छत्रीस
सिपाई । सार हुआ मग में गु ताई ।—रा० क०, पृ० १५ ।

ताईत^३—संज्ञा पु० [फा० तवीज के तावीज] खतर । घब ।

ताईद^३—संज्ञा स्त्री [ध०] १. पत्नी । २. पत्नी । ३. धनुष ।
समर्थता । पुष्टि । उ०—आखिर भिरजा साहब भूठ क्यों
बोलते धीर भुंजी बख्तर साहब इनकी ताईद क्यों करते ?—
सीर०, पृ० १२२ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ताईवा^३—संज्ञा पु० १. गन्धक नमकचारी । नायब । २. किसी
कर्मचारी के साथ काम करने के लिये उम्मेदवार की तरह
काम करनेवाला व्यक्ति ।

ताउ^३—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ताव' ।

ताउला^३—वि० [हि० उतावना] उतावला । अधीर ।

ताऊ^३—संज्ञा पु० [म० तातगु] बाप का बड़ा भाई । बड़ा चाचा । ताया ।

मुहा०—बखिया के ठाऊ=बैल । मुर्ख । जड़ ।

ताऊन—संज्ञा पु० [ध०] एक घातक संक्रामक रोग जिसमें गिलटी
निकलती धीर बुझार आता है । ज्वेप ।

ताऊस—संज्ञा पु० [ध०] १. मोर । मयूर ।

यो०—तख्त ताऊस = काहुजही के बहुमूल्य रत्नजटित राज-
सिंहासन का नाम जो कई करोड़ की लागत से मोर के आकार
का बनाया गया था ।

२. सारंगी धीर सितार से मिलता जुलता एक बाजा जिसपर
मोर का आकार बना होता है ।

विशेष — इसमें सितार के दो तरफ धीर परदे होते हैं धीर यह
सारंगी की कमानी से रेतकर बजाया जाता है ।

ताऊसी—वि० [ध०] १. मोर का सा । मोर की तरह का । २.
बहरा ऊदा । गहरा बेगनी ।

ताक^३—संज्ञा स्त्री [हि० ताकना] १. ताकने की क्रिया । धवलीकन ।
यो०—ताक भाँक ।

मुहा०—ताक रखना = निगाह रखना । निरीक्षण करते रहना ।
२. स्थिर रहना । टाटनी ।

मुहा०—ताक बाँधना = स्थिर रहना । टकटकी लगाना ।
३. किसी धातु की मीठा । मीठा देखते रहने का काम ।
घात । जैसे,—बंदर घाम लेने की ताक में बैठा है ।

मुहा०—(किसी की) ताक में बैठना = (किसी का) सहित
चेतना । उ०—जो रहे ताकने हमारा मुँह । हम उन्हीं की
न ताक में बैठें ।—चोखे०, पृ० २७ । ताक में रहना =
उपयुक्त धातु की मीठा करते रहना । मीठा देखते रहना ।
ताक रखना = घात में रहना । मीठा देखते रहना । ताक
लगाना = घात लगाना । मीठा देखते रहना ।

४. खोज । तलाश । फ़िराक । जैसे,—(क) किस ताक में बैठे
हो ? (ख) इसी की ताक में जाते हैं ।

ताक^३—संज्ञा पु० [ध० ताय] धीरार में बना हुआ गढ़वा या लाठी
स्थान जो चीज वस्तु रखने के लिये होता है । घाला । ताखा ।

मुहा०—ताक पर धरना या रखना = रखा रहने देना । काम
में न लाना । उपयोग न करना । जैसे,—(क) किताब ताक
पर रख दी धीर लेखने के लिये निकल गया । (ख) तुम अपनी
किताब ताक पर रखो, मुझे उगाही बकरत नहीं । ताक पर
रहना या होना = पड़ा रहना । काम में न आना । बलब
पड़ा रहना । व्यर्थ आना । जैसे, यह बस्तावेज ताक पर
रह जायगा; धीर उसकी बिगरी हो जायगी । ताक धरना =
किसी देवस्थान पर मनीषी की पूजा चढ़ाना ।—(मुपख०) ।

ताक^३—वि० १. जो मंझा में सम न हो । जो बिना सादत हुए दो
बराबर भागों में न बंट सके । विषम । जैसे, एक, तीन, पाँच,
सात, नौ, ग्यारह आदि ।

यो०—जुपत ताक या बूस ताक ।

२. जिसके जोड़ का दूसरा न हो । अद्वितीय । एक या अनुपम ।
जैसे, किसी फन में ताक होना । उ०—जो था अपने फन में
ताक था ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४६ ।

ताकजुप्त—संज्ञा पुं० [सं० ताक + ज्ञा० जुप्त] एक प्रकार का जूभा जिसमें मुट्ठी के भीतर कुछ कोड़ियाँ या घोर वस्तुएँ लेकर बुझाते हैं कि वस्तुओं की संख्या सम है या विषम। यदि बुझनेवाला ठीक बतला देता है तो वह जीत जाता है।

ताकझाँक संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना + झाना] १. रहु रहकर बार बार देखने की क्रिया। कुछ प्रयत्नपूर्वक दृष्टिपात। जैसे,—क्या ताक झाँक लगाए हो; धसी वे यहाँ नहीं आए हैं। २. छिपकर देखने की क्रिया। ३. निरीक्षण। देखभाल। निगरानी। ४. अव्यवस्था। खोज।

ताकत—संज्ञा स्त्री० [सं० ताकत] १. जोर। बल। शक्ति। २. सामर्थ्य। जैसे,—किसी की क्या ताकत जो तुम्हारे सामने आवे।

ताकतवर—वि० [सं० ताकत + वर (वरण)] १. बलवान्। बलिष्ठ। २. शक्तिमान्। सामर्थ्यवान्।

ताकना—क्रि० स० [सं० तर्कण (=विचारना)] १. सोचना। विचारना। चाहना। उ०—जो रास्ते की प्रशंसा ताक। सो पाइहि यह फल परिपात।—तुलसी (पद्म०)। २. प्रयत्न करना। दृष्टि समाकर देखना। टाटकी लगाना। ३. ताकना। समझ जाना। लखना। ४. पहने से देख रखना। (किसी वस्तु को किसी कार्य के लिये) देखकर रीयर करना। तजवीज करना। जैसे,—(क) यह जगह मैंने पहले से तुम्हारे लिये ताक रखी है, यहाँ बैठो। (ख) कोई अच्छा आदमी ताककर यहाँ लायो। ५. दृष्टि रखना। रखवानी करना। जैसे,—मैं अपना व्यवहार यही छोड़े जाता हूँ, बरा ताकते रहना।

ताकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्का (=एक पैसा या एक जाति)] एक सिपि का नाम जो नागरी से मिलती जुलती होती है।

विशेष—घटक के उस गार में लेकर सतलज और जमुना नदी के किनारे तक यह सिपि प्रचलित है। काश्मीर और कांगड़े के जहाजों में इसका प्रचार अब तक है। इसके घसरो को लुड़े या मूंडे भी कहते हैं।

ताकखना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ताकना'। उ०—कायर सेरो ताकवे, मूढा पावे पावे।—कबीर सा०, सं०, पृ० २६।

ताकि—अव्य० [ज्ञा०] जिसमें। इसलिये कि। जिनमें। जैसे,—यहाँ से हट जाता है ताकि वह मुझे देखने न पावे।

ताकीद—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोर के साथ किसी बात की आज्ञा या अनुरोध। किसी को सावधान करके दी हुई आज्ञा। खूब चेताकर कही हुई बात। ऐसा अनुरोध या आदेश जिसके पालन के लिये बार बार कहा गया हो। जैसे,—मुहम्मदों से ताकीद कर दो कि कल ठीक समय पर आवें। उ०—क्या तुम सब लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उसका हो?—बारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १७६।

क्रि० प्र०—करना।

ताकीद कामिल—संज्ञा स्त्री० [सं० ताकीद + कामिल] पूर्ण चेतावनी। सावधानी। उ०—जरा इसकी ताकीद कामिल रहे कि कहीं वह बड़ा चर्खा मोल्की न घुस आए।—प्रेमचन्द, भा० २, पृ० ५८।

ताकोली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक पोछे का नाम।

ताक्षण्य, ताक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ई का लड़ा [को०]।

ताखड़—संज्ञा पुं० [सं० ताक] दे० 'ताक'। उ०—पढ़ सुगना मत नाम, बैठ तन ताखड़।—धरम०, पृ० ४३।

ताखड़ा—वि० [देख०] दे० 'ताक'।

ताखड़ा—वि० [?] उत्साहित। उ०—ताखड़ा, तनीठा मोड़िया लायली। घण्टा घायन किया आप घण्टा घायली।—रघु० क०, पृ० १८३।

ताखड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० जि + हिं० कड़ी] तराजू। कौटा।

ताखन—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नखन'। उ०—ताखन उठलिई जागि रे।—धरनी०, पृ० २८।

ताखा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताक'।

ताखी—वि० [सं० ताक] १. जिसकी दोनों याँों एक तरह की न हों। जिसकी एक भालि एक रंग या रंग की हो और दूसरी भालि दूसरे रंग रंग की हो। (घोड़ों, बैलों आदि के लिये। ऐसे जानवर ऐसी गमने जाते हैं)। २. सधुओं के पहनने की नोकदार एक टोपी। उ०—गुल का सबद दोउ कान में मुद्रिका, उनमुनी जिनक मिर तल ताखी।—अलतू०, भा० २, पृ० २५।

ताखीर—संज्ञा स्त्री० [सं० ताखीर] विग्रह। देर। उ०—बेख नाचार कर न कुछ ताखीर।—कबीर प्र०, पृ० ३७४।

ताग—संज्ञा पुं० [हिं० तागा] दे० 'तागा'। उ०—ताग तज तम तीनों ताग तोरि डारिए।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ६११।

तागड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताग + कड़ी] १. ताग में पिरोए हुए सोने चाँदी के घुँघुण्डों का बना हुआ कमर में पहनने का एक गहना। करघनी। काँची। किल्लमुँगी। धुदपट्टा।

विशेष—तागड़ी मीकड़ या जंजार के बरतार की भी बनती है।

२. कमर में पहनने का रंगीन डोरा। कटिचूत। करतार।

तागत—संज्ञा स्त्री० [सं० ताक] दे० 'ताक'। उ०—तागत बिना हवास होम तुलसी में मल्ल।—गो० तुलसी, पृ० १४३।

तागना—क्रि० स० [हिं० तागा + ना (प्रत्यय)] मुँह से तागा डाखकर फेंकना। स्थान स्थान पर डोम या जंगर डालना। दूर दूर की मोटी गिलाई करना। जैसे, तुलसी या रजाई तागना। उ०—जान गूरी मुक्ति मेलना सहन मुँह ले तानी।—कबीर सा०, भा० १, पृ० ४२।

तागपहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागा + पहनाना] एक पतली सकड़ी जिसका एक सिरा नोकदार और दूसरा चिपटा होता है। चिपटा सिरा दोष में फटा रहता है जिसमें तागा रखकर बग में पहनाया जाता है। (जुनाहे)।

तागपाट—संज्ञा पुं० [हिं० तागा + पाट (=रेखम)] एक प्रकार का गहना।

विशेष—यह रेखम के तागे में सोने के तीन दाँते या जंतर डालकर बनाया जाता है। यह विवाह में काम आता है।

मुहा०—तागपाट डालना = विवाह की रीति के अनुसार गणेश-

पूजन आदि के पीछे वर के बड़े भाई (दुलहिन के जेठ) का बंधु को तागपाट पहनाना ।

तागरी(पु) — संज्ञा स्त्री० [हि० तागरी] दे० 'तागरी'—२। उ०—
बिरगट फारि चठरा लै ययो तरी तागरी धूरी।—कबीर
प्र०, पृ० २७७।

तागा — संज्ञा पुं० [सं० ताकंय, प्रा० तागो, प० हि० तागो] १. रूई,
रेशम आदि का वह धाँस जो तकले आदि पर बटने से लंबी
रेखा के रूप में निकलता है। सूत। डोरा। धागा।

क्रि० प्र०—डालना।—पिरोना।

मुहा०—तागा डालना = मिलाई के द्वारा तागा फँसाना। दूर दूर
पर मिलाई करना। तागना।

२. वह कर या महसूल जो प्रति मनुष्य के हिसाब से लगे।

विशेष—मनुष्य करधनी, जनेऊ आदि पहनते हैं; इसी से यह
धर्म लिया गया है।

तागीर(पु) — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तागीर'। उ०—तब देवाधिपति ने
उन सौ परगना तागीर करि उनको अपने पास बुलाए।—दो
सौ बानन०, भा० १, पृ० २०१।

तागडि(पु) — संज्ञा पुं० [धनु०] तड़तड़ शब्द। उ०—दूध छोड़ी
एल गार्ज, तागडि तबल बाजे रियातुर।—रघु०, क०,
पृ० २१६।

ताचना(पु) — क्रि० म० [हि० तचना] जलाना। तपाना। उ०—
बिरफुलिंग से जग दुख तजि तब बिरह अगिन तन ताचो।—
आरनेदु प्र०, भा० २, पृ० २३६।

ताजी— संज्ञा पुं० [फा०] १. बादशाह की टोपी। राजमुकुट।

यौ० ताजपोशी।

२. कलगी। लुरी। ३. भोग। गुर्गे आदि पशियों के सिर पर की
चोटी। शिखा। ४. डीकार की कँगनी या छज्जा। ५. वह
वृत्ति जिसे मकान के सिरे पर शोभा के लिये बना देने हैं। ६.
गलीफे के एक रंग का नाम। ७. आगरे का ताजमहल।

ताज(पु) — संज्ञा पुं० [फा० ताजियाना] छोड़े को मारने का चाबुक।
उ०—तीख तुलार चाँड धो बाँके। सँवरहि पोरि ताज बिनु
हकि। जायसी (शब्द०)।

ताजक— संज्ञा पुं० [फा०] १. एक ईरानी कवि जो तुर्किस्तान के
बुखारा प्रदेश से लेकर उदकशी, काबुल, बिर्लोचिस्तान, फारस
आदि तक भाई गयी है।

विशेष—बुखारा से यह जति सर्त, अफगानिस्तान से देहान और
बिर्लोचिस्तान से देहवार कहलाती है। फारस में ताजक एक
नाश्वरण शब्द आसीन के लिये हो गया है।

२. ज्योतिष का एक ग्रंथ जो यावनाचार्य कृत प्रसिद्ध है।

विशेष—यह पहले भरबी और फारसी में था; राजा समरसिंह,
मीनकंठ आदि ने इसे संस्कृत में किया। इसमें बारह राशियों
के अनेक विभाग करके फलाफल निश्चित करने की रीतियाँ
बनवाई गई हैं। जैसे, मेष, सिंह और धनु का पित्त स्वभाव
और अतिव्यं वरुण; मकर, वृष और कन्या का वायु स्वभाव
और वैश्य वरुण; मिथुन, तुला और कुंभ का सम स्वभाव और

शूद्र वरुण; कर्कट, धृष्टिक और मीन का कफ स्वभाव और
आह्वय वरुण। इस ग्रंथ में जो धंजाएँ आई हैं, वे अधिकांश
अरबी और फारसी की हैं, जैसे, इकबाल योग, इतिहा योग
इत्येनाल योग, इशाराक योग, गैरकबूल योग इत्यादि।

ताजकुला— संज्ञा पुं० [अ० ताज + फा० कुलाह] रत्नजटित मुकुट।
उ०—बादशाह बाबर लिखता है कि जिस समय सुलतान
महमूद राणा सांगा के हाथ कैद हुआ, उस समय प्रसिद्ध
'ताजकुला' (रत्नजटित मुकुट) और सोने की कमर पेटी
उसके पास थी।—राज० इति०, पृ० ६६७।

ताजगी— संज्ञा स्त्री० [फा० ताजगी] १. शुक्ला या कुम्हलाहट का
अभाव। ताजापन। हरापन। २. प्रफुल्लता। स्वस्थता।
शिथिलता या श्रान्ति का अभाव। ३. सद्यः प्रस्तुत होने का
भाव। नयापन।

ताजदार^१— वि० [फा०] १. ताज के ढंग का। २. ताजवाला।
ताजदार^२— संज्ञा पुं० ताज पहननेवाला बादशाह। उ०—सनाईश
वंश हैं उनके ताजदार।—कबीर म०, पृ० १३१।

ताजन— संज्ञा पुं० [फा० ताजियाना] १. कोड़ा। चाबुक। उ०—
ताज न आवति मोर समज न लागे अलोक के ताजन ताह।—
केशव प्र०, पृ० ७२। २. दंड। सजा (को०)। ३. उत्तेजना
प्रदान करनेवाली वस्तु (को०)।

ताजना— संज्ञा पुं० [हि० ताजन] दे० 'ताजन'। उ०—तनक ताजना
लपत ही, छाह देत भुव भग।—प० रामो, पृ० ११७।

ताजपोशी— संज्ञा स्त्री० [फा०] राजमुकुट धारण करने या राज-
सिंहासन पर बैठने की रीति या उत्सव।

ताजबस्त्र— संज्ञा पुं० [अ० ताज + फा० बस्त्र] बादशाह बनाने-
वाला या हारे हुए बादशाह को बादशाह बनानेवाला सम्राट्
(को०)।

ताजबीबी— संज्ञा स्त्री० [अ० ताज + फा० बीबी] शाहजहाँ की
अत्यंत प्रिय और प्रसिद्ध बेगम मुमताज महल जिसके लिये
आगरे में ताजमहल नाम का मकबरा बनाया गया था।

ताजमहल— संज्ञा पुं० [अ०] आगरे का प्रसिद्ध मकबरा जिसे शाह-
जहाँ बादशाह ने अपनी प्रिय बेगम मुमताज महल की स्मृति
में बनवाया था।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि बेगम ने एक रात को स्वप्न
देखा कि उसका गर्भस्थ शिशु इस प्रकार रो रहा है जैसा
कभी सुना नहीं गया था। बेगम ने बादशाह से कहा—'मेरा
अंतिम काल निकट आन पड़ता है। आपसे मेरी प्रार्थना है
कि आप मेरे मरने पर किसी दूसरी बेगम के साथ निकाह न
करें, मेरे लड़के को ही राजसिंहासन का अधिकारी बनावें और
मेरा मकबरा ऐसा बनवावें जैसा कहीं भूमंडल पर न हो'।
प्रसव के चौदह दिन पीछे ही बेगम का शरीर सूट गया।
बादशाह ने बेगम की अंतिम प्रार्थना के अनुसार बमुना के
किनारे यह विशाल और अनुपम भवन निर्मित कराया जिसके
ओड़ की इमारत संसार में कहीं नहीं है। यह मकबरा
बिल्कुल संगमरमर का है। जिसमें नाना प्रकार के बहुमूल्य

रंगीन परशों के टुकड़े जड़कर बेल बूटों का ऐसा सुंदर काम बना है कि चित्र का धोखा होता है। रंग बिरंग के फूल पत्ते पच्चीकारी के द्वारा सजित हैं। पत्तियों की नसें तक बिछाई गई हैं। इस मकबरे को बनाने में ३० वर्ष तक हजारों मजदूर और देशी विदेशी कारीगर लगे रहे। मसाला, मजदूरी आदि धातुओं की अपेक्षा कई गुनी सस्ती होने पर भी इस इमारत में उस समय ११७३००२४ खप लगे। टेबनियर नामक फ्रेंच यात्री उस समय भारतवर्ष ही में था जब यह इमारत बन रही थी। इस अनुभव भवन को देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जाता है। ठगों को दमन करनेवाले प्रसिद्ध कर्नेल स्लीमन जब ताजमहल को देखने सस्त्रीक गए, तब उनकी स्त्री के मुँह से यही निकला कि 'यदि मेरे ऊपर भी ऐसा ही मकबरा बने, तो मैं धाज मरने के लिये तैयार हूँ।'

ताजा—वि० [फ्रा० ताजह] [वि० बी० ताजी] १. जो सुखा या कुम्ह-जाया न हो। हरा भरा। जैसे, ताजा फूल, ताजी पत्ती, ताजी घोड़ी। २. (फल आदि) जो हाल से टूटकर तुरंत खाया हो। जिसे पक से प्रलप हो बहुत देर न हुई हो। जैसे, ताजे आम, ताजे आमरुब, ताजी फलियाँ। ३. जो श्रात या शिथिल न हो। जो पका माँदा न हो। जिसमें फुरजी और उत्साह बना हो। स्वस्थ। प्रफुल्लित। जैसे,—(क) थोड़ा बलपान कर लो ताजे हो जाओगे। (ख) शरबत पी लेने से तबीयत ताजी हो गई।

यो०—मोटा ताजा = हट्ट पुष्ट।

४. पुरंत का बना। सद्यःप्रस्तुत। जैसे, ताजी पूरी, ताजी बनेबो, ताजी दवा, ताजा खाना।

मुहा०—हुक्का ताजा करना = हुक्के का पानी बदलना।

५. जो व्यवहार के लिये अभी निकाला गया हो। जैसे, ताजा पानी, ताजा दूध। ६. जो बहुत दिनों का न हो। नया। जैसे—ताजा माल।

मुहा०—(किसी बात को) ताजा करना = (१) तब सिर से उठाना। फिर छेड़ना या चलाना। फिर से उपस्थित करना। जैसे,—दबा दबाया फगड़ा क्यों ताजा करते हो? (२) स्मरण दिलाना। याद दिलाना। फिर चित्त में लाना। जैसे,—गम ताजा करना। (किसी बात का) ताजा होना = (१) तब सिर से उठना। फिर छेड़ना या चलाना। फिर उपस्थित होना। जैसे,—उनके घाने से मामला फिर ताजा हो गया। (२) स्मरण आना। फिर चित्त में उपस्थित होना। जैसे, गम ताजा होना।

ताजातम—वि० [फ्रा० ताजा + सं० तम (प्रत्य०)] बिल्कुल नवीन। नवीनतम। उ०—'कदी में कोयला' 'उग्र' लिखित ताजातम उपन्यास है।—कदी० (प्रकाशकीय), पृ० ८।

ताजि—वि० [हि० ताजी] १० 'ताजी'। उ०—घनेक ताजि तेजि ताजि साजि साजि आनिषा।—कीर्ति०, पृ० ८४।

ताजिगौ—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ताजन'। उ०—हाथि लगामो ताजिगौ पार कहै सैवह राजदुधार।—बी० रासो, पृ० ६६।

ताजिया—संज्ञा पु० [अ० ताजियह] बस की कमकियों पर रंग

बिरंगे कागज, पन्नी आदि बिपकाकर बनाया हुआ मकबरे के धाकार का मंडप जिसमें इमाम हुसैन की कब्र बनी होती है।

विशेष—मुहर्रम के दिनों में शीया मुसलमान इसकी धाराधना करते और अंतिम दिन इमाम के मरने का शोक मनाते हुए इसे सड़क पर निकालते और एक निश्चित स्थान पर ले जाकर बफन करते हैं।

मुहा०—ताजिया ठंडा होना = (१) ताजिया दफन होना। (२) किसी बड़े धादमी का मर जाना।

विशेष—ताजिया निकालने की प्रथा केवल हिंदुस्तान के शीया मुसलमानों में है। ऐसा प्रसिद्ध है कि तैमूर कुछ जातियों का नाश करके जब करबला गया था, तब वहाँ से कुछ बिल्ह लाया था जिसे वह अपनी सेना के भागे भागे लेकर चलता था। तभी से यह प्रथा चल पड़ी।

ताजियादारी—संज्ञा बी० [हि० ताजिया + फ्रा० दारी (प्रत्य०)] ताजिया के प्रति संमानप्रदर्शन। उ०—दुर्गाबाई सुन्नी मुसलमान थी। वह ताजियादारी करती थी और जाचना उनका पेशा था।—कासी०, पृ० ३१०।

ताजियाना—संज्ञा पु० [फ्रा० ताजियान] १. चादक। कोड़ा। उ०—हर नफस घोया उसे एक ताजियाना हो गया।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८५०।

ताजी—वि० [फ्रा० ताजी] धरबी। धरब का। धरब संबंधी।

ताजी—संज्ञा पु० १. धरब का थोड़ा। उ०—सुंदर घर ताजी बंधे घुरकिन की घुरमाण।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७९७। २. शिकारी कुत्ता।

ताजी—संज्ञा स्त्री० धरब की भाषा। धरबी भाषा।

ताजी—वि० ताजा का बी० रूप।

ताजीम—संज्ञा स्त्री [अ० ताजीम] किसी बड़े के सामने उसके धावर के लिये उठकर खड़ा हो जाना। झुककर सखाम करना इत्यादि। संमानप्रदर्शन। उ०—मिजदः सिरजनहार की मुसिद की ताजीम।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० २८६।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

ताजीमी—वि० [अ० ताजीम + फ्रा० ई (प्रत्य०)] ताजीम। उ०—धीर रसूल पर करो धकीना। उन फकीर ताजीमी कीन्हा।—घट०, पृ० २११।

ताजीमी सरदार—संज्ञा पु० [फ्रा० ताजीमी + अ० सरदार] वह सरदार जिसके घाने पर राजा या बादशाह उठकर खड़े हो कार्य या जिसे कुछ घाने बड़कर लें। ऐसा सरदार जिसकी दरबार में विशेष प्रतिष्ठा हो।

ताजीर—संज्ञा बी० [अ० ताजीर] सजा। दंड [की०]।

ताजीरात—संज्ञा पु० [अ० ताजीरात, अ० ताजीर का बहु व०] अपराध और दंड संबंधी व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह। दंडविधि। जैसे, ताजीरात हिंद।

ताजीरी—वि० [अ० ताजीर + फ्रा० ई (प्रत्य०)] १. दंड से संबंधित। २. दंड रूप में लगाया हुआ या पैनात किया हुआ (कर दी पुलिस आदि)।

ताजोस्त—अर्थ [फ्रा० ताजोस्त] जीवन भर। याजीवन। याजन्म।
उ०—ताजोस्त सनारवर्षा होतु नमः कानिष्ठ ग्रन्थे।—कबीर
मं०, पृ० ४१८।

ताजुषी—संज्ञा पुं० [प० तपञ्जुष] दे० 'तपञ्जुष'।

ताड़जुव—संज्ञा पुं० [प० तपञ्जुव] दे० 'तपञ्जुव'।

ताटक—संज्ञा पुं० [म० ताडक] १. कान में पड़ने का एक यन्त्र।
करनफूल। तरकी। उ०—सिंह दमि जाव निकट खवननि
के उलटि पलटि ताटक फंकोते।—मनमोहन०, पृ० ५५। २.
छपाय के २४वें अक्षर का नाम। ३. एक छद्म। इसके प्रत्येक
चरण में १६ और १८ के विचाराय ३० मात्राएँ होती हैं
और अन्त में मगण होता है। ४. गीत में एक
पुरुष का ही निरूपण है। कान्दनी उद्यम इसी छन्द में
होती है।

ताटका—संज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'ताडका' [को०]।

ताटस्थ—संज्ञा पुं० [म० ताटस्थ] १. शरीरता। निकटता। २.
तटस्थता। उदासीनता। निर्विषयता [को०]।

ताड़क—संज्ञा पुं० [म० ताडक] कड़ का एक यन्त्र। तरकी।
करनफूल।

विशेष—पहले यह गड़गड़ाने वाली पत्तों से हो बनाया था। अब
भी तरकी ताड़के पत्तों से ही की जाती है।

ताड़—संज्ञा पुं० [म० ताड] १. मातृवर्द्धन। एक वृक्ष। पेड़ जो खग
के रूप में ऊपर की ओर बढ़ता चला जाता है और केवल
सिरे पर पत्तों धारण करता है।

विशेष—ये पत्तों चिपटे मजबूत डठल के, जो आगे और निकले
रहते हैं, केसे रुप तर की ताड़ में रहते हैं और बहुत हो
कहे होते हैं। इससे लकड़ी की छोटी बनावट सुत के ठोस
लकड़ों के रूप में होती है। ऊपर वाले रुप पत्तों के डठलों के
मूल रह जाते हैं जिससे सात पुरपुरी दिखाई पड़ती है। चेत
के महीने में इसमें फूल लगते हैं और गीलास में अन्न जो कटों
में भूषण कर जाता है। पत्तों में भीतर एक प्रकार की चिरी
और रेशदार गुदा होता है जो खाने का योग्य होता है। फूलों
के कच्चे फलकों को खाकर ये बहुत रास भोजन करता है जिसे
ताड़ी कहते हैं और जो पुष्प लगने पर लकीरा हो जाता है।
ताड़ी का व्यवहार बीष जेखी के योग्य अन्न के स्थान पर
करते हैं। बिना पुष्प लगने उस मीठा होता है जिसे नीरा
कहते हैं। महात्मा गांधी ने नीरा का प्रयोग उचित बताया
था। नीरा तथा ताड़ी दोनों में विश्वामित्र की प्रचुर मात्रा में
होता है। बेरी बरी रोष में दोनों धर्म्य साधकानी होते हैं।
ताड़ प्रायः सब गरम देशों में होता है। मातृवर्द्धन, अरब,
बरमा, सिन्धु, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपसमूह तथा फारस
की साड़ी के तटस्थ प्रदेश में ताड़ के पेड़ बहुत पाए जाते हैं।
ताड़ की अनेक जातियाँ होती हैं। तमिल भाषा में ताल-
विनास नामक एक ग्रंथ है जिसमें ७०१ प्रकार के ताड़
गिनाए गए हैं और प्रत्येक का अलग प्लग पुण्य बताया
गया है। दक्षिण में ताड़ के पेड़ बहुत अधिक होते हैं।

गोदावरी आदि नदियों के किनारे कहीं कहीं तालवनों की
विलक्षण शोभा है। इस वृक्ष का प्रत्येक भाग किसी न किसी
काम में आता है। पत्तों से पंखे बनते हैं और छपर छाए
जाते हैं। ताड़ की खड़ी लकड़ी मकानों में लगती है।
अवड़ी खोखली करके एक प्रकार की छोटी सी नाव भी
बनाते हैं। डंठल के रेशे बटाई और जाल बनाने के काम में
आते हैं। कई प्रकार के ऐसे ताड़ होते हैं जिनकी लकड़ी बहुत
मजबूत होती है। मिहल के जफना नामक नगर से ताड़ की
लकड़ी दूर दूर भेजी जाती थी। प्राचीन काल में दक्षिण के
देशों में तालपत्र पर ग्रंथ लिखे जाते थे। ताड़ का रस
ओषध के काम में भी आता है। ताड़ी की पुलटिस फोड़े
या घाव के लिये अत्यंत उपकारी है। ताड़ का सिरका
भी पड़ता है। वैद्यक में ताड़ का रस कफ, पित्त, बाह्य
और शोथ को दूर करनेवाला और कफ, वात, कुमि,
कुष्ठ और रक्तपित्त नाशक माना जाता है। ताड़ ऊँचाई
के लिये प्रसिद्ध है। कोई कोई पेड़ तीस, चालीस हाथ तक
ऊँचे होते हैं, पर पैग कितो का १-७ बिसे से अधिक नहीं
होता।

पर्यायः तालद्रव। पत्ती। दीर्घरक्ष। ध्वजद्रुम। पुरुराज।
मधुरस। पदाढ्य। दीर्घपादप। चिरायु। तरराज। दीर्घपत्र।
गुच्छपत्र। भाद्रवद्रु। लेख्यपत्र। महोन्ना।

२. ताड़नः पद्मार। ३. शब्द। उज्ज्वि। धमाका। ४. वास,
अनाज के डंठल आदि की छंटियाँ जो भूट्टों में धा जाय।
जुट्टी। पूला। ५. हाथ का एक यन्त्र। ६. मूर्ति-निर्माण-
विद्या में मूर्ति के ऊपरी भाग का नाम। ७. पहाड़। पर्वत
(को०)।

ताड़क—वि० [म० ताडक] ताड़ना या भाषात करनेवाला [को०]।

ताड़क—संज्ञा पुं० वधिक। जल्लाद [को०]।

ताड़का—संज्ञा स्त्री० [म० ताडका] एक रक्षसी जिसे विश्वामित्र की
माता थे श्री रामचंद्र ने मारा था।

विशेष—इसकी उत्पत्ति के संबंध में कहा है कि गढ़ सुकैतु नामक
एक वीर धर्म की कन्या थी। सुकैतु ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा
को प्रसन्न करके इस बलवती कन्या को पाया था जिसे हजार
हाथियों का बन्ध था। यह सुं द भी व्याही थी। जब अगस्त्य
ऋषि ने किसी बात पर क्रोध होकर सुव की मार डाला,
तब यह अपने पुत्र मारीच को लेकर अगस्त्य ऋषि को खाने
दोड़ी। ऋषि के शाप से माता और पुत्र दोनों घोर राक्षस
हो गए। उसी समय से ये अगस्त्य जी के तपोवन का वास
करने लगे और उस वृद्धों ने प्राणिमयी से शून्य कर दिया।
यह सब व्यवस्था दृष्टांत से कहकर विश्वामित्र रामचंद्र जी
को लाए और उनके हाथ से ताड़का का वध कराया।

ताड़काफल—संज्ञा पुं० [म० ताडकाफल] बड़ी इलायची।

ताड़कायन—संज्ञा पुं० [म० ताडकायन] विश्वामित्र के एक पुत्र
का नाम।

ताड़कारि—संज्ञा पुं० [म० ताडकारि] (ताड़का के शत्रु) श्री रामचंद्र।

ताड़केय—संज्ञा पुं० [म० ताडकेय] (ताड़का का पुत्र) मारीच।

ताड्य—संज्ञा पुं० [सं० ताड्य] १. बेत या कीड़ा मारनेवाला। २. जलनाद।

ताडघात—संज्ञा पुं० [सं० ताडघात] हुयीड़े आदि से पीटकर काम करनेवाला। लोहार।

ताडन—संज्ञा पुं० [सं० ताडन] १. मार। प्रहार। घाघात। २. डीट डपट। धुड़की। ३. धासन। दंड। ४. मंत्रों के शक्तियों को चंदन से लिखकर प्रत्येक मंत्र को जल से मधुबीज पड़कर मारने का विधान। ५. गुणन। ६. खंड प्रदण (की०)।

ताडना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडन] १. प्रहार। मार। उ०—देह ताडना चिरा की तुलक सर चाहे धास हो।—कबीर सा०, पृ० ८६।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. उत्पीड़न। कष्ट।

ताडना^२—क्रि० प्र० १. मारना। पीटना। दंड देना। २. डाटना। डपटना। शापित करना।

ताडना^३—क्रि० प्र० [सं० तर्कण (सोचना)] १. किसी ऐसी बात को जान लेना जो जान बूझकर प्रकट न की गई हो या छिपाई गई हो। लक्षण से समझ लेना। संज्ञा से मान्य कर लेना। भाँसना। लख लेना। जैसे,— मैं पहले ही ताड़ गया कि तुम इसी लिये आए हो। उ०—विद्वान् जोहरी ताड़ फिरा है गाहक खाली। थैली भई समष्टि दिहा गाहक को टाली।—पलटू, भा० १, पृ० ५६।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

२. मार पीटकर भगाना। हटा देना। हाँकना।

संयो० क्रि०—लेना।

ताडनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडनी] चातुक। कीड़ा [की०]।

ताडनीय—वि० [सं० ताडनीय] दंड देने योग्य। दंडनीय।

ताडपत्र—संज्ञा पुं० [सं० ताडपत्र] ताडक। ताडक।

ताडपत्र—संज्ञा पुं० [सं० ताडपत्र] दे० 'ताडपत्र'।

ताडबाज—वि० [हिं० ताड़ना + बाज] ताड़नेवाला। भाँपनेवाला। समझ जानासना।

ताड़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़ि] दे० 'ताड़ी' [की०]।

ताड़िका—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तारा। तारिका। उ०—बरे जबराय भरं राध मिलैं। मनो नो ग्रहं ताड़िका होउ पिलैं।—पृ० रा०, १२।३।११।

ताड़ित—वि० [सं० ताड़ित] १. मारा हुआ। जिसपर प्रहार पड़ा हो। २. जो डाँटा गया हो। जिसने धुड़की खाई हो। ३. बंदि। बासित। ४. मारकर भगाया हुआ। निकाला हुआ। हाँका हुआ।

ताड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़ी] १. एक प्रकार का छोटा ताड़। २. एक माधुर्य।

ताड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताड़ + ई (प्रत्यय)] ताड़ के फूलने हुए डंठलों से निकला हुआ नशीला रस जिसका व्यवहार मद्य के रूप में होता है।

विशेष—ताड़ के भिरे पर फूलने हुए डंठलों या मंकुरों को छुरे आदि से काट देते हैं और पाम हो मिट्टी का बरतन बाँध देते हैं। दूसरे दिन मद्य रस परतन रस से घर जाता है, तब उसे खानी करके रस ले जाते हैं।

ताड़ी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़ी] छोटी तानी। सतों की व्यातावस्था। घात। समर्पण। उ०—ताड़ लय होय प्रदण पाए। साच नाम ताड़ी बिह जाए।—केशव, पृ० १२१।

ताड्य—वि० [सं०] मारने पीटनेवाला। धावन करनेवाला [की०]।

ताडू—वि० [हिं० ताड़ना] भाँपना। भाँपने या अनुमान करनेवाला।

ताड्य—वि० [सं०] १. ताड़ने के योग्य। २. डाँटने डपटने लायक। ३. दंड्य। दंड के योग्य।

ताड्यमान—वि० [सं०] १. जो पीटा जाता हो। जिसपर प्रहार पड़ा हो। २. जो बाँटा जाता हो।

ताड्यमान—संज्ञा पुं० छोटा। डक्कन।

ताडपु—वि० [सं० ताडपु, प्रा० ताड; मरा० ताड, यडा, हिं० टाडा] टाडक। कीड़ा। विशेष कीड़ा पावस भरह, बाज, ताड़ो पावस। विशेष गिन भेदे मातृविण प्री परदेस म प्रय।—दो० रा०, पृ० २१६।

ताडना—वि० [सं०] १. ताड़ना। २. ठहराना। उ०—बाँसि पाख विराज पाख पक रई भवंधर।—रघु० ७० पृ० ४३।

तात—संज्ञा पुं० [सं०] १. ता। धार। २. पूज्य व्यक्ति। गुरु। ३. पारक का एक पद। ४. संयोग या भाई, बंधु, इष्ट मित्र, मित्रपत्नी, पत्नी या भाई के पत्य व्यग्रहृत होता है। उ०—तत्त तवत्त तात तवत्त। धनुष जग्य त्रिद्वि कारन होई।—तुलसी (पाद०)। ५. तव व्यक्ति जिसके शीत दया का प्रसर हो। (की०)।

ताती—वि० [सं०] १. तात। गरम। २. दुग्धी। धिन्ध। उ०—ताती गरी महे खानिम्प्या, म करि दुग्धी गरी।—दो० रा०, पृ० ७७।

तातगु—संज्ञा पुं० [सं०] तात।

तातगु—वि० १. तात के लिए स्वीकृत। २. वैतुक [की०]।

ताततुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] तातगु या तातगु तव्य व्यक्ति [की०]।

तातन—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन पत्ती। खिहरिप।

तातनी—संज्ञा पुं० [हिं० तात] दे० 'तात'। उ०—ज्ञान की काष्ठता तात ने तातनी, प्रत के सघन की कथा बानी।—पलटू, भा० २, पृ० ७३।

तातगो—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

तातगो—संज्ञा पुं० [सं०] १. विमृष्ट संवधी। २. रोग। ३. बीह्व। ४. डाँटा। ५. पाक। पक्वान्। ६. उज्जुता। गर्मी [की०]।

तातगो—वि० १. तात। गरम। २. तव [की०]।

ताता—वि० [सं० तात, प्रा० तत] [वि०] ताती। १. तात। गरम। उष्ण। उ०—(क) अहं लणि नाथ नेह

घर जाते । पिय बिनु तियहि तरबिहुँ ते ताते । —मानस, २ ।

६५ । (ख) मोठे पति कोमल हैं नीके । ताते तुरत चभोरे घी के । —सूर०, १०।१६९ । २. बुरा । दुःखदायी । कष्टदायक ।

ताताथेई—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. नृत्य में एक प्रकार का षोल । २. नाचने में पैर के गिरने आदि का अनुकरण शब्द । जैसे, ताताथेई ताताथेई नाचना ।

तातार—संज्ञा पुं० [फा०] मध्य एशिया का एक देश ।

विशेष—हिंदुस्तान और फारस के उत्तर कैस्पियन सागर से लेकर चीन के उत्तर प्रांत तक तानार देश कहलाता है । हिमाचल के उत्तर सदाश, यारकंद, खुतन, बुखारा, तिब्बत आदि के बिचासी तातारी कहलाते हैं । साधारणतः समस्त तुर्क या मोघल तातारी कहलाते हैं ।

तातारी^१—वि० [फा०] तातार देश संबंधी । तातार देश का ।

तातारी^२—संज्ञा पुं० तातार देश का निवासी ।

ताति^१—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । बच्चा ।

ताति^२—वि० [सं० तम] गरम । उ०—ताति वाह जागे नहीं, धाँडी पहर प्रनंद । —संतवाणी०, पृ० १३५ ।

तातो^१—वि० [सं० तत] गरम । उ०—तातो श्यासन विनारयो रूप होउन । —शकुंतला, पृ० १०६ ।

तातो^२—वि० [?] जल्दी । उ०—तई मुझे दो धाया तातो । रा० ७०, पृ० ३०३ ।

तातील—संज्ञा स्त्री० [ध०] अर्ध दिन जिसमें काम काज बंद रहे । छुट्टी का दिन । छुट्टी ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—तातील बनाना=छुट्टी के दिन विराम लेना या आराम प्रमोद करना ।

तात्कालिक—वि० [सं०] तत्काल का । तुरंत का । उन्ही समय का ।

तात्पर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह भाव जो किसी वाक्य को कहकर कहनेवाला प्रकट करना चाहता हो । अर्थ । भाषण । मतलब । अभिप्राय ।

विशेष—कभी कभी अर्थ के तात्पर्य भिन्न होता है । जैसे, 'काशी गंगा पर है' वाक्य का तात्पर्य यह होना कि काशी गंगा के पक्ष के ऊपर बसी है; पर कहनेवाले का तात्पर्य यह है कि गंगा के किनारे बसी है ।

२. तात्पर्य ।

तात्पर्यवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० तात्पर्य + वृत्ति] वाक्य के अन्तर्गत पक्षों के वाक्यार्थ को एक में समन्वित करनेवाली वृत्ति । उ०—पहले उन्होंने तात्पर्यवृत्ति को लिया है और बताया है कि नैयायिकों की तात्पर्यवृत्ति बहुत समय से प्रसिद्ध थी । —आचार्य, पृ० १६१ ।

तात्पर्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वाक्य के निकलनेवाले अर्थ से अभिप्राय जो वक्ता या लेखक का होता है (को०) ।

तात्त्विक—वि० [सं० तात्त्विक] १. तत्त्व संबंधी । २. तत्त्वज्ञान युक्त । जैसे, तात्त्विक दृष्टि । ३. यथार्थ ।

तात्त्विक—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी के बीच में रहने का भाव । एक

वस्तु के बीच दूसरी वस्तु की स्थिति । २. एक व्यंजन उपाधि जिसमें जिस वस्तु का कथन होता है, उस वस्तु कहनेवाली वस्तु का ग्रहण होता है । जैसे, 'सारा घर है' से अभिप्राय है कि घर के सब लोग गए हैं ।

तार्थ्य(पु)—सर्व० [हि० ता + र्थ (प्रत्य०)] इससे । इस कारण उ०—घरे रूप जेते तिसे सर्व जानों । लगे बार कहते न बलानों । —पु० रा०, २ । १६५ ।

ताथेई—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'ताताथेई' ।

तादर्थिक—वि० [सं०] उसके अर्थ से संबद्ध (को०) ।

तादर्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उद्देश्य या लक्ष्य की एकता । २. की समानता । ३. उद्देश्य (को०) ।

तादात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक वस्तु का मिलकर दूसरी वस्तु के में हो जाना । तत्त्वकपता । अनेक संबंध ।

यौ०—तादात्म्यानुभूति=तादात्म्य की अनुभूति । तत्त्वकप अनुभूति । उ०—प्रकृति है तादात्म्यानुभूति को सरल कामना कई पंक्तियों में प्रतिबिंबित हुई है । —सा० सप्तमी, पृ० २६

तादात्म्य (राजा)—संज्ञा पुं० [सं०] कीटित्य अर्थशास्त्र के अनुसार वह राजा जिसका लज्जाना ज्ञासी रहता हो । जितना । राजकर आदि में मिले, उसको लब्ध कर डालनेवाला ।

विशेष—आजकल के राज्य बहुधा इसी प्रकार के होते हैं । प्रबंध में व्यव करने के लिये ही धन एकत्र करते हैं ।

तादा—संज्ञा स्त्री० [ध० तदाद्य] संख्या । गिनती । शुमार ।

तादृक्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तादृशी] दे० 'तादृश' (को०) ।

तादृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तादृशी] उसके समान । वैसे ।

तादृसी^१—वि० [सं० तादृशी] तादृश । वैसे ही । उ०—जो य शंग मे एक वैष्णव तादृसी धर्षा करन और श्रीकृष्ण स्मर करव पावन है । सो सी बावन०, भा० १, पृ० २६५ ।

ताधा—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तायाथेई' । उ०—भृकुटी धनुष ने घर साधे अदन विकास धराया । अंचन चरल चार धवलोका काम नचावति ताधा । —सूर (शब्द०) ।

तान—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ताबने का भाव या क्रिया । लींच फैलाना । विस्तार । जैसे, भीमों की तान । उ०—अल मित्रि के नम प्रबनो लो तान तनावनि । —भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ४५५ ।

यौ०—लींचतान ।

२. गाने का एक अंग । अनुधोम विलोम पति के गमन मूर्च्छना आदि द्वारा राग या स्वर का विस्तार । अनेक विधा करके सूर का लींचना । लय का विस्तार । घालाप । उ०—सूटे तान चढ़ेवा घोड़ा । ठाढ़े भगत तहँ गावन लीन्हा । —ठबीर म०, पृ० ४६६ ।

विशेष—संगीत रामोदर के मत से स्वरों के सत्यतः तान ४४ हैं । इन ४६ तानों से भी ८३०० कूट तान निकले हैं । किंस किसी मत से कूट तानों की संख्या ५०४० भी मानी गई है ।

मुहा०—तान उड़ाना=गीत गाना । घालापना । तान छोड़ना=लय को लींचकर मटके के साथ समय पर विराम देना ।

किसी पर तान तोड़ना = किसी को लक्ष्य करके खेद या क्रोधसूचक बात कहना। आक्षेप करना। बीछार छोड़ना। तान भरना, मारना, लेना = गाने में सय के साथ सुरों को खींचना। मलापना। तान की जान = सारांश। जुलासा। सो बात की एक बात।

३. ज्ञान का विषय। ऐसा पदार्थ जिसका बोध इंद्रियों आदि को हो। ४. कंबज का तान। — (पढ़ेरिए)। ५. भाटे का हलड़ा। महर। तरंग। — (लघ०)। ६. लोहे की छड़ जिसे पलंग या हीरे में मजबूती के लिये लगाते हैं। (७) एक प्रकार का पेड़। (८) सूत्र। सूत। धागा (को०)। (९) एकरस स्वर। एक ही प्रकार का स्वर (को०)।

तानकर्म—संज्ञा पुं० [सं० तानकर्मन्] १. गाने के पहले किया जानेवाला मालाप। २. मूल स्वर को ग्रहण करने के लिये स्वर-साधना (को०)।

तानटप्पा—संज्ञा पुं० [हि० तान + टप्पा] संगीत। गाना बजाना। उ०—घोर यही होता क्या है? वही समस्यापूर्ति, वही या तो खड़खड़ बड़बड़ घोर तानटप्पा।—कुंकुम (धृ०), पृ० २।

तानतरंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तानतरङ्ग] मलापचारी। सय की महर।

तानना—क्रि० सं० [सं० तान (= विस्तार)] १. किसी वस्तु को उसकी पूरी लंबाई या चौड़ाई तक बढ़ाकर ले जाना। फैलाने के लिये जोर से खींचना। किसी वस्तु को जहाँ की तहाँ रखकर उसके किसी छोर, कोने या धंश को जहाँ तक हो सके, बलपूर्वक धागे बढ़ाना। जैसे, रस्सी तानना। उ०—इक दिन द्रोपदि नयन होत है, चीर दुसासन तान :—संतवाणी० पृ० ६७।

विशेष—‘तानना’ और ‘खींचना’ में यह अंतर है कि तानने में वस्तु का स्थान नहीं बदलता। जैसे, खूँटे में बँधी हुई रस्सी तानना। पर ‘खींचना’ किसी वस्तु को इस प्रकार बढ़ाने को भी कहते हैं जिसमें वह अपना स्थान बदलती है। जैसे, गाड़ी खींचना, पंखा खींचना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तानकर = बलपूर्वक। जोर से। जैसे, तानकर तमाचा मारना। उ०—सतगुरु मारा तानकर, सभ्य सुरंगी बान।—कबीर मा०, पृ० ८।

२. किसी सिमटी या लिपटी हुई वस्तु को खींचकर फैलाना। बलपूर्वक विस्तीर्ण करना। जोर से बढ़ाकर पसारना। जैसे, पाख तानना, छाता तानना, चद्दर तानकर सोना, कपड़े को तानकर कोस मिटाना।

विशेष—‘तानना’ और ‘फैलाना’ में यह अंतर है कि ‘तानना’ क्रिया में कुछ बल लगाने या जोर से खींचने का भाव है।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तानकर सुतना = दे० ‘तानकर सोना’। उ०—भेष वह जो कि भेद जो देवे, जान पाया न तानकर सुते।—बोध०, ४-५०।

पु० ४। तानकर सोना = खूब हाथ पैर फैलाकर निश्चित सोना। आराम से सोना।

३. किसी परदे की सी वस्तु को ऊपर फैलाकर बाँधना या ठहराना। छाजन की तरह ऊपर किसी प्रकार का परदा लगाना। जैसे, चंदोवा तानना, चदिनी तानना, तबू तानना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

४. डोरी, रस्सी आदि को एक आधार से दूसरे आधार तक इस प्रकार खींचकर बाँधना कि वह ऊपर छपर में एक सीधी लकीर के रूप में ठहरी रहे। एक ऊँचे स्थान से दूसरे ऊँचे स्थान तक ले जाकर बाँधना। जैसे,—(क) यहाँ से वहाँ तक एक डोरी तान दो तो कपड़ा फैलाने का मुबीता हो जाय। (ख) जुलाहे का सूत तानना।

संयो० क्रि०—देना।

५. मारने के लिये हाथ या कोई हथियार ठठाना। प्रहार के लिये भस्त्र ठठाना। जैसे, तमाचा तानना, डंडा तानना। ६. किसी को हानि पहुँचाने या दंड देने के अभिप्राय से कोई बात उपस्थित कर देना। किसी के खिलाफ कोई चिट्ठी पत्री या दरखास्त आदि भेजना। जैसे,—एक दरखास्त तान बँग, रह जाओगे।

संयो० क्रि०—देना।

७. कैदखाने भेजना। जैसे,—हार्कम ने उसे दो बरस को तान दिया। ८. ऊपर ठठाना। ऊँचे ले जाना।

संयो० क्रि०—देना।

तानपूरा—संज्ञा पुं० [सं० तान + हि० पूरा] सिद्धार के प्रकार का एक बाजा जिसे गवैए कान के पास लगाकर गाने के समय छेड़ते जाते हैं या उनके पार्श्व में बैठकर कोई छेड़ना जाता है।

विशेष—यह गवैयों को सुर दीधवे में बड़ा सहारा देता है; अर्थात् सुर में जहाँ विराम पड़ता है, वहाँ यह उसे पूरा करता है। इसमें चार तार होते हैं दो लोहे के और दो पीतल के।

तानबाज—संज्ञा पुं० [हि० तान + बाज] धनीताचार्य। उ०—गंग ते व गुनी तानसेन ते न तानबाज, मान ते न राजा भी न दाता बोरबर ते।—प्रकबरी०, पृ० ३५।

तानबान(५१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘तानाबाना’। उ०—बोधहा तानबान नहि जानै फाट बिनै दस ठाई हो।—कबीर (अब्द०)

तानव—संज्ञा पुं० [सं०] १. तनुता। कुशता। २. स्पृष्टता। लघुता। छोटाई (को०)।

तानसेन—संज्ञा पुं० [?] प्रकबर बाघशाह के समय का एक प्रसिद्ध गवैया जिसके बोंड़ का छात्रतक कोई नहीं हुआ।

विशेष—प्रबुलफजल ने लिखा है कि इसर हजार वर्षों के बीच ऐसा गायक भारतवर्ष में नहीं हुआ। यह जाति का ब्राह्मण था। कहते हैं, पहले इसका नाम तिलोचन मिश्र था। इसे संगीत से बहुत प्रेम था, पर गाना इसे नहीं आता था। जब बृंशवन के प्रसिद्ध स्वामी हरिदास के यहाँ गया और उनका शिष्य हुआ, तब यह संगीत

में कुशल हुआ। धीरे धीरे इसकी ख्याति बढ़ने लगी। पहले यह भाट के राजा रामचंद्र बघेला के दरबार में नौकर हुआ। कहा जाता है, वहाँ इसे करोड़ों रुपए मिले। इब्राहीम लोदी ने इसे अपने यहाँ बहुत बुलाना चाहा पर यह नहीं गया। अंत में अकबर ने राजमिह्रास पर बैठने के इस वर्ष पीछे इसे अपने दरबार में सम्मानपूर्वक बुलाया। जिस दिन पहले पहल इसने अपना गाना बादशाह को सुनाया, बादशाह ने इसे दो लाख रुपए दिए। बादशाह के दरबार में आने के कुछ दिन पीछे यह खालियर जाकर और मुहम्मद गौस नामक एक मुसलमान फकीर से कसमा पढ़कर मुसलमान हो गया। तब से यह मियाँ तानसेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके मुसलमान होने के संबंध में एक जनश्रुति है। कहते हैं, पहले बादशाह के सामने यह गाता ही नहीं था। एक दिन बादशाह ने अपनी कन्या को इसके सामने खड़ा कर दिया। उसके सोदर्य पर मुग्ध होने के कारण इसकी प्रतिभा विकसित हो गई और हमने ऐसा अपूर्व गाना सुनाया कि बादशाहजानी भी मोहित हो गई। अकबर ने दोनों का विवाह कर दिया।

तानसेन की मृत्यु के संबंध में भी एक अलौकिक घटना प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इसकी अद्वितीय शक्ति को देखकर दरबार के और गवैए इसमें जाना करते थे और इसे गार डालने के यत्न में रहा करते थे। एक दिन गवने निघकर यह सोचा कि यदि ताबसेन दीपक राग गावे तो प्रायः घाप घम्म हो जायगा। इस परामर्श के अनुसार एक दिन सब गवैयों ने दरबार में दीपक राग की बात देखी। बादशाह को अत्यंत उत्कंठा हुई और उसने दीपक राग गाने के लिये कहा। सब गवैयों ने एक स्वर से कहा कि तानसेन के सिवा दीपक राग और कोई नहीं गा सकता। तब बादशाह ने ताबसेन को आज्ञा दी। तानसेन ने बहुत कहा कि यदि आप मुझे चाहते हैं तो दीपक राग न बजायें। जब बादशाह ने न माना तब उसने अपनी लड़की को मलार राग गाने के लिये पास ही बैठा लिया जिसमें दीपक राग के प्रवर्धित अग्नि का मलार राग द्वारा शमन हो जाय। दीपक राग गाते ही दरबार के सब कुंफे हुए दीपक जल पड़े और तानसेन भी जलने लगा। तब उसकी लड़की ने मलार राग छेड़ा। पर आने पिता को दुर्दशा देख उसका सूर बिगड़ गया और तानसेन जलकर घम्म हो गया। उसका सब खालियर में खे जाकर दफन किया गया। उसकी कब्र के पास एक हमली का पद है। आज दिन भी गवैए इस कब्र पर जाते हैं और हमली के पत्तों को बढाते हैं। उनका विश्वास है कि इससे कंठरघ उत्पन्न होता है। गवैयों में तानसेन का यही तक सम्मान है कि उसका नाम सुनते ही वे अपने काम पकड़ने हैं। तानसेन का बत या हुआ एक ग्रंथ भी मिला है।

ताना^१—संज्ञा पुं० [हि० तानना] १. कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल होता है। वह तार या सूत जिसे जुमाहे कपड़े की लंबाई के अनुसार फैलाते हैं। उ०—अस खोलहा कर मरम न जाना। तिन जग प्राइ पसारल ताना।—कबीर (शब्द०)।

बी०—ताना बाना।

क्रि० प्र०—तानना।—फैलाना।

२. धरी, कानून बुनने का करघा।

ताना^१—क्रि० स० [हि० ताव + ना (प्रत्य०)] १. ताव देना। तपाना। गरम करना। उ०—(क) कर कपोल अंतर नहि पावत प्रति उरस तन ताइए (शब्द०)। (ख) देव दिखावति कंचन सो तन औरन को मन तावै अगोनी।—देव (शब्द०)। २. विधलाना। जैसे, घी ताना। ३. तपाकर परीक्षा करना (गना आदि धातु)। ४. परीक्षा करना। जाचना। छात्रमाना।

ताना^१—क्रि० स० [हि० नावा, तवा] गीली मिट्टी, आटे आदि से ढक्कन बिपदापर किसी बरतन का पुँद बंद करना। मुँदना। उ०—तिन अङ्गन पर दोष निरंतर सुबि भरि भरि तावों।—तुलसी (शब्द०)।

ताना^१—संज्ञा पुं० [अ० तपनह] वह लगती हुई बात जिसका अर्थ कुछ छिपा हो। आक्षेप वाक्य। बोली ठोली। व्यंग्य। कटाक्ष। २. उपलंभ। मिला (की०)। ३. निषा। बुराई (की०)।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

मुहा०—ताने देना = व्यंग्य करना। कट बात कहना। उ०—मुँद खोल के दर्द दिन किसी से कह नही सकती कि हमजो-नियी तान देगे।—फिजाना०, भा० ३, पृ० १३३।

तानापाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ताना + पाई (= ताने का सूत फैलाने का ढाँचा)] बार बार किसी स्थान पर आना जाना। उसी प्रकार यथावत केरे लगाना इस प्रकार जुझाहे ताने का सूत पाई पर फैलाने के लिये लगाते हैं।

तानाबाना—संज्ञा पुं० [हि० ताना + बाना] कपड़ा बुनने में लंबाई और चौड़ाई के बल फैलाए हुए सूत।

मुहा०—ताना बाना करना = व्यंग्य इधर से उधर आना जाना। हेरा फेरी करना।

तानागोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तान + अनु० गीरी] आभारण गाना। राग। अलाप।

तानाशाह—संज्ञा पुं० [फा०] १. अब्दुलहसन बादशाह का दूसरा नाम। यह बादशाह स्वेच्छाचारी था। २. ऐसा शासक जो मनमाने ढंग से शासन करता हो और शासितों के हित का ध्यान न रखता हो। निरंकुश शासक। ३. स्वेच्छाचारी व्यक्ति। मनमाने ढंग से और जोर जबर्दस्ती काम करनेवाला आदमी।

तानाशाही—संज्ञा स्त्री० [हि० तानाशाह] स्वेच्छाचारिता। मन मानी। जोर जबर्दस्ती। उ०—जातीय जनतांत्रिक संयुक्त मोर्चा कांग्रेसी सरकार की तानाशाही को समाप्त करने तथा देश को विदेशी हस्तक्षेप से बचाने के निमित्त खड़ा हुआ था।—नेपाल०, पृ० १८६।

तानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ताना] कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल हो।

तानी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तानना] अँगरेजे या खोली आदि की

तनी । बंद । उ०—कंचुकि तूर, तूर भइ तानी । दुटे हार मोति छहरानी ।—जापसी (शब्द०) ।

तानूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का भँवर । २. वायु का भँवर ।

तानी—संज्ञा पुं० [देश०] जमीन का टुकड़ा जिसमें कई खेत हों । चक ।

ताम्र—संज्ञा पुं० [म०] १. तनुज । पुत्र । २. एक ऋषि का नाम जो तनु के पुत्र थे ।

ताप—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राकृतिक शक्ति जिसका प्रभाव पदार्थों के पिघलने, भाप बनने आदि व्यापारों में देखा जाता है और जिसका अनुभव अग्नि, सूर्य की किरण आदि के रूप में इंद्रियों को होता है । यह अग्नि का सामान्य गुण है जिसकी अधिकता से पदार्थ जलते या पिघलते हैं, उष्णता । गर्मी । तेज ।

विशेष—ताप एक गुण मात्रा है, कोई द्रव्य नहीं है । किसी वस्तु को तपाने से उसकी तौल में कुछ फर्क नहीं पड़ता । विज्ञानानुसार ताप गतिशक्ति का ही एक भेद है । द्रव्य के अणुओं में जो एक प्रकार की हलचल या खोब उत्पन्न होता है, उसी का अनुभव ताप के रूप में होता है । ताप जब पदार्थों में थोड़ा बहुत निहित रहता है । जब विशेष अवस्था में वह व्यक्त होता है, तब उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है । जब शक्ति के संचार में रुकावट होती है, तब वह ताप का रूप धारण करती है । दो वस्तुएँ जब एक दूसरे से रगड़ खाती हैं तब जिस शक्ति का रसक में व्यय होता है, वह उष्णता के रूप में फिर प्रकट होती है । ताप की उत्पत्ति कई प्रकार से होती है । ताप का सबसे बड़ा भांडार सूर्य है जिससे पृथ्वी पर धूप की गरमी फैलती है । सूर्य के प्रतिरिक्त ताप संघर्षण (रगड़), ठाढ़ा तथा रासायनिक योग से भी उत्पन्न होता है । दो लकड़ियों को रगड़ने से और चकमक पत्थर आदि पर हथोड़ा मारने से आग निकलने प्रदुतों ने देखा होगा । इसी प्रकार रासायनिक योग से अर्थात् एक विशेष द्रव्य के साग दूसरे विशेष द्रव्य के मिलने से भी आग या गरमी पैदा हो जाती है । धूने की डली में पानी डालने से, पानी में तेजाब या पोटाश डालने से गरमी या ज्वर उठती है ।

ताप का प्रधान गुण यह है कि उससे पदार्थों का विस्तार कुछ बढ़ जाता है अर्थात् वे कुछ फैल जाते हैं । यदि लोहे की किसी ऐसी छड़ को ले जो किसी देश में कसकर बैठ जाती हो और उसे तपानें तो वह उस देश में वहीं घुमेगी । गरमी में किसी तेज चलती हुई गाड़ी के पहिए की हालत जब ठीकी मान्य होने लगती है, तब उसपर पानी डालते हैं जिसमें उसका फैलाव घट जाय । रेल की लाइनों के जोड़ पर जो थोड़ी सी जगह छोड़ दी जाती है, वह इसीलिये जिसमें गरमी में लाइन के लोहे फैलकर घट न जायें । जीवों की जो ताप का अनुभव होता है वह उनके शरीर की अवस्था के अनुसार होता है, अतः स्पर्शद्वारा ताप का ठीक ठीक अंदाज सदा नहीं हो सकता । इसी से ताप की मात्रा नापने के लिये थर्मामीटर नाम का एक यंत्र

बनाया गया है जिसके भीतर पारा रहता है जो अधिक गरमी पाने से ऊपर चढ़ता है और गरमी कम होने से नीचे गिरता है ।

२. घाँच । लपट । ३. ज्वर । बुखार ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।

यो०—तापतिल्ली ।

४ कष्ट । दुःख । पीड़ा ।

विशेष—ताप तीन प्रकार का माना गया है—प्राध्यात्मिक, प्राधिदैविक और प्राधिभौतिक । यि० २ 'दुःख' । उ०—बौद्ध, वैदिक, मौक्तिक ताप । रामराज काट्टहि नहि । व्यापा ।—तुलसी (शब्द०) ।

५. मानसिक कष्ट । हृदय का दुःख (जैसे, शोक, पछतावा आदि) । उ०—एकद्वी अन्वड जाय तार हूँ हरतु है ।—संतबाण्डी०, पृ० १०७ ।

तापक—संज्ञा पुं० [म०] १. ताप उत्पन्न करनेवाला । उ०—तापक जो रवि सोपत है नित कंज उज्ज्वल ताँद देखा विकसाही ।—राम० धर्म०, पृ० ६२ । २. रजोगुण ।

विशेष—रजोगुण ही ताप या दुःख का प्रतिकारण माना जाता है ।

३. ज्वर । बुखार ।

तापक्रम—संज्ञा पुं० [सं० ताप + क्रम] १. शरीर के तापमान का बढ़ाव उतार । २. वायुमंडल की गरमी का उतार चढ़ाव [ले०] ।

तापड़ना—क्रि० म० [हि० ताप] संताप देना । उ०—सेन भकम्बर तापड़े भाव गयी खहु मग ।—र० ह०, पृ० १०२ ।

तापति—संज्ञा पुं० [म० तपश्चत्] उसके बाद । तपश्चत् । उ०—सुरन रज गुहेतन बालमु तापति सबे प्रभात ।—विद्यापति, पृ० २३६ ।

तापतिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० ताप (ज्वर) + तिल्ली] ज्वरयुक्त प्लोहा रोग । पिल्ली बढ़ने का रोग ।

तापती—संज्ञा स्त्री० [म०] १. सूर्य की स्त्रिया ताप । २. एक नदी का नाम जो सतपुड़ा पहाड़ से निकलकर पश्चिम की ओर की बहता हुई खभात की खाड़ी में गिरती है ।

विशेष—रकंदपुराण के तापी गाँव में तापती के विषय में यह कथा लिखी है । अगस्त्य मुनि के शाप से वरुण सवरण नामक सोमवंशी राजा हुए । उन्होंने धीरे तप करके सूर्य की कन्या तापी के विवाह किया जो अत्यंत रूपवती और तापनाशिनी थी । वही तापी के नाम से प्रवाहित हुई । जो लोग उसमें स्नान करते हैं, उनके सब पातक छूट जाते हैं । आषाढ़ मास में इसमें स्नान करने का विशेष साहाय्य है । तापीखंड में तापती के तट पर गजतीर्थ, अक्षमाया तीर्थ आदि अनेक तीर्थों का होना लिखा है । इन तीर्थों के प्रतिरिक्त १०८ महालिंग भी इस पुनीत नदी के तट पर भिन्न भिन्न स्थानों में स्थित बतलाए गए हैं ।

तापत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के तार—प्राध्यात्मिक, प्राधिदैविक, और प्राधिभौतिक ।

तापत्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का एक नाम [को०] ।

तापत्य^२—वि० तापती संबंधी [को०] ।

तापद्—वि० [सं०] कष्टदायक [को०] ।

तापदुःख—संज्ञा पुं० [सं०] पातञ्जल दर्शन के अनुसार दुःख का एक भेद ।

विशेष—पातञ्जल दर्शन में तीन प्रकार के दुःख माने गए हैं, तापदुःख, संस्कारदुःख और परिणामदुःख । ३० 'दुःख' ।

तापन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप देनेवाला । २. सूर्य । ३. कामदेव के पाँच बाणों में से एक । ४. सूर्यकांत मणि । ५. अर्क वृक्ष । मदार । ६. डोल नाम का बाजा । ७. एक नरक का नाम । ८. तंत्र में एक प्रकार का प्रयोग जिससे शत्रु को पीड़ा होती है । ९. सुवर्ण । सोना (को०) । १०. कष्ट देनेवाला (को०) । ११. ग्रीष्म ऋतु (को०) । १२. जलानेवाला (को०) । १३. अर्त्सना करनेवाला (को०) । १४. अवसाद । कष्ट । विषाद (को०) ।

तापन^२—वि० १. कष्टद । कष्टकारक । २. गरमी देनेवाला । ताप-कारक [को०] ।

तापना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्रता । शुद्धता [को०] ।

तापना^२—क्रि० प्र० [सं० तापन] आग की भाँच से अपने को गरम करना । अपने को आग के सामने गरमाना । कहीं कहीं धूप लेने के अर्थ में भी बोलते हैं, जैसे, वह ताप रहा है ।

विशेष—'आग तापना' भावि प्रयोगों को देख जबिकंश लोगों ने इस क्रिया को सकर्मक माना है । पर आग इस क्रिया का कर्म नहीं है, क्योंकि आग नहीं गरम की जाती है, गरम किया जाता है शरीर । 'छोटीर तापते हैं', 'हाथ पैर तापते हैं' ऐसा नहीं बोला जाता । दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि इस क्रिया का फल कर्ता से अत्यन्त कहीं नहीं देखा जाता, जैसे कि 'तपना' में देखा जाता है । 'आग तापना' एक संयुक्त क्रिया है जिसमें आग तृतीयान्त पद (कर्ण) है ।

तापना^३—क्रि० सं० १. शरीर गरम करने के लिये जलाना । फूँकना । संयो० क्रि०—डालना ।

२. उड़ाना । नष्ट करना । बरबाद करना । जैसे,—वे सारा धन फूँक तापकर किनारे हो गए ।

थौ०—फूँकना तापना ।

तापना(५)^१—क्रि० म० तपाना । गरम करना । उ०—तापी सब भूमि यों कृपान भासमान सों । भूषण बं०, पृ० ४६ ।

तापनीय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक उपनिषद् । २. एक प्राचीन तेल जो एक निष्ठक के बराबर थी [को०] ।

तापनीय^२—वि० सोने से युक्त । सुनहला [को०] ।

तापमान—संज्ञा पुं० [सं० ताप + मान] थर्मामीटर या गरमी मापने के यंत्र द्वारा मापी गई शरीर या वायुमंडल की ऊष्मा ।

तापमान यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तापमान + यंत्र] उष्णता की मात्रा मापने का एक यंत्र । गरमी मापने का एक यंत्र । गरमी मापने का एक योजन ।

विशेष—यह यंत्र शीशे की एक पतली नली में कुछ दूर तक पारा भरकर बनाया जाता है । अधिक गरमी पाकर वह पारा

लकीर के रूप में ऊपर की ओर चढ़ता है और कम गरमी पाकर नीचे की ओर चढ़ता है । गली हुई बरफ या बरफ के बानी में नली को रखने से पारे की लकीर जिस स्थान तक नीचे घाती है, एक चिह्न वहाँ लगा देते हैं और झोलते हुए पानी में रखने से जिस स्थान तक ऊपर चढ़ती है, दूसरा चिह्न वहाँ लगा देते हैं । इन दोनों के बीच की दूरी को १०० अथवा १८० बराबर भागों में चिह्नों के द्वारा बाँट देते हैं । ये चिह्न अंश या डिग्री कहलाते हैं । यंत्र को किसी वस्तु पर रखने से पारे की लकीर जितने अंशों तक पहुँची रहती है, उतने अंशों की गरमी उस वस्तु में कही जाती है ।

तापयान—वि० [सं०] उष्ण । जलता हुआ [को०] ।

तापयज्ञ^१—संज्ञा पुं० [सं० ताप] क्रोध ।—(डि०) ।

तापल^२—वि० गरम । उत्तप्त । तपा हुआ । उ०—एक कहा यह जीउ पियारा । तापल रहइ सरीर मभारा ।—इंद्रा०, पृ० ५८ ।

तापव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० तापव्यञ्जन] वे गुप्तचर या खुफिया पुलिस के आदमी जो तपस्वियों या साधुओं के वेश में रहते थे ।

विशेष—कोटिल्य के समय में ये समाहर्ता के अधीन होते थे । ये किसानों, गोपों, व्यापारियों तथा भिन्न भिन्न व्यवसायों के ऊपर दृष्टि रखते थे तथा शत्रु राजा के गुप्तचरों और चोर डाकुओं का पता भी लगाया करते थे ।

तापश्चित्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम ।

तापस^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तापसी] १. तप करनेवाला । तपस्वी । उ०—सखी ! कुमार तापस कहते हैं कि आतिथ्य स्वीकार करना होगा ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६८४ । २. तमाल । तेजपत्ता । ३. वनक । दीना नामक वीध । ४. एक प्रकार की ईख । ५. बक । बयला ।

तापस^२—वि० तपस्या या तपस्वी से संबंधित ।

तापसक—संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य या छोटा तपस्वी । वह तपस्वी जिसकी तपस्या थोड़ी हो ।

तापसज—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता । तेजपान ।

तापसतरु—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगोट वृक्ष । इंगुधा का पेड़ । इंगुडी वृक्ष ।

विशेष—तपस्वी लोग वन में इंगुदी का हो तेल काम में लाते थे, इसी से इसका ऐसा नाम पड़ा ।

तापसद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी वृक्ष ।

तापसप्रिय^१—वि० [सं०] १. जो तपस्वियों का प्रिय हो । २. जिसे तपस्वी प्रिय हों ।

तापसप्रिय^२—संज्ञा पुं० १. इंगुदी वृक्ष । २. चिरोँजी का पेड़ ।

तापसप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूर या मुनक्का । दाख ।

तापसवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'तापसतरु' ।

तापसव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० तापसव्यञ्जन] ३० 'तापव्यंजन' ।

तापसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तपस्या करनेवाली स्त्री । २. तपस्वी की स्त्री ।

तापसेधु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईंध ।

तापसेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुनक्का । दाख [को०] ।

तापस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तापस धर्म । तपस्या । २. वैराग्य । संन्यास [को०] ।

तापस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रकार की उष्णता पहुँचाकर उत्पन्न किया हुआ या ज्वरादि की उष्णता के कारण उत्पन्न पसीना । २. गरम बालू, नमक, वस्त्र, हाथ, आग की आँच आदि से सँककर पसीना निकालने की क्रिया ।

तापस्स(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तापस-१' । उ०—जंगम एक तापस्स मिल्यो बरबार सुद्ध मन ।—पृ० रा०, १ । १४२ ।

तापहर—वि० [सं० ताप + हि० हरना] तपन या दाह को दूर करनेवाला । उ०—तापहर हृदयवेग लग्न एक ही स्थिति में; कितना अपनाव ।—अनामिका, पृ० ६६ ।

तापहरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्यंजन का नाम । एक पकवान । (भाष्यप्रकाश) ।

विशेष—उरद की बरी मिले हुए धोए चावल को हलदी के साथ घी में तले या पकावे । तल जाने पर उसमें थोड़ा जल डाल दे । जब रसा तैयार हो जाय, तब उसे भदरक और हींग से बघारकर उतार ले ।

तापा—संज्ञा पुं० [हि० तोपना ?] १. मछली मारने का तक्ता (लक्ष्) । २. मुरखी का दरवा ।

तापायन—संज्ञा पुं० [सं०] बाजसनेयी शाखा का एक भेद ।

तापिच्छ—संज्ञा पुं० [सं० तापिच्छ] दे० 'तापिज' ।

तापिज—संज्ञा पुं० [सं० तापिज्ज] १. सोनामक्खी । २. श्याम तमाल ।

तापिच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] तमाल वृक्ष । उ०—बड़ी तापिच्छ शाखा सी भुजाएँ—अनुज की ओर बाएँ और बाएँ ।—साकेत, पृ० १३ ।

तापित—वि० [सं०] १. तापयुक्त । जो तपाया गया हो । २. दुःखित । शीकृत ।

तापिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप ?] अनाहत ऋक् की एक मात्रा ।

तापी^१—वि० [सं० तापिन्] १. ताप देनेवाला । २. जिसमें ताप हो ।

तापी^२—संज्ञा पुं० बुद्धदेव ।

तापी^३—संज्ञा स्त्री० १. सूर्य की एक कन्या । दे० 'तापती' । २. तापती नदी । ३. यमुना नदी ।

तापीज—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी । मासिक धातु ।

तापुर—संज्ञा पुं० [पालि ?] महाबोधिसत्त्व का दूसरा नाम । उ०—नववीक्षित विष्णु बोधिसत्त्व होने की प्रतिज्ञा करते हैं और उसके बाद से उसकी शिष्य उन्हें 'तापुर' या महाबोधिसत्त्व कहकर संबोधित करते हैं ।—संपूर्णां० अमि० ग्रं०, पृ० २१४ ।

तापेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० तापेन्द्र] सूर्य । उ०—नमो पातु तापेन्द्र देव प्रसीध । नमो मे रवि रक्ष रसेन्दु दीप ।—विश्राम (सम्ब०)

ताप्ती^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तापती] दे० 'तापती' ।

ताप्ती^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तापता'

ताप्य—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी ।

तापता—संज्ञा पुं० [फ्रा० तापतह्] दे० 'तापता' । उ०—छुटी न सिसुता की भलक भलक्यो जोवन घंग । बीपत पैह दूहन मिमि दिपति ताफता रंग ।—बिहारी (सम्ब०) ।

तापता—संज्ञा पुं० [फ्रा० तापतह्] एक प्रकार का चमकदार रेशमी कपड़ा । धूप छाँह रेशमी कपड़ा ।

ताब—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. ताप । गरमी । २. चमक । आभा । दीप्ति । ३. शक्ति । सामर्थ्य । हिम्मत । मजाल । जैसे,—उनकी क्या ताब कि आपके सामने कुछ बोलें ? ४. सहन करने की शक्ति । मन को वश में रखने की सामर्थ्य । धैर्य । जैसे,—प्रब इतनी ताब नहीं है कि दो घड़ी ठहर जायें ।

ताबकतोड़—क्रि० वि० [अनु०] एक के उपरांत तुरंत दूसरा, इस क्रम से । अखंडित क्रम से । लगातार । बराबर ।

ताबनाक—वि० [फ्रा०] प्रकाशमान । ज्योतिर्मय । चमकता हुआ । उ०—बचन का अजब मय यो है ताबनाक । फहमदार के गोश का खिरम खुशक ।—दक्खिनी०, पृ० २६७ ।

ताबी^१—वि० [फ्रा०] ज्योतिर्मय । प्रकाशमान । दीप्त । रोशन ।

ताबा^२—वि० [अ० तावप्] दे० 'तावे' ।

ताबा^३—संज्ञा पुं० अधिकार । हुक । उ०—राके वंश जाया भूमि ताबा की अड़ाई ।—शिल्लर०, पृ० २७ ।

ताबिश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] गर्मी । उष्णता । तपन । उ०—तुज हस्त के खुरखीब का तिरलोक मे ताबिश पड़े ।—दक्खिनी०, पृ० ३२१ ।

ताबी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ताब] ताप । गरमी । उष्णता । उ०—मक्का मिस्त हुआ को देखा । अबर्रा भाब और ताबी ।—घट०, पृ० २११ ।

ताबीज—संज्ञा पुं० [अ० ताप्तीज्] दे० 'ताबीज' । उ०—हीरा भुज ताबीज में सोहत है यह बान ।—स० सप्तक, पृ० १८६ ।

ताबीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्वप्न आदि का शुभाशुभ वर्णन । उ०—इबादत में रहता है रोशन जमीर । बतावेगा ताबीर बह मर्द पीर ।—दक्खिनी०, पृ० ३०० ।

ताबूत—संज्ञा पुं० [अ०] वह संदूक जिसमें मुरदे की लाश रखकर पाड़ने को ले जाते हैं । मुरदे का संदूक । उ०—कुशतए हसरते दीवार है या रब किरके । नखल ताबूत में जो फूल लये नरकिस्के ।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० ४५ ।

ताबे^१—वि० [अ० ताबप्] १. वशीभूत । प्रवीन । मानहृत । जैसे,—जो तुम्हारे ताबे हो, उसे आँख दिखाओ । २. आज्ञापूर्वक । हुक्म का पालन ।

यौ०—ताबेदार ।

ताबेगम—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ताब + अ० गम] दुःख सहने की शक्ति [को०] ।

ताबेजन्त—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ताब + अ० जन्त] प्रेम की पीड़ा या दुःख सहने की शक्ति [को०] ।

ताबेदार^१—वि० [घं० ताबे + फा० दार (प्रत्य०)] भाजा-
कारी । हुनम का पाबंद ।

ताबेदार^२—संज्ञा पुं० नोकर । खेदक । अनुचर ।

ताबेदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. सेवकाई । नोकरी । २. सेवा ।
दहल ।

क्रि० प्र०—करना ।—वज्रभा ।

ताम^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोष । विकार । उ०—ऊड़त रहत
बिना पर जामे त्यागी कनकरी ताम ।—गुलाल०, पृ० ११ ।
२. मनोविकार । चित्त का उद्वेग । व्याकुलता । बेचैनी ।
उ०—(क) मिटिया काम तनु ताम तुरत ही रिझई मदन
गोपाल ।—सूर (शब्द०) । (ख) नखमाल तर तरुन
कन्हौई दूर करत युवजिन तनु ताम ।—सूर (शब्द०) ।
३. दुःख । वेष । भाषा । शब्द । उ०—देखत पय पीबत
बलराम । तातो गत डारि तुम दीनो दावानल पीबत नहि
ताम ।—सूर (शब्द०) । ४. ग्लानि । ५. इच्छा । चाहना
(को०) । ६. श्रम । श्रान्ति (को०) ।

ताम^२—वि० १. भीषण । बरावना । मर्यकर । २. दुःखी । व्याकुल ।
हेरान । उ०—भति सुकुमार मनोहर मुरति ताहि करति
तुम ताम ।—सूर (शब्द०) ।

ताम^३—संज्ञा पुं० [सं० तामस] १. क्रोध । रोष । गुस्सा । उ०—
(क) सूरदास प्रभु मिलहु कृपा करि दूरि करहु मन
तामहि ।—सूर (शब्द०) । (ख) सूर प्रभु जेहि सदन जात
न सोइ करति तनु ताम ।—सूर (शब्द०) । २. भ्रंशकार ।
घोंघेरा । उ०—जननि कहति उरहु ग्राम, विगत जानि रजनि
ताम, सूरदास प्रभु कृपालु तुमको कछु खेवे ।—सूर (शब्द०)

ताम^४—अव्य० [प्राकृत] १. तब तक । २. तब । उस समय ।
उ०—ताम हंस प्रायो समधि कह्यो ग्रहो षष्ठिवृत्त ।—पृ०
२०, २५ । २६३ ।

तामजान—संज्ञा पुं० [हि० तामना + सं० ज्ञान (= सवारी)] एक
प्रकार की छोटी खुली पाजकी । एक हलकी सवारी जो काठ
की लकीरों की भाँति की होती है और जिसे कहार
उठाकर ले चलते हैं ।

तामभाम—संज्ञा पुं० [हि० तामजान] भूमधाम । शान शीत ।
दिसावटी प्रदर्शन ।

तामड़ा^१—वि० [सं० ताम्र, हि० ताँबा + ड़ा (प्रत्य०)] ताम्र
के रंग का । लालाई लिए हुए भूरा । जैसे, तामड़ा रंग, तामड़ा
कबूतर ।

तामड़ा^२—संज्ञा पुं० १. लाले रंग का एक प्रकार का पत्थर या
नगीन । २. एक तरह का कागज । ३. खलवाट मस्तक । गंजी
खोपड़ी । ४. स्वच्छ भाकाण । ५. बहुत पकी हुई ईंट ।

तामदाना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तामजान' । उ०—श्री दर्शन-
भवननाथ को पुष्पाञ्जलि चढ़ाने के लिये तामदान पर सवार
होकर गए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८१ ।

तामना^१—क्रि० उ० [देश०] खेत जोतने के पूर्व खेत की घास
उखाड़ना ।

तामर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी । २. घी ।

विशेष—यह शब्द 'तामरस' शब्द को संस्कृत सिद्ध करने के लिये
गढ़ा हुआ जान पड़ता है ।

तामरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल । उ०—सियरे बदन मूखि
गए कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसे ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द वेदों में आया है तथापि प्रार्यभाषा का
नहीं है । 'पिक' आदि के समान यह प्रनार्य भाषा से आया
हुआ माना गया है । शबर भाष्य में इस बात का स्पष्ट
उल्लेख है ।

२. सोना । ३. ताँबा । ४. घनूरा । ५. सारस । ६. एक
वर्णधरा का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक जगण, दो जगण
और एक यगण (111, 151, 151, 155) होता है । जैसे,—निज
जय हेतु करी रघुवीरा । सब नुति मोरी हरी भव पीरा ।

तामरसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सरोवर जिसमें कमल हों । कमलों-
वाला ताल (को०) ।

तामलकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी । भूमिवला ।

तामलूक—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रलिप्त] बंग देश के अतर्गत एक भूभाग
जो मेदिनीपुर जिले में है । वि० दे० 'ताम्रलिप्त' ।

विशेष—यह परगना गंगा के मुहाने के पास पड़ता है । इस
प्रदेश का प्राचीन नाम ताम्रलिप्त है । ईसा की चौथी शताब्दी
से लेकर बारहवीं शताब्दी तक यह वाणिज्य का एक प्रधान
स्थल था ।

तामलेट—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + प्लेट या टैंबलर] लोहे का गिलास या
बरतन जिसपर चमकदार रंगन या लुक फेरा रहता है ।
एनेमल किया हुआ बरतन ।

तामलोटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तामलेट' ।

तामस^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तामसी] १. जिसमें प्रकृति के उस
गुण की प्रधानता हो जिसके अनुसार जीव क्रोध आदि नीच
वृत्तियों के बलीभूत होकर आचरण करता है । तमोगुण युक्त ।
उ०—(क) होइ भजन नहि तामस देहा ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) विप्र साप तें दूजउँ भाई । तामस प्रभुर देह तिन पाई ।
—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—पञ्चपुराण में कुछ शास्त्र तामस बतलाए गए हैं । कणाद
का वैशेषिक, गौतम का न्याय, कपिल का सांख्य, जैमिनि की
मीमांसा, इन सब की गणना उक्त पुराण के अनुसार तामस
शास्त्रों में की गई है । इसी प्रकार बृहस्पति का धार्मिक दर्शन,
शाक्य मुनि का बौद्ध शास्त्र, शंकर का वेदान्त इत्यादि तत्त्वज्ञान
संबंधी ग्रंथ भी सांप्रदायिक दृष्टि से तामस माने जाते हैं ।
पुराणों में मरस्य, कुर्म, लिग, शिव, अग्नि और स्कंद ये छह
तामस पुराण कहे गए हैं । सामुद्र, शंख, यम, अश्विनम आदि
कुछ स्मृतियों तथा जैमिनि, कणाद, बृहस्पति, जमदग्नि,
शुक्राचार्य आदि कुछ मुनियों को भी तामस कह डाला है ।
इसी प्रकार प्रकृति के तीनों गुणों के अनुसार अनेक वस्तुओं
और व्यापारों के विभाग किए गए हैं । निद्रा, भालस्य, प्रमाद
आदि से उत्पन्न सुख को तामस सुख; पुरोहिताई, अस्वप्रति-

ग्रह, पशुहिंसा, लोभ, मोह, अहंकार आदि को तामस कर्म कहा है। विष्णु सत्त्वगुणमय, ब्रह्मा रजोगुणमय और शिव तमोगुणमय माने जाते हैं। उ०—ब्रह्मा राजस गुण अधिकारी शिव तामस अधिकारी।—सूर (शब्द०)।

२. अंधकार युक्त। अंधकारमय (की०)। ३. तमस् से प्रभावित या संबद्ध (की०)। ४. अज्ञ (की०)। ५. दुष्ट। कुटिल (की०)।

तामस^१—संज्ञा पुं० १. सर्प। साँप। २. अल। ३. उल्लू। ४. क्रोध। गुस्सा। विद्व। उ०—कहू तोकों कैसे आवत है शिशु ये तामस एत ?—सूर (शब्द०)। ५. अंधकार। अंधेरा। उ०—तू मर कूप छलीक सुन हिय तामस बासा।—दीनदयाल (शब्द०)। ६. अज्ञान। मोह। ७. जोये मनु का नाम। ८. एक ग्रह का नाम।—(वाल्मीकि रामायण)। ९. तैत्तिरीय प्रकार के केतु जो सूर्य और चंद्रमा के भीतर दृष्टिगोचर होते हैं।—(बृहत्संहिता)। वि० ३० 'तामसकीलक'। १०. तमोगुण। उ०—झूठा है संसार तो तामस परिहरी।—धरम०, पृ० ४०। ११. राहु का एक पुत्र (की०)। १२. अंधकार (की०)। १३. वह घोड़ा जिसमें तमोगुण हो (की०)।

तामसकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के केतु जो राहु के पुत्र माने जाते हैं और संख्या में ३३ हैं।

विशेष—सूर्यमंडल में इनके वर्ण, आकार और स्थान को देखकर फल का निर्णय किया जाता है। ये यदि सूर्यमंडल में दिखाई पड़ते हैं, तो इनका फल अशुभ और अशुभमंडल में दिखाई पड़ते हैं तो शुभ माना जाता है।

तामसमय—संज्ञा पुं० [सं०] कई बार की लीची हुई शराब।

तामसबाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक शस्त्र का नाम।

तामसाहंकार—संज्ञा पुं० [सं० तामसाहंकार] एक प्रकार का अहंकार अहंकार का एक भेद। उ०—तिद्धि तामसाहंकार ते दश सर्व उपजे आइ।—सुंदर० प्र०, अ० १, पृ० ६०।

तामसिक—वि० [सं०] [वि० की० तामसिकी] १. तामसयुक्त। तमोगुणवाली। उ०—या विविध तामसिक बातें। उसको है अधिक हलानी।—परिजात, पृ० ७२। २. तमस् से उत्पन्न या तमस् से लग्न (की०)।

तामसी—वि० की० [सं०] तमोगुणवाली। जैसे, तामसी प्रकृति।

यौ०—तामसी बीजा = असंतोष के प्रकारों में से एक (सांख्य)।

तामसी—संज्ञा की० [सं०] १. अंधेरी रात। २. महाकाली। ३. जठामासी। बालछड़। ४. एक प्रकार की माया विद्या जिसे शिव ने निकुंभिला यज्ञ से प्रसन्न होकर मेघनाद को दिया था।

तामा^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तामा'।

तामि—संज्ञा की० [सं०] स्वाम का नियंत्रण (की०)।

तामियाँ—वि० [हिं० तामा + इया (प्रत्य०)] दे० 'तामिया'।

तामिया—वि० [हिं० तामा + इया (प्रत्य०)] १. तबिये के रंग का। २. तबिये का। तबिये से निमित्त।

तामिल—संज्ञा की० [तमिल; तमिष] १. भारत के दूरस्थ दक्षिण प्रांत की एक जाति जो प्राच्यनिक मद्रास प्रांत के अधिकांश

भाग में निवास करती है। यह द्रविड़ जाति की ही एक शाखा है।

विशेष—बहुत से विद्वानों की राय है कि तामिल शब्द संस्कृत 'द्राविड' से निकला है। मनुसंहिता, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों में द्रविड़ देश और द्रविड़ जाति का उल्लेख है। मागधी प्राकृत या पाली में इसी द्राविड़ शब्द का रूप 'दामिली' हो गया। तामिल वर्णमाला में त, थ, द आदि के एक ही उच्चारण के कारण 'दामिली' का 'तामिली' या 'तामिल' हो गया। संकराचार्य के शारीरक सायने 'द्रमिल' शब्द आया है। द्रुपदमाग नामक चीनी यात्री ने भी द्रविड़ देश को चि-मो-लो करके लिखा है। तामिल व्याकरण के अनुसार द्रमिल शब्द का रूप 'तिरमिड' होता है। प्राच्यनिक कुछ विद्वानों की राय हो रही है कि यह 'तिरमिड' शब्द ही प्राचीन है जिससे संस्कृतवालों ने 'द्रविड़' शब्द बना लिया। चीन के 'शत्रुंभय माहात्म्य' नामक एक ग्रंथ में 'द्रविड़' शब्द पर एक विलक्षण कथना की गई है। उक्त पुस्तक के मत से आदि तीर्थंकर ऋषभदेव को 'द्रविड़' नामक एक पुत्र जिस भूभाग में हुआ, उसका नाम 'द्रविड़' पड़ गया। पर भारत, मनुसंहिता आदि प्राचीन ग्रंथों से विदित होता है कि द्रविड़ जाति के निवास के ही कारण देश का नाम द्रविड़ पड़ा। (दे० द्राविड़)।

तामिल जाति अत्यंत प्राचीन है। पुरातत्त्वविदों का मत है कि यह जाति आर्यों के आगमन से पूर्व ही भारत के अनेक भागों में निवास करती थी। रामचंद्र ने दक्षिण में जाकर जिन लोगों की सहायता में लंका पर चढ़ाई की थी और जिन्हें वाल्मीकि ने बंदर लिखा है, वे इसी जाति के थे। उनके काले वर्ण, भिन्न आर्तुता तथा विभट भाषा आदि के कारण ही आर्यों ने उन्हें बंदर कहा होगा। पुरातत्त्ववेत्ताओं का अनुमान है कि तामिल जाति आर्यों के समकालीन हो बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर चुकी थी। तामिल भाषा के राजा होते थे जो कवि बनावर रहते थे। वे हजारों तक गिन होते थे। वे नाव, छोटे मोटे जहाज, धनुष, बाण, तलवार इत्यादि बना लेते थे और एक प्रकार का कपड़ा बुनना भी जानते थे। रात, सोने और जस्ते को छोड़ और सब धातुओं का ज्ञान भी उन्हें था। आर्यों के समकालीन उपरात उन्होंने आर्यों की सभ्यता पूर्ण कर ली ग्रहण की। दक्षिण देश में ऐसी जनश्रुति है कि ऋषभदेव ने दक्षिण में जाकर वहाँ के निवासियों को बहुत सी मिथ्याएँ सिखाई। बाणधु तेरह सो वर्ष पहले दक्षिण में जैन धर्म का बड़ा प्रचार था। चीनी यात्री ह्वेनसांग जिस समय दक्षिण में गया था, उसने वहाँ बिम्बर जैन की प्रधानता देखी थी।

२. द्राविड़ भाषा। तामिल लोगों की भाषा।

विशेष—तामिल भाषा का साहित्य भी अत्यंत प्राचीन है। दो हजार वर्ष पूर्व तक के काव्य तामिल भाषा में विद्यमान हैं। पर वर्णमाला नागरी लिपि की तुलना में अपूर्ण है। अनुनासिक पंक्ति वर्णों को छोड़ व्यंजन के एक एक वर्ण का

उच्चारण एक ही सा है। क, ख, ग, घ, चारों का उच्चारण एक ही है। व्यंजनों के इस प्रभाव के कारण जो संस्कृत शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे विकृत हो जाते हैं; जैसे, 'कृष्ण' शब्द तामिल में 'किट्टिनन' हो जाता है। तामिल भाषा का प्रधान ग्रंथ कवि तिरुवल्लुवर रचित कुरल काव्य है।

तामिल लिपि—संज्ञा स्त्री० [हि० तामिल + सं० लिपि] एक प्रकार की लिपिविशेष।

विशेष—यह लिपि मद्रास प्रहाते के जिन हिस्सों में प्राचीन ग्रंथ-लिपि प्रचलित थी वहाँ के, तथा उक्त प्रहाते के पश्चिमी तट अर्थात् मलाबार प्रदेश के तामिल भाषा के लेखों में ई० स० की सातवीं शताब्दी से बराबर मिलती चली आती है। ('तामिल' शब्द की उत्पत्ति देश और जातिसूचक 'द्रमिल' (द्रविड) शब्द से हुई है। (दे० भारतीय प्राचीन लिपि-शास्त्र, पृ० १३२।)

तामिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वरक का नाम जिसमें सदा घोर संभकार बना रहता है। २. क्रोध। ३. द्वेष। ४. एक पवित्रा का नाम। भोग की इच्छापूर्ति में बाधा पड़ने से जो क्रोध उत्पन्न होता है उसे तामिल कहते हैं।—(यागवत)। ५. घृणा (की०)। ७. एक राक्षस (की०)।

तामो^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तामि' (की०)।

तामो^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तामि] १. तबि का तसला। २. द्रव पदार्थों को नापने का एक बरतन।

तामीर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निर्माण। बनाना। रचना। इमारत का निर्माण। वास्तुशिल्प। २. सुधार। इस्लाह। ४. इमारत। भवन बनावट (की०)।

यो—तामीरे कोम=(१) राष्ट्रनिर्माण। (२) जाति का निर्माण। कोम या जाति का सुधार। तामीरे मुस्क=राष्ट्रनिर्माण।

तामीरी—वि० [हि० तामीर + ई (प्रत्यय०)] इस्लाही। रचनात्मक (की०)।

तामील—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. (प्राज्ञा का) पालन। जैसे, हुस्म की तामील होता।

यो—तामीत्रे हुक्म=प्राज्ञा का पालन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ किसी परवाने, सम्मन या वारंट का विष्पादन (की०)।

तामैसरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तामि] एक प्रकार का तामड़ा रंग जो नेक के योग से बनता है।

ताम्मुल—संज्ञा पुं० [सं० ताम्मुल] सोच विचार। परामर्श। उ०—हज़र, इन भरा जरा सी बातों पर इतना सा ताम्मुल करे तो काम क्योंकर चलेगा!—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३०।

ताम्र^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताँबा। २. एक प्रकार का कोढ़। ३. भञ्जना या ताँबिया लाल रंग (की०)।

ताम्र^२—वि० १. ताँबे का बना हुआ। २. ताँबे के रंग का। ताँबे जैसा (की०)।

ताम्रक—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

ताम्रकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम के दिग्गज भञ्जन की पत्नी। भञ्जना।

ताम्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबे के बरतन बनानेवाला। तमेरा।

ताम्रकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रकार' (की०)।

ताम्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] तमाकू का पेड़ या पीषा।

विशेष—यह शब्द पढ़ा हुआ है और कुलावर्ण तंत्र में आया है।

ताम्रकृमि—संज्ञा पुं० [सं०] बीर बहूटी नाम का कीड़ा।

ताम्रगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] तुल्य। तूतिया।

ताम्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड़] १. कुकरोधा नाम का पीषा।

२. मुरया। उ०—दूर बोला ताम्रचूड़ गभीर, क्रूर भी है काल निर्भर बीर।—साकेत, पृ० १६५।

ताम्रचूड़क—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड़क] हाथ की एक मुद्रा (की०)।

ताम्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताँबे जैसा लाल रंग (की०)।

ताम्रतुंड—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रतुण्ड] एक प्रकार का बंदर (की०)।

ताम्रत्रपुज—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल (की०)।

ताम्रदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शोरखदुदी। छोटी दुग्दी। अमर संजीवनी।

ताम्रद्र—संज्ञा पुं० [सं०] जालचंदन (की०)।

ताम्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल। लंका (की०)।

ताम्रधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल खड़िया। २. ताँबा (की०)।

ताम्रपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र।

ताम्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताँबे की चट्टर का एक टुकड़ा जिसपर प्राचीन काल में अक्षर छुदवाकर दानपत्र आदि लिखते थे। २. ताँबे का चट्टर। ताँबे का पत्तर।

ताम्रपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र+पर्ण] लाल रंग का पत्ता। उ०—ताम्रपर्ण पीपल से, अतमुख भरते बंचल स्वर्णिम निर्भर।—ग्राम्या, पृ० ६३।

ताम्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बावली। तालाब। २. दक्षिण देश की एक छोटी नदी जो मद्रास प्रांत के तिनवल्ली जिले से होकर बहती है।

विशेष—इसकी लंबाई ७० मील के लगभग है। रामायण, महा-भारत तथा मुख्य मुख्य पुराणों में इस नदी का नाम आया है। अशोक के एक शिलालेख में भी इस नदी का उल्लेख है। टालमी आदि विदेशी लेखकों ने भी इसकी वर्णन की है।

ताम्रपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

ताम्रपाकी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रपाकिन्] पाकर का पेड़।

ताम्रपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबे का बरतन (की०)।

ताम्रपादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी। लाल रंग की लज्जाल।

ताम्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूल का कचनार।

ताम्रपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल फूल की निसोत।

ताम्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घातकी। घब का पेड़। २. पाटल। पाटल का पेड़।

ताम्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल वृक्ष। टेरा। टेरा।

ताम्रफलक—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र । तबि का पत्तर [को०] ।

ताम्रमुख^१—वि० [सं० ताम्र + मुख] जिसका मुख तबि के रंग का हो

ताम्रमुख^२—संज्ञा पुं० यूरोपीय व्यक्ति ।

ताम्रमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवासा । धमासा । २. खज्जालु । छुईमुई । ३. किवीच । कौच । कपिकच्छु ।

ताम्रमृग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लाल हिरन [को०]

ताम्रय—संज्ञा पुं० [सं०] लाली । ललाई [को०] ।

ताम्रयुग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + युग] ऐतिहासिक विकासक्रम में वह युग जब मनुष्य तबि की बनी वस्तुओं का व्यवहार करता था ।

ताम्रयोग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + योग] एक प्रकार की रासायनिक दवा [को०] ।

ताम्रलिप्त—संज्ञा पुं० [सं०] मेदिनीपुर (बंगाल) जिले के तमलुक नामक स्थान का प्राचीन नाम ।

विशेष—पूर्व काल में यह व्यापार का प्रधान स्थल था । बृहत्कथा को देखने से विदित होता है कि यहाँ से सिंहल, सुमाना, जावा चीन इत्यादि देशों की ओर बराबर व्यापारियों के जहाज रवाना होते रहते थे । महाभारत में ताम्रलिप्त को कलिंग से लगा हुआ समुद्र तटस्थ एक देश लिखा है । पाली ग्रंथ महावंश से पता लगता है कि ईसा से ३६० वर्ष पूर्व ताम्रलिप्त नगर भारतवर्ष के प्रसिद्ध बंदरगाहों में से था । यहीं जहाज पर चढ़कर सिंहल के राजा ने प्रसिद्ध बोधिद्रुम को लेकर स्वदेश की ओर प्रस्थान किया था और महाराज अशोक ने समुद्रतट पर लड़े होकर उठाके लिये धातु बहाए थे । ईसा की पाँचवीं शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान बौद्ध ग्रंथों की नकल आदि लेकर ताम्रलिप्त ही से जहाज पर बैठ सिंहल गया था ।

रामायण में ताम्रलिप्त का कोई उल्लेख नहीं है, पर महाभारत में कई स्थानों पर है । वहाँ के निवासी ताम्रलिप्तक भारतयुद्ध में बुयोधन की ओर से लड़े थे । पर उनकी गिनती म्लेच्छ जातियों के साथ हुई है । यथा—शकाः किराता वरदा बर्बरा ताम्रलिप्तकाः । अन्ये च बहुवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः । (वोणपर्व) ।

ताम्रलेख—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रपत्र' [को०] ।

ताम्रवर्ण^१—वि० [सं०] १. ताम्र के रंग का । २. लाल ।

ताम्रवर्ण^२—संज्ञा पुं० १. वैष्णव के अनुसार मनुष्य के शरीर पर की चौथी त्वचा का नाम । २. पुराणों के अनुसार भारतवर्ष के अंतर्गत एक द्वीप । सिंहल द्वीप । सीलोन ।

विशेष—प्राचीन काल में सिंहल द्वीप इसी नाम से प्रसिद्ध था । मेगास्थनीज ने इसी द्वीप का नाम तम्रोवेन लिखा है ।

विशेष—दे० 'सिंहल' ।

ताम्रवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़हर का पेड़ । अड़हूँ । ओड़ुण्ण ।

४-५१

ताम्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ । २. एक लता जो चित्रकूट प्रदेश में होती है ।

ताम्रबीज—संज्ञा पुं० [सं०] कुन्धी ।

ताम्रवृंत—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रवृन्त] कुन्धी ।

ताम्रवृता—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्रवृन्ता] कुन्धी ।

ताम्रवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुन्धी । २. लाल चंदन का पेड़ ।

ताम्रशासन—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + शासन] ताम्रपत्र । दानपत्र । उ०—राजाओं तथा सामंतों की तरफ से मंदिर, मठ, ब्राह्मण साधु आदि को दान में दिए हुए गिर, खेत, कुएँ आदि की सनदें तबि पर प्राचीन काल से ही खुदवाकर दी जाती थीं और अबतक दी जाती हैं जिनको 'दानपत्र', 'ताम्रपत्र', 'ताम्रशासन' या 'णामनपत्र' कहते हैं ।—भा० प्रा० लि०, पृ० १५२ ।

ताम्रशिखी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रशिखिन्] कुन्कुट । मुरगा ।

ताम्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन का वृक्ष ।

ताम्रसारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल चंदन का पेड़ । २. लाल खैर ।

ताम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सिंहली पीरल । २. वज्र प्रजापति की कन्या जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी । इससे वे ५ कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं—(१) कौवी, (२) मासी, (३) सेनी, (४) धृतराष्ट्री और (५) शुक्रो । (रामायण) ।

ताम्राक्ष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोयल । २. कौआ [को०] ।

ताम्राक्ष^२—वि० लाल आँखोंवाला [को०] ।

ताम्राभ^१—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।

ताम्राभ^२—वि० तबि का आभावाला [को०] ।

ताम्रार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ ।

ताम्रारमा—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रारमन्] पद्मराग मणि [को०] ।

ताम्रिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ताम्रिकी] ताम्रकार [को०] ।

ताम्रिक^२—वि० [वि० स्त्री० ताम्रिकी] तबि का । ताम्रनिमित्त । तबि से बना हुआ [को०] ।

ताम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा । धुँघची ।

ताम्रिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्रिमन्] लालिमा । ललाई [को०] ।

ताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का बाजा । २. जलघड़ी का कटोरा । जलघड़ी का पात्र [को०] ।

ताम्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रमस्म । तबि की राख ।

ताम्रोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रोपजीविन्] ताम्रकार [को०] ।

तायै(५)^१—प्रत्य० [हि०] तक ।

ताय(५)^१—संज्ञा पुं० [सं० ताय, हि० ताय] १. ताय । गरमी । २. जलन । ३. धूप ।

ताय(५)^२—सर्व० [हि०] दे० 'ताहि' । उ०—ग्रह मूम रो बैसुरिया, ते कह दीनो ताय ।—ब्रज० प्र०, पृ० ५२ ।

तायदाह—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तादाद' ।

तायन^(५)—संज्ञा पुं० [फ्रा० तायनानह] चाबुक । कोड़ा । उ०—
तीख तुखार चाङ्ग मो बाँके । तरपहि तबहि तायन बिनु हकि ।
२. वृद्धि ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५० ।

तायन^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्रगता । आगे बढ़नेवाला व्यक्ति ।
विकास [को०] ।

तायना^(५)—क्रि० सं० [हि० ताय] तपाना । गरम करना ।
उ०—पायन बजति उतायल तायन कीन । पुनि करि कायल
थायल हायल कीन ।—सेवक (शब्द०) ।

तायफा—संज्ञा पुं० स्त्री० [फ्रा० तायफह] १. नाचने गानेवाली वेश्याओं
और समाजियों की मंडली । २. वेश्या । रंडी । उ०—तन
मन मिलयो तायफे, छाँकी हिलियो छेल ।—बाँकी ग्रं०,
भा० २, पृष्ठ ३ ।

तायव^(५)—वि० [फ्रा० तोवह] तीव्र करनेवाला । परमात्माप करने-
वाला । उ०—गुनह से हो सब घादमी तायव ।—कबीर
ग्रं०, पृ० १२३ ।

तायल—वि० [हि० ताय] तेज । तावदार । उ०—तायल तुरंगम
उड़त जनु बाज ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५ ।

ताया^१—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० ताई] बाप का बड़ा भाई ।
बड़ा चाचा ।

ताया^२—वि० [हि० ताना] १. गरमाया हुआ । २. पिघलाया हुआ ।
जैसे, ताया घी ।

तार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रूपा । चाँदी । २. (सोना, चाँदी ताँबा,
लोहा इत्यादि), धातुओं का सूत । तपी धातु को पीट और
खींचकर बनाया हुआ ताना । रस्सी या ताने के रूप में
परिणत धातु । धातुतंतु ।

विशेष—धातु को पहले पीटकर गोल बत्ती के रूप में करते हैं ।
फिर उसे तपाकर जती के बड़े छेद में डालते और सँकसी से
दूसरी ओर पकड़कर ओर से खींचते हैं । खींचने से धातु
लकीर के रूप में बढ़ जाती है । फिर उस छेद में से सूत या
बत्ती को निकालकर उससे ओर छोटे छेद में डालकर खींचते
जाते हैं जिससे वह बराबर महोन होता और बढ़ता जाता
है । खींचने में धातु बहुत गरम हो जाती है । सोन, चाँदी,
आदि धातुओं का तार गोटे, पट्टे, कारचोबी आदि बनावे के
काम आता है । सीसे और रंगे को छोड़ और प्रायः सब
धातुओं का तार खींचा जा सकता है । जरी, कारचोबी आदि
में चाँदी ही का तार काम में लाया जाता है । तार को सुनहरी
बचाने के लिये उसमें रत्ती दो रत्ती सोना मिला देते हैं ।

क्रि० प्र०—खींचना ।

यौ०—तारकण ।

मुहा०—तार दबकना—गोटे के लिये तार को पीटकर चिपटा
और चौड़ा करना ।

३. धातु का वह तार या डोरी जिसके द्वारा बिजली की
सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर समाचार भेजा
जाता है । टेलिग्राफ । जैसे,—उन दोनों गाँवों के बीच तार

लगा है । उ०—तबित तार के द्वार मिल्यो सुभ समाचार
यह ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५०० ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

यौ०—तारधर ।

विशेष—तार द्वारा समाचार भेजने में बिजली और चुंबक की
शक्ति काम में लाई जाती है । इसके लिये चार वस्तुएँ
आवश्यक होती हैं—बिजली उत्पन्न करनेवाला यंत्र या घर,
बिजली के प्रवाह का संचार करनेवाला तार, संवाद को प्रवाह
द्वारा भेजनेवाला यंत्र और संवाद को ग्रहण करनेवाला यंत्र ।
यह एक नियम है कि यदि किसी तार के धरे में से बिजली
का प्रवाह हो रहा हो और उसके भीतर एक चुंबक हो, तो
उस चुंबक को हिलाने से बिजली के बल में कुछ परिवर्तन
हो जाता है । चुंबक के रहने से जिस दिशा को बिजली का
प्रवाह होगा, उसे निकाल लेने पर प्रवाह उल्टकर दूसरी दिशा
की ओर हो जायगा । प्रवाह के इस दिशापरिवर्तन का शास्त्र
कंपास की तरह के एक यंत्र द्वारा होता है जिसमें एक सुई लगी
रहती है । यह सुई एक ऐसे तार की कुंडली के भीतर रहती
है जिसमें बाहर से भेजा हुआ विद्युत्प्रवाह संचरित होता है ।
सुई के इधर उधर होने से प्रवाह के दिक् परिवर्तन का पता
लगता है । आजकल चुंबक की आवश्यकता नहीं पड़ती ।
जिस तार में से बिजली का प्रवाह जाता है, उसके बगल में
दूसरा तार लगा होता है जिसे विद्युत्प्रवाह से मिला देने से
थोड़ी देर के लिये प्रवाह की दिशा बचल जाती है । अब
समाचार किस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता
है, स्थूल रूप से यह देखना चाहिए । भेजनेवाले तारधर में
जो विद्युत्प्रवाह होती है, उसके एक ओर का तार तो
पृथ्वी के भीतर गड़ा रहता है और दूसरी ओर का पानेवाले
स्थान की ओर गया रहता है । उसमें एक कुंजी ऐसी होती
है जिसके द्वारा जब चाहें तब तारों को जोड़ दें और जब चाहे
तब अलग कर दें । इसी के साथ उस तार का भी संबंध
रहता है जिसके द्वारा बिजली के प्रवाह की दिशा बदल
जाती है । इस प्रकार बिजली के प्रवाह की दिशा को कभी
इधर कभी उधर फेरने की युक्ति भेजनेवाले के हाथ
में रहती है जिससे संवाद ग्रहण करनेवाले स्थान की
सुई को वह जब जिधर चाहे, बटन या कुंजी दबाकर कर
सकता है । एक बार में सुई जिस क्रम से दाहिने या बाएँ
होगी, उसी के अनुसार अक्षर का संकेत समझा जायगा ।
सुई के दाहिने घूमने को डाट (बिंदु) और बाएँ घूमने को
रेखा (रेखा) कहते हैं । इन्हीं बिंदुओं और रेखाओं के योग से
मासं नामक एक व्यक्ति ने अंगरेजी वर्णमाला के सब अक्षरों
के संकेत बना लिए हैं । जैसे,—

A के लिये —

B के लिये — . . .

D के लिये — . . . इत्यादि ।

तार के संवाद ग्रहण करने की दो प्रणालियाँ हैं—एक दर्शन
प्रणाली, दूसरी श्रवण प्रणाली । ऊपर लिखी रीति पहली

प्रणाली के अंतर्गत है। पर अब अधिकतर एक खटके (Sounder) का प्रयोग होता है जिसमें सुई लोहे के टुकड़ों पर मारती है जिससे भिन्न भिन्न प्रकार के खट खट शब्द होते हैं। अभ्यास हो जाने पर इन खट खट शब्दों से ही सब अक्षर समझ लिए जाते हैं।

४. तार से आई हुई खबर। टेलिग्राफ के द्वारा आया हुआ समाचार।

क्रि० प्र०—घाना।

५. सुत। तागा। तंतु। सूत्र।

यो०—तार तोड़।

मुहा०—तार तार करना = किसी बुनी या बटी हुई वस्तु की धजियाँ अलग अलग करना। नोचकर सूत सूत अलग करना। उ०—तार तार कीन्हीं फारि सारी जरतारी की।—दिनेश (शब्द०)। तार तार होना = ऐसा फटना कि धजियाँ अलग अलग हो जायें। बहुत ही फट जाना। ६. सुतड़ी (लघ०)। ७. बराबर चलता हुआ कम। अखंड परंपरा। सिलसिला। जैसे,—दोपहर तक लोगों के आने जाने का तार लगा रहा।

मुहा०—तार टूटना = चलता हुआ कम बंद हो जाना। परंपरा खंडित हो जाना। लगातार होते हुए काम का बंद हो जाना। तार बंधना = किसी काम का बराबर चला चलना। किसी बात का बराबर होते जाना। सिलसिला जारी होना। जैसे,—सबेरे से जो उनके रोने का तार बंधा, वह अब तक न टूटा। तार बांधना = (किसी बात को) बराबर करते जाना। सिलसिला जारी करना। तार मगाना = दे० 'तार बांधना'। तार ब तार = छिन्न भिन्न। अस्त व्यस्त। बेसिलसिले।

७. व्योत। सुचीता। व्यवस्था। जैसे,—जहाँ चार पेसे का तार होगा वहाँ जायेंगे, वहाँ क्यों आवेंगे।

मुहा०—तार बैठना या बंधना = व्योत होना। कार्यसिद्धि का सुचीता होना। तार लगना = दे० 'तार बैठना'। तार बमना = दे० 'तार बैठना'।

८. ठीक माप। जैसे,—(क) धपने तार का एक जुता ले लेना। (ख) यह कुरता तुम्हारे तार का नहीं है। ९. कार्यसिद्धि का योग। युक्ति। ढब। जैसे,—कोई ऐसा तार लगामो कि हम भी तुम्हारे साथ आ जायें।

यो०—तारघाट।

१०. प्रणव। ओंकार। ११. राम की सेना का एक बंदर जो तारा का पिता या और बृहस्पति के ग्रंथ से उत्पन्न था। १२. शुद्ध मोती। १३. नक्षत्र। तारा। उ०—रवि के उदय तार जो छीना। चर बीहड़ हूँ नई लीना।—कबीर बी०, पृ० १३०। १४. सांख्य के अनुसार गौण सिद्धि का एक भेद। गुह से विधिपूर्वक वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त सिद्धि। १५. शिव। १६. विष्णु। १७. संगीत में एक सप्तक (सात स्वरों का समूह) जिसके स्वरों का उच्चारण कंठ से उठकर कपाळ के आभ्यंतर स्थानों तक होता है। इसे उच्च भी कहते हैं। १८. धातु की पुतली। १९. सठारह अक्षरों का एक

वर्णमूक्त। जैसे,—तह प्राण के नाथ प्रसन्न बिलोकी। २०. तोल। उ०—तुलसी नृपति ऐसी कहि न बुझावे कोउ पन और कुंभर दोऊ प्रेम की तुला धौ तार।—तुलसी (शब्द०)। २१. नदी का तट। तीर।

विशेष—दिशावाचक शब्दों के साथ संयोग होने पर 'तीर' शब्द 'तार' बन जाता है। जैसे दक्षिणतार।

२२. मोती की शुभ्रता या स्वच्छता (को०)। २३. सुंदर या बढ़ा मोती (को०)। २४. रक्षा (को०)। २५. पारगमन। पार जाना (को०)। २६. चाँदी (को०)। २७. बीज का भांड (विशेषतः कमल का)।

तार(७)^२—संज्ञा पुं० [सं० ताल] १. ताल। मजीरा। उ०—काहू के हाथ भधोरी, काहू के बीन, काहू के मृदंग, कोऊ यह तार।—हरिदास (शब्द०)। २. करताल नामक बाजा।

तार(७)^३—संज्ञा पुं० [सं० तल] तल। सतह। जैसे, करतार। उ०—सोकर मगिन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारयो।—केशव (शब्द०)।

यो०—करतार = हथेली।

तार(७)^४—संज्ञा पुं० [हि० तार] १. कान का एक गहना। ताटक। तरीना। उ०—श्रवणन पहिरे उलटे नार।—सूर (शब्द०)।

तार(७)^५—संज्ञा पुं० [सं० ताल, तार] तार नामक वृक्ष। उ०—कीन्हेंसि बनखंड भी जरि मुरो। कीन्हेंसि तरिवर तार खजूरी।—जायसी (शब्द०)।

तार^१—वि० [सं०] १. जिसमें से किरनें फूटी हों। प्रकाशयुक्त। प्रकाशित। स्पष्ट। २. निर्मल। स्वच्छ। ३. उच्च। उदात्त। जैसे, स्वर (को०)। ४. प्रति ऊँचा। उ०—जिम जिम मन मनले कियइ तार चढंती जाइ।—ढोला०, पृ० १२। ५. तेज। उ०—माहु वहि पंचमि दिवस चढ़ि चलिऐ तुर तार।—पृ० रा० २५। २२५। ६. अच्छा। उत्तम। त्रिय (को०)। ७. शुद्ध। स्वच्छ (को०)।

तार(७)^६—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तारा'। उ०—प्रबल भी मारफत हासिल न पावे। दोयम तार के दिल गुमराह होवे।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

तार(७)^७—अव्य० [न० तार (= सोझ, पनला)] किविन्मात्र। जरा भी। उ०—भाँवत लाग खून कर तू पाण न उर तार।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ७५।

तार^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताल'। उ०—बाजत चट सौ पटरी तारन ग्वारन गवत संग।—नंद० प्र०, पृ० ३८८।

तारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र। तारा। २. घाल। ३. घाल की पुतली। ४. इंद्र का शत्रु एक अमुर। इतने जब इंद्र को बहुत सताया, तब नारायण ने नृपुंसक रूप धारण करके इसका नाश किया। (पद्मपुराण)। ५. एक अमुर जिसे कार्तिकेय ने मारा था। दे० 'तारकामुर'।

यो०—तारकजित्, तारकरिपु, तारकबेरी, तारकसूदन = कार्तिकेय।

१. राम का पक्षर मंत्र जिसे गुरु शिष्य के कान में कहता है और

जिससे मनुष्य तर जाता है। 'धौं रामाय नमः' का मंत्र। ७. मिलावा। भेलक। ८. वह जो पार उतारे। ९. कर्णधार। मरुलाह। १०. भवसागर से पार करनेवाला। तारनेवाला। उ०—तृप तारक हरि पद भजि साँच बड़ाई पाइय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६७। ११. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार सगण और एक गुरु होता है (115 115 115 115 5)। १२. एक वर्ण का नाम, जो अत्येष्टि कराता है—'महाबाह्यण'। उ०—यह फतहपुर का महाबाह्यण (तारक का आचारज) था।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ८५। १३. गरुड़। उ०—ग्रंथा जातियाँ लक्ष्मण गीता मुनि विहंगा तारक ससि माष।—रघु०, क०, पृ० २५५। १४. कान (को०)। १५. महादेव (को०)। १६. हठयोग में सरने का उपाय (को०)। १७. एक उपनिषद् (को०)। १८. मुद्रण में तारे का चिह्न—*।

तारकजित्—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

तारक टोड़ी संज्ञा स्त्री० [सं० तारक + टि० टोड़ी] एक राग जिसमें ऋषभ और कोमल स्वर लगते हैं और पंचम वज्रित होता है। (संगीत रत्नाकर)।

तारक तीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] गया तीर्थ, जहाँ पिंडदान करने से पुरखे तर जाते हैं।

तारक ब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं०] राम का षडक्षर मंत्र। रामतारक मंत्र। 'धौं रामाय नमः' यह मंत्र।

तार कमानी—संज्ञा स्त्री० [फा० तार + कमानी] वसुध के आकार का एक औजार।

विशेष—इसमें खोरी के स्थान पर लोहे का तार लगा रहता है। इससे नगीने काटे जाते हैं।

तारकश—संज्ञा पुं० [फा० तार + कश = (खींचनेवाला)] धातु का तार खींचनेवाला।

तारकशी—संज्ञा स्त्री० [फा० तारकश + हि० ई (प्रत्यय)] तार खींचने का काम।

तारका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नक्षत्र। तारा। उ०—तुम्हारे उर हैं अमर मर, दिवाकर, शशि, तारकाग्र।—अर्चना, पृ० ८। २. कनीनिका। धातु की पुतली। ३. इन्द्रवायणी। ४. नारायण नामक छंद का नाम। ५. बालि की स्त्री ताता। उ०—सुश्रीव को तारका मिलाई बग्यो बालि भयमंत।—सूर (शब्द०)। ६. उल्हा (को०)। ७. बृहस्पति की पत्नी का नाम (को०)।

तारका^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताड़का'।

तारकाज—संज्ञा पुं० [सं०] तारकासुर का बड़ा लड़का।

विशेष—यह उन तीन भाइयों में से एक था जो ब्रह्मा के वर से तीन पुर (त्रिपुर) बसाकर रहते थे।

विशेष—दे० 'त्रिपुर'।

तारकामय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

तारकावयु—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

तारकारि—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय (को०)।

तारकासुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम जिसका पूरा वृत्तान्त शिवपुराण में दिया हुआ है।

विशेष—यह असुर तार का पुत्र था। इसने जब एक हजार वर्ष तक घोर तप किया और कुछ फल न हुआ, तब इसके मस्तक से एक बहुत प्रबल तेज निकला जिससे देवता लोग व्याकुल होने लगे, यहाँ तक कि इंद्र सिंहासन पर से खिचने लगे। देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा तारक के समीप वर देने के लिये उपस्थित हुए। तारकासुर ने ब्रह्मा से दो वर माँगे। पहला तो यह कि 'मेरे समान संसार में कोई बलवान् न हो', दूसरा यह कि 'यदि मैं मारा जाऊँ, तो उसी के हाथ से जो शिव से उत्पन्न हो'। ये दोनों वर पाकर तारकासुर घोर अभ्यास करने लगा। इसपर सब देवता मिलकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने कहा—'शिव के पुत्र के प्रतिरिक्त तारक को और कोई नहीं मार सकता। इस समय हिमालय पर पार्वती शिव के लिये तप कर रही हैं। जाकर ऐसा उपाय रखो कि शिव के साथ उनका संयोग हो जाय'। देवताओं की प्रेरणा से कामदेव ने जाकर शिव के चित्त को चंचल किया। अंत में शिव के साथ पार्वती का विवाह हो गया। जब बहुत दिनों तक शिव को पार्वती से कोई पुत्र नहीं हुआ, तब देवताओं ने घबराकर अग्नि को शिव के पास भेजा। कपीत के देश में अग्नि को देख शिव ने कहा—'तुम्हीं हमारे वीर्य को धारण करो' और वीर्य को अग्नि के ऊपर डाल दिया। उसी वीर्य से कार्तिकेय उत्पन्न हुए जिन्हें देवताओं ने अपना सेनापति बनाया। घोर युद्ध के उपरान्त कार्तिकेय के बाण से तारकासुर मारा गया।

तारकिणी^१—वि० स्त्री० [सं०] तारों से भरी। तारकापूर्ण।

तारकिणी^२—संज्ञा स्त्री० रात्रि। रात।

तारकित—वि० [सं०] तारायुक्त। तारों से भरा हुआ। जैसे, तारकित वस्त्र।

तारकी—वि० [सं० तारकिन्] [स्त्री० तारकिणी] तारकित।

तारकूट—संज्ञा पुं० [सं० तार (चौदी) + कूट (=नकली)] चौदी और पीतल के योग से बनी एक धातु।

तारकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। २. एक शिवलिंग जो कलकत्ते के पास है। ३. एक रसीषध।

विशेष—पारा, गंधक, सोहा, वंग, अभ्रक, जवासा, जवाखार, गोखरू के बीज और हड़ इन सबको बराबर लेकर घिसते हैं और फिर पेटे के पानी, पंचमूल के काढ़े और गोखरू के रस की भावना देकर प्रस्तुत घोषध की दो दो रत्ती की गोलियाँ बना लेते हैं। इन गोलियों को शहर में मिलाकर खाते हैं। इस घोषध के सेवन से बहुमूल्य रोग दूर होता है।

तारकोल—संज्ञा पुं० [सं० टार + कोल] अलकतरा। कोलतार।

तारक्षिति—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम दिशा का एक देश जहाँ म्लेच्छों का निवास है। (बृहत्संहिता)।

तारख^१—संज्ञा पुं० [सं० तारख] गरुड़। (हि०)।

तारखी^५—संज्ञा पुं० [सं० तारख्यं] घोड़ा । (हिं०) ।

तारग^५—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारक'—१०' । उ०—मुक्ति पथ का पाया मारग । दादू राम मिलाया गुरु तारग ।—राम० धर्म०, पृ० २०८ ।

तारघर—संज्ञा पुं० [हिं० तार + घर] वह स्थान जहाँ से तार की खबर भेजी जाय ।

तारघाट—संज्ञा पुं० [हिं० तार + घाट] कार्यसिद्धि का योग । मतलब निकलने का सुबोता । व्यवस्था । आयोजन । जैसे,—वहाँ कुछ मिलने का तारघाट होगा, तभी यह गया है ।

तारचरबी—संज्ञा पुं० [दे०] मोमचीना का पेड़ ।

विशेष—यह पेड़ छोटा होता है और चीन, जापान आदि देशों में बहुत लगाया जाता है । इसके फल में तीन बीजकोश होते हैं जो एक प्रकार के बिकने पदार्थ से भरे रहते हैं जिसे चरबी कहते हैं । चीन और जापान में इसी पेड़ की चरबी से मोमबतियाँ बनती हैं । चरबी के प्रतिरक्त बीजों से भी एक प्रकार का पीला तेल निकलता है जो दवा और रोगन (वारनिश) के काम में आता है ।

तारचौ^५—संज्ञा पुं० [हिं० तार (= ऊँचा) + (च = गति करनेवाला)] तारक । तारा । उ०—तारचौ सटल, बाईं हुतल ।—पृ० रा०, २६ । ७० ।

तारछ^५—संज्ञा पुं० [सं० तारख्यं] गरुड़ । उ०—गरुत्मान, तारछ, गरुड़, बैनदेय, शकुनीश ।—नंद० प्र०, पृ० १११ ।

तारट^५—संज्ञा पुं० [सं० तारक] तारा । तरेया । उ०—सित दुक्ख विम्भुत नीलकण्ठी नथ तारट ।—पृ० रा०, २ । ४२४ ।

तारण^५—संज्ञा पुं० [सं०] १. (दूसरे को) पार करने का काम । पार उतारने की क्रिया । २. उद्धार । निस्तार । ३. उद्धार करने या तारनेवाला व्यक्ति । ४. विष्णु । ५. साठ संवत्सरों में से एक । ६. शिव (को०) । ७. नाव । नौका (को०) । ८. विजय (को०) ।

तारण^५—वि० १. उद्धार करनेवाला । पार करनेवाला । २. पार करानेवाला ।

यी०—तारण तिरण = पार उतारनेवाला । उ०—तारण तिरण बड़े लग कहिए ।—कबीर ग्रं०, पृ० १०५ ।

धारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप की एक पत्नी जो याज्ञ और उपयाज की माता कही जाती हैं । २. नौका । नाव (को०) ।

तारतंडुल—संज्ञा पुं० [सं० तारतण्डुल] सफेद ज्वार ।

तारतखाना^५—संज्ञा पुं० [सं० तहारत + फ़ा० खानह] शुद्ध स्थान । पवित्र स्थल । वह स्थान जहाँ पर शुद्ध होकर नमाज आदि पढ़ने के लिये जाया जाता है । उ०—अति सोचै पतसाह भछाने । खिण सज्या खिण तारतखाने ।—रा० क०, पृ० ६६ ।

तारतम^५—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारतम्य' । उ०—बीषा अकिल भंष की सेखा । वो तारतम लै करे विवेखा ।—कबीर रा०, पृ० ६६६ ।

तारतमिक—वि० [सं० तारतम्यिक] परस्पर न्यूनाधिक्य क्रम का या कमी वेशीवाला । समबद्ध ।

तारतम्य—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तारतमिक] १. न्यूनाधिक्य । परस्पर न्यूनाधिक्य का संबंध । एक दूसरे से कमी वेशी का हिसाब । २. उत्तरोत्तर न्यूनाधिक्य के प्रवृत्ति व्यवस्था । कमी वेशी के हिसाब से तरतीब । ३. दो या कई वस्तुओं में परस्पर न्यूनाधिक्य आदि संबंध का विचार । गुण परिमाण आदि का परस्पर मिलान ।

तारतम्यबोध—संज्ञा पुं० [सं०] कई वस्तुओं में से एक का दूसरे से बढ़कर होने का विचार । कई वस्तुओं में से भले बुरे आदि की पहचान । मोक्ष मंत्र ज्ञान ।

तार तार^५—वि० [हिं० तार] जिसकी ध्वनियें अलग अलग हो गई हों । टुकड़ा टुकड़ा । फटा फटा । उधड़ा हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।

तर तार^५—संज्ञा पुं० [सं०] माख के अनुसार एक गीण सिद्धि । पठित भाग्य आदि की तरफ़ झाँक युक्तिमुक्त परीक्षा से प्राप्त सिद्धि ।

तारतोड़—संज्ञा पुं० [हिं० तार + तोड़ना] एक प्रकार का मुई का काम जो कपड़े पर होता है । चारखी । उ०—दिलाने कोई गोवरू मोड़ मोड़ । कहीं सून दे के की तारतोड़ ।—मीर दूसन (शब्द०) ।

तारदो—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का काँटदार पेड़ । तरदी वृक्ष ।

पर्या०—खडूरा । तीव्र । रक्तबोद्धका ।

तारनी^५—संज्ञा पुं० [सं० तारण] दे० 'तारण' । उ०—(क) हम तुम्ह तारण तेज घन सुंदर, नीके सो निरबद्धि ।—दादू०, पृ० ५५१ । (ख) जय कारन, तारन भव, भंजन चरनी भार ।—तुलसी (शब्द०) ।

तारन^५—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे ?)] १. छत को ढाल । छाजन को ढाल । २. छप्पर का वह बाँध जो काँड़ों के नीचे रहता है ।

तारना^५—क्रि० सं० [सं० तारण] १. पार लगाना । पार करना । २. संसार के क्लेश आदि से छुड़ाना । भवबाधा दूर करना । उद्धार करना । निस्तार करना । सद्गति देना । मुक्त करना । उ०—काहू के न तारे सिन्है गवा तुम तारे और जे ते तुम तारे तेने नम में न तारे हैं । पयकर (शब्द०) । ३. पानी को धारा देना । तरेरा देना । उ०—मनहुँ विरह के सय घाव हिण लखि तकि तकि धरि औरज तारति ।—तुलसी (शब्द०) । ४. तैरना ।

तारना^५—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडना] दे० 'ताड़ना' ।

तारनी^५—क्रि० सं० [हिं०] १. ताड़ना करना । बड़ देना । पीड़ित करना । २. देखना/ निरीक्षण करना ।

तारपट्टक—संज्ञा पुं० [सं०], एक प्रकार की तलवार (को०) ।

तारपतन—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कापात (को०) ।

तारपीन—संज्ञ पु० [अ० टरपेटाइन] चीड़ के पेड़ से निकाला हुआ तेल ।

विशेष—चीड़ के पेड़ में जमीन से कोई दो हाथ ऊपर एक खोलला गड्ढा काटकर बना देते हैं और उसे नीचे की ओर कुछ गहरा कर देते हैं । इसी गहरे किए हुए स्थान में चीड़ का पसेव निकलकर गोंद के रूप में इकट्ठा होता है जिसे गंदा-बिरोजा कहते हैं । इस गोंद से मक्के द्वारा जो तेल निकाल लिया जाता है, उसे तारपीन का तेल कहते हैं । यह भीषण के काम में आता है और बर्तन के लिये उपकारी है ।

तारपुष्प—संज्ञा पु० [सं०] कुंद का पेड़ ।

तारबर्फी—संज्ञा पु० [हि० तार + बर् + फा० ई० (प्रत्य०)] बिजली की शक्ति द्वारा समाचार पहुँचानेवाला तार ।

तारमात्त्रिक—संज्ञा पु० [सं०] रूपामन्त्री नाम की उपधातु ।

तारयिता—संज्ञा पु० [सं० तारयितृ] [स्त्री० तारयित्री] तारने-वाला । उद्धार करनेवाला ।

तारल^१—वि० [सं०] १. चपल । चंचल । अस्थिर । २. लंपट । विलासी [को०] ।

तारल^२—संज्ञा पु० विट [को०] ।

तारव्य—संज्ञा पु० [म०] १. जल, तेल आदि के समान प्रवाहशील होने का धर्म । द्रवत्व । २. चंचलता । चपलता । ३. लंपटता । कामुकता [को०] ।

तारवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेज या जोर की धावाजवाली हवा [को०] ।

तारबिमला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रूपामन्त्री नाम की उपधातु ।

तारशुद्धिकर—संज्ञा पु० [सं०] सीसा [को०] ।

तारसार—संज्ञा पु० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।

तारस्वर—संज्ञा पु० [म०] जँबा स्वर । जँबी धावाज [को०] ।

तारहार—संज्ञा पु० [सं०] १. सुंदर या बड़े मोतियों का हार । उ०—उड़ों के चल करतल पसार, भर भर मुक्ताफल फेन स्फार, बिखराती जल में तार हार ।—गुंजन, पृ० ६५ । २. जमकीला हार । तेजोमय हार [को०] ।

तारहेमाभ—संज्ञा पु० [म०] एक प्रकार की धातु [को०] ।

तारा^१—संज्ञा पु० [सं०] १. नक्षत्र । सितारा ।

यौ०—तारामंडल ।

मुहा०—तारे बिलना = तारों का चमकते हुए निकलना । तारों का दिखाई देना । तारे गिनना = चिंता या आशंका में बेचैनी से रात काटना । दुःख से किसी प्रकार रात बिताया । तारे छिटकना = तारों का दिखाई पड़ना । आकाश स्वच्छ होना और तारों का दिखाई पड़ना । तारा टूटना = चमकते हुए पिंड का आकाश में वेग से एक ओर से दूसरी ओर को जाते हुए या पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई पड़ना । उल्कापात होना । तारा झूबना = (१) किसी नक्षत्र का अस्त होना । (२) शुक्र का अस्त होना ।

विशेष—शुक्रास्त में हिंदुओं के यहाँ मंगल कार्य नहीं किए जाते ।

तारे तोड़ लाना = (१) कोई बहुत ही कठिन काम कर दिखाना ।

(२) बड़ी चालाकी का काम करना । तारे दिखाना = प्रसूता स्त्री को छठी के दिन बाहर लाकर आकाश की ओर इसलिये तकाना जिसमें जिन, भूत आदि का डर न रह जाय ।

विशेष—मुसलमान स्त्रियों में यह रीति है ।

तारे दिखाई दे जाना = कमजोरी या दुर्बलता के कारण आँखों के सामने तिरमिराहुट दिखाई पड़ना । तारा सी आँखें हो जाना = सलाई, सुजन, कीचड़ आदि दूर होने के कारण आँख का स्वच्छ हो जाना । तारों की छाँह = बड़े सबेरे । तड़के, जब कि तारों का घुँघला प्रकाश रहे । जैसे,—तारों की छाँह यहाँ से चल देंगे । तारा हो जाना = (१) बहुत ऊँचे पर हो जाना । इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाना कि तारे की तरह छोटा दिखाई दे । (२) इतनी दूर हो जाना कि छोटा दिखाई पड़े । बहुत फासले पर हो जाना ।

२. आँख की पुतली । उ०—देखि लोग सब अए सुखारे । एकटक सोचन चलत न तारे ।—मानस, १।२४४ ।

मुहा०—नयनों का तारा = दे० 'आँख का तारा' । मेरे नयनों का तारा है मेरा गोविंद प्यारा है ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

३. सितारा । भाग्य । किसमत । उ०—प्रीतम के मानु सो कुमार को प्रताप देखि तारे सम तारे अए मुँह तुरकन के ।—भूषण (शब्द०) । ४. मोती । मुक्ता [को०] । ५. छह स्वरोंवाले एक राग का नाम [को०] ।

तारा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्र के अनुसार दस महाविद्याओं में से एक । २. बृहस्पति की स्त्री का नाम जिसे चंद्रमा ने उसके इच्छानुसार रख लिया था ।

विशेष—बृहस्पति ने जब अपनी स्त्री को चंद्रमा से माँगा, तब चंद्रमा ने देना अस्वीकार किया । इसपर बृहस्पति अत्यंत क्रुद्ध हुए और और युद्ध आरंभ हुआ । अंत में ब्रह्मा ने उपस्थित होकर युद्ध शांत किया और तारा को लेकर बृहस्पति को दे दिया । तारा को गर्भवती देख बृहस्पति ने गर्भस्थ शिशु पर अपना अधिकार प्रकट किया । तारा ने तुरंत शिशु का प्रसव किया । देवताओं ने तारा से पूछा—'ठीक ठीक बतःओ, यह किसका पुत्र है ?' तारा ने बड़ी डेर के पीछे बताया—'यह बस्युहंतम नामक पुत्र चंद्रमा का है ।' चंद्रमा ने अपने पुत्र को ग्रहण किया और उसका नाम चुन रखा ।

३. जैनों की एक शक्ति । ४. बालि नामक बंदर की स्त्री और सुतेन की कन्या ।

विशेष—इसने बालि के मारे जाने पर उसके माई सुपीव के साथ रामचंद्र के आदेशानुसार विवाह कर लिया था । तारा पंचकन्याओं में मानी जाती है और प्रातःकाल उसका नाम लेने का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है । यथा—

महत्या द्रोपदी तारा कुंती मंदोदरी तथा ।

पंच कन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

५. सिर में बाँधने का चीरा । ५. राजा हरिश्चंद्र की पत्नी का नाम । तारामती (को०) । ६. बौद्धों की एक देवी (को०) ।

तारा^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताला' । उ०—ह्रिय भंडार नग प्राहि जो पूजो । खोखि जीम तारा के कूजो ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३५ ।

मुहा०—तारा मारना=ताला बंद करना । उ०—ता पाछे बहु ब्राह्मन ने अपने बेटा कौं घर में मूँदि घर की तारयो मारयो । —दो सी बावन०, भा० १, पृ० २७६ ।

तारा^४—संज्ञा पुं० [सं० ताल (=सर)] तालाब ।

ताराकुमार—संज्ञा पुं० [सं० तारा + कुमार] १. तारा का पुत्र, संवद । २. चंद्रमा का पुत्र बुध जो तारा के गर्भ से उत्पन्न हुआ है ।

ताराकूट—संज्ञा पुं० [सं०] कश्चित् ज्योतिष में वर कन्या के शुभाशुभ फल को सूचित करनेवाला एक कूट जिसका विचार विवाह स्थिर करने के पहले किया जाता है ।

ताराक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तारकाक्ष देख्य ।

तारागण—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रसमूह । तारों का समूह ।

ताराग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल, बुध, गुरु, शुक और शनि इन पाँच ग्रहों का समूह । (बृहत्संहिता) ।

ताराचक्र—संज्ञा पुं० [सं० तारा + चक्र] दीक्षा मंत्र के शुभाशुभ फल का निर्णायक एक तांत्रिक चक्र (को०) ।

ताराज—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. लुटपाट । लुटमार । —(लस०) । २. नाश । ध्वंस । विनाश । बरबादी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तारात्मक नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश में क्रान्तिकृत के उत्तर और दक्षिण धोर के तारों का समूह जिनमें धनिष्ठी, धरणी आदि हैं ।

ताराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शिव । ३. बृहस्पति । ४. बालि । ५. सुग्रीव ।

ताराधोश—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताराधिप' ।

तारानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. बृहस्पति । ३. बालि । ४. सुग्रीव ।

तारापति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तारानाथ' ।

तारापथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश ।

तारापीड—संज्ञा पुं० [सं० तारापीड] १. चंद्रमा । २. मत्स्य पुराण के अनुसार प्रयोध्या के एक राजा का नाम । ३. काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम ।

ताराभ—संज्ञा पुं० [सं०] पारथ । पारा ।

ताराभूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।

ताराभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

तारामंडल—संज्ञा पुं० [सं० तारामण्डल] १. नक्षत्रों का समूह या घेरा । उ०—नाचते ग्रह, तारामंडल, पलक में उठ गिरते प्रतिपल ।—प्रनामिका, पृ० ६३ । २. एक प्रकार की

घातशबाजी । ३. एक प्रकार का कपड़ा (को०) । ४. एक प्रकार का शिव का मंदिर (को०) ।

तारामंडूर—संज्ञा पुं० [सं० तारामण्डूर] वैद्यक में एक विशेष प्रकार का मंडूर जो अनेक द्रव्यों के योग से बनता है ।

तारामंडल^५—संज्ञा पुं० [सं० तारा + हि० मंडल] तारा बूटी की छपाईवाला एक चित्र । उ०—तारामंडल पहिरि मल चोला । भरे सीस सब नखत प्रमोला ।—जायसी ग्रं०, पृ० ८० ।

तारामती—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा हरिश्चंद्र की पत्नी जिसका तारा नाम भी है (को०) ।

तारामृग—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र ।

तारमैत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन मात्र से होनेवाला प्रेम (को०) ।

तारायण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश । २. वट का पेड़ (को०) ।

तारायण^२—संज्ञा पुं० [सं० तारा + गण] तारकसमूह । तारे । उ०—तू तारायण मीजी सो बंध, मोवल माहि मिलि ज्युं बौध्द ।—वी० रासो०, पृ० ११३ ।

तारारि—संज्ञा पुं० [सं०] विटमाक्षिक नाम की उपधातु ।

तारास्त्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारों की श्रेणी । तारकपत्ति । उ०—तृण, तह से तारास्त्रि सत्य है एक अखंडित ।—ग्राम्या, पृ० ७० ।

तारावर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] उल्कापात (को०) ।

तारावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दुर्गा (को०) ।

ताराबली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारकपत्ति । तारों का समूह (को०) ।

तारि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताली' । उ०—गाल नाचे तारि दे दे देत बहुत बनाय ।—भारतेकु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१० ।

तारिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी आदि पार उतारने का माड़ा या महुसूल । उतराई । २. नदी से माल को पार करवाने और कर वसूल करनेवाला कर्मचारी । उ०—घाट पर तारिक नामक कर्मचारी नियुक्त किया जाता था जो माल को पार उतारने में सहायता करता तथा उचित टैक्स वसूल करता था ।—पृ० म० आ०, पृ० १३० । ३. मल्लाह (को०) ।

तारिक^२—वि० [सं०] १. तक करनेवाला । त्यागी । त्याग करनेवाला । छोड़नेवाला । उ०—अहंकारी । धमंडी (को०) ।

यौ०—तारिके दुनिया = संसार से विरक्त । तारिके अज्ञात = सांसारिक ध्यान का त्याग करनेवाला । निस्पृह ।

तारिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी नामक मद्य ।

तारिका^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तारका] १. दे० 'तारका' । उ०—तारिका दुरानी, तमचुर बोले, अवन मनक परी ललित के ताब की ।—सूर (शब्द०) । २. सिनेमा में काम करनेवाली अभिनेत्री । अभिनेत्री । ३. तारोख ।

तारिका^३—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडका] दे० 'ताडका' । उ०—तस्नि नाम तारिका ग्यान हरि परसी राम ।—पृ० रा०, २।२६० ।

तारिणी^१—वि० स्त्री० [सं०] १. तारनेवाली । उद्धार करनेवाली । २. ४८ हाथ लंबी, ५ हाथ चौड़ी और ४५ हाथ ऊँची नाव ।

तारिणी^२—संज्ञा स्त्री० 'तारा देवी' । वि० दे० 'तारा' ।

तारित—वि० [सं०] १. तारा हुआ। पार किया हुआ। २. जिसका उद्धार हुआ हो [को०]।

तारी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की चिड़िया। २. निद्रा। ३. समाधि। ध्यान। उ०—(क) बिकल अचेत तारी तुम हो रथों लगी रहै।—घनानंद, पृ० २००। (ख) गूनि समाधि सागि गढ़ तारी।—जायसी ग्रं०, पृ० १००।

तारी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तासी'। उ०—छुटकी तारी थाप दे गऊ जिलाई देग।—कबीर ग्रं०, पृ० ११४।

तारी^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताड़ी'।

तारी—वि० [सं० तारित] १. उद्धार के योग्य बनानेवाला। २. उद्धार करनेवाला। उद्धारक [को०]।

तारीक—वि० [फा०] १. स्याह। काला। २. धुँधला। धँधेरा। उ०—बस के तारीक अपनी छाँवों में जमाना हो गया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४६।

तारीकी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. स्याही। २. प्रंधकार। उ०—इस्लाम के आफताय के आगे कुफ की तारीकी कभी ठहर सकती है?—भारतेंदु, भा० १, पृ० ५२६।

तारीख—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. गहीने का हर एक दिन (२४ घंटों का)। तिथि।

मुहा०—तारीख डालना = तिथि वार आदि लिखना।

२. वह तिथि जिसमें पुरा काल के किसी वर्ष में कोई विशेष घटना हुई हो, विशेषतः ऐसी त्रिमसा उत्सव या भोक मनाया जाता हो अथवा जिसके लिये कुछ रीति व्यवहार प्रति वर्ष करना पड़ता हो। ३. नियत तिथि। किसी काम के लिये ठहारा हुआ दिन। जैसे,—रुत मुकदमे की तारीख है।

मुहा०—तारीख बाँटना = तारीख मुकर्रर करना। दिन नियत करना। तारीख डलना = किसी काम के लिये पहले से नियत दिन के और आगे कोई दिन नियत होना। जैसे,—उनके भुक्तदमे की तारीख रद्द गई। तारीख पड़ना = किसी काम के लिये दिन मुकर्रर होना। तिथि नियत होना।

४. इतिहास। उ०—मैंने सुना है कि तारीख अकबरी में कबीर साहब और न नम साहब के विषय में अनेक बातें लिखी हैं।—कबीर ग्रं०, पृ० ५२४।

तारीफ—संज्ञा स्त्री० [सं० तारीक] १. लक्षण। परिभाषा। २. वर्णन। विवरण। ३. बखान। प्रशंसा। श्लाघा।

कि० प्र०—आज का होना।

४. प्रशंसा की बात। निमित्त। गुण। मिकत। जैसे,—यही तो इस दवा में तारीफ है कि जरा भी नहीं लगती।

मुहा०—तारीफ के पुल बाँधना = बहुत अधिक प्रशंसा करना। अतिरिक्त प्रशंसा करना। उ०—मुबारक कदम ने तो तारीफ के पुल ही बाँध दिए।—किशाना, भा० ३, पृ० ३५।

तारी^४—संज्ञा स्त्री० [हि० तारी] दे० 'तारी'। उ०—दसवें दुवार तार का जेला। उसदि दिरेट जो लाव सो देसा।—जायसी ग्रं०, (पुन), पृ० २६५।

तारु^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताल'।

तारुण—वि० [सं०] युवा। जवान [को०]।

तारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] यौवन। जवानी। उ०—अलकता आता अभी तारुण्य है। आ गुराई से मिला आरुण्य है।—साकेत, पृ० ११।

तारुण^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरुणी'। उ०—तरु अंब गोष तारुन त्रिविध सखिय गोष उम्भिय सरस। प्रतिबिंब मुख राका दरस मुह गावत बहुमान जस।—पृ० रा०, १।१७१।

तारु^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताल'।

तारुणी^४—वि० [हि० तारुना] तारनेवाला। उद्धार करनेवाला। उ०—तारुणी तट देखिहो, ताहीं मस्थाना।—दादू, पृ० ५६२।

तारेख—संज्ञा पुं० [सं०] १. तारा या बालि का पुत्र प्रंगव। २. बृहस्पति की स्त्री तारा का पुत्र बुध। ३. मंगल ग्रह [को०]।

तार्क्य—वि० [सं०] बुना हुआ [को०]।

तार्किक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तर्कशास्त्र का जाननेवाला। २. तत्त्ववेत्ता। दार्शनिक।

तार्क्षी^१—संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप।

तार्क्षी^२—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्य] कश्यप के पुत्र गरुड।

तार्क्षज—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन।

तार्क्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पातालगरुड़ी लता। खिरैटी। खिरिहटा।

तार्क्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृक्ष मुनि के गोत्रज। २. गरुड। ३. गरुड के बड़े भाई अरुण। ४. घोड़ा। ५. रसांजन। ६. सर्प। ७. अश्वकर्ण वृक्ष। एक प्रकार का शालवृक्ष। ८. एक पर्वत का नाम। ९. महादेव। १०. सोना। स्वर्ण। ११. रथ। १२. पक्षी [को०]।

तार्क्ष्यज—संज्ञा पुं० [सं०] रसोत। रसांजन।

तार्क्ष्यवज—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

तार्क्ष्यनायक—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड [को०]।

तार्क्ष्यनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] बाज पक्षी [को०]।

तार्क्ष्यपुत्र, तार्क्ष्यसुत—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड [को०]।

तार्क्ष्यप्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वकर्ण वृक्ष।

तार्क्ष्यशैल—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन। रसोत।

तार्क्ष्यसाम—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्यसामन्] सामवेद [को०]।

तार्क्ष्यी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वनलता का नाम।

तार्क्ष्य^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तार्क्ष्यी] तृण से निर्मित [को०]।

तार्क्ष्य^२—संज्ञा पुं० १. घास का कर। २. अग्नि [को०]।

तार्क्ष्य^३—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन जिसका रंग सुवर्णकी होता है और गंध लहसुनी होती है [को०]।

तार्तीय^४—वि० [सं०] १. तृतीय। तीसरा। २. तृतीय संबंध रखनेवाला [को०]।

तार्तीय^५—संज्ञा पुं० तृतीय अंश या भाग [को०]।

तार्तीयक—वि० [सं०] तृतीय [को०]।

साध्य—संज्ञा पु० [सं०] तृपा नामक लता से बनाया हुआ वस्त्र जिसका व्यवहार वैदिक काल में होता था ।

साध्य^१—वि० [सं०] १. तारने योग्य । उद्धार करने योग्य । २. पार करने योग्य । ३. जीतने योग्य [को०] ।

साध्य^२—संज्ञा पु० नाव आदि का झाड़ा [को०] ।

तालक—संज्ञा पु० [सं० तालक] दे० 'तडक' [को०] ।

ताल^१—संज्ञा पु० [सं०] १. हाथ का तल । करतल । हुयेली । २. वह शब्द जो दोनों हुयेलियों को एक दूसरी पर मारने से उत्पन्न होता है । करतलध्वनि । ताली । उ०—हुलुक, छुट्टुक, प्रतिगीत, बाद्य, ताल, नृत्य, होइते भव्य ।—वर्ण-रत्नाकर, पृ० २ । ३. नाचने या गाने में उसके काल और क्रिया का परिमाण, जिसे बीच बीच में हाथ पर हाथ मारकर सूचित करते जाते हैं । उ०—मंगणहारों सीख की डोलइ तिणहि ताल ।—ढोला०, पृ० २०६ ।

विशेष—संगीत के संस्कृत ग्रंथों में ताल दो प्रकार के माने गए हैं—मार्ग और देशी । भरत मुनि के मत से मार्ग ६० हैं—चण्डपुट, चाचपुट, षट्षितापुत्रक, उदघट्टक, संनिपात, कंकण, कोकिलारव, राजकोलाहल, रंगविद्याधर, शचीप्रिय, पार्वतीलोचन, राजचूड़ामणि, जयश्री, वादकाकुल, कदपं, नलकूबर, दर्पण, रतिलीन, मोक्षपति, श्रीरंग, सिंहविक्रम, दीपक, मल्लिकामोद, गजलील, चर्चरी, कुहूक, विजयानंद, खोरविक्रम, टैगिक, रंगभरण, श्रीकीर्ति, वनमाली, चतुर्मुख, सिंहनंदन, नंदीश, चंद्रबिंब, द्वितीयक, जयमंगल, गधर्व, मकरंद, त्रिभंगी, रसिताल, वसंत, जगन्नाथ, गारुडि, कविशेखर, घोष, ह्रस्वलभ, भैरव, गतप्रथागत, मल्लताली, भैरव-मस्तक, सरस्वतीठाभरण, क्रीडा, निःसार, मुक्तावली, रंग-राज, भरतानंद, आदितालक, संपर्कष्टक । इसी प्रकार १२० देशी ताल गिनाए गए हैं । इन तालों के नामों में भिन्न भिन्न ग्रंथों में विभिन्नता देखी जाती है । इन नामों में से आजकल बहुत प्रचलित हैं । संगीत में ताल देने के लिये तबले, मृदंग ढोल और मंजीरे आदि का व्यवहार किया जाता है ।

क्रि० प्र०—देना ।—बजाना ।

यौ०—तालमेल ।

मुहा०—ताल बेताल —(१) जिसका ताल ठिकाने से न हो ।

(२) भवसर या विमा भवसर के । मोके । बेमोके । ताल से बेताल होना—ताल के नियम से बाहर हो जाना । खलड़ जाना । (गाने बजाने में) ।

४. अपने जंघे या बाहु पर जोर से हुयेली मारकर उत्पन्न किया हुआ शब्द । कुश्ती आदि लड़ने के लिये जब किसी को ललकारते हैं, तब इस प्रकार हाथ मारते हैं ।

मुहा०—ताल ठोकना = लड़ने के लिये ललकारना ।

५. मंजीरा या भीम नाम का बाजा । उ०—ताल भेरि मृदंग बाजत सिंधु गरजन जान ।—चरण० बानी, पृ० १२२ । ६. चश्मे के पत्थर या काँच का एक पल्ला । ७. हस्ताक्षर । ८.

४-५२

तालीश पत्र । ९. ताड़ का पेड़ या फल । १०. बेल । बिल्वफल (अनेकार्थ०) । ११. हाथियों के कान फटफटाने का शब्द । १२. लंबाई की एक माप । वित्ता । १३. ताला । १४. तलवार की मूठ । १५. एक नरक । १६. महादेव । १७. दुर्गा के सिंहासन का नाम । १८. पिंगल में ढगण के दूसरे भेद का नाम जो एक गुरु और एक लघु का होता है—५ । १९. ताड़ की ध्वजा (को०) । २०. ऊँचाई का एक परिमाण (को०) । २१. एक नृत्य (को०) ।

ताल^२—संज्ञा पु० [सं० तल] वह नीची भूमि या लंबा चौड़ा गड्ढा जिसमें बरसात का पानी जमा रहता है । जलाशय । पोखरा । तालाब । उ०—कीन ताल और कीन ढारा । कहँ होइ हंसा करे बिहारा । कबीर मं०, पृ० ५५५ ।

ताल^३—संज्ञा पु० [हि० तार] उपाय । दाय । उ०—वास बिकठ निबला बसे सबल न लागे ताल ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ६६ ।

ताल^४—संज्ञा पु० [सं० ताल] धरण । समथ । उ०—ढाडी गुणी बोलाविया, राजा तिणही ताल ।—ढोला०, पृ० १०५ ।

ताल^५—वि० भी० [सं० उत्तान] ऊँची । उ०—व्याकुल थीं निस्सीम सिंधु की ताल तरंगें ।—अनामिका, पृ० ५६ ।

तालकंद—संज्ञा पु० [सं० तालकन्द] ताल मूली । मूसली ।

तालक^६—संज्ञा पु० [सं० तालक] दे० 'तल्लुक' । उ०—हैं तो एक बालक न मोहि कछु तालक पे देखो तात तुमहें को कैसी लघुताई है ।—हनुमान (शब्द०) ।

तालक^७—संज्ञा पु० [सं०] १. हस्तान । २. ताला । ३. गोपीचंदन । ४. ताड़ का पेड़ या फल (को०) । ५. अग्रहर (को०) ।

तालक^८—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तलक' । उ०—त्रिकुटी संघि नासिका तालक, मुनिनि जाय मयाई ।—चरण०, पृ० ६४ ।

तालकट—संज्ञा पु० [सं०] गृहमंत्रिण के अनुसार दक्षिण का एक देश जो कदाचित् गीजापुर के पास का तालीकोट हो ।

तालकाम^९—संज्ञा पु० [सं०] हरा रंग (को०) ।

तालकाम^{१०}—वि० हरा रंग (को०) ।

तालकी—संज्ञा भी० [सं०] ताली । तालरस ।

तालकूटा—संज्ञा पु० [हि० ताल + कूटा] भीम बजाकर भजन आदि गाना ।

तालकेतु—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जिसकी पनाका पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो । २. भीम । ३. वनराम ।

तालकेशवर—संज्ञा पु० [सं०] एक शीघ्र जो कुष्ठ, फोड़ा फुंसी आदि में दी जाती है ।

विशेष—दो मासे हस्तान में पेड़े के रस, घीकुमार के रस और तिल के तेल की भावना देते हैं । फिर दो मासे गंधक और एक मासे पारे को मिलाकर कज्जली करते और उसमें भावना दी हुई हस्ताल मिलाकर फिर सब में क्रम से बकरी के दूध, नीबू के रस और घीकुमार के रस की तीन दिन भावना देते हैं । अंत में सब का गोल कतरा बनाकर उसे हाँड़ी में धार

के भीतर रख बारह पहर तक पकाते हैं और फिर ठंडा होने पर उतार लेते हैं।

तालकोशा—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तालक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर या ताड़ की चीनी। २. तालरस। ताड़ी (को०)।

तालक्षीरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तालक्षीर' (को०)।

तालखजूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताल + हि० खजूर] केतकी। उ०—तालखजूरी, तृनद्रुमा, केतकि पकरति पाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०५।

तालगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ी (को०)।

तालचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम। २. उक्त देश का निवासी। ३. उक्त देश का राजा (को०)।

तालजंघ—संज्ञा पुं० [सं० तालजङ्घ] १. एक देश का नाम। २. उस देश का निवासी। ३. एक यदुवंशी राजा जिसके पुत्रों ने राजा सगर के पिता असित को राजपुत्र किया था। ४. एक प्रकार का ग्रह (को०)। ५. महाभारत का एक पात्र या नायक (को०)।

तालजटा—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ की जटा (को०)।

तालज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत की तालों का जानकार (को०)।

तालधारक—संज्ञा पुं० [सं०] नर्तक (को०)।

तालध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसकी ध्वजा पर ताड़ के पंख का चिह्न हो। २. भीष्म। ३. बलराम। ४. एक पर्वत का नाम।

तालनवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र शुक्ल नवमी।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ व्रत रखती और तालपात्र आदि से गौरी का पूजन करती हैं।

तालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ का पत्ता।

विशेष—प्राचीन समय में, जब कागज का आविष्कार नहीं हुआ था, ताड़ के पत्ते पर ही लिखा जाता था।

२. एक प्रकार का कान का गहना। तालंक (को०)।

तालपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूली। मुसली।

तालपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूसाक्षी। मूषकपर्शी। मूसाकानी। २. विधवा (को०)।

तालपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कपूरकचरी।

तालपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीफ। २. कपूरकचरी। ३. तालमूली। मुसली। ४. सोया। सोया नाम का साग।

तालपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] पुडरिया। प्रपौष्टीक।

तालप्रलंब—संज्ञा पुं० [सं० तालप्रलम्ब] ताड़ की जटा (को०)।

तालबंद—संज्ञा पुं० [सं० ताल, तालिका + बंध] वह लेखा जिसमें धामदनी की हर एक मद दिखलाई गई हो।

तालवृत्त—वि० [सं०] तालयुक्त (को०)।

तालवृत्तपु—संज्ञा पुं० [सं० ताल + वृत्त (=डंठल)] ताड़। उ०—तालवृत्त फल खाय के दैत हयों नवलाल।—अनेकार्य०, पृ० १३३।

तालवेन—संज्ञा स्त्री० [सं० तालवेणु] एक प्रकार का बाजा।

तालवेताल—संज्ञा पुं० [सं० ताल + वेताल] दो देवता या यक्ष।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने इन्हें सिद्ध किया था और ये बराबर उनकी सेवा में रहते थे।

तालभंग—संज्ञा पुं० [सं० ताल + भङ्ग] गाने और बजाने में ताल स्वर की विषमता।

तालमखाना—संज्ञा पुं० [हि० ताल + मखन] १. एक पोषा जो गीली या मोड़ जमीन में होता है; विशेषतः पानी या दलदलों के निकट।

विशेष—इसकी पतियाँ ५ या ६ अंगुल लंबी और अंगुल सवा अंगुल चौड़ी होती हैं। इसकी जड़ से चारों ओर बहुत सी टङ्ग-नियाँ निकलती हैं जिनमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गूम के पीछे की गाँठों के ऐसी गाँठ होती हैं। इन गाँठों पर काँटे होते हैं। इन्हीं गाँठों पर फूल या बीजों के कोशों के अंकुर होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर गाँठ के कोशों में जीरे के जैसे बीज पड़ते हैं, जो दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में ये बीज मधुर, शीतल, बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा पथरी, वातरक्त, प्रमेह आदि को दूर करनेवाले माने जाते हैं। वात और गठिया में भी तालमखाने के बीज उपकारी होते हैं। डाक्टरों ने भी परीक्षा करके इन्हें मूत्रकारक, बलकारक और जननेंद्रिय संबंधी रोगों के लिये उपकारक बताया है। तालमखाने का पोषा दो प्रकार का होता है—एक जाल फूल का, दूसरा सफेद फूल का। सफेद फूल का अधिक मिलता है। कहीं कहीं इसकी पतियों का साग भी खाया जाता है।

पर्या०—कोकिलाश। कावेधु। क्षुर। क्षुरक। भिक्षु। काष्ठेत्र। इक्षुगंधा। शृगाली। शृगलि। शूरक। शृगालघंटी। वज्रास्थि। शृखला। वनकंटक। वज्र। त्रिशुर। शुक्लपुष्प (सफेद तालमखाना)। ध्वज और अतिध्वज (तालमखाना)। २. दे० 'मखाना'।

तालमर्दल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा (को०)।

तालमूल—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की ढाल।

तालमूलिका—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तालमूली'।

तालमूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुसली।

तालमेल—संज्ञा पुं० [हि० ताल + मेल] १. ताल सुर का मिलान। २. मिलान। मेलजोष। उपयुक्त योजन। ठीक ठीक संयोग।

मुहा०—तालमेल खाना = ठीक ठीक संयोग होना। प्रकृति आदि का मेल होना। बिधि मिलना। मेल पटना। तालमेल बैठना = दे० 'तालमेल खाना'।

३. उपयुक्त अवसर। अनुकूल संयोग। जैसे,—तालमेल देखकर काम करना चाहिए।

तालयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तालयन्त्र] १. चीर फाड़ करने का एक प्राचीन औजार। २. ताला। ३. ताला और चाबी (को०)।

तालरंग—संज्ञा पुं० [सं० तालरङ्ग] एक प्रकार का बाजा जिसमें ताल दिया जाता है।

तालरस—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ के पेड़ का मय । ताड़ी । उ०—ताल-
रस बलराम चाख्यो मन भयो धानंद । गोपसुत सब टेढ़ि
लीन्हें सुधि भई नैननद ।—सूर (शब्द०) ।

तालरेचनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नर्तक । २. अभिनेता (को०) ।

तालरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] तालवृक्ष, बलराम ।

तालवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ के पेड़ों का जंगल । २. व्रज
मंडल के अंतर्गत एक वन जो गोवर्धन के उत्तर जमुना के
किनारे पर है । कहते हैं, यहीं पर बलराम ने धेनुकवध
किया था । उ०—सखा कहन लागे हरि सों तब । चलो
तालवन की जेये सब ।—सूर (शब्द०) ।

तालवाही—संज्ञा पुं० [सं०] वह बाजा जिससे ताल दिया जाय ।
जैसे, मंजीरा, भाँक आदि ।

तालवृंत—संज्ञा पुं० [सं० तालवृत्त] १. ताड़ के पत्ते का पंख । उ०—
ठहर मरी, इस हृदय मे लगी विरह की धाग । तालवृंत से
घोर भी अधक उठेगी जाग ।—साकेत, पृ० २६६ । २. एक
प्रकार का सोम ।—(सुश्रुत) ।

तालवृत्तक—संज्ञा पुं० [सं० तालवृत्तक] दे० 'तालवृत्त' (को०) ।

तालव्य—वि० [सं०] १. तालु संबंधी । २. तालु से उच्चारण किया
जानेवाला वर्ण ।

विशेष—इ, ई, अ, छ, ज, झ, ञ, य, ष - ये वर्ण तालव्य
कहलाते हैं ।

तालसंपुटक—संज्ञा पुं० [सं० ताल + संपुटक] ताड़ के पत्ते की बनी
हुई भाँपी जो फल आदि रखने के काम आती है । उ०—
हे तात, तालसंपुटक तनिक ले लेना । बहनों को वन उपहार
पुके है देना ।—साकेत, पृ० २४६ ।

तालसाँस—संज्ञा पुं० [सं० ताल + सं० साँस (= गूदा)] ताड़ के फल के
बीतर का गूदा जो खाने के काम आता है ।

तालस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० तालस्कंध] एक अस्त्र जिसका नाम
वाल्मीकि रामायण में आया है ।

तालांक—संज्ञा पुं० [सं० तालाङ्क] १. वह जिसका चिह्न ताड़ हो ।
२. बलराम । ३. एक प्रकार का साग । ४. आरा । ५. गुह-
लक्षणवान् मनुष्य । ६. पुस्तक । ७. महादेव । ८. ताड़पत्र जो
लिखने के काम आता था (को०) ।

तालाङ्कुर—संज्ञा पुं० [सं० तालाङ्कुर] मैनसिल ।

ताला—संज्ञा पुं० [सं० ताल] लोहे, पीतल आदि की वह कल जिसे
बंद किवाड़, संदूक आदि की कुंजी में फँसा देने से किवाड़
या संदूक बिना कुंजी के नहीं खुल सकता । कपाट अवरोध
रखने का यंत्र । जंदरा । कुल्फ ।

क्रि० प्र०—खुलना । —खोलना । —बंद होना । —करना ।
—लगना । —लगाना ।

बौ०—ताला कुंजी ।

मुहा०—ताला जकड़ना = ताला लगाकर बंद करना । ताला
तोड़ना = किसी दुसरे की वस्तु को चुराने या छुटने के लिये
उसके घर, संदूक आदि में अग्रे हुए ताले को तोड़ना । ताला
भिड़ना । ताला बंद होना । ताला भेड़ना = ताला लगाना ।

ताला^(१)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ताल । उ०—बिनहीं ताला ताल
बजावे ।—कबीर ग्रं०, पृ० १४० ।

ताला—संज्ञा पुं० [प्र० ताले] माय । उ०—मेरे ताले केरा आया
सो एक भार । यहायक भाँककर देखे मुँज नार ।—दक्खिनी
पृ० २८२ ।

ताला—संज्ञा पुं० [देश०] उरखान । छाती का कवच । उ०—तोरत
रिपु ताले आले आले रुधिर पनाले चालत हैं ।—पद्माकर
ग्रं०, पृ० २७ ।

ताला^(२)—संज्ञा स्त्री० [?] देरी । उ०—वाहे दुरग तर्क तजि
ताला ।—रा० रू०, पृ० ३४४ ।

तालाकुंजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताला + कुंजी] १. किवाड़, संदूक,
आदि बंद करने का यंत्र ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. लड़कों का एक खेल ।

तालाखया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूरकचरी ।

तालापचर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तालावचर' (को०) ।

तालाव—संज्ञा पुं० [हिं० ताल + फा० आब, अथवा सं० तडाग, प्रा०
तलाय, तलाव, हिं० तालाव] जलाशय । मरोवर । पोखरा ।

तालावेलि^(१)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] व्याकुलता । तड़पन । पीड़ा ।
उ०—तालावेलि होन घट भीतर, जैसे जन बिन मीन ।—
कबीर सा०, भा० २ पृ० ६२ ।

तालावेलिया—संज्ञा पुं० [हिं० तालावेलि] तड़पने या छटपटानेवाला
व्यक्ति । विन्ही पुष । उ०—जा घट तालावेलिया, ताकी
लावो सोषि ।—कबीर सा० सं०, पृ० ४० ।

तालावेली^(२)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तालावेलि' । उ०—दादू
साहिब कारण, तालावेली मोहि ।—दादू०, पृ० ३७८ ।

तालावचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. नर्तक । २. अभिनेता (को०) ।

तालिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. फँसी हुई हथेली । २. चरत । तमाचा ।
३. नत्थी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र
या कागज बंधे हों । ४. तालपत्र या कागज का पुलिदा ।
५. ताली । करतल की छवि (को०) ।

तालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ताली । कुंजी । २. नत्थी या तागा
जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज अलग अलग
बंधे हों । तालपत्र या कागज का पुलिदा । ३. नीचे ऊपर
लिखी हुई वस्तुओं का क्रम । नीचे ऊपर लिखे हुए नाम जिनमें
अलग अलग चीजें गिनाई गई हों । सूची । फेहरिस्त । ४.
चपत । तमाचा । ५. ताल मूली । मुसली । ६. मजीठ ।

तालिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. रंगीन कपड़ा । २. वाद्य । बाजा । ३.
रस्सी । डोरी (को०) ।

तालिब—संज्ञा पुं० [प्र०] १. हूँड़नेवाला । तलाश करनेवाला ।
चाहनेवाला । २. शिष्य । चेला । उ०—तालिब मतलूब को
पहुँचै तोफ करे दिल मंदर ।—कबीर सा०, पृ० ८८८ ।

तालिबदुल्लभ—संज्ञा पुं० [प्र०] विद्यार्थी ।

तालिबा^(३)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तालिब' । उ०—कबीरा

तालिबा तेरा । किया दिल बीच में डेरा ।—कबीर श०,
भा० १, पृ० ६५ ।

तालिम^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तल्प] शय्या । बिस्तर । (हि०) ।

तालिमागार—संज्ञा पुं० [हि० ताली+मारना] जहाज या नाव का
अगला भाग जो पानी काटता है । गलही ।—(लश०) ।

तालिश—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ [को०] ।

ताली^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोहे की वह कील जिससे ताला
खोला और बंद किया जाता है । कुंजी । चाबी । उ०—तरक
ताली खुले ताला !—घट०, पृ० ३७० । २. ताड़ी । ताड़ का
मध्य । ३. तालमूनी । मुमली । ४. भूमिवला । भूम्यामलकी ।
५. अरहर । ६. ताम्रवल्ली लता । ७. एक प्रकार का छोटा
ताड़ जो बंगाल और बरमा में होता है । बजरबट्ट । बट्ट ।
उ०—ताली तृनद्रुम केतकी खखरी यह आहि ।—अनेकार्थ०,
पृ० २२ । ८. एक वनस्पति । ९. मेहराब के बीचोबीच का
पत्थर या ईंट । १०. दोनों फेनी हुई हथेलियों को एक दूसरी
पर मारने की क्रिया । करतलों का परस्पर घाघात । थपेड़ी ।
उ०—रानी नीलदेशी ताली बजानी है । तंबू फाड़कर शस्त्र
खींचे हुए कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं ।—भारतेन्दु
श०, भा० १, पृ० ५४६ ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—बजाना ।

मुहा०—ताली पीटना या बजाना = हँसी उड़ाना । उपहास
करना । ताली बजाना = उपहास होना । निरादर होना ।
एक हाथ से ताली नहीं बजती = बेर या प्रीति एक धोर से
नहीं होती । दोनों के करने में बड़ाई अगड़ा या प्रेम का
व्यवहार होता है ।

११. दोनों हथेलियों को फेलाकर एक दूसरे पर मारने से उत्पन्न
शब्द । करतलध्वनि । १२. नृत्य का एक भेद ।

विशेष—मृदंगी दड्डिका ताली कहलाया जाता है । नृत्य गीत
प्रबंध का अष्टांगो नृत्य उच्यते ।—पृ० २१०, २५ । १२ ।

ताली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ताल (= प्रमाण)] छोटा ताल । तलैया ।
गड्ढी । उ०—फरह कि कोदक बालि सुसाली । मुकता प्रसव
कि संबुक्त ताली ।—तुलसी (शब्द०) ।

ताली^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] पैर की बिल्ली उंगली का धोर या
ऊपरी भाग ।

ताली^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] समाधि गारी । उ०—(क) सुले सुधि
बुधि ज्ञान स्थान सो लागी ताली ।—ब्रज० श्र०, पृ० १५ ।
(ख) जुग पानि नाभि ताली लगाय । रवि द्रष्टि द्रष्टि गिरि
बंध राय ।—पृ० २१०, १ । ४८६ ।

ताली^५—संज्ञा पुं० [सं० तालिन्] शिव [को०] ।

तालीका—संज्ञा पुं० [सं० तालिका] १. माल घमनाश की जन्ती ।
मकान की कुर्ची । २. कुर्ची किए हुए अगवाश की फिहरिस्त ।
३. परिशिष्ट [को०] ।

तालीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तालीश पत्र ।

तालीम—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिक्षा । अभ्यासार्थ उपदेश । जैसे,—
उसकी तालीम अच्छी नहीं हुई है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—लेना ।

तालीशपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल या तेजपत्ते की जाति का
एक पेड़ ।

विशेष—यह हिमालय पर सिंध से सतलज तक थोड़ा बहुत छोटा
उससे पूर्व सिक्किम तक बहुत अधिक होता है । घासाम से
खमिया की पहाड़ियों से लेकर बरमा तक इसके पेड़ पाए
जाते हैं । इसके पत्ते एक लंबे डंठल के दोनों धोर लगते हैं
धोर तेजपत्ते से लंबे होते हैं । डंठल में खसूर की तरह चौकोर
खाने से होते हैं । इसकी लकड़ी बहुत खरी होती है । पत्ते
बाजारों में तालीशपत्र के नाम से बिकते हैं और दवा के काम
में आते हैं । वैद्यक में तालीशपत्र मधुर, गरम, कफवातनाशक
तथा गुल्म, क्षय रोग और खांसी को दूर करनेवाला माना
जाता है ।

पर्या०—धात्रीपत्र । शुकोदर । प्रथिकापत्र । तुलसीछद ।
अर्कबंध । पत्राख्य । करिपत्र । करिच्छद । नील । नीलांबर ।
तालीपत्र । तमाह्वय ।

२. बो डार्ई हाथ ऊँचा एक पोधा जो उत्तरी भारत, बंगाल तथा
समुद्र के किनारे के देशों में होता है ।

विशेष—यह भूमिवला की जाति का है । इसकी सुखी पत्तियाँ
भी दवा के काम में आती हैं । इसे पनिया आमला भी कहते
हैं । इसका पोधा भूमिवले से बड़ा और बिलबिल से मिलता
जुलता होता है ।

तालीशपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालीशपत्र ।

तालु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तालव्य] तालू ।

तालुकटक—संज्ञा पुं० [सं० तालुकटक] एक रोग जो बच्चों के तालू
में होता है ।

विशेष—इसमें तालू में कटि से पड़ जाते हैं और तालू धँस
जाता है । इसके कारण बच्चा स्तन बढ़ी कठिनाई से पीता
है । जब यह रोग होता है, तब बच्चे को पतले दस्त भी
आते हैं ।

तालुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तालू । २. तालू का एक रोग [को०] ।

तालुका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालू की नाड़ी ।

तालुका^२—संज्ञा पुं० [सं० तमल्लुकह्] दे० 'तमल्लुका' ।

तालुज—वि० [सं०] तालू से उत्पन्न [को०] ।

तालुजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] चड़ियाल ।

तालुपाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें गरमी से तालू पक
जाता है और उसमें घाव सा हो जाता है ।

तालपुप्पुट—संज्ञा पुं० [सं०] तालुपाक रोग ।

तालुशोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालू सूख जाता है
और उसमें फटकर घाव से हो जाते हैं ।

तालू—संज्ञा पुं० [सं० तालू] १. मुँह के भीतर की ऊपरी छत
जो ऊपरवाले दाँतों की पंक्ति से लेकर छोटी जीभ या कीबे
तक होती है ।

विशेष—इसका ठीका कुछ दूर तक तो कड़ी हड्डियों का होता है उसके पीछे फिर मुलायम मांस की तहों के कारण कोमल होता है, जो नाक के पीछेवाले कोश और मुखविवर के बीच एक परदा सा जान पड़ता है।

मुहा०—तालु उठाना = तुरंत के जनमें हुए बच्चे के तालु को दबाकर ठीक करना। (दाइयाँ या चमारिनें यह काम करती हैं)। तालु में दाँत जमना = घट्ट आना। बुरे दिन भाना।

विशेष—प्रायः क्रोध में दूसरे के प्रति लोग इस वाक्य का व्यवहार करते हैं। बच्चों को तालु में काँटा या भँकुर सा निकल आता है जिसे तालु में दाँत निकलना कहते हैं। इसमें बच्चों को बड़ा कष्ट होता है।

तालु जटकना = रोग के कारण तालु का नीचे लटक आना। तालु से जीभ न लगना = चुपचाप न रहना जाना। बके जाना।

२. जोपड़ी के नीचे का भाग। दिमाग।

मुहा०—तालु चटकना — (१) सिर में बहुत अधिक गरमी जान पड़ना। (२) प्यास से मुँह सूखना। जैसे,—प्यास से तालु चटकना।

३. घोड़े का एक ऐब।

तालुफाङ्क—संज्ञा पुं० [हि० तालु + फाङ्कना] हाथियों का एक रोग जिसमें हाथी के तालु में घाव हो जाता है।

तालूर—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर [को०]।

तालुषक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तालु' [को०]।

तालेवर—वि० [प्र० ताला (= भाग्य) + फा० वर (प्रत्य०)] बनाद्वय। मनी।

ताल्लुक—संज्ञा पुं० [त० तमल्लुक] संबंध। लगाव। उ०—हमारे ताल्लुक भलेमानुस शरीरों से हैं। हमने ऐसे एक एक दफे के बस बस दपए लिए हैं।—ज्ञानदान, पृ० १२६।

ताल्लुका—संज्ञा पुं० [प्र० तमल्लुक] दे० 'तमल्लुक'।

ताल्लुकात—संज्ञा पुं० [प्र० तमल्लुक का बहुव०] संबंध। मेल जोख [को०]।

ताल्लुकेदार—संज्ञा पुं० [प्र० तमल्लुक + फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तमल्लुकेदार'।

ताल्लुबुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालु में कमल के आकार का एक बड़ा सा भँकुर या काँटा सा निकल आता है जिसमें बहुत पीड़ा होती है।

ताव—संज्ञा पुं० [सं० ताप, प्रा० ताव] १. वह गरमी जो किसी वस्तु को तपाने या पकाने के लिये पहुँचाई जाय।

क्रि० प्र०—लगना।

यो०—तावबंद। ताव भाव।

मुहा०—(किसी वस्तु में) ताव भाना = (किसी वस्तु का) जितना चाहिए, उतना गरम हो जाना। जैसे,—घभी ताव नहीं आया है, पूरियाँ कड़ाही में मत शालो। ताव खाना = (१) भाँच में गरम होना। (२) आवेष्ट में भाना। कुछ हो जाना। ताव खा जाना = (१) भाँच पर चढ़े हुए कड़ाहे के घी,

चाशनी, पाग इत्यादि का आवश्यकता से अधिक गरम हो जाना। किसी पाग या पकवान आदि का कड़ाह में जल जाना। जैसे, चाशनी का ताव खा जाना, पाग का ताव खा जाना ३. किसी खोनाई, तपाई या पिघनाई हुई वस्तु का आवश्यकता से अधिक ठंडा होना। दे० 'ताव खाना'। ताव देखना = भाँच का मंदाज देखना। ताव देना = (१) भाँच पर रखना। गरम रखना। (२) भान में लाना करना। तपाना। —(घातु आदि का) ताव बिगड़ना - पाने में भाँच का कम या अधिक हो जाना (जिन्हे कोई वस्तु बिगड़ जाय)। मूछों पर ताव देना = सफलता आदि के अभिमान पर मूछें ऐँठना। पराक्रम, बल आदि के घमंड में मूछों पर हाथ फैलना।

२. अधिकार मिले हुए क्रोध का आवेश। घबड़ातप हुए गुस्से की झोंक।

मुहा०—ताव दिखाना = अभिमान बिना हुआ क्रोध प्रकट करना। बडप्पन दिखाते हुए बिगड़ना। भाँच दिखाना। ताव में भाना = अभिमान पिले हुए क्रोध के आवेश में होना। अहंकार मिश्रित क्रोध के बश में होना। जैसे,—ताव में आकर कहीं मेरी चीजें भी न फेंक देना।

३. अहंकार का वह आवेश जो किसी के बढ़ावा देने, नुस्कारने आदि से उत्पन्न होता है। शोषी की झोंक। जैसे,—ताव में आकर इतना बड़ा लिख जो दिय, पर दोगे कहीं से? ४. किसी वस्तु के तत्काल होने की घोर इच्छा या उत्कंठा। ऐसी इच्छा जिसमें उतावलापन हो। चटपट होने की चाह या आवश्यकता। उ०—वीछुण्णा सावण मिल्ह, गलि किड ताठव ताव।—ढोला०, पृ० ५५६।

मुहा०—ताव चड़ना = (१) प्रबल इच्छा होना। ऐसी इच्छा होना कि कोई बात चटपट हो जाय। (२) कामोद्दीप्त होना। ताव पर = जब इच्छा या आवश्यकता हो, उसी समय। जरूरत के मोके पर। जैसे,—तुम्हारे ताव पर तो रुपया नहीं मिल सकता।

ताव—संज्ञा पुं० [फा० ता (= संख्या)] कागज का एक तक्ता। जैसे, चार ताव कागज।

तावड़ियाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० ताव, प्रा० ताव + डी (प्रत्य०)] घाम। धूप। उ०—सूखे जेठ मंझार सर तीखा तावड़ियाँ ह। बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० १६।

तावण—वि० [सं० तावान्] तितना। उतना। उ०—तिल ज्यों घाली पीछिए तावण तत्ते तेल।—प्राण०, पृ० २५५।

तावत्—क्रि० वि० [सं०] १. उतने काल तक। उतनी देर तक। तब तक। २. उतनी दूर तक। वहाँ तक। ३. उतने परिमाण तक। उतने तक।

विशेष—यह 'भावत्' का संबंधपूरक शब्द है।

तावतम—संज्ञा पुं० [हि० ताव + तमन् ताँम] आवेश। क्रोध। गुस्सा। उ०—दासी सु तोप लखि ताव ताम।—ह० रासी, पृ० १०८।

तावदार—वि० [हि० ताव + फा० दार] १. वह (व्यक्ति)

बिसमें ताब हो। जो आवेश में आकर या साहसपूर्वक काम करता हो। २. (वस्तु) जो कड़ी और सुंदरता लिए हुए हो।

ताबना^④—क्रि० सं० [सं० तापन] १. तपाना। गरम करना।
उ०—प्रतन तनक ही में तापन तें तावैगो।—भारतेंदु प्र०,
भा० १, पृ० ३७६। २. जलाना। ३. संताप पहुँचाना। दुःख पहुँचाना। डाहना।

तावबंद—संज्ञा पुं० [हिं० ताव + फ्रा० बंद] वह धोपव जिसके प्रयोग से चाँदी का छोटा तन तपाने पर भी प्रवृत्त न हो।

तावभाव^३—वि० थोड़ा सा। जरा सा। हल्का सा।

तावर^④—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तावरी'।

तावरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव + री (प्रत्य०)] १. ताप।
डाह। जलन। उ०—फिरत ही उतावरी लगत नहीं तावरी।
—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ४८०। २. धूप। घाम। घातप।
३. बुझार। उबर। हारत। ४. गरमी से आया हुआ चक्कर।
मूर्छा।

क्रि० प्र०—आना।

तावरो^④—संज्ञा पुं० [हिं० ताव + रा (प्रत्य०)] १. ताप। डाह।
जलन। २. सूर्य की गरमी। धूप। घाम। घातप। उ०—
मैं जमुना जल भरि घर आवति मो को लागे तावरो।—धूर
(शब्द०) ३. गरमी से आया हुआ चक्कर। घमेर। मूर्छा।

क्रि० प्र०—आना।

तावना^④—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताव] जलन। उतावलापन। हड़न।
तावा—संज्ञा पुं० [हिं० ताव] १. दे० 'तवा'। २. वह कच्चा लपड़ा
या थपुआ जिसके किनारे थोड़े मोड़े न गए हों। ३. तवा।

तावर—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी। प्रत्यंचा [को०]।

तावान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. वह चीज जो नुकसान भरने के लिये
थी या ली जाय : क्षतिपूर्ति। नुकसान का मुभावजा। २.
अर्थदंड। डंड।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

३. वह धन या सामान आदि जो द्वारा हुआ राष्ट्र विजेता को
देना है [को०]।

यौ०—तावाने जग = युद्ध की क्षतिपूर्ति जो पराजित राष्ट्र को
करनी पड़ती है।

तावाना^④—क्रि० सं० [सं० ताप, हिं० तावना] धाँच में ताप देना।
अग्नि में तपाना। दे० 'तावना'। उ०—ठुक ठुक करिके गढ़े
ठठरा बार बार तावाई। वा मरत के रही भरोसे, गच्छिना
धरम नसाई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ५४।

ताविष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तावीष'।

ताविषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवकन्या। २. नदी। ३. पृथिवी।
४. समुद्र [को०]। ५. स्वर्ग [को०]। ६. सोना। सुवर्ण [को०]।

तावीज—संज्ञा पुं० [सं० तावीज] १. यंत्र, मंत्र या कवच जो
किसी संपुट के भीतर रखकर गले में या बाँह पर पहना
जाय। रक्षाकवच। कवच। उ०—यंत्र मंत्र जती करि लागे,

करि तावीज गले पहिराए।—कबीर सा०, पृ० ४४।
२. सोने, चाँदी, ताम्र आदि का चौकोर या अष्टपुष्पाकार
या चिपटा संपुट जिसे तागे में लगाकर गले या बाँह
पहनते हैं। जंतर।

विशेष—ये संपुट यों ही गहने की तरह भी पहने जाते हैं।
इनके भीतर यंत्र भी रहता है।

मुहा०—तावीज बाँधना = रक्षा के लिये देवता का नाम
लिखकर बाँधना। कवच बाँधना।

३. कब्र पर बना हुआ ईंटों या पत्थर का निशान [को०]।
का एक आभूषण [को०]।

तावीत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्पष्टीकरण। २. किसी बात का प्रत्यक्ष
अर्थ से हटकर दूसरा अर्थ। ३. किसी बात का ऐसा अर्थ जो
जो लगभग ठीक जान पड़े। ४. स्वप्नफल कहना [को०]।

तावीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। स्वर्ण। २. स्वर्ग। ३. समुद्र।

तावीपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ताविषी' [को०]।

तावुरि—संज्ञा पुं० [यूनी टारस] वृष राशि।

ताश—संज्ञा पुं० [सं० तास (= उश्त या चौडा बरतन)] १. एक प्रकार
का जरदोजी कपड़ा जिसका ताना रेशम का और बाना ऊँस
का होता है। जरवपत। २. खेलने के लिये मोटे बाने का
चौखूँटा टुकड़ा जिसपर रंगों की बूटियाँ या तसवीरें बना
रहती हैं। खेलने का पत्ता।

विशेष—खेलने के ताश में चार रंग होते हैं—हृक्म, चिड़ी, पाँस
और ईंट। एक एक रंग के तेरह तेरह पत्ते होते हैं। एक प
दस तक तो बूटियाँ होती हैं जिन्हें क्रमशः एकका, दुक्का
(या दुहो), तिक्की, चौकी, पंजी, छक्का, सत्ता, अठ्ठा
नहसा और बहसा कहते हैं। इनके प्रतिरिक्त तीन पत्ते
क्रमशः गुलाम, बीबी और बादशाह की तसवीरें होती हैं।
इस प्रकार प्रत्येक रंग के तेरह पत्ते और सब मिलाकर बावन
पत्ते होते हैं। खेलने के समय खेलनेवालों में ये पत्ते उलटकर
बराबर बाँट दिए जाते हैं। साधारण खेल (रगमार) में
किसी रंग की अधिक बूटियोंवाला पत्ता उसी रंग की कम
बूटियोंवाले पत्ते को मार सकता है। इसी प्रकार बहले को
गुलाम मार सकता है और गुलाम को बीबी, बीबी को
बादशाह और बादशाह को एकका। एकका सब पत्तों को मार
सकता है। ताश के खेल कई प्रकार के होते हैं जैसे, ट्रंप
गन, गुलामचोर इत्यादि।

ताश का खेल पहले किस देश में निकला, इसका ठीक पता
नहीं है। कोई मिस्र देश को, कोई काबुल को, कोई भारत को
और कोई भारतवर्ष को इसका आविष्कार बतलाता है।
फारस और भारत में गंजीके का खेल बहुत दिनों से प्रचलित
है जिसके पत्ते कपड़े के आकार के गोल गोल होते हैं। इसी
से उन्हें ताश कहते हैं। प्रकबर के समय हिंदुस्तान में जो
ताश प्रचलित थे, उनके रंगों के नाम और थे। जैसे, अश्वपति
गजपति, नरपति, गहपति, दलपति इत्यादि। इनमें छोड़े,
हाथी आदि पर सवार तसवीरें बनी होती थीं। पर आजकल
जो ताश खेले जाते हैं वे यूरप से ही आते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना ।

१. ताश का खेल । ४. कड़े कागज या दपती की चकती जिस-
पर सीने का तागा लपेटा रहता है ।

ताशा—संज्ञा पु० [अ० तास] चमड़ा मड़ा हुआ एक बाजा जो गले
में लटकाकर दो पतली लकड़ियों से बजाया जाता है ।

विशेष—यह धूमधाम सूचित करने के लिये ही बजाया जाता है ।

तास^१—संज्ञा पु० [फ्रा०] १. एक सुनहरे तारों का जड़ाऊ कपड़ा ।

उ०—ये तास का सब वस्त्र पहने थी और मुँह पर भी तास
का लकाब पड़ा हुआ था ।—मारतेंदु प्र०, भा० ३, पृ० १८८ ।

२. बड़ा तश्त । पराती (को०) । ३. वह कटोरा जो जलघड़ी
की नाव में पड़ता था (को०) ।

तास^२—सर्व० [हि०] दे० 'तासु' । उ०—मनल पंथि उड़ि चढ़ि
माकाश, थकित मई हूँ छोर न तास ।—सुंदर प्र०, भा० २,
पृ० ८४८ ।

तासन^१—क्रि० प्र० [हि०] १. व्यासना । २. व्यास के कारण कंट
सुख जाने से ताव खा जाना ।

तासला—संज्ञा पु० [देश०] वह रस्सी जिसे भालुओं को बचाने के
के समय कलंवर उनके गले में डाले रहते हैं ।

तासा^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ताशा' ।

तासा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + कर्ष, अथवा देश०] तीन बार की
जोती हुई भूमि ।

तासा^३—वि० [हि०] तुषित । व्यासा । जैसे, पियासा तासा ।

तासीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] असर । प्रभाव । गुण । जैसे,—बवा की
तासीर, सोहबत की तासीर । उ०—जिसके दर्द दिन में कुछ
तासीर है । गर जवाँ भी है तो मेरा नीर है ।—कविता०
को०, भा० ४, पृ० २८ ।

तासु^१—सर्व० [सं० तस्य अथवा हि० ता + सु (प्रत्य०)] उसका ।

तासु^२—सर्व० [हि०] दे० 'तासी' ।

तासी^१—सर्व० [हि० ता + सी (प्रत्य०)] उससे ।

तासी^२—सर्व० [हि०] दे० 'तासी' ।

तास्कर्य—संज्ञा पु० [सं०] चोरी (को०) ।

ताहम—अव्य० [फ्रा०] तो भी । तिस पर भी । उ०—ताहम मेरा
यह बावा जरूर है कि मेरे हँस डीले डीले नहीं होते ।—कुंकुम
(सं०), पृ० १६ ।

ताहारा^१—सर्व० [हि० तुम्हारा] तेरा । तुम्हारा । उ०—मीत
हमारा भव गियारा, ताहारा रंगनी राती ।—दादू०, पृ० ५२२

ताहरी^१—सर्व० स्त्री० [हि०] दे० 'ताहारा' । उ०—करणी ताहरी
सोघसी, होसी रे सिर हेलि ।—दादू०, पृ० ५३६ ।

ताहूँ^१—सर्व० [हि० ताहारा] तेरा । तुम्हारा । तबोय । उ०—
माहूँ सूँ भापूँ ताहूँ छै तू नै भापूँ ।—दादू०, पृ० ६७२

ताहरी^२—सर्व० [हि० ताहारा] तिसका । उसका । उ०—दुहो
पवाड सुजस ताहरी के मरसी के मारे ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ८४४ ।

ताही^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ताही' । उ०—जहाँ तोहे ताही घस-
सान, पढ़य पेल्लिघ सुजकु फरमान ।—कीर्ति०, पृ० ५८ ।

ताहि^१—सर्व० [हि० ता + हि (प्रत्य०)] उसको । उसे । उ०—
काहिक सुंदरि के ताहि जान । भाकुल कए गेलि हमर परान ।
—विद्यापति, पृ० १७६ ।

ताही^२—अव्य० [हि०] दे० 'ताई', 'तई' ।

ताही^३—सर्व० [हि०] दे० 'ताहि' । उ०—परम प्रेम पद्धति इक
छाही । 'नंद' जगामति बरनत ताही ।—नंद० प्र०,
पृ० ११७ ।

ताहूँ^१—सर्व० [हि० ताहि] निसे भी । उसको भी । उ०—जहाँ
बन्य सौँ गौर को उपमा बचन न होय । ताहूँ कहत प्रतीप हूँ
कवि कोविद सब कोय ।—मति० प्र०, पृ० ३७३ ।

तिडुक^१—संज्ञा पु० [? अथवा कोन (परि०)] तमाल । उ०—कालबंद,
माषिछ पुनि, तिडुक सहज तमाल ।—नंद० प्र०, पृ० १०३ ।

तितिड़—संज्ञा पु० [सं० तित्तिड] १. इमली का पेड़ या फल । २.
इमली की चटनी (को०) । ३. एक राक्षस (को०) ।

तित्तिड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिड़िका] १. इमली । २. इमली की
चटनी (को०) ।

तिताड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिडीक] १. इमली । २. इमली की
चटनी (को०) ।

तितिड़ोक—संज्ञा पु० [सं० तित्तिडीक] १. इमली । २. इमली की
चटनी (को०) ।

तितिड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिडीका] १. इमली । २. इमली की
चटनी (को०) ।

तितिड़ीयत—संज्ञा पु० [सं० तित्तिड़ी + यत] एक प्रकार का जुआ
जो हाथ में इमली के बीज लेकर खेला जाता है (को०) ।

तिनिरांग—संज्ञा पु० [सं० तिनिराङ्ग] इसपात । बज्रलोह ।

तितिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिलिका] दे० 'तितिड़िका' ।

तितिली—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिली] दे० 'तितिड़ी' ।

तितिलीका—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिलीक] इमली (को०) ।

तिदिश—संज्ञा पु० [सं० तित्तिश] टिडसी नाम की चरमारी । डंडसी ।

तिदु^१—संज्ञा पु० [सं०] तेंदू का पेड़ ।

तिदु^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तिदुघा' । उ०—व्याघ्रतिदु रिछ बाल
मंग.बहु । अवर डोर ईहामृग त्यावहु ।—प० रासो०, पृ० १७ ।

तिदुक—संज्ञा पु० [सं० तित्तिडुक] १. तेंदू का पेड़ । २. कर्षप्रमाण ।
दो तोल ।

तिदुकतीर्थ—संज्ञा पु० [सं० तित्तिडु तीर्थ] ब्रजमंडल के संतर्गन एक
तीर्थ ।

तिदुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिडुकी] तेंदू का पेड़ ।

तिदुकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तित्तिडुकिनी] आवातंकी । अगवत
बत्ती ।

तिदुल—संज्ञा पु० [सं० तित्तिडुल] तेंदू का पेड़ ।

तिस^१—वि० [सं० तिश] दे० 'तीस' । उ०—तिस सहस्र हिदुब
चमू, विस सहस्र पट्टान ।—प० रासो०, पृ० १३४ ।

तिवाल^५—संज्ञा पुं० [हि० तमाया, तमारा] चक्कर । उ०—आवे लोही ईखियाँ, तन ज्या मड़ा तिवाल ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० २३ ।

ति^५—वि० [ग० सदा या त] वह । उ०—ति न नगरि ना नागरी, प्रति पद हंसक हीन । केषव (शब्द०) ।

तिअ^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिय' । उ०—रामचरित चिंता-मनि चारु । संत मुमति तिअ मुभग सिगारु ।—मानस १। १२ ।

तिआ^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिया' ।

तिआगी^५—वि० [हि०] दे० 'त्यागी' । उ०—बलि श्री विक्रम दानि बड़ा अहे । हेतम करन तिआगी कहे ।—जायसी प्र०, (गुप्त), पृ० १३१ ।

तिआस^५—सर्व० [हि० ता] वा । उधे । उ०—ज्यों आया ह्यो जायसी जम सहहि तिआस सहाम ।—प्राण०, पृ० २५२ ।

तिआहा^५—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविवाह] १. तीसरा विवाह । २. वह पुरुष जिसका तीसरा व्याह हो रहा हो ।

तिआह^५—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + पञ्च] वह आठ जो किसी की पृत्य के पतालीसों दिन किया जाता है ।

तिउरा^५—संज्ञा पुं० [देश०] सेना की नाम का कदम । केसारी ।

तिउरा^५—संज्ञा पुं० [देश०] एक पोषा जिसके बीजों से तेल निकाला जाता है जो जलाने के काम आता है ।

तिउरी^५—संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी । सेसारी ।

तिउरी^५—संज्ञा [हि०] दे० 'त्योरी' । उ०—तिरछी तिउरी देख दुहारी । प्रेमपन०, भा० १, पृ० १६१ ।

तिउहारी^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार' । उ०—सखि मानें तिउहार मनु, गाढ़ देवारी खेल । हूँ का गावों कंत बिनु, रही द्वार सिर पेलि ।—जायसी (शब्द०) ।

तिए^५—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तितना' । उ०—बियो धरहुन अंग हस्तो प्रकारं । तिए नात के नग्न लिखे सुधारं ।—पु० रा०, २१। ११६ ।

तिकट^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकठी' । उ०—जाय तन तिकट पर डारा । जदन तन बीच से मारा ।—संत तुरसी०, पृ० ४८ ।

तिकड़म^५—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + क्रम] १. चाय । चम्पन । उ०—मानो श्री जलमाल जो को इसी तिकड़म के हेतु फोट विविधम बालक में चाकरी मिली थी ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ८५ । २. तरकीब । उपाय ।

तिकड़मबाज^५—वि० [हि० तिकड़म + फा० बाज] दे० 'तिकड़मी' । तिकड़मी वि० [हि० तिकड़म] १. तिकड़मबाज । चालाक । होशियार । २. धोखेबाज । धूर्त ।

तिकड़ी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + कड़ी] १. जिसमें तीन कड़ियाँ हों । २. चारपाई आदि की वह बुनावट जिसमें तीन रस्सियाँ एक साथ हों ।

तिकड़ी^५—वि० तीन कड़ी या लड़ीवाली ।

तिकतिक^५—संज्ञा स्त्री० [धनु०] सवारी में पशुओं को हँकने के लिये किया जानेवाला शब्द ।

विशेष—बच्चे जाँघों के बीच में एक लकड़ी से जाते हुए पकड़ लेते हैं और उसे घोड़ा मानकर तथा अपने को सवार मानकर 'तिक तिक घोड़ा' कहते हुए खेलते हैं ।

तिकानी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + कान] वह तिकोनी लकड़ी जो पहिए के बाहर घुरी के पास पहिए की रोक के लिये लगी रहती है ।

तिकारा^५—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + कार] खेत की तीसरी जोटाई ।

तिकुरा^५—संज्ञा पुं० [हि० तीन + कुरा] फसल की उपज की तीन बराबर बराबर राशियाँ जिनमें से एक जमींदार लेता है ।

तिके^५—सर्व० [हि० ति] वे । उ०—देह जिकण वार्ता श्री दोई, तिके सदाई तीखा ।—रघु० क०, पृ० २४ ।

तिकोन^५—वि० [सं० त्रिकोण] दे० 'तिकोना' । उ०—बाँस पुराना साज सब भटपट सरल तिकोन खटोला रे ।—तुलसी (शब्द०) ।

तिकोन^५—संज्ञा पुं० दे० 'त्रिकोण' ।

तिकोना^५—वि० [सं० त्रिकोण] [वि० स्त्री० तिकोनी] जिसमें तीन कोने हों । तीन कोनों का । जैसे, तिकोना टुकड़ा ।

तिकोना^५—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का नमकीन पकवान । समोसा । २. तिकोनी नक्काशी बनाने की छेनी ।

तिकोना^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योरी' ।

तिकोनिया^५—वि० [हि० तिकोन + इया (प्रत्यय)] दे० 'तिकोना' ।

तिकोनिया^५—संज्ञा स्त्री० तीन कोनोंवाला स्थान ।

विशेष—यह स्थान प्रायः दो दीवारों के बीच कोने में तिकोना पत्थर या लकड़ी गड़कर बनाया जाता है जिसपर छोटे मोटे सामान रखे जाते हैं ।

तिकका^५—संज्ञा पुं० [फा० तिकह] मांस की बोटी । जोष ।

मुहा०—तिकका बोटी करना = टुकड़े टुकड़े करना । चञ्जी चञ्जी भलग करना ।

तिककी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तृ] १. साब का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ बनी हों । २. गंजीके का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ हो ।

तिकख^५—वि० [सं० तीक्ष्ण, फा० तिकख] १. तीखा । चोखा । तेज । २. तीव्रबुद्धि । तेज । चालाक ।

तिकखा^५—वि० [हि०] तिरछा । टेढ़ा ।

तिकखे^५—क्रि० वि० [हि०] तिरछे ।

तिक्त^५—वि० [सं०] तीता । कड़वा । जिसका स्वाद नीम, गुरुच, चिरायते आदि के समान हो ।

तिक्त^५—संज्ञा पुं० १. पितापापड़ा । २. सुगंध । ३. कुठज । ४. वरुण वृक्ष । ५. छह रसों में से एक ।

विशेष—तिक्त छह रसों में से एक है । तिक्त और कटु में भेद यह कि तिक्त स्वाद अरुचिकर होता है; जैसे, नीम, चिरायते आदि का; पर कटु स्वाद चरपरा और रुचिकर होता है ।

वैद्य, सोंठ, मिर्च आदि का। वैद्यक के अनुसार तिक्त रस छेदक, श्लेष्मकारक, दीपक, शोषक तथा मूत्र, मेद, रक्त, वसा आदि का शोषण करनेवाला है। ज्वर, खुजली, कोढ़, मूच्छा आदि में यह विशेष उपकारी है। अमिलतास, गुरुण, मजीठ, कनेर, हल्दी, इन्द्रजव, बटकटैया, अषोक, कुटकी, बरियारा, बाहरी, गदहपुरना (पुनर्नवा) इत्यादि तिक्त वनों के अंतर्गत हैं।

तिक्तकंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तकन्दिका] बनशठ। गंधपत्रा। बनकचूर।

तिक्तक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पटोल। परबल। २. चिरति। चिरायता। ३. काष्ठा खेर। ४. इंगुदी। ५. नोम। ६. कुटब। कुरैया। ७. तिक्त रस (को०)।

तिक्तक^२—वि० सीता (को०)।

तिक्तकण्ड—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तकाण्ड] चिरायता।

तिक्तका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुगुण। कटुभा कटू।

तिक्तगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगन्धा] १. बराहकांठा। बराही कंब। २. सरसों (को०)।

तिक्तगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगन्धिका] १. बराहकांठा। बराही कंब। २. सरसों (को०)।

तिक्तगुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगुञ्जा] कंथा। करंथ। करंजुषा।

तिक्तघृत—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कई तिक्त शोषधियों के योग से बना हुआ एक घृत जो छुष्ट; विषम ज्वर, घृत्तम, अर्श, ग्रहणी आदि में दिया जाता है।

तिक्ततंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ततण्डुला] पिप्पली। पोपल।

तिक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिताई। कटुभापन। तीतापन।

तिक्ततुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ततुण्डी] कटुबी तुण्डी।

तिक्ततुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ततुण्डी] कटुभा कटू। तितलीकी।

तिक्तदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चिरसी। २. मेदाश्रिणी।

तिक्तबातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] (खरीर के भीतर की कटु बीजाणु, अर्थात्) पित्त।

तिक्तपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ककोड़ा। केवसा।

तिक्तपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कचरी। पेहूँडा।

तिक्तपर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुड़। २. हुबहुब। हरहर। ३. मिथोय। गुर्च। ४. मुलेठी। जेठी मधु।

तिक्तपुष्पा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

तिक्तपुष्पा^२—वि० जिसके फूल का स्वाद तीखा हो (को०)।

तिक्तफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रीठा। विमंज फल। २. यवतिक्ता लता (को०)। ३. तिमंजी। कटक वृक्ष (को०)।

तिक्तफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बटकटैया। २. कचरी। ३. खर-बूजा। ४. यवतिक्ता लता (को०)। ५. वाता की (को०)।

तिक्तबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तितलीकी (को०)।

तिक्तभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] परबल। पटोल।

तिक्तयवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शखिनी।

तिक्तरौहिणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'तिक्तरौहिणी'।

तिक्तरौहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

तिक्तवल्ल्भी—संज्ञा स्त्री० [स्त्री०] मूर्वा लता। मुरा। मरोड़की। चुरनहार।

तिक्तबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुभा कटू। तितलीकी।

तिक्तशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेर का पेड़। २. बरगु वृक्ष। ३. पत्रसुंदर शक।

तिक्तसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहिण नान की घाम। २. खेर का पेड़।

तिक्तांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ताङ्गा] पानानगाड़ी लता। छिरेटा।

तिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुटकी। कटुका। २. पाठा। ३. यव-तिक्ता लता। ४. खरबूजा। ५. छिकनी नाम का पौधा। नकछिकनी।

तिक्तालया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुभा कटू। तितलीकी।

तिक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तितलीकी। २. काकमाजी। ३. कुटकी।

तिक्तिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूमड़ी या मटुपर नाम का बाजा जिसे प्रायः सपेरे बजाने हैं।

तिक्त(पुं०)—वि० [सं० तीक्ष्ण] १. तीक्ष्ण। तेज। २. चोखा। पैना। उ०—अनु बाब तिक्त कुठार केशव मेलखा मृगचर्म से। रघुवीर को यह देखिए रम बीर सात्विक धर्म में।—केशव (शब्द०)।

तिक्त(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] तेजी। उ०—शूर बाजिन की लुरी प्रति तिक्तता तिनकी हुई।—केशव (शब्द०)।

तिक्ति(पुं०)—वि० [हिं०] ३० 'तीक्ष्ण'। उ०—गणनाथ हृष्यं लिए तिक्ति कर्षी। पिनाकी पिनाकं किए प्राय दर्मी।—ह० रासो, पृ० ५४।

तिख—वि० [सं० ति+ख] तीन बार का बोता हुआ। तिबहा (खेत)।

तिखटी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ३० 'टिकटी'।

तिखरा—वि० [हिं०] ३० 'तिख'।

तिखराना—क्रि० स० [हिं० तिखारना का प्रे० कर] तिखारने का काम दूसरे से कराना।

तिखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोखा] तोखाव। तीक्ष्णता। तेजी।

तिखारना—क्रि० प्र० [सं० ति+हिं० धाखर] किसी बात को खड़ या निश्चित करने के लिये तीब्र बार पूछना। पक्का करने के लिये कई बार कहना।

विशेष—तीन बार कहकर जो प्रतिज्ञा की जाती है, वह बहुत पक्की समझी जाती है।

तिखूँटा(पुं०)—वि० [हिं०] ३० 'तिखूँटा'। उ०—बेलवार लहरा छबि छूटे। बीसमताले घोर तिखूँटे।—शक्ति प०, पृ० १७५।

तिखूँटा—वि० [हिं० तीन+खूँटा] तीन कोने का। जिसमें तीन कोने हों। तिकोना।

तिगना^१—क्रि० सं० [दि०] देखना । नजर डालना । भाँपना ।
(दनासी) ।

तिगना^२—वि० [हि०] दे० 'तिगुना' ।

तिगुना—वि० [सं० त्रिगुण] [वि० श्री० तिगुनी] तीन बार अधिक ।
तीन गुना ।

तिगुचना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तिगना' ।

तिगून—संज्ञा पुं० [हि० तिगुना] १. तिगुना होने का भाव । २.
आरंभ में जितना समय किसी चीज को गाने या बजाने में
लगाया जाय, प्राये चञ्चल वृद्ध चीज उसके तिहाई समय में
गाना । साधारण से तिगुना । जल्दी गाना या बजाना । वि०
दे० 'चीगून' ।

तिग्मसंज्ञा—संज्ञा सं० [हि०] दे० 'तिग्मांशु' । उ०—मिहिर तिमिरहर
प्रभाकर उरनस्मि तिग्मसंज्ञा ।—प्रनेकार्यं, पृ० १०२ ।

तिग्म^१—वि० [सं०] १. तीक्ष्ण । खरा । तेज । प्रखर । उ०—खोल
गए समार नया सुभ मेरे मन मे क्षण भर । जन संस्कृति का
तिग्म स्फीत मोदयं रत्न दिखलाकर ।—ग्राम्या, पृ० ४७ ।
२. तम । तम करनेवाला (की०) ।

यौ०—तिग्मकर । तिग्मदीधिति । तिग्ममन्यु । तिग्मरश्मि ।
तिग्मांशु ।

३. प्रचंड । उग्र (की०) ।

तिग्म^२—संज्ञा पुं० १. चंद्र । २. पिप्पली ।—(अनेकार्यं) । ३. पुरुवंशीय
एक क्षत्रिय ।—(मत्स्य) । ४. ताप (की०) । ५. तीक्ष्णता ।
तीखापन (की०) ।

तिग्मकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिग्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुववंशीय एक राजा जो बत्सर और
सुवीची के पुत्र थे । (भागवत) ।

तिग्मज्ज्वल—संज्ञा पुं० [सं० तिग्मज्ज्वल] अग्नि (की०) ।

तिग्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्णता । तेज । उग्रता । प्रखरता ।
उ०—परतंत्रता ने साधारणों को निर्बल और दरिद्र बना
दिया है इनमें वह तिग्मता, जो विजयी जाति में होती है,
कभी प्राप्ति नहीं सकती ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८१ ।

तिग्मतेज^१—वि० [सं० तिग्मतेजस्] १. तीक्ष्ण । तीक्षा । २. बैठने-
वाला । प्रविष्ट होनेवाला । ३. उग्र । प्रचंड । ४. तेजस्क ।
तेजस्वी (की०) ।

तिग्मतेज^२—संज्ञा पुं० सूर्य (की०) ।

तिग्मदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिग्ममति, तिग्मभास—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (की०) ।

तिग्ममन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

तिग्ममयूखमाली—संज्ञा पुं० [सं० तिग्ममयूखमालिन] सूर्य (की०) ।

तिग्मयातना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंड या असह्य पीड़ा (की०) ।

तिग्मरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिग्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिघरा^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिघट] मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन
जिसमें दूध दही रखा जाता है । मटकी ।

तिचिया—संज्ञा पुं० [देश०] बहाज पर के वे आदमी जो आकाश में
नक्षत्रों को देखते हैं (लक्ष०) ।

तिच्छ^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तिच्छन^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तिच्छना^१—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—कनक काँच का
भेद ज्ञान में तिच्छना । घरे हूँ रे पसतू ऊषो से हरि कहूँ संत
के चच्छना ।—पलटू०, भा० २, पृ० ७७ ।

तिजरा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर ।
तिजारी ।

तिजर्षा—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)]
वह उत्सव जो किसी स्त्री को तीन महीने का गर्भ होने पर
उसके कुटुंब के लोग करते हैं ।

तिजहरी—संज्ञा पुं० [हि०] तीसरा पहर ।

तिजहरिया—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + पहर] तीसरा
पहर । अपराह्न ।

तिजहरी^१—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)]
तीसरा पहर । अपराह्न ।

तिजारी—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर ।

तिजारत—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाणिज्य । बानेज । व्यापार ।
रोजगार । सोदागरी ।

तिजरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिजार] तीसरे दिन आया देकर
आनेवाला ज्वर ।

तिजिया^१—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा)] वह मनुष्य जिसका
तीसरा विवाह हो ।

तिजिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. राक्षस (की०) ।

तिजिहना^१—क्रि० सं० [सं० त्यजन] तजना । छोड़ना । उ०—कह
महारह होरा अपहृष्ट, नहीं तो गोरी ! तिजहूँ पराण ।—बी०
रासो, पृ० ३१ ।

तिजोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ट्रेजरी] लोहे की मजबूत छोटी आलमारी,
जिसमें रुपए, गहने आदि सुरक्षित रखे जाते हैं ।

तिडो—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि (= तीन)] ताण का वह पत्ता जिसमें
तीन बुटियाँ हो ।

मुहा०—तिडो करना = गायब करना । उड़ा ले जाना । तिडो
होना = (१) चुपके से चले जाना । गायब होना । (२)
भाग जाना ।

तिडोबिडो^१—वि० [देश०] तितर बितर । छितराया हुआ । अस्त-
व्यस्त ।

तिड्ड^१—संज्ञा वि० [हि०] दे० 'टिड्डो' । उ०—ऊँचाल क अवर-
सणउ कह फाकउ कह तिड्ड ।—ढोला०, पृ० ६९० ।

तिण^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिन' । उ०—चट्टुं दिसि दामिनि
सवन घन, पीउ तजो तिण वार ।—ढोला०, पृ० ३७ ।

तिण^२—संज्ञा पुं० [सं० तृण] तृण । तिनका ।

तिष्ठा^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनका' । उ०—दंत तिष्ठा लीये कहे रे पिय आप बिलाइ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८२ ।

तित^७—क्रि० वि० [सं० तत्] १. तहाँ । वहाँ । उ०—श्रीनिवास कों निज निवास छवि का कहिये तित।—नंद० ग्रं०, पृ० २०२ । २. उधर । उस ओर । उ०—जित देखों तित भयामयी है।—सूर (शब्द०) ।

तित^२—वि० [हि० तीत का समासगत रूप] तिक्त । तीता । जैसे, तितलोकी ।

तितस—संज्ञा पुं० [सं०] १. चलनी । २. छत्र । छाता [को०] ।

तितना^१—क्रि० वि० [सं० तति, ततीनि] उतना । उससे बराबर । उ०—तब बाकी सास एक ही बेर बाकी पातरि में परोसे । तितनो ही वह सरिकिनी चरनामृत मिलाय के लाहि।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ३८ ।

विशेष—'जितना' के साथ आए हुए वाक्य का संबंध पुरा करने के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है । पर अब गद्य में इसका प्रचार नहीं है ।

तितर^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीतर' । उ०—हुकुम स्वामि छुटव सु हम, मनो तितर पर बाज।—पू० रा०, ३।४ ।

तितर बितर—वि० [हि० तितर + अनु० बितर] १. जो इधर उधर हो गया हो । छितराया हुआ । बिखरा हुआ । जो एकत्र न हो । जैसे,—तोप की आवाज सुनते ही सब सिपाही तितर बितर हो गए । २. जो कम से कम न हो । ध्व्यवस्थित । अस्त व्यस्त । जैसे,—तुमने सब पुस्तकें तितर बितर कर दीं ।

बितरात—संज्ञा पुं० [देस०] एक प्रकार का पोधा जिसकी जड़ घोषध के काम में आती है ।

तितरोखी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीतर] एक प्रकार की छोटी चिड़िया ।

तितली—संज्ञा स्त्री० [हि० तीतर, पु० हि० तितिल (चित्रित डेनों के कारण)] १. एक उड़नेवाला सुंदर कीड़ा या फतिया जो प्रायः बगीचों में फूलों के पराग और रस आदि पर निर्वाह करता है ।

विशेष—तितली के छह पैर होते हैं और गुँह से बाल के ऐसी दो सूँड़ियाँ निकली होती हैं जिनसे यह फूलों का रस चूसती है । दोनों ओर दो दो के हिसाब से चार बड़े पंख होते हैं । भिन्न भिन्न तितलियों के पंख भिन्न भिन्न रंग के होते हैं और किसी किसी में बहुत सुंदर बूँदियाँ रहती हैं । पंख के प्रतिरिक्त इसका और शरीर इतना सूक्ष्म या पतला होता है कि दूर के दिखाई नहीं देता । गुबरेले, रेशम के कीड़े आदि फतियों के समान तितली के शरीर का भी कपांतर होता है । अंडे से निकलने के ऊपरत यह कुछ दिनों तक गाँठदार बोले या सूँके के रूप में रहती है । ऐसे बोले प्रायः पोषों की पत्तियों पर चिपके हुए मिलते हैं । इन बोलों का मुँह कूतरने योग्य होता है और ये पोषों की कभी कभी बड़ी हानि पहुँचाते हैं । छह घसली पैरों के प्रतिरिक्त इन्हें कई ओर पैर होते हैं । ये ही बोले कपांतरित होते होते तितली के रूप में हो जाते हैं और उड़ने लगते हैं ।

२. एक घाम जो गेहूँ आदि के खेतों में उगती है ।

विशेष—इसका पोधा हाथ सदा हाथ तक का होता है । पत्तियाँ पतली पतली होती हैं । इसकी पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं ।

तितलौआ—संज्ञा पुं० [हि० तीन + लोआ] कड़वा कढ़ू ।

तितलौकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + लोआ] कटु तुंकी । कड़वा कढ़ू ।

तितारा^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हि० तार] वह सितार की तरह का एक बाजा जिसमें तीन तार लगे रहते हैं । उ०—बाजें डफ, नगारा, बोन, बाँसुरी सितारा चारितारा क्यों तितारा मुख भावती निसंक हैं।—रघुराज (शब्द०) । २. फसल की तीसरी बार की सिंचाई ।

तितारा—वि० तीन तारवाला । जिसमें तीन तार हों ।

तितिसा—संज्ञा पुं० [प्र० ततिभ्रमह] १. डकोसना । २. छेप । ३. लेख का वह भाग जो ग्रंथ में उची पुस्तक के संबंध में लगा देते हैं । परिशिष्ट । उपसंहार ।

तितित्त—वि० [सं०] सहनशील । क्षमाशील ।

तितित्त^२—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम ।

तितित्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नरसी गंगमी आदि सहने की सामर्थ्य । सहिष्णुता । २. क्षमा । क्षाति । उ०—पावें तुमसे आज शत्रु भी ऐसी शिक्षा, जिसका भय हो दंड और इति दया तितित्ता ।—साकेत, पृ० ४२२ ।

तितित्तु—वि० [सं०] क्षमाशील । क्षान्त । सहिष्णु । २. त्यागने की इच्छावाला (को०) ।

तितित्तु^२—संज्ञा पुं० पुष्पवर्णीय एक राजा जो महामना का पुत्र था ।

तितिभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुगपू । २. बीरबहूटी [को०] ।

तितिम्मा—संज्ञा पुं० [प्र० ततिभ्रमह] १. बचा हुआ भाग । अवशिष्ट अंश । २. किसी अंश में अंग से लगाया हुआ प्रकरण । परिशिष्ट ।

तितिर, तितिरि—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पक्षी [को०] ।

तितिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में सात कारणों में के एक । दे० 'तीतिल' । २. नाद नाम का मिट्टी का बरतन । ३. तिल की खली (को०) ।

तितो^७—क्रि० वि० [सं० तति, ततीनि] उतनी । उ०—तब श्री हरि बहु माया जितो । अंतरव्यान करो तहें तितो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६७ ।

तितोषा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तैरने या पार करने की इच्छा । २. तर जाने की इच्छा ।

तितोषु^१—वि० [सं०] १. तैरने की इच्छा करनेवाला । उ०—कवि अल, उड़प मति, भव तितोषु दुस्तर अपार । कल्पनापुत्र में भावी द्रष्टा, निराधार ।—ग्राम्या, पृ० ५८ । २. तरने का अभिलाषी ।

तितुआ^१—संज्ञा पुं० [देस०] गाड़ी के पहिए का धारा ।

तिते^७—वि० [सं० तति] उतने (संख्यावाचक) । उ०—अंबर

माँक घमरगन जिते । देखत हैं घट घोटनि तिते ।—नंद० प्र०, पृ० २९८ ।

तितेक ④—वि० [हि० तिनो + एक] उतना । उ०—गोकुल गोपी गोप जितेक । कृष्ण चरित रम मगन तितेक ।—नंद० प्र०, पृ० २५६ ।

तितै ④—क्रि० वि० [हि० तित + ई (प्रत्यय)] १. वहाँ ही । नहीं । २. वहाँ । ३. सपर ।

तितो ④—वि० [सं० तावत्] उस मात्रा या परिमाण का ।

तितो २—क्रि० वि० उतना ।

तितो ④—क्रि० वि० [हि०] ३० 'तितो' । उ०—(क) जब सब लोक चराचर जितो । प्रलय उषधि मधि मग्नत तितो ।—नंद० प्र०, पृ० २७१ । (ख) जयपि सुंदर सुघर पुनि सगुनो दीपक देह । वरु मकामु करे तितो भरिये जिते सवेह ।—बिहारी २०, दो० ६५८ ।

तितिर—संज्ञा पुं० [कौ० तितिरौ] १. तीतर नाम का पक्षी । २. तितली नाम की घाम ।

तितिरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीतर पक्षी । २. पञ्चवेंद की एक शाखा का नाम । ३० वि० 'तितिरौ' । ३. यास्क मुनि के एक शिष्य जिन्होंने तितिरौय शाखा चलाई थी ।—(घात्रेय धनुस्मृतिका) ।

विशेष भागवत आदि पुराणों के अनुसार वैष्णवायन के शिष्य मुनियों ने तितर पक्षी बनकर वाजसनेय के उगले हुए यजुर्वेद को चुँगाया ।

तित्थू—अव्य० [प०] तहाँ । उ०—महो महो घनधानंद जामी तित्थू जाँग है ।—घनानंद० पृ० १८१ ।

तिथि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा की कला के घटने या बढ़ने के अनुसार चिने जानेवाले महीने का दिन । चांद्रमास के प्रत्येक दिन जिनके नाम महीना के अनुसार होते हैं । मिति । तारीख ।

टी०—तिथिपक्ष । तिथिपुं० ।

विशेष पक्षों के अनुसार तिथियाँ भी दो प्रकार की होती हैं । कृष्ण और शुक्ल । प्रत्येक पक्ष में १५ तिथियाँ होती हैं । जिनके नाम ये हैं—प्रतिपदा (परिषा), द्वितीया (द्वि), तृतीया (ती), चतुर्थी (चौ), पंचमी, षष्ठी (छठ), सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी (ग्यारस), द्वादशी (दुअस), त्रयोदशी (तेरस), चतुर्दशी (चौदस), पूर्णिमा या प्रभातस्या । कृष्णपक्ष की अंतिम तिथि प्रभातस्या और शुक्लपक्ष की पूर्णिमा कहलाती है ; इन तिथियों के बीच वर्ग किए गए हैं—प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी का नाम जया, द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी का नाम मया, तृतीया अष्टमी और त्रयोदशी का नाम जया, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी का नाम रिक्ता; और पंचमी, दशमी और पूर्णिमा या प्रभातस्या का नाम पूणि है । तिथियों का मान नियत होता है परन्तु सब तिथियाँ बराबर दूँ की नहीं होती । २. पद्ध की संख्या ।

तिथिकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष तिथि पर किया जानेवाला धार्मिक कृत्य (कौ०) ।

तिथिक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] तिथि की हानि । किसी तिथि का गिनती में न आना ।

विशेष—ऐसा तब होता है जब एक ही दिन में पर्याप्त दो सूर्योदयों के बीच तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं । ऐसी अवस्था में जो तिथि सूर्य के उदयकाल में नहीं पड़ती है, उसका जय माना जाता है ।

तिथिदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जो तिथि का अधिष्ठाता होता है (कौ०) ।

तिथिपति—संज्ञा पुं० [सं०] तिथियों के स्वामी देवता ।

विशेष—भिन्न भिन्न प्रांशों के अनुसार ये अधिपति भिन्न भिन्न हैं । जिस तिथि का जो देवता है, उसका उक्त तिथि को पूजन होता है ।

तिथि	देवता	
	वृहस्पति	वसिष्ठ
१	ब्रह्मा	अग्नि
२	विधाता	विधाता
३	हुरि	घोरी
४	यम	गणेश
५	चंद्रमा	सर्प
६	बडानन	बडानन
७	शक्र	सूर्य
८	वसु	महेश
९	सर्प	दुर्गा
१०	धर्म	यम
११	ईश	विश्वदेवा
१२	सविता	हुरि
१३	काम	काम
१४	कलि	शर्व
पूर्णिमा	विश्वदेवा	चंद्रमा
प्रभातस्या	पितर	पितर

तिथिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पत्र । पंचांग । जंत्री ।

तिथिप्रणी—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तिथियुग्म—संज्ञा पुं० [सं०] दो तिथियों का योग (कौ०) ।

तिथिवृद्धि—संज्ञा कौ० [सं०] वह तिथि जो दो सूर्योदयों तक चले (कौ०) ।

तिथ्यर्घ—संज्ञा पुं० [सं०] करण ।

तिथरी—संज्ञा कौ० [हि० तीन + प्रा० वर] वह कोठरी जिसमें तीन दरवाजे या खिड़कियाँ हों ।

तिथारी—संज्ञा पुं० [देश०] जल के किनारे रहनेवाली बच्छ की तरह की एक चिड़िया ।

विशेष—यह बहुत तेज चढ़ती है और जमीन पर सूखी घास का जोस खा बचाती है । इसका लोभ शिकार करते हैं ।

तिहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिहार] वह कोठरी जिसमें तीन बरबादे या खिड़कियाँ हों ।

तिधरी—क्रि० वि० [सं० तन] उधर । उस ओर ।

तिधरि(५)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तिधर' । उ०—जिधरि देखीं नैन भरि तिधरि सिरजनहारा ।—दादू०, ६८ ।

तिधारा—संज्ञा पुं० [सं० तिधार] एक प्रकार का धुहर (सेंदूर) जिसमें पत्ते नहीं होते ।

विशेष—इसमें सँगलियों की तरह शाखाएँ ऊपर की निकलती हैं । इसे बगीचों भादि की बाड़ या टट्टी के लिये लगाते हैं । इसे बच्ची या बरसेज भी कहते हैं ।

तिधारीकाँबवेल्—संज्ञा स्त्री० [हि० तिधारी + सं० काण्डवेल्] बुड़बुड़ ।

तिनंगा—पुं० [हि०] दे० 'तिलंगा' । उ०—सार तिनंगा तारयो ।—पु० रा०, १०।३२।

तिनी—सर्व० [सं० तेन (= सनसे)] 'तिस' शब्द का बहुवचन । जैसे, तिनने, तिनको, तिनसे इत्यादि । उ०—तिन कवि केशवदास सौ कीनों बर्म सनेह ।—केशव (शम्भ०) ।

विशेष—अब गद्य में इस शब्द का व्यवहार नहीं होता ।

तिन—संज्ञा पुं० [सं० तृण] तिनका । तृण । घासपूस । उ०—हैं कपूर मनिमय रही मिलति न द्रुति मुकुटाणि । छिन छिन लरो बिचच्छनो खच्छहि छाप तिव भाषि ।—विहारी (शब्द०)

तिनउर—संज्ञा पुं० [सं० तृण + उर या घोर (प्रत्य०)] मधवा सं० तृण + धाकर] तिनकों का ढेर । तृणसमूह । उ०—तन तिन-उर भा, झुरी खरी । यह बरखा, दुख भावरि बरी ।—जायसी (शब्द०) ।

तिनक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनका' । उ०—खाब तिनक बिमि तोरि ही दीवी ।—नव० प्र० पु० १५२ ।

तिनकना—क्रि० घ० [घ० चिनगारी, चिक्की, या धनु०] चिड़-चिड़ाना । चिड़ना । झल्लाना । बिड़ना । नाराज होना ।

तिनका—संज्ञा पुं० [सं० तृणक] तृण का टुकड़ा । सूखी घास या डीठी का टुकड़ा । उ०—तिनका सौं अपने जन की गुन मानत मेरु समान ।—सूर०, १।८।

मुद्दा—तिनका दाँतों में पकड़ना या सेना = बिनती करना । लमा या कृपा के लिये वीचतापूर्वक विनय करना । पिड़पिड़ाना हा हा खावा । तिनका तोड़ना = (१) संबंध तोड़ना । (२) बचाव सेना । बचैया सेना ।

विशेष—बच्चे को नजर न लगे, इसलिये माता कभी कभी तिनका तोड़ती है ।

तिनके चुनना = बेसुध हो जाना । अचेत होना । पागल या बावला हो जाना । (पागल प्रायः व्यर्थ के काम किया करते हैं) । उ०—रंजे फिराक में तिनके चुनने की नीबत आई ।—फिसावा०, भा० ३, पृ० २५८ । तिनके चुनवाना = (१) पागल बना देना । (२) मोहित करना । तिनके का सहारा = (१) थोड़ा सा सहारा । (२) ऐसी बात जिससे कुछ थोड़ा बहुत धारस बँधे । तिनके को पहाड़ करना = छोटी बात को बड़ी कर दिखाना । तिनके को पहाड़ कर दिखाना = थोड़ी सी बात

को बहुत बढ़ाकर कहना । तिनके को मोट पहाड़ = छोटी सी बात में किसी बड़ी बात का छिपा रहना । सिर से तिनका उतारना = (१) थोड़ा सा एहसान करना । २. किसी प्रकार का थोड़ा बहुत काम करके उपकार का नाम करना ।

तिनगना—क्रि० घ० [हि०] दे० 'तिनकना' ।

तिनगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पकवान । उ०—पेठा पाक जलेबी पेरा । पौदपाग तिनगरी गिरीरा ।—सूर (शब्द०) ।

तिनताग(५)—संज्ञा पुं० [हि० तीन + ताग] तीन तागे (जनेऊ) । उ०—ब्राह्मण कहिषु ब्रह्मरत है ताका बड़ भाग । नाहित पसु अज्ञानता घर डारे तिन ताग ।—भीष्मा० श०, पृ० १०१ ।

तिनतिरिया—संज्ञा पुं० [देश०] मनुष्य कपास ।

तिनधरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] तीन धार की रेती जिससे धारी के दाँत चोखे किए जाते हैं ।

तिनपतिया—वि० [हि० तीन + पात] तीन पत्तेवाले (बेलपत्र आदि) ।

तिनपहल—वि० [हि० तीन + पहल] दे० 'तिनपहला' ।

तिनपहला—वि० [हि० तीन + पहल] [वि० स्त्री० तिनपहली] जिसमें तीन पहल हों । जिसके तीन पार्श्व हों ।

तिनमिना—संज्ञा पुं० [हि० तिन + मनिया] बाला जिसके बीच में सोने का बड़ाऊ जुझु हो ।

तिनवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह बरमा में बहुत होता है । आसाम और छोटा नाग-पुर में भी यह पाया जाता है । यह इमारतों में लगता है और बटाइयाँ बनाने के काम में आता है । इसके चोंचों में बरमा, मनीपुर आदि के लोग माँच भी पकाते हैं ।

तिनषना(५)—क्रि० घ० [हि०] दे० 'तिनकना' । उ०—मुरघी साहि गोरी महाबीर धीर । तसबी तिनषो लिए पिभिन्न तीर ।—पु० रा० १३।६५।

तिनस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनिश' ।

तिनसुना—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश का पेड़ ।

तिनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश वृक्ष ।

तिनास—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनिश' ।

तिनि(५)—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—तिहि नारी के पुत तनि थाऊ । ब्रह्मा बिष्णु महेश्वर वाऊँ ।—कबीर बी०, पृ० ५ ।

तिनिश—संज्ञा पुं० [सं०] सीसम की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ लम्बी या खैर की सी होती हैं ।

विशेष—इसकी जकड़ी मजबूत होती है और किवाड़, गाड़ी भादि बनाने के काम में आती है । इसे तिनास या तिनसुना भी कहते हैं । वैद्यक में यह कसैला और गरम माना जाता है । रक्तसिसार, कोढ़, दाह, रक्तधिकार आदि में इसकी छाल, पत्तियाँ भादि दी जाती है ।

पर्या०—स्यंदन । नेमी । रथद्रु । अतिमुक्तक । चित्रकृत । चक्री । लतांग । लकट । रथिक । अस्मगर्भ । मेवी । जलधर । प्रसक । तिनाशक ।

तिनुक^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनुका' । उ०—हम स्वामि काज सारथ मरन तन तिनुक विचारो ।—पु० रा०, १२।१६८ ।

तिनुका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनका' । उ०—दूठ जाय मोट तिनुका की रसक रहै टहराई ।—कबीर रा०, भा० २, पृ० २ ।

तिनुवर^७—संज्ञा पुं० [सं० तृणवर] तिनका ।

तिनुका^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनका' । उ०—होय तिनूका बज्य बज्य तिनका ह्वै टूटै ।—गिरिधर (शब्द०) ।

तिन्नक—संज्ञा पुं० [हि० तनिक] १. तुच्छ चीज । २. छोटा लड़का ।

तिन्ना—संज्ञा पुं० [सं०] १. गती नामक वर्णपुत्र । २. रोटी के साथ खाने की रसदार वस्तु । ३. तिन्नी के धान का पौधा ।

तिन्नी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तृण, हि० तिन, प्रत्यय सं० तृणान्त] एक प्रकार का जंगली धान जो तानों में घापसे घाप होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ जड़हन का सी ही होती हैं । पौधा तीन चार हाथ ऊँचा होता है । कातिक में इसकी बाल फूटती है जिसमें बहुत लंबे लंबे दूँड़ होते हैं । बाल के दाने तैयार होने पर गिरने लगते हैं, इससे इकट्ठा करनेवाले या तो हटके में दानों को भाड़ में डालते हैं अथवा बहुत से पौधों के तिरों को एक में बाँध देते हैं । तिन्नी का धान लंबा धीरे पतला होता है । चावल खाने में नीरस धीरे कड़ा लगता है धीरे प्रत घाव में खाया जाता है ।

तिन्नी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] नीची । फुफुंली ।

तिन्ही^३—अर्थ० [हि०] दे० 'तिन' ।

तिपड़ा—संज्ञा पुं० [हि० तीन + पट] कमायाब बुननेवालों के करव की बहु लकड़ी जिसमें ताया लपेटा रहता है धीरे जो दोनों बेशरों के बीच में होती है ।

तिपतास^७—संज्ञा पुं० [सं० तृप्ति + प्राणय] । तृप्ति प्रदान करनेवाली वस्तु । उ०—काजी मो जाँका जल विगास । ज्ञान संपूरण है तिपतास ।—प्राण०, पृ० १० ।

तिपति^७—संज्ञा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति' । उ०—सहस्र एक रथ साजि धामि विद्य निरति हक मरिप ।—पु० रा०, १४ । ११६ ।

तिप् तिप्—संज्ञा पुं० [अनु०] तिप् तिप् की ध्वनिपूर्वक टपकने का भाव । उ०—धीरे बेला, सिन्धी छत से घोंस की तिप् तिप् पहाड़ी काक ।—हरी भास०, पृ० १४ ।

तिपल्ला—वि० [हि० तीन + पल्ला] १. तीन रंगों का । जिसमें तीन पल्ल या पार्श्व हों । २. तीन तागे का । जिसमें तीन तागे हों ।

तिपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + पाया] १. तीन पायों की बैठने की ऊँची चौकी । स्टूल । २. पानी के घड़े रखने की ऊँची चौकी । ठिकटी । तिगोड़िया । ३. लकड़ी का एक चौबटा जिसे रंगरेज काम में लाते हैं ।

तिपाड़—संज्ञा पुं० [हि० तीन + पाड़] १. जो तीन पाट जोड़कर

बना हो । उ०—दक्षिण धीरे तिपाड़ को सहँगा । पहिरि विविध पट मोलन सहँगा ।—सूर (शब्द०) । २. जिसमें तीन पल्ल हों । ३. जिसमें तीन किनारे हों ।

तिपारो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा झाड़ या पौधा जो बरसात में आपसे आप इधर उधर जमता है । मकोय । परपोटा । छोटी रसभरी ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी धीरे सिर पर नुकीली होती हैं । इसमें संकट पून गुच्छों में लगते हैं । फन संपुट के आकार के एक भिन्नीदार कोश में रहते हैं जिसमें नसों के द्वारा कई पहल बने रहते हैं ।

तिपुर^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिपुर' । उ०—काली सुर महि-वास तिपुर अस्थि महिपामूर ।—पु० रा०, १।१२ ।

तिपैरा—संज्ञा पुं० [हि० तीन + पुर] वह बड़ा कृष्ण जिसमें तीन चरसे एक साथ चल सकें ।

तिप्त^७—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—सी मुक्त तिप्त हरि दर्शन पावे । साथ संगति मद्भि हरि सिव सावे ।—प्राण०, पृ० २२४ ।

तिप्ति^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—तिप्ति संतोषि रहे मन्त्र जाई । नानक जोती जोति मिलाई ।—प्राण०, पृ० १७७ ।

तिफली^७—संज्ञा पुं० [सं० तिपल + फाली (प्रत्यय०)] बचपन । उ०—पाबंद दूधा तिफली जवानी व बुढ़ापा ।—कबीर रा०, पृ० १२० ।

तिपल—संज्ञा पुं० [सं० तिपल्] बच्चा । उ०—कहे घाए तिपल मेरे नुर ऐनी । जो यक सौजन कूँ लायो होर तागा ।—दासबली०, पृ० ११५ ।

टी०—तिपल मिजाज = बाल्य प्रकृतिवाला । तिपले प्रक = प्रभु-विदु । तिपले घातण = चिनगारी । तिपले मकतब = निरक्षर । मूर्ख । मनभिज । मनाड़ी । तिपले शीरखार = दुधमुँहा बच्चा । तिपलेहिंदू = मौख की पुतली । कनीनिका ।

तिव—संज्ञा स्त्री० [सं०] यूगानी चिकित्सा । हुकीमी [को०] ।

तिवद्वी—वि० स्त्री० [हि० तीन + बाध] (चारपाई की बुनावट) जिसमें तीन बाध या रस्सियाँ एक साथ एक एक बार खींची जायें ।

तिवाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] भाँटा माड़ने का छिछला बड़ा बरतन ।

तिबारा^१—वि० [हि० तीन + बार] तीमरी बार ।

तिबारा^२—संज्ञा पुं० तीन बार उतारा हुआ मद्य ।

तिबारा^३—संज्ञा पुं० [हि० तीन + बार (= दरवाजा)] [स्त्री० तिबारी] वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों ।

तिबारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] तीन द्वारवाला घर या कोठरी । उ०—वह मचलती हुई भिसात के बाहर तिबारी में चली गई । पाँसे हाथ में लिए प्रकबर उसकी धीरे देखने लगे ।—इंद्र०, पृ० ३६ ।

तिबासी—वि० [हि० तीन + बासी] तीन दिन का बासी (खाद्य पदार्थ) ।

तिविक्रम(५)---संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिविक्रम' । उ०---तरेई तीर
तिविक्रम, ताकि क्या करि वै बिदिसा अनिमेखी । ---चनानंद,
पृ० १४८ ।

तिवी---संज्ञा स्त्री० [देश०] खेसारी ।

तिब्ब---संज्ञा स्त्री० [घ०] १. यूनानी चिकित्सा शास्त्र । हुकीमी ।
२. चिकित्सा शास्त्र [को०] ।

यी०---तिब्बे कदीम = प्राचीन चिकित्सापद्धति । तिब्बे जदीद =
नवीन चिकित्सापद्धति या पारश्चात्य चिकित्सापद्धति ।

तिब्बत---संज्ञा पुं० [सं० त्रि + भोट] एक देश जो हिमालय पर्वत के
उत्तर पड़ता है ।

विशेष---इस देश को हिंदुस्तान में भोट कहते हैं । इसके तीन
विभाग माने जाते हैं । छोटा तिब्बत, बड़ा तिब्बत और खास
तिब्बत । तिब्बत बहुत ठंडा देश है, इससे वहाँ पेड़ पोखे बहुत
कम लगते हैं । यहाँ के निवासी तातारियों से मिलते जुलते
होते हैं और अधिकतर ऊब के कंबल, कपड़े आदि बुनकर
पपना निर्वाह करते हैं । देश करतूरी और चेंबर के लिये
प्रसिद्ध है । सुरा गाय और कस्तूरी मृग यहाँ बहुत पाए जाते
हैं । तिब्बत के रहनेवाले सब महायान शाखा के भोद हैं ।
बोदों के अनेक मठ और महंत हैं । कैलाश पर्वत और मान-
नरोवर भील तिब्बत ही में हैं । ये हिंदू और बोद दोनों के
तीर्थ-स्थान हैं । कुछ लोग 'तिब्बत' को त्रिविष्टप का अपभ्रंश
बतलाते हैं । स्वतंत्र भारत ने इसे चीन को दे दिया और यह
देश अब पूर्णतः चीनी शासन में है और वहाँ के प्रमुख
दलाई लामा भारत में निवास करते हैं ।

तिब्बती^१---वि० [हि० तिब्बत] तिब्बत संबंधी । तिब्बत का ।
तिब्बत में उत्पन्न । जैसे, तिब्बती आदमी, तिब्बती भाषा ।

तिब्बती^२---संज्ञा स्त्री० तिब्बत की भाषा ।

तिब्बती^३---संज्ञा पुं० तिब्बत देश का रहनेवाला ।

तिब्बिया---वि० [घ० तिब्बियह] तिब्बत संबंधी । हुकीमी [को०] ।

तिभुवन(५)---संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०---तुम तिभुवन
तिहुं काल बिचार बिसारव ।---तुधसी ग०, पृ० ३० ।

तिमंगल(५)---संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिगल' । उ०---आठ दिसा
बित हूरे उताल । ताता जाणु तिमंगल बाला । ---रा० क०,
पृ० २१३ ।

तिमजिला---वि० [हि० तीन + अ० मंजिल] [वि० स्त्री० तिमजिली]
तीन खंडों का । तीन मरातिब का । जैसे, तिमजिला मकान ।

तिम^१---संज्ञा पुं० [हि० तिम] नगाड़ा । डंका । हुंहुजी (हि०) ।

तिम(५)---अव्य० [हि०] दे० 'तिमि' । उ०---ता उत्पर खातुषक
बीर बंधी तिम सीमह ।---पृ० रा०, १२ । ३० ।

तिमर---संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिर' । उ०---रूफ बिन सुभ
पर तिमर लागी ।---तुलसी० रा०, पृ० १८ ।

तिमाना---क्रि० स० [देश०] भिगोना । तर करना ।

तिमाशी---संज्ञा स्त्री० [हि० तीन+माशा] १. तीन माशे की एक

तोल । २. ४ जो की एक तौल जो पहाड़ी देशों में
प्रचलित है ।

तिमिगल---संज्ञा पुं० [म० तिमिङ्गल] १. समुद्र में रहनेवाला
मत्स्य के आकार का एक बड़ा भारी जंतु जो तिमि नामक
बड़े मत्स्य की भी निगल सकता है । बड़ा भारी ह्वेल । उ०---
रत्न सोप के वातायन, त्रिनमें आता मधु मंदिर समीर ।
टकराती होगी सब उनमें तिमिगलों की भीड़ घघीर ।---
कामायनी, पृ० १२ ।

तिमिगलाशन संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण का एक देशविभाग
जिसके अंतर्गत लंका आदि हैं और वहाँ के निवासी तिमिगल
मत्स्य का मांस खाते हैं (वृद्धसहिता) । २. उक्त देश का
निवासी ।

तिमिगिल---संज्ञा पुं० [सं० तिमिङ्गिल] दे० 'तिमिगल' [को०] ।

तिमि^१---संज्ञा पुं० [म०] १. समुद्र में रहनेवाला मछली के आकार
का एक बड़ा भारी जंतु ।

विशेष---लोगों का अनुमान है कि यह जंतु ज्ञेय है ।

२. समुद्र । ३. माछ का एक रोग जिसमें रात को सुझाई नहीं
पड़ता । रतोषी । ४. मछली [को०] ।

तिमि(५)^२---अव्य० [सं० तद + इव = इमि] उभ प्रकार । देखे ।
उ०---तिमि तिमि मारवणितण्ड तन तरण पड पाव ।
लोभा०, पृ० १२ ।

विशेष---इसका व्यवहार 'जिमि' के साथ होता है ।

तिमिकोश---संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

तिमिचानी---संज्ञा पुं० [म० तिमिचातिन्] मछेरा । मछुपा [को०] ।

तिमिज---संज्ञा पुं० [सं०] मोती [को०] ।

तिमिन^१---वि० [सं०] १. निम्बल । घबल । स्थिर । २. विलस ।
भीगा । घाई । ३. शांत । धीर [को०] ।

तिमित(५)^२---वि० [सं० तम] काला । उ०---नयन सरोज दुह बह
नीर । काजर रखरि पखरि पर चीर । वेहि निमित्त मेल
उरज सुवेग ।---विद्यापति, पृ० ३७३ ।

तिमिधार---संज्ञा पुं० [सं० तम + धार] पंघकार । घंघेरा । उ०---
मनो कमल प्रकृति ललित छयी सवन तिमिधार ।---सं०
सप्तक पृ० ३४५ ।

तिमिध्वज---संज्ञा पुं० [सं०] शबर नामक दैत्य जिसे मारकर राम-
चंद्र ने अज्ञा से देवगन्ध प्राप्त किया था ।

तिमिमाती---संज्ञा पुं० [म० तिमिमालिन्] समुद्र [को०] ।

तिमिर---संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार । घंघेरा । उ०---काल तरल
है तिमिर अंधारा ।---कबीर सा०, पृ० २ । २. माछ का एक
रोग ।

विशेष---इसके अनेक भेद सुश्रुत ने बतलाए हैं । माछों से
घुंघला दिखाई पड़ना, चीजे रंग बिरंग की दिखाई पड़ना,
रात को न दिखाई पड़ना आदि सब दोष इसी के अंतर्गत माने
गए हैं ।

३. एक पेड़ । (वैल्मीकि०) ।

तिमिरजा—वि० स्त्री० [सं० तिमिर + जा] अंधकार से उत्पन्न ।
उ०—लहराई दिग्भाति तिमिरजा स्रोतस्विनी कराली ।
—अपञ्चक, पृ० ५१ ।

तिमिरजाल—संज्ञा पुं० [सं० तिमिर + जाल] अंधकारसमूह । घना
अंधकार । उ०—यत् स्वप्न निजा का तिमिरजाल नव
किरणों से धो धो ।—अपरा, पृ० १६ ।

तिमिरनुद्^१—वि० [सं०] अंधकार का नाश करनेवाला ।

तिमिरनुद्^२—संज्ञा पुं० सूर्य ।

तिमिरभिद्^१—वि० [सं०] अंधकार को भेदने या नाश करनेवाला ।

तिमिरभिद्^२—संज्ञा पुं० सूर्य ।

तिमिरमय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. राहु । २. ग्रहण [को०] ।

तिमिरमय^२—वि० अंधकारपुच्छ [को०] ।

तिमिररिपु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । आस्कर ।

तिमिरारि^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिरारि' । उ०—होइ मधुकर
कोबीर छेई । होइ तिमिरारि जोत तोहि छेई ।—बंश्या, पृ० ७१

तिमिरारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार का शत्रु । २. सूर्य ।

तिमिरारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तिमिराची] अंधकार का समूह ।
पंथरा । उ०—मधुप के नैव वर मधुबल ऐस होठ श्री फल
के कुच कच देखि तिमिरारी छी ।—द्वेष (अम्ब०) ।

तिमिरावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकार का समूह । उ०—तिमि-
रावलि छांवरे दंतव के हित मैन धरे मनो बीपक हूँ ।—
सुंदरीसर्वस्व (अम्ब०) ।

तिमिर^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिर' । उ०—जय गुप्त तेज
प्रचंड तिमिर राखंड विह्वल ।—नट०, पृ० ६ ।

तिमिरी—संज्ञा पुं० [सं० तिमिरिन्] एक कीड़ा [को०] ।

तिमिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वाद्य यंत्र [को०] ।

तिमिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ककड़ी । फूट । २. पेठा । सफेद कुम्हड़ा ।
१. तरबूज ।

तिमी—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिमि मत्स्य । २. वस्त्र की एक कच्चा जो
कश्यप की स्त्री और तिमिगलों की माता थी ।

तिमीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम ।

तिमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + आ० मुहावा] १. वह स्थाव
जहाँ तीस ओर जाये की तीस फाटक या माने हों । तिर-
मुहानी । उ०—विचित्र पास पासक तिमुहानी । राम सकल
सिंधु समुहानी ।—मानस, १।४० । २. वह स्थाव जहाँ तीन
ओर से तीस नदियाँ आकर मिली हों ।

तिम्भगत^१—वि० [?] १. अस्तमित । २. प्रखर गतिवाला । उ०—
अर विम्भर सग मन हृथ गइय । रहिय तिम्वगत जुड इछ ।
—पृ० रा०, ७।१८१ ।

तिय^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] १. स्त्री । औरत । उ०—कै जय
तिय गन बदलकमल की भलकत आई ।—भारतेंदु प्र०,
भा० २, पृ० ४५५ । २. पत्नी । भार्या । जोर ।

तियतरा^१—वि० [सं० त्रि + अन्तर] [स्त्री० तियतरी] वह बेटा जो
तीस बेटियों के बाद पैदा हो । तेतर ।

तियरासि—वि० [हि० तिय + राशि] कन्या राशि । उ०—ससि मीन
तीस कटि एक अंस । तियरासि कह्यो सुरभानुतंस ।—ह०
रासो, पृ० २२ ।

तियला—संज्ञा पुं० [सि० तिय + ला (प्रत्य०)] स्त्रियों का एक
पहनना । उ०—ब्राह्मणियों को इच्छा भोजन करवाय सुपेर
तियले पदराय...दक्षिणा दी ।—लल्लु (शब्द०) ।

तियलिंग^१—संज्ञा पुं० [हि० तिय + लिंग] दे० 'स्त्रीलिंग' । उ०—
धारादिक तियलिंग ए, कवि भाषा के माँहि ।—पोद्दार अभि०
प्र०, पृ० ५३२ ।

तिया^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रि] १. गंजीके या ताश का वह पत्ता जिस-
पर तीन नुटियाँ होती हैं । तिक्की । तिक्की । २. नक्कीपुर के
खेल में वह शक्ति जो पूरे पूरे गंदों के गिनने के बाद तीन
कोड़ियाँ बचने पर होता है ।

तिया^२—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'तिय' । उ०—पुनि बीपर खेलों
के हिया । जो तिर देख रहे सो तिया ।—जायसी प्र०
(गुप्त), पृ० ३३२ ।

तियाग^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्याग' । उ०—तीखो खाग
तियाग, जेहुस बेड़ो बनमियो ।—बाँकी०, भा० १, पृ० १२ ।

तियागना^१—कि० सं० [सं० त्याग + ना (प्रत्य०)] त्याग करना ।
छोड़ना । उ०—मात पिता सब कुटुंब तियागे, सुरत पिया
पर लावे ।—कबीर ख०, भा० १, पृ० १०३ ।

तियागी^१—वि० [सं० त्यागी] त्याग करनेवाला । छोड़नेवाला ।
उ०—बलि विक्रम दानी बड़ कहे । हातिम करन तियागी
भई ।—जायसी (शब्द०) ।

तिरंग—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिरंगा' । उ०—फहर तिरंग बक्रदल
प्रतिपल । हुरता जन मन अय संशय, जय जय है ।—युगपथ,
पृ० ६१ ।

तिरंगा^१—संज्ञा पुं० [हि० तीत + रंग] तीन रंगोंवाला राष्ट्रीय
ध्वज । उ०—आज तिरंगे से रे अंधर रंग तरंगित ।—युगपथ,
पृ० ६१ ।

तिरंगा^२—वि० तीन रंगवाला । तीन रंगों का ।

तिरकट—संज्ञा पुं० [?] आगे का पाल । अगला पाल (लक्ष०) ।

तिरकट गावा सवाई—संज्ञा पुं० [?] आगे का धोर सबसे उपरी
सिरे पर का पाल (लक्ष०) ।

तिरकट गावी—संज्ञा पुं० [?] सिरे पर का पाल । (लक्ष०) ।

तिरकट डोल—संज्ञा पुं० [?] आगे का मस्तूल (लक्ष०) ।

तिरकट तवर—संज्ञा पुं० [?] वह छोटा चौकोर आगे का पाल
जो सबसे बड़े मस्तूल के ऊपर आगे की ओर लगाया जाता
है । इसका व्यवहार बहुत सीमा हुआ बचने के समय होता
है (लक्ष०) ।

तिरकट सवर—संज्ञा पुं० [?] सबसे ऊपर का पाल (लक्ष०) ।

तिरकट सवाई—संज्ञा पुं० [?] आगे का वह पाल जो उस रस्से में
बँधा रहता है जो मस्तूल के सहारे के लिये लगाया जाता
है (लक्ष०) ।

तिरकना—क्रि० प्र० [घनु०] तड़कना । चटखना । फट जाना ।

तिरकसा—वि० [सं० तिरस्] टेढ़ा ।

तिरकाना—क्रि० सं० [घनुष्व०] १. डीला छोड़ना । —(मष०) । २. रस्सी डीली करना । नहासी छोड़ना (लण०) ।

तिरकुटा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकुट] सोंठ, भिबं, पीपल इन तीन कड़ुई शोषधियों का समूह ।

तिरकुटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—अभिमिमि
अक्षक मूर तिरकुटी महल में ।—पलटू०, पृ० ६४ ।

तिरकोन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिकोण' । उ०—त्रिगुण रूप
तिरकोन यंत्र बनि मध्य बिंदु शिवशानी ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० १४६ ।

तिरछा—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] दे० 'तृषा' ।

तिरखित—वि० [सं० तृषित] दे० 'तृषित' ।

तिरखूँटा—वि० [सं० त्रि + हि० खूँट] [वि० स्त्री० तिरखूँटी] जिसमें
तीन खूँट या कोने हों । तिकोवा ।

तिरगुण—वि० [हि०] दे० 'त्रिगुण' । उ०—नौ गुण सुत
संयोग बखानूँ तिरगुण गीठ खानी ।—कबीर प्र०,
पृ० १७५ ।

तिरकड़—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिस वृक्ष ।

तिरछाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरछा] तिरछापन ।

तिरछ उड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरछा + उड़ना] मालखंभ की एक
कसरत जिसमें खेसाड़ी के शरीर का कोई भाग जमीन
पर नहीं लगता, एक कंधा झुकाकर और एक पाँव उठाकर
वह शरीर को चक्कर देता है । इसे छलांग भी कहते हैं ।

तिरछन—वि० [हि०] दे० 'तिरछा' । उ०—हंस उचार्य धी
भ्रम टारं तरनी तिरछन सो चारिष ।—सं० दरिया०,
पृ० १० ।

तिरछा—वि० [सं० तिर्यक् या तिरस्] [स्त्री० तिरछी] १. जो
अपने आकार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो । जो न
बिलकुल सड़ा हो और न बिलकुल छाड़ा हो । जो न ठीक
ऊपर की ओर गया हो और न ठीक बगल की ओर । जो
ठीक सामने की ओर न बाहर इधर उधर हड़कर गया हो ।
वैसे, तिरछी लकीर ।

विशेष—'टेढ़ा' और 'तिरछा' में अंतर है । टेढ़ा वह है जो अपने
लक्ष्य पर सीधा न गया हो, इधर उधर मुड़ता या घुमता हुआ
गया हो । पर तिरछा वह है जो सीधा तो गया हो, पर
जिसका लक्ष्य ठीक सामने, ठीक ऊपर या ठीक बगल में न
हो । (टेढ़ी रेखा ~; तिरछी रेखा /) ।

यौ०—बाँका तिरछा = छबीला । वैसे, बाँका तिरछा बगल ।

मुहा०—तिरछी टोपी = बगल में कुछ झुकाकर सिर पर रखी
टोपी । तिरछी चितवन = बिना सिर फेरे हुए बगल की
ओर दृष्टि ।

विशेष—जब लोगों की दृष्टि बचाकर किसी ओर नाकना होना
है, तब लोग, विशेषतः प्रेमी लोग, इस प्रकार की दृष्टि से
देखते हैं ।

तिरछी नजर = दे० 'तिरछी चितवन' । उ०—हुए एक भान में
जल्मी हजारों । बिभर उम गारने तिरछी नजर की । —
कविता को०, भा० ४, पृ० २६ । तिरछी बात या तिरछा
वचन = कटु वाक्य । अप्रिय शब्द । उ०—हरि उदाम सुनि
तिरीछे ।—सबल (शब्द०) ।

२. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्रायः अस्तर के काम में
आता है ।

तिरछाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरछा + ई (प्रत्य०)] तिरछापन ।

तिरछाना—क्रि० प्र० [हि० तिरछा] तिरछा होना ।

तिरछापन—संज्ञा पुं० [हि० तिरछा + पन (प्रत्य०)] तिरछा होने
का भाव ।

तिरछी—वि० स्त्री० [हि० तिरछा] दे० 'तिरछा' ।

तिरछी—संज्ञा स्त्री० [देश०] घरद्वार के दो अवरिपकृत दान जिनकी
दाल नहीं बन सकती । इनको अलगाने के बाद धूनी बनाकर
रोटी बनाते हैं या जानवरों को खिला देते हैं ।

तिरछी बैठक—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरछी + बैठक] मालखंभ की एक
कसरत जिसमें दोनों पैर रस्सी की ऐंटन की तरह परस्पर
गुथकर ऊपर उठते हैं ।

तिरछे—क्रि० वि० [हि० तिरछा] तिरछेपन के साथ । तिरछापन
लिए हुए ।

तिरछाई—वि० [हि० तिरछा + घाई (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तिरछाई]
कुछ तिरछा । जो कुछ तिरछापन लिए हो । जैसे, तिरछाई
बीठ ।

तिरछाई—क्रि० वि० [हि० तिरछाई] तिरछापन लिए हुए ।
तिरछेपन के साथ । वक्त से । वैसे, तिरछाई नाकना ।

तिरछिका—संज्ञा पुं० [सं० तृण] दे० 'तिनिका' । उ०—तिरछिका
घोद सिद्ध का करता जुग देषि लुकाना ।—रामानंद०, पृ० १९ ।

तिरछाखीसी—वि० [हि०] दे० 'तीताखीय' ।

तिरछिराना—क्रि० प्र० [घनु०] बूँद बूँद करके टपकना ।

तिरछ—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ' । उ०—पहुँची भँवरिया
बेद पढ़े मुनि ज्ञानी हो । दुसरि भँवरिया तिरछ, जाको
निरमल पानी हो ।—कबीर सा०, भा० ४, पृ० ४ ।

तिरदंभी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'विदंभी-१' । उ०—नेम अचार
करे कोठ कितनी, कवि कोविद सब खुश । तिरदंभी सरबंगी
नाया, मरे पियास धी भुख ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ११ ।

तिरदश—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदश] दे० 'त्रिदश'-१ । उ०—ताकी
कन्या कनिमनी मोहे तिरदशे ।—अकबरी०, पृ० ३३४ ।

तिरदेव—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'विदेव' । उ०—निराकार यम
तहाँ न जाई । तिरदेवन की कोन खलाई ।—कबीर सा०,
पृ० ४१२ ।

तिरन^७—संज्ञा पुं० [हि० तिरना] तैरने की क्रिया या भाव ।
उ०—बूढ़के के डर तें तिरन की उपाइ करै ।—सुंदर० प्र०,
भा० २, पृ० ६५५ ।

तिरना—क्रि० प्र० [सं० तरण] १. पानी के ऊपर धाना या
ठहरना । पानी में न डबकर मतल के ऊपर रहना ।
उतराना । उ०—जब तिरिया पाहुण सुजह, पतसिय नाम
प्रनाप ।—रघु० क०, पृ० २ । २. तैरना । पैरना । ३. पार
होना । ४. तरना । मुक्त होना ।

संयो० क्रि०—जाना

तिरनी—संज्ञा स्त्री० [देश० या हि० तिरनी] १. वह छोटी जिससे
घाघरा या घोती नाभि के पास बंधी रहती है । नीवी ।
तिन्नी । फुबती । २. स्त्रियों के घाघरे या घोती का वह भाग
जो नाभि के नीचे पड़ता है । उ०—येनी सुभग नितंबनि
डोलत मंदगामिनी नारी । तूथन जवन बाधि नाराबंद तिरनी
पर छबि भारी ।—सूर (शब्द०) ।

तिरप—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि] नृत्य में एक प्रकार का ताल जिसे
त्रिसम या तिहाई कहते हैं । उ०—तिरप लेति चपला सी
चमकति भ्रमकति भ्रूषण धंग । या छबि पर उपमा कहुं नाहीं
निरपत बिबस प्रमंग ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लेना ।

तिरपटी—वि० [देश०] १. तिरछा । टेढ़ा । टिढ़बिड़ंगा । २.
मुश्किल । कठिन । विजड ।

तिरपटा—वि० [देश०] तिरछा तानेबाला । भेंगा । ऐंवातना ।

तिरपत^७—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—दरिया पीवे मोत कर,
सो तिरपत हो जाय ।—दरिया० गानी, पृ० ३१ ।

तिरपति^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृप्ति'—१ । उ०—पायो पानी
बुंद बीच ते तिरपति प्यास न जाई ।—दश० श०, पृ० ६६ ।

तिरपत^१—वि० [सं० त्रिपञ्चाशत्, प्रा० त्रिपण्ण] जो गिनती में
पचास से तीन और अधिक हो । पचास से नीचे ऊपर ।

तिरपत^२—संज्ञा पुं० १. पचास से तीन अधिक की संख्या का सूचक
शब्द जो इस प्रकार लिखा जाता है ।—५३ ।

तिरपाई—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपाद या त्रिपदी] तीन पायों की
ऊंची चौकी । स्टूल ।

तिरपाल—संज्ञा पुं० [सं० तृण + हि० पालना (= बिछाना)] फूस या
सरकंडों के संवे पूजे जो छाजन में खण्डों के नीचे दिए जाते
हैं । मुट्ठा ।

तिरपाल^२—संज्ञा पुं० [सं० टारपालिन] रोगन बढ़ा हुआ कनवस ।
राल बढ़ाया हुआ टाठ ।

तिरपित^७—वि० [सं० तृप्त] दे० 'तृप्त' ।

तिरपुटी^७—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुटी] दे० 'त्रिपुटी' । उ०—
तिरपुटिय माल मिल कमल मूर । इह भौति तावत तपति
झर ।—पृ० रा०, १ । ४८६ ।

तिरपौलिया—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हि० पोल (= फाटक)] वह स्थान

जहाँ बराबर से ऐसे तीन बड़े फाटक हों जिनसे होकर हाथी,
घोड़े, ऊँट इत्यादि सवारियाँ अच्छी तरह निकल सके ।

विशेष—ऐसे फाटक किलों या महलों के सामने या बड़े बाजारों
के बीच होते हैं ।

तिरफला—संज्ञा पुं० [सं० त्रिफला] दे० 'त्रिफला' ।

तिरवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिवेणी] दे० 'त्रिवेणी' ।

तिरबो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरना] सिध देश की एक प्रकार की
नाव का नाम ।

तिरबो^७—संज्ञा पुं० [हि० तरना] तिरने की क्रिया । मुक्ति-
प्राप्ति । मोक्ष । उ०—जप समुझ नित जाय, सागरभव तिरबो
सहल ।—रघु० क०, पृ० २ ।

तिरभंगी^७—वि० [हि०] दे० 'त्रिभंगी' ।—उ०—का बहुमाना
किति कंत धीरज तिरभंगी ।—पृ० रा०, १ । ७६७ ।

तिरमिरा—संज्ञा पुं० [सं० तिमिर] १. दुर्बलता के कारण दृष्टि
का एक दोष जिसमें धाँस प्रकाश के सामने नहीं ठहरती और
ताकने में कभी अंधेरा, कभी अनेक प्रकार के रंग, और कभी
छिटकती हुई चिनगारियाँ या तारे से दिखाई पड़ते हैं । २.
कमजोरी से ताकने में जो तारे से छिटकते दिखाई पड़ते हैं
उन्हें भी तिरमिरे कहते हैं । ३. तीक्ष्ण प्रकाश या चहुरी
चमक के सामने दृष्टि की अस्थिरता । तेज रोशनी में नजर
का न ठहरना । चकाचौध ।

क्रि० प्र०—लगना ।

तिरमिरा^२—संज्ञा पुं० [हि० तेल + मिलना] घी, तेल या चिकनाई
के छोटे जो पानी, दूध या धीरे किसी द्रव पदार्थ (जैसे, दाढ़,
रसा आदि) के ऊपर तैरते दिखाई देते हैं ।

तिरमिराना—क्रि० प्र० [हि० तिरमिरा] (दृष्टि का) प्रकाश के
सामने न ठहरना । तेज रोशनी या चमक के सामने (धाँसों
का) झपना । चौधना । चौधियाना ।

तिरमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिमुहानी' ।

तिरलोक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोक] दे० 'त्रिलोक' । उ०—सकल
तिरलोक लौ गावैं ।—घट०, पृ० ३६६ ।

तिरलोकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरलोक] दे० 'त्रिलोकी' ।

तिरखट—संज्ञा [देश०] एक प्रकार का राग जो तराने या तिल्लाने
का एक भेद है ।

तिरखर^७—वि० [हि० तिरखराना] झिलमिल । चकाचौध उत्पन्न
करनेवाला । उ०—दाहू जोति चमकै तिरखरै ।—दाहू०,
पृ० २४० ।

तिरखराना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिरमिराना' ।

तिरवा—संज्ञा पुं० [फा०] उतनी दूरी जहाँ तक एक तीर जा सके ।

तिरवाही^१—संज्ञा पुं० [सं० तीर + वाह] नदी के तीर की भूमि ।

तिरवाह^२—क्रि० वि० किनारे किनारे । तट से

तिररचीन—वि० [सं०] १. तिरछा । २. टेढ़ा । कुटिल ।

तिररचीन गति—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लयुद्ध की एक गति । कुपती
का एक पैतरा ।

तिरसंकु^७—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कु] दे० 'त्रिशंकु'। उ०—निरसंकु
गेहूँ लहूँ, दाऊ सम ए जान।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३४।

तिरस्—प्र० [सं०] अंतर्धान, तिरस्कार, आच्छादन, तिरछापन
आदि अर्थों का बोधक शब्द [को०]।

तिरसठ^१—वि० [सं० त्रिषष्ठि, प्रा० तिसष्ठि] जो गिनती में साठ
से तीन अधिक हो। साठ से तीन ऊपर। उ०—तिरसठ
प्रकार की राग रागिनी छेड़ी।—कबीर ग्रं०, पृ० ४३।

तिरसठ^२—संज्ञा पुं० १. वह संख्या जो साठ से तीन अधिक हो। २.
उक्त संख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा
जाता है—६३।

तिरसना^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—तिरसना के
बस में पड़कर आदमी इसी तरह अपनी ज़िदगी चोपट करता
है।—गोदान, पृ० २८५।

तिरसा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हिं० रस ?] वह पाल जिसका एक
सिरा चौड़ा और एक संकरा होता है (लश०)।

तिरसूत^७—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसूत्र] तीन तारों का यज्ञोपवीत।
यज्ञोपवीत। उ०—ताके परछों पाँच ब्रह्म अपने को पाये।
भर्म अनेऊ तोरि प्रेम तिरसूत बनाये।—पलटू०, भा० १,
पृ० ११३।

तिरसूल^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिशूल'। उ०—जो लोको काँटा
बुढ़े, ताहि बोव तू फूल। तोहि फूल को फूल है, बाको है
तिरसूल।—संतवाणी०, पृ० ४४।

तिरसूली^७—संज्ञा पुं० [हिं० तिरसूल] दे० 'त्रिशूली'। उ०—महा
मोहनी मय माया मोह तिरसूली।—नंद०, ग्रं०, पृ० ३८।

तिरस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] आच्छादक। परदा करनेवाला। ढाँकने-
वाला।

तिरस्करिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोट। आड़। परदा। कनात।
चिक। २. वह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य अदृश्य हो सकता है।

तिरस्करो—संज्ञा पुं० [सं० तिरस्करिन्] [स्त्री० तिरस्करिणी] आच्छा-
दन। परदा।

तिरस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तिरस्कृत] १. अनादर। अमान।
२. मर्सेना। फटकार। ३. अनादरपूर्वक त्याग। ४. साहित्य
के अंतर्गत एक अर्थालंकार जिसमें गुणान्वित वस्तु में दुर्गुण
दिखाकर उसका तिरस्कार किया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तिरस्कार्य—वि० [सं०] तिरस्कार योग्य। तिरस्कृत होने लायक।

तिरस्कृत—वि० [सं०] १. जिसका तिरस्कार किया गया हो। अनादर।
२. अनादरपूर्वक त्याग किया हुआ। ३. आच्छादित। परदे
में छिपा हुआ। ४. तंत्र के अनुसार (बहु मंत्र) जिसके मध्य
में बकार हो और मस्तक पर दो कवच और अस्त्र हों।

तिरस्किना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरस्कार। अनादर। २. आच्छा-
दन। ३. अस्त्र। पहुरावा।

तिरहा^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक फलिया जो घान के फूल को नष्ट
कर देता है।

तिरहुत—संज्ञा पुं० [सं० तीरभुक्ति] [वि० तिरहुतिया] मिथिला प्रदेश

जिसके अंतर्गत आजकल बिहार के दो जिले हैं—मुज-
फ्फरपुर और दरभंगा। उ०—तिरहुत देस धनीती गई।—
घट पु० ३५१।

तिरहुति—संज्ञा स्त्री० [सं० तीरभुक्ति] १. एक प्रकार का गीत जो
तिरहुत में गाया जाता है। २. दे० 'तिरहुत'।

यौ०—तिरहुतिनाम=राजा जनक। उ० देखे सुने भूपति अनेक
भूठे भूठे नाम, सोने तिरहुतिनाम साखि देति मही है।—
तुलसी ग्रं०, पृ० ३१४।

तिरहुतिया—वि० [हिं० तिरहुत] तिरहुत का। तिरहुत संबंधी।

तिरहुतिया^१—संज्ञा पुं० तिरहुत का रहनेवाला।

तिरहुतिया^२—संज्ञा स्त्री० तिरहुत की बानी।

तिरहुती—वि०, संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं०] दे० 'तिरहुतिया'।

तिरहेल—वि० [म० त्रि] क्रम में तीसरा। जो तीसरे स्थान पर हो।

तिरा—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोधा जिसके बीजों से तेल निकलता
है। एक तेलहन। मिउरा।

तिराटो—संज्ञा स्त्री० [म०] निषात।

तिरानवे^१—वि० [म० अतर्धान, प्रा० निम्नबह] जो गिनती में नब्बे
स तीन अधिक हो। तीन ऊपर नब्बे।

तिरानवे^२—संज्ञा पुं० १. नब्बे स तीन अधिक की संख्या। २. उक्त
संख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९३।

तिराना^१—क्रि० म० [हिं० तिरना] १. पानी के ऊपर ठहराना।
२. पानी के ऊपर चलाना। तैराना। ३. पार करना। ४.
उबारना। उतरना। निस्तार करना।

तिराना^२—क्रि० म० [हिं० तिरना] पानी के ऊपर रहना।
उत्तरना। उ०—पानी पत्थर आज तिराना।—घट०,
पृ० २३३।

तिराना—क्रि० म० [म० तार से निकलवाना] तीर पर या
तिरारे में जाना।

तिरावण^१—संज्ञा पुं० [हिं० तिरना] तिरने की क्रिया या भाव।
उ०—तो भीदना जनक में तिरै, तिरावण जोग।—बाहु०,
पृ० ८।

तिरास—संज्ञा पुं० [सं० त्रास] दे० 'त्रास'। उ०—कई बार प्रागे गए
छुपन जहाँ तिरास।—सदुवा० बानी०, पृ० ३३।

तिरासना^१—क्रि० म० [म० त्रासन] त्रास दिखाना। डराना।
अपमान करना।

तिरासना^२—क्रि० म० [सं० तृप्ति] व्यासा होना। व्यास लगना।

तिरासी^१—वि० [सं० अशोनि, प्रा० त्रिषासीति] जो गिनती में
अस्सी से तीन अधिक हो। तीन ऊपर अस्सी।

तिरासी^२—संज्ञा पुं० १. अस्सी से तीन अधिक की संख्या। २. उक्त
संख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८३।

तिराहा—संज्ञा पुं० [हिं० ती + सं० त्रि + फा० राह] वह स्थान जहाँ
से तीन रास्ते तीन ओर की गये हो। तिरमुहानी।

तिराही—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिराह] तिराह नामक स्थान की बनी
कटारी या तलवारी।

तिरि(७) — वि० [सं० त्रि] तीन । उ०—पुनः तिरि ठाउं परी
तिरि रेखा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६४ ।

तिरिआ(७) — संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिरिया' ।

तिरिगत्त(७) — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिगत' । उ०—तिरिगत्त राज तामस
बुभुयो दिषिय पंग संजोगि मुय ।—पृ० रा०, ११।२४५८ ।

तिरिजिह्वक — संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ ।

तिरिनः — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृण' ।

तिरिम — संज्ञा पुं० [सं०] शालिभेद । एक प्रकार का धान ।

तिरिय(७) — वि० [सं० तिर्यक्] वक्र । कुटिल । उ०—तिरिय
वक्र अक्षवक्र न ऊरध वक्र प्रमान ।—पृ० रा०, ७ । १७० ।

तिरिया^१ — संज्ञा पुं० [सं०] शालिभेद । एक प्रकार का धान ।

तिरिया^२ — संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री । धोरत । उ०—तुम तिरिया
मति हान तुम्हारी ।—जायसी (शब्द०) ।

यो०—तिरिया भरितार = स्त्रियों का रहस्य या कौशल ।

तिरिया^३ — संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो नेपाल में होता
है । इसे झोला भी कहते हैं ।

तिरिविष्टप(७) — संज्ञा पुं० [सं० त्रिष्टप] दे० 'त्रिष्टप' । उ०—
स्वर्ण, नःक, स्वर, द्यौ, त्रिदिवि दिव, तिरिविष्टप होइ ।—नंद०
ग्रं०, पृ० १०८ ।

तिरिसना(७) — संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—छोष मोह
बुकार तिरिसना, सख लोन्हे कोर ।—कबीर ज०, भा० ३,
पृ० ३१ ।

तिरीछन(७) — वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—रीषी ध्यान
छोरि के ताका । नैन तिरिछन भहुँ प्रति बाँका ।—सं०
वरिया, पृ० ३ ।

तिरीछा(७) — वि० [हि०] 'तिरिछा' ।

तिरीछो(७) — वि० [हि०] दे० 'तिरिछा' । उ०—आपुन इनके अंतर
बरथो । ऊखन तक तिरिछो करथो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५४

तिरीट — संज्ञा पुं० [सं०] १. लोथ । लोथ । २. किरिट ।

तिरीफल — संज्ञा पुं० [सं० स्त्रीफल] बत्ती वृक्ष ।

तिरीबिरी — वि० [हि०] दे० 'तिरीबिरी' ।

तिरेदा — संज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १. समुद्र में तैरता हुआ पीपा जो
संकेत के लिये किसी ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ पानी
खिखरा होता है, बट्टाँ होती हैं, या इसी प्रकार की और
कोई बाधा होती है ।

विशेष—ये पीपे कई आकार प्रकार के होते हैं । किसी किसी के
ऊपर घंटा या सीटी लगी रहती है ।

२. मछली मारने की बंसी में कटिया से हाथ डेढ़ हाथ ऊपर बंधी
हुई पाँच छद्म अंगुली लकड़ी जो पानी पर तैरती रहती है
और जिसके डूबने से मछली के फँसने का पता लगता
है । तरेबा ।

तिरे — संज्ञा पुं० [अनु०] फीसवानों का एक शब्द जिसे वे नहाते हुए
हृष्ट हृदयियों को लेटाने के लिये बोलते हैं ।

तिरोजनपद — संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार अन्य
राष्ट्र का मनुष्य । विदेशी ।

तिरोधान — संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतर्धान । अदृशन । गोपन । २.
आच्छादन । पर्दा । आवरण । परिधान (को०) ।

तिरोधायक — संज्ञा पुं० [सं०] भाड़ करनेवाला । छिपानेवाला ।
गुप्त करनेवाला ।

तिरोभाव — संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतर्धान । अदृशन । २.
गोपन । छिपाव ।

तिरोभूत — वि० [सं०] गुप्त । छिपा हुआ । अदृष्ट । अंतर्हित । गायब ।

तिरोहित — वि० [सं०] १. छिपा हुआ । अंतर्हित । अदृष्ट । उ०—
आख तिरहित हुआ कहाँ वह मधु से पूर्ण अनंत वसंत ?—
कामायनी, पृ० १० । २. आच्छादित । ढका हुआ ।

तिरोछा^१ — वि० [हि०] दे० 'तिरिछा' । उ०—कठिन बचन सुनि
अवन बाणकी सकी न बचन सहार । तृण अंतर दे दृष्टि
तिरोछी बई नैन जलधार ।—सूर (शब्द०) ।

तिरोछा^२ — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिरेछा' ।

तिर्य'च^१ — वि० [सं० तिर्य'च] १. तिरिछा । टेढ़ा । वक्र । भाड़ा (को०)

तिर्य'च^२ — संज्ञा पुं० [सं० तिर्य'च] १. पक्षी । २. पशु । ३. जीव-
जगत् या वनस्पति (जैव) ।

तिर्य'चानुपूर्वी — संज्ञा स्त्री० [सं० तिर्य'चानुपूर्वी] जैन शास्त्रानुसार जीव
की वह गति जिसमें उसे तिर्य'गोनि में जाते हुए कुछ काल तक
रहना पड़ता है ।

तिर्य'ची — संज्ञा स्त्री० [सं० तिर्य'ची] पशु पक्षियों की मादा ।

तिर्गुन — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिगुण' । उ०—इ कहै ठगान कोइ,
लिप है तिर्गुन गौसी ।—पलटू, भा० १, पृ० ८३ ।

तिर्देव(७) — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिदेव' । उ०—कहै कबीर यह ज्ञान
तिर्देव का ।—कबीर रे०, पृ० ३४ ।

तिरिपित(७) — वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—बिन मुँड के बहु करे अरि
तिरिपित कियो त्रिपुरारि है ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २१ ।

तिर्यक्^१ — वि० [सं०] तिरिछा । भाड़ा । टेढ़ा ।

विशेष—मनुष्य को छोड़ पशु पक्षी भादि जीव तिर्यक् कहलाते हैं
क्योंकि उनके होने में उनके शरीर का विस्तार ऊपर की ओर
नहीं रहता, भाड़ा होता है । इनका खाया हुआ अन्न सीधे
ऊपर से नीचे की ओर नहीं जाता, बल्कि भाड़ा होकर पेट में
जाता है ।

तिर्यक्^२ — क्रि० वि० वक्रतापूर्वक । टेढ़ेपन के साथ (को०) ।

तिर्यक्^३ — संज्ञा पुं० १. पशु । २. पक्षी (को०) ।

तिर्यक्ता — संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरिछापन । भाड़ापन ।

तिर्यक्त्व — संज्ञा पुं० [सं०] तिरिछापन । भाड़ापन ।

तिर्यक्पाती — वि० [सं० तिर्यक्पातिन्] [वि० स्त्री० तिर्यक्पातिनी] भाड़ा
केसाया या रखा हुआ । बेड़ा रखा हुआ ।

तिर्यक्प्रमाण — संज्ञा पुं० [सं०] जोड़ाई (को०) ।

तिर्यक्प्रेक्षण — संज्ञा पुं० [सं०] तिरिछी चितवन (को०) ।

तिर्यग्भेद—संज्ञा पु० [सं०] दो सहारों पर टिकी हुई वस्तु का बीच में दबाव पड़ने से टूटना ।

तिर्यक्छोतस्—संज्ञा पु० [सं०] १. यह जिसका फेलाव आड़ा हो । २. जीव जिसके पेश में जाया हुआ आहार आड़ा होकर जाता हो । यह जीव जिसका आहार निगलने का नल खड़ा न हो, आड़ा हो । पशु पक्षी ।

विशेष—पुराणों में जीव सृष्टि के चर्यंछोतस्, तिर्यक्छोतस् आदि कई वर्ग किए गए हैं । भागवत में तिर्यक्छोतस् २८ प्रकार के माने गए हैं—(१) द्विशुर (दो खुरवाले)—गाय, बकरी, बैल, कृष्णसार भृग, सुधर, लोखगाय, रुव नामक भृग । (२) एकधुर—गवहा, घोड़ा, खज्जर, गोस्पृग, शरभ, सुरापाय । (३) पंचनख—कुत्ता, गोदड़, भेड़िया, बाघ, बिल्ली, खरहा, सिंह, बंदर, हाथी, कछुवा, मेढक इत्यादि । (४) जलचर—मछली । (५) क्षेत्र—पीप, बगला, मोर, हंस, कौवा आदि पक्षी । ये सब जीव ज्ञानगुण्य और तमोगुणवर्षिष्ठ कहे गए हैं । इनके मंतःकरण में किसी प्रकार का ज्ञान वहीं बत-जाया गया है ।

तिर्यग्यन—संज्ञा पु० [सं० तिर्यक् + घयन] नुयों की वार्षिक परि-कमा [को०] ।

तिर्यगोक्ष—वि० [सं०] तिरछा देखनेवाला [को०] ।

तिर्यगीश—संज्ञा पु० [सं०] ओकृष्ण [को०] ।

तिर्यग्गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरछी या टेढ़ी चाल । २. कर्मवश पशु योनि की प्राप्ति ।

तिर्यग्गामी^१—संज्ञा पु० [सं० तिर्यग्गामिन्] केकड़ा [को०] ।

तिर्यग्गामी^२—वि० तिरछी या टेढ़ी चाल चलनेवाला [को०] ।

तिर्यग्दिक्—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा [को०] ।

तिर्यग्दिश—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा ।

तिर्यग्यान—संज्ञा पु० [सं०] केकड़ा ।

तिर्यग्योनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशुपक्षी आदि जीव । १० 'तिर्यक्छोतस्' ।

तिर्यक्—संज्ञा पु० [सं०] १० 'तिर्यक्' ।

तिलंगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + गंगनी] एक प्रकार की मिटाई जो बीनी में तिल पागकर बनती है ।

तिलंगसा—संज्ञा पु० [शे०] एक प्रकार का बहुत जो हिमालय पर नेपाल से होकर पंजाब तक होता है । अफगानिस्तान में भी यह पेश पाया जाता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है, हमारतों में लगती है तथा हथ, आपान का बंधा आदि बनाने के काम में आती है । जिसके के पासपास के जंगलों में इसकी लकड़ी का कोयला फूँका जाता है ।

तिलंगा^१—संज्ञा पु० [हि० तिलंगाना, सं० तैलङ्ग] १. मंगरेजी फीज का देशी सिपाही ।

विशेष—पहले पहल ईस्ट इंडिया कंपनी के सरकार में किया गयाकर वहाँ के तिलंगियों को अपनी सेना में भरती किया था ।

इससे मंगरेजी फीज के देशी सिपाही मान तिलंगे कहे जाने लगे ।

२. सिपाही । सैनिक ।

तिलंगा^२—संज्ञा पु० [हि० तीन + लंग] एक प्रकार का कनकीवा ।

तिलंगा^३—संज्ञा पु० [देश०] [स्त्री० तिलंगी] प्राग का बड़ा कण । बड़ी चिनगारी ।

तिलंगाना—संज्ञा पु० [सं० तैलंग] तैलंग देश ।

तिलंगी^१—संज्ञा पु० [सं० तैलंग] तिलंगाने का निवासी । तैलंग । सं०—नहि जालंधर बार बंद बंगी न तिलंगी—पृ० २०, १२।१३०।

तिलंगी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + लंग] एक प्रकार की पतंग ।

तिलंगी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० तिलंगा] प्राग का छोटा कण । चिनगारी तिलंजुलि—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'तिलाञ्जलि' । सं०—लोक लाज की गेल की देहु तिलंजुलि वान ।—श्यामा०, पृ० ६० ।

तिलंतुद—संज्ञा पु० [सं० तिलस्तुद] तेली [को०] ।

तिल—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रति बयं बोया जानेवाला हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा एक पीथा जिसकी खेती बंसार के प्रायः सभी गरम देशों में तेल के लिये होती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ आठ दस अंगुल तक लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी होती हैं । ये पीथे की ओर जो ठीक सामने सामने मिली हुई लकड़ी हैं, पर थोड़ा ऊपर चलकर कुछ अंतर पर होती हैं । पत्तियों के किनारे सीधे नहीं होते, टेढ़े मेढ़े होते हैं । फूल गिलास के आकार के ऊपर चार दलों में विभक्त होते हैं । ये फूल सफेद रंग के होते हैं, केवल मुँह पर भीतर की ओर बंदनी बन्दे दिखाई देते हैं । बीचकोष लंबोतरे होते हैं जिनमें तिल के बीज धरे रहते हैं । ये बीज चिपटे और लंबोतरे होते हैं । हिंदुस्तान में तिल दो प्रकार का होता है—सफेद और काला । तिल की दो फसलें होती हैं—कुवारी और चैती । कुवारी फसल बरसात में ज्वार, बाजरे, धान आदि के साथ अधिकतर बोई जाती है । चैती फसल यदि कार्तिक में बोई जाय तो पुस माघ तक तैयार हो जाती है ।

उद्भिद् शास्त्रवेत्ताओं का अनुमान है कि तिल का आदिस्थान अफ्रीका महाद्वीप है । वहाँ आठ नौ जाति के जंगली तिल पाए जाते हैं । पर तिल शब्द का व्यवहार संस्कृत में प्राचीन है, यहाँ तक कि जब और किसी बीज से तेल नहीं निकाला गया था, तब तिल से निकाला गया । इसी कारण उसका नाम ही तैल (तिल से निकाला हुआ) पड़ गया । अथर्ववेद तक में तिल और धान द्वारा तर्पण का उल्लेख है । षाण्कष भी पितरों के तर्पण में तिल का व्यवहार होता है । वैद्यक में तिल मारी, स्निग्ध, गरम, कफ-पित्त-कारक, बलवर्धक, कैशों को हितकारी, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला, मलरोधक और वातनाशक माना जाता है । तिल का तेल यदि कुछ अधिक पिया जाय, तो रेषक होता है ।

पर्या०—होमशाम्य । पवित्र । पितृतर्पण । पापघ्न । पुतशाम्य । अटिष्ठ । बनो-डूब । स्नेहफल । तैलफल ।

यौ०—तिलकुट । तिलचट्टा । तिलभुग्गा । तिलशकरी ।

२. छोटा घंघ या भाग जो तिल के परिमाण का हो ।

मुहा०—तिल की धोऊल पहाड़ = किसी छोटी बात के भीतर बड़ी भारी बात । तिल का ताड़ करना = किसी छोटी बात को बहुत बढ़ा देना । छोटे से मामले को बहुत बढ़ा करना या दिखाना । तिल का ताड़ बनना = प्रतिरञ्जित होना । उ०—श्रद्धा के उत्साह वचन, फिर काम प्रेरणा मिल के । भ्रातृ पथं बन पाये आए बने ताड़ ये तिल के । कामायनी, पृ० ११० । तिलचावले बाल = कुछ सफेद और कुछ काले बाल । खिचड़ी बाल । तिल चाटना = मुसलमानों के यहाँ विवाह में विदाई के समय दूल्हे का दुल्हिन के हाथ पर रसे हुए काले तिलों का चाटना ।

विशेष—यह टोटका इसलिये होता है जिसमें दूल्हा सदा अपनी स्त्री के वंश में रहे ।

तिल तिल = थोड़ा थोड़ा । उ०—परि स्वामि धर्म सुरंग । बढ़ि रहै तिल तिल घंग । ह० रासो, पृ० १२३ । तिल धरने की जगह न होना = जरा सी भी जगह खाली न रहना । पूरा स्थान छिन्ना रहना । तिल बाँधना—सूर्यकांत शीशे से होकर आए हुए सूर्य के प्रकाश का केंद्रीभूत होकर बिंदु के रूप में पड़ना । तिल मर = (१) जरा सा । थोड़ा सा । उ०—रहा चढ़ाउब तोरब माह । तिल मर भूमि न सकेउ छुड़ाई ।—तुलसी (शब्द०) । (२) क्षण भर । थोड़ी देर । (किसी के) तिलों से तेज निकालना = किसी से किसी प्रकार कपट लेकर वही उसके काम में लगाना ।

३. काले रंग का छोटा दाग जो शरीर पर होता है । उ०—चिबुक कृप रसरी भलक तिल सुधरस दन बेल । बारी बयस गुलाब की सींचत मन्मथ छेल ।—रसलीन (शब्द०) ।

विशेष—सामुद्रिक में तिलों के स्थान भेद से अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल बनवाए जाते हैं । पुरुष के शरीर में दाहिनी ओर और स्त्री के शरीर में बाईं ओर का तिल अच्छा माना जाता है । हथेली का तिल शुभाशुभफल समझा जाता है ।

४. काली बिंदी के आकार का गोदना जिसे स्त्रियाँ शोभा के लिये गाल, ठुड़ी आदि पर गोदाती हैं ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—लगाना ।

५. छाँह की पुतली के बीचों बीच का गोल बिंदी जिसमें सामने पड़ी हुई वस्तु का छोटा सा प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है ।

तिलकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलकंठी] चिन्तुकांची । काली कीवाठोठी ।

तिलक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह चिह्न जिसे गीले चंदन, केसर आदि से मस्तक, बाहु आदि मंगों पर सांप्रदायिक संकेत या शोभा के लिये लगाते हैं । टीका । उ०—छाया तिलक बनाई करि दगव्या लोक अनेक ।—कबीर ग्रं०, पृ० ४६ ।

विशेष—भिन्न भिन्न संप्रदायों के तिलक भिन्न भिन्न आकार के होते हैं । वैष्णव लड़ा तिलक या ऊर्ध्व पुंड़ लगाते हैं जिसके संप्रदायानुसार अनेक आकृति भेद होते हैं । शैव आड़ा तिलक

या त्रिपुंड़ लगाते हैं । शाक्त लोग रक्त चंदन का घाड़ा टीका लगाते हैं । वैष्णवों में तिलक का माहात्म्य बहुत अधिक है । ब्रह्मपुराण में ऊर्ध्व पुंड़ तिलक की बड़ी महिमा गाई गई है । वैष्णव लोग तिलक लगाने के लिये द्वादश घंग मानते हैं—मस्तक, पेट, छाती, कंठ, (दोनों पार्श्व) दोनों कान, दोनों बाँह, कंधा, पीठ और कटि । तिलक प्राचीन काल में शृंगार के लिये लगाया जाता था, पीछे से उपासना का चिह्न सम्झा जाने लगा ।

क्रि० प्र०—घाःण करना ।—धारना ।—लगाना ।—सारना । २. राजसिंहासन पर प्रतिष्ठा । राज्याभिषेक । गद्दी ।

यौ०—राजतिलक ।

क्रि० प्र०—सारना = राज्य पर अभिषिक्त करना । गद्दी या राजसिंहासन की प्रतिष्ठा देना । उ०—मिला आइ जब अनुइ तुम्हारा । जातहि राम तिलक तेहि सारा ।—मानस, ५।५४ । ३. विवाह संबंध स्थिर करने की एक रीति जिसमें कन्या पक्ष के लोग वर के माथे में दही भस्मत आदि का टीका लगाने और कुछ द्रव्य उनके साथ देते हैं । टीका ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।

मुहा० तिलक देना = तिलक के साथ (धन) देना । जैसे,—उत्तने कितना तिलक दिया । तिलक भेजना = तिलक की सागरी के साथ वर के घर तिलक चढ़ाने लोगों को भेजना ।

४. माथे पर पहनने या स्त्रियों का एक गहना । टीका । ५. शिरो-मण्डि । श्रेष्ठ व्यक्ति । किसी समुदाय के बीच श्रेष्ठ या उत्तम पुरुष ।

विशेष—इसका समास के संतर्म प्रयोग बहुधा मिलता है । जैसे, रघुकुंतिलक ।

६. पुत्राग की जाति का एक पेड़ जिसमें छत्ते के आकार के फूल वसंत ऋतु में लगते हैं ।

विशेष—यह पेड़ शोभा के लिये बगीचों में लगाया जाता है । इसकी लकड़ी और छाल दवा के काम आती है ।

७. नूँज का फूल या धूम्रा । ८. लोध वृक्ष । शोध का पेड़ । ९. मरुवक । मरुवा । १०. एक प्रकार का अश्वत्थ । ११. एक जानि का थोड़ा । थोड़े का एक भेद । १२. तिल्ली जो पेट के भीतर होती है । क्लोम । १३. सोवर्चल लवण । सौंघर नमक । १४. संगीत में श्रुवक का एक भेद जिसमें एक एक चरण पचीस पचीस बल्लरों के होते हैं । १५. किसी घंघ की अर्थसूचक व्याख्या । टीका । १६. एक रोग (को०) । १७. पीपल का एक प्रकार या भेद (को०) । १८. तिल का बीधा या फूल (को०) ।

तिलक^२—संज्ञा पुं० [तु० तिरलीक का संक्षिप्त रूप] १. एक प्रकार का ढोला ढाला जनाना कुरता जिसे प्रायः मुसलमान स्त्रियाँ सुथन के ऊपर पहनती हैं । उ०—तनिया न तिलक, सुथनिया पगनिया न घासैं धुमरासी छाड़ि सेजिया सुथन की ।—भूषण (शब्द०) । २. खिलमत ।

तिलक कामोद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक रागिनी जो कामोद् और

विभिन्न ध्यवा कान्हडा कामोद धीर षड्योग से मिलकर बनी है।

तिलकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का चूर्ण। २. एक मिठाई जो तिल के चूर्ण के योग से बनती है।

तिलकधारी—संज्ञा पुं० [हि० तिलक + धारी] तिलक लगानेवाला। उ०—दास पलटू कहै तिलकधारी सोई, उदित तिहु लोक रजपूत सोई।—पलटू०, भा० २, पृ० १६।

तिलकना—क्रि० प्र० [हि० तड़कना] गीली मिट्टी का सूखकर स्थान स्थान पर ढरकना या फटना। ताल आदि की मिट्टी का सूखकर दरार के साथ फटना।

तिलकना^१—क्रि० प्र० [हि०] बिछलना। फिसलना। उ०—करहुड कादिम तिलकस्यद् पंथी पूगन दूर।—कोला०, पृ० २५६।

तिलक नुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंदन आदि का टीका धीर अंश चक आदि का खाया विशेष भक्त लोग लगाते हैं।

तिलकल्का—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का चूर्ण। तिलकुट।

तिलकहूरु—संज्ञा पुं० [सं० तिलक + हि० हूरु (प्रत्य०)] दे० 'तिलकहार'।

तिलकहार—संज्ञा पुं० [हि० तिलक + हार (प्रत्य०)] वह मनुष्य जो कन्या के पिता के यहाँ से घर की तिलक चढ़ाने के लिये भेजा जाता है।

तिलका—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (115) होते हैं। इसे 'तिलका', 'तिलकाना' और 'तिलका' भी कहते हैं। २. कंठ में पहुँचने का एक आभूषण।

तिलकाधिक—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खेती करनेवाला व्यक्ति (को०)।

तिलकालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देह पर का तिल के आकार का काला चिह्न। तिल। २. सुश्रुत के अनुसार एक व्याधि जिसमें पुरुष की इन्द्रिय पक जाती है और उसपर काले काले दाग से पड़ जाते हैं।

तिलकावल—वि० [सं०] चिह्नों से युक्त। चिह्नीवास (को०)।

तिलकाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] माया। ललाट (को०)।

तिलकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खली। पीना।

तिलकित—वि० [सं०] १. तिलक लगाए हुए। २. जिसको तिलक लगाया गया हो। जैसे, सिद्धर तिलकित भाल। ३. चित्ती बार। बिहीबाला (को०)।

तिलकुट—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलकट] कूटे हुए तिल जो खाँड़ की चारानी में पगे हों।

तिलखली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + खली] तिल की खली (को०)।

तिलखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिट्ठिया।

तिलचटा—संज्ञा पुं० [हि० तिल + चटना] एक प्रकार का भींगुर। चपड़ा।

तिलचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी (को०)।

तिलचौवरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हि० चौवरी] दे० 'तिलचावली'। तिलचावली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + चावल] तिल धीर चावल की खिचड़ी।

तिलचावली^३—वि० स्त्री० जिसका कुछ भंश सफेद और कुछ काला हो। जैसे, तिलचावली दाढ़ी।

तिलचित्रपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंद।

तिलचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] तिलकल्क। तिलकुट।

तिलछना—क्रि० प्र० [छनु०] विकल रहना। छटपटाना। बेचैन रहना।

तिलड़ा^१—वि० [हि० ती + सं० चि + हि० लड़] [वि० स्त्री० तिलड़ी] ज़िममें तीग लड़े हों। तीन लड़ों का।

तिलड़ा^२—संज्ञा पुं० [देश०] पत्थर गढ़नेवालों की एक छेनी जिससे टेढ़ी लकीर या लहरदार नक्काशी बनाई जाती है।

तिलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + लड़] तीन लड़ों की माला जिसके बीच में एक जुगनी लटकती है।

तिलतंडुल संज्ञा पुं० [सं० तिल + तंडुल] १. तिल धीर चावल। २. पैमा पैल ज़िममें मिलनेवालों का अस्तित्व स्पष्ट दिखाई दे।

तौ०—तिलतंडुल न्याय = दे० 'न्याय'।

तिलतंडुलक—संज्ञा पुं० [सं० तिलतण्डुलक] १. भेंट। मिलन। २. आलिंगन। गले से लगाना (को०)।

तिलतैल—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०)।

तिलदानी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + सं० दानी] कपड़े की वह धैली जिसमें दरजी मूर्द, तागा, अगुशाना आदि धोखार रखते हैं।

तिलद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी विशेष मास की द्वादशी तिथि (जो उत्सव के लिये निश्चित हो)।

तिलधेलु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का धान जिसमें तिलों का गाय बनाकर धान करते हैं।

तिलपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + पट्टी] खाँड़ या गुड़ में पगे हुए तिलों का ब्रमाया दुग्धा कतरा।

तिलपपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + पपड़ी] तिलपट्टी।

तिलपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन। २. सरख का गोंद। ३. तिल का रंग (को०)।

तिलपरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तिलपर्णी'।

तिलपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्त चंदन। २. एक नदी (को०)।

तिलपिञ्ज—संज्ञा पुं० [सं० तिलपिञ्ज] तिल का वह पौधा जिसमें फल नहीं लगते। बंझा तिल वृक्ष।

तिलपिञ्जट—संज्ञा पुं० [सं०] तिलों की पीठो। तिलकुटा।

तिलपीड़—संज्ञा पुं० [सं० तिलपीड] तिल घेरनेवाला, तेली।

तिलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का फूल। २. व्याघ्रनख। बघ-नखी। ३. भाक (को०)।

तिलपुष्पक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहेड़ा । २. तिल का फूल (को०) ।
३. नाक (क्योंकि इसकी उपमा तिल के फूल से दी जाती है) ।

तिलपेज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिलपिज' ।

तिलफरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा छुंवर सदाबहार वृक्ष ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय में ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की और चमकीली होती हैं ।

तिलबद्धा—संज्ञा पुं० [देश०] बीमारियों का एक रोग जिसमें गले के भीतर के मांस के बड़ जाने से वे कुछ खा पी नहीं सकते ।

तिलबर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

तिलभार—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम । —(महाभारत) ।

तिलभाजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका (को०) ।

तिलभुग्गा—संज्ञा पुं० [हि० तिल + सं० भुक्त] खाँड़ मिश्रित हृष भुने तिल को खाए जाते हैं । तिलकुठ ।

तिलभृष्ट—वि० [सं०] तिल के साथ सूना या पकाया हुआ ।

विशेष—महाभारत में तिल के साथ भुनी हुई वस्तु के खाने का विवेक है । स्त्रियों में तिल मिला हुआ पचाने बिना वैवाहित किए खाना वर्जित है ।

तिलभेद—संज्ञा पुं० [सं०] पोस्ते का धागा ।

तिलमनिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हि० मनिया] गले में पड़ना जानेवाला एक माधुवण । सं०—गले तिलमनिया पड़ने बिनाजित बाजुबन फुटन सूखारी रो ।—सं० दरिया, पृ० १७० ।

तिलमयूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी देह पर तिल के समान आधे चिह्न होते हैं ।

तिलमापट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बखिया में बिलारी धोर करमूल में होवेवाली एक कपास ।

तिलमिल—संज्ञा स्त्री० [हि० तिरमिर] लकाबौब । तिरमिराहुट ।

तिलमिलाना—वि० प्र० [हि०] दे० 'तिरमिराना' ।

तिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० तिलमिलाना + घट्ट (प्रत्य०)] तिलमिलाने की क्रिया या भाव । व्याकुलता । बचनी ।

तिलमिली—संज्ञा स्त्री० [हि० तिलमिलाना] तिलमिलाहुट ।

तिलरस—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०) ।

तिलरा—संज्ञा पुं० [देश०] देही लकीर बनाने की छेनी जिसे कछेरे काम में लाते हैं ।

तिलरात्रि—वि०, संज्ञा पुं० [हि०] [वि० स्त्री० तिलरी] दे० 'तिलरा' ।

तिलरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलरी' ।

तिलवट—संज्ञा पुं० [हि० तिल] तिलपट्टी । तिलपपड़ी ।

तिलवन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पोषा जो जंगलों और बगीचों में होता है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है—एक सफेद फूल का, दूसरा नीलापन लिए पीले फूल का । इसमें लंबी फलियाँ लगती हैं । इसके बीज, फूल आदि दवा के काम में आते हैं ।

वैद्यक में तिलवन गरम और वात गुल्म आदि को हूर करनेवाली मानी जाती है । पीली तिलवन माल के ग्रंथों में पड़ती है ।

पर्या०—अजगंधा । खरपुष्पा । सुगंधिका । काबरी । तुंगी ।

तिलवा—संज्ञा पुं० [हि० तिल + वा (प्रत्य०)] तिलों का लड्डू ।

तिलशकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + शकर] तिल और चीनी की बनाई हुई मिठाई । तिलपपड़ी ।

तिलशिखी—संज्ञा पुं० [सं० तिलशिक्षिन्] तिलमयूर (को०) ।

तिलशैल—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का पर्वताकार ढेर जो दान में दिया जाता है ।

तिलशिवक—संज्ञा पुं० [?] तेली । उ०—तेली को तिलशिवक कहा जाता था ।—पार्य० भा०, पृ० २६२ ।

तिलसुषमा—संज्ञा पुं० [सं० तिल + सुषमा] सृष्टि के सभी उत्तम पदार्थों से बोझा बोझा करके एकत्र किया गया सौंदर्यसमूह । उ०—निमित्त सबकी तिलसुषमा से, तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम ।—युगांत, पृ० ४६ ।

विशेष—तिलोत्तमा नामक अप्सरा को सृष्टि ब्रह्मा ने इसी प्रकार की थी । सुँव और उपसुँव नाम के दो असुर चाई इसी तिलोत्तमा के लिये आपस में लड़कर मर गए ।

तिलस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०) ।

तिलस्म—संज्ञा पुं० [प्र० तिलिस्म] १. जादू । इंद्रजाल । २. अपभ्रुत या अलौकिक व्यापार । करामात । चमत्कार । ३. दृष्टिबंध (को०) ४. वह मायारचित विचित्र स्थान जहाँ प्रजीवो गरीब व्यक्ति और चीजें दिखाई पड़ें और जहाँ जाकर सावनी को बाय और उसे घर पहुँचने का रास्ता न मिले ।

मुहा०—तिलस्म तोड़ना = किसी ऐसे स्थान के रहस्य का पता लगा देना जहाँ जादू के कारण किसी की गति न हो ।

यौ०—तिलस्म बंध = तिलस्म और जादू के प्रसर में घाया हुआ साधारणता । तिलस्म-बंदी = जादू के प्रसर में घा आना ।

तिलस्मात—संज्ञा पुं० [प्र० तिलिस्म का बहु व०] मायारचित स्थान । मायाजाल (को०) ।

तिलस्माती—वि० [प्र० तिलिस्मात + फा० ई (प्रत्य०)] १. माया-पूर्ण । तिलस्मी । २. मायावी । जादुगर (को०) ।

तिलरमी—वि० [प्र० तिलिस्म + फा० ई (प्रत्य०)] १. तिलस्म संबंधी । जादू का । २. मायानिमित्त । माया संबंधी (को०) ।

तिलहन—संज्ञा पुं० [हि० तेल + धान्य] फसल के रूप में बोए जानेवाले पोषे जिनके बीजों से तेल निकलता है । जैसे, तिल, सरसों, तीसी इत्यादि ।

तिलांकित दल—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंध ।

तिलांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलाञ्जलि] दे० 'तिलांजली' (को०) ।

तिलांजली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलाञ्जली] मृतक संस्कार का एक अंग ।

विशेष—हिंदुओं में मृतक संस्कार की एक क्रिया जो मुरदे के जल चुकने पर स्नान करके की जाती है। इसमें हाथ की अंगुली में जल भरकर घोर उसमें तिल डालकर उसे मृतक के नाम से छोड़ते हैं।

मुहा०—तिलांजली देना = बिनाकुल त्याग देना। जरा भी संबंध न रखना।

तिलांबु—संज्ञा पुं० [सं० तिलाम्बु] तिलांजली।

तिला—संज्ञा पुं० [प्र०] सुवर्ण। सोना [को०]।

तिला^२—संज्ञा पुं० [प्र० तिलाप्र] वह तेल जो लिगेन्द्रिय पर इसकी शिथिलता दूर करने के लिये लगाया जाय। लिगेन्स। २. दे० 'तिल्ला'।

तिलाक—संज्ञा पुं० [प्र० तिलाक] १. पति-पत्नी-संबंध का भंग। स्त्री पुरुष के नाते का टूटना।

क्रि० प्र०—देना।—सेना।

विशेष—ईसाइयों, मुसलमानों आदि में यह नियम है कि वे आवश्यकता पड़ने पर अपनी विवाहिता स्त्री के एक विशेष नियम के अनुसार संबंध तोड़ देते हैं। उस दशा में स्त्री और पुरुष दोनों को अलग अलग विवाह करने का अधिकार हो जाता है।

यौ०—तिलाकनामा।

२ परित्याग। त्याग देना। छोड़ देना। उ०—बाबु तिलाक पाहि जो खोवे।—चरण० बानी, पृ० २१०।

तिलाकार—वि० [प्र० तिला + कार (प्रत्य०)] सीने की चित्रकारीवाला। उ०—बाबू मुद्दन के हैं देहसी के फिरे दिख या रब। तत्काल ताऊस तिलाकार मुबारक होवे।—भारतेंदु सं०, भा० २, पृ० ७४७।

तिलादानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलदानी'।

तिलात्र—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खिचड़ी।

तिलापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] काना जोरा।

तिलाबा^१—संज्ञा पुं० [हि० तीन + लाबरा, लाना?] वह बड़ा कूड़ा जिसपर एक साथ तीन पुरबट बच सके।

तिलाबा^२—संज्ञा पुं० [प्र० तिलाप्र] रात के समय कोठवाल आदि का शहर में गश्त लगाना। रौंवे।

तिलिग—संज्ञा पुं० [सं० तिलिङ्ग] एक देश का नाम [को०]।

तिलिगा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिलंगा'।

तिलित्स—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का साँप जिसे मोबस भी कहते हैं। २. मजगर [को०]।

तिलिया—संज्ञा पुं० [देश०] १. सरपत। २. दे० 'तेलिया' (विष)।

तिलिस्म—संज्ञा पुं० [प्र०] दे० 'तिलस्म' [को०]।

तिलिस्मात—संज्ञा पुं० [प्र० तिलिस्म का बहु व०] दे० 'तिलस्मात' [को०]।

तिलिस्माती—वि० [प्र० तिलिस्मात + फ्रा० ई (प्रत्य०)] दे० 'तिलस्माती' [को०]।

तिलिस्मी—वि० [प्र० तिलिस्म + फ्रा० ई (प्रत्य०)] दे० 'तिलस्मी' [को०]।

तिली^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. दे० 'तिल'। २. दे० 'तिल्ली'।

तिली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल्ली का संक्षिप्त रूप] दे० 'तिल्ली'।

तिलेती—संज्ञा स्त्री० [हि० तेलहन + एती (प्रत्य०)] तेलहन की खूँटी जो फसल काटने पर खेत में बच जाती है।

तिलेदानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलदानी'।

तिलेगू—संज्ञा स्त्री० [तेलु० तेलुगु] दे० 'तेलगू'।

तिलोक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिलोक'।

तिलोकपति—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोकपति] विष्णु। उ०—तुलसी बिसोक हूँ तिलोकपति गयो नाम को प्रताप बात विदित है जग में।—तुलसी (शब्द०)।

तिलोकी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोकी] इक्कीस मात्राओं का एक उपजाति छंद जो पञ्चम और चात्रायण के मेल के बनता है। इसके प्रत्येक चरण के अंत में सधु गुरु होता है।

तिलोचन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिलोचन'।

तिलोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक परम कपवती अप्सरा जिसके विषय में यह कहा जाता है कि ब्रह्मा ने संसार भर के सब उत्तम पद्मों में से एक एक तिल धंस लेकर इसे बनाया था।

विशेष—इसकी उत्पत्ति द्विस्वाक्ष के सुंघ और अपसुंघ नामक दोनों पुत्रों के नाश के लिये हुई थी जिन्होंने बहुत तपस्या करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि हम लोग किसी दूसरे के मारने से न मरें; और यदि मरें भी तो घापस में ही झड़कर मरें। इन दोनों भाइयों में बहुत स्नेह था और इन्होंने देवताओं तथा इद्र को बहुत तप कर रखा था। इन्हीं दोनों में विरोध कराने के लिये ब्रह्मा ने तिलोत्तमा की सृष्टि की और उसे सुंघ तथा अपसुंघ के निवासस्थान विष्वाचल पर भेज दिया। इसी को पाने के लिये दोनों भाई घापस में झड़ मरे थे।

तिलोदक—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिल मिला अंगुली पर जल जो मृतक के सदैव से दिया जाता है। तिलाजली। उ०—पुत्र न रहता, तो क्या होता कोन फिर देता पिंड तिलोदक।—कल्याण, पृ० १६।

तिलोरि^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलोरी'। उ०—पियरि तिलोरि आव जलहंसा। विरहा पैठि हिप कठ नंसा।—जायसी सं० (गुप्त), पृ० ३६३।

तिलोरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मैना जिसे तैलिया मैना भी कहते हैं। उ०—येह तिलोरी जो बल हैसा। हिरण्य पैठ विरह लग निसा।—जायसी (शब्द०)।

तिलोरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हि० छोरी (प्रत्य०)] दे० 'तिलोरी'।

तिलोहरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] पटसन का रेशा।

तिलौछना—क्रि० स० [हि० तेल + छोछना (प्रत्य०)] थोड़ा

तेल लगाकर चिकना करना। उ०—पुनि पौष्टि गुलाब तिलोधि
फुलेल प्रोगेछे में घाछे प्रोगेछनि कै।—केशव ग्रं०, पृ० २०।

तिलोद्या—वि० [हि० तेल+घोद्या (प्रत्य०)] जिसमें तेल का
सा स्वाद या रंग हो। जैसे, तिलोद्या फल।

तिलोनी—वि० [हि० तेल] सुगंधित। उ०—घाछी तिलोनी
लसे प्रोगिया गसि चोवा की बेलि विराजति लोहन।—
घनानंद, पृ० २१३।

तिलोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल+बरी] उर्व या मूंग की वह
बरी जिसमें कुछ तिल भी मिला हो।

विशेष—इसमें नमक भी पड़ा रहता है और यह भी में तलकर
खाई जाती है।

तिल्य—संज्ञा पुं० [सं० तिल] तिल का खेत। उ०—तिल, उख, प्रलसी सनई और चीना के खेतों को क्रमशः तिल्य तैलीन कहते थे।—संपूर्ण अभि० ग्रं०, पृ० २४६।

तिल्य—वि० तिल की खेती के योग्य [को०]।

तिल्लना—संज्ञा पुं० [?] तिलका नाम का वणवृक्ष।

तिल्लर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की सोहन बिड़िया जिसे होवर भी कहते हैं।

तिल्ला—संज्ञा पुं० [प्र० तिला] १. कलाबत्तू या बादले आदि का काम।

यौ०—तिल्लदार।

२. पगड़ी दुपट्टे या साड़ी आदि का वह घंचल जिसमें कलाबत्तू या बादले आदि का काम किया हो। ३. वह सुंदर पदार्थ जो किसी वस्तु की शोभा बढ़ाने के लिये उसमें जोड़ा दिया जाय। (कव०)।

यौ०—नखरा तिल्ला।

तिल्ला—संज्ञा पुं० दे० 'तिलक' (वर्णवृक्ष)।

तिल्लाना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिलाना'—१।

तिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल्ल, तुमनीय प्र० तिहल (= तिल्ली)]

पेट के भीतर का अवयव जो मांस की पोनी गुठली के आकार का होता है और पसलियों के नीचे पेट की बाईं ओर होता है।

विशेष—इसका संबंध पाकाणय से होता है। इसमें आप हुए पदार्थ का विशेष रस कुछ काल तक रहता है। जबतक यह रस रहता है, जबतक तिल्ली फंसकर कुछ बढ़ी हुई रहती है, फिर जब उस रस को रक्त मोख लेता है, तब वह फिर ज्यों की त्यों हो जाती है। तिल्ली में पहुँचकर रक्तकणिकाओं का रंग बेगनी हो जाता है।

ज्वर के कुछ काल तक रहने से तिल्ली बढ़ जाती है, उसमें रक्त अधिक आ जाता है और कभी कभी छूने से पीड़ा भी होती है। ऐसी अवस्था में उसे छूने से उसमें से लाल रक्त निकलता है। ज्वर आदि के कारण बार बार अधिक रक्त आत रहने से ही तिल्ली बढ़ती है। इस रोग में मनुष्य दिन दिन दुबला होता जाता है, उसका मुँह सूखा रहता है और पेट निकल आता है। वैद्यक के अनुसार, जब दाहकारक तथा कफकारक पदार्थों के विशेष सेवन से श्विर कुपित होकर

कफ द्वारा प्लीहा को बढ़ाता है, तब तिल्ली बढ़ जाती है और मंदाग्नि, जीर्ण ज्वर आदि रोग साथ लग जाते हैं। जवाहार, पलास का छार, शंख की भस्म आदि प्लीहा का आयुर्वेदोक्त औषध हैं। डाक्टरों में तिल्ली बढ़ने पर कुनैन तथा आर्सेनिक (संक्षिप्ता) और सोडा मिली हुई दवाएं दी जाती हैं।

पर्या०—प्लीहा। पिलही।

तिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल] तिल नाम का फल या तेलहन। वि० दे० 'तिल'।

तिल्ली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो आमास और बगमा में ऊँची पहाड़ियों पर होता है।

विशेष—ये बाँस पचास साठ फुट तक ऊँचे होते हैं और इनमें गाँठें दूर दूर पर होती हैं, इससे ये बाँसे बनाने के काम में अधिक आते हैं।

तिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'सीली'।

तिल्लोतमा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिलोत्तमा'। उ०—तिल ऊपर तिल्लोतमा वार कई सो बार।—बाँकी प्र०, भा० ३, पृ० ३३।

तिल्व—संज्ञा पुं० [सं०] लोघ। लोघ।

तिल्वक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोघ। २. तिलिष।

तिल्लारी—संज्ञा स्त्री० [?] आलर की तरह का वह परदा जो घोड़ों के माथे पर उनकी आँखों को मक्खियों से बचाने के लिये बाँधा जाता है। नुकता।

तिवहार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार'। उ०—होली तिवहार की वसंत पञ्चमी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १९८।

तिवारी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिवारी'।

तिव—अव्य० [हि०] दे० 'तिमि'। उ०—उच्छ्रि पाँखी ज्युं माछली जिव जागु तिव उच्छ्रि कबि।—बी० रासो०, पृ० ४८।

तिवई—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री।

तिवई—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री।

तिवाना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तेवाना'। उ०—तब जुमहा दन किन्ह तिवाना।—कबीर सा०, पृ० ७४।

तिवार—अव्य० [?] तदा। तब। उस बार। उस समय। उ०—सम राज अविषि यत्र तिवार। उपराज एह अव्युत विचार।—पृ० रा०, २४। ३१३।

तिवारी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठी] [स्त्री० तिवराइन] त्रिपाठी। वि० दे० 'त्रिपाठी'।

तिवारी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिवारी] वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों। उ०—फूलनि के खंभ फूलनि की तिवारी।—छीत०, पृ० २७।

तिवास—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवासर] तीन दिन। उ०—मव फाटें बायक बरे मिटें सगाई साक। जैसे दूध तिवास की ठण्डि हुवा जो भाक।—कबीर (शब्द०)।

तिवासी—वि० [हि०] दे० 'तिवासी' ।

तिविक्रम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविक्रम] दे० 'त्रिविक्रम' । उ०—दुख कनीज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर । बसत तिविक्रम पुर सदा, तरनि तनूजा तीर ।—भूषण ग्रं०, पृ० १८ ।

तिवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बेसारी ।

तिशना^१—संज्ञा पुं० [प्र० तशनीष् (=बुरा भला कहना)] ताना । मेहना ।

क्रि प्र०—देना ।—मारना ।

औ०—ताना तिशना ।

तिशता^२—वि० [फ्रा० तिशनह्] १. प्यासा । तृपित । २. प्रवृत्त । प्रसंतुष्ट ।

औ०—तिशना काम = (१) तृपित । (२) प्रसफलमनोरथ । तिशना ज़िगर = (१) प्रसफलकाम । (२) प्रभिलाषी । तिशना खूँ = खून का प्यासा । जान का गाहक । तिशन ए दीवार = दर्शन की तृषा ।

तिशनाखब—वि० [फ्रा० तिशनह् लख] १. बहुत प्यासा । तृपित । २. इच्छुक । उ०—भारत ए चरमए कोसर नहीं । तिशनाखब हूँ शरबते दीवार का ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ९ ।

तिशनाह^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—वह तरंग तिशनाह राग बहु प्रेह कुरंती ।—पृ० रा०, १।७६७ ।

तिष^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—जब मूले तब ही तिष लागे ।—प्राण०, पृ० १५ ।

तिष्टी^५—क्रि० सं० [सं० तिष्ठित] स्थापित । निमित्त । उ०—कोउ कहै यह काल उपावत कोउ कहै यह ईश्वर तिष्टी ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१६ ।

तिष्ठद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] वह काल जिसमें गोएँ चरकर अपने खूँटे पर भा जाती हैं । संध्या । सायंकाल । गोधूली ।

तिष्ठद्वोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक होम या यज्ञ जिसमें पुरोहित खड़ा रहकर प्राहुति प्रदान करता है [को०] ।

तिष्ठना^६—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठ] ठहरना । उ०—चौरह भुवन एक पति होई । भूत दोह तिष्ठइ नहि कोई ।—तुलसी (शब्द०) ।

निष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिस्ता नाम की नदी जो हिमालय के पास से निकलकर नवाबगंज के पास गंगा से मिलती है ।

तिष्य^७—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्य नक्षत्र । २. पौष मास । ३. कलियुग । ४. प्रथोक के एक भाई का नाम [को०] ।

तिष्य^८—वि० १. मांसह्य । कल्याणकारी । २. मांसवान [को०] । ३. तिष्य नक्षत्र में उत्पन्न [को०] ।

तिष्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पौष मास ।

तिष्यकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

तिष्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी ।

तिष्यफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी [को०] ।

तिष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमलकी । २. दीप्ति । चमक [को०] ।

तिष्यन^९—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—संघ में पण्डित तिष्यन देण जे सुर समाज में गान गने हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

तिष्णिय^{१०}—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—प्रसिय मुष्ण दंतलिय तरुन तिष्णिय आधारिय ।—पृ० रा० २।१५३ ।

तिसा^{११}—सर्व [सं० तस्य, पा० तस्मिं, प्रा० तस्स, तस्स] 'ता' का एक रूप जो उमे विभक्ति लगने के पूर्व प्राप्त होता है । जैसे, तिसने, तिमको, तिममे इत्यादि ।

विशेष—प्रब इस शब्दप्रकार का व्यवहार गद्य में नहीं होता, केवल 'तिसपर' का प्रयोग होता है ।

मुहा०—तिस पर = (१) उसके पीछे । उसके उपरांत । (२) इतना होने पर । ऐसी अवस्था में । जैसे,—(३) हमारी बीज भी ले गए, तिसपर हमी को बाँवें भी मुनाते हो । (ख) इतना मना किया, तिसपर भाँव बढ़ चना गया ।

तिस^{१२}—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष] दे० 'तृषा' । उ०—नित हितमय उवार मानंदवन रम बरसन आतक तिस ने रे ।—घनानंद, पृ० १६४ ।

तिसखुटी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीसी + खूँटी] तीसी के पीछों के छोटे छोटे बंडल जो फसल कटने पर जमीन में गड़े रह जाते हैं । तीसी की खूँटी ।

तिसखुर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिसखुटी' ।

तिसटना^{१३}—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठ] स्थित रहना । उ०—ज्योरे थोड़ा सैण जग, वेगो धगुन न संत । निमई दिन थोड़ा तिके, भावे सत प्रसंत ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६६ ।

तिसडी^{१४}—वि० [हि० तिस + डी (प्रत्य०)] बेसी । उस तरह की । उ०—नारी इक वीर उमै नर में, तिसडी न खखी सुपनंतर में ।—रघु० क०, पृ० १३३ ।

तिसना^{१५}—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] दे० 'तृष्णा' ।

तिसरा^{१६}—वि० [हि० तीसरा] [सं० तिसरी] दे० 'तीसरा' । उ०—सो प्रगटित निज रूप करि इहि तिमरे अव्याह ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३१ ।

तिसराना—क्रि० सं० [हि० तिसरा से नामिक धातु] तीसरी बार करना ।

तिसराया^{१७}—क्रि० वि० [हि० तिसरा] तीसरी बार ।

तिसरायत—संज्ञा स्त्री० [हि० तीसरा + आयत (प्रत्य०)] १. तीसरा होने का भाव । गैर होने का भाव । २. मध्यस्थ । बिचला ।

तिसरैत—संज्ञा पुं० [हि० तीसरा + एत (प्रत्य०)] १. दो प्रादमियों के भगड़े से भलग एक तीसरा मनुष्य । तटस्थ । मध्यस्थ । २. तीसरे हिस्से का भागिक ।

तिसा^{१८}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—ततं तिसा मनी न बिचारे । विषयन दीन देह प्रतिपारे ।—नंद० ग्रं०, पृ० २११ ।

तिसाना^{१९}—क्रि० प्र० [सं० तृषा] प्यासा होना । तृपित होना । उ०—देखि कै विभूति सुख उपज्यो प्रभूत कोऊ चल्थो मुख माधुरी के लोचन तिसाये हैं ।—प्रिया (शब्द०) ।

तिसाया^{२०}—वि० [हि० तिसाना] तृपित । प्यासा । उ०—वेगम नै रुदिलेसै सल्ला में कहाया । सारा कामलानी खून मेटा का तिसाया ।—शिवर०, पृ० ५७ ।

तिसिया ④—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषित, प्रा० तिसिय] तृषित । व्यासा ।
उ०—या रहनी ते पैकंवर बिपजै, तिसिया मरे संवारा ।
—गोरख०, पृ० २१३ ।

तिसी ④—वि० [हि० तिस + ई (प्रत्य०)] उसी । उ०—साहो
लेता जनम गो सुय करै तिसी तोषी होई ।—बी० रासो,
पृ० ४४ ।

तिसु ④—सर्व० [सं० तस्य, हि० तिस] उसको । उसे । उ०—बिनि
बाखिया तिसु आया स्वादु । नामक बोले हटु बिसमाद ।—
प्राण०, पृ० १३४ ।

तिसो ④—सर्व० [हि०] दे० तिस' । उ०—तक बीजो सोना तिसो
पातर वालो प्रेम ।—वीकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५ ।

तिसूत—संज्ञा पुं० [?] एक दवा का नाम ।

तिसूती^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + सूत] तीन तीन सूत के ताने
बाने से बुना हुआ कपड़ा ।

तिसूती^२—वि० तीन तीन सूत के ताने बाने से बुना हुआ ।

तिस्टा ④—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—नहि भोजन
नहि प्रास नही ईद्री की तिस्टा ।—पलटू०, भा० १, पृ० ५६ ।

तिस्ना ④—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—काम क्रोध
तिस्ना मद माया । पाँचो खोर न छाड़हि काषा ।—बायसी
ग्रं० (गुप्त०), पृ० २०४ ।

तिस्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपुष्पी ।

तिस्स—संज्ञा पुं० [सं० तिस्य] राजा मल्लिक के सगे भाई का नाम ।

तिह ④—संज्ञा स्त्री० [हि०] तिया । स्त्री । उ०—चंदबहु बह ज्यों पाय
बिल्ल । तिह नाह पिण्ड ज्यो सुबस सिल्ल ।—पु० रा०, ३।४६ ।

तिहत्तर^१—वि० [सं० तिसप्तति, पा० तिसप्तति, प्रा० तिहत्तर] जो
गिनती में सत्तर से तीन अधिक हो । तीन ऊपर सत्तर ।

तिहत्तर^२—संज्ञा पुं० १. सत्तर से तीन अधिक की संख्या । २. उक्त
संख्यासूचक एक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७३ ।

तिहड़ा—संज्ञा पुं० [हि० तीन + ह + हट] वह स्थान जहाँ तीन हट्टे
मिलती हों ।

तिहरा^१—वि० [हि०] दे० 'तेहरा' ।

तिहरा^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] [स्त्री० अल्पा० तिहरी] दही जमाने या
दूध दुधने का मिट्टी का बरतन ।

तिहराना—क्रि० [हि० तेहरा] (किसी बात या काम को) तीसरी
बार करना । दो बार करके एक बार फिर दोहराना ।

तिहरी^१—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'तेहरी' ।

तिहरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + हार] तीन लड़कों की माला ।

तिहरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० ती + हट्टी] दूध दुधने या दही जमाने
का मिट्टी का छोटा बरतन ।

तिहवार—संज्ञा पुं० [सं० तिथिवार] पर्व या उत्सव का दिन । त्योहार
वि० दे० 'त्योहार' ।

तिहवारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योहारी' ।

तिहा—संज्ञा पुं० [सं० तिहय] १. रोग । २. चाबल । ३. वपुष । ४.
अच्छाई । सद्भाव [को०] ।

तिहाई^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + भाग] १. तृतीयांश । तीसरा भाग ।
तीसरा हिस्सा ।

तिहाई^२—संज्ञा स्त्री० खेत की उपज । फसल । (पहले खेत की उपज
का तृतीयांश काश्तकार लेता था, इसी से यह नाम पड़ा) ।
उ०—नई तिहाई के मंजुषा खेतन ज्यों ऊगत ।—प्रेमचन०,
भा० १, पृ० ४४ ।

मुहा०—तिहाई काटना = फसल काटना । तिहाई मारी जाना =
फसल का न उपजना ।

तिहाड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] १. क्रोध । तेह । २. बैर । बिगाड़ । उ०—
हित सों हित रनि राम सों रिपु सो बैर तिहाउ । उदासीन सब
सों सरल तुलसी सहज सुभाउ ।—तुलसी (शब्द०) ।

तिहानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बालिशत संबी भौर तीन मंगुल बीड़ी
लकड़ी बिसका काम घूँघिया बनाने में पड़ता है ।

तिहायत^१—संज्ञा पुं० [हि० तिहाई (= तीसरा)] दो भादमियों के ऋगड़े
से चलन एक तीसरा भादमी । तिसरेत । तटस्थ । मध्यस्थ ।

तिहायत ②—वि० [हि०] तीन गुना । उ०—जग रज्जव सुरता बनी
लगी तिहाइत तेज ।—रज्जव० बानी, पृ० ५ ।

तिहाना ④—वि० [सं० तृषित] १. प्यारा होना । २. घट्टा होना ।
उ०—तबहुँ तू किछु पीता कि रहता तिहाय ।—प्राण०,
पृ० १५ ।

तिहारो^१—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' ।

तिहारो ②—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—घोर तुम तो काहू
के घर जात भावत नाहीं । घोर भाज तिहारो भावतो कैसे
भयो ।—दो सी बावन०, भा० २, पृ० ६३ ।

तिहारो ③—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—हो पिय, यह कल
पीत तिहारो । महा अचल के बान अचिवारो ।—नंद० ग्रं०,
पृ० ३२० ।

तिहाखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास की बीड़ी ।

तिहाड़ा—संज्ञा पुं० [हि० तेह (= गुस्ता, ताव)] १. क्रोध । कोप ।
२. बिगाड़ । अनबन ।

तिहि—सर्व० [हि०] दे० 'तेहि' । उ०—कालोबहु सों पकरि स्थाय
नाक्यो तिहि सिर पर ।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० ६३ ।

तिही ④—वि० सर्व० [हि०] दे० 'तेहि' । उ०—अंतरजामी साँवरों,
तिही बैर भयो आइ ।—नंद० ग्रं०, पृ० १ ।

तिही ⑤—सर्व० [हि०] दे० 'तेहि' । उ०—पट्टली फनक की तिही
बानक की बनी मनमोहनी ।—नंद० ग्रं०, पृ० १७५ ।

तिहुँलोक—संज्ञा पुं० [हि० तीन + हूँ (प्रत्य०) + लोक] तीन लोक
स्वर्ग, मर्त्य, पाताल । उ०—राम रहा तिहुँलोक समाई । कर्म
भोग भी खानि रहाई ।—घट०, पृ० २२२ ।

तिहुँ—वि० [हि० तीन + हूँ (प्रत्य०)] तीन । तीनों वैसे, तिहुँ लोक ।

तिहुयन ④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—करिष्य विनति
सों एं प्रायब अन्हि बिनु तिहुयन सीत ।—विद्यापति, पृ० १९६ ।

तिहैया—संज्ञा पुं० [हि० तिहाई] १. तीसरा भाग । तृतीयांश । २.
तबखे मुदंग आदि की वे तीन धारें जिनमें से प्रत्येक धार

अंतिम या समवाले ताल को तीन भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग पर दी जाती है और जिसकी अंतिम याप ठीक समय पर पड़ती है।

तिह्न^④—सर्व [हि०] ३० 'तिन' । उ०—तिह्न के मरत नहि मुएउ खाण गहि बनन सिधाएउ ।—अकबरी०, पृ० १९ ।

तो^⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] १. स्त्री । धीरत । उ०—हैं कब प्राप्त तो इतै सखी लिपार्ई धेरि ।—स० समक, पृ० ३७९ । २. जोड़ । पत्नी । ३. मनोहरण छंद का एक नाम । अमरावली । नलिनी ।

तोअता—संज्ञा स्त्री० [सं० तृणान्न] शाक । भाजी । तरकारी ।

तीकरा—संज्ञा पुं० [देश०] बीज से फुटकर निकला हुआ धुंधला धनुष ।

तीकुर—संज्ञा पुं० [हि० तीन+कुरा (= घण)] फसल की वह बंटाई जिसमें एक तिहाई घण जमींदार और दो तिहाई कायतकार लेता है । तिहाई ।

तीक्ष्ण^⑥—वि० [सं० तीक्ष्ण] ३० 'तीक्ष्ण' ।

तीक्ष्ण^⑦—वि० [सं० तीक्ष्ण] ३० 'तीक्ष्ण' । उ०—आयम किय तीक्ष्ण अनिय सेस मत्त अग्रभीन ।—प० रासी, पृ० ३ ।

तीक्ष्ण^१—वि० [सं०] १. तेज नोक या धारवाला । जिसको धार या नोक इतनी चोखी हो जिससे कोई चीज कट सके । जैसे, तीक्ष्ण बाण । २. तेज । प्रखर । तीव्र । जैसे, तीक्ष्ण प्रोषण, तीक्ष्ण बुद्धि । ३. उग्र । प्रचंड । तीखा । जैसे, तीक्ष्ण स्वभाव । ४. जिसका स्वाद बहुत चटपटा हो । तेज या तीखे स्वादवाला । ५. जो (वाक्य या बात) सुनने में प्रिय हो । कर्णकटु । जैसे, तीक्ष्ण वाक्य, तीक्ष्ण स्वर । ६. आत्मत्यागी । ७. निराश्रय । जिसे आलस्य न हो । ८. जो सहन न हो । अशय ।

तीक्ष्ण^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्ताप । गरमी । २. विष । जहर । ३. हस्तात । लोहा । ४. युद्ध । लड़ाई । ५. मरण । मृत्यु । ६. शास्त्र । ७. समुद्री तमक । करकच । ८. मुष्कक । मोखा । ९. वस्त्रलाभ । वस्त्रलाभ । १०. चण्ड । चाब । ११. महापारी । मरी । १२. यक्षार । जवाहार । १३. सफेद कुशा । १४. कुंदुर पौष । १५. योगी । १६. ज्योतिष में मून, आर्द्रा, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवती नक्षत्रों में बुध की गति ।

तीक्ष्णकंटक—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णकण्टक] १. धतूरे का पेड़ । २. बबूल का पेड़ । ३. इंगुदी का पेड़ । ४. करीब का पेड़ ।

तीक्ष्णकंटका—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णकण्टका] एक प्रकार का वृक्ष जिसे कंकारी कहते हैं ।

तीक्ष्णकंद—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णकन्द] पलाह । प्याज ।

तीक्ष्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोखा वृक्ष । २. सफेद सरसों ।

तीक्ष्णकर्मा^१—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णकर्मन्] उत्साही व्यक्ति [को०] ।

तीक्ष्णकर्मा^२—वि० उत्साही [को०] ।

तीक्ष्णकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] तुंबुर वृक्ष ।

तीक्ष्णकान्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णकान्ता] काशिकापुराण के धनुषार तारा देवी का नाम ।

विशेष—इनका ध्यान कृष्णवर्णी, लंबोदरी और एक जटाधारिणी है । इनके पूजन से प्रसोत् का सिद्ध होना माना जाता है ।

तीक्ष्णक्षीरो—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन ।

तीक्ष्णगंध—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णगन्ध] १. सहिजन का पेड़ । २. लाव तुलसी । ३. लोबान । ४. छोटी इलायची । ५. सफेद तुलसी । ६. कुंदुर नामक गंधद्रव्य ।

तीक्ष्णगंधक—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णगन्धक] सहिजन ।

तीक्ष्णगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णगन्धा] १. श्वेत वन । सफेद वन । २. कंधारी का वृक्ष । ३. राई । ४. जीवंती । ५. छोटी इलायची ।

तीक्ष्णतंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णतण्डुला] पिप्पली । पीपल ।

तीक्ष्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्ण होने का भाव । तीव्रता । तेजी ।

तीक्ष्णताप—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

तीक्ष्णतेल—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'तीक्ष्णतेल' ।

तीक्ष्णतेल—संज्ञा पुं० [सं०] १. राख । २. सेतूँ का वृक्ष । ३. मधिरा । शराब । ४. सरसों का तेल ।

तीक्ष्णत्व—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'तीक्ष्णता' । उ०—इन दोनों के साधारण धर्म कपिलत्व या तीक्ष्णत्व के होने पर यह उपचार होता है कि अग्नि माणवक है ।—संपूर्णा०, अमि० प्र०, पृ० ३१६ ।

तीक्ष्णदंत—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णदन्त] वह जानवर जिसके दाँत बहुत तेज या नुकीले हों ।

तीक्ष्णदंष्ट्र^१—संज्ञा पुं० [सं०] बाघ ।

तीक्ष्णदंष्ट्र^२—वि० तेज धाँतीवाला । जिसके दाँत तेज हो ।

तीक्ष्णदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म बात पर पड़ती हो । सूक्ष्मदृष्टि ।

तीक्ष्णधार^१—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग ।

तीक्ष्णधार^२—वि० जिसकी धार बहुत तेज हो ।

तीक्ष्णपत्र^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुंबुर । धनिया । २. एक प्रकार का पत्ता ।

तीक्ष्णपत्र^२—वि० जिसके पत्तों में तेज धार हो ।

तीक्ष्णपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लवंग । लीन ।

तीक्ष्णपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी ।

तीक्ष्णप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] जो ।

तीक्ष्णफल^१—संज्ञा [सं०] तुंबुर । धनिया ।

तीक्ष्णफल^२—वि० जिसका फल कड़ुपा हो [को०] ।

तीक्ष्णफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] राई ।

तीक्ष्णबुद्धि—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि बहुत तेज हो । कुशाग्र बुद्धिवाला । बुद्धिमान् ।

तीक्ष्णमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णमञ्जरी] पान का पोषा ।

तीक्ष्णमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] तजवार [को०] ।

तीक्ष्णमूल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलंजन । २. सहिजन ।

तीक्ष्णमूल^२—वि० जिसकी जड़ में बहुत तेज गंध हो ।

तीक्ष्णरश्मि^१—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तीक्ष्णरश्मि^२—वि० जिसकी किरणें बहुत तेज हों ।

तीक्ष्णरस^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. यवधार । जवाधार । २. शोरा ।

तीक्ष्णरस^२—वि० चरपरे रमवाला [सं०] ।

तीक्ष्णलौह^१—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात ।

तीक्ष्णशूक^१—संज्ञा पुं० [सं०] यव । जौ ।

तीक्ष्णशूक^२—वि० जिसके टूट पड़े हों [सं०] ।

तीक्ष्णशृंग—वि० [सं० तीक्ष्णशृङ्ग] जिसके सींग पड़े या नुकीले हों [सं०] ।

तीक्ष्णसार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा [सं०] ।

तीक्ष्णसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ ।

तीक्ष्णांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तीक्ष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चक्षु । २. केवाच । ३. सर्पकंकाशी वृक्ष । ४. बड़ी मानकौंगनी । ५. अत्यल्पपर्णी लता । ६. मिर्च । ७. भौक । ८. तारा देवी का एक नाम ।

तीक्ष्णाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रजल जठराग्नि । २. घनोष्ण रोग ।

तीक्ष्णाम्र—वि० [सं०] जिसका अमला भाग तेज या नुकीला हो । पैनी नोपवाला ।

तीक्ष्णायस—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात लोहा ।

तीक्ष्ण(पुं०)—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—धनिल धनम वन मलयज बीक्ष । जेहु छन सोलज सेहु भेल तोभ ।—विद्यापति, पृ० १६६

तीक्ष्ण(पुं०)—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तीक्ष्ण—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तीक्ष्ण—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तीक्षा^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] [वि० स्त्री० तीक्ष्णी] १. जिसकी धार या नोक बहुत तेज हो [सं०] । २. तेज । तीव्र । प्रखर । ३. उग्र । प्रचंड । जैसे, तीक्षा रवभाव । ४. जिसका रवभाव बहुत उग्र हो । जैसे,—(क) तुम तो बड़े तीक्ष्ण दिलवाई पड़ते हो । (ख) यह लड़का बहुत तीक्षा होगा । ५. जिसका स्वाद बहुत तेज या चरपरा हो । जो वाक्य या बात सुनने में अप्रिय हो । ७. कोखा । बड़िया । अच्छा । जैसे,—यह कपड़ा उसमें तीक्षा पड़ता है ।

तीक्षा^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तीक्षापन—संज्ञा पुं० [हि० तीक्षा + पन] पैनापन । तीक्ष्णता [सं०] ।

तीक्ष्ण—संज्ञा स्त्री० [हि० तीक्षा] रेशम फेरनेवालों का काठ का एक औजार जिसके बाज में भज डालकर उसपर रेशम फेरते हैं ।

तीक्ष्ण—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्ण] हथौड़ी की जाति का एक प्रकार का पीछा जो पूर्व, मध्य तथा दक्षिण भारत में अधिकता से होता है ।

विशेष—अच्छी तरह जोती हुई जमीन में चाड़े के आरंभ में इसके कंधे गाड़े जाते हैं और बीच बीच में बराबर सिचाई की जाती है । पूस माघ में इसके पत्ते झड़ने लगते हैं और तब यह पकका समझा जाता है । उस समय इसकी जड़ खोदकर

पानी में खूब धोकर कुटते हैं और इसका सत्त निजाकर जो बड़िया मेदे की तरह होता है । यही सत्त बाजा, तीक्ष्ण के नाम से बिकता है और इसका व्यवहार तरह की मिठाइयाँ, लड्डू, सेव, जलेबी आदि बनाया जाता है । हिंदू लोग इसकी गणना 'फलाहार' में करते हैं इसे पानी में घोलकर दूध में छोड़ने से दूध बहुत गाढ़ा होता है, इसलिये लोग इसकी खीर भी बनाते हैं । यह एक प्रकार का तीक्ष्ण विलायत से भी आता है जिसे घराने कहते हैं । वि० दे० 'अराहट' ।

तीक्ष्ण—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तीक्ष्ण(पुं०)—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—उत्तमांग नहिं निपु-
ब्रिय करत न तीक्ष्ण दंत ।—प० रासो, पृ० २ ।

तीक्ष्ण(पुं०)—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—कनक कामिनी बड़े
खोले हैं तीक्ष्ण धारा । तब बसि है तरबूज रहै सूरी से
न्यारा ।—पलटू, भा० १, पृ० ५३ ।

तीक्ष्णता(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] दे० 'तीक्ष्णता' ।

तीक्ष्ण(पुं०)—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—दूरि तैं दूर नजीक
ते नोरे दि पाउ ते आडी है तीक्ष्ण तैं तीक्ष्ण ।—सुंदर० गं०
भा० २, पृ० १५७७ ।

तीज—संज्ञा स्त्री० [सं० तृतीया] १. प्रत्येक पक्ष की तीसरी तिथि । २. हरतालिका तृतीया । भादों सुदी तीज । वि० दे० 'हरतालिका' । उ०—इंद्रावति मन प्रेम पियारा । पट्टणा प्राइ तीज
तेवहारा ।—इंद्रा०, पृ० ६० ।

तीजना(पुं०)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तजना' । उ०—मुरल राजा प्रप
प्रयाण हुं किम चालुं एकलो ? आ गइ गोरी तीज पराण ।
बी० रासो, पृ० ८६ ।

तीजा^१—संज्ञा पुं० [हि० तीज] मुसलमानों में किसी के मरने के दिन में तीसरा दिन ।

विशेष—इस दिन मृतक के संबंधी गरीबों को रोटियाँ बाँटते और कुछ पाठ करते हैं ।

तीजा^२—वि० [वि० स्त्री० तीजी] तीसरा । तृतीय । उ०—के दिन
सिरजे सो सही, तीजा कोई नहिं ।—रजव०, पृ० ३ ।

तीजापन(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० तीजा + पन (प्रत्य०)] तीसरी अवस्था । उ०—तीजापन में कुटुंब मयों तब प्रति अभिमान
बढ़ायो रे ।—सुंदर० गं०, भा० २, पृ० ६६ ।

तीजी(पुं०)—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'तीजा' । उ०—तीजी रानी है
मनपौई । लज्जा कारण न भाने कोई ।—कबीर सा०,
पृ० ५५० ।

तीड़ा(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिड्डी' । उ०—तीड़ा करधण
सुपियों, बानरड़ा तू बाग ।—बाँकी० गं०, भा० २,
पृ० ६३ ।

तीड़ी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिड्डी' । उ०—मंत्र सकसी मंत्र
सूँ, उयी तीड़ी से जाय ।—रा० क०, पृ० १७६ ।

तीत^१—वि० [सं० तिक्त] दे० 'तीता' । उ०—करिष्य वितति सी
एं भायब जहि किनु सिद्धपन तीत ।—विद्यापति, पृ० १६६ ।

तीतना^१—क्रि० प्र० [हि०] भोगना । गीला होना । उ०—
अलकहि तीतल तँहि प्रति सोभा । अलिकुल कमल वेदन मुख
लोभा ।—विद्यापति, पृ० ३१६ ।

तीतर—संज्ञा पुं० [सं० तितिर] एक प्रसिद्ध पक्षी जो समस्त एशिया
और यूरोप में पाया जाता है और जिसकी एक जाति अमेरिका
में भी होती है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है और केवल सोने के समय
को छोड़कर बराबर इधर उधर चलता रहता है । यह बहुत
तेज बीड़ता है और भारत में प्रायः कपास, गेहूँ या चावल
के क्षेत्रों में जाल में फँसाकर पकड़ा जाता है । इसका घोंसला
जमीन पर ही होता है और इसके घंटे चिकने और घबेदार
होते हैं । लोग इसे लड़ाने के लिये पावते, इसका शिकार करते
और मांस खाते हैं । वैद्यक में इसके मांस को रुचिकारक,
मधु, वीर्य-बल-वर्धक, कषाय, मधुर, ठंडा और श्वास, काम,
ज्वर तथा त्रिदोषनाशक माना है । भावप्रकाश के अनुसार
काले तीतर के मांस की अपेक्षा चितकबरे तीतर का मांस
अधिक उत्तम होता है ।

तीता^१—वि० [सं० तिक्त] १. जिसका स्वाद तीखा और चरपरा
हो । तिक्त । जैसे, मिर्च ।

विशेष—यद्यपि प्राचीनों ने तिक्त और कटु में भेद माना है, पर
भाजकल साधारण बोलचाल में 'तीता' और 'कटु' दोनों
'शब्दों' का एक ही अर्थ में व्यवहार होता है । कुछ प्रांतों में
केवल 'कटु' शब्द का व्यवहार होता है और उससे तात्पर्य
भी बहुधा एक ही रस का होता है । जिन प्रांतों में 'तीता'
और 'कटु' दोनों शब्दों का व्यवहार होता है, वहाँ भी इन
दोनों में कोई विशेष भेद नहीं माना जाता ।

२. कटुता । कटु ।

तीता^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. ओतने बोलने की जमीन का गीलापन ।
२. ऊसर भूमि । ३. डेकी या रहट का अगला भाग । ४.
ममीरे के भाड़ का एक नाम ।

तीता^३—वि० [हि०] भीगा हुआ । गीला । नम ।

तीति^१—वि० स्त्री० [हि० तीत] तिक्त । उ०—आहु रसलि कालि
जसे बैससि तीति होइति मधु जामिनि रे ।—विद्यापति,
पृ० ६६ ।

तीतिर^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीतर' । उ०—... तीतिर को
हीमक के वास्ते घुमाया करते हैं ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० ४३ ।

तीती^१—वि० [हि०] दे० 'तीता' । उ०—उड़व और सुनी है
कषा घब, पाए है स्याम वहाँ कोऊ तीती ।—नट०, पृ० ३५ ।

तीतुरी^१—संज्ञा पुं० [हि० तीतर] दे० 'तीतर' ।

तीतुरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरुली' ।

तीतुरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० तीतर] माथा तीतर । तीतरी ।
उ०—हंसा हरेई बाजि । तीतुरिय तँबी साजि ।—ह० रामो,
पृ० १२५ ।

तीतुल^१—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० तीतुली] दे० 'तीतर' ।

तीन^१—वि० [सं० त्रीणि] जो दो और एक हो । जो गिनती में
चार से एक कम हो ।

तीन^२—संज्ञा पुं० १. दो और चार के बीच की संख्या । दो और एक
का जोड़ । २. उक्त संख्यासूचक शब्द जो इस प्रकार लिखा
जाता है—३ ।

यौ०—तीन ताग=जनेऊ । यज्ञोपवीत । उ०—ना में तीन ताग
गलि नाऊँ । ना में मुन्न करि बोरऊँ ।—सुंदर० प्र०,
भा० १ (भू०), पृ० ६२ ।

मुहा०—तीन पाँच करना=इधर उधर करना । घुमाव फिरोव
या हड़बत की बात करना ।

तीन^३—संज्ञा पुं० सरसूपारी ब्राह्मणों में तीन गोत्रों का एक वर्ग ।

विशेष—सरसूपारी ब्राह्मणों में सोलह गोत्र होते हैं जिनमें से
तीन गोत्रवालों का उत्तम वर्ग है और तेरह गोत्रवालों का
दूसरा वर्ग है ।

मुहा०—तीन तेरह करना=तितर बितर करना । इधर उधर
छितराना या अलग अलग करना । उ०—कियो तीन तेरह
सबै चौका चौका भाग ।—हरिवंश (शब्द०) । न तीन में, न
तेरह में=जो किसी गिनती में न हो । जिसे कोई पूछता न
हो । उ०—कुंभ कान नाम पट्टी ऐसे मोर्चे जानराय पल्ल तुम
नारे हैं न तेरह न तीन में ।—हनुमान (शब्द०) ।

तीन^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] तिल्ली का बाबल ।

तीनपान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत मोटा रस जिसकी
मोटाई कम से कम एक फुट होती है (लघ०) ।

तीनपाम—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीनपान' ।

तीनसड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन+सड़ी] गले में पहनने की एक
प्रकार की माला जिसमें तीन लड़ियाँ होती हैं । तिसड़ी ।

तीनि^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीन' ।

तीनि^२—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—बर बरनी, तरुनी
रंग भीनी । दासी बीनि तीनि सत दीनी ।—नंद० प्र०,
पृ० २२१ ।

तीनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिस्री] तिसरी का बाबल ।

तीपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] रेणुमी कपड़ा बुननेवालों का एक छोटा
जिसके नीचे ऊपर दो लकड़ियाँ लगी रहती हैं जिन्हें बेसर
कहते हैं ।

तीमार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रोगी की देखभाल । सेवा शुश्रूषा [की०] ।

तीमारदार—वि० [फ़ा०] परिचर्या करनेवाला । उ०—पड़िए पर
बीमार तो कोई न हा तीमारदार । और अगर मर जाइए तो
नोहाखी कोई न हो ।—कविता की०, भा० ४, पृ० ४७१ ।

तीमारदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रोगियों की सेवा शुश्रूषा का काम ।

तीय^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्री । औरत । नारी । उ०—पति
देवता तीय जगधन जन गजवत बेद पुरान ।—मार्तण्ड प्र०,
भा० १, पृ० ६७६ ।

तीय^२—वि० [सं० तृतीय] तीसरा ।

तीया'④—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'तीय' ।

तीया^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिथी' या 'तिथी' ।

तीरंदाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० तीरंदाज] वह जो तीर चलाता हो । तीर चलानेवाला ।

तीरंदाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तीरंदाजी] तीर चलाने की विद्या या क्रिया ।

तीर^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी का किनारा । कुल । तट । उ०—
बिच बिच कथा बिचित्र बिपाया । जनु सरि तीर तीर बन
बागा ।—मानस, १।४० ।

२. पास । समीप । निकट ।

विशेष—इस अर्थ में इसका उपयोग विभक्ति का खोप करके
क्रियाविशेषण की तरह होता है ।

३. सीमा नामक भाग । ४. राँगा । ५. गंगा का तट (को०) । ६.
एक प्रकार का बाण (को०) ।

तीर^२—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाण । धर । उ०—तीराँ उपर तीर
छद्दि, सेनाँ उपर सेज ।—हम्मीर०, पृ० ४८ ।

विशेष—यद्यपि पंचवली प्रादि कुछ प्राधुनिक ग्रंथों में तीर शब्द
बाण के अर्थ में आया है, तथापि यह शब्द वास्तव में है
कारखी का ।

क्रि० प्र०—चलाया ।—झोड़ना । फेंकना ।—तबना ।

मुहा०—तीर चलाता=युक्ति सिद्धान्त । रंग उग मगाना ।
बैठे,—तीर तो गहरा चलाया था, पर खाली गया । तीर
फेंकना=दे०='तीर चलाना' । जगें तो तीर नही तो तुम्हारा =
कार्यसिद्धि पर ही साधन की उपयोगिता है ।

तीर^३—संज्ञा पुं० [?] बहाज का मस्तूल ।

तीर^४—वि० [हि० तिरना (- पार करना)] पारंपर्य । जानकार ।
उ०—बादशाह करे बिहीर सन्ध हिंदुं पकीर । अज्ञान मे
तीर रणधीर भाए है ।—दक्खिनी०, पृ० ५० ।

तीरकस④—संज्ञा पुं० [फ़ा० तीरकस] तरकश । उ०—निप
सयाह तीरकस भारे ।—हामीर०, पृ० ३८ ।

तीरकारी⑤—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तीर + कारी] १. धारों की वर्षा ।
उ०—यई तीरकारी छुटे नाख बानं । एरो सोर की धुंध
सुभके ब बानं ।—पृ० १०, १।४५१ ।

तीरगर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो तीर बनाता हो । तीर बनानेवाला
कारीगर । उ०—गुह कीन्हों इसकीसवीं जाहि तीरगर जान ।
—मनविरक्त०, पृ० २६७ ।

तीरज—संज्ञा पुं० [सं०] किनारे पर का बुल (को०) ।

तीरण—संज्ञा पुं० [सं०] करंज ।

तीरथ—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ' । उ०—तीरथ घनादि
पंचगंगा मयीकनिकादि मात आवरण मध्य पुन्य करी घसी
है ।—भारतेन्दु पं० भा० १, पृ० २८१ ।

विशेष—तारथ के योगिक शब्दों के लिये दे० 'तीर्थ' के
योगिक शब्द ।

तीरथपति④—संज्ञा पुं० [हि० तीरथ + पति] तीर्थराज । प्रयाग ।

उ०—माघ मकर गत रहि जब होई । तीरथपतिहि भाव न
कोई ।—मानस, १।४४ ।

तीरभुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा, गंडकी और कोशिकी (१)
नदियों से घिरा हुआ तिरहुत देश ।

तीरवर्ती—वि० [सं० तीरवर्तिन्] १. तट पर रहनेवाला । कि० ।
पर रहनेवाला । २. समीप रहनेवाला । पास रहनेवाला ।
पड़ोसी । ३. तीरस्थ । तीर पर स्थित ।

तीरस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी के तीर पड़वाया हुआ मरगु, मय
व्यक्ति ।

विशेष—अनेक जातियों में यह प्रथा है कि रोगी जब मरने का
होता है, तब उसके संबंधी पहले ही उसे नदी के तीर पर ले
जाते हैं; क्योंकि धार्मिक दृष्टि से नदी के तीर पर मरना
अधिक उत्तम समझा जाता है ।

२. तीर पर स्थित । तीर पर बसा हुआ ।

तीरा④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीर' ।

तीराट—संज्ञा पुं० [सं०] खोब ।

तीरित—वि० [सं०] निरुपेय किया हुआ । पै किया हुआ (को०) ।

तीरित^२—संज्ञा पुं० १. कार्य की पूर्णता या समाप्ति । २. रिश्वत या
अन्य साधनों से दंडित होने से बचना (को०) ।

तीरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । महादेव । २. शिव की स्तुति ।

तीरुं वि० [सं०] १. जो पार हो गया हो । उत्तीर्ण । २. जो
सीमा का उत्खनन कर चुका हो । ३. जो सीमा हुआ
हो । तरबतर ।

तीर्णपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालपुत्र । मुत्तरी ।

तीर्णपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तीर्णपदा' ।

तीर्णप्रतिज्ञा—वि० [सं०] जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हो (को०) ।

तीर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक
नगण और एक गुरु (॥ ॥) होता है । इसको 'सती', 'तिन्व'
और 'तराणिजा' भी कहते हैं । जैसे, नगपती । बनसती । बिन्दु
कहो । मुख सहो ।

तीर्थंकर—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थंकर] १. जैनियों के उपास्य देव जो
देवताओं से भी श्रेष्ठ और सब प्रकार के दोषों से रहित,
मुक्त और मुक्तिदाता माने जाते हैं । इनकी मूर्तियाँ विगंब
बनाई जाती हैं और इनकी प्राकृति प्रायः बिलकुल एक हो
जाती है । यंत्र उनका धर्म और उनके सिंहासन का आकार
ही एक दूसरे से भिन्न होता है ।

विशेष—गत उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थंकर हुए थे जिनके नाम ये
हैं—१. केवलजानी । २. निर्वाणी । ३. मापर । ४. महाधय ।
५. निमलनाथ । ६. सर्वानुभूति । ७. श्रीधर । ८. दत्त ।
९. दामोदर । १०. सुतेज । ११. स्वामी । १२. मुनिपुत्र ।
१३. सुमति । १४. शिवगति । १५. प्रस्ताग । १६. वैमोश्वर ।
१७. मनल । १८. यशोधर । १९. कृतार्थ । २०. जिनेश्वर ।
२१. शुद्धमति । २२. शिवकर । २३. स्पंदन और । २४.
संप्रति । वर्तमान अवसर्पिणी के आरंभ में जो चौबीस तीर्थंकर
हो गए हैं उनके नाम ये हैं—

१. ऋषभदेव । २. अजितनाथ । ३. संभवनाथ । ४. अभिनंदन । ५. सुमतिनाथ । ६. पद्मप्रभ । ७. सुराश्वनाथ । ८. चंद्रप्रभ । ९. सुबुधनाथ । १०. शीतलनाथ । ११. श्रेयांसनाथ । १२. वासुपूज्य स्वामी । १३. विमलनाथ । १४. अनंतनाथ । १५. धर्मनाथ । १६. भातिनाथ । १७. कुंतुनाथ । १८. अमरनाथ । १९. मलिननाथ । २०. मुनि सुव्रत । २१. नमिनाथ । २२. नेमिनाथ । २३. पार्श्वनाथ । २४. महावीर स्वामी । इनमें से ऋषभ, वासुपूज्य और नेमिनाथ की मूर्तियाँ योगाभ्यास में बैठी हुई और बाकी सब की मूर्तियाँ खड़ी बनाई जाती हैं ।

२. विष्णु (को०) । ३. शास्त्रकर्ता (को०) ।

तीर्थकृत—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थकृत] १. जैनियों के देवता । जिन । २. शास्त्रकार ।

तीर्थ'—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पवित्र वा पुण्य स्थान जहाँ धर्म-भाव से लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदि के लिये जाते हैं । जैसे, हिंदुओं के लिये काशी, प्रयाग, जगन्नाथ, गया, द्वारका आदि; अथवा मुसलमानों के लिये मक्का और मदीना ।

विशेष—हिंदुओं के शास्त्रों में तीर्थ तीन प्रकार के माने गए हैं,—(१) जंगम; जैसे, ब्राह्मण और साधु आदि; (२) मानस; जैसे, सत्य, दया, दान, संतोष, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, धैर्य, मधुर भाषण आदि; और (३) स्थावर; जैसे, काशी, प्रयाग, गया आदि । इस शब्द के अंत में 'राज', 'पति' अथवा इसी प्रकार का और शब्द लगाने से 'प्रयाग' अर्थ निकलता है,—तीर्थराज या तीर्थपति = प्रयाग । तीर्थ जाने अथवा वहाँ से लौट आने के समय हिंदुओं के शास्त्रों में मिर मुँहकर आठ करने और ब्राह्मणों को भोजन कराने का भी विधान है ।

२. कोई पवित्र स्थान । ३. हाथ में के कुछ विनिष्ट स्थान ।

विशेष—दाहिने हाथ के अंगूठे का ऊपरी भाग ब्रह्मतीर्थ, अंगूठे और तर्जनी का मध्य भाग विवृतीर्थ, कनिष्ठा उँगली के नीचे का भाग प्राजापत्य तीर्थ और उँगलियों का अगला भाग देव-तीर्थ माना जाता है । इन तीर्थों से क्रमशः आधमन, पिंडदान, पितृकार्य और देवकार्य किया जाता है ।

४. शास्त्र । ५. यज्ञ । ६. स्थान । स्थल । ७. उगम । ८. अवतार । ९. नारीरज । रजरत्न का रक्त । १०. अवतार । ११. चरणावृत्त । देव-स्नान-जल । १२. उपाध्याय । गुरु । १३. मंत्री । प्रमात्य । १४. जोति । १५. दर्शन । १६. घाट । १७. ब्राह्मण । विप्र । १८. निवान । कारण । १९. अग्नि । २०. पुण्यकाल । २१. संन्यासियों की एक उपाधि । २२. वह जो तार दे । तारनेवाला । २३. वैरभाव को त्यागकर परस्पर उचित व्यवहार । २४. ईश्वर । ५. माता पिता । २६. पतिथि । मेहुमात्र । २७. राष्ट्र की अठारह संरक्षियाँ ।

विशेष—राष्ट्र की इन अठारह संरक्षियों के नाम हैं,—(१) मंत्री, (२) पुरोहित, (३) युवराज, (४) भूपति, (५) द्वारपाल, (६) अंतर्वसिक, (७) कारागाराध्यक्ष, (८) द्रव्य-

४-५६

संचयकारक, (९) कृत्याकृत्य धर्म का विनियोजक, (१०) प्रदेष्टा, (११) नगराध्यक्ष, (१२) कार्य निर्माणकारक, (१३) घमाध्यक्ष, (१४) सभाध्यक्ष, (१५) दंडपाल, (१६) दुर्गपाल, (१७) राष्ट्रांतपाल और (१८) अटवीपाल ।

२८. मार्ग । पथ (को०) । २९. जलाशय (को०) । ३०. साधना । माध्यम (को०) । ३१. स्रोत । मूल (को०) । ३२. मंत्रणा । परामर्श । जैसे कृततीर्थ = जो मंत्रणा कर चुका हो । ३३. चात्वाल और उत्कर के बीच का वेदी का पथ (को०) ।

तीर्थ^२—वि० १. पवित्र । पानन । पूत । २. मुक्त करनेवाला । रक्षक (को०) ।

तीर्थक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण । उ०—वृवागचाग कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि के तीर्थक भी ऐसा ही कहते हैं ।—संपूर्ण० अभि० अं०, पु० ३५४ । २. तीर्थकर । ३. वह जो तीर्थों की यात्रा करता हो ।

तीर्थक^२—वि० १. पवित्र । २. पूज्य (को०) ।

तीर्थकमंडलु—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थकमण्डलु] वह कमंडल जिसमें तीर्थजल हो (को०) ।

तीर्थकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. जिन । ३. शास्त्रकार (को०) ।

तीर्थकाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीर्थ का कीवा । २. अत्यंत लोभी व्यक्ति (को०) ।

तीर्थकृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिन । २. शास्त्रकार (को०) ।

तीर्थचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर्थयात्रा (को०) ।

तीर्थदेव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

तीर्थपति—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'तीर्थराज' ।

तीर्थपाद—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

तीर्थपादीय—संज्ञा पुं० [सं०] वेणुव ।

तीर्थपुरोहित—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थ का पंडा (को०) ।

तीर्थयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्र स्थानों में दर्शन स्नान आदि के लिये यात्रा । तीर्थटन ।

तीर्थराज—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग ।

तीर्थराजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी (को०) ।

तीर्थराजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी ।

विशेष—काशी में सब तीर्थ हैं, इसी से यह नाम पड़ा है ।

तीर्थवाक—संज्ञा पुं० [सं०] सिर के बाल (को०) ।

तीर्थबायस—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'तीर्थकाक' (को०) ।

तीर्थविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर्थ से करणीय कार्य । जैसे, औरकर्म (को०) ।

तीर्थशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] घाट तक जानेवाली पत्थर की सीढ़ियाँ (को०) ।

तीर्थशौच—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थस्थल पर घाट आदि का परिष्कार करने या कराने की क्रिया (को०) ।

तीर्थसेनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

तीर्थसेवी^१—वि० [सं० तीर्थसेविन्] धार्मिक भाव से तीर्थ में रहने-वाला [को०] ।

तीर्थसेवी^२—संज्ञा पुं० बगुला [को०] ।

तीर्थोदन—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थयात्रा ।

तीर्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीर्थ का ग्रहण । पंढा । २. बौद्धों के अनुसार बौद्धधर्म का विद्वेपी ब्राह्मण । ३. तीर्थंकर ।

तीर्थिया—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ + हि० इया (प्रत्य०)] तीर्थंकरों को माननेवाला, जैनी ।

तीर्थभूत—वि० [सं०] १. पवित्र । शुद्ध । २. पूज्य [को०] ।

तीर्थोद्भूत—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थ या पवित्र प्रल [को०] ।

तीर्थ्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वस्त्र का नाम । २. सहपाठी ।

तीर्थ्य^२—वि० तीर्थ से संबंधित [को०] ।

तीर्न—संज्ञा पुं० [सं० तीर्ण] दे० 'तीर्ण' ।

तील^(१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिम' । उ०—उलटि तील तेल भरंगे नीर भरंगे बाई । भाद बिद गांठी पड़िगा मनवा कही न जाई । —रामानंद०, पृ० १५ ।

तीलखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिट्ठिया ।

तीला—संज्ञा पुं० [सं० तीर] तिब्बत । विशेषतः बड़ा तिनका ।

तीली—संज्ञा स्त्री० [फा० ती (= बाण)] १. बड़ा तिनका । सीक । २. धातु आदि का पतला, पर कड़ा तार । ३. कपड़े में ढरकी की वह सीक जिसमें नरी पहनाई जाती है । ४. नीलियों की वह कृत्रिम जिससे जुलाहे मुँह साफ करते हैं । ५. पक्वों का वह घोड़ा जिससे वे रेशम लपटते हैं । इसमें लोहे का एक तार होता है जिसके एक सिरे पर लकड़ी का एक गोला टुकड़ा लगा रहता है ।

तील^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] रबी । घोरत ।

तील^(२)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तीव' । उ०—तीवह कंवख सुगंध धरीक । समुख सहार सोई न बाक । —जायसी (शब्द०) ।

तीलनी—संज्ञा पुं० [सं० तेमन (= श्वान)] १. पकवान । २. रसदार तरकारी ।

तीवर—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. व्याघ्र । शिकारी । ३. तीवर । मछुआ । ४. एक वर्णसंकर धन्यज जाति ।

विशेष—यह ब्रह्मदेवतं पुराण के अनुसार राजपूत माता और क्षत्रिय पिता के गर्भ से तथा पराक्षर के मछ से राजपूत माता और पुरुषंक पिता के गर्भ से उत्पन्न है । कुछ लोग तीवर और तीवर को एक ही मानते हैं । स्मृति के अनुसार तीवर को स्पर्श करने पर स्नान करने की आवश्यकता होती है ।

तीव्र^१—वि० [सं०] १. अनिशय । अत्यंत । २. तीक्ष्ण । तेज । ३. बहुत गरम । ४. निरंतर । नेहुर । ५. कटु । कड़वा । ६. दुःसह । असह्य । न सहने योग्य । ७. प्रबल । ८. तीक्ष्ण । ९. वेगयुक्त । तेज । १०. कुछ ऊँचा और घाने स्थान से बड़ा गुणा (स्वर) ।

विशेष—संगीत में ५ स्वरों—श्रवम, गांधार, मध्यम, धैवत और निषाद के तीव्र रूप होते हैं । वि० दे० 'कोमल' ।

तीव्र^२—संज्ञा पुं० १. लोहा । २. इस्पात । ३. नदी का किनारा । ४. शिव । महादेव ।

तीव्रकंठ—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रकण्ठ] सूरन । जमीकंद । घोल ।

तीव्रकंद—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रकण्ठ] सूरन [को०] ।

तीव्रगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तीव्रगन्धा] अजवायन । यवानी ।

तीव्रगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तीव्रगन्धिका] दे० 'तीव्रगंधा' ।

तीव्रगति^१—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं०] वायु । हवा ।

तीव्रगति^२—वि० तेज चलवाला [को०] ।

तीव्रगामी—वि० [सं० तीव्रगामिन्] [वि० स्त्री० तीव्रगामिनी] तेज गतिवाला । तेज पाव का ।

तीव्रज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] धूप का फूट जिसके लुके से धोप कहते हैं, चरीर में पाव हो जाता है ।

तीव्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीव्र का भाव । तीक्ष्णता । तेजी । तीव्रता । प्रसरता ।

तीव्रद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

तीव्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रबन्ध] तमोगुण [को०] ।

तीव्रवेदना—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक पीड़ा । भयंकर दुःख [को०] ।

तीव्रसंवेग—वि० [सं०] दृढ़ निश्चयवाला । अटल [को०] ।

तीव्रसख—संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

तीसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सप्तम स्वर की चार श्रुतियों में से पहली श्रुति । २. मरकारिणी । लुरासानी अजवायन । ३. राई । ४. बाँडर दूध । ५. तुलसी । ६. बड़ी मालकमनी । ७. फुटकी । ८. तरबी बुझ ।

तीवानंद—संज्ञा पुं० [सं० तीवानन्द] महादेव । शिव [को०] ।

तीवानुराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीबियों के अनुसार एक प्रकार का प्रतिचार । परस्त्री या परपुरुष से अत्यंत अनुराग करना अथवा काम की बुद्धि के विषे मछीम, करतूरी आदि खाया । २. अत्यधिक प्रेम [को०] ।

तीस^१—वि० [सं० त्रिषति, पा० तीसा] जो बिनती में उनबीस के बाद और दसतीस के पहले हो । जो दस का तिगुना हो । बीस और दस ।

यो—तीसों दिन या तीस दिव = सप्ता । हुमेका । तीसमार खा = बहुत बीर । बड़ा बहादुर (अप्य) ।

तीस^२—संज्ञा पुं० दस की तिगुनी संख्या जो चारों में इस प्रकार बिली जाती है—१० ।

तीस^३—संज्ञा पुं० [?] घामलकी । उ०—रंजि बिपन बाटिका तीस दुम छाई रहति तब ।—पृ० रा०, २५ । ३ ।

तीसना^(१)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टीसना' ।

तीसर^१—वि० [हि०] दे० 'तीसरा' । उ०—तब शिव तीसर नयन उधारा । चितवत काम अयउ जरि छारा ।—मानस, १।८७ ।

तीसरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीसरा] खेत की तीसरी जुताई ।

तीसरा—वि० [हि० तीन + सारा (प्रत्य०)] १. क्रम में तीन के स्थान पर पड़नेवाला । जो दो के उपरान्त हो । जिसके पहले दो घोर हों । उ०—दूसरे तीसरे पाँचमें सातमें आठमें तो मला भाइयो कीजिए ।—ठाकुर०, पृ० २ । २. जिसका प्रस्तुत विषय से कोई संबंध न हो । संबंध रखनेवालों से भिन्न, कोई घोर । जैसे,—जुहमारी बात, न तुम्हारी बात, तीसरा जो कहे, वही हो ।

थी०—तीसरा पहर=दोपहर के बाद का समय । दिन का तीसरा पहर । अपराह्न ।

तीसवाँ—संज्ञा पुं० [हि० तीस + वाँ (प्रत्य०)] क्रम में तीस के स्थान पर पड़नेवाला । जो कततीस के उपरान्त हो । जिसके पहले सवतीस घोर हों ।

तोसी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतसी] प्रतसी नामक तेजहन । वि० ३० 'प्रतसी' ।

तोसी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तीस + ई (प्रत्य०)] १. फल आदि गिनने का एक मान जो तीस गान्धियों अर्थात् एक सौ पचास का होता है । २. एक प्रकार की धेनी जिससे लोहे की थालियों आदि पर नकाशी करते हैं ।

तीहा^१—संज्ञा पुं० [सं० तुष्टि ?] १. तसल्ली । आश्वासन । २. धैर्य । धीरता । ३. संतोष ।

तीहा^२—संज्ञा पुं० [हि० तिहाई] तिहाई । जैसे, पाया तीहा । विशेष—इसका प्रयोग समास ही में होता है ।

[५]—सर्व० [हि०] ३० 'तुम' । उ०—तुं भाग्य करतार तुं भरता हरता देव ।—पृ० रा०, १।२।१।

'ग'^१—वि० [सं० तुङ्ग] १. उन्नत । ऊँचा । उ०—सारा परंत गाम तुंग सरल सदाहरित देवदास्यों से ढंका था ।—किन्नर०, पृ० ४२ । २. उग्र । प्रबल । उ०—तुंग फकीर बाहु मुझाने सिर सिर हुकुम बलावे ।—प्राण०, पृ० २६३ । ३. प्रबाव । मुख्य ।

ग^२—संज्ञा पुं० १. पुन्नाग वृक्ष । २. पर्वत । पहाड़ । ३. नारियल । ४. किन्नर । कमल का केसर । ५. शिव । ६. बुध ग्रह । ७. ग्रहों की उच्च राशि । ८. 'उच्च' । ९. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण घोर दो गुरु होते हैं । जैसे,—न नग गहु बिहारी । कहत भद्रि पियारी । १०. एक छोटा भाड़ या पेड़ जो सुलेमान पहाड़ तथा पच्छिमी हिमालय पर कुमाऊँ तक होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी, छाल घोर पत्ती रंगने घोर चमड़ा सिमाने के काम में आती है । इसकी लकड़ी से यूरोप में तस-बीरों के बरकाशीदार बोल्टे आदि भी बनते हैं । हिमालय पर पहाड़ी लोग इसकी टहनियों के टोकरे भी बनाते हैं । यह पेड़ समक या समक जाति का है । इसे घामी, वरेंगड़ी घोर परंजी भी कहते हैं ।

१०. सिंहासन (को०) । ११. चतुर या त्रिपुण व्यक्ति (को०) । १२. सुष । मूँठ । समूह (को०) ।

तुंगक—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गक] १. पुन्नाग वृक्ष । नागकेसर । २. महा-भारत के अनुसार एक तीर्थ ।

विशेष—पहले यहीं सारस्वत मुनि ऋषियों को वेश पढ़ाया करते थे । एक बार जब वेष्ट नष्ट हो गए, तब अंगिरा के पुत्र ने एक 'मोक्ष' शब्द का उच्चारण किया । इस शब्द के उच्चारण के साथ ही झूला हुआ सब वेश उपस्थित हो गया । इस घटना के उपलक्ष्य में इस स्थान पर ऋषियों घोर देवताओं ने बड़ा भारी यज्ञ किया था ।

तुंगता—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गता] उंचाई ।

तुंगत्व—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गत्व] उच्चता । ऊँचाई ।

तुंगनाथ—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गनाथ] हिमालय पर एक शिवलिंग घोर तीर्थस्थान ।

तुंगनाभ—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गनाभ] सुभुज के अनुसार एक कीड़ा जो विपैले जंतुओं में गिनाया गया है । इसके काटने से जलन घोर पीड़ा होती है ।

तुंगनास—वि० [सं० तुङ्गनास] संबंधी नाकवाला (को०) ।

तुंगबाहु—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गबाहु] लखवार के ३२ हाथों में से एक ।

तुंगबीज—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गबीज] पारा (को०) ।

तुंगभद्र—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गभद्र] मनुवाला हाथी ।

तुंगभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गभद्रा] पश्चिम में एक नदी जो सहायि पर्वत से निकलकर कृष्णा नदी में जा मिली है ।

तुंगमुख—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गमुख] गंगा (को०) ।

तुंगरस—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गरस] एक प्रकार का गंधद्रव्य (को०) ।

तुंगता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी भाड़ी जो पश्चिमी हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है ।

विशेष—गढ़वाल में लोग इसकी पत्तियों का तगाऊ या सुरती के स्थान पर व्यवहार करते हैं । इसके फल खट्टे होते हैं घोर इसली की तरह काम में लाए जाते हैं ।

तुंगवेणु—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गवेणु] महामारन के अनुसार एक नदी जिसका नाम महानदी, (वेणु गया) आदि के साथ पाया है । कदाचित् यह तुंगभद्रा का दूसरा नाम हो ।

तुंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गा] १. उवाचोचन । २. शमी वृक्ष । ३. तुंग नामक वर्णवृत्त । ४. मैसूर की एक नदी (को०) ।

तुंगारण्य—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गारण्य] भौती से ६ कोस भोइछा के पास का एक जंगल । इस स्थान पर एक मंदिर है घोर मेला लगता है । यह तेनवा नदी के तट पर है । उ०—नदी बेतवे तीर जहं तीरथ तुंगारण्य । नगर भोइछो जहं बसे घरनी तल में धन्य ।—केशव (शब्द०) ।

तुंगारन्न(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गारण्य] ३० 'तुंगारण्य' ।

तुंगारि—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गारि] सफेद कनेर का पेड़ ।

तुंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गिनी] महा जतावरी । बड़ी सतावर ।

तुंगिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गिम] तुंगता । ऊँचाई (को०) ।

तुंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गी] १. हलदी । २. राशि । ३. बनतुलसी । बबई । मयड़ी ।

तुन्दिलित—वि० [स० तुन्दिलित] तोंडवाला । तोंडियस [को०] ।

तुन्दिलीकरण—संज्ञा पुं० [सं० तुन्दिलीकरण] फुलाना । बढ़ा करना [को०] ।

तुन्दी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दी] नाभि ।

तुन्दी—वि० [सं० तुन्दिन्] दे० 'तुन्दिक' [को०] ।

तुन्दी—संज्ञा स्त्री० [का०] १. तीव्रता । तेजी । २. आदेश । जोश । ३. स्वभाव की तीव्रता । बदमिजाजी । ४. लिंग का उत्थान । ५. कोप । गुस्सा [को०] ।

तुन्देल—वि० [हि० तुंद + ऐल (प्रत्य०)] दे० 'तुंदैला' ।

तुंदैला—वि० [सं० तुन्द + हि० ऐला (प्रत्य०)] तोड़वाना । बड़े पेटवाला । लंबोदर ।

तुंघ—संज्ञा पुं० [सं० तुम्ब] १. लोकी । लौज । घीना । २. लोवे का सुखा फल । तूँबा । ३. आविर्भाव [को०] ।

तुंघर—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बर] १. दे० 'तुंघ' । २. एक वाद्ययंत्र । तानपूरा । उ०—विसर जत सुर तुंघ तंन तुंघर जुन सो है । ह० रासो, पृ० १ ।

तुंघरु—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बरु] एक गंधर्व ।

तुंघरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बरी] एक प्रकार का अन्न [को०] ।

तुंघरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तूँबी' ।

तुंघवन—संज्ञा पुं० [सं०] वृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो उत्तर दिशा में है ।

तुंघा—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बा] [स्त्री० अल्पा० तुंभी] १. कड़वा कद्दू । गोल कड़वा घीया । २. कड़वा कद्दू की खोपड़ी का पात्र । ३. एक प्रकार का जंगली धान जो नदियों या तालों के किनारे भापसे भाप होता है । ४. दुषार गाय [को०] । ५. दूध का बर्तन [को०] ।

तुंघार—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बार] तूँबी [को०] ।

तुंघि—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्भि] लोकी [को०] ।

तुंघिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बिका] दे० 'तूँबी' । उ०—पानी माहि तुंघिका बड़ी पाहुन तिरत न जागो बेर ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ५१३ ।

तुंघी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बी] १. छोटा कड़वा कद्दू । छोटा कड़वा घीया । तितलीकी । २. गोल कद्दू का खोपड़ा । गोल घीए का बना हुआ पात्र ।

तुंघुक—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुक] कद्दू का फल । घीया ।

तुंघुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बुरी] १. धनिया । २. कुतिया ।

तुंघुरु—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुरु] १. धनिया । २. एक प्रकार के पीछे का बीज जो धनिया के आकार का पर कुछ कुछ फटा हुआ होता है ।

विशेष—इसमें बड़ी झाल होती है । मुंह में रखने से एक प्रकार की चुनचुनाहट होती है और लार गिरती है । दाँत के दर्र में इस बीज को लोग दाँत के नीचे दबाते हैं । वैद्यक में यह गरम, कड़वा, शरपरा, मग्निदीपक तथा कफ, वात, शूल आदि को दूर करनेवाला माना जाता है । इसे बंगाल में नैपाली धनिया कहते हैं ।

एक गंधर्व जो चैत के महीने में सूर्य के रथ पर रहते हैं ।

विशेष—ये विष्णु के एक प्रिय पार्श्वचर और संगीत विद्या में प्रति निपुण हैं ।

४. एक जिन उपामक का नाम । ५. तानपूरा [को०] ।

तुंदिाना—कि० प्र० [हि० तोड़ से नामिक धातु] तोड़ का बढ़ना ।

तुंदैला—वि० [हि० तोड़े + ऐला (प्रत्य०)] बड़े पेटवाला । तोंदियल ।

तुंबड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तूँबी' ।

तुंबड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी अंदर से सफेद, नर्म और चिकना निकलती है ।

विशेष—इस पेड़ की लकड़ी मकानों में लगती है । इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं ।

तुंघरु—संज्ञा पुं० [हि०] एक गंधर्व तुंघरु । उ०—जोगनी जोगमाया जगी नारद तुंघरु निहस्मिन् । दध एक रुद्र वारिद्र गत दानय तामर हस्मिन् ।—पृ० १०, २ । १३० ।

तुंघरी(णी)—संज्ञा [सं० तुम्ब + हि० री० (प्रत्य०)] दे० 'तूँबी' ।

तुंघ(णी)—सर्व० [हि०] दे० 'तुंघ' । उ०—संज्ञा भावे गोत्र पुनि, छेम भाम तुम् नाम ।—मंद० प्र०, पृ० ८५ ।

तुंघना(णी)—कि० प्र० [हि० तुंघा, धुंघा] १. जूना । दपकना । २. गिर पड़ना । खड़ा न रहना । उठना न रहना । उ०—निकरे नो निकाई निहारे नई रति रुन लुनाई तुई सी परे ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) । ३. गर्भज होना । बच्चा गिर पड़ना ।

संयो कि०—पड़ना ।

तुंघरु—संज्ञा पुं० [सं० तुंघरी] अरहर । छाड़की । उ०—मीर चाँवर, सीधो, नए वासन में बूरा तुंघर आदि सर्व सामान घर में हतो सो हरिवंस जो को सर्व बस्तु दिरगई ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० ७५ ।

तुंघार(णी)—सर्व० [हि०] दे० 'तुंघारे' । उ०—नाय तुंघारे कुणल कुणल प्रब लेखिहि ।—अकबरी०, पृ० ३७७ ।

तुंघ(णी)—सर्व० [हि०] दे० 'तुंघ' । उ०—अबहि बारि तुंघ पेम न खेला । का जानसि कस होइ तुंघा, —जायसी प्र०, पृ० ७४ ।

तुंघे—सर्व० [हि०] दे० 'तुंघ' ।

तुंघ(णी)—सर्व० [हि० तुंघ] तुंघे । तुंघको । उ०—मूलि कुरंगिनी कसि अई मनहुं सिध तुंघ डीठ ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २३४ ।

तुंघे—संज्ञा स्त्री० [?] कपड़े पर बुनी हुई एक प्रकार की बेल जिसे दुग्ध मिश्रित पुष्टों पर लगाती हैं ।

तुंघे—सर्व० [हि०] दे० 'तुंघ' ।

तुक—संज्ञा स्त्री० [हि० टुक (= टुकड़ा)] १. किसी पद्य या गीत का कोई खंड । कड़ी । २. पद्य के चरण का अंतिम अक्षरों का परस्पर मेल । अक्षरमैत्री । अंत्यानुप्रास । काफिया ।

यौ०—तुकबंदी ।

मुहा०—तुक जोड़ना = (१) वाक्यों को जोड़कर और चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल मिलाकर पद्य खड़ा करना । (२)

महा पद्य बनाना । मदी कविता करना । तुक बैठाना = दे० 'तुक जोड़ना' ।

तुक^२—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] मेघ । सामंजस्य । जैसे,—प्रापकी बात का कोई तुक नहीं है ।

तुकना—क्रि० सं० [धनु०] एक अनुकरण शब्द जो 'तुकना' शब्द के साथ बोलचाल में आता है । उ०—तक के तुक के उर पावनि को मखि के द्विज देवन शापनि को ।—रघुराज (शब्द०) ।

तुकतुकाना—क्रि० अ० [हि०] तुक जोड़ते हुए कविता का अभ्यास करना । मदी तुकें जोड़ना ।

तुकबंद—संज्ञा पुं० [हि० तुक + बंद (= बाधना)] : तुक बाधनेवाला । तुकबंद । उ०—बहुत से तुकबंद प्रत्येक युग में रहते हैं और जीवन पर्यंत इसी भ्रम में बने रहते हैं कि वे कवि हैं ।—काव्यशास्त्र, पृ० ७ ।

तुकबंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० तुक + फा० बंदी] १. तुक जोड़ने का काम । मदी कविता करने की क्रिया । २. महा पद्य । मदी कविता । ऐसा पद्य जिसमें काव्य के गुण न हों । उ०—बहुत दिनों के बाद आज मेरी चंच पुरानी तुकबंदियां संग्रह के रूप में सामने आ रही हैं ।

तुकमा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुक्मह्] घुंड़ी फँसाने का फंदा । मुद्दा ।

तुकांत—संज्ञा पुं० [हि० तुक + सं० अन्त] पद्य के दो चरणों के प्रतिम अक्षरों का मेल । अस्यानुप्रास । वाकिया ।

तुका—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुक्मह्] वह तीर जिसमें गाँसी न हो । वह तीर जिसमें गाँसी के स्थान पर घुंड़ी सी बनी हो । उ०—काम के तुका से फुल डोलि डोलि डारें मन मोरे किये डारे ये कवचन की डारें री ।—कविद (शब्द०) ।

तुकार—संज्ञा पुं० [हि० तू + सं० कार] अशिष्ट संबोधन । मध्यम पुरुष वाचक अशिष्ट सर्व० का प्रयोग । 'तू' का प्रयोग जो अपमानजनक समझा जाता है ।

मुहा०—तू तुकार करना = अशिष्ट शब्द से संबोधन करना । 'तू' आदि अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करना ।

तुकारना—क्रि० सं० [हि० तुकार] तू तू करके संबोधन करना । अशिष्ट संबोधन करना । उ०—वारी हूँ कर जिन हरि को वदन, छुवारी । वारीं दह रचना जिन बोल्यो तुकारी ।—सूर (शब्द०) ।

तुककड़—संज्ञा पुं० [हि० तुक + अकड़ (अत्य०)] तुक जोड़नेवाला । तुकबंदी करनेवाला । मदी कविता बनानेवाला ।

तुककल—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तुक्कल्] एक प्रकार की बड़ी पतंग जो मोटी डोर पर उड़ाई जाती है ।

तुकका—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुक्कल्] १. वह तीर जिसमें गाँसी के स्थान पर घुंड़ी सी बनी होती है । २. टीला । छोटी पहाड़ी । टेकरी । ३. सीखी खड़ी वस्तु ।

मुहा०—तुकका सा = सीधा उठा हुआ । ऊपर उठा हुआ । जैसे,—जब देखो तब रास्ते में तुकका सी बैठी रहती है ।

तुक्ख^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुक्ख' । उ०—ज्ञान कथे बहुभेष बनाई इही बात सब तुक्ख ।—पद्म०, भा० १, पृ० ११ ।

तुक्खार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुखार' [को०] ।

तुख—संज्ञा पुं० [सं० तुष] १. भूसी । छिलका । उ०—मटकत अद्वैतता अटकत ज्ञान गुमान । सटकत चितरन तें बिह फटकत तुख अभिमान ।—तुलसी (शब्द०) । २. झंडे के ऊपर का छिलका । उ०—झंड फोरि किय चंदुमा तुख पर नी निहारि । गहि चंगुल चातक चतुर डारेउ बाहर बारि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तुखार^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख अथर्ववेद परिशिष्ट, रामायण, महाभारत इत्यादि में है ।

विशेष—अधिकांश ग्रंथों के मत से इसकी स्थिति हिमालय उत्तरपश्चिम में होनी चाहिए । यहाँ के थोड़े प्राचीन काल बहुत अच्छे माने जाते थे ।

२. तुखारु देश का निवासी ।

विशेष—हरिबंश के अनुसार जब महर्षियों ने वेणु का मंत्र किया था, तब इस अधर्मरत असभ्य जाति की उत्पत्ति हुई थी; पर उक्त ग्रंथ में इस जाति का निवासस्थान विध्य पर्व सिखा है जो और ग्रंथों के विरुद्ध पड़ता है ।

३. तुषार देश का घोड़ा । ४. घोड़ा । उ०—(क) तीख तुलसी चढ़ि भी बाँके । तरपहि तबहि तायन बिनु हाँके ।—जायस प्र० (गुप्त), पृ० १५० । (ख) आना काटर एक तुलसी कहा सो फेरी भा असवारु ।—जायसी (शब्द०) ।

तुखार^३—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुषार' ।

तुक्म—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुक्म] १. बीज । दाना । २. गुठली (को०) । ३. झंडा (को०) । ४. संतान । प्रोलाद (को०) । ५. बीयें (को०) ।

थी०—तुक्मपाथी = बीजारोपण । खेत में बीज बोना । तुक्म रेजी = बीज बोवा ।

तुल्मी—वि० [फ्रा० तुल्मी] १. जो बीज बोकर उत्पन्न किया गया हो । २. देशी धाम जो कलमी न हो (को०) ।

तुगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन ।

तुगाक्षोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन ।

तुम—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक राजर्षि का नाम जो अश्विन कुमारों के उपासक थे ।

विशेष—इन्होंने द्वीपांतरों के शत्रुओं को परास्त करने के लिए अपने पुत्र भुज्यु को जहाज पर चढ़ाकर समुद्रपथ से भेजा था । मार्ग में जब एक बड़ा तूफान आया और वायु नौका को उखटने लगी, तब भुज्यु ने अश्विनीकुमारों की स्तुति की । अश्विनीकुमारों ने संतुष्ट होकर भुज्यु को सेना सहित अपना नौका पर लेकर तीन दिनों में उसके पिता के पास पहुँचा दिया ।

तुम्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुष के वंश का पुरुष । तुष वंशज । २. तुष के पुत्र भुज्यु ।

तुम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी । जल (को०) ।

तुच^४—संज्ञा पुं० [सं० त्वच्] चमड़ा । छाल । उ०—बहु नील नोबि ले जात तुच मोद मद्यो सबको हियो ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २६५ ।

तुचा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वचा] दे० 'त्वचा' । उ०—घाघे तन बाँधी बड़ि, घाई । सपं तुचा छाती लपटाई ।—शकुंतला, पृ० १३६ ।

तुचु^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तुष] दे० 'त्वचा' । उ०—घाघि नाक जिभ्या तुचु काना । पीचो इंद्रो ज्ञान प्रधाना ।—सं० दरिया, पृ० २६ ।

तुच्छ^३—वि० [सं०] १. भीतर से खाली । खोखला । निःसार । शून्य । २. क्षुद्र । नाचीज । उ०—जिन्हें तुच्छ कहते हैं, उनसे भागा क्यों, तस्कर ऐसा ?—साकेत, पृ० ३८८ । ३. छोटा । लोटा । नीच । ४. प्रल्प । थोड़ा । ५. शीघ्र । उ०—छिन्न सु सरवर तुच्छ लघु राजा रंभा सोइ ।—घनेकार्थ०, पृ० ६८ । ६. छोड़ा हुआ । त्यक्त (को०) । ७. गरीब । दरिद्र (को०) । ८. दयनीय । दुखी (को०) ।

तुच्छ^४—संज्ञा पुं० १. सारहीन झिलका । सूखी । २. वृत्तिया । ३. नील का पोथा ।

तुच्छक^५—संज्ञा पुं० [सं०] काँधे धोर हरे रंग का मरकत या पन्ना जो शूद्र या निम्न कोटि का माना जाता है ।

तुच्छक^६—वि० शून्य । खाली । रिक्त (को०) ।

तुच्छता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हीनता । नीचता । २. छोटापन । क्षुद्रता । ३. प्रल्पता ।

तुच्छदय—वि० [सं०] दयाशून्य । निर्दय (को०) ।

तुच्छना^७—वि० [सं० तुच्छण] क्षीयना । काटना । तराशना । उ०—चन्द्रमान तुच्छ ठट्टर बहिय ।—पृ० १०, १०१२७ ।

तुच्छस्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. हीनता । क्षुद्रता । २. छोटापन ।

तुच्छद्र—संज्ञा पुं० [सं०] रेंव का पेड़ ।

तुच्छधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] भूमी । तुष (को०) ।

तुच्छधान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] भूमी । तुम ।

तुच्छप्राय—वि० [सं०] महत्त्वहीन (को०) ।

तुच्छवित^८—वि० [सं० तुच्छ+वित] तुच्छ । वनस्पति । उ०—इकसौ इक अधिकै मप तुमहें तिनमैं तुच्छवित ।—ब्रज० पृ०, पृ० ११० ।

तुच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोल का पोथा । २. वृत्तिया । ३. गुजराती इलायची । छोटी इलायची । ४. कृष्ण रंग की चतुर्दशी तिथि (को०) ।

तुच्छातिवृत्त—वि० [सं०] छोटे से छोटा । अत्यंत हीन । अत्यंत क्षुद्र । तुच्छीकरण—संज्ञा पुं० [सं० तुच्छ] तुच्छ होने या करने की क्रिया या भाव ।

तुच्छीकृत—वि० [सं० तुच्छ] तुच्छ किया हुआ । उ०—समस्त भावों को तुच्छीकृत करना ।—ब्रह्मसूत्र, भा० २, पृ० १०६ ।

तुच्छय—वि० [सं०] रिक्त । शून्य । व्यर्थ (को०) ।

तुष्ट^९—वि० [सं० तुच्छ] दे० 'तुच्छ' । उ०—तुष्ट बुद्धि भट्ट देखत भुल्यो कवि सुभति कहै का बरन ।—पृ० १०, ११६५ ।

[ज]—वि० [सं०] दुष्ट । कष्टप्रद (को०) ।

[ज]—संज्ञा पुं० दे० 'तुज' (को०) ।

तुज^{१०}—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्ह' । उ०—जिने जगम डारा है तुज कूँ, बिसर गया उनका ध्यान जू ।—दक्खिनी०, पृ० १४ ।

तुजनू^{११}—सर्व० [पं०] तुम्हें । तुम्हको । उ०—मैं तैरी लटकन फँद्या क्या तुजनू कीया ।—घनानंद, पृ० १७८ ।

तुजीह—संज्ञा स्त्री० [हि०] वनुष । कमान ।

तुजुक—संज्ञा पुं० [तु० तुजुक] १. सज्जा । सजावट । २. प्रबंध । व्यवस्था । इतिजाम । ३. सैन्य-सज्जा । फौज की तरतीब । ४. राजसभा की सजावट । उ०—भूषण भनत तहाँ सरजा सिवाजी गाजी, तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा ।—भूषण ग्रं०, पृ० ४४ । ५. आत्मचरित् । जैसे, तुजुक जहाँगीरी ।

तुम्ह—सर्व० [प्रा० तुम्हं] 'तू' शब्द का वह रूप जो उसे प्रथमा धोर षष्ठी के प्रतिरिक्त धोर विभक्तियाँ लगने के पहले प्राप्त होता है । जैसे, तुम्हको, तुम्हसे, तुम्हपर, तुम्हमें ।

तुम्हें—सर्व० [हि० तुम्ह] 'तू' का कर्त्त धोर संप्रदान रूप । तुम्हको ।

तुम्ह—सर्व० [हि०] तुम्हारा । तेरा । सालह कुँवर मुहिणद मिलद, मुँहरि सउ बर तुम्ह ।—ओषा०, पृ० ४४ ।

तुट^{१२}—वि० [सं० तुट (= टटना)] टुकड़ा । बिखरा । खरा सा ।

तुटना^{१३}—क्रि० घ० [हि०] दे० 'टटना' । उ०—तुटै बंन जारी । करै गे बिहारी । परे भूमि पालं । कबं कूट जानं ।—पृ० १०, १ । १४१ ।

तुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची (को०) ।

तुटितुट—संज्ञा पुं० [सं०] शिब ।

तुटम—संज्ञा पुं० [सं०] मूषक । मूसा । घूहा (को०) ।

तुटना^{१४}—क्रि० घ० [हि० टटना] दे० 'टटना' । उ०—दरिया दधि किय मयन मोम कटिय पध तुटिय ।—पृ० १०, १ । ११६ ।

तुटना^{१५}—क्रि० घ० [सं० तुष्ट, प्रा० तुट + स (प्रत्यय)] तुष्ट करना । प्रसन्न करना । राखी करना ।

तुटना^{१६}—क्रि० घ० तुष्ट होना । प्रसन्न होना । राखी होना ।

तुठना^{१७}—क्रि० घ० [हि०] दे० 'टटना' । उ०—स्नेह तुठी राजा प्रोवगी मेलही ।—बी० रासी, पृ० ४४ ।

तुडना^{१८}—क्रि० वि० [सं० त्वरित] शीघ्र । उ०—धलई माधो-दास रो, सिण बेला तुडना ।—रा० क०, पृ० ११३ ।

तुडवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तुडवाना] दे० 'तुड़ाई' ।

तुडवाना—क्रि० घ० [हि० तोड़ना का प्रे० रूप] तोड़ने का काम कराना । तोड़ने में प्रयत्न करना । तोड़ने देना ।

तुड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तुडवाना] १. तुड़ाने की क्रिया या भाव । २. तोड़ने की क्रिया या भाव । ३. तोड़ने की सज्जदुरी ।

तुड़ाना—क्रि० स० [हि० तोड़ने का प्रे० रूप] १. तोड़ने का काम कराना । तुड़वाना । २. बँधी हुई रस्सी आदि को तोड़ना । बंधन छुड़ाना । जैसे,—घोड़ा रस्सी तुड़ाकर भागा । ३. प्रलय करना । संबंध तोड़ना । जैसे, बच्चे को माँ से तुड़ाना । ४. एक बड़े सिक्के को फरावर मूल्य के कई छोटे छोटे सिक्कों से

बदलना । भुनाना । जैसे, रुपया तुडाना । ५. दाम कम कराना । मूल्य घटवाना ।

तुडम—संज्ञा पुं० [सं० तुडम्] तुडही । धिगुल ।

तुण्णि—संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़ ।

तुतरा^५—वि० [हि० तोतला] [वि० श्री० तुतरी] दे० 'तोतला' । उ०—मन मोहन की तुतरी बोलन मुनिमन हरत सुहंसि मुगकनियाँ ।—सूर (शब्द०) ।

तुतराना^५—क्रिया प्र० [हि० तुतरा + ना (प्रत्य०)] दे० 'तुतलाना' । उ०—श्रवणन नहि उपकठ रहत है प्रस बोलत तुतरात री ।—सूर (शब्द०) ।

तुतरानि^५—संज्ञा श्री० [हि०] तुतलाने की क्रिया या भाव ।

तुतरानी^५—संज्ञा श्री० [हि० तुतरा + ई (प्रत्य०)] तोतली । तुतलाती हुई । उ०—जननि वचन मुनि तुरत उठे हरि कहत बात तुतरानी ।—नंद० प्र०, पृ० ३३७ ।

तुतरी^५—वि० श्री० [हि०] दे० 'तुतली' । उ०—कान ह्वै प्राण सुधा सींचति प्रारस भरि बोलनि तुतरी ।—घनानंद, पृ० ४३ ।

तुतरीही^५—वि० [हि० तुतरा + मोही (प्रत्य०)] दे० 'तोतला' ।

तुतला—वि० [हि०] दे० 'तोतला' । उ०—मा के तन्मय उर से मेरे जीवन का तुतला उपक्रम ।—पल्लव, पृ० १०६ ।

तुतलान—संज्ञा श्री० [हि० तुतलाना] तुतलाने की क्रिया या भाव ।

तुतलाना—क्रि० प्र० [प्र० तुट (=टूटना) या भनु०] शब्दों और वर्णों का अल्प उच्चारण करना । एक एककर टूटे टूटे शब्द बोलना । साफ न बोलना । शब्द बोलने में थगुं ठीक ठीक मुँह से न निकालना । जैसे, बच्चों का तुतलाना बहुत प्यारा लगता है । उ०—सागति भनूरी मीठी बानी तुतलान की ।—शकुंतला०, पृ० १४० ।

तुतली—वि० श्री० [हि०] दे० 'तोतली' । उ०—कर पद से चलते देख उन्हें मुनकर तुतली पाणी रसाल ।—सागरिका, पृ० ११३ ।

तुतुई^५—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'तुतुही' ।

तुतु लूम लूल^५—संज्ञा पुं० [अनु०] बच्चों का एक खेल । उ०—मबत कबहुँ भावरि कबहुँ तुतु लूम लूल भल ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४७८ ।

तुतुही^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. टोंटीदार छोटी घटी । छोटी सी आरी जिसमें टोंटी लगी हो । २. एक पाद्य । तुरही ।

तुत्त—सर्व० [सं० त्वत्] तुम । उ०—निहि बंस भोम प्रस धम्म सुत्ता । निहि बंस बली भनगेस तुत्ता ।—पृ० २०, ३३३ ।

तुत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. तूतिया । नीला घोया । २. अग्नि (की०) । ३. पत्थर (की०) ।

तुत्थक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुत्थ' ।

तुत्थाज्जन—संज्ञा पुं० [सं० तुत्थाज्जन] तूतिया । नीला घोया ।

तुत्था—संज्ञा श्री० [सं०] १. नील का पीछा । २. छोटी हवायची ।

तुष्ट—वि० [सं०] आघातकारी । पीड़ादायी । कष्टकर जैसे,—ममंतुद । असंतुद ।

तुष्ट^५—संज्ञा पुं० [?] दुःख । उ०—कदन, विधुर, प्रक, दून, तुष्ट, गहन, ब्रजिन पुनि आदि ।—नंद० प्र०, पृ० १०० ।

तुष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यथा देने की क्रिया । पीड़न । २. व्यथा । पीड़ा । उ०—कृपादृष्टि करि तुष्टन मिटाया । सुमन माल पहिराय पठाया ।—विश्राम० (शब्द०) । ३. क्षुभाने या गड़ाने की क्रिया ।

तुन्न—संज्ञा पुं० [सं० तुन्न] एक बहुत बड़ा पेड़ जो साधारणतः सारे उत्तरीय भारत में सिंध नदी से लेकर सिक्किम और भूटान तक होता है ।

विशेष—इसकी ऊँचाई चालीस से लेकर पचास साठ हाथ तक और सपेट दस बारह हाथ तक होती है । पत्तियाँ इसकी नीम की तरह लंबी लंबी पर बिना कटाव की होती है । शिशिर में यह पेड़ पत्तियाँ झाड़ता है । बसंत के प्रारंभ में ही इसमें नीम के फूल की तरह के छोटे छोटे फूल गुच्छों में लगते हैं जिनकी पल्लवियाँ सफेद पर बीच की धुडियाँ कुछ बड़ी और पीले रंग की होती हैं । इन फूलों से एक प्रकार का पीला बसंती रंग निकलता है । भड़े हुए फूलों को लोग हकट्टा करके सुखा लेते हैं । सूखने पर केवल कड़ी कड़ी धुडियाँ सरसों के दाने के आकार को रह जाती हैं जिन्हें साफ करके कूट डालने या उबाल डालते हैं । तुन्न की लकड़ी साल रंग की और बहुत मजबूत होती है । इसमें दीमक और छुन नही लगते । मेज कुरसी प्रादि सजावट के सामान बनाने के लिए इस लकड़ी की बड़ी माँग रहती है । आसाम में चाय के बरस भी इसके बनते हैं ।

तुनुक—वि० [फ्रा० तुनुक] दे० 'तुनुक' ।

यौ०—तुनुक मिजाज = दे० 'तुनुकमिजाज' । तुनुकमिजाजी = दे० 'तुनुकमिजाजी' । तुनुकहवास = दे० 'तुनुकहवास' ।

तुनुकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिनकना' । उ०—स्त्रियाँ प्रायः तुनुक जाने का कारण सब बातों में निकाल लेती हैं ।—कंकाल, पृ० १६५ ।

तुनुकामौज—संज्ञा पुं० [?] छोटा समुद्र । (लण०) ।

तुनुकी—संज्ञा श्री० [फ्रा० तुनुक + ई (प्रत्य०)] एक तरह का खरता रोटी ।

तुनुतुनी—संज्ञा श्री० [अनु०] १. वह बाजा जिसमें तुनुतुन शब्द निकले । २. सारंगी ।

तुनी—संज्ञा श्री० [हि० तुन] तुन का पेड़ ।

तुनीर—संज्ञा पुं० [सं० तूणीर] दे० 'तूणीर' । उ०—हिम की हवा मरुधरनि की नीर भो री, जियरो मदन तीरगन की तुनीर मो ।—भिसारी० प्र०, पृ० १०१ ।

तुनुक—वि० [फ्रा०] १. सूक्ष्म । बारीक । २. अल्प । बोझा । ३. प्रदुल । नाजुक । ४. क्षीण । दुबला पतला (की०) ।

यौ०—तुनुकजफं = (१) छिछोरा । लोफर । (२) मकुलीन । कमीना । (३) पेट का हलका । जो भेद खोल दे । (४) जो थोड़ी सी शराब पीकर बहुत जाय । (५) जो किसी

बड़े भादमी की निकटता या ऊँचा पद पाकर घमंड के कारण भादमी न रहे। तुनुकदिल = बहुत छोटे दिल का। अनुदार।

तुनुकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिनकना'। उ०—घंफुर ने तुनुककर कहा।—इत्यलम्, पृ० १६५।

तुनुकमिजाज—वि० [फ्रा० तुनुकमिजाज] विड़चिड़ा। शीघ्र क्रोध में पानेवाला। छोटी छोटी बातों पर अप्रसन्न होनेवाला। उ०—पिछलगुधों की खुशामद ने हमें इतना अभिमानी और तुनुकमिजाज बना दिया है।—गोदान, पृ० १५।

तुनुकमिजाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तुनुकमिजाजी] छोटी बातों पर शीघ्र अप्रसन्न होने का भाव। विड़चिड़ापन।

तुनुकसत्र—वि० [फ्रा० तुनुक + प्र० सत्र] घातुर। स्वरावान्। बेसत्र। जल्दबाज [को०]।

तुनुकहवास—वि० [फ्रा० तुनुक + प्र० हवास] तीक्ष्णबुद्धि [को०]। तुन्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुन का पेड़। २. फटे हुए कपड़े का टुकड़ा।

तुन्न^२—वि० १. कटा या फटा हुआ। छिन्न। २. पीड़ित [को०]। ३. चुभा हुआ [को०]। ४. माहत। घायल [को०]।

तुन्नबाय—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ा सीनेवाला। दरजी।

तुन्नसेवनी—संज्ञा पुं० [सं०] जरहि। वह जो घाव को सीने का काम करता हो [को०]।

तुपक—संज्ञा स्त्री० [तु० तोप का अल्पा० रूप] १. छोटी तोप। उ०—तुपक तोप जराजाल करारे। भरि भरि मारू गंज गुजारे।—हम्मीर०, पृ० ३०। २. बंदूक। कड़ावीन।

क्रि० प्र०—चलना। छूटना।

तुफंग—संज्ञा स्त्री० [तु० तोप, हि० तुपक; अथवा फ्रा० तुफंग] १. बंदूक। तुपक। हवाई बंदूक। उ०—कोवंड चंड करकटि निषंग। इक लड भुमंडी से तुफंग।—सुजान०, पृ० ३८। २. वह लंबी नली जिसमें मिट्टी या घाटे की गोखियाँ छोटे तीर मारि डालकर फूँक के जोर से चलाए जाते हैं।

यो०—तुफंग अंदाज = बंदूकची। निजानेबाज। तुफंगची = (१) बंदूक चलावेवाला। (२) बंदूक रखनेवाला। (३) निशानची। तुफंगेतहपुर = कारतूसी बंदूक। तुफंगे दहमपुर = टोपीदार बंदूक। तुफंगे सीजनी = कारतूसी बंदूक जिसमें घोड़ा नहीं होता।

तुफ—अव्य० [फ्रा० तुफ] चिक्कार। चिक् [को०]।

तुफक—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तुफक] बंदूक। तुफंग। तुपक।

तुफान^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूफान'।

तुफानी^४—वि० [हि०] दे० 'तूफानी'। उ०—सासु बुरी घर ननद तुफानी देखि सुहाग हमार जरे।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७६।

तुफैल—संज्ञा पुं० [प्र० तुफैल] द्वारा। कारण। जरिया।

यो०—तुफैल से = के द्वारा।—की कृपा से।

तुफैली—संज्ञा पुं० [प्र० तुफैली] १. वह व्यक्ति जो बिना निमंत्रण

के अथवा किसी निमंत्रित व्यक्ति के साथ किसी के यहाँ जाय। २. अग्रित व्यक्ति। वह जो किसी के सहारे हो [को०]।

तुषक^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुषक'। उ०—दल समूह तजि चलि यै तुषक गही तर तच—पृ० रा०, २५।६१।

तुभना—क्रि० प्र० [सं० स्तुभ, स्तोभन (= स्तब्ध रहना, ठक रहना)] स्तब्ध रहना। ठक रह जाना। अचल रह जाना। उ०—टरति न टारे यह छवि मन में तुभी। स्थाय सघन पीतांबर दामिनि, अखियाँ चानन हैं तव भुमो।—सूर (शब्द०)।

तुम—सर्व० [सं० त्वम्] 'तु' शब्द का बहुवचन। यह सर्वनाम जिसका व्यवहार उम पुष्प के लिये होता है जिससे कुछ कहा जाता है। जैसे,—तुम यहाँ से चले जाओ।

विशेष—संबंध कारक को छोड़ शेष सब कारकों की विभक्तियों के साथ शब्द का यही रूप बना रहता है; जैसे, तुमने, तुमको, तुमसे, तुममें, तुमपर। संबंध कारक में 'तुम्हारा' होता है। शिष्टता के विचार से एकवचन के लिये भी बहुवचन 'तुम' का ही व्यवहार होता है। 'तु' का प्रयोग बहुत छोटी या बच्चों के लिये ही होता है।

मुहा०—तुम जानो तुम्हारा काम जाने = प्रश्न जिम्मेदारी तुम्हारी है। मन में जो आए सो करो। उ०—और तरफ इस वक्त ध्यान न बटाओ। आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने।—मेर०, पृ० २८।

तुमडिया^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुमड़ी'। उ०—हरी बेल की कोरी तुमडिया सब तीरथ कर आई। जगन्नाथ के दरसन करके, अजट न गई कड़वाई।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४६।

तुमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बर + हि० ई (अत्य०)] १. कड़ू का सूखा फल। गोल घीए का सूखा फल। २. सूखे गोल कड़ू को खोखला करके बनाया हुआ पात्र जिसमें प्रायः साधु पानी पीते हैं। ३. सूखे कड़ू का बना हुआ एक बाजा जो मुँह से फूँकर बजाया जाता है। महुवर।

विशेष—यह बाजा कड़ू के खोखले पेट में तरकट की दो नलियाँ घुमाकर बनाया जाता है। सँपरे इसे प्रायः बजाते हैं।

तुमकना—क्रि० प्र० [अनु०] दिखाई देना। प्रकट होना। उ०—एक भौंका वापु से ले, सिर हिलाकर तुमक जाना।—हिमनि०, पृ० ६४।

तुमतराक—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुमतराक'।

तुमतराक—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुमतराक] १. वैभव। शान्ति। २. धूमधाम। नटकनटक। अहंकार। घमंड [को०]।

तुमरा—सर्व० [हि०] [स्त्री० तुमरी] दे० 'तुम्हारा'।

तुमरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तुमडा] दे० 'तुमड़ी'।

तुमरू—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुरु] दे० 'तुम्बुरु'।

तुमल^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुमल'।

तुमहिये^५—सर्व० [हि० तुम] तुम ही। तुम्हीं। उ०—रीझि

हंसि हाथी हमें सब कोऊ देत, कहा रीझि हंसि हाथी एक
तुमहिये देत ही ।—भूषण ग्रं०, पृ० ३६ ।

तुमही—सर्व० [तुम + ही (प्रत्य०)] तुमको ।

तुमाना—क्रि० सं० [हि० तूमाना का प्रे० रूप] तूने का काम
कराना । दबी या जमकर बैठी हुई रुई को पुलपुली करके
फैलाने के लिये नोचवाना ।

तुमार^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुमार' । उ०—ये भूलहि सब
हथियार हय गय लोग बाग तुमार ।—भीखा श०, पृ० ४४ ।

तुमारा^५—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—ताते चलिहै
प्रहार तुमारा । इतना बचन धर्म कहै हारा ।—कबीर सा०,
पृ० ४५५ ।

तुमुवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिटिया ।

तुमुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'तुमुल' । २. खत्रियों की एक जाति
जिसका उल्लेख मत्स्य पुराण में है ।

तुमुल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेना का कोलाहल । सेना की धूम ।
लड़ाई की हलचल । २. सेना की चिड़चुड़ाहट । गहरी मुठभेड़ । ३.
बहेड़े का पेड़ ।

तुमुल^२—वि० [सं०] १. हलचल उत्पन्न करनेवाला । २. शोरगुल से
युक्त । ३. भयंकर । तीव्र । उ०—सँग दादुर भीगुर रुदन
धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावहीं ।—बारबैठु ग्रं०, भा० १,
पृ० २६८ । ४. अनेक ध्वनियों के मेल के ध्वनित (को०) ।
५. झुंझ (को०) । ६. खराया हुआ । ध्वस्त (को०) ।

तुम्ह^१—सर्व० [हि०] दे० 'तुम' । उ०—जब तुम्ह सुवा कीन्ह है
फेरा । गाढ़ न जाइ पिरितम कैरा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त),
पृ० २७२ ।

तुम्ह^५—सर्व० [हि० तुम] तुम्हारा । उ०—आबहु सामि मुलच्छना
जीउ बस तुम्ह नीव ।—जायसी ग्रं०, पृ० १०१ ।

तुम्हारा^५—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—दुष्ट दमन तुम्हरो
अवतार । हे अद्भुत ब्रजराज कुमार ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१२ ।

तुम्हारा—सर्व० [हि० तुम] [स्त्री० तुम्हारी] 'तुम' का संबंध
कारक का रूप । उसका जिससे बोलनेवाला बोला है । जैसे,
तुम्हारी पुस्तक कही है ? ।

मुहा०—तुम्हारा सिर = दे० 'सिर' ।

तुम्हें—सर्व० [हि० तुम] 'तुम' का वह विभक्तियुक्त रूप जो उसे
कर्म धोर संप्रदान में प्राप्त होता है । तुमको ।

तुम्हीं—सर्व० [हि०] दे० 'तू' । उ०—नाहो बैठा जनम गो तुय करे
तिथी तोषी होई ।—बी० रासो, पृ० ४४ ।

तुम्हीं^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुम्हीं' । उ०—देख उतपत ते तुया ।
—भोरख०, पृ० १५६ ।

तुरंग^१—वि० [सं० तुरङ्ग] जल्दी चलनेवाला ।

तुरंग^२—संज्ञा पुं० १. घोड़ा । उ०—गड तुरंग तुरंग मन, बहुरि
तुरंग तुरंग ।—अनेकार्थ०, पृ० १३३ । २. बिज । ३. सात
की संख्या ।

तुरंगक—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गक] १. बड़ी तोरई । २. घोड़ा (को०) ।
तुरंगकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गकान्ता] घोड़ी (को०) ।

यौ०—तुरंगकांतामुख = बाउबाबख ।

तुरंगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गगन्धा] अश्वगंधा । अश्वगंध (को०) ।

तुरंग गौड़—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्ग + गौड़] गौड़ राग का एक भेद ।
यह वीर या रौद्र रस का राग है ।

तुरंगद्विषणी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गद्विषणी] भैंस । महिषी (को०) ।

तुरंगद्वेषिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गद्वेषिणी] भैंस । महिषी ।

तुरंगप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गप्रिय] जो । यव ।

तुरंगब्रह्मचर्य—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गब्रह्मचर्य] वह ब्रह्मचर्य जो स्त्री के
न मिलने तक हो (को०) ।

तुरंगम^१—वि० [सं० तुरङ्गम] जल्दी चलनेवाला ।

तुरंगम^२—संज्ञा पुं० १. घोड़ा । २. चित्त । ३. एक वृत्त का नाम
जिसके प्रत्येक चरण में दो बजस धोर दो गुरु होते हैं । इसे
तुंग धोर तुंगा भी कहते हैं । उ०—न नग गह बिहारी ।
कहत यहि पियारी ।—(अब्द०) ।

तुरंगमी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गमी] १. अश्वगंध । २. घोड़ी (को०) ।

तुरंगमी^२—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमिन्] घुड़सवार । अश्वारोही (को०) ।

तुरंगमुख—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमुख] [स्त्री० तुरंगमुखी] (घोड़े का
सा मुंहवाला) किन्नर । उ०—गावै गीत तुरंगमुख, जलरत्न
बस बटियाइ ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६ ।

तुरंगमेध—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमेध] अश्वमेध (को०) ।

तुरंगयम—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गयम] जो । यव (को०) ।

तुरंगयायी—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गयायिन्] घुड़सवार (को०) ।

तुरंगरत्न—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गरत्न] साईस (को०) ।

तुरंगलीलक—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गलीलक] संगीत एक ताल में (को०) ।

तुरंगवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गवक्त्र] (घोड़े का सा मुंहवाला)
किन्नर ।

तुरंगबदन—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गबदन] (घोड़े का सा मुंहवाला)
किन्नर ।

तुरंगशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गशाला] घोड़सार । अस्तबल ।

तुरंगसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गसाक्षिन्] घुड़सवार (को०) ।

तुरंगस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गस्कन्ध] १. घोड़ों की सेना । २.
घोड़ों का समूह (को०) ।

तुरंगस्थान—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गस्थान] घुड़साज । अस्तबल (को०) ।

तुरंगारि—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गारि] १. कबैर । करवीर । २.
भैंसा (को०) ।

तुरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गिका] देवदासी । धधरबेल । बंदाब ।

तुरंगारूढ—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गारूढ] घुड़सवार । अश्वारोही (को०) ।

तुरंगी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गी] १. अश्वगंधा । अश्वगंध । २.
घोड़ी (को०) ।

तुरंगी^२—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गिन्] घुड़सवार (को०) ।

तुरंज—संज्ञा पुं० [क्रा० । घ० तुरंज] १. चकोतरा नींबू । २. बिजोरा नींबू । खट्टी । ३. सूई से काढ़कर बनाया हुआ पान या कलगी के आकार का वह बूटा जो धौंसखों के मोड़ों और पीठ पर तथा दुशाले के कोनों पर बनाया जाता है । कुंज ।

तुरंजबीन—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. एक प्रकार की चीनी जो प्रायः ऊँटकटारे के पोखों पर घोस के साथ लुरासान देश में जमती है । २. नींबू के रस का शर्बत ।

तुरंत—क्रि० वि० [सं० तुर (=वेग, जल्दी)] जल्दी से । अत्यंत शीघ्र । तत्क्षण । भटपट । फौरन । बिना विलंब के । उ०—रघुपति चरन नाह सिद्ध चजेउ तुरंत घनंत । अंगद बीज मयंद नल संघ सुमट हनुमंत ।—मानस, ६।७४ ।

तुरंता—संज्ञा पुं० [हि० तुरंत] १. गाँजा (जिसका नशा तुरंत पीते ही बढ़ता है) । २. मत्त । (जिसे तत्काल खाया जा सकता है) ।

तुरंग०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरंग' । उ०—तुरंग चपल चंद्रमंडल बिकल बेला, कुंद है बिकल जहाँ नीच गति बारिह ।—मति० प्र०, पृ० ४१७ ।

तुरंज०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरंज-२' । उ०—गलगल तुरंज सदा-कर फरे । तुरंग प्रति राते रस भरे ।—जायसी प्र०, पृ० १३ ।

तुर—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र । जल्द । उ०—बहु दाबि डारे समर में तुर में तुरंगहि दपटि के ।—पद्माकर प्र०, पृ० २० ।

तुर^१—वि० १. वेगवान् । शीघ्रगामी । २. दृढ़ । सबल (की०) । ३. घायल । आहत (की०) । ४. धनी (की०) । ५. अधिक । प्रचुर (की०) ।

तुर^२—संज्ञा पुं० वेग । क्षिप्रता (की०) ।

तुर^३—संज्ञा पुं० [सं० तुरुं] १. वह लकड़ी जिसपर जुआहे कपड़ा बुनकर लपेटते जाते हैं । २. वह बेधन जिसपर गोटा बुनकर लपेटते जाते हैं ।

तुर^४—संज्ञा पुं० [? सं० तुरण > तुरण, तुर] घोड़ा । अश्व । तुरग । उ०—माघ बहि पंचमि विवस चकि चलिए तुर तार ।—पृ० २१०, २५। २२५ ।

तुरई^१—संज्ञा स्त्री [सं० तुर (=तुरही बाजा)] एक बेन जिसके लंबे फलों की तरकारी बनाई जाती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ मोख कटावदार कद्दू की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं । यह पोषा बहुत दिनों तक नहीं रहता । इसे पानी की विशेष आवश्यकता होती है, इससे यह बरसात ही में विशेषकर सोया जाता है और बरसात ही तक रहता है । बरसानी तुरई छप्परो या टट्टियों पर फैलाई जाती है, क्योंकि धूमि में फैलाने से पत्तियाँ और फलों के सड़ जाने का डर रहता है । गरमी में भी लोग ब्यारियों में इसे बोते हैं और पानी से तर रखते हैं । गरमी से बचाने पर यह बेज जमीन ही में फैलती और फलती है । तुरई के फूल पीले रंग के होते हैं और संव्या के समय खिलते हैं । फल लंबे लंबे होते हैं जिनपर लंबाई के बल उभरी हुई नसों की सीधी लकीर समान अंतर पर होती हैं ।

मुहा०—तुरई का फूल सा = इसकी या छोटी मोटी चीज की

तरह जल्दी खतम या खर्च हो जानेवाला । इस प्रकार बटपट चुक जाने या खर्च हो जानेवाला कि मातृम न हो । जैसे,—तुरई के फूल से ये सी रूप देखते देखते उठ गए ।

२. उक्त बेन का फल ।

तुरई^२—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'तुरही' ।

तुरक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुक' ।

तुरकटा—संज्ञा पुं० [तु० तुक + हि० टा (प्रत्य०)] मुसलमान । (घृणासूचक शब्द) ।

तुरकाना^१—संज्ञा पुं० [तु० तुक] १. तुकों या मुसलमानों की बस्ती । २. दे० 'तुक' । उ०—पाथर पूजत हिंदु भुजाना । मुरदा पूज भूले तुरकाना ।—फकीर सा०, पृ० ८२० ।

तुरकाना^२—संज्ञा पुं० [तु० तुक] [स्त्री० तुरकानी] १. तुकों का सा । तुकों के पैसा । २. तुकों का देश या बस्ती ।

तुरकानी^१—वि० स्त्री० [तु० तुक + हि० आना (प्रत्य०)] तुकों की सी ।

तुरकानी^२—संज्ञा स्त्री० तुकों की स्त्री ।

तुरकिन—संज्ञा स्त्री० [तु० तुक + हि० इन (प्रत्य०)] १. तुकों की स्त्री । २. तुकों जाति की स्त्री । ३. मुसलमानिन । मुसलमान स्त्री ।

तुरकिस्तान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुर्किस्तान' ।

तुरकी^१—वि० [तु० तुकी] १. तुक देश का । जैसे, तुरकी घोड़ा, तुरका सिपाही । २. तुक देश का ।

तुरकी^२—संज्ञा स्त्री० तुकों की भाषा । तुर्किस्तान की भाषा ।

तुरक^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुक' । उ०—राए बधिअउ संत हुष रोस, लउआइअ निअ अनहि मन, अस तुरकक असलान गुणह । कीर्ति०, पृ० १८ ।

तुरग^१—वि० [सं०] तेज चलनेवाला ।

तुरग^२—संज्ञा पुं० [स्त्री० तुरगी] १. घोड़ा । २. चित्ता ।

तुरगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरगगंधा] अश्वगंधा । प्रमगंध ।

तुरगदानव—संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप नामक ऋषि जो कंस की आज्ञा से कुण्ड को मारने के लिये घोड़े का रूप धारण करके गया था ।

तुरगग्रहचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह ग्रहचर्य जो केवल स्त्री के न मिलने के कारण ही हो ।

तुरगलीलक—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत दामोदर के धनुषार एक ताल का नाम ।

तुरगारोही^१—संज्ञा पुं० [सं०] धुइमवार (की०) ।

तुरगारोही^२—संज्ञा पुं० [सं० तुरगारोहिन्] धुइमवार (की०) ।

तुरगी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घोड़ी । २. अश्वगंधा ।

तुरगी^२—संज्ञा पुं० [सं० तुरगिन्] अश्वारोही । धुइमवार ।

तुरगुला—संज्ञा पुं० [देश०] लटकन जो कान के कर्णकून नामक गहने में लटकाया जाता है । कुमका । लोलक ।

तुरगोपचारक—संज्ञा पुं० [सं०] साईस (की०) ।

तुरण^१—वि० [सं०] वेगवान् । शीघ्रगामी (की०) ।

तुरण^२—संज्ञा पुं० शीघ्रता । वेग (की०) ।

तुरत—प्रथ० [सं० तुर] शीघ्र । चटपट । तत्क्षण । उ०—दूनी रिश-
वत तुरत पचावे ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६२ ।

यी०—तुरत कुरत = चटपट ।

तुरतुरा—वि० [सं० त्वरा] [स्त्री० तुरतुरी] १. तेज । जल्दबाज ।
२. बहुत जल्दी जल्दी बोलनेवाला । जल्दी जल्दी बात
करनेवाला ।

तुरतरिया—वि० [हि०] दे० 'तुरतरा' ।

तुरता—प्रथ० [हि०] दे० 'तुरत' । उ०—कढ़ीये सुवीर बढ़ीये
तुरता ।—प० रासो, पृ० ८३ ।

तुरन—प्र० वि० [हि०] दे० 'तुरण' । उ०—सहसा, सत्वर, रभ,
तुरा, तुरन बगे के साज ।—नद० ग्रं०, पृ० १०७ ।

तुरना—संज्ञा पु० [सं० तरुण] तरुणावस्था । जवानी । उ०—बाला
काता तुरना काता बिग्ये कात न आय ।—कबीर श०,
पृ० ४८ ।

तुरनापन—प्र० पु० [हि० तुरना + पन (प्रत्य०)] तरुणावस्था ।
जवानी । उ०—तुरनापन गइ बोत बुढ़ापा घान तुनाने ।
कापन लागे सीस चबत दोउ चान पिराने ।—कबीर श०
पृ० ३ ।

तुरपई—संज्ञा स्त्री० [हि० तुरपना] एक प्रकार की सिलाई । तुरपन ।

तुरपन—प्र० स्त्री० [हि० तुरपना] एक प्रकार की सिलाई जिसमें
जोड़ो को पहले लबाई के बल टाँके डालकर मिला लेते हैं;
फिर निकले हुए छोर को मोड़कर निरखे टाँकों से जमा देते
हैं । लुढ़ियावन । बलिया का उपाय ।

तुरपना—क्रि० सं० [हि० तर (= नीचे) + पर (= ऊपर) + ना
(प्रत्य०)] तुरपन की सिलाई करना । लुढ़ियाना ।

तुरपवाना—क्रि० सं० [हि० तुरपना का प्रे० रूप] दे० 'तुरपाना' ।

तुरपाना—क्रि० सं० [हि० तुरपना का प्रे० रूप] तुरपने का काम
दूसरे से कराना ।

तुरबत—संज्ञा स्त्री० [प्र० तुरबत] वस्त्र । उ०—घानमी तुरबत प
मेरे शाभियादा हो गया ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५० ।

तुरम—संज्ञा पु० [सं० तूरम] तुरही ।

तुरमती—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरमती] एक चिड़िया जो बाज की तरह
शिकार करती है । यह बाज से छोटी होती है ।

तुरमनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] नारियल रेतने की रेतनी ।

तुरम्य—संज्ञा पु० [सं० तूरम्य] [स्त्री० तुरी] घोड़ा । उ०—सायक
आव तुरम्य बनि जति ही जित सबै तुम जाहू ।—सूर
(शब्द०) ।

तुररा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तुरा' । उ०—नगर तुररा सुभत
धनि कहत गोम नगर नथ ।—पृ० रा०, १ । ७५२ ।

तुरल—संज्ञा पु० [सं० तूरल] घोड़ा । उ०—गणिया गजा तरुं सिर
नानी । मिलया तुरल रजी असमानी ।—रा० क०, पृ० २२५ ।

तुरस—संज्ञा स्त्री० [देश० ?] ढाल । उ०—तुरस फट्टि कठि
गुरख मुकुट करि रेष रिवेसर ।—पृ० रा०, ५ । ५१ ।

तुरसी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुलसी' । उ०—हरि धरन
तुरसिय माल । धन पति सुभक विसाल ।—पृ० रा०,
२ । ३११ ।

तुरही—संज्ञा स्त्री० [सं० तूर] फूँककर बजाने का एक बाजा जो
मुँह की ओर पतला धोर पीछे की ओर चौड़ा होता है ।
उ०—बाजत ताल मृदंग भांभ डफ, तुरही तान नफीरी ।—
कबीर श०, भा० २, पृ० १०८ ।

विशेष—यह बाजा पीतल धावि का बनता है और टेढ़ा सीधा
कई प्रकार का होता है । पहले यह लड़ाई में तगाड़े आदि के
साथ बजता था । अब इसका व्यवहार विवाह आदि में
होता है ।

तुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वरा] दे० 'त्वरा' । उ०—तीक्ष्णी तुरा
तुलसी कहतो पै हिए उपमा को समाउ न पायो । मानो प्रतच्छ
परबत की नभ लोक लसी कपि यों धुकि धायो ।—तुलसी
ग्रं० पृ० १९६ ।

तुरा^२—संज्ञा पु० [सं० तूरग] घोड़ा ।

तुराई—संज्ञा स्त्री० [सं० तूल (= रुई) । तूलिका (= गद्दा)] रुई
भरा हुआ गुदगुदा बिछावन । गद्दा । सोपक । उ०—(क) नीबू
बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ।—तुलसी
(शब्द०) । (ख) विविध वचन, उपधान, तुराई । छीरकेन मृदु
बिसद सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) कुस किसलय साधरी
सुहाई । प्रभु संग मंजु मनोज तुराई ।—तुलसी (शब्द०) ।

तुराट—संज्ञा पु० [सं० तूरग] घोड़ा । (डि०) ।

तुराना—क्रि० प्र० [सं० तूर] घबराना । घातुर होना ।

तुराना^२—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तुड़ाना' ।

तुराना^३—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टूटना' । उ०—फिरत फिरत सब
धरन तुराने ।—कबीर श०, पृ० २३० ।

तुरावण—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार का यज्ञ जो चैत्र शुक्ला ५
और वैशाख शुक्ला ५ को होता है । २. असंग । विरति ।
धनामक्ति (की) ।

तुराव—संज्ञा पु० [हि० तुरा] जल्दी । शीघ्रता । उ०—गवना
आला तुराव लगे है । जो कोउ रोवे वाको न हँस रे ।—
कबीर श०, भा० २, पृ० ६८ ।

तुरावत्—वि० [सं० त्वरावत्] [स्त्री० तुरावती] वेगवाला । वेगयुक्त ।

तुरावती—वि० स्त्री० [सं० त्वरावती] वेगवाली । भौंक के साथ बहने-
वाली । उ०—(क) विषम विषाद तुरावति धारा । अय
अय भँवर धवत अपारा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्रयुत
सरोवर सरित अपारा । ठाई कूल तुरावति धारा । शं०
दि० (शब्द०) ।

तुरावध—वि० [हि० तुरा] त्वरावान् । शीघ्रतायुक्त । उ०—
सामंत सितुंग तुरंग तुरावध रावध धावध अग्नि भरे ।—
पृ० रा०, १३।१३० ।

तुरावान्—वि० [सं० त्वरावान्] दे० 'तुरावत्' ।

तुराषाट्—संज्ञा पु० [सं०] इन्द्र ।

तुरासाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र । २. विष्णु (को०) ।

तुरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुरी' (को०) ।

तुरि^२—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—सात जनम तुरि घर वसों एक वसत अकलंक ।—पृ० रा०, २३।३० ।

तुरित—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तुरत' । उ०—गंगाजल कर कलस सी तुरित मंगाइय हो ।—तुलसी० ग्रं०, पृ० ३ ।

तुरिय^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरग' । उ०—पपरेत तुरिय पपरेत गज्ज । नर कस्से वगतर सिलह सज्ज ।—पृ० रा०, १।४४१ ।

तुरिय^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरीय' । उ०—सुखित भई तिहि छिन सब ऐसैं । तुरिय अवस्थ पाइ मुनि जैसे ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०२ ।

तुरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरीय' । उ०—ज्योम अनसूत घर दो बरे भौंदरे माँहि । सुंदर साक्षी स्वरूप तुरिया विशेषिये ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५६८ ।

तुरिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तोरिया' ।

तुरियावीत^१—वि० [सं० तुरीय + वीत] जो तुरीयावस्था से प्रागे हो । चतुर्थ अवस्था से प्रागेवाला । उ०—तुरियावीत हूँ चित्त जब तक भयो रैन बिन मगन है प्रेम पाषी ।—पलटू०, भा० २, पृ० २६ ।

तुरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुलाहों का तोरिया या तोड़िया नाम का योजार । २. जुलाहों की कूबी । हथेली । ३. विजकार की तूलिका (को०) । ४. वसुदेव की एक पत्नी का नाम (को०) ।

तुरी^२—वि० देगवाली ।

तुरी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरय (= घोड़ा)] १. घोड़ी । उ०—तुरी छठाहू लाख अमीरी बलख की । दिया मर्द ने छोड़ पास सब खसक की ।—पलटू०, भा० २, पृ० ७६ । २. लगाम । बाग ।

तुरी^४—संज्ञा पुं० [हि०] १. घोड़ा । २. सवार । अशवारोही ।

तुरी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरा] १. फूलों का गुच्छा । २. मोनी की लड़ों का झुन्डा जो पगड़ी से कान के पास लटकाया जाता है ।

तुरी^६—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरही' ।

तुरी^७—संज्ञा पुं० [सं० तुरीय] चौथी अवस्था । उ०—प्रेम तेज तुरी बरी, भयो ब्रह्म डेंजियार ।—दरिया० बानी, पृ० ६७ ।

तुरीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तुरीयन्त्र] वह यंत्र जिससे सूर्य की गति जानी जाती है ।

तुरीय—वि० [सं०] चतुर्थ । चौथा ।

विशेष—वेद में वाणी या वाक् के चार भेद किए गए हैं—परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी । इसी वैखरी वाणी को तुरीय भी कहते हैं । सायण के अनुसार जो नादात्मक वाणी मूलाधार से उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता है, उसका नाम परा है । जिसे केवल योगी लोग ही जान

सकते हैं, वह पश्यंती है । फिर जब वाणी बुद्धिगत होकर बोलने की इच्छा उत्पन्न करती है, तब उसे मध्यमा कहते हैं । अंत में जब वाणी मूँह में आकर उच्चरित होती है, तब उसे वैखरी या तुरीय कहते हैं ।

वेदांतियों ने प्राणियों की चार अवस्थाएँ मानी हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय । यह चौथी या तुरीयावस्था मोक्ष है जिसमें समस्त भेदज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा अनुपहित चैतन्य या ब्रह्मचैतन्य होती है ।

तुरीयवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] चौथे वर्ण का पुष्प । शूद्र ।

तुरीयावस्था—संज्ञा पुं० [सं० तुरीय + अवस्था] वेदांतियों के अनुसार चार अवस्थाओं में से अंतिम । वि० दे० 'तुरीय' । उ०—इसी प्रकार तुरीयावस्था (दृष्टास) नाम की कविता में उन्होंने ब्रह्मानुभूति का वर्णन इस प्रकार किया है ।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ७२ ।

तुरुक^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुर्क' ।

तुरुकिनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तुरुक] तुर्क जाति की स्त्री । तुरकिन । उ०—वरष नाच तुरुकिनी धान किछु काहु न भावइ ।—कीर्ति०, पृ० ४२ ।

तुरुप^१—संज्ञा पुं० [सं० ट्रूप] ताश का खेल जिसमें कोई एक रंग प्रधान मान लिया जाता है । इस रंग का छोट से छोटा पत्ता हमरे रंग के बड़े से बड़े पत्ते को मार सकता है ।

तुरुप^२—पुं० [सं० ट्रूप (= सेना)] १. सवारों का रिसाला । २. सेना का एक खंड । रिसाला ।

तुरुप^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरपन' । उ०—कसमसे कसे उकसेक से उरोजन पे उपटति कंधुकी की तुरुप तिरोछी देख ।—पजनेस०, पृ० ४ ।

तुरुपना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तुरपना' ।

तुरुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुर्क जाति । तुर्किस्तान का रहनेवाला मनुष्य ।

विशेष—भागवत, विष्णुपुराण आदि में तुरुष्क जाति का नाम आया है जिससे अभिप्राय हिमालय के उत्तर पश्चिम के निवासियों ही से जान पड़ता है । उक्त पुराणों में तुरुष्क राजगण के पृथ्वी भोग करने का उल्लेख है । कथासरित्सागर और राजतरंगिणी में भी इस बात का उल्लेख है ।

२. वह देश जहाँ तुरुष्क जाति रहती हो । तुर्किस्तान । ३. एक गंधद्रव्य । लोयान । ४. तुर्किस्तान का घोड़ा ।

तुरुष्कगोड़—संज्ञा पुं० [सं० तुरुष्क + गोड़] दे० 'तुरंगगोड़' ।

तुरुही—संज्ञा स्त्री० [सं० तूर अथवा तूर्य] दे० 'तुरही' ।

तुरे^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुर्य' । उ०—जोवन तुरे हाथ गहि लीजै । जहाँ जाइ तहँ जाइ न दीजै ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २३४ ।

तुरैया^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरई' । उ०—सदा तुरैया फूले नहीं, सदा न साहू न होय ।—शुक्ल अमि० ग्रं०, पृ० १५६ ।

तुर्क—संज्ञा पुं० [तु०] १. तुर्किस्तान का निवासी । २. कम का निवासी । टर्की का रहनेवाला ।

तुर्कचीन—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क + फा० चीन] सूर्य [को०] ।

तुर्कमान—संज्ञा पुं० [फा० तुर्क] १. तुर्क जाति का मनुष्य । २. तुर्की घोड़ा जो बहुत बलिष्ठ और साहसी होता है ।

तुर्करोज—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क + फा० रोज] सूर्य [को०] ।

तुर्कसवार—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क + फा० सवार] एक विशेष प्रकार का सवार ।

विशेष—ऐसे सवारों को सिर से पैर तक तुर्की पहनावा पहनाया जाता था ।

तुर्कानी—संज्ञा पुं० [हि० तुर्क] दे० 'तुर्किन' । उ०—सुनत करा मुसलमानहि कीन्ह । तुर्कानी को का कर दीन्ह ।—कबीर सा०, पृ० ८२२ ।

तुर्किन—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क + हि० इन (प्रत्य०)] १. तुर्क जाति की स्त्री । उ०—गुंभीमी भी तो तुर्किन, बन गई महीरिन । खुदाराम, पृ० १४ । तुर्क की स्त्री ।

तुर्किनी—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क + हि० इनी (प्रत्य०)] दे० 'तुर्किन' ।

तुर्किस्तान—संज्ञा पुं० [तु० फा०] तुर्की का देश । तुर्की । टर्की [को०] ।

तुर्की—वि० [फा० तुर्क] तुर्किस्तान का । तुर्किस्तान में होनेवाला । जैसे,—तुर्की घाड़ा ।

तुर्की^२—संज्ञा स्त्री० १. तुर्किस्तान की भाषा । २. तुर्की की सी छँठ । धकड़ । गर्व ।

मुहा०—तुर्की लगाव होना । घमंड आता रहना । जेखी निकल जाना ।

तुर्की^३—संज्ञा पुं० १. तुर्किस्तान का आदमी । २. तुर्किस्तान का घोड़ा ।

तुर्की टोपी—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्की + हि० टोपी] एक प्रकार की टोपी जो लाज, गौरव, ऊँची और सम्बेदार होती है ।

विशेष—इस टोपी को तुम लोग पहनते थे । इसी से इसका नाम तुर्की टोपी रखा ।

तुर्तु—अर्थ० [हि०] दे० 'तुर्त' । उ०—ओ धनश्च्छा होय मम तुर्त होत है नाथ ।—कबीर सा०, पृ० २३८ ।

यौ०—तुर्त फुल = बल्लूरी में । भाधतापूर्वक ।

तुर्फरी—संज्ञा पुं० [फा०] अंधुष का मानवैवाला भाग जो सामने सोधी नाक की ओर होता है । हुता ।

यौ०—जुफरी तुफरी = बात का बलवकव । प्रसार ।

तुर्ग—वि० [फा०] गीम । दनुष ।

यौ०—तुर्ग मोछ = एक कालपूर्वक यंत्र । तुर्गवाट = चार साल का बछड़ा ।

तुर्ग—संज्ञा पुं० तुर्गीयावस्था [को०] ।

तुर्गवाह—संज्ञा पुं० [फा०] चार वर्ष की बछिया या बछड़ा [को०] ।

तुर्ग्या—संज्ञा स्त्री० [फा०] यह जान जिससे मुक्ति हो जाती है । तुर्गीय ज्ञान ।

तुर्ग्याश्रम—संज्ञा पुं० [फा०] अतुर्ग्याश्रम । सन्यासाश्रम ।

तुर्गी—संज्ञा पुं० [फा०] १. घुंघरासे बालों की लट जो माथे पर हो । काकुल ।

यौ०—तुर्गी तरार = सुंदर बालों की लट ।

२. पर या फुँदना जो पगड़ी में लगाया या खोसा जाता है कलमी । गोशवारा । ३. बादले का गुच्छा जो पगड़ी के ऊपर लगाया जाता है ।

मुहा०—तुर्गी यह कि = उसपर भी इतना और । सबके उपरांत इतना यह भी । जैसे,—वे घोड़ा तो ले ही था; तुर्गी यह विखच भी हम दें । किसी बात पर तुर्गी होना = (१) किसी बात में कोई और दूसरी बात मिलाई जाना । (२) यथायथ बात के अनिरिक्त और दूसरी बात भी मिलाई जाना । हाशिया बढ़ाना ।

४. फूलों की लड़ियों का गुच्छा जो दूल्हे के कान के पास लटकता रहता है । ५. ठोपी घाब में लगा हुआ फुँदना । ६. पक्षियों के सिर पर निकले हुए परों का गुच्छा । चोटी । शिखा । ७. हाशिया । किनारा । ८. मकान का छज्जा । ९. मुँहासे का वह पल्ला जो उसके ऊपर निकला होता है । १०. गुलतुर्गी । मुर्गेश नाम का फूल । बटाचारी । ११. कोड़ा । चाबुक ।

मुहा०—तुर्गी करना = (१) कोड़ा मारना । (२) कोड़ा मारकर छोड़े की बढ़ाना ।

१२. एक प्रकार की बुलबुल जो ८ या ९ अंगुल लंबी होती है ।

विशेष—यह जाके भर भारतवर्ष के पूर्वीय भागों में रहती है, पर गरभी में चीन और साइबेरिया की ओर चली जाती है ।

१३. एक प्रकार का बटेर । डुबकी ।

तुर्गी^४—संज्ञा पुं० [फनु० तुख तुन (= पानी डालने का शब्द)] भाँग घाब का घूँट । चुसकी ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

मुहा०—तुर्गी बढ़ाना या जमाना = भाँग पीना ।

तुर्गी^५—वि० [फा० तुर्ग] अनोखा । अद्भुत ।

तुर्वेष्टि—वि० [सं०] १. कुर्तीना । क्षिप्र । २. विजेता । शत्रुओं को नष्ट या क्षतिग्रस्त करनेवाला [को०] ।

तुर्वसु—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ययाति के एक पुत्र का नाम जो देवयात्री के पश्चिम उत्पन्न हुआ था ।

विशेष—राजा ययाति ने विषय भोग से तृप्त न होकर जब इससे इसका योग्य भाग था, तब इसने देने से साफ इनकार कर दिया था । इसपर राजा ययाति ने इसे शाप दिया था कि तू अश्विनियों प्रतिलोमाचारियों आदि का राजा होकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगेगा । विष्णुपुराण के अनुसार तुर्वसु का पुत्र हुआ बाहु, बाहु का गोभानु, गोभानु का त्रैलोक्य, त्रैलोक्य का करधम और करधम का महता । महता को कोई सति न थी, इससे उसने पुत्रवंशीय दुष्यंत को पुत्र रूप से ग्रहण किया ।

तुर्शी—वि० [फा०] १. खट्टा । २. रुखा [को०] । ३. कड़ा [को०] । ४. असमर्थ [को०] । ५. क्रुद्ध । कुपित [को०] ।

तुर्शरू—वि० [फा०] जैसे मिजाजवाला । बदमिजाज । उ०—तुर्शरूई छोड़ दे ओ तरलगोई तर्क कर ।—कविता की०, भा० ४, पृ० १० ।

तुलसी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० तुल + हि० आई (प्रत्य०)] २० 'तुलसी' ।

तुलसीना—क्रि० प्र० [क्रा० तुल + से नामिक धातु] खट्टा हो जाना ।

तुलसी—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. खटाई । अमृता । २. कृता । अप्र-सन्नता (को०) ।

तुलसीद्वंद्व—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] घोड़े के दाँतों में कीट या मेल जमने का रोग ।

तुल(५)—वि० [सं०] २० 'तुल्य' उ०—'हरीचंद्र' स्वामिनि धर्म-रामिनि तुल न जगत में जाकी ।—भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० ८० ।

तुलक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का सलाहकार । राजमंत्री (को०) ।

तुलकना(५)—क्रि० प्र० [सं० तुल] बराबरी करना । समता करवा । उ०—बंनबा यहि में ब मजाकहि कोने धी काम कना तुलकी ।—प्रकवरी०, पृ० ३५१ ।

तुलसी(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'तुलसी' । उ०—वरि वरि तुलसी बेब पुराण ।—बी० रासो, पृ० ८१ ।

तुलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वजन । तोल । २. तोलना । ३. तुलना करना । समावता दिखावा (को०) ।

तुलना—क्रि० प्र० [सं० तुल] १. तोला जाना । तराजू पर अंदाजा जाना । मान का कृता जाना ।

संयो० क्रि०—बाना ।

२. तोल या माप में बराबर उतरना । तुल्य होना । उ०—सात सर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुल्य इक संग । तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ।—तुलसी (शब्द०) । ३. किसी आधार पर इस प्रकार ठहरना कि आधार के बाहर निकला हुआ कोई भाग अधिक बोल के कारण किसी ओर को झुका न हो । ठीक अंदाज के साथ टिकना । जैसे, किसी कील पर छड़ी आदि का तुलकर टिकना । बारसिकन पर तुलकर बैठना । ४. किसी अस्त्र आदि का इस प्रकार हिसाब से चलाया जाना कि वह ठीक लक्ष्य पर पहुँचे और लक्ष्य ही आघात पहुँचावे जितना शृष्ट हो । सघना । जैसे, तुलकर तलवार का मारना । ५. नियमित होना । बँधना । अंदाज होना । जैसे हुए मान का अभ्यास होना । उ०—जैसे, दुकान-दारों के हाथ तुलै हुए होते हैं; बितना उठाकर दे देते हैं, वह प्रायः ठीक होता है । ६. भरना । पूरित होना । ७. पाँचों के पहिए का घोंगा जाना । ८. उद्यत होना । उताऊ होना । किसी काम या बात के लिये बिलकुल तैयार होना । जैसे,—वे इस बात पर तुलै हुए हैं, कभी न मानेंगे ।

मुहा०—किसी काम या बात पर तुलना = (१) कोई काम करने के लिये उद्यत होना । (२) जब पकड़ लेना । हठ करना । उ०—तोखने के लिये भला किसकी, तुल गए कह तुली हुई बातें ।—बोहे०, पृ० ३२ । तुली हुई बातें कहना = ठिकाने की बातें कहना । पक्की बातें कहना । उ०—तोखने के लिये भला किसकी । तुल गए कह तुली हुई बातें ।—बोहे०, पृ० ३२ ।

तुलना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दो या अधिक वस्तुओं के गुण, मान आदि के एक दूसरे से घट बढ़ होने का विचार । मिसान । तारतम्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. आश्चर्य । समता । बराबरी । जैसे,—इसकी तुलना उसके साथ नहीं हो सकती । ३. उपमा । ४. तोल । वजन । ५. सङ्गना । गिनती । ६. उठावा । मापना (को०) । ७. अंशना । कृपना । अंदाज लगाना या करना (को०) । ८. तरीका करना (को०) ।

तुलनात्मक—वि० [सं०] तुलना विषयक । जिसमें दो वस्तुओं की समानता दिखाई जाय । उ०—मनस, मानुषी, रिकासणास्त्र हैं तुलनात्मक, मापेक्ष जान । युगीन, पृ० १० ।

तुलनो—संज्ञा स्त्री० [सं० तुल] तमबू या कौड़ी की शीर्षों में सूई के दोनों तरफ का मोहा ।

तुलबुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] जलदीबाजी ।

तुलवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तोलना, तुलना] १. तोलने की मजदूरी । २. रहिए को घोषने की मजदूरी ।

तुलवाना—क्रि० प्र० [हि० तोलना] [संज्ञा तुलवाई] १. तोल कराना । वजन कराना । २. गाड़ी के पहिए की धुरी में घी, तेल आदि दिवाना । घोंगवाना ।

तुलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरकम । तुर्गार । (को०) ।

तुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक छोटा फाड़ या पोषा जिसकी पत्तियाँ से एक प्रकार की तीक्ष्ण गंध निकलती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक मंगल से दो अंगुल तक बड़ी और लंबाई बिंदू रूप गोब लटकी होती हैं । फूल मंजरी के रूप में पतली सीकियों में लगते हैं । गफुर के रूप में बीज से पहले दो दान फुटते हैं । अजिद शास्त्रवेत्ता तुलसी को पुदीने की जाति में गिनते हैं । तुलसी अनेक प्रकार की होती है । गरम देशों में यह बहुत अधिक पाई जाती है । अफिर और दक्षिण अमेरिका में इसके अनेक भेद गिनते हैं । अमेरिका में एक प्रकार की तुलसी होती है जिसे ज्वर रूढ़ी कहते हैं । फसली बुझार में इसकी पत्ती का काढ़ा पिनाया जाता है । भारत वर्ष में भी तुलसी कई प्रकार की पाई जाती है; जैसे, गंध-तुलसी, श्वेत तुलसी या रामा, कारण तुलसी या कृष्णा, बबरी तुलसी या ममरी । तुलसी की पत्ता मिर्च आदि के साथ ज्वर में दी जाती है । पैचक में यह गरम, कड़ई, दाहकारक, दीपन तथा कफ, वात और कुष्ठ आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है ।

तुलसी को वैष्णव मत्तत पवित्र मानते हैं । शालग्राम ठाकुर की पूजा बिना तुलसीत्र के नहीं होती । चरणपूष आदि में भी तुलसीदण्ड लगाया जाता है । तुलसी की उत्पत्ति के संबंध में ब्रह्मवेत्त पुराण में यह कथा है—तुलसी नाम की एक गोपिका गोबोक में राधा की सखी थी । एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ विहार करते देख पाप दिया कि तू मनुष्य शरीर धारण कर । पाप के अनुसार तुलसी धर्मपूज राजा की कन्या हुई । उसके रूप की तुलना किसी से नहीं

हो सकती थी, इससे उसका नाम 'तुलसी' पड़ा। तुलसी ने बन में जाकर घोर तप किया और ब्रह्मा से इस प्रकार वर माँगा—'मैं कृष्ण की रति से कभी तुम नहीं हुई हूँ। मैं उन्हीं की पति रूप में पाना चाहती हूँ'। ब्रह्मा के कथनानुसार तुलसी ने शंखचूड़ नामक राक्षस से विवाह किया। शंखचूड़ को वर मिला या कि बिना उसकी स्त्री का सतीत्व भंग हुए उसकी मृत्यु न होगी। जब शंखचूड़ ने संपूर्ण देवताओं को परास्त कर दिया, तब सब लोग विष्णु के पास गए। विष्णु ने शंखचूड़ का रूप धारण करके तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। इसपर तुलसी ने नारायण को भाप दिया कि 'तुम पत्थर हो जाओ'। जब तुलसी नारायण के पैर पर गिरकर बहुत रोने लगी, तब विष्णु ने कहा, 'तुम यह शरीर छोड़कर लक्ष्मी के समान मेरी प्रिया होगी। तुम्हारे शरीर से गंडकी नदी और केश से तुलसी वृक्ष होगा।' तब से बराबर शालग्राम ठाकुर की पूजा होने लगी और तुलसी-दल उनके मस्तक पर चढ़ने लगा। वैष्णव तुलसी की लकड़ी की माला और कंठी धारण करते हैं। बहुत से लोग तुलसी शालग्राम का विवाह बड़ी धूमधाम से करते हैं। कार्तिक मास में तुलसी की पूजा घर घर होती है, क्योंकि कार्तिक की प्रभावस्था तुलसी के उत्पन्न होने की तिथि मानी जाती है।

२. तुलसीदल।

तुलसीचौरा—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्गाकार उठा हुआ स्थान जिसमें तुलसी लगाई जाती है। तुलसी वृंदावन।

तुलसीदल—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसीपत्र। तुलसी के पौधे का पत्ता।

विशेष—वैष्णव इसे अत्यंत पवित्र मानते हैं और ठाकुर पर चढ़ाकर प्रसाद के रूप में भक्तों में बाँटते हैं। कहीं कहीं कथा बार्ता आदि में आने के लिये और प्रसाद रूप में तुलसीदल बाँटा जाता है। कहीं कहीं मंदिरों और साधुओं वैरागियों की ओर से भी तुलसीदल निमंत्रण रूप में समारोहों के अवसर पर भेजा जाता है।

तुलसीदाना—संज्ञा पुं० [हि० तुलसी + दाना] एक गहना।

तुलसीदास—संज्ञा पुं० [सं० तुलसी + दास] उत्तरीय भारत के सर्वप्रधान भक्त कवि जिनके 'रामचरितमानस' का प्रचार हिंदुस्तान में घर घर है।

विशेष—ये जाति के सरयूपारिण ब्राह्मण थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये पतिघोजा के दूबे थे। पर तुलसीचरित नामक एक ग्रंथ में, जो गोस्वामी जी के किसी शिष्य का लिखा हुआ माना जाता है और अबतक छपा नहीं है, इन्हें गाना का विश्व लिखा है। (यह ग्रंथ अब प्रकाशित हो गया है)। बेणीमाधवदास कृत गोसाईंचरित नामक एक ग्रंथ भी है जो अब नहीं मिलता। उसका उल्लेख शिवसिंह ने अपने शिवसिंह सरोज में किया है। कहते हैं, बेणीमाधवदास कवि गोसाईं जी के साथ प्रायः रहा करते थे।

नाभा जी के भक्तमाल में तुलसीदास जी की प्रशंसा आई है; जैसे—कल कुटिल जीव निस्तार दित बालमीकि तुलसी भयो। रामचरित-रस-मसरहत भहनिधि प्रतपारी।

भक्तमाल की टीका में प्रियादास ने गोस्वामी जी का कुछ वृत्तान्त लिखा है और वही लोक में प्रसिद्ध है। तुलसीदास जी के जन्मसंवत् का ठीक पता नहीं लगता। पं० रामगुलाम द्विवेदी मिरजापुर में एक प्रसिद्ध रामभक्त हुए हैं। उन्होंने जन्मकाल संवत् १५८६ बतलाया है। शिवसिंह ने १५८३ लिखा है। इनके जन्मस्थान के संबंध में भी मतभेद है, पर अधिकांश प्रमाणाँ से इनका जन्मस्थान चित्रकूट के पास राजापुर नामक ग्राम ही ठहरता है, जहाँ अबतक इनके हाथ की लिखी रामायण का कुछ ग्रंथ रक्षित है। तुलसीदास के माता पिता के संबंध में भी कहीं कुछ लेख नहीं मिलता। ऐसा प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का तुलसी था। प्रियादास ने अपनी टीका में इनके संबंध में कई बातें लिखी हैं जो अधिकतर इनके माहात्म्य और चमत्कार को प्रकट करती हैं। उन्होंने लिखा है कि गोस्वामी जी युवावस्था में अपनी स्त्री पर अत्यंत आसक्त थे। एक दिन स्त्री बिना पूछे बाप के घर चली गई। ये स्नेह से व्याकुल होकर रात को उसके पास पहुँचे। उसने इन्हें धिक्कारा—'यदि तुम इतना प्रेम राम से करते, तो न जाने क्या हो जाते'। स्त्री की बात इन्हें लग गई और ये चट विरक्त होकर काशी चले आए। यहाँ एक प्रेत मिला। उसने हनुमान जी का पता बताया जो नित्य एक स्थान पर ब्राह्मण के वेश में कथा सुनने जाया करते थे। हनुमान जी से साक्षात्कार होने पर गोस्वामी जी ने रामचंद्र के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की। हनुमान जी ने इन्हें चित्रकूट जाने की आज्ञा दी, जहाँ इन्हें दो राजकुमारों के रूप में राम और लक्ष्मण जाते हुए दिखाई पड़े। इसी प्रकार की और कई कथाएँ प्रियादास ने लिखी हैं; जैसे, दिल्ली के बादशाह का इन्हें बुलाना और कैद करना, बंदरों का उत्पात करना और बादशाह का तंग आकर छोड़ना, इत्यादि।

तुलसीदास जी ने चैत्र शुक्ल ६ (रामनवमी), संवत् १६३१ को रामचरित मानस लिखना आरंभ किया। संवत् १६८० में काशी में घसीघाट पर इनका शरीरांत हुमा, वैसा इस दोहे से प्रकट है—संबत सोलह सौ घसी घसी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर। कुछ लोगों के मत से 'शुक्ला सप्तमी' के स्थान पर 'श्यामा तीज शनि' पाठ चाहिए क्योंकि इसी तिथि के अनुसार गोस्वामी जी के मंदिर के वर्तमान अधिकारी बराबर सीधा दिया करते हैं, और यही तिथि प्रामाणिक मानी जाती है। रामचरितमानस के अतिरिक्त गोस्वामी जी की लिखी और पुस्तकें ये हैं—दोहावली, गीतावली, कवितावली या कविता रामायण, विनयपत्रिका, रामाज्ञा, रामलला महर्षि, बरवै रामायण, जानकीमंथन, पार्वतीमंथन, वैराग्य संदीपनी, कृष्णगीतावली। इनके अतिरिक्त हनुमानबाहुक आदि कुछ स्तोत्र भी गोस्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तुलसीदेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनतुलसी। बबई। बबरी। ममरी।

तुलसीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसी की पत्ती ।

तुलसीबास—संज्ञा पुं० [हि० तुलसी + बास (= महक)] एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में तैयार होता है ।

विशेष—इसका चावल बहुत सुगंधित होता है और कई साल तक रह सकता है ।

तुलसीवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुलसी के वृक्षों का समूह । तुलसी का जंगल । २. वृंदावन ।

तुलसी विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु की मूर्ति के साथ तुलसी के विवाह करने का एक उत्सव ।

विशेष—हिंदू परिवारों की धार्मिक महिलाएँ कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में भीष्मपंचक एकादशी से पुण्यमा तक यह उत्सव मनाती हैं ।

तुलसी वृंदावन—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसीचीरा [को०] ।

तुलाह^७—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला + हि० ह (स्वा० प्रत्य०)] तुला । तराजू । उ०—तुलह न तोली गजह न मापी, पहज न सेर मढ़ाई ।—कबीर ग्रं०, पृ० १५३ ।

तुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साध्य । तुलना । मिलाव । २. गुरुत्व नापने का यंत्र । तराजू । काँटा ।

यौ०—तुलाबंड ।

३. मान । तौल । ४. मनाज आदि नापने का बरतन । भांड । ५. प्राचीन काल की एक तौल जो १०० पल या पाँच सेर के लगभग होती थी । ६. ज्योतिष की बारह राशियों में से सातवीं राशि ।

विशेष—मोटे हिसाब से दो नक्षत्रों और एक नक्षत्र के चतुर्थांश अर्थात् सवा दो नक्षत्रों की एक राशि होती है । तुला राशि में चित्रा नक्षत्र के शेष ३० दंड तथा स्वाती और विशाखा के आद्य ४५-४५ दंड होते हैं । इस राशि का आकार तराजू लिए हुए मनुष्य का सा माना जाता है ।

७. सत्यासत्यनिर्णय की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में प्रचलित थी । बाढ़ी प्रतिवादी आदि की एक विषय परीक्षा । वि० ३० 'तुलापरीक्षा' । ८. वास्तु विद्या में स्तंभ (खंभे) के विभागों में से चौथा विभाग ।

तुलाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला = कई] वह बोहरा कपड़ा जिसके भीतर कई भरी हो । कई से भरा बोहरा कपड़ा जो धोवने के काम में आता है । हुलाई । उ०—तपन तेज तपता तपन तुल तुलाई माह । सिसिर सीत क्योंहूँ न षट् विन लपटे तिमनाह ।—बिहारी (शब्द०) ।

तुलाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तुलना] १. तौलने का काम या भाव । २. तौलने की मजदूरी ।

तुलाई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० तुलाना] गाड़ी के पहियों को धो'गाने या धुरी में चिकना दिलवाने की क्रिया ।

४-५८

तुलाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तौल में कसर । २. तौल में कसर करनेवाला । डाँड़ी मारनेवाला मनुष्य ।

तुलाकोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तराजू की डंडी के दोनों छोर जिनमें पलड़े की रस्सी बंधी रहती है । २. एक तौल का नाम । ३. महुँद मंलया । ४. मूपुर । ५. स्तंभ का सिरा या छोर (को०) ।

तुलाकोटी—संज्ञा स्त्री० । [सं०] ३० 'तुलाकोटि' [को०] ।

तुलाकोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुलापरीक्षा । २. तराजू रखने का स्थान (को०) ।

तुलाकोष—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'तुलाकोश' ।

तुलादंड—संज्ञा पुं० [सं० तुलादण्ड] तराजू की डाँड़ी या डंडी [को०]

तुलादान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें किसी मनुष्य की तौल के बराबर द्रव्य या पदार्थ का दान होता है । यह सोलह महादानों में से है । तीर्थों में इस प्रकार का दान प्रायः राजा महाराजा करते हैं ।

तुलाधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तराजू की डंडी । २. तराजू का पलड़ा [को०] ।

तुलाधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यापारी । सौदागर । २. तुला राशि । ३. मूर्य [को०] ।

तुलाधार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुला राशि । २. तराजू की रस्सी जिसमें पलड़े बंधे रहते हैं । ३. बनियाँ । बणिक । ४. कानों का रहनेवाला एक बणिक जिसे महर्षि जाजलि को उपदेश दिया था ।—(महाभारत) । ५. काशीनिवासी एक व्याप जो सदा माता पिता की सेवा में तत्पर रहता था ।

विशेष—कृतबोध नामक एक व्यक्ति जब इसके सामने आया, तब इसने उसका समस्त पूर्ववृत्तांत कह सुनाया । इसपर उस व्यक्ति ने भी माता पिता की सेवा का व्रत ले लिया ।—(बृहद्भर्मपुराण) ।

तुलाधार^२—वि० तुला को धारण करनेवाला ।

तुलना^७—क्रि० घ० [हि० तुलना (= तौल में बराबर आना)] धा पढ़चना । मपीप आना । निकट आना । उ०—(क) समुद्र सोक घन चड़ी बिधाना । जो दिन डरं सो आह तुलाना ।—जायसी (शब्द०) । (ख) धर्मो काम धातु ही बोख्यो इनकी मीचु तुलानी ।—सुर (शब्द०) ।

तुलना^१—क्रि० सं० [हि० तुलना] १. तुलना । तौलना । २. बराबर होना । पूरा खतरना । ३. गाड़ी के पहियों को धोवाना । गाड़ी के पहियों की धुरी में चिकना दिखाना ।

तुलापरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निपरीक्षा की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में अग्निपरीक्षा, विषपरीक्षा आदि के समान प्रचलित थी । दोषी या निर्दोष होने की विषय परीक्षा ।

विशेष—स्थितियों में तुलापरीक्षा का बहुत ही विस्तृत विधान दिया हुआ है । एक खुले स्थान में यज्ञकाष्ठ की एक बड़ी सी तुला (तराजू) खड़ी की जाती थी और चारों ओर

तोरण आदि बांधे जाते थे। फिर मंत्रपाठपूर्वक देवताओं का पूजन होता था और अभियुक्त को एक बार तराजू के पलके पर बैठकर मिट्टी आदि से तौल लेते थे। फिर उसे उतारकर दूसरी बार तौलते थे। यदि पलड़ा कुछ भुक्त जाता था तो अभियुक्त को दोषी समझते थे।

तुलापुरुषकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

विशेष—इसमें पिण्याक (तिल की खली), भात, मट्ठा, जल और सत्तू इनमें से प्रत्येक को क्रमशः तीन तीन दिन तक खाकर पंद्रह दिनों तक रहना पड़ता है। यम ने इसे २१ दिनों का व्रत लिखा है। इसका पूरा विधान याज्ञवल्क्य, हारीत आदि स्मृतियों में मिलता है।

तुलापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलाभार' [को०]।

तुलापुरुषदान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलादान'।

तुलाप्रमह—संज्ञा पुं० [सं०] तराजू के पलकों की रस्सी [को०]।

तुलाप्रमाह—संज्ञा पुं० [सं०] तुलाप्रमह।

तुलाबीज—संज्ञा पुं० [सं०] घुंघरी के बीज जो तौल के काम में आते हैं। गुंजाबीज।

तुलाभवानी—संज्ञा स्त्री० [पुं०] शंकर दिग्विजय के अनुसार एक नदी और नगरी का नाम।

तुलाभार—संज्ञा पुं० [सं०] सोने जवाहरात का एक पुरुष के तौल का मान जो दान किया जाता था [को०]।

तुलामान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अंश या मान जो तौलकर किया जाय। २. बाट। बटखरा।

तुलामानांतर—संज्ञा पुं० [सं० तुलामानान्तर] तौल में अंतर डालना। कम तौल के बटखरे रखना। हलके बाट रखना।

विशेष—कोटिल्य ने इस अपराध के लिये २०० पण दंड लिखा है।

तुलायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तुलायन्त्र] तराजू।

तुलायष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तराजू की दंटी [को०]।

तुलावा—संज्ञा पुं० [हिं० तुलना] १. वह लकड़ी जिसके बल गाड़ी खड़ी करके धुरी में तौल दिया जाता है और पहिया निकाला जाता है। २. वह लकड़ी जिसके सहारे धौंगते समय गाड़ी खड़ी की जाती है।

तुलासूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तराजू के पलकों की रस्सी [को०]।

तुलाहीन—संज्ञा पुं० [सं०] कम तौलना। बौड़ी मारना।

विशेष—वाग्भट्ट ने तौल की कमी में कमी का चार गुना घुसमाना लिखा है।

तुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुलाहों की कूची। २. चित्र बनाने की कूची।

तुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजन की तरह की एक छोटी बाइया।

तुलित—वि० [सं०] १. तुला हुआ। २. बराबर। समान।

तुल्लिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शात्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

तुलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का वृक्ष।

तुली^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुलि'।

तुली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला] छोटा तराजू। काटा।

तुली^३—संज्ञा स्त्री० [?] तंबाकू। सुरती।

तुलुव—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम जो सह्याद्रि और समुद्र के बीच में माना जाता था। आजकल इस प्रदेश को उत्तर कनाडा कहते हैं।

तुलू—संज्ञा स्त्री० [कन्नड़] कर्नाटक में प्रचलित एक उपभाषा।

तुलू—संज्ञा पुं० [प्र० तुलुप्र] सूर्य या किसी नक्षत्र का उदय होना।

तुल्लो—संज्ञा स्त्री० [प्र० तुलतुल] बंधी हुई धार जो कुछ दूर पर जाकर पड़े (जैसे, पेशाब की)।

क्रि० प्र०—बंधना।

तुल्य—वि० [सं०] १. समान। बराबर। २. सहण। समरूप। उसी प्रकार का। ३. उपयुक्त। युक्त [को०]। ४. अभिन्न [को०]।

तुल्यकक्ष—वि० [सं०] समान। बराबरी का। उ०—राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में इस सहभाव को तुल्यकक्ष कहकर काव्य को दूसरे प्रकार के लेखों से अलग किया है।—पा० सा० सि०, पु० १।

तुल्यकर्मक—संज्ञा पुं० [सं०] (व्यक्ति) जिनका उद्देश्य समान हो [को०]।

तुल्यकाल—वि० [सं०] समकालिक। एक ही समय का [को०]।

तुल्यकालीय—वि० [सं०] समकालिक। एक ही समय का [को०]।

तुल्यकुल्य^१—वि० [सं०] समान कुल का [को०]।

तुल्यकुल्य^२—संज्ञा पुं० रिश्तेदार। संबंधी [को०]।

तुल्यगुण—वि० [सं०] १. समान गुणवाला। २. समान रूप से अच्छा [को०]।

तुल्यजातीय—वि० [सं०] एक ही जाति का। समान [को०]।

तुल्यजोगिता^(१)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुल्ययोगिता'। उ०—तुल्यजोगिता तर्हें धरम जर्हें बरग्यन की एक।—भूषण ग्रं०, पु० २७।

तुल्यतर्क—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा अनुमान जो सत्य के निकट हो [को०]।

तुल्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बराबरी। समता। २. सादृश्य।

तुल्यदर्शन—वि० [सं०] समान दृष्टि से देखनेवाला। सबके प्रति एक दृष्टि रखनेवाला [को०]।

तुल्यनामा—वि० [सं० तुल्यनामन्] एक ही नाम का। समान नाम का [को०]।

तुल्यपान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजाति के लोगों के साथ मिल जुलकर खाना पीना।

तुल्यप्रधानव्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं० तुल्यप्रधानव्यङ्ग्य] वह व्यंग्य जिसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ बराबर हो।

तुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें कई प्रस्तुतों या अप्रस्तुतों का अर्थात् बहुत से उपमानों का एक ही धर्म बतलाया जाय। जैसे,—(क) अपने प्रेम के जानि के जीवन उपति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितंब को बड़ो इजाफा

कीन ।—बिहारी (शब्द०) । यहाँ स्तन, मन, नयन, नितम्ब इन प्रसिद्ध उपमेयों का 'इजाफा होना' एक ही धर्म कहा गया है । (क) लखि तेरी सुकुमारता परी या जग माहि । कमल, गुलाब कठोर से किहि को भासत नाहि (शब्द०) । यहाँ कमल और गुलाब इन दोनों उपमानों का एक ही धर्म कठोरता कहा गया है ।

तुल्ययोगी—वि० [सं० तुल्ययोगिन्] समान संबंध रखनेवाला ।

तुल्यरूप—वि० [सं०] समरूप । सदृश । एक जैसा [को०] ।

तुल्यलक्षण—वि० [सं०] समान लक्षण युक्त [को०] ।

तुल्यवृत्ति—वि० [सं०] समान पेशेवाला [को०] ।

तुल्यशः—क्रि० वि० [सं०] तुल्यतापूर्वक । तुल्यतापूर्वक [को०] ।

तुल्य—वि० [सं० तुल्य] दे० 'तुल्य' ।

तुल्यल—संज्ञा पु० [सं०] एक श्लेष का नाम ।

तुल्ये—सर्व० [हि०] दे० 'तुल्य' ।

तुल्यपुं—सर्व० [हि०] दे० 'तुल्य' । उ०—थिर रहहु राव इम उच्चरे, न डरि न डरि सब सेल तुल्य ।—ह० रासो, पृ० ५३ ।

तुल्यर—वि० [सं०] १. कसेला । २. बिना दाढ़ी मोछ का । शमश्रुदीन ।

तुल्यर—संज्ञा पु० [सं०] १. कसेला रस । कषाय रस । २. घरहर । ३. एक पोषा जो नदियों और समुद्र के तट पर होता है ।

विशेष—इसके फल हमली के समान होते हैं जिनके खाने से पशुओं का दूध बढ़ता है ।

तुल्ययाचनाल—संज्ञा पु० [सं०] लाल ज्वार । लाल जुम्हरी ।

तुल्यरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोपीचंदन । २. झड़की । घरहर ।

तुल्यरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुल्यरिका' ।

तुल्यरीशिव—संज्ञा पु० [सं० तुल्यरीशिव] चण्डिका का पेश । पंवार ।

तुल्यि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूली ।

तुल्यियाद—संज्ञा पु० [सं०] एक झाड़ जो पश्चिम हिमालय में होता है । इसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं । पुरानी ।

तुल्य—संज्ञा पु० [सं०] १. घन के ऊपर का श्लिषका । भूसी । उ०—घनानंदन, इनको सिल ऐसे जैसे तुल्य लै फटके ।—घनानंद, पृ० ५४३ । २. घंटे के ऊपर का झिल्ला । ३. बहेड़े का पेश ।

तुल्यमह—संज्ञा पु० [सं०] घग्नि ।

तुल्यघान्य—संज्ञा पु० [सं०] श्लिषकायुक्त घग्नि [को०] ।

तुल्यसार—संज्ञा पु० [सं०] घग्नि [को०] ।

तुल्यबु—संज्ञा पु० [सं० तुल्यबु] एक प्रकार की बीजी जो भूसी सहित कूटे हुए जो को सड़ाकर बनती है ।

विशेष—वैद्यक में यह घग्निशीपक, पाचक, हृदयवाही और तीक्ष्ण मानी गई है ।

तुल्यगि—संज्ञा पु० [हि०] तुलानल [को०] ।

तुल्यनल—संज्ञा पु० [सं०] १. भूसी की भाग । घासफूस की भाग । करसी की भाग । २. भूसी या घास फूस की भाग में भस्म होने की क्रिया जो प्रायश्चित्त के लिये की जाती है ।

विशेष—कुमारिल भट्ट तुल्यगि में ही भस्म होकर मरे थे ।

तुल्यर—संज्ञा पु० [सं०] १. हवा में मिली भाप जो सरसी से जमकर और सुक्ष्म जलकण के रूप में हवा से घलप होकर गिरती और पदार्थों पर जमती दिखलाई देती है । पाला । २. हिम । बरफ । ३. एक प्रकार का कपूर । चीनियाँ कपूर । ४. हिमालय के उत्तर का एक देश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे । ५. तुल्यर देश में बसनेवाली जाति जो शक जाति की एक शाखा थी । ६. घोस (को०) । ७. हलकी वर्षा । फुही (को०) । ८. तुल्यर देश का घोड़ा (को०) ।

तुल्यर—वि० छूने में बरफ की तरह ठंडा ।

तुल्यरकण—संज्ञा पु० [सं०] घूम की बूँदें । हिमकण [को०] ।

तुल्यरकर—संज्ञा पु० [सं०] १. हिमकर । चंद्रमा । २. कपूर (को०) ।

तुल्यरकाल—संज्ञा पु० [सं०] शीत ऋतु । जाड़ा [को०] ।

तुल्यरकिरण—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा [को०] ।

तुल्यरगिरि—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुल्यरगौर—संज्ञा पु० [सं०] कपूर ।

तुल्यरगौर—वि० १. तुल्यर जैसा श्वेत । हिम सा धावल । २. तुल्यर पड़ने से श्वेत [को०] ।

तुल्यरगुति—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा [को०] ।

तुल्यरपर्वत—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुल्यरपापाण—संज्ञा पु० [सं०] १. मोला । २. बरफ ।

तुल्यरमर्षि—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

तुल्यरतु—संज्ञा स्त्री० [सं०] ठंडक का मौसम । शीतकाल [को०] ।

तुल्यररश्मि—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

तुल्यरशिखरी—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुल्यरशैल—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुल्यरांशु—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

तुल्यरद्रि—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय पर्वत ।

तुल्यरावृत्त—वि० [सं० तुल्यर + आवृत्त] हिम में घिरा हुआ । हिम से ढंका हुआ । उ०—तुल्यरावृत्त ग्रंथेरा पय था । हिम गिर रहा था । तारों का पता नहीं, बयानक शीत और निर्जन निर्मोघ ।—प्राकाश०, पृ० ३५ ।

तुल्यित—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार के गणदेवता जो संख्या में १२ हैं । भन्वतरों के अनुसार इनके नाम बदना करते हैं । २. विष्णु । ३. एक स्वर्ग का नाम । (रीट) ।

तुल्यिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेशियों का एक वर्ग, जिनकी संख्या बारह या छत्तीस मानी जाती है [को०] ।

तुल्योत्थ—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'तुल्योदक' ।

तुल्योदक—संज्ञा पु० [सं०] १. छिन्नके समेत सूटे हुए जो को पानी में सड़ाकर बनाई हुई काँजी । तपावु । २. भूसी को सड़ाकर सड़ा किया हुआ जल ।

तुल्य—वि० [सं०] १. तोपप्राप्त । तुल्य । संतुल्य । उ०—तुल्य तुल्यी में उन्हें देखकर रही, रहूँगी ।—सात, पृ० ४०५ । २. राशी । प्रमन्न । खुश ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तुष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संतोष । प्रसन्नता ।

तुष्टना^(५)—क्रि० घ० [सं० तुष्ट] प्रसन्न होना । उ०—(क) अपर कर्म तुष्टत चिरकाला । प्रेम ते प्रगट होत ततकाला ।—विश्राम (शब्द०) (ख) नाम लेइ जेहि युवति को नहि सुहाइ सुनि तामु । राम जानकी के कहे तुष्टत तेहि पर भासु ।—विश्राम (शब्द०) ।

तुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संतोष । तृप्ति । २. प्रसन्नता ।

विशेष—सांख्य में नौ प्रकार की तुष्टियाँ मानी गई हैं, चार आध्यात्मिक और पाँच बाह्य । आध्यात्मिक तुष्टियाँ ये हैं—(१) प्रकृति—आत्मा को प्रकृति से भिन्न मानकर सब कार्यों का प्रकृति द्वारा होना मानने से जो तुष्टि होती है, उसे प्रकृति या भंगतुष्टि कहते हैं । (२) उपादान—संन्यास से विवेक होता है, ऐसा समझ संन्यास से जो तुष्टि होती है, उसे उपादान या सलिलतुष्टि कहते हैं । (३) काल—काल पाकर प्राप ही विवेक या मोक्ष प्राप्त हो जायगा, इस प्रकार तुष्टि को कालतुष्टि या भोद्यतुष्टि कहते हैं । (४) माय्य—माय्य में होगा तो मोक्ष हो जायगा, ऐसी तुष्टि को भाग्यतुष्टि या वृष्टितुष्टि कहते हैं ।

इसी प्रकार इंद्रियों के विषयों से विरक्ति द्वारा जो तुष्टि होती है, वह पाँच प्रकार से होती है; जैसे, यह समझने से कि, (१) अर्जन करने में बहुत कष्ट होता है, (२) रक्षा करना और कठिन है (३) विषयों का नाश हो ही जाता है, (४) ज्यों ज्यों भोग करते हैं, त्यों त्यों इच्छा बढ़ती ही जाती है और (५) बिना दूसरे को कष्ट दिए सुख नहीं मिल सकता । इन पाँचों के नाम क्रमशः पार, सुपार, पारापार, अनुसामांभ और उत्तमांभ हैं ।

इन नौ प्रकार की तुष्टियों के विपर्यय से बुद्धि की अशक्ति उत्पन्न होती है । वि० दे० 'अशक्ति' ।

३. कस के घाठ साइयो में से एक ।

तुष्टु—संज्ञा पुं० [सं०] कान में पहनने का एक गहना । कण्ठमणि [को०] ।

तुष्ट्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

तुस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुष' ।

तुसौं दे^(५)—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—रहै वा तुसदि लाल कछु ना कहैदा है । नट०, पृ० ६३ ।

तुसाही^(५)—सर्व० [पुं०] आपकी । उ०—की की खूबी कहे तुसाही हो हो हो होरी है ।—चनानंद, पृ० १७६ ।

तुसाद—संज्ञा पुं० [सं० तुषार] 'तुषार' । उ०—पूस मास तुसार भायो कपि जाइ जनाइया ।—गुलाल०, पृ० ८४ ।

तुसी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुस] भद्र के ऊपर का खिलका । सूसी । उ०—ऐसी को ठाली बैठी है तोसी मूँड़ पिरावै । झूठी बात तुसी सी बिनु कन फटकत हाथ न धावै ।—सूर (शब्द०) ।

तुस्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धूल । गंद । २. सूसी [को०] ।

तुम्स^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुष' । उ०—सत्य असत्य कहो कद एकै कुँवन तुम्स निकारो ।—राम० धर्म०, पृ० १७५ ।

तुह^(५)—सर्व० [हि०] दे० 'तुम' । उ०—जो तुह मिलहु प्रथम मुनीसा । सुनतिउं सिल तुम्हारि भरि सीसा ।—मानस, १ । ८१ ।

तुहफा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोहफा' । उ०—तुहफे, घूस और चंदे के ऐसे बम के गोले बसाए ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७६ ।

तुहमत—संज्ञा स्त्री० [घ०] दे० 'तोहमत' ।

तुहारा—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' ।

तुहालै^(५)—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—जग में राम तुहाले जोड़, हुवो न कोई फेर हुवे ।—रघु० क०, पृ० १६ ।

तुहि^(५)—सर्व० [हि० तू + हि (प्रत्यय)] तुझको ।

तुहिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाला । कुहरा । तुषार । २. हिम । बरफ । ३. चंद्रतेज । चाँदनी । ४. शीतलता । ठंडक । ५. कपूर [को०] । ६. भोस [को०] ।

तुहिनकण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रोसकण । तुषार [को०] ।

तुहिनकर—संज्ञा पुं० [पुं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत । उ०—समाचार सुनि तुहिनगिरि गवनें तुरत निकेत ।—मानस, १ । ६७ ।

तुहिनगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुविनद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनरुचि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनशैल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुहिनशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बरफ का टुकड़ा । बरफ ।

तुहिनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

तुहिनाचल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत । उ०—गए सकल तुहिनाचल गेहा । गावहि मंगल सहित सनेहा ।—मानस, १ । ६४ ।

तुहिनाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुही^(५)—सर्व० [हि०] दे० 'तुहि' । उ०—प्राप को साफ कर तुही साई ।—केशव० धर्म०, पृ० ६ ।

तुम्हें—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हें' ।

तूँ—सर्व० [सं० त्वम्] दे० 'तू' ।

तूँछर^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोमर' । उ०—अर्नेगपाल तूँछर उहाँ दिली बसाई घानि ।—पृ० रा०, १।५७० ।

तूँगा^(५)—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग] फीज का समूह । उ०—तूँगा बरवाजा लगे, पूगा पुरा प्रवेस ।—रा० क०, पृ० २६७ ।

तूँगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पुष्पी । सुमि । २. बाब । नोका ।

तूँब^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूँबा' । उ०—जुग तूँब की बीन परम सीमित भव आई ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४१७ ।

तूँबका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूँबा' ।

तूबना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तूमना' ।

तूबा—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बक] १. कहुआ गोल कद्दू । कहुआ गोल घीया । तितलीकी । उ०—मन पवस दुइ तूबा करिहो जुग जुग सारव साजो ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२६ ।

विशेष—इस कद्दू को खोखला करके कई कामों में लाते हैं; बरतन बनाते हैं; सितार आदि बाजों में ध्वनिकोश बनाने के लिये लगाते हैं आदि ।

२. कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन जिसे प्रायः साधु अपने साथ रखते हैं । कम्बल ।

तूबी—संज्ञा स्त्री० [हि० तूबा] १. कहुआ गोल कद्दू । २. कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन ।

मुहा०—तूबी लगाना = बात से पीड़ित या सूजे हुए स्थान पर रक्त या वायु को खींचने के लिये तूबी का व्यवहार करना ।

विशेष—तूबी के भीतर एक बत्ती जलाकर रख दी जाती है जिससे भीतर की वायु हलकी पड़ जाती है । फिर जिस भंग पर उसे लगाना होता है, उसपर घाटे की एक पतली लोई रख कर उसके ऊपर तूबी उलटकर रख देते हैं जिससे उस भंग के भीतर की वायु तूबी में खिंच आती है । यदि कुछ रक्त भी निकालना होता है, तो उस स्थान को जिसपर तूबी लगानी होती है, नश्वर से पाछ देते हैं ।

तू—सर्व० [सं० त्वम्] एक सर्वनाम जो उस पुरुष के लिये आता है जिसे संबोधन करके कुछ कहा जाता है । मध्यमपुरुष एक वचन सर्वनाम । जैसे,—तू यहाँ से चला जा ।

विशेष—यह शब्द अशिष्ट समझा जाता है, अतः इसका व्यवहार बड़ों और बराबरवालों के लिये नहीं होता, छोटी या नीची के लिये होता है । परमात्मा के लिये भी 'तू' का प्रयोग होता है ।

मुहा०—तू तड़ाक, तू तुकार, तू तू में करना = कहा सुनी करना । अशिष्ट शब्दों में विवाद करना । गाली गलौज करना । कुवाक्य कहना ।

यो०—तू तुकार = अशिष्ट विवाद । कहा सुनी । कुवाक्य । उ०—प्रत्यक्ष धिक्कार और तू तुकार की भुसलाधार वृद्धि होती ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २६८ ।

तू^३—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कुत्तों को बुलाने का शब्द । जैसे—'भाव तू तू' । उ०—दूर दूर करे तो बाहिर, तू तू करे तो जाय ।—कबीर सा० सं०, पृ० २१ ।

तूख—संज्ञा पुं० [सं० तुष = तिनका] का यह टुकड़ा जिसे मोड़कर दोना बनाते हैं । सीक । खरका । उ०—छ्वावति न छाँह, छुए नाहक हो 'नाहीं' कहि, नाह गल माहें बाहें मेले सुखरूख सी । .. तीखी दीठि तूख सी, पतूख सी, घरि भंग, ऊख सी मरुति मुख सागति मरूख सी ।—देव (शब्द०) ।

तूखा^५—वि० [हि०] दे० 'तुच्छ' । उ०—बलवी बादसाही सील बाही ठेग तूखा ।—निखर०, पृ० २० ।

तूख^५—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्ह' । उ०—दीनानाथ तूख बिन कुछ ही किण्वे आय पुकार कहाँ ।—रघु० क०, पृ० ६८ ।

तूटना—क्रि० प्र० [सं० तुट] 'टूटना' । उ०—तुटें तूट बाहें । बतें दंत मौह ।—पृ० रा०, ७ । १२० ।

तूटना^५—क्रि० प्र० [सं० तुष्ट, प्रा० तुट्] तुष्ट होना । संतुष्ट होना । तुप्त होना । प्रधाना । उ०—राधे ब्रजनिधि मीत पे हित के हाथन तूठि ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १७ । २. प्रसन्न होना । राजी होना ।

तूटना^५—क्रि० सं० प्रसन्न करना । संतुष्ट करना ।

तूण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीर रखने का चोंगा । तरकश ।

यो०—तूणधर, तूणधार = धनुर्धर ।

२. चामक नामक वृत्त का नाम ।

तूणदेव—संज्ञा पुं० [सं०] बाण । तीर ।

तूणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूणीर । तरकश [को०] ।

तूणी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरकश । निपंग । २. नील का पौधा । ३. एक वातरोग जिसमें मूत्राशय के पास से दर्द उठता है और पुषा और पेड़ तक फैलता है ।

तूणी^२—वि० [सं० तूणिम्] तूणधारी । जो तरकश लिए हो ।

तूणी^३—संज्ञा पुं० [सं० तूणीक ?] तुन का पेड़ ।

तूणीक—संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़ ।

तूणीर—संज्ञा पुं० [सं०] तूण । निपंग । तरकश ।

तूत—संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक पेड़ जिसके फल खाए जाते हैं ।

विशेष—यह पेड़ मझोले भाकार का होता है । इसके पत्ते फालसे के पत्तों से मिलते जुलते, पर कुछ लंबोतरे और मोटे दल के होते हैं । किसी किसी के सिरे पर फाँकों भाँ कटी होती है । फूल मंजरी के रूप में लगते हैं जिनसे भागे चलकर कीड़ों की तरह सबे लंबे फल होते हैं । इन फलों के ऊपर महीन बाने होते हैं जिनपर रोशनी सी होती है । इनके कारण फलों की आकृति और भी कीड़ों की सी जान पड़ती है । फलों के भेद से तूत कई प्रकार के होते हैं; किसी के फल थोड़े और मोले, किसी के लंबे किसी के हरे, किसी के लाल या काले होते हैं । मीठी जाति के बड़े तूत को शहतूत कहते हैं । तूत योरप और एशिया के अनेक भागों में होता है । भारतवर्ष में भी तूत के पेड़ प्रायः सर्वत्र—काश्मीर से सिक्किम तक—पाए जाते हैं । अनेक स्थानों में, विशेषतः पंजाब और काश्मीर में, तूत के पेड़ों की पत्तियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं । रेशम के कीड़े उनकी पत्तियाँ खाते हैं । तूत की लकड़ी भी वजनी और मजबूत होती है और खेती तथा सजावट के सामान, नाव आदि बनाने के काम आती है । तूत शिशिर ऋतु में पत्ते झाड़ता है और चेत तक फूलता है । इसके फल असाढ़ में पक जाते हैं ।

तूतही—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुतही' ।

मुहा०—तूतही का सा मुँह निकल आना = (१) चेहरे पर दुर्बलता की प्रतीति होना । (२) लज्जित होना । उ०—एक-तूतही का सा मुँह निकल आया ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३०६ ।

तूतिथा—संज्ञा पुं० [सं० तूत्य] नीला घोषा ।

तूती—[फ्रा०] १. छोटी जाति का शुक या तोता जिसकी चोंच

पीली, गरदन बैंगनी और पर हरे होते हैं। उ०—के वीं ते बजाई तूती के पास।—दक्खिनी०, पु० ८५। २. कनेरी नाम की छोटी सुंदर चिड़िया जो कनारी द्वीप से आती है और बहुत अच्छा बोलती है। इसे लोग पिजरो में पालते हैं। ३. मटमैले रंग की एक छोटी चिड़िया जो बहुत सुंदर बोलती है।

विशेष—(१) इसे लोग पिजरो में पालते हैं। जाड़े में यह सारे भारत में पाई जाती है, पर गरमी में उत्तर काश्मीर, तुकिस्तान आदि की ओर चली जाती है। यह घास फूस से कटोरे के आकार का घोंसला बनाकर रहती है।

विशेष—(२) उर्दू में तूती शब्द का प्रयोग पुल्लिङ्गवत् होता है। मुहा०—तूती का पढ़ना = तूती का मीठे सुर में बोलना। किसी की तूती बोलना = किसी की खूब चसती होना। किसी का खूब प्रभाव जमाना। नक्कार खाने में तूती की आवाज की सुनता है = (१) बहुत मीठे भाव या शोरगुल में कही हुई बात नहीं सुनाई पड़ती। (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटी की बात कोई नहीं सुनता।

४. मुँह से बजाने का एक प्रकार का बाजा। ५. मिट्टी की छोटी टौटोदार घरिया जिससे लड़के खेलते हैं।

तूँ^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूम'।

तूँ^२—संज्ञा पुं० [मं०] खेल का पेड़ [को०]।

तूँ^३—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'तुता' [को०]।

तूँ^४—संज्ञा पुं० [फा० तूदह] १. डेर। डेरी। राशि। २. सीमा का चिह्न। हदबंदी। ३. मिट्टी का वह टीला जिसपर तीर, बंदूक आदि निशाना लगाना सीखा जाता है। ४. पुश्ता। टीला [को०]। ५. वह दीवार जिसपर बैठकर तीरंदाज निशाना लगाते हैं [को०]। ६. वह टीला जिसपर चाँदमारी का अभ्यास किया जाता है [को०]।

तूँ^५—संज्ञा पुं० [मं० तुन्नक] १. तुन का पेड़। वि० दे० 'तुना'। २. तुल नाम का लाल कपड़ा।

तूँ^६—संज्ञा पुं० [मं० तूण] दे० 'तूण'।

तूँ^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूण'। उ०—तू न अस्वति किस तूँ कटि मधि धनु धनु बान।—सं० सप्तक, पु० ३८४।

तूना—क्रि० प्र० [हि० तुना] १. तुना। टपकना। २. खड़ा न रह सकना। गिरना। ३. गर्भरात होना। गर्भ गिरना।

विशेष—दे० 'तुधना'।

तूनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मूत्राशय और पक्वाशय में उठनेवाली पीड़ा। उ०—स्त्री पुरुषों के गुह्य स्थान में पीड़ा करे उस रोग को तूनी कहते हैं।—भाषव०, पु० १४०।

तूनीर^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूनीर'। उ०—उपासंग तूनीर पुनि हथुषी तूनि निषंग।—अनेकार्थ०, पु० ३६।

तूफान—संज्ञा पुं० [फा० तूफान] १. डुबानेवाली बाढ़। २. वायु के वेग का उपद्रव। ऐसा भयंकर जिसमें खूब धूल उठे, पानी बरसे, बादल गरजे तथा इसी प्रकार के और उपात हों। घाँघी।

क्रि० प्र०—माना।—उठना।

३. आपत्ति। इति। प्रलय। आपत। ४. हस्तागुल्ला। वादला। ५. भगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव। बंगा फसाद। हलचल। जैसे,—थोड़ी सी बात के लिये इतना तूफान खड़ा करने की क्या जरूरत?।

क्रि० प्र०—उठना।—खड़ा करना।

६. ऐसा कलंक या दोषारोपण जिससे कोई भारी उपद्रव खड़ा हो। झूठा दोषारोपण। तोहमत।

क्रि० प्र०—उठना।—उठाना।

मुहा०—तूफान जोड़ना या बाँधना = झूठा कलंक लगाना। झूठा दोषारोपण करना। तूफान बनाना = दे० 'तूफान जोड़ना'।

तूफानी—वि० [फा० तूफानी] १. तूफान खड़ा करनेवाला। ऊबसी। उपद्रवी। बखेड़ा करनेवाला। फसादी। २. झूठा कलंक लगानेवाला। तोहमत जोड़नेवाला। ३. उप। प्रचंड। प्रबल।

तूबा^१—संज्ञा पुं० [देश०] स्वर्ग का एक वृक्ष जिसके फल परम स्वादिष्ट माने जाते हैं। उ०—घोर तूबा वृक्ष तथा कल्पवृक्षों की बड़ी सुगंधि आती थी।—कबीर मं०, पु० २१२।

तूमा—सर्व० [हि०] दे० 'तुम'। उ०—तब वह लरिकिनी वा ब्रजवासी के ढिग आँखों के पुछ्यों, जो तूम कौन हो?—दो सो बावन, भा० २, पु० ३८।

तूमड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे० तूबा + डी (प्रत्य०)] १. तूँबी। २. तूँबी का बना हुआ एक प्रकार का बाजा जिसे सँपेरे बजाया करते हैं।

विशेष—तूँबी का पतला सिरा थोड़ी दूर से काट देते हैं। और नीचे की ओर एक छेद करके उसमें दो जीभियाँ दो पतली नलियों में लगाकर डाल देते हैं और छेद को मोम से बंद कर देते हैं। नलियों का कुछ भाग बाहर निकला रहता है। एक नली में स्वर निकालने के साथ छेद बनाते हैं जिनपर बजाते वक्त उँगलियाँ रखते आते हैं।

तमतड़ाक—संज्ञा स्त्री० [फा० तमतड़ाक] १. तड़क भड़क। शान शोकत। आन बान। २. ठसक। बनावट।

तूम तनाना—संज्ञा पुं० [फा०] अधिक धालाप। स्वर को अत्यधिक खींचने की क्रिया। उ०—सब करो, होली के दिन तुम्हारी नजर दिला दूँगा, मगर भाई, इतना याद रखो कि वहाँ पक्का गाना गाया और निकाले गए। तूम तनाना की धुन मत बाँध देना।—काया०, पु० २६५।

तूमना—क्रि० स० [मं० स्तोम (= डेर) + ना (प्रत्य०)] १. रुई आदि के जमे हुए लच्छों को नीच नीचकर छुड़ाना। उँगली से रुई इस प्रकार खींचना कि उसके रेशे प्रलग प्रलग हो जायें। रुई के गाले के सटे हुए रेशों को कुछ प्रलग प्रलग करना। उधेड़ना। बिथूरना। २. धज्जी धज्जी करना। उ०—सदियों का ईर्ष्य समिन्न तूम, धुन तुमने काते प्रकाश सूत।—युगांत, पु० ५४। ३. मलना। हलना। ४. बात का उधेड़ना। रहस्य खोलना। सब मेद प्रकट करना।

तूमर^१—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बा] दे० 'तूँबा'। उ०—ताकी और तिलक आस सेहदी और तूमर माल।—बीबा० श०, पु० ५६।

तूमरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तूमड़ी' । उ०—सीस जय कर तूमरी, लिये बुल्लि चर दोय ।—प० रासो, पृ० ७० ।

तूमा^१—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बक] दे० 'तूँबा' । उ०—तूमा तीन भारती बनायो चौथे नीर खरि हाथ लगायो ।—गुलाल०, पृ० ५७ ।

तूमार—संज्ञा पुं० [प्र०] बात का अर्थ विस्तार । बात का बतंगड़ ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

तूमरिया सूत—संज्ञा पुं० [हि० तूमना + सूत] तूब महीन कता हुआ सूत । ऐसा सूत जो तूमी हुई कई से काता गया हो ।

तूया—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों ।

तूर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बाजा । नगाड़ा । उ०—तोरन तोरन तूर बजे बर भावत भटिन गावति ठाढ़ी ।—केशव (शब्द०) । २. तुरही नाम का बाजा । सिंघा ।

तूर^२—वि० शीघ्रता करनेवाला । जल्दबाज [को०] ।

तूर^३—संज्ञा पुं० हरकारा [को०] ।

तूर^४—संज्ञा स्त्री० [फा० तूल (= लंबाई)] १. गज डेढ़ गज लंबी एक लकड़ी जो जुलाहों के करघे में लगी रहती है और जिसमें तानी लपेटी जाती है । इसके दोनों सिरों पर दो तूर और चार छेद होते हैं । २. वह रस्सी जिसे जनानी पालकों के चारों ओर इसलिये बाँधते हैं जिसमें परदा हुआ से उड़ने न पावे । बाँधी ।

तूर^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तूवरी] धरहर ।

तूर^६—संज्ञा पुं० [प्र०] शाम या सीरिया का एक पहाड़ जिसपर हजारत मुमा ने ईश्वर का जल्वा देखा था ।

यौ०—कोह तूर = तूर नामक पहाड़ ।

तूरज^१—संज्ञा पुं० [सं० तूर्य] दे० 'तूर्य' ।

तूरण^१—क्रि० वि० [सं० तूर्य] दे० 'तूर्य' ।

तूरंत—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

तूरन^१—संज्ञा पुं० [सं० तूर्य] दे० 'तूर्य' । उ०—नंददास की कृति संपूरन । भक्ति मुक्ति पावे सोइ तूरन ।—नंद० ग्रं०, पृ० २१५ ।

तूरना^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तूरना^२—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तोड़ना' । उ०—छंभु सनावन हैं अग को है कठोर महा सबको मूढ़ तूरत ।—शंभु (शब्द०) ।

तूरना^३—संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही । उ०—ताकत सराब के विधाह के उछाह कछु ओलि लोल बूझन सबद दोल तूरना ।—तुलसी (शब्द०) ।

तूरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेग । गति [को०] ।

तूरा^२—संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही नाम का बाजा । उ०—निसि दिन बाजहि माधर तूरा । रहस कुब सब मरे सेंदूरा ।—जायसी (शब्द०) ।

तूरान—संज्ञा पुं० [फा०] फारस के उत्तरपूर्व पड़नेवाला मध्य एशिया का सारा भूभाग जो तुर्क, तातारी, मुगल आदि जातियों का निवासस्थान है । हिमालय के उत्तर अस्टाई पर्वत का प्रदेश ।

विशेष—फारस या ईरानवालों का तूरानियों के साथ बहुत प्राचीन काल से झगड़ा चला आता था । यह तूरानी जाति वही थी जिसे भारतवासी शक कहते थे । अफरासियास नामक तूरानी बादशाह से ईरानियों का युद्ध होना प्रसिद्ध है । प्राचीन तूरानी ध्वनि की उपामना करते थे और पशुओं की बलि चढ़ाते थे । ये धार्यों की अपेक्षा असभ्य थे । इनके उत्पातों से एक बार सारा युरोप और एशिया तंग था । चंगेज खाँ, तैमूर, उसमान आदि इसी तूरानी जाति के अंतर्गत थे ।

तूरानी^१—वि० [फा०] तूरान देश का । तूरान संबंधी ।

तूरानी^२—संज्ञा पुं० तूरान देश का निवासी ।

तूरि—संज्ञा पुं० [सं० तूर] दे० 'तूरि' । उ०—मुनो प्रयाण के बिषाण तूरि भेरि बज उठे ।—युगपथ, पृ० ८८ ।

तूरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] घतूरे का पेड़ ।

तूरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तूर] तूर्य । तूरही ।

तूरु^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूर' । उ०—जस मारइ कह बाजा तूरु । सुी देखि हँसा मंसूरु ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६५ ।

तूर्य^१—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र । जल्दी । तूरंत । उ०—तू तूर्य और हो पूर्ण सफल, नव नवोभियों के पार उतर ।—गंतिका, पृ० ७ ।

तूर्य^२—वि० फुर्तीला । वेगवान [को०] ।

तूर्य^३—संज्ञा पुं० स्वरण । वेग । फुर्ती [को०] ।

तूर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे स्वरितक भी कहते हैं ।

तूर्यि^१—वि० [सं०] फुर्तीला । तेज [को०] ।

तूरि^१—संज्ञा स्त्री० वेग । गति [को०] ।

तूर^१—क्रि० वि० [सं०] तूरत । तत्काल । शीघ्र ।

तूर^२—वि० फुर्तीला । तेज [को०] ।

तूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुरही । सिंघा । २. मृदंग [को०] ।

तूर्यओघ—संज्ञा पुं० [सं०] बाधवृद्ध [को०] ।

तूर्यखंड, तूर्यगंठ—संज्ञा [सं० तूर्यखण्ड, तूर्यगण्ड] एक प्रकार का मृदंग [को०] ।

तूर्यमय—वि० [सं०] संगीतात्मक [को०] ।

तूर्य—क्रि० वि० [सं०] तूरत । शीघ्र ।

तूर्ययाण—वि० [सं०] १. फुर्तीला । वेग । २. विजेता । ३. सर्वोच्च । श्रेष्ठ [को०] ।

तूर्यि—वि० [सं०] तूर्ययाण [को०] ।

तूल^१—संज्ञा पुं० [म०] १. आकाश । २. तूल का पेड़ । शहतूत । ३. कपास, मदार, सेमर आदि के डोंडे के भीतर का घूघा । कई । उ० । उ०—(क) जेहि माह तगिरि मेर उड़ाहीं । कहत तूल केहि लेखे माही ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) व्याकुल फिरत भवन बन जहँ तहँ तूल पाक उषराई ।—सूर (शब्द०) । ४. घास या तृण का सिरा [को०] । ५. फूल या पौधों का गुल्म [को०] । ६. घतूरा [को०] ।

तूल^२—संज्ञा पुं० [हि०] तून = एक पेड़ जिसके फूलों से कपड़े रंगते हैं ।

हैं। १. सूती कपड़ा जो, चटकीले लाल रंग का होता है।
२. गहरा लाल रंग।

तूल^७—वि० [सं० तुल्य] तुल्य। समान। उ०—तदपि संकोष
समेत कवि कहहि सीय सम तूल।—तुलसी (शब्द०)।

तूल^१—संज्ञा पु० [प्र०] १. लंबेपन का विस्तार। लंबाई। दीर्घता।
यो०—तूल धजं=लंबाई और चौड़ाई। तूल तकेल=लंबा
चौड़ा। विस्तृत।

मुहा०—तूल खींचना=किसी बात या कार्य का आवश्यकता से
बहुत बढ़ाना। जैसे—(क) ब्याह का काम बहुत तूल खींच
रहा है। (ल) उन लोगों का झगड़ा बहुत तूल खींच रहा
है। तूल देना=किसी बात को आवश्यकता से बहुत बढ़ाना।
जैसे,—हर एक बात को तूल देने की तुम्हारी आदत है।
उ०—अफसरों ने कहा खुदा के लिये बातों को तूल न दो।
—फिसाना, भा० १, पृ० १७६। तूल पकड़ना=दे० 'तूल-
खींचना'।

२. विलंब। देर। तवालत (को०)। ३. डेर (को०)।

तूलक—संज्ञा पु० [सं०] रुई (को०)।

तूलकामुक, तूलचाप, तूलधनुष—संज्ञा पु० [सं०] धुनकी (को०)।

तूलत—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] जहाज की रेलिंग या कटहरे की
छड़ में लगी हुई एक खूँटी जिसमें किसी उतारे जानेवाले भारी
बोझ में बँधी ररसी इसलिये अटका दी जाती है जिसमें बोझ
धीरे धीरे नीचे जाय, एक दम से न गिर पड़े।—(लश०)।

तूलनबोल—वि० [प्र०] बहुत लंबा। उ०—बेगम—बड़ा तूल
नबोल किस्सा है कोई कहाँ तक बयान करें।—फिसाना०,
भा० ३, पृ० ७२।

तूलता—संज्ञा स्त्री० [सं० तुल्यता] समता। बराबरी।

तूलना^१—क्रि० सं० [हिं० तुलना] १. धुरी में तेल देने के लिये
पहिए को निकालकर गाड़ी को किसी लकड़ी के सहारे पर
ठहराना। २. पहिए की धुरी में तेल या चिकना देना।

तूलना^७—क्रि० प्र० [हिं० तुलना] तुल्य होना। तुलित होना।
उ०—सु मध्य सीस फूलयं, दिनेस तेव तूलयं।—द० रासो,
पृ० २४।

तूलनालिका, तूलनालो—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूनी (को०)।

तूलपटिका, तूलपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजाई (को०)।

तूलपिचु—संज्ञा पु० [सं०] रुई (को०)।

तूलफजूल—संज्ञा पु० [प्र० तूल + फजूल] व्यर्थ विवाद। अनावश्यक
झगड़। उ०—यवि बिना तूलफजूल किए ही जमीन नकदी
हो रही है तो मोसल्लिस्ट पार्टी में जाने की क्या जरूरत है।
—मैला०, पृ० १५३।

तूलमनूज—क्रि० वि० [सं० तुल्य या प्र० तूल (=लंबाई)] आमाने
मानने। बराबरी पर। उ०—कंत पियारे भेट देखी तूलम
तून होइ। भए बरस दुइ हेंइ पुहुद निति सरवरि करे।—
जायसी (शब्द०)।

तूलवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील।

तूलवृक्ष—संज्ञा पु० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

तूलशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का बीज। बिनीला।

तूलसेवन—संज्ञा पु० [सं०] रुई से सूत कातने का काम।

तूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपास। २. दिए की बत्ती (को०)।

तूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूलिका (को०)।

तूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चित्रकारों की कूँची जिससे वे रंग
भरते हैं। तसवीर बनानेवालों की कलम। २. रुई की बत्ती
(को०)। ३. रुई का गद्दा (को०)। ४. बरमा (को०)। ५. धातु
का साँचा (को०)।

तूलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मणकंद। २. सेमर का पेड़।

तूलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का पेड़।

तूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का वृक्ष या पीधा। २. रंग
भरने की कूँची। ३. लकड़ी का एक औजार जिसमें कूँची
के रूप में लड़े लड़े रेशे जमाए रहते हैं और जिससे जुलाहे
फेसाया हुआ सूत बैठते हैं। जुलाहों की कूँची। ४. दिए की
बत्ती या बाती (को०)।

तूव^७—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'तूँबा'। उ०—कटि केस बेस मनु
उई दुब। कट मुंड परे ज्यों वेलि तूव।—सुजान०, पृ० २२।

तूवर—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'तुवरक'।

तूवरक—संज्ञा पु० [सं०] १. डूँडा बैल। बिना सींग का बैल।
२. बिना दाढ़ी मोंछ का मनुष्य। हिजड़ा। ३. कपाय रस।
कसेला रस। ४. घरहर।

तूवरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घरहर। २. गोपीबंदन।

तूवरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुवरिका'।

तूव—संज्ञा पु० [सं०] कपड़े का किनारा (को०)।

तूष्णी^१—वि० [सं० तूष्णीम् (अव्य०)] मौन। चुप।

तूष्णी^२—संज्ञा स्त्री० मौन। लामोशी। चुप्पी। उ०—बंघकता,
अपमान, अमान, अलाभ भुजंग अमानक तूष्णी।—केशव
(शब्द०)।

तूष्णी^३—क्रि० वि० चुपचाप। बिना बोले हुए (को०)।

तूष्णीक—वि० [सं०] मौनावलंबी। मौन साधनेवाला।

तूष्णीदंड—संज्ञा पु० [सं० तूष्णीदण्ड] ऐसा दंड जो गुप्त रूप से
दिया जाय (को०)।

तूष्णीभाव—संज्ञा पु० [सं०] मौनभाव। चुप्पी (को०)।

तूष्णी युद्ध—संज्ञा पु० [सं०] कौटिल्य कथित वह युद्ध जिसमें पक्षों
के द्वारा शत्रु के मुख्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर
लिया जाय।

तूष्णीशील—संज्ञा पु० [सं०] चुप रहनेवाला। चुप्पा। बहुत कम
बोलनेवाला (को०)।

तूस^१—संज्ञा पु० [सं० तुष] भूसी। भूसा। उ०—जे दिन पीन रे
तिहें ते बकित ते सब सुषत नम न तूस।—अकबरी०,
पृ० ३१८।

तूस^२—संज्ञा पुं० [तिब्बती योश] [वि० तूसी] १. एक प्रकार का बहुत उत्तम ऊन जो हिमालय पर काश्मीर से लेकर नेपाल तक पाई जानेवाली एक पहाड़ी बकरी के शरीर पर होता है। पशम। पशमीना। उ०—तूस तुराई में दुरे दूरी जाय न त्यागि।—राम० धर्म०, पृ० २३४।

विशेष—यह पहाड़ी बकरी हिमालय पर बहुत ऊँचाई तक, बर्फ के निकट तक, पाई जाती है। यह ठंडे से ठंडे स्थानों में रह सकती है और काश्मीर से लेकर मध्य एशिया में झलटाई पर्वत तक मिलती है। इसके शरीर पर घने मुलायम रोयों की बड़ी मोटी तह होती है जिसके भीतरी ऊन को काश्मीर में असली तूस या पशम कहते हैं। यह दुशालों में दिया जाता है। खालिस तूस का भी शाल बनता है जिसे तूसी कहते हैं। ऊपर के ऊन या रोएँ से या तो रस्सियाँ बटी जाती हैं या पट्टू नाम का कपड़ा बुना जाता है। तूसवाली बकरियाँ लहाख में जाड़े के दिनों में बहुत उतरती हैं और मारी जाती हैं।

२. तूस के ऊन का जमाया हुआ कंबल या नमदा।

तूस^३—संज्ञा पुं० [हि०] भय। घाम। उ०—प्रथम गीत मुसे धटर, त्रिविध कुकवि विण तूस।—श्रीकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ७८।

तूसदान—संज्ञा पुं० [पुर्त्ति० कारदण + दान (प्रत्य०)] कारतूस।

तूसना^१—क्रि० सं० [सं० तृष्ट] १. संतृष्ट करना। तृप्त करना। २. प्रमत्त करना।

तूसना^२—क्रि० प्र० संतृष्ट होना।

तूसा—संज्ञा पुं० [सं० तृष] चोकर। भूसी।

तूसी^१—वि० [हि० तूस] तूस के रंग का। स्लेट या करंज के रंग का करंज।

तूसी^२—संज्ञा पुं० एक रंग जो करंज या स्लेट के रंग की तरह का होता है।

विशेष—यह रंग हड़, माजुफल और कसीस से बनता है।

तूस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. धूल। रेणु। २. भण्ड। कणिका। ३. जटा। ४. चाप। धनुष। ५. पाप (की०)।

तुंड—वि० [सं० तृण्ड] १. माहत। २. दुःखी। ३. मारा हुआ। निहून (की०)।

तृहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाषात, कष्ट या दुःख देना। २. अप (की०)।

तृप्त—संज्ञा पुं० [सं०] कथय ऋषि।

तृप्ताक—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तृख—संज्ञा पुं० [सं०] जातीफल। जायफल।

तृष्णा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] ३० 'तृषा'।

तृष्णावन्त—वि० [सं० तृषा, हि० तृष्णा + वन्त] ३० 'तृष्णावन्त'। उ०—
जैसे भूखे प्रीत भनाज, तृष्णावन्त जल सेती काज।—दक्षिणी०,
पृ० ४४।

तृगुणता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिगुण + ता (प्रत्य०)] ३० 'त्रिगुणता'।

४-५६

उ०—तन परिहरि मन दे तुव पद हैं लोक तृगुणता छोनी।—
भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५८१।

तृच—संज्ञा पुं० [सं०] तीन छंदोंवाला पद्य (की०)।

तृजग—वि० [सं० त्रियंक्] ३० 'त्रियंक्'। उ०—तृजग जोनि गत
गोध जनम भरि खरि खाइ कुजतु जियो हों।—तुलसी
(शब्द०)।

यौ०—तृजग जोनि = त्रियंक् योनि।

तृण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अद्भुत जिसकी पेड़ी या कांड में छिनके
और हीर का भेद नहीं होता और जिसकी पत्तियों के भीतर
केवल समानांतर (प्रायः लंबाई के बल) नम्रे होती हैं, जाल
की तरह बुनी हुई नहीं। जैसे दूब, कुश, सरपत, मूँज, बांस,
ताड़ इत्यादि। घास। उ०—ऊपर वरसे तृण नहिं जामा।—
तुलसी (शब्द०)।

विशेष—तृण की पेड़ी या कांडों के तंतु इस प्रकार सीधे क्रम
से नहीं बैठे रहते कि उनके द्वारा मंडलातर्गत मंडल बनते
जायें, बल्कि वे बिना किसी क्रम के इधर उधर तिरछे होकर
ऊपर की ओर गए रहते हैं। अधिकांश तृणों के कांडों में
प्रायः गाँठें थोड़ी थोड़ी दूर पर होती हैं और इन गाँठों के
बीच का स्थान कुछ पाला होता है। पत्तियाँ अपने मूल के
पाम डठल को खोली की तरह लपेटे रहती हैं। पृथ्वी का
अधिकांश नल छोटे तृणों द्वारा घाच्छादित रहता है। अर्क-
प्रकाश नामक वैद्यक ग्रंथ में तृणगण के प्रसंगत तीन प्रकार
के बांस, कुश, काँस, तीन प्रकार की दूब, गाँड़, नरकट, मूँदी,
मूँज, डाभ, मोया इत्यादि माने गए हैं।

मुहा०—तृण गहना या पकड़ना—हीनसा प्रकट करना। गिड़-
गिड़ाना। तृण गहाना या पकड़ाना—नम्र करना। विनीत
करना। वशीभूत करना। उ०—अहो तो ताको तृण गहाय
के जोवत पगन पायो।—मूर (शब्द०)। (किसी वस्तु
पर) तृण टूटना = किसी वस्तु का इतना सुंदर होना कि
उमें नजर से बचने के लिये उपाय करना पड़े। उ०—प्राज
को बानिक पै तृण टूटत है कही न जाय कछु स्याम तोहि
रत।—स्वा० हरिदास (शब्द०)।

विशेष स्त्रियाँ वस्त्रों पर से नजर का प्रभाव दूर करने के लिये
टोठके की तरह पर तिनका तोड़ती हैं।

तृणवत्—तिनके बराबर। अर्थात् तुच्छ। कुछ भी नहीं। तृण
बराबर या समान = ३० 'तृणवत्'। उ०—अस कहि चला
महा अभिमानी। तृण समान सुशोबहिं जानी।—तुलसी
(शब्द०)। तृण तोड़ना = किसी सुंदर वस्तु को देख उसे
नजर से बचने के लिये उपाय करना। उ०—(क) गधे
महामनि मोर मजुन अग पब तृण तोरहीं।—तुलसी (शब्द०)
(ख) स्याम गौर सुंदर दोल जोरी। निरखत छबि जननी
तृण तोरी।—तुलसी (शब्द०)। (किसी से) तृण तोड़ना =
संबंध तोड़ना। नाता मिटाना। उ०—भुजा छुड़ाइ तोरि तृण
ज्यों हित करि प्रभु निहुरि हियो।—सूर (शब्द०)।

२. तिनका (की०) । ३. खर पात (की०) ।

तृणक—संज्ञा पुं० [सं०] घास की खराब पत्ती [की०] ।

तृणकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि ।

तृणकांड—संज्ञा पुं० [सं० तृणकाण्ड] घास का ढेर [की०] ।

तृणकीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] घासवाली जमीन [की०] ।

तृणकुंकुम—संज्ञा पुं० [सं० तृणकुंकुम] एक सुगंधित घास । रोहित घास ।

तृणकुटी, तृणकुटीर, तृणकुटीरक—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस की बनी मड़ेया या भोपड़ी [की०] ।

तृणकूट—संज्ञा पुं० [सं०] घास का ढेर [की०] ।

तृणकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कूर्चो या छोटी भाड़ू [की०] ।

तृणकूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गोल कदह ।

तृणकेतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तीखुर ।

तृणकेतु—संज्ञा पुं० ३० [सं०] 'तृणकेतुक' ।

तृणकेतुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस । २. ताड़ का पेड़ ।

तृणगोधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गिरगिट [की०] ।

तृणगौर—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'तृणकुंकुम' [की०] ।

तृणग्रन्थी—संज्ञा स्त्री० [सं० तृणग्रन्थी] स्वर्णजीवंती ।

तृणग्राही—संज्ञा पुं० [सं० तृणग्राहीन्] एक रत्न का नाम । नीलमणि ।

तृणचर^१—वि० [सं०] तृण चरनेवाला (पशु) ।

तृणचर^२—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेदक मणि ।

तृणजंभा—वि० [सं० तृणजम्भन्] घास चरने योग्य । घास चरनेवाला ।
—संपूर्णान् अभि० ग्रं०, पुं० २४८ ।

तृणजलायुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'तृणजलौका' ।

तृणजलौका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जोंक ।

तृणजलौका न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] तृणजलौका के समान ।

विशेष—इस वाक्य का प्रयोग नैययिक लोग उस समय करते हैं उन्हें जब आत्मा के एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाने का रसित देना होता है । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार जोंक जल में बहने हुए तिनके के अंत तक पहुँच जब दूसरा तिनका घाम लेती है, तब पहले को छोड़ देती है । इसी प्रकार आत्मा जब दूसरे शरीर में जाती है, तब पहले को छोड़ देती है ।

तृणजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनस्पति जिसमें घास और शाक आदि गृहीत हैं [की०] ।

तृणज्योतिस्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मती नदी ।

तृणसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तृणवत्ता । निरर्थकता । २. धनुष [की०] ।

तृणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ का पेड़ । २. सुपारी का पेड़ ।

३. खजूर का पेड़ । ४. केतकी का पेड़ । ५. नारियल का पेड़ ।

६. हितान ।

तृणधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिन्नी का चावल । मुन्यग्र । तिन्नी का धान । २. सावा ।

तृणध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस । २. ताड़ का पेड़ ।

तृणनिम्ब—संज्ञा पुं० [सं० तृणनिम्ब] चिरायता ।

तृणप—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्व का नाम ।

तृणपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदभं नामक तृण ।

तृणपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदभं नामक तृण [की०] ।

तृणपीड—संज्ञा पुं० [सं० तृणपीड] एक प्रकार की लड़ाई । हाथों के द्वारा लड़ाई ।

तृणपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृणकेशर । २. ग्रंथिपर्णी गठिवन ।

तृणपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिद्धपुष्पी नामक घास ।

तृणपूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गंधपात [की०] ।

तृणपूलो—संज्ञा स्त्री० [सं०] नरकट की चटाई [की०] ।

तृणप्राय—वि० [सं०] तृणवत् । तिनके जैसा । तुच्छ [की०] ।

तृणबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तृणबिंदु] ३० 'तृणबिंदु' [की०] ।

तृणमत्कुण—संज्ञा पुं० [सं०] जमानत देनेवाला । जामिन [की०] ।

तृणमणि—संज्ञा पुं० [सं०] तृण को आकषिक करनेवाला मणि । कहरुवा ।

तृणमय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तृणमयी] घास का बना हुआ ।

तृणराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर । २. ताड़ । ३. नारियल ।

तृणवत्—वि० [सं०] तिनके के समान । अत्यंत तुच्छ [की०] ।

तृणबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तृणबिंदु] एक ऋषि जो महाभारत के काल में थे और जिनसे पांडवों से वनवास की अवस्था में भेंट हुई थी ।

तृणवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'तृणद्रुम' [की०] ।

तृणशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास का बिछोना । चटाई । साथरी ।

तृणशाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ । २. बाँस का पेड़ [की०] ।

तृणशीत—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहित घास जिसमें से नीबू की सी सुगंध आती है । २. जलपिप्पली ।

तृणशीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगंधित घास [की०] ।

तृणशून्य^१—वि० [सं०] बिना तृण का । तृण से रहित ।

तृणशून्य^२—संज्ञा पुं० १. मल्लिका । २. केतकी ।

तृणशूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सता का नाम ।

तृणशोषक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

तृणषट्पद्—संज्ञा पुं० [सं०] बरें । सतैया [की०] ।

तृणसंवाह—संज्ञा पुं० [सं०] पवन [की०] ।

तृणसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली । केला ।

तृणसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का सिंह । २. कुल्हाड़ी [की०] ।

तृणस्पर्श परीषद्—संज्ञा पुं० [सं०] दर्भादि कठोर तृणों को बिछाकर बैठने और उनके गड़ने की पीड़ा को सहने की क्रिया । (जैन) ।

तृणहर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस की भोपड़ी [की०] ।

तृणाञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० तृणाञ्जन] एक प्रकार का गिरगिट (को०) ।

तृणाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घास फूस की ऐसी भाग जो जल्दी बुझ जाय । २. जल्दी बुझनेवाली भाग । ३. घास फूस की भाग से अपराधी को जलाकर बिया जानेवाला दण्ड (को०) ।

तृणाढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का तृण जो ओषध के काम में आता है । पर्व तृण । २. जंगल जो तृणबहुल हो (को०) ।

तृणाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] तृणधान्य । तिलो (को०) ।

तृणाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] लवण तृण । नोनिया । घमलोनी ।

तृणारणि न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] तृण और घरणी रूप स्वतंत्र कारणों के समान व्यवस्था ।

विशेष—अग्नि के उत्पन्न होने में तृण और घरणी दोनों कारण तो हैं पर परस्पर निर्गन्त अर्थात् प्रलग प्रलग कारण हैं । हैं । घरणी से भाग उत्पन्न होने का कारण दूसरा है और तृण में भाग लगने का कारण दूसरा ।

तृणार्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवात । बबंडर । २. एक दैत्य का नाम ।

विशेष—इसे कंस ने मथुरा से श्रीकृष्ण को मारने के लिये गोकुल भेजा था । यह चक्रवात (बबंडर) का रूप धारण करके आया था और बालक कृष्ण को ऊपर उड़ा ले गया था । कृष्ण ने ऊपर जाकर जब इसका गला दबाया तब यह गिरकर चूर चूर हो गया ।

तृणेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० तृणेंद्र] ताड़ का पेड़ ।

तृणेंद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] बल्लजा । मागे बागे ।

तृणोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम । ऊँचा तृण ।

तृणोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] मूल्यवान् । तिलो भान । पनही ।

तृणोल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास फूस की मशाल ।

तृणौक—संज्ञा पुं० [सं० तृणौकस्] घास फूस की ओषधी (को०) ।

तृणोषध—संज्ञा पुं० [सं०] एतुश । एतुशलुह नामक गंधद्रव्य ।

तृण—वि० [सं०] १. काटा हुआ । २. कटा हुआ (को०) ।

तृण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास या तिनकों का ढेर (को०) ।

तृतीय(५)—वि० [हि०] दे० 'तृतीय' । उ०—तृतीय पतीव बला- नहीं, तर्ह कविकुल मिरमोर—भूपण ग्रं०, पृ० ८ ।

तृनिषा(५)—वि० [हि०] दे० 'तृतीय' । उ०—तृनिषा अनुसपना कही, हौ न गई पछिनाय ।—मति० ग्रं०, पृ० २६० ।

तृतीय—वि० [सं०] तीसरा ।

तृतीय—संज्ञा पुं० १. किसी वर्ष का तीसरा अयंजन वर्ष । २. सतीत का एक मान ।

तृतीयक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीसरे दिन जानेवाला ज्वर । तिजार ।

यौ०—तृतीयक ज्वर = तिजरा ।

२. तीसरी बार होनेवाली स्थिति (को०) । ३. तीसरा क्रम (को०) ।

तृतीयप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरुष और स्त्री के अतिरिक्त एक तीसरी प्रकृतिवाला । नपुंसक । बहीव । द्विषदा ।

तृतीय सवन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निष्टोम ऋषि यज्ञों का तीसरा सवन जिसे साय मयन भी कहते हैं । दे० 'सवन' ।

तृतीयांश—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा भाग ।

तृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रत्येक पक्ष का तीसरा दिन । तीज । २. व्याकरण में करण कारक ।

तृतीया तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] तत्पुरुष समास का एक भेद ।

तृतीया नायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तृतीया + नायिका] नायिकामेव के अनुसार अथमा या सामान्या नायिका । दे० 'नायिका' । उ०—वास्तव में पश्चिमीय सभ्यता अभी बाला घोर तृतीया नायिका वा वेश्या-वृत्ति धारणी है ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २५६ ।

तृतीयाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा आश्रम । वानप्रस्थ ।

तृतीयो—वि० [सं० तृतीयन्] १. तीसरे का हकदार । जिसे किसी संपत्ति का तृतीयांश पाने का स्वत्व हो (स्मृति) । २. तीसरी श्रेणी प्राप्त करनेवाला (को०) ।

तृने(५)—संज्ञा पुं० [सं० तृण] दे० 'तृण' ।

तृणा—तृन मा गितना = कुछ न प्रमत्तना । तृन थोट पहार छपाना = (१) प्रमत्त कार्य के लिये प्रयत्न करना । (२) निष्फल चेष्टा करना । उ०—तृन थो गन्तो तीनहू लोकनि, तू तृन थोट पहार छापे ।—मति० ग्रं०, पृ० ४३४ । तृन तोड़ना = दे० 'तृण तोड़ना' । उ०—भूतन म लोट पोड होत वोऊ रंग भरे निरखि छवि नददान बलि बलि तृन तोरे ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७७ ।

तृन पुं—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—तृन पंश वृश्चिक के इला- नद । ममि बीम नंद भव प्रम मंद ।—ह० रासो, पृ० १४ ।

तृन जोक पुं—संज्ञा स्त्री० [हि० तृन + जोक] तृणजोका । दे० 'तृण-जोका' । उ०—जो तृन जोक तृन भनुमरे । आगे गहि पाय पहिहरे ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२२ ।

तृनदुमा(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृणदुमा' । उ०—ताल लखुरी, तृनदुमा, केनकि पकरति राह ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०५ ।

तृनावर्त(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृणावर्त' । उ०—पुनि जब एक बरष को भयो । तृनावर्त उहि ले नभ गयो ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१० ।

तृपन्—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. छाता (को०) ।

तृपतना(५)—वि० [सं०] तृपत्त होना । संतुष्ट होना । आसना । उ०—निरवाचे मधु की प्राग प्राहि । सु को तु तृपति पीवत ताहि ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७६ ।

तृपना(५)—वि० [हि०] दे० 'तृपत्त' । उ०—दाहू जब मुख माईं मेलिये, सबही तृपता होइ ।—दाहू, पृ० १८७ ।

तृपति(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृप्ति' । उ०—मोजन करे तृपति सो होई । गुह्य शिष्य भावे किन कोई ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३६ ।

तृपल—वि० [सं०] १. प्रसन्न । खुश । २. संतुष्ट । ३. बैसन । व्याकुल (को०) ।

तृपल^२—संज्ञा पुं० उपल । पत्थर [को०] ।

तृपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लता । २. त्रिफला ।

तृपित^(५)—वि० [हि०] ३० 'तृपित' ।

तृप्त—वि० [सं०] १. तुष्ट । अघाया हुआ । जिसकी इच्छा पूरी हो गई हो । २. प्रसन्न । खुश ।

तृप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा पूरी होने से प्राप्त शांति और आनंद । संतोष । उ०—फिरत दृष्टा भाजन अवलोकत सुने सदन अजान । तिहि लालच कबहुँ कैसेतु तृप्ति न पावत प्रान । —सूर (शब्द०) । २. प्रसन्नता । खुशी ।

तृप्पना^(५)—क्रि० सं० [सं० तृप्] तृप्त करना । संतुष्ट करना । उ०—ज्वालनिय माल तृप्पय तृपति अति सुदेव नहवेद जुत । —पृ० रा०, २४ । २७६ ।

तृप्—संज्ञा पुं० [सं०] १. घृत । घी । २. पुरोडाश । ३. तृप्त करनेवाला । तपक ।

तृफू—संज्ञा स्त्री० [सं०] रंग जाति [को०] ।

तृवैनी^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'त्रिवेणी' । उ०—पावन परम देखि, मदन मद तृवैनी ।—नंद० प्र०, पृ० ३४८ ।

तृभंगी—वि० [हि०] ३० 'त्रिभंगी' । उ०—घरै टेढ़ी पाग, चंद्रिका टेढ़ी टेढ़े लसै तृभंगी लाल ।—नंद० प्र०, पृ० ३५० ।

तृशना^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] ३० 'तृष्णा' । उ०—जोगी दुखिया जगम दुखिया तपसी को दुख हुआ हो । आसा तृशना सबको व्यापै कोई महल न सूना हो ।—कबीर श०, भा० १, पृ० १६ ।

तृषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० तृपित, तृष्य] १. प्यास । २. इच्छा । प्रमिलाषा । ३. लोभ । लालच । ४. कलिहारी । करियारी ।

तृषाभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट में जल रहने का स्थान । बलोम ।

तृषाया^(५)—वि० [सं० तृषय] तृषय । प्यासा । उ०—सग रहै सोई पिये, नहि फिरै तृषाया बहुर ।—दरिया० बानी, पृ० ३१ ।

तृषालु—वि० [सं०] प्यासा । प्रियासित । तृपित । तृषार्त ।

तृषावत—वि० [सं० तृषावान् या बटुव०] प्यासा । उ०—तृषावत जिमि पाय गियूपा ।—तुलसी (शब्द०) ।

तृषार्त—वि० [सं०] प्यास से व्याकुल । प्यासा [को०] ।

तृषावान्—वि० [सं०] [वि० तृषावन्] तृषावन् । प्यासा ।

तृषास्थान—संज्ञा पुं० [सं०] बलोम ।

तृषाह—संज्ञा पुं० [सं०] पानी [को०] ।

तृषाहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शोक ।

तृपित—वि० [सं०] १. प्यासा । उ०—तृपित बारि बिनु जो तनु रथागा । मुँ कँ का मुखा तरागा ।—तुलसी (शब्द०) । २. प्रमिलाषी । इच्छुक ।

तृपितोत्तरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमनपर्णी । पटमन ।

तृषु—वि० [सं०] १. लोभी । इच्छुक । २. वेगवान् । क्षिप्र [को०] ।

तृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति के लिये आकुल करनेवाली इच्छा । लोभ । लालच । २. प्यास ।

तृष्णाकुल—वि० [सं० तृष्णा + आकुल] प्यास से विकल । तृषिन् । उ०—तृष्णाकुल होंगे प्रिय जासो । सलिल स्नेह मिल मधुर पिलासो ।—गीतिका, पृ० ४४ ।

तृष्णाक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] १. इच्छा का समाप्त होना । २. मानसिक शांति । चित्त की स्थिरता । ३. संतोष ।

तृष्णारि—संज्ञा पुं० [सं०] पितृपापड़ा ।

तृष्णार्त—वि० [सं० तृष्णा + आर्त] प्यास से कातर । तृष्णा से आर्त । उ०—दूर हो दुरित जो जग जागा तृष्णार्त जान ।—गीतिका, पृ० ७० ।

तृष्णालु—वि० [सं०] १. प्यासा । २. लालची । लोभी ।

तृष्य—वि० [सं०] इच्छा करने योग्य । चाहने लायक [को०] ।

तृष्य^२—संज्ञा पुं० १. लोभ । लालच । २. प्यास [को०] ।

तृसंधि^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + संधि] तीन काल । तीन पहर । उ०—समीं सौं सौं सोइबा संभै जागिबा तृसंधि देखा पहरा ।—गोरख०, पृ० ८६ ।

तृमालवाँ^(५)—वि० [सं० तृषा] तृषालु । प्यासा । उ०—प्रहर बहै तृमालवाँ, सूले काँटा भागा ।—गोरख०, पृ० ११२ ।

तैदुस—संज्ञा पुं० [सं० टिएडस] डेढ़सी नाम की तरकारी ।

तै^(५)—प्रत्यय [सं० तस् (प्रत्य०)] १. से । दा० । उ०—रज तें रजनी दिन भयो पूरि गयो असमान ।—गोपाल (शब्द०) । २. से (अधिक) । उ०—(क) को जग मंद मनिन मति मो तें ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) नैना तेरे जनज ते है खंजन तें अति नाचै ।—सूर (शब्द०) । (ग) नयना ते नमकत अति प्यारी कहा करोगी श्यामहि ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—कहीं कहीं 'अधिक' 'बढ़कर' आदि शब्दों का लोप करके भी 'तें' से अपेक्षाकृत आधिवय का अर्थ निकालते हैं । वि० ३० 'से' ।

३. (किसी काल या स्थान) से । उ०—द्यौसक ते पिय चित चढी कहै चढ़ीहैं श्योर ।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—३० 'से' ।

तैतरा—संज्ञा पुं० [देश०] बैलगाड़ी में फड़ के गाँचे लगी हुई लकड़ी ।

तैतालिस—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'तैतालीस' ।

तैतालिसवाँ—वि० [हि०] ३० 'तैतालीसवाँ' ।

तैतालीस^१—वि० [सं० त्रिचरवारिण्यत, पा० त्रिचत्तालीसा] जो गिनती में बयालिस से एक अधिक और चौतालीस से एक कम हो । चालीस और तीन ।

तैतालीस^२—संज्ञा पुं० चालीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४३ ।

तैतालीसवाँ—वि० [हि० तैतालीस + वाँ] क्रम में तैतालीस के स्थान पर पड़नेवाला । जिसके पहले बयालिस और हों ।

तैतिस—वि०, संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'तैतीस' ।

तैतिसवाँ—वि० [हि०] ३० 'तैतीसवाँ' ।

तैतीस^१—वि० [सं० त्रयस्त्रिंशत्, पा० त्रितिसति, प्रा० त्रितीसा] जो गिनती में तीस से तीन अधिक हो । तीस और तीन ।

उ०—नो खेलें तैत्तिरीय तीन । तेज वेद विषय संग लीन ।—
कबीर श०, भा० २, पृ० ११५ ।

तैत्तिरीय^२—संज्ञा पु० तीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३३ ।

तैत्तिरीय^३—वि० [हि० तैत्तिरीय + यी (प्रत्य०)] जो क्रम में तैत्तिरीय के स्थान पर पड़े । जिसके पहले बत्तीस और हों ।

तैदुआ^१—संज्ञा पु० [देश०] बिल्मी या चीते की जाति का एक वृषा हिंसक पशु जो अफ्रीका तथा एशिया के घने जंगलों में पाया जाता है ।

विशेष—बल और भयंकरता आदि में शेर और चीते के उपरान्त इसी का स्थान है । यह चीते से छोटा होता है और चीते की तरह इसकी गरदन पर भी भयावह नहीं होता । इसकी लंबाई प्रायः चार पाँच फुट होती है और इसके शरीर का रंग कुछ पीलापन लिए भूरा होता है । इसके शरीर पर काले काले मोल धब्बे या बिन्दियाँ होती हैं । इस जाति का कोई कोई जानवर काले रंग का भी होता है ।

तैदुआ^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तैदु' ।

तैदु—संज्ञा पु० [सं० तैदु] १. मझोले आकार का एक वृक्ष जो भारतवर्ष, लंका, बरमा और पूर्वी बंगाल के पहाड़ी जंगलों में पाया जाता है ।

विशेष—यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है तब इसके हीरे की लकड़ी बिलकुल काली हो जाती है । वही लकड़ी आबलूम के नाम से बिकती है । इसके पत्ते लंबोतरे, नोकदार, खुरदुरे और मधुवे के पत्तों की तरह पर उससे नुशीले होते हैं । इसकी छाल काली होती है जो जलाने से चिड़चिड़ाती है ।

पर्या०—कालस्कंध । शितिगारय । केंदु । तैदु । तैदुल । तैदुकी । नीलसार । अतिमुक्तक । कालसार ।

२. इस पेड़ का फल जो नीबू की तरह का हरे रंग का होता है और पकने पर पीला हो जाता और खाया जाता है ।

विशेष—वेदक में इसके कच्चे फल को स्निग्ध, कमेला, हलका, मलरोषक, शीतल, अरुचि और वात उत्पन्न करनेवाला और पक्के फल को भारी, मधुर, स्वादु, कफकारी और पित्त, रक्तरोग और वात का नाशक माना है ।

३. सिंध और पंजाब में होनेवाला एक प्रकार का तरबूज जिसे 'दिलपसंद' भी कहते हैं ।

ते^१—अव्य० [हि०] दे० 'ते' । उ०—के कुदरत ते पेदा किया यक रतन ।—दक्खिणी, पृ० ११७ ।

ते^२—सर्व० [सं० ते] वे । वे लोग । उ०—(क) पलक नयन फनिमनि जेहि माँहीं । जोगवहि जननि सकल दिन राती । ते सब फिरत विपिन पदचारी । कंद मूल फल पून अहारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) राम कथा के ते अधिकारी । जिनको सतसंगति अति प्यारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

तेह^१—सर्व० [हि० ते] उसे । उ०—कवि तो तेह पाहन सम माने । नहिन पखान पखान बखाने ।—नंद० अं० पृ० ११८ ।

तेहसा^१—वि० [हि०] दे० 'तेहस' ।

तेहसा^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तेहस' ।

तेहसा^३—वि० [हि०] दे० 'तेहसा' ।

तेहस—[सं० त्रिविधति, पा० तेवीसति, प्रा० तेवीस] जो गिनती में बीस से तीन अधिक हो : बीस और तीन ।

तेहस^२—संज्ञा पु० बीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—२३ ।

तेहसा^३—वि० [हि० तेहस + यी (प्रत्य०)] क्रम में तेहस के स्थान पर पड़नेवाला । जिसके पहले बीस और हों ।

तेउ^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तयो' । उ०—महमद बारि परेम की, जेउ आवे तेउ खेनु ।—जायसी अं० (गुप्त), पृ० १६१ ।

तेक^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तेज' । उ०—तेक सोकि तबयो तुगी ।—पृ० २१०, ३१००५ ।

तेखना^१—क्रि० अ० [म० तीरण, हि० तेहा] बिगड़ना । कुद होना । नाराज होना । उ०—उ० (क) सुभ बोख्यो तबै भम सो तेखि कै । लाल नेना धरे ब्रजना देखि कै ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) हनुमान या कौन बलाय बनो कछु पूछे ते ना तुम तेखियो री । हिन मानि हमारे हमारे कहे भला सो मुख की छवि देखियो री ।—हनुमान (शब्द०) । (ग) मोही को झूठी कहो भगरो करि सोई करो तब और ऊ तेखी । बैठे है बोक बगीचे में जायके पाई परो अथ आदिक देखी ।—रघुराज (शब्द०) ।

तेखना^२—क्रि० अ० [हि०] प्रमत्त होना । उमंग में आना । उ०—डारत अंतर लगाइ अरगजा रंगिली समझिन तेखि ।—पृ० ३८० ।

तेखी^१—वि० [हि० तीखा] कोपयुक्त । कुद । उ०—दिस लंक अंगद आद द्वादस, तहकिया तेखी ।—रघु० ६०, पृ० १६१ ।

तेग—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तेग] तलवार । खग । उ०—(क) जो रनसूर तेग तजि देवे । तो हम तुम्हरो मत लेवे । विद्यान (शब्द०) । (ख) बरने दीनदयाल हर्ष जो तेग चलैही । तहो जीते जसी, जरे सुरलोकहि पैही ।—दीनदयाल (शब्द०) ।

तेगा—संज्ञा पु० [फ्रा० तेग] १. खाड़ा । खंग (अस्त्र) । उ०—तेगा ये रंग मोत के पानि पनार सुघट । अंगन बाढ़ दिए बिना करत चौगुनी डाट ।—रमनिधि (शब्द०) । २. किसी मेढुराब के नीचे कं भाग या दरवाजे को ईंट पत्थर मिट्टी इत्यादि से बंद करने की क्रिया । ३. कुश्ती का एक दाँव या पेंच जिसे कमरतेगा भी कहते हैं ।

तेज^१—संज्ञा पु० [सं० तेजस्] दीप्ति । कानि । चमक । दमक । आभा । उ०—जिमि त्रिनु तेज न रूप गोसाईं ।—तुलसी (शब्द०) । २. पराक्रम । जोर । बल । ३. वीर्य । उ०—पतित तेज जो अयो हमारे कहो देव को भारी ।—रघुराज (शब्द०) । ४. किसी वस्तु का सार भाग । तत्त्व । ५. ताप । गर्मी । ६. पित्त । ७. सोना । ८. तेजी । प्रचंडता । उ०—(क) तेज कृष्णः शेष महि शेषा । अथ अथगुन घन घनी घनेसा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) यव मो अचल शील, घोनल से चलबिरा, जल सो घमल तेज कैसी पायो है ।—

केशव (शब्द०) । १२. प्रताप । रोब दाब । १०. मखन ।
नैत्र । ११. सत्वगुण से उत्पन्न लिंगशरीर । १२. मज्जा ।
१३. पाँच महाभूतों में से तीसरा भूत जिसमें ताप और प्रकाश
होता है । अग्नि ।

विशेष—सांख्य में इसका गुण शब्द, स्पर्श और रूप माना गया
है । न्याय या वैशेषिक के अनुसार यह दो प्रकार का होता
है—नित्य और अनित्य । परमाणु रूप में यह नित्य और
कर्म रूप में अनित्य होता है । शरीर, इंद्रिय और विषय के
भेद से अनित्य तेज तीन प्रकार का होता है । शरीर तेज वह
तेज है जो सारे शरीर में व्याप्त हो । जैसा, आदित्यलोक
में । इंद्रिय तेज वह है जिससे रूप आदि का ग्रहण हो ।
जैसा, नेत्र में । विषय तेज चार प्रकार का है—भौम, दिव्य,
प्रोदय और आकरज । भौम वह है जो लकड़ी आदि जलाने
से हो; दिव्य वह है जो किसी दैवी शक्ति अथवा आकाश
में दिखाई दे; जैसे, बिजली; प्रोदय वह है जो उदर में
रहता है और जिससे भोजन आदि पचता है; और आकरज
वह है जो खनिज पदार्थों में रहता है, जैसा सोने में । शरीर
में तेज रहने से साहस और बल होता है, खाद्य पदार्थ पचते
हैं और शरीर सुंदर बना रहता ।

१४. चोड़े का वेग या चलने की तेजी ।

विशेष—यह तेज दो प्रकार का है— सततोत्थित और भयोत्थित ।
सततोत्थित तो स्वाभाविक है और भयोत्थित वह है जो चाबुक
आदि मारने से उत्पन्न होता है ।

१५. तीक्ष्णता (को०) । १६. तीक्ष्ण धार (को०) । १७. दिव्य
उद्योति (को०) । १८. उग्रता (को०) । १९. अधीरता (को०) ।
२०. प्रभाव (को०) । २१. प्राणभय की भी स्थिति में अदमान
आदि न सहने की प्रकृति (को०) । २२. उष्ण प्रकाश (को०) ।
२३. भंजा (को०) । २४. दूसरों को अभिभूत करने की शक्ति
(को०) । २५. सत्वगुण से उत्पन्न लिंग शरीर (को०) । २६.
रजोगुण (को०) । २७. तेजोमय व्यक्ति (को०) । २८. आँख की
स्वच्छता (को०) ।

तेज^२—वि० [क्रा० तेज] १. तीक्ष्ण धार का । जिसकी धार पेनी
हो । उ०—यह चाकू बड़ा तेज है । २. चलने में शीघ्रगामी ।
उ०—यद्यपि तेज रोडाल बर लगी न चल को वार । तउ
खंडो घर को भयो पैरो कोम हजार ।—बिहारी (शब्द०) ।
३. चटपट काम करनेवाला । फुरतीला । जैसे,—यह भीकर
बड़ा तेज है । ४. तीक्ष्ण । तीखा । भालवार । जैसे, तेज
सिरका । ५. महंगा । गरी । बहुमूल्य । उ०—भाजकल
कपड़ा बहुत तेज है । ६. उग्र । प्रचंड ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

७. चटपट अधिक प्रभाव करनेवाला । जिसमें भारी असर हो ।
जैसे, तेज प्रहर । ८. जिसकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण हो । जैसे,
यह सड़का बहुत तेज है । ९. बहुत अधिक चंचल या चपल ।
१०. उग्र । प्रचंड । जैसे, तेज मित्राज ।

तेज^३—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तार्जि-१' । उ०—काबिली उर
तेज रोम रोमी पंजाबी ।—पृ० रा०, ११५ ।

तेजवारी—वि० [सं० तेजोवारिन्] तेजस्वी । जिसके चेहरे पर तेज
हो । प्रतापी । उ०—तेज न रहेगा तेजवारियों का ना
को भी मंगल मयंक मंद मंद पड़ आयेंगे ।—इतिहास
पृ० ६२७ ।

तेजन—संज्ञा पु० [सं०] १. बाँस । २. मूँज । ३. रामशर । सरपट
४. दीप्त करने या तेज उत्पन्न करने की क्रिया या भाव ।

तेजनक—संज्ञा पु० [सं०] शर । सरपट ।

तेजना^१—क्रि० सं० [सं० त्याज्य] दे० 'तजना' । उ०—तेजि कुर्मा
बेकार, सुमति गहि लीजिए ।—घरम०, पृ० ४१ ।

तेजनाख्य—संज्ञा पु० [सं०] मूँज ।

तेजनी—संज्ञा पु० [सं०] १. पूर्वा २. मालकंगनी । ३. चण्ड । चाब
४. तेजबल । ५. चटाई (को०) । ६. गुच्छा (को०) । ७. धो
की अयाल (को०) ।

तेजपत्ता—संज्ञा पु० [सं० तेजपत्र] दारचीनी की जाति का एक पेड़ या
लंका, दारजिलिंग, काँगड़ा, जयंतिया और खासी की पहाड़ियों
में होता है और जिसकी पत्तियाँ दाल तरकारी आदि ।
मसाले की तरह डाली जाती हैं । जिस स्थान पर कुछ समय
तक अच्छी वर्षा होती हो और पीछे कड़ी धूप पड़ती हो वह
यह पेड़ अच्छी तरह बढ़ता है ।

विशेष—जयंतिया और खासी में इसकी खेती होती है । पहरों
सात सात फुट की दूरी पर इसके बीज बोए जाते
और जब पोधा पाँच वर्ष का हो जाता है तब उसे दूसरे
स्थान पर रोप देते हैं । उस समय तक छोटे पोधों की रक्षा
की बहुत आवश्यकता होती है । उन्हें धूप आदि से बचाव
के लिये भाड़ियों की छाया में रखते हैं । रोपने के पाँच ब
बाद इसमें काम आने योग्य पत्तियाँ निकलने लगती हैं । प्रति
वर्ष फुमार से अगहन तक और कहीं कहीं फागुन तक इसकी
पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं । साधारण वृक्षों से प्रति वर्ष धीरे
पुराने तथा दुर्बल वृक्षों से प्रति दूसरे वर्ष पत्तियाँ ली जाती
हैं । प्रत्येक वृक्ष से प्रति वर्ष १० से २५ सेर तक पत्तियाँ
निकलती हैं । वृक्ष से प्रायः छोटी छोटी डालियाँ काट ली
जाती हैं और धूप में सुखाई जाती हैं । इसके बाद पत्तियाँ
अलग कर ली जाती हैं और उसी रूप में बाजार में बिकती
हैं । ये पत्तियाँ शरीरों की पत्तियों की तरह पर उनसे कई
होती हैं और सुगंधित होने के कारण दाल तरकारी आदि
में मसाले की तरह डाली जाती हैं । इन पत्तियों से एक
प्रकार का सिरका तैयार होता है । इसे हरे के साथ मिला
कर इनसे रंग भी बनाया जाता है । तेजपत्ते के फूल और
फल लोग के फूलों और फलों की तरह होते हैं, लकड़ी लाली
लिए हुए सफेद होती है और उससे मेज कुर्सी आदि बनती
हैं । कुछ लोग दारचीनी और तेजपत्ते के पेड़ को एक ही
समझते हैं पर वास्तव में ये दोनों एक ही जाति के पर अलग
अलग पेड़ हैं । तेजपत्ते के किसी किसी पेड़ से भी पत्तियाँ
छाल निकलती हैं जो दारचीनी के साथ ही मिला दी जाती
हैं । इसकी आग से एक प्रकार का तेल भी निकलता है

जिससे साबुन बनाया जाता है। पत्तियों और छाल का व्यवहार प्रोषध में भी होता है। वैद्यक में इसे लघु, उष्ण, रुखा और कफ, वात, कंडू, घाम तथा अरुचि का नाशक माना है।

पर्या०—गंधजात। पत्र। पत्रक। त्वक्पत्र। वरांग। भृंग। चोष। उत्कट। तमालपत्र।

तेजपत्र—संज्ञा पु० [सं०] तेजपत्तः। एक जंगली वृक्ष का पत्ता जो सुगंधित होता है और इसी लिये मसाले में पड़ता है। इसके वृक्ष सिलहट की पहाड़ियों पर बहुत होते हैं। इसे तेजपत्ता और तेजपात भी कहते हैं।

तेजपात—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तेजपत्ता'।

तेजवज्र—संज्ञा पु० [सं० तेजोवती] एक कटिदार जंगली वृक्ष जो प्रायः हरिद्वार और उसके पास के प्रांतों में अधिकता से होता है।

विशेष—इसकी छाल लाल मिर्च की तरह बहुत चरपरी होती है और कहीं कहीं पहाड़ी लोग दाल मसाले आदि में इसकी जड़ का मिर्च की तरह व्यवहार भी करते हैं। इसकी छाल या जड़ खाने से दाँत का दर्द मिट जाता है। वैद्यक में इसे गरम, चरपरा, पाचक, कफ और वातनाशक, तथा श्वास, खाँसी, हिचकी और बवासीर आदि को दूर करनेवाला माना है।

पर्या०—तेजवती। तेजस्विनी। तेजव्या। लघुवस्त्रकला। परिजाता। नीता। तित्ता। तेजनी। विडालघ्नी। सुतेजसी।

तेजमान—वि० [हि०] दे० 'तेजवान्'। उ०—वे सिंहासन पे सूरज के समान तेजमान, चंद समान सीतल सुभाव।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८६।

तेजय^(५)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तेज'। उ०—तेजय जल सब सिधुमद एक।—कबीर सा०, पृ० २६।

तेजल—संज्ञा पु० [सं०] चातक। पपीहा।

तेजवंत—वि० [हि० तेज + वंत] दे० 'तेजवान'। उ०—तेजवंत लघु गनिय न रानी।—तुलसी (शब्द०)।

तेजवरण^(५)—वि० [सं० तेज + हि० वरण] ज्योतिर्मय। उ०—तेजवरण चंदा अधिकारी।—कबीर सा०, पृ० १००।

तेजवान—वि० [सं० तेजोवान्] [वि० स्त्री० तेजवती] १. जिसमें तेज हो। तेजस्वी। उ०—मथवा मही में तेजवान सिवराज वीर, कोटि करि सकल सख्ख किए सैल है।—भूषण ग्रं०, पृ० ४६। २. वीरवान। ३. बली। ताकतवाला। ४. कांतिमान्। चमकीला।

तेजस्—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'तेज'।

यौ०—तेजस्कर। तेजस्काम = शक्ति प्रताप आदि की इच्छावाला।

तेजस^(५)—संज्ञा पु० [सं० तेजस्] तेज। उ०—बिस्व तेजस पराग धारता, इनमें सार न जाना।—कबीर सा०, भा० २, पृ० ६६।

तेजसा^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० तेजस्] घनाहत चक्र की दूसरी मात्रा। उ०—द्वादश दल १२ द्वादश माला १२ क ल ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ—बहिर्मात्रा २१ द्वाली १—तेजसा २—।—कबीर सं०, पृ० ३१३।

तेजसि^(५)—वि० [हि०] दे० 'तेजसी'। उ०—तेजसि हाते महाबची, ते जम तेज अपार।—रा० क०, पृ० १३०।

तेजसी^(५)—वि० [हि० तेजस्वी] तेजयुक्त। उ०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिय न ताहु। अजहुं देत दुख रवि शशिहि सिर अवशेषित राहु।—तुलसी (शब्द०)।

तेजस्कर—संज्ञा पु० [सं०] तेज बढ़ानेवाला। जिससे तेज की वृद्धि हो।

तेजस्व—संज्ञा पु० [सं०] महादेव। शिव।

तेजस्वत्—वि० [सं०] तेजस्वी। तेजयुक्त।

तेजस्वान्—वि० [सं० तेजस्वत्] दे० 'तेजस्वत्' [को०]।

तेजस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजस्वी होने का भाव।

तेजस्विनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी।

तेजस्विनी^२—वि० स्त्री० [सं०] तेजयुक्त [को०]।

तेजस्वी^१—वि० [सं० तेजस्विन्] [स्त्री० तेजस्विनी] १. कांतिमान्। तेजयुक्त। जिसमें तेज हो। २. प्रतापी। प्रतापवाला। प्रभावशाली।

तेजस्वी^२—संज्ञा पु० [सं०] इंद्र के एक पुत्र का नाम।

तेजहत—वि० [सं० तेजो + हत] तेजहीन। जिसमें तेज न हो। उ०—निशाचर तेजहत रहे जो वन्य जन।—गीतिका, पृ० १७०।

तेजा—संज्ञा पु० [फा० तेज] १. जूने आदि से बना हुआ एक प्रकार का काला रंग जिससे रंगरेज लोग मोरपंखी रंग बनाते हैं। २. महुंगी। तेजी।

तेजाव—संज्ञा पु० [फा० तेजाव] [वि० तेजाबी] किसी क्षार पदार्थ का प्रमल सार जो द्रावक होता है। जैसे, गंधक का तेजाव, धोरे का तेजाव तमक का तेजाव, नीबू का तेजाव आदि।

विशेष—किसी चीज का तेजाव तरल रूप में होता है और किसी का रवे के रूप में, पर सब प्रकार के तेजाव पानी में घुल जाते हैं, स्वाद में थोड़े या बहुत लट्टे होते हैं और क्षारों का गुण नष्ट कर देते हैं। किसी धातु पर पड़ने से तेजाव उसे काटने लगता है। कोई कोई तेजाव बहुत तेज होता है और जरीर में जिस स्थान पर लग जाता है उसे बिलकुल जला देता है। तेजाव का व्यवहार बहुधा प्रोषधों में होता है।

तेजाबी—वि० [फा० तेजाबी] तेजाव संबंधी।

यौ०—तेजाबी सोना = दे० 'सोना'।

तेजारता—संज्ञा स्त्री० [फा० तिजारत] दे० 'तिजारत'।

तेजारती—वि० [हि०] दे० 'तिजारती'।

तेजासी^(५)—संज्ञा पु० [फा० ताजी] तेज धोड़ा। उ०—त्यार किया तेजासी चढ़ियो करस खंभ।—नंद०, पृ० १६६।

तेजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी।

तेजित—वि० [सं०] १. पैना किया हुआ। तेज किया हुआ। २. उत्तेजित किया हुआ [को०]।

तेजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजबल।

तेजिष्ठ—वि० [सं०] तेजस्वी ।

तेजो—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तेजी] १. तेज होने का भाव । तीक्ष्णता २. तीव्रता । प्रबलता । ३. उग्रता । प्रचंडता । ४. शीघ्रता । जल्दी । ५. महुँगी । गरानी । मदी का छलटा । ६. सफर का महीना या मास (को०) ।

यो—तेजी का चाँद = सफर महीने का चाँद ।

तेजेयु—संज्ञा पुं० [सं०] रोद्राक्ष राजा के एक पुत्र का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में आया है ।

तेजो—संज्ञा पुं० [सं०] तेजस् का समासगत रूप, जैसे तेजोबल, तेजोमय ।

तेजोबीज—संज्ञा पुं० [सं०] पञ्जा (को०) ।

तेजोभंग—संज्ञा पुं० [सं० तेजोभङ्ग] अपमान । तिरस्कार (को०) ।

तेजोभीरु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाया । परछाईं (को०) ।

तेजोमंडल—संज्ञा पुं० [सं० तेजोमण्डल] सूर्य, चंद्रमा आदि आकाशीय पिंडों के चारों ओर का मंडल । छायामंडल ।

तेजोमंथ—संज्ञा पुं० [सं० तेजोमन्थ] गनियारी का पेड़ ।

तेजोमय—वि० [सं०] १. तेज से पूर्ण । जिसमें खूब तेज हो । जिसमें बहुत आभा, शक्ति या उज्योति हो । उ०—तेजोमय स्वामी महें सेवक हूँ तेजोमय ।—सुंदर० प्र० भा० १, पृ० ३० ।

तेजोमूर्ति—वि० [सं०] तेजगुक्त । तेज से परिपूर्ण (को०) ।

तेजोमूर्ति—संज्ञा पुं० सूर्य (को०) ।

तेजोरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म । २. जो प्रगति या तेज रूप हो ।

तेजोवत्—वि० [सं०] ३० 'तेजवत्' (को०) ।

तेजोवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तत्रिणदीप्ती । २. चण्ड । ३. माल-कंगनी । तेजबल ।

तेजवान्—वि० [सं० तेजोवान्] [स्त्री० तेजोवती] १. तेजवाला । २. उत्साही (को०) ।

तेजोविन्दु—संज्ञा पुं० [सं० तेजोविन्दु] मज्जा ।

तेजोवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी धातु का वृक्ष ।

तेजोहत—वि० [सं०] जिसका तेज समाप्त हो गया हो (को०) ।

तेजोह्व—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तेजवत् । २. चण्ड ।

तेटकौ—क्रि० वि० [हि० तेता] दे० 'तेतिक' । उ०—जाकी जितनी रूखी बिधाता नाकी आवे तेटकी ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ८३३ ।

तेहंडिक—वि० [सं० त्रिण्डिक] त्रिदंड धारण करनेवाला ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २१५ ।

तेड़ना—क्रि० सं० [फ्रा०] दे० 'टेरना' । उ०—पिपरा राजा पाठवड़, डोला तेड़ना काज ।—डोला०, दू० ८१ ।

तेड़ा—वि० [हि०] दे० 'टेड़ा' । उ०—आजैवाँ तेड़ा भड़ा, वेढा लगी बिस्र ।—रा० रू०, पृ० १३७ ।

तेण—सर्व० [हि० ते] उस । उ०—हणै कुंमरोसा जोधहर श्रीहवाँ, करै कुंण तेण परमाण काया ।—रघु० ५०, पृ० २६ ।

तेणु—सर्व० [सं० तेन; प्रा० तेण, तेण] १. तिससे । उस कारण से । इसलिये । इससे । उ०—तेणु न राखी सासरइ अजे स माहु बाल ।—डोला०, दू० ११ ।

तेतना—वि० [हि०] दे० 'तितना' । उ०—मास षट बिहार तेतने निमिष हूँ न जाने रस नंददास प्रभु संग रैन रंग जागरी ।—नंद० प्र०, पृ० ३-६५ ।

तेता—वि० पुं० [सं० तावत्] [स्त्री० तेती] उतना । उसी कदर । उसी प्रमाण का । उ०—(क) हरि हर विधि रवि शक्ति समेता । तुंडी ते उपजत सब तेता ।—निषण्ड (शब्द०) । (ख) जेती संपति कृपन कै तेती तू मत जोर । बहुत जात ज्यो ज्यो उरज ह्यो ह्यो होत कठोर ।—बिहारी (शब्द०) ।

तेतालीस—वि० [हि०] दे० 'तेतालीस' ।

तेतालीस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तेतालीस' ।

तेतिक—वि० [हि० तेता] उतना ।

तेती—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'तेता' । उ०—किठहि बुझावे का करे तिहि घर तेती आगि ।—नंद० प्र०, पृ० १३७ ।

तेतीस—वि० संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तेतीस' ।

तेतो—वि० [हि०] दे० 'तेता' ।

तेथ—अव्य० [सं० तत्र] तहाँ । उ०—जेथ तेथ प्राणी जलै लालच ददी लाय ।—बाँकी प्र०, भा० ३, पृ० ६० ।

तेन—संज्ञा पुं० [सं०] गीत का आरंभिक स्वर (को०) ।

तेनु—सर्व० [सं० तत्] उसने । उ०—धरमान नाम कायथ सुधर, तेनु चरित लिख्य सबै ।—पु० रा०, १६/२३ ।

तेम—संज्ञा पुं० [सं०] गीला होना । आर्द्र होना । आर्द्रता (को०) ।

तेम—अव्य० [हि०] दे० 'तिमि' । उ०—योग ग्रंथ माँहे लिखे मैं समुभाये तेम ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ४१ ।

तेमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यंजन । पका हुआ भोजन । २. गोला करने की क्रिया (को०) । ३. आर्द्रता । गोलापन (को०) ।

तेमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चूल्हा (को०) ।

तेमरु—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का वृक्ष । आबपूस का पेड़ ।

तेयागना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'त्यागना' । उ०—हमारे कहने का मतलब यह है कि सब कोई भेदभाव त्याग के, एक होकर कि परमार्थ कारखाने में सहजोग दीजिए ।—मैल०, पृ० २६ ।

तेर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तेरह' । उ०—सय तेर परे हिंदू सयन कोस तीन रन अद्वय परि ।—पृ० रा०, ६/२०६ ।

तेरज—संज्ञा पुं० [देश०] खतियोनी का गोशबारा ।

तेरना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टेरना' । उ०—पूनम तिथि मंगल दिनह गृह तेरिय आजान । आसन छंडि सु अथ दिय, मह आदर सनमान ।—पृ० रा०, ४/६१ ।

तेरपन—वि० [हि०] दे० 'तिरपन' । उ०—सत्रासे तेरपन सेर सीकरी नै बसायो ।—शिलर०, पृ० ४८ ।

तेरवाँ—वि० [हि०] दे० 'तेरहवाँ' ।

तेरस—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयोदश] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि । त्रयोदशी ।

तेरसि०—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयोदशी] दे० 'तेरस' । उ०—तेरसि तिथि ससि सम्मर पथ तिसि दसमि दगा मोरि भेनि ।—विद्या पति, पृ० १७८ ।

तेरह^१—वि० [सं० त्रयोदश, प्रा० तेह, अर्द्धमा० तेरस] जो गिनती में दस से तीन अधिक हो । दस और तीन । उ०—कामी नगर भरा सब भारी । तेरह उतरे भोजन पारी ।—घट०, पृ० २६३ ।

तेरह^२—संज्ञा पुं० दस से तीन अधिक की संख्या और उस संख्या का सूचक अंक भी इस प्रकार लिखा जाता है—१३ ।

तेरहवीं—वि० [हि० तेरह + वीं (प्रत्य०)] दस और तीन के स्थान-वाला । क्रम में तेरह के स्थान पर पड़नेवाला । जिसके पहले बारह और हों ।

तेरही—संज्ञा स्त्री० [हि० तेरह + ईं (प्रत्य०)] किसी के भरने के दिन से अथवा प्रेनकर्म की तेरहवीं तिथि, जिसमें पिंडदान और ब्राह्मणभोजन करके दह करनेवाला और मृतक के घर के लोग शुद्ध होते हैं ।

तेरा—वर्ब० [त० ते (=तव) + हि० रा (प्रत्य०)] [स्त्री० तेरी] मध्यम पुरुष एकवचन की शब्दी का सूचक सर्वनाम शब्द । मध्यम पुरुष एकवचन संबंध कारक सर्वनाम । तू का संबंध कारक रूप । उ०—तू नहि मानन देति आली री मन तेरी मानवे कौं करत ।—नंद० प्र०, पृ० ३९८ ।

मुहा०—तेरी सी—तेरे साथ या मतलब की बात । तेरे अनुकूल बात । उ०—बकसीम इस जी की सीस होत देखियत, रिस काड़े गायनि कहत तो हों तेरी सी ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—शिशु समाज में इसका प्रयोग बड़े या बगबरवाले के साथ नहीं होता बल्कि अपने से छोटे के लिये होता है ।

तेरा^२—वि० [हि०] दे० 'तेरह' । उ०—चंद्रमा मिथुन को तेरा । ३ अस, मनि लगन में देह होगी ।—ह० रासो०, पृ० ३० ।

तेरिज—संज्ञा पुं० [अ० तिराज ?] १. खनास । स्पष्ट । २. सार । संक्षेप । उ०—तत्त को तौरज बोरज बुधि की ।—धरनी०, पृ० ४ ।

तेरस^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योरस' ।

तेरस^४—संज्ञा स्त्री० दे० [हि०] 'तेरस' ।

तेरु०—वि० [हि० तेरना] तेरनेवाला । उ०—इसो तेरु कंधण फाड भावै उदण, मछीवर कवण तरपाज लासे ।—रघु० प्र०, पृ० २६७ ।

तेरी—अव्य० [हि० ते] से । उ०—(क) तब प्रभु कह्यो पवनसुत तेरे । जनकसुतहि जावहु दिग मेरे ।—विश्राम (शब्द०) । (ख) यहि प्रकार सब वृक्षन तेरे । भेटि जेटि पुँछें प्रभु तेरे ।—विश्राम (शब्द०) ।

तेरो०—सर्व० [हि०] दे० 'तेरा' । उ०—तेरो मुख बदा चकोर मेरे नैना ।—(शब्द०) ।

तेलंग—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तैलंग' । उ०—तेलंगा बंगा चोख कलिंगा राधापुत्ते मजोया ।—भीति०, पृ० ४८ ।

तेल—संज्ञा पुं० [सं० तैल] १. वह चिकना तरल पदार्थ जो बीजों वनस्पतियों आदि से किसी विशेष क्रिया द्वारा निकाला जाता है अथवा घापमें घाव निकलता है । यह सदा पानी से हलका होता है, उसमें घुल नहीं सकता, घनफोमल में घुल जाता है । अधिक सरदी पाकर प्रायः जम जाता है और अग्नि के संयोग से धूँपाँ देकर जल जाता है । इसमें कुछ न कुछ गंध भी होती है । चिकना । रोगन ।

विशेष—तेल तीन प्रकार का होता है—मसृण, उड़ जानेवाला और अनिज । मसृण तेल वनस्पति और जंतु दोनों में निकलता है । वनस्पत्य मसृण तेल है जो बाजों या दानों आदि की कोल्हू में घेरकर या दबाकर निकाला जाता है, जैसे, तिल, सरसों, नीम, गरी, रेड़ी, कुसुम आदि का तेल । इस प्रकार का तेल दीया जलाने, साबुन और बर्निश बनाने, सुगंधित करके सिर या शरीर में लगाने, कानों की बीजों लगाने, फलों आदि का अचार बनाने और इसी प्रकार के और दूसरे कामों में आता है । मछीनो के पुरजों में उछे घिसने से बचाने के लिये भी यह बाला जाता है । मित्र में लगाने से बमेनी, बेले आदि के जो सुगंधित तेल होते हैं वे बहुधा तिल के तेल की समीन देकर ही बनाने जाते हैं । मित्र मित्र तेलों के गुण आदि भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं । इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के वृक्षों से भी घापमें घाव तेल निकलता है जो पीछे से माफ कर लिया जाता है, जैसे, नाकपीन आदि । जंतुज तेल जानवरों की चरबी का तरल घन है और इसका व्यवहार प्रायः औषध के रूप में ही होता है जैसे, सिर का तेल, घनेस का तेल, भंगर का तेल आदि । उड़ जानेवाला उड़ तेल है जो वनस्पति के तिन तिन अंशों में बमके द्वारा उत्पन्न होता है । जैसे, अमरक, काजल, नाकपीन का तेल, मोम का तेल, हींग का तेल आदि । यह तेल हवा लाने में सुब या उड़ जाते हैं और इन्हें खोजान के लिये बहुत अधिक गरमी की आवश्यकता होती है । इस प्रकार के तेल का शरीर में लगाने से कभी कभी कुछ असर भी होती है । ऐसे तेलों का व्यवहार विषाघातों औषधों और सुगंधों आदि में बहुत अधिकता में होता है । कभी कभी बर्निश का रंग घाद बनाने में भी यह काम आता है । अनिज तेल तेल है जो केरन खानों या जमीन में खोदे हुए बड़े बड़े गड्ढों में से दूरा निकलता है । जैसे मिट्टी का तेल (देखो 'मिट्टी का तेल' और 'पेट्रोवियम') आदि । प्रायःकाल गारे संयार में बहुधा रोगनो करने और मोटर (इंजिन) चलाने में इसी का व्यवहार होता है ।

प्रायर्वेद में तेल के प्रकार के तेलों को वायुनाशक माना है । वैद्यक के अनुसार शरीर में तेल चलने से कफ और वायु का नाश होता है, वायु पुष्ट होती है, तेल बढ़ता है, समझा गुनायम रहता है, रंग सिलता है और चित्त प्रसन्न रहता है । पैर के तलवों में तेल चलने से अच्छी तरह नींद आती है और मस्तिष्क

तथा नेत्र ठंडे रहते हैं। सिर में तेल लगाने से सिर का दर्द दूर होता है, मस्तिष्क ठंडा रहता है, और बाल काले तथा घने रहते हैं। इन सब कार्यों के लिये वैद्यक में सरसों या तिल के तेल को अधिक उत्तम और गुणकारी बतलाया है। वैद्यक के अनुसार तेन में तली हुई खाने की चीजें विदाही, गुरुपाक, गरम, पित्तकर, त्वचादोष उत्पन्न करनेवाली और वायु तथा दृष्टि के लिये अहितकर मानी गई हैं। साधारण सरसों आदि के तेल में अनेक प्रकार के रोग दूर करने के लिये तरह तरह की औषधियाँ पकाई जाती हैं।

कि० प्र०—जलना ।—जलाना ।—निकलना ।—निकाखना ।—पेरना ।—मलना ।—लगाना ।

मुहा०—तेल में हाथ डालना = (१) अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये खोलते हुए तेल में हाथ डालना । (प्राचीन काल में सत्यता प्रमाणित करने के लिये खोलते हुए तेल में हाथ डलवाने की प्रथा थी) । (२) विकट शपथ खाना । आँख का तेल निकालना = दे० 'आँख' के मुहावरे ।

२. विवाह की एक रस्म जो साधारणतः विवाह से दो दिन और कहीं कहीं चार पाँच दिन पहले होती है। इसमें वर को वधू का नाम लेकर और वधू को वर का नाम लेकर हल्दी मिला हुआ तेन लगाया जाता है। इस रस्म के उपरान्त प्रायः विवाह संबंध नहीं छूट सकता। उ०—अभ्युदयिक करवाय आद्य बिधि सब विवाह के चारा। कुनि तेन मायन करवैह व्याह विधान अपारा ।—रघुराज (शब्द०) ।

मुहा०—तेल उठाना या जलाना = तेल की रस्म पूरी होना । उ०—तिरिया तेल हमीर दूठ चढ़े त दूजी बार ।—कोई कवि (शब्द०) । तेल चटाना = तेल की रस्म पूरी करना । उ०—प्रथम हरहि बंग करि संगल गावहि । करि कुलरीति कनस थपि तेन चढावहि ।—त्वसी (शब्द०) ।

तेलगू—संज्ञा स्त्री० [तेलगु] प्रायः राज्य की भाषा ।

तेल चलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तेल + चलाना] देशी छोट की छपाई में मिठाई नाम की क्रिया । नि० दे० 'मिठाई' ।

तेलवाई—संज्ञा पुं० [हि० तेल + वाई (प्रत्य०)] १. तेल लगाना । तेन मलना । २. विवाह का एक रस्म जिसमें वधू पक्षवाले जनवासे में वर पक्षवालों के लगाने के लिये तेल भेजने हैं ।

तेलसुर—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है । विशेष—इसके हीर की लकड़ी बड़ी और सफेदी लिए पीली होती है। यह वृक्ष चटगाँव और बिल्हट के जिलों में बहुत होता है। इसकी लकड़ी से प्रायः नावें बनाई जाती हैं ।

तेलहँडा—संज्ञा पुं० [हि० तेल + हंडा] [स्त्री० अस्या० तेलहँदी] तेल रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन ।

तेलहँदी—संज्ञा स्त्री० [हि० तेल + हँदी] तेल रखने का मिट्टी का छोटा बरतन ।

तेलहन—संज्ञा पुं० [हि० तेल + हि० हन (प्रत्य०)] वे बीज जिनसे तेल निकलता है। जैसे, सरसों, तिल, अलसी, इत्यादि ।

उ०—तिरगुन तेल चुम्पावै ही तेलहन संसार । कोइ न बने जोगी जती फेरे बारंबार ।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ३६

तेलहा—वि० [हि० तेल + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० तेलही] १. तेलयुक्त जिसमें तेल हो । जिसमें से तेल निकल सकता हो । २. तेल वाला । तेल संबंधी । ३. जिसमें चिकनाई हो । ४. उ० निमित्त । तेल से बना हुआ ।

तेला—संज्ञा पुं० [देश०] तीन दिन रात का उपवास । उ०—जिसे कतः का हुक्म हो तेला प्रयात् तीन उपवास करे जिसमें परनोब सुधरे ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

तेलिन—संज्ञा स्त्री० [हि० तेली का स्त्री०] १. तेली की स्त्री । तेल जाति की स्त्री । २. एक बरसाती कीड़ा ।

विशेष—यह कीड़ा जहाँ शरीर से छू जाता है वहाँ छाले पड़ जाते हैं ।

तेलियर—संज्ञा पुं० [देश०] काले रंग का एक पक्षी जिसके सारे शरीर पर सफेद बुँदकियाँ या चित्तियाँ होती हैं ।

तेलिया—वि० [हि० तेन] तेल की तरह चिकना और चमकीला । चिकने और चमकीले रंगवाला । तेन के से रंगवाला । जैसे,—तेलिया घसीवा ।

तेलिया^२—संज्ञा पुं० [हि० तेल + हया (प्रत्य०)] १. काला, चिकना और चमकीला रंग । २. इस रंग का घोड़ा । ३. एक प्रकार का बबूल । ४. एक प्रकार की छोटी मछली । ५. कोई पदार्थ, पशु या पक्षी जिसका रंग तेलिया हो । ६. सीगिया नामक विष ।

तेलियाकंद—संज्ञा पुं० [सं० तेलकन्द] एक प्रकार का कंद ।

विशेष—यह कंद जिस भूमि में होता है वह भूमि तेल से सींधी हुई जान पड़ती है। वैद्यक में इसे लोहे को पतना करनेवाला चरपरा, गरम तथा वात, अपस्मार, विष और सूजन आदि को दूर करनेवाला, पारे को बाँधनेवाला और तत्काल देह को सिद्ध करनेवाला माना है ।

तेलियाकथा—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + कथा] एक प्रकार का कथा जो भीतर से काले रंग का होता है ।

तेलियाकाकरेजी—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + काकरेजी] कालापन लिए गहरा ऊदा रंग ।

तेलियाकुमैत—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + कुमैत] १. बोड़े का एक रंग जो अधिक कालापन लिए लाल या कुमैत होता है । २. वह बोड़ा जिसका रंग ऐसी हो ।

तेलियागर्जन—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + सं० गर्जन] दे० 'गर्जन' ।

तेलियापखान—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + सं० पाखाण] एक प्रकार का काला और चिकना पत्थर । उ०—नही चद्रमणि जो द्रवे यह तेलिया पखान ।—दीनदयाल (शब्द०) ।

तेलियापानी—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + पानी] बहुत कारा और स्वाद में बुरा मालूम होनेवाला पानी, जैसे प्रायः पुराने कुओं से निकलता रहता है ।

तेलियासुरंग—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + सुरंग] दे० 'तेलिया कुमैत' ।

तेलियासुहागा—संज्ञा पुं० [हि० तेलिया + सुहागा] एक प्रकार का सुहागा जो देखने में बहुत चिकना होता है ।

तेली—संज्ञा पुं० [हि० तेल + ई (प्रत्य०)] [खी० तेलिन] हिंदुओं की एक जाति जिसकी गणना शूद्रों में होती है।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक स्त्री और कुम्हार पुरुष से है। इस जाति के लोग प्रायः सारे भारत में फैले हुए हैं और सरसों, तिल आदि पेरकर तेल निकालने का व्यवसाय करते हैं। साधारणतः द्विज लोग इस जाति के लोगों का धूपा हुआ जल नहीं गहण करते।

मुहा०—तेली का बैल = हर समय काम में लगा रहनेवाला व्यक्ति।

तेलीची—संज्ञा स्त्री० [हि० तेल + चीची (प्रत्य०)] पत्थर, काँच या लकड़ी आदि की बड़ी छोटी प्याली, जिसमें शरीर में लगाने के लिये तेल रखते हैं। मालिया।

तेवर—संज्ञा स्त्री० [दे०] सात दीर्घ अक्षरा १४ लघु मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन मात्राएँ और एक खाली रहता है। इसके

+ ३ •

तबले के बोल ये हैं—धिन् धिन् धाकेटे, धिन् धिन् धा, तिन्
+ १ +
तिन् ताकेटे धिन् धिन् धा। धा।

तेवड(पु)¹—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यो'। उ०—जेवड साहिब तेवड दाती दे दे करे रजाई।—प्राण०, पृ० १२३।

तेवड(पु)²—वि० [हि०] दे० 'तेहरा'। उ०—बूँ लीजै गड़ा बंका भाई, दोवर कोट मर तेवड लाई।—कबीर ग्रं०, पृ० २०८।

तेवन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रीड़ा। २. वह स्थान, विशेषतः वन आदि जहाँ प्रामोदप्रमोद और क्रीड़ा हो। निहार। उपवन। ३. नजरबाग। पाई बाग।

तेवन(पु)²—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यो'। उ०—वैसे श्वान मवावन राजित तेवन लागी संसारी।—कबीर ग्रं०, पृ० ३६१।

तेवर—संज्ञा पुं० [हि० तेह (= क्रोध)] १. कुपित दृष्टि। क्रोध भरी चितवन।

मुहा०—तेवर घाना = मूर्खाना। अचर घाना। उ०—यह कहकर बड़ी बेगम की तेवर घाया और चड से गिर पड़ी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६०६। तेवर बढ़ना = दृष्टि का ऐसा हो जाना जिससे क्रोध प्रकट हो। तेवर चढ़ा लेना या तेवर बढ़ाना = क्रुद्ध होना। दृष्टि को ऐसा बना लेना जिससे क्रोध प्रकट हो। उ०—क्यों न हम भी आज तेवर ले चढ़ा। हैं बुरे तेवर बिबाई दे रहे।—बोले०, पृ० ५२। तेवर सनना = दे० 'तेवर बढ़ना'। उ०—भाल भाग्य पर तने हुए थे तेवर उसके।—साकेत, पृ० ४२३। तेवर बदलना या बिगड़ना = (१) बेमुरीवत हो जाना। (२) लफा हो जाना। उ०—मगर स्त्रियों की हँसी की आवाज कभी मरदानों में जाती तो वह तेवर बदले घर में आता।—सेवासदन, पृ० २०८। (३) मृत्युचिह्न प्रकट होना। तेवर बुरे नजर आना या दिखाई देना = अनुराग में भ्रंतर पड़ना। प्रेम भाव में भ्रंतर आ जाना। तेवर पर बल पड़ना = दे० 'तेवर बुरे नजर आना या दिखाई देना'। उ०—हर हमें तिरछी निगाहों

का नहीं। देखिए अब बल न तेवर पर पड़े।—बोले०, पृ० ५२। तेवर मेले होना = दृष्टि से खेद, क्रोध या उदासीनता प्रकट होना। तेवर सनना = क्रोध या शोक सनना। क्रोध का विरोध न करना। उ०—जो पड़े भिर पर रहें सहेते उसे, पर न श्रीरों के बुरे तेवर महे।—चुभते० पृ० १६।

२. भौंह। भृकुटी।

तेवरसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ककड़ी। २. खोरा। ३. फूट।

तेवरा—संज्ञा पुं० [देश०] दून में बसाया हुआ रूपक ताल। (मंगीत)।

तेवराना¹—क्रि० घ० [हि० तेवर + प्राना (प्रत्य०)] १. भ्रम में पड़ना। संदेह में पड़ना। सोच में पड़ना। २. विस्मित होना। आश्चर्य करना। दे० 'तेवराना'। ३. मूर्च्छित हो जाना। बेहोश हो जाना।

तेवराना²—संज्ञा पुं० [हि० तेवानी] निगरियों की बस्ती।

तेवरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योरी'।

तेवहार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार'। उ०—सखि मानहि तेवहार सब, गाढ़ देखारी रंगि।—बारगी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५७।

तेवान(पु)¹—संज्ञा पुं० [देश०] सोच। चिन्ता। फिकर। उ०—मन तेवान के राख भूरा। नाहि उबार जीउ डर पूरा।—जायसी (शब्द०)।

तेवान²—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तावान'। उ०—गयो अजपा भूलि भूले, गयो बिसरि तेवान।—जग० श०, पृ० १४।

तेवाना(पु)¹—क्रि० घ० [देश०] सोचना। चिन्ता करना। उ०—(क) सर्वार सेत्र धन मन भइ संया। ठाढ़ि तेवानि टेककर लंका।—जायसी (शब्द०)। (ख) रह्यो लजाय तो पिय चले कह्यो तो कह्यो मोहि ठोठ। अढ़ि तेवानी का करी भारी थोठ बसीठ।—जायसी (शब्द०)।

तेवारी¹—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तेवारी'।

तेह(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० तदएय, हि० तेवना] १. क्रोध। गुस्सा। उ०—हम हारी के के हहा पायन पागचो 'योष'। तेह कह्यो अजहूँ किए तेह तरेरे त्योष।—बहारी (शब्द०)। २. चढ़कार। घमंड। ताव। उ०—आये तेह वण भूप करहि हठ पुनि पाछे पछितैहैं। अजधकिशोर समान और बर जन्म प्रयत्न न पैहैं।—रघुराज (शब्द०)। ३. तेजी। प्रवृत्ति। उ०—शेष भार खाइके उतारे फन हू ते भूमि कमठ बराह छोड़ि भागै क्षिति जेह को। भानु सितभानु नारा मणल प्रतीचि उवैं सोखै सिधु बाडव तरणि तजे तेह को।—रघुराज (शब्द०)।

तेहज(पु)¹—संज्ञा पुं० [हि० ते] उसी को। उ०—दाहू तेहज लीजिए रे, साची सिरजनहार।—दाहू० बानी, पृ० ५८।

तेहनी—संज्ञा पुं० [हि० ते] उसका। उ०—ते पुर प्राणी तेहनी अविचल सदा रहत।—दाहू०, पृ० ५८४।

तेहवार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार'। उ०—'हरीचंद' दुख मेटि काम को घर तेहवार मनायो।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ४३३।

तेहरा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + हार] तीन लड़की सिकड़ी, करघनी या जंजीर जिये स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं। उ०—जेहर, तेहर, पाँच, विगुन छबि उपजायन।—नंद० प्र०, पृ० ३८६।

तेहरा—वि० पुं० [हि० तीन + हरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तेहरी] १. तीन परत किया हुआ। तीन खपेट का। २. जिसकी एक साथ तीन प्रनियाँ हों। जो एक साथ तीन हो। उ०—दोहरे तेहरे चौहरे सुखय जाते जात।—विहारी (णन्द०)। ३. जो दो बार होकर फिर तीसरी बार किया गया हो। जैसे, तेहरी मेहरान।

विशेष—इस शब्द में इस शब्द का व्यवहार ऐसे ही कामों के लिये होता है जो पहले दो बार करने पर भी उत्तम रीति से या पूर्ण न हुए हों।

४. तिगुना। (म०) :

तेहराना—क्रि० सं० [हि० तेहरा] १. तीन खपेट या परत का करना। २. किसी काम को जमीनी त्रुटि आदि दूर करने अथवा उसे बिल्कुल ठीक करने के लिये तीसरी बार करना।

तेहरावा—संज्ञा पुं० [हि० तेहरा + वा (प्रत्य०)] तीसरी बार की किया या बात।

तेहवार—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + वार] दे० 'त्योहार'।

तेहा—संज्ञा पुं० [हि० तेह] १. क्रोध। गुस्सा। २. घट्टकार। गेली। अभिमान। घमंड।

यौ०—तेहेदार तेहेराज।

तेहातेह—क्रि० वि० [हि० तह] तह पर तह। खूब गहरे में। उ०—जो जै प्रहरै रेणु के मिनिवा तेहातेह। धन नहि धरती दुह रही, कर सुहावो मेर।—दोल०, दू० ५८४।

तेहि(पुं०)—सर्व० [सं० ते] उ०। उ०। १.—छबि तो छबीले दे। भोट तेहि छिनहि उड़ावन।—नंद० प्र०, पृ० ३६।

तेही—संज्ञा पुं० [हि० तेह + ई (प्रत्य०)] १. गुस्सा करनेवाला। जिससे क्रोध हो। क्रोधी। २. अभिमान; घमंड।

तेहीज—सर्व० [हि० ते + ज] उ०। यमी की

तेहीज(पुं०)—सर्व० [हि० तेही + ज] यमी की। उ०—धाव दख गडपा रहई, जीग नीरजो होई तेहीज साथ।—बी० रासो, पृ० ४६।

तेहेदार—संज्ञा पुं० [हि० तेहा + का + दार (प्रत्य०)] दे० 'तेही'।

तेहेराजा—संज्ञा पुं० [हि० तेहा + राजा (प्रत्य०)] दे० 'तेही'।

तेतिडीक—वि० [सं० तैत्तिडीक] तितिडी या शमली की काँड़ी से बनाया हुआ या तैयार किया हुआ (को०)।

तै(पुं०)—क्रि० वि० [हि० तै] से। दे० 'तै' उ०—कुज तै कहूँ सुनि कन की गमन अलि आगमन तैरा मनहरन गोपाल की।—पद्मकर (शब्द०)।

तै(पुं०)—सर्व० [सं० तैम्] उ०। उ०—त्रिय सग लगहि न भट रिपु भयनी। बक भम आता तै भम भगनी।—गोपाध (शब्द०)।

तैतालीस—वि० दे० [हि०] तैतालीस।

तैतीस—वि० [हि०] दे० 'तैतीस'। उ०—खुसी तैतीस जब बटे कुंजी बीस। धरि साक दसतीस मन राउ रागी।—पद्मकर (शब्द०)। पृ० १०८।

तै^१—क्रि० वि० [सं० तत्] उतना। उस कदर। उ०—माया—जैसे,—घब जै नंबर के बाद कहिये तै नंबर के बाद पचास तास निकले।—रामकृष्ण वर्मा (शब्द०)।

तै^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. समाप्ति। स्वात्मा।

यौ०—तै तमः = अंत। समाप्ति।

२. चुकता। बेबाकी (को०)। ३. निर्णय। फैसला। निश्चय। (को०)। ४. रास्ता चलना। जैसे, मंजिल तै कर ली। उ०—बहुतों ने राह तै की संभले न पाव फिर भी।—बेला, पृ० ६०।

तै^३—वि० १. जिसका निबटेरा या फैसला हो चुका हो। निर्णयित। २. जो पूरा हो चुका हो। समाप्त। जैसे, झगडा तै करना। रास्ता तै करना।

तै^४—संज्ञा पुं० [सं० तह] दे० 'तह'।

तैकायन—संज्ञा पुं० [सं०] तिक अग्नि के वंशज या शिष्य।

तैक्त—संज्ञा पुं० [सं०] तिक का अभाव। तीतापन। चरपराहट। तिताई। तिकत्व।

तैक्ष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीक्ष्णता। तीक्ष्ण का भाव। २. मयंक करता (को०)। ३. पेनापन (को०)। ४. निर्बयता (को०)।

तैखाना(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० तहखानह] दे० 'तहखाना'।

तैजस—संज्ञा पुं० [सं०] १. धातु, मणि अथवा इसी प्रकार का और कोई चमकीला पदार्थ। २. धी। ३. पराक्रम। ४. बहुत तेज चलनेवाला घोड़ा। ५. सुमति के एक पुत्र का नाम। ६. जो स्वयंप्रकाश और सूर्य आदि का प्रकाशक हो, भगवान्। ७. वह शारीरिक शक्ति जो आहार को रस तथा रस को धातु में परिणत करती है। ८. एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है। ९. राज्य अवस्था में प्राप्त घट्टकार जो एकादश इंद्रियों और पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति में सहायक होता है और जिसकी सहायता के बिना घट्टकार कभी सार्विक या तामसी अवस्था प्राप्त नहीं करता।

विशेष—दे० 'घट्टकार'।

१०. जंगम (को०)।

तैजस^२—वि० [सं०] १. तेज से उत्पन्न। तेज संबंधी। जैसे, तैजस पदार्थ। २. चमकीला। च्युतिमान (को०)। ३. प्रकाश से परिपूर्ण (को०)। ४. उत्तेजित। उत्साही (को०)। ५. शक्तिशाली। साहसी (को०)। ६. राजसी वृत्तिवाला। राजगुणो (को०)।

तैजसावर्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चांदी सोना गजाने की धरिया। मूषा।

तैजसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली।

तैत्तिक्ष्ण्य—वि० [सं०] धैर्यवान्। सहनशील (को०)।

तैड़े(पुं०)—सर्व० [सं० तैरा] उ०—नागर तट तैड़े देखे बिन बेकलियाँ दिख नू।—नट०, पृ० १२६।

तैसिर—संज्ञा पुं० [सं० सीवर] सीवर।

तैत्ति—संज्ञा पु० [सं०] १. ग्यारह करणों में से चौथा करण ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला कलाकुशल, रूपवान्, वक्ता, गुणी, मुनीय और कामी होता है ।

२. देवता । ३. गैडा ।

तैत्तिर—संज्ञा पु० [सं०] १. तीतरों का समूह । २. तीतर । ३. गैडा ।

तैत्तिरि—संज्ञा पु० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद के प्रवर्तक एक ऋषि का नाम जो वैशंपायन के बड़े भाई थे ।

तैत्तिरिक—संज्ञा पु० [सं०] तीतर पर उठनेवाला [को०] ।

तैत्तिरीय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कृष्ण यजुर्वेद की छियासी शाखाओं में से एक ।

विशेष—यह प्रायेय अनुक्रमणिका और पारंगुति के अनुसार तित्तिरि नामक ऋषि प्रोक्त है । पुराणों में इसके प्रबंध में लिखा है कि एक बार वैशंपायन ने ब्रह्महत्या की थी । उसके प्रायश्चित्त के लिये उन्होंने अपने शिष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी । और सब शिष्य तो यज्ञ करने के लिये तैयार हो गए, पर याज्ञवल्क्य तैयार न हुए । इसपर वैशंपायन ने उनसे कहा कि तुम हमारी शिष्यता छोड़ दो । याज्ञवल्क्य ने जो कुछ उनसे पढ़ा था वह सब उगल दिया; और वेद वमन को उनके दूसरे सहपाठियों ने तीतर बनकर चुग लिया ।

२. इस शाखा का उपनिषद् ।

विशेष—यह तीन भागों में विभक्त है । पहला भाग संहितोपनिषद् या शिक्षावल्ली कहलाता है; इसमें व्याकरण और अद्वैतवाद संबंधी बातें हैं । दूसरा भाग ध्यानवल्ली और तीसरा भाग भृगुवल्ली कहलाता है । इन दोनों संमिलित भागों को वाक्यी उपनिषद् भी कहते हैं । तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्मविद्या पर उत्तम विचारों के अतिरिक्त श्रुति, स्मृति और इतिहास संबंधी भी बहुत सी बातें हैं । इस उपनिषद् पर शंकराचार्य का बहुत प्रशंसा भाव है ।

तैत्तिरीयक—संज्ञा पु० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी या पढ़नेवाला ।

तैत्तिरीयारण्यक—संज्ञा पु० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक ग्रंथ जिसमें वानप्रस्थों के लिये उपदेश है ।

तैत्तिल—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तैत्ति' ।

तैनात—वि० [अ० तण्ययुत] किसी काम पर लगाया गया नियत क़िस्म का मुकदमा । नियत । नियुक्त जैसे,—भीड़ भाड़ का इंतजाम करने के लिये दस सिपाही वहाँ तैनात किए गए थे ।

तैनाती—संज्ञा स्त्री० [हि० तैनात + ई (प्रत्यय)] किसी काम पर लगने की क्रिया या भाव । नियुक्ति । मुकदमा ।

तैमित्य—संज्ञा पु० [सं०] जड़ता [को०] ।

तैमिर—संज्ञा पु० [सं०] घास का एक रोग [को०] ।

विशेष—इस रोग में आँखों में भुँसलापन पा जाता है ।

तैया—संज्ञा पु० [देश०] मिट्टी का बड़ा छोटा बरतन जिसमें छीपी कपड़ा छापने के लिये रंग रखते हैं । अहर ।

तैयार—वि० [अ०] १. जो काम में आने के लिये बिल्कुल उपयुक्त हो गया हो । सब तरह से ठीक । तैयार । जैसे, कपड़ा (मिलकर) तैयार होना, मकान (बनकर) तैयार होना, फल (पककर) तैयार होना, गाड़ी (ड्रुतकर) तैयार होना, आदि ।

मुहा०—गला तैयार होना = गले का घाव मुनीला और रस-युक्त होना । ऐसा गला होना जिसमें बहुत अच्छा गाना गाया जा सके । हाथ तैयार होना = पकड़ आँकड़ में हाथ का बहुत अभ्यस्त और कुशल होना । हाथ की बहुत खोज जाना ।

२. उद्यत । तत्पर । मुरतद । जैसे,—(क) हम तो सबेरे से चलने के लिये तैयार थे, प्राप ही नहीं गए । (ख) जब देखिए सब प्राप लड़ने के लिये तैयार रहते हैं । ३. प्रयुक्त । उपस्थित । मौजूब । जैसे,—इस समय पंचम शरण तैयार है, बाकी फल ले लाजिएगा । ४. हृष्ट । पुष्ट । मोटा साजा । जिसका शरीर बहुत अच्छा और मजबूत हो । जैसे, फल की बहुत तैयार है । ५. संपूर्ण । सुवर्णमय (को०) । ६. सुभाष । खल (को०) । ७. पक्व । पुष्ट (को०) । ८. कटिबद्ध । गानादा (को०) । ९. सुसज्जन । धानास्त्र (को०) ।

तैयारी—संज्ञा स्त्री० [हि० तैयार + ई (प्रत्यय)] १. तैयार होने की क्रिया या भाव । तैयारी । तैयार होना । तत्परता । मुस्तदी । २. शरीर की पुष्टता । मोटाई । ३. सुवर्णमय । विशेषतः प्रबंध आदिक सबन का सुवर्णमय । जैसे,—उनकी बरात में बड़ी तैयारी थी । ४. सुवर्णमय । जैसे,—प्राज तो प्राप बड़ी तैयारी से निवले हैं । ५. सुभाष । गानादा (को०) । ७. प्रयोग के काबिल होना (को०) । ८. रचना । निर्माण । सृष्टि (को०) ।

तैयारी—सर्व० [सं० त्वम हि० तै] तुमों । उ०—तुम प्राप करण कारण है तैयारी कीना श्रम सब कुछ है । तैयारी कुछ छपिया नहीं ।—नाट्य १, पृ० २०२ ।

तैयारी—वि० [हि०] दे० तैयार । उ०—एक अठासी मुनि जो जैने तैयारी न घंटा बाजै । तैयारी कबीर दुख के जे घंटा मगन हैं गाजै ।—शरीर (पृ० २१) ।

तैरखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मुर जिसकी पत्तियों आदि को बैठक में बैठने और वसुनाशक पाना है ।

पर्या०—तैर । तैरखी । कुनी ती । नाव ।

तैरना—वि० अ० [सं० तैरण] १. पानी के ऊपर ठहरना । उतरना । जैसे, लड़का या नाव आदि पानी पर तैरना । २. किसी जीव को अपने अंग में घालित करने का प्रयत्न करना । हाथ पैर या और कोई अंग हिलाकर पानी पर चलना । पैरना । तैरना ।

विशेष—मछलियाँ आदि जलजंतु तो पता जग में रहते और चिनरते ही हैं; पर इनके अतिरिक्त मनुष्य को छोड़कर बाकी पशुपक्षी जीव जल में स्वभावतः बिना किसी दूसरे की सहायता या शिक्षा के आपसे आप तैर सकते हैं । तैरना कई तरह से होता है और उसमें केवल हाथ, पैर, शरीर का कोई अंग

अथवा शरीर के सब अंगों को हिलाना पड़ता है। मनुष्य को तैरना सोखना पड़ता है और तैरने में उसे हाथों और पैरों अथवा केवल पैरों की गति देनी पड़ती है। मनुष्य का साधारण तैरना प्रायः मंडक के तैरने की तरह का होता है। बहुत से लोग पानी पर झुपचाप चित भी पड़ जाते हैं और बराबर तैरते रहते हैं। कुछ लोग तरह तरह के दूसरे आसनों से भी तैरने हैं। साधारण चौपायों को तैरने में अपने पैरों को प्रायः वैसी ही गति देनी पड़ती है जैसी स्थल पर चलने में, जैसे, घोड़ा, गाय, हाथी, कुत्ता आदि। कुछ चौपाए ऐसे भी होते हैं जिन्हें तैरने में अपनी पूँछ भी हिलानी पड़ती है, जैसे, ऊद-बिलाव, गधबिलाव आदि। कुछ जानवर केवल अपनी पूँछ और शरीर के पिछले भाग को हिलाकर ही बिल्कुल मछलियों की तरह तैरते हैं, जैसे, हल। ऐसे जानवर पानी के ऊपर भी तैरते हैं और घंटे भी। जिन पक्षियों के पैरों में जालियाँ होती हैं, वे जल में अपने पैरों की सहायता से चलने की भाँति ही तैरते हैं, जैसे, बत्तक, राजहंस आदि। पर दूसरे पक्षी तैरने के लिये जल में उसी प्रकार अपने पर फटफटाते हैं जिस प्रकार उड़ने के लिये हवा में। साँप, भ्रजगर आदि रेंगनेवाले जानवर जल में अपने शरीर को उसी प्रकार हिलाते हुए तैरते हैं जिस प्रकार वे स्थल में चलते हैं। कछुए आदि अपने चारों पैरों की सहायता से तैरते हैं। बहुत से छोटे छोटे कीड़े पानी की सतह पर दोड़ने अथवा चित पड़कर तैरते हैं।

तेरय—संज्ञा पुं० [मं० तव] तेरा। उ०—पंच सखा ममो बहो छह आह। तेरय निखी सखी माँहि सुणाई।—बो० रासो, पृ० ७४।

तेराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तैरना + ई (प्रत्य०)] १. तैरने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो तैरने के बदले में मिले।

तेराक^१—वि० [हिं० तैरना + प्राक (प्रत्य०)] तैरनेवाला। जो अच्छी तरह तैरना जानता हो।

तेराक^२—संज्ञा पुं० तैरने में कुशल व्यक्ति।

तेराना—क्रि० सं० [हिं० तैरना का प्रे० रूप] १. दूसरे को तैरने में प्रवृत्त करना। तैरने का काम दूसरे से कराना। २. घुसाना। धंसाना। गोदना। जैसे,—घोर ने उसके पेट में छुरी तेरा दी।

तेरू—वि० [हिं० तैरना] तेराक। तैरनेवाला। उ०—दरिया गुरु तेरू मिलाकर दिया पने पार।—संतवाणी०, ३० १२।

तेर्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह कृत्य जो तीर्थ में किया जाय।

तेर्य^२—वि० तीर्थ संबंधी।

तैथिक^१—संज्ञा पुं० [न०] १. शास्त्रकार। जैसे, कपिल, कणाद आदि। २. साधु। संत (को०)। ३. तीर्थस्थान का पवित्र जल (को०)।

तैथिक^२—वि० १. पवित्र। २. तीर्थ से आनेवाला। तीर्थ से संबद्ध। ३. तीर्थों अथवा मंदिरों में जानेवाला (को०)।

तैर्यगवनिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

तैर्यग्योन—वि० [सं०] तिर्यक् गति संबंधी (को०)।

तैलंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकलिंग] १. दक्षिण भारत का एक प्राचीन

देश जिसका विस्तार श्रीशैल से चोल राज्य से मध्य तक था। इसी देश की भाषा तेलुगु कहलाती है।

विशेष—इस देश में कालेश्वर, श्रीशैल और भीमेश्वर नामक तीन पहाड़ हैं जिनपर तीन शिवलिंग हैं। कुछ लोगों का मत है कि इन्हीं तीनों शिवलिंगों के कारण इस देश का नाम त्रिलिंग पड़ा है; इसका नाम पहले त्रिकलिंग था। महाभारत में केवल कलिंग शब्द आया है। पीछे से कलिंग देश के तीन विभाग हो गए थे जिसके कारण इसका नाम त्रिकलिंग पड़ा। उड़ीसा के दक्षिण से लेकर मदरास के और भागे तक का समुद्रतटस्थ प्रदेश तैलंग या तिलंगना कहलाता है।

२. तैलंग देश का निवासी।

यौ०—तैलंग ब्राह्मण।

तैलंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिलंगा'।

तैलंगी^१—संज्ञा पुं० [हिं० तैलंग + ई (प्रत्य०)] तैलंग देशवासी।

तैलंगी^२—संज्ञा स्त्री० तैलंग देश की भाषा।

तैलंगी^३—वि० तैलंग देश संबंधी। तैलंग देश का।

तैलंपाता—संज्ञा स्त्री० [मं० तैलंपाता] स्वधा जिसमें मुख्यतः तिल की आहुति दी जाती है (को०)।

तैल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल, सरसों आदि को पेरकर निकाला हुआ तेल। २. किसी प्रकार का तेल। ३. धूप। गुग्गुल (को०)।

तैलकंद—संज्ञा पुं० [सं० तैलकन्द] तैलिकाकंद।

तैलकल्कज—संज्ञा पुं० [सं०] खली (को०)।

तैलकार—संज्ञा पुं० [सं०] तेली (जाति)।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक जाति की स्त्री और कुम्हार पुरुष से बतलाई गई है। दे० 'तेली'।

तैलकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] खली।

तैलकीट—संज्ञा पुं० [सं०] तेलिन नाम का कीड़ा।

तैलक्षौम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र जिसकी राल का प्रयोग घाव पर होता है (को०)।

तैलचित्र—संज्ञा पुं० [मं० तैल + चित्र] तैल रंगों से बना हुआ चित्र।

तैलचौरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तैलचट्टा (को०)।

तैलन्ध—संज्ञा पुं० [सं०] तेल का भाव या गुण।

तैलद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [मं०] काठ का एक प्रकार का बड़ा पात्र जो प्राचीन काल में बनाया जाता था और जिनकी लंबाई आदमी की लंबाई के बराबर हुआ करती थी।

विशेष—इसमें तेल भरकर चिकित्सा के लिये रोगी लिटाया जाते थे और सड़ने से बचाने के लिये मृत शरीर रखे जाते थे। राजा दशरथ का शरीर कुछ समय तक तैलद्रोणी में ही रखा गया था।

तैलधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य का एक वर्ग जिसके अंतर्गत तीनों प्रकार की सरसों, दोनों प्रकार की राई, खस और कुसुम के बीज हैं।

तैलपर्याक—संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन।

तैलपर्याय—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार का चंदन । २. लाल चंदन । ३. एक प्रकार का वृक्ष ।

तैलपर्यायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तैलपर्याय [को०] ।

तैलपर्याय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सलई का गोंद । २. चंदन । ३. शिलारस या तुरुष्क नाम का गंधद्रव्य ।

तैलपा, तैलपायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तैलचट्टा । चपड़ा [को०] ।

तैलपाती—संज्ञा पु० [सं० तैलपायिन्] १. भींगुर । चपड़ा (कीड़ा) । २. तलवार (को०) ।

तैलपिञ्ज—संज्ञा पु० [सं० तैलपिञ्ज] सपेय तिल [को०] ।

तैलपिपीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चींटी ।

तैलपिष्टक—संज्ञा पु० [सं०] खली ।

तैलपीत—वि० [सं०] जिसने तेल पिया हो [को०] ।

तैलपूर—वि० [सं०] (दीपक) जिसमें तेल भरने की आवश्यकता न हो [को०] ।

तैलप्रदीप—संज्ञा पु० [सं०] तेल का दीपक [को०] ।

तैलफल—संज्ञा पु० [सं०] १. इंगुदी । २. बहेड़ा । ३. तिलका ।

तैलबिंदु—संज्ञा पु० [सं० तैल + बिंदु] किसी संक्षिप्त उक्ति को बड़ा बढ़ाकर कहना । उ०—किसी संक्षिप्त उक्ति को खूब बढ़ाकर ग्रहण करना तैलबिंदु कहा गया है ।—संपूर्णा० ग्रं०, पृ० २६३ ।

तैलभाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली का पेड़ ।

तैलमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेल की बत्ती । पलीता ।

तैलयंत्र—संज्ञा पु० [सं० तैलयन्त्र] कोल्हू ।

तैलरंग—संज्ञा पु० [सं० तैल + रङ्ग] एक प्रकार का रंग जो तेल में मिलाकर बनाया जाता है और जिस रंग से तैलचित्र बनते हैं ।

तैलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी । शतमूली ।

तैलसाधन—संज्ञा पु० [सं०] शीतल चीनी । कबाब चीनी ।

तैलस्फटिक—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रबल नामक गंधद्रव्य । २. तृण-मणि । कहूबा ।

तैलम्यंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलम्यन्दा] १. भोकरणी नाम की लता । मुरहटी । २. काकोली नाम की घोषधि ।

तैलांबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलांबुका] तैलचट्टा । चपड़ा [को०] ।

तैलाक्त—वि० [सं०] जिसमें तेल लगा हो । तैलयुक्त । उ०—उड़ती भीनी तैलाक्त गंध, फूली सरसों पीली पीली ।—ग्राम्या, पृ० ३५ ।

तैलाक्षय—संज्ञा पु० [सं०] शिलारस या तुरुष्क नाम का गंधद्रव्य ।

तैलागुरु—संज्ञा पु० [सं०] अगर की लकड़ी ।

तैलाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरें । भिड़ ।

तैलाभ्यंग—संज्ञा पु० [सं० तैलाभ्यङ्ग] शरीर में तेल मलने की क्रिया । तेल की मालिश ।

तैलिक^२—संज्ञा पु० [सं०] तिलों से तेल निकालनेवाला । तेली ।

तैलिक^२—वि० तेल संबंधी ।

तैलिक यंत्र—संज्ञा पु० [सं० तैलिक यन्त्र] कोल्हू । उ०—समर तैलिक यंत्र तिल तमीचर निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

तैलिन—संज्ञा पु० [सं० तैलिनम्] तिल का खेत [को०] ।

तैलीनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बत्ती ।

तैलिशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ तेल पेरने का कोल्हू चलता हो ।

तैली—संज्ञा पु० [सं० तैलिन्] तेली ।

तैलीन—संज्ञा पु० [सं० तैलिनम्] तिल का खेत [को०] ।

तैलीशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलिन्शाला] तेल पेरने का स्थान [को०] ।

तैल्वक^१—वि० [सं०] लोथ की लकड़ी से बना हुआ ।

तैल्वक^२—संज्ञा पु० [सं०] लोथ ।

तैश—संज्ञा पु० [सं०] पावेशयुक्त कोष । गुस्मा ।

मुहा०—तैश दिखाना = ऐसा कार्य करना जिससे कोई क्रुद्ध हो । कोष चढ़ाना । तैश में घाना = क्रुद्ध होना । बहुत क्रुपित होना ।

तैष—संज्ञा पु० [सं०] चांद्र पीष मास । पीष मास की पूर्णिमा के दिन तिथ्य (पुष्य) नक्षत्र होता है, इसी से उसका नाम तैष पड़ा है ।

तैषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्य नक्षत्रयुक्ता पूर्णिमासी । पूष की पूर्णिमा ।

तैसा—वि० [सं० तादृश, प्रा० तादृस] ३० 'तैसा' । उ०—एवन जाह तहें पहुँचै चहा । मारा तैम हूटि भुईं बहा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२६ ।

तैसई^१—वि० [हि० तैस + ई (प्रत्य०)] तैसे ही । वैसे ही । उसी प्रकार के । उ०—तैसई मंत्री घर सब पुरुष प्रधान ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७० ।

तैसई^२—वि० [हि० तैस + हा (प्रत्य०)] ३० 'तैसई' । उ०—वरिहै विजैश्री भाप है कहै श्यामसुंदर तैमही ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११६ ।

तैसा—वि० [सं० तादृश, प्रा० तादृस] उस प्रकार का । 'वैसा' का पुराना रूप ।

तैसील^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'तहसील' । उ०—मिलिके बादिसाहें का घमल को उठाया । ऊ तीन बरस होगा तैसील को न आया ।—शिलार०, पृ० २३ ।

तैसे—क्रि० वि० [हि०] ३० 'तैसे' ।

तैसों^१—वि० [हि०] ३० 'तैसा' । उ०—रंग रंगीले संग सखा गन रंगीली नव बहु तैसोंई जम्पौ रंगीली बसंत रागु ।—संद० ग्रं०, पृ० ३६७ ।

तैसों^२—क्रि० वि० [हि०] ३० 'तैसे' । उ०—प्रगति में कीनी भृगमद अंगराग तैसों आनन छोड़ा य लीनी स्याम रंग सारी में ।—मति० ग्रं०, पृ० ३१३ ।

तौ^१—क्रि० वि० [हि०] ३० 'त्यों' ।

तौघर(५) — संज्ञा पु० [हि०] १. दे० 'तोमर' । उ०—सब मंत्री परधान यान पर । गए जहाँ पावासर तौघर ।—पृ० रा०, १।४६४ । २. तोमर नामक वस्त्र ।

तौद — संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्द-तुन्दिन] पेट के भागे का बड़ा हुआ भाग । पेट का फुलाव । मर्यादा से अधिक पूना या भागे की ओर बढ़ा हुआ पेट ।

क्रि० प्र०—निकलना ।

मुहा०—तौद पचकना—(१) मोटाई दूर होना । (२) शेखी निकल जाना ।

तौदल — वि० [हि० तौद + ल (प्रत्यय)] तौदवाला । जिसका पेट भागे की ओर बढ़ा धोर तब फूला हुआ हो ।

तौदा — संज्ञा पु० [सं०] तालाब से पानी निकलने का मार्ग ।

तौदा — संज्ञा पु० [फ्रा० तोदा] १. वह टीना या मिट्टी की दीवार, जिसपर तीर या बंदूक चलाने का अभ्यास करने के लिये निशाना लगाते हैं । २. डेर । राशि । (व०) ।

तौदियल — वि० [हि०] १० 'तौदल' ।

तौदी — संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दी] नाभि । डोटी ।

तौदीला — वि० [हि०] १० [सं० तादीली] दे० 'तौदल' ।

तौदूमल — वि० [हि० तौदु + मल] १० 'तौदल' । उ०—तौद बना लो, नही उल्लु बनाकर निकाल दिए जायेंगे या किमी तौदूमल को पकती ।—काया०, पृ० २५१ ।

तौदेल — [हि० तौद + ऐल] १० 'तौदल' ।

तौन(५) — सर्व० [हि०] दे० 'तोन' । उ०—होत दीघं (जो) घंत है दुरि सग मध मग जोम ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३३ ।

तौबा — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तुबा' ।

तौबी — संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुबी' ।

तौर(५) — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तोमर' । उ०—तहं तोर तीपन ताहिये, रंग रिन्द जिनके बँकिये ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ७ ।

तो(५) — सर्व० [सं० तत] तेरा ।

तो(५) — प्रथ० [सं० तु] तब । उ० बग में । जैसे, — (क) यदि तुम कहो तो मैं भी पत्र लिख दूँ । (ख) अगर वे मिलें तो उनसे भी कह देना । उ०—जो प्रभु भवसि पार गा बहूँ । तो एत पदम परमारन रहूँ ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष — पुरानी हिंदी में इस शब्द का, इस अर्थ में प्रयोग प्रायः 'जो' के साथ होता था ।

तो — प्रथ० [सं० तु] एक अव्यय जिसका व्यवहार किसी शब्द पर जोर देने के लिये भगवा कभी कभी यो ही किया जाता है । जैसे, — (क) भाग चले तो मही, मैं सब प्रबंध कर लूँगा । (ख) बरा बैठी तो । (ग) हम गए तो थे, पर वे ही नहीं मिले । (घ) देखो तो कैसी बहुर है ?

तो — सर्व० [सं० तय] तुम्हें । तु का यह रूप जो उसे विभक्ति लगने के समय प्राप्त होता है, जैसे, नोको ।

तो — क्रि० प्र० [हि० हतो (= था)] था । (भव०) । उ०—काल

कर्म दिगपाल सकल जग जाल जासु करतल तो ।—तुलसी (शब्द०) ।

तोइ(५) — संज्ञा पु० [सं० तोय] पाना । जल । उ०—दीठ डोरने मोर दिय छिरक रूप रस तोइ । मयि मो घट प्रीतम लिए मन नवनीत बिनोइ ।—रसनिधि (शब्द०) ।

तोइ(५) — प्रथ० [सं० तत + मयि] फिर भी । उ०—मार तोइए कणमगुइ साल्ह कुमर बहु साठ ।—ढोला०, पृ० ६०५ ।

तोई — संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अंग्रे या कुत्ते आदि में कमर पर लगी हुई पट्टी या गोट । २. चादर या दोहर आदि की गोट । ३. लहंगे का नेफा ।

तोई(५) — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तोय' । उ०—जो लगी तोई डोले बोले, तो लगी माया माही ।—रत्न०, भा० ३, पृ० ७६ ।

तोऊ(५) — प्रथ० [हि०] दे० 'तऊ' । उ०—तोऊ दुसंग पाइ बहिमुख हँ रह्यो है ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५३ ।

तांक — संज्ञा पु० [सं०] १. जिथु । अक्षय । लड़का या लड़की । २. श्रीकृष्णचंद्र के एक सखा का नाम ।

तोकक — संज्ञा पु० [सं०] वातक [क्रि०] ।

तोकना(५) — क्रि० सं० [?] उठाना । उ०—तेक तोकि तब्यो तुरी ।—पृ० रा०, ७ । १०५ ।

मोकरा — संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जो अफीम के पौधों पर लिपटकर उन्हें सुखा देती है ।

तोकवत् — वि० [सं०] [सं० स्त्री० तोकवती] पुत्रवान [क्रि०] ।

तोकाँ(५) — सर्व० [हि० तो + को] तुम्हको । तुम्हें । उ०—औ विधि रूप दीन्ह है तोकाँ ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६१ ।

तोका(५) — सर्व० [हि० तो + को] तुम्हको । तुम्हें । उ०—करसि बियाह धरम है तोका ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५ ।

तोकम — संज्ञा पु० [सं०] १. झंडुर । २. जो का नया झंडुर । हरा और कच्चा जो । ४. हरा रंग । ५. बादल । मेघ । ६. कान का मेल ।

तोख(५) — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तोय' या 'तौख' । उ०—विरिरा होइ कंत ऊर तोख । किरिरा किहें पाव धनि मोख ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३४ ।

तोखना(५) — क्रि० सं० [हि० तोख] प्रसन्न करना । संतुष्ट करना । उ०—तिय ताकी पतिबरता अहै । पति ही पोख्यो तोख्यो बहै ।—नंद० ग्रं० पृ० २१२ ।

तोखार — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तुखार' । उ०—पौरि सजहु देहु पन पैरी आबा बँक तोखार ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३०५ ।

तोगा — संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तोक' । उ०—ज्ञातिपुत्र सिद्ध ने एथेंस का बना एक महामूल्यवान तोगा पहना था ।—वैशाखी०, पृ० १२४ ।

तोछ(५) — वि० [हि०] दे० 'तुच्छ' । उ०—सेना तोछ तपस्या सम्बल ।—रा० रू०, पृ० १५ ।

तोटक — संज्ञा पु० [सं०] १. वर्युद्ध जिसके प्रत्येक चरण में चार

सगण (॥९ ॥९ ॥९ ॥९) होते हैं। जैसे,—ससि सों सलियाँ बिनती करतीं। टुक मंद न हो पग तो परतीं। हरि के पद अंकनि हूँ न दे। छिन तो टक लाय निहारन दे। २. शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्यों में से एक। इनका एक नाम नंदीश्वर भी था।

तोड़का—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटका'। उ०—घोषध अनेक जंत्र मंत्र तोड़कादि किये वादि भए देवता मनाए अधिकारि है।—तुलसी (शब्द०)।

तोड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटा'। उ०—सीसा सतगुरु सँ किया राम नाम धम काज। लाभ न कोई छेहड़ो तोड़ा सबही भाज।—राम० धर्म०, पृ० ५२।

तोठाँ—सर्व० [हि० तो + ठा (प्रत्य०)] तुम्हारा। उ०—हवमुँ सूर तोठाँ गाँव सोला की लिसावटि।—शिलर०, पृ० १०६।

तोड़—संज्ञा पुं० [हि० तोड़ना] १. तोड़ने की क्रिया या भाव (भव०)। २. किले की दीवारों आदि का वह अंग जो गोले की मार से टूट फूट गया हो। ३. नदी आदि के बह का तेज बहाव। ऐसा बहाव जो सामने पड़नेवाली चीजों को तोड़ फोड़ दे। ४. कुपती का वह पेंच जिससे कोई दूसरा पेंच रद्द हो। किसी दाँव से बचने के लिये किया हुआ दाँव। ५. किसी प्रभाव आदि को नष्ट करनेवाला पदार्थ या कार्य। प्रतिकार। मारक। जैसे,—अगर वह तुम्हारे साथ कोई पाजीपन करे तो उसका तोड़ हमसे पूछना।

थो०—तोड़ जोड़। तोड़ फोड़।

६. दही का पानी। ७. बार। बफा। भोंक। जैसे,—पहुँचते ही वे उनके साथ एक तोड़ लड़ गए।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जो बहुत आवेशपूर्वक या तत्परता के साथ किए जाते हैं।

तोड़क—वि० [हि० तोड़ + क (प्रत्य०)] तोड़नेवाला। जैसे, जाति पाँत तोड़क भंडल।

तोड़ जोड़—संज्ञा पुं० [हि० तोड़ + जोड़] १. दाँव पेंच। चाल। युक्ति। २. अपना मतलब साधने के लिये किसी को मिलाते और किसी को अलग करने का कार्य। चट्टे बट्टे लड़ाकर काम निकालना।

क्रि० प्र०—भिड़ाना।—लगाना।

तोड़न—संज्ञा पुं० [सं० तोड़नम्] १. काटना। बिभाजित करना। २. चियड़े चियड़े करना। ३. आघात या चोट पहुँचाना।

तोड़ना—क्रि० सं० [हि० टूटना] १. आघात या झटके से किसी पदार्थ के दो या अधिक खंड करना। अग्न, विभक्त या खंडित करना। टुकड़े करना। जैसे, यन्त्र तोड़ना, सड़की तोड़ना, रस्सी तोड़ना, दीवार तोड़ना, दावात तोड़ना, बरतन तोड़ना, बंधन तोड़ना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः कड़े पदार्थों के लिये अथवा ऐसे मुलायम पदार्थों के लिये होता है जो सूत के रूप में लंबाई में कुछ दूर तक चले गए हों।

४-६१

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

थो०—तोड़ा मरोड़ी।

२. किसी वस्तु के अंग को अथवा उसमें लगी हुई किसी दूसरी वस्तु को तोच या काटकर, अथवा और किसी प्रकार से अलग करना। जैसे, पत्ती फूल या फल तोड़ना, (कोट में लगा हुआ) बटन तोड़ना, जिल्द तोड़ना, दाँत तोड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—तोड़ना = मार डालना। समाप्त कर देना। उ०—उस राज ने कन्नूर को पकड़कर तोड़ डाला।—कबीर मं०, पृ० ४८५।

३. किसी वस्तु का कोई अंग किसी प्रकार खंडित, अग्न या बेकाम करना। जैसे, मशीन का पुरजा तोड़ना, किसी का हाथ या पैर तोड़ना। ४. सेवा में हल जोतना (चर०)। ५. सेंच लगाना। ६. किसी स्त्री के साथ प्रथम समागम करना। किसी का कुमारीत्व अंग करना। ७. बल, प्रभाव, महत्व, विस्तार आदि घटाना या नष्ट करना। क्षीण, दुर्बल या अशक्त करना। जैसे,—(क) बीमारी ने उन्हें बिलकुल तोड़ दिया। (ख) युद्ध ने उन दोनों देशों को मोड़ दिया। (ग) हम कुएँ का पानी तोड़ दो। ८. खरीदने के लिये किसी चीज का दाम घटाकर निश्चित करना। जैसे, वह तो १५०) माँगता था पर मैंने तोड़कर १००) पर ही ठीक कर लिया। ९. किसी संगठन, व्यवस्था या कार्यक्षेत्र आदि को नष्ट करने अथवा नष्ट कर देना। किसी चलते काम, कार्यालय आदि को सब दिन के लिये बंद करना। जैसे, महकमा तोड़ना, कंपनी तोड़ना, पद तोड़ना, स्कूल तोड़ना। १०. किसी निषेध या नियम आदि को स्थिर या प्रचलित न रखना। निषेध के विरुद्ध आचरण करना अथवा नियम का उल्लंघन करना। बात पर स्थिर न रहना। जैसे, ठेका तोड़ना, प्रतिज्ञा तोड़ना। ११. दूर करना। अलग करना। मिटा देना। बना न रहने देना। जैसे, संबंध तोड़ना, गवं तोड़ना, देस्ती तोड़ना, सगाई तोड़ना। १२. स्थिर या दृढ़ न रहने देना। कायम न रहने देना। जैसे, गवाह तोड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—कलम तोड़ना = दे० 'कलम' के मुहा०। कमर तोड़ना = दे० 'कमर' के मुहा०। किला या गढ़ तोड़ना = दे० 'गढ़' के मुहा०। तिनका तोड़ना = दे० 'तिनका' के मुहा०। पैर तोड़ना = दे० 'पैर' के मुहा०। मुँह तोड़ना = दे० 'मुँह' के मुहा०। रोटियाँ तोड़ना = दे० 'रोटी' के मुहा०। सिर तोड़ना = दे० 'सिर' के मुहा०। हिम्मत तोड़ना = दे० 'हिम्मत' के मुहा०।

तोड़फोड़—संज्ञा स्त्री० [हि० तोड़ना + फोड़ना] बध्द करने की क्रिया। नष्ट करना। खराब करना।

तोड़मरोड़—संज्ञा स्त्री० [हि० तोड़ना + मरोड़ना] १. तोड़ने मरोड़ने का कार्य। २. गलत अर्थ लगाना। कुतर्क से भिन्न अर्थ सिद्ध करना।

तोडर^④—संज्ञा पुं० [हि० तोड़ा] एक आभूषण का नाम । उ०—
मुद्रिक तोडर दए उतारी ।—०, हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० १६५ ।

तोड़वाना—क्रि० सं० [हि० तोड़ना प्रे० रूप] दे० 'तुड़वाना' ।

तोड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० तोड़ना] १. सोने चाँदी आदि की लच्छेदार और चौड़ी जंजीर या सिकड़ी जिसका व्यवहार आभूषण की तरह पहनने में होता है ।

विशेष—आभूषण के रूप में बना हुआ तोड़ा कई आकार और प्रकार का होता है, और पेरों, हाथों या गले में पहना जाता है । कभी कभी सिपाही लोग अपनी पगड़ी के ऊपर चारों ओर भी तोड़ा लपेट लेते हैं ।

२. रुपए रखने की टाट आदि की थैली जिसमें १०००) रु० आते हैं ।

विशेष—बड़ी थैली भी जिसमें २०००) रु० आते हैं, 'तोड़ा' ही कहलाती है ।

मुहा०—(किसी के आगे) तोड़े उलटना या गिनना=(किसी को) सैकड़ों, हजारों रुपए देना । बहुत सा द्रव्य देना ।

१. नदी का किनारा । तट । ४. वह मैदान जो नदी के संगम आदि पर बाढ़, मिट्टी जमा होने के कारण बन जाता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

५. घाटा । घटी । कमी । टोटा । उ०—तो लाला के लिये दूध का तोड़ा थोड़ा ही है ।—मान०, भा० ५, पृ० १०२ ।

क्रि० प्र०—घाना । पड़ना ।

६. रस्सी आदि का टुकड़ा । ७. उतना नाच जितना एक बार में नाचा जाय । नाच का एक टुकड़ा । ८. हल की वह लंबी लकड़ी जिसके आगे जुगा लगा होता है । हरिस ।

तोड़ा^२—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड या टोंटा] नारियल की जटा की वह रस्सी जिसके ऊपर सूत बुना रहता था और जिसकी सहायता से पुरानी जाल की तोड़दार बंदूक छोड़ी जाती थी । फलीता । फलीता । उ०—तोड़ा सुभगत चढ़े रहैं थोड़ा बंदूकन ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५२४ ।

गो०—तोड़ेदार बंदूक—वह बंदूक जो तोड़ा या फलीता दागकर छोड़ी जाय । आजकल इस प्रकार की बंदूक का व्यवहार उठ गया है । दे० 'बंदूक' ।

तोड़ा^३—संज्ञा पुं० [हि०] १. मिसरी की तरह की बहुत साफ की हुई बीनी जिससे धोला बनाते हैं । कंड । २. वह लोहा जिसे चकमक पर मारने से आग निकलती है । ३. वह भैंस जिसने अभी तक तीन से अधिक बार बच्चा न दिया हो । तीन बार तक ब्याई हुई भैंस ।

तोड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुड़ाई' ।

तोड़ाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तुड़ाना' ।

तोड़ियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तोड़ो' ।

तोड़ो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सरसों ।

तोण^④—संज्ञा पुं० [सं० तूण] निर्बंग । तरकस ।

तोता^१—संज्ञा पुं० [क्रा० तोदह् या तूदह् (=ढेर)] १. ढेर । समूह । उ०—घर घर उनही के जुरे बदनामी के तोत । भाजत जे हित खेत तै नेकनाम कब होत ।—(शब्द०) । २. खेल (कव०) ।

तोत^④—संज्ञा पुं० [?] कपट । उ०—पातसाह सुणतां दुख पायो एक हज़र तोत उपजायो ।—रा० रु०, पृ० ३०८ ।

तोतई^२—वि० [हि० तोता+ई (प्रत्य०)] सुगं जैसा । तोते के रंग का सा । धानी ।

तोतई^२—संज्ञा पुं० वह रंग जो तोते के रंग का सा हो । धानी रंग ।

तोतरंगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बिड़िया जो पितपिता की सी होती है ।

तोतरा—वि० [हि०] दे० 'तोतला' ।

तोतरा—वि० [हि०] दे० 'तोतला' ।

तोतराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तुतलाना' । उ०—पूछत तोतरात बात मातहि अदुराई । अतिसे सुख जाते तोहि मोहि कछु समुझाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

तोतरि^④—वि० स्त्री० [हि० तोतराना] दे० 'तोतला' । उ०—लरिकाई लटपट बग खेला । तोतरि बात मात संग बोला ।—घट०, पृ० ३७ ।

तोतला—वि० [हि० तुतलाना] १. वह जो ततलाकर बोलता हो अस्पष्ट बोलनेवाला । जैसे, तोतला बालक । २. जिसमें उच्चारण स्पष्ट न हो । जैसे, तोतली जवान ।

तोतलाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तुतलाना' ।

तोतली—वि० [हि० तोतलाना] दे० 'तोतला' । उ०—खिला हुआ मुल कंज, मंजु दशनावली, अरुण अंधर, कलकंठ तोतली काकली ।—शकुं०, पृ० ४८ ।

तोता—संज्ञा पुं० [क्रा०] १. एक प्रसिद्ध पक्षी जिसके शरीर का रंग हरा और चोंच का लाल होता है । कीर । सुषा ।

विशेष—इसकी दुम छोटी होती है और पेरों में दो आगे और दो पीछे इस प्रकार चार उंगलियाँ होती हैं । ये आदमियों की बोली की बहुत अच्छी तरह नकल करते हैं, इसलिये लोग इन्हे घर में पालते हैं और 'राम राम' या छोटे मोटे पक्ष सिखाते हैं । ये फल या मुलायम अनाज खाते हैं । तोते की छोटी, बड़ी सैकड़ों जातियाँ होती हैं जिनमे से अधिकांश फलहारी और कुछ मांसाहारी भी होती हैं । तोते साधारण छोटी बिड़ियों से लेकर तीन फुट तक की लंबाई के होते हैं । कुछ जातियों के तोतों का स्वर तो बहुत मधुर और प्रिय होता है और कुछ का बहुत कटु तथा अप्रिय । इनमें नर और मादा का रंग प्रायः एक सा ही होता है । अमेरिका में बहुत अधिक प्रकार के तोते पाए जाते हैं । हीरामन, कातिक, घूरी, काकातूपा आदि तोते की जाति के ही हैं । तीतर, मुरगे, मोर, कबूतर आदि पक्षी जिस स्थान पर बहुत दिनों तक पाले जाते हैं यदि कभी लड़कर इधर उधर चले जाय तो प्रायः फिर लौटकर उसी स्थान पर आ जाते हैं पर साधारण तोते छूट जाने पर फिर

अपने पालनेवाले के पास प्रायः नहीं आते । इसलिये तोतों की बेमुरीवती मशहूर है ।

मुहा०—हाथों के तोते उड़ जाना = बहुत घबरा जाना । सिर पीटा जाना । तोते की तरह घाँस फेरना या बदलना = बहुत बेमुरीवत होना । तोते की तरह पढ़ना = बिना समझे लुके रटना । तोता पालना = किसी दोष, दुर्व्यसन या रोग को जान बूझकर बढ़ाना । किसी बुराई या बीमारी से बचने का कोई प्रयत्न न करना ।

यौ०—तोताचर्म । तोताचर्मी ।

२. बंदूक का घोड़ा ।

तोताचर्म—संज्ञा पुं० [फा०] तोते की तरह घाँस फेर लेनेवाला । वह जो बहुत बेमुरीवत हो ।

तोताचर्मी—संज्ञा स्त्री० [फा० तोताचर्म + ई० (प्रत्य०)] बेमुरीवती । बेवफाई ।

मुहा० तोताचर्मी करना = बेमुरीवत होना । बेवफाई करना ।
उ०—यकीन नहीं आता कि आजाद न आएँ और ऐसी तोताचर्मी करें ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २८ ।

तोतापंखी—वि० [हि० तोता + पंख + ई (प्रत्य०)] तोते के पंखों जैसे पीत वर्ण का । पीताम्ब । उ०—तोतापंखी किरनों में हिलती बाँसों की टहनी । यहीं बैठ कहती थी तुमसे सब कहनी अनकहनी ।—ठडाल०, पृ० २० ।

तोती—संज्ञा स्त्री० [फा० तोता] १. तोते की मादा । उ०—बोलहि सुक सारिक पिक तोती । हरिहर चातक पोत कपोती ।—नंद० प्र०, पृ० ११६ । २. रखी हुई स्त्री । उपपत्नी । रखनी । सुरेतिन । (ब०) ।

तोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह छड़ी या चादक आदि जिनकी सहायता से जानवर हाँके जाते हैं ।

तोत्रवेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के हाथ का दण्ड ।

तोथी०—अव्य० [हि०] वही । उ०—जाहो लेता जनम गी तुम करे तिसी तोथी होई ।—बी० रासो, पृ० ४४ ।

तोद^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीड़ा । व्यथा । उ०—आनंदवन रस बरसि बहायी जनम जनम को तोद ।—घनानंद, पृ० ४८६ । २. सूर्य (की०) । ३. अक्षत । हाँकना (की०) ।

तोद^२—वि० पीड़ा पहुँचानेवाला । कष्टदायक ।

तोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तोत्र । चाबुक, कोड़ा, चमोटी आदि । २. व्यथा । पीड़ा । ३. एक प्रकार का फलदार पेड़ जिसके फल को वैद्यक में कसेला, मीठा, हल्का तथा कफ और वायुनाशक माना है ।

तोदरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] फारस में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा कंटीला पेड़ जिसमें पतले खिलकेवाले फूल लगते हैं ।

विशेष—इसके बीज भटकटैया के बीजों की तरह थपटे पर उससे कुछ बड़े होते हैं और औषध के काम में आने के कारण भारत के बाजारों में आकर बिकते हैं । ये बीज तीन प्रकार के होते हैं—साज, सफेद और पीले । तीनों प्रकार के बीज

बहुत रक्तशोधक, पौष्टिक और बलवर्धक समझे जाते हैं । कहते हैं, इनके सेवन से शरीर का रंग खूब निखरता है और चेहरे का रंग खाल हो जाता है ।

तोदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का ख्याल (संगीत) ।

तोन०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूण' । उ०—हनुमान हृष्य संदेस सु कथ्यं । धरे पिटु तोन सखी बीर सध्यं ।—पृ० रा०, २।२६७ ।

तोनि०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूण' । उ०—कर लग्य धनुष कटिलसे तोनि ।—ह० रासो, पृ० १२ ।

तोप—संज्ञा स्त्री० [तु०] एक प्रकार का बहुत बड़ा मख जो प्रायः दो या चार पहियों की गाड़ी पर रखा रहता है और जिसमें ऊपर की ओर बंदूक की नली की तरह एक बहुत बड़ा नल लगा रहता है । इस नल में छोटी गोलियाँ या मेलों आदि से भरे हुए गोले या लंबे गोले रखकर युद्ध के समय शत्रुओं पर चलाए जाते हैं । गोले चलाने के लिये नल के पिछले भाग में बारूद रखकर पलीते आदि से उसमें प्राण लगा देते हैं । उ०—छुटाहि तोप घनघोर सब बंदूक चलावे ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५४० ।

विशेष—तोपें छोटी, बड़ी, मैदानी, पहाड़ी और जहाजी आदि अनेक प्रकार की होती हैं । प्राचीन काल में तोपें केवल मैदानी और छोटी हुमा करती थी और उनको खींचने के लिये बैल या घोड़े जोते जाते थे । इसके प्रतिरिक्त घोड़ों, ऊँटों या हाथियों आदि पर रखकर चलाने योग्य तोपें भलग हुमा करती थी जिनके नीचे पहिए नहीं होते थे । आजकल पाश्चात्य देशों में बहुत बड़ी बड़ी जहाजी, मैदानी और किले तोड़नेवाली तोपें बनती हैं जिनमें से किसी किसी तोप का गोला ७५-७५ मोल तक जाता है । इसके प्रतिरिक्त बाइसकिलों, मोटरों और हवाई जहाजों आदि पर से चलाने के लिये भलग प्रकार की तोपें होती हैं । जिनका मुँह ऊपर की ओर होता है, उनसे हवाई जहाजों पर गोले छोड़े जाते हैं । तोपों का प्रयोग शत्रु की सेना नष्ट करने और किले या मोरचेबांसी तोड़ने के लिये होता है । आजकल में किसी के जन्म के समय अथवा इसी प्रकार की और किसी महत्वपूर्ण घटना के समय तोपों में खाली बारूद भरकर केवल शब्द करते हैं ।

कि० प्र०—चलना ।—चलाना ।—छूटना ।—छोड़ना ।—दगना ।—दागना ।—भरना ।—मारना ।—सर करना ।

यौ०—तोपची । तोपखाना ।

मुहा०—तोप कीलना = तोप की नाली में लकड़ी का कुंदा खूब कमकर डींग देना जिससे उसमें से गोला न चलाया जा सके । [प्राचीन काल में मोठा पाकर शत्रु की तोपें अथवा भागने के समय स्वयं अपनी ही तोपें इस प्रकार कील दी जाती थीं ।] तोप की सलामी उतारना = किसी प्रसिद्ध पुरुष के आगमन पर अथवा किसी महत्वपूर्ण घटना के समय बिना गोले के केवल बारूद भरकर शब्द करना । तोप के मुँह पर छोड़ना = बिल्कुल निराश्रित छोड़ देना । खतरे के स्थान पर छोड़ना । उ०—फिर तुम उस बेचारी की झकली तोप के मुँह पर छोड़ आए हो ।—रति०, पृ० ४४ । तोप के मुँह पर रखकर

उड़ाना = बहुत कठिन बंड या प्राणदंड देना। तोप के मुहरे पर उड़ा देना = दे० 'तोप के मुहरे पर रखकर उड़ाना'। ७०— ऐसी बंद औरतों को तोप के मुहरे पर उड़ा दे बस।—सैर कु० पृ० १८। तोप बंद करना = दे० 'तोप के मुहरे पर रखकर उड़ाना'। किसी पर या किसी के सामने तोप लगाना = किसी वस्तु को उड़ाने के लिये तोप का मुह उसकी ओर करना।

तोपखाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० तोप + खानह] १. वह स्थान जहाँ तोपें और उनका कुल सामान रहता हो। २. गोलो और सामान की गाड़ियों आदि के सहित युद्ध के लिये सुसज्जित चार से आठ तोपों तक का समूह।

तोपची—संज्ञा पुं० [फ्रा० तोप + ची (प्रत्य०)] तोप चलानेवाला। वह जो तोप में गोला भरकर चलाता हो। गोलदाज।

तोपचीनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'बोबचीनी'।

तोपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का कबूतर। २. एक प्रकार की मक्खी।

तोपना—क्रि० सं० [देश०] नीचे दबाना। ढाँकना। छिपाना।

तोपवाना—क्रि० सं० [हि० तोपना प्रे० रूप] तोपने का काम दूसरे से कराना। ढँकवाना। छिपवाना।

तोपा—संज्ञा पुं० [हि० तुरपना] एक टाँके में की हुई सिलाई।

मुहा०—तोपा भरना = टाँके लगाना। सीना। सीधी सिलाई करना।

तोपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तोपना] १. तोपने की क्रिया या भाव। २. तोपने की मजदूरी।

तोपाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तोपवाना'।

तोपास—संज्ञा पुं० [देश०] भाड़ू देनेवाला। भाड़ू बरदार।

तोपी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोपी'।

तोफा^(१)—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुफ (अभ्य०)] दुःख। परचात्ताप। अफसोस। उ०—तालिब मतलूब को पहुँचे तोफ करे दिल प्रंदर।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

तोफगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तोहफा] तोफा या उगदा होने का भाव। खूबी। अच्छापन।

तोफाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तोप'। उ०—वगे तोफाँ वह गोला रोहणा मोरछा दोला।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० १२७।

तोफाँ—वि० [फ्रा० तोहफा] बढ़िया।

तोफा^(२)—संज्ञा पुं० दे० 'तोहफा'।

तोफान^(१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूफान'। उ०—साहिब यह कहती है कहीं फिर नहीं है। हिंदू और मुसलमान तोफान करता।—सं० दरिया, पृ० २७।

तोषड़ा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तोबरा या तूबरा] चपड़े या टाट आदि का वह पैला जिसमें दाना भरकर घोड़े के खाने के लिये उसके मुँह पर बांध देते हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

मुहा०—बोबड़ा चढ़ाना = बोलने से रोकना। मुँह बंद करना।

तोबा—संज्ञा स्त्री० [अ० तोबह] अपने किए पापों या दुष्कृत्यों आदि का स्मरण करके परचात्ताप करने और भविष्य में वैसा पाप या दुष्कृत्य न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा। किसी कार्य को विशेषतः अनुचित कार्य को भविष्य में न करने की शपथपूर्वक दृढ़ प्रतिज्ञा। उ०—लखे जग लोक दुखदाई। नम तोबा हाव हाई।—संत तुरसी०, पृ० ४४।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार कभी कभी किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति घृणा प्रकट करने के समय भी होता है।

मुहा०—तोबा तिल्ला करना या मथाना = रोने, चिल्लाने या दोनता दिखलाते हुए तोबा करना। तोबा तोड़ना = प्रतिज्ञा भंग करना। जिस काम से तोबा कर चुके हों, उसे फिर करना। तोबा करके (कोई बात) कहना = अभिमान छोड़कर अथवा ईश्वर से डरकर (कोई बात) कहना। तोबा बुझवाना = किसी को इतना तंग या विवश करना कि उसे तोबा करनी पड़े। पूर्ण रूप से परास्त करना। चीं बुलवाना।

तोम—संज्ञा पुं० [सं० तोम] समूह। डेर। ल०—(क) जातघान दावन परावन को दुर्ग अयो महामीन वास तिमि तोमनि को थल भो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दिनकर के उदय तोम तिभिर फटत।—तुलसी (शब्द०)। (ग) चहुँ घाँ तें महा सरपे बिजुरी तम तोम में आजु तमासे करे।—विश्वर (शब्द०)।

तोमड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तूमड़ी'।

तोमर—संज्ञा पुं० [म०] १. भाले की तरह एक प्रकार का पत्तल जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था। इसमें लकड़ी के डंडे में भाँगे की ओर लोहे का बड़ा फल लगा रहता था। शपला। शपल। २. बारह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में एक गुरु और एक लघु होता है। जैसे, तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल। कोप्यो समर श्रीराम। चले विशिख निसित निकाम।—तुलसी (शब्द०)। ३. एक देश का नाम जिसका उल्लेख कई पुराणों में है। ४. इस देश का निवासी। ५. राजपूत क्षत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसका राज्य दिल्ली में भाटवी से बारहवीं शताब्दी तक था।

विशेष—प्रसिद्ध राजा अनंगपाल (पृथ्वीराज के नाना) इसी वंश के थे। पीछे से तोमरों ने कन्नौज को अपना राजनगर बनाया था। कन्नौज में इस वंश के प्रसिद्ध राजा जयपाल हुए थे। आजकल इस वंश के बहुत ही कम क्षत्रिय पाए जाते हैं।

तोमरग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] तोमरधारी सैनिक [को०]।

तोमरधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. 'तोमरग्रह'। २. अग्नि [को०]।

तोमरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुवरिका'।

तोमरी^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. दे० 'तूमड़ी'। २. कड़ुआ कदुह।

तोमा^(१)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूमा'। उ०—मेहर का जामा और तोमा भी मेहर का। मेहर का आया इस बिल को पिलाइए।—मल्ल०, पृ० ३१।

तोय'—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल। पानी। पूर्वाषाढा नक्षत्र।

तोय^३—प्रभ्य [हि० तो] तो भी। फिर भी। उ०—बहुनीणा
कुल चल्लणी, वियो न चल्ले कोय। चाड न घट्टे तूँद की
सीस पलट्टे तोय।—रा० ६०, पृ० ११६।

तोय^१—सर्व० [हि० तो] दे० 'तुम्हें'। उ०—मैं पठई वृषभानु के,
करनि सगाई तोय।—नंद० प्र० पृ० १६५।

तोयकर्म—संज्ञा पुं० [सं० तोयकर्मन्] तर्पण।

तोयकाम^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बीजा जो जल के समीप
उत्पन्न होता है। वानीर।

तोयकाम^२—वि० १. जल बहनेवाला। २. प्यासा [को०]।

तोयकुम्भ—संज्ञा पुं० [सं० तोयकुम्भ] सेवार।

तोयकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

विशेष—इसमें जल के सिवा और कुछ आहार ग्रहण नहीं किया
जाता। यह व्रत एक महीने तक करना होता है।

तोयक्रीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तोयक्रीडा] जल में खेल करना। जल-
क्रीडा [को०]।

तोयगम—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल [को०]।

तोयचर—संज्ञा पुं० [सं०] जलचर [को०]।

तोयडिम्ब—संज्ञा पुं० [सं० तोयडिम्ब] घोला। पत्थर। करका।

तोयडिम्भ—संज्ञा पुं० [सं० तोयडिम्भ] दे० 'तोयडिम्ब' [को०]।

तोयद^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. नागरमोथा। ३.
घी। ४. वह जो जल दान करता हो (जलदान का माहा-
त्म्य बहुत अधिक माना जाता है।)

तोयद^२—वि० जल देनेवाला।

तोयदागम—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात।

तोयदात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] गरद ऋतु [को०]।

तोयधर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

तोयधार—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। २. मोथा। ३. वर्षा [को०]।

तोयधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। सागर। २. चार की
संख्या [को०]।

तोयधिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग।

तोयनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। सागर। २. चार की
संख्या [को०]।

तोयनीवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुट्टी।

तोयपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेला।

तोयपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली।

तोयपुष्पो—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष। पाँडर।

तोयप्रष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष। पाँडर [को०]।

तोयप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तोयप्रसादनफल'।

तोयप्रसादनफल—संज्ञा पुं० [सं०] निर्मली।

तोयफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरबूज या ककड़ी आदि की बेल।

तोयमल—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र का फेन [को०]।

तोयमुष्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। २. मोथा।

तोययंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तोययन्त्र] १. जलघड़ी। २. फीवारा [को०]।
तोययस—संज्ञा पुं० [सं०] प्रार्थना। नमी [को०]।

तोयराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. वरुण [को०]।

तोयराशि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. तालाब या झील [को०]।

तोयवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] करल की बेल।

तोयवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

तोयवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल का बितरण। तीर। तट [को०]।

तोयव्यतिकर—संज्ञा पुं० [सं०] सगम। जौ, नदियों का [को०]।

तोयशुक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीपी [को०]।

तोयशूक—संज्ञा पुं० [सं०] सेनार [को०]।

तोयसर्पिका—संज्ञा पुं० [सं०] मेंढक [को०]।

तोयसूचक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में वह योग जिसमें वर्षा
होने की सूचना मिले। २. मेंढक [को०]।

तोयोजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० तोयोज्जलि] दे० 'तोयकर्म' [को०]।

तोयाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाडव अग्नि [को०]।

तोयात्मा—संज्ञा पुं० [सं० तोयात्मन्] ब्रह्म [को०]।

तोयाधार—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करिणी। तालाब।

तोयाधिवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष।

तोयालय—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर [को०]।

तोयाशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. झील। २. कुम्भी कूप। ३. जल-
संग्रह [को०]।

तोयेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. शतभिषा नक्षत्र। ३. पूर्वा-
षाढ़ा नक्षत्र।

तोयोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा [को०]।

तोय^१—संज्ञा पुं० [सं० तुषर] धरहर।

तोर^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोड़'। उ०—भादे बहुमाण
रजपूती का तोर। पाछे मुसलमान बादसाहो का जोर।—
शिवर०, पृ० ५५।

तोर^२—वि० [हि०] दे० 'तेरा'।

तोर^४—संज्ञा स्त्री० [सं० तोर] तोर। तरीका। ढग। उ०—
तो राखे सिर पर तिका, तब जबरी रा तोर।—बाँकी०
प्र०, भा० २, पृ० ११५।

तोरई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरई'।

तोरकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक प्रकार की वनस्पति जो भारत के
गरम प्रदेशों और लंका में प्रायः घास के साथ होती है।

विशेष—पश्चिमी भारत में अकाल के दिनों में गरीब लोग इसके
दानों आदि की रोटियाँ बनाकर खाते थे।

तोरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी घर या नगर का बाहरी फाटक।
बहिर्द्वार। विशेषतः वह द्वार जिसका ऊपरी भाग मंडपाकार
तथा मालाओं और पताकाओं आदि से सजाया गया हो।
उ०—स्वच्छ सुंदर और विस्तृत घर बने; इंद्रधनुषाकार
तोरण हैं तने।—साकेत, पृ० ३। २. वे माछाएँ आदि जो

सजावट के लिये खंभों और दीवारों आदि में बाँधकर लटकवाई जाती है। बंदनवार। ३. घोवा। गला। ४. महादेव।

तोरणमाल—संज्ञा पुं० [सं०] प्रवतिका पुरी।

तोरणस्फटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्योधन की उस सभा का नाम जो उसने पांडवों की मय दानवाली सभा देखकर ईर्ष्याविष बनवाई थी।

तोरन^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोरण'।

तोरन तेगा^२—संज्ञा पुं० [हि० तोड़ना + तेगा] एक प्रकार का तेगा। उ०—तुरकन के तेगा तोरन तेगा सकल सुबेगा रक्षित भरे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

तोरना^३—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तोड़ना'। उ०—काहे को लगायो सनेहिया रे भव तोरलो न जाय।—पलटू०, पृ० ८२।

तोरय^४—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—खुले सुभाय मोरय, लहो दरस तोरय।—ह० रासो, पृ० १३।

तोरश्रवा—गङ्गा पुं० [सं० तोरश्रवस्] अंगिरा ऋषि का एक नाम।

तोराँ^५—सर्व० [हि०] दे० 'तोरा'। उ०—तानक बगोयद जो तोराँ तिरा चाकरा पारवाक।—कबीर मं०, पृ० ४११।

तोरा^६—संज्ञा पुं० [फा० तुरह] तुरा। कलगी।

तोरा^७—सर्व० [हि०] दे० 'तेगा'। उ०—अलकाउर मुरि मुरि ग तोरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १४३।

तोराई^८—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वरा + हि० ई (प्रत्य०)] वेग। शीघ्रता। तेज।

तोरादान^९—वि० [हि० तोड़ा (= भ्रातृयत्न) + फा० दान] तोड़ेदार। मध्ययुग के वे ताजीमी सरकार या मनगनदार, जिन्हें बावशाह सम्मानार्थ पैरो में पहनने के लिये सोने के तोड़े या कड़े प्रदान करना था। श्रेष्ठ। प्रतिष्ठित। उ०—तोरादार सकल तिहारे मनसबदार।—भूपाल ग्रं०, पृ० २७७।

तोराना^{१०}—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तुड़ाना'।

तोरावती^{११}—वि० [हि०] वेगवाली। उ०—विषय विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर प्रवतं भयाग।—तुलसी (शब्द०)।

तोरावान^{१२}—वि० [सं० त्वरावत्] [वि० त्वरा तोरावती] वेगवान्। तेज।

तोरिया^{१३}—संज्ञा स्त्री० [सं० तूरी] गोटा किनारी आदि बुननेवालों का लकड़ी का वह छोटा बेसन जिसपर वे बुना हुआ गोटा गूँटा और किनारी आदि बराबर लपेटने जाते हैं।

तोरिया^{१४}—संज्ञा स्त्री० [हि० तोरना (= तोड़ना) + इया (प्रत्य०)] १. वह गाय या भंस जिसका बच्चा भयंकर रूप से रोता हो और जिसका दूध दूहने के लिये कोई युक्ति करने पड़ती हो।

तोरिया^{१५}—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की सरसों। तोरी।

तोरी^{१६}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरई'।

तोरी^{१७}—संज्ञा स्त्री० [दे०] काली सरसों।

तोरी^{१८}—सर्व० [हि०] दे० 'तेरा'। उ०—कहे धर्मदास कर जोरी। बलो जई देस है तोरी।—धरम० ग्रं०, पृ० ६।

तोली^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तोला (तोल) जो ८० रस्ती के बराबर होता है। २. तोल। वजन।

तोली^२—संज्ञा पुं० [दे०] नाव का डंडा। (मल्ल०)।

तोली^३—वि० [हि०] दे० 'तुल्य'। उ०—साने कोने भावे बुझप बोल मद्ने पाभोल आपन तोल।—विद्यापति, पृ० १२०।

तोलक—संज्ञा पुं० [सं०] तोला (तोल)। बारह मासे का वजन।

तोलन^४—संज्ञा पुं० [सं०] १. तोलने की क्रिया। २. उठाने की क्रिया।

तोलन^५—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्तोलन] वह लकड़ी जो छत के नीचे सहारे के लिये लगाई जाती है। चाड़ि।

तोलना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तोलना'। उ०—लोचन मृग सुमग जोर राग रूप भए भोर भोह भनुष शर कटाक्ष सुगत व्याध तोले री।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—तोल तोलकर बोलना=दे० 'तोल तोलकर बोलना'। उ०—अतः वक्ता अपनी बातों को तोल तोलकर नहीं बोलता।—शैली, पृ० ४६।

तोलवाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तोलवाना'।

तोला—संज्ञा पुं० [सं० तोलक] १. एक तोल जो बारह मासे या छानवे रस्ती की होती है। २. इस तोल का बाट।

तोलाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तोलाना'।

तोलि^६—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोला'। उ०—पच तोलि पच मुहरे सु मानि।—ह० रासो, पृ० ६०।

तोलिषा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोलिया'।

तोली—वि० [हि० तुलना] तुली हुई। उ०—यह माँक कहीं कुछ बोली। यह हुई प्रियाम की तोली।—अचना पृ० ३४।

तोल्य^७—वि० [सं०] जिसे तोना जाय [को०]।

तोल्य^८—संज्ञा पुं० तोलना। तोलने की क्रिया [को०]।

तोवाली^९—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—अवध भूप दरमे तोवाली प्रबनी मोहे रूप उद्योत।—रघु० क० पृ० २४६।

तोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंसा। २. हिंसा करनेवाला। हिंसक।

तोशक—संज्ञा स्त्री० [तु०] दोहरी चादर या खोल में रुई, नायिल की जटा आदि भरकर बनाया हुआ गुबगुदा बिछौना। हलका गद्दा।

यौ०—तोशकखाना।

तोशकखाना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोशाखाना'।

तोशदान—संज्ञा पुं० [फा० तोशदान] १. वह थैली आदि जिसमें मार्ग के लिये यात्री, विशेषतः सैनिक भ्रमना जलपान आदि या दूसरी आवश्यक चीजें रखते हैं। २. चमड़े का वह छोटा बक्सा या थैली जो सिपाहियों की पेटों में लगी रहती है और जिसमें कारतूस रहता है।

तोशल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोषल'। उ०—विदित है कल वज्र शरीरता विकटता सब तोशल कूट की।—प्रिय०, पृ० ११।

तोशा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० तोशह्] १. वह खाद्य पदार्थ जो यात्री मार्ग के लिये अपने साथ रख लेता है।

यौ०—तोशे आकबत = पुस्तक। धर्माचरण (जिसमें परलोक बने)।

२. साधारण खाने पीने की चीज। जैसे, तोशा से भरोसा।

तोशा^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना जिसे गाय की स्त्रियाँ बाँह पर पहनती हैं।

तोशाखाना—संज्ञा पुं० [तु० तोषक + फ्रा० खानह्] वह बड़ा कमरा या स्थान जहाँ राजाओं और अमीरों के पहनने के बढिया कपड़े और गहने आदि रहते हों। वस्त्रों और आभूषणों आदि का भंडार। उ०—जो राजा अपने हफ्तर या खजाने, तोशे-खाने को कभी नहीं सम्हालते, जो राजा अपने बड़ों की धरोहर शस्त्रविद्या को जड़ मूल से भूल गए, उनके जीतब पर धिक्कार है।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० ८५।

तोष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. अघाने या मन भरने का भाव। तुष्टि। संतोष। तृप्ति। २. प्रसन्नता। आनंद। ३. आगत के अनुसार स्वायंभुव मन्वन्तर के एक देवता का नाम। ४. श्रीकृष्ण-चंद्र के एक सखा नाम।

तोष^२—वि० [सं० तष] घलप। थोड़ा।—(अनेकाथं०)।

तोषक—वि० [सं०] संतुष्ट करनेवाला। तोष देने या तृप्त करनेवाला।

तोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृप्ति। संतोष। २. संतुष्ट करने की क्रिया या भाव।

तोषणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

तोषना^१—क्रि० प्र० [सं० तोष] १. संतुष्ट करना। तृप्त करना। उ०—प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना।—मानस, १।७। २. संतुष्ट होना। तृप्त होना।

तोषपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें राज्य की ओर से जामीन मिलने का उल्लेख रहता है। बखिशनानामा।

तोषल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंस के एक असुर मल्ल का नाम जिसे अनुर्यश ने श्रीकृष्ण ने मार डाला था। २. मूसल।

तोषार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुषार'। उ०—तुषक तोषारहि चमल हाट भमि हेडा संगह।—कीर्ति०, पृ० ४८।

तोषित—वि० [सं०] जिसका तोष हो गया हो, अथवा जिसे तृप्त किया गया हो। तुष्ट। तृप्त।

तोषी—वि० [सं० तोषिन्] १. जिससे संतुष्ट हुआ जाय। २. संतुष्ट करनेवाला। प्रसन्न करनेवाला। (विशेषतः समासान्त में प्रयुक्त)।

तोस^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोष'। उ०—सूर घपाए खुज्जडी तो डरपावे तोस।—रा० ६०, पृ० ७६।

तोसका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोषक'। उ०—गुन कर पलंग जान कर तोसक सुरत तकिया लगावो। जो सुख चाहो सोई सतमहल बहुर बुझ नहि पावो।—कबीर रा०, भा० १, पृ० १०।

तोसदान—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोषदान'। उ०—तोसदान चकमक पचहा गोलीन भरानी।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० १३।

तोसय^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तोषक'। उ०—गरम रुम तोसयं ठके पलंग पोसयं।—पृ० रा०, १७। ५४।

तोसल^१—संज्ञा पुं० [सं० तोषल] दे० 'तोषल'।

तोसा^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोषा'। उ०—कुछ गाँठ खरबी मिहर तोसा खेर खुवोहा थोर बे।—रै० बानी, पृ० ३३।

तोसाखाना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोषाखाना'। उ०—तेरे काज गजी गज खारिक, भरा रहै तोसाखाना।—संतवाणी०, पृ० ७।

तोसागार^१—संज्ञा पुं० [हिं० तोस + सं० प्रागार] दे० 'तोषाखाना'।

तोसौ^१—सर्व० [हिं० तो + सौ] तुझसे। उ०—पहो तोसौ नंद लाडिले भगरोगी। मेरे संग की दूर जाति हैं मट्ठकी पटक के डग-रौगी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६१।

तोहफगी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तोहफह + फ्रा० गी (प्रत्य०)] भलाई। अच्छापन। उम्हगी।

तोहफा^१—संज्ञा पुं० [प्र० तोहफह्] सीमांत। उपायन। भेंट। उपहार।

तोहफा^२—वि० अच्छा। उत्तम। बढ़िया।

तोहमत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] मिथ्या अभियोग। दूया लगाया हुआ दोष। झूठा कलंक।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—देना।—धरना।—नगाना।—लेना।

मुहा०—तोहमत का धर या हट्टी—वह कार्य या स्थान जिसमें वृथा कलंक लगने की संभावना हो।

तोहमती—वि० [प्र० तोहमत + फ्रा० ई (प्रत्य०)] झूठा अभियोग लगानेवाला।

तोहारा^१—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—हमदु संग सब तोहरे प्रायब।—कबीर सा०, पृ० ५३१।

तोहारा^२—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'।

तोहि^१—सर्व० [हिं० तू या ते] १. तुझको। तुझे। २. तुम्हारा। उ०—हिव मालवणी बीनवह, हैं प्रिय दासी तोहि।—डोला०, पृ० ३४१।

तोहे^१—सर्व० [हिं०] दे० 'तोहि'। उ०—चरण भलि नहि तुष रीति एहि मति तोहे कलंक लागल।—विद्यापति, पृ० २३०।

तौ^१—प्रथम० [हिं०] दे० 'तउ'। उ०—नौ लौ रहि प्यारी जौ लौ लाल ही ले आके।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७१।

तौ^२—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'। उ०—ऐसे प्रभु वं कीन हंकारे। तौ तौ बड़ें गुणन पियारे।—नंद० ग्रं०, पृ० १२२।

तौकना—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'नीमना'।

तौबर^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर'। उ०—लोढ़ाया तौबर प्रभंग मुहर सब समंत।—पृ० रा०, ४। १६।

तौसा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव + ऊष्म, हिं० ऊपस, घीस] वह प्यास जो धूप खा जाने के कारण लगे और किसी भीति न बुझे।

तौसना—क्रि० प्र० [हिं० तौस] १. गरमी से झुनस जाना। गरमी के कारण संतप्त होना। २. प्यासा होना। प्यासित होना।

तौसा^२—सं० पुं० [सं० ताप, हिं० ताव + सं० ऊष्म, हिं० ऊपस, घीस] अधिक ताप। कड़ी गरमी।

तौ^१—क्रि० वि० [हि०] ३० 'तो' ।

तौ^२—क्रि० प्र० [हि० हतो] या । उ०—वेरु छाए द्वारे है हुती
धगवारे धोर द्वारे धगवारे कोऊ तो न तिहि काल में ।—
पद्माकर (शब्द०) ।

तौक—संज्ञा पु० [प्र० तोक] १. हंसुली के आकार का गले में पहनने
का एक प्रकार का गहना । यह पटरी की तरह कुछ चौड़ा
होता है और इसके नीचे घुंघरू आदि लगे होते हैं ।

विशेष—प्रायः मुसलमान लोग अपने बच्चों को इसी प्रकार का
चाँदी का धेरा या गंडा भी पहनाते हैं जिसमें गाबीज आदि
बँधी होती है । कभी कभी यह केवल मग्नन पूरी करने के
लिये भी पहनाया जाता है ।

२. इसी आकार की पर तोल में बहुत भारी झुत्ताकार पटरी
या मँडरा जिसे धपराधी या पागल के गले में इसलिये पहना
देते हैं जिसमें वह अपने स्थान से हिल न सके ।

३. इसी प्रकार का वह प्राकृतिक चिह्न जो पक्षियों आदि के गले
में होता है । हंसुली । ४. पट्टा । चपरास । ५. कोई गोल
धेरा या पदार्थ ।

तौकीर—संज्ञा स्त्री० [प्र० तौकीर] संमान । प्रतिष्ठा । इज्जत ।
उ०—इस सत्यगुरु की सादिम तौकीर मे देखो ।—कबीर
मं०, पृ० ४६७ ।

तौके गुलामी—संज्ञा पु० [प्र० तौकेगुलामी] गुलाम होने की
विवेकता [को०] ।

तौलिक—संज्ञा पु० [सं०] पनुराशि ।

तौचा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का गहना जिसे कहीं कहीं देहाती
स्त्रियाँ गिर पर पहनती हैं ।

तौजा^१—संज्ञा पु० [प्र० तौजी] वह द्रव्य जो खेतिहरों को विवाहादि
में खर्च करने के लिये पणगी दिया जाता है । बियाही ।

तौजा^२—वि० हाथ उधार । दस्तगर्दी ।

तौजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताजिधामीरी । मुहर्रम मनाना । उ०—
तौजी धीर निमाज न जातू ना जातू धरि रोजा ।—मनूक०,
पृ० ७ ।

तौतातिक—वि० [सं०] कुमारिल भट्ट से संबंध या संबंध रखनेवाला ।

विशेष—कुमारिल भट्ट का दिनेषण तुतान या दूतातित था ।

तौतातित—संज्ञा पु० [सं०] १ जैनियों का भेद । २ कुमारिल भट्ट
का एक नाम ।

तौतिक—संज्ञा पु० [सं०] १. मुक्ता । माती । ३. मोती का
संज्ञा । शुक्ति ।

तौन^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह रस्सी जिससे गैया दुहने के समय
उसका बल्लटा उसके धगले पैर से बाँध दिया जाता है ।

तौन^२—सर्व० [सं० ने] वह । सो । उ०—उनकी छाया सबको भाई ।
तौन छोड़ सब घटहि समाई ।—कबीर सा०, पृ० ६१० ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दो वाक्यों का संबंध पूरा करने के
लिये 'जीन' के साथ होता है ।

तौन^३—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'तूण' । उ०—बढ़ि नरिय कमधउज
तौन तन सज्जन वारो ।—पृ० रा०, २६।१६ ।

तौना^१—वि० [हि० ताना] जिससे कोई चीज ताई या मुँदी जाय ।

तौनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तवा का स्त्री० भल्पा० रूप] रोटी सँकने का
छोटा तवा । तई । तबी ।

तौनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'तीन' ।

तौनी^३—सर्व० [हि०] ३० 'तीन' ।

तौफ^१—संज्ञा पु० [प्र० तौफ] चक्कर । परिक्रमा । उ०—बहुते
तौफ जाय तब वायफ ना देव जाय गहाड़ समुंदर ।—कबीर
सा०, पृ० ८८८ ।

तौफीक—संज्ञा स्त्री० [प्र० तौफीक] १. संयोगात् किसी वस्तु का
सुगमतापूर्वक प्राप्त हो जाना । २. दैवकृपा । ईश्वरानुग्रह ।
३. शक्ति । सामर्थ्य । ३. हीसला । उमंग । ५. योग्यता ।
पात्रता [को०] ।

तौफीर^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० तौफीर] अधिकता । प्रचुरता । उ०—
रख अपने पनह गुनह ब तौफीर ।—कबीर मं०, पृ० ४२२ ।

तौबा—संज्ञा स्त्री० [प्र०] ३० 'तोबा' ।

तौरंगिक—संज्ञा पु० [सं० तौरङ्गिक] साईस [को०] ।

तौर^१—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

तौर^२—संज्ञा पु० [प्र०] १. चालढाल । चालचलन ।

यौ०—तौर तरीक या तौर तरीका = चाल चलन ।

मुहा०—तौर बेतौर होना = रंग ढंग खराब होना । सक्षण
बिगड़ना ।

२. अवस्था । दशा । हालत ।

मुहा०—तौर बेतौर होना = अवस्था बिगड़ना । दशा खराब होना ।

विशेष—उक्त दोनों अर्थों में इस शब्द का व्यवहार प्रायः
बहुवचन में होता है ।

३. तरीका । तर्ज । ढंग । ४. प्रकार । भाँति । त१हु ।

तौर^३—संज्ञा पु० [देश०] मयानी मयने की रस्सी । नेत्री ।

तौतश्रवस—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का साम (गान) ।

तौरान—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'तीरेत' ।

तौरायणिक—संज्ञा पु० [सं०] वह जो सूरायण यज्ञ करता हो ।

तौरि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० तौरि] धुमेर । धुमरी । चक्कर ।

तौरीत—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'तीरेत' । उ०—उसका समाचार
तौरीत मे उत्पत्ति की पुस्तक में है ।—कबीर मं०, पृ० ४२ ।

तौरुष्किक—वि० [सं०] तुरुष्क देश या जाति संबंधी [को०] ।

तौरूप—संज्ञा पु० [सं०] कामरूप में प्राप्त एक प्रकार का चंदन [को०] ।

तीरेत—संज्ञा पु० [इब०] यहूदियों का प्रधान धर्मग्रंथ जो हजरत
मुसा पर प्रकट हुआ था । इसमें सृष्टि और आबाम की उत्पत्ति
आदि विषय हैं । उ०—जिसमे बनी इसराईल इस नियम पर
चले और इस नियमावली का नाम तीरेत पुस्तक ठहरा ।
—कबीर मं०, पृ० १६७ ।

तौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढोल मंजीरा आदि बाजे । २. ढोल मंजीरा आदि बजाना ।

तौर्यत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाचना, गाना और बाजे बजाना आदि काम ।

विशेष—मनु ने इसे कामज व्यसन कहा है और त्याज्य बतलाया है ।

तौल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तराजू । २. तुला राशि ।

तौल^२—संज्ञा स्त्री० १. किसी पदार्थ के गुरुत्व का परिमाण । भार का मान । वजन । २. 'गुरुत्व' ।

विशेष—भारत की प्रधान तौल ये हैं—

४ छटाक = १ पाव

१६ छटाक = १ सेर

५ सेर = १ पंसेरी

८ पंसेरी या ४० सेर = १ मन

इनसे धन्न, तरकारी आदि भारी और अधिक मान में होने वाली चीजें तोली जाती हैं । हलकी और थोड़ी चीजें तोलने के लिये इससे छोटी तौल यह है—

८ चावल = १ रत्ती

८ रत्ती = १ माणा

१२ माणा = १ तोला

५ तोला = १ छटाक

उपर्युक्त तौलों का प्रचलन अब बंद हो गया है । अब तौल दायमिक प्रणाली पर चल रही है, जिसमें वजन क्विंटल, किलो प्रणाली में किया जाता है । इसमें सबसे अधिक वजन की तौल क्विंटल है और सबसे कम वजन की तौल मिलीग्राम ।

२. तोलने की क्रिया या भाव ।

तोलना—क्रि० सं० [सं० तोलन] १. किसी पदार्थ के गुरुत्व का परिमाण जानने के लिये उसे तराजू या की आदि पर रखना । वजन करना । जोलना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

मुहा०—तौल तौलकर कदम धरना—सावधानी के साथ चलना । इस प्रकार धीरे चलना कि बचने में एक विशेषता आ जाय । उ०—कुछ नाज व धवा से तौल तौलकर कदम धरनी हैं ।—फिखाना०, भा० ३, पृ० २११ । किसी का तोलना = किसी की खुशामद करना ।

२. समझ बुझकर व्यवहार करना । ऐसा व्यवहार करना कि किसी प्रकार की गलती न हो ।

मुहा०—तौल तौलकर बोलना = अत्यंत सावधानी के साथ बोलना । ऐसे बोलना कि किसी प्रकार की गलती न हो जाय ।

३. किसी धस्त्र आदि को बसाने के लिये हाथ को इस प्रकार ठीक न करना कि वह धस्त्र अपने स्वयं पर पहुँच जाय । साधना । उ०—लोचन मृग सुभग जोर राग रूप भए भोर भौह धनुष शर कटाक्ष सुरति व्याध तोले री ।—सूर (शब्द०) ।

४-१२

४. दो या अधिक वस्तुओं के गुण, मान आदि का परस्पर तुलना करके विचार करना । तारतम्य जानना । मिलान करना । उ०—गए सब राज केते जग माँह जो बाहु बली बल बोलत है ।—सं० दरिया, पृ० ६३ । ५. गाड़ी का पहिया घोंगना । गाड़ी के पहिए में तेल देना ।

तौलवाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'तोलाई' ।

तौलवाना—क्रि० सं० [हि० तोलना का प्रे० रूप] तोलने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तोलने में प्रवृत्त करना । तोलाना ।

तौला—संज्ञा पुं० [हि० तोलना] १. दूध नापने का मिट्टी का बरतन । २. घनाज तोलनेवाला मनुष्य । बघा । ३. तंबिया । ४. मिट्टी का कमोरा । ५. महुष की शराब ।

तौलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तोल + लाई (प्रत्य०)] १. तोलने की क्रिया या भाव । २. वह वन जो तोलने के बदले में दिया जाय । तोलने की मजदूरी ।

तौलाना—क्रि० सं० [हि० तोलना का प्रे० रूप] तोलने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तोलने में प्रवृत्त करना ।

तौलिक—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकार ।

तौलिकिक—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकार ।

तौलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० टावेल] एक विशेष प्रकार का मोटा झंझोटा जिससे स्नान आदि करने के उपरांत शरीर पोखने है ।

तौली^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का मिट्टी की छोटी प्याली । २. मिट्टी का चौड़े मुँह का बड़ा बरतन जिसमें घनाज आदि, विशेषतः गुड़, रखने हैं ।

तौली^२—संज्ञा पुं० [सं० तोलिन्] १. तोलनेवाला । २. तुलाराशि [को०] ।

तौलिया^१—संज्ञा पुं० [हि० तोलना + ऐया (प्रत्य०)] घनाज तोलनेवाला मनुष्य । बघा ।

तौलिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तोलाई] तोलने का काम ।

तौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वजन । भार । २. समता । सादृश्य ।

तौवार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुवार का जल । पाने का पानी । २. हिम । पाला (को०) ।

तौवार^२—क्रि० [वि० स्त्री० तौवारी] बर्फीला । हिमयुक्त [को०] ।

तौसन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोड़ा । घषव । तुरंग । उ०—तौसने उमरे खी वम भर नही रुकता 'रसा' ।—घारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८३० ।

तौसना^१—क्रि० प्र० [हि० तोष] परपी से बहुत व्याकुल होना । उ०—नाम से बिलाव बिललाव अकुलाव धनि तात तात तौषियत औषियत आरही ।—तुलसी (शब्द०) ।

तौसना^२—क्रि० सं० परपी पहुँचाकर व्याकुल करना ।

तौहीद—संज्ञा स्त्री० [सं०] एकेश्वरवाद । उ०—कहे तौहीद क्या हैं मुँह कहो अब ।—दक्खिनी०, पृ० ११६ ।

थौ०—तौहीदपरस्त = एकेश्वरवादी ।

तोहीन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] अपमान । अप्रतिष्ठा । बेइज्जती ।

यौ०—तोहीने प्रदालत = न्यायालय का अपमान ।

तोहीनी(पु) —संज्ञा स्त्री० [प्र० तोहीन] दे० 'तोहीन' ।

तोहू(पु) —अव्य० [हि० तह] तब भी । तो भी । तिसपर भी ।

उ०—पानी माहीं घर करे, तोहू मरे पियास ।—कबीर सा०, पृ० ५ ।

त्यक्त—वि० [सं०] छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । जिसका त्याग कर दिया गया हो । उ०—निकल गए सारे कंटक से व्यथा प्राप ही त्यक्त हुई ।—साकेत, पृ० ०७६ ।

त्यक्तजीवित—वि० [सं०] १. जो प्राण छोड़ने को तत्पर हो । मरने को तैयार । २. बड़े से बड़ा खतरा उठाने को तैयार [को०] ।

त्यक्तप्राण—वि० [सं०] दे० 'त्यक्तजीवित' [को०] ।

त्यक्तलज्ज—वि० [सं०] जिसने लज्जा त्याग दी हो । निर्लज्ज । बेहया [को०] ।

त्यक्तविधि—वि० [सं०] नियमों का प्रतिक्रमण करनेवाला । नियम न माननेवाला [को०] ।

त्यक्तव्य—वि० [सं०] जो छोड़ने योग्य हो । त्यागने योग्य ।

त्यक्तश्री—वि० [सं०] भाग्यहीन । अभाग [को०] ।

त्यक्ता—वि० [सं० श्यक्त्] त्यागनेवाला । जिसने त्याग किया हो ।

त्यक्ताग्नि—वि० [सं०] गृहाग्नि का परित्याग करनेवाला (ब्राह्मण) ।

त्यक्तात्मा—वि० [सं० श्यक्तात्मन्] निराश । हताश [को०] ।

त्यग्नाथि—संज्ञा पु० [सं० त्यग्नायिस्] एक प्रकार का साम ।

त्यजण(पु) —संज्ञा पु० [म० त्यजनीय] त्याग । उ०—शब्दं स्पर्शं रूपं त्यजणं । तयो रसगंधं नांही भजणं ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३७ ।

त्यजन—संज्ञा पु० [सं०] छोड़ने का काम । त्याग ।

त्यजनीय—वि० [सं०] जो त्यागने योग्य हो । त्याग्य ।

त्यक्तमान—वि० [सं०] जिसका त्याग कर दिया गया हो । जो छोड़ दिया गया हो ।

त्यातिक(पु) —अव्य० [?] तब तब (टीका०) । उ०—पग्यो न दिल प्रभुरै पद पंक्ज, भिसत न त्यातिक भेरे ।—रघु० क०, पृ० १८ ।

त्याँ(पु) —सर्व० [सं० तत्] दे० 'तिभ' । उ०—ज्या की जोड़ी बीछड़ी त्याँ निमि नींद न आई ।—ढोला०, दू० ५८ ।

त्याँहा(पु) —सर्व० [सं० तत्] 'तूँ' सर्वनाम के कर्मकारक का रूप । उ०—चकवीकह हर पलड़ी, रयणि न भेलउ त्याँह ।—ढोला०, दू० ७१ ।

त्या(पु) —प्रत्य० [सं० तत्] मे । उ०—किमे बिवाने कहता मेरा जावे तन तूँ सज त्या न्यारा ।—दक्खिनी०, पृ० ६६ ।

त्याग—संज्ञा पु० [सं०] १. किसी पदार्थ पर से अपना स्वत्व हटा देने अथवा उसे अपने पास से अलग करने की क्रिया । उत्सर्ग ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—त्यागपत्र ।

२. किसी बात को छोड़ने की क्रिया । जैसे असत्य का त्याग ।

३. संबंध या लगाव न रखने की क्रिया । ४. विरक्ति आदि के कारण सांसारिक विषयों और पदार्थों आदि को छोड़ने की क्रिया ।

विशेष—हिंदुओं के धर्मग्रंथों में इस प्रकार के त्याग का बहुत कुछ माहात्म्य बतलाया गया है । त्याग करनेवाला मनुष्य निष्काम होकर परोपकार के तथा अन्याय्य शुभ कर्म करता रहता है और विषय वासना या सुखोपभोग आदि से किसी प्रकार का संबंध नहीं रहता । ऐसा मनुष्य मुक्ति का अधिकारी समझा जाता है । गीता में त्याग को संन्यास की ही एक विशेष अवस्था माना है । उसके अनुसार काम्य धर्म का परित्याग तो संन्यास है और कर्मों के फल की प्राप्ति न रखना त्याग है । मनु के अनुसार संसार की और सब चीजें तो त्याग्य हो सकती हैं, पर माता, पिता, स्त्री और पुत्र त्याग्य नहीं हैं ।

५. दान । ४. कन्यादान (हि०) ।

त्यागना—क्रि० सं० [सं० त्याग] छोड़ना । तजना । पुष्ट करना । त्याग करना । उ०—नाँ त्यागलो काम नाँ त्यागलो कोष ।—प्राण०, पृ० १११ ।

संयो० क्रि०—देना ।

त्यागपत्र—संज्ञा पु० [सं०] १. वह पत्र जिसमें किसी प्रकार के त्याग का उल्लेख हो । २. हस्तीका । ३. तिलाकनामा ।

त्यागवान्—वि० [सं० त्यागवत्] [वि० स्त्री० त्यागवती] जिसने त्याग किया हो अथवा जिसमें त्याग करने की शक्ति हो । त्यागी ।

त्यागी—वि० [सं० त्यागिन्] जिसने सब कुछ त्याग दिया हो । स्वार्थ या सांसारिक सुख को छोड़नेवाला । विरक्त ।

त्यागक—वि० [सं०] तजनेवाला । त्यागी [को०] ।

त्याजन—संज्ञा पु० [सं०] त्याग । त्याग करना [को०] ।

त्याजना(पु) —क्रि० सं० [म० त्यजन] त्यागना । उ०—प्रति उमंग भ्रंग भ्रंग भरे रंग, सुकर मुकर निरखत नहिं त्याजे ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८० ।

त्याजित—वि० [सं०] १. जिससे त्याग कराया गया हो या छुड़ाया गया हो । २. जिसका अपमान कराया गया हो । ३. छोड़ा हुआ । त्यक्त [को०] ।

त्याज्य—वि० [सं०] त्यागने योग्य । जो छोड़ देने योग्य हो ।

त्यारी—वि० [हि०] दे० 'तैयार' । उ०—एक कटे एक पडे एक कटने को तयार । भड़े रहैं केते सुमन मीता तेरे द्वार ।—रसनिधि (शब्द०) ।

त्यारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तैयारी' । उ०—बाजराज बारण रथा, प्रवर, समाज समीप । हाजर तिखवारी हुआ, तयारी करे तमाम ।—रघु० क०, पृ० ६३ ।

त्यारे(पु) —सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारे' । उ०—विसीधा के बोलत बोलने रे, तयारे बिरन दस मास ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३३ ।

त्युँहिज—वि० [हि०] दे० 'त्यो'। उ०—करनहरी खेमकन, बाँध गढ़ बात न बोले। बले जगै केहरी, त्युँहिज बोले खग तोले।
—रा० क०, पृ० १५७।

त्युँ—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यो'।

त्युँरसी—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्योरस'।

त्योँ^१—क्रि० वि० [सं० तत् + एवम् या हि०] १. उस प्रकार। उस तरह। उस भाँति। उ०—ये अलि या बलि के अचरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी। ज्यों पदमाकर माधुरी त्यों कुच खोउन की चढ़ती उनई सी। ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े कछु ज्यों ही नितंब त्यों चातुरई सी। जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ि में किछिधौं कटि बीच ही लूटि लई सी।—पदमाकर (शब्द०)।
२. उसी समय। तत्काल। जैसे,—ज्यों में वही पहुँचा त्यों वह उठकर चल दिया।

विशेष—इसका व्यवहार 'ज्यों' के साथ संबंध पुरा करने के लिये होता है।

त्योँ^२—संज्ञा स्त्री० [म० तन] ओर। तरफ। उ०—सावर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं। पूछति ग्रामबधु सिय सों कही सावरे से सखि रावरे को हैं।—तुलसी (शब्द०)।

त्योरस^१—संज्ञा पु० [हि० (ति) + वरस] १. पिछना तीसरा वर्ष। वह वर्ष जिसे बीते दो बरस हो चुके हों। जैसे,—हम त्योरस वहाँ गए थे। २. आगामी तीसरा वर्ष। वह वर्ष जो दो वर्षों के बाद आनेवाला हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कभी कभी विशेषण के रूप में भी होता है। जैसे, त्योरस साल।

त्योरी—संज्ञा स्त्री० [हि० त्रिकुटी, सं० त्रिभूट (=चक्र)] अत्रलोकन। चित्रवन। दृष्टि। निगाह।

मुहा०—त्योरी चढ़ना या बदलना = दृष्टि का ऐसी अवस्था में हो जाना जिससे कुछ क्रोध भलके। अलि चढ़ना। त्योरी में बल पड़ना = त्योरी चढ़ना। त्योरी चढ़ाना या बदलना = झोंहें चढ़ाना। झोंलें चढ़ाना। दृष्टि वा आकृति से क्रोध के चिह्न प्रकट करना। त्योरी में बल डालना = त्योरी चढ़ाना।

त्योहार—संज्ञा पु० [सं० तिथि + वार] वह दिन जिसमें कोई बड़ा धार्मिक या आलीय उत्सव मनाया जाय। पर्व दिन। जैसे, हिंदुओं के त्योहार—वसहरा, दीवाली, होली आदि, मुसलमानों के त्योहार—इद, शब बरात आदि; ईसाइयों के त्योहार, बड़ा दिन, गुडफ्राइडे आदि।

मुहा०—त्योहार मनाना = पर्व या उत्सव के दिन आनंद प्रमोद करना।

त्योहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० त्योहार + ई० (प्रत्य०)] वह धन जो किसी त्योहार के उपसक्त में छोटी, लड़कों या नौकरों आदि को दिया जाता है।

त्योँ—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यो'।

त्योनार—संज्ञा पु० [हि०, (देश०)] १. ढंग। तर्ज। उ०—(क) प्राय है मनुहारि हित भारि अपूर बहार। लखि जोके नीके सुखव ये पीके त्योनार।—शुं० सत० (शब्द०)। (ब) रही

गुही बेनी लखे गुहिवे के त्योनार। लागे नीर चुबावने नोठि सुखाए बार।—बिहारी (शब्द०)। किसी कार्य को विशेष कुशलता के साथ करने की योग्यता।

त्यौर—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्योरी'। उ०—(क) चौसक ते पिय चित चढ़ी कहैं चढ़ी है त्यौर।—बिहारी (शब्द०)। (ख) तेहु तरेरो त्यौर करि कठ करियत दृग लोल। लीक नहीं यह पीक की स्मृति मणि अजर कसोल।—बिहारी (शब्द०)।

त्योराना—क्रि० प्र० [हि० तौर] माथा झुपना। सिर में झुककर आना।

त्योरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योरी'।

त्योरस—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्योरस'।

त्योहार—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्योहार'।

त्योहारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योहारी'।

त्रंग—संज्ञा पु० [सं० त्रङ्ग] एक प्राचीन नगर का नाम जो पहले राजा हरिश्चंद्र का राजनगर था।

त्रंबक^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्र्यंबक'। उ०—नयो सिर नाग सुमडिय जंग, घुरे घुर जोरय त्रंबक संग।—पृ० रा०, २४।२२८।

त्रंबकसखा^२—संज्ञा पु० [सं० त्र्यंबक + सखा] शिव के मित्र। कुबेर। उ०—गुह्यक पति त्रंबक सखा राजराज पुनि सोइ।—अनेकार्यं, पृ० २१।

त्रंबकी^३—संज्ञा स्त्री० [राज० त्रंबाल] छोटा नगाड़ा। उ०—उभय सहस बाजित। डोल त्रंबकी सुमत गुर।—पृ० रा०, २५।२२०।

त्रंबक^४—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्र्यंबक'। उ०—कलस बंक त्रंबक लोह संकर बर बंधो।—पृ० रा०, २६।४५।

त्रंबागल^५—संज्ञा पु० [राज० त्रंबाल] नगाड़ा। उ०—त्रंबागल रिणुर बिहरी बाजिया।—रघु० क०, पृ० ६३।

त्र^१—वि० [सं०] १. तीन। २. रक्षा करनेवाला। रक्षक (समासांत में प्रयुक्त)।

त्र^२—प्रत्य० एक प्रत्यय जो सप्तमी विभक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है।

त्रइय^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रयी'। उ०—चंद्र बह्य नख मंडि त्रइय सुनि अचननि मारहि।—पृ० रामो, पृ० ३६।

त्रई^४—वि० [हि०] दे० 'त्रय'। उ०—परत काल त्रई लोक में, अमर न दीपे कोय।—कबीर सा०, पृ० ६६२।

त्रकाल^५—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिकाल'। उ०—साही उर असुहावनी, राजावी रखवाल। जाँ जसरात्र प्रतिययो, ताँ सुर पूज त्रकाल।—रा० क०, पृ० १६।

त्रकुटाचल^६—संज्ञा पु० [सं० त्रिकूट + अचल] संकास्थित त्रिकूट पर्वत। उ०—धिर जोषाणो धेरियो फिर त्रकुटाचल कीस।—रा० क०, पृ० ५७।

त्रण^७—संज्ञा पु० [सं० त्रि] दे० 'तीन'। उ०—उदणो री पोसाक त्रण, जीवन मूली जाण।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० २२।

त्रदस(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिदश' । उ०—सत्रियाँ रा खटतीस कुल, त्रदस क्रोड़ तेतीस ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १०५ ।

त्रन(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृन' ।

मुहाना—त्रन तोरना = दे० 'तृण तोड़ना' ('तृण' में) । उ०—
तोरी त्रन तरुनिय कहत । चरनि सहो तुम भार ।—पृ०
रा०, १८।६४ ।

त्रपित(५)—वि० [हि०] दे० 'तृप्ति' । उ०—उमा त्रपित रुधिरं भई
धनि सूरन मुज दंब ।—पृ० रा०, २५ ७४४ ।

त्रपत्त(५)—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—तन ग्रीध महासद मन
त्रपत्त । पूरिया रहै नित सगतपन्न ।—रा० क०, पृ० ७४ ।

त्रपनाना(५)—वि० [सं० तर्पण] तर्पण । संध्या करनेवाले । उ०—
तो पंडित प्राये वेद भुलाये षटक रमाये त्रपनाये ।—सुंदर०
ग्रं०, भा० १, पृ० २३७ ।

त्रप्पवर(५)—वि० [सं० त्रपा] लज्जालु । लज्जाशील । उ०—कि करे
न तसकर त्रप्पवर प्रबुध इष्ट सत्ताहु सुमन ।—पृ० रा०,
१०।१३३ ।

त्रपा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० त्रपमान्] १. लज्जा । लाज । शर्म ।
हया । उ०—हो लज्जा ब्रीडा त्रपा सकुच न कर बिनु काज ।
पिय प्यारे पै चलिय बलि भोषध कान कि लाज ।—नंददास
(शब्द०) । २. छिनाल स्त्री । पुंश्चली ।

यौ०—त्रपारबा = १. छिनाल स्त्री । २. नेश्या । रंडी ।
३. कीर्ति । यश ।

त्रपा^२—वि० लज्जित । शर्मिदा । उ०—भवधनु दलि जानकी विवाहो
भये विहाल नृपाल त्रपा हैं ।—दुलसी (शब्द०) ।

त्रपानिरस्त—वि० [सं०] निर्लज्ज । घृष्ट (को०) ।

त्रपाहीन—वि० [सं०] निर्लज्ज । घृष्ट (को०) ।

त्रपारंढा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रपारण्डा] वेश्या । रंडी (को०) ।

त्रपित—वि० [सं०] १. लज्जित । शर्मिदा । २. लज्जालु । लज्जा-
शील (को०) । ३. विनोत । विनम्र (को०) ।

त्रपिष्ठ—वि० [सं०] प्रत्यंत दुःख । परितुष्ट (को०) ।

त्रपु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सीसा । २. रांगा ।

त्रपुककटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीरा । २. ककरी ।

त्रपुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी दलायची ।

त्रपुल—संज्ञा पुं० [सं०] रांगा ।

त्रपुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. रांगा । २. सीरा ।

त्रपुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ककड़ी । २. सीरा ।

त्रपुस—संज्ञा पुं० [सं०] १. रांगा । २. ककड़ी ।

त्रपुसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ककड़ी । २. सीरा । ३. बड़ा । इन्धायन ।

त्रप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमी हुई श्लेष्मा या कफ ।

त्रप्पय—संज्ञा पुं० [सं०] मट्टा (को०) ।

त्रषाट(५)—संज्ञा पुं० [हि०] नगारा । उ०—दलबल सज दुगम चक्रिय
सुत दशरथ तहक तबल घत रहत त्रषाट ।—रघु० क०,
पृ० ११६ ।

त्रभंगी(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभंगी' । उ०—त्रभंगी छंद पढ़
बु चंद गुन बहि बंद गुन सोई ।—पृ० रा०, २४ । २४८ ।

त्रभवण(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—भुवण तत्र
रहियो विले, त्रभवण हंदी राव ।—रा० क०, पृ० ३६१ ।

त्रभुयण(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—प्राजस तत्र
नित्र गरज अब, भज त्रभुयण भूपाल ।—बाँकी० ग्रं०, भा०
२, पृ० ४० ।

त्रमाला(५)—संज्ञा पुं० [हि० त्रंवागल] नगाड़ा । उ०—शिरण बलन,
रूप परमसंता प्रतिपाला । तूभ भुग! हरितगाँ तहक धार्ज
त्रमाला ।—रघु० क०, पृ० ४ ।

त्रय^१—वि० [सं०] १. तीन । उ०—महाधोर त्रय ताप न जरई ।—
तुलसी (शब्द०) । २. तीसरा ।

त्रय(५)^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—त्रय जोरै कर हस्त
को नील संभरि वै राइ ।—पृ० रा० २५ । ७३० ।

त्रयदेव(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिदेव' । उ०—अब मैं तुम से
कहों चिताई । त्रयदेवन की उत्पति भाई ।—कबीर सा०,
पृ० ८१७ ।

त्रयविसत—वि० [सं० त्रयोविंशति] तेईस । तेईसवाँ । उ०—अब
सुनि त्रयविसत प्रव्याह । द्विज अरु द्विजपतिनिन के भाई ।
—नंद० ग्रं०, पृ० ३०० ।

त्रयलोकी(५)—वि० [हि० त्रिलोकी] त्रिलोकपति । तीनों लोको का
स्वामी । उ०—रामचंद्र वर्णन करूँ, त्रयलोकी हैं नाथ ।—
कबीर सा०, पृ० ८१३ ।

त्रयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीन वस्तुओं का समूह । त्रिगु-
नीलट । जैसे, ब्रह्मा, विष्णु और महेश । उ०—(क) वे-
त्रयी घर राजसिरी परिपूरनता शुभ योगमई है ।—केशव
(शब्द०) । (ख) किधौ सिंगार सुखमा सुप्रेम मिले चल
जग चित वित लेन । प्रसूत त्रयो किधौ पठई है विधि भा-
लोगन सुख देन ।—तुलसी (शब्द०) २. सोमराजी मतः ।
३. दुर्गा । ४. वह स्त्री जिसका पति और बच्चे जीवित हों
(को०) । ५. बुद्धि । समझ (को०) ।

त्रयोतनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. शिव (को०) ।

त्रयोधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक धर्म, जैसे, ज्योतिष्टोम यज्ञ आदि ।

त्रयोमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. परमेश्वर ।

त्रयीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण ।

त्रयीविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयी + विद्या] ऋग्वेद, यजुर्वेद और
सामवेद ये तीन वेद । उ०—ऊपर की पंक्तियों में त्रयीविद्या
अथवा प्रथम तीन वेदों के दर्शन एवं कर्मकांड के सिद्धांतों
की संक्षिप्त विवेचना की गई ।—सं० दरिया, (धृ०) पृ० ५५ ।

त्रयोदश—वि० [सं०] १. तेरह । २. तेरहवाँ (को०) ।

त्रयोदशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि । तेरस ।

विशेष—पुराणानुसार यह तिथि धार्मिक कार्य करने के लिये
बहुत उपयुक्त है ।

त्रयाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पंद्रहवें क्षपरे के एक व्यास का नाम ।

त्रयारुणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो भागवत के अनुसार लोमहर्षण ऋषि के शिष्य थे ।

त्रयैव—वि० [सं० तृषि] तृषायुक्त । व्यासा ।

त्रष्टा—संज्ञा पुं० [?] दे० 'तष्टा' (तपतरी) । उ०—त्रष्टा ग्रह आधार भर्त के बहुत खिलौना । परिषा टप्पी अंतरदान रूप के सीना ।—सुदन (शब्द०) ।

त्रस^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैन मत के अनुसार एक प्रकार के जीव । इन जीवों के चार प्रकार हैं—(क) द्वीन्द्रिय अर्थात् दो इंद्रियोंवाले जीव । (ख) त्रीन्द्रिय अर्थात् तीन इंद्रियोंवाले जीव । (ग) चतुर्द्रिय अर्थात् चार इंद्रियोंवाले जीव और (घ) पंचेन्द्रिय अर्थात् पाँच इंद्रियोंवाले जीव । २. जंगल । वन । ३. जंगम । ४. त्रसरेणु ।

त्रस^२—वि० सञ्चल । जंगम [को०] ।

त्रसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भय । डर । २. उद्देग ।

त्रसना^१—क्रि० प्र० [सं० त्रसन] भय से काँप उठना । डरना । लौक खाना । उ०—(क) कछु राजन सूरज भरा खरे । अनु लक्ष्मण के अनुराग भरे । चित्तवत् चित्त कुमुदिनी त्रसे । चोर चकोर चिता सो लसे ।—केशव (शब्द०) । (ख) नवल धनंगा होय सो मुख केशवदास । खेलें बोलें बाल विधि हँसे त्रसे सविधास ।—केशव (शब्द०) ।

त्रसर—संज्ञा पुं० [सं०] जोलाहों की डरकी । तसर ।

त्रसरेणु^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह चमकता हुआ कण जो छेद में से आती हुई धूप में नाचता या घूमता दिखाई देता है । सूक्ष्म कण ।

विशेष—मनु के अनुसार एक त्रसरेणु तीन परमाणुओं से मिलकर और वैश्व के अनुसार तीस परमाणुओं से मिलकर बना होता है ।

त्रसरेणु^२—संज्ञा स्त्री० पुराणानुसार सूर्य की एक स्त्री का नाम ।

त्रसरैनि^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रसरेणु' । उ०—चंद चकोर की बाह करे, वनप्रानंद स्वाति पपीहा की धावे । त्रसरैनि के ऐन बसे रवि, मीन पे दीन हूँ सागर भावे ।—घनानंद, पृ० ६५ ।

त्रसना^२—क्रि० प्र० [हि० त्रसना] डरवाना । डराना । भय दिखाना । उ०—(क) सूर श्याम बाये उलल गहि माना डरत न अति हि त्रसायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) आको शिव ध्यावत निसि बासर सहसासन जोहि गाये हो । सो हरि राधा बदन चंद को नैन चकोर त्रसाये हो ।—सूर (शब्द०) ।

त्रसित^१—वि० [सं० त्रस्त] १. भयभीत । डरा हुआ । उ०—सब प्रसंग महिसुरन सुनाई । त्रसित पर्यो अकनी भकुलाई ।—(शब्द०) । २. पीड़ित । सताया हुआ । उ०—सीत त्रसित कहैं धनि समाना । रोग त्रसित कहैं प्रोषधि जाना ।—बोपाळ (शब्द०) ।

त्रसितो^१—क्रि० प्र० [हि० त्रसना] भय खाना । डरना । उ०—त्रसितो सदाई नटनागर गुरु जन ते ।—नट०, पृ० ५८ ।

त्रसीग^१—वि० [सं० त्रासक ?] जबरदस्त । उ०—राजा सिंहल दीपरे तोम्र दीध त्रसीग ।—बांकी० प्र०, भा० ३, पृ० ७२ ।

त्रसुर—वि० [सं०] भीरु । डरपोक ।

त्रस्त—वि० [सं०] १. भयभीत । डरा हुआ । उ०—एक बार मुनिवर कोशिक के तप में सुरपति प्रस्त हुआ ।—शकुं०, पृ० २ । २. पीड़ित । दुःखित । जिसे कष्ट पहुँचा हो । ३. चकित । जिसे आश्चर्य हुआ हो ।

त्रस्तु—वि० [सं०] दे० 'त्रसुर' [को०] ।

त्रहकृत्ना^१—क्रि० प्र० [सं० त्राहि] त्राहि त्राहि करना । त्रस्त होना । उ०—लरे यो बुद्धिद भभग युवान । जसवत जोरं त्रहकृति घोरं ।—पृ० रा०, भा० २० ।

त्राटक^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताटक' । उ०—त्राटकन की रूपमा इतनी । जु कही कवि चंद सुरग घरी ।—पृ० रा०, २१७६ ।

त्राटक—संज्ञा पुं० [सं०] योग के षट्कर्मों में से छठा कर्म या साधन । इसमें प्रतिमेय रूप में किसी विदु पर दृष्टि रखते हैं ।

त्राटिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं० त्राटक] यागयोग की एक क्रिया । उ०—रद भगनि का त्राटिका न म ।—गोरख०, पृ० २४६ ।

त्राय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षा । बचाव । हिफाजत । २. रक्षा का साधन । कवच ।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार योगिक शब्दों के अंत में होता है । जैसे, पादत्राय, अंगत्राय ।

३. त्रायमाण लता ।

त्राय^२—वि० जिसकी रक्षा को गई हो । रक्षित [को०] ।

त्रायक—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक ।

त्रायकर्ता—वि० पुं० [सं० त्रायकर्तृ] रक्षा करनेवाला । रक्षक [को०] ।

त्रायकारी—वि० [सं० त्रायकारिन्] रक्षा करनेवाला । रक्षक [को०] ।

त्रायदाता—संज्ञा पुं० [सं० त्राय + दातृ] त्राय देनेवाला । रक्षा करनेवाला । त्रायक । त्राता । उ०—दयाशील त्रायदाता के मिलने से ।—प्रमथन०, भा० २, पृ० ३६७ ।

त्राया—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाण लता ।

त्रात—वि० [सं०] बचाया हुआ । रक्षित [को०] ।

त्रातव्य—वि० [सं०] रक्षा करने के योग्य । बचाने के लायक ।

त्राता—संज्ञा पुं० [सं० त्रातृ] रक्षक । बचानेवाला । उ०—तप बल रचै प्रपच बिभ्रजा । तप बल विष्णु सकल बगत्राता ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रातार—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक । उ०—मोक्षप्रदा प्रथममय मथुरा मम त्रातार ।—गोपाल (शब्द०) ।

विशेष—संस्कृत में यह त्रातृ (त्राता) शब्द का बहुवचन रूप है ।

त्रायुष^१—संज्ञा पुं० [सं०] राँगे का बना हुआ वस्त्र या और कोई पराध ।

प्रापुष^२—वि० रांगे का बना हुआ [को०] ।

प्रायंती—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रायन्ती] प्रायमाण लता

प्रायन^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'प्राण' । उ०—ताड़न छेदन प्रायन खेवन बहु विधि कर ले उपाई ।—दे० बानी, पृ० १६ ।

प्रायमाण^१—संज्ञा पुं० [सं०] बनफण की तरह की एक प्रकार की लता जो जमीन पर फैलती है ।

विशेष—इसमें बीज बीज में छोटी छोटी डंडियाँ निकलती हैं जिनमें कसैले बीज होते हैं । इन बीजों का व्यवहार औषध में होता है । वैद्यक में इन बीजों को शीतल, दस्तावर और त्रिदोषनाशक माना है ।

पर्या०—अनुजा । अरुणी । गिरिजा । देवबाला । बलभद्रा । पालिनी । भयनाशिनी । रक्षिणी ।

प्रायमाण^२—वि० रक्षक । रक्षा करनेवाला ।

प्रायमाणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रायमाण लता ।

प्रायमाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रायमाण' ।

प्रायवृत्त—संज्ञा पुं० [सं० प्रायवृत्त] गंडीर या गुंडिरी नामक साग ।

प्रास—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डर । भय । उ०—जम की सब प्रास बिनास करो मुख ते निज नाम उचारन में ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २८२ । २. तकलीफ । ३. मणि का एक दोष ।

प्रासक—संज्ञा पुं० १. डरानेवाला । भयभीत करनेवाला । २. निवारक । दूर करनेवाला । उ०—त्रिविध ताप प्रासक तिमृहानी । राम सरूप सिधु समुहानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

प्रासकर—संज्ञा पुं० [सं०] भयोत्पादक । प्रासक [को०] ।

प्रासद—वि० [सं०] प्रासकर । दुःखद । उ०—नाटकों में प्रासद (दुःखांत = ट्रेजेडी) और हासद (सुखांत) का भेद किया जाता है ।—स० शास्त्र, पृ० १२६ ।

प्रासदायी—वि० [सं० प्रासदायिन्] भयोत्पादक । डरानेवाला [को०] ।

प्रासदी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रासद + हि० ई (प्रत्यय०)] दुःख से पूर्ण रचना विशेषतः नाटक जो दुःखांत हो ।

प्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रासनीय] १. डराने का कार्य । २. डरानेवाला । भय दिखानेवाला ।

प्रासना—क्रि० स० [सं० प्रासन] डराना । भय दिखाना । प्रास देना । उ०—काहे को कलह नाध्यो बाकण दबिरि बाध्यो कटिन लकुट सं प्रास्यो मेरो भैया ?—सूर (शब्द०) ।

प्रासमान—वि० [सं० प्रास + मान्] प्रसन्न । मीठ । उ०—जोगी जती भाव जो कोई । सुनतहि प्रासमान भा सोई ।—जायसी प्र०, पृ० ११५ ।

प्रासा^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'प्रासा' । उ०—कहा पाणी खंन पिउ प्रासा घणा सहोस ।—ढोला०, पृ० ४२६ ।

प्रासिका—वि० [सं० प्रासक] प्रास देनेवाली । दुःखद । उ०—दिवंत जाति प्रासिका । सु गति कीर प्रासिका ।—पृ० रा०, २५ । १४४ ।

प्रासित—वि० [सं०] १. भयभीत । डराया हुआ । २. जिसे कष्ट पहुँचाया गया हो । चरित ।

प्रासिनी^७—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रासिन्] डरानेवाली । भयदायिनी । उ०—दुर्मंद दुरंत घमं दसुधों की प्रासिनी निकल, चली जा तू प्रतारण के कर से ।—लहर, पृ० ५८ ।

प्रासी—वि० [सं० प्रासिन्] डरानेवाला । प्रासक [को०] ।

प्राहि—अव्य० [सं०] बचाओ । रक्षा करो । प्राण हो । उ०—दाखण तप जब कियो राजसुत तब कियो सुरलोक । प्राहि प्राहि हरि सों सब भाष्यो दूर करो सब शोक ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—प्राहि प्राहि करना = दया या प्रभयदान के लिये गिड़-गिड़ाना । दया या रक्षा के लिये प्रार्थना करना । प्राहि मचना = रक्षा के लिये चीख पुकार होना । विपत्ति में पड़े हुए लोगों के मुँह से प्राहि प्राहि की पुकार मचना । प्राहि प्राहि होना = दे० 'प्राहि प्राहि मचना' ।

त्रिषक^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्र्यंशक' । उ०—त्रिनयन, त्रिषक, त्रिपुर अरि ईस, उमाराति होई ।—नंद० प्र०, पृ० ६२ ।

त्रिंश—वि० [सं०] तीसवाँ ।

त्रिंशत्—वि० [सं०] तीस ।

त्रिंशत्पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कोई का फूल । कुमुदिनी ।

त्रिंशांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ का तीसवाँ भाग । किसी चीज के तीस भागों में से एक भाग । २. एक राशि का तीसवाँ भाग (या डिग्री) जिसका विचार फलित ज्योतिष में किसी बालक का जन्मफल निकालने के लिये होता है ।

विशेष—फलित ज्योतिष में मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और कुंभ ये छह राशियाँ विषम और वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये छह राशियाँ सम मानी जाती हैं । त्रिंशांश का विचार करने में प्रत्येक विषम राशि के ५, ५, ८, ७ और ५ त्रिंशांशों के क्रमशः मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध और शुक्र अधिपति या स्वामी माने जाते हैं और सम ५, ७, ८, ५, और ५ त्रिंशांशों के स्वामी ये ही पाँचों ग्रह विपरीत क्रम से—अर्थात् शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि और मंगल माने जाते हैं । अर्थात्—प्रत्येक विषम राशि के

१ से ५ त्रिंशांश तक के अधिपति	—मंगल
६ " १० " " "	—शनि
११ " १८ " " "	—बृहस्पति
१९ " २५ " " "	—बुध
२६ " ३० " " "	—शुक्र

माने जाते हैं । पर सम राशियों में त्रिंशांशों और ग्रहों के क्रम उलट जाते हैं और प्रत्येक राशि के

१ " ५ त्रिंशांश तक के अधिपति	—शुक्र
६ " १२ " " "	—बुध
१३ " २० " " "	—बृहस्पति
२१ " २५ " " "	—शनि
२६ " ३० " " "	—मंगल

माने जाते हैं । प्रत्येक ग्रह के त्रिंशांश में जन्म का प्रसंग प्रसंग फल माना जाता है । जैसे—मंगल के त्रिंशांश में जन्म

होने का फल स्त्रीविजयी, धनहीन, क्रीवी और अधिमानी प्रादि होना और बुध के त्रिशांश में जन्म होने का फल बहुत धनवान् और सुखी होना माना जाता है।

त्रि^१—वि० [सं०] तीन।

विशेष—इसका व्यवहार योगिक शब्दों में, प्रारंभ में, होता है। जैसे, त्रिकाल, त्रिकुट, त्रिकला प्रादि।

त्रि०^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिय'। उ०—राजमती तुं भोवकुमार तो सग त्रि नहीं इणोई संसार।—बी० रासो, पृ० ४६।

त्रिषष्टिरी०—संज्ञा स्त्री० [त्रिषष्टर] श्रोम्। गोरख संप्रदाय का मंत्र विशेष। उ०—त्रिषष्टिरी त्रिकोटी जपीला ब्रह्मकुंड निजधानं। गोरख०, पृ० १०२।

त्रिकंट—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकण्ट] दे० 'त्रिकंटक'।

त्रिकंटक^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकण्टक] १. गोखरू। २. त्रिगूल। ३. तिषारा धूहर। ४. जवासा। ५. टेंगरा मछली।

त्रिकंटक^२—वि० जिसमें तीन कंठ या नोकें हों।

त्रिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन का समुह। जैसे, त्रिकमय, त्रिकला, त्रिकुटा और त्रिभेद। २. रीढ़ के नीचे का भाग जहाँ कूट के की हड्डियाँ मिलती हैं। ३. कमर। ४. त्रिकला। ५. त्रिमद। ६. त्रिरमुहानी। ७. तीन रूप सैकड़े का सूद या लाभ प्रादि (मनु)।

त्रिक^२—वि० १. तेहरा। तिगुना। त्रिविध। २. तीन का रूप लेने वाला। तीन के समूह में आनेवाला। ३. तीन प्रतिशत। ४. तीसरी बार होनेवाला (को०)।

त्रिककुट^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिकूट पर्वत। २. विष्णु। (विष्णु ने एक बार बाराह का अवतार धारण किया था, इसी से उनका यह नाम पड़ा)। ३. दस दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

त्रिककुट^२—वि० जिसे तीन शृंग हों।

त्रिककुम्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. उदान वायु जिससे डकार और छींक आती है। २. नौ दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

त्रिकट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिकंट'।

त्रिकटु—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, मिर्च और पीपल ये तीन कटु वस्तुएँ।

विशेष—वैद्यक में इन तीनों के समूह को दीपन तथा सौम्य, सौल, कफ, मेह, मेद, श्लीष और पीनस प्रादि का नाशक माना है।

त्रिकटुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकटु'।

त्रिकत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकला, त्रिकुटा और त्रिभेद। अर्थात् हड, बड़ेडा और अखिला; सोंठ, मिर्च और पीपल तथा मोथा, चीता और बायबिडंग इन सब का समूह।

त्रिकर्मा—वि० [सं० त्रिकर्मन्] वह जो पढ़े, पढ़ाए, यज्ञ करे और दान दे। द्विज।

त्रिकला^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन मात्राओं का शब्द। प्लुत। २.

दोहे का एक भेद जिसमें १ गुरु और ३० लघु धसर होते हैं। जैसे,—अति अघात जो सरितवर, जो रुप सेतु कराहि। अदि पिपीलिका परम लघु, बिन श्रम पारहि जाहि।—तुलसी (शब्द०)।

त्रिकल^२—वि० जिसमें तीन कलाएँ हों।

त्रिकलिंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकलिङ्ग] दे० 'तैलंग'।

त्रिकशूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वातरोग जिसमें कमर की तीनों हड्डियों, पीठ की तीनों हड्डियों और रीढ़ में पीड़ा उत्पन्न हो जाती है।

त्रिकस्थान—पुं० [सं० त्रिक + स्थान] दे० 'त्रिक'। उ०—वायु गुदा में स्थित होने से त्रिकस्थान, हृदय, पीठ इनमें पीड़ा होती है।—माधव०, पृ० १३४।

त्रिकांड^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकाण्ड] १. प्रमरकोष का दूसरा नाम। (प्रमरकोष में तीन कांड हैं, इसी से उसका यह नाम पड़ा)। २. निरुक्त का दूसरा नाम। (निरुक्त में भी तीन कांड हैं, इसी से उसका यह नाम पड़ा)।

त्रिकांड^२—वि० जिसमें तीन कांड हों।

त्रिकांडो^१—वि० [सं० त्रिकाण्डो] जिसमें तीन कांड हों। तीन कांडोंवाला।

त्रिकांडो^२—संज्ञा स्त्री० जिस ग्रंथ में कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का वर्णन हो अर्थात् वेद।

त्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुएं पर का वह चौलटा जिसमें गराड़ी लगी होती है। २. कुएं का ढक्कन (को०)।

त्रिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

त्रिकार्धिक—संज्ञा पुं० [सं०] मोंठ, अतीस और मोथा इन तीनों का समूह।

त्रिकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीनों समय—भूत, वर्तमान और भविष्य। २. तीनों समय—प्रातः, मध्याह्न और सायं।

त्रिकालज्ञ^१—संज्ञा पुं० [सं०] भूत, वर्तमान और भविष्य का जाननेवाला व्यक्ति। सर्वज्ञ।

त्रिकालज्ञ^२—वि० तीनों कालों की बातों को जाननेवाला। उ०—त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारे।—मानस, १। ६६।

त्रिकालज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों की बातें जानने की शक्ति या भाव।

त्रिकालदर्शी^१—वि० [हि०] दे० 'त्रिकालदर्शी'। उ०—तुम्ह त्रिकालदर्शी मुनिमाया। विश्व बदर जमि तुम्हरे हाया।—मानस, २। १२५।

त्रिकालदर्शक^१—वि० [सं०] तीनों कालों को जाननेवाला। त्रिकालज्ञ।

त्रिकालदर्शक^२—संज्ञा पुं० ऋषि।

त्रिकालदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों की बातों को जानने की शक्ति या भाव। त्रिकालज्ञता।

त्रिकालदर्शी^२—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकालदर्शिन] तीनों कालों की बातों को देखनेवाला या जाननेवाला व्यक्ति। त्रिकालज्ञ।

त्रिकालदर्शी^२—वि० तीनों कालों को बातों की जाननेवाला ।
त्रिकालज्ञ [को०] ।

त्रिकुट—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिकूट' ।

त्रिकुटा^१—संज्ञा पु० [सं० त्रिकुट] सोंठ, मिर्च और पीपल इन तीनों वस्तुओं का समूह ।

त्रिकुटा^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—त्रिकुटा ध्यान तीन गुन त्यागै ।—प्राण०, पृ० २ ।

त्रिकुटाप्रचल^३—संज्ञा पु० [सं० त्रिकूट + प्रचल] त्रिकूट पर्वत ।
उ०—संपातरा सुगु वयण सारा गहूर नद गाजे । चित्त चाव त्रिकुटा प्रचल चढ़िया, कूदवा काजे ।—रघु० ६०, पृ० १६२ ।

त्रिकूटिनी—वि० स्त्री० [सं० त्रिकूट] तीन कूट या चोटीवाली ।
उ०—यंत्रों मंत्रों तंत्रों की बी वह त्रिकूटिनी माया सी ।—साकेत, पृ० ३८८ ।

त्रिकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकूट] त्रिकूट चक्र का स्थान । दोनों भोंहों के बीच के कुछ ऊपर का स्थान । उ०—पूरन कुंमक रेचक करहू । उनट ध्यान त्रिकुटी को धरहू ।—विश्राम- (शब्द०) ।

त्रिकुल—संज्ञा पु० [सं०] पितृकुल, मातृकुल और स्वसुरकुल ।

त्रिकूट—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन शृंगोंवाला पर्वत । वह पर्वत जिसकी तीन चोटियाँ हों । २. वह पर्वत जिसपर लंका बसी हुई मानी जाती है । देवीभागवत के अनुसार यह एक पीठस्थान है और यहाँ कपसुन्दरी के रूप में भगवती निवास करती हैं । उ०—गिरि त्रिकूट एक सिंधु मंझारी । विधि निमित्त दुर्गंग प्रति भारी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. सेंधा नमक । ४. एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता है ।

विशेष - वामन पुराण के अनुसार यह क्षीरोद समुद्र में है । यहाँ देवर्षि रहते हैं और विद्याधर, किन्नर तथा गंधर्व आदि क्रीड़ा करने आते हैं । इसकी तीन चोटियाँ हैं । एक चोटी सोने की है जहाँ सूर्य आश्रय लेते हैं और दूसरी चोटी चाँदी की जिसपर चंद्रमा आश्रय लेते हैं । तीसरी चोटी बरक से ढकी रहती है और पैदूर, इंद्रील आदि मणियों की प्रभा से चमकती रहती है । यही उसकी सबसे ऊँची चोटी है । नास्तिकों और पापियों को यह नहीं दिखलाई देता ।

त्रिकूटलवण—संज्ञा पु० [सं०] गन्धर्वी नमक [को०] ।

त्रिकूटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तान्त्रिकों की एक नैरवी ।

त्रिकूर्चक—संज्ञा पु० [सं०] सुभूत के अनुसार फोड़े आदि चीरने का एक शस्त्र जिसका आबहार बालक, बूढ़, और, राजा आदि की प्रत्यक्षकिरसा के लिये होना चाहिए ।

त्रिकोटी^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—त्रिपाविरी त्रिकोटी जपीजा ब्रह्मकुंड निज धनि ।—गोरख०, पृ० १०२ ।

त्रिकोण—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन कोने का क्षेत्र । त्रिभुज का क्षेत्र । जैसे, \triangle \triangleright । २. तीन कोनेवाली कोई वस्तु । ३. तीन कोटियोंवाली कोई वस्तु । ४. योनि । भग । ५. कामरूप के अंतर्गत एक तीर्थ जो सिद्धपीठ माना जाता है । ६. जन्मकुंडली में लग्नस्थान से पश्चिमी और नवी स्थान ।

त्रिकोणक—संज्ञा पु० [सं०] तीन कोण का पिंड । त्रिकोना पिंड ।

त्रिकोणघंटा—संज्ञा पु० [सं० त्रिकोण घंटा] लोहे की मोटी सलाख का बना हुआ एक प्रकार का त्रिकोना बाजा जिसपर छोहे के एक दूसरे टुकड़े से आघात करके ताल देते हैं । इसका आकार ऐसा है—)

त्रिकोणफल—संज्ञा पु० [सं०] सिंघाड़ा । पानीफल ।

त्रिकोणभजन—संज्ञा पु० [सं०] जन्मकुंडली में लग्न से पश्चिमी और नवी स्थान । दे० 'त्रिकोण' ।

त्रिकोणमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित शास्त्र का वह विभाग जिसमें त्रिभुज के कोण, बाहु, वर्ग, विस्तार आदि की नाप निकालने की रीति तथा उनसे संबंध रखनेवाले अन्य अनेक सिद्धांत स्थिर किए जाते हैं ।

विशेष—आजकल इसके अंतर्गत त्रिभुज के अतिरिक्त चतुर्भुज और बहुभुज के कोण नापने की रीतियाँ तथा बीजगणित संबंधी बहुत सी बातें भी आ गई हैं ।

त्रिचार—संज्ञा पु० [सं०] जवाहार, सज्जी और सुहागा इन तीनों सारों का समूह ।

त्रिचुर—संज्ञा पु० [सं०] ताल मखाना ।

त्रिख—संज्ञा पु० [सं०] खीरा ।

त्रिखा^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' ।

त्रिखित^६—वि० [हि०] दे० 'तृषित' । उ०—त्रिखित लोचन जुगल पान हित अप्रतवपु विमल वृंहाविपिन भूमिचारी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४ ।

त्रिगंग—संज्ञा पु० [सं० त्रिगङ्गा] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

त्रिगंधक—संज्ञा पु० [सं० त्रिगन्धक] दे० 'त्रिजातक' ।

त्रिगंभीर—संज्ञा पु० [सं० त्रिगम्भीर] वह जिसका सत्त्व [आचरण], स्वर और नाभि गंभीर हो । लोगों का विश्वास है कि ऐसा पुरुष सदा सुखी रहता है ।

त्रिगढ़^७—संज्ञा पु० [सं० त्रि + गढ़] बहाड़ । सहनार । उ०—कूढ़ धरु कपट को भपट कूँ छाँड़ि दे त्रिगढ़ सिर बाय धनहृद तूरा ।—राम० चम०, पृ० १३७ ।

त्रिगण—संज्ञा पु० [सं०] 'त्रिगर्ग' ।

त्रिगर्त—संज्ञा पु० [सं०] उत्तर भारत के उस प्रांत का प्राचीन नाम जिसमें आजकल पंजाब के जालंधर और कांगड़ा आदि नगर हैं । २. इस देश का निवासी ।

त्रिगर्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिनाल स्त्री । पुंश्चली । वह स्त्री जिसे पुरुषप्रसंग की इच्छा हो ।

त्रिगर्तिक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिगर्त' ।

त्रिगामी^८—वि० [सं० त्रि + गामिन्] तीन लोकों में बढ़नेवाली । त्रिपथगा । उ०—त्रिपथी त्रिगामी विराजंत रंगा । महा सग लोक नरं नारि रंगा ।—पृ० रा०, १ । १६२ ।

त्रिगुण^१—संज्ञा पु० [सं०] सत्त्व, रज, और तम इन तीनों गुणों

का समूह। तीन मुख्य प्रकृतियों का समूह। दे० 'गुण'।
उ०—त्रिगुण धर्तीत जैसे, प्रतिबिम्ब मिटि जात।—संत-
बाणी०, पृ० ११५।

त्रिगुण^२—वि० [सं०] १. तीन गुना। त्रिगुना। २. तीन भागोंवाला।
जिसमें तीन भाग हों (को०)। ३. सत, रज, तम इन तीन
गुणोंवाला (को०)।

त्रिगुण^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. माया। तंत्र में एक
प्रसिद्ध बीज।

त्रिगुणात्परा—वि० [सं० त्रिगुणात् + परा] त्रिगुणों से परा।
उ०—इस अग्निदेवता का निवास है त्रिगुणमयी यह निखिल
सृष्टि। पर प्रथम चरम आलोकधाम त्रिनयन की त्रिगुणात्परा
सृष्टि।—अग्नि०, पृ० ४०।

त्रिगुणात्मक—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० त्रिगुणात्मिका] तीनों गुणयुक्त।
जिसमें तीनों गुण हों। उ०—नारी के नयन। त्रिगुणात्मक
ये सन्निपात किसको प्रमत्त नहीं करते।—सहर, पृ० ७१।

त्रिगुणित—वि० [सं०] तीन गुना किया हुआ। त्रिगुना किया
हुआ (को०)।

त्रिगुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेल का पेड़।

विशेष—बेल के पत्ते तीन तीन एक साथ होते हैं इसी से इसका
यह नाम पड़ा।

त्रिगुण^५—वि० [सं० त्रिगुण] सत, रज, तम इन तीन गुणोंवाला।
उ०—कह्यो पूरन ब्रह्म ध्यावो त्रिगुन मिथ्या भेष।—पोद्दार
समि० ग्रं०, पृ० ३१८।

त्रिगूढ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगूढ] स्त्रियों के वेष में पुरुषों का नृत्य।

त्रिगूढक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगूढक] दे० 'त्रिगूढ'।

त्रिगुण^५—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + गुण] तीन का समुदाय। उ०—
बहु विवेक कल मान ताल मंडे त्रिगुन सूर।—पृ० रा०,
२५। १५७।

त्रिघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिघंटा] एक कल्पित नगर जो हिमालय
की जोड़ी पर अवस्थित माना जाता है। कहते हैं, यह
विद्याधर प्रादि रहते हैं।

त्रिघट—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + घट] स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप तीन
शरीर। उ०—धुंगनि धुंगनि धुंगनि धुंगा त्रिघट उघटितत
सुरिय उतंगा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ८३४।

त्रिघाई^५—क्रि० वि० [देश०] त्रिराप्ति। बार बार। उ०—नचे
नह नंदो त्रिघाई त्रिघावे।—पृ० रा०, २५। २३४।

त्रिघाना^५—क्रि० प्र० [सं० तृप्त] तृप्त होना। संतुष्ट होना। उ०—
नचै कर बेताल त्रिघाई। नारद नह करै किसकाई।—
पृ० रा०, १६। २। ४।

त्रिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनिकुमारों का रथ।

त्रिचक्र—संज्ञा पुं० [सं० त्रिचक्र] महादेव।

त्रिचित्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बाहुपत्याग्नि।

त्रिजग^५—संज्ञा पुं० [सं० त्रियंक्] आकाश चलनेवाले चंतु। पशु
तथा कीड़े मकोड़े। त्रियंक्। उ०—(क) त्रिजग देव नर जो

तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसर के।—नुवसी (शब्द०)।
(ख) यहि विधि जो बराबर जेने। त्रिजग देव नर असुर
समेते। अखिल विश्व यह मम उपजाया। सब पर मोरि
बराबर दया।—नुवसी (शब्द०)।

त्रिजग^२—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] तीनो लोक—स्वर्ग, पृथ्वी और
पाताल। उ०—किहि विधि त्रिपथगामिनि त्रिजग पावनि
प्रसिद्ध भई भले।—पद्माकर (शब्द०)।

त्रिजगत्—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] आकाश, पाताल और पृथ्वी ये
तीनों लोक (को०)।

त्रिजगतो—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश, पाताल और पृथ्वी ये तीनों
लोक (को०)।

त्रिजट—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २. एक ब्राह्मण का
नाम जिसको बनयात्रा के समय रामचंद्र जी ने बहुत सी गाएँ
बान दी थीं।

त्रिजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. त्रिमीषण की बहुत जो प्रणोक-
वाटिका में जानकी जी के पास रहा करती थी। २. बेल
का पेड़।

त्रिजटी^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजटित् या त्रिजट] महादेव। शिव।

त्रिजटी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिजटा'।

त्रिजङ्ग—संज्ञा पुं० [हि०] १. कटारी। २. तलवार।

त्रिजमा^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रियामा'। उ०—तैही त्रिजमा
राय सरेखा। पहिली रात कि मूरत देखा।—इंद्रा०, पृ० १०।

त्रिजात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिजातक'।

त्रिजातक—संज्ञा पुं० [सं०] इलायची (फल), दारचीनी
(छाल) और नेपत्ता (पत्ता) इन तीन प्रकार के
पदार्थों का समूह जिसे त्रिसुगंधि भी कहते हैं। यदि इसमें
नागकेसर भी मिला दिया जाय तो इसे चतुर्जातक कहेंगे।

विशेष—वेद्यक में इसे रेचक, कृष्ण, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मुँह
की दुर्गंध दूर करनेवाला, हलका, पित्तवर्धक, दीपक तथा
वायु और विषनाशक माना है।

त्रिजामा^५—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रियामा] रात्रि। रजनी। उ०—
(क) युग बारि भए सब रैनियाम। घति दुसहु बिधा तनु
करी काम। यदि ते दयाइ मानी विरंचि। सब रैन त्रियामा
कीन्ह सचि।—गुमान (शब्द०)। (ख) छनदा छपा
तमनिनी तभी तमिया होय। निशित्री सदा विभावरी रात्रि
त्रियामा सोय।—नंददाम (शब्द०)।

त्रिजीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन राशियों प्रयात् ६० ग्रंथों तक
फैले हुए चाप की ज्या।

त्रिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वृत्त के केंद्र से परिधि तक खिंची
हुई रेखा। व्यास की आधी रेखा।

त्रिकुना^५—क्रि० प्र० [अनु० तड़कना; राज० तड़कणो; हिं०
तड़कना] दे० 'तड़कना'। उ०—जिणि दीहे तिल्ली त्रिकुना,

हिरणी भासइ गाम । तहि दिहारी गोरड़ी, पड़तउ भासइ
ग्राम ।—डोलो०, पू० २८२ ।

त्रिणु—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'तृण' । उ०—मीठ सहस्मा मत्थयो
सकल गियो त्रिणमत्त ।—रा० ६०, पू० ११५ ।

त्रिणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष ।

त्रिणव—पुं० [सं०] साम गान की एक प्रणाली जिसमें एक विशेष
प्रकार से उसकी (३×६) सत्ताईस धातुतियाँ करते हैं ।

त्रिणाधिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. यजुर्वेद के एक विशेष भाग का
नाम । २. उस भाग के अनुयायी । ३. नारायण । ४. अग्नि
(की०) ।

त्रिणीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी ।

विशेष—यह माना जाता है कि पुरुष पति प्राप्त करने के पूर्व
कन्या का संबंध सोम, गंधर्व और अग्नि से होता है ।

त्रितंत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रितन्त्रिका] ३० 'त्रितंत्री' (की०) ।

त्रितंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रितन्त्रिका] कच्छपी वीणा की तरह की
प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा जिसमें तीन तार लगे
होते थे ।

त्रित—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जो ब्रह्मा के मानस-
पुत्र माने जाते हैं । २. गौतम मुनि के तीन पुत्रों में से एक
जो अपने दोनों भाइयों से अधिक तेजस्वी और विद्वान् थे ।

विशेष—एक बार ये अपने भाइयों के साथ पशुसंघट्ट करने के
लिये जंगल में गए थे । वहाँ दोनों भाइयों ने इनके संघट्ट किए
हुए पशु छीनकर और इन्हें झकैला छोड़कर घर का रास्ता
लिया । वहाँ एक भेड़िए को देखकर ये डर के मारे दौड़ते
हुए एक गहरे झंड़े कुएँ में जा गिरे । वहाँ इन्होंने सोमयाग
प्रारंभ किया जिसमें देवता लोग भी भा पहुँचे । उन्हीं देवताओं
ने उस कुएँ से इन्हें निकाला । महाभारत में लिखा है कि
सरस्वती नदी इसी कुएँ से निकली थी ।

त्रितय'—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म, धर्म और काम इन तीनों का समूह ।

त्रितय'—वि० जिसके तीन भाग हों । तेहरा (की०) ।

त्रिताप—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'ताप' ।

त्रितिया(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'तृतीया' । उ०—त्रितिया सों,
सप्तमी की एक वचन कबिराइ ।—पोद्दार अभि० ग्रं०,
पृ० ५३० ।

त्रितीया(५)—वि० [हि०] ३० 'तृतीय' । उ०—त्रितीया कीभा बाय
बंधेज ।—प्राण०, पृ० ३६ ।

त्रिदंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदण्ड] १. संन्यास आश्रम का चिह्न,
बाँस का एक डंडा जिसके सिरे पर दो छोटी छोटी लकड़ियाँ
बंधी होती हैं । २. मन, वचन और कर्म का संयम (की०) ।
३. ३० 'त्रिदंडी' (की०) ।

त्रिदंडी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदण्ड] १. मन, वचन और कर्म तीनों को
दमन करने या वश में रखनेवाला व्यक्ति । २. संन्यासी ।
परिव्राजक । ३. यज्ञोपवीत । जनेऊ ।

त्रिदंड—संज्ञा पुं० [सं०] देस का दंड ।

त्रिदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोधापदी । हंसपदी ।

त्रिदलिका—संज्ञा स्त्री [सं०] एक प्रकार का गृहर जिसे चर्मकला
या सातला कहते हैं ।

त्रिदश—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता । उ०—(क) कंदर्प दपं दुर्गम दधन
उमारवन गुन भवन हर । तुलसीस त्रिलोचन त्रिगुन पर त्रिपुर
मथन जय त्रिदशवर ।—तुलसी (शब्द०) । (स) निरञ्जन
वरखट कुसुम त्रिदश जन सूर सुमति मन फूल ।—सूर
(शब्द०) । २. जीव ।

त्रिदशगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु, बृहस्पति ।

त्रिदशगोप—संज्ञा पुं० [सं०] बीरबहूटी नाम का कीड़ा ।

त्रिदशदीर्घिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गंग । आकाशगंगा ।

त्रिदशपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

त्रिदशपुंगव—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशपुङ्गव] विष्णु (की०) ।

त्रिदशपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग ।

त्रिदशमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिदशमञ्जरी] तुलसी ।

त्रिदशवधू, त्रिदशवतिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा ।

त्रिदशवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशवर्त्मन्] आकाश (की०) ।

त्रिदशश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. ब्रह्मा (की०) ।

त्रिदशसर्षप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरसों । देवसर्षप ।

त्रिदशाकुश—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशाकुश] वज्र ।

त्रिदशाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

त्रिदशाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'त्रिदशायन' ।

त्रिदशायन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

त्रिदशायुध—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।

त्रिदशारि—संज्ञा पुं० [सं०] असुर ।

त्रिदशालय—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. सुमेरु पर्वत ।

त्रिदशाहार—संज्ञा पुं० [सं०] अमृत ।

त्रिदशेश्वरी—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गा ।

त्रिदालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चामरकषा । सातला ।

त्रिदिनस्पृश—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिथि जो तीन दिनों को स्पृश
करती हो । अर्थात् जिसका थोड़ा बहुत धन तीन दिनों में
पड़ता हो ।

विशेष—ऐसे दिन में स्नान और दानादि के प्रतिरिक्त और कोई
शुभ कार्य नहीं करना चाहिए ।

त्रिदिव—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । उ०—धनुज ! रहना उचिन्
तुमको यहीं है, यहाँ जो है त्रिदिव में भी नहीं है ।—साकेत,
पृ० ६५ । २. आकाश । ३. सुख ।

त्रिदिवाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र । २. देवता (की०) ।

त्रिदिवि(५)—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'त्रिदिव' । उ०—स्वर्ग, नाक
स्वर, ली, त्रिदिवि, दिव, तिरिविष्टप होइ ।—नंद० ग्रं०
पृ० १०८ ।

त्रिदिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता । २. इंद्र (की०) ।

त्रिविबोद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ी इलायची । २. गंगा ।

त्रिविबोद्धा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविबोद्धा] देवता [को०] ।

त्रिविश्व—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

त्रिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों देवता ।

त्रिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष । २. 'दोष' । उ०—गदगदु त्रिदोष ज्यों दूरि करे वर । त्रिशिरा सिर त्यों रघुनंदन के धर ।—केशव (शब्द०) । २. वात, पित्त और कफ जनित रोग, सन्निपात । उ०—योवन ज्वर जुबती कुपस्थ करि मयो त्रिदोष भरि मदन बाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिदोषज^१—वि० [सं०] तीनों दोषों अर्थात् वात, पित्त और कफ से उत्पन्न ।

त्रिदोषज^२—संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात रोग ।

त्रिदोषजा—वि० स्त्री० [सं०] २० 'त्रिदोषज' । उ०—पूर्वोक्त त्रिदोषजा ग्रन्थमरी विशेष करके बालकों के होती है ।—माधव०, पृ० १८० ।

त्रिदोषना^१—क्रि० प्र० [सं० त्रिदोष] १. तीनों दोषों के कोप में पड़ना । उ०—कुलहि लजावे बाल बालिस बजावे गाल कैषी कर काल वश तमकि त्रिदोषे है ।—तुलसी (शब्द०) । २. काम क्रोध और लोभ के फंदों में पड़ना । उ०—(क) कालि की बात बालि की सुधि करो समुझि हिताहित कोलि मरोखे । कस्यो कुरोषित को न मानिए बड़ी हानि जिय जानि त्रिदोषे ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिधनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की रागिनी ।

त्रिधन्वा—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार सुषन्त्रा राजा के एक पुत्र का नाम ।

त्रिधर्मा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधर्म] महादेव । शिव ।

त्रिधा^१—क्रि० वि० [सं०] तीन तरह से । तीन प्रकार से ।

त्रिधा^२—वि० [सं०] तीन तरह का ।

यौ०—त्रिधात्व = तीन प्रकारकता । तीन प्रकार का होना ।

त्रिधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणेश । २. सोना, चाँदी और ताँबा ।

त्रिधाम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधाम] १. विष्णु । २. शिव । ३. भगिन । ४. भृगु । ५. स्वर्ग । ६. व्यास मुनि (को०) ।

त्रिधामूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर जिसके अंतर्गत ब्रह्मा, विष्णु, और महेश तीनों हैं ।

त्रिधारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा नागरमोया । गुँदला । २. कसेक का पेड़ ।

त्रिधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीन धारावाला सेतु । २. स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोकों में बहनेवाली, गंगा ।

त्रिधाविशेष—संज्ञा पुं० [सं०] साक्ष्य के अनुसार सूक्ष्म, मातापितृज और महाभूत तीनों प्रकार के रूप बारम्बार करनेवाला, सरीर ।

त्रिधासर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देव, तिर्यग् और मानुष ये तीनों सर्ग जिसके अंतर्गत सारी सृष्टि आ जाती है ।

विशेष—दे० 'सर्ग' ।

त्रिन^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृण' । उ०—पदतल इन कहँ बलह कोट त्रिन सरिस जवनचय ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५४० ।

त्रिनयन^१—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

त्रिनयन^२—वि० जिसकी तीन आँखें हों । तीन नेत्रोंवाला ।

त्रिनयना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

त्रिनवत—वि० [सं०] तिरानबंदी [को०] ।

त्रिनवति—वि०, स्त्री० [सं०] तिरानवे । नब्बे और तीन [को०] ।

त्रिनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

त्रिनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव । शिव । २. सोना । स्वर्ण ।

त्रिनेत्रचूडामणि—संज्ञा पुं० [सं० त्रिनेत्रचूडामणि] चंद्रमा [को०] ।

त्रिनेत्ररस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस ।

विशेष—यह शोषे हुए पारे, गंधक और हूँके हुए तबे को बराबर बराबर भागों में लेकर एक विशेष क्रिया से तैयार किया जाता है और जो सन्निपात रोग में दिया जाता है ।

त्रिनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाराहोकाँद ।

त्रिनैत^१—वि० [सं० त्रियंक् + नेत्र] त्रियंक् नेत्रवाला । उ०—बदयो भोजराज पहारं त्रिनैतं ।—पृ० रा०, २५ । २१८ ।

त्रिनैन^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिनयन' । उ०—भरि भरि नैन त्रिनैन मनावे । प्रोढ़ा विप्रलम्ब सु कहावे ।—नद० प्र०, पृ० १५४ ।

त्रिन्त^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृण' । उ०—पेट काज तक, तुंग । त्रिन्त परि घर पर डारे ।—पृ० रा०, १ । ७६४ ।

त्रिपंखो^१—संज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार का शिगल गीत । उ०—मंद सुकवि इण मेल, मोत त्रिपंखो गुण इण ।—रघु० क०, पृ० १६० ।

त्रिपंच—वि० [सं० त्रिपञ्च] त्रिगुणा पंच अर्थात् पंचतुह [को०] ।

त्रिपंचार्थ—वि० [सं० त्रिपञ्चाश] तिरपनवी [को०] ।

त्रिपटु—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँच । शीशा । २. ललाट की तीन आड़ी रेखाएँ या बल [को०] ।

त्रिपत—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—बरंगी राल बरमास सुरा वरे । त्रिपत पन्नाल मिल खुल ताला ।—रघु० क०, पृ० २० ।

त्रिपताक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह माथा या ललाट जिसमें तीन बल पड़े हों । २. हाथ की एक मुद्रा जिनमें तीन उँगलियाँ फैली हों [को०] ।

त्रिपति^१—वि० [सं० तृप्त > त्रिपति त्रिपति] दे० 'तृप्त' । उ०—निय त्रिपति पुरन भए त्रिपति उमापति मुँड ।—पृ० रा०, २५।७४४ ।

त्रिपति^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति' । उ०—न हिय राख कह छिन त्रिपति ।—पृ० रा०, १ । ४८४ ।

त्रिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेल का पेड़ जिसके पत्ते एक साथ तीन तीन लगे होते हैं । २. पलाश का पेड़ [को०] ।

त्रिपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश का वृक्ष । ढाक का पेड़ । २. तुलसी, कुँब और बेल के पत्ते का समूह ।

त्रिपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परहर का पेड़। २. तिपतिया घास।

त्रिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गों का समूह। उ०—कर्मठ कठपलिया कहैं जानी ज्ञान विहीन। तुमसी त्रिपथ विहायगो रामदुआरे दीन।—तुलसी (शब्द०)। २. तीनों लोकों (आकाश, पाताल और मर्त्य लोक) के मार्ग (को०)। ३. वह स्थान जहाँ तीन पथ मिलते हैं। तिराहा (को०)।

त्रिपथगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। उ०—मानो मूल भाषा त्रिपथगा की तीन धारा हो बहीं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७०।

विशेष—हिंदुओं का विश्वास है कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों में गंगा बहती है, इसीलिये इसे त्रिपथगा कहते हैं।

त्रिपथगामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। दे० 'त्रिपथगा'।

त्रिपथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'त्रिपथगा'। उ०—पथ बेख रही तरंगिणी, त्रिपथा सी वह संग रंगिणी।—साकेत, पृ० ३६३। २. मयुरा (को०)।

त्रिपद^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपद] १. तिपाई। २. त्रिभुज। ३. वह जिसके तीन पद या चरण हो। ४. यज्ञों की वेदी नापने की प्राचीन काल की एक नाप जो प्रायः तीन हाथ से कुछ कम होती थी। ५. विष्णु (को०)। ६. ज्वर (को०)।

त्रिपद^२—वि० [सं० त्रिपद] १. तीन पैरोंवाला। २. तीन पाएवाला। ३. तीन चरणवाला। ४. तीन पदों का (शब्दसमूह) (को०)।

त्रिपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायत्री।

विशेष—गायत्री में केवल तीन ही पद होते हैं इसलिये इसका यह नाम पड़ा।

२. हंसपदी। लाल रंग का लज्जु।

त्रिपदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिपाई की तरह का पीतल आदि का वह चौखटा जिसपर देवपूजन के समय शंख रखते हैं। २. तिपाई। ३. संकीर्ण राग का एक भेद। (संगीत)।

त्रिपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हंसपदी। २. तिपाई। ३. हाथी की पलान बाँधने का रस्सा। ४. गायत्री। ५. तिपाई के आकार का शंख रखने का धातु का चौखटा। ६. गोघापदी लता (को०)।

त्रिपल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के दस घोड़ों में से एक।

त्रिपरिक्रांत^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपरिक्रान्त] १. वह ब्राह्मण जो यज्ञ करे, पड़े पड़ावे और दान दे। २. वह व्यक्ति जिसने काम, क्रोध और लोभ को जीत लिया हो (को०)।

त्रिपरिक्रांत^२—वि० जो हवन की परिष्कृति करे (को०)।

त्रिपर्य—संज्ञा पुं० [सं०] पलास का पेड़। किशुक वृक्ष।

त्रिपर्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलास का पेड़।

त्रिपर्णीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शालपर्णी। २. बनकपास। ३. एक प्रकार की पिठवन लता।

त्रिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का क्षुप जिसका कंद भ्रूषण में काम आता है। २. शालपर्णी। ३. बनकपास।

त्रिपर्ण—संज्ञा पुं० [?] त्रिविध प्राणायाम, रेचक, पूरक, कुंभक।

उ०—ताड़ी लागी त्रिपल पलटिये छूटे होई पसारी।—कबीर ग्रं०, पृ० २२८।

त्रिपाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौब (को०)।

त्रिपाठी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठिन्] १. तीन वेदों का जाननेवाला पुरुष। त्रिवेदी। २. ब्राह्मणों की एक जाति। त्रिवेदी। तिवारी।

त्रिपाण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सूत जो तीन बार भिगोया गया हो (कर्मकांड)। वल्कल। छाल।

त्रिपात्, त्रिपात्—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपाद' (को०)।

त्रिपाद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्वर। मुखार। २. परमेश्वर।

त्रिपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिपाई। २. हंसपदी लता। लाल रंग का लज्जालू।

त्रिपाप—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष में एक प्रकार का षष्क जिसके अनुसार किसी मनुष्य के किसी वर्ष का शुभाशुभ फल जाना जाता है।

त्रिपिंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपिण्ड] पार्वण श्राद्ध में पिता, पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से दिए हुए तीनों पिंड (कर्मकांड)।

त्रिपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध के उपदेशों का बड़ा संग्रह जो उनकी मृत्यु के उपरांत उनके शिष्यों और अनुयायियों ने समय समय पर किया और जिसे बौद्ध लोग अपना प्रधान धर्मग्रंथ मानते हैं।

विशेष—यह तीन भागों में, जिन्हें पिटक कहते हैं, विभक्त है। इनके नाम ये हैं—सूत्रपिटक, विनयपिटक, अभिधर्मपिटक। सूत्रपिटक में बुद्ध के साधारण छोटे और बड़े ऐसे उपदेशों का संग्रह है जो उन्होंने भिन्न भिन्न घटनाओं और अवसरों पर किए थे। विनयपिटक में भिक्षुओं और आचर्यों आदि के आचार के संबंध की बातें हैं। अभिधर्मपिटक में चित्त, चैतिक धर्म और निर्वाण का वर्णन है। यही अभिधर्म बौद्ध दर्शन का मूल है। यद्यपि बौद्ध धर्म के महायान, हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन यानों का पता चलता है और इन्हीं के अनुसार त्रिपिटक के भी तीन संस्करण होने चाहिए, तथापि आजकल मध्यमयान का संस्करण नहीं मिलता। हीनयान का त्रिपिटक पाली भाषा में है और बर्मा, स्याम तथा संका के बौद्धों का यह प्रधान और माननीय ग्रंथ है। इस यान के संबंध का अभिधर्म से पुष्टि कोई दर्शन ग्रंथ नहीं है। महायान के त्रिपिटक का संस्करण संस्कृत में है और इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, भूटान, आसाम, चीन, जापान और साइबेरिया के बौद्धों में है। इस यान के संबंध के चार दार्शनिक संप्रदाय हैं जिन्हें सौत्रांतिक, माध्यमिक, योगाचार और वैशेषिक कहते हैं। इस यान के संबंध के मूल ग्रंथों के कुछ ग्रंथ नेपाल, चीन, तिब्बत और जापान में अबतक मिलते हैं। पहले पहल महात्मा बुद्ध के निर्वाण के उपरांत उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों का संग्रह राजगृह के समीप एक गुहा में किया था। फिर महाराज अशोक ने अपने समय में उसका दूसरा संस्करण बौद्धों के एक बड़े संघ में कराया था। हीनयान-

वाले अपना संस्करण इसी को बतलाते हैं। तीसरा संस्करण कनिष्क के समय में हुआ था जिसे महायानवाले अपना कहते हैं। हीनयान और महामान के संस्करण के कुछ वाक्यों के मिलान से अनुमान होता है कि ये दोनों किसी ग्रंथ की छाया हैं जो अब लुप्तप्राय है। त्रिपिटक में नारायण, जनार्दन शिव, ब्रह्मा, वरुण और शंकर आदि देवताओं का भी उल्लेख है।

त्रिपिताना^१—क्रि० प्र० [सं० तृप्ति + आना (प्रत्य०)] तृप्ति पाना। तृप्त होना। प्रघा जाना। उ०—(क) कैसे तृषावंत जल मंथनत वह तो पुनि ठहरात। यह आतुर छबि लै उर भारति नेकु नहीं त्रिपितात।—सूर (शब्द०)। (ख) जे बटरस मुख भोग करत हैं ते कैसे खरि खात। सूर सुनो लोचन हरि रस तजि हम सों क्यों त्रिपितात।—सूर (शब्द०)।

त्रिपिताना^२—क्रि० सं० तृप्त करना। संतुष्ट करना।

त्रिपिष—संज्ञा पुं० [सं०] वह लसी, पानी पीने के समय जिसके दोनों कान पानी से छू जाते हों। ऐसा बकरा मनु के अनुसार पितृकर्म के लिये बहुत उपयुक्त होता है।

त्रिपिष्टप—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुंड्र] भस्म की तीन आड़ी रेखाओं का तिलक जो शीव या शाक्त लोग ललाट पर लगाते हैं। उ०—गौर शरीर भूति भलि आजा। भाल विशाल त्रिपुंड्र विराजा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—रमाना।—लगाना।

त्रिपुंड्र—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुण्ड्र] त्रिपुंड्र।

त्रिपुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोकुल का पेड़। २. मटर। ३. खेसारी। ४. तीर। ५. ताला। ६. एक हाथ की लंबाई (को०)। ७. किनारा। लट (को०)। ८. बाण (को०)। ९. छोटी या बड़ी एला या इलायची (को०)। १०. मल्लिका (को०)। ११. एक प्रकार का फोड़ा (को०)। १२. ताल। तलैया (को०)।

त्रिपुट^२—वि० [सं०] त्रिभुजाकार (को०)।

त्रिपुटक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेसारी। २. फोड़े का एक आकार।

त्रिपुटक^२—वि० त्रिकोना या त्रिभुजाकार (फोड़ा)।

त्रिपुटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बेल का पेड़। २. छोटी इलायची। ३. बड़ी इलायची। ४. निसोब। ५. कनफोड़ा बेल। ६. मोतिया। ७. तंत्रिकों की एक देवी जो अभीष्टदात्री मानी गई है।

त्रिपुटी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निसोब। २. छोटी इलायची। ३. तीन वस्तुओं का समूह। जैसे, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान; ध्याता, ध्येय और ध्यान; द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि। उ०—ज्ञाता, ज्ञेय भव ज्ञान जो ध्याता, ध्येय भव ध्यान। द्रष्टा, दृश्य भव द्रष्टा जो त्रिपुटी सत्त्वाभान।—कबीर (शब्द०)।

त्रिपुटी^२—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुटिम्] १. रेंड का पेड़। २. खेसारी।

त्रिपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाणासुर का एक नाम। २. तीनों लोक। ३. चंदेरी नगर।—(डि०)। ४. महाभारत के अनुसार वे तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नाम के तीनों दैत्यों ने मय दानव से अपने लिये बनवाए थे।

विशेष—इनमें से एक नगर सोने का और स्वर्ण में था, दूसरा

अंतरिक्ष में चाँदी का था और तीसरा मर्यालोक में लोहे का था। जब उक्त तीनों असुरों का अत्याचार और उपद्रव बहुत बढ़ गया तब देवताओं के प्रार्थना करने पर शिव जी ने एक ही बाण से उन तीनों नगरों को नष्ट कर दिया और पीछे से उन तीनों राक्षसों को मार डाला।

त्रिपुरआराति—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + आराति] कामारि। महादेव।

त्रिपुरआराती—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + आराति] दे० 'त्रिपुर आराति'। उ०—जदपि सती पूछा बटु भाती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती।—मानस, १।५७।

त्रिपुरघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

त्रिपुरदहन—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

त्रिपुरदाहक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + दाहक] दे० 'त्रिपुरदहन'। उ०—त्रिपुरदाहक शिव भद्रवट पर था।—प्रा० भा० सं०, पु० १०८।

त्रिपुरभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक रस जो सन्निपात रोग में दिया जाता है।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है—काली मिर्च ४ भर, सोंठ ४ भर, शुद्ध तेलिया सोहागा ३ भर, और गुड़ सींगी मोहरा १ भर लेते हैं और इन सब चीजों को पीसकर पहले तीन दिन तक नोबू के रस में फिर पाँच दिन तक भदरक के रस में और तब तीन दिन तक पान के रस में अच्छी तरह खरल करके एक एक रत्ती की गोत्तियाँ बना लेते हैं। यह गोली भदरक के रस के साथ दी जाती है।

त्रिपुरभैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

त्रिपुरमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मल्लिका।

त्रिपुरहर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव (को०)।

त्रिपुरसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुरसुन्दरी] दुर्गा (को०)।

त्रिपुरांतक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुरान्तक] शिव। महादेव।

त्रिपुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामाख्या देवी की एक मूर्ति।

त्रिपुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिपुरारि रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, तीबे, गंधक, लोहे, अन्नक आदि के योग से बनाया जाता है। इसका व्यवहार पेट के रोगों को नष्ट करने के लिये होता है।

त्रिपुरारी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिपुरारि'। उ०—मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन संग दसकुमारी।—मानस, १।४८।

त्रिपुरासुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुर'।

त्रिपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिता, पितामह और प्रपितामह। २. संपत्ति का वह भोग जो तीन पीढ़ियों अलग अलग करें। एक एक करके तीन पीढ़ियों का भोग।

त्रिपुरुष—वि० जिसकी लंबाई उतनी हो जितनी तीन पुरुषों के मिलने पर होती है (को०)।

त्रिपुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ककड़ी । २. खीरा । ३. गेहूँ ।

त्रिपुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला विसोष ।

त्रिपुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक योग जो पुनर्वसु, उत्तराषाढा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद और विशाखा इन नक्षत्रों, रवि, मंगल और शनि इन तिथियों में से किसी एक नक्षत्र एक बार और एक तिथि के एक साथ पड़ने से होता है ।

विशेष—इस योग में यदि कोई मरे तो उसके परिवार में दो धादमी और मरते हैं और उसके संबंधियों को अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं । इसमें यदि कोई हानि हो तो वैसी ही हानि और दो बार होती है और यदि लाभ हो तो वैसा ही लाभ और दो बार होता है । बालक के जन्म के लिये यह योग जारण योग समझा जाता है ।

त्रिपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'त्रिपूरुष' [को०] ।

त्रिपूष—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से पहले वासुदेव ।

त्रिपौरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'त्रिपूरुष' ।

त्रिपौल्लिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'तिरपोलिया' ।

त्रिप्तु—वि० [हि०] १० 'तृप्त' । उ०—सुनत सुनत तन त्रिप्त गई ।—केशव० घमो०, पृ० १० ।

त्रिप्तासना—वि० सं० [सं० तृप्ति] तृप्त करना । संतुष्ट करना । उ०—अग्निना भोजन त्रिप्तासे । गुर के शब्द कबल पर गासे ।—प्राण०, पृ० १८२ ।

त्रिप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में विद्या, देश और काल संबंधी प्रश्न ।

त्रिप्रस्तुत—संज्ञा पुं० [सं०] वह हाथी जिसके भस्तक, कपोल और नेत्र इन तीनों स्थानों से मद झड़ता हो ।

त्रिप्लक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन देश का नाम जिसका उल्लेख वैदिक ग्रंथों में आया है ।

त्रिफला—संज्ञा पुं० [सं०] १. छावले, हड़ और बहेड़े का समूह ।

विशेष—यह छावलों के लिये हितकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक, सारक तथा कफ, पित्त, मेह, कुष्ठ और विषमज्वर का नाशक माना जाता है । इससे बैद्यक में अनेक प्रकार के घृत छावि बनाए जाते हैं ।

पर्या०—त्रिफली । फलत्रय । फलत्रिक ।

२. वह घूर्ण जो इन तीनों फलों से बनाया जाता है ।

विशेष—यह घूर्ण बनाते समय एक भाग हड़, दो भाग बहेड़ा और तीन भाग छाविला लिया जाता है ।

त्रिबंक^१—वि० [सं० त्रि + हि० बंक] तीन जगह से टेढ़ा । उ०—बंक दासी सँग बैठि चितहू त्रिबंक ओ ।—नट०, पृ० ३६ ।

त्रिबंक^२—संज्ञा स्त्री० तीन जगह से टेढ़ी, कुम्भा । उ०—हम सुधी को टेढ़ी यनी गनिका वा त्रिबंक को बंक धरी सो बरी ।—नट०, पृ० ३१ ।

त्रिबन्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १० 'त्रिबन्धी' ।

त्रिबन्धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वे तीन बल जो पेट पर पड़ते हैं, इन बलों की गणना सौंदर्य में होती है । उ०—त्रिबन्धी पा पहुँ खलित, रोम राजी मन मोहै ।—ह० रासो, पृ० २५ । २. भिक्षुणी (को०) ।

त्रिबलीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. मलद्वार । गुदा ।

त्रिबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुद्र के एक अनुचर का नाम । २. तलवार का एक हाथ ।

त्रिविद्धि—वि० [हि०] १० 'त्रिविध' । उ०—बहूँ बहुधात त्रिविद्धि समीर ।—ह० रासो, पृ० २३ ।

त्रिविध—वि० [हि०] १० 'त्रिविध' । उ०—दरसन मंजन पान त्रिविध भय दूर भिटावत ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १. पृ० २८२ ।

त्रिबीज—संज्ञा पुं० [सं०] सौदा (को०) ।

त्रिबीली—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'त्रिवेणी' । उ०—तत् त्रिबीली खुले दुष्पाक ।—प्राण०, पृ० १११ ।

त्रिवेनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'त्रिवेणी' ।

त्रिभंग^१—वि० [सं० त्रिभङ्ग] तीन जगह से टेढ़ा । त्रिभं में तीन जगह बल पड़ते हैं । उ०—जैसे को तैसी मिले तब ही जुरन सनेह । ज्यों त्रिभंग तनु स्याम को कुटिल कबरी देह । पद्याकर (शब्द०) ।

त्रिभंग^२—संज्ञा पुं० खड़े होने की एक मुद्रा जिसमें पेट कमर और गरदन में कुछ टेढ़ापन रहता है ।

विशेष—प्रायः श्रीकृष्ण के ध्यान में इस प्रकार खड़े होकर बंसी बजाने की भावना की जाती है ।

त्रिभंगी^१—वि० [सं० त्रिभङ्गिन्] तीन जगह से टेढ़ा । तीन मोड़ का । त्रिभंग । उ०—करी कुबत जग कुटिलता, तजो न दीन दयाल । दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ।—बिहारी (शब्द०) ।

त्रिभंगी^२—संज्ञा पुं० १. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद जिसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत मात्रा होती है । २. बुद्ध राग का एक भेद । ३. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं और १०, ८, ८, ९, मात्राओं पर यति होती है । जैसे,—परसत पद पावन, शोक नसावन, प्रगट भई तप पुंज सही । ४. गणारमक दंडक का भेद जिसके प्रत्येक चरण में ६ नगण, २ सगण, भगण, मगण, सगण और अंत में एक गुरु होता है अर्थात् प्रत्येक चरण में ३४ प्रक्षर होते हैं । जैसे,—सजल जलद तनु लसत विजल तनु धम कण त्यों कलकों हैं उमगो है बुंद मनो है । झुव युग मटकनि फिर लटकनि प्रनिमिष नैनन जो है हरषो है ह्वं मन मोहै । ५. १० 'त्रिभंग' ।

त्रिभंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिभण्डी] त्रिसोप ।

त्रिभं^१—वि० [सं०] तीन नक्षत्रों से युक्त । त्रिभं में तीन नक्षत्र हों ।

त्रिभं^२—संज्ञा पुं० चंद्रमा के हिसाब से रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रयुक्त आश्विन; आश्विनी, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद

नक्षत्रयुक्त भाद्रमास; और पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी और हस्त नक्षत्रयुक्त फाल्गुन मास ।

त्रिभग(७)—वि० [हि०] दे० 'त्रिमंग' । उ०—मुरली मुर नट बाद त्रिभग उर आयत कंबी ।—पृ० रा०, २ । ४२६ ।

त्रिभजीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की आधी रेखा । त्रिज्या ।

त्रिभज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिभजीया । त्रिज्या ।

त्रिभद्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहवास । स्त्रीप्रसंग [को०] ।

त्रिभुवन(७)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—कर्म सूत ते बली नाहि त्रिभुवन में कोई ।—नंद० ग्रं०, पृ० १७६ ।

त्रिभुक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] तिरहुत या मिथिला देश ।

त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] तीन भुजाओं का क्षेत्र । वह घरातन जो तीन भुजाओं या रेखाओं से घिरा हो । जैसे, \triangle ।

त्रिभुवन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन लोक अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और वाताल ।

त्रिभुवनगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । उ०—तुम्ह त्रिभुवनगुरु वेद बखाना । प्रान जीवन पाँवर का जाना ।—मानस, १ ।

त्रिभुवननाथ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + नाथ] जगदीश । परमेश्वर । उ०—रथों सब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सहसुत ।—केशव (शब्द०) ।

त्रिभुवनराइ(७)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + राज] तीन लोकों का स्वामी ।

त्रिभुवनराई(७)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवनराज] तीन लोकों का स्वामी उ०—हम तीनों हैं त्रिभुवन राई ।—कबीर सा०, पृ० १८३ ।

त्रिभुवनसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिभुवनसुन्दरी] १. दुगा । २. पार्वती ।

त्रिभूम—संज्ञा पुं० [सं०] तीन खंडोंवाला मकान । तिमडला घर ।

त्रिभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] कितिज वृत्त पर पड़नेवाले क्रांतिकृत्त का ऊपरी मध्य भाग ।

त्रिमंडला—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिमण्डला] एक प्रकार की जहरीली मकड़ी ।

त्रिमह—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोथा, चीता और बायबिडंग इन तीनों चीजों का समूह । २. परिवार, विद्या और धन इन तीनों कारणों से होनेवाला अभिभाव ।

त्रिमधु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के एक प्रश्न का नाम । २. वह व्यक्ति जो विधिपूर्वक उक्त प्रश्न पढ़े । ३. ऋग्वेद का एक यज्ञ । ४. घी, शहद और चीनी इन तीनों का समूह ।

त्रिमधुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिमधु' ।

त्रिमास—वि० [सं०] दे० 'त्रिमासिक' ।

त्रिमास—वि० [सं०] त्रिमासिक [को०] ।

त्रिमासिक—वि० [सं०] तीन मात्राओं का । तीन मात्राओंवाला । जिसमें तीन मात्राएँ हों । प्लुस ।

त्रिमार्गगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

त्रिमार्गगाभिगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

त्रिमार्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा । २. तिरमुहानी ।

त्रिमुंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिमुण्ड] १. त्रिशिरा राक्षस । २. ज्वर । बुखार ।

त्रिमुकुट—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों । त्रिकूट ।

त्रिमुक्ता—संज्ञा पुं० [सं०] १. शाक्यमुनि । २. गायत्री जपने की चौबीस मुद्राओं में से एक मुद्रा ।

त्रिमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिमुखी' ।

त्रिमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की माता, मायादेवी ।

विशेष—महायान शाखा के बौद्ध देवीरूप से इनकी उपासना करते हैं ।

त्रिमुनि—संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ये तीनों मुनि ।

त्रिमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिमुहानी' ।

त्रिमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता । २. सूर्य ।

त्रिमूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्म की एक शक्ति । २. बौद्धों की एक देवी ।

त्रिमृत—संज्ञा पुं० [सं०] निसोप ।

त्रिमृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिमृत' ।

त्रियंग(७)—वि० [सं० त्रि + अङ्ग] तीन रूप का । तीन तरह का । उ०—तहाँ बिट्टिय बंदि ऊमत्त मत्त । तहाँ छत्र रंग त्रियंगे ढरत ।—पृ० रा०, १६।१४६ ।

त्रिय(७)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—एहि कर नामु सुमिरि संसारा । त्रिय बड़िहहि पतिवत समिधारा ।—मानस, १।६७ ।

त्रियडंडी(७)—वि० [हि०] दे० 'त्रिडंडी' । उ०—एक डंडी डूडंडी त्रिय-डंडी भगवान हूवा ।—गोरख०, पृ० १३२ ।

त्रियलोक(७)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिलोक' । उ०—एके सतगुरु सूर सम तिमिर हरे त्रियलोक ।—रघुब०, पृ० १६ ।

त्रियव—संज्ञा पुं० [सं०] एक परिमाण जो तीन जी के बराबर या एक रसी के लगभग होता है ।

त्रियाष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] पितृपापड़ा । शाहूतरा ।

त्रियन(७)—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—त्रियन बरस त्रिय मास दिन त्रिय बटी पल उन्न ।—पृ० रा०, २३।१३ ।

त्रिया(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] औरत । स्त्री ।

यो०—त्रियाचरित्र = स्त्रियों का छल कपट जिसे पुरुष सहज में नहीं समझ सकते ।

त्रियाइ(७)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—जलघर बिन यो मेदिनी । ज्यों पतिहोव त्रियाइ ।—पृ० रा०, २५।४४ ।

त्रियाजीत(७)—वि० [हि० त्रिया + जीत] स्त्री के वश में न आनेवाला उ०—त्रियाजीत ते पुरिषागता मिलि भानंत ते पुरिषागता । गोरख०, पृ० ७६ ।

त्रियातीत(७)—वि० [सं० त्रि + अतीत] तीन अर्थात् त्रिगुण से परे । उ०—त्रियातीत की खेणी जिनको वेद सबसे बढ़कर बतलता है ।—कबीर, मं०, पृ० १२६ ।

त्रियान—संज्ञा पु० [सं०] बीड़ों के तीन प्रधान भेद या ज्ञान—महा-
यान, हीनयान और मध्यमयान ।

त्रियामक—संज्ञा पु० [सं०] पाप ।

त्रियामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि ।

विशेष—रात के पहले चार दंडों और अंतिम चार दंडों की
गिनती दिन में की जाती है, जिससे रात में केवल तीन ही
पहर बच रहते हैं । इसी से उसे त्रियामा कहते हैं ।

२. यमुना नदी । ३. हलदी । ४. नील का पेड़ । ५. काला
निसोष ।

त्रियासंग—संज्ञा पु० [हि० त्रिया + संग] स्त्रीप्रसंग । सहवास ।
उ०—राजयोग के चिह्न ये जानै बिरला कोय । त्रियासंग मति
कीजियहु जो ऐसा नहि होय ।—सुंदर ग्रं०, भा० १,
पृ० १०४ ।

त्रियुग—संज्ञा पु० [सं०] १. विष्णु । २. वसंत, वर्षा और शरद ये
तीनों ऋतुएँ । ३. सत्ययुग, द्वापर और त्रेता ये तीनों युग ।

त्रियूह—संज्ञा पु० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा ।

त्रियोदश(१०)—वि० [हि०] दे० 'त्रयोदश' । उ०—रवि अयन अंस
सठ बीस मानि । ससि जन्म त्रियोदस अंस ज्यानि ।—ह०
रामो, पृ० २६ ।

त्रियोनि—संज्ञा पु० [सं०] एक मुकदमा जो क्रोध, लोभ और मोह के
कारण होता है [को०] ।

त्रिरत्न—संज्ञा पु० [सं०] बुद्ध, धर्म और संघ का समूह । (बीड़) ।

त्रिरश्मि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिकोण' ।

त्रिरसक—संज्ञा पु० [सं०] वह मदिरा जिसमें तीन प्रकार के रस
या स्वाद हों ।

त्रिरात्रि—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन रात्रियों (और दिनों) का
समय । २. एक प्रकार का व्रत जिसमें तीन दिनों तक उपवास
करना पड़ता है । ३. भग्न त्रिरात्र नामक योग ।

त्रिराव—संज्ञा पु० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम [को०] ।

त्रिरूप^१—संज्ञा पु० [सं०] अश्वमेध यज्ञ के लिये एक विशेष प्रकार
का घोड़ा ।

त्रिरूप^२—वि० तीन रंगों या आकृतियोंवाला [को०] ।

त्रिरेख^१—संज्ञा पु० [सं०] शंख ।

त्रिरेख^२—वि० तीन रेखाओंवाला । जिसमें तीन रेखाएँ हों ।

त्रिल—संज्ञा पु० [सं०] नगर, जिसमें तानों बलें लघु होते हैं ।

त्रिलघु—संज्ञा पु० [सं०] १. नगर, जिसमें तीनों बलें लघु होते
हैं । २. वह पुरुष जिसकी गर्दन, जाँघ और मुखेंद्रिय छोटी
हों । पुरुष के लिये ये लक्षण शुभ माने जाते हैं ।

त्रिलवण—संज्ञा पु० [सं०] सेंधा, साँबर और सोबर (काला)
नमक ।

त्रिलिंग—संज्ञा पु० [हि० त्रिलिंग] त्रिलिंग शब्द का बनावटी
संस्कृत रूप ।

त्रिलोक—संज्ञा पु० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक
थी०—त्रिलोकनाथ । त्रिलोकपति ।

त्रिलोकनाथ—संज्ञा पु० [सं०] १. तीनों लोकों का मालिक या
रक्षक, ईश्वर । २. राम । ३. कृष्ण । ४. विष्णु का नाम ।
अवतार । ५. सूर्य ।

त्रिलोकपति—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिलोकनाथ' ।

त्रिलोकमणि—संज्ञा पु० [?] सूर्य । उ०—निरबीज कठं राकम
निकर, मेढ्रे फिकर त्रिलोकमणि ।—पृ० ६०, पृ० ४५ ।

त्रिलोकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिलोक' ।

त्रिलोकीनाथ—संज्ञा पु० [हि० त्रिलोकी + नाथ] दे० 'त्रिलोकनाथ' ।

त्रिलोकेश—संज्ञा पु० [सं०] १. ईश्वर । २. सूर्य ।

त्रिलोचन—संज्ञा पु० [सं०] शिव । महादेव ।

त्रिलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिलोचनी' ।

त्रिलोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा । २. व्यभिचारिणी (को०) ।

त्रिलोह—संज्ञा पु० [सं०] सोना चाँदी और ताँबा ।

त्रिलोहक—संज्ञा पु० [सं०] त्रिलोह [को०] ।

त्रिलोह—संज्ञा पु० [सं०] त्रिलोह [को०] ।

त्रिलोही—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की मुद्रा
जो सोने, चाँदी और ताँबे को मिलाकर बनाई जाती थी ।

त्रिवट—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'त्रिवण' ।

त्रिवण—संज्ञा पु० [सं०] मंथूरों जाति का एक राग जो दोपहर के
समय गाया जाता है ।

विशेष—इसे कुछ लोग द्विदोल राग का पुन मानते हैं ।

त्रिवणी—संज्ञा स्त्री० [?] एक संकर रागिनी जो संकराभरण, जयश्री
और नरनारायण के मेल से बनती है ।

त्रिवर्ग—संज्ञा पु० [सं०] १. धर्म, धर्म और काम । २. त्रिकला ।
३. त्रिकुटा । ४. बुद्धि, स्थिति और क्षय । ५. सत्त्व, रज
और तम ये तीनों गुण । ६. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये
तीनों प्रधान जातियाँ । ७. सुगति । ८. गायत्री ।

त्रिवर्ण^१—संज्ञा पु० [सं०] गिरगिट [को०] ।

त्रिवर्ण^२—वि० तीन रंगवाला [को०] ।

त्रिवर्णक—संज्ञा पु० [सं०] १. गोखरू । २. त्रिकला । ३. त्रिकुटा ।
४. काला, लाल और पीला रंग । ५. ब्राह्मण, क्षत्रिय और
वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ ।

त्रिवर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनकपास ।

त्रिवर्त—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का मोती ।

विशेष—कहते हैं, जिसके पास यह मोती होता है उसको बरिष्ठ
कर देता है ।

त्रिवर्त्मा—वि० [सं० त्रिवर्त्मन्] तीन मार्गों से जानेवाला । [को०] ।

त्रिवर्त्मा—संज्ञा पु० जीव [को०] ।

त्रिवलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवली' ।

त्रिवलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवली' ।

त्रिवली—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिवली' ।

त्रिवल्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता था ।

त्रिवार—संज्ञा पुं० [सं०] गण्ड के एक पुत्र का नाम ।

त्रिबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] तबलार के ३२ हाथों में से एक हाथ ।

त्रिविक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. वामन का अवतार । २. विष्णु ।

त्रिविद्—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने तीनों वेद पढ़े हों ।

त्रिविद्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो तीनों वेदों का ज्ञान हो [को०] ।

त्रिविध^१—वि० [सं०] तीन प्रकार का । उ०—त्रिविध ताप त्रामक त्रिमुहावी । राम स्वरूप विषु समुहावी ।—तुलसी (जन्म०)

त्रिविध^२—क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार के ।

त्रिविजत—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें देवता, ब्राह्मण और गुरु के प्रति बहुत श्रद्धा और भक्ति हो ।

त्रिविष्टप—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. तिष्ठत देश ।

त्रिविस्तीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसका जलाट, कमर और छाती ये तीनों घंग चौड़े हों ।

विशेष—ऐसा मनुष्य भाग्यवान् समझा जाता है ।

त्रिवृत्^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवृत्] १. एक प्रकार का यज्ञ । २. त्रिसोप ।

त्रिवृत्^२—संज्ञा स्त्री० तीन लड़ों की करवनी [को०] ।

त्रिवृत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिवृत्' ।

त्रिवृत्करण—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि, जल और पृथ्वी इन तीनों तत्वों में से प्रत्येक में शेष दोनों तत्वों का समावेश करके प्रत्येक को अलग अलग तीन भागों में विभक्त करने की क्रिया ।

विशेष—इस विचारपद्धति के अनुसार प्रत्येक तत्व में शेष तत्वों भी समावेश माना जाता है । उदाहरण के लिये अग्नि की लीजिए । अग्नि में अग्नि, जल और पृथ्वी का समावेश माना जाता है; और इन तीनों तत्वों के अस्तित्व के समानुस्वरूप अग्नि की लज्जाई, सफेदी और कालिमा उपस्थित की जाती है । अग्नि की लज्जाई उसमें अग्निरेव के होवे का, उसकी सफेदी उसमें जल के होवे का और उसमें की कालिमा उसमें पृथ्वी तत्व होने का समायु माना जाता है । छायोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठ के चौथे खंड में इसका पूरा विवरण दिया हुआ है । जान पड़ता है, उस समय तक लोगों को केवल तीन ही तत्वों का ज्ञान हुआ था और पीछे के जब और दो तत्वों का ज्ञान हुआ तब तत्वों के पंचीकरणवाली पद्धति विकली ।

त्रिवृत्त—वि० [सं०] त्रिमुखा ।

त्रिवृत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिवृत्' ।

त्रिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिसोप ।

त्रिवृत्पर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूरदूर । हिलमोचिका ।

त्रिवृद्धे—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद । २. प्रणव ।

त्रिवृष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ग्यारहवें वागर के व्यास का नाम ।

त्रिवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीन नदियों का संगम । २. तीन नदियों की मिली हुई धारा । ३. गंगा, यमुना और सरस्वती का संगमस्थान जो प्रयाग में है ।

विशेष—यह तीर्थस्थान माना जाता है और जागो तथा मकर संक्रांति प्रादि के अवसरों पर यहाँ स्नान करनेवालों की बहुत भीड़ होती है ।

४. हठयोग के अनुसार इडा, पिंगला और सूक्ष्मा इन तीनों वाहिनियों का संगम स्थान ।

त्रिवेणी—संज्ञा पुं० [सं०] रथ के चगने भाग के एक घंग का नाम ।

त्रिवेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद । २. इन तीनों वेदों में बनाए हुए क्रम । ३. वह जो इन तीनों का ज्ञाता हो ।

त्रिवेदी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवेदिन्] १. ऋक्, यजु और साम इन तीन वेदों का जाननेवाला । २. ब्राह्मणों का एक वेद ।

त्रिवेनी^①—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'त्रिवेणी' ।

त्रिवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिगोथ ।

त्रिशंकु—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कु] १. बिम्बी । २. जुष्ट । ३. एक यज्ञ का नाम । ४. पराद्धा । ५. एक प्रतिद्रुम्रासी राजा का नाम जिन्होंने सखरीर स्वर्ग जाने का कामना ये यज्ञ किया था पर जो इंद्र तथा दूसरे देवताओं के विरोध करने के कारण स्वर्ग न पहुँच सके ।

विशेष—रामायण में लिखा है कि सखरीर राजा पट्टवने की कामना से त्रिशंकु ने अपने गुरु वशिष्ठ से यज्ञ करने की प्रार्थना की पर वशिष्ठ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की । इस-पर वह वशिष्ठ के पुत्रों के पान गर्त; पर उन लोगों ने भी उनकी बात न मानी, उल्टे उन्हें आपाधियाँ भूम बाँझ हो जायो । तदनुसार राजा क्रोधित होकर विश्वामित्र की कारण से पहुँचे और हाथ जोड़कर उनसे अपनी अपमानावा प्रकट की । इसपर विश्वामित्र ने बहुत से ऋषियों को बुलाकर उनसे यज्ञ करने के लिये कहा । ऋषियों ने विरदानत्र के कोप से डरकर यज्ञ आरम्भ किया जिसमें स्वयं विश्वामित्र अध्यक्ष बने । जब विश्वामित्र ने देवताओं को उनका अभि-भाषण देना चाहा तब कोई देवता न आया । इसपर विश्वामित्र बहुत बिरह और ऊबल अपनी समस्या के फल से ही त्रिशंकु की सखरीर स्वर्ग भेजने लगे । जब इंद्र ने त्रिशंकु को सखरीर स्वर्ग की ओर पाते हुए देखा तब उन्होंने वही से उन्हें मर्त्यलोक की ओर लौटाया । त्रिशंकु जब उल्टे होकर नीचे गिरने लगे तब बड़े और से चिल्लाए । विश्वामित्र के उन्हें आकाश में ही रोक दिया और क्रुद्ध होकर दक्षिण की

घोर दूसरे सप्तषियों घोर नक्षत्रों की रचना प्रारंभ की। सब देवता अयधीत होकर विश्वामित्र के पास पहुँचे। तब विश्वामित्र ने उनसे कहा कि मैंने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है। अतः अब वह जहाँ के तहाँ रहेगा घोर हमारे बनाए हुए सप्तषि घोर नक्षत्र उनके चारों घोर रहेंगे। देवताओं ने उनकी यह बात स्वीकार कर ली। तब से त्रिशंकु वहीं आकाश में नीचे सिर किए हुए लटके हैं घोर नक्षत्र उनकी परिक्रमा करते हैं। लेकिन हरिवंश में लिखा है कि महाराज त्र्याम्बक का सत्यव्रत नामक एक पुत्र बहुत ही पराक्रमी राजा था। सत्यव्रत ने एक पराई स्त्री को घर में रख लिया था। इससे पिता ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम चाँडाल हो जाओ। तदनुसार सत्यव्रत चाँडाल होकर चाँडालों के साथ रहने लगे। जिस स्थान पर सत्यव्रत रहते थे उसके पास ही विश्वामित्र ऋषि भी वन में तपस्या करते थे। एक बार उस प्रांत में बारह वर्षों तक बृष्टि ही न हुई, इससे विश्वामित्र की स्त्री अपने बिचले लड़के को गले में बाँधकर सी गायों को बेचने निकली। सत्यव्रत ने उस लड़के को ऋषिपत्नी से लेकर उसे पालना प्रारंभ किया, तभी से उस लड़के का नाम मालव पड़ा। एक बार मांस के अभाव के कारण सत्यव्रत ने वशिष्ठ की कामधेनु गौ को मारकर उसका मांस विश्वामित्र के लड़कों को खिलाया था घोर स्वयं भी खाया था। इसपर वशिष्ठ ने उनसे कहा कि एक तो तुमने अपने पिता को अप्संतुष्ट किया, दूसरे अपने गुरु को गौ मार डाली घोर तीसरे उसका मांस स्वयं खाया घोर ऋषिपुत्रों को खिलाया। अब किसी प्रकार तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। सत्यव्रत ने ये तीन महापातक किए थे, इसी से वह त्रिशंकु कहलाए। उन्होंने विश्वामित्र की स्त्री घोर पुत्रों की रक्षा की थी इसलिये ऋषि ने उनसे वर माँगे के लिये कहा। सत्यव्रत ने सशरीर स्वर्ग जाना चाहा। विश्वामित्र ने पहले तो उनकी यह बात मान ली, पर पीछे से उन्होंने सत्यव्रत को उनके पैतृक राज्य पर अभिषिक्त किया घोर स्वयं उनके पुरोहित बने। सत्यव्रत ने केकय वंश की सप्तम्या नामक कन्या से विवाह किया था जिसके गर्भ से प्रसिद्ध सत्यव्रती महाराज हरिश्चंद्र ने जन्म लिया था। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार त्रिशंकु अनेक वैदिक मंत्रों के ऋषि थे।

६. एक तारा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वही त्रिशंकु है जो इंद्र के ढकेलने पर आकाश से गिर रहे थे घोर जिन्हें मार्ग में ही विश्वामित्र ने रोक दिया था।

त्रिशंकुज—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कुज] त्रिशंकु के पुत्र, राजा हरिश्चंद्र।

त्रिशंकुयाजी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कुयाजिन] त्रिशंकु को यज्ञ कराने वाले, विश्वामित्र ऋषि।

त्रिशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा, ज्ञान, और क्रिया रूपी तीनों ईश्वर शक्तियाँ। २. महत्तत्त्व जो त्रिगुणात्मक है। बुद्धितत्त्व। ३. तानिकों की काली, तारा और त्रिपुरा ये तीनों

देवियाँ। ४. गायत्री।

यौ०—त्रिशक्तिधृत्।

त्रिशक्तिधृत्—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। २. विजिगीषु राजा का एक नाम।

त्रिशत—वि० [सं०] तीन सौ [को०]।

त्रिशरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध। २. जैनियों के एक आचार्य का नाम।

त्रिशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़, चीनी और मिली इन तीनों का समूह।

त्रिशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्तमान अश्वमेधी के चौबीस तीर्थ-करों में से अंतिम तीर्थकर वर्धमान या महावीर स्वामी की माता का नाम।

त्रिशास्त्र—वि० [सं०] जिसमें आग्ने की घोर तीन शाखाएँ निकली हों।

त्रिशाखपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बेज का पेड़।

त्रिशाल—संज्ञा पुं० [सं०] तीन कमरोंवाला मकान [को०]।

त्रिशालक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार वह इमारत जिसके उत्तर घोर घोर कोई इमारत न हो।

विशेष—ऐसी इमारत अच्छी समझी जाती है।

त्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिशूल। २. किरीट। ३. रावण के एक पुत्र का नाम। ४. बेज का पेड़। ५. तामस नामक मन्वंतर के इंद्र के नाम।

त्रिशिखर—वि० जिसकी तीन शिखाएँ हों। तीन चोटियोंवाला।

त्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों। त्रिकूट पर्वत।

त्रिशिखरदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालाकंद नाम की लता अथवा उसका कंद (मूल)।

त्रिशिखी—वि० [सं०] ३० 'त्रिशिख'।

त्रिशिर—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशिरस्] १. रावण का एक भाई जो खर-दूषण के साथ दंडक वन में रहा करता था। २. कुबेर। ३. एक राक्षस जिसका उल्लेख महाभारत में है। ४. स्वष्टा प्रजापति के पुत्र का नाम। हरिवंश के अनुसार उवरपुरुष।

विशेष—इसे दानवों के राजा बाण की सहायता के लिये महादेव जी ने उत्पन्न किया था घोर जिसके तीन सिर, तीन पैर, छह हाथ और नौ आँखें थीं।

त्रिशिरा—संज्ञा पुं० [त्रिशिरस्] ३० 'त्रिशिर'।

त्रिशोर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन चोटियोंवाला पहाड़। त्रिकूट। स्वष्टा प्रजापति के पुत्र का नाम।

त्रिशोर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशूल।

त्रिशुच—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म, जिसका प्रकाश स्वर्ग, अंतरिक्ष और पृथिवी तीनों स्थानों में है। २. वह जिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख हों।

त्रिशूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह महादेव जी का अस्त्र माना जाता है।

यौ०—त्रिशूलधर = महादेव ।

२. दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख । ३. तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिसमें घंगूठे को कनिष्ठा उँगली के साथ मिलाकर बाकी तीनों उँगलियों को फैला देते हैं ।

त्रिशूलघात—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ जहाँ स्नान और तपण करने से गायपत्य देह प्राप्त होती है ।

त्रिशूलधारी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलधारिन्] शिव [को०] ।

त्रिशूलो—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलिन्] त्रिशूल को धारण करनेवाला, महादेव ।

त्रिशूली—संज्ञा स्त्री० दुर्गा ।

त्रिशृंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशृङ्ग] १. त्रिष्ट पर्वत जिसपर मंका बसी थी । २. त्रिकोण ।

त्रिशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिशृङ्गी] टेगना नखनी जिसके सिर पर तीन काँटे होते हैं ।

त्रिशोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीव, जिसे प्राणदैविक, प्राधिभौतिक, प्राध्यात्मिक ये तीन प्रकार के शोक होते हैं । २. कएव ऋषि के एक पुत्र का नाम ।

त्रिश्रुतिमध्वम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विद्वान् स्वर ।

विशेष—यह संदीपनी नाम की श्रुति से आरंभ होता है । इसमें चार श्रुतियाँ होती हैं ।

त्रिषरण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल । त्रिकाल ।

त्रिषष्ठ—वि० [सं०] त्रिसष्टी । क्रम में त्रिसष्ट के स्थान पर पड़नेवाला ।

त्रिषष्ठि—संज्ञा स्त्री [सं०] साठ और तीन की सुबक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६३ ।

त्रिषष्ठि^२—वि० साठ और तीन । त्रिसष्ट [को०] ।

त्रिषा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—अपर भेद साहिब कहि बीजे । त्रिषा बुझाय अमीरस गोत्रे ।—कबीर मा०, पृ० ६१२ ।

त्रिषाली^१—वि० [हि० त्रिषा] तृषातुर । प्यासा । उ०—पिछल्या रहे त्रिषाली अगह्यों आव मिल ।—नट०, पृ० १६८ ।

त्रिषित^२—वि० [हि०] दे० 'तृषित' । उ०—आतुर गति मनो चंद उदै भए पावत त्रिषित चकोरी ।—नंद० प्र०, ३३२ ।

त्रिषु—संज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणों तक की दूरी का स्थान ।

त्रिषुक—संज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणोंवाला धनुष ।

त्रिषुपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिषुपर्ण' ।

त्रिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वैदिक ध्वनि ।

त्रिष्टुप्—संज्ञा पुं० [सं० त्रिष्टुप्] दे० 'त्रिष्टुम्' ।

त्रिष्टुम्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं ।

विशेष—इसका गोत्र कीशिक, वर्ण लोहित, स्वर धेवत, देवता इंद्र और उत्पति प्रजापति के मांस से मानी जाती है । इसके

मुमुखी, इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, कीर्ति, वारणी, माला, जाला, हुंसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, मद्रा, प्रेमा, रामा, रघोदता, दोषक, ऋद्धि और सिद्धि या बुद्धि आदि प्रधान भेद हैं ।

त्रिष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो अत्रधृति यज्ञ के पहले और पीछे किया जाता है ।

त्रिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] तीन पहियोंवाला रथ या गाड़ी ।

त्रिसंक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिशंकु' । उ०—कमल भवाज त्रिसंक वह बध धम आदि सदैव । होहि हलंत कदापि नहि, आइ करे जो देव ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३४ ।

त्रिसंगम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसङ्गम] १. तीन नदियों के मिलने का स्थान । त्रिवेणी । २. किसी प्रकार की तीन चीजों का मेल ।

त्रिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसन्धि] एक प्रकार का फूल जो लाल, सफेद और काला तीन रंगों का होता है । इसे फगुनियाँ भी कहते हैं । वैद्यक में इसे रुचिकारक और कफ, खाँसी तथा त्रिदोष का नाशक माना है ।

पर्या०—साध्यकुसुमा । संधिवल्ली । सदाफला । त्रिसंध्यकुसुमा । कांडा । सुकुमारा । संधिजा ।

त्रिसंध्य—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसंध्य] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल ।

विशेष—जो नाँव त्रिसंध्यव्यापिनी, अर्थात् सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रहती है वह सब कार्यों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्यकुसुम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसंध्यकुसुम] दे० 'त्रिसंधि' ।

त्रिसंध्यव्यापिनी—वि० स्त्री० [सं० त्रिसंध्यव्यापिनी] (वह तिथि) जो बराबर सूर्योदय से सूर्यास्त तक हो ।

विशेष—ऐसी तिथि शुद्ध और सब कामों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसंध्या] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों संगणक ।

त्रिसप्तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्तर और तीन का जोड़ । तिहत्तर । २. तिहत्तर को संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७३ ।

त्रिसप्ततितम—वि० [सं०] तिहत्तरवाँ । जो क्रम में तिहत्तर के स्थान पर हो ।

त्रिसप्त^१—संज्ञा पुं० [सं०] सौंठ, गुड़ और हड़ इन तीनों का समूह ।

त्रिसप्त^२—वि० जिसकी तीनों भुजाएँ बराबर हों (ज्या०) ।

त्रिसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेसारी । २. तीन लड़ियों का मोतियों का हार (को०) । ३. दूध में मिलाकर पका हुआ तिल और चावल (को०) ।

त्रिसरेनु^१—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसरेणु] दे० 'त्रिसरेणु' । उ०—उपजत अपत फिरत गर्हि चैनु । जैसे जालरंध त्रिसरेनु ।—नंद० प्र०, पृ० २७० ।

त्रिसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सत्त्व, रज और तम चीनों गुणों का समं । सृष्टि ।

त्रिसंज्ञा—संज्ञा स्त्री० [?] त्रिरेखा । त्रिपुंड्र । उ०—मय माया लालच लिया, त्रिमलो लिया लिलाट ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३६ ।

त्रिसामा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसामन्] परमेश्वर ।

त्रिसामा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकलती है ।

त्रिसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिशंकरा' ।

त्रिसुगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसुगन्धि] बालचीनी, हलायची और तेजपात इन तीनों सुगन्धित मसालों का समूह ।

त्रिसुख—वि० [सं० त्रि + सुख] तीनों तरह से शूद्र । उ०—जहाँ सुख त्रिसुख तो स्वर्गापवर्गहि पावही ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १५ ।

त्रिसुपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का नाम । २. यजुर्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का नाम ।

त्रिसुपर्णिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो त्रिसुपर्ण का जाता हो ।

त्रिसूल—संज्ञा पुं० [हि० त्रिसूल] चिन्ता या क्रोधावेश में ललाट पर उभड़ जानेवाली त्रिशूल की प्राकृति की रेखा । उ०—साधि त्रिसूल उ नाक सल, कोई विण्टुटा कज्ज ।—ढोला०, पृ० २१६ ।

त्रिसौपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिसुपर्णिक । २. परमेश्वर । परमात्मा ।

त्रिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० त्रिस्कन्ध] ज्योतिष शास्त्र जिसके संहिता, तंत्र और होरा ये तीन स्कंध हैं ।

त्रिस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायत्री । २. महाभारत के अनुसार एक राक्षसी जिसके तीन स्तन थे ।

त्रिस्तवन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

त्रिस्तावा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवद्भेष यज्ञ की वेदी जो साधारण वेदी से त्रिगुनी बड़ी होती थी ।

त्रिस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] काली, गया और प्रयाग ये तीन पुराण स्थान ।

त्रिस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों स्थानों में रहनेवाला, परमेश्वर ।

त्रिस्पृशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की एकादशी ।

विशेष—यह उस समय होती है जब एक ही सायन दिन में एकादश के समय थोड़ी सी एकादशी और रात के अंत में त्रयोदशी होती है । ऐसी एकादशी बहुत उत्तम और पुण्य कारणों के लिये उपायुक्त मानी जाती है ।

त्रिस्तान—संज्ञा पुं० [सं०] सबेरे, दोपहर और संध्या तीनों समय का स्नान ।

विशेष—यह त्रिस्तन आश्रम में रहनेवाले के लिये आवश्यक है । कई प्रायश्चित्तों में भी त्रिस्तान करना पड़ता है ।

त्रिस्रोता—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिस्रोतस्] १. गंगा । उ०—मय त्रिपुंड्रक शोभिषै बर्णित बुद्धि उदार । मनो त्रिस्रोता सोतधुति बंदत लगी लिलार ।—केशव (शब्द०) । २. उत्तर बंगाल की एक बड़ी नदी जिसे त्रिस्ता कहते हैं ।

त्रिहायण—वि० [सं०] जिसकी अवस्था तीन वर्ष की हो [को०] ।

त्रिहायणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी ।

त्रिहूत—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिरहूत' ।

त्री—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—गुण गजबंध तया कब गावे । दुरस परायण त्री दरसावे ।—रा० क०, पृ० १६ ।

त्री^२—वि० [हि०] दे० 'त्रि' । उ०—त्री प्रस्थान निरंतरि निरधार । तहें प्रभु बैठे सम्रथ सार ।—शङ्कर, पृ० ६७५ ।

त्रीकुटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिकुटा' । उ०—मोघा और पटोल दल घानी । त्रिकला श्री त्रीकुटा समानी ।—इंद्रा०, पृ० १५१ ।

त्रीगुन—वि० [सं० त्रिगुण] त्रिगुण । उ०—इंद्र बीराह बल इंद्र जोर । त्रीगुन विलास तन हरत रोर ।—पृ० १०, ६५० ।

त्रीघटना—वि० [हि० घटना] घटित होना । होना । उ०—पावरी घड़ी यों के त्रीघट लोह ।—बी० रामो, पृ० ६४ ।

त्रीछन—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—प्रगिन सत्सुर ऊपर बहई । त्रीछन चाल पवन कर अहई ।—सं० दरिया, पृ० २५ ।

त्रीजइ—वि० [सं० तृतीय] दे० 'तीसरा' । उ०—त्रीजइ पुहरि उलाघियउ, भाउ बलारउ घट्ट ।—ढोला०, पृ० ४२४ ।

त्रीस—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—भूल नही त्रीस ऊछली ।—बी० रामो, पृ० ६७ ।

त्रीर्या—वि० [सं० त्रि] तीनों । उ०—माक मारइ पहिपड़ा, जउ पहिरइ सोवन् । दंती बूझइ मोतिया, त्रीर्या हेक बरन् ।—ढोला०, पृ० ४७५ ।

त्रुगटी—संज्ञा स्त्री० [हि०]—दे० 'त्रिकुटी' । उ०—त्रुगणी त्रुगटी मनकर घरघा संपट ध्यान धरीजै ।—रामानंद०, पृ० २७ ।

त्रुगुणी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिगुणी' । उ०—त्रुगुणी त्रुगटी मनकर घरघा संपट ध्यान धरीजै ।—रामानंद०, पृ० २७ ।

त्रुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमी । कसर । न्यूनता । २. अभाव । ३. भूल । चूक । ४. वचनभंग । ५. छोटी हलायची । एवा । ६. संशय । संदेह । ७. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम । ८. समय का एक अत्यंत सूक्ष्म विभाग जो दो क्षण के बराबर और किसी के मत से प्रायः चार क्षण के बराबर होता है ।

त्रुटित—वि० [सं०] १. कटा या टूटा हुआ । २. जिसपर आघात लगा हो । ३. ग्राह्य ।

त्रुटिबीज—संज्ञा पुं० [सं०] अरई । कच्चा । धुईया ।

त्रुटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रुटि' ।

त्रुटी^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रुटि' । उ०—त्रुटी परे है या मेरा मैया बीबरो बहु दुख पावे ।—शब्द० ग्रं०, पृ० ३५१ ।

श्रुतना④—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'श्रुतना' । उ०—संदेश उ जिन पाठवइ, मरित्यजें हीया फूटि । पारेवा का भूल जितें, पड़िनई प्राणिणि श्रुति ।—ढोला०, पृ० १४३ ।

श्रेटकु④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्राटक' । उ०—श्रेटकु भेष न चेटकु कोई ।—प्राण०, पृ० ११० ।

श्रेतना④—क्रि० प्र० [सं० श्रुति] तोड़ना । चोट मारना । उ०—कंटक काल फिरि कदे न श्रेते ।—प्राण०, पृ० १०६ ।

श्रेता—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार युगों में से दूसरा युग जो १२६६०० वर्ष का होता है ।

विशेष—पुराणानुसार इस युग का जन्म भयवा आरंभ कार्तिक शुक्ला नवमी को होता है । इस युग में पुण्य के तीन पाद और पाप का एक पाद होता है । और सब लोग धर्मरक्षण होते हैं । पुराणानुसार इस युग में मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष तथा मनु के अनुसार तीन सौ वर्ष होती है । परशुराम और रघुवंशी राम के अवतार का इसी युग में होना माना जाता है ।

मुहा०—श्रेता के बीजों में मिलना = सत्यानाश होना । नष्ट होना । (एक णाप) ।

२. दक्षिण, गार्हपत्य और ग्राहवनीय, ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ । ३. जुए में तीन कौड़ियों का भयवा पासे के उस भाग का चिह्न पड़ना जिसपर तीन बिंदियाँ हों ।

श्रेताग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण, गार्हपत्य और ग्राहवनीय ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ ।

श्रेतायुग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'श्रेता' ।

श्रेतायुगाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिक शुक्ला नवमी, जिस दिन श्रेता का जन्म या आरंभ होता माना जाता है ।

विशेष—इसकी गणना पुण्य तिथियों में है ।

श्रेतिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जो दक्षिण, गार्हपत्य और ग्राहवनीय तीनों प्रकार की अग्नियों से हो ।

श्रेधा—क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार से भयवा तीन भागों में [को०] ।

श्रेन④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रेण' । उ०—नैहर नेह नहि श्रेन तन तोरो । पुष्प पसंग पर प्रेम प्रति जोगो ।—सं० हरिया, पृ० १७२ ।

श्रे—वि० [सं० त्रय] तीन । उ०—ज्यों प्रति प्यासो पावै भग में गंगाजल । प्यास न एक बुझाय बुझै श्रे ताप बल ।—केशव (शब्द०) ।

यौ—त्रैकालिक ।

श्रेकंटक—संज्ञा पुं० [सं० श्रेकण्टक] दे० 'त्रिकंटक' ।

श्रेककुद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिककुद्' ।

श्रेककुभ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिककुभ' ।

श्रेकालज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकालज्ञ' ।

श्रेकालिक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्रेकालिकी] वह जो त्रिकाल में होता हो । तीनों कालों में या सदा होनेवाला ।

श्रेकाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन काल—भूत, वर्तमान और

भविष्यत् । २. सूर्योदय, अपराह्न और सूर्यास्त । ३. तीन का समूह । ४. तीन दशाएँ—उत्तराति, रक्षण और विनाश [को०] ।

श्रेकूटक—संज्ञा पुं० [सं०] कलचुरि राजवंश के समय का एक प्राचीन राजवंश ।

श्रेकोणिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके तीन पाद्वं हों । त्रिपहला २. वह जिसके तीन कोण हों ।

श्रेकोन④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिकोण' । उ०—मध्यचरन श्रेकोन है अमृत कलश रूहें देख ।—भारतेन्दु ब्रं०, भा० २, पृ० ३३ ।

श्रेगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिगर्त देश का रहनेवाला । २. त्रिगर्त देश का राजा ।

श्रेगुणिक—वि० [सं०] १. तेहरा । तीनगुना । २. तीन गुणों से संबंधित [को०] ।

श्रेगुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिगुण का धर्म या भाव । सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों का धर्म या भाव ।

श्रेता④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रेता' । उ०—श्रेता राम रूप दशरथ गृह रावन कुलहि संधारयो ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १६२ ।

श्रेदशिक—संज्ञा पुं० [सं०] उंगली का अगला भाग, जो तीर्थ कहलाता है ।

श्रेदशिक^२—वि० १. ईश्वरीय । २. देवताओं से संबंधित [को०] ।

श्रेध—वि० [सं०] तेहरा । तिगुना [को०] ।

श्रेधातवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

श्रेपन④—वि० [हि०] दे० 'तिरपन' । उ०—हबसीह संग श्रेपन हजार । कर घरे कहर कर्ता बजार ।—पृ० रा०, १३ । १७ ।

श्रेपूर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपूर' ।

श्रेपुरुष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० श्रेपुरुषी] पुरुषों की तीन पीढ़ी तक चलनेवाला [को०] ।

श्रेफल—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रदत्त के अनुसार वैद्यक में एक प्रकार का घृत जो त्रिफला आदि के संयोग से बनाया जाता है और जिसका व्यवहार प्रदर आदि रोगों में होता है ।

श्रेबलि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है ।

श्रेमानुर—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मण ।

विशेष—लक्ष्मण जी सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे पर सुमित्रा ने चरु का जो अंश खाया था वह पहले कोसल्या और केकयी को दिया गया था और उन्हीं दोनों से सुमित्रा को मिला था, इसीलिये लक्ष्मण का नाम श्रेमानुर पड़ा ।

श्रेमासिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० श्रेमासिकी] हर तीसरे महीने होनेवाला । जो हर तीसरे महीने हो । जैसे, श्रेमासिक पत्र ।

श्रेमास्य—संज्ञा पुं० [सं०] तीन महीने का समय [को०] ।

श्रेयंबक^१—संज्ञा पुं० [सं० श्रेयम्बक] एक प्रकार का होम ।

श्रेयंबक^२—वि० [सं०] श्रेयंबक संबंधी । जैसे, श्रेयंबक बलि ।

श्रेयंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रेयम्बिका] गायत्री ।

त्रैराशिक—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें तीन ज्ञात राशियों की सहायता से चौथी अज्ञात राशि का पता लगाया जाता है।

त्रैलोक्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

त्रैलोक्य^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रैलोक्य'।

त्रैलोक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक। २. २१ माताओं का कोई छंद।

त्रैलोक्यकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० त्रैलोक्यकर्तृ] शिव [को०]।

त्रैलोक्यचिन्तामणि—संज्ञा पुं० [सं० त्रैलोक्यचिन्तामणि] १. वैद्यक में एक प्रकार का रस जो सोने, चांदी और अन्नक के मेल से बनाया जाता है।

विशेष—इसका व्यवहार सय, साँसी, प्रमेह, जीर्णज्वर और उन्माद आदि रोगों में किया जाता है।

२. वैद्यक में एक प्रकार का रस जो हीरे, सोने और मोती के संयोग से बनाया जाता है।

त्रैलोक्यनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] राम [को०]।

त्रैलोक्यबंधु—संज्ञा पुं० [सं० त्रैलोक्यबंधु] सूर्य [को०]।

त्रैलोक्यविजया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंग।

त्रैलोक्यसुन्दर—संज्ञा पुं० [सं० त्रैलोक्यसुन्दर] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, अन्नक, लोहे आदि के संयोग से बनाया जाता है।

विशेष—इसका व्यवहार शोथ, पांडू और ज्वरातिसार आदि रोगों में होता है।

त्रैवर्गिक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० त्रैवर्गिकी] वह कर्म जिससे धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की साधना हो।

त्रैवर्ण्य—वि० [सं०] ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों से संबंधित [को०]।

त्रैवर्णिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० त्रैवर्णिका] ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों जातियों का धर्म।

त्रैवर्णिक^२—वि० [सं०] तीन वर्णों संबंधी।

त्रैवर्षिक—वि० [सं०] तीन वर्ष का [को०]।

त्रैवार्षिक—वि० [सं०] [स्त्री० त्रैवार्षिकी] जो तीन वर्षों में प्रयत्न कर तीसरे वर्ष हो। तीन वर्ष संबंधी।

त्रैविक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० त्रैविक्रमी] विष्णु।

त्रैविद्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीनों वेदों की जाननेवाला मनुष्य। २. तीनों वेद [को०]। ३. तीन वेदों का अध्ययन [को०]। ४. तीन वेदों की जाननेवाले ब्राह्मणों की संख्या [को०]।

त्रैविष्टप—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में रहनेवाले देवता।

त्रैविष्टपेय—संज्ञा पुं० [सं०] देवता [को०]।

त्रैवेदिक—वि० [सं०] तीन वेदों संबंधी [को०]।

त्रैशंकव—संज्ञा पुं० [सं० त्रैशंकव] त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चंद्र [को०]।

त्रैसतपु—वि० [सं० त्रि + हि० सत] तीन और सात का योग। षड। उ०—त्रैसत बंगुल बंदरि तैसानु।—प्राण, पृ० ८८।

त्रैसाणु—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार तुर्वंसु वंश के राजा गोभानु के पुत्र का नाम।

त्रैस्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] उदात्त अनुदात्त, और स्वरित तीनों प्रकार के स्वर।

त्रैहायण—संज्ञा पुं० [सं०] तीन वर्ष का समय [को०]।

त्रोटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटक का एक भेद जिसमें ५, ७, ८ या ९ अंक होते हैं और प्रत्येक अंक में विद्युषक रहता है। यह नाटक शृंगाररसप्रधान होता है और इसका नायक कोई दिव्य मनुष्य होता है। २. एक राग का नाम (संगीत)।

त्रोटकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी (संगीत)।

त्रोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कायफल। २. चोंच। ३. एक प्रकार की चिड़िया। ४. एक प्रकार की मछली।

त्रोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. टोटी। टूटोटी। २. दे० 'त्रोटि'।

त्रोण—संज्ञा पुं० [सं०] तरकण।

त्रोतल—वि० [सं०] तोतला। जो बोलने में तुतलाता हो।

त्रोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. अस्त्र। २. चाबुक। ३. एक प्रकार का रोग।

त्रोदश(पु)—वि० [हि०] दे० 'त्रयोदश'। उ०—त्रोदश रातिन सो मत कियऊ।—कबीर सा०, पृ० २६५।

त्र्यंगट—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यङ्गट] १. ईश्वर। २. चंद्रमा। ३. छोटा। सिकहर।

त्र्यंगुल—वि० [सं० त्र्यङ्गुल] जिसकी लंबाई तीन अंगुल हो [को०]।

त्र्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यञ्जन] कालांजन, रसांजन और पुष्पांजन ये तीनों अंजन। काला सुरमा, रसीत और बे फूल जो अंजनों में मिलाए जाते हैं, जैसे, चमेली, तिल, नीम लीप, अमरस्य इत्यादि।

त्र्यंबक—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यम्बक] १. शिव। महादेव। २. ग्यारह रुद्रों में से एक रुद्र।

त्र्यंबकसख—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यम्बकसख] कुबेर।

त्र्यंबका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्र्यम्बका] दुर्गा, जिसके सोम, सूर्य और अनल ये तीनों नेत्र माने जाते हैं।

त्र्यंबुक—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यम्बुक] एक प्रकार की मछिका [को०]।

त्र्यत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। महादेव। २. एक वैद्य जिनका उल्लेख भागवत में है।

त्र्यत्—वि० [सं०] जिसकी तीन आँखें हों। तीन नेत्रोंवाला।

त्र्यक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव [को०]।

त्र्यक्षर—वि० [सं०] दे० 'त्र्यक्षरक'।

त्र्यक्षरक^१—वि० [सं०] तीन अक्षरों का। जिसमें तीन अक्षर हों।

त्र्यक्षरक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रणव। २. तंत्र में वह यंत्र जिसमें तीन अक्षर हों। ३. एक प्रकार का वैदिक छंद।

त्र्यक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी का नाम।

त्र्यधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] तीनों लोकों के स्वामी, विष्णु।

त्र्यध्वगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

अमृतयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का योग

जो कुछ विशिष्ट तिथियों, नक्षत्रों और वारों के संयोग से होता है।

विशेष—यदि रवि या मंगलवार को प्रतिपदा, षष्ठी या एकादशी तिथि और स्वाती, ज्येष्ठा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, अश्लेषा या मूल नक्षत्र हो, शुक्र अथवा सोमवार को द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी तिथि और मद्रा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद या उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र हो, बुधवार को तृतीया, अष्टमी या त्रयोदशी तिथि और मृगशिरा, अश्वि, पुष्य, ज्येष्ठा, भरणी, अभिजित् या अश्विनी नक्षत्र हो, बृहस्पतिवार को चतुर्थी, नवमी या चतुर्दशी तिथि और उत्तराषाढा, विशाखा, अनुराधा, मघा या पुनर्वसु नक्षत्र हो अथवा शनिवार को पंचमी, दशमी, अमावस्या या पूर्णिमा तिथि और रोहिणी, हस्त या अश्लेषा नक्षत्र हो तो अमृत योग होता है। यह योग यात्रा के लिये बहुत उत्तम समझा जाता है और इससे व्यतीपात आदि का डोष भी नष्ट हो जाता है।

अथर्व—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन सदस्यों की शासक सभा। वि० दे० 'दशावरा'।

विशेष—मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लुक ने तीन सभ्यों से ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी का तात्पर्य लिया है।

अथशीति—वि० [सं०] क्रम में तिरासी के स्थान पर पढ़नेवाला। तिरासीवा।

अथशीति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अस्सी और तीन का जोड़। तिरासी। २. तिरासी की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८३।

अथशीति^२—वि० अस्सी और तीन। तिरासी [को०]।

अथश्र^१—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकोण। त्रिभुज [को०]।

अथश्र^२—वि० तीन कोणवाला [को०]।

अथस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकोण।

अथह—संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिन। तीन दिनों का समूह [को०]।

अथहस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] वह सावन दिन जिसे तीन तिथियाँ स्पर्श करती हों।

अथहस्पृश—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो तीन मावण दिनों को स्पर्श करती हो।

विशेष—ऐसी तिथि विवाह, या यात्रा आदि के लिये निषिद्ध है पर स्नान दान आदि के लिये अच्छी मानी जाती है।

अथहिकारिरम—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रम जिसमें प्रधानतः पारा, गंधक, सूतिया और शंख पड़ता है।

विशेष—इसका व्यवहार तिजारी ज्वर में होता है।

अथहीन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

अथहैदिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह गृहस्थ जिसके यहाँ तीन प्रवर हों। त्रिप्रवर हों गोत्र। २. अंधा, बहुरा और गूंगा।

विशेष—इन तीनों को यज्ञ में जाने का अधिकार नहीं है।

अथाहय—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार के पक्षी।

अथाहिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] हर तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। तिजारी।

अथाहिक^२—वि० तीन दिनों में होनेवाला।

अयुषण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अयुषण' [को०]।

अयुषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोंठ, पीपल और मिर्च। त्रिकुटा। २. चरक के अनुसार एक प्रकार का घृत जो इन औषधियों के मेल से बनाया जाता है।

अयोदशी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रयोदशी'। उ०—कृष्ण पक्ष तिथि अयोदशी, शीमवार जुत जानि।—ब्रज०, पृ० १२।

त्वं—सर्व० [सं० त्वम्] तू। तुम। उ०—तत पद त्वं पद और असी पद, बाज लच्छ पहिचाने।—कबीर श०, पृ० ६६।

त्वमय—वि० [सं०] चमड़े या छाल का बना हुआ [को०]।

त्वक्—संज्ञा पुं० [सं०] १. छिलका। छाल। २. त्वचा। चमड़ा। जाल। उ०—कीमलता त्वक् जानत है पुनि, बोखत है मुख सबद उचारो।—संतवाणी०, पृ० १११। ३. पाँच ज्ञानेंद्रियों में से एक जो सारे शरीर के ऊपरी भाग में व्याप्त है।

विशेष—इसके द्वारा स्पर्श होता है तथा कड़े और नरम, ठंडे और गरम आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। हमारे यहाँ प्राचीन ऋषियों ने इसे वायु के मत्वांश से उत्पन्न माना है और इसका देवता वायु बतलाया है।

४. दारचीनी।

त्वक्कंडुर—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्कण्डुर] घाव [को०]।

त्वक्क्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्क्षीर'।

त्वक्क्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन।

त्वक्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरीय वृक्ष। क्षीर कंचुकी।

त्वक्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े को काटना [को०]।

त्वक्तरंगक—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्तरङ्गक] भुर्री [को०]।

त्वक्पंचक—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्पञ्चक] बड़, गूलर, अश्वत्थ, सीरिस और पाकर ये पाँचों वृक्ष।

विशेष—दैनिक में इन पाँचों की छाल का समूह शीतल, लघु, तिक्त तथा व्रण और शोथ आदि का नाशक माना जाता है।

त्वक्पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता। २. दारचीनी [को०]।

त्वक्पत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हिंगुपत्री। २. कदलीस्तंभ। केले का पेड़।

त्वक्पर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्पत्री' [को०]।

त्वक्पाक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें पित्त और रक्त के कुपित होने से शरीर में कुँसियाँ निकल आती हैं।

त्वक्पाशय—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का कलापन [को०]।

त्वक्पुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेहूपाँरोग। २. रोमांच। रोएँ खड़े हो जाना।

त्वक्पुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्पुष्प'।

त्वक्पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्पुष्प'।

त्वक्सार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस। २. दारचीनी। ३. सन का वृक्ष।

त्वक्सारभेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा चैंच ।
 त्वक्सारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन ।
 त्वक्सुगंध—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्सुगन्ध] नारंगी [को०] ।
 त्वक्सुगंधा—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्सुगन्धा] १. एलुवा । २. छोटी हलायची ।
 त्वगंकुर—संज्ञा पुं० [सं० त्वगङ्कुर] रोमांच ।
 त्वग्—संज्ञा पुं० [सं०] 'त्वक्' का समासगत रूप [को०] ।
 त्वगाक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन ।
 त्वगेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वगिन्द्रिय] स्पर्शेंद्रिय [को०] ।
 त्वगंध—संज्ञा पुं० [सं० त्वगन्ध] नारंगी का पेड़ ।
 त्वग्ज—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोम । रोमाँ । २. रक्त । लहू ।
 त्वग्जल—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना [को०] ।
 त्वग्दोष—संज्ञा पुं० [सं०] कोढ़ । कुष्ठ ।
 त्वग्दोषापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची । बाबची ।
 त्वग्दोषारि—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद ।
 त्वग्दोषी—संज्ञा पुं० [सं० त्वग्दोषिन्] कोढ़ी । जिसे कुष्ठ रोग हो ।
 त्वग्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा काटना । चमड़े को छीलकर निकालना [को०] ।
 त्वक्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़ा । २. छाल । बल्कल । ३. दारचीनी । ४. साँप की केंचुली । ५. त्वक् इन्द्रिय । ६. 'त्वक्' ।
 त्वच—संज्ञा पुं० [सं०] १. दारचीनी । २. तेजपत्ता । ३. छाल [को०] ।
 त्वचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खाल से ढाँकना । २. खाल उतारना [को०] ।
 त्वचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्वक् । चर्म । चमड़ा ।
 त्वचापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता । २. दारचीनी । ३. छाल [को०] ।
 त्वचिसार—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस ।
 त्वचिसुगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वचिसुगन्धा] छोटी हलायची ।
 त्वदीय—सर्व० [सं०] [स्त्री० त्वदीया] तुम्हारा ।
 त्वन्निःसृत—वि० [सं० त्वत् + निःसृत] तुम से निकला हुआ । उ०—सुख बना है सवित त्वन्निःसृत नेह ममिय ।—कवासि, पृ० ३८ ।
 त्वम्—सर्व० [सं०] तुम [को०] ।
 त्वर—क्रि० वि० [सं०] शीघ्रतापूर्वक । वेग से [को०] ।
 त्वरण—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'त्वर' [को०] ।
 त्वरणीय—वि० [सं०] जिस शीघ्रता से किया जाय । जिसके करने के लिये शीघ्रता की अपेक्षा हो [को०] ।
 त्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेग । शीघ्रता [को०] ।
 त्वग्—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता । जल्दी ।
 त्वरारोह—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर [को०] ।
 त्वरावान्—वि० [सं० त्वरावत्] [वि० स्त्री० त्वरावती] १. शीघ्र-

गामी । २. शीघ्रता करनेवाला । काम को जल्दी करनेवाला । ३. फुर्तीला । तेज [को०] ।
 त्वरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्वर' ।
 त्वरित—वि० [सं०] वि० स्त्री० त्वरिता । तेज ।
 त्वरित—क्रि० वि० शीघ्रता से । उ०—त्वरित भारती ला, उता लूँ । पद हगंबु से मैं पखार लूँ ।—साकेत, पृ० ३१० ।
 त्वरितक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे तुण्क भी कहते हैं ।
 त्वरितगति—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक षण्मृता का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, नगण और एक गुह होता है । इसका दूसरा नाम 'अमृतगति' भी है । जैसे,—निज नग खोजत हूँ । पयसित लक्ष्मि बरछू । (शब्द) २. तेज चाल ।
 त्वरिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी जिसकी पूजा युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये की जाती है ।
 त्वल्लग—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का साँप ।
 त्वष्टा—संज्ञा पुं० [सं० त्वष्ट] १. विश्वकर्मा । विष्णुपुराण के अनुसार ये सूर्य के सात सारथियों में से एक हैं । २. महादेव शिव । ३. एक प्रजापति का नाम । ४. बड़ई । ५. वृत्रासुर के पिता का नाम । ६. बारह आदित्यों में से ग्यारहवें आदित्य जो भास्विक के अघिष्ठाता देवता माने जाते हैं । ७. एक वैदिक देवता जो पशुओं और मनुष्यों के गर्भ में वीर्य का विभार करनेवाले माने जाते हैं । ८. सुषवर नाम की षण्मृता जाति । ९. चित्रा नक्षत्र के अघिष्ठाता देवता का नाम ।
 त्वष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनु के अनुसार एक संकर जाति । २. बड़ई का घंघा [को०] ।
 त्वष्टर—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वष्ट] ३० 'त्वष्टा' । उ०—हे त्वष्टर । इसको संतान दो ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८१ ।
 त्वाच—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्वाची] त्वचा से संबंधित [को०] ।
 त्वाष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।
 त्वष्ट्रा—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्वष्टा (विश्वकर्मा) का बनाया हुआ हथियार, वज्र । २. वृत्रासुर का एक नाम । ३. चित्रा नक्षत्र ।
 त्वाष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा का एक नाम । जो सूर्य को व्याही थी और जिसके गर्भ से अश्विनीकुमार का जन्म हुआ था । २. चित्रा नक्षत्र ।
 त्विष्टपति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।
 त्विष्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीव्र आघोलन । २. प्रचंडता । ३. घबड़ाहट । परेशानी । ४. वाणी । ५. सोदर्य । ६. प्रभा । चमक [को०] ।
 त्विषांपति—संज्ञा पुं० [सं० त्विषाम्पति] सूर्य [को०] ।
 त्विषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभा । कीर्ति । तेज ।
 त्विषामीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. आक का पेड़ ।

त्विति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किरण । २. शक्ति (की०) ३. चमक । प्रभा (की०) । ४. धोज । तेज । प्रताप (की०) ।

त्वेष—वि० [सं०] तेजस्वी । चमकता हुआ । आभासय [की०] ।

त्वेष्ट्य—वि० [सं०] डरावना । भयावना [की०] ।

थ

थ—हिंदी वर्णमाला का सत्रहवाँ व्यंजन वर्ण और तवर्ग का दूसरा अक्षर । इसका उच्चारण स्थान दंत है ।

थंका—संज्ञा पुं० [?] विसमुक्ता ।

थंड—संज्ञा पुं० [देश०; सं० स्थण्डिल, प्रा० थंडिल] भूमि । स्थान । प्रवेश । उ०—गुन गठि कम्बि आए सु चंड । दिय प्रनंत द्रव्य बीजीउ थंड ।—पु० रा०, ६१ । २४६७ ।

थंडा—वि० [हि० ठंडा] शीतल । ठंडा । उ०—चित सूँ शिव जब मिले तब तनु थंडा होय । 'तुका' मिलना जिन्हासूँ ऐसा बिरला कोय ।—बिक्रमनी०, पु० १०६ ।

थंडिल—संज्ञा पुं० [सं० स्थण्डिल, प्रा० थंडिल] यज्ञ की वेदी ।

थंधा—संज्ञा पुं० [देश० ?] तुरय (ताता येई इत्यादि) । उ०—मंथन करि चाखे नहीं पड़ि पड़ि राखे पंथ । यथ करत पग परत नहि कठिन प्रेम को पंथ ।—ब्रज० प्र०, पु० १४० ।

थंथ—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ, थंभ] १. खंभा । स्तम्भ । उ०—राजकुल कीति थंथ धिर ।—कानन०, पु० २ । २. सहारा टेक । ३. राजपूतों का भेद ।

थंवन—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन, प्रा० थंवन] सहारा । टेक । उ०—घरती थंवन उदित अकाशा । ता पर सूर करे परकाशा ।—धरम०, पु० १७ ।

थंवा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] खंभा । थंभ । थंभ । उ०—माटी की भीत पवन का थंवा, गुन धौगुन से जाया ।—वरिया० बानी, पु० ६५ ।

थंवी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भी] १. लड़ी लकड़ी । २. चाँड़ । सहारे की बल्ली । धूनी ।

थंभ—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] खंभा । उ०—जंघन को कवली सम जानै । अथवा कनक थंभ सम मानै ।—सूर (शब्द०) ।

थंभन—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन] १. रकाबट । ठहराव । २. तंत्र के छह प्रयोगों में से एक । दे० 'स्तम्भन' । ३. वह घोष जो शरीर से निकलनेवाली वस्तु (जैसे, मल, मूत्र, बुद्धि इत्यादि) को रोके रहे ।

थौं—जलथंभन = वह मंत्रप्रयोग जिसके द्वारा जल का प्रवाह वा बरसना आदि रोक दिया जाय । अहिथंभन = घरती को स्थिर रखना । पुष्टी को रोकना । पुष्टी को रोकना या पहाना । उ०—अमरित पय मिलि अरुहि बच्छ महिथंभन जावहि । हिहुहि मधुर न देहि कटुक तुरकहि न पियावहि ।—अकबरी०, पु० ३३३ ।

४-६५

त्सरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. तलवार का मूठ । २. मर्प ।

त्सरुमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार की नड़ाई [की०] ।

त्सारुक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तलवार चलाने में निपुण हो ।

थंभनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भनी] योग में एक तत्त्व या धारणा । योग की धारणाओं में से प्रथम धारणा । उ०—पहिनी । धारणा थंभनी, दूत्री द्रावण होय । तीजी दहिनी जानिए चौथि भ्रामिनी सोय ।—अष्टांग०, पु० ८६ ।

थंभा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] दे० 'थंभ' उ०—जल की भीत भीत जल भीतर, पवन भवन का थंभा री ।—संत गुरमी०, पु० २३४ ।

थंभित—वि० [सं० स्तम्भित] १. रुका हुआ । ठहरा हुआ । अड़ा हुआ । २. अचल । स्थिर । ३. भय या आश्चर्य से निश्चल । ठक ।

थंभिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भिनी] योग की एक धारणा । उ०—यह एक थंभिनी एक द्रावणी एक सु दहिनी कहिए । पुनि एक भ्रामिणी एक शोषणी सदगुह बिना न लहिए ।—मुंदर० प्र०, भा० १, पु० ५२ ।

थंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भी, प्रा० थंभ, थंभ + ई (प्रत्य०)] चाँड़ । सहारे का खंभा । दे० 'थंवी' । उ०—निकमि गइ थंभी ठहि परा मंदिर, रलि गया चिक्कड़ गारा ।—संतवाणी०, भा० २, पु० ८ ।

थंभना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन] दे० 'थंभन' ।

थंभवाना—क्रि० प्र० [हि० थंभना] दे० 'थंभन' ।

थंभाना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन] दे० 'थंभन' ।

थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षण । २. मंगल । ३. भय । ४. पर्वत । ५. भयरक्षक । ६. एक व्याधि । ७. भक्षण । आहार ।

थई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाँव, ठाँई] १. ठाँव । जगह । २. डेर । घाटाला ।

थइली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'थेली' ।

थक—संज्ञा पुं० [सं० थका] दे० 'थाक' ।

थकन—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] दे० 'थकान' ।

थकना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भ वा स्था + करण < √कृ, प्रा० ब्रकन अथवा देश०] १. परिश्रम करने करते और परिश्रम के योग्य न रहना । मिहनत करते करते हार जाना । जैसे, चलते चलते या काम करने करने थक जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. रुक जाना । हैरान हो जाना । जैसे—कहते कहते थक गए पर वह नहीं मानता ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. बुढ़ापे से प्रशक्त होता। बुढ़ापे के कारण काम करने के योग्य न रहना। जैसे,—प्रब वे बहुत थक गए, घर ही पर रहते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

४. मंढा पड़ जाना। चलता न रहना। घीमा पड़ जाना। ढोला होना या रुक जाना। जैसे, कारबार का थक जाना, रोजगार का थक जाना। ५. मोहित होकर प्रचल हो जाना। मुग्ध होना। लुभाना। उ०—(क) थके नयन रघुपति छवि देखी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) थके नारि नर प्रेम पियासे।—तुलसी (शब्द०)।

थकरा—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकावट। थकान।

थकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्रियों के बाल झाड़ने की लस की कूँची।

थकान—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकने का भाव। थकावट। शिथिलता।

थकाना—क्रि० स० [हि० थकना] १. श्रान्त करना। शिथिल करना। परिश्रम कराते कराते प्रशक्त कराना। २. हराना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

थका मँदा—वि० [हि० थकना] परिश्रम करते करते प्रशक्त। श्रान्त। श्रमित।

थकार—संज्ञा पु० [सं०] 'थ' अक्षर या वर्ण।

थकावा—संज्ञा पु० [हि० थकना] थकावट। शिथिलता।

थकावट—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकने का भाव। शिथिलता। क्रि० प्र०—माना।

थकाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना + घाहट (प्रत्य०)] दे० 'थकावट'। उ०—रोने से जमके चेहरे पर जो थकाहट छप गई थी, उसने उसकी शोभा और भी निमन कर रखी थी।—शराबी, पृ० ३२।

थकित—वि० [हि० थकना प्रथवा सं० स्या (= स्थिर) + कृत] १. थका हुआ। श्रान्त। शिथिल। २. मोहित। मुग्ध। उ०—थकित भई गोपी लखि स्यामहि।—सूर (शब्द०)।

थकिया—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] १. किसी गाड़ी जीज की जमी हुई मोटी लह। २. गली हुई धातु का जमा हुआ लोटा।

यो०—थकिया की चाँदी = गलाकर साफ की हुई चाँदी।

थकैनी—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] दे० 'थकावट'।

थकीही—वि० [हि० थकना] [वि० स्त्री० थकीही] कुछ थका हुआ। थकामँदा। शिथिल। उ०—रग थिरकीहैं प्रचलुले बेह थकीहे डार। मुरत सुखित भी देखियत दुखित गरम के मार।—बिहारी (शब्द०)।

थकना(पु)—क्रि० प्र० [प्रा० थक] दे० 'थकना'। उ०—सबै सेल फिरि थकि कहै काह न रखायब।—ह० रासो, पृ० ५५।

थका—संज्ञा सं० [सं० स्या + क, बँग० थकना (= ठहरना)] [स्त्री० थकनी, थकिया] १. किसी गाड़ी जीज की जमी हुई मोटी लह। जमा हुआ कतरा। मंठी। जैसे, दही का थका,

खून का थका। २. गली हुई धातु का जमा हुआ कतरा। जैसे, चाँदी का थका।

थगित—वि० [प्रा० थक, हि० थकित] १. ठहरा हुआ। रुका हुआ। २. शिथिल। ढोला। मंद।

थट, थट्ट—संज्ञा पु० [देशी० थट्ट] धूँध। समूह। ठट्ट। फुँड। उ०—(क) एक समय घाखेट, राव खेलन बन आए। सकल सुभट घट संग, बीर बाने जु बनाए।—ह० रासो, पृ० १३। (ख) रहैं सुभट थट्ट प्रथिराज संग।—पृ० रा०, ६। ३।

थेछ—संज्ञा पु० [देशी०] समूह। धूँध। फुँड।

थका—संज्ञा पु० [सं० स्थल] १. बैठने की जगह। बैठक। २. दूकान की गद्दी।

थगुसुत(पु)—संज्ञा पु० [सं० स्यागु (= शिव), प्रा. थगु, थगु हि० थगु + सं० सुत] शिव के पुत्र। १. गणेश। २. कार्तिकेय। स्कंद।

थती—संज्ञा स्त्री० [हि० थाती] दे० 'थाती'।

थतिहारा—संज्ञा पु० [हि० थाती + हार (प्रत्य०)] वह जिसके पास थाती रखी हो।

थत्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० थाती] डेर। राशि। घटाला। जैसे, खपवों की थत्ती।

थथोलना—क्रि० स० [हि० टटोलना] हुँडना। खोजना।

थन—संज्ञा पु० [सं० स्तन, प्रा० थण] १. गाय, भैंस, बकरी इत्यादि चौपायों का स्तन। चौपायों की धूँधी। उ०—मंडा पाले काछुई, बिन थन राखे पोख।—संतवाणी०, पृ० २२। २. स्त्रियों का स्तन। उ०—उठे थन धोर बिराजत नाम। धरें मनु हाटक सालिगराम।—पृ० रा०, २१। २०।

थनइला—संज्ञा पु० [हि० थन] दे० 'थनेल'।

थनकुद्दी—संज्ञा पु० [देश०] एक छोटी नीले रंग की चमकीली चिड़िया जो कोड़े मकोड़े खाती है। इसका रंग बहुत सुंदर होता है।

थनगन—संज्ञा पु० [बरमी] एक बड़ा पेड़ जो बरमा, बरार और मलाबार में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत में लगती है।

थनटुट्ट—संज्ञा स्त्री० [हि० थन + टूटना] वह स्त्री जिसके स्तन में दूध पाना बंद हो गया हो।

थनथाई—वि० [सं० स्तनस्थानीय] एक ही स्तन जिनका स्थान हो। एक स्तन का दूध पीनेवाला। धायभाई। समोत्रीय। कोका। उ०—करि सलाम हुस्सेन पना बंधी दिसि भाई। सजरा बंधे कंठ सहं सजे थनथाई।—पृ० रा०, ७। १३४।

थनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तन] १. स्तन के आकार की थेलियाँ जो बकरियों के गले के नीचे लटकती हैं। गलथना। २. हाथियों के कान के पास थन के आकार का निकला हुआ मांस का प्रंकुर जो एक ऐब समझा जाता है। ३. घोड़े की भित्ति में थन के आकार का लटकता हुआ मांस जो एक ऐब समझा जाता है।

थनु—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'थन'।

थनेला—संज्ञा पुं० [हि० थन + एला (प्रत्य०)] [स्त्री० थनेली] १. एक प्रकार का फोड़ा जो स्त्रियों के स्तन पर होता है। इसमें सूजन और पीड़ा होती है और भाव हो जाता है। २. गुबरेले की जाति का कीड़ा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह गाय, भैंस आदि के थन में डंक मार देता है जिससे दूध सूख जाता है।

थनेल—संज्ञा पुं० [हि० थान] १. गाँव का मुखिया। २. वह ब्राह्मण जो जमींदार की ओर से गाँव का लगान वसूल करे।

थनेला—संज्ञा स्त्री० [हि० थन + ऐल (प्रत्य०)] वह जिसका थन भारी हो (गाय आदि)।

थनेला—संज्ञा पुं० [हि० थन + ऐला (प्रत्य०)] दे० 'थनेला'।

थनेली—संज्ञा स्त्री० [हि० थन + ऐली (प्रत्य०)] दे० 'थनेला'।

थन्न(५)—संज्ञा पुं० [सं० स्थान] दे० 'थान'। उ०—देव काल संजोग तपे दिल्ली घर थन्नो।—पृ० रा०, १। ७०२।

थपकना—क्रि० सं० [अनु० थप थप] १. प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये किसी के शरीर पर धीरे धीरे हाथ मारना। हाथ से धीरे धीरे ठोकना। जैसे, सुनाने के लिये बच्चे को थपकना। २. धीरे धीरे ठोकना। जैसे, धागे से गन्ध थपकना। ३. पुचकारना या दम दिलासा देना। ४. किसी का क्रोध ठंडा करना। शांत करना।

थपका—संज्ञा पुं० [हि० थपकना] दे० 'थपकी'।

थपकी—संज्ञा स्त्री० [हि० थपकना] १. किसी के शरीर पर (प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये) हथेली से धीरे धीरे पहुँचाया हुआ आघात। २. हाथ से धीरे धीरे ठोकने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना। उ०—थपकी देने लगीं तरंगें मार थपके।—साकेत, पृ० ४१३।—लगाना।

२. हाथ के झटके से पहुँचाया हुआ कड़ा आघात। ३. जमीन को पीटकर खोद करने की मुँगरी। ४. थापी। ५. घोड़ियों का मुँगरा या डंडा जिससे वे घाते समय भारी कपड़ों को पीटते हैं।

थपड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थप थप] १. दोनों हथेलियों को एक दूसरे से जोर से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करने की क्रिया। ताली।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

मुहा०—थपड़ी पीटना या बजाना = जोर जोर से हँसी करना। उपहास करना। दिलगो उड़ाना।

२. थाली बजने का शब्द। ३. बेसन की पूरी जिसमें हींग, जीरा और नमक पड़ा रहता है।

थपथपी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थप थप] दे० 'थपकी'।

थपन(५)—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] स्थापन। ठहराने या जमाने का काम। उ०—उषे थपन थिर थपेउ थपनहार केसरीकुमार बल अपनी सँभारिये।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—थपनहार = स्थापित या प्रतिष्ठित करनेवाला।

थपना(५)—क्रि० सं० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना। बैठाना। ठहराना। जमाना। २. प्रतिष्ठित करना।

थपना^२—क्रि० प्र० १. स्थापित होना। जमाना। ठहरना। २. प्रतिष्ठित होना।

थपना^३—क्रि० सं० [अनु० थप थप] धीरे धीरे पीटना या ठोकना।

थपना^४—संज्ञा पुं० १. पत्थर, लकड़ी आदि का धोआर या टुकड़ा जिससे किसी वस्तु की पीटें। पीटना। २. थापी।

थपरा^५—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'थप्पड़'।

थपाना(५)—क्रि० सं० [थपना] स्थापित कराना। स्थित कराना। उ०—अगन्नाथ कहें दोन्ह थपाई। तब हम चल खेदवारे भाई।—कबीर सा०, पृ० १६२।

थपुआ—संज्ञा पुं० [हि० थपना (= पीटना)] छाजन का वह खपड़ा जो चौड़ा, चौरस और चिपटा हो। अर्थात् नाली के आकार का न हो जैसी कि तरिया होती है।

विशेष—खपरेल में प्रायः थपुआ और तरिया दोनों का मेल होता है। दो थपुओं के जोड़ के ऊपर तरिया ओधी करके रखी जाती है।

थपेटा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'थपेड़ा'।

थपेकना—क्रि० सं० [हि०] थपेड़ा देना। थपेड़ा लगाना।

थपेड़ा—संज्ञा पुं० [अनु० थप थप] १. हथेली से पहुँचाया हुआ आघात। थप्पड़। २. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का आघात। थक्का। टक्कर। जैसे, नदी के पानी का थपेड़ा। उ०—थपकी देने लगी तरंगें मार थपेड़े।—साकेत, पृ० ४१३।

क्रि० प्र०—लगाना।—मारना।

थपोड़ी^५—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'थपकी'।

थप्पा—संज्ञा पुं० [अनु०] थप् का सा शब्द। उ०—थप् थप् थन-वार कड सुनि रोमांचित संग।—कीर्ति०, पृ० ८४।

थप्पड़—संज्ञा पुं० [अनु० थप थप] १. हथेली से किया हुआ आघात। तमाचा। भापड़। थपेट।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

मुहा०—थप्पड़ कसना, देना, लगाना = तमाचा मारना। भापड़ मारना।

२. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का आघात। थक्का। जैसे, पानी के हिलोर का थप्पड़, हवा के झोके का थप्पड़। ३. दाढ़ या फुंसियों का छत्ता। चकता।

थप्पण—क्रि० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] स्थापित करनेवाला। बसानेवाला। रक्षा करनेवाला। उ०—साहा ऊप थप्पणो, पढ़ तरनाही पत्र।—रा०, क०, पृ० १०।

थप्पन—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] स्थापन। स्थापित करना। उ०—नृपति को थप्पन उत्पन्न समर्थ सनुसाल सुत करे करतुति चिरा चाह की।—मति० प्र०, पृ० ३७२।

थप्परि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] न्यास। धरोहर। उ०—राज सुनो चालुक कहै है थप्परि इह कंठ। राति परी जुध नहि करे प्राप्ति करे फिर जुद्ध।—पृ० रा०, १। ४६१।

थप्पा—संज्ञा पुं० [लङ्] एक प्रकार का जहाज।

थविर—वि०, संज्ञा पु० [सं० स्थविर, प्रा० थविर] दे० 'स्थविर'।—
सावयधम्म दोहा, पृ० १२८।

थम—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] १. खंभा। लाट। स्तंभ।
धुनी। उ०—धरती पैठि गगन थम रोपी इस बिधि बन
पेढ वेलो।—रामानंद०, पृ० १५। २. केलों की पेड़ी। ३.
छोटी छोटी पूरियाँ और हलुआ जिसे देवी को चढ़ाने के लिये
स्त्रियाँ ले जाती हैं।

थमकाना—क्रि० सं० [हि० थमकना या ठमकना का प्रे० रूप]
स्तंभित करना। रोकना। उ०—साँस को थमका कर सारे
बदन को कड़ा किया और जंभाई ली।—नई०, पृ० ६६।

थमकारी—वि० [सं० स्तम्भकारिन्] स्तंभन करनेवाला। रोकने-
वाला। उ०—मन बुधि चित्त अहंकार दखें इन्द्रिय प्रेरक
थमकारी।—सूर (शब्द०)।

थमना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन (= रुकना)] १. रुकना। ठहरना।
चलता न रहना। जैसे, गाड़ी का थमना, कोल्हू का थमना।
२. जारी न रहना। बंद हो जाना। जैसे, मेह का थमना,
घाँसुओं का थमना। ३. खोज धरना। सज्ज करना। ठहरा
रहना। उतावला न होना। जैसे,—थोड़ा थम जाओ, चलते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

थमुआ—संज्ञा पु० [हि० थामना] नाव के डोंड़े का हस्ता।

थम्मा—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भ] [स्त्री० थम्भी] दे० 'थंभ'। उ०—(क)
थम्मा के गलि लागई यहि सिर पर अगनि प्रंगाक।—प्राण०,
पृ० २४४। (ख) काम बिरह की त्राठी बाधा। बिरह
अग्नि की थम्मी बाधा।—प्राण०, पृ० १५२।

थर^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर] तह। परत।

थर^२—संज्ञा पु० [सं० स्थल] १. दे० 'थल'। उ०—एहि थर बनी
क्रीड़ा गजमोचन और अनंत कथा नृति गई।—सूर०, ११६।
२. बाघ की मंदि।

थरक—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'थिरक'।

थरकना—क्रि० प्र० [अनु० थर थर + करना] थराना। डर से
काँपना। उ०—बंक हग बदन मयंक बारे थंक भरि थंग
मे ससंक परथंक थरकत है।—देव (शब्द०)।

थरकाना—क्रि० सं० [हि० थरकना] डर से काँपना।

थरकुलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० थाली] दे० 'थलिया'।

थर थर^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] डर से काँपने की मुद्रा।

मुद्रा०—थर थर करना = डर से काँपना।

थर थर^२—क्रि० वि० काँपने की पूरी मुद्रा के साथ। जैसे,—वह डर
के मारे थर थर काँपने लगा। उ०—थर थर काँपहि पुर नर
नारी।—तुलसी (शब्द०)।

थरथर काँपनी—संज्ञा स्त्री० [हि० थरथर + काँपना] एक छोटी
बिड़िया जो बैठने पर काँपती हुई मालूम होती है।

थरथराट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० थरथराना] थरथराहट। काँपकपी।
उ०—थरथराट उप्पनी तज्यो भवकोट कामकृत।—पृ०
२१०, ६१। १८०।

थरथराना—क्रि० प्र० [अनु० थर थर] १. डर के मारे काँपना। २.

काँपना। उ०—सारी जल बीच प्यारी पीतम के मंज लायी
चंद्रमा के चार प्रतिबिंब ऐसी थरथरात।—शृंगारसुधाकर
(शब्द०)।

थरथराहट—संज्ञा स्त्री० [हि० थरथराना] काँपकपी जो डर के
कारण हो।

थरथरी—संज्ञा स्त्री० [अप० थर थर] काँपकपी जो डर के कारण हो।

क्रि० प्र०—छूटना।—सगनः।

थरथर(पु)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'थर थर'। उ०—थरथर
काहर जाहर मकि।—प० रासो, पृ० ४२।

थरना^१—क्रि० सं० [सं० थुर्व, हि० थुरना] हथौड़ी आदि से धातु पर
चोट लगाना।

थरना^२—संज्ञा पु० सुनारों का एक मोजार जिसमें वे पत्ती की नक्काशी
बनाते हैं।

थरना^३—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर, प्रा० स्थर, थर] फैलना। उ०—
कारी घटा डरावनी आई। पापिनि साँपनि सी थरि छाई।—
नंद० ग्रं०, पृ० १६१।

थरपना—क्रि० सं० [सं० स्थापन] स्थापित करना। प्रतिष्ठित
करना। स्थापना। उ०—दरिया साँचा सूरमा, थरि बल
घाले चुर। राज थरपिया राम का, नगर बसा भरपूर।—
दरिया० बानी, पृ० १३। (ख) बंधन जाल जुक्त जम दीनी,
कीनी काल थरपना।—तुरसी० शं०, पृ० २२६।

थरमस—संज्ञा पु० [अं०] एक प्रकार का पात्र जिसमें वस्तुओं का
तापमान देर तक सुरक्षित रहता है।

थरसना—क्रि० प्र० [सं० त्रसन] थराना। काँपना। त्रास पाना।
उ०—घनमानंद कीन मनोली दसा मति आवरी बावरी हूँ
थरसे।—रसखान०, पृ० ५३।

थरहरना—क्रि० प्र० [देशी थरहर] हिलना हलना। थरथराना।
काँपना। उ०—ताजान पर कलंगी थरहरई। सुपन बलबल
सोभा करई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७०५।

थरहराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'थरथराना'।

थरहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० थरहरना] काँपकपी जो डर के कारण
हो। उ०—सारी निदाघी दुपहरी तपनि भरी बन गेह। हहा
धरी यह कहि कहा परी थरहरी देह।—स० सप्तक, पृ० २७६

थरहाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एहसान। जिहोरा।

थरि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] १. बाघ आदि की मंदि। पुर। उ०—
सिंह थरि जाने बिन जावनी जंगल मठी, हठी यज एहि
पठाय करि भटक्यो।—भूषण ग्रं०, पृ० १२। २. स्थली।
आवास स्थान। रहने की जगह। उ०—जो लंगि केरि मुकुति
है परों न पिजर माहूँ। जाउँ वेगि थरि आपनि है कहीं बिरक
वनाहूँ।—पदमावत, पृ० ३७३।

थरिया—संज्ञा स्त्री [सं० स्थालिका] दे० 'थाली'।

थरु—संज्ञा पु० [सं० स्थल] दे० 'थल'।

थरुलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० थाली] छोटी थाली।

थरुहट—संज्ञा पु० [देश० थारु] थरुओं की बस्ती।

थरुहटी—संज्ञा स्त्री० [देश० थारु] थारु जाति की बोली। उ०—भीतरी मधेश की निचली तलहटी में 'थरुहटी' बोली है, जिसे थारु लोग बोलते हैं।—नेपाल, पृ० ६८।

थरु—वि० [थं०] तृतीय। तीसरा।

थर्मामोटर—संज्ञा पुं० [थर्म०] सरदी गरमी नापने का यंत्र। दे० 'तापमान'।

थराना—क्रि० प्र० [प्रनु० थरथर] डर के मारे कांपना। दहलना। जैसे,—बहु शेर को देखते ही थर्रा उठा।

थंयो० क्रि०—उठना।—जाना।

थल—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] १ स्थान। जगह। ठिकाना। उ०—सुमति भूमि थल हृदय प्रगाध। वेद पुरान उदधि घन साधु।—मानस, १। ३६।

मुहा०—थल बैठना या थल से बैठना = (१) प्याराम से बैठना। (२) स्थिर होकर बैठना। शांत भाव से बैठना। जमकर बैठना। घासन जमाकर बैठना।

२. सुखी धरती। वह जमीन जिसपर पानी न हो। जल का उलटा। जैसे,—(क) नाव पर से उतर कर थल पर घाना। (ख) दुर्योधन को जल का थल और थल का जल दिखाई पड़ा। ३. थल का मार्ग।

थो०—थलचर। थलवेड़ा। जलथल।

४. ऊँची धरता या टीला जिसपर बाढ़ का पानी न पहुँच सके। ५. वह स्थान जहाँ बहुत सी रेत पड़ी गई हो। झड़। थली। रेगिस्तान। जैसे, थर परखर। ६. बाध की माँद। चुर। ७. बादले का एक प्रकार का गोल (चमत्ती के बराबर का) साज जिसे बच्चों की टोपी प्रादि पर जब चाहें तब टाँक सकते हैं। ८. फोड़े का लाल और सूजा हुआ घेरा। द्रणमंडल। जैसे, फोड़े का थल बाँधना।

क्रि० प्र०—बाँधना।

थलकना—क्रि० प्र० [सं० स्थूल, हि० थूला, थुलथुल] १. कसा या तना न रहने के कारण झोल जाकर हिलना या फूलना पचकना। झोल पड़ने के कारण ऊपर नीचे हिलना। उ०—थोँद थलकि बर जाल, मनो मृदंग मिलावनो।—नंद० प्र०, पृ० १३४। २. मोटाई के कारण शरीर के मांस का हिलने डोलने में हिलना। थलथल करना।

थलचर—संज्ञा पुं० [सं० स्थलचर] पृथ्वी पर रहनेवाले जीव। उ०—जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।—मानस, १। ३१।

थलचारी—वि० [सं० स्थलचारिण] भूमि पर चलनेवाले।

थलज—वि० [सं० स्थल + ज] स्थल पर उत्पन्न। उ०—थलज जलज जलमलत ललित बहु भँवर उड़ावे। उड़ि उड़ि परत पराग कछु छवि कहत न भावे।—नंद० प्र०, पृ० २६।

थलथल—वि० [सं० स्थूल, हि० थूला] मोटाई के कारण झूलता या हिलता हुआ।

मुहा०—थलथल करना = मोटाई के कारण किसी वस्तु का

झूल झूलकर हिलना। जैसे,—चलने में उसका पैर थलथल करता है।

थलथलाना—क्रि० [हि० थूला] मोटाई के कारण शरीर के मांस का झूलकर हिलना।

थलपति—संज्ञा पुं० [सं० स्थल + पति] राजा। उ०—स्रवन नमन मन लगे सब थलपति तायो।—तुलसी (शब्द०)।

थलवेड़ा—संज्ञा पुं० [हि० थल + वेड़ा] नाव या जहाज ठहरने की जगह। नाव लगने का घाट।

मुहा०—थलवेड़ा लगना = ठिकाना लगना। आश्रय मिलना। थल वेड़ा लगाना = ठिकाना लगाना। आश्रय ढूँढ़ना। सहारा देना।

थलभारी—संज्ञा पुं० [हि० थल + भारी] पालकी के कहारों की एक बोली जिससे वे पिछले कहारों को घाले रेतिले मैदान का होता सूचित करते हैं।

थलराना—क्रि० प्र० [हि० दुखराना] प्रसन्न करना। प्रसन्न बनाना। उ०—नेह नवोढ़ा नारि की बारि बाह का न्याय। थलराए नै पाइए, नीपीडे न रसाय।—नंद० प्र०, पृ० १४१।

थलरुह(पु)—वि० [सं० स्थलरुह] धरती पर उतरने वाले जंतु वृक्ष प्रादि। उ०—जल थलरुह फल फूल सलिल सब करत पेम पहनाई।—तुलसी (शब्द०)।

थलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थालिका] थाली। टाठी।

थली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] १. स्थान। जगह। जैसे, पर्वतथली, बनथली। २. जल के नीचे का तल। ३. ठहरने या बैठने की जगह। बैठक। उ०—थली में कोई सरदार था, उसके पास एक वैष्णव साधु आ गया।—कबीर सा०, पृ० ६७२। ४. परती जमीन। ५. बातू का मैदान। रेतिली जमीन। ६. ऊँची जमीन या टीला।

थवई—संज्ञा पुं० [सं० स्थपति, प्रा० यवई] मकान बनानेवाला कारीगर। ईंट पत्थर की जोड़ाई करनेवाला शिल्पी। राज। मेमार।

थवन—संज्ञा पुं० [देश०, या सं० स्थान] दुलहिन की तीसरी बार अपने पति के घर की यात्रा।

थसकना—क्रि० प्र० [थं०] नीचे की ओर दबना। धसकना।

थवना—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हि० थपना] जुलाहे के उपयोग में आनेवाला कच्ची मिट्टी का एक गोला जिसमें लगी हुई लकड़ी के छेद में चरखों की लकड़ी पड़ी रहती है। इस चरखों के घूमने से नारी भरी जाती है (जुलाहे)।

थह—संज्ञा पुं० [देश०] निवास। निलय। स्थान। गुफा। माँद। उ०—(क) कानन सदन सभरत कूह कलह घापेट। थह सुतो वर जगयो सिधु उपति घटि पेट।—पू० रा०, १७। ४। (ख) जानै नह थह मै जितै सक हाथल साहुन।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० १३।

थहण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, प्रा० थल, अथवा देशी थह] स्थान। उ०—कमठ पीठ कलमलिय थहण ठलमलिय सुवर थिर।—रघु० क०, पृ० ४२।

थहना^७—क्रि० स० [हि० थाह] थाह लेना । पता लगाना ।
उ०—यथा थाह यहो नहि जाई । यह पीरे बहु पीर रहाई ।
—कबीर (शब्द०) ।

थहरना—क्रि० प्र० [धनु०] कापना । थहराना । उ०—उत गोल
कपोलन पे प्रति लोल प्रमोल लली मुक्ता यहरे ।—प्रेमघन०,
भा० १, पृ० १३२ ।

थहराना—क्रि० प्र० [धनु० घर घर] १. दुबंलता या भय से भंगों
का कापना । कमजोरी या डर से बदन का कापना ।
२. कापना ।

थहाना—क्रि० स० [हि० थाह] १. गहराई का पता लगाना ।
थाह लेना । उ०—(क) सूर कहो ऐसो को त्रिभुवन आवै
सिधु थहाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) तुलसी तीरहि के
बले समय पाइबो थाह । थाह न जाइ थहाइबो सर सरिता
प्रवगाह ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—हासना ।—देना ।—लेना ।

२. किसी की विद्या बुद्धि या भीतरी अभिप्राय आदि का पता
लगाना ।

थहारना—क्रि० स० [हि० ठहराना] जहाज को ठहराना ।

थांग—संज्ञा स्त्री० [हि० धान] चोरों या डाकुओं का गुप्त स्थान ।
चोरों के रहने की जगह । २. खोज । पता । सुराग (विशेषतः
चोर या लोई हुई वस्तु आदि का) ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

१. भेद । गुप्त रूप से लगा हुआ किसी बात का पता । जैसे,—
बिना थांग के चोरी नहीं होती । ४. सहारा । आश्रय स्थान ।
उ०—प्रति उमगी री भान प्रीति नदी सु प्रगाध जल । धार
माँझ ये प्राण, वरस धाँग त्रिन नाहि कल ।—अज० प्र०,
पृ० ४ ।

थांगी—संज्ञा पुं० [हि० थांग] १. चोरी का माल मोल लेने या
अपने पास रखनेवाला आदमी । २. चोरों का भेदिया । चोरों
को चोरी के लिये ठिकाने आदि का पता देनेवाला मनुष्य ।
३. चोरी के माल का पता लगानेवाला आदमी । जासूस ।
४. चोरों का प्रहरी रखनेवाला आदमी । चोरों के गोल
का सरदार ।

थांगीदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० थांग + का० दार] थांग का काम ।

थाँटा—वि० [देश०] शीतल । प्रसन्न । ठंडा । उ०—पैड पैड ज्योरा
पिमणु त्योरी कहवा बंण । जग जाँचूँ देखे जले नहि थाँटा हूँ
नैण ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ७६ ।

थाँण—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, था० थाण] स्थान । ठिकाना ।
उ०—थाँणो प्रायो राय प्राणयो ।—बी० रासो, पृ० १०७ ।

थाँभ—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] १. खंभा । २. धूनी । चौड़ । उ०—
धाम नाहि उठि सकै न धूनी ।—जायसी प्र०, पृ० १५७ ।

थाँभना—क्रि० स० [हि० धाम] दे० 'थामना' ।

थाँभा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] खंभा । स्तंभ । उ०—कोई सज्जन

आविया, बाँह की जोती बाट । यामा नाचइ घर हँसइ खेलण
सागी साट ।—ढोला०, पृ० ५४१ ।

थाँबिला—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हि० थल] बहु घेरा या गढ़ा जिसमें
कोई पौधा लगा हो । थाला । झालवाल । उ०—संतालों के
मोझा के घर तुलसी का थाँबिला होता है ।—प्रा० भा० प०,
पृ० २० ।

था—क्रि० प्र० [सं० स्था] है शब्द का भूतकाल । एक शब्द जिससे
भूतकाल में होना सूचित होता है । रहा । जैसे,—वह उस
समय वहाँ नहीं था ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग भूतकाल के भेदों के ऊपर बनाने में
भी संयुक्त कर से होता है । जैसे, जाता था, आया था, आ
रहा था, इत्यादि ।

थाइका—वि० [सं० स्थायी ?] थाई । स्थायी । उ०—हावनि बहु
भावनि करति मनसिज मन उपजाइ । दाइल वह थाइल करत
पाइल पाइ बजाइ ।—स० सतक, पृ० ३६५ ।

थाई^१—वि० [सं० स्थायिन्, स्थायी] बना रहनेवाला । स्थिर-
रहनेवाला । न मिटने या जानेवाला । बहुत दिनों तक
चलनेवाला ।

थाई^२—संज्ञा पुं० १. बैठने की जगह । बैठक । अथाई । २. गीत का
प्रथम पद जो गाने में बार बार कहा जाता है । ध्रुवपद ।
स्थायी ।

थाईभाव—संज्ञा पुं० [सं० स्थायी भाव] दे० 'स्थायी भाव' । उ०—रति
हाँसी भर सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान । भय निदा बिसमय
सवा, थाईभाव प्रमान ।—केशव प्र०, भा० १, पृ० ३१ ।

थाउं—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, हि० ठाँउ, ठाँव] उ०—ऊँचो गढ़
अपरंपर थाउ । अमर अजोनी सवि तलत पाउ ।—प्राण०,
पृ० २५२ ।

थाकी—संज्ञा पुं० [सं० स्था] १. गाँव की सरहद । घामसीमा । २.
थोक । ढेर । समूह । घटाला । राशि । उ०—मधु, मेवा,
पकवान, मिठाई, घर घर तै ले निकसी थाक ।—नंद० प्र०,
पृ० ३६० । ३. सीमा । हद । उ०—मेरे कहाँ थाकु गोरख
को नवनिधि मंदिर यामहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

थाकी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकावट ।

क्रि० प्र०—लगना ।

थाकना—क्रि० प्र० [सं० स्था, बंग० थाका] १. शक्ति न रहना ।
थक जाना । शिथिल होना । रुकना । उ०—थाकी गति प्रमन
की, मति परि गई मंद सुखि भाँकरी सी हूँके देह लागी
पियरान ।—हरिश्चंद्र—(शब्द०) । २. रुकना । ठहरना ।
उ०—जग जलबूझ तहाँ लागि ताकी । मोरि नाथ सेवक बिनु
थाकी ।—जायसी (शब्द०) । ३. स्तंभित होना । ठगा सा
होना । आश्चर्यचकित होना । उ०—रतन प्रमोदक परख
कर रहा जोहरी थाक ।—दरिया० बानी, पृ० १६ ।

थाका—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थक्का' । उ०—थाका होय बचिर
के ताँहा ।—कबीर सा०, पृ० १५७८ ।

थाकि^७—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकावट । शैथिल्य ।

थाकु^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थाक' ।

थागना^१—क्रि० प्र० [देश०] रुकना । थाकना । उ०—अपणु घर की गम नहीं पर घर यागे काय । हंस हंस की गम बले काया काग की पाय ।—राम० धर्म०, पृ० ७२ ।

थाट^१—संज्ञा पुं० [हि०] संगीत में रागों का आधार । दे० 'ठाट' ।

थाट^२—संज्ञा पुं० [देश०] कामना । मनोरथ । उ०—रिखा बाट करे जो राघव थाट संपूरण थावे ।—रघु० क० पृ० ६५ ।

थाटनहार—वि० [हि० ठाटना (बनाना)] ठाटने (बनाने सेवारने) वाला । उ०—थाटनवारा एको सई एक ही रीति एक ते आई ।—प्राण०, पृ० ४६ ।

थास^७—वि० [सं० स्थातृ, स्थाता] जो बैठा या ठहरा हो । स्थित । उ०—ई पिक बिब बतीस वज्रकन एक जलज पर यात ।—सूर (शब्द०) ।

थाति—संज्ञा स्त्री० [हि० थात] १. स्थिरता । ठहराव । ठिकान । रहन । उ०—सगुन ज्ञान विराग भक्ति सुसाधनन की पाति । भाजि विकल विलोकि कलि अघ ऐगुनन की याति ।—तुलसी (शब्द०) । २. दे० 'थाती' ।

थाती—संज्ञा स्त्री० [हि० थात] १. समय पर काम थाने के लिये रखी हुई वस्तु । २. वह वस्तु जो किसी के पास इस विश्वास पर छोड़ दी गई हो कि वह मांगने पर दे देगा । धरोहर । उ०—हुइ बरवान भूप सन याती । मांगहु आज जुड़ावहु छाती ।—तुलसी (शब्द०) । ३. संचित धन । इकट्ठा किया हुआ धन । रक्षित द्रव्य । जमा । पूँजी । गण । ४. दूसरे का धन जो किसी के पास इस विचार से रखा हो कि वह मांगने पर दे देगा । धरोहर । प्रमानत । उ०—बारहि बार चलावत हाथ सो का मेरी छाती में याती बरी है ।—(शब्द०) ।

थाथी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'थाती' । उ०—कहूँ कबीर जतन करो साधो, सन्तगुरु की थाथी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४८ ।

थान—संज्ञा पुं० [सं० स्थान] १. जगह । ठौर । ठिकाना । २. रहने या ठहरने की जगह । डेरा । निवासस्थान । ३. किसी देवी देवता का स्थान । देवल । जैसे, माई का थान । उ०—इह गोपेसुर थान अपूरब । नित प्रति निसा ऊतरे सौरभ ।—पु० रा०, १ । ३१८ । ४. वह स्थान जहाँ घोड़े या चौपाए बांधे जायें ।

मुहा०—थान का टर्रा=(१) वह घोड़ा जो झूठे से बंधा बंधा नटखटी करे । घुड़साल में उपद्रव करनेवाला । (२) वह जो घर पर ही या पड़ोस में ही अपना जोर दिखाया करे, बाहर कुछ न बोले । अपनी गली में ही खेद बननेवाला । थान का सच्चा=सीधा घोड़ा । वह घोड़ा जो कहीं से झूटकर फिर अपने झूठे पर आ जाय । थान में थाना=(घोड़े का) धूल में लोटना । अच्छे थान का घोड़ा=अच्छी जाति का घोड़ा । प्रसिद्ध स्थान का घोड़ा ।

५. वह घास जो घोड़े के नीचे बिछाई जाती है । ६. कपड़े गोटे धादि का पुरा टुकड़ा जिसकी खंवाई बंधी हुई होती है । जैसे,

मारकीन का थान, गोटे का थान । ७. संख्या । घरघ । जैसे, एक थान अक्षरफो, चार थान गहने, एक थान कलेजी । ८. लिंगेन्द्रिय (बाजाक) ।

थानक—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक] १. स्थान । जगह । २. नगर । ३. थावला । थाला । थाल बाल । ४. फेन । बबूला । भाग । ५. देवस्थान । देवन । उ०—राजन मन चकित भयो सुनि थानक की बिद्धि ।—पु० रा०, १।४०१ ।

थानपती^७—संज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] स्थान का अधिकारी । स्वामी । उ०—तहँ मिले प्रीतम फिर नहीं बिछोहा । तहँ थानपती निज महली सोहा ।—प्राण०, पृ० १६० ।

थाना—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक, प्रा० थाण, हि० थान] १. झुहा । टिकने या बैठने का स्थान । उ०—पुण्यभूमि पर रहे पापियों का थाना क्यों ?—साकेत, पृ० ४१६ । २. वह स्थान जहाँ अपराधों की सुचना दी जाती है और कुछ सरकारी सिपाही रहते हैं । पुलिस की बड़ी चौकी ।

मुहा०—थाने चढ़ना=थाने में किसी के बिस्मय सुचना देना । थाने में हल्ला करना । थाना बिठाना=पहूरा बिठाना । चौकी बिठाना ।

३. बाँसों का समूह । बाँस की कोठी ।

थानापति—संज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] ग्रामदेवता । स्थानरक्षक । देवता ।

थानी^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थानिन्] १. स्थान का स्वामी । वह जिसका स्थान हो । २. दिक्पाल । लोकपाल । ३. घरवाला । स्वामी । पति । उ०—तेरा थानो क्यों मुझ गह क्यों न राखा बाहि । सहजो बहुतक मिल छुटै चौरासी के माहि ।—सहजो०, पृ० २३ ।

थानी^२—वि० संपन्न । पूर्ण ।

थानु^७—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु] शिव ।

थानुसुत—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु + सुत, प्रा० थाणु + सं० सुत] शिव जी के पुत्र गणेश । गजानन । उ०—धोरे धोरे मदन कपोल फूले धूले धूले, बोलें जल थल बल थानुसुत नाखे हैं ।—केशव शं०, भा० १, पृ० १३१ ।

थानैत—संज्ञा पुं० [हि० थान] दे० 'थानैत' ।

थानेदार—संज्ञा पुं० [हि० थाना + फ्रा० दार] थाने का वह अधिकतर या प्रधान जो किसी स्थान में शांति बनाए रखने और अपराधों की छानबीन करने के लिये नियुक्त रहता है ।

थानेदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० थाना + फ्रा० दारी] थानेदार का पद या कार्य ।

थानैत—संज्ञा पुं० [हि० थान + ऐत (प्रत्य०)] १. किसी स्थान का अधिकारी । किसी चौकी या झड़्डे का मालिक । २. किसी स्थान का देवता । ग्रामदेवता ।

थाप—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन] १. तबले, मृदंग आदि पर पुरे पजे का आघात । थपकी । ठोंक । उ०—सुदृढ़ मार्ग पर भी मृत सय में यथा मुरज को थापें हैं ।—साकेत, पृ० ३७२ ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

२. थप्पड़ । तमाचा । पूरे पंजे का घाघात । जैसे, थोर की थाप, पहलवानों की थाप ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

३. वह चिह्न जो किसी वस्तु के भरपूर बैठने से पड़े । एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के दाब के साथ पड़ने से बना हुआ निशान । छापा । जैसे, दीवार पर गीले पंजे का थाप, बालू पर पैर की थाप ।

क्रि० प्र०—देना ।—पड़ना ।—लगाना ।

४. स्थिति । जमाव । ५. किसी की ऐसी स्थिति जिसमें लोग उसका कहना मानें, भय करें तथा उसपर श्रद्धा विश्वास रखें । महत्वस्थापन । प्रतिष्ठा । मर्यादा । चाक । साक । उ०—कहै पदमाकर सुमहिमा मही में भई महादेव देवन में बाढ़ी थिर थाप है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—होना ।

९. मान । कदर । प्रमाण । जैसे,—उनकी बात की कोई थाप नहीं । ७. पंचायत । ८. शपथ । सौगंध । कसम ।

मुहा०—किसी की थाप देना = किसी की कसम खाना । शपथ देना ।

थापण—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना, प्रा० थावणा] स्थिरता । स्थापना । स्थैर्य । शांति । उ०—थापण पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर । कबीर हीरा बगुजिया, मानसरोवर तीर ।—कबीर ग्रं०, पृ० २८ ।

थापन—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] १. स्थापित करने की क्रिया । जमाने या बैठाने की क्रिया । २. किसी स्थान पर प्रतिष्ठित करने का कार्य । रखने का कार्य । ब०—कहेउ जनक कर जोरि कीन मोहि थापन । रघुकुल तिलक भुवाल सदा नुम उथपन थापन ।—तुलसी (शब्द०) ।

थापनहार—वि० [सं० स्थापन, हि० थापन + हार] स्थापन या थापन करनेवाला । प्रतिष्ठित करनेवाला । उ०—मथपन थापन-हारा ।—भरनी०, पृ० ४२ ।

थापना^१—क्रि० सं० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना । जमाना । बैठाना । जमाकर रखना । उ०—लिंग थापि बिबिध करि पूजा । सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ।—मानस, १।२ । २. किसी गीली सामग्री (मिट्टी, गोबर आदि) को हाथ या सचि से पीट छथवा दबाकर कुछ बनाना । जैसे, उपले थापना, खपड़े थापना, ईंट थापना ।

थापना^२—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना] १. स्थापन । प्रतिष्ठा । रखने या बैठाने का कार्य । उ०—जहँ लिंग तीरथ देखहु जाई । इनहीं सब थापना थाई ।—कबीर मं०, पृ० ४७० । २. मूर्ति की स्थापना या प्रतिष्ठा । जैसे, दुर्गा की थापना । उ०—करिहौं इहाँ समु थापना । मोरे हृदय परम कल्पना ।—मानस, ६।२ । ३. नवरात्र में दुर्गापूजा के लिये घटस्थापना ।

थापरा^१—संज्ञा पुं० [हि० थाप + र (प्रत्य०)] दे० 'थप्पड़' ।

थापरा—संज्ञा पुं० [देश०] छोटी नाव । डोंगी (लक्ष०) ।

थापा^१—संज्ञा पुं० [हि० थाप] १. हाथ के पंजे का वह चिह्न जो किसी गीली वस्तु (हलदी, मेहदी, रंग आदि) से पृथी हुई हथेली को जोर से दबाने या मारने से बन जाता है । पंजे का छापा ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

विशेष—पूजा या मंगल के अवसर पर स्त्रियाँ इस प्रकार के चिह्न दीवार आदि पर बनाती हैं ।

२. गाँव में देवी देवता की पूजा के लिये किया हुआ चंदा । पुजोरा । १. खलियान में भनाज की राशि पर गीली मिट्टी या गोबर से डाला हुआ चिह्न जो इसलिये डाला जाता है जिसमें यदि कोई चुरावे तो पता लग जाय । चाँकी । ४. वह साँचा जिसमें रंग आदि पोतकर कोई चिह्न प्रकृत किया जाय । छापा । ५. वह साँचा जिसमें कोई गीली सामग्री दबाकर या डालकर कोई वस्तु बनाई जाय । जैसे, ईंट का थापा, सुनारों का थापा । ६. डेर । राशि । उ०—सिद्धि दरब भागि के थापा । कोई जरा, जार, कोई तापा ।—जायसी (शब्द०) । ७. नेपालियों की एक जाति ।

थापा—संज्ञा [सं० स्थापना, हि० थाप] घाघात । थपकी । थाप । थप्पड़ । उ०—जहाँ जहाँ दुख पाइया गुन को थापा सोय । जबही सिर टक्कर लगे तब हरि सुमिरन होय ।—मनूक०, पृ० ४० ।

थपिया संज्ञा स्त्री० [हि० थापना] दे० 'थापी' ।

थापी—संज्ञा स्त्री० [हि० थापना] १. काठ का चिपटे धीरे धीरे सिर का डंडा जिससे कुम्हार कच्चा घड़ा पीटते हैं । २. वह चिपटी मुँगरी जिससे राज या कारीगर मच पीटते हैं । ३. थपकी । हथेली से किया हुआ घाघात । थाप । उ०—कबीर साहब ने उस गाय को थापी दिया ।—कबीर मं०, पृ० ११४ ।

थाम^१—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंम] १. खंभा । स्तंभ । २. मस्तूल (लक्ष०) ।

थाम^२—संज्ञा स्त्री० [हि० थामना] थामने की क्रिया या वंग । पकड़ ।

थामना—क्रि० सं० [सं० स्तम्भन या स्तमन, प्रा० थंमन (= रोकना)] १. किसी चलती हुई वस्तु को रोकना । गति या वेग ध्वस्त करना । जैसे, चलती गाड़ी को थामना, बरसते मेह को थामना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. गिरने, पड़ने, लुढ़कने आदि न देना । गिरने पड़ने से बचाना । जैसे, गिरते हुए को थामना, डूबते हुए को थामना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

३. पकड़ना । ग्रहण करना । हाथ में लेना । जैसे, छड़ी थामना । उ०—इस किताब को थामो तो मैं दूसरी निकाल दूँ ।—

संयो० क्रि०—लेना ।

४. सहारा देना । सहायता देना । मदद देना । सहायता । जैसे,—
पंजाब के गेहूँ ने थाम लिया, नहीं तो अन्न के बिना बड़ा
कष्ट होता ।

संयो० क्रि०—लेना ।

५. किसी कार्य का भार ग्रहण करना । अपने ऊपर कार्य का
भार लेना । जैसे,—जिस काम को तुम ने थामा है उसे पूरा
करो । ६. पहुँचे में करना । चौकसी में रखना । हिरासत
में करना ।

थाम्हा—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भ] १. आधार । खंभा । टेक । उ०—
चाँद सूरज कियो तारा गगन लियो बनाय । थाम्ह धूनी
बिना देखी, रखि लियो ठहराय ।—जग० श०, भा० २,
पृ० १०६ ।

थाम्हना—क्रि० सं० [दे०] दे० 'थामना' ।

थाय—संज्ञा पु० [सं० स्थान, प्रा० ठाय] दे० 'स्थान' । उ०—धमकत
धरनि अहि सिर निहाय । हलहलिय द्विग उद्दिग थाय ।
धुर धूरि पूरि जुटिन भमिति । बिसि ब बिसि राज पसरत
किति ।—पु० रा०, १ । ६२५ ।

थायी^१—वि० [सं० स्थायी] दे० 'स्थायी' ।

थारा^१—संज्ञा पु० [दे०] दे० 'थाल' । उ०—भावना थार
हुलास के हाथनि यों हित मूरति हेरि उतारति ।—घनानंद,
पृ० १४८ ।

थारा^२—संज्ञा पु० [दे०] ठोकर । धाधात । उ०—हयसुर थारन,
झार कुट्टि गिरि समुद्र पंक हुव ।—प० रासो, ७४ ।

थारा^३—सर्व० [हि० तिहारा] तुम्हारा । उ०—घनमेल्हुं पाणी
तिजुं कहिय (१) गोरी थारा जनम की बात ।—बी० रासो,
पृ० १४ ।

थारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली] दे० 'थाली' ।

थारू—संज्ञा पु० [दे०] एक जंगली जाति जो नेपाल की तराई में
पाई जाती है ।

विशेष—यह पूर्व से पश्चिम तक बसी हुई है और अपने रीति-
रिवाज, जादू टोना आदि कड़िगत विश्वास से बँधी हुई है ।
इसे लोग पुरानी जनजाति मानते हैं और वर्णव्यवस्था में
इनका स्थाननाम शूद्र का रखते हैं ।

थाख—संज्ञा पु० [हि० थाली] बड़ी थाली । कसि या पीतल का बड़ा
खिछला बरतन ।

थाला—संज्ञा पु० [सं० स्थल, हि० थल] १. वह घेरा या गड्ढा जिसके
भीतर पोखा लगाया जाता है । थालेला । थालवाल । २.
कुंडी जिसमें ताला लगाया जाता है (लक्ष०) । ३. फोड़े का
घेरा । फोड़े की सूजन । ग्रण का शोथ ।

थालिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थालिका] दे० 'थाली' । उ०—सोरह
सिमार किए पीतम को ध्याम दिए, हाथ किए मंजलमय
कनक थालिका ।—भारतेंदु स०, भा० २, पृ० २६८ ।

थालिका^२—संज्ञा [हि० थाला] हल का थाला । थालवाल ।
उ०—पुरजम पूजोपहार सोमित ससि बबल थार मंजन
मभमार भक्ति कल्प थालिका ।—तुलसी (लक्ष०)

४-१६

थाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली (= बटलोई)] १. कसि या
पीतल का गोल खिछला बरतन जिसमें खाने के लिये भोजन
रखा जाता है । बड़ी तश्तरी ।

मुहा०—थाली का बेंगन = लाभ और हानि देख कभी इस पक्ष,
कभी उस पक्ष में होनेवाला । अस्थिर सिद्धांत का । बिना पेंदी
का लोटा । उ०—जबरखी होंगे उनकी न कहिए । यह थाली
के बेंगन हैं ।—फिमाना०, भा० ३, पृ० १६ । थाली जोड़ =
कटोरे के सहित थाली । थाली और कटोरे का जोड़ा । थाली
फिरना = इतनी भीड़ होना कि यदि उसके बीच थाली फेंकी
जाय तो वह ऊपर ही ऊपर फिरती रहे नीचे न गिरे । भारी
भीड़ होना । थाली बजना = साँप का विष उतारने का मंत्र
पढ़ा जाना जिसमें थाली बजाई जाती है । थाली बजाना =
(१) साँप का विष उतारने के लिये थाली बजाकर मंत्र
पढ़ना । (२) बच्चा होने पर उसका डर दूर करने के लिये
थाली बजाने की रीति करना ।

२. नाच की एक गत जिसमें जोड़े से घेरे के बीच नाचना
पड़ता है ।

बौ०—थाली कटोरा = नाच की एक गत जिसमें थाली और
परबंद का मेल होता है ।

थाब—संज्ञा स्त्री० [दे०] दे० 'थाह' ।

थावर—संज्ञा पु० [सं० स्थावर] दे० 'स्थावर' । उ०—नर पसु कीट
पतंग में थावर जंगम मेल ।—स० सप्तक, पृ० १७८ ।

थाह—संज्ञा स्त्री० [सं० स्था] १. नदी, ताल, समुद्र इत्यादि के नीचे
की जमीन । जलाशय का तलभाग । भरती का वह तल
जिसपर पानी हो । गहराई का अंत । गहराई की हद ।
जैसे,—जब थाह मिले तब तो लोटे का पता लगे ।

क्रि० प्र०—गना ।—मिलना ।

मुहा०—थाह मिलना = जल के नीचे की जमीन तक पहुँच हो
जाना । पानी में पैर टिकने के लिये जमीन मिल जाना ।
डूबते को थाह मिलना = निराश्रय को आश्रय मिलना । संकट
में पड़े हुए मनुष्य को सहारा मिलना ।

२. कम गहरा पानी । जैसे,—जहाँ थाह है वहाँ तो हलकर पार
कर सकते हैं । उ०—वरण छूने हो जमुना थाह हुई ।—
खल्लू (लक्ष०) । ३. गहराई का पता । गहराई का अंदाज ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।

मुहा०—थाह लगना = गहराई का पता चलना । थाह लेना =
गहराई का पता लगाना ।

४. अंत । पार । सोमा । हद । परिमिति । जैसे,—उनके घन की
थाह नहीं है । ५. संख्या, परिमाण आदि का अनुमान । कोई
वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसका पता । जैसे,—उनकी
बुद्धि की थाह इसी बात से मिल गई ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।—लगना ।

मुहा०—थाह लेना = कोई वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसकी
जाँच करना ।

६. किसी बात का पता जो प्रायः गुप्त रीति से लगाया जाय।
अप्रत्यक्ष प्रयत्न से प्राप्त अनुसंधान। जैसे,—इस बात की
थाह लो कि वह कहाँ तक देने को तैयार है।

क्रि० प्र०—पाना।—लेना।

मुहा०—मन की थाह=अंतःकरण के गुप्त अभिप्राय की जान-
कारी। चिन्ता की बात का पता। संकल्प या विचार का पता।
उ०—कुटिल जनन के मनन की मिलति न कहूँ थाह।—
(शब्द०)।

थाहना—क्रि० सं० [हि० थाह] १. थाह लेना। गहराई का पता
चलना। २. अंशज लेना। पता लगाना।

थाहरा—वि० [हि० थाह] १. छिछला। जो गहरा न हो। जिसमें
जल गहरा न हो। उ०—खरखराह जमुना गह्यो प्रति थाहरो
सुभाय। मानहु हरि निज पाँव ते सीमी ताहि दबाय।—
सुकवि (शब्द०)।

थिएटर—संज्ञा पु० [अंग०] १. रंगमण्डप। रंगशाला। २. नाटक का
अभिनय। नाटक का तमाशा। उ०—बलब, कमेटी, थिएटर
घोर होटलों में।—प्रेमचन्द, भा० २, पृ० ७५।

थिगली—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकली] वह टुकड़ा जो किसी फटे हुए
कपड़े या और किसी वस्तु का छेद बंद करने के लिये टाँका
या लगाया जाय। चकती। पैबंद।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—थिगली लगाना=ऐसी जगह पहुँचकर काम करना
जहाँ पहुँचना बहुत कठिन हो। जोड़ तोड़ भिड़ाना। युक्ति
लगाना। बादल में थिगली लगाना=(१) अत्यंत कठिन
काम करना। (२) ऐसी बात कहना जिसका होना
असंभव हो।

थित—वि० [सं० स्थित] १. ठहरा हुआ। २. स्थापित। रखा
हुआ। उ०—भए धरम में थित सब द्विजजन प्रजा काज निज
लागे।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २७२।

थिति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] १. ठहराव। स्थायित्व। २.
विश्राम करने या ठहरने का स्थान। ३. रहाइस। रहन।
४. बने रहने का भाव। रक्षा। उ०—ईश रजाइ सीस सब
ही के। उतपति थिति, लय विषदु अमी के।—तुलसी
(शब्द०)। ५. अवस्था। दशा।

थितिभाव—संज्ञा पु० [सं० स्थिति भाव] दे० 'स्थायी भाव'।

थिबाऊ—संज्ञा पु० [देश०] दाहिने अंग का फड़कना प्रादि जिसे ठग
लोग अशुभ समझते हैं (ठग)।

थियेटर—संज्ञा पु० [अंग०] १. वह मकान जहाँ नाटक का अभिनय
दिखाया जाता है। नाट्यशाला। नाटकघर। २. अभिनय।
नाटक।

थियोसोफिस्ट—संज्ञा पु० [अंग०] थियोसोफी के सिद्धांत को माननेवाला।

थियोसोफी—संज्ञा स्त्री० [अंग०] ईश्वरीय ज्ञान जो किसी दैवी शक्ति
अथवा अत्मा के प्रकाश से हुआ हो।

थिर—वि० [सं० स्थिर] १. जो चलता या हिलता डोलता न हो।

ठहरा हुआ। अचल। २. जो अचल न हो। शांत। धीर। २.
जो एक ही अवस्था में रहे। स्थायी। दृढ़। टिकाऊ।

थिर—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरा] स्थिरा। पृथ्वी। उ०—थिर
चूर हुआ कर सूर थके। छल पेल बृंदारक व्योम छके।—
रा० क०, पृ० ३६।

थिरक—संज्ञा पु० [हि० थरकना] नृत्य में चरणों की अचल
गति। नाचने में पैरों का हिलना डोलना या उठाना
और गिराना।

थिरकना—क्रि० प्र० [सं० अस्थिर+करण] १. नाचने में पैरों का
क्षण क्षण पर उठाना और गिराना। नृत्य में अगसंचालन
करना। जैसे, थिरक थिरककर नाचना। २. अंग मटक-
कर नाचना। ठमक ठमककर नाचना।

थिरकौही—वि० [हि० थिरकना+मोही (प्रत्य०)] थिरकनेवाला।
थिरकता हुआ।

थिरकौही—वि० [सं० स्थिर] ठहरा हुआ। रुका हुआ। उ०—दग
थिरकौही अघखुलें देह र्यौकौई डार। सुरत सुखित सी देखियति
दुखित गरभ क भार।—बिहारी (शब्द०)।

थिरचर—संज्ञा पु० [सं० स्थिर+चल] स्थावर और जंगम। उ०—
तान सेत चित की चोपन सी मोहै बृंदावन के थिर चर।
—ब्रज० प्र०, पृ० १५९।

थिरजीह—संज्ञा पु० [सं० स्थिरजिह्व] मछली।

थिरता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरता] १. ठहराव। अचलत्व। २.
स्थायित्व। अचंचलता। ३. शांति। धीरता।

थिरताई—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिर+ताति (वै० प्रत्य०)]
दे० 'थिरता'।

थिरधानी—संज्ञा पु० [सं० स्थिर+स्थान] थिर स्थानवाले,
लोकपाल प्रादि। उ०—सुकुत सुमन तिल मोद बांसि बिधि
जतन जंभ भरि कानी। सुख मनेह सब दियो बसरथाहि सरि
खेलै थिरधानी।—तुलसी (शब्द०)।

थिरथिरा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बुलबुल जो जाड़े के दिनों
में सारे भारतवर्ष में दिखाई पड़ता है।

थिरना—क्रि० प्र० [सं० स्थिर, हि० थिर+ना (प्रत्य०)] १. पानी
या और किसी द्रव पदार्थ का हिलना डोलना बंद होना।
हिलते डोलते या लहराते हुए जल का ठहर जाना। जल का
अवधन रहना। २. जल के स्थिर होने के कारण उसमें
घुली हुई वस्तु का तल में बैठना। पानी का हिलना, घूमना
प्रादि बंद होने के कारण उसमें मिली हुई चीज का बँधे में
जाकर जमना। ३. मेल प्रादि नीचे बैठ जाने के कारण जल
का स्वच्छ हो जाना। ४. मेल, घूल, रेत प्रादि के नीचे
बैठ जाने के कारण साफ चीज का जल के ऊपर रह
जाना। निथरना।

थिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरा] पृथ्वी।

थिराना—क्रि० सं० [हि० थिरना] १. पानी प्रादि का हिलना
डोलना बंद करना। शुष्क जल को स्थिर होने देना। २.

धुली हुई मैल आदि को नीचे बैठने देकर पानी को साफ करना । ४. किसी वस्तु को जल में धोलकर और उसमें मिली हुई मैल, धूल, रेत आदि को नीचे बैठाकर साफ करना । निथारना ।

थिराना^१—क्रि० अ० २० 'थिरना' । उ०—बोउन कों रूप गुन बोउ
 धरनत फिरै, पल न थिरात रीति नेह की नई नई ।—देव० ।

थी'—क्रि० प्र० [हि०] 'है' के भूतकाल 'था' का ली० ।

श्री०—प्रत्य [देश०] से । उ०—इंद्रसिंघ दक्खण थो पायो ।—रा०
क०, पृ० २५ ।

धीकरा—संज्ञा पु० [सं० स्थित + कर] किसी आराति के समय रक्षा या सहायता का भार जिसे गव्व का प्रत्येक समय मनुष्य बारी बारी से अपने ऊपर लेता है ।

थीजना—कि० म० [सं० स्या] टिक जाना । पचन होना । स्थिर रहना । उ०—मन तुम तन मंडरात है नहि थीजै हा हा । घनानंद, पृ० २६७ ।

थोती—उक्त पु० [सं० स्मिन्ति] सत्य । वस्तुस्मिन्ति । उ०—थीत
वीर्यं नही पथल पूजता फिरे करम अनेक करि नरक लोम्हा ।
—सं० दरिया, पृ० ८३ ।

थोता—सच्चा पु० [सं० स्थित, हि० यित] १. स्थिरता । शांति । २. कल । चेत । उ०—---थोतो परे नहि चोतो सबैयन देखत पोठि दे डोठि के पैनी ।—देव (शब्द०) ।

थोली सन्ना जी० [म० स्थिति, प्रा० विद् । सतोष । हाकुस ।
स्थिरता । उ०—टेकु पियास, बाधु जिय भीतो । —जायसी
प्र०, पृ० १५२ ।

थीथी(५)†— संज्ञा स्त्री० [त० स्थिति] स्थिरता । २. प्रेयं । धीरज ।
इतमीनान ।

थोन—वि० [प्रा० बीण, विणण] घन । स्थान । कठिन । जमा
 हुआ । उ०—सुषट् सुषरं कुषट् सु कीन उलथ्ये सभेजी धृतं
 जान थीनं ।—पृ० रा०, २५ । ५५५ ।

धीर(५) - वि० [सं० स्थिर] स्थिर । ठहरा हुआ । मटोल । उ०—
(क) उलथहि मानिक मोती हंसा । दरब देखि मन होइ न
धीरा । - जायसी (शब्द०) । (ख) पिपरे मुख ब्याम शरीरा ।
कहै रहत नहीं पल धीरा—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १२१ ।

थुंदला—वि० [अनु०] पुलमुल । फूला हुआ । महा । उ०—
मोटा तन व थुंदला तुंदला मू व कुच्ची प्रालि व मोटे मोठ
मुछंदर की आसद आसद है ।—भारतेन्दु ग्र०, भा० २,
पृ० ७८६ ।

यी०—यूँदसा यूँदला = थूलथूल ।

शुक्लाना-...क्रि० स० [हि० धूकना] दे० 'शुक्लाना' ।

थुकहार्ई—वि० ली० [हि० थूक + हार्ई (प्रत्य०)] ऐसी (ली) जिसे सब लोग थूकें। जिसकी सब निंदा करते हों।

थुकाई—मंषा स्त्री० [हि० थुकना] थुकने का काम ।

थुकाना—क्रि० स० [हि० थूकना का प्रेरण] १. थूकने की क्रिया दूसरे से कराना । दूसरे को थूकने की प्रेरणा करना ।

संयो० कि०—देना ।

२. मुँह में ली हुई वस्तु को गिरवाना । उगलवाना । जैसे,—
बच्चा मुँह में मिट्टी लिए है, जल्दी थुकाओ । ३. बुझी बुझी
कराना । निश कराना । तिरस्कार कराना । जैसे,—क्यों
ऐसी चाल चलकर गली गली थुकाते फिरते हो ।

धुकायला—वि० [हि० धुक् + घायल (प्रत्य०)] जिसे सब लोग धुके । जिसे सब लोग धिक्कारे । निरस्कृत । निब ।

थुकेला—वि० [हि० थूक] दे० 'मुकायल' ।

थुक्का—संज्ञा स्त्री० [हि० थूक] निदा । घृणा । विषकार ।

योः—युक्ता युक्ती = परस्पर निंदा, धिक्कार या वृणा ।

थुक्का फजीहत—पंजा श्रीः [हि० थूक + प्र० फजीहत] निरा
घोर तिरस्कार । थूकी थूकी । धिक्कार ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

थुक्की—उदा जी० [हि० थूक] रेशम के तारों को थूक लगाकर सुलझाने की क्रिया (जुलाहे) ।

धुकी —संज्ञा स्त्री० [धनु० धृ० (= धृक्ने का शब्द)] घृणा ।
और निरस्कारसूचक शब्द । धिक्कार । लानत । फिट ।
जैये, —यडी है तुझको ।

मुहा०—'गुड़ी गुड़ी करना' = धिक्कारना । निंदा और तिरस्कार करना ।

धृत - वि० [सं० स्तुत, स्तुत्य, प्रा० धृप्र, धृत] श्नाध्य । स्तुत्य ।
प्रशंसनीय । उ०—कनकज जेवंद मात भयी संमरि बहिनी
सुत । तिन पवंत दुज पठिय थार जर नीर थपिय धृत ।—
प० रा०, १।६६० ।

धृति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] स्तवन । प्रार्थना । स्तुति । उ०—
 जोरि हृत्थ धृति मंत्र फिरयो परदक्षि लगि पय । कविर
 नयन पारक्त कंठ लग्यो स मुखि अय ।—पृ० रा०, १।१०८ ।

धृत्कार - षष्ठा पु० [म०] दे० 'धृत्कार' ।

थथना—पंथा पु० [देश०] दे० 'थूथन' ।

धुथराई (पु) — महा क्री० [देश०] मुँह लटकना । तुलना में ग्लानता
माना । उ० — जान महा गरजे गुन में जन मानेंद हेरि रस्यो
धुथराई । पैने कटाच्छनि भोज मनोज के दानन बीच बिषी
मथराई । — रसखान ; पृ० १०४ ।

अथराना--क्रि० अ० [द्वि० थोड़ा] थोड़ा पड़ना ।

शुशाना - क्रि० म० [हि० अथन] अथन फुलाना । मुँह फुलाना ।
नाराज होना ।

थुथलाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] थलथलाना । कपित होना ।
भल्लाना । भभक पड़ना । उ०—रामनाथ क्रोध में थुथला
गया ।—भस्मावृत०, पृ० ५१ ।

धुनो(धु)—गङ्गा स्त्री० [हि० धूनी] टेक । सहारा । धूनी । उ०—
मति परब प्रेरे प्रणय रूपी कुल घटल धुनो ।—सूर (श.द०) ।

थनेर — धंका प्र० [सं० स्थल, हि० पुन] गठिवन का एक भेद ।

थुन्नो—संवा स्त्री० [सं० स्थूल] धूनी । खमा । बाड़ ।

धुपटना—क्रि० [सं० स्तूप, हि० धूप] मड़ुवे की बालों का डेर लगाकर ढबाना जिसमें उनमें कुछ गरमी पा जाय। ढबवाना। धोसाना।

धुपरा—संज्ञा पु० [सं० स्तूप] मड़ुवे की बालों का डेर जो धोसने के लिये ढबाकर रखा जाय।

धुरना—क्रि० सं० [सं० धुवण (= मारना)] १. कूटना। २. मारना। पीटना।

धुरहथा—वि० [हि० धोड़ा + हाथ] [वि० स्त्री० धुरहथी] १. जिसके हाथ छोटे हों। जिसकी हथेली में कम चीज धावे। २. किसी को कुछ देते समय जिसके हाथ में थोड़ी वस्तु धावे। किरायत करनेवाला। उ०—कन दंबो सौंघो ससुर बहू धुरहथी जानि। रूप रहस्ये लगि लखो भगिन सब जग भानि।—बिहारी (शब्द०)।

धुलना—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी ऊनी कपड़ा या कंबल।

धुलमा—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'धुलना'।

धुलो—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल, हि० धूला] किसी धन के मोटे कण जो दलने से होठे हैं। दलिया।

धुवा—संज्ञा पु० [सं० स्तूप] दे० 'धूवा'।

धूक—संज्ञा पु० [हि० धूक] दे० 'धूक'।

धूकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धूकना'।

धूथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'धूथनी'। उ०—नतमस्तक हो धूथी को भरती में देकर, सूँघ सूँघकर कूड़े के ढेरों के धंवर किया न भजन।—वीर ज०, पृ० १६६।

धू—अव्य० [अनु०] १. धूकने का शब्द। वह ध्वनि जो जोर से धूकने में मुँह से निकलती है। २. घृणा और तिरस्कार सूचक शब्द। धिक्। छि। जैसे,—धू धू! कोई ऐसा काम करता है? उ०—बकरी भेड़ा, मछली लायी, काहे गाय चराई। खिर मास सब एकै पड़े धू तोरी बम्हनाई।—पलटू, भा० ३, पृ० ६२।

मुहा०—धू धू करना = घृणा प्रकट करना। छिः छिः करना। धिक्कारना। धू धू होना = चारों ओर से छिः छिः होना। निंदा होना। धू धू धुदा = लड़कों का एक वाक्य जिसे वे खेल में उस समय बोलते हैं जब समझते हैं कि वे बेईमानी होने के कारण हार रहे हों।

धूक—संज्ञा पु० [अनु० धू धू] वह गाढ़ा और कुछ कुछ लसीला रस जो मुँह के भीतर जीभ तथा मांस की क्रिस्लियों से छूटता है। ष्ठीवन। खसार। लार।

विशेष—मनुष्य तथा और उन्नत स्तन्य जीवों में जीवों के अगले भाग तथा मुँह के भीतर की मांसल क्रिस्लियों में दाने की तरह उमरे हुए (अत्यंत) सूक्ष्म छेद होते हैं जिसमें एक प्रकार का गाढ़ा सा रस भरा रहता है। यह रस भिन्न-भिन्न जंतुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। मनुष्य आदि प्राणियों के धूक के भाग में ऐसे रासायनिक द्रव्यों का घंघ होता है जो भोजन के साथ मिलकर पाचन में सहायता देते हैं।

मुहा०—धूक उछालना = व्यर्थ की बकबात करना। धूक बिलोना =

व्यर्थ बकना। अनुचित प्रस्ताप करना। धूक लगाना = हराना। नीचा दिखाना। चूना लगाना। हेरान और तंग करना। धूक लगाकर छोड़ना = नीचा दिखाकर छोड़ना। (विरोधी को) तंग और लज्जित करके छोड़ना। धंड देकर छोड़ना। धूक लगाकर रखना = बहुत सेतकर रखना। जोड़ जोड़कर इकट्ठा करना। कंजूसी से जमा करना। कुप-णता से संबित करना। धूकों सत्तू सानना = कंजूसी या किरायत के मारे थोड़े से सामान से बहुत बड़ा काम करने चलना। बहुत थोड़ी सामग्री लगाकर बड़ा कार्य पूरा करने चलना। धूक है = धिक् है! लात है!

धूकना—क्रि० प्र० [हि० धूक + ना (प्रत्य०)] १. मुँह से धूक निकालना या फेंकना।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—किसी (व्यक्ति या वस्तु) पर न धूकना = अत्यंत घृणा करना। जरा भी पसंद न करना। अत्यंत तुच्छ समझकर ध्यान तक न देना। जैसे,—हम तो ऐसी चीज पर धूकों भी नहीं। धूककर चाटना = (१) कहकर मुकर जाना। वादा करके न करना। प्रतिज्ञा करके पूरा न करना। (२) किसी दी हुई वस्तु को लौटा लेना। एक बार देकर फिर ले लेना।

धूकना—क्रि० सं० १. मुँह में ली हुई वस्तु को गिराना। उगलना। जैसे,—पान धूक दो।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—धूक देना = तिरस्कार कर देना। घृणापूर्वक स्वाध देना।

२. बुरा कहना। धिक्कारना। निंदा करना। तिरस्कृत करना। जैसे,—इसी चाल पर लोग तुम्हें धूकते हैं।

धूथी—संज्ञा स्त्री० [वि० स्तूप] दे० 'धूथनी'। उ०—तिहि समय भटल धूथी सुषण्ण। गणनाथ पूजि सुम मंत्र जप्प।—ह० रासो, पृ० १५।

धूत्कार—संज्ञा पु० [सं०] धूकने का शब्द। धू धू करना [को०]।

धूत्कृत—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'धूत्कार'।

धूथन—संज्ञा पु० [देश०] लंबा निकला हुआ मुँह। जैसे, सुगर, मोड़े, ऊंट, बैल आदि का।

धूथनी—संज्ञा स्त्री० [हि० धूथन] १. लंबा निकला हुआ मुँह। जैसे, सुगर, मोड़े, बैल आदि का।

मुहा०—धूथनी फैलाना = नाक भों चढ़ाना। मुँह फुलाना। नाराज होना।

२. हाथी के मुँह का एक रोग जिसमें उसके तालू में घाव हो जाता है।

धूथरा—वि० [देश०] धूथन के ऐसा निकला हुआ मुँह। बुरा चेहरा। बड़ा चेहरा।

धूथुना—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'धूथन'।

धून—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूणा] धूनी। चौड़। धंभा। उ०—मेम प्रमोद परस्पर प्रगटन जोषहि। अनु हिरण्य गुनधाम धून बिर रोषहि।—तुलसी (शब्द०)।

धून^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का मोटा पौंडा या गन्ना जो मबरास में होता है। मबरासी पौंडा।

धूना—संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का लोदा जिसमें परेता खोंसकर सूत या रेशम फेरते हैं।

धूमी—संज्ञा स्त्री० [हि० धूम] दे० 'धूनी'।

धूनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० धून + इया (प्रत्य०)] दे० 'धूनी'।
उ०—चौदह पंद्रह सालवाले लड़के अछाड़ा गोड़ चुके थे, छप्पर की धूनिया पकड़े हुए बैठकर रहे थे।—काले०, पृ० ३।

धूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल] १. लकड़ी आदि का गड़ा हुआ खड़ा बरतल। खंभा। स्तंभ। यम। २. वह खंभा जो किसी बोझ को रोकने के लिये नीचे से लगाया जाय। चाड़। सहारे का खंभा। उ०—चौद सूरज कियो तारा, गगन लियो बनाय। धाम्ह धूनी बिना देखो, राख लियो ठहराय।—जग० श०, छा० २, पृ० १०६।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. वह गड़ी हुई लकड़ी जिसमें रस्ती का फंदा लगाकर मथानी का डंडा घटकाते हैं।

धून्ही—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल] दे० 'धूनी'।

धून्ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] साँप का बिष दूर करने के लिये गरम लोहे से काटे हुए स्थान को बागने की युक्ति।

धूर^१—संज्ञा पुं० [देश०] समूह। कोठी (बाँस की)। उ०—प्रयिराज प्रबोधिय बार धर हंकि साह उप्परि परिय। जानै कि अग्नि उद्यान बन बंस धूर दब प्रज्जरिय।—पु० रा०, १३। १४०।

धूर^२—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] धरहर। तूर। तोर।

धूरना^१—क्रि० स० [सं० धूर्ण (=मारना)] १. कटना। वसित करना। २. मारना। पीटना। उ०—धूरत करि रिम जबहि होति सतहर सम सुरत। धूरत पर बल धूरि हृदय मई पुरि वरुत।—गापाल (शब्द०)। ३. ठूसना। कस कर करना। ४. खूब कस कर खाना। ठूस ठूस कर खाना।

धूरना^२—क्रि० स० [सं० धुट्] दे० 'तोड़ना'।

धूला^७—वि० [सं० स्थूल] १. मोटा। भारी। २. भट्ठा। उ०—श्रवणादि बचनादि देवता मन न आदि, मूलम न धूल पुनि एक ही न दोह है।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ७६।

धूला—वि० [सं० स्थूल] [वि० स्त्री० धूलि, धूली] मोटा ताजा। उ०—करतार करे यहि कामिनि के कर कोमलता कलता मुनि के। लघु वीरघ पातरि धूलि तहीं सुसमाधि टरे मुनि के।—तोष (शब्द०)।

धूली—संज्ञा स्त्री० [हि० धूला (=मोटा)] १. किसी अनाज का दला हुआ मोटा कण। दलिया। २. सूजी। ३. पकाया हुआ दलिया जो गाय को बच्चा बनने पर दिया जाता है।

धूवा^१—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप, प्रा० धूव, धूव] १. मिट्टी आदि के ढेर का बना हुआ टीला। ढूह। २. गीली मिट्टी का पिंडा या लौंदा। डीमा। मेला। धौंथा। ३. मिट्टी का ढूहा जो सरहद के निजाम के लिये उठाया जाता है। सीमासूचक स्तूप। ४.

ढूह के आकार का काला रंगा हुआ पिंडा जिसे पीने का तंबाकू बेचनेवाले अपनी दुकानों पर चिह्न के लिये रखते हैं। ५. वह बोझ जो कपड़े में बंधी हुई राख के ऊपर खूसी निकासकर बहाने के लिये रखा जाता है। ६. मिट्टी का लौंदा जो बोझ के लिये डेकली की पाड़ी लकड़ी के छोर पर बोपा जाता है।

धूवा^२—संज्ञा स्त्री० [अनु० धू धू] धुड़ी। चिक्कार का शब्द।
धूह—संज्ञा पुं० [देश०] भवन का शिखर। मकान की ऊँची छत।—देशी०, पृ० ११५।

धूहड़—संज्ञा पुं० [सं० स्थूल] दे० 'धूहर'।

धूहर—संज्ञा पुं० [सं० स्थूल (=धूनी)] एक छोटा पेड़ जिसमें लचीली टहनियाँ नहीं होतीं, गाँठों पर से गुल्मी या डंडे के आकार के डंठल निकलते हैं। उ०—धूहरों से सटे हुए पेड़ घोर भाड़ हरे, गौरन से धूम से जो लड़े हैं किनारे पर।—आचार्य०, पृ० ११८।

विशेष—किसी जाति के धूहर में बहुत मोटे दल के लंबे पत्ते होते हैं और किसी जाति में पत्ते बिलकुल नहीं होते। कटि भी किसी में होते हैं किसी में नहीं। धूहर के डंठलों और पत्तों में एक प्रकार का कड़वा दूध भरा रहता है। निकले हुए डंठलों के सिरे पर पीले रंग के फूल लगते हैं। जिनपर प्रावरणपत्र या विडली नहीं होती। पुं० घोर स्त्री० पुष्प अलग अलग होते हैं। धूहर कई प्रकार के होते हैं—जैसे, कटिवाला धूहर, तिबारा धूहर, चौधरा धूहर, नागफनी, लुरासानी धूहर, बिलायती धूहर, इत्यादि। लुरासानी धूहर का दूध बिचला होता है। धूहर का दूध घोष के काम में आता है। धूहर के दूध में सानी हुई बाबरे के आटे की गोली देने से पेट का दर्द दूर होता है और पेट साफ हो जाता है। धूहर के दूध में मिर्गोई हुई बने की दाल (आठ या दस दाने) खाने से अस्थि जुलाब होता है और गरमी का रोग दूर होता है। धूहर की राख से निकाला हुआ क्षार भी दवा के काम में आता है। कटिवाले धूहर के पत्तों का लोग अचार भी डालते हैं। धूहर का कोयला बारूद बनाने के काम में आता है। वैद्यक में धूहर रेचक, तीक्ष्ण, अग्निवीरक, कटु तथा शूल, गुल्म, अग्नौ, वायु, उन्माद, सूजन इत्यादि को दूर करनेवाला माना जाता है। धूहर को सेहूड़ भी कहते हैं।

पर्या०—स्तुही। समंतगुप्ता। नागदु। महाबुला। सुषा। बज्जा। मोड़ुहा। सिहूड़। दंडकुक। स्नुक्। स्नुषा। गुड। गुहा। कुण्डसार निस्त्रिपणिका। नेवारि। कांडलाक। सिंहतुंड। कांडरोहक।

धूहा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप, धूव] १. ढूह। अटाला। २. टीला।

धूही—संज्ञा स्त्री० [हि० धूहा] १. मिट्टी की ढेरी। ढूह। २. मिट्टी के खंभे जिनपर गराड़ी या चिरनी की लकड़ी ठहराई जाती है।

यँहर—वि० [देश०] बका हुआ। आंत। सुस्त। हैरान।

यो—सर्व० बहु० [सं० त्वम्] तुम या आप। उ०—ज्यूँ ये जाणउ त्यूँ करउ, राजा आइस वीध। डोला०, पृ० ६।

येह येह^७—वि० [अनु०] दे० 'येई येई'। उ०—लाग मान येह येह करि उषटत प्रटत ताल सुदंग गँगीर।—सूर० (शब्द०)।

थेई थेई—वि० [धनु०] तालमूक नृत्य का शब्द और मुद्रा। थिरक थिरककर नाचने की मुद्रा और ताल।

क्रि० प्र०—करना।

थेकई—संज्ञा पु० [हि० टेक, टेघ, थेघ (=स्तंभ, खंभा)] (ला०) शरीररूपी स्तंभ। शरीर। उ०—सत कोटि तीरथ भूमि परिकरमा करि नवावे थेक हो।—कबीर सा०, पृ० ४११।

थेगली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'थिंगली'। उ०—पाँच तत्त के गुदड़ी बनाई। चाँद सुरज दुख थेगली लगाई।—कबीर सा०, भा० २, १४०।

थेघा—संज्ञा पु० [दे०] सहारा। प्रवलंबन। उ०—गगन गरज मेघा, उठए घरनि थेघा। पंचसर हिय डोल सालि।—विद्यापति, पृ० १३५।

थेटी—वि० [दे०] प्रारंभ का। प्रसली। मुख्य। उ०—घी भल भड़ है माजरा पाहर जासी थेटी।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ३४।

थेवा—संज्ञा पु० [दे०] १. अँगूठी का नगीना। २. किसी घातु का वह पत्र जिसपर मुहर खोदी जाती है। ३. अँगूठी का वह घर जिसमें नगीना जड़ा जाता है।

थेचा—संज्ञा संज्ञा पु० [दे०] खेत में मचान के ऊपर का छप्पर।

थे थे—वि० [सं०] बाध्य का अनुकरणार्थक एक शब्द। दे० 'थेई थेई'।

थैरज(पु०)—संज्ञा पु० [सं० स्थैर्य] कठोरता। स्थिरता। दृढ़ता। उ०—ए हरि तोहर थैरज जत से सब कहत घनि गेलि मून संकेता रे।—विद्यापति, पृ० २६०।

थैला—संज्ञा पु० [सं० स्थल (=कपड़ का घर)] [स्त्री० प्रत्यय० थैली] १. कपड़े टाट आदि को सीकर बनाया हुआ पात्र जिसमें कोई वस्तु भरकर बंद कर सकें। बड़ा कोश। बड़ा बटुआ। बड़ा कीसा।

मुहा०—थैला करना = मारकर डेर कर देना। मारते मारते ढोला कर देना।

२. रुपये से भरा हुआ थैला। तोड़ा। उ०—बोल्यो बनजारो दम खोलि थैला रीजिए जू लीजिए जू आय ग्राम चरन पठाए हैं।—प्रियादास (शब्द०)। ३. पायजामे का वह भाग जो जंघ से घुटने तक होता है।

थैली—संज्ञा स्त्री० [हि० थैला] १. छोटा थैला। कोश। कीना। बटुआ। २. रुपयों से भरी हुई थैली। तोड़ा।

मुहा०—थैली खोलना = थैली में से निकालकर रुपया देना। उ०—तब धानिय व्योहारया बानो। तुरत देउं मैं थैली खोली।—तुलसी (शब्द०)।

थैलीदार—संज्ञा पु० [हि० थैली + फा० दार] १. वह आदमी जो लज्जाने में रुपए लठता है। २. तहवीलदार। रोकड़िया।

थैलीपति—संज्ञा पु० [हि० थैली + सं० पति] पूँजीपति। रुपएवाला। मालदार। उ०—पालपेट में शुद्ध थैलीपतियों का बहुमत था।—भा० ६० रु०, पृ० २६४।

थैलीबरदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० थैली + फा० बरदार] थैली उठाकर पहुँचाने का काम। थैलियों की डोलाई।

थैलीशाही—संज्ञा स्त्री० [हि० थैली + फा० शाही] पूँजीवाद।

थौँद—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्द] दे० 'तोंद'। उ०—थौँद चलिक बर चाल, मनो मृदंग मिलावनी।—नंद० प्र०, पृ० ३३४।

थौँदिया—संज्ञा स्त्री० [हि० तोंद का स्त्री० प्रत्यय०] दे० 'तोंद'। उ०—उज्ज्वल तन, धोरी सी थौँदिया, राते प्रंबर सोई।—नंद० प्र०, पृ० ३४१।

थो—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'था'। उ०—का जानें तुम कहा लिख्यो यो जाकी फल मैं पायो।—नट०, पृ० २१।

थोक—संज्ञा पु० [सं० स्तोमक, प्र० थोबक, हि० थोक] १. ढेर। राशि। झटाला। २. समूह। झुंड। जत्था।

मुहा०—थोक करना = इकट्ठा करना। जमा करना। उ०—दुम चढ़ि काहे न टेरो कान्हा गैया दूरि गई। बिबरत फिरत सकन बन महियाँ एकइ एक भई। छाँड़ि खेल सब दूरि जात हैं बोले जो सके थोक कई।—सूर (शब्द०)। थोक की थोक = ढेर की ढेर। बहुत सी। उ०—वह यह भी जानले थे कि मेरी थोक की थोक डाक बिनी डाकलाने में जमा हो रही है।—किन्नर०, पृ० ५४।

३. बिक्री का इकट्ठा माल। इकट्ठा बेचने की चीज। खुशरा का उलटा। जैसे,—हम थोक के खरीदार हैं। ४. जमीन का टुकड़ा जो किसी एक आदमी का हिस्सा हो। चक। ५. इकट्ठी वस्तु। कुल। ६. वह स्थान जहाँ कई गाँवों की सीमाएँ मिलती हो। वह जगह जहाँ कई सरहदें मिलें।

थोकदार—संज्ञा पु० [हि० थोक + फा० दार] इकट्ठा माल बेचने वाला व्यापारी।

थोड़(पु०)—वि० [सं० स्तोमक] दे० 'थोड़ा'। उ०—बहुल कीड कनिक थोड़, बीवक पैंबी दीघ घोंड़।—कीर्ति० पृ० ९६।

थोड़ा—वि० [सं० स्तोमक, पा० थोम + डा (प्रत्यय०)] [वि० स्त्री० थोड़ी] जो मात्रा या परिमाण में अधिक न हो। थुन। प्रत्य। कम। तनिक। जरा सा। जैसे,—(क) थोड़े दिनों से वह बीमार हैं। (ख) मेरे पास अब बहुत थोड़े रुपए रह गए हैं।

गौ०—थोड़ा थोड़ा = कम कम। कुछ कुछ। थोड़ा बहुत = कुछ। कुछ कुछ। किसी कदर। जैसे,—थोड़ा बहुत रुपया उनके पास जकूर है।

मुहा०—थोड़ा थोड़ा होना = लज्जित होना। संकुचित होना। हेठ पड़ना।

थोड़ा—क्रि० वि० प्रत्यय परिमाण या मात्रा में। जरा। तनिक। जैसे,—थोड़ा चलकर देख लो।

मुहा०—थोड़ा ही = नहीं। बिल्कुल नहीं। जैसे,—हम थोड़ा ही जायेंगे, जो जाय उससे कहो।

विशेष—बोलचाल में इस मुहा० का प्रयोग ऐसी जगह होता है जहाँ उस बात का खंडन करना होता है जिसे समझकर दूसरा कोई बात कहता है।

थोता—वि० [हि०] ३० 'थोथा' । उ०—'तुका' सज्जन तिन सूँ कहिये
जियनी प्रेम दुनाय । दुर्जन तेरा मुख काला थोता प्रेम घटाय ।
—दक्खिनी०, पृ० १०८ ।

थोती—संज्ञा स्त्री० [देश०] चौपायों के मुँह का अगला भाग ।
थूथन ।

थोथ—संज्ञा स्त्री० [हि० थोथा] १. खोललापन । निःसारता ।
२. तोंद । पेटी ।

थोथर—वि० [हि० थोथ + र (प्रत्य०)] खोलला । थोथरा । उ०—
वन्ते भरी मुख थोथर भए गेल जनिक भाग्रोल साँप ठाम बैसलें
भुवन भमिम । भरी गेल सबे दाप ।—विद्यापति, पृ० ४०२ ।

थोथरा—वि० [हि० थोथ + रा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० थोथरी] १. धुन
या कीड़ों का खाया हुआ । खोलला । खाली । २. निःसार ।
जिसमें कुछ तत्व न हो । ३. निकम्मा । व्यर्थ का । जो किसी
काम का न हो । उ०—(क) मत छोड़ी घट थोथरा ता घर बैठो
कूलि ।—चरण० बानी, भा० २, पृ० २०४ । (ख) प्रनुभो भूठी
थोथरी निरगुन सच्चा नाम ।—दरिया० बानी, पृ० २२ ।

थोथा^१—वि० [देश०] [वि० स्त्री० थोथी] १. जिसके भीतर कुछ
सार न हो । खोलला । खाली । पोला । जैसे, थोथा चना
बाजे चना । उ०—बहुत मिले मोहि नेमी धर्मो प्रात करे
घसनाना । घातम छोड़ पषाने पूजैं तिन का थोथा जाना ।—
कबीर श०, भा० १, पृ० २७ । २. जिसकी धार तेज न
हो । कुंठित । गुठला । जैसे, थोथा तीर । ३. (साँप) जिसकी
पूँछ कट गई हो । बाडा । बे दुम का । ४. भट्ठा । बेडंगा ।
व्यर्थ का । निकम्मा ।

मुहा०—थोथी कथनी = व्यर्थ की बात । निःसार बात । उ०—
करनी रहनी दड़ गही थोथी कथनी डारो ।—चरण०
बानी, भा० २, पृ० १७० । थोथी बात = (१) भद्दी बात ।
(२) व्यर्थ की बात । व्यर्थ का प्रलप ।

थोथा^२—संज्ञा पुं० बरतन ढालने का मिट्टी का साँचा ।

थोथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास ।

थोपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० थोपना] चपत । धोल ।

थो०—गनेस थोपड़ी = लड़कों का एक खेल जिसमें जो चोर
होता है उसकी आँखें बंद करके उसके सिर पर सब लड़के
बारी बारी चपत लगाते हैं । यदि चपत खानेवाला लड़का
ठीक ठीक बतला देता है कि किसने पहले चपत लगाई तो वह
पहले चपत लगावेवाला लड़का चोर हो जाता है ।

थोपना—क्रि० सं० [सं० स्थापन, हि० थापन] १. किसी बिली बीज
(जैसे, मिट्टी, घाटा आदि) की मोटी तह ऊपर से जमाना
या रखना । किसी बिली वस्तु का लोढ़ा यों ही ऊपर डाल
देना या जमा देना । पानी में सनी हुई वस्तु के लोढ़े को
किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैलाकर ढालना कि वह
उसपर चिपक जाय । छोपना । जैसे, -घड़े के मुँह पर
मिट्टी छोप दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. सबे पर रोटी बनाने के लिये यों ही बिना बड़े हुए गीला घाटा

फैला देना । ३. मोटा लेप चढ़ाना । लेव चढ़ाना । ४.
धारोपित करना । मत्थे मढ़ना । लगाना । जैसे, किसी पर
बोष थोपना । ५. आक्रमण आदि से रक्षा करना । बचाना ।
३० 'छोपना' ।

थोपी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० थोपना] चपत । धोल । चपेट । थोपड़ी ।

थोषड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] थूथन । जानवरों का निकला हुआ
लंबा मुँह ।

थोष रखना—क्रि० सं० [लक्ष०] जहाज को धार पर चढ़ाना ।

थोभड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] धूँही । बीवार । भित्ति । उ०—देखो
जोगी करामातड़ी मनमा महल बनाया । बिन थाँमा बिन
थोभड़ी आसमान ठहराया ।—राम० धर्म०, पृ० ४६ ।

थोरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. केले की पेड़ी के बीच का गाभा । २.
थूहर का पेड़ ।

थोर^२—वि० [हि० थोड़ा] मोड़ा । स्वल्प । छोटा । उ०—उठे धन
थोर विराजत बाम । धरे मनु द्वाटक साविगराम ।—पृ०
रा०, २१।२० ।

थो०—थोरथनी = छोटे छोटे स्तनोंवाली । उ०—रोम राज राणी
भ्रमहि थोरथनी दुँडि बाल । उतकंठा उतकंठ की ते पुज्जी
प्रतिपाल ।—पृ० रा०, २५।७२५ ।

थोरा^३—वि० [हि०] ३० 'थोड़ा' ।

थोरिक^३—वि० [हि० थोरा + एक] थोड़ा सा । तनिक सा ।

थोरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक हीन धनार्थ जानि ।

थोरी^२—वि० स्त्री० [थोरा का स्त्री० प्रलप०] ३० 'थोड़ा' ।

थोरो, थोरौ—वि० [हि०] ३० 'थोड़ा' । उ०—पाछे उन बंदीवान
के तें थोरो द्रव्य आवन लाग्यो ।—दो सी बानन०, भा० १,
पृ० १२८ । (ख) ग्रहो महारि सब बंधन छोरो । सुबर सुत
पर भयो न थोरो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५१ ।

थोल^१—वि० [हि०] ३० 'थोड़ा' । उ०—काहु कापल काहु थोल,
काहु संबल काहु थोल ।—काति०, पृ० २४ ।

थोहर^३—संज्ञा पुं० [देश०] ३० 'थूहर' । उ०—सुभा हरड़ थोहर
गुभा, सुभा कहत कल्याण । सुभा जु सोभावान हरि, थोर
न दूजो जान ।—नंद० ग्रं०, पृ० ७० ।

थौदि^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्द या तुण्ड] तोंद । पेट । उ०—किहू
कठारीन सो थौदि फारी । तहीं दूसरें आनिके सोस भारी ।
—सुजान०, पृ० २१ ।

थ्यौ^१—क्रि० घ० [हि०] ३० 'था' । उ०—सवाल सान सूरतों खुदाए
ताला के जात में क्यों थ्यौ ?—दक्खिनी०, पृ० ३८८ ।

ध्यावस^१—संज्ञा पुं० [सं० ध्येयस] १. स्थिरता । ठहराव । २. धीरता ।
धैर्य । उ०—(क) बिन पावस तो इन्हें ध्यावस है न सु क्यों
करिये अब सो परसे । बदरा बरसे आनु मे घिरि के नित ही
श्रंखियाँ उधरी बरसे ।—आनंदधन (शब्द०) । (ख) उयों
कहलाय मसुसनि ऊमस क्यों हैं कहैं सो धरे नहि ध्यावस ।—
आनंदधन (शब्द०) ।

६

६—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला में अठारहवाँ व्यंजन जो तर्ज का तीसरा वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान दंतमूल है; दंतमूल में जिह्वा के अगले भाग के स्पर्श से इसका उच्चारण होता है। यह व्यंज्यप्राण है और इसमें संवार, नाद और घोष नामक बाह्य प्रयत्न हैं।

दंग—वि० [फा०] विस्मित। चकित। आश्चर्यान्वित। स्तब्ध। हक्का बक्का।

क्रि० प्र०—रह जाना।—होना।

दंग^२—संज्ञा पुं० १. ध्वराहट। भय। डर। उ०—जब रथ साजि बड़ी रण सम्मुख जीय न धानो दंग। राघव सेन समेत संचारों करी क्षिरमय दंग।—सूर(शब्द०)। २. ई० 'दंगा'।

दंगा^३—संज्ञा पुं० [देख०] अग्निकण। उ०—इक राहु बाहु लागी असुर निरसहाय प्राकार नव। ध्वरंग प्रवी पर जलटियो, दंग प्रगट्यो जाण दब।—रा० क०, पु० २०।

दंगई—वि० [हि० दंगा + ई (प्रत्य०)] १. दंगा करनेवाला। उपद्रवी लड़ाका। भगड़ालू। २. प्रचंड। उग्र। ३. दंगली। बहुत लंबा। लंबा चौड़ा। भारी।

दंगल—संज्ञा पुं० [फा०] १. मत्तों का युद्ध। पहलवानों की वह कुश्ती जो जोड़ बंद कर हो और जिसमें जीतनेवाले को इनाम प्रादि मिले। २. झगड़ा। मत्तयुद्ध का स्थान।

मुहा०—दंगल में उतरना = कुश्ती लड़ने के लिये झगड़े में धाना। ३. जमावड़ा। समूह। समाज। दल। उ०—सावन नित संतन के घर में, रति नति सियवर में। नित वसंत नित हुरी बंगल, जैसी बस्ती तैसो जंगल, दल बादल से जिनके दंगल पगे रटे की भर में।—देवस्वामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जमाना।—बाँधना।

४. बहुत मोटा गद्दा या तोलक। उ०—(क) महलकार हाथ धोकर सामने बैठ जाते थे, वह दंगल पर रहता था, खाना एक बड़ी सी कुर्सी पर चुना जाता था।—शिवप्रसाद (शब्द०)। (ल) बावर्ची जब छुट्टी पाता हो... किसी बड़े दंगल पर पवि फैला कर लंबा पड़ जाता।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

दंगली—वि० [फा० दंगल] १. दुष्ट करनेवाला। लड़ाका। प्रचण्ड-कर। उ०—भुवन भगत तेरी चरणऊ दंगली।—भूषण प्र०, पु० ४५। २. दंगल में कुश्ती लड़नेवाला। दंगल जीतनेवाला।

दंगलारा—संज्ञा पुं० [हि० दंगल + वारा] वह सहायता जो किसी गाँव के किसान एक दूसरे को हल बैल प्रादि देकर देते हैं। जिता। हुरसीत।

दंगा—संज्ञा पुं० [फा० दंगल] १. झगड़ा। बहड़ेड़ा। उपद्रव। उ०—खेलन लाग बालकन संग। जब तब करिय सखन ते दंगा।—विश्राम। (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—दंगा फसाद।

२. गुल गपाड़ा। हुल्लड़। शोर। गुल। उ०—जीश पर मंगा हँसै भुजन भुजंगा हँसै हाँस ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में।—पद्माकर (शब्द०)।

दंगाई—वि० [हि० दंगा] दे० 'दंगई'।

दंगैल—वि० [हि० दंगा + एत या येत (प्रत्य०)] १. दंगा करने-वाला। उपद्रवी। २. बागी। बलवाई।

दंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] १. डंडा। सोंटा। लाठी।

विशेष—स्पृतियों में आश्रम और वर्ण के अनुसार दंड धारण करने की व्यवस्था है। उपनयन संस्कार के समय भेलना प्रादि के साथ ब्रह्मचारी को दंड भी धारण कराया जाता है। प्रत्येक वर्ण के ब्रह्मचारी के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के दंडों की व्यवस्था है। ब्राह्मण को बेल या पलाश का दंड केशांत तक ऊँचा, क्षत्रिय को बरगद या खैर का दंड ललाट तक और वैश्य को गूलर या पलाश का दंड नाक तक ऊँचा धारण करना चाहिए। गृहस्थों के लिये मनु ने बाँस का डंडा या छड़ी रखने का आदेश दिया है। संन्यासियों में कुटीचक और बहूदक को त्रिदंड (तीन दंड), हंस को एक वेणुदंड और परमहंस को भी एक दंड धारण करना चाहिए। ऐसा निर्णयसिद्धि में उल्लेख है। पर किसी किसी ग्रंथ में यह भी लिखा है कि परमहंस परम ज्ञान को पहुँचा हुआ होता है अतः उसे दंड प्रादि धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं। राजा लोग शासन और प्रतापबुद्धि एक प्रकार का राजदंड धारण करते थे।

मुहा०—दंड ग्रहण करना = संन्यास लेना। विरक्त या संन्यासी हो जाना।

२. डंडे के आकार की कोई वस्तु। जैसे, भुजदंड, कुडादंड, वैतसदंड, इन्दुदंड इत्यादि। ३. एक प्रकार की कसरत जो हाथ पैर के पंजों के बल प्राँधि होकर की जाती है।

क्रि० प्र०—करना।—पेलना।—मारना।—लगाना।

यौ०—दंडपेल। चक्रदंड।

४. भूमि पर प्राँधि लेटकर किया हुआ प्रणाम। दंडवत्।

यौ०—दंड प्रणाम।

५. एक प्रकार का गूह। दे० 'दंडगूह'। ६. किसी अपराध के प्रति-कार में अपराधी को पहुँचाई हुई पीड़ा या हानि। कोई मूल चूक या बुरा काम करनेवाले के प्रति वह कठोर व्यवहार जो उसे ठीक करने या उसके द्वारा पहुँची हुई हानि को पूरा कराने के लिये किया जाय। शासन और परिशोध की व्यवस्था। सजा। तदारक।

विशेष—राज्य चलाने के लिये साम, दान, भेद और दंड ये चार नीतियाँ शास्त्र में कही गई हैं। अपने देश में प्रजा के शासन के लिये जिस दंडनीति का राजा आश्रय लेता है उसका विस्तृत

वर्णन स्पृति ग्रंथों में है। ऐसे दंड की तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं—उत्तम साहस (भारी दंड, जैसे, वध, सर्वस्वहरण, देश-निकाला, अंगच्छेद इत्यादि); मध्यम साहस और प्रथम साहस। अग्निपुराण तथा अर्थशास्त्र में अन्य देशों के प्रति काम में लाई जानेवाली दंडविधि का भी उल्लेख है; जैसे, लुटना, भाग लगाना, आघात पहुँचाना, बस्ती उजाड़ना इत्यादि।

७. अर्थदंड। वह धन जो अपराधी से किसी अपराध के कारण लिया जाय। जुरमाना। डंड।

क्रि० प्र०—लगाना।—देना।—लेना।

मुद्रा०—दंड डालना = (१) जुरमाना करना। अर्थदंड लगाना। (२) कर लगाना। महसूल लगाना। दंड पढ़ना = हानि होना। नुकसान होना। घाटा होना। जैसे,—घड़ी किसी काम की न निकली, उसका रुपया दंड पड़ा। दंड भरना = (१) जुरमाना देना। (२) दूसरे के नुकसान को पूरा करना। दंड भोगना या भुगताना = (१) सजा अपने ऊपर लेना। दंड सहना। (२) जान बूझकर व्यर्थ कष्ट उठाना। दंड सहना = नुकसान उठाना। घाटा सहना।

विशेष—स्पृतिग्रंथों में अर्थदंड की भी तीन श्रेणियाँ हैं,—प्रथम साहस ढाई सौ पण तक; मध्यम साहस पाँच सौ पण तक और उत्तम साहस एक हजार पण तक।

८. दमन। शासन। वश। शमन।

विशेष—संन्यासियों के लिये तीन प्रकार के दंड रखे गए हैं,—(१) वाग्दंड—बाणों को वश में रखना; (२) मनोदंड—मन को खंचल न होने देना, अधिकार में रखना और (३) कायदंड—शरीर को कष्ट का अभ्यास कराना। संन्यासियों का त्रिदंड इन्हीं तीन दंडों का सुरक्षक चिह्न है।

९. ध्वजा या पताका का बाँस। १०. तराजू की डंडी। डंडी। ११. मबानी। १२. किसी वस्तु (जैसे, करछी, चम्मच आदि) की डंडी। १३. हल की लंबी लकड़ी। हल में लगनेवाली लंबी लकड़ी। हरिस। १४. जहाज या नाव का मस्तूल। १५. एक योग का नाम। १६. लंबाई की एक माप जो चार हाथ की होती थी। १७. हरिवंश पुराण के अनुसार इक्ष्वाकु राजा के सौ पुत्रों में से एक जिनके नाम के कारण दंड-कारण्य नाम पड़ा। वि० दि० 'दंडक'—४। १८. कुबेर के एक पुत्र का नाम। १९. (दंड देनेवाला) यम। २०. विष्णु। २१. शिव। २२. सेना। फौज। २३. अश्व। घोड़ा। २४. साठ पल का काल। चौबीस मिनट का समय। २५. वह अग्नि जिसके पूर्व और उत्तर कोठरियाँ हों। २६. सूर्य का एक पार्श्वचर। सूर्य का एक अनुचर (को०)। २७. गर्व। अर्मर। अभिमान (को०)। २८. वाद्य बजाने की एक प्रकार की लकड़ी (को०)। २९. कमल की नाव। जैसे, कमलदंड। ३०. राजा के हाथ का दंड जो शासन का प्रतीक होता है (को०)। ३१. डंड। पतवार (को०)।

४-६७

दंडच्छरण—संज्ञा पु० [सं० दण्डच्छरण] वह ऋण जो सरकारी जुरमाना देने के लिये लिया गया हो।

दंडकंदक—संज्ञा [सं० दण्डकंदक] घरणी कंद। सेमर का मुमला।

दंडक—संज्ञा पु० [सं० दण्डक] १. डंडा। २. दंड देनेवाला पुरुष। शासक। ३. छंदों का एक वर्ग। वह छंद जिसमें वर्णों की संख्या २९ में अधिक हो।

विशेष—दंडक दो प्रकार का होता है, एक गण्यत्मक, दूसरा मुक्तक। गण्यत्मक वह है जिसमें गणों का बंधन होता है अर्थात् किस गण के उपरान्त फिर कौन सा गण आना चाहिए, इसका नियम होता है। जैसे, कुमुदस्तक, त्रिभंगी, नीलचक्र इत्यादि। उ०—(नीलचक्र)। जानि कै समै भवान, रामराज साज साजि ता समै प्रकाश काज कैकई जु कीन। भूपतैं हराय बैन राम सीय बंधु युक्त बोलिकै पठाय वेगि कानन सुदीन।—(शब्द०)। मुक्तक वह है जिसमें केवल अक्षरों की गिनती होती है अर्थात् जो गणों के बंधन से मुक्त होता है। किसी किसी में कहीं कहीं लघु गुण का नियम होता है। हिंदी काव्य में जो कवित्त (मनहर) और घनाक्षरी छंद अधिक व्यवहृत हुए हैं वे इसी मुक्तक के अंतर्गत हैं। उ०—(मनहर कवित्त)। आनंद के कंद जग जयावन जगतबंद दशरथनंद के निबाहेई निबहिए। कहै पद्माकर पवित्र पन पालिवे कौं चोरे, चक्रपाणि के चरित्रन कौं बहिए।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३८।

४. इक्ष्वाकु राजा के पुत्र का नाम।

विशेष—ये शुक्राचार्य के शिष्य थे। इन्होंने एक बार गुप्त की कन्या का कोमार्य भंग किया। इसपर शुक्राचार्य ने शाप देकर इन्हें इनके पुर के सहित भस्म कर दिया। इनका देश जंगल हो गया और दंडकारण्य कहलाने लगा।

५. दंडकारण्य। ६. एक प्रकार का वातरोग जिसमें हाथ, पैर, पीठ, कमर आदि अंग रतन्त्र होकर ऐंठ से आते हैं। ७. शुद्ध राग का एक भेद। ८. हल में लगनेवाली एक लंबी लकड़ी। हरिस (को०)।

दंडकर्म—संज्ञा पु० [सं० दण्डकर्मन्] दंड देने का काम। दंड। सजा (को०)।

दंडकल—संज्ञा पु० [सं० दण्डकल] एक छंद का नाम जिसमें तीस मात्राएँ होती हैं (को०)।

दंडकला—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डकला] एक छंद जिसमें १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। इसमें जगण न आना चाहिए। जैसे—फल फूपनि त्यावे, हरिहि सुनावे, हे या लायक भोगन का। अथ सब गुन पूरी, स्वादन करी, हरनि अनेकन रोगन की।

दंडका—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डका] दंडक वन। दंडकारण्य (को०)।

दंडकाक—संज्ञा पु० [सं० दण्डकाक] काला और बड़े आकारवाला कीड़ा। डोम कीड़ा (को०)।

दंडकारण्य—संज्ञा पु० [सं० दण्डकारण्य] वह प्राचीन वन जो

विषय पर्वत से लेकर गोदावरी के किनारे तक फैला था। इस वन में श्रीरामचंद्र वनवास के काल में बहुत दिनों तक रहे थे। यहीं शूर्पणखा के वाक कान कटे थे और सीताहरण हुआ था।

दंडकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डकी] डोलक।

दंडखेदी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डखेदिन्] वह मनुष्य जो राज्य से दंड पाने के कारण कष्ट में हो। दंड से दुःखी व्यक्ति।

विशेष—प्राचीन काल में भिन्न भिन्न अपराधों के लिये हाथ पैर काटने, श्रृंग जलाने आदि का दंड दिया जाता था जिसके कारण दंडित व्यक्ति बहुत दिनों तक कष्ट में रहते थे। कोटिल्य ने ऐसे व्यक्तियों के कष्ट का उपाय करने की भी व्यवस्था की थी।

दंडगौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डगौरी] एक घण्टरा का नाम।

दंडग्रहण—संज्ञा पुं० [सं० दण्डग्रहण] संन्यास आश्रम जिसमें दंड ग्रहण करने का विधान है।

दंडघ्न—संज्ञा पुं० [सं० दण्डघ्न] १. डंडे से मारनेवाला। दूसरे के शरीर पर घाघात पहुँचानेवाला। २. दंड को न माननेवाला। राजा या शासन जिस दंड की व्यवस्था करे उसका भंग करनेवाला।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि चोर, परस्त्रीचामी, दुष्ट बचन बोझनेवाले, साहसिक, दंडघ्न इत्यादि जिस राजा के पुर में न हों वह इंद्रलोक को पाता है।

दंडधारी—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेनापति (कोटि०)। २. सेना का एक विभाग (को०)।

दंडछदन—संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा जिसमें विभिन्न प्रकार के बर्तन रखे जाते हैं (को०)।

दंडदक्का—संज्ञा पुं० [सं० दण्डदक्का] दमाघा। नगाड़ा। धोसा।

दंडताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डताम्री] वह जलतरंग बाजा जिसमें तबे की कटोरियाँ काम में लाई जाती हैं।

दंडदास—संज्ञा पुं० [सं० दण्डदास] वह जो दंड का खपया न दे सकने के कारण दास हुआ हो। वह जो जुरमाने का खपया नौकरी करके चुकाता हो।

दंडदेवकुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डदेवकुल] न्यायालय। मवास्त (को०)।

दंडदेवार—वि० [सं० दण्ड + हि० देवार = देनेवाला] दंड देनेवाला। समताशाही। उ०—समर सिध भेवार दंडदेवार अजर जर। बीली पति धनंग सरन अड्डों सुलोह लरि।—पृ० रा०, ७।२४।

दंडधर—वि० [सं० दण्डधर] डंडा रखनेवाला।

दंडधर^२—संज्ञा पुं० १. यमराज। २. शासनकर्ता। ३. संन्यासी। ४. छड़ी बरदार। द्वाररक्षक। उ०—जहाँ बूढ़े करणिक, दंडधर, कंचुकी और बाहुक तत्परता से इधर उधर घूमते।—वै० न० पृ० ६४।

दंडधार^१—वि० [सं० दण्डधार] डंडा रखनेवाला।

दंडधार^२—संज्ञा पुं० १. यमराज। २. राजा। ३. एक राजा का नाम जो महाभारत में दुर्योधन की ओर था और अर्जुन से लड़कर

मारा गया था। ४. पांचालवंशीय एक योद्धा जो पांडवों की ओर से लड़ा था और कर्ण के हाथ से मारा गया था।

दंडधारण—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डधारण] कोटिल्य के अनुसार वह भूमि या प्रदेश जहाँ प्रबंध और शासन के लिये सेना रखनी पड़े।

दंडधारी—वि० संज्ञा पुं० [सं० दण्डधारिन्] दे० दंडधर (को०)।

दंडन—संज्ञा पुं० [सं० दण्डन] [वि० दंडनीय, दंडित, दंड्य] दंड देने का क्रिया। शासन।

दंडना^(१)—क्रि० सं० [सं० दण्डन] दंड देना। शासित करना। सजा देना। उ०—मुण्डल मुग्धर हुनत, त्रिविध कर्मनि गनत, मोहि दंडत धमंडुत हारे।—सुर (शब्द०)।

दंडनायक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डनायक] १. सेनापति। २. दंड-विधान करनेवाला राजा या हाकिम। ३. सूर्य के एक अनुचर का नाम।

दंडनीति—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डनीति] १. दंड देकर अर्थात् पीड़ित करके शासन में रखने की राजाओं की नीति। सेना आदि के द्वारा बलप्रयोग करने की विधि। २. दुर्गा का एक रूप (को०)।

दंडनीय—वि० [सं० दण्डनीय] दंड देने योग्य।

दंडनेता—संज्ञा पुं० [सं० दण्डनेतृ] १. तृप। राजा। २. यमराज। ३. हाकिम (को०)।

दंडप—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप] नरेश। राजा (को०)।

दंडपांशुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपांशुल] दंडधर। छड़ी बरदार। द्वारपाल (को०)।

दंडपांसुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपांसुल] दे० 'दंडपांशुल'।

दंडपाणि—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाणि] १. यमराज। २. काशी में भैरव की एक मूर्ति।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि पूरुषभद्र नामक एक वन की हरिकेश नाम का एक पुत्र था जो महादेव का बड़ा भक्त था। एक बार जब इसने घोर तप किया तब महादेव पारंगती सहित इसके पास आए और बोले तुम काशी के दंडधर हो। वहाँ के दुष्टों का शासन और साधुओं का पालन करो। संभ्रम और उद्धम नाम के मेरे दो बाल तुम्हारा सहायता के लिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। बिना तुम्हारी पूजा किए कोई काशी में मुक्ति नहीं पा सकेगा।

३. पुलिस। नगररक्षक कर्मचारी (को०)।

दंडपात—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपात] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी को चीद नहीं आती और वह इधर उधर पावक की तरह घूमता है।

दंडपारुष्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपारुष्य] १. मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट के मतानुसार दूसरे के शरीर पर हाथ, डंडे आदि से घाघात करने, धूल मैला आदि फेंकने का दुष्ट कार्य। मार पीट। २. राजाओं के साथ व्यसनों में से एक।

दंडपाल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाल] दे० 'दंडपालक'।

दंडपालक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपालक] १. डपोढ़ीदार। बरवान। द्वारपाल। २. एक प्रकार की मछली। दौड़िका मछली।

दंडपाशक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाशक] १. दंड देनेवाला प्रधान कर्मचारी । २. घातक । जस्लाद ।

दंडपाशिक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाशिक] पुलिस का अधिकारी ।
उ०—पाल, परमार, गहड़वाल तथा प्रतिहार लेखों में पुलिस अधिकारी के लिये दंडिक, दंडपाशिक या दंडशक्ति का प्रयोग किया गया है ।—पू० म० भा०, पृ० ११० ।

दंडप्रणाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप्रणाम] भूमि में डंडे के समान पड़कर प्रणाम करने की मुद्रा । दंडवत् । सादर अभिवादन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दंडप्रनाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप्रणाम] दे० 'दंडप्रणाम' ।
उ०—दंडप्रनाम करत मुनि देखे । मूर्तिमंत भाग्य निज लेखे ।—मानस, २ । २०५ ।

दंडबालधि—संज्ञा पुं० [सं० दण्डबालधि] हाथी ।

दंडभंग—संज्ञा पुं० [सं० दण्डभङ्ग] शासन या आदेश का उल्लंघन ।
दंडाज्ञा का व्यवहार न होना [को०] ।

दंडभय—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + भय] दंड या सजा का डर ।

दंडभृत्—वि० [सं० दण्डभृत्] डंडा रखनेवाला । डंडा चलाने या चुमानेवाला ।

दंडभृत्—संज्ञा पुं० १. कुम्हार । कुंभकार । २. यमराज [को०] ।

दंडमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमत्स्य] एक प्रकार की मछली जो देखने में डंडे या साँप के आकार की होती है । बाघ मछली ।

दंडमाणव—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमाणव] दे० 'दंडमानव' ।

दंडमाथ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमाथ] सीधा रास्ता । प्रधान पथ ।

दंडमान—वि० [सं० दण्ड + हि० मान (प्रत्य०)] दंड पाने योग्य ।
सजा के लायक । दंडनीय । उ०—मदंडमान दीन गर्व दंडमान भेदवे ।—केशव (शब्द०) ।

दंडमानव—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमानव] वह जिसे दंड देने की अधिक आवश्यकता पड़ती हो । बालक । लड़का ।

दंडमुख—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमुख] सेनानायक । सेनापति [को०] ।

दंडमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डमुद्रा] १. सत्र की एक मुद्रा जिसमें मुट्ठी बाँधकर बीच की उँगली ऊपर की खड़ी करते हैं । २. साधुओं के दो चिह्न दंड और मुद्रा ।

दंडयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डयात्रा] सेना की बढ़ाई । २. दिग्विजय के लिये प्रस्थान । ३. वरयात्रा । बारात ।

दंडयाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डयाम] १. यम । २. दिन । ३. भगस्य मुनि ।

दंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डरी] एक प्रकार की ककड़ी । डंगरी फल ।

दंडवत्—संज्ञा पुं० । स्त्री० [सं० दण्डवत्] साष्टांग प्रणाम । पृथ्वी पर सेटकर किया हुआ नमस्कार ।

दंडवत्—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्' । उ०—मुनि कहँ राम दंडवत् कीन्हा । आशिरवाद विप्र वर दीन्हा ।—सुवर्णी (शब्द०) ।

विशेष—पूरव में इस शब्द को पुल्लिङ्ग बोलते हैं पर दिल्ली की ओर यह शब्द स्त्रीलिङ्ग बोला जाता है ।

दंडवध—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवध] प्राणदंड । फाँसी की सजा ।

दंडवासी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवासी] १. द्वारपाल । दरवान । २. गाँव का हाकिम या मुखिया ।

दंडवाही—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवाहिन्] राजा की ओर से नगररक्षा विभाग का व्यक्ति । पुलिस का कर्मचारी [को०] ।

दंडविकल्प—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविकल्प] निर्धारित दो प्रकार के दंड (जुर्माना या सजा) में से किसी एक को चुन लेने की शक्ति [को०] ।

दंडविधान—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविधान] दे० 'दंडविधि' ।

दंडविधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डविधि] अपराधों के दंड से संबंध रखनेवाला नियम या व्यवस्था । जुर्म और सजा का कानून ।

दंडविष्कम्भ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविष्कम्भ] वह खंभा जिसमें वही दूध मथने की रस्मी बाँधी जाय [को०] ।

दंडवृत्त—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवृत्त] चूहर । सेढूढ़ ।

दंडव्यूह—संज्ञा पुं० [सं० दण्डव्यूह] १. सेना की डंडे के आकार की स्थिति ।

विशेष—इस व्यूह में आगे वक्रावृत्त, बीच में राजा, पीछे सेनापति, दोनों ओर से हाथी, हाथियों की बगल में घोड़े और घोड़ों की बगल में पैदल सिपाही रहते थे । मनुस्मृति में इस व्यूह का उल्लेख है । धनिपुराण में इसके सर्वतोदृष्टि, त्रियंगुलि आदि अनेक भेद बतलाए गए हैं ।

२. कोटिल्य के अनुसार पञ्च, कक्ष तथा उरस्य में सेना की समान स्थिति ।

दंडशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + शास्त्र] दंड देने का विधान या कानून [को०] ।

दंडसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डसन्धि] कोटिल्य के अनुसार वह संधि जो सेना या लड़ाई का सामान लेकर की जाय । अपने से कम शक्ति या बलवाले राजा से धन लेकर की जानेवाली संधि ।

दंडस्थान—संज्ञा पुं० [सं० दण्डस्थान] १. वह स्थान जहाँ दंड पहुँचाया जा सकता है ।

विशेष—मनु ने दंड के लिये दस स्थान बतलाए हैं—(१) उपस्थ, (२) उदर, (३) त्रिहा, (४) दोनों हाथ, (५) दोनों पैर, (६) दाँत, (७) नाक, (८) कान, (९) धन और (१०) वह । अपराध के अनुसार राजा नाक, कान आदि काट सकता है या धन हरण कर सकता है ।

२. कोटिल्य के मत से वह जनपद या राष्ट्र जिसका शासन केंद्र द्वारा होता हो ।

दंडहस्त—संज्ञा पुं० [सं० दण्डहस्त] १. तार का फूल । २. द्वारपाल । ३. यमराज [को०] ।

दंडा—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] दे० 'डंडा' ।

दंडाकरण—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाकरण] दे० 'दंडकारण्य' ।

उ०—परे घाह बन परबत माहीं । दंडाकरन बीम बन जाहीं ।
—जायसी (शब्द०) ।

दंडाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाक्ष] महाभारत के अनुसार चंपा नदी के किनारे का एक तीर्थ ।

दंडाक्षय—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाक्षय] बृहत्संहिता के अनुसार वह भवन जिसके दो पाश्वर्य में से एक उत्तर और दूसरा पूर्व की ओर हो ।

दंडाजिन—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाजिन] १. साधु संन्यासियों के धारण करने का दंड और मृगचर्म । २. भूठपूठ का घाड़बंद । थोखेबाजी का ढकोसला । कपटवेश ।

दंडादंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डादण्डि] दंडों की मारपीट । लट्टबाजी । लाठी की लड़ाई ।

दंडाधिप—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अधिप] दंड देने का प्रमुख अधिकारी (को०) ।

दंडाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अध्यक्ष] दंडाधिकारी । न्यायाधीश । उ०—दंडाध्यक्ष या पाषाण न्यायकरणिक का उल्लेख नहीं मिलता । - पू० म० भा०, पु० १०८ ।

दंडानीक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अनीक] सेना की टुकड़ी या विभाग (को०) ।

दंडापतानक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अपतानक] एक प्रकार की वातव्याधि जिसमें कफ और वात के बिगड़ने से मनुष्य का शरीर सूखे काठ की तरह जड़ हो जाता है । उ०—देह को दंड के समान निरुद्ध कर दे यह दंडापतानक कष्ट साध्य है । माधव०, पु० १३८ ।

दंडापूपन्याय—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अपूपन्याय] एक प्रकार का न्याय या उद्घात कथन जिसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जब किसी के द्वारा कोई बहुत कठिन कार्य हो गया तब उसके साथ ही लगा हुआ सहज और सुलभ कार्य अवश्य ही हुआ होगा । जैसे, यदि डंडे में बंधा हुआ अपूप अर्थात् मालपूषा कहीं रखा हो और थोड़े मालूम हो कि डंडे को चूहे खा गए तो यह अवश्य ही समझ लेना चाहिए कि चूहे मालपूष को पहले ही खा गए होंगे ।

दंडायमान—वि० [सं० दण्डायमान] डंडे की तरह सीधा खड़ा । खड़ा । उ०—यह कोतुक देखने के उपरांत विष्णु महाराज देवी की स्तुति करने को दंडायमान हुए । हे महामाया ! सच्चिदानंदरूपिणी । मैं तुमको नमस्कार करता हूँ ।—कबीर म० पु० २१४ ।

क्रि० प्र०—होना ।

दंडार—संज्ञा पुं० [सं० दण्डार] १. धनुष । २. मदगल हाथी । ३. नाव । ४. स्पंदन । ५. कुहलार का चाक (को०) ।

दंडाह—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाह] दंड देने योग्य । दंडपागी । दंड माने योग्य (को०) ।

दंडालय—संज्ञा पुं० [सं० दण्डालय] १. न्यायालय जहाँ से दंड का विधान हो । २. वह स्थान जहाँ दंड दिया जाय । जैसे, जेल-

खाना । ३. एक छंद जिसे दंडकला भी कहते हैं । ४. 'दंडकला' ।

दंडालसिका—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अलसिका] हैजा । कालरा (को०) ।
दंडावतानक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अवतानक] ३० 'दंडापतानक' (को०) ।

दंडाहत^१—वि० [सं० दण्डाहत] डंडे से मारा हुआ ।

दंडाहत^२—संज्ञा पुं० छाछ । मट्ठा ।

दंडिक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिक] १. नगरपालक कर्मचारी । २. दंडधर । छड़ी बरदार । ३. एक प्रकार का मत्स्य (को०) ।

दंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डिका] १. बीटा धमरों की एक बण्णकृति जिसके प्रत्येक चरण में एक रगण के उपरांत एक जगण, इस प्रकार गणों का जोड़ा तीस बार आता है और अंत में गुरु लघु होता है । इसे दूत धोर गड़का भी कहते हैं । जैसे,—रोज रोज राजगैलें लिए गुपाल बाल तीन सात । वायु सेवनार्थ प्रातः बाग जात घाव से सुफूल बात । २. यष्टिका । छड़ी (को०) । ३. कतार । पंक्ति (को०) । ४. रज्जु । डोरी (को०) । ५. मोती की लर, हार आदि (को०) ।

दंडित—वि० पुं० [सं० दण्डित] दंड पाया हुआ । जिसे दंड मिला हो । सजायापता । २. जिसका शासन किया गया हो । शासित । उ०—पंडित गण मंडित गुण दंडित मनि देखिए ।—केशव (शब्द०) ।

दंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डिनी] दंडोत्पत्ति । एक प्रकार का साग ।

दंडिमुंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिमुण्ड] शिव का एक नाम (को०) ।

दंडी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिन्] १. दंड धारण करनेवाला व्यक्ति । २. यमराज । ३. राजा । ४. द्वारपाल । ५. वह संन्यासी जो दंड और कमंडलु धारण करे ।

विशेष—ब्राह्मण के अतिरिक्त और किसी को दंडी होने का अधिकार नहीं है । यद्यपि पिता, माता, स्त्री, पुत्र आदि के रहते भी दंड लेने का निषेध है, तथापि लोग ऐसा करते हैं । मंत्र देने के पहले गुरु शिष्य होनेवाले के सव संस्कार (धम्म-प्राशन आदि) फिर से करते हैं । उसकी शिखा मूँड़ दी जाती है और जनेऊ उतारकर भस्म कर दिया जाता है । पहना नाम भी बदल दिया जाता है । इसके उपरांत दशाक्षर मंत्र देकर गुरु गेरवा वस्त्र और दंड कमंडलु देते हैं । इन सबको गुरु से प्राप्त कर शिष्य दंडी हो जाता है और जीवनपर्यंत कुछ नियमों का पालन करता है । दंडी लोग गेरवा वस्त्र पहनते हैं, सिर मुड़ाए रहते हैं और कभी कभी भस्म और रुद्राक्ष भी धारण करते हैं । दंडी लोग अग्नि और वायु का स्पर्श नहीं करते, इससे अपने हाथ से रसोई नहीं बना सकते । किसी ब्राह्मण के घर से पका भोजन माँगकर खा सकते हैं । दंडियों के लिये दो बार भोजन करने का निषेध है । इन सब नियमों का पालन करते तक पालन करके अंत में दंड को जल में फेंककर दंडी परमहंस आश्रम को प्राप्त करता है । दंडियों के लिये विगुण ब्रह्म की उपासना की व्यवस्था है । जिससे यह उपासना न हो सके वे शिव आदि की उपासना

कर सकते हैं। मरने पर दंडियों के शव का दाह नहीं होता, या तो शव मिट्टी में गाड़ दिया जाता है या नदी में फेंक दिया जाता है। काशी में बहुत से दंडी दिखाई पड़ते हैं।

६. सूर्य के एक पार्श्वचर का नाम। ७. जिन देव। ८. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ९. दमनक वृक्ष। दाने का पोष। १०. मंजुश्री। ११. शिव। महादेव। १२. नाविक। १३. (को०)। १३. संस्कृत के प्रसिद्ध कवि जिनके बनाए हुए दश ग्रंथ मिलते हैं 'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श'। ऐसा प्रसिद्ध है कि दंडी ने तीन ग्रंथ लिखे थे दशकुमारचरित (गद्यकाव्य), काव्यादर्श (लक्षण ग्रंथ) और भवंतिसुंदरी कथा, पर तीसरे का पता बहुत दिनों तक नहीं लगा था। इधर उक्त ग्रंथ प्राप्त हो गया है और प्रकाशित भी है। अनेक लोगों का मत है कि ईसा की छठी शताब्दी में दंडी हुए थे। 'शंकर-विश्वजय' में 'वाणमयूरदंडि मुक्यान्' से ज्ञात होता है कि ये वाण और मयूर के समकालीन थे। इतना तो निश्चय है कि ये कालिदास और शूद्रक आदि के पीछे के हैं। इनकी वाच्य-रचना आठंबरपूर्ण है।

दंडोत्तु—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—बंवन सबही सुरन की विधि हू को दंडोत्त। कर्मन की फल देतु हैं इनकी कहा उचोत्त।—बज० पृ०, पृ० ७२।

दंडोत्पल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डोत्पल] एक पोषे का नाम जिसे कुछ लोग गुमा, कुछ लोग कुकरोषा और कुछ लोग बड़ी सहदेया समझते हैं।

दंडोत्पला—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डोत्पला] दे० 'दंडोत्पल'।

दंडोपनत—वि० [सं० दण्ड + उपनत] कौटिल्य के अनुसार पराजित और अधीन (राजा)।

दंडोत्तु—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—सनमुख मंजुलि जाइ करी दंडोत्त सबन कहैं। कुसुमंजलि सिर मंडि धूप नैवेद्य समुह सहुँ।—पृ० रा०, ६।५८।

दंड्य—वि० [सं० दण्ड्य] दंड पाने योग्य। जिसे दंड देना उचित हो।

दंत—संज्ञा पुं० [सं० दन्त] १. दाँत। उ०—दंत कवाडघा नहू रंग्या। चाखउ सखी होखी खेलबा जाई।—बी० रासो, पृ० ६८।

यौ०—दंतकथा। दंत चिकित्सक = दाँत की चिकित्सा करने-वाला। दंतचिकित्सा = दाँत का इलाज।

२. ३२ की संख्या। ३. गाय के हिस्सों में बहुत ही छोटा हिस्सा जो पाई से भी बहुत कम होता है। (कौड़ियों में दान के चिह्न होते हैं इसी से यह संख्या बनी है)। ४. कुंज। ५. पहाड़ की चोटी। ६. बाण का सिरा या नोक (को०)। ७. हाथी का दाँत (को०)।

यौ०—दंतकार।

दंतक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक] १. दाँत। २. पहाड़ की चोटी। ३. पहाड़ से निकलनेवाला एक प्रकार का पत्थर। ४. दीवाल में लगी हुई लूटी (को०)।

दंतकथा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तकथा] ऐसी बात जिसे बहुत दिनों से

लोग एक दूसरे से सुनते चले आए हों; तथा जिसका कोई और पुष्ट प्रमाण न हो। सुनी सुनाई बात। अनुश्रुति। उ०—इति वेद वदंति न दंतकथा। रवि आतप भिन्न न धिन्न यथा।—तुलसी (शब्द०)।

दंतकर्पण—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकर्षण] जमीरी नीबू।

दंतकार—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकार] १. वह व्यक्ति जो हाथीदाँत का काम करता हो। २. दाँत बनानेवाला गिल्सी। दंत चिकित्सक डाक्टर।

दंतकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकाष्ठ] दनुवन। दलून। मुखारी।

दंतकाष्ठक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकाष्ठक] आहुत्य वृक्ष। तरवठ का पेड़।

दंतकुली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त + कुल (= समुदाय)] दाँतों की पक्ति। उ०—दंतकुली अगुली करी कोपरी कपाली। बीच छेत विरपरी, फरी बिहरी किरभानी।—रा० क०, पृ० २५१।

दंतकूर—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकूर] युद्ध। संग्राम।

दंतक्षत—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] कामशास्त्र के अनुसार कामकेलि में नायक नायिका द्वारा प्रेमोन्माद में एक दूसरे के अधर और कपोल में लगा हुआ दाँत काटने का चिह्न। दाँत काटने का निशान (को०)।

दंतचर्च—संज्ञा पुं० [सं० दन्तचर्च] दाँत पर दाँत दबाकर घिसने की क्रिया। दाँत किरकिरीना।

विशेष—निद्रा की अवस्था में बच्चे कभी कभी दाँत किरकिराते हैं जिसे लोग अशुभ समझते हैं। रोग के रक्त में यह और भी बुरा समझा जाता है।

दंतघात—संज्ञा पुं० [सं० दन्तघात] दे० 'दंताघात'।

दंतच्छद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तच्छद] मोष्ठ। श्रोष्ठ।

दंतच्छदोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तच्छदोपमा] बिडाफल। कुंदरू।

दंतक्षत—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] दे० 'दंतक्षत'।

दंतच्छद^१—संज्ञा पुं० [सं० दन्तच्छद] दंतच्छद।

दंतच्छद^२—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] दे० 'दंतक्षत'।

दंतजात—वि० [सं० दन्तजात] १. (बच्चा) जिसे दाँत निकल आए हों। २. दाँत निकलने योग्य (काल)।

विशेष—गर्भोपनिषद् में लिखा है कि बच्चे को सातवें महीने में दाँत निकलना चाहिए। यदि उस समय दाँत न निकलें तो अशोच लगता है।

दंतजाह—संज्ञा पुं० [सं० दन्तजाह] दाँतों की लड़ (को०)।

दंतताल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तताल] एक प्रकार का प्राचीन बाजा जिसे ताल दिया जाता है।

दंतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तदर्शन] क्रोध या चिड़चिड़ाहट में दाँत निकालने की क्रिया।

विशेष—महाभारत (वन पर्व) में लिखा है कि युद्ध में पहले दाँत दिखाए जाते हैं फिर शब्द करके वार किया जाता है।

दंतधाव—संज्ञा पुं० [सं० दन्तधाव] दे० 'दंतधावन' (को०)।

दंतधावन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तधावन] १. दाँत घोने या साफ करने

का काम । दातुन करने की क्रिया । २. बतोन । दातुन । ३. सिर का पेड़ । कदिर बुझ । ४. करण का पेड़ । ५. मौलसिरी ।

दंतपत्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपत्र] कान का एक गहना ।

विशेष—संभवतः जो हाथी दाँत का बनता रहा हो ।

दंतपत्रक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपत्रक] १. कुंठ पुष्प । २. कान का एक आभूषण । दंतपत्र (को०) ।

दंतपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपत्रिका] १. कान का एक आभूषण । २. कुंठ का पुष्प । ३. कंधी [को०] ।

दंतपवन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपवन] दाँत शुद्ध करने की क्रिया । दंतषावन । २. दातुवन । दातुन ।

दंतपांचालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपाञ्चालिका] हाथीदाँत की बनी पुतली [को०] ।

दंतपात—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपात] दाँतों का गिरना [को०] ।

दंतपार—संज्ञा स्त्री० [हि० दंत + उपारना] दाँत की पीड़ा । दाँत का दर्द ।

दंतपालि—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपालि] तलवार की मूठ । तलवार का कब्जा या दस्ता [को०] ।

दंतपाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपाली] दाँत की पीड़ा । मसूड़ा [को०] ।

दंतपुष्पुट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुष्पुट] भसूँओं का एक रोग, जिसमें वे सूज जाते हैं और दर्द करते हैं ।

दंतपुर—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुर] प्राचीन कलिंग राज्य का एक नगर जहाँ पर राजा ब्रह्मदत्त ने बुद्धदेव का एक दंत स्थापित करके उसके ऊपर एक बड़ा मंदिर बनवाया था ।

विशेष—यह दंतपुर कहाँ था, इसके संबंध में मतभेद है । डाक्टर राजेंद्रलाल का मत है कि मेदिनीपुर जिले में जलेश्वर से छह कोस दक्खिन जो दंतन नामक स्थान है वही बोद्धों का प्राचीन दंतपुर है । सिन्धुली बोद्धों के 'दांतावंश' नामक ग्रंथ में दंतपुर के संबंध में बहुत सा वृत्तांत दिया हुआ है ।

दंतपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुष्प] १. कतक । निर्मली । २. कुंठ का फूल ।

दंतप्रक्षालन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तप्रक्षालन] ३० 'दंतपवन' [को०] ।

दंतप्रवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तप्रवेष्ट] हाथी के दाँत का आवरण [को०] ।

दंतफल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तफल] १. कतक फल । निर्मली । २. कपिल । कैथ ।

दंतफला—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तफला] पिप्पली ।

दंतबीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तबीज] वह जिसके बीज दाँत के सदृश हों । दाड़िम । अनार [को०] ।

दंतबीजक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तबीजक] ३० 'दंतबीज' [को०] ।

दंतभाग—संज्ञा पुं० [सं० दन्तभाग] १. हाथी के सिर का वह अग्र भाग जहाँ से उसके दाँत निकलते हैं । २. दाँतों का हिस्सा [को०] ।

दंतमध्य—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमध्य] ३० 'दंतान्तर' [को०] ।

दंतमांस—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमांस] मसूड़ा ।

दंतमूल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमूल] १. दाँत की जड़ । २. दाँत का एक रोग ।

दंतमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तमूलिका] दाँती बुझ । दाँत का पेड़ ।

दंतमूलीय—वि० [सं० दन्तमूलीय] दंतमूल से उद्धारण किया हुआ (वर्ण) । जैसे, तवर्ण ।

विशेष—व्याकरण के अनुसार स्वर वर्ण लृ घोर स, न तथा ल घोर स व्यंजन दंतमूलीय कहे जाते हैं ।

दंतलेखक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तलेखक] दाँतों को रंगने का व्यवसाय करने वाली जीविका अर्जित करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

दंतलेखन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तलेखन] एक अस्त्र जिससे दाँत जड़ के पास मसूड़ों को चीरकर मवाद आदि निकाला जाय जिससे दाँत की पीड़ा दूर होती है । दंतशर्करा नामक दवा इस अस्त्र का प्रयोग होता है ।

दंतवक्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवक्र] कर्ण देश का राजा, जो कर्ण का पुत्र था । यह शिशुपाल का भाई लगता था जो कर्ण के हाथ से मारा गया था ।

दंतवर्ण—वि० [सं० दन्तवर्ण] जमकदार । पीलापन ।

दंतवल्क—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवल्क] दाँत की जड़ के ऊपर का भाग । मसूड़ा ।

दंतवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवस्त्र] धोष्ठ । धोठ ।

दंतबीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तबीज] अनार ।

दंतबीणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तबीणा] १. वाद्यविशेष । एक प्रकार का बाजा । २. (शीतादि के कारण) दाँतों का बजना [को०] ।

यौ०—दंतबीणोपदेशाचार्य = शीत या ठंडक जिसके कारण दाँत बजने लगते हैं ।

दंतवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवेष्ट] १. हाथी के दाँत के ऊपर का मसूड़ा छल्ला । २. मसूड़ा । ३. दाँतों में होनेवाला एक रोग [को०] ।

दंतवैदर्भ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवैदर्भ] दाँत का एक रोग । किसी बाहरी आघात से दाँत का हिलना या टूटना ।

दंतशकु—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशकु] चीर काड़ का एक बीजा जो जो के पत्तों के आकार का होता था (मुद्गुत) । दाँत को उखाड़ने का यंत्र ।

दंतशठ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशठ] १. वे बुद्ध जिनके फल खाने से खटाई के कारण दाँत गुठले हो जायें । जैसे, कैथ, कमरु छोटी नारंगी, जभीरी नीबू, इत्यादि । २. खट्टापन । खटाई ।

दंतशठा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तशठा] खट्टी नोनिया । अमलोनी । २. बुक । चूक ।

दंतशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तशर्करा] दाँतों का एक रोग जो मेल जमकर बैठ जाने के कारण होता है ।

दंतशाण—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशाण] मिस्ती । स्त्रियों के दाँत पर लगाने का रंगीन मजन ।

दंतशूल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशूल] दाँत की पीड़ा ।

दन्तशोक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशोक] दाँत के मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा । दन्ताबुद्ब ।

दन्तरिल्ल—वि० [सं० दन्तरिल्ल] दाँतों में उलझा या चिपका हुआ [को०] ।

दन्तहर्ष—संज्ञा पुं० [सं० दन्तहर्ष] दाँतों की वह टीस जो अधिक ठंडी या खट्टी वस्तु खाने से होती है । दाँतों का खट्टा होना ।

दन्तहर्षक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तहर्षक] जंभीरी नीबू ।

दन्तहीन—वि० [सं० दन्तहीन] बिना दाँत का । जिसके मुँह में दाँत न हो [को०] ।

दन्तांतर—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + अन्तर] दाँतों के बीच का अंतर या स्थान [को०] ।

दन्ताघात—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताघात] १. दाँत का घातन । २. वह जिससे दाँत को घातन पहुँचे । नीबू ।

दन्ताज—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताज] १. दाँत की जड़ या मध्य में उगने वाले कीड़े । २. दाँत का रोग जो इन कीड़ों के कारण होता है ।

दन्तादन्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तादन्ति] एक दूसरे को दाँत से काटने की क्रिया या लड़ाई ।

दन्तायुध—संज्ञा पुं० [सं० दन्तायुध] वह जिसका प्रयोग दाँत हो । सुषर । जंगली सुषर ।

दन्तार—वि० [हि० दन्त + आर (प्रत्य०)] बड़े दाँतोंवाला ।

दन्तार—संज्ञा पुं० हाथी ।

दन्तारा—वि०, संज्ञा पुं० [हि० दन्तार] दे० दन्तार ।

दन्ताबुद्—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताबुद्] मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा ।

दन्ताल—संज्ञा पुं० [हि० दन्तार] हाथी ।

दन्तालय—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + आलय] मुख । मुँह [को०] ।

दन्तालि—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तालि] दाँतों की पक्ति । दाँतों की पंक्ति [को०] ।

दन्तालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तालिका] गगाम ।

दन्ताली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्ताली] गगाम ।

दन्तावल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तावल] हाथी ।

दन्तावली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त + अवली] दाँतों की पक्ति । 'दन्तालि' [को०] ।

दन्ताहक—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताहक] हाथी — (हि०) ।

दन्ति—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिन्] हाथी । उ०—मदा दन्ति के कुंभ को जो बिचारे ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १४२ ।

दन्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तिका] दाँती । जगामगोटा ।

दन्तिजा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तिजा] दाँती वृक्ष । दाँती [को०] ।

दन्तिद्वय—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिद्वय] हाथीदाँत ।

दन्तीबीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तीबीज] जमालगोटा ।

दन्तिमद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिमद] हाथी का मद । हाथी के मँड-स्थल का स्नायु [को०] ।

दन्तियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० दन्त + इया (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत ।

दन्तिवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिवक्त्र] हाथी की तरह मुँहवाले-गजामन । गणेश [को०] ।

दन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्ती] दाँती की जाति का एक पेड़ ।

विशेष—दन्ती दो प्रकार की होती है—एक लघुदन्ती और बृहदन्ती । लघुदन्ती के पत्ते गुलर के पत्तों के ऐसे होते हैं और बृहदन्ती के एरंड या धंडी के से । इसके बीच बस्तावर होते हैं और जमा-गोटे के स्थान पर औषध में काम आते हैं । वैद्यक में दन्ती, कटु, उष्ण और तृषा, शूल, बवासीर, फोड़े आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है । दन्ती के बीच अधिक मात्रा में देने से विष का काम करने है ।

पर्याय—आम्रा । निकुंभी । नागस्फोट । दन्तिनी । उपचिता । दन्ती । दन्ती । दन्ती । अनुकला । निशल्या । विशल्या । मधुपुष्पा । एरंडफला । तरुणी । एरंडपत्रिका । विशोधनी । कृष्ण । उदुंबरदला । प्रत्यक्षपर्णी ।

दन्ती—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिन्] १. हस्ती । हाथी । गज । उ०—मन्त्रे ये धृति नाचवन्त दन्ती रह रङ्कर ।—साकेत, पृ० ४१६ । २. गणेश । गजामन । ३. पर्वत । ४. सोम । चंद्रमा [को०] । ५. व्याघ्र । मृगाधिय [को०] । ६. फोड़ा । अंकोर । गज (दे०) । ७. रत्न । कुत । [को०] ।

दन्ती—संज्ञा पुं० दाँत । जिसके दाँत हैं [को०] ।

दन्तुर—वि० [सं० दन्तुर] जिसके दाँत प्रागे निकले हों । दन्तुला । दन्तु । २. ऊबड़ खाबड़ । नीचा ऊँचा [को०] । ३. खुला हुआ । धावरणरहित [को०] ।

दन्तुर—संज्ञा पुं० १. हाथी । २. सुषर ।

दन्तुरच्छद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तुरच्छद] जंभीरी नीबू । बिजोरा नीबू ।

दन्तुरित—वि० [सं० दन्तुरित] १. आवेष्टित । ढका हुआ । दे० दन्तुर [को०] ।

दन्तुल—वि० [सं० दन्तुल] दे० 'दन्तुर' [को०] ।

दन्तोलुखलिक—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + उलुखलिक] एक प्रकार के सम्यासी जो मोखली आदि में कूटा हुआ मग्न नहीं खाते । ये या तो फल खाते हैं या हिलके सहित पनाज के दानों को दाँत के नीचे कुबलकर खाते हैं ।

दन्तोलुखली—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + उलुखलिन्] दे० 'दन्तोलुखलिक' ।

दन्तोष्ठय—वि० [सं०] (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत और ओठ से हो ।

विशेष—ऐसा वर्ण 'व' है ।

दन्त्य—वि० [सं० दन्त्य] १. दाँत संबंधी । २. (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत की सहायता से हो । जैसे, तवर्ग । ३. दाँतों का हितकारी (औषध) ।

दंद—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन, दन्धमान्] किसी पदार्थ से निकलती हुई गरमी, वैसी तपी हुई भूमि पर मेघ का पानी पड़ने से निकलती है या खानों के भीतर पड़ी जाती है ।

क्रि० प्र०—घाना ।—निकलना ।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दन्ध प्रा० दं] १. लड़ाई भगड़ा। उपद्रव। हलबल। २. युद्ध। संघर्ष। संग्राम। उ०—भाज हनो जैचंद दं उयो मिटे ततविषन।—पृ० रा० ६१। १४६। ३. हल्ला गुल्ला। शोरगुल। ४. दुःख। मानसिक उथल पुथल। उ०—(क) रोहिनि माता उदर प्रगट भए हरन भक्त के दं।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५१३। (ख) त्यागहु संसय जम कर दं। सुझि परहि तब भवजल फंदा।—दरिया० बानी, पृ० ३।

क्रि० प्र०—मचाना।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दन्ध] दे० 'दं'। उ०—फूले पशु पंथो सब, देखि ताप कटे तब, फूले सब ग्वाल बाल कटे दुख दं।—नंद० प्र०, पृ० ३७६।

दं—वि० [सं० दमन] नाश करनेवाला। दूर करनेवाला। दमन करनेवाला।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दन्ध] दाँत। दंत [को०]।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दन्धक] १. सर्प। २. राक्षस विशेष। ३. कीट। कीड़ा [को०]। ४. एक प्रकार का नरक।

दं—वि० हिंसक। काटनेवाला [को०]।

दं—वि० [सं० दन्धर] दं को दूर करनेवाला। मानसिक शांति पहुँचानेवाला। उ०—परसति मंद सुगंध दंहर विपिन विपिन में।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६।

दं—वि० [सं० दन्धमान] बहुकता हुआ।

दं—संज्ञा पुं० [देश०] ताल देने का एक प्रकार का पुराना बाजा।

दं—संज्ञा पुं० [प्रा०] दाँत [को०]।

यौ०—दंदानपाज = दंतचिकित्सक। दाँत बनानेवाला।

दं—क्रि० प्र० [हि० दं] १. गरम लगना। गरमी पहुँचाता हुआ सालूम होना। जैसे, रुई का दं, बंद कोठरी का दं। २. किसी गरम चीज के आसपास होने से गरम होना। जैसे, रजाई या कंबल के नीचे दं।

दं—संज्ञा पुं० [प्रा० दं] [वि० दं] दाँत के आकार की उभरी हुई वस्तुओं की पंक्ति। शंकु या कंगूरे के रूप में निकली हुई चीजों की कतार, जैसी कंधी या घारे घादि में होती है।

दं—वि० [प्रा०] जिसमें दं हों। जिसमें दाँत की तरह निकले हुए कंगूरों की पंक्ति हो।

दं—संज्ञा पुं० [हि० दं + प्रा० (प्रत्य०)] छाला। फफोला।

दं—वि० [सं० दन्धी, हि० दं] भगड़ाव। उपद्रवी। बड़ेका करनेवाला। हुजबती। उ०—कलजुम मधे जुग चारि रचीला चूकिला चार बिचारं। चरि चरि दं चरि चरि बादी चरि चरि कथणहार।—गोरख०, पृ० १२३।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दन्ध] दे० 'दं'। उ०—प्रब हो कंठ फाँव विष चीन्हा। दं के फाँव चाहु का कीन्हा।—जावसी प्र० (गुप्त), पृ० १७०।

दं—वि० [सं० दन्धिल] दे० 'दं'। उ०—विद्याभरी दं

पेट उसपर साँप की जपेट। बिघन करत है जपेट पकड़ फेट काल की।—बनिसनी०, पृ० ४५।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] दे० 'दंपति'। उ०—छोड़त ना पल एकी झकेले, न पीड़ित हैं परजंक पै दंपत।—नट०, पृ० ३४।

दंपति—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] दे० 'दंपती'।

दंपती—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] स्त्री पुरुष का जोड़ा। पति पत्नी का जोड़ा।

दं—संज्ञा स्त्री [हि० दमकना] बिजली। उ०—चोपते चकोर चहुँ ओर जानि चंदमुखी जो न होती डरनि दसन दुति दं का।—पूरबी (शब्द०)।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ] [वि० दंभी] १. महत्त्व दिखाने या प्रयोजन सिद्ध करने के लिये झूठा आडंबर। धोखे में डालने के लिये ऊपरी दिखावट। पाखंड। उ०—आसन मार दं बर बैठे मन में बहुत गुमाना।—कबीर प्र०, पृ० ३३८। २. झूठी ठसक। अभिमान। घमंड। ३. झठता। शाठ्य [को०]। ४. शिव का एक नाम [को०]। ५. इंद्र का बज्र [को०]।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दम्भक] पाखंडी। ठकोसलेबाज। प्रतारक।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दम्भन] पाखंड करना। ठोंग करना [को०]।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ का बहुव०] दे० 'दंभी'।

दंभी—वि० [सं० दम्भिन्] १. पाखंडी। आडंबर रचनेवाला। ठकोसलेबाज। २. झूठी ठसकवाला। अभिमानी। घमंडी।

दं—संज्ञा पुं० [सं० दम्भोक्ति] इंद्रास्त्र। वज्र। उ०—मत्त मातंग बल अंग दंभोलि दल काछिनी लाल गजमाल सोही।—सुर (शब्द०)।

दं—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह घाव जो दाँत काटने से हुआ हो। दंतक्षत। २. दाँत काटने की क्रिया। दंशन। ३. साँप या और किसी विषैले जंतु के काटने का घाव। जैसे, सर्पदंश। ४. आशेपवचन। बोलहार। व्यंग्य। कट्टाई। ५. डेरा। बैर।

क्रि० प्र०—रखना।

१. दाँत। ७. विषैले जंतुओं का डंक। ८. जोड़। संघ। प्रिय [को०]। ९. एक प्रकार की मक्खी जिसके डंक विषैले होते हैं। डाँस। बगदर। उ०—मसक दंश बीते हिम नासा।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—वनमक्षिका। गोमक्षिका। भमरालिका। पांसुर। दुष्टमुख। क्रूर।

१०. वमं। बकतर। ११. एक असुर।

विशेष—इसकी कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है—सत्ययुग में दंश नामक एक बड़ा प्रतापी असुर रहता था। एक दिन वह भृगु मुनि की पत्नी को हर ले गया। इसपर भृगु ने उसे शाप दिया कि 'तू मल मूत्र का कीड़ा हो जा'। शाप से उठकर जब असुर बहुत विडगिड़ाने लगा तब भृगु ने कहा—'मेरे बंध में जो राम (परशुराम) होंगे वे शाप से तुझे मुक्त करेंगे'। वह असुर शाप के अनुसार कीट हुआ।

कणुं अब परशुराम से भस्मशिक्षा प्राप्त कर रहे थे तब एक दिन कणुं के जघे पर सिर रखकर परशुराम खो गए। ठीक उसी समय वह कोड़ा घाकर कणुं की जाँघ में काटने लगा। कणुं ने गुरु का निद्रा भंग होने के डर से जाँघ नहीं हटाई। जब जाँघ में से रक्त की धारा निकली तब परशुराम की नीच टूटी घोर उन्होंने उस कीड़े की घोर ताका। उनके ताकते ही उस कीड़े ने उसी रक्त के बीच अपना कीट शरीर छोड़ा घोर अपने पूर्व रूप में घा गया।

दंशक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो काट खाए। दाँत से काटनेवाला। २. डाँस नाम की मक्खी जो बड़े जोर से काटती है। ३. श्वान। कुत्ता (को०)। ४. मणक। मच्छर (को०)।

दंशक^२—वि० दंशन करनेवाला।

दंशन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दंशित, दंशी] १. दाँत से काटना। डसना। जैसे सपंदशन। ७०—घोर पीठ पर हो दुरंत दंशनों का त्रास।—जहर, पृ० ५६।

क्रि० प्र०—करना।

२. बर्भ। बकतर।

दंशना^(१)—क्रि० सं० [सं० दंश + हि० ना (प्रत्य०)] काटना। डसना।

दंशनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कीट (को०)।

दंशभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा।

विशेष—भैंसों को मच्छर घोर डाँस बहुत लगते हैं।

दंशभीरुक—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'दंशभीरु' (को०)।

दंशगूल—संज्ञा पुं० [सं०] सहज का पेड़। कोभाजन।

दंशवदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगुला। बक (को०)।

दंशित—वि० [सं०] १. दाँत से काटा हुआ। २. बर्भ से घाँछावित। बकतर से डका हुआ।

दंशी^१—वि० [सं० दंशित] [वि० स्त्री० दंशनी] १. दाँत से काटनेवाला। डसनेवाला। २. आक्षेप बर्भन कहनेवाला। कटुक्ति कहनेवाला। ३. द्वेषी। बैर या कसर रखनेवाला।

दंशी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा दंश। छोटा डाँस।

दंशक—वि० [सं०] डंसनेवाला। डंक मारनेवाला। दंशक।

दंशक—वि० [सं०] १. दे० 'दंशक'। २. हानिकारक (को०)।

दंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत।

दंष्ट्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोटे दाँत। स्थूल दाँत। दाढ़। जोवर। २. विष्णु नाम का पौधा जिसमें रोईदार फल लगते हैं। वृश्चिकाक्षी।

बी०—दंष्ट्राकरण = बर्भकर दाँतोंवाला। दंष्ट्रादंड = बाराह या शूकर का दाँत। दंष्ट्रानखविष। दंष्ट्रा विष। दंष्ट्राविष।

दंष्ट्रानखविष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके नख घोर दाँत में बिध हो। जैसे, बिल्ली, कुत्ता, बंदर, मेढक, छिपकली इत्यादि।

दंष्ट्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका भस्त्र दाँत हो। शूकर। सुपर। ४-६८

दंष्ट्राल^१—वि० [सं०] बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दंष्ट्राल^२—संज्ञा पुं० १. एक राक्षस का नाम। २. शूकर। बाराह।

दंष्ट्राविष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प। साँप (को०)।

दंष्ट्राविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तरह की मक्खी (को०)।

दंष्ट्रास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दंष्ट्रायुध' (को०)।

दंष्ट्रिक—वि० [सं०] दंष्ट्रावाला। दंष्ट्राल (को०)।

दंष्ट्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दंष्ट्रा' (को०)।

दंष्ट्री^१—वि० [सं० दंष्ट्रि] १. बड़े बड़े दाँतोंवाला। २. दाँतों से काटनेवाला (को०)। ३. मामूली। माछाहारी। (को०)।

दंष्ट्री^२—संज्ञा पुं० १. सुपर। २. माँ। ३. अकड़बधा (को०)। ४. वह जंतु जिसके दाँत बड़े हों। बड़े दाँतोंवाला जंतु (को०)।

दंस^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दंश] दे० 'दंश'।

दंडवत्^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० दंडवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—पद्मावती के बरसन आता। दंडवत कीन्ह मंडप बट्टे पाता।—जायसी ग्रं०, पृ० २३२।

दँटना^१—क्रि० प्र० [हि० डटना] डटना। समीप होना। सठना।

दँतिया—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त, हि० दान + द्या (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत। दूध के दाँत। उ०—प्रजन धर दँतियन की जोती। जपाकुसुम मधि जनु बिबि मोती।—नंद० ग्रं०, पृ० २४१।

दँती^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दन्ती] हाथी। दन्ती। उ०—तुष्टि तंतं घती, मञ्जनीयं दँती।—पृ० १४०, १। ६४१।

दँतुरच्छद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तुरच्छद] बिजोरा नीबू।

दँतुरियाँ, दँतुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दाँत] बच्चों के छोटे छोटे दाँत।

दंतुला—वि० [सं० दन्तुल] [वि० स्त्री० दंतुली] जिसके दाँत घाघे निकले हों। बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दंतुली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त] बच्चे का छोटा दाँत। उ०—बाब-कृष्ण के छोटे छोटे नए दूध के दाँतों के लिये दूध की दंतुली का प्रयोग कितना सुंदर है।—पोद्दार ग्रंथि, पृ० १७२।

दँव—संज्ञा पुं० [सं० दंश] बय। अग्नि। प्राण। उ०—दँव दाधी माजति सुनत घति राधो त्रिहि आई।—हिंदी प्रेमगाथा० पृ० २१५।

दँवरो—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन, हि० दंविना] धनाज के सूखे डंठलों में के दाना भाँड़ने के लिये उसे बैलों से रोववाने का काम।

क्रि० प्र०—नाचना।

दँवारि^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दावारि'।

दँहगल—संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा घाकार को गानेवासी चिड़िया उ०—सबेरे सबेरे नहीं घाती बुल-बुल, न बयामा सुरीली, न फुवकी, न दँहगल।—हरी ग्रंथ, पृ० ३६।

दँ—वि० [सं०] १. उत्पन्न करनेवाला। २. देनेवाला। दाता।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं होता;

बल्कि किसी शब्द के अंत में जोड़ने से होता है। जैसे, सुखद (सुख देनेवाला), जलद (जल देनेवाला, बावल) आदि।

द^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। पहाड़। २. दान। ३. दाता।

द^२—संज्ञा स्त्री० १. भार्या। कलत्र। स्त्री। २. रक्षा। ३. खंडन।

दइ^१—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—बहए बुलए बुलि भमरि कलनाकर आहा दइ पाइ की भेल।—विद्यापति, पृ० ११८।

दइ^२—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—आह दइय में काह नसावा। करत लोक फलु घनइस पावा।—मानस, २।१६३।

दइ^३—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—धीरज धरति सगुन बल रहत सो नाहिन। हर किसोर धनु घोर दइउ नहि बाहिन।—तुलसी ग्रं० पृ० ५४।

दइ^४—वि० [हि०] दे० 'दईवारी'।

दइ^५—संज्ञा पुं० [सं० दाय] दे० 'दायजा'।

दइ^६—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दिति का पुत्र। दे० 'दैत्य'। उ०—नगर अजुध्या रामहि राजा। खैह दइत बाध सब साजा।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

दइ^७—वि० [हि०] [वि० स्त्री० दइमारी] दे० 'दईमारा'। उ०—(क) दुध दही नहि लेव रो कहि कहि पचिहारी। कहति सूर कोऊ धर नहीं कहाँ गई दइमारी।—सूर (शब्द०)। (ख) आखु धरन हित दुषु मँजारी। मो परि उचरि बरी दइमारी।—नंद० ग्रं०, पृ० १४८।

दइ^८—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। (स्त्रियों की बोलचाल में आश्रय एवं वेद आदि का व्यंजन)। उ०—भोर के आए दोऊ भइया। कीनो नहिन कलेऊ दइया।—नंद० ग्रं०, पृ० २५५।

दइ^९—संज्ञा पुं० [सं० देव, प्रा० दइव] दे० 'देव'। उ०—बेरि एक दइव दहिन जजा होए, निरधन धन जके घरब भोजे गोए।—विद्यापति, पृ० ३५४।

दई—संज्ञा पुं० [सं० देव] १. ईश्वर। विधाता। उ०—गई करि आहु दई के निहोरे।—दास (शब्द०)।

यौ०—दईमारा।

मुहा०—दई का घाला = ईश्वर का मारा हुआ। अभाग। कम-बल। उ०—जबनी कहति, दई की घाली! काहे को इत-राती।—सूर (शब्द०)। दई का मारा = दे० 'दईमारा'। दई दई = हे देव! हे देव। रक्षा के लिये ईश्वर की पुकार। उ०—(क) दई दई घालसी पुकारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दीरघ सास न लेहि दुख, सुख सँईहि न भूय। दई दई क्यों करत है, दई दई सो कहुन।—बिहारी (शब्द०)।

२. देव संयोग। अष्ट। प्रारंभ।

दई^{१०}—वि० [हि०] [वि० स्त्री० दईजारी] अभाग। दईमारा। (स्त्रियाँ)।

दई^{११}—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य'। उ०—कीन्हैसि राकस भूत परीता। कीन्हैसि भोकस देव दईता।—जायसी (शब्द०)।

दईमारा—वि० [हि० दई + मारना] [वि० स्त्री० दईमारी] ईश्वर का मारा हुआ। जिसपर ईश्वर का कोप हो। अभाग। अभाग्य। कमबल। उ०—फोहा फोहा करी वा पपीहा दईमारे को।—श्रीपति (शब्द०)।

दईमारो^{१२}—वि० [हि०] दे० 'दईमारा'।

दइ^{१३}—वि० [सं० दधि + दध] दे० 'देड़'। उ०—दउड़ बरस री मारुची, त्रिहु बरसोरिउ कंत। उणरउ ओवन नहि मयउ, तूँ किउँ जोवनवंत।—ढोला०, पृ० ४५०।

दउरना—क्रि० प्र० [हि० दोड़ना] दे० 'दोड़ना'।

दउरा^{१४}—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दोरा'।

दक—संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

दकन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दकन] दक्षिण भारत। देश का दक्षिणी भाग। २. दक्षिण दिक्। दक्खिन।

दकार—संज्ञा पुं० [सं०] तवर्ग का तीसरा अक्षर 'द'।

दकार्गल—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार भूमि के नीचे जल का ज्ञान करानेवाली एक विद्या। वि० दे० 'दगागल' [को०]।

दकियानूस—संज्ञा पुं० [यू० से प्र० दकियानूस] रोम देश का एक अत्याचारी सम्राट् जो सन् ३४६ ई० में सिंहासन पर बैठा था।

दकियानूसी—वि० [प्र० दकियानूसी] १. दकियानूस के समय का। पुराना। २. बहुत ही पुराना। कृषिप्रस्त। अजर। निकम्मा। उ०—हम आप क्या पुरातन दकियानूसी वृत्ति का परिचय देकर या प्रति प्रगतिवाद का बहाना करके इस जगत् का स्वागत न करेंगे?—कुंकुम (भू०), पृ० ११।

दकीक—वि० [प्र० दकीक] मुश्किल। कठिन। गूढ़। उ०—बिस्वा सहित मुश्किल मरक दकीक। या पानी का वाँ इक चम्मा प्रमीक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

दकीका—संज्ञा पुं० [प्र० दकीकह] १. कोई बारीक बात। २. युक्ति। उपाय।

मुहा०—कोई दकीका बाकी न रहना = कोई उपाय बाकी न रहना। सब उपाय कर चुकना। जैसे,—मुझे नुकसान पहुँचाने में तुमने कोई दकीका बाकी नहीं रखा।

३. क्षण। लक्षणा।

दक्काक—वि० [प्र० दक्काक] १. कूटनेवाला। पीसनेवाला। महीन करनेवाला। २. गूढ़ या सूक्ष्म बातों को कहनेवाला।

दक्खणा—वि० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खण] दक्षिण दिशा में स्थित दक्षिणी। उ०—घोड़ी घोरंग साहु तूँ उर निस दिवस धीर। मन लग्यो दक्खण मुलक, सरक न सके सरीर।—रा० क०, पृ० १६६।

दक्खिनी—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खण] [वि० दक्खिनी] १. वह दिशा जो सूर्य की ओर मुँह करके खड़े होने से बाहिने हाथ की ओर पड़ती है। उत्तर के सामने की दिशा। जैसे,—जिधर तुम्हारा पैर है वह दक्खिनी है।

विशेष—यद्यपि संस्कृत 'दक्षिण' शब्द विशेषण है पर हिंदी

शब्द दक्षिण विशेषण के रूप में नहीं आता। दक्षिण ओर, दक्षिण दिशा आदि वाक्यों में भी दक्षिण विशेषण नहीं है।

२. दक्षिण दिशा में पड़नेवाला प्रदेश। ३. भारतवर्ष का वह भाग जो दक्षिण की ओर है। विन्ध्य और नर्मदा के आगे का देश।

दक्षिण^२—क्रि० वि० दक्षिण की ओर। दक्षिण दिशा में। जैसे,—उनका गाँव यहाँ से दक्षिण पड़ता है।

दक्षिणी^१—वि० [हि० दक्षिण] १. दक्षिण का। जो दक्षिण दिशा में हो। जैसे, नदी का दक्षिणी किनारा। २. जो दक्षिण के देश का हो। दक्षिण देश में उत्पन्न। दक्षिण देश संबंधी। जैसे, दक्षिणी आदमी, दक्षिणी बोली, दक्षिणी सुशारी. दक्षिणी मिर्च।

दक्षिणी^२—संज्ञा पु० दक्षिण देश का निवासी।

दक्षिणी^३—संज्ञा स्त्री० दक्षिण देश की भाषा।

दक्ष^१—वि० [सं०] १. जिसमें किसी काम को श्रमपूर्वक करने की शक्ति हो। निपुण। कुशल। चतुर। होशियार। जैसे,—वह सितार बजाने में बड़ा दक्ष है। २. दक्षिण। दाहिना। उ०—(क) दक्ष दिसि रुचिर बारीश कन्या।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दक्ष भाग अनुराग सहित हविरा अधिक ललितार्थ।—तुलसी (शब्द०)। ३. साधु। सच्चा। ईमानदार। सत्यवक्ता (को०)।

दक्ष^२—संज्ञा पु० १. एक प्रजापति का नाम जिनसे देवता उत्पन्न हुए।

विशेष—ऋग्वेद में दक्ष प्रजापति का नाम आया है और कहीं कहीं ज्योतिष्मण के पिता कहकर उनकी स्तुति की गई है। दक्ष प्रजिति के पिता थे, इससे वे देवताओं के आदिपुरुष कहे जाते हैं। जहाँ ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति का यह क्रम बतलाया गया है कि धब से पहले ब्रह्मणस्पति ने कर्मकार की तरह कार्य किया, असत् से सत् उत्पन्न हुआ, उत्तानपद से भू और भू से बिम्बाएँ हुई, वहीं यह भी लिखा है कि 'प्रजिति से दक्ष जन्मे और दक्ष से प्रजिति जन्मी'। इस विलक्षण वाक्य के संबंध में निरुक्त में लिखा है कि 'या तो दोनों ने समान जन्म-लाभ किया, अथवा देवधर्मानुसार दोनों की एक दूसरे से उत्पत्ति और प्रकृति हुई।' शतपथ ब्राह्मण में दक्ष को सृष्टि का बालक और पोषक कहा गया है। हरिवंश में दक्ष को विष्णुस्वरूप कहा गया है। महाभारत और पुराणों में जो दक्ष के यज्ञ की कथा है उसका वर्णन वैदिक ग्रंथों में नहीं मिलता, हाँ, रुद्र के प्रभाव के प्रसंग में कुछ उसका आभास सा मिलता है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि पहले मानस सृष्टि हुआ करता था। दक्ष ने जब देखा कि मानस द्वारा प्रजावृद्धि नहीं होती है तब उन्होंने मैथुन द्वारा सृष्टि का विधान चलाया।

मत्स्यपुराण में दक्ष की कथा इस प्रकार है—ब्रह्मा ने सृष्टि की कामना से धर्म, रुद्र, मनु, भृगु तथा सनकादि को मानस-पुत्र के रूप में उत्पन्न किया। फिर दाहिने भ्रूणूँ से दक्ष को और बाएँ भ्रूणूँ से दक्षपत्नी को उत्पन्न किया। इस पत्नी से

दक्ष को सोलह कन्याएँ उत्पन्न हुई—श्रद्धा, मैत्री, दया, क्षाति, पुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, मूर्ति, तितिक्षा, ह्री, स्वाहा, स्वधा और सती। दक्ष ने इन्हे ब्रह्मा के मानसपुत्रों में बाँट दिया। रुद्र को दक्ष की सती नाम की कन्या प्राप्त हुई। एक बार दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ किया जिसमें उन्होंने अपने सारे जामाताओं को बुलाया पर रुद्र को नहीं बुलाया। सती बिना बुलाए ही अपने पिता का यज्ञ देखने गईं। वहाँ पिता से अपमानित होने पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। इसपर महादेव ने क्रुद्ध होकर दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया और दक्ष को शाप दिया कि तुम मनुष्य होकर ध्रुव के वंश में जन्म लगे। ध्रुव के वंशज प्रचेतामण ने जब ओर तपस्या की तब उन्हें प्रजासृष्टि करने का वर मिला और उन्होंने कडुकन्या मारिषा के गर्भ से दक्ष को उत्पन्न किया। दक्ष ने क्षत्रविध मानस सृष्टि की। पर जब मानस सृष्टि से प्रजावृद्धि न हुई तब उन्होंने वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी को ग्रहण किया और उससे सहस्र पुत्र और बहुत सी कन्याएँ उत्पन्न कीं। उन्हीं कन्याओं से कश्यप आदि ने सृष्टि चलाई। और पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ हेर फेर के साथ है।

२. अग्नि ऋषि। ३. महेश्वर। ४. शिव का वेल। ५. ताम्रबृद्ध। मुरगा। ६. एक राजा जो उशीनर के पुत्र थे। ७. विष्णु। ८. बल। ९. वीर्य। १०. अग्नि (को०)। ११. नायक का एक भेद जो सभी प्रेयसियों में समान भाव रखता हो (को०)। १२. शक्ति। योग्यता। उपयुक्तता (को०)। १३. लोटा या बुरा स्वभाव (को०)।

दक्षकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सती। वि० दे० 'दक्ष'। ३. अश्विनी आदि तारा।

दक्षकुलध्वंसी—संज्ञा पु० [सं० दक्षकुलध्वंसिन्] १. महादेव। २. महादेव के वंश से उत्पन्न वीरभद्र जिन्होंने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया था।

दक्षजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षकन्या'।

यौ०—दक्षजापति = (१) शिव। महेश्वर। (२) चंद्रमा (को०)।

दक्षणी—वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—दक्षण अयन सु सुरत ऋतु, उपजे गए न नरक।—ह० रामो, पृ० ३०।

दक्षतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षकन्या' (को०)।

दक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निपुणता। योग्यता। कमल।

दक्षदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा।

दक्षन^१—वि० [सं० दक्षिण] दाहिना। दाहिनी ओर का। उ०—मेढ़ हूँ के ऊपर दक्षन पाव आनि।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ४२।

दक्षनायन^१—वि० [सं० दक्षिणायन] दे० 'दक्षिणायन'। उ०—भावे दक्षनायन हूँ, भावे उत्तरायन हूँ, भावे देह सर्प सिंह बिजुली हनंत ज।—सुंदर०, प्र०, भा० २, पृ० ६४२।

दक्षविहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गीत।

दक्षसावर्णि—संज्ञा पु० [सं०] नवें मनु का नाम।

दक्षसुत—संज्ञा पुं० [सं०] देवता । सूर ।

दक्षसुता—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष + सुता] दे० 'दक्षकन्या' [को०] ।

दक्षांड—संज्ञा पुं० [सं० दक्षा + ङ] मुरमो का मंडा [को०] ।

दक्षा—वि० स्त्री० [सं०] कुशला । निपुणा ।

दक्षा^२—संज्ञा स्त्री० १. पृथ्वी । २. गंगा का एक नाम [को०] ।

दक्षाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैजतेय । गरुड । २. घोष । गृध्र [को०] ।

दक्षिण^१—वि० [सं०] १. दहना । दाहना । बायीं का उलटा । अग्र-मध्य । २. इस प्रकार प्रवृत्त जिससे किसी का कार्य सिद्ध हो । अनुकूल । ३. साधु । ईमानदार । सच्चा [को०] । ४. उस ओर का जिधर सूर्य की ओर मुँह करके खड़े होने से दाहिना हाथ पड़े । उत्तर का उलटा ।

यौ०—दक्षिणापथ । दक्षिणायन ।

५. निपुण । दक्ष । क्षतुर ।

दक्षिण^२—संज्ञा पुं० १. दक्खिन की दिशा । उत्तर के सामने की दिशा । २. काव्य या साहित्य में वह नायक जिसका अनुराग अपनी सब नायिकाओं पर समान हो । ३. प्रदक्षिण । ४. तंत्रोक्त एक आचार या मार्ग ।

विशेष—श्रृंगारुध तंत्र में लिखा है कि सबसे उत्तम तो वेदमार्ग है, वेद से अर्च्छा वैष्णव मार्ग है, वैष्णव से अर्च्छा शैव मार्ग है, शैव से अर्च्छा दक्षिण मार्ग है, दक्षिण से अर्च्छा वाम मार्ग है और वाम मार्ग में भी अर्च्छा सिद्धांत मार्ग है ।

५. विष्णु । ६. शिव का एक नाम [को०] । ७. दाहिना हाथ या पार्श्व [को०] । ८. दे० 'दक्षिणाम्नि' । ९. रथ के दाहिनी ओर का अश्व [को०] । १०. दक्षिण का प्रदेश [को०] ।

दक्षिणकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्रसार के अनुसार तंत्रिकों की एक देवी । २. दुर्गा [को०] ।

दक्षिणगोल—संज्ञा पुं० [सं०] विपुल रेखा से दक्षिण पड़नेवाली राक्षियाँ, जो छह हैं— तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन ।

दक्षिणपवन—संज्ञा पुं० [सं०] मलयपवन । मलयानिल ।

दक्षिण मार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की तंत्रिक साधना । २. पितृयान [को०] ।

दक्षिणस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] रथवाह । रथ हँकिनेवाला [को०] ।

दक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण दिशा । २. वह धन जो ब्राह्मणों या पुरोहितों को यज्ञादि कर्म कराने के पीछे दिया जाता है । वह धन जो किसी शुभ कार्य आदि के समय ब्राह्मणों को दिया जाय ।

कि० प्र०—देना ।—लेना ।

विशेष—पुराणों में दक्षिणा को यज्ञ की पत्नी बतलाया है । ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि कालिका पूर्णिमा की रात को जो एक बार राम मङ्गोत्पन्न हुआ उसी में श्रीकृष्ण के दक्षिणांश से दक्षिण की उत्पत्ति हुई थी ।

३. पुश्कार । भेट । ४. वह नायिका जो नायक के अग्य स्त्रियों से संबंध करने पर भी उससे बराबर वैसी ही प्रीति रखती हो ।

दक्षिणाम्नि—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिण + अग्नि] यज्ञ में गार्हपत्याग्नि से दक्षिण ओर स्थापित अग्नि ।

दक्षिणाग्र—वि० [सं०] जिसका अग्रभाग अंश दक्षिण की ओर हो । दक्षिणामुमुख [को०] ।

दक्षिणावतल—संज्ञा पुं० [सं०] मलयगिरि पर्वत । मलयावतल ।

दक्षिणाचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. मदाचार । शुद्ध और उत्तम आचरण । २. तंत्रिकों में एक प्रकार का आचार जिसमें अपने आपकी शिव मानकर पंचात्म से शिव की पूजा की जाती है । यह आचार वामाचार से श्रेष्ठ और प्रायः वैदिक माना जाता है ।

दक्षिणाचारी—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणाचारिण । १. विष्णुदाचारी । धर्मशील । सदाचारी । २. वह तंत्रिक जो दक्षिणाचार में दीक्षित हो ।

दक्षिणापथ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपर्वत के दक्षिण ओर का वह प्रदेश जहाँ से दक्षिण भारत के लिये रास्ते जाते हैं ।

दक्षिणापरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नैऋत कोण ।

दक्षिणाप्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की ओर अधिक नीचा या ढालुमाँ हो ।

विशेष—मनु के अनुसार श्राद्ध आदि के लिये ऐसा ही स्थान उपयुक्त होता है ।

दक्षिणामूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार शिव की एक मूर्ति ।

दक्षिणामुमुख—वि० [सं०] दक्षिण की ओर मुँह किए हुए । जिसका मुख दक्षिण दिशा की ओर हो ।

दक्षिणायन^१—वि० [सं०] दक्षिण की ओर । भूमध्यरेखा से दक्षिण की ओर । जैसे, दक्षिणायन सूर्य ।

दक्षिणायन^२—संज्ञा पुं० १. सूर्य की कर्क रेखा से दक्षिण मकर रेखा की ओर गति । २. वह छह महीने का समय जिसमें सूर्य कर्क रेखा से चलकर बराबर दक्षिण की ओर बढ़ता रहता है ।

विशेष—सूर्य २१ जून को कर्क रेखा अर्थात् उत्तरीय अयनसीमा पर पहुँचता है और फिर वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़ने लगता है और प्रायः २२ दिसंबर तक दक्षिणी अयन सीमा मकर रेखा तक पहुँच जाता है । पुराणानुसार जिस समय सूर्य दक्षिणायन हो उस समय कुम्भी, तालाब, मंदिर आदि न बनवाना चाहिए और न जेष्ठताम्रों की प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए । तो भी भैरव, बराह, दुर्लभ आदि की प्रतिष्ठा की जा सकती है ।

दक्षिणावर्त^१—वि० [सं०] जिसका घुमाव दाहिनी ओर को हो । जो दाहिनी ओर घूमा हुआ हो ।

दक्षिणावर्त^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का शंख जिसका घुमाव दाहिनी ओर को होता है ।

दक्षिणावर्तकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणावर्तकी] दे० 'दक्षिणावर्तवती' ।

दक्षिणावर्तवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली नाम का घोषा ।

दक्षिणावह—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण से आनेवाला हवा ।

दक्षिणाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा ।

दक्षिणाशापति—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम । २. मंगलग्रह ।

दक्षिणी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० दक्षिण + ई (प्रत्य०)] दक्षिण देश की भाषा ।

दक्षिणी^२—संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी ।

दक्षिणी^३—वि० दक्षिण देश का । दक्षिण देश संबंधी ।

दक्षिणीय—वि० [सं०] १. दक्षिण का । दक्षिण संबंधी । दक्षिण देश का । २. जो दक्षिण का पात्र हो ।

दक्षिण्य—वि० [सं०] दे० 'दक्षिणीय' [को०]

दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' ।

दक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—ब्राह्मणन को दान दक्षिणा दें श्री गोकुल आए ।—दो सो बावन, भा० १, पृ० १३६ ।

दक्षिनी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दक्षिणी] दे० 'दक्षिणी' ।

दखन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण; फ़ा० दकन] दे० 'दक्षिण' ।

दखमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दख्ख] वह स्थान जहाँ पारसी अपने मुरदे रखते हैं ।

विशेष—पारसियों में यह प्रथा है कि वे शव को जलाते या गाड़ते नहीं हैं बल्कि उसे किसी विशिष्ट प्रकार के स्थान में रख देते हैं जहाँ चील कोए प्रादि उसका मांस खा जाते हैं । इस काम के लिये वे थोड़ा सा स्थान पचीस तीस फुट ऊँची दीवार से चारों ओर से घेर देते हैं, जिसके ऊपरी भाग में जंगला मा लगा रहता है । इसी जंगले पर शव रख दिया जाता है । जब उसका मांस चील कोए प्रादि खा लेते हैं तब हड्डियाँ जंगले में से नीचे गिर पड़ती हैं । नीचे एक मार्ग होता है जिसमें ये हड्डियाँ निकाल ली जाती हैं । भारत में निवास करनेवाले पारसियों के लिये इस प्रकार की व्यवस्था बंबई, पुरत प्रादि कुछ नगरों में है ।

दखल—संज्ञा पुं० [फ़ा० दखल] १. अधिकार । कब्जा ।

क्रि० प्र०—करना ।—में आना ।—में लाना ।—होना ।

यौ०—दखलदिलानी । दखलनामा । दखलकार ।

२. हस्तक्षेप । हाथ डालना । उ०—मूरख दखल देई बिन जाने । मैं अपलता गुन प्रस्थाने ।—विश्राम (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।

३. पहुँच । प्रवेश । जैसे,—भाप भंगरेजी में भी कुछ दखल रखते हैं ।

क्रि० प्र०—रखना ।

दखलदिलानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दखल + फ़ा० दिलानी] किसी वस्तु पर किसी को अधिकार दिला देना । कब्जा दिलवाना ।

दखलनामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दखल + फ़ा० नामा] वह पत्र विशेषतः सरकारी आज्ञापत्र जिसमें किसी व्यक्ति के लिये किसी पदार्थ पर अधिकार कर लेने की आज्ञा हो ।

दखिणाध^१—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिणाध, प्रा० दक्षिणाध, दक्षिणाध] दक्षिण देश । उ०—उत्तर आज न जाइय, दक्षिणाध ।

जिहीं स भीत अगाध । ता भइ सूरज डरपतउ, ताकि चलइ दक्षिणाध ।—ढोला०, दू० ३०१ ।

दखिन^१—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' । उ०—देखि दखिन दिमि हय हिहिनाहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

दखिनहारा^१—संज्ञा पुं० [हिं० दखिन + हारा] दक्षिण से आनेवाली हवा । दक्षिण की ओर से आती हुई हवा ।

दखिनहारा^२—वि० [हिं० दखिन + हारा (प्रत्य०)] दक्षिण का । दक्षिणी ।

दखिना^१—संज्ञा पुं० [हिं० दखिन + आ (प्रत्य०)] दक्षिण से आनेवाली हवा ।

दखील—वि० [फ़ा० दखील] अधिकार रखनेवाला । जिसका दखल या कब्जा हो ।

दखीलकार—संज्ञा पुं० [फ़ा० दखील + फ़ा० कार] वह प्रसामी जिसने किसी जमींदार के भेत या जमीन पर कम से कम बारह वर्ष तक अपना दखल रखा हो ।

दखीलकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दखील + फ़ा० कार] १. दखीलकार का पद या अवस्था । २. वह जमीन जिसपर दखीलकार का अधिकार हो ।

दख्खी^१—संज्ञा पुं० [सं० दख्ख, प्रा० दख्ख, दख्ख] दे० 'दख्ख' । उ०—घहर पयोहर, दुःख नयण मीठा जेहा मख्ख । ढोला एही माई, जाणे मीठी दख्ख ।—ढोला०, दू० ४७० ।

दगंबर^१—संज्ञा पुं० [हिं० दिगंबर] दे० 'दिगंबर' । उ०—दया दगंबर नामु एकु मनि एको प्रादि प्रभूर ।—पाण०, पृ० २१२ ।

दगइल^१—वि० [हिं० दगैल] दे० 'दगैल' ।

दगड़^१—संज्ञा पुं० [? या सं० दक्का + हिं० ड (प्रत्य०)] लड़ाई में बजाया जानेवाला बड़ा ढोल । जंगी ढोल ।

दगड़ना—क्रि० प्र० [?] सच्ची बात का विश्राम न करना ।

दगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दगड़] दे० 'दगड़' ।

दगदगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दगदग] १. डर । भय । २. मंदेह । शक । ३. एक प्रकार की कंडील ।

दगदगाना^१—क्रि० प्र० [हिं० दगदगा] दमदमाना । चमकना । उ०—ज्यों ज्यों अति कृपता बढ़ति त्यों त्यों दुनि सरसान । दगदगाना त्यों ही कनक त्यों ही दाहृत जात ।—गुमान (शब्द०) ।

दगदगाना^२—क्रि० प्र० चमकाना । चमक उत्पन्न करना ।

दगदगाहट^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० दगदगाना + हट (प्रत्य०)] चमक । दमक ।

दगदगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दगदगा] दे० 'दगदगा' ।

दगध^१—संज्ञा पुं० [सं० दग्ध] दे० 'दाह' । उ०—पेम का लुब्ध दगध पे साधा ।—जायसी शब्द०, पृ० ६४ ।

दगध^२—वि० दे० 'दग्ध' । उ०—ग्यान दगध जोगिद कुलट कैरव भगि पार्न ।—पृ० रा०, ५४।१२१ ।

दगधना^१—क्रि० प्र० [सं० दग्ध, हिं० दगध + ना (प्रत्य०)] जलना । उ०—बज्र अगनि बिरहिन हिय जारा । सुलग सुलग दगधि भइ छारा ।—जायसी (शब्द०) ।

दंगना^२—क्रि० स० १. जनाना । १. बहुत दुःख देना । कष्ट पहुँचाना ।

दंगना^१—क्रि० प्र० [सं० दंग, हि० दंग + ना (प्रत्य०)] १. (बंदूक या तोप आदि का) छूटना । चलना । जैसे,—बंदूक घाय ही घाय दंग गई । २. चलना । दंग होना । कुलस जाना । उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की कटाछ कोटि काम दगे ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) । ३. दागा जाना । दागना का प्रकर्मक रूप ।

दंगना^२—क्रि० स० ३० 'दागना' । उ०—(क) विषधर स्वास सरिख लगे तन सीतल बन बात । धनलहू सौ सरसै दगे द्विमकर कर धन गात ।—२४० सत (शब्द०) । (ख) जे तब होत दिखा-दिलो भई प्रमी इक प्रीक । दगे तिराछी दोठ प्रब हँ बीछी की डीक ।—बिहारी (शब्द०) ।

दंगना^३—क्रि० प्र० [प्र० दाग] १. दागा जाना । प्रंकित होना । चिह्नित होना । २. प्रसिद्ध होना । मशहूर होना । उ०—लोक बेद हँ लौ दगी नाम भले को पोच । 'मर्मराज जस गाज पवि कहत सकोच न सोच ।—नृनमी (शब्द०) ।

दंगरी^१—संज्ञा पु० ['देर' से देश०] दे० 'दंगरा' ।

दंगरी^२—संज्ञा पु० [?] १. देर । विलंब । उ०—भोरहि ते कान्हू करत ठोसो भगरो । सब कोउ जात मधुपुरी बेचन कीने दियो दिखावहु कगरो । अंचल ऐचि ऐचि राखत हो जान देहु प्रब होत है दंगरो ।—सूर (शब्द०) । २. डंगर । रास्ता । उ०—वह जो खंडित भंड बनी दंगरे के माहीं ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) ।

दंगरी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] वस्तु वही जिसपर मलाई या माही न हो ।

दंगल^१—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'दंगला' । उ०—सौर सुपेती मंदिर राती । दंगल चौर पाइहि बहु भानी ।—जायसी (शब्द०) ।

दंगल^२—संज्ञा पु० [प्र० दंगल] १. धोला । फरेब । मक्कर । २. छोटा सोना या चाँदी (को) ।

दंगलफसल—संज्ञा पु० [प्र० दंगल + फसल या हि० फँसाना] धोला । फरेब ।

दंगला^१—संज्ञा पु० [देश०] मोटे वस्त्र का बना हुआ या रईदार घोंगरला । भारी लबादा ।

दंगली^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दंगला' । उ०—मुई मेरी माई ही खरा सुलाला । गंहरी नहीं दंगली जगे न पाला ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३०६ ।

दंगलाना^१—क्रि० स० [हि० दागना का प्रे० रूप] दागने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को दागने में प्रवृत्त कराना । उ०—उठि भोरहि तोपन दंगलायो । दीनन को बहु द्रव्य लुटायो ।—रघुराज (शब्द०) ।

दंगहा^१—वि० [हि० दाग + हा (प्रत्य०)] १. जिसके दाग लगा हो । दागवाला । २. जिसके सफेद दाग हों ।

दंगहा^२—वि० [हि० दाग (= प्रेतकर्म) + हा (प्रत्य०)] जिसने प्रेत-क्रिया की हो । प्रेतकर्मकर्ता ।

दंगहा^३—वि० [हि० दंगना + हा (प्रत्य०)] जो दागा हुआ हो । जो दंग किया गया हो ।

दंगा—संज्ञा स्त्री० [प्र० दंगा] छल । कपट । धोखा ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—खाना ।

सौ०—दंगाबाज । दंगादार ।

दंगाती^१—वि० [फा० दंगा] दंगाबाज । धोखेबाज । उ०—धन बल करि नहि काहू पकरत दीरि दंगाती ।—धनानंद०, पृ० ५९६ ।

दंगादगी^१—संज्ञा स्त्री० [फा० दंगा] धोखेबाजी । उ०—सजनी निपट भवेत है दंगादगी समुझै न । बित बित परकर बैत है लगालगी करि नैन ।—स० सप्तक, पृ० २३४ ।

दंगादार^१—वि० [फा० दंगा + दार] धोखेबाज । छली । उ०—(क) एरे दंगादार मेरे पातरु अपार तोहि गंगा के कछार में पछार छार करिहों ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) छबीले तेरे नैन बड़े हैं दंगादार ।—गीत (शब्द०) ।

दंगादारी^१—संज्ञा स्त्री० [फा० दंगादार + ई] दे० 'दंगादगी' ।

दंगाबाज^१—वि० [फा० दंगाबाज] छली । कपटी । धोखा देनेवाला । उ०—(क) कोऊ कहे करत कुसाज दंगाबाज बड़ी कोऊ कहे राम की गुलाम खरो खूब है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) नाम तुलसी पे मोड़े माग ते भयो है दास, किए अंगीकार एते बड़े दंगाबाज को ।—तुलसी (शब्द०) ।

दंगाबाज^२—संज्ञा पु० छली मनुष्य । धोखा देनेवाला धादमी ।

दंगाबाजी^१—संज्ञा स्त्री० [फा० दंगाबाजी] छल । कपट । धोखा । उ०—सुहृद समाज दंगाबाजी ही को सीदा सुत जब जाको काज तब मिले पाय परि सो ।—तुलसी (शब्द०) ।

दंगार्गल^१—संज्ञा पु० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार की विद्या, जिसके अनुसार किसी निर्जल स्थान के ऊपरी लक्षण आदि देखकर, भूमि के नीचे पानी होने अथवा न होने का ज्ञान होता है ।

विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में रक्तवाहिनी शिराएँ होती हैं उसी प्रकार पृथ्वी में जलवाहिनी शिराएँ होती हैं और इन शिराओं के किसी स्थान पर होने अथवा न होने का ज्ञान वृक्षों आदि को देखकर हो सकता है । जैसे, यदि किसी निर्जल स्थान में जामुन का पेड़ हो तो समझना चाहिये कि उससे तीन हाथ की दूरी पर उत्तर की ओर दो पुरसे नीचे पूर्ववाहिनी शिरा है; यदि किसी निर्जल स्थान में गूलर का पेड़ हो तो उससे पश्चिम तीन हाथ की दूरी पर डेढ़ दो पुरसे नीचे पश्चिम जल की शिरा होगी, इत्यादि ।

दंगैल^१—वि० [प्र० दाग + एल (प्रत्य०)] १. दागदार । जिसमें दाग हो । २. जिसमें कुछ खोटा वा दोष हो ।

दंगैल^२—संज्ञा पु० [प्र० दंगा] दंगाबाज । छली । उ०—साठ कोप जी लौ चलि आए । भए दंगैन के मन माए ।—लाल (शब्द०) ।

दंगना^३—क्रि० प्र० [हि० दंगना] दे० 'दंगना' । उ०—तोप तुपक चढ़र सब दंगिय ।—ह० रासो, पृ० १४६ ।

दग्ध^१—वि० [सं०] १. जला या जलाया हुआ । २. कुक्षित । जिसे कष्ट पहुँचा हो । जैसे, दग्धहृदय । ३. कुम्हलाया हुआ । म्लाव । जैसे, दग्ध आनन । ४. अशुभ । जैसे, दग्ध योग । ५. सुप्त । तुच्छ । विकृष्ट । जैसे, दग्धदेह, दग्धउदर, दग्धजठर । ६. शुष्क । नीरस । बेस्वाद (को०) । ७. बुभुक्षित । क्षुधाग्रस्त (को०) । ८. चतुर । चालाक । विदग्ध (को०) ।

दग्ध^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे कर्तृण भी कहते हैं ।

दग्धकाक—संज्ञा पुं० [सं०] डोम कीवा ।

दग्धमन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दग्धमन्त्र] मन्त्र के अनुसार वह मन्त्र जिसके मूर्धा प्रदेश में बलि घोर वायुयुक्त वर्ण हो ।

दग्धरथ—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के सारथी चित्ररथ गंधर्व का एक नाम । विशेष—दे० 'चित्ररथ' ।

दग्धरुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष ।

दग्धरुद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरु नामक वृक्ष ।

दग्धवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] रोहिण नाम की घास ।

दग्धव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] जलने का घाव (को०) ।

दग्धव्य—वि० [सं०] जलाने लायक । कष्ट देने योग्य (को०) ।

दग्धा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य के अस्त होने की दिशा । पश्चिम । २. एक प्रकार का वृक्ष जिसे कुष्ठ कहते हैं । ३. कुछ विशिष्ट राशियों से युक्त कुछ विशिष्ट तिथियाँ । जैसे—मौन घोर वन की अष्टमी । वृष घोर कुंभ की चौथ । मेघ घोर कर्क की छठ । कन्या घोर मितुन की नौमी । वृश्चिक घोर सिंह की दशमी । मकर घोर तुला की द्वादशी ।

विशेष—दग्धा तिथियों में देवार्चन, विवाह, अमिसंग, यात्रा या वाणिज्य आदि करना बहुत हानिकारक माना जाता है ।

दग्धा^२—वि० [सं० दग्ध] १. जलानेवाला । २. दुःख देनेवाला । (को०) ।

दग्धाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल के अनुसार ऋ, ह, र, म और ष ये पाँचों अक्षर, जिनका छंद के आरंभ में रचना वर्जित है । उ०—बीजो भूष न छंद के आदि ऋ ह र म ष कोई । दग्धाक्षर के दोष तें छंद दोषयुक्त होइ ।—(शब्द०) ।

दग्धाह्न—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष ।

दग्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'दग्धा' २. जला हुआ अन्न या भात (को०) ।

दग्धित^१—वि० [सं० दग्ध + हि० इत (प्रत्य०)] दे० 'दग्ध' । उ०—बोले गिरा मधुर जाति करी बिचारी । होवे प्रबोध जिससे दुख दग्धितों का ।—प्रिय०, पृ० १६६ ।

दग्धेष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध + इष्टका] जली घोर भुलसी हुई ईंट । आर्षा (को०) ।

दघ्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दघ्नी] ...तक पहुँचने या जाननेवाला ...तक गहरा या ऊँचा । (समासांत में प्रयुक्त) । जैसे, उरुदघ्न, जामुदघ्न, गुल्फदघ्न आदि ।

दघ्नक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झटके या दबाव से लगी हुई चोट । २. धक्का । ठोकर । ३. दबाव ।

दघ्नकना^१—क्रि० प्र० [अनु०] १. ठोकर या धक्का खाना । २. दब जाना । लचकना । ३. झटका खाना ।

दघ्नकना^२—क्रि० प्र० [अनु०] १. ठोकर या धक्का लगाना । २. दबाना । लचकाना । ३. झटका देना ।

दघ्नका—संज्ञा पुं० [हि० दघ्नकना] धक्का । ठोकर । उ०—हलका सा दघ्नका लगा तो गाड़ीवान की नींद खुन गई ।—रति०, पृ० ६२ ।

दघ्ना—क्रि० प्र० [देश०] गिरना । पड़ना । उ०—गगन उड़ाइ गयो ले श्यामहि ग्राह चरनि पर आप दघ्नो री ।—सूर (शब्द०) ।

दघ्ना—संज्ञा पुं० [देश०] ठोकर । धक्का । दघ्नका । उ०—तबै बाल-बच्चे फिरै खात दघ्ने ।—पद्याकर प्र०, पृ० ११ ।

दघ्न^१—वि० [सं० दक्ष] चतुर । निष्णात । कुशल । उ०—सापवस मुनिबधू मुक्तकृत विप्रहित यज्ञरच्छन दघ्न पच्छकर्ता ।—तुलसी प्र०, पृ० १ ।

दघ्न^२—संज्ञा पुं० [सं० दक्ष, प्रा० दघ्न] दे० 'दक्ष' । उ०—जन्मो प्रथम दघ्नगृह जाई ।—मानस, १ ।

यौ०—दघ्नकुमारी । दघ्नपुत्र=दक्ष प्रजापति के पुत्र । उ०—दघ्नपुत्रनिह उपदेसेनिह जाई ।—मानस, १ । दघ्नसुता ।

दघ्नकुमारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष + कुमारी] दक्ष प्रजापति की कन्या, सती । उ०—मुनि नन विदा मागि त्रिपुरारी । चले भवन संग दघ्नकुमारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

दघ्नना—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' ।

दघ्नसुता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षसुता] दक्ष की कन्या, सती ।

दघ्नन^१—संज्ञा पुं०, क्रि० वि०, वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' । उ०—दघ्नन पिप ह्वै वाम बस बिसराई तिय मान । एक बासर के विरह लागे बरष बितान ।—बिहारी (शब्द०) ।

दघ्नननायक^१—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण + नायक] दे० 'दक्षिणनायक' ।

दघ्नना—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—दघ्नना देत नद पग लागत, आसिस देत गरग सब द्विजवर ।—नंद० प्र०, पृ० ३७१ ।

दघ्ना, दघ्निना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—(क) भोजन कर जिजमान बिमाये । दघ्ना कारण जाय भड़े ।—सत तुलसी०, पृ० १८६ । (ख) तुमहि मिलैगो बीरा दघ्निना धरि भरि भोरी लू ।—नंद० प्र०, पृ० ३३६ ।

दघ्नाल—संज्ञा पुं० [प्र० दघ्नाल] झूठा । बेईमान । प्रत्याचारी ।

दघ्नना^१—क्रि० प्र० [सं० दग्ध, प्रा० दघ्न] दे० 'दघ्ना' । उ०—दुज्जर काय सु कहव राज मन माहि समझौ । कामज्वाल मो बहिय तुमहि तिन के दुख दघ्नौ ।—पृ० रा०, १ । ४१६ ।

दघ्ना^१—क्रि० प्र० [सं० दघ्न, प्रा० दघ्न (= कटा हुआ)] दब जाना । हेट पड़ना । उ०—तरह मदन रत तरणी, देख दिस दरप जाय दघ्ना ।—रघु० क०, पृ० ३६ ।

दघ्ना^२—क्रि० प्र० [हि० दघ्ना] दे० 'दघ्ना' ।

दघ्नपक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दक्षपक्ष] सहदेव नाम का पौधा ।

दत्तकका—संज्ञा पुं० [धनु०] दरेरा । उ० एक दत्तक दत्तकके, देत दत्तकके, सेल दत्तकके थोन बहै ।—सुजान०, पृ० ३१ ।

दडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंदुक । गेंव । तड़ी । उ०—बोध पाणि बड़ी जेम पाणियो गिरंन एम । उठे महीराव जाण, नीव सँ उलास ।—रघु० २०, पृ० १६६ ।

दड़क—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दहाड़ । गरज ।

दड़कना—क्रि० प्र० [धनु०] दहाड़ना । गरजना ।

दड़ोका—क्रि० प्र० [धनु०] दहाड़ना । गरजना । बाघ, साड़, घाघि का बोलना ।

दड़ु—वि० [सं० दड़, प्रा० दड़] पक्का । मजबूत । दड़ । उ०—खरे राव के रावत जोर दड़ ।—ह० रामो, पृ० ६६ ।

दड़—वि० [सं० दड़, प्रा० दड़] दे० 'दड़' । उ०—स्रपं व्यूह आकार सज्जे सभारं । बड़ फल पंछं रचे भित्त सारं ।—पृ० रा०, १।६३३ ।

दड़ियल—वि० [हि० दाढ़ी + दल (प्रत्य०)] दाढ़ीवाला । जो दाढ़ी रखे हो ।

दण्यर, दण्यर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० विण्यर] सूर्य । दिनकर । उ०—माक सी दली नही, अणमुल दोय नयणहि । थोड़ी सो भोले पड़, दण्यर उगहतिहि ।—ढोला०, दृ० ४७८ ।

दत्त—संज्ञा पुं० [सं० दत्त (= दान)] दे० 'दान' उ०—देती दत्त पसाव दत्त, बीर मोड वछराज ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ७६ ।

दत्तना—क्रि० प्र० [हि० दटना] दे० 'दटना' । उ०—केसव केसव देखन की तिन्हें भोरही भोरी तँ आनि दती हो । पान खवावत ही तिनमो तुम राति कहा सतराति दती हो ।—केशव प्र०, भा० १, पृ० ७१ ।

दत्तधन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दत्तधन' ।

दत्तारा—वि० [हि० दत्त + आर (प्रत्य०)] १ दत्तवाला । जिसमें दत्त हों । दाँदार । २ बड़े बड़े या दड़ दाँतवाला (हाथी, शूकर आदि) ।

दत्तिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दत्त + द्या (प्रत्य०)] दत्त का स्त्रीलिंग और मर्यादक रूप । छोटा दत्त ।

दत्तिया—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पहाड़ी तीतर जो बहुत मुँदर होता है । इसकी खाल अच्छे शर्मों पर बिकती है । नीलमोर । २. एक पुराना राज्य ।

दत्तिसुख—संज्ञा पुं० [सं० दत्तिसुख] दे० 'दत्तिसुख' ।

दत्तधन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दत्तधन' ।

दत्तुइनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दत्तुइनी' । उ०—दत्तुइनी करी न जाय नहीं अब जाय नही ।—पल्लव०, भा० १, पृ० ३२ ।

दत्तुवन—संज्ञा स्त्री० [हि० दत्त + वन (प्रत्य०)] घबरा घबरा । १. नीम या बबूल आदि की काटी हुई छोटी टहनियाँ जिसके एक सिरे को दाँतों से कुचलकर लूँची की तरह बनाते और उससे दाँत साफ करते हैं । दातुन ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ—दत्तुवन कुल्हा=दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया ।

दत्तुन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दत्तुवन' ।

दत्तीन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दत्तुवन' ।

दत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. दत्तात्रेय । २. जैबियों के नौ बासुदेवों में से एक । ३. एक प्रकार के बंगाली कायस्थों की उपाधि । ४. दान । ५. दत्तक ।

दत्त—वि० १. दिया हुआ । प्रदत्त । २. दान किया हुआ । ३. सुरक्षित । रक्षित (को०) ।

दत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रविधि से बनाया हुआ पुत्र । वह जो वास्तव में पुत्र न हो, पर पुत्र मान लिया गया हो । गोद लिया हुआ लड़का । मुतबन्ना ।

विशेष—स्मृतियों में जो धीरस और क्षेत्रज के प्रतिरिक्त दान प्रकार के पुत्र गिनाए गए हैं, उनमें दत्तक पुत्र भी है । इसमें से कलियुग में केवल दत्तक ही को ग्रहण करने की व्यवस्था है, पर मिथिला और उनके आसपास कृत्रिम पुत्र का भी ग्रहण प्रचलित होता है । पुत्र के बिना पितृश्राद्ध से उद्धार नहीं होता इससे शास्त्र पुत्र ग्रहण करने की आज्ञा देता है । पुत्र आदि होकर मर गया हो तो पितृश्राद्ध से तो उद्धार हो जाता है पर पिछा पानी नहीं मिल सकता इससे उस व्यवस्था में भी पिछा पानी देने और नाम चलाने के लिये पुत्र ग्रहण करना आवश्यक है । किंतु यदि मृत पुत्र या कोई पुत्र या पोत्र हो तो दत्तक नहीं लिया जा सकता । दत्तक के लिये आवश्यक यह है कि दत्तक लेनेवाले को पुत्र, पोत्र, प्रपोत्र आदि न हो । दूसरी बात यह है कि आदान प्रदान की विधि पूरी हो, अर्थात् लड़के का पिता यह कहकर अपने पुत्र को समर्पित करे कि मैं इसे देता हूँ और दत्तक लेनेवाला यह कहकर उसे ग्रहण करे 'धर्मयत्वा परिगृह्णामि, सन्तत्येत्वा परिगृह्णामि । द्विजों के लिये हवन आदि भी आवश्यक है । वह पुत्र जिसपर उसका असली पिता भी अधिकार रखे और दत्तक लेनेवाला भी 'दाम्पत्ययत्त' कहलाता है । ऐसा लड़का दोनों की संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है और दोनों के कुल में विवाह नहीं कर सकता है ।

दत्तक लेने का अधिकार पुत्र ही को है, अतः स्त्री यदि गोद ले सकती है तो पति की अनुमति से ही । विधवा यदि गोद लेना चाहे तो उसे पति की आज्ञा का प्रमाण देना होगा । ब्रह्मिष्ठ का वचन है कि 'स्त्री पति की आज्ञा के बिना न पुत्र दे और न ले । नंद पंडित ने तो दत्तक भोमांसा में कहा है कि स्त्री को गोद लेने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह जाप होम आदि नहीं कर सकती । पर दत्तकचंद्रिका के अनुसार विधवा को यदि पति आज्ञा दे गया हो तो वह गोद ले सकती है । बंगदेश और काशी प्रदेश में स्त्री के लिये पति की अनुमति अनिवार्य है, और वह इस अनुमति के अनुसार पति के जीते जी या मरने पर गोद ले सकती है । महाराष्ट्र देश के पंडित ब्रह्मिष्ठ के वचन का यह अभिप्राय निकालते हैं कि पति की अनुमति की आवश्यकता उस व्यवस्था

में हैं जब दत्तक पति के सामने लिया जाय; पति के मरने पर विधवा पति के कुटुंबियों से अनुमति लेकर दत्तक ले सकती है।

कैसा लड़का दत्तक लिया जा सकता है, स्मृतियों में इस संबंध में कई नियम मिलते हैं—

- (१) शौनक, वशिष्ठ आदि ने एकलौते या जेठे लड़के को गोद लेने का निषेध किया है। पर कलकत्ते को छोड़ और दूसरे हाइकोर्टों ने ऐसे लड़के का गोद लिया जाना स्वीकार किया है।
- (२) लड़का सजातीय हो, दूसरी जाति का न हो। यदि दूसरी जाति का होगा तो उसे केवल खाना कपड़ा मिलेगा।
- (३) सबसे पहले तो भतीजे या किसी एक ही गोत्र के सपिंड को लेना चाहिए, उसके अभाव में भिन्न गोत्र सपिंड, उसके अभाव में एक ही गोत्र का कोई दूरस्थ संबंधी जो समावेषकों के अंतर्गत हो, उसके अभाव में कोई सगोत्र।
- (४) द्विजातियों में लड़की का लड़का, बहिन का लड़का, भाई, चाचा, मामा, मामी का लड़का गोद नहीं लिया जा सकता। नियम यह है कि गोद लेने के लिये जो लड़का हो वह 'पुत्र-च्छायावह' हो अर्थात् ऐसा हो जिसकी माता के साथ दत्तक लेनेवाले का नियोग या समागम हो सके।

दत्तक विषय पर अनेक ग्रंथ संस्कृत में हैं जिनमें नंद पंडित की 'दत्तक मीमांसा' और देवानंद अट्ट तथा कुबेर कृत 'दत्तक-चंद्रिका' सबसे अधिक मान्य हैं।

मुहा०—दत्तक लेना = किसी दूसरे के पुत्र को गोद लेकर अपना पुत्र बनाना।

दत्तचित्त—वि० [सं०] जिसने किसी काम में खूब श्रम लगाया हो।
जिसने लक्ष्य चित्त लगाया हो।

दत्ततीर्थकृत्—संज्ञा पु० [सं०] गत उत्सर्पिणी के आठवें अर्हत (जेन)।

दत्तदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी आँखें किसी वस्तु पर टिकी हों [को०]।

दत्तशुल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लड़की जिसे प्राप्त करने के लिये शुल्क के रूप में कोई द्रव्य दिया गया हो [को०]।

दत्तस्थानपाकर्म—संज्ञा पु० [सं०] कीटिह्य के अनुसार कोई चीज किसी को देकर फिर लौटाना। एक बार दान करके फिर वापस माँगना या लेना।

दत्तहस्त—वि० [सं०] जिसे हाथ का सहारा दिया गया हो [को०]।

दत्ता—संज्ञा पु० [सं० दत्त] १० 'दत्तात्रेय'।

दत्तात्रेय—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि जो पुराणानुसार विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं।

विशेष—मार्कंडेय पुराण में इनकी उत्पत्ति के संबंध में जो कथा लिखी है वह इस प्रकार है—एक कोढ़ी ब्राह्मण की स्त्री बड़ी पतिव्रता और स्वामिभक्त थी। एक बार वह ब्राह्मण एक वेश्या पर आसक्त हो गया। उसके आज्ञानुसार उसकी पतिव्रता स्त्री उसे अपने कंधे पर बैठा कर अंधेरी रात में उस वेश्या के घर चली। रास्ते में श्राद्धव्य ऋषि तपस्या कर रहे थे; अंधेरे

में कोढ़ी ब्राह्मण का पैर उन्हें लग गया। उन्होंने शाप दिया कि जिसका पैर मुझे लगा है सूर्य निकलते निकलते वह मर जायगा। सती स्त्री ने अपने पति की रक्षा करने और वैधव्य से बचने के लिये कहा कि जाओ सूर्य उदय ही न होगा। जब सूर्य का उदय न हुआ और पृथ्वी के नाश की संभावना हुई तब सब देवता मिलकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हें अग्नि मुनि की स्त्री धनसूया के पास जाने की संमति दी। देवताओं के प्रार्थना करने पर धनसूया ने जाकर ब्राह्मण पत्नी को समझाया और कहा कि तुम सूर्योदय होने दो तुम्हारे पति के मरने ही मैं उन्हें फिर सजीव कर दूँगी और उनका शरीर भी नीरोग हो जायगा। इस-पर वह मान गई, तब सूर्य उदय हुआ और दत्त ब्राह्मण की धनसूया ने फिर जीवन कर दिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर धनसूया से वर माँगने के लिये कहा। धनसूया ने कहा—ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों मेरे गर्भ से जन्म ग्रहण करें। ब्रह्मा ने इसे स्वीकार किया; और तदनुसार ब्रह्मा ने सोम बनकर, विष्णु ने दत्तात्रेय बनकर, और महेश्वर ने दुर्वास बनकर धनसूया के घर जन्म लिया। हृदयराज ने जब अग्नि को बहुत क्रुद्ध पाया था तब दत्तात्रेय क्रुद्ध होकर सातवें ही दिन गर्भ से निकल आए थे। ये बड़े भारी योगी थे और सदा ऋषिकुमारों के साथ योगमाधन किया करते थे। एक बार ये अपने साथियों और संसार से छुटकारा पाने के लिये बहुत समय तक एक सरोवर में ही डूबे रहे फिर भी ऋषिकुमारों ने उनका संग न छोड़ा, वे सरोवर के किनारे उनके आसरे बैठे रहे। अंत में दत्तात्रेय उन्हें छलने के लिये एक सुंदरी को साथ लेकर सरोवर से निकले और मछपान करने लगे। पर ऋषिकुमारों ने यह समझकर तब भी उनका संग न छोड़ा कि ये पूर्ण योगीश्वर हैं, इनकी आसक्ति किसी विषय में नहीं है। भागवत के अनुसार इन्होंने चौबीस पदार्थों से अनेक शिखाएँ ग्रहण की थीं और उन्हीं चौबीस पदार्थों को ये अपना गुरु मानते थे। वे चौबीस पदार्थ ये हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, सागर, पतंग, मधुकर (भौरा और मधुमक्खी), हाथी, मधुहारी (मधुसंग्रह करनेवाली), हरिन, मछली, पिगला वेश्या, गिद्ध, बाखर, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, सपि, मकड़ी और तिल्ली।

दत्ताप्रदानिक—संज्ञा पु० [सं०] व्यवहार में घट्टारह प्रकार के विवाह पदों में से पाँचवाँ विवाह पद। किसी दान किए हुए पदार्थ को अग्न्याग्नपूर्वक फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न।

दत्तावधान—वि० [सं० दत्त + अवधान] दत्तचित्त। सावधान।
उ०—भारत साम्राज्य को भी दत्तावधान होना पड़ा है...।
प्रेमचन०, भा० २. पृ० २२२।

दत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान [को०]।

दत्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] सगाई का पत्रका होना।

दत्तेय—संज्ञा पु० [सं०] इन्द्र।

दत्तोपनिषद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।
 दत्तोक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] पुलस्त्य मुनि का एक नाम ।
 दत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन । २. सोना ।
 दत्त्रिम^१—वि० [सं०] दान में प्राप्त । दानस्वरूप मिला हुआ [को०] ।
 दत्त्रिम^२—संज्ञा पुं० [सं०] दत्तक पुत्र ।
 दत्त्रेय(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दत्तात्रेय] दे० 'दत्तात्रेय' । उ०—व्यास
 जय दत्त्रेय बुद्ध नारद सुमुनीवर ।—सुजान०, पृ० ३ ।
 ददन्—संज्ञा पुं० [सं०] दान । देने की क्रिया ।
 ददनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ददन + हि० ई (प्रत्य०)] दान । उ०—
 हरिजन हरि चरचा नित बाटिहि ज्ञान ध्यान की ददनी ।—
 श्रीराम० श०, पृ० ६ ।
 ददमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ ।
 ददरा—संज्ञा पुं० [देश०] छानने का कपड़ा । छत्रा । साफी ।
 ददरी—संज्ञा पुं० [देश०] १. पके हुए तमाखू के पत्ते पर का दाग ।
 २. दे० 'दरबन' । ३. उत्तर प्रदेश का एक स्थान जहाँ पशुओं
 का मेला लगता है ।
 ददा—संज्ञा पुं० [हि० दादा] दे० 'दादा' । उ०—यह विनोद देखत
 बरनीधर मात पिता बलभद्र ददा रे ।—सूर (शब्द०) ।
 ददिद्यौग ददिद्यौरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ददिहाल' ।
 ददिता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० ददितृ] देनेवाला । दान देनेवाला ।
 दाता [को०] ।
 ददियाल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ददिहाल' ।
 ददिया समुर—संज्ञा पुं० [हि० दादा + समुर] श्वसुर का पिता ।
 समुर का बाप ।
 ददिया सास—संज्ञा स्त्री० [हि० दादी + सास] सास की सास ।
 ददिया समुर की स्त्री ।
 ददिहाल—संज्ञा पुं० [हि० दादा + हाल] १. दादा का कुल । २.
 दादा का घर ।
 ददोड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ददोरा' ।
 ददोरा—संज्ञा पुं० [हि० दाद] मच्छर, बरें आदि के काटने या
 खुजलाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर छोड़े से धरे के बीच
 में पड़ी हुई थोड़ी सी सूजन जो चकती की तरह दिखाई देती
 है । चकता । चटखर । उ०—बसन फटे उपटे सुबुक बिबुक
 ददोरे हाय । चिहूँटन सुमन गुलाब को घब मम जाय बलाय ।
 —स० सप्तक, पृ० २६६ ।
 ददुर—संज्ञा पुं० [सं० ददुर] दे० 'दादुर' । उ०—करें सोर भित्ती
 धन ददुरंगे । तहाँ बाल लोला करे काम संगे ।—ह०
 रासो, पृ० २० ।
 दद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाद का रोग । २. कछुआ ।
 यौ०—दद्रु विनाश ।
 दद्रु क—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दद्रु' [को०] ।
 दद्रुघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रमर्द । चक्रबँड़ ।
 दद्रुण—वि० [सं०] दद्रु रोग से पीड़ित [को०] ।

दद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] दाद रोग ।
 दद्रुण—वि० [सं०] दे० 'दद्रुण' [को०] ।
 दध(पुं०)^१—संज्ञा पुं० [सं० दधि] दे० 'दधि' ।
 दध^२—वि० [सं०] धारण करनेवाला । ग्रहण करनेवाला [को०] ।
 दध^३—संज्ञा पुं० भाग । हिस्सा । अंश [को०] ।
 दध(पुं०)^४—संज्ञा पुं० [सं० उदधि, हि० दधि] सागर । समुद्र । उ०—पः
 चिरत सुण हृष परी प्रकुजत, अस्ते अणसंका । दध बीच बा
 असोक देखो, लखी गढ़ लंका ।—रघु० क०, पृ० १६२ ।
 दध(पुं०)^५—वि० [सं० दध] अशुभ । वज्रित । उ०—आदि चरण
 दध अखर गण अणशुभ गुणगाव ।—रघु० क०, पृ० १२ ।
 दधना(पुं०)—क्रि० प्र० [सं० दहन] जलना । दहना ।
 दधसार(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दधिसार] दे० 'दधिसार' ।
 दधि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दही । जमाया हुआ दूध । २. बत्त ।
 कपड़ा ।
 दधि^२—पुं० [सं० उदधि] समुद्र । सागर ।
 विशेष—इस अर्थ में दधि शब्द का प्रयोग सूरदास ने बहुत
 किया है ।
 दधिकादो—संज्ञा पुं० [सं० दधि + कदम] > हि० कादो (= कीचड़)
 जन्माष्टमी के समय होनेवाला एक प्रकार का उत्सव, जिसमें
 लोग हलदी मिला हुआ दही एक दूसरे पर फेंकते हैं । उ०—
 यशुमति भाग सुहागिनी जिन जायो हरि सो पूत । करहु लल
 की भारती री अष दधिकादो सुत ।—सूर (शब्द०) ।
 विशेष—कहते हैं, श्रीकृष्णजन्म के समय गोपों और गोपि-
 कामों ने आनंद में मग्न होकर हलदी मिला दही एक दूसरे
 पर इतना अधिक फेंका था कि भोकुल की गलियों में दही का
 कीचड़ सा हो गया था ।
 दधिका, दधिकावण—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक देवता जो चोड़े के
 आकार के माने जाते हैं । २. चोड़ा । अश्व ।
 दधिकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटे हुए दूध का वह अंश जो पानी
 निकलने पर बच जाता है । छेला ।
 दधिचार—संज्ञा पुं० [सं०] मयानी ।
 दधिज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिजात' ।
 दधिजात^१—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन । नवनीत ।
 दधिजात^२—संज्ञा पुं० [सं० उदधि + जात (= उत्पन्न)] चंद्रमा ।
 उ०—देखो मैं दधिजात ।—सूर (शब्द०) ।
 दधित्य—संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ । कैय ।
 दधित्याख्य—संज्ञा पुं० [सं०] जोबान ।
 दधिदान—संज्ञा पुं० [सं० दधि + दान] दही का दान । दही पर
 लगनेवाला दान । उ०—कृष्ण के दधिदान मानने पर गोधियों
 को कृष्ण से उलझने, वाग्युद्ध करने, धमकी देने और बदले
 में धमकी पाने का अवसर मिलता है ।—पोद्दार अभि० ब०,
 पृ० ११३ ।
 दधिदानी—वि० [सं० दधिदानिन्] दही का दान या कर देनेवाला ।

उ०—कब को भयो रे ठोटा दधिधानी ।—प्रकबरी०,
पृ० ४१ ।

दधिधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार धान के लिये कल्पित गो जिसकी कल्पना दही के मटके में की जाती है ।

दधिधानी—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें दही रखा हो । दही रखने का बर्तन [को०] ।

दधिनामा—संज्ञा पुं० [सं० दधिनामन्] कैथ का पेड़ ।

दधिपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद अपराजिता ।

दधिपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम ।

दधिपूष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षवान जो दही में फँटे हुए मालि मान के चूणों को धी में तलने से बनता है ।

दधिफल—संज्ञा पुं० [सं०] कैथ । कपित्थ ।

दधिमंड—संज्ञा पुं० [सं० दधिमण्ड] दही का पानी ।

दधिमंडोद—संज्ञा पुं० [सं० दधिमण्डोद] पुराणानुसार दही का समुद्र ।

दधिमन्थन—संज्ञा पुं० [सं० दधिमन्थन] दही को मथने की क्रिया [को०] ।

दधिमन्थानां—संज्ञा पुं० [सं० दधिमन्थन] दही बिलोने या मथने का काम । उ०—सो ता दिन में वह ब्रजवासिनी जब दधिमन्थान को बैठती तब ही श्री गोबर्धननाथ जी वा पास ग्राह विराजते ।—दो सो भावन०, भा० २, पृ० ६ ।

दधिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र जी की सेना का एक बंदर जो सुग्रीव का मामा और मधुवन का रक्षक था । रामायण के अनुसार यह सुग्रीव का ससुर था । २. फनवाले साँपों में श्रेष्ठ एक नाग का नाम [को०] ।

दधियार—संज्ञा पुं० [देश०] जीवतिका की जाति की एक लता अर्कपुष्पी । घंघाहूली ।

विशेष—इस लता के पत्ते खड़े और पान के आकार के होते हैं । इसकी डंठियों ग्राहि में से दूध निकलता है और इसमें सुर्यमुखी की तरह के फूल लगते हैं । इसका व्यवहार औषध में होता है ।

दधिवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिमुख' [को०] ।

दधिशर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिमंड' [को०] ।

दधिशोण—संज्ञा पुं० [सं०] बंदर । बानर [को०] ।

दधिषाण्व—संज्ञा पुं० [सं०] घृत । घी [को०] ।

दधिसंभव—संज्ञा पुं० [सं० दधि + सम्भव] मक्खन । नवनीत । नैसू ।

दधिसागर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दही का समुद्र ।

दधिसार—संज्ञा पुं० [सं०] नवनीत । मक्खन ।

दधिसुत^१—संज्ञा पुं० [सं० उदधि + सुत] १. कमल । उ०—देखो मैं दधिसुत में दधिजात । एक अर्धभी देखि सखी री रिपु में रिपु जु समात ।—सूर०, १०।१७२ २. मुक्ता । मोती । उ०—दधिसुत जामे नंद दुबार । निरखि नैन अरुभयी मनमोहन रटत बेहू कर बारंवार ।—सूर०, १०।१७१ । ३. उदुपति । चंद्रमा । उ०—(क) राखे दधिसुत क्यों न दुरावति । हों जु कहति वृषभानु बंदिनी काँई जीब सतावति ।—सूर०, १०।१७१४ ।

(ख) दधिसुत जात हों उहि देस । द्वारिका है स्याम सुंदर सकल भुवन नरेस ।—सूर०, १०।४२६४ ।

यौ०—दधिसुत सुत = चंद्रमा का पुत्र, बुध, अर्थात् विद्वान् । पंडित । उ०—जिनके हरि वाहन नहीं दधिसुत सुत जेहि नाहि । तुलसी ते नर तुच्छ हैं बिना समीर उड़ाहि ।—स० समक, पृ० २१ ।

४. जालंधर देख्य । उ०—विष्णु वचन चपला प्रतिहारा । तेहि ते प्रापुन दधिसुत मारा ।—विश्राम (शब्द०) । ५. विष । जहर उ०—नहि विभूति दधिमून न कंठ यह मृगमद चंदन चरचित तन ।—सूर (शब्द०) ।

दधिसुत^२—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन । नवनीत ।

दधिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं० उदधिसुता] सीप । उ०—दधिसुता सुत अवलि ऊपर इंद्र आयुध जानि—सूर (शब्द०) ।

यौ०—दधिसुता सुत = सीप का पुत्र—मोती । मुक्ता ।

दधिस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] दही को मलाई ।

दधिस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] तक्र । छाछ । मट्ठा ।

दधी(५)—संज्ञा पुं० [सं० उदधि] दे० 'उदधि' । उ०—रिद्ध बानरायं, भए सो सहायं । हनुमान्तायं, दधी सीस प्रायं ।—पृ० रा०, २।२४ ।

दधीच(५)—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधीचि' । उ०—जोत महीपति हाइनहीं महें जोत दधीच के हाइन ही मैं ।—मति० प्र०, पृ० ३६२ ।

यौ०—दधीचास्थि = दे० 'दधीचस्थि' ।

दधीचि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि जो ऋग्वेद के मत से अथर्व के पुत्र थे और इसी लिये दधीचि कहलाते थे । किसी पुराण के मत से ये कदम ऋषि की कन्या और अथर्व की पत्नी शांति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और किसी पुराण के मत से ये शुक्राचार्य के पुत्र थे ।

विशेष—वेदों और पुराणों में इनके संबंध में अनेक कथाएँ हैं, जिनमें से विशेष प्रसिद्ध यह है कि इंद्र ने इन्हें मधुविद्या सिखाई थी और कहा था कि यदि तुम यह विद्या बतलाओगे तो हम तुम्हें मार डालेंगे । इसपर अश्विद्युगल ने दधीचि का सिर काटकर अलग रख दिया और उनके घड़े पर थोड़े का सिर लगा दिया और तब उनसे मधुविद्या सीखी । जब इंद्र को यह बात मातृम हुई तो उन्होंने आकर उनका घोड़ेवाला सिर काट डाला । इसपर अश्विद्युगल ने उनके घड़े पर फिर वही अनुष्यवाला पहला सिर लगा दिया । एक बार वृत्रासुर के उपद्रव से बहुत दुःखित होकर सब देवता इंद्र के पास गए । उस समय निश्चित हुआ कि दधीचि की हड्डियों के बने हुए अस्त्र के अतिरिक्त और किसी अस्त्र से वृत्रासुर मारा न जा सकेगा । इसलिये इंद्र ने दधीचि से उनकी हड्डियाँ माँगी । दधीचि ने अपने पुराने शत्रु और हत्याकारी इंद्र को भी विमुख लौटाना उचित न समझा और उनके लिये अपने प्राण त्याग दिए । तब उनकी हड्डियों से अस्त्र बनाकर वृत्रासुर मारा गया । तभी से दधीचि का बड़ा भारी बानी होना प्रसिद्ध है । महाभारत में यह भी लिखा है कि जब दध

वे हरिद्वार में बिना शिव जी के यज्ञ किया था, तब इन्होंने दक्ष को शिव जी के निमंत्रित करने के लिये बहुत समझाया था, पर उन्होंने नहीं माना, इसलिये ये यज्ञ छोड़कर चले गए थे। एक बार दधीचि बड़ी कठिन तपस्या करने लगे। उस समय इंद्र ने डरकर इन्हें तप से भ्रष्ट करने के लिये धलंजुषा नामक अप्सरा भेजी। एक बार जब ये सरस्वती तीर्थ में तपस्या कर रहे थे तब धलंजुषा उनके सामने पहुँची। उसे देखकर इनका वीर्य स्खलित हो गया जिससे एक पुत्र हुआ। इसी से उस पुत्र का नाम सारस्वत हुआ।

दधीच्यस्थि—संज्ञा पुं० [सं० दधीचि + अस्थि] १. इंद्रास्त्र। वज्र। २. हीरा। हीरक।

दध्न—संज्ञा पुं० [सं०] षोडश यमों में से एक यम।

दध्यानी—संज्ञा पुं० [सं०] सुदर्शन वृक्ष। मदनमस्त।

दध्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] दही की मलाई।

दध्युत्तरक, दध्युत्तरग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दध्युत्तर' (को०)।

दन—संज्ञा पुं० [सं० दिन] दिवस। दिन (हि०)।

दनकर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिणयर, दणयर] दिनकर। सूर्य (हि०)।

दनगा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत का छोटा टुकड़ा।

दनदनाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. दनदन शब्द करना। २. प्रानंद करना। खुशी मनाना।

दनमणि—संज्ञा पुं० [सं० दिनमणि] शुभमणि। सूर्य (हि०)।

दनादन—क्रि० वि० [प्रनु०] दनदन शब्द के साथ। जैसे,—दनादन तोपें छूटने लगीं।

दनु^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] वक्ष की एक कन्या जो कश्यप को ब्याही थी।

विशेष—इसके चालीस पुत्र हुए थे जो सब दानव कहलाते हैं। उनके नाय वे हैं—विप्रश्चिति, शंखर, मधुचि, पुलोमा, प्रसिलोमा, केशी, दुर्जय, अयःशिशि, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्धा, स्वर्मात्रि, अश्व, अश्वपति, वृषवर्षा, अजक, अश्वघ्नीव, सुधम, तुहंड, एकपद, एकवक्र, विरूपाक्ष, महोदर, निषंद्र, निरुध, कुजट, कपट, शरम, शसम, सूर्य, चंद्र, एकाक्ष, अमृतप, प्रलंब, नरक, वातापी, शठ, गविष्ठ, वनाशु और दीर्घजिह्व। इनमें जो चंद्र और सूर्य नाम प्राप्त हैं, वे देवता चंद्र और सूर्य से भिन्न हैं।

दनु^२—संज्ञा पुं० एक दानव का नास जो भी दानव का बड़का था।

विशेष—इंद्र द्वारा तप्त एवं पीड़ित इस राक्षस को राम और लक्ष्मण ने मारा था। शिरविहीन कर्बव की प्राकृति का होने से इसका एक नाम दनुकर्बव भी है।

दनुज—संज्ञा पुं० [सं०] दनु से उत्पन्न, अप्सुर। राक्षस।

दनुजदक्षिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

दनुजद्विष्ट—संज्ञा पुं० [दनुजद्विष्ट] सूर। देवता (को०)।

दनुजपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दनुज' (को०)।

दनुजराय—संज्ञा पुं० [सं० दनुज + हि० राय] दानवों का राज हिरण्यकशिपु।

दनुजारि—संज्ञा पुं० [सं०] दानवों के शत्रु।

दनुजारी—संज्ञा पुं० [सं० दनुजारि] दनुजों के शत्रु। विष्णु। उ०—बीचहि पंथ मिले दनुजारी।—मानस, १।१३६।

दनुजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दनुजेंद्र] दानवों का राजा,—रावण।

दनुजेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिरण्यकशिपु। २. रावण।

दनुजसंभव—संज्ञा पुं० [सं० दनुज-संभव] दनु से उत्पन्न, दानव।

दनुजसून—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दनुजसंभव'।

दनु—संज्ञा स्त्री० [सं० दनु] दे० 'दनु'।

दन्न—संज्ञा पुं० [प्रनु०] 'दन्न' शब्द जो तोप आदि के छूटने प्रथमा इसी प्रकार के और किसी कारण से होता है।

दपट—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँट के साथ प्रनु०] घुड़की। डपट। डाँटने या डपटने की क्रिया।

दपटना—क्रि० प्र० [हि० डाँटना के साथ प्रनु०] किसी को डराने के लिये बिगड़कर जोर से कोई बात कहना। डाँटना। घुड़कना।

दपु^१—संज्ञा पुं० [सं० दपं] दपं। प्रहंकार। अभिमान। शेखी। घमंड। उ०—सात दिवस गोवर्धन राख्यो इंद्र गयो दपु छोड़ि।—सूर (शब्द०)।

दपेट—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दपट'।

दपेटना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दपटना'।

दप्प^१—संज्ञा पुं० [सं० दपं, प्रा० दप्प] दे० 'दपं'।

दफतर—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़तर] दे० 'दफ़तर'।

दफ़तरी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़तरी] दे० 'दफ़तरी'।

दफ़तरीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़तरीखाना] दे० 'दफ़तरीखाना'।

दफ़ती—संज्ञा स्त्री० [प्र० दफ़ती] कामज के कई तस्ती को एक में साट कर बनाया हुआ गत्ता जो प्रायः जिल्द बांधने आदि के काम में आता है। गत्ता। कुट। बसखी।

दफ़दर^१—संज्ञा पुं० [हि० दफ़तर] दे० 'दफ़तर'। उ०—तबलक तल दया को दफ़दर, संत कबहरी मारी।—घरनी० बानी, पृ० ३।

दफ़न—संज्ञा पुं० [प्र० दफ़न] १. किसी चीज को जमीन में गाड़ने की क्रिया। २. मुरदे को जमीन में गाड़ने की क्रिया।

दफ़नाना—क्रि० प्र० [प्र० दफ़न + आना] १. जमीन में दबाना। गाड़ना। २. (लाश०) किसी कुव्वंभहार, कदुता आदि को पूरी तरह भुला देना।

दफ़राना—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का वह टुकड़ा या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ जो किसी नाव के दोनों ओर इसलिये लगा दिया जाता है कि जिसमें किसी दूसरी नाव की टक्कर से उसका कोई अंग टूट न जाय। होंस (वध०)।

दफ़राना—क्रि० प्र० [देश०] १. किसी नाव को किसी दूसरी नाव के साथ टक्कर लगने से बचाना। २. (पाख) लड़ा करना।—(वध०) ३. बचाना। रक्षा कराना।

दफला—संज्ञा पुं० [फा० दफ़ या दफ़न] दे० 'दफ' । उ०—बैठ से लेकर दफले और नुसिहे तक सभी प्रकार के बाजे थे ।
—काया०, पु० ५७५ ।

दफा^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० दफ़मह्] १. बार । बेर । जैसे,—(क) हम तुम्हारे यहाँ कल दो दफा गए थे । (ख) उसे कई दफा समझाया मगर उसने नहीं माना । २. किसी कामनी किताब का वह एक अंश जिसमें किसी एक अपराध के संबंध में व्यवस्था हो । धारा ।

मुहा०—दफा लगाना=प्रभियुक्त पर किसी दफा के नियमों को घटाना । अपराध का सख्त आरोपित करना । जैसे—फौजदारी में आज उसपर चोरी की दफा लग गई ।

३. दर्जा । बसास । खेती । कक्षा । उ०—किस दफे में पढ़ने हो मेया ?—रंगभूमि, भा० २, पु० ४६६ ।

दफा^२—वि० [प्र० दफ़मह्] दूर किया हुआ । हटाया हुआ । तिरस्कृत । जैसे,—किसी तरह इसे यहाँ से दफा करो ।

मुहा०—दफा दफान करना=तिरस्कृत करके दूर कराना या हटाना ।

दफादार—संज्ञा पुं० [प्र० दफ़मह् (=समूह) + फा० दार] फौज का वह कर्मचारी जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही हों ।

विशेष—सेना में दफादार का पद प्रायः पुलिस के जमादार के पद के बराबर होता है ।

दफादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० दफादार + ई (प्रत्य०)] १. दफादार का पद । २. दफादार का काम ।

दफतीना—संज्ञा पुं० [प्र० दफतीना] गड़ा हुआ धन या खजाना ।

दफ्तर—संज्ञा पुं० [फा० दफ़तर] १. स्थान जहाँ किसी कारखाने प्रादि के संबंध की कुल लिखावड़ी और लेन देन प्रादि हो । भाफिस । कार्यालय । २. बड़ा भारी पत्र । लंबी चौड़ी चिट्ठी । ३. सविस्तर वृत्तांत । चिट्ठा ।

दफ्तरी—संज्ञा पुं० [फा० दफ़तर] १. किसी दफ्तर का वह कर्मचारी जो वहाँ के कागज़ प्रादि दुरुस्त करता और रजिस्ट्रारों प्रादि पर कुल खींचता अथवा इसी प्रकार के और काम करता हो । २. किताबों की जिल्द बाँधनेवाला । जिल्दसाज । जिल्दबंद ।

यौ०—दफ्तरीखाना ।

दफ्तरीखाना—संज्ञा पुं० [फा० दफ़तरीखानह्] वह स्थान जहाँ किताबों की जिल्द बाँधती हो अथवा दफ्तरी बैठकर अपना काम करते हों ।

दफती—संज्ञा स्त्री० [प्र० दफतीन] दे० 'दफती' ।

दफतीन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] दफती [की०] ।

दबंग—वि० [हि० दबाब या दबना] प्रभावशाली । बहाववाला । जिसका मोर्चों पर रोबदाब हो । जैसे,—वे बड़े दबंग आदमी हैं, किसी से नहीं डरते ।

दबंगपन—संज्ञा पुं० [हि० दबंग + पन] दबदबा । रोबदाब । उ०—चाहिए कुछ दबंगपन रखना । दब बहुत दाब में न आएँ हम ।
—धुमते०, पु० १६ ।

दब—संज्ञा स्त्री० [हि० दबना] बड़ों के प्रति संकोच या भय । दे०

'दाब' । उ०—कहा करों कछु बनि नहि धावे प्रति गुरबख की दब री ।—घनानंद, पु० ५३३ ।

यौ०—दबगर ।

दबक—संज्ञा स्त्री० [हि० दबकना] दबने या छिपने की क्रिया या भाव । २. सिकुड़न । शिकन । ३. धातु प्रादि को नंबा करने के लिये पीटने की क्रिया ।

यौ०—दबकगर ।

दबकगर—संज्ञा पुं० [हि० दबक + गर (प्रत्य०)] दबका (तार) बनानेवाला ।

दबकना^१—क्रि० प्र० [हि० दबना] १. भय के कारण किसी संकरे स्थान में छिपना । डर के मारे छिपना । जैसे,—(क) कुत्ते को देखकर बिल्ली का बच्चा भालमारी के नीचे दबक रहा । (ख) सिपाही को देखकर चोर कोने में दबक रहा । २. लुकना । छिपना । जैसे,—शेर पहले से ही झाड़ी में दबका बैठा था, हिरन के घाते ही उसपर झपट पड़ा ।

क्रि० प्र०—जाना ।—रहना ।

दबकना^२—क्रि० स० किसी धातु को हथोड़ी से चोट लगाकर बढ़ाना या चौड़ा करना । पीटना ।

दबकना^३—क्रि० स० [सं० दप ?] डटना । झपटना । धुड़कना । उ०—दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक, मगन मही में एक, गगन उड़ात हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

दबकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दबना] भाषी का वह हिस्सा जिसके द्वारा उसमें हवा घुसती है ।

दबकाना—क्रि० स० [हि० दबकना का प्रे० रूप] दबकाने का काम किसी दूसरे से कराना । दूसरे को दबकाने में प्रवृत्त करना ।

दबका—संज्ञा पुं० [हि० दबकना (=तार प्रादि पीटना)] कामदानी का सुनहला या रुपहला चिपटा तार ।

दबकाना—क्रि० स० [हि० दबकना का सक० रूप] १. छिपाना । ढाँकना । झाड़ में करना । २. डटना ।—(ब००) ।

दबकी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] सुराही की तरह का मिट्टी का एक बर्तन जिसमें पानी रखकर चरवाहे और खेतिहर खेत पर ले जाया करते हैं ।

दबकी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दबकना] दबकने या छिपने की क्रिया या भाव ।

मुहा०—दबकी मारना=छिप जाना । प्रदृश्य हो जाना ।

दबके का सलमा—संज्ञा पुं० [?] चमकीला सलमा । दबके का बना हुआ सलमा जो बहुत चमकीला होता है ।

दबकैया—संज्ञा पुं० [हि० दबकना + ऐया (प्रत्य०)] सोने चाँदी के तारों को पीटकर बढ़ाने, चपटा और चौड़ा करनेवाला । दबकगर ।

दबगर^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. ढाल बनानेवाला । २. चमके के कुप्पे बनानेवाला ।

द्वयगर^२—संज्ञा पुं०, वि० [हि० दब (= दाब) + गर] दाब या शासन में पड़ा हुआ । अधिकार माननेवाला ।

द्वयटना—क्रि० प्र० [हि० दबाना] दबाना । अधिकार में करना ।
उ०—इस तुलसी छवि तुलसी छोटति परिमल सपटे । इस कमीव आमोद गोद भरि भरि सुख दबटै ।—नंद० प्र०, पृ० १२ ।

द्वयघुसड़—वि० [हि० दबाना + घुसना] डरपोक । सब से दबने और डरनेवाला ।

द्वयदबा—संज्ञा पुं० [प्र०] रोबदाब । घातक । प्रताप ।

दबना—क्रि० प्र० [सं० दमन] १. भार के नीचे घाना । बोझ के नीचे पड़ना । जैसे, घादमियों का मकान के नीचे दबना । २. ऐसी अवस्था में होना जिसमें किसी ओर से बहुत जोर पड़े । दाब में घाना । ३. (किसी भारी शक्ति का सामना होने अथवा दुर्बलता आदि के कारण) अपने स्थान पर ज ठहर सकना । पीछे हटना । ४. किसी के प्रभाव या घातक में आकर कुछ कह न सकना अथवा अपने इच्छानुसार आचरण न कर सकना । दबाव में पड़कर किसी के इच्छानुसार काम करने के लिये विवश होना । जैसे,—(क) कई कारणों से वे हमसे बहुत दबते हैं । (ख) आप तो उनसे कमजोर नहीं हैं, फिर क्यों दबते हैं । ५. अपने गुणों आदि की कमी के कारण किसी के मुकाबले में ठोक या अच्छा न जंचना । जैसे,—यह माला इस कंठे के सामने दब जाती है । ६. किसी बात का अधिक बढ़ या फैल न सकना । किसी बात का जहाँ का तहाँ रह जाना । जैसे, जबर दबना, मामला दबना । उ०—नाम सुनत ही हूँ गयो तब ओरे मन ओर । दबे नहीं बित चढ़ि रह्यो अबहुँ चढ़ाए तयोर ।—बिहारी (शब्द०) । ७. उमड़ न सकना । शांत रहना । जैसे, बलवा दबना, क्रोध दबना । ८. अपनी चीज का अनुचित रूप से किसी दूसरे के अधिकार में चला जाना । जैसे,—हमारे सौ रुपए उनके यहाँ दबे हुए हैं । ९. ऐसी अवस्था में आ जाना जिसमें कुछ बस न चल सके । जैसे,—वे आजकल रुपए की तंगी से दबे हुए हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१०. भीमा पड़ना । मंद पड़ना ।

मुहा०—दबी आवाज = भीमी आवाज = वह आवाज जिसमें कुछ जोर न हो । दबी जवान से कहना = अस्पष्ट रूप से कहना । किसी प्रकार के भय आदि के कारण साफ साफ न कहना बल्कि इस प्रकार कहना जिससे केवल कुछ ध्वनि व्यक्त हो । दबे दबाए रहना = शान्तिपूर्वक या चुपचाप रहना । उपद्रव या कारंवाई न करना । दबे पाँव या पैर (चलना) = इस प्रकार (चलना) जिसमें किसी को कुछ आहट न लगे ।

११. संकोच करना । झंपना ।

दबमो—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बकरा जो हिमालय में होता है ।

दबवाना—क्रि० स० [हि० दबना का प्रे० रूप] दबाने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को दबाने में प्रयत्न कराना ।

दबस—संज्ञा पुं० [?] जहाज पर की रसद तथा दूसरा सामान । जहाजी गोदाम में का माल ।

दबा—वि० [हि० दबना] दबाव में पड़ा हुआ । भार से दबा हुआ । विवश ।

दबाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दबाना] घनाज निकालने के लिये वालों या डंठलों की बैलों के पैरों से रौंदवाने का काम ।

दबाऊ—वि० [हि० दबाना] १. दबानेवाला । २. जिस (शाही आदि) का भगला हिस्सा पिछले हिस्से की अपेक्षा अधिक बोल्ल हो । दबू ।

दबाना—क्रि० स० [सं० दमन] [संज्ञा, दाब, दबाव] १. ऊपर से भार रखना । बोझ के नीचे लाना (जिसमें कोई चीज नीचे की ओर धँस जाय अथवा इधर उधर हट न सके) । जैसे, परावर के नीचे किताब या कपड़ा दबाना । २. किसी पदार्थ पर किसी ओर से बहुत जोर पहुँचाना । जैसे, उँगली से काग दबाना, रस निकालने के लिये नीबू के टुकड़े को दबाना, हाथ या पैर दबाना । ३. पीछे हटाना । जैसे,—राज्य की सेना शत्रुओं को बहुत दूर तक दबाती चली गई । ४. जमीन के नीचे गाड़ना । दफन करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. किसी मनुष्य पर इतना प्रभाव डालना या घातक जमाना कि जिसमें वह कुछ कह न सके अथवा विपरीत आचरण न कर सके । अपनी इच्छा के अनुसार काम कराने के लिये दबाव डालना । जोर डालकर विवश करना । जैसे,—(क) कल बातों बातों में उन्होंने मुझे इतना दबाया कि तुम कुछ बोल ही न सके । (ख) उन्होंने दोनों आदमियों को दबाकर आपस में मेल करा दिया । ६. अपने गुण या महत्व की अधिकता के कारण दूसरे को मंद या मात कर देना । दूसरे के गुणों या महत्व का प्रकाश न होने देना । जैसे,—इस नई इमारत ने आपके मकान को दबा दिया ।

संयो० क्रि०—देना ।—रखना ।

७. किसी बात को उठने या फैलने न देना । जहाँ का तहाँ रहने देना । ८. उमड़ने से रोकना । दमन करना । शांत करना । जैसे, बलवा दबाना, क्रोध दबाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

८. किसी दूसरे की चीज पर अनुचित अधिकार करना । कोई काम निकालने के लिये अथवा बेईमानी से किसी की चीज अपने पास रखना । जैसे,—(क) उन्होंने हमारे सौ रुपए दबा लिए । (ख) आपने उनकी किताब दबा ली ।

संयो० क्रि०—बैठना ।—रखना ।—लेना ।

१०. झोक के साथ बढ़कर किसी चीज को पकड़ लेना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

११.—ऐसी अवस्था में ले घाना जिसमें मनुष्य असहाय, दीन वा विवश हो जाय । जैसे,—आजकल रुपए की तंगी ने उन्हें दबा दिया ।

दबावा—संज्ञा पुं० [देश०] मुद् की सामग्री में बकड़ी का एक प्रकार

का बहुत बड़ा संदूक जिसमें कुछ पादमियों को बैठाकर गुप्त रूप से सुरंग खोदने प्रयत्न इसी प्रकार का धीरे कोई उपद्रव करने के लिये सन्तु के किले में उतार देते हैं।

दबाव—संज्ञा पुं० [हि० दबाना] १. दबाने की क्रिया। चाप।

क्रि० प्र०—डालना।—में घाना या पड़ना।

२. दबाने का भाव। चाप। ३. रोक।

क्रि० प्र०—डालना।—मानना।—में घाना या पड़ना।

दबिला—संज्ञा पुं० [देश०] खुरपी या लुचनी के आकार का लकड़ी का बना हुआ हलवाइयों का एक धोजार जिससे वे बेसन आदि मूतते, खोवा बनाते या चीनी की चाशनी आदि फेटते हैं।

दबीज—वि० [फ्रा दबीज] जिसका बल मोटा हो। गाढ़ा। संगीन।

दबीर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. लिखनेवाला। मुंशी। २. एक प्रकार के महाराष्ट्र ब्राह्मणों की उपाधि।

दबूचना—क्रि० स० [हि० दबोचना] दे० 'दबोचना'। उ०—पंजे से दबूच चाँच से चमड़ी नोचकर—।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

दबूसा—संज्ञा पुं० [देश०] १. जहाज का पिछला भाग। पिछल। २. बड़ी नाव का पिछला भाग जहाँ पतवार लगी रहती है। ३. जहाज का कमरा।—(लश०)।

दबोरना—क्रि० स० [हि० दबाना] दे० 'दबोरना'।

दबोझा—वि० [हि० दबना + एला (प्रत्य०)] १. दबा हुआ। जिसपर दबाव पड़ा हो। २. जल्दी जल्दी होनेवाला (काम)। (लश०)।

दबैला—वि० [हि० दबना + ऐल (प्रत्य०)] दबनेवाला। दबू। दबैला। उ०—सुख सौं लाज सिधारी सुरग कौं काहू की हौं न दबैल।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४०१।

दबैला—वि० [हि० दबना + एला (प्रत्य०)] १. जिसपर किसी का प्रभाव या दबाव हो। दबाव में पड़ा हुआ। किसी से दबनेवाला। दबू।

दबोचना—क्रि० स० [हि० दबाना] १. किसी को सहसा पकड़कर दबा लेना। धर दबाना। जैसे—बिस्ली ने तोते को जा दबोचा। २. छिपाना।

संयो० क्रि०—लेना।

दबोरना—क्रि० स० [हि० दबाना] अपने सामने ठहरने न देना। दबाना। उ०—दबकि दबोरे एक बारिधि में बोरे एक मयन मही में एक गगन उड़ात हैं।—तुलसी (शब्द०)।

दबोस—संज्ञा स्त्री० [देश०] चकमक पत्थर।

दबोसना—क्रि० स० [देश०] धराध पीना।

दबौता—संज्ञा पुं० [हि० दबाना + भौत (प्रत्य०)] लकड़ी का वह कुंडा जिसे पानी में भिगाए हुए नील के डंठलों आदि को दबाने के लिये ऊपर से रज बैठे हैं।

दबौनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दबाना + भौनी (प्रत्य०)] १. कसेरों का चौड़े का धोवार जिसे वे बरतनों पर फूल पछे आदि

उभारते हैं। २. भेंजनी के ऊपर की धीरे लगी हुई लकड़ी (जोलाहे)।

दब्ब(५)—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य, प्रा० दब्ब] द्रव्य। धन। संपत्ति। सामान। उ०—जो मिलंत मुहि पाइ। देउं धन धंवर दब्बू।—पृ० रा०, १२। ११७।

दब्बू^२—वि० [हि० दबना + ऊ (प्रत्य०)] दबनेवाला। दबैला।

दब्बू^३—वि० [सं०] १. अल्प। थोड़ा। कम। २. कुंठ। प्रतीक।

दब्बू^४—संज्ञा पुं० सागर। समुद्र। उदधि (को०)।

दमंगल—संज्ञा पुं० [फ्रा० दंगल ? या डि० दमंगल] बखेड़ा। उपद्रव। युद्ध। उ०—विधि हुते वीर महाबल महबाल हत दमंगल। बिल प्रमय केकंघा दवारे, गजे सुर गहर।—रघु० क०, पृ० १५२।

दमंकना—क्रि० प्र० [हि० दमकना] चमकना। उ०—बहु कृपान तरवारि चमंकहि। अनु बहु विधि धामिनीं दमंकहि।—मानस, १। ८९।

दमंसा—संज्ञा पुं० [हि० दाम + संस] मोल ली हुई जायदाद।

दम^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बंड जो दमन करने के लिये दिया जाता है। सजा। २. बाह्येन्द्रियों का दमन। इंद्रियों को बन्ध में रखना और बिस्व को बुरे कामों में प्रवृत्त न होने देना। १. कीचड़। ४. धर। ५. एक प्राचीन महर्षि जिनका उल्लेख महाभारत में है। ६. पुराणानुसार भरत राजा के पौत्र जो बभ्रु की कन्या इंद्रसेना के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—कहते हैं कि ये नौ वर्ष तक माता के गर्भ में रहे थे। इनके पुरोहित ने समझा था कि जिसकी जननी को नौ वर्ष तक इस प्रकार इंद्रियदमन करना पड़ा है वह बाधक स्वयं भी बहुत ही दमनशील होगा। इसी लिये उसने इनका नाम दम रखा था। ये वेद वेदांगों के बहुत अच्छे ज्ञाता और अनुविद्या में बड़े प्रवीण थे।

७. बृद्ध का एक नाम। ८. भीम राजा के एक पुत्र और दमयंती के एक भाई का नाम। ९. विष्णु। १०. दबाव।

दम^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. सौंस। श्वास।

क्रि० प्र०—घाना।—चलना।—जाना।—लेना।

मुहा०—दम घटकना = सौंस रुकना, विशेषतः मरने के समय सौंस रुकना। दम उखड़ना = दे० 'दम घटकना'। दम उलटना = (१) व्याकुलता होना। धबराहट होना। जी धबराना। (२) दे० 'दम घुटना'। दम खाना = दे० 'दम लेना'। दम लिखना = दे० 'दम घटकना'। दम सींचना = (१) धुप रहु जाना। न बोलना। (२) सौंस सींचना। सौंस ऊपर चढ़ाना। दम घुटना = हवा की कमी के कारण सौंस रुकना। सौंस न लिया जा सकना। दम घोटना = (१) सौंस न लेने देना। किसी को सौंस लेने से रोकना। (२) बहुत कष्ट देना। दम घोटकर मारना = (१) गला दबाकर मारना। (२) बहुत कष्ट देना। दम चढ़ना = दे० 'दम फूलना'। दम चुराना = जान बूझकर सौंस रोकना।

विशेष—यह क्रिया विशेषतः मक्कार जानवर करते हैं। बंदर मार खाने के, समय इसलिये दम चुराता है कि जिसमें मारने

बाबा उसे मुरदा समझ ले। सोमड़ी कभी कभी अपने आप को मरी हुई जतलाने के लिये दम चुराती है। साज चढ़ाने के समय मक्कार बोड़े भी साँस रोककर पेट फुला लेते हैं जिसमें पेटो या बंद अच्छी तरह न कसा जा सके।

दम टूटना = (१) साँस बंद हो जाना। प्राण निकलना। (२) दीड़ने या तैरने आदि के समय इतना अधिक हाँफने लगना कि जिसमें आगे बढ़ा या तैरा न जा सके। दम तोड़ना = मरते समय भटके से साँस लेना। अंतिम साँस लेना। दम पचना = निरंतर परिश्रम के कारण ऐसा अभ्यास होना जिसमें साँस न फूले।—(कुशतीबाज)। दम फूलना = (१) अधिक परिश्रम के कारण साँस का जल्दी जल्दी चलना। हाँफना। (२) दमे के रोग का दौरा होना। दम बंद करना = बलपूर्वक किसी को बोलने आदि से रोकना। दम बंद होना = भय या आतंक आदि के कारण बिल्कुल चुप रह जाना। दम भरना = (१) किसी के प्रेम अथवा मित्रता आदि का पक्का भरोसा रखना और समय समय पर अग्निमानपूर्वक उसका वर्णन करना। जैसे,—(क) वे उनकी मुहुम्बत का दम भरते हैं। (ख) हम आपकी दोस्ती का दम भरते हैं। (२) परिश्रम या दीड़ने आदि के कारण साँस फूलने लगता और थकावट आ जाना। परिश्रम के कारण थक जाना। जैसे,—इतनी सीढ़ियाँ चढ़ने में हमारा दम भर गया। (३) भालू का हाथ या लकड़ी मुँह पर रखकर साँस खींचना। इस क्रिया से उसका क्रोध शांत होता अथवा भोजन पचता है (कलंदर)। (४) किसी को कुशती लड़ाकर थकाना (पहलवानों की परीक्षा)। दम मारना = (१) विश्राम करना। सुस्ताना। (२) बोलना। कुछ कहना। चुँ करना। जैसे,—आपकी क्या मजाल जो इस बात में दम भी मार सकें। (३) हस्तक्षेप करना। दखल देना। जैसे,—इस जगह कोई दम मारनेवाला भी नहीं है। दम लेना = विश्राम करना। ठहरना। सुस्ताना। दम साधना = (१) श्वास की गति को रोकना। साँस रोकने का अभ्यास करना। जैसे, प्राणायाम करनेवालों का दम साधना, गोता लगानेवालों का दम साधना। (२) चुप होना। मौन रहना। जैसे,—(क) इस मामले में अब हम भी दम साधेंगे। (ख) रुपयों का नाम सुनते ही आप दम साध गए।

२. नशे आदि के लिये साँस के साथ धुँसा खींचने की क्रिया।

क्रि० प्र०—खींचना।

मुहा०—दम मारना = गंजि या चरस आदि को बिलम पर रखकर उसका धुँसा खींचना। दम लगना = गंजि या चरस का धुँसा खींचना। दम लगाना = दे० 'दम मारना'।

३. साँस खींचकर ओर से बाहर फेंकने या फूँकने की क्रिया।

मुहा०—दम मारना = मंत्र आदि की सहायता से भाड़ फूँक करना। दम फूँकना = किसी चीज में मुँह से हवा भरना। दम भरना = कबूतर के पोटे में हवा भरना।

४. उतता समय जितना एक बार साँस लेने में लगता है। समहा। पक्ष।

मुहा०—दम के दम = सण भर। थोड़ी देर। जैसे,—वे यहाँ दम के दम बैठे, फिर चले गए। दम पर दम = बहुत थोड़ी थोड़ी देर पर। हर दम। बराबर। जैसे,—दम पर दम उन्हें कै आ रही है। दम बदम = दे० 'दम पर दम'।

५. प्राण। जान। जी।

मुहा०—दम उलझना = जी घबराना। व्याकुल होना। दम खाना = दिक् करना। तंग करना। दम लुप्त होना = दे० 'दम सूखना'। दम चुराना = जी चुराना। जान बचाना। किसी बहाने से काम करने से अपने आपकी बचाना। दम नाक में या नाक में दम आना = बहुत अधिक दुखी होना। बहुत तंग या परेशान होना। दम नाक में या नाक में दम करना अथवा खाना = बहुत कष्ट या दुःख देना। बहुत तंग या परेशान करना। दम निकलना = मृत्यु होना। मरना। (किसी पर) दम निकलना = किसी पर इतना अधिक प्रेम होना कि उसके बियोग में प्राण निकलने का सा कष्ट हो। बहुत अधिक आसक्ति होना। जैसे,—उसी को देखकर जीते हैं जिसपर दम निकलता है। दम पर आ बनना = (१) जान पर आ बनना। प्राणभय होना। (२) आपत्ति आना। आफत आना। (३) हैरानी होना। व्यग्रता होना। दम फड़क उठना या जाना = किसी चीज की सुंदरता या गुण आदि देखकर चित्त का बहुत प्रसन्न होना। जैसे,—उसकी कसरत देखकर दम फड़क गया। दम फड़कना = चित्त का व्याकुल होना। बेचैनी होना। दम फना होना = दे० 'दम सूखना'। जैसे,—(क) देने के नाम तो उनका दम फना हो जाता है। दम में दम आना = घबराहट या भय का दूर होना। चित्त स्थिर होना। दम में दम रहना या होना = प्राण रहना। जिदगी रहना। दम सूखना = बहुत अधिक भय के कारण बिल्कुल चुप हो जाना। बहुत डर के कारण साँस तक न लेना। प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। जैसे,—बन्हें देखते ही लड़के का दम सूख गया।

६. वह शक्ति जिससे कोई पदार्थ अपना अस्तित्व बनाए रखता और काम देता है। जीवनी शक्ति। जैसे,—(क) इस छाते में अब बिल्कुल दम नहीं है। (ख) इस मकान में कुछ दम तो है ही नहीं, तुम इसे लेकर क्या करोगे।

यौ०—दमदार = (१) जिसमें जीवनी शक्ति विशेष हो। (२) मजबूत। दृढ़।

७. व्यक्तित्व। जैसे, आपके ही दम से ये सब बातें हैं।

मुहा०—(किसी का) दम गनीमत होना = (किसी के) जीवित रहने के कारण कुछ न कुछ अच्छी बातों का होता रहना। गई बीती दशा में जो किसी के कार्यों का ऐसा होना जिसमें उसका भावर हो सके। जैसे,—इस कहर में अब तो और कोई पंडित नहीं रहा, पर फिर भी आपका दम गनीमत है।

८. संगीत में किसी स्वर का देर तक उच्चारण।

मुहा०—दम भरना = किसी स्वर का स्वर तक उच्चारण करते रहना ।

यौ०—दमसात्र = वह पादमी जो किसी गवैए के गाने के समय उसकी सहायता के लिये स्वर भरता रहे ।

१. पकाने की वस्तु किया जिसमें किसी साध पदार्थ को बरतन में चढ़ाकर धीरे उसका मुँह बंद करके भाग पर चढ़ा देते हैं । इस प्रकार बरतन के धंवर की भाँफ बाहर नहीं निकलने पाती धीरे उस पदार्थ के पकने में भाँफ से बहुत सहायता मिलती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

यौ०—दम चूल्हा । दम घालु । दम पुस्त ।

मुहा०—दम करना = किसी चीज को बरतन में रखकर धीरे भाँप रोकने के लिये उसका मुँह बंद करके भाग पर चढ़ा देना । दम खाना = किसी पदार्थ का बंध मुँह के बरतन में भीतरी भाँफ की सहायता से पकाया जाना । दम देना = किसी घबघकी चीज को पूरी तरह से पकाने के लिये उसे हलकी भाँफ पर रखकर उसका मुँह बंध कर देना जिसमें वह धीरे धीरे पक जाय । दम पर खाना = किसी पदार्थ के पकने में केवल इतनी कसर रख जाना कि थोड़ा दम देने से वह धीरे धीरे पक जाय । पक कर तैयारी पर खाना । थोड़ी देर भाँप बंद करके छोड़ देने की कसर रहना । दम होना = भाँप से पकना ।

१०. धोखा । छल । फरेब । जैसे,—भाँप तो इसी तरह लोगों को दम देते हैं ।

यौ०—दम भाँसा = छल कपट । दम दिवासा = वह बात जो केवल फुसलाने के लिये कही जाय । झूठी बाँधा । दम पट्टी = (१) धोखा । फरेब । (२) दे० 'दम दिवासा' । दमबाज = (१) धोखा देनेवाला । (२) फुसलाने या बहकानेवाला ।

मुहा०—दम देना = बहकाना । धोखा देना । फुसलाना । दम में खाना = धोखे में पकना । फरेब में खाना । छल में पकना । दम में खाना = (१) बहकाना । फुसलाना । (२) धोखा देना । भाँसा देना ।

११. तलवार या छुरी धाँप की बाड़ । धार ।

यौ०—दमदार = धोखा । तेज । पैना । धारदार ।

दम^३—संज्ञा पु० [देश०] दरी बुननेवालों की एक प्रकार की तिठोनी कमाधी जिसमें सवा सवा गज की सील लकड़ियाँ एक साथ बँधी रहती हैं । ये करघे में पड़ी रहती हैं और उसमें जोती बँधी रहती हैं जो पैर के अंगूठे में बाँध दी जाती हैं । बुनने के समय इसे पैर से नीचे दबाते हैं ।

दम^४—संज्ञा पु० [देश०] ओपड़ा । छप्पर । ब०—ये घग्गी बन्ती की बिन् कहुते थे और उनके भीतर इनके ओपड़े दम धीरे पूः कहलाते थे ।—मा० भा० प०, पृ० ६९ ।

दमक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दमक का अनु०] दमक । दमकमाहट । छुति । धाभा ।

४-७००

दमक^२—संज्ञा पु० [सं०] दमनकर्ता । दबाने, रोकने या शांत करनेवाला ।

दमकना—क्रि० प्र० [हि० दमकना का अनु०] १. दमकना । दम-खमाना । उ०—गजमोतिन में पूरे मीणा । लाल हिरा पुनि दमके मीणा ।—कबीर सा०, पृ० ४५८ । २. ज्वलित होना । सुलबना ।

दमकर्ता—संज्ञा पु० [सं० दमकर्तृ] दमन करनेवाला । स्वामी । शासक [जी०] ।

दमकल—संज्ञा स्त्री० [हि० दम + कल] १. वह यंत्र जिसमें एक या अधिक ऐसे नल भगे हों, जिनके द्वारा कोई तरल पदार्थ हुवा के बनाव से, ऊपर ग्रथना धीरे किसी धीरे ओंके से फेंका जा सके । पंप

विशेष—ऐसे यंत्रों में एक तबजाना होता है जिसमें नल बंधवा धीरे कोई तरल पदार्थ धरा रहता है, धीरे इसमें एक धीरे पिचकारी धीरे दूसरी धीरे साधारण नल खपा रहता है । जब पिचकारी चलाने से तब खपाने में का पदार्थ धीरे धीरे नल के द्वारा बाहर निकलता है ।

२. नक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से मकानों में जगो हुई भाँप बुझाई जाती है । पंप । ३. उत्तम सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से कुएँ से पानी निकालने में । पंप । दे० 'दमकल' ।

दमकला^१—संज्ञा पु० [हि० + कल] १. दमकल के सिद्धांत पर बना हुआ वह बड़ा पात्र जिसमें जगो हुई पिचकारी के द्वारा बड़ी बड़ी मक्कियों वं दोगों पर गुलाबजल धधका रंग धाँपि छिड़का जाता है । २. जहाज में वह यंत्र जिसकी सहायता से पाल सड़ा करते हैं । ३. दे० 'दमकल' ।

दमकला^२—संज्ञा पु० [हि० दम] दे० 'दमचूल्हा' ।

दमखम—संज्ञा पु० [का० दमखम] १. दृढ़ता । मजबूती । उ०—कवि धूमरे के सामने दमखम से उपास्थित होते थे ।—आचार्य०, पृ० २०३ । २. जीवनी शक्ति । प्राण । ३. तलवार की धार धीरे उसका झुकाव ।

दमगझी—संज्ञा पु० [हि०] यवाई । दमघघ । दमबल । पुढ । उ०—सु० प्रभु० दमघघ । दमकल, एक प्रबल ऊबल पबल बल ।—पु० क०, पृ० २२१ ।

दमघोष—संज्ञा पु० [सं०] चेदि देश के पवित्र राजा निशुपाल के पिता का नाम जो दमघोषी के धाई थे । इनका दूसरा नाम अतथुवा भी है ।

दमचा—संज्ञा पु० [देश०] मेर के कोने पर बनी हुई वह मकान जिस-पर बैठकर खेतिहर मरने केत की रजवाली करता है ।

दमचूल्हा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का मोड़े का घना हुवा नोल चूल्हा जिसके बीच में एक जखी या भरना होता है ।

विशेष—इस जानी के नीचे एक धीरे बड़ा छिद्र होता है । इसकी जाधी पर कुछ कोयले रखकर उसकी धीवार पर पकाने का बरतन रखते हैं और नीचे के छिद्र से उसमें हुवा

की जाती है जिससे भाग सुलगती रहती है और वाली में से उसकी राख नीचे गिरती रहती है।

दमजोड़ा—संज्ञा पुं० [?] तलवार।—(डि०)।

दमड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दाम + डा(प्रत्य०)] रुपया। धन। दाम।—(बाजाक)।

क्रि० प्र०—खर्चना।

मुहा०—दमड़े करना = बेचकर दाम खड़ा करना।

दमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविण (= धन) या दाम + डी (प्रत्य०)] १. पैसे का बाँटवा भाग।

विशेष—कहीं कहीं पैसे के चोथे भाग को भी दमड़ी कहते हैं।

मुहा०—दमड़ी के तीन होना = बहुत सस्ता होना। कोढ़ियों के मोल होना। दमड़ी की बुलबुल टका हसकाई = कम दाम की चीज पर अन्य खर्च अधिक पड़ जाना। उ०—तिनककर कहा ऊह। दमड़ी की बुलबुल टका हसकाई हम अपने आप पी लेंगे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२६।

२. बिलबिल पक्षी।

दमथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. छातानियंत्रण या दमन। दम। २. दंड। सजा [को०]।

दमथु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दमय'।

दमदमा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० दमदमह] १. वह किलेबंदी जो लड़ाई के समय धैर्य या बोरों में धूल या बाजू भरकर की जाती है। मोरचा। घुस।

क्रि० प्र०—बाँचना।

२. बोला। जाल। फरेज। बिलावा (को०)।

दमदमा^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० दमदमह] नगाड़ा। धौसा। उ०—उसके दहने दमदमा, बाएँ उमरी के बंध है।—संत तुरसी०, पृ० ४०।

दमदार—वि० [फ्रा०] १. जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट हो। जानदार। २. दृढ़। मजबूत। ३. जिसमें दम या साँस अधिक समय तक रह सके। जैसे,—इस हारमोनियम की भाँची बहुत दमदार है। ४. जिसकी धार बहुत तेज हो। बोला।

दमन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दबाने या रोकने की क्रिया। २. दंड जो किसी को दबाने के लिये दिया जाता है। ३. इशियों की चंचलता को रोकना। निग्रह। दम। ४. विष्णु। ५. महादेव। शिव। ६. एक ऋषि का नाम। दमयंती इन्हीं के यहाँ उत्पन्न हुई थी। उ०—पटरानी सों के मता, लै परिजन ससु साथ। आश्रम गयो नरेक तब जहाँ दमन मुखिबाध।—गुमान (सम्ब०)। ७. एक राक्षस का नाम। उ०—दमन नाम निपचर प्रति घोरा। गर्जत भाषत बचन कठोरा।—रामायन-मेघ (सम्ब०)। ८. दोना। ९. कुंद। १०. वध। हुनन (को०)। ११. रथ का चालक। सारथी (को०)। १२. योद्धा। युद्धकर्ता। सैनिक (को०)। १३. हरिमक्तिबिलास में वणिज एक पूज्योत्सव जिसमें चैन शुक्ल द्वादशी को विष्णु को दोना समर्पित किया जाता है।

दमन^२—वि० १. दमन करनेवाला। दमनकर्ता। २. शंत [को०]।

दमन^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] दे० 'दमयंती'। उ०—दमनहि नलहि जो हंस मेरावा। तुम्ह हिरामन नार्थ कहावा।—जायसी (सम्ब०)।

दमनक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक छंद का नाम जिसमें छंद नगण्य, एक लघु और एक गुरु होता है। २. दोना।

दमनक^२—वि० दमन करनेवाला। दमनशील।

दमनशील—वि० [सं०] जिसकी प्रकृति दमन करने की हो। दमन करनेवाला।

दमना^१—क्रि० प्र० [फ्रा० दम] धकना। दम लेना। उ०—फिरता फिरता जो दमता है बाबा, कीन रखे तेरे तन कू लू।—दक्खिनी०, पृ० १५।

दमना^२—क्रि० सं० [सं० दमन] दमन करना। दम में लाना।

दमना^३—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] झोणलता। बीना। उ०—दमना क मज्जरी शालिक परिमल।—वरुण०, पृ० २०।

दमनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुर, जिसे अग्निदमनी कहते हैं।

दमनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] संकोष। लज्जा। उ०—सील सनी सजनीन समीप गुलाब कल दमनी दरसावै।—गुलाब (सम्ब०)।

दमनीय—वि० [सं०] १. दमन होने के योग्य। जो दमन किया जा सके। २. जो दबाया जा सके। जो खंडित किया जा सके। जो दबाकर चढ़ाया जा सके। उ०—कुंवर मनोहर विजय बड़ि कीरति अति कमनीय। पावनहार विरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय।—तुलसी (सम्ब०)।

दमपुस्त—वि० [फ्रा० दमपुस्त] (वह लाघ पदार्थ) जो दम देकर पकाया गया हो।

दमबाज—वि० [फ्रा० दम + बाज] दम देनेवाला। फुसलानेवाला। बहाना करनेवाला।

दमबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दम + बाजी] बहानेबाजी। दम देने या फुसलाने का काम। बोखेबाजी।

दमयंतिका—संज्ञा स्त्री [सं० दमयन्तिका] मदमदान वृक्ष।

दमयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] १. राजा नल की स्त्री जो विदर्भ देश के राजा भीमसेन की कन्या थी। वि० दे० 'नल'। २. एक प्रकार का वेल। मयमवान।

दमयिता—संज्ञा पुं० [सं० दमयितृ] १. दमन करनेवाला। दमकर्ता। २. विष्णु। ३. शिव [को०]।

दमरक—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'चमरक'।

दमरख—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'चमरख'। उ०—कहि बान अटेरन टाट गजी, कहि दमरख चमरख तकला है।—राम० चर्म०, पृ० ६२।

दमरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दमड़ी] दे० 'दमड़ी'। उ०—पैसा दमरी नाहि हमारे। केहि कारणे भौहि राय हँकारे।—कबीर सा०, पृ० ४८५।

दमयंती^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दमयंती] दे० 'दमयंती'। उ०—सो

उपकार करो जिय माई । दमवंती क्यों नलहि मिलाई ।—
हिंदी प्रेम गाथा०, पृ० २२० ।

दमसाज—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह पाशमी जो किसी गवैए के गाने के समय उसकी सहायता के लिये केवल स्वर भरता है ।

दमा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दमह] एक प्रसिद्ध रोग । श्वास । साँस ।

विशेष—इस रोग में श्वासवाहिनी नाखी के अंतिम भाग में, जो फेफड़ों के पास होता है, पाकुंचन धीरे धीरे के कारण साँस लेने में बहुत कष्ट होता है, खाँसी घाती है और कफ चककर बड़ी कठिनता से धीरे धीरे निकलता है । इस रोग के रोगी को प्रायः अत्यंत कष्ट होता है, और लोगों का विश्वास है कि यह रोग कभी अच्छा नहीं होता । इसी लिये इसके संबंध में एक कहावत बन गई है कि दमा दम के साथ जाता है ।

दमाग—संज्ञा पुं० [प्र० दमाग] १० 'दमाग' [को०] ।

दमाव—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] कन्या का पति । जवाई । जामाता ।
उ०—ठाकुर कहत हम बैरी बेबकूफन के जालिन दमाव हैं
मदानियाँ सलुर के ।—ठाकुर०, पृ० २६ ।

दमादम—क्रि० वि० [प्रनु०] १. दम दम शब्द के साथ । २. लगा-
तार । बराबर ।

दमान—संज्ञा पुं० [देश०] दामन । पाल की चादर (लश०) ।

दमानक—संज्ञा स्त्री० [देश०] तोपों की बाइ । उ०—देव सूत पितर
करम खल काल यह मोहि पर और दमानक सी बई है ।—
तुलसी । (शब्द०) । (क) निज सुमट धीरन संग ले सु
दमानकें वाली भली ।—पद्माकर प्र०, पृ० २३ ।

दमाम—संज्ञा पुं० [हि० दमामा] १० 'दमामा' । उ०—जीव जँजाले
पकि रह्यो, जमहि दमाम बजाय ।—कबीर सा०, सं०, पृ० ७४ ।

दमामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दमामह] नगाड़ा । नक्कारा । डंका । घोसा ।

दमारि—संज्ञा पुं० [सं० दावानल] १. जंगल की आग । बन की
आग । २. दमड़ी । उ०—अधरम भातों गाँठि न्याव बिनु
बीनम सुबा । टकमि दमारि गुजान घाव को भयो प्रसूदा ।—
बलदू० बानी, पृ० ११२२ ।

दमावति—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] १० 'दमयन्ती' । उ०—राजा
नल कहँ जैसे दमावति ।—जायसी (शब्द०) ।

दमावती—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'दमावति' ।

दमाह—संज्ञा पुं० [हि० दमा] बेलों का एक रोग जिसमें वे टूटने
लगते हैं ।

दमित—क्रि० [सं०] १. जिसका दमन किया गया हो । उ०—कवि
सामाजिक प्रतिबंधों के विरुद्ध अपनी दमित वृत्तियों का प्रका-
शन करता है ।—नमा०, पृ० ३ । २. पराजित । पराभूत ।
विजित (को०) ।

दमी^१—क्रि० [सं० दमिन्] दमनशील ।

दमी^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] एक प्रकार का जेबी या सफरी नैचा ।
दम लगाने का नैचा ।

दमी^३—क्रि० [फ्रा० दम] १. दम लगानेवाला । कल खींचनेवाला ।

२. गाँजा पीनेवाला । गंजिड़ी । जैसे,—दमी यार किसके । दम
लगाके लिसके । (कहा०) ।

दमी^४—क्रि० [हि० दमा] जिसे दमे का रोग हो । दमे के रोगवाला ।

दमुना—संज्ञा पुं० [सं० दमुनस्] १. अग्नि । आग । २. शुक्र का एक
नाम (को०) ।

दमैया—क्रि० [हि० दमन + ऐया (प्रत्य०)] दमन करनेवाला ।
उ०—तुलसी तेहि काल कृपाल बिना दुखो कीन है दाऊन
दुःख दमैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

दमोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दाम + मोड़ा (प्रत्य०)] दाम । मूल्य ।
कीमत । (दलाखी) ।

दमोदर—संज्ञा पुं० [सं० दामोदर] १० 'दामोदर' ।

दम्य^१—क्रि० [सं०] १. दमन करने योग्य । जो दमन किया जा सके ।
२. बेल जो बधिया करने योग्य हो ।

दम्य^२—संज्ञा पुं० बेल जो धुरा धारण कर सके । पुष्ट बेल [को०] ।

दयंत—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] १० 'दैत्य' । उ०—(क) देव दयंतहि
भूतहि प्रेतहि कालहु सौं कबहूँ न डरे जू ।—सुंदर० प्र०,
भा० १, पृ० ३५ । (ख) कीन्हैसि राकस भूष परेत । कीन्हैसि
भोकस देव दयंता ।—जायसी प्र० (गुप्त०), पृ० १२३ ।

दय—संज्ञा पुं० [सं०] दया । कृपा । करुणा ।

दयत—क्रि० [सं०] १० 'दैत्य' । उ०—मो नाम कुंड बीसल
अपति साप देहु लंभिय दयत ।—पृ० रा०, १५६१ ।

दयत^२—संज्ञा पुं० [सं० दयित] १० 'दयित' । उ०—सुहृद दयत,
बल्लभ, सखा प्रीतम परम सुजान ।—नंद० प्र०, पृ० ८६ ।

दयनीय—क्रि० [सं०] दया करने योग्य । कृपा करने योग्य ।

दयनीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी दशा जिसे देखकर देखनेवाले के
मन में दया उत्पन्न हो । उ०—ऐसी दयनीयता हुई है क्या ।
फूली है, मोतरी रुई है क्या ।—भारधना, पृ० १६ ।

दया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मन का वह दुःखपूर्ण वेग जो दूसरे के कष्ट
को दूर करने की प्रेरणा करता है । सहानुभूति का भाव ।
करुणा । रहम ।

क्रि० प्र०—भाना ।—करना ।

यौ०—दया दृष्टि ।

विशेष—जिसके प्रति दया की जाती है उसके वाचक शब्द के साथ
'पर' विभक्ति लगती है । जैसे, किसी पर दया भाना, किसी
पर (या किसी के ऊपर) दया करना । सिद्धान्त के रूप में
जो इस शब्द का व्यवहार बहुत होता है । जैसे, किसी ने पूछा
'आप अच्छी तरह?' उत्तर मिलता है—'आपकी दया से' ।

२. दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को व्याही गई थी ।

दयाकर—क्रि० [सं०] दया करनेवाला । दयालु । कृपालु । उ०—
सुनु सबज कृपा सुख सिधो । दीन दयाकर भारत बंधो ।—
मानस, ७।१८ ।

दयाकर^२—संज्ञा पुं० शिव [को०] ।

दयाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दुःखवेव ।

दयाकृष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

दयादृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के प्रति करुणा या अनुग्रह का भाव । रहम या मेहरबानी की नजर ।

दयानन्द सरस्वती—संज्ञा पुं० [सं० दयानन्द सरस्वती] आर्यसमाज के संस्थापक जिनका समय मन् १८२४ से १८८३ तक है । वि० दे० 'आर्यसमाज' ।

दयानन्द—संज्ञा स्त्री० [य०] मत्स्यनिष्ठा । ईमान ।

दयानन्दार—वि० [य० दयानन्द + फा० दार] ईमानदार । सच्चा ।

दयानन्दारी—संज्ञा स्त्री० [य० दयानन्द + फा० दारी] ईमानदारी । सच्चाई ।

दयाना—क्रि० प्र० [हि० दया + ना (प्रत्य०)] दयालु होना । कृपालु होना । उ० आगम कारण भूत तब मुनिमों कह्यो सुनाई । मुनिवर दई उपायना परम दयालु दयाई ।—गुमान (शब्द०) ।

दयानिधान—संज्ञा पुं० [सं०] दया का खजाना । वह जिसमें बहुत अधिक दया हो । बहुत दयालु पुरुष ।

दयानिधि—संज्ञा पुं० [सं०] दया का खजाना । वह जिसके चित्त में बहुत दया हो । बहुत दयालु पुरुष । २. ईश्वर का एक नाम । उ०—दयानिधि तेरी गति लखि न परे ।—सूर (शब्द०) ।

दयापात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दया के योग्य हो । वह जिसपर दया करना उचित हो ।

दयामण्ड—वि० [सं० दयावत्, बहु० दयावन्त, देशी दयावण, दयावन्त, हि० दयावना] दया के योग्य । दयनीय । उ०—पहिली होय दयामण्ड रवि दयामण्ड आइ ।—ढोला०, पृ० ५४६ ।

दयामय^१—वि० [सं०] १. दया से पूर्ण । दयालु ।

दयामय^२—संज्ञा पुं० ईश्वर का एक नाम ।

दयार^१—संज्ञा पुं० [सं० दयदार] देवदार का पेड़ ।

दयार^२—संज्ञा पुं० [य०] प्रांत । प्रदेश ।

दयार^३—वि० [सं० दयालु, हि० दयान] दे० 'दयालु' । उ०—आवागवन नरात हो, गुह होबे दयार ।—पद्म०, मा० १, पृ० ८० ।

दयार्द्र—वि० [सं०] दया से भीगा हुआ । दयापूर्ण । दयालु ।

दयाक^१—वि० [सं० दयालु] दे० 'दयालु' ।

दयाल^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया जो बहुत अच्छा बोलती है ।

दयाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दया] दे० 'दयालुता' । उ०—जिनपर संत दयाली कीन्हा । भगम बूझ कोइ बिरले सीन्हा ।—घट०, पृ० २१८ ।

दयालु—वि० [सं०] जिसमें दया का भाव अधिक हो । बहुत दया करनेवाला । दयावान् ।

दयालुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दयालु होने का भाव । दया करने की प्रवृत्ति ।

दयावंत—वि० [सं० दयावन्त का बहुव०] दयायुक्त । दयालु ।

दयावती^१—वि० स्त्री० [सं०] दया करनेवाली ।

दयावती^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभ स्वर की तीन श्रुतियों में से पहली श्रुति ।

दयावना—वि० पुं० [हि० दया + धावना] [वि० स्त्री० दयावनी] दया के योग्य । दया का पात्र । दोन । उ०—देवी देव जानव दयावने है और हाथ, बागुरे बर्राक धीर राजा राना रीक की ।—तुलसी (शब्द०) ।

दयावान्—वि० [सं० दयावत्] [वि० स्त्री० दयावती] जिसके चित्त में दया हो । दयालु ।

दयावीर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दया करने में वीर हो । वह जो दूसरे का दुःख दूर करने के लिये प्राण तक दे सकता हो ।

विशेष—साहित्य या काव्य में वीर रस के अंतर्गत युद्धवीर, दानवीर आदि जो चार वीर गिनाए गए हैं उनमें दयावीर भी है ।

दयाशील—वि० [सं०] दयालु । कृपालु ।

दयासागर—संज्ञा पुं० [सं०] जिसके चित्त से अमात्र दया हो । अत्यंत दयालु मनुष्य ।

दयित^१—वि० [सं०] १. प्यारा । प्रिय । उ०—दयित, देखते देव भक्ति को, निरखते नहीं नाथ व्यक्ति जो ।—साकेत, पृ० ३११ ।

दयित^२—संज्ञा पुं० [सं०] पति । बल्लभ ।

दयिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियतमा । परनी । स्त्री । उ०—इष्टा दयिता बल्लभा प्रिया प्रेयसी होइ ।—भक्त०, पृ० ५६ ।

दर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. शंख । २. गड्ढा । दरार । ३. बुफा । कंदरा । ४. फाड़ने की क्रिया । विदारण । जैसे, पुरंदर । ५. डर । भय । खौफ । उ०—(क) भववारिधि मंदर, परमं दर । बारय, तारय संमृति दुस्तर । तुलसी (शब्द०) । (ख) दर जु कहत कवि शंख की दर ईषत की नाम । दर उरने राजा कुंवर मोहन गिरधर श्याम ।—नंददास (शब्द०) । (ग) साधवस दर आतंक भय भीत भीर भी नास । डरत सहचरी सकुच तें गई कुंवर के पास ।—नंददास (शब्द०) ।

दर^२—संज्ञा पुं० [सं० दल] सेना । समूह । दल । उ०—(क) पलटा जनु वर्षा अतुराजा । जनु प्रसन्न भावै दर माया ।—जायसी (शब्द०) । (ख) दूतन कहा भाव जहै राजा । चढ़ा तुर्क भावै दर साजा ।—जायसी (शब्द०) ।

दर^३—संज्ञा पुं० [फा०] द्वार । दरवाजा । उ०—माया नटिन सकुडि कर सीने कोटिक नाच नचावे । दर दर लोभ लागि ली डोलति नाना स्वादि करावे ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—दर दर मारा मारा फिरना = कार्यसिद्धि का पेट पालने के लिये एक घर से दूसरे घर फिरना । दुर्दशाग्रस्त होकर घुमना ।

दर^४—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हि० यल, यर अथवा फा० दर] १. जगह । स्थान । २. वह स्थान जहाँ जुलाहे ताने की डंडियाँ बाँधते हैं ।

दर^५—संज्ञा स्त्री० १. नाव । बिस । बीछे,—कापण की दर आकण

बहुत बड़ गई है। २. प्रमाण। ठीक ठिकाना। जैसे,—उसकी बात की कोई दर नहीं। ३. कदर। प्रतिष्ठा। महत्त्व। महिमा। उ०—सिर केतु सुहावन फरहरे जेहि खलि पर दल बरहरे। सुरराज केतु की दर हरे जादव जोधा बर हरे।—गोपाल (शब्द०)।

दर^१—वि० [सं०] किञ्चित्। थोड़ा। जरा सा।

दर^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दार (= लकड़ी)] ईश। ईशु। ऊल। उ०—कारन ते कारज है नीका। जथा कंद ते दर रस फीका।—विश्वाम (शब्द०)।

दरकटिका—संज्ञा स्त्री० [दरकटिका] शतावरी। सतावर नामक औषधि।

दरक^१—वि० [सं०] डरनेवाला। डरपोक। भोर।

दरक^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दरकना] १. जोर या बाव पड़ने से पड़ा हुआ दरार। पीर। २. दरकने की क्रिया।

दरकच—संज्ञा स्त्री० [हि० दोरा + कच] १. वह थोट जो जोर से रगड़ या ठोकर खाने से लगे। २. वह थोट जो कुचल जाने से लगे।

क्रि० प्र०—लगना।

दरकचाना—क्रि० सं० [हि० दर + कचरना] थोड़ा कुचलना। इतना कुचलना जितने में कोई वस्तु कई खंड हो जाय पर चूर्ण न हो।

दरकटो—संज्ञा स्त्री० [हि० दर (= भाव) + कटना] पहले से किसी वस्तु की दर या निशं काट देने की क्रिया। दर की मुकरंरी। भाव का ठहराव।

दरकना—क्रि० प्र० [सं० दर (= फाड़ना)] बाव या जोर पड़ने से फटना। चिरना। बिखरना। बिखरना। जैसे, कपड़ा दरकना, छाती दरकना। उ०—क्यों धौ दान्यों लौ हियो दरकव नहि नैवलाव।—बिहारी (शब्द०)।

दरका—संज्ञा पुं० [हि० दरकना] १. शिगाफ। दरार फटने का चिह्न। २. वह थोट जिससे कोई वस्तु दरक या फट जाय। उ०—लखी विद्योगिनि दाहिमन, कंठक अग निदान। फुलत नबिन दरको लयो शुक्मुख किशुकवान।—गुमान (शब्द०)।

दरकाना^१—क्रि० सं० [हि० दरकना] फाड़ना। उ०—ढीठ लंगर कण्हाई मोरी आमी दरकाई रे।—(गीत)।

दरकाना^२—क्रि० प्र० फटना। उ०—पुलकित धौं धौं गिया दरकानी उर आनंद भँचल फहरात।—सूर (शब्द०)।

दरकार—वि० [फा०] आवश्यक। अपेक्षित। जरूरी।

दरकिनार—क्रि० वि० [फा०] अलग। अलगाव। एक ओर। दूर।

मुहा०—...तो दर किनार = ...कुछ चर्चा नहीं। दूर की बात है। बहुत बड़ी बात है। जैसे,—उसे कुछ देना तो दरकिनार मैं छुसे बात भी नहीं करना चाहता।

दरकूच—क्रि० वि० [फा०] बराबर यात्रा करता हुआ। मंजिल दरमंजिल। उ०—(क) रामचंद्र जी की चमू राज्यश्री विभीषण की, रावण की सीधु दरकूच बलि घाई है।—

केशव। (शब्द०)। (ख) दस सहस्र बाजे दराब साजे धर धराबी संग ले। दरकूच धावत है चलो मन माँह जंग उर्मंग ले।—सूदन (शब्द०)।

दरक(पु)—संज्ञा पुं० [देश०?] ऊँट। उ०—दिन लाल घटे हँवर दरक। जवनान पहुँ निस दिवस जबक।—रा० क०, पु० ७३।

दरखत(पु)—संज्ञा पुं० [फा० दरखत] दे० 'दरखत'।

दरखास्त—संज्ञा स्त्री० [फा० दरखास्त] १. निवेदन। किसी बात के लिये प्रार्थना।

क्रि० प्र०—करना।

२. प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र। वह लेख जिसमें किसी बात के लिये विनती की गई हो।

मुहा०—दरखास्त गुजरना = दे० 'दरखास्त पड़ना'। दरखास्त देना = प्रार्थनापत्र उपस्थित करना। कोई ऐसा लेख भेजना या सामने रखना जिसमें किसी बात के लिये प्रार्थना की गई हो। दरखास्त पड़ना = प्रार्थनापत्र उपस्थित किया जाना। किसी के ऊपर दरखास्त पड़ना = किसी के विरुद्ध राजा या हाकिम के यहाँ आवेदनपत्र देना।

दरख्त—संज्ञा पुं० [फा० दरख्त] पेड़। वृक्ष।

दरगह(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० दरगाह] दरबार। समा। उ०—बाँदरा लणों बणियो बदन घर बीणा दरगह भसे।—रघु० क०, पु० ४६।

दरगाह—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. चौखट। देहरी। २. दरबार। कचहरी। उ०—बड़ी महन दरगाह में तेरे नाम कमान।—रसनिधि (शब्द०)। ३. किसी सिद्ध पुरुष का समाधि-स्थान। मकबरा। मजार। जैसे, पीर की दरगाह। ४. मठ। मंदिर। तीर्थस्थान।

दरगुजर—वि० [फा० दरगुजर] १. अलग। बाज। वंचित।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—दरगुजर करना = टालना। हटाना।

२. मुष्पाफ। क्षमाप्राप्त।

मुहा०—दरगुजर करना = जाने देना। छोड़ देना। दंड प्रादि न देना। मुष्पाफ करना।

दरगुजरना—क्रि० प्र० [फा० दरगुजर + हि० ना (प्रत्यय)] १. छोड़ना। त्यागना। बाज आना। २. जाने देना। दंड प्रादि न देना। क्षमा करना। मुष्पाफ करना।

दरगह(पु)—संज्ञा पुं० [फा० दरगाह] दरबार। दरगाह। उ०—सहजादे निज भंग सनाहे माँगे लाग दरगह माहे।—रा० क०, पु० १५।

दरज—संज्ञा स्त्री० [म० दर (= दरार)] दरार। शिगाफ। दरार। वह खाली जगह जो फटने या दरकने से पड़ जाय। उ०—घटहि मैं दया के दरजी, तो दरज मिलावहि हो।—धरम०, पु० ४८।

यौ०—दरजबंदी = दीवार की दरारों को घूना मारा भरकर बंद करने का काम।

दरजन—संज्ञा पुं० [सं० दजन, हि० दर्जन] १० 'दर्जन' ।

दरजा—संज्ञा पुं० [सं० दर्जह, हि० दरजा] १० 'दर्जा' ।

दरजा^२—संज्ञा पुं० [हि० दरजा] सोहा ढालने का एक औजार ।

दरजिन—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'दर्जिन' ।

दरजी—संज्ञा पुं० [फ्रा० दर्जी] १० 'दर्जी' । उ०—एत दरजी बरनी सुई रेसम बोरे जास ।—स० सप्तक, पृ० १६२ ।

दरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दलने या पीसने की क्रिया । २. ध्वंस । विनाश ।

दरणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रवाह । धारा । २. भौर । धावत । ३. तरंग । लहर । ४. तोड़ना । खंडन [को०] ।

दरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १० 'दरणि' ।

दरद, दरद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पर्वत । पहाड़ । २. बंधा । बंध । बाँध । ३. प्रपात । झरना । ४. डर । भय । ५. हृदय । ६. म्लेच्छ जाति [को०] ।

दरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंदरा । गुफा । २. गत । गड्ढा । ३. चारे की तलाश करना । ४. पलायन [को०] ।

दरद^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० दर्द] १. पीड़ा । व्याधा । कष्ट । उ०—दरद दवा दोनों रहै पीतम पास तयार ।—रसनिधि (शब्द०) । २. दया । करुणा । तप । सहानुभूति । उ०—माई नेकहु न धरद करति हिलकिन हरि रोवै ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—दे० 'दर्द' ।

दरद^२—वि० [सं०] भयदायक । भयंकर ।

दरद^३—संज्ञा पुं० १. काश्मीर और हिंदूकुश पर्वत के बीच के प्रदेश का प्राचीन नाम ।

विशेष—बृहत्संहिता में इस देश की स्थिति ईरान कोण में बतलाई गई है । पर आजकल जो 'दरद' नाम की पहाड़ी जाति है वह मद्रास, गिलगित, जिवाल, नागर हुंजा आदि स्थानों में ही पाई जाती है । प्राचीन यूनानी और रोमन लेखकों के अनुसार भी इस जाति का निवासस्थान हिंदूकुश पर्वत के आसपास ही निश्चित होता है ।

२. एक म्लेच्छ जाति, जिसका उल्लेख मनुस्मृति, हरिवंश आदि में है ।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि पोंड्रक, घोड़, द्राविड, कांबोज, यवन, शक, पारद, पल्लव, चीन, किरात, दरद और खस पहले क्षत्रिय थे, पीछे मंस्कारविहीन हो जाने और आहारों का वर्जन न पाने से शूद्रत्व को प्राप्त हो गए । आजकल जो दारद नाम की जाति है वह काश्मीर के आसपास मद्रास से लेकर नागरहुंजा और जिवाल तक पाई जाती है । इस जाति के लोग आधिकांश मुसलमान हो गए हैं । पर इनकी भाषा और रीति नीति की ओर ध्यान देने से प्रकट होता है कि ये आर्यकुलोत्पन्न हैं । यद्यपि ये लिखने पढ़ने में मुसलमान हो जाने के कारण फारसी अक्षरों का व्यवहार करते हैं, तथापि इनकी भाषा काश्मीरी से बहुत मिलती जुलती है ।

३. ईगुर । सिगरफ । हिगुल ।

दरदमंद—वि० [फ्रा० दर्दमंद] १. दुःखी । दर्दवाला । २. दयालु । जो दूसरे को दुःखी देखकर स्वयं दुःख का अनुभव करे । उ०—करन कुबेर कलि कीरति कमल करि ताले बंद मरद दरदमंद दाना था ।—अकबरी०, पृ० १४४ ।

दरदर^१—क्रि० वि० [फ्रा० दर दर] १. द्वार द्वार । दरवाजे दरवाजे । उ०—माया नटिन लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाथ नचावे । दर दर लोभ लागि लै डोलै नाना स्वांग करावै ।—सूर (शब्द०) । २. स्थान स्थान पर । जगह जगह । उ०—दर दर देखो दरीखानन में चौरि चौरि दुरि दुरि दामिनी ली हमकिदमकि उठै ।—पद्याकर (शब्द०) ।

दरदरा^२—वि० [हि०] दे० 'दरदरा' ।

दरदरा—वि० [सं० दरण (= दलना)] [वि० स्त्री० दरदरी] जिसके कण स्थूल हों । जिसके रवे महीन न हों, मोटे हों । जिसके कण टटोलने से मासूम हों । जो खूब चारीक न पिसा हो । जैसे, दरदरा घाटा, दरदरा धूल ।

दरदराना—क्रि० सं० [सं० दरण] १. किसी वस्तु को इस प्रकार हलके हाथ से पीसना या रगड़ना कि उसके मोटे मोटे रवे या टुकड़े हो जायें । बहुत महीन न पीसना, थोड़ा पीसना । जैसे,—मिचं थोड़ा दरदरा कर ले आओ, बहुत महीन पीसने का काम नहीं । † २. जोर से दाँत काटना ।

दरदरी^१—वि० स्त्री० [हि० दरदरा] मोटे रवे की । जिसके रवे मोटे हों ।

दरदरी^२—संज्ञा [सं० धरित्री] पृथ्वी । जमीन । धरती (दि०) ।

दरदवंत^३—वि० [फ्रा० दर्द + हि० वंत (प्रत्य०)] १. कपालु । दयालु । सहानुभूति रखनेवाला । उ०—सज्जन हो या बात को करि देखो जिय गोर । बोलनि चितवनि चतनि नह दरदवंत की ओर ।—रसनिधि (शब्द०) । २. दुखी । जिसके पीड़ा हो । पीड़ित । उ०—लेउ न मजनु गोर डिग कोऊ लेखे नाम । दरदवंत को नेक तो लेन देहु विश्राम ।—रसनिधि (शब्द०) ।

दरदवंद^४—वि० [फ्रा० दर्दमंद] १. व्यथित । पीड़ित । जिसके दर्द हो । २. दुःखी । खिन्न ।

दरदार्दी^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दर्द से युक्त होने का भाव । वेदना । दर्द । उ०—पीकी मोहि लहर उठत छुटत रैन नाही । कहा कहै करमन की रेख हिय की दरदार्दी ।—तुलसी० श०, पृ० ६ ।

दरदाखान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दालान के बाहर का दालान ।

दरदी—वि० [फ्रा० दर्द, हि० दरद + ई (प्रत्य०)] जिसे दुःख घिला हो । दुःखी । पीड़ित । उ०—मीरा कहती है मतवाली, बरबी को दरदी पहचाने । दरद और दरदी के रिश्तों को, पगली मीरा क्या जाने ।—हिमंत०, पृ० ७६ ।

दरद—संज्ञा पुं० [फ्रा० दर्द] दे० 'दर्द' या 'दर्द' ।

दरद्री—वि० [सं० दरिद्र] निर्धन । कंगाल । उ०—बेहृष्य दरद्री ह्रष्य ज्यों अचल सचल सिर दिव्यद्वय । जंगार वेम वेमहृकरन । जिति किति अमिलवई ।—पु० रा०, १२ । १६ ।

दरन^६—संज्ञा पुं० [सं० दरण] १० 'दरण' ।

दरना^१—क्रि० सं० [सं० दरण] १. चलना । घूमना । पीसना ।
२. व्यस्त करना । नष्ट करना ।

दरप^२—संज्ञा पुं० [सं० दर्प] दे० 'दर्प' । उ०—तरह मदन रत
तणी देखि दिस दरप जाय दट ।—रघु० ६०, पु०

दरपक^३—संज्ञा पुं० [सं० दर्पक] दे० 'दर्पक' । उ०—तोहि पाइ कान्ह
प्यारी होइगी विराजमान ऐसे जैसे लीने संग दरपक रति है ।
—कविरा०, पु० ५३ ।

दरपन—संज्ञा पुं० [सं० दर्पण] [क्रि० धत्वा० दरपनी] मुँह देखने
का शीशा । आईना । मुकुर । भारसी ।

दरपना^४—क्रि० घ० [सं० दर्पण] १. ताव में घाना । क्रोध करना ।
२. गर्व या अहंकार करना । घमंड करना ।

दरपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरपन] मुँह देखने का छोटा शीशा ।
छोटा आईना ।

दरपरदा—क्रि० वि० [फ० दरपदह] चुपके चुपके । छाप में ।
छिपाकर ।

दरपित—वि० [सं० दर्पित] दे० 'दर्पित' ।

दरपेश—क्रि० वि० [फ्रा०] आगे । सामने ।

मुहा०—दरपेश होना = उपस्थित होना । सामने आना । जैसे,
मामला दरपेश होना ।

दरबंद—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. दरवाजा । बड़ा दरवाजा । २. पर-
कोटा । चारदीवारी । ३. दो राशियों के मध्य का अंतर [क्रो०] ।

दरबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. किसी चीज की दर या भाव निश्चित
करने की क्रिया । २. लगान आदि की निश्चित की हुई दर ।
३. अलग अलग दर या विभाग आदि निश्चित करने की क्रिया ।

दरब—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] १. धन । दौलत । २. धातु । ३. मोटी
किनारदार चादर ।

दरबदर—क्रि० वि० [फ्रा०] द्वार द्वार । दर दर । उ०—उनकी
घसल जानै नहीं । दिस दर बंदर दूँते कुफर ।—तुरसी० पृ०,
पु० २७ ।

दरबारी^१—वि० [सं० दरण] १. दरबारा । २. ऐसा रास्ता जिसमें
ठीकरे पड़े हों (कहारों की बोली) ।

दरबारी^२—संज्ञा स्त्री० [देशी दड़वड़ (= शीघ्र)] उतावली । दड़-
बड़ी । अल्हबाजी । शीघ्रता । उ०—अहो हरि आए महा
हरबर में, कहा बनि भावे टहल दरबर में । साधु सिरोमनि
घर में साधन धोखे धोखे परबर में ।—घनानंद, पु० ४४० ।

दरबराना^१—क्रि० सं० [हिं० दरबर] १. दरबारा करना । बोझा
पीसना । २. किसी को इस प्रकार डरा देना कि वह किसी
बात का खंडन न कर सके । धमका देना । ३. दबाना । दबाव
डालना ।

दरबराना^२—क्रि० घ० [देशी दड़वड़, हिं० दरबर] १. शीघ्रता
करना । दड़बड़ी करना । २. छटपटाना । घाकुल होना
(लाक्ष०) । उ०—देखन कौं दग दरबारात, प्राण मिलन
दरबारात सिधिल होति अंगनि गतिमति तितहीं करति गवन ।
—घनानंद, पु० ४२० ।

दरबदर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मय जो कुछ वनस्पतियों
को सड़ाकर बनाया जाता है ।

दरबो—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबान] दे० 'दरबान' ।

दरबा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दर] १. कबूतरों, मुरगियों आदि के रखने
के लिये काठ का खानेदार संयुक्त, जिसके एक एक खाने में एक
एक पक्षी रखा जाता है । २. दीवार, पेड़ आदि में वह खोदरा
या कोटर जिसमें कोई पक्षी या जीव रहता है ।

दरबान—संज्ञा पुं० [फ्रा०, मि० सं० द्वारवान्] द्योकीदार । द्वारपाल ।

दरबानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दरबान का काम । द्वारपाल का कार्य ।

दरबार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] [वि० दरबारी] १. वह स्थान जहाँ
राजा या सरदार मुसाहबों के साथ बैठते हैं । २. राजसभा ।
कचहरी । उ०—करि मज्जन सरयू जल गए भूप दरबार ।
—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दरबारदार (१) दे० 'दरबारी' । (२) लुत्तामदी ।
चापलूस । दरबारदारी । दरबार घाम । दरबार खास ।
दरबार वृत्ति ।

मुहा०—दरबार करना = राजसभा में बैठना । दरबार लुत्ता =
दरबार में जाने की आज्ञा मिलना । दरबार बंद होना =
दरबार में जाने की रोक होना । दरबार बाधना = घूस
बाधना । रिश्वत मुकदर करना । मुँह भरना । दरबार
लगना = राजसभा के सभासदों का एकट्ठा होना ।

३. महाराज । राजा (राजपूतों में प्रयुक्त) । ४. प्रभुतसर में
सिक्कों का मंदिर जिसमें 'ग्रंथ साहब' रखा हुआ है । ५.
दरवाजा । द्वार । उ०—तब बोलि उठयो दरबार बिलासी ।
द्विजद्वार लसे जमुनातटवासी ।—केशव (शब्द०) ।

दरबारदारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. दरबार में हाजरी । राजसभा
में उपस्थिति । २. किसी के यहाँ बार बार जाकर बैठने और
लुशामस करने का काम ।

क्रि० प्र०—करना ।

दरबारबिलासी^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबार + सं० बिलासी]
द्वारपाल । दरबान । उ०—तब बोलि उठयो दरबारबिलासी ।
द्विजद्वार लसे जमुनातटवासी ।—केशव (शब्द०) ।

दरबारवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दरबार + सं० वृत्ति] राजा द्वारा प्राप्त
होनेवाली वृत्ति । राज्य द्वारा दी हुई जीविका । उ०—निरय
दरबारवृत्ति पानेवाले हिंदी कवियों के प्रतिरिक्त कुछ अन्य
कवि भी अकबरी दरबार द्वारा संमानित तथा पुरस्कृत हुए
थे ।—अकबरी०, पु० ३२ ।

दरबाद साहब—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबार + सं० साहब] प्रभुतसर
स्थित सिक्कों का प्रसिद्ध तीर्थस्थल गुहद्वारा जहाँ उनका धर्म-
ग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहब' रखा हुआ है ।

दरबारी^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] राजसभा का सभासद । दरबार में
बैठनेवाला आबमी ।

दरबारी^२—वि० दरबार का । दरबार के योग्य । दरबार से संबंध
रखनेवाला । जैसे, दरबारी पोशाक ।

दरबारी कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबारी + हिं० कान्हड़ा] एक

राग जिसमें कुछ ऋषभ के अतिरिक्त बाकी सब कोमल स्वर लगते हैं ।

दरवी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वी] करछी । कनछी । करछुल ।

दरभ^१—संज्ञा पुं० [सं० दभं] दे० 'दभं' ।

दरभ^२—संज्ञा पुं० [?] बंजर : उ०—कपि शाखाद्वय बलीमुख कीच दरभ संगूर । धानर मकंद प्लवंग हरि तिन कहें मजु मन-
हूर ।—नंददास (शब्द०) ।

दरमंद—वि० [फ्रा० दरमांदह] प्राजिज । दुखी । निःसहाय । बेकस ।
उ०—आलोक तो दरमंद जगाया बहुत उमेद जवाब न पाया ।
—दे० बानी, पृ० १५ ।

दरमन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] हलाक । शोषण ।

यौ०—दरदरमन = उपचार ।

दरमांदा—वि० [फ्रा० दरमांदह] साधार । असहाय । संकटग्रस्त ।
उ०—दरमांदा ठाढ़ो तुम दरबार । तुम बिन सुरत करे को
मेरी दरसन दीखे कोल किबार ।—कबीर श०, भा० २,
पृ० १० ।

दरमा^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] बांस की वह चटाई जो बंगाल में
ओपड़ियों की दीवार बनाने में काम आती है ।

दरमा^२—संज्ञा पुं० [सं० दारिम] धनार ।

दरमाहा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरमाह] मासिक वेतन ।

दरमियान^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] मध्य । बीच ।

दरमियान^२—क्रि० वि० बीच में । मध्य में ।

दरमियानी^१—वि० [फ्रा०] बीच का । मध्य का ।

दरमियानी^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. मध्यस्थ । बीच में पड़नेवाला
व्यक्ति । दो प्रादमियों के बीच के झगड़े का निबटेरा करने-
वाला मनुष्य । २. हलाल ।

दरम्यान^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरमियान] दे० 'दरमियान' । उ०—
अबल देखो ये क्या, उसे नाम न था, नाम दरम्याने पैदा हुआ
चल, चल, चल ।—दरिदानी०, पृ० ५७ ।

दरया—संज्ञा पुं० [फ्रा० दर्या] दे० 'दरिया' ।

दरयाब—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरयाब] दे० 'दरियाब' । उ०—ऐसे सब
खलक तैं सकल सकलित रह्यो, राव में सरम जैसे सलिल दरयाब
में ।—मति० प्र०, पृ० ३६८ ।

दररना^१—क्रि० स० [देश०] दे० 'दरना' ।

दररना^२—क्रि० स० [हि० धरेर] दे० 'धरेरना' ।

दरराना^१—क्रि० स० [धनु०] हड़बड़ी या तेजी से घाना ।

दरराना^२—क्रि० स० [हि०] दे० 'दरदराना' ।

दरबाजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबाजह] १. द्वार । मुहाना ।

मुहा०—दरबाजे की मिट्टी खोद डालना या ले डालना = बार
बार दरबाजे पर घाना । दरबाजे पर इतनी बार जाना घाना
कि उसकी मिट्टी खुद जाय ।

२. किबाड़ । कपाट ।

क्रि० प्र०—खटखटाना ।—खोलना ।—बंद करना ।—मेड़ना ।

दरवी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वी] १. साँप का फन ।

यौ०—दरवीकर = साँप । फनवाला साँप ।

२. करछुल । पोना । ३. सँकसी । दस्तपनाह । दस्तपना ।

दरवेश—संज्ञा पुं० [फ्रा०] [स्त्री० दरवेशी] फकीर । साधु ।

दरवेशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] फकीरी । साधुता [स्त्री०] ।

दरश—संज्ञा पुं० [सं० दर्श] दे० 'दर्श' ।

दरशन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दर्शन' ।

दरशाना—क्रि० प्र०, क्रि० स० [सं० दर्शन] दे० 'दरसना' ।

दरशाना^१—क्रि० प्र०, क्रि० स० [सं० दर्शन] दे० 'दरसना' ।

दरस—संज्ञा पुं० [सं० दर्श] १. देखादेखी । दर्शन । दीपार । उ०—
दरस परस मज्जन अरु पाना ।—तुलसी । (शब्द०) ।

यौ०—दरस परस ।

२. भेट । मुलाकात । ३. रूप । छवि । सुंदरता ।

दरसन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दर्शन' ।

दरसना^१—क्रि० प्र० [सं० दर्शन] दिखाई पड़ना । देख
पड़ना । देखने में आना । दृष्टिगोचर होना । उ०—श्री नारव
की दरसे मति सी । लोपे तमता अपकीरति सी ।—
केशव (शब्द०) ।

दरसना^२—क्रि० स० [सं० दर्शन] देखना । लखना । उ०—(क)
बन राम शिला दरसी जबहीं ।—केशव । (शब्द०) । (ख)
नर अंध अणु दरसे तर मोरे ।—केशव । (शब्द०) ।

दरसनिया^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] विस्फोटक, महामारी प्रादि
बोमारियों की शांति के लिये पूजा प्रादि करनेवाला । आहु
फूंक प्रादि करनेवाला ।

दरसनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] दर्पण । शीशा । आईना । उ०—
नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी चकचाव । दस दिसि देखत
सगुन सुम पूजहि मन धमिलाव ।—तुलसी (शब्द०) ।

दरसनीय^१—वि० [सं० दर्शनीय] दे० 'दर्शनीय' ।

दरसनी हुंड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] १. वह हुंड़ी जिसके भुगटान
की मिति को दस दिन या उससे कम दिन बाकी हों । (इस
प्रकार की हुंड़ी बाजार में दरसनी हुंड़ी के नाम से बिकती
थी । २. कोई ऐसी वस्तु जिसे दिखाते ही कोई वस्तु प्राप्त
हो जाय ।

दरसाना—क्रि० स० [सं० दर्शन] १. दिखलाना । दृष्टिगोचर करना ।
उ०—चकित जानि जननी जिय रघुवति वधु विराट दरसावो ।
—रघुराज (शब्द०) । २. प्रकट करना । स्पष्ट करना । उक्-
काना । उ०—रामायन भागवत सुनाई । रोन्ही अक्ति राख
दरसाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

दरसाना^२—क्रि० प्र० दिखाई पड़ना । देखने में आना । दृष्टिगोचर
होना । उ०—(क) ठाढ़ी में अरु वदन में सेत बार दरसाहि ।
रघुराज (शब्द०) । (ख) प्रमुदित करहि परस्पर बाता ।
सखि तब अघर स्याम दरसाता ।—रघुराज (शब्द०) ।

दरसावना—क्रि० स० [हि० दरसाना] दे० 'दरसाना' ।

दरहाल—क्रि० वि० [फ्रा० दर + प्र० हाल] अभी । इसी समय ।

उ०—दाहू कारणि कंत के खरा दुखी बेहाल । मोरी मेरा मिहार करि, दे दरसन दरहाल ।—दाहू०, पृ० १२ ।

दर्राँती—संज्ञा स्त्री० [सं० शत्रो] १. हँसिया । चास या फसल काटने का औजार ।

मुहा०—दर्राँती पड़ना=कटोनी पड़ना । कटाई प्रारंभ होना ।

२. दे० 'दरेंती' ।

दर्रा—संज्ञा पुं० [फा० दरह; तुल० सं० दरा (= गुफा)] दे० 'दर्रा' । उ०—खेवरा का दरा सों बार बाँखी का हरादा ।—सिखर०, पृ० ५१ ।

दर्राई—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. बचने की मजदूरी । २. बचने का काम ।

दर्राज^१—वि० [फा० दर्राज] बड़ा । भारी । लंबा । दीर्घ ।

दर्राज^२—क्रि० वि० [फा०] बहुत । अधिक ।

दर्राज^३—संज्ञा स्त्री० [हि० दरार] दरज । शिगाफ । बरार ।

दर्राज^४—संज्ञा स्त्री० [पं० डामर] भेज में लगा हुआ संकुचमुखा जाना जिसमें कुछ वस्तु रखकर ताला लगा सकते हैं ।

दरार—संज्ञा स्त्री० [सं० दर] वह खाली जगह जो किसी चीज के फटने पर लकीर के रूप में पड़ जाती है । शिगाफ । उ०—(क) भबहुं भवनि बिहरत दरार मिस को भवसर सुधि कीन्हें ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सुमिरि सनेहु सुमित्रा सुत को दरकि दरार न भाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

दरारना^(५)—क्रि० प्र० [हि० दरार + ना (प्रत्य०)] फटना । बिखीरना होना । उ०—बाजहि भेरि लकीर अपारा । सुनि कादर उर जाहि दरारा ।—तुलसी (शब्द०) ।

दरारा—संज्ञा पुं० [हि० दरारा] दरारा । बकका । रगड़ा । उ०—दल के दरारे हुते कमठ करारे कूटे केरा कैधे पात बिहरावे फन सेस के ।—भूषण (शब्द०) ।

दरिदा—संज्ञा पुं० [फा० दरिदह] फाड़ खानेवाला जंतु । मांसमत्सक वनजंतु । जैसे, घेर, कुत्ता, घाबि ।

दरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दरी' [को०] ।

दरित—वि० [सं०] १. मयालु । डरबोक । भीत । २. विदीर्ण । फटा हुआ [को०] ।

दरिदः—संज्ञा पुं० [सं० दरिद] १. कंयासी । निर्धनता । बरोबो । २. कंयास । निर्धन ।

दरिदरः—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दरिद] दे० 'दरिद' ।

दरिद्र^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दरिद्रा] जिसके पास निर्वाह के लिये पर्याप्त धन न हो । निर्धन । कंगाल ।

यौ०—दरिद्र नाशायण = कंगाल । भिक्षुक ।

दरिद्र^२—संज्ञा पुं० १. निर्धन मनुष्य । कंगाल आदमी । २. दरिद्रप । कंगाली ।

दरिद्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंगाली । निर्धनता ।

४-७१

दरिद्राण—संज्ञा पुं० [सं०] गरीबी । धनहीनता [को०] ।

दरिद्रायक—वि० [सं०] धनहीन । कंगाल [को०] ।

दरिद्रित—वि० [सं०] दे० 'दरिद्रायक' ।

दरिद्रोः—वि० [सं० दरिद्रिन, अथवा सं० दरिद्र + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'दरिद्र' ।

दरिया^१—संज्ञा पुं० [फा०] १. नदी । २. समुद्र । सिंधु । उ०—उ०—(क) तबि आस भो दास रघूपति को दसरथ के दानि क्या दरिया ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दरिया दधि किय मयन भोम फटिय लह तुटिय ।—पृ० रा०, १।६३६ ।

यौ०—दरियाबिल = उदार ।

दरिया^२—संज्ञा पुं० [हि० दरना] दलिया ।

दरिया^३—संज्ञा पुं० [दे०] निर्गुण पंथों एक संत ।

यौ०—दरियादासी ।

दरियाई^१—वि० [फा०] १. नदी संबंधी । २. नदी में रहनेवाला । जैसे, दरियाई चोड़ा । ३. नदी के निकट का । ४. समुद्र संबंधी ।

दरियाई^२—संज्ञा स्त्री० पतंग को दूर ले जाकर हवा में छोड़ने की क्रिया । झोली । छुईया ।

क्रि० प्र०—देना ।

दरियाई^३—संज्ञा स्त्री० [फा० दाराई] एक प्रकार की रेशमी पतली साटन । उ०—मच है, और तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे सफेद फर्श पर गोबर का चोंच, सोने की सिकड़ी में लोहे की घंटी और दरियाई की मंगिया में मूँज की बलिया ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३७७ ।

दरियाई^४—संज्ञा स्त्री० [फा० दरिया] एक तरह की तलवार । उ०—दिपती दरियाई दोनों आई भटनि चलाई प्रति उमही ।—पद्याकर प्र०, पृ० २८ ।

दरियाई चोड़ा—संज्ञा पुं० [फा० दरियाई + हि० चोड़ा] गंडे की तरह का मोटी खाल का एक जानवर जो अफ्रीका में नदियों के किनारे की दलदलों और झाड़ियों में रहता है ।

विशेष—इसके पैरों में लुर के आकार की चार चार उंगलियाँ होती हैं । मुँह के भीतर डालें और कंटीले दाँत होते हैं । शरीर नाटा, मोटा, भारी और बेडंगा होता है । चमड़े पर बाध नहीं होते । नाक फूली और उभरी हुई तथा पूँछ और आँखें छोटी होती हैं । यह जानवर पोथों की जड़ों और कन्धों को खाकर रहता है । दिन भर तो यह झाड़ियों और दलदलों में छिपा रहता है, रात को खाने पीने की खोज में निकलता है और छिपी घाबि को हानि पहुँचाता है । पर यह नदी से बहुत दूर नहीं जाता और जरा सा झटका या भय होते ही नदी में जाकर गोता मार लेता है । यह देर तक पानी में नहीं रह सकता, साँस लेने के लिये सिर निकालता है और फिर डुबता है । यह निर्जन स्थानों में गोल बाँधकर रहता है ।

कभी कभी लोग इसका शिकार गड्डे खोदकर करते हैं। रात को जब यह जंतु गड्डों में गिरकर फंस जाता है तब लोग इसे मार बाधते हैं। इसके चमड़े से एक प्रकार का लचीला धीर मजबूत चाबुक बनता है जिसे 'करवस' कहते हैं। मिस्र देश में इस चाबुक का प्रचार है। वहाँ की प्रजा इसकी मार से बहुत डरती है। पहले नील नदी के किनारे दरियाई घोड़े बहुत मिलते थे, पर अब शिकार होने के कारण बहुत कम हो चले हैं।

दरियाई नारियल—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाई + हि० नारियल] एक प्रकार का नारियल जो अफ्रीका, अमेरिका आदि में समुद्र के किनारे किनारे होता है।

विशेष—इसकी गिरी धीर छिन्नका सूखने पर पत्थर की तरह कड़ा हो जाता है। इसकी गिरी दवा के काम में आती है। खोपड़े का पात्र बनता है जिसे संन्यासी या फकीर अपने पास रखते हैं।

दरियाउ(पुं०) [फ़ा० दरियाउ] दे० 'दरियाव'।

दरियादासी—संज्ञा पुं० [हि० दरियादास + ई०] निर्गुण उपासक साधुओं का एक संप्रदाय जिसे दरिया साहब नामक एक व्यक्ति ने चलाया था। कहते हैं, इस संप्रदाय के लोग आधे हिंदू आधे मुसलमान होते हैं। संत दरिया के संप्रदाय का अनुगामी।

दरियादिल—वि० [फ़ा०] [अ० दरियादिली] उदार। दानी। फैयाज।

दरियादिली—संज्ञा अ० [फ़ा०] उदारता।

दरियाफा—वि० [फ़ा० दरियाफा] दे० 'दरियाफत'। उ०—आपुको खूब दरियाफ कीजें। पलटू०, पृ० ५६।

दरियाफत—वि० [फ़ा० दरियाफत] ज्ञात। मालूम। जिसका पता लगा हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दरियाय(पुं०) [फ़ा० दरियाय] दे० 'दरियाव'। उ०—हिब त पेदि पठान पाम वर दल दलमसि दरियाय बहाई।—अकबरी०, पृ० ६७।

दरियावरामद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'दरियावरार'।

दरियावरार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह भूमि जो किसी नदी की घाटी हट जाने से निकल आती है और जिनमें खेती होती है।

दरियावार—वि० [फ़ा०] अत्यंत बरसनेवाला। उदार। बरसात [अ०]।

दरियावुर्द—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह भूमि जिसे कोई नदी काटकर सराब कर दे जिससे वह खेती के योग्य न रहे।

दरियाव—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाव] १. दे० 'दरिया'। उ०—तन समुद्र मन लहर है नैन कहर दरियाव। बेसर भुजा सिफंदरी कहत न प्राव, न प्राव।—(प्रचलित)। २. समुद्र। सिंधु। उ०—पक्का मती करिके मलिच्छ मनसब छोड़ि मक्का ही मिस उतरत दरियाव है।—भूषण(शब्द०)।

दरी—संज्ञा अ० [सं०] १. गुफा। खोह। २. पहाड़ के बीच वह खड्ड

या नीचा स्थान जहाँ कोई नदी बहती या गिरती हो।

यो०—दरीभृत। दरीमुख।

दरी^२—संज्ञा अ० [सं० स्तर, स्तरी (= फैलाने की वस्तु)] मोटे सुतों का बुना हुआ मोटे दल का बिछौना। शतरंजी।

दरी^३—वि० [सं० दरिन्] १. फाड़नेवाला। विदीर्ण करनेवाला। २. डरनेवाला। डरपोक। कादर।

दरी^४—संज्ञा अ० [फ़ा०] फारसी भाषा की एक शाखा का नाम [को०]।

दरीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर + खाना] वह घर जिसमें बहुत से द्वार हों। बारहदरी। उ०—दर दर देखो दरीखानन में दोरि दोरि दुरि दुरि दामिनी सी दमकि दमकि रठे।—पद्माकर (शब्द०)।

दरीगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दरी'। उ०—...ये मंदिर पाषाणखंडों को काट काटकर दरीगृहों के रूप में बने थे।—आ० भा०, पृ० ५६३।

दरीचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरीचह] [अ० दरीची] १. लिङ्की। झरोखा। २. छोटा द्वार। चौर दरवाजा। उ०—दरीचा तूँ इस बाब का मुख को झोल। मिल उस यार सूँ बूँ गहूँ मुख कूँ बोल।—दक्खिनी, पृ० ८४। ३. लिङ्की के पास बैठने की जगह।

दरीची—संज्ञा अ० [फ़ा० दरीचह] १. झरोखा। लिङ्की। २. लिङ्की के पास बैठने की जगह। उ०—(क) मूर्ति दरीचिन दे परदा सिदरीन झरोखन रोंकि छपायो।—गुमान(शब्द०)। (ख) तैसेई मरीचिका दरीचिन के देवे ही में छपा को खीली छवि छहरति ततकाल।—द्विजदेव (शब्द०)।

दरीबा—संज्ञा पुं० [?] १. पान दरीबा। पान की सट्टी। वह जगह जहाँ बहुत से तंबोली बेचने के लिये पान लेकर बैठते हैं। २. बाजार। उ०—आसिक अमली साब सब, अमल बरावे पाइ। साहेब दर दीदार में, सब मिलि बैठे पाइ।—बादु०, पृ० १३१।

दरीभृत—संज्ञा पुं० [सं० दरीभृत] पर्वत। पहाड़।

दरीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुफा का मुँह। २. राम की सेना का एक बंदर। ३. गुफा के समान मुखवाला (को०)।

दरुदा—संज्ञा अ० [फ़ा० दरुद] दुआ। शुभकामना। कृपा। उ०—वे बंदे को पैदा किया दम का दिया दरुदा।—कबीर सा०, पृ० ८८७।

दरुन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] आत्मा। हृदय। चित्त। कश्य [को०]।

दरुना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरुना] वह कोड़ा या चाब जिसका मुँह भीतर हो। उ०—दाहू हरदम माहि बिमान कहैं बकसै दरद सौं। दरद दरुनै जाइ, जब देखी दीदार को।—बादु०, पृ० ५६।

दरुनी—वि० [फ़ा०] भीतरी। आंतरिक। उ०—बगोनी सब समाजा यह जो देखो। न जाने यह दरुनी खेल घट का।—कबीर सा०, पृ० ३७६।

दरैती—संज्ञा अ० [सं० दर + यत्न] अपनाव दलने का छोटा यंत्र। चक्की।

दरेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० दरेन्द्र] विष्णु का शंख । पांचजन्य [को०] ।

दरेक—संज्ञा पुं० [सं० दरेक] बकाइन का वृक्ष ।

दरेग—संज्ञा पुं० [सं० दरेग] कमी । कसर । कोर कसर । जैसे—
हैं मैं इस काम के करने में दरेग न करूँगा ।

दरेर—संज्ञा पुं० [सं० दरण] दे० 'दरेरा' । उ०—दरिया जो कहे
वरियान दरेर में तोरि जबीर के तानु है ।—धं० दरिया,
पृ० १५ ।

दरेरना—क्रि० प्र० [सं० दरण] १. रगड़ना । पीसना । २.
रगड़ते हुए धक्का देना ।

दरेरा—संज्ञा पुं० [सं० दरण] १. रगड़ा । धक्का । उ०—तापर
सहि न जाय कस्यानिधि मन को दुसह दरेरो ।—तुलसी
(शब्द०) । २. मेंह का झाला । ३. बहाव का जोर । तोड़ ।

दरेसी—संज्ञा स्त्री० [सं० ड्रेस] एक प्रकार की छोट । फूलदार छपा
हुआ एक महीन कपड़ा ।

दरेस—वि० [सं० ड्रेस] तैयार । बना बनाया । सजा सजाया ।

दरेस—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दरस' । उ०—हूँसा देस तहाँ
जा पहुँचे देखो पुरुष दरेस ।—कबीर० श०, भा० ३,
पृ० ४६ ।

दरेसी—संज्ञा स्त्री० [सं० ड्रेस] दुस्ती । तैयारी । मरम्मत ।

दरेया—संज्ञा पुं० [सं० दरण] १. बमनेवाला । वह जो दसे । २.
घातक । बिनाशक । उ०—दशरथ को नंदन दुःख दरेया ।
—(शब्द०) ।

दरोग—संज्ञा पुं० [सं० दरोग] झूठ । झमझम । गलत । मिथ्या ।
उ०—(क) हूँ दरोग जो कहूँ सूर उगै पच्छिम दिसि । हूँ
दरोग जो कहूँ ईव लगै कुट्टू निसि ।—पु० रा०, ६४ ।
१३६ । (ख) मेरी बात जो कोई जाने दरोग । कमी फेर
उसको न होवे फरोग ।—कबीर मं०, पृ० १३४ ।

औ०—दरोग हलफ़ी ।

दरोगहलफ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दरोगहलफ़ी] १. सच बोलने की
कसम खाकर भी झूठ बोलना । २. झूठी गवाही देने
का जुमं ।

दरोगा—संज्ञा पुं० [सं० दारोगह] दे० 'दारोगा' । उ०—सो
बा चरणने में एक म्लेच्छ दरोगा रहे ।—दो सो बावन०
भा० १, पृ० २४२ ।

दुरोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुरोदर' [को०] ।

दर्कार—क्रि० प्रि० [सं० दारकार] दे० 'दरकार' ।

दर्गाह—संज्ञा पुं० [सं० दारगाह] दे० 'दरगाह' ।

दर्ज—संज्ञा स्त्री० [हि० दर्ज; तुल० फ्रा० दर्ज] दे० 'दरज' ।

दर्ज—वि० [सं०] लिखा हुआ । कागज पर चढ़ा हुआ । प्रकृत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दर्जन—संज्ञा पुं० [सं० दर्जन] बारह का समूह । इकट्ठी
बारह वस्तुएँ ।

दर्जा—संज्ञा पुं० [सं० दर्जह] १. ऊँचाई निचाई के क्रम के

विचार से निश्चित स्थान । श्रेणी । कोटि । वर्ग । जैसे,—
वह अश्वल दर्ज का पाजी है । २. पढ़ाई के क्रम में ऊँचा नीचा
स्थान । जैसे,—तुम किस दर्ज में पढ़ते हो ।

मुहा०—दर्जा उतारना = ऊँचे दर्ज से नीचे दर्ज में कर देना । दर्जा
चढ़ाना = नीचे दर्ज से ऊँचे दर्ज में जाना । दर्जा चढ़ाना =
नीचे दर्ज से ऊँचे दर्ज में करना ।

क्रि० प्र०—घटाना ।—बढ़ाना ।

४. किसी वस्तु का विभाग जो ऊपर नीचे क्रम से हो । खंड ।
जैसे, घालमारी के दर्ज । मकान के दर्ज ।

दर्जा—क्रि० प्रि० गुणित । गुना । जैसे,—वह रोज उससे हजार दर्ज
गच्छी है ।

दर्जिन—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दर्जो + हि० इन (प्रत्य०)] १. दर्जी
जाति की स्त्री । २. दर्जी की स्त्री । ३. साने का व्यवसाय
करनेवाली स्त्री ।

दर्जी—संज्ञा पुं० [फ्रा० दर्जो] १. कपड़ा सीनेवाला । वह जो कपड़े
सीने का व्यवसाय करे । २. कपड़े सीनेवाली जाति का पुरुष ।

मुहा०—दर्जी की सूई = हर काम का मादमी । ऐसा मादमी जो
कई प्रकार के काम कर सके, या कई बातों में योग दे सके ।

दर्द—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. पीड़ा । व्यथा ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—दर्द उठना = दर्द उत्पन्न होना (किसी अंग का)
दर्द करना = (किसी अंग का) पीड़ित या व्यथित होना ।
दर्द खाना = कष्ट सहना । पीड़ा सहना । जैसे,—उसने दर्द
खाकर नहीं जना ? दर्द लगना = पीड़ा प्रारंभ होना ।

२. दुःख । तकलीफ । जैसे, दूसरे का दर्द समझना ।

मुहा०—दर्द भाना = तकलीफ भावना होना । जैसे,—बपया
निकालते दर्द भाना है ।

३. सहानुभूति । करुणा । दया । तर्प । रहम ।

क्रि० प्र०—भाना ।—लगना ।

मुहा०—दर्द खाना = तरस खाना । दया करना ।

४. हानि का दुःख । खो जाने या हानि से निकल जाने का कष्ट ।
जैसे,—उसे पैसे का दर्द नहीं ।

औ०—दर्दनाक । दर्दमंद । दर्दजिगर = दर्दोदन । दर्ददिल = मन-
स्थाप । मनोव्यथा । दर्दस = (१) शि० पीड़ा । (२)
कष्ट का काम । दर्दगम = पीड़ा भार दुःख । कष्टसमूह ।
उ०—मुझको शायर न कहो मीर कि साहब मैंने । दर्दगम
कितने किए जमा तो दीवान किया ।—कविता की०, भा० ४,
पृ० १२२ ।

दर्दनाक—वि० [फ्रा०] कष्टजनक । दर्द पैदा करनेवाला [को०] ।

दर्दमंद—वि० [फ्रा०] [सं० दर्दमंदी] १. जिसे दर्द हो । पीड़ित ।
दुःखी । २. जो दूसरे का दर्द समझे । जिसे सहानुभूति हो ।
दयावान् ।

दर्दर—वि० [सं०] टूटा हुआ । फटा हुआ ।

दर्दर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुछ कुछ खंडित कपड़ा । २. एक बाघ ।
बुर । ३. बुर नामक पर्वत [को०] ।

दर्परात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पेड़ का नाम। २. एक प्रकार का व्यंजन [को०]।

दर्परीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। दादुर। २. मेघ। बादल। ३. बाघ। बाजा। ४. एक प्रकार का विशेष बाघ। जैसे, वंशी [को०]।

दर्पबंध—वि० [फ्रा० दर्पबंध] दे० 'दर्पबंध'। उ०—खड़े दर्पबंध दरवेश दरगाह में खेर श्री मेहर मोल्लूद मक्का।—कबीर० रे०, पृ० ४०।

दर्पी—वि० [फ्रा० दर्प + हि० ई (प्रत्य०)] १. दुखी। पीड़ित। २. जो दूसरे का दर्द समझे। दयावान्। जैसे, वेदर्पी।

दरु—संज्ञा पुं० [सं०] दाढ़। दद्रु [को०]।

दरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक।

यौ०—दरु रोदना = यमुना नदी।

२. बादल। ३. प्रभ्रक। प्रवरक। ४. पश्चिमी घाट पर्वत का एक भाग। मलय पर्वत से लगा हुआ एक पर्वत। ५. उक्त पर्वत के निकट का देश। ६. प्राचीन काल का एक राजा [को०]। ७. एक प्रकार का चावल [को०]। ८. घोसे की ध्वनि। नयासे की आवाज [को०]। ९०. राजस [को०]। ९१. प्राम, जिला या प्रांतसमूह [को०]।

दरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। दादुर। २. एक बाघ। ददुर।

दरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। दादुर। २. एक बाघ। ददुर।

दरुपुट—संज्ञा पुं० [सं०] वंशी आदि वाद्यों का मुख [को०]।

दरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। दादुर। २. एक बाघ। ददुर।

दरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। दादुर। २. एक बाघ। ददुर।

दरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। दादुर। २. एक बाघ। ददुर।

दर्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. घमंड। अहंकार। अभिमान। गर्व। ताव। उ०—कंदर्प दुर्मय बंधन उमारवन गुन भवन हर।—तुलसी (शब्द०)। २. मन। अहंकार के लिये किसी के प्रति कोप। ३. उद्बता। अकल्यपन। ४. दबाव। धातंक। रोब। ५. कस्तूरी। ६. ऊष्मा। ताप। गर्मी [को०]। ७. उर्मय। अरसाह [को०]।

यौ०—दर्पकव = गर्व के कारण मुखर। सर्वभरो बात कहने वाला। दर्पच्छिद = गर्व को नष्ट करने वाला। दर्पद = विष्णु का एक नाम। दर्पदूर = दे० 'दर्पच्छिद'। दर्पहा = विष्णु।

दर्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्प करनेवाला व्यक्ति। २. कामदेव। मनोज। ३. दर्प। अहंकार [को०]।

दर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आईना। धारसी। मुँह देखने का योशा। वह कवि जो प्रतिबिम्ब के द्वारा मुँह देखने के लिये सामने रखा जाता है। २. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद। ३. चक्षु। आँख। ४. संदीपन। उद्दीपन। उभारने का कार्य। उत्तेजना। ५. एक पर्वत का नाम जो कुवेर का निवास-स्थान माना जाता है [को०]।

दर्पण—संज्ञा पुं० [सं० दर्पण] दे० 'दर्पण'।

दर्पना—क्रि० प्र० [सं० दर्पण] ताव में आना। दर्पना। गर्वयुक्त होना। उ०—रन मद मत निसाचर दर्पा। बिरन प्रसिहि जनु एहि विधि अपा।—मानस, ६। ६६।

दर्पमद्य क्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसिकता या रंगीलेपन के खेल। नाच रंग आदि।

दर्पहा—संज्ञा पुं० [सं० दर्पहन्] विष्णु का एक नाम [को०]।

दर्पित—वि० [सं०] गर्वित। अहंकार से भरा हुआ। उ०—रघुबीर बल दर्पित विभीषणु घालि नहि ताकहु गने।—मानस, ६। ६३।

दर्पी—वि० [सं० दर्पिन्] [वि० स्त्री० दर्पिणी] घमंडी। अहंकारी।

दर्प—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] १. द्रव्य। घन। उ०—कछुक दर्प दे संघि कै, फेरि देहु हिदुवान।—प० रासो, पृ० १०५। २. चातु (सोना, चाँदी इत्यादि)।

दर्पा—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] द्रव्य। घन। उ०—प्रासा पासा ममसा लाय। पर दर्पा न हरे न पर धरि जाय।—प्राण०, पृ० १०१।

दर्पान—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबान] दे० 'दरबान'।

दर्पार—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबार] दे० 'दरबार'।

दर्पारी—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरबारी] दे० 'दरबारी'।

दर्भि—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रव्य] दे० 'द्रव्य'। उ०—हय गय माग्नि दर्भि दिय, आदर बहु नृप किम।—प० रासो, पृ० १३१।

दर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कुश। डाम। डामुस। २. कुश। ३. कुश निमित्त आसन। कुशासन। उ०—प्रस कहि लवणसिधु तट जाई। बैठे कवि सब दर्भ कहाई।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—दर्भकुसुम = दर्भपुष्प। एक कीट। दर्भचीर = कुश का परिधान। दर्भपत्र। दर्भपुष्प। दर्भलवण। दर्भसंस्तर। दर्भसूची = दर्भा कुर।

दर्भकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] कुशध्वज। राजा जबक के भाई का नाम।

दर्भट—संज्ञा [सं०] गुप्त गृह। भीतरी कोठरी।

दर्भपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] काँस।

दर्भपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

दर्भलवण—संज्ञा पुं० [सं०] कुश वा घास काटने का एक औजार [को०]।

दर्भसंस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] कुश का आसन या कुश का बिछौना [को०]।

दर्भाकुर—संज्ञा पुं० [सं० दर्भाकुर] डाम का गोफा जो सुई की तरह मुकीला होता है [को०]।

दर्भासन—संज्ञा पुं० [सं०] कुशासन। कुश का बना हुआ बिछावन।

दर्भाहय—संज्ञा पुं० [सं०] भुँज।

दर्भि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

विशेष—महाभारत के अनुसार इन्होंने ऋषि बाह्यणों के उपहार के लिये अर्धकील नामक एक तीर्थ स्थापित किया था। इनका एक नाम दर्भी भी है।

दर्भी—संज्ञा पुं० [सं० दर्भिन्] दे० 'दर्भि'।

दर्भेयिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश का निचला भाग या बंठ [को०]।

दर्मियाँ—क्रि० वि० [क्रा० दरमियान] दे० 'दरमियान' । उ०—बहन पर हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे । कलाम घाते हैं दर्मियाँ कैसे कैसे । प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७ ।

दर्मियान—संज्ञा पुं० [क्रा० दरमियान] दे० 'दरमियान' ।

दर्मियानी—वि०, संज्ञा पुं० [क्रा० दरमियानी] दे० 'दरमियानी' ।

दर्या—संज्ञा पुं० [क्रा० दरिया] दे० 'दरिया' । उ०—एक मछली सारे दर्या को गंदा कर डालती है ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ११७ ।

दर्याउ(पु)—संज्ञा पुं० [हि० दरियाव] दे० 'दरिया' ।—कूदहिं जहर कहर दर्याउ में ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १४ ।

दर्यादिली—संज्ञा स्त्री० [क्रा० दरियादिली] उदारता । हृदय की विशालता । उ०—प्रौर दर्यादिली खुदा के घर से इसी को मिली है ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८६ ।

दर्यापत—वि० [क्रा० दरियापत] ज्ञान । मालूम । दरियापत । उ०—इस वक्त मुझसे यहाँ आने का सबब दर्यापत करेगा तो मैं इससे क्या जबाब दूँगा ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३२ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दर्याव—संज्ञा पुं० [क्रा० दरिया] दे० 'दरिया' ।

दर्रा^१—संज्ञा पुं० [फा०] १. पहाड़ी रास्ता । वह संकरा मार्ग जो पहाड़ों के बीच से होकर जाता हो । घाटी । २. दरार । दरज ।

दर्रा^२—संज्ञा पुं० [सं० दरना] १. मोटा घाटा । २. कंकरीली मिट्टी जो सड़कों या बगीचों की रवियों पर डाली जाती है । ३. दरार । निगाफ । दरज ।

दर्राज—संज्ञा स्त्री० [फा० दर्राज (= संबा)] लकड़ी का एक औजार जिससे लकड़ी सीधी की जाती है ।

दर्रांना—क्रि० प्र० [अनु० दड़ दड़, धड़ धड़] धड़धड़ाना । बेधड़क चला जाना । बिना रुकावट या डर के चला जाना ।

विशेष—इस क्रिया के उन्हीं रूपों का प्रयोग होता है जिनसे क्रि० वि० का भाव प्रकट होता है, जैसे, दर्राकर=धड़ धड़कर । बेधड़क । दर्राता हुआ=धड़धड़ता हुआ । बेधड़क । उ०—वह दर्राता हुआ दरबार में आ पहुँचा । दर्रांना=धड़धड़ता हुआ । बेधड़क । उ०—दरबारलों की बात सुनी अनसुनी कर हरि सब समेत दरनि वहाँ चले गए, जहाँ तीन ताड़ लंबा प्रति मोटा महादेव का अनुष घरा था ।—लल्लू (शब्द०) ।

दर्श(पु)^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] द्रव्य । धन । संपत्ति । उ०—सहस्र धेनु कंचन बहु हीरा । अगणित धर्म दियो सुव बीरा ।—रसरतन, पृ० ११ ।

दर्श^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंसा करनेवाला अनुष्य । २. राक्षस । ३. एक जाति जिसका नाम दरद, किरात प्रादि के साथ महाभारत में आया है । इस जाति का निवासस्थान पंजाब के उत्तर का प्रदेश था । ४. वह देश जहाँ उक्त जाति बसती थी । ५. सर्प का फल (की०) । ६. मांसास । चोट । सति (की०) । ७. करझुल । दर्वा (की०) ।

दर्शट—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँव का चौकीदार । गोड़हत । २. द्वाररक्षक । द्वारपाल (की०) ।

दर्शरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र । २. वायु । ३. एक प्रकार का बाजा ।

दर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उशीनर की पत्नी का नाम ।

दर्वि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दर्वी' (की०) ।

दर्वि(पु)^२—वि० [सं० दर्प] दर्पयुक्त । गरबीला । गर्वयुक्त । उ०—बहु दर्वि लखि गुमान । सावंत लखि परिवान ।—प० रासो, पृ० ५२ ।

दर्विक—संज्ञा पुं० [सं०] डोपा । चमचा । कलछुल । दर्वी (की०) ।

दर्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घाँस में लगाने का वह काजल जो धी से भरे दीये में बत्ती जलाकर जमाया या पारा जाता है । २. बनगोभी । गोजिया । ३. चमचा । डोपा (की०) ।

दर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] करछी । चमचा । डोपा । २. साँप का फन । यौ०—दर्वीकर ।

दर्वीकर—संज्ञा पुं० [सं०] फनवाला साँप ।

दर्वेसा—संज्ञा पुं० [फा० दरवेश] दे० 'दरवेश' । उ०—जोगी जंगम घोर संन्यासी, डींगवर दर्वेस ।—कबीर० शा०, भा० १, पृ० ६ ।

दर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन । अवलोकन । २. सूर्य घोर चंद्रमा का संगम काल । अमावस्या तिथि । ३. द्वितीया तिथि ।

यौ०—दर्शपति ।

३. वह यज्ञ या कृत्य जो अमावस्या के दिन किया जाय ।

यौ०—दर्शपौर्णमास ।

४. प्रत्यक्ष प्रमाण । चाक्षुष प्रमाण (की०) । ५. दृश्य (की०) ।

दर्शक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. जो देखे । दर्शन करनेवाला । देखनेवाला । २. दिखानेवाला । लखानेवाला । बतानेवाला । जैसे, मार्गदर्शक । ३. द्वाररक्षक । द्वारपाल (जो लोगों को राजा के पास ले जाकर उसके दर्शन कराता है) । ४. निरीक्षक । निगरानी रखनेवाला । प्रधान ।

दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह बोध जो दृष्टि के द्वारा हो । चाक्षुष ज्ञान । देखावेसी । साक्षात्कार । अवलोकन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दर्शन देना=देखने में आना । अपने को दिखाना । प्रत्यक्ष होना । दर्शन पाना=(किमी का) साक्षात्कार होना ।

विशेष—हिंदी काव्य में नायक नायिका का परस्पर दर्शन चार प्रकार का माना गया है—प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न और श्रवण ।

२. भेंट । मुलाकात । जैसे,—चार महीने पीछे फिर आपके दर्शन कइगा ।

विशेष—प्रायः बड़ों के ही प्रति इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है ।

३. वह शास्त्र जिससे तत्त्वज्ञान हो । वह विद्या जिससे तत्त्वज्ञान हो । वह विद्या जिससे पदार्थों के धर्म, कार्य-कारण-संबंध आदि का बोध हो ।

विशेष—प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जगत् के नियामक धर्म, जीवन के अंतिम लक्ष्य इत्यादि का जिस शास्त्र में निरूपण हो उसे दर्शन कहते हैं। विशेष से सामान्य की ओर अंतरिक दृष्टि को बराबर बढ़ाते हुए सृष्टि के अनेकानेक व्यापारों का कुछ तत्त्वों या नियमों में संतर्भाव करना ही दर्शन है। धारंभ में अनेक प्रकार के देवताओं आदि की सृष्टि के विविध व्यापारों का कारण मानकर मनुष्य जाति बहुत काल तक संतुष्ट रही। पीछे अधिक व्यापक दृष्टि प्राप्त हो जाने पर युक्ति और तर्क की सहायता से जब जोग संसार की उत्पत्ति, स्थिति आदि का विचार करने लगे तब दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति हुई। संसार की प्रत्येक सभ्य जाति के बीच इसी क्रम से इस शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। पहले प्राचीन आर्य अनेक प्रकार के यज्ञ और कर्मकांड द्वारा इंद्र, वरुण, सविता इत्यादि देवताओं को प्रसन्न करके स्वर्गप्राप्ति आदि के प्रयत्न में लगे रहे, फिर सृष्टि की उत्पत्ति आदि के संबंध में उनके मन में प्रश्न उठने लगे। इस प्रकार के संशयपूर्ण प्रश्न कई वेदमंत्रों में पाए जाते हैं। उपनिषदों के समय में ब्रह्म, सृष्टि, मोक्ष, आत्मा, इन्द्रिय, आदि विषयों की चर्चा बहुत बढ़ी। गाथा और प्रश्नोत्तर के रूप में इन विषयों का प्रतिपादन विस्तार से हुआ। बड़े बड़े गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों का आभास उपनिषदों में पाया जाता है। 'सर्वं कृत्विद ब्रह्म', 'तत्त्वमसि' आदि वेदांत के महावाक्य उपनिषदों के ही हैं। छांदोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक में उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सृष्टि की उत्पत्ति समझाकर कहा है कि 'हे श्वेतकेतु ! तू ही ब्रह्म है'। बृहदारण्यकोपनिषद् में मूर्त और अमूर्त, मयं और अमृत ब्रह्म के दोहरे रूप बतलाए गए हैं। उपनिषदों के पीछे सूत्र रूप में इन तत्त्वों का ऋषियों ने स्वतंत्रतापूर्वक निरूपण किया और छह दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ जिनके नाम ये हैं—सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा (पूर्वमीमांसा), और वेदांत (उत्तरमीमांसा)। इनमें से सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम का विस्तार के साथ जितना विवेचन है उतना और किसी में नहीं है। सांख्य आत्मा को पुरुष कहता है और उसे चकर्ता, साक्षी और प्रकृति से भिन्न मानता है, पर आत्मा एक नहीं अनेक हैं, अतः सांख्य में किसी विशेष आत्मा अथवा परमात्मा या ईश्वर का प्रतिपादन नहीं है। जगत् के मूल में प्रकृति का मानकर उसके सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों के अनुसार ही संसार के सब व्यापार माने गए हैं। सृष्टि की प्रकृति की परिणामपरंपरा मानने के कारण दह मत परिणामवाद कहलाता है। सृष्टि संबंधी सांख्य का यह मत इतिहास, पुराण आदि में सर्वत्र गृहीत हुआ है। योग में क्लेश, कर्म-विपाक और आशय से रहित एक पुरुषविशेष या ईश्वर माना गया है। सर्वसाधारण के बीच जिस प्रकार के ईश्वर की आशना है वह यही योग का ईश्वर है। योग में किसी मत पर विशेष तर्क चिंतन या भाष्य नहीं है; मोक्षप्राप्ति के निमित्त यज्ञ, नियम, प्रणायाम, समाधि इत्यादि के अभ्यास द्वारा ध्याय की परमावस्था की प्राप्ति के साधनों का ही विस्तार के साथ वर्णन है। न्याय में युक्ति या तर्क करने की

प्रणाली बड़े विस्तार के साथ स्थिर की गई है, जिसका उपयोग पंडित लोग शास्त्रार्थ में बराबर करते हैं। खंडन मंडन के नियम इसी शास्त्र में मिलते हैं, जिनका मुख्य विषय प्रमाण और प्रमेय ही है। न्याय में ईश्वर नित्य, इच्छाज्ञानादि गुणयुक्त और कर्ता माना गया है। जीव कर्ता और भोक्ता दोनों माना गया है। वैशेषिक में द्रव्यों और उनके गुणों का विशेष रूप से निरूपण है। पृथ्वी, जल आदि के अतिरिक्त दिक्, काल, आत्मा और मन भी द्रव्य माने गए हैं। न्याय के समान वैशेषिक ने भी जगत् की उत्पत्ति परमाणुओं से बतलाई है। न्याय से इसमें बहुत कम भेद है। इसी से इसका मत भी न्याय का मत कहलाता है। ये दोनों सृष्टि का कर्ता मानते हैं इसी से इनका मत धारंभवाद कहलाता है। पूर्वमीमांसा में वैदिक कर्मसंबंधी वाक्यों के अर्थ निश्चित करने तथा विरोधों का समाधान करने के नियम निरूपित हुए हैं। इसका मुख्य विषय वैदिक कर्मकांड की व्याख्या है। उत्तरमीमांसा या वेदांत अत्यंत उच्च कोटि की विचार-पद्धति द्वारा एकमात्र ब्रह्म को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण बतलाता है अर्थात् जगत् और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करता है। इसी से इसका मत विषयवाद और अद्वैतवाद कहलाता है। भाष्यकारों ने इसी सिद्धांत को लेकर आत्मा और परमात्मा की एकता सिद्ध की है। जितना यह मत विद्वानों को ग्राह्य हुआ, जितनी इसकी चर्चा संसार में हुई, जितने अनुयायी संप्रदाय इसके छड़े हुए उतने और किसी दार्शनिक मत के नहीं हुए। अरब, फारस आदि देशों में यह सूफी मत के नाम से प्रकट हुआ। आजकल योरोप और अमेरिका आदि में भी इसकी ओर विशेष प्रवृत्ति है। भारतवर्ष के इन छह प्रधान दर्शनों के अतिरिक्त 'सर्वदर्शनसंग्रह' में चार्वाक, बोद्ध, माहंत, नकुलीश, पाशुपत, शैव, पुराणप्रज्ञा, रामानुज, पाणिनि और प्रत्याभज्ञा दर्शन का भी उल्लेख है।

योरोप में यूनान या यवन देश ही हम शास्त्र के विवेचन में सबसे पहले अप्रसर हुआ। ईसा से पूर्व छह सौ वर्ष पहले से वहाँ दर्शन का पता लगता है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू इत्यादि बड़े बड़े दार्शनिक वहाँ हो गए हैं। आधुनिक काल में दर्शन की योरोप में बड़ी उन्नति हुई है। प्रत्यक्ष ज्ञान का विशेष आश्रय लेकर दार्शनिक विचार की अत्यंत विषद प्रणाली वहाँ निकली है।

४. नेत्र । आक्षि । ५. स्वप्न । ६. बुद्धि । ७. धर्म । ८. दर्पण । ९. वर्ण । १०. यज्ञ । इत्यादि (को०) । ११. उपलब्धि (को०) । १२. शास्त्र (को०) । १३. परीक्षण । निरीक्षण (को०) । १४. प्रदर्शन । दिखावा (को०) । १५. उपस्थिति या विद्यमानता (न्यायालय में) (को०) । १६. राय । समाह । विचार (को०) । १७. नीयत (को०) ।

दर्शनगृह—संका ५० [सं०] १. समाभवन । २. वह स्थान जहाँ लोग कुछ देखने या सुनने के लिये बैठें (को०) ।

दर्शनपथ—संका ५० [सं०] दृष्टि का पथ । जहाँ तक दृष्टि जाय । क्षितिज (को०) ।

दर्शनप्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू या जामिन जो किसी को समय पर उपस्थित कर देने का भार अपने ऊपर ले। वह धादमी जो किसी को हाजिर कर देने का ज़िम्मा ले।

दर्शनप्रतिभाव्य ऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो दर्शन प्रतिभू की साख पर लिया गया हो।

दर्शनीय—वि० [सं०] १. देखने योग्य। देखने लायक। २. सुंदर। मनोहर। ३. न्यायालय में न्यायाधीश के समक्ष उपस्थिति योग्य (को०)।

दर्शनी हुंडी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दरसनी हुंडी'।

दर्शयिता—वि० [सं० दर्शयितृ] १. दिखानेवाला। प्रदर्शक। २. निर्देश करनेवाला। बतानेवाला। जैसे, पथदर्शयिता।

दर्शयिता^२—संज्ञा पुं० १. द्वाररक्षक। द्वारपाल। २. निर्देशक (को०)।

दर्शाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'दरसाना'।

दर्शित—वि० [सं०] १. दिखाया हुआ। ३. प्रकाशित। प्रकटित। ३. प्रमाणित।

दर्शी—वि० [सं० दर्शिन] १. देखनेवाला। २. विचार करनेवाला। ३. अनुभूत करनेवाला।

दसे—संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षा। नसीहत। उपदेश। उ०—जो पढ़ते दसे जब ये खुद साल, मस्जिद के दरमियान तस्ती कर्ते ले।—दक्कनी०, पृ०, ११५।

दर्सनीय(पु)—वि० [सं० दर्शनीय] देखने योग्य। दर्शनीय। उ०—रम्य सुपेसल भव्य पुनि दर्सनीय रमनीय।—अनेकापं०, पृ० ६६।

दल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु के घन दो सम लंबों में से एक, जो एक दूसरे से स्वभावतः जुड़े हुए हों पर जरा सा दबाव पड़ने से अलग हो जायें। जैसे चने, अरहर, मूँग, उख, मसूर, बिज्र इत्यादि के दो दल जो चक्की में दलने से अलग हो जाते हैं। २. पौधों का पत्ता। पत्र। जैसे, तुलसीदल। ३. तमाल-पत्र। ४. फूल की पंखड़ी। उ०—जय जय प्रमल कमलदल लोचन।—हरिश्चंद्र(शब्द०)। ५. समूह। भुंड। गरोह। ६. गुट। चक्र। जैसे,—वह हमारे के दल में है। ७. सेना। फौज। जैसे, शत्रुदल। ८. मयूरपुच्छ। उ०—दल कहिए गुप को कटक, दल पवन को भाम, दल बरही के चंद्र सिर घरे स्याम अभिराम।—अनेकापं०, पृ० १३५। ९. पटरी के आकार की किसी वस्तु की मोटाई। परत की तरह फैली हुई किसी चीज की मोटाई। १०. अस्त्र के ऊपर का आच्छादन। कोष। म्यान। १०. धन। ११. जल में होनेवाला एक वृक्ष। ११. अश। टुकड़ा। खंड (को०)। १२. किसी का आधा भंश। अर्धांश (को०)। १३. वृक्षविशेष (को०)। १४. देवाकुवंशी परीक्षित राजा के एक पुत्र जिनकी माता मङ्गकराज की कन्या थी (को०)।

दलक^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दलक] गुदड़ी। उ०—बैठा है इस दलक बिच आपे आप छिपाव। साहब जा तन लज परे प्रगट सिफात दिखाय।—रसनिधि (शब्द०)।

दलक^२—संज्ञा पुं० [हि० दलकना] राजगीरों का एक भोजार जिससे

नक्काशी साफ की जाती है। यह छुरी के आकार का होता है परंतु सिर पर चिपटा होता है।

दलक^३—संज्ञा [हि० दलकना] १. वह कंघ जो किसी प्रकार के आघात से उत्पन्न हो और कुछ देर तक बना रहे। बर-थराहट। धमका। जैसे, ढोलक की दलक। २. रह रहकर उठनेवाला दर्द। टोस। चमक।

दलकन—संज्ञा स्त्री० [हि० दलकना] १. दलकने की क्रिया या भाव। दलक। २. झटका। आघात। उ०—मंद बिसंद अमेरा दलकन पाइय सुख भकभोरा रे।—तुलसी (शब्द०)।

दलकना^१—क्रि० प्र० [सं० दलन] १. फट जाना। दरार खाना। चिर जाना। उ०—तुलसी कुलिस की कठोरता तेहि दिन दलक दली।—तुलसी (शब्द०)। २. धरना। कांपना। उ०—महाबली बलि को दबतु दलकत भूमि तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकत है।—तुलसी (शब्द०)। ३. चोंकना। उद्विग्न हो उठना। उ०—(क) दलकि उठै सुनि बचन कठोक। जनु छुड़ गयो पाक बरतीक।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कैकेई अपने करमन को सुभिरत हिय में दलकि उठी।—देवस्वामी (शब्द०)।

दलकना(पु)^२—क्रि० सं० [सं० दलन] डराना। भीत कर देना। भय से कंघा देना। उ०—सूरजदास सिंह बलि अपनी लीन्हीं दलकि भृगालहि।—सूर (शब्द०)।

दलकपाट—संज्ञा पुं० [सं०] हरी पंखड़ियों का वह कोश जिसके भीतर कली रहती है।

दलकमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पंकज (को०)।

दलकोश—संज्ञा पुं० [सं०] कुद का पोधा।

दलगंजन^१—वि० [सं० दलगञ्जन] श्रेष्ठ बोर। सेना को भारनेवाला। भारी बोर।

दलगंजन^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान।

दलगंध—संज्ञा पुं० [सं० दलगन्ध] सप्तपर्ण वृक्ष। क्षितवन। सतिवन।

दलगर्जन(पु)—वि० [सं० दलगञ्जन] दे० 'दलगंजन'। उ०—प्रंग अंग लच्छन बसहि जे बरनी बत्तीस। दलगर्जन दुर्जन दलन उलपति पति दिल्लीस।—रसरतन, पृ० ८।

दलघुसरा^१—संज्ञा पुं० [हि० दाल + घुसड़ना] एक प्रकार की रोटी, जिसमें पिसी हुई दाल नमक मसाले के साथ बरी रहती है।

दलथंभण—वि० [सं० दल + स्तम्भन] सेना को रोकनेवाला। बड़ती हुई सेना को रोक देनेवाला। दल का स्तम्भन करनेवाला। उ०—दाहू सूर मुभट दलथंभण रोपि रह्यो रन माहीं रे। जाकी साखि सकल जग बोले टेक टली कहूँ नाहीं रे।—सुंदर वं०, भा० २, पृ० ८७६।

दलथंभन—संज्ञा पुं० [हि० दल + धामना] कमलाब बुननेवालों का भोजार जो बोंस का होता है और जिसमें धंकुड़ा और नक्का बंधा रहता है।

दलद(पु)^१—संज्ञा पुं० दे० [सं० दारिद्र्य] 'दारिद्र्य'। उ०—दीधी धन

लीधो दलद, कीधो गात कुडंग । गनका सूँ राखै गुसट रसिया
तोमूँ रंग । —बाकी० प्र०, भा० २, पृ० १२ ।

दलदल—संज्ञा स्त्री० [सं० दलदल्य (= नदीतट का कीचड़)] १.
कीचड़ । पंक । चहला । २. वह जमीन जो गहराई तक गीली
हो और जिसमें पैर नीचे की घँसता हो ।

विशेष—कहीं कहीं पूरब में यह शब्द पु० भी बोला जाता है ।

मुहा०—दलदल में फँसना = (१) कीचड़ में फँसना । (२) ऐसी
कठिनाई में फँस जाना जिससे निकलना दुस्तर हो । मुश्किल
या दिक्कत में पड़ना । (३) जल्दी खतम या तै न होना ।
अनिर्णीत रहना । खटाई में पड़ना । उ०—दोनों दलों की
दलादलो में दलपति का चुनाव भी दलदल में फँसा रहा ।—
बदरीनारायण चौधरी (शब्द०) । ४. बुझी स्त्री (पालकी
के कहार) ।

दलदला—वि० [हि० दलदल] [वि० स्त्री० दलदली] जिसमें दलदल
हो । दलदलवाला । जैसे, दलदला मैदान, दलदली धरती ।

दलदार—वि० [हि० दल + फा० दार] जिसका दल मोटा हो ।
जिसकी तह या परत मोटी हो । जैसे, दलदार गूदा । दलदार
घाम ।

दलने—संज्ञा पु० [सं०] [वि० दलित] १. पीसकर टुकड़े टुकड़े
करने की क्रिया । चूर चूर करने का काम । २. विनाश ।
संहार । ३. विदारण । उ०—या विधि वियोग बज बावरो
भयो है सब, बाढन उदेग महा प्रंतर दमन को ।—घना-
नंद०, पृ० ५०३ ।

दलन—वि० दलनेवाला । नष्ट करनेवाला । विनाशकारी । नाशक ।
उ०—साहि का मलन दिली दल का दलन प्रफजल का मलन
खिवराज आया सरजा ।—भूषण प्र०, पृ० ११६ ।

दलना—क्रि० सं० [सं० दलन] १. रगड़ या पीसकर टुकड़े
टुकड़े करना । मलकर चूर चूर करना । चूर्ण करना ।
खंड खंड करना । २. रोंदना । कुचलना । मलना । खूब
दबाना । मसलना । मोड़ना । उ०—पर प्रकाज मगि तनु
परिहरही । जिमि हिम उपल कृषि दलि गइहीं ।—मानस,
१ । ४ ।

संयो० क्रि०—डालना ।—मारना ।

३. चक्की में डालकर घनाज आदि के दानों को दनों या कई
टुकड़ों में करना । जैसे, दल दलना । ४. नष्ट करना ।
व्यस्त करना । जीतना । उ०—केलिक देश दल्यो भुज के
बल ।—भूषण (शब्द०) ।

यौ०—दलना मलना । उ०—भुजबल रिपुदल दलि मलि देखि
दिवस कर प्रंत ।—तुलसी (शब्द०) ।—मलना दमना ।

५. तोड़ना । भटके से खंडित करना । उ०—(क) दलि तृण
प्राण निष्ठावरि करि करि लेहैं मातु बलैया ।—तुलसी
(शब्द०) । (ख) सोई हों ब्रूभत राजसभा धनुके दल्यो हों
दलिहों बल ताको ।—तुलसी (शब्द०) ।

दलनि—संज्ञा स्त्री० [हि० दलना] दलने की क्रिया या ठंग ।

दलनिर्मोक—संज्ञा पु० [सं०] भोजन का पेड़ ।

दलनिहार—वि० [सं० दलनि + हि० हारा (प्रत्य०)] विजय
करनेवाला । नष्ट करनेवाला । मर्दित करनेवाला । उ०—
कलि नाम कामतर राम को । दलनिहार दारिद दुकान दुष्ट
दोष घोर घन घाम को ।—तुलसी प्र०, पृ० ५३७ ।

दलनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंकड़ । मिट्टी का टुकड़ा । डेला (को०) ।

दलप—संज्ञा पु० [सं०] १. दलपति । मंडली या सेना का नायक ।
२. सोना । स्वर्ण । ३. शस्त्र । आयुध (को०) । ४. शास्त्र
(को०) ।

दलपति—संज्ञा पु० [सं०] १. किसी मंडली या समुदाय का प्रधान ।
मंडली का मुखिया । अगुवा । सरदार । २. सेनापति ।
उ०—दलगजन दुर्जनदलन दलपतिपति दिल्लीस ।—रस-
रतन, पृ० ८ ।

यौ०—दलपतिपति = सेनापतियों का प्रधीश्वर ।

दलपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी जिसके फूल पत्ते के आकार के
होते हैं ।

विशेष—केतकी या केवड़े की मंजरी बहुत कोमल पत्तों के कोश
के भीतर रहती है । सुगंध के लिये इन्हीं पत्तों का व्यवहार
होता है ।

दलबंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० दल + हि० बाँधना] गुटबाजी । दल या
गुट बनाने का काम ।

दलबल—संज्ञा पु० [सं०] लाव लश्कर । फौज । उ०—कछु मारे
कछु घायल कछु गढ़ चने पराइ । गर्जहि भालु बलीमुख
रिपु दलबल बिचलाइ ।—मानस, ६ । ४६ ।

दलबा—संज्ञा पु० [हि० दलना] तीतरबाजों, बटेरबाजों आदि का वह
निबल पक्षी जिसे वे दूसरे पक्षियों से लड़ाकर और मार
खिलाकर उन पक्षियों का साहस बढ़ाते हैं ।

दलबादल—संज्ञा पु० [हि० दल + बादल] १. बादलों का समूह ।
बादलों का झुंड । २. भारी सेना । ३. बहुत बड़ा सामि-
याना । बड़ा भारी खेमा ।

मुहा०—दलबादल लड़ा होना = बड़ा भारी सामियाना या खेमा
गड़ना ।

दलमलना—क्रि० सं० [हि० दलना + मलना] १. मसल डालना ।
मोड़ डालना । उ०—यौ दलमलियत निरदई दई कुसुम से
गात । कर धर देखी धरधरा प्रजों न उर ते जात ।—बिहारी
(शब्द०) । २. रोंदना । कुचलना । उ०—रनमत्त राबन
सकल सुभट प्रबंध भुजबल दलमले ।—मानस, ६ । ६४ ।
३. विनष्ट कर देना । मार डालना ।

दलमलित—वि० [हि० दलना + मलना] सताई हुई । कुचली हुई ।
पीड़ित । उ०—प्रजा दुखित दलमलित गएउ फटि फुटि पठान
दल ।—घकबरी०, पृ० ६८ ।

दलराय—संज्ञा पु० [सं० दल + राज, प्रा० राय] दे० 'दलपति' ।
उ०—दाबदार निरखि रिसानो दीह दलराय, जैसे गढ़वार
घड़वार गजराज को ।—भूषण प्र०, पृ० ६ ।

दलवाना—क्रि० सं० [हि० दलना का प्रे० रूप] १. दलने का काम करवाना। मोटा मोटा पिसवाना। जैसे, दाल दलवाना। २. रौबवाना। ३. नष्ट कराना। ध्वस्त करा देना।

दलबाला—संज्ञा पुं० [सं० दलपात्र] देनापति। फौज का सरदार।

दलबीटक—संज्ञा पुं० [सं०] कुट्टीमयम् में वर्णित कान का एक प्राधु-
षण। एक कण्ठपुष्पण [को०]।

दलवैया—संज्ञा पुं० [हि० दलना + वैया (प्रत्य०)] १. दलनेवाला।
२. दलने मलनेवाला। जीतनेवाला।

दलसायसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी। श्वेत तुलसी [को०]।

दलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कैमुआ। बंदा। कच्चा।

दलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पोषा जिसके पत्तों में काँटे हों।
जैसे, नागफनी। २. पत्तों का काँटा। ३. काँटा।

दलसूसा—संज्ञा स्त्री० [सं० दलसूसा या दलसूसा] दल की चिरा।
पत्तों की मस।

दलहन—संज्ञा पुं० [हि० दाल + धन] वह धन जिसकी दाल बनाई
जाती है जैसे, चना, धरहर, मूँग, उरद, मसूर इत्यादि।

दलहरा—संज्ञा पुं० [हि० दाल + हारा (प्रत्य०)] दाल बेचनेवाला।
वह जो दाल बेचने का रोजगार करता हो।

दलहा—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हि० दालहा] धावा। धावबाध।

दलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दलना] १. चक्की से दाल धादि दलने का
काम। उ०—जब तक धालें थीं, सिलाई करती रही। जब
से धालें पई दलाई करती हैं।—काया०, पृ० ५१६। २.
दलने की मजदूरी। दराई।

दलाई लामा—संज्ञा पुं० [ति०] तिब्बत के सबसे बड़े धार्मा या धर्म-
गुरु जो वहाँ के सर्वप्रभुतासंपन्न शासक भी होते हैं।

दलाटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंगली तिल। २. मेक। ३. नागकेसर।
४. सिरिस। ५. कुंद। ६. गजकण्ठी। एक प्रकार का पत्राण।
७. गाज। फेन [को०]। ८. लाई। परिखा [को०]। ९. तीव्र
वायु। प्रचवायु। बौंदर [को०]। १०. ग्राममुख्य गवि का
प्रधान [को०]।

दलावय—संज्ञा पुं० [सं०] नदी तट का कीचड़। पंक [को०]।

दलादली—संज्ञा स्त्री० [सं० दलन का द्विवचन (मुष्टामुष्टि की
भाँति)] मिश्रित। संघर्ष। होड़। उ०—उसे इस दोनों बलों
की दलादली ने दल मलकर समाप्त कर दिया।—प्रेमचन्द०,
भा० २, पृ० ३०७।

दलानी—संज्ञा पुं० [हि० दावान] दे० 'दासाव'।

दलाना—क्रि० सं० [हि० दलना] दे० 'दलवाना'।

दलामल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीने का पोषा। २. मरुवे का पोषा।
३. मैक्फल का पेड़।

दलामल—संज्ञा पुं० [सं०] मोनिया घास। धमलोनी।

दलारा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का झूलनेवाला बिस्तर जिसका
व्यवहार जहाज पर मस्लाह लोग करते हैं।

दलाख—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा दलाखी] १. वह व्यक्ति जो सीधा
मोक्ष देने या बेचने में सहायता दे। बिचवाई। मध्यस्थ। २.

स्त्री पुरुष का अनुचित संयोग करानेवाला। कुटनी। ३. जाटों
की एक जाति।

दलाकत—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र। पता। स्थान। उ०—
दलाकत यो मही कुरान मुँ है। कबो दलाम के रिमान मुँ
है।—दक्खिनी०, पृ० १६३।

दलाकी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. दलाने का काम।

क्रि० प्र०—करवा।

२. वह द्रव्य जो बवाल को मिश्रता है। उ०—धक्ति हाट बैठि
तू पिर हूँ हरि नग निबंध लेहि। काम क्रोध मय मोह तू
सकल दलाकी हैहि।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

दलाहय—संज्ञा पुं० [सं०] शिवपता।

दलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का टुकड़ा। डेला [को०]।

दलिक—संज्ञा पुं० [सं०] काठ। लकड़ी। [को०]।

दलित—वि० [सं०] १. पीड़ा हुआ। पतला हुआ। मर्लित। २. रोका
हुआ। कुचका हुआ। ३. खंडित। टुकड़े टुकड़े किया हुआ।
४. विनष्ट किया हुआ। ५. जो बचा रहना गया हो। बचापा
हुआ। जैसे,—भारत की दलित जातियाँ भी खूब उठ रही हैं।

दलिहर—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य हरिहर] १. दरिद्रता। परीची।
उ०—प्राप चाहें तो एक दिन में हमारा दलिहर दूर कर सकते
हैं।—श्रीनिवास शं०, पृ० १७। २. कड़ा करकट। बंदगी।
३. दरिद्र। परीच। घनहीन।

दलिद्र—संज्ञा पुं० [सं० दरिद्र] दे० 'दरिद्र'।

दलिया—संज्ञा पुं० [हि० दलना। तुल० फा० दलीदह] दलकर कई
टुकड़े किया हुआ धनाज। जैसे, बेहूँ का दलिया।

दलो—वि० [सं० दलित्] १. जिसमें दल या मोटाई हो। २. जिसमें
पत्ता हो। पत्तोवाला।

दलीप—संज्ञा पुं० [सं० दिलीप] दे० 'दिलीप'।

दलील—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तर्क। हक्ति। २. बहस। वाद-
विवाद।

क्रि० प्र०—करना।—लाना।

दलेगंधि—संज्ञा पुं० [सं० दलेगन्धि] समकाली वृक्ष।

दलेपज—संज्ञा पुं० [हि० डलना + पंजा] १. वह घोड़ा जिसकी
कमर तक बड़ी हो। वह घोड़ा जो खदान न रह गया हो।
२. डलती हुई कमर का घादमी।

दलेल—संज्ञा स्त्री० [सं० दल] सिपाहियों का वह दंड जिसमें
हथियार धीरे कपड़े धाँपे सबकी कमर में बाँधकर उन्हें
बहालते हैं। वह कबायद को सजा को तरह पर ली जाय।
उ०—दिल चले दम बने रहेंगे हो, क्यों न हो दिल दलेल में
मेरा।—बोले०, पृ० १४।

मुहा०—दलेल बोखना = सजा की तरह पर कबायद देने की
आज्ञा देना।

दलै—क्रि० सं० [देश०] मुँह बाधो। साधो (हाथीवानों की बोली)।

यौ०—दलै खल दलै—पानी पीयो (हाथीवानों की बोली) ।

दलैया†—संज्ञा पु० [हि० दलना] १. दलने या पीसनेवाला । २. नाश करनेवाला । मारनेवाला । उ०—मंदर बिलंद मंदगति के चलेया, एक पल में दलेया, पर दल बलखानि के ।—मति० प्र०, पृ० ३११ ।

दलभ—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रतारण । धोखा । २. पाप । ३. चक्र । दल्लि—संज्ञा पु० [सं०] १. इंद्र का वज्र । अशनि । २. शिव का एक नाम [को०] ।

दल्लाल—संज्ञा पु० [प्र०] दे० 'दलाल' । उ०—जिन्हें हम व्यापारी न कहकर दल्लाल कहेंगे ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० २६३ ।

दल्लाळा—संज्ञा स्त्री० [प्र० दल्लालह्] कुटनी । हूती ।

दल्लाळी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] दे० 'दलाली' ।

दवंगरा†—संज्ञा पु० [सं० दव + घञ्गार] १. वर्षा ऋतु के प्रारंभ में होनेवाली भूरी । उ०—बिहुरत हिया करहु पिउ टेका । बीठि दवंगरा मेरवहु एका ।—जायसी (शब्द०) । २. वर्षा के प्रारंभ में पानी का कहीं कहीं एकत्र होकर धीरे धीरे बहना । (बुंदेल०) ।

दवरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'देवरी' ।

दव—संज्ञा पु० [सं०] १. वन । जंगल । २. दवाग्नि । वह प्राग जो वन में घापसे घाप लग जाती है । दवारि । दाबा । उ०—वई सहस्रि सुनि दवन कठोरा । भुगी देखि जनु दव चहुँ घोरा ।—तुलसी (शब्द०) । ३. अग्नि । प्राग । उ०—(क) प्राजु प्रयोध्या जल नहि प्रचवों ना मुख देखों माई । सूरदास राघव के बिछुरे मरी प्रवन दव लाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) राकापति खोडख उगे तारागण समुदाय । सकल गिरिन दव लाइए रवि बिनु राति न जाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दवदवक = एक तृण । एक घास का नाम । दवदहन = दावाग्नि । दनाग्नि ।

४. दे० 'दवयु' ।

दवयु—संज्ञा पु० [सं०] १. दाह । जलन । २. संताप । परिताप । दुःख ।

दवदल†—वि० [सं० दव + दल, प्रा० दल] दावाग्नि में जला हुआ । उ०—तहाँ सु भंवर रिख एक, कस तन धंग सुरंग । दवदलो जनु हुंम कोइ के कोइ भूत भुधंग ।—पृ० १०, ६।१७।

दवन†—वि०, संज्ञा पु० [सं० दमन, प्रा० दवण] दमन करनेवाला । नाश करनेवाला । उ०—प्राणमाय सुंदर सुजानमनि दीनबंधु जन प्रारति दवन ।—तुलसी (शब्द०) ।

दवन^२—संज्ञा पु० [सं० दमनक] दीना नामक पौधा । उ०—गहब गुलाब, मंजु मोगरे, दवन फुले, बेले प्रलबेले लिले चंपक अमन में ।—भूषण (शब्द०) ।

दवनपापका—संज्ञा पु० [सं० दमनपपंट] पितपापका ।

दवना†—संज्ञा पु० [सं० दमनक] दे० 'दीना' ।

दवना^२—क्रि० सं० [सं० दव] जलाना । उ०—धीबन दवत दवरिया कुंष कुटीर । तिमि तिमि तकत तरनिघाहि बाढ़ी पीर ।—रहीम (शब्द०) ।

दवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दवन] फसल के सूखे ढंठलों को बीनों से रौंदाकर दाना झाड़ने का काम । देवरी । मिसाई । मंझाई ।

दवरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दवारि' । उ०—धीबन दवत दवरिया कुंष कुटीर । तिमि तिमि तकत तरनिघाहि बाढ़ी पीर ।—रहीम । (शब्द०) ।

दवरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दवारि] घाघ । अग्नि । ज्वाला । ताप । उ०—जो मन की दवरी बुझि आवे, तब घट में परखे कुछ पावे ।—दरिया सा०, पृ० ३५ ।

दवारी†—संज्ञा पु० [सं० दावाग्नि] दे० 'दावानल' । उ०—प्रतिधि पूज्य प्रियतम पुराणि के । कामव बन दारिद दवारी के ।—मानस०, १।१९ ।

दवा^१—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. वह वस्तु जिससे कोई रोग या व्याधि दूर हो । औषध । ओषध । उ०—दरद दवा दोनों रहै पीतम पास तयार ।—रसनिधि (शब्द०) ।

यौ०—दवादाना । दवादाक । दवादपन । दवादरमन ।

मुहा०—दवा को न मिलना = थोड़ा सा भी न मिलना । अप्राप्य होना । दुःख होना । दवा देना = दवा पिलाना ।

२. रोग दूर करने का उपाय । उपचार । चिकित्सा । जैसे,—घन्हे वैद्य की दवा करो ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३. दूर करने की युक्ति । मिटाने का उपाय । जैसे,—शक की कोई दवा नहीं । ४. अवरोध या प्रतिकार का उपाय । ठीक रखने की युक्ति । दुस्त करने की तदवीर । जैसे,—उसकी दवा यही है कि उसे दो बार ज़री खोटी सुना दो ।

दवा†^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दव] १. वनाग्नि । वन में लगनेवाली प्राग । उ०—कामन भूधर वारि बयारि महा बिष व्याधि दवा धरि घेरे ।—तुलसी (शब्द०) । २. अग्नि । प्राग । उ०—(क) बल्यो दवा सो तप्त दवा वृत्ति भूरिखवा भर ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) दवा सो तप्त बरामंडल अलंडल धीर मारतंड मंडल दवा सो होत धोर तें ।—वेणी (शब्द०) ।

दवाई†—संज्ञा स्त्री० [क्रा० दवा + हि० ई (शब्द०)] दे० 'दवा' ।

दवाईखाना—संज्ञा पु० [हि० दवाई + क्रा० खाना] दे० 'दवाखाना' ।

दवाखाना—संज्ञा पु० [क्रा०] १. वह जगह जहाँ दवा बिकती हो । २. औषधालय । चिकित्सालय ।

दवाग्नि†—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि' । उ०—कहा दवाग्नि के पिऐ, कहा धरें गिरि पीर ।—मति० प्र०, पृ० ३४७ ।

दवागि†—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] वनाग्नि । दावानल ।

दवागिन†—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि' ।

दवाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन में लगनेवाली प्राग । दावानल ।

दवात^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० दावात] लिखने की स्याही रखने का बरतन ।
मसिपात्र । मसिदानी ।

दवात^२—संज्ञा पुं० [प्रा० दवा] शोधन । उ०—रंजित साहिब न
भावे, कहै कहानी जेत । परम दवात कहै जेत, बुद्ध होइ तेहि
तेत ।—इंद्रा०, पृ० १३ ।

दवादपन—संज्ञा पुं० [प्रा० दवा + सं० दर्पण] शोधन । चिकित्सा ।
उ०—बिना दवा दर्पण के गृहणी स्वरण बली बालें प्रातीं घर ।
—प्राप्ता, पृ० २५ ।

दवादस^३—वि० [सं० द्वादस] दे० 'द्वादस' । उ०—बैद्यनाथन भाद
दवादस जाजिय कीस, समाजिय कीतरा ।—रघु० क०,
पृ० १५८ ।

दवान^४—संज्ञा पुं० [दे० ? या डि०] एक प्रकार का भस्म । एक
प्रकार की उत्तम कोटि की तलवार । उ०—(क) सज्जे हयंद
जे भरे सान, गज्जे सुभट्ट ले लै दवान ।—सुजान०, पृ० १७ ।
(ख) बलै कवान बान भासमान भू गरजियो । दवान दै
दवान की कवान हीय सज्जियो ।—सुजान०, पृ० ३० ।

दवानल—संज्ञा पुं० [सं०] दवाग्न ।

दवाम^५—क्रि० वि० [प्र०] निरय । हुमेखा । सदा । उ०—एक सर्व
उस संधि में यह भी थी कि भांसी का राज्य रामचंद्र राज के
कुटुंब में दवाम के लिये रहेगा, चाहे बारिस और संतान हों,
चाहे गोज हों अथवा गोद लिए हुए हों ।—भांसी०, पृ० १० ।

दवाम^६—संज्ञा पुं० [प्र०] निरयता । स्थायित्व । हुमेखनी ।

दवामी—वि० [प्र०] जो चिरकाल तक के लिये हो । स्थायी । जो
सदा बना रहे । जैसे, दवामी बंदोबस्त ।

दवामी बंदोबस्त—संज्ञा पुं० [प्रा०] जमीन का वह बंदोबस्त जिसमें
सरकारी मासगुजारी सब दिव के लिये मुकर्रर कर दी जाय ।
भूमिकर का वह प्रबंध जिसमें कर सब दिव के लिये इस
प्रकार नियत कर दिया जाय कि उसमें पीछे घटती बढ़ती न
हो सके ।

दवार^१—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'द्वार' । उ०—पधराबियो सुभ
प्रात । लल हूँत मुरार छात । दस कर्मेश साहू दवार । मन
रहे साम उचार ।—रा० क०, पृ० ३० ।

दवार^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दवारि' ।

दवारि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि, हि० दवागि] बनावि । दावानल ।
उ०—हाथ न कोळ तलास करे ये पलासन कीने दवारि
लगाई ।—मरेण (शब्द०) ।

दवाला^३—संज्ञा पुं० [सं० द्विदल, राज० दाला (= दो चरणों-
वाला)] छंद । उ०—विषम सम विषम सम दवाले वेद तुक,
ठीक गुर संत तुक बहुस ठाला ।—रघु० क०, पृ० ५० ।

दव्वार^४—संज्ञा पुं० [सं० दवाग्नि, हि० दवारि] [प्राग की लपट]
आग का पुंज । उ०—प्रागै अग्नि का दव्वार । तपसी भाय
साता सार ।—राम० धर्म०, पृ० १६८ ।

दस—क्रि० [सं०] दे० 'दस' ।

दशकंठ—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठ] रावण (जिसके दस कंठ वा
छिर थे) ।

दशकंठजहा—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजहा] रावण के संहारक, श्री
रामचंद्र । उ०—भाजु विराजत राज है दशकंठजहा को ।—
तुलसी (शब्द०) ।

दशकंठजित्—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजित्] रावण को जीतनेवाले,
श्रीराम ।

दशकंठारि—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठारि] (रावण के शत्रु) श्री
रामचंद्र ।

दशकंध—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्कन्ध, हि० कंध] रावण ।

दशकंधर—संज्ञा पुं० [सं० दशकन्धर] रावण ।

दशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस का समूह । दस की डेरी । २. दस
वर्षों का समूह । दस साल का निर्धारित काल ।

दशकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दशकर्मन्] गर्भाधान से लेकर विवाह तक
के दस संस्कार, जिनके नाम ये हैं—गर्भाधान, पुंसवन,
सोमंतोग्नयन, जातकरण, निष्क्रामण, नामकरण, अन्नप्राशन,
चूड़ाकरण, उपनयन और विवाह ।

दशकुमारचरित—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत कवि दंडी का लिखा
एक गद्यात्मक काव्य ।

दशकुलवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुछ विशेष वृक्ष,
जिनके नाम ये हैं—लिसोड़ा, करंज, बेल, पीपल, कदंब, नीम,
बरगद, गुलर, भावला और हमली ।

दशकोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दशताल के ग्यारह भेदों में से एक
(संगीत) ।

दशक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार इन दस जंतुओं का
दूध—गाय, बकरी, ऊँटनी, भैंस, बस, घोड़ी, स्त्री, हथनी,
हिरनी और गदहो ।

दशगाय—संज्ञा [सं० दशगाय] दे० 'दशगाय' ।

दशगात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर के दस प्रधान अंग । २. मृतक
संबंधी एक कर्म जो उसके मरने के पीछे दस दिनों तक होता
रहता है ।

विशेष—इसमें प्रतिदिन पिंडदान किया जाता है । पुराणों में
लिखा है कि इसी पिंड के द्वारा क्रम क्रम से प्रेत का शरीर
बनता है और दशवें दिन पूरा हो जाता है । जैसे, पहले
पिंड से सिर, दूसरे से छाँह, कान, नाक इत्यादि ।

दशग्रामपति—संज्ञा पुं० [सं०] जो राजा की ओर से दस ग्रामों का
अधिपति या शासक बनाया गया हो ।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि राजा पहले प्रत्येक ग्राम का
एक मुखिया या शासक नियुक्त करे, फिर उससे अधिक प्रसिद्धता
और योग्यता के किसी मनुष्य को दस ग्रामों का अधिपति
नियत करे, इसी प्रकार बीस, छत, सहस्र आदि तक के
ग्रामों के हाकिम नियुक्त करने का विधान लिखा है ।

दशग्रामिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशग्रामपति' [को०] ।

दशग्रामी—संज्ञा पुं० [सं० दशग्रामिन्] दे० 'दशग्रामपति' [को०] ।

दशग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

दशति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सो । छत ।

दशद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के दस द्वार—२ कान, २ नासिका, २ मुख, १ गुद, १ निग धोर १ ब्रह्मांड ।

दशधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मनुस्मृति में निर्दिष्ट धर्म के दस बखण जो मानव मात्र के बिये करणीय हैं ।

दशधा^१—वि० [सं०] १. दस प्रकार का । २. दस के स्थान का । दशम । दसवीं । उ०—विश्वमंगल आचार सर्वानंद दशधा के आचार ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४११ ।

दशधा^२—क्रि० वि० दस प्रकार ।

दशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दांत । २. दांत से काटना । दांतों से काटने की क्रिया । ३. कदम । धर्म । ४. चिह्न । चोट ।

यौ०—दशनच्छद । दशनवासस् = होंठ । दशनपद = दांत क्षत का स्थान प्रथवा चिह्न । दशनबीज ।

दशनच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] होंठ । घोष्ठ ।

दशनबीज—संज्ञा पुं० [सं०] धनार ।

दशानांशु—संज्ञा पुं० [सं०] दांतों की चमक । दांतों की दमक (की०) ।

दशानाढ्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोनिया शाक ।

दशनाम—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यासियों के दस भेद जो ये हैं—१. तीर्थ, २. आश्रम, ३. वन, ४. शरण्य, ५. निरि, ६. पर्वत, ७. सागर, ८. सरस्वती, ९. भारती और १०. पुरी ।

दशनामी—संज्ञा पुं० [हि० दशनाम] संन्यासियों का एक वर्ग जो मठतवादी शंकराचार्य के शिष्यों से बना है ।

विशेष—शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्य थे—पद्मपाद, हुस्तामसक, मंडन और तोटक । इनमें से पद्मपाद के दो शिष्य थे—तीर्थ और आश्रम; हुस्तामसक के दो शिष्य—वन और शरण्य, मंडन के तीन शिष्य—निरि, पर्वत और सागर । इसी प्रकार तोटक के तीन शिष्य—सरस्वती, भारती और पुरी । इन्हीं दस शिष्यों के नाम से संन्यासियों के दस भेद बने । शंकराचार्य ने चार मठ स्थापित किए थे, जिनमें इन दस शिष्यों की शिष्यपरंपरा चली जाती है । पुरी, भारती और सरस्वती की शिष्य परंपरा शृंगेरी मठ के अंतर्गत है; तीर्थ और आश्रम शाखा मठ के अंतर्गत, वन और शरण्य गोवर्धन मठ के अंतर्गत तथा निरि, पर्वत और सागर जोशी मठ के अंतर्गत हैं । प्रत्येक दशनामी संन्यासी इन्हीं चार मठों में से किसी न किसी के अंतर्गत होता है । यद्यपि दशनामी ब्रह्म या विष्णु का उपासक प्रसिद्ध है, तथापि इनमें से बहुतेरे शैवमत की दीक्षा लेते हैं ।

दशनोच्छिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपहर । घोष्ठ । २. अपहरचुंबन । ३. निश्वास । श्वास । ४. दांतों द्वारा स्पृष्ट कोई वस्तु (की०) ।

दशपंचतपा—संज्ञा पुं० [पुं० दशपञ्चतपस] इष्टियों का निब्रह्म करते हुए पंचांगि तपस्या करनेवाला तपस्वी (की०) ।

दशप—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'दशपामपति' ।

दशपारमिताधर—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

दशपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. केवटी मोवा । २. मालवे का एक प्राचीन

विभाग जिसके अंतर्गत दस नगर थे । इसका नाम मेघदूत में आया है ।

दशपेय—संज्ञा पुं० [सं०] आश्वलायन श्रौतसूत्र के अनुसार एक प्रकार का यज्ञ ।

दशबल—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

विशेष—बुद्ध को दस बल प्राप्त थे, जिनके नाम ये हैं—ज्ञान, शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल, उपाय, प्रणिधि और ज्ञान ।

दशबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव । पंचमुख (की०) ।

दशभुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम ।

दशभूमिग—संज्ञा पुं० [सं०] (दान आदि दस भूमियों या बलों को प्राप्त करनेवाले) बुद्धदेव ।

दशभूमोश—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

दशम—वि० [सं०] दसवीं ।

यौ०—दशमदशा । दशमद्वार । दशमभाव । दशमलव ।

दशमदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के रसरूपण में बिमोही की वह दशा जिसमें वह प्राण त्याग देता है ।

दशमद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मरंध्र । उ०—दशमद्वार से प्राण को त्याग श्री रामचाम को प्राप्त हुए ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४५५ ।

दशमभाव—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक जन्मलग्नांश । कुंडली में लग्न से दसवीं घर ।

विशेष—इस घर से पिता, कर्म, ऐश्वर्य आदि का विचार किया जाता है ।

दशमलव—संज्ञा पुं० [सं०] वह भिन्न जिसके दूर में दस या उसका कोई घात हो (गणित) ।

दशमहाविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] डे० 'महाविद्या' (की०) ।

दशमांश—संज्ञा पुं० [सं०] दसवां हिस्सा । दसवां भाग ।

दशमाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद । एक प्रदेश का प्राचीन नाम ।

दशमालिक—संज्ञा पुं० [सं०] दशमाल देश ।

दशमास्य—वि० [सं०] माता के गर्भ में दस महीने तक रहने-वाला (की०) ।

दशमिकभग्नांश—संज्ञा पुं० [सं०] अंकगणित की एक क्रिया जिसके द्वारा प्रत्येक भिन्न या भग्नांश इस रूप में लाया जाता है कि उसका हर दस का कोई गुणित अंक हो जाता है । दशमलव ।

दशमी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चांद्रमास के किसी पक्ष की दसवीं तिथि । २. विमुक्तावस्था । उ०—दशमी रानी है दिल दायक । सब राखी की सो है नायक ।—कबीर सा०, पृ० ३५० । ३. मरणावस्था ।

दशमी^२—वि० [सं० दशमिन्] [वि० स्त्री० दशमिनी] बहुत बूढ़ । बहुत पुराना । अतापु की अवस्थावाला ।

दशमुख^१—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

बी०—दशमुखांतक = राम ।

दशमुख^२—संज्ञा पुं० [सं० दस + मुख] १. दसों दिशाएँ । २. त्रिदेव (ब्रह्मा के ४ मुख; विष्णु का १ और महेश के ५ मुख) ।

उ०—दशमुख मुख जोवें गजमुख मुख को ।—राम चं०, पृ० १ ।

दशमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशमूत्रक' ।

दशमूत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] इन दस जीवों का मूत्र जो वैद्यक में काम आता है—१. हाथी, २. बैल, ३. ऊँट, ४. गाय, ५. बकरा, ६. भेडा, ७. घोड़ा, ८. बंदहा, ९. पुरुष, और १०. स्त्री ।

दशमूल—संज्ञा पुं० [सं०] दस पेड़ों की छाल या जड़ जो दवा के काम आती है ।

विशेष—चरित्रन (शाखपर्णी), पिठवन (पुश्पिपर्णी), छोटी कटाई, बड़ी कटाई, और गोखरू ये लघुमूल और बेल, सोना-पाठा (प्रयोनाक), गंधारी, गवियारी और पाठा बृहन्मूल कहलाते हैं । इन दोनों के योग को दशमूल कहते हैं । दशमूल काष्ठ, श्वास और सम्बिपात ज्वर में उपकारी माना जाता है ।

दशमूलीसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं० दशमूलीसङ्ग्रह] वे दस चीजें जो प्राण से बचने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को घर में रखनी चाहिए ।

विशेष—चंद्रपुस मीय के समय में निम्नलिखित दस चीजों को घर में रखने के लिये प्रत्येक व्यक्ति राजनिमम के द्वारा वाध्य था,—पानी से भरे हुए पाँच बड़े, (२) पानी से भरा हुआ एक मटका, (३) सीढ़ी, (४) पानी से भरा हुआ बाल का बरतन, (५) फरसा या कुल्हाड़ी, (६) सूय, (७) भंक्रुन, (८) खूँटा आदि बचावने का औजार, (९) मशक और (१०) हुमादि । इन दसों चीजों का नाम दशमूलीसंग्रह था । जो लोग इसके रखने में प्रमाद करते थे उनको १४ पाण्डुरमाना देना पड़ता था ।

दशमेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मकुंडली में दशम भाव का अधिपति (ज्योतिष) । २. सिद्ध संप्रदाय के दसवें गुरु भोविसिह ।

दशमौलि—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

दशयोगभंग—संज्ञा पुं० [सं० दशयोगभङ्ग] फलित ज्योतिष में एक नक्षत्रवैष जिसमें विवाह आदि शुभकर्म नहीं किए जाते ।

विशेष—जिस नक्षत्र में सूर्य हो और जिस नक्षत्र में कर्म होने-वाला हो, दोनों नक्षत्रों के जो स्थान षण्मास में हों उन्हें जोड़ डाले । यदि जोड़ पंद्रह, चार, ग्यारह, उन्नीस, सत्ताइस, अठारह या बीस आवे तो दशयोगभंग होना ।

दशरथ—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय एक प्राचीन राजा जिनके पुत्र श्रीरामचंद्र थे । ये देवताओं की ओर से कई बार असुरों से लड़े थे और उन्हें परास्त किया था ।

विशेष—इस शब्द के आगे पुत्र वाचक शब्द लगने से 'राम' अर्थ होता है ।

दशरथसुत—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र ।

दशरथिमशत—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । भंशुमासी [को०] ।

दशरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस रातें । २. एक यज्ञ जो दस अग्निवर्षों में समाप्त होता था ।

दशरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत में नाट्यशास्त्र पर आचार्य बर्नजय का लिखा हुआ लक्षणग्रंथ ।

दशरूपभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु जिन्होंने दस अवतार धारण किया था [को०] ।

दशवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दशवक्त्र] दे० 'दशमुख' ।

दशवदन—संज्ञा पुं० [सं०] दशमुख ।

दशबाजी—संज्ञा पुं० [सं० दशबाजिन्] चंद्रमा ।

दशबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

दशवीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक सत्र या यज्ञ का नाम ।

दशशिर—संज्ञा पुं० [सं० दश + शिरस्] रावण ।

दशशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. रावण । २. चलाए हुए अस्त्रों को निष्फल करने का एक अस्त्र ।

दशशीश^(७)—संज्ञा पुं० [सं० दशशीर्ष] दे० 'दशशीर्ष' ।

दशसोस^(७)—संज्ञा पुं० [सं० दशशीर्ष] रावण । दशमुख ।

दशस्यंदन^(७)—संज्ञा पुं० [सं० दशस्यन्दन] दशरथ नामक राजा ।

दशहरा^१—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ शुक्ला दशमी तिथि जिसे गंगा दशहरा भी कहते हैं ।

विशेष—इस तिथि को गंगा का जन्म हुआ था अर्थात् गंगा स्वर्ग से मर्त्यलोक में आई थीं । इसी से यह अत्यंत पुण्य तिथि मानी जाती है । कहते हैं, इस तिथि को नंगास्नान करने से दसों प्रकार के और जन्म जन्मांतर के पाप दूर होते हैं । यदि इस तिथि में हस्तनक्षत्र का योग हो या यह तिथि मंगलवार को पड़े तो यह और भी अधिक पुण्यजनक मानी जाती है । दशहरा को लोग गंगा की प्रतिमा का पूजन करते हैं और सोने चांदी के लज्जंतु बनाकर भी नंगा में डालते हैं ।

२. विजयादशमी ।

दशहरा^२—संज्ञा बी० [सं०] गंगा, जो दस प्रकार के पापों का हरण करती है [को०] ।

दशांग—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्ग] पूजन में सुगंध के निमित्त जलाने का एक धूप जो दस सुगंध द्रव्यों के मेल से बचता है ।

विशेष—यह धूप कई प्रकार से भिन्न भिन्न द्रव्यों के मेल से बनता है । एक रीति के अनुसार दस द्रव्य ये हैं—शिलारस, गुग्गुल, चंदन, जटामासी, मोबान, राल, खस, नख, भीमसेनी कपूर और कस्तूरी । दूसरी रीति के अनुसार मधु, नागरमोषा, घो, चंदन, गुग्गुल, अमर, शिलाजतु, सलाई का धूप, गुड़ और पीसी सरसों । तीसरी रीति गुग्गुल, गंधक, चंदन, जटामासी, सतावरि, सज्जी, खस, घी बपूर और कस्तूरी ।

दशांग क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गक्वाथ] दस औषधियों का काढ़ा ।

विशेष—इस काढ़े में विम्बाकित १० औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं—(१) अदुसा, (२) गुर्च, (३) पित्तपापड़ा, (४) चिरायता, (५) नीम की छाल, (६) जलभंग, (७) हड़, (८) बहेड़ा, (९) छावला, और (१०) कुलथी । इनके क्वाथ में मधु डालकर पिलाने से अम्लपित्त नष्ट होता है ।

दशांगुल^१—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गुल] सरबुजा । डंगरा ।

दशांगुल—वि० जो लंबाई में दस अंगुल का हो। दस अंगुल के परि-
माणवाला [को०]।

दशांत—संज्ञा पु० [सं० दशान्त] बुड़ापा।

दशांतर—संज्ञा पु० [सं० दशान्तरा] शरीर प्रपचा जीव की विभिन्न
दशा [को०]।

दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अवस्था। स्थिति या प्रकार। हालत।
वैसे,—(क) रोगी की दशा अच्छी नहीं है। (ख) पहले
मैंने इस मकान को अच्छी दशा में देखा था। २. मनुष्य के
जीवन की अवस्था।

विशेष—मानव जीवन की दस दशाएँ मानी गई हैं—(१) गर्भवास,
(२) जन्म, (३) बाल्य, (४) कोमार, (५) योग्य, (६)
यौवन, (७) स्थाविर्य, (८) जरा, (९) प्राणरोध और
(१०) नाश।

१. साहित्य में रस के अंतर्गत विरही की अवस्था।

विशेष—ये अवस्थाएँ दस हैं—(१) अभिलाष, (२) चिंता, (३)
स्मरण, (४) गुणकषण, (५) उद्वेग, (६) प्रलाप, (७)
कन्धाव, (८) व्याधि, (९) अकृता और (१०) मरण।

४. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह
का नियत मोमकाल।

विशेष—दशा निकालने में कोई मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष
की मानकर चलते हैं और कोई १०८ वर्ष की। पहली
रीति के अनुसार निर्धारित दशा विशेषतः और दूसरी के अनु-
सार निर्धारित अष्टोत्तरी कहलाती है। आयु के पूरे काल में प्रत्येक
ग्रह के भोग के लिये वर्षों की प्रत्येक प्रत्येक संख्या नियत
है—वैसे, अष्टोत्तरी रीति के अनुसार सूर्य की दशा ६ वर्ष,
चंद्रमा की १५ वर्ष, मंगल की ८ वर्ष, बुध की १७ वर्ष,
शनि की १० वर्ष, बृहस्पति की १६ वर्ष, राहु की १२ वर्ष
और शुक्र की २१ वर्ष मानी गई हैं। दशा जन्मकाल के
नक्षत्र के अनुसार मानी जाती है। वैसे, यदि जन्म कुत्तिका,
रोहिणी या पुनर्वसु नक्षत्र में होगा तो सूर्य की दशा होगी;
मघा, पूर्वाषाढ, पुष्य या धनिष्ठा नक्षत्र में होगा तो चंद्रमा
की दशा; मघा, पूर्वाषाढ, पुष्य या धनिष्ठा नक्षत्र में होगा तो
मंगल की दशा; कुम्भ, चित्रा, स्वाती या विशाखा में होगा तो
बुध की दशा; मीन, ज्येष्ठा या मूल नक्षत्र में होगा तो
शनि की दशा; पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, अश्लेष या अश्लेष
नक्षत्र में होगा तो बृहस्पति की दशा; धनिष्ठा, शतभिषा या
पूर्व भाद्रपद में होगा तो राहु की दशा और उत्तर भाद्रपद,
रेवती, अश्लेष या मर्यादा नक्षत्र में होगा तो शुक्र की दशा
होगी। प्रत्येक ग्रह की दशा का फल प्रत्येक प्रत्येक निश्चित
है—वैसे, सूर्य की दशा में चिंता को उद्वेग, धनहानि, क्लेश,
विदेशप्रवास, बंधन, राजकीय इत्यादि। चंद्रमा की दशा में
देशव्यय, राजसम्मान, रत्नवाहन की प्राप्ति इत्यादि।

प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल या दशा के अंतर्गत भी एक
एक ग्रह का भोगकाल नियत है जिसे अंतर्दशा कहते हैं।
रवि की दशा को लीजिए जो ६ वर्ष की है। जब इस
६ वर्षों के बीच सूर्य की अपनी दशा ४ महीने की, चंद्रमा

की १० महीने की, मंगल की ५ महीने की, बुध की ११ महीने
२० दिन की, शनि की ६ महीने २० दिन की, बृहस्पति
की १ वर्ष २० दिन की, राहु की ८ महीने की, शुक्र की
१ वर्ष २ महीने की है। इन अंतर्दशाओं के फल भी प्रत्येक
प्रत्येक निश्चित हैं—वैसे, सूर्य की दशा में सूर्य की अंतर्दशा
का फल राजदंड, मनस्ताप, विदेशप्रवास इत्यादि; सूर्य की दशा
में चंद्र की अंतर्दशा का फल शत्रुनाश, रोक्कांति, विवाह
इत्यादि।

ऊपर जो हिसाब बतलाया गया है वह नाक्षत्रिक दशा का है।
इसके प्रतिरिक्त योगिनी, वायिकी, शनिनी, मुकुंदा, पताकी,
हरयोरी इत्यादि और भी दशाएँ हैं पर ऐसा लिखा है कि
कलियुग में नाक्षत्रिक दशा ही प्रधान है।

५. दीए की बत्ती। ६. चिंता। ७. कपड़े का छोर। बस्तांत।

दशाकर्ष—संज्ञा पु० [सं०] १. कपड़े का छोर या बस्तांत। २.
दीपक। चिराग।

दशाकर्षी—संज्ञा पु० [सं० दशाकर्षिन्] २० 'दशाकर्ष' [को०]।

दशाक्षर—संज्ञा पु० [सं०] एक बहुरिक्त द्वा [को०]।

दशाधिपति—संज्ञा पु० [सं०] १. फलित ज्योतिष में दशाओं के
अधिपति ग्रह। २. दस सेनिकों या सिपाहियों का प्रमुख।
जमादार। (महाभारत)।

दशानन—संज्ञा पु० [सं०] रावण।

दशानिक—संज्ञा पु० [सं०] जमाखोटा।

दशापवित्र—संज्ञा पु० [सं०] श्राद्ध आदि में दान किए जानेवाले
वस्त्रखंड।

दशापाक—संज्ञा पु० [सं०] भाग्य का परिपाक। भाग्यफल का पूर्ण
होना [को०]।

दशामय—संज्ञा पु० [सं०] रुद्र।

दशारुह—संज्ञा स्त्री० [सं०] कैवर्तिका नाम की लता जो मांसवा में
होती है और जिससे कपड़े रंगे जाते हैं।

दशार्ण—संज्ञा पु० [सं०] १. विषय पर्वत के पूर्व दक्षिण की ओर स्थित
उस प्रदेश का प्राचीन नाम जिससे होकर बसन्त नदी बहती है।

विशेष—मेघदूत से पता चलता है कि बिदिशा (प्राचीन
बिलसा) इसी प्रदेश की राजधानी थी। टालमी ने इस प्रदेश
का नाम दोसारन (Dosaron) लिखा है।

२. उक्त देश का निवासी या राजा। ३. वंश का एक दशाक्षर
मंत्र। ४. जैन पुराण के अनुसार एक राजा।

विशेष—इस राजा ने तीर्थंकर के दर्शन के निमित्त जाकर
प्रतिमान किया था। तीर्थंकर के प्रताप से उसे वहाँ
१६,७७,७२,१६,००० इंद्र और १३,३७,०५,७२,८०,००,००,
००० इंद्राणियाँ दिखाई पड़ीं और उसका सर्व भूखंड ही गया।

दशार्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] बसन्त नदी जो विन्ध्यपर्वत से निकल
कर बुंदेलखंड के कुछ भाग में बहती हुई कालसी के पास
जमुना में मिल जाती है।

दशाङ्ग, दशार्ध—संज्ञा पु० [सं०] १. दस का आधा अंश। २.
बुद्धदेव। जो दसबलों से मुक्त है।

दशार्ह—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोट्यवंशीय घृष्ट राजा का पुत्र । २. राजा बुध्नि का शीत । ३. बुध्निवंशीय पुरुष । ४. बुध्नि-वंशियों का अधिकृत देश ।

दशावतार—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् विष्णु के दस अवतार जो इस प्रकार हैं,—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (३) वाराह, (४) नृसिंह, (५) वामन, (६) परशुराम, (७) राम, (८) कृष्ण (९) बुद्ध धीर (१०) कल्कि ।

दशावरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दस सभ्यों की शासक सभा । दस पंचों की राजसभा ।

विशेष—ऐसी सभा जो व्यवस्था दे, उसका पालन मनु ने आवश्यक लिखा है । गौतम ने दशावरा के दस सभ्यों का विभाग इस प्रकार बताया है कि चार तो भिन्न भिन्न देशों के, तीन भिन्न भिन्न धर्मों के और तीन भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधि हों । बौद्धायन ने धर्मों के तीन शाखाओं के स्थान पर भीमांशक, भर्मपाठक और ज्योतिषी रखे हैं ।

दशाधिपाक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशापाक' ।

दशाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा जिसके रथ में दस घोड़े सवते हैं ।

दशाश्वमेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. काशी के अंतर्गत एक तीर्थ ।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि राजा विद्वोदास की सहायता से ब्रह्मा ने इस स्थान पर दस अश्वमेध यज्ञ किए थे । पहले यह तीर्थ वसुसरोवर के नाम से प्रसिद्ध था । ब्रह्मा के यज्ञ के पीछे दशाश्वमेध कहा जाने लगा । ब्रह्मा ने इस स्थान पर दशाश्वमेधेश्वर नामक शिवलिंग भी स्थापित किया था । जो लोग इस तीर्थ में स्नान करके उक्त शिवलिंग का दर्शन करते हैं उनके सब पाप छुट जाते हैं ।

२. प्रयाग के अंतर्गत त्रिवेणी के पास यह घाट या तीर्थस्थाव जहाँ यानी जल भरते हैं । लोगों का विश्वास है कि इस स्थान का जल विघ्नहृत्ता नहीं ।

दशास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दशमुख । रावण ।

दशाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस दिन । २. मृतक के कृत्य का दसवाँ दिन ।

विशेष—गृह्यसूत्रों में मृतक कर्म तीन ही दिनों का माना गया है । पहले दिन श्मशान कृत्य और अस्मिन्वचन, दूसरे दिन वस्त्राभ, लीर आदि और तीसरे दिन सपिंडीकरण । स्मृतियों ने पहले दिन के कृत्य का दस दिनों तक विस्तार किया है जिसमें प्रत्येक दिन एक एक पिंड एक एक धर्म की पूति के भिये दिया जाता है । पर अगरहर्वे दिन के कृत्य में अब भी द्वितीयाह्निककल्प का पाठ होता है ।

दशी—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दस गाँवों का शासक । उ०—दश ग्रामों के शासक को 'दशी' कहा जाता था ।—आदि०, पृ० १११ ।

दशैधन—संज्ञा पुं० [सं० दक्ष + धन] (= दीप की बत्ती) + इन्धन] प्रदीप । दीपक । दीया [को०] ।

दशेर—संज्ञा पुं० [सं०] हिंसक जीव । हिंस्र प्राणी [को०] ।

दशेरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरु प्रदेश । मरु देश । २. मरु देश का निवासी । ३. उष्ट्र । ऊँट । भुजा ऊँट । ४. गर्दभ । खट्वा [को०] ।

दशेरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशेरक [को०] ।

दशेश—संज्ञा पुं० [सं०] दस गाँवों का अधिपति । दशी [को०] ।

दशत—संज्ञा पुं० [सं०] जंगल । विद्याभान । बब । उ०—फिरते ही फिरते दशत बिजाले किधर गए । वे आधिकी के हाथ जमाये किधर गए ।—कविता की०, भा० ४, पृ० १५ ।

दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' ।

दक्षिणा—संज्ञा, स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—पुत्र विप्रहि दक्षिणा करि दीन्हा । देवन ताहि नैन हरि लीन्हा—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २१२ ।

दष्ट—वि० [सं०] जिसे किसी ने दसा हो या काट लिया हो । काटा हुआ । उ०—चेतनाहीन मन मानता स्वार्थ धन । दष्ट ज्यों हो सुमन छिद्र घट तनु पान ।—गीतिका, पृ० ५८ ।

दसँ—संज्ञा पुं० [सं० दस] दे० 'दस' । उ०—परमानंद ठगी नंदनंदन, दसँ, कुंद मुसकावत ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २१५ ।

दस—वि० [सं० दस] १. पाँच का दूना । जो बिनती में नौ के एक अधिक हो । २. कई । बहुत से । जैसे,—(क) दस आदमी जो कहें उसे मानना चाहिए । (ख) वहाँ दस तरह की चीजे देखने को मिलेंगी ।

दस—संज्ञा पुं० १. पाँच की दूनी संख्या । २. उक्त संख्या का सूचक शब्द जो इस प्रकार लिखा जाता है—१० ।

दस—संज्ञा स्त्री० [सं० दस, प्रा० दस, रा० दस] धोर । तरफ । दिशा । उ०—आब घरा दस ऊनमंड, काशी धरु सहराह । उवा घण देसी ओलेंबा, कर कर लीकी बाह ।—डोला०, पृ० २७१ ।

दसई—वि० [सं० दस] दसम । दसवाँ । इस की संख्याबाला । उ०—दसई द्वार न खोलत कोई । तब खोले जब मरमी होई ।—इंद्रा०, पृ० ४६ ।

दसकंध—संज्ञा पुं० [सं० दसकन्ध, हि० दसकंध] रावण । उ०—मसकंध वसकंधपुर निसि कपि भर घर देखि ।—तुलसी०, पृ० ८६ ।

यौ०—दसकंधपुर = कंठा ।

दसखत—संज्ञा पुं० [सं० दसखत] दे० 'दसखत' ।

दसगुना—वि० [सं० दसगुणित] किसी संख्या या परिमाण का दस प्रतिशत अधिक । उ०—होत दसगुना शंकु है दिई एक ज्यों बिहू । दिई दिठोना यों बड़ी आनन आना हंडु ।—मति० ग्रं०, पृ० ४५१ ।

दसगुना—वि० [हि० दसगुना] दे० 'दसगुना' । उ०—राम नाम को शंक है, सब साधन है सुख । शंक गए कुछ हाथ नहि शंक रहे दसगु ।—संतवाणी०, पृ० ७१ ।

दसठौन—संज्ञा पुं० [सं० दस + स्थान] बच्चा जनने के समय की एक रीति, जिसके अनुसार प्रसूता स्त्री दसवें दिन नहाकर सोरी के घर से दूसरे घर में जाती है ।

दसता—संज्ञा पुं० [सं० दस्तानह] हाथ के पंखों की रक्षा के लिये बना हुआ लोह कवच । उ०—माये टोप सनाह तन, कर

दसता रिन काज । भाबड़िया सोभे नहीं, सूरु हँवो साथ ।—

बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० २० ।

दसन^१—संज्ञा पु० [सं० दशन] दे० 'दशन' । उ०—जो चित्त चढ़े नाममहिमा जिन गुणधन पावन पद के । तो तुलसीहि ताहिही विप्र ज्यों दसन तोरि जमयन के ।—तुलसी प्र०, पृ० ५०७ ।

यौ०—दसनबसन = दातों का दस्त धर्यात् छोठ धीर धर ।

उ०—नैननि के तारनि में राखी प्यारे पुतरी के, मुरली ज्यों लाइ राखी दसनबसन में ।—केशव० प्र०, भा० १, पृ० २८ ।

दसन^२—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पंजाब, सिंध, राजपूताने धीर मैसूर में पाई जाती है । इसकी छाल चमड़ा सिक्काने के काम में आती है । दसरनी ।

दसन^३—संज्ञा पु० [सं०] १. विमक्षण । लय । नाच । २. हटा देना । बहिष्करण । निष्कासन । ३. शेषण । फेंकना [को०] ।

दसना^१—क्रि० घ० [हि० डसना] बिछना । बिछाया जाना । फैलाया जाना ।

दसना^२—क्रि० छ० बिछाना । बिस्तर फैलाना । उ०—विवेक सों धनेकथा दखे धनूप धामने । धनघं धर्य आदि दे विनय किए धने धने ।—केशव (सप्त०) ।

दसना^३—संज्ञा पु० [हि०] बिछोना । बिस्तर ।

दसना^४—क्रि० स० [सं० दशन या दशन] दे० 'डमना' ।

दसनामी—संज्ञा पु० [हि० दशनाम] दे० 'दशनामी' । उ०—लेकिन दंडी पाखंडी नहीं निहंद स्वच्छंद धवभूत सर्व वरुणसंगम गिरि, पुरी, भारती धीर दसनामी धीर उदासीन भी ।—किन्नर०, पृ० १०१ ।

दसनावलि—संज्ञा स्त्री० [सं० दशनावलि] दाँतों की पक्ति । उ०—लिप उठी चल दसनावलि पाज, कुंद कलियों में कोमल धाम ।—गुंजन, पृ० ४८ ।

दसमरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दस + मरिया] एक प्रकार की बरसाती बड़ी नाव जिसमें दस तकते लबाई के बल लगे होते हैं ।

दसमाथ^१—संज्ञा पु० [हि० दस + माथ] रावण । उ०—सुनु दसमाथ ! नाथ साथ के हमारे कपि हाथ लंका लाइहू तो रहैगी हथेरी भी ।—तुलसी (शब्द०) ।

दसमी—संज्ञा स्त्री० [सं० दशमी] दे० 'दशमी' ।

दसरंग—संज्ञा पु० [हि० दस + रंग] मलखंभ की एक कसरत ।

विशेष—इस कसरत में कमरपेटा करके जिघर का पैर मलखंभ को लपेटे रहता है उधर के हाथ को सोधी एकड़ से मलखंभ में लपेटकर धीर दूसरे हाथ को भी पीछे से फँसाकर सवारी बाँधते हैं तथा धीर धनेक प्रकार की मुद्राएँ करते हुए नीचे ऊपर लसकते हैं ।

दसरथ^१—संज्ञा पु० [सं० दशरथ] दे० 'दशरथ' । उ०—क्यों न रंमारहि मोहि, दयासिपु दसरथ के ।—तुलसी प्र०, पृ० ६० ।

दसरथ^२—संज्ञा पु० [सं० दशरथ] दे० 'दशरथ' ।

यौ०—दसरथसुत = रामचंद्र । उ०—मोह दसरथसुत भगत हित कोसल पति जगधान ।—मानस, १।११८ ।

दसरनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी । वि० दे० 'दसन' ।

दसरान—संज्ञा पु० [हि० दस + रान ?] कुपती का एक पेड़ ।

दसराहा—संज्ञा पु० [सं० दशहरा] विजया दशमी उ०—डोल रहसि निवारियत भिजिसि दई कह सेखि । पुनल हुइस व प्राहुणउ, दसराहा लय देखि ।—डोबा०, पृ० २७३ ।

दसर्वा^१—वि० [सं० दशम] जिसका स्थान भी धीर वस्तुओं में उपरांत पड़ता हो । जो क्रम में नी धीर वस्तुओं के पीछे हो । गिनती के क्रम में जिसका स्थान दस पर हो । जैसे, बसबा लड़का ।

दसर्वा^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'दशगात्र' ।

दसस्यंदन^१—संज्ञा पु० [सं० दश + स्यन्दन] दशरथ । उ०—जनमे राम जगत के जीवन, धनि कीसल्या धनि दसस्यंदन ।—धनानंद०, पृ० ५५१ ।

दसांग—संज्ञा पु० [सं० दशाङ्ग] दे० 'दशांग' ।

दसा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दशा] दे० 'दशा' ।

दसा^२—संज्ञा पु० [हि० दस] धगरवाल वेश्यों के दो प्रधान सेवों में से एक ।

दसारन—संज्ञा पु० [सं० दशाणं] एक देश । दे० 'दशाणं' ।

दसारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिट्ठिया जो पानी के किनारे रहती है ।

दसी—संज्ञा स्त्री० [सं० दसा] १. कपड़े के छोर पर का सूत । छोर । २. कपड़े का पल्ला । धान का धान । उ०—जाता है जिस जान दे, तेरी दसी न जाय ।—कबीर (शब्द०) । ३. बैनगाड़ी की पटरी । ४. चमड़ा छीलने का औजार । रापी । ५. पता । निशान । चिह्न ।

दसैंदू—संज्ञा पु० [देश०] केंदू । तेंदू का पेड़ ।

दसेरक, दसेरक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दसेरक' ।

दसैं—संज्ञा स्त्री० [सं० दसमी, हि० दसई] दशमी तिथि ।

दसोतरा^१—वि० [सं० दसोत्तर] दस ऊपर । दस अधिक । जैसे, दसोतरा सी धर्यात् एक सौ दस ।

दसोतरा^२—संज्ञा पु० सौ में दस । सैकड़ा पीछे दस का भाग ।

दसौधी—संज्ञा पु० [सं० दस (= दानपत्र) + दधुक् (= स्तुतिनायक, भाट)] बंदियों या चारणों की एक जाति जो अपने का ब्राह्मण कहती है । ब्रह्मचर । भाट । राजाओं की बंधाबन्धा धीर प्रशंसा करनेवाला पुरुष । उ०—(क) राजा रहा छट्टि करि धौबी । रहि न सका सब जाइ दसौधी ।—जायस (शब्द०) । (ख) दस दस तें डाढ़ी धाप मनवांछित फल पायो । को कहि सके दसौधी उनको जयो सबन मन भायो ।—सूर (शब्द०) ।

दस्तदाज—वि० [फा० दस्तदाज] हस्तक्षेप करनेवाला । बाधा देनेवाला । छेड़छाड़ करनेवाला [को०] ।

दस्तदाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० दस्तदाजी] किसी काम में हाथ डालने की क्रिया । किसी होते हुए काम में छेड़छाड़ । हस्तक्षेप । दस्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

